Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

3·1

ओ३म्

महर्षि दयानन्द चरित

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

११३/3

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५४/3

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित

मूल लेखक
बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

अनुवादक
पं० श्री घासीराम, एम०ए०
एल-एल०बी०, एडवोकेट, मेरठ
(भूतपूर्व प्रधान, आर्यप्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त)

सम्पादक
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६ दूरभाष : २९१४९४५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक :
गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क,
दिल्ली-११०००६

संस्करण : **प्रथम**
महर्षि दयानन्द बोधरात्रि २०५०

मूल्य : **२५०.०० रुपये मात्र**

लेज़र टाइप सैटिंग :
भगवती प्रकाशन,
मॉडल टाउन, दिल्ली-६

मुद्रक :
स्पीडो ग्राफ़िक्स
२०-बी, पटपड़गञ्ज, दिल्ली-९२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची

संग्रहकर्त्ता की भूमिका—प्राक्कथन (पृष्ठ १७—२२)

लेखक की भूमिका (पृष्ठ २३—३६)

दयानन्द आर्षज्ञान का प्रचारक, दयानन्द मूर्त्तिपूजा का शत्रु, दयानन्द ब्रह्मचर्य का पोषक, दयानन्द भारतीय एकता का प्रतिपादक, जीवनचरित और इतिहास, उपसंहार।

प्रथम अध्याय (पृष्ठ ४१—५१)

कर्शनजी त्रिवाड़ी, कर्शनजी के पूर्वपुरुषों का निवासस्थान, जन्म-ग्रहण, कर्शनजी का वंश, कर्शनजी का लेन-देन, पितृ-प्रकृति, तत्कालीन भारत की राजनैतिक अवस्था, भारत की सामाजिक अवस्था, भारत की धार्मिक अवस्था, काठियावाड़ की अवस्था।

द्वितीय अध्याय (पृष्ठ ५२—६०)

बाल्य शिक्षा, मूर्त्तिपूजा में अविश्वास, वैराग्योदय, गृहत्याग।

तृतीय अध्याय (पृष्ठ ६१—८२)

योगियों का अनुसन्धान, पिता ने पकड़ लिया, संन्यास-प्रवेश, योगशिक्षा, उत्तराखण्ड से अवतरण, नाड़ीचक्र-परीक्षा, अनुगाङ्गभूमि-विचरण, नर्मदा के स्रोत का अनुसन्धान।

चतुर्थ अध्याय (पृष्ठ ८३—११८)

मथुरा, दण्डी विरजानन्द से मिलन, दण्डी विरजानन्द, विद्या-समाप्ति और गुरु-दक्षिणा, आगरा-गमन, ग्वालियर, करौली, खुशहालगढ़, जयपुर, पुष्कर, अजमेर, किशनगढ़, जयपुर दूसरी बार, आगरा, मथुरा, मेरठ।

पञ्चम अध्याय (पृष्ठ ११९—१३२)

हरिद्वार, खण्डन-पताका, अद्भुत संन्यासी, सर्वं वै पूर्ण ॐ स्वाहा, दयानन्द मौनी, गङ्गातट-विचरण, माँझी की आधी रोटी, कर्णवास, फ़र्रुखाबाद, अनूपशहर, नवलजंग पहलवान, वामी गुण्डे, बुद्धा से बुद्धिसागर, तत्कालीन उपदेश, चासी, नन्दराम चक्रांकित, थारपुर, रामघाट, दयानन्द का प्रथम शिष्य टीकाराम, कर्णवास, उपदेश का प्रभाव, प्रथम शास्त्रार्थ, अहार, चासी, दयानन्द की बल-परीक्षा, यज्ञोपवीत उतारा भी जाता है, चपत द्वारा नवीन-वेदान्त खण्डन, धुनिया को उपदेश, चासी में जीवित पितरों का श्राद्ध, रामघाट, घोर मूर्त्तिपूजक, कृष्णानन्द से शास्त्रार्थ, घोर मूर्त्तिपूजक की मूर्त्तियाँ गङ्गा में, हमारे तो तुम ही शालिग्राम हो, बेलौन, कर्णवास, हीराबल्लभ के साथ शास्त्रार्थ, श्रद्धा की बाढ़, एक नौ मुस्लिम रईस, हम उच्छिष्ट नहीं खाएँगे, सूर्यग्रहण के समय भोजन, दिनचर्या, ६० वर्ष की वृद्धा का धर्मप्रवेश, यज्ञोपवीत की आवश्यकता, बुलन्दशहर के कलक्टर, बिना युद्ध पहलवान परास्त, बिना शास्त्रार्थ पण्डितगण पर विजय, तुमने फलियाँ चुराई हैं, द्वन्द्वातीत दयानन्द, अङ्गदशास्त्री का पत्र, रात्रि में दो यूरोपियनों से साक्षात्।

षष्ठ अध्याय (पृष्ठ १३३—१४५)

गढ़ियाघाट, भक्त बलदेवगिरि, उजड्ड ठाकुर, सोरों, पण्डित अङ्गदशास्त्री शिष्य हो गये, सहपाठी पण्डित युगलकिशोर, कैलासपर्वत कुटिया में कैसे समा गया, कैलाशपर्वत भयभीत, नग्न साधु चुप, भागवती पण्डित अनुगत, महाभारत का संशोधन, पण्डित अङ्गदशास्त्री पीलीभीतवाले सम्मुख न आये, दयानन्द के धोखे में एक साधु का गङ्गा में मज्जन, क्रोधी जाट, वैरागियों का द्वेष, कर्णवास, राव कर्णसिंह का आक्रमण, हम ब्राह्मणत्व से पतित न होंगे, पाप का फल, पुनः प्राणहरण-चेष्टा, हुँकारमात्र से घातकों का पलायन, अम्बागढ़, सरदोल, शाहबाज़पुर, दयानन्द के शिरश्छेद का यत्न, कादिरगञ्ज, नरदौली, ककोड़े का मेला, पादरी से वार्त्तालाप, पण्डित उमादत्त से शास्त्रार्थ, वैरागी निरुत्तर, गोसाईं ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूर्त्तियाँ फेंक दी, कायमगञ्ज, ब्रह्मचर्य का उपदेश, अचारी अवश्य खाऊँगा, पादरी अनलन, शकरुल्लापुर, आशीर्वाद की सफलता।

सप्तम अध्याय (पृष्ठ १४६—१६७)

फ़र्रुखाबाद, वैश्य रईसों का यज्ञोपवीत, फ़र्रुखाबाद के साध, साधों की कढ़ी-भात का भोजन, पण्डित गङ्गाराम सम्मुख न आये, दो उद्दण्ड युवक, पण्डित श्रीगोपाल से शास्त्रार्थ, काशी के पण्डितों की व्यवस्था, रेत में धर्मध्वजा, दयानन्द ने विश्रान्त कील दी है, पुलिस का सब-इंस्पैक्टर, ज्वालाप्रसाद मद्यप की लीला, हम सच्ची बात कह देंगे, मेरी परमात्मा ही रक्षा करेंगे, मुसलमानों से वार्त्तालाप, काशी की व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा, पाठशाला स्थापन, दुराचारी को सदाचारी बना दिया, हलधर ओझा से शास्त्रार्थ का उपक्रम, शास्त्रार्थ, व्याकरण हार-जीत की कसौटी, ओझाजी हारे, ओझाजी मूर्च्छित-से हो गये, ओझा ने मन्त्र मार दिया, पहलवान कौपीन न निचोड़ सके, मन्दिर न बनाकर यज्ञशाला का विचार, मिथ्या दोषारोपण, दुर्वचन कहनेवाले का स्वागत, एक नामी गुण्डा श्रीचरणों में, मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर, मनुष्य का कर्त्तव्य, लड़कों के ढेले खाये, शृङ्गीरामपुर, जलालाबाद, कच्ची रसोई कच्ची नहीं पक्की है, कन्नौज, एक सत्यप्रिय पण्डित से शास्त्रविचार, सत्य का अंकुर दब नहीं सकता, कानपुर, गप्पाबाबा, नास्तिक दयानन्द को भैरों घाट से निकाल दो, मूर्ख से शास्त्रार्थ क्या करें, ब्रह्मानन्द की लीला, मन्दिरों पर लाखों रुपया व्यर्थ खो दिया, शास्त्रार्थ की उत्तेजना, शास्त्रार्थ के मध्यस्थ थेन साहब, हलधर ओझा से दूसरा शास्त्रार्थ, असत्यं का बवंडर, शोलए तूरका शोला, मध्यस्थ का निर्णय, मगर हमें दुःख न देगा, योगासनारूढ़, अंगोछे में से पुस्तक न खुल सकी, भैरव की मूर्त्ति जलसात्, ऊँट का चारा, मूर्त्ति फेंक दी—माला तोड़ दी, विनोद-वाक्य, मूर्त्तिपूजकों की घबराहट, मूर्त्तियाँ फेंको नहीं—मन्दिर में पहुँचा दो, गङ्गातट पर वेदगान, दुष्टों का आक्रमण, मैं निरा साधु ही नहीं हूँ, ईंट फेंकनेवाला अनुगत, मैं सत्य का प्रचार करूँगा, तत्कालीन उपदेश, कुरान ईश्वरोक्त नहीं, मूर्त्तिपूजा क्यों त्याज्य है, तेरे पास तो लोटा है उसी से जल चढ़ा, नियमपूर्वक गालीदान।

अष्टम अध्याय (पृष्ठ १६८—१८६)

रामनगर, एक टीकाकार के पीछे, नरेश का आतिथ्य, दयानन्द जो कहते हैं ठीक ही है, वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है, काशी महत्त्व, दयानन्दजनित आन्दोलन, काशी की निद्रा भङ्ग हुई, विद्या-बल की जाँच, नरेश से मूर्त्तिपूजा पर प्रहार न देखा गया, पण्डितजन सिटपिटाये, वेदान्त पर १४ दिन तक विचार, पण्डित शिरोमणि को शास्त्रार्थ का आह्वान, शास्त्रार्थ के मध्य में छुरी में रख लो, विद्या-बल की परीक्षा, शास्त्रार्थ की तैयारी, हाँ मैं शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ, शास्त्रार्थ का विज्ञापन, पहले मुझसे शास्त्रार्थ करो, दयानन्द को परास्त करने का निश्चय, सत्योपदेष्टा को भय कहाँ, पण्डित चिन्तित दयानन्द निश्चिन्त, प्रशान्तसागर में क्षोभ, पण्डितों की समारोह-यात्रा, दयानन्द के पक्षवालों को सभा में नहीं जाने दिया, सिंह और व्याघ्र का सम्मिलन न होने दो, नरेश को प्रबन्ध भङ्ग करने का उपालम्भ, मैं अकेला २७ के लिए पर्याप्त हूँ, बालशास्त्री की शास्त्रार्थ में जाने की अनिच्छा, पण्डित सखाराम भट्ट शास्त्रार्थ में क्यों नहीं गये, काशी- शास्त्रार्थ, दयानन्द पर ढेले आदि की वर्षा और कोतवाल द्वारा उनकी रक्षा, कोतवाल की निष्पक्षता, नरेश का अन्याय, दयानन्द पूर्ववत् शान्त, मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता है, राजपण्डित दयानन्द के पक्ष में, पक्षपात, निष्पक्ष लोगों की सम्मति, एक और निष्पक्ष सम्मति, पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी का शास्त्रार्थ-विवरण, निष्पक्ष पण्डितों की सम्मति, हिन्दू पेट्रियट की सम्मति, पुनः पुनः शास्त्रार्थ का चैलेंज, नरेश का पश्चात्ताप, मित्र का परामर्श, दयानन्द की दया, नरेश का सत्कार, क्षमादान, अच्छा नहीं हुआ, दूषण-मालिका, नागाजी का निमन्त्रण, वामनाचार्य के पत्र का उत्तर, अपमान में शान्त और अविचलित, शास्त्रज्ञ ही नहीं महात्मा भी हैं, रामस्वामी मिश्र का घमण्ड, दयानन्द से देववाणी में बात करना पाप है, बीच में एक छुरी नहीं दो रक्खो, शेखी किरकिरी, मुसलमान चिढ़े, दो यवनों को बगल में दबाकर जल में कूद गये, विषाक्त भोजन और पान, १०-१५ गुण्डों को मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ, भयंकर हुँकारनाद, कूँडी-सोटा छिपा लो, शिव बनने का उपाय, मुझसे उपदेश कार्य नहीं हो सकता, कैलाशपर्वत की न्यायप्रियता, बालशास्त्री।

नवम अध्याय (पृष्ठ १८७—१९६)

प्रयाग, शीत नहीं सताता, एक विद्वान् से साक्षात्कार, मस्तकशृङ्गार नहीं आत्मशृङ्गार करो, धर्मालाप, दोनों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुरुभाई शास्त्रार्थ से पराङ्मुख, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ईसाई होने से बच गये, दयानन्द के सत्संग का प्रभाव, दुराचारी की कायापलट, १०१ प्रश्न, १०१ प्रश्नों का उत्तर, मुक़द्दमा हारकर प्रसन्नता, मित्र चकित, विदुषी बाजीबढ़नगरी, प्रवृत्ति और निवृत्ति-मार्ग, मिर्ज़ापुर, दिनचर्या, चौकीदार डर गया, दयानन्द का दरबार, कलक्टर मिलने का इच्छुक, रईस अनुगत, एक और सेठ अनुगत, गुरु का दोषदर्शन, शास्त्रार्थ का पत्र, पत्र की अशुद्धियाँ, भागवत-मण्डन की चेष्टा, शास्त्रार्थ, ताली किसने बजाई, गीता के श्लोक की व्याख्या, पुजारी की दुष्टता, दुष्टता का उत्तर, रक्षा का प्रबन्ध, चक्री शब्द का अर्थ, पादरी से वार्त्तालाप, वैदिक पाठशाला की स्थापना, मृत्यु का पुरश्चरण—पुरश्चरण करानेवाला स्वयं मृत्यु के मुख में, पीटने का प्रयत्न, काशी, पुनः शास्त्रार्थ का चैलेंज, अद्वैतमत खण्डन, सोरों, कासगञ्ज, शोभायात्रा, पाठशाला स्थापना, पाठशालार्थ धनप्राप्ति, निन्दा का अर्थ, दिनचर्या, रणमस्त साँडों का दमन, बिना आज्ञा आम क्यों उठाया, बलराम, चकेरी, हनोट ।

दशम अध्याय (पृष्ठ १९७—२०६)

अनूपशहर, रामलीला का खण्डन, कृष्णानन्द सामने न आया, तहसीलदार को उत्तेजना, जीवित पितरों का श्राद्ध, अन्य उपदेश, कलक्टर साहब हमें कोठी से नहीं निकालेंगे, मुसलमान तहसीलदार भक्त हो गया, पान में विष, मैं संसार को क़ैद कराने नहीं बल्कि छुड़ाने आया हूँ, अपूर्व धारणाशक्ति, विपक्षी की विचारशक्ति को हर लेते थे, गुप्त अभिप्राय का ज्ञान, नाई की रोटी, रामघाट, चासी, प्रामाण्याप्रामाण्य ग्रन्थ, श्रीगोपाल की धूर्त्तता, छलेसर, ज़मीदारी, के मन्दिरों से मूर्त्तियों का बहिष्कार, स्वागत-समारोह, न्यायप्रिय मुसलमान, पाठशाला-स्थापना, भक्तजन की श्रद्धा, पिता-पुत्र का मनोमालिन्य, वर्षा में ही प्रस्थान, भक्तों की विरहवेदना, रामघाट, फ़र्रुखाबाद, पाठशाला का स्थान-परिवर्तन, काशी।

एकादश अध्याय (पृष्ठ २०७—२३९)

मुग़लसराय, पादरी लालबिहारी दे से साक्षात्, डुमराऊँ, साधु नागाजी, विद्याभिमानी दुर्गादत्त, गर्व खर्व हो गया, हारकर वाक्प्रहार, उपहार अस्वीकार, दुर्गादत्त की अनर्गलता, आरा, दो पण्डितों से शास्त्रार्थ, पुराण किसने बनाये, पण्डित चिढ़कर भाग गये, दो व्याख्यान, आर्यसमाज की पहली दाग़बेल, ज़िला मैजिस्ट्रेट से मिलन, संस्कृत बोलने का कारण, वर्ण कर्म पर निर्भर है, पाककर्म शूद्रकर्म है, पटना, पण्डितमण्डली से शास्त्रार्थ, आपस में फूट, मरने के पश्चात् जीव कहाँ रहता है, शालिग्राम की मूर्त्ति फेंक दी, विद्यार्थी राजनाथ, मार्ग में कण्टक, क्या तूने सर्प देखा, एक वकील से वार्त्तालाप, बिना पूछे उत्तर मिल गया, हम भागवत जैसे ३८,००० श्लोक बना सकते हैं, जूता-खड़ाऊँ के प्रश्नोत्तर, अशुद्धभाषी पण्डित का खिसियाना, मुंगेर, अपरिचित स्थान का परिचय, मौनी का मौन भङ्ग, ईंधन क्यों माँगा, किसी के घर पर जाकर भोजन न करेंगे, अवैदिक पुस्तक गङ्गा की भेंट, भागलपुर, हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिए, राजनाथ ! तेरा पिता आ गया, श्राद्ध जीवित का करना चाहिए, चार नैयायिकों से वार्त्तालाप, पादरी भी चुप, मौलवी भी चुप, महाराजा वर्द्धमान, ईसाई होने पर पश्चात्ताप, वृद्ध पुत्रकाम राजा को उपदेश, हिन्दू-मुस्लिम द्वेष का कारण, मूर्खता और धूर्त्तता का उदाहरण, कलकत्ता, प्रमोद-कानन में निवास, आदिब्राह्मसमाज के उपदेशक से प्रश्नोत्तर, षड्दर्शन समन्वय, यज्ञोपवीत पहनना चाहिए, विद्वत्सम्मेलन, कलकत्ता में घोर आन्दोलन, संस्कृतभाषा की सरलता और मधुरता, ब्राह्मसमाज का उत्सव, गानविद्या के आचार्य की अनभिज्ञता, राजा चिढ़कर द्वेष करने लगा, सम्पादक का पक्षपात, अपूर्व व्याख्यान, दूसरा व्याख्यान, संस्कृत पाठशालाओं की समालोचना, व्याख्यान देने और वेदभाष्य करने का निश्चय, न्योता क्यों खाया ? बिना परिचय के परिचय, वैदिक धर्म ही सच्चा धर्म है , एक-दूसरे की अनभिज्ञता पर शोक, भाषा बोलने का परामर्श, वस्त्र-धारण करने का परामर्श, असत्य के त्याग पर उद्यत, ब्राह्मसमाज में मतभेद, केशवबाबू का निमन्त्रण, मन्तव्यप्रकाश, पण्डित की भूल, एक और व्याख्यान, गर्मागर्म वादविवाद, हिन्दू नाम, न्यायरत्न का अन्याय, भूल पर पछताये, ताराचरण सामने न आये, तर्कवाचस्पति के तर्कबाण निष्फल, ब्राह्म-पत्रिका की सम्मति, दूसरी पत्रिका की सम्मति, शास्त्रार्थ, नैयायिकों का जाल, हुगली, पादरी लालबिहारी दे, हुगली का व्याख्यान, पण्डित ताराचरण शास्त्रार्थ से बचते रहे, अन्त को शास्त्रार्थ पर विवश हुए, शास्त्रार्थ, मूर्त्तिपूजन मिथ्या ही है, एक बङ्गाली युवक की भक्ति, पण्डित अनुगत, मन्मथबाबू की सम्मति, दिनचर्या, वर्णभेद, ब्रह्मास्त्र, वर्द्धमान, भागलपुर, पटना, शास्त्रार्थ का चैलेंज, वेद स्वतःप्रमाण हैं, छपरा, शास्त्रार्थ की आयोजना, मैं नास्तिक का मुख नहीं देखूँगा, मुख न देखो पर्दे के पीछे बैठो,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्दानशीन जगन्नाथ, शास्त्रार्थ, जगन्नाथ चुप, चार घण्टे का व्याख्यान, आरा, मित्र-अमित्र हो गया, पण्डित रुद्रदत्त से शास्त्रार्थ, हुँकार से घातक पलायित, क़ानून का ज्ञान, वस्त्रधारण, डुमराऊँ, मिर्ज़ापुर, पाठशाला तोड़ दी, काशी की पाठशाला का सूत्रपात्र, पाठशाला स्थापन ।

द्वादश अध्याय (पृष्ठ २३६—२५५)

कानपुर, व्याख्यानों में कोतवाल की बाधा, मैजिस्ट्रेट से व्याख्यान की आज्ञा, कोतवाल की धूर्त्तता, गाली-प्रदान, ईंट फेंकी, सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस का सौजन्य, व्याख्यान-माला, शाक्त ने मांस-मदिरा छोड़ दिये, बाबू हेमचन्द्र चक्रवर्त्ती, दिनचर्या, लखनऊ, गङ्गाधर से शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ में अन्याय, अन्याय का पारितोषिक, अन्यायकारी रईस के स्थान का परित्याग, रईस अपने किये पर लज्जित, स्वयं पण्डित गङ्गाधर का कथन, कथन की आलोचना, गङ्गाधर का मिथ्या भाषण, गङ्गाधर के शिष्य का सत्यभाषण, गङ्गाधर का परिचय, शास्त्रार्थस्थल का वर्णन, शिष्य को गुरु के पराजय की इच्छा, शास्त्रार्थ का वर्णन, सत्य दबाया नहीं जा सकता, फ़र्रुखाबाद, घातक भी भक्त हो गये, लाट को गोरक्षा का उपदेश, विवाह में व्यर्थ व्यय, जर्मन शर्मन, अर्धरात्रि में भ्रम-निवारण, कासगञ्ज, छप्पर भी स्वयं बाँधा, शपथ न खाओ, मीराँ की जात देने पर जुर्माना, छलेसर, राजा से भेंट, अलीगढ़, व्याख्यानमाला, पण्डित का शङ्का-समाधान, वकील की डींग, पर्दा डालकर शास्त्रार्थ करलो, वृक्ष पर बैठा कौवा पण्डितजी से ऊँचा है, भंगेड़ी साधु की गालियाँ, जाट रईस का वेदभाष्य, इन्द्रमणि से वार्त्तालाप, स्वदेशी वस्त्र पहनो, सैय्यद अहमदखाँ से वार्त्तालाप, राजा से मित्रता, हाथरस, राजा की हितचिन्ता, हाथरस में प्रथम बार पदार्पण, जगद्गुरु दयानन्द, दयानन्द का स्वांग, केवल एक ही व्याख्यान, पण्डित सामने न आये, कन्हैयालाल अलखधारी की सम्मति, मथुरा, ज्ञानपिपासु ज्ञानस्रोत पर पहुँच गया, ज्ञानपिपासु का मथुरा में पुनः आगमन, एक अज्ञात, परन्तु प्रभावशाली भक्त, वृन्दावन के लिए चार पहरेदार, ईसाई बख़्शी का सौजन्य, वृन्दावन, वृन्दावन जाने का कारण, ब्राह्मोत्सव, व्याख्यानों का विज्ञापन, रङ्गाचार्य्य से शास्त्रार्थ होगा, व्याख्यानों की झड़ी, दयानन्द के शत्रु से भेंट, रङ्गाचार्य्य शास्त्रार्थ से पराङ्मुख, रङ्गाचार्य्य वास्तव में रुग्ण थे, हम पेट के कारण सत्य नहीं कह सकते, सहपाठी का परामर्श, पुराने पुजारी ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी, शास्त्रार्थ-चर्चा, अपूर्व सहनशीलता, दूसरे के स्थान पर शास्त्रार्थ करने न जाएँगे, वध करने का षड्यन्त्र, हाथी और गन्ने का सामना, नवयुवक गोस्वामी की उपदेशों में रुचि, जयपुराधीश छिपकर मिले, सेठ लक्ष्मणदास भी, रङ्गजी के मन्दिर में पाठशाला स्थापित करो, दयानन्द निन्दाकाव्य, मथुरा, सहपाठी को परामर्श, उपदेशदान, दो दुष्टों की दुर्गति, ८० वर्ष का ब्राह्मण मिलने आया, अपूर्व चमत्कार, शालिग्राम यमुना में, मिट्टी क्यों लगाते हो, चौबों का आक्रमण ।

त्रयोदश अध्याय (पृष्ठ २५६—२६८)

मुरसान, मुरसान में पूर्व पदार्पण, अपने भाष्य की सत्यता सिद्ध करो, वेदभाष्यकर्त्ता ठाकुर की दुर्गति, काशी, आक्षेप का उत्तर, भाषा में प्रथम व्याख्यान, विद्यार्थियों की परीक्षा व प्रबन्धपरिवर्त्तन, पाठशाला का स्थानपरिवर्त्तन, समाचार-पत्रों में विज्ञापन, विज्ञापन की समालोचना, पाठशाला टूट गई, उपदेश लेखबद्ध करने का परामर्श, सत्यार्थप्रकाश का आरम्भ, प्रथम संस्करण का महत्त्व, दयानन्द के ऋषि होने का प्रमाण, लेखक की दुष्टता, विरोधियों का दुराग्रह, विरोधियों को सप्रमाण उत्तर, राजा का साक्षी, मत परिवर्त्तन नहीं हुआ, पादरी हूपर से वार्त्तालाप, फूल ताड़ने पर आक्षेप, सर सैय्यद अहमदखाँ से भेंट, संग्रहकर्त्ता की सम्मति, जिज्ञासुओं के साथ सद्व्यवहार, मुसलमान नवयुवक की शङ्का, मांस खाना बुरा, नास्तिक मुसलमान से वार्त्तालाप, साधु जवाहरदास की सम्मति, साधु जवाहरदास की सम्मति की समालोचना, यज्ञ की प्रथा उठ जाने से हानि—स्वामीजी अजेय हैं, प्रयाग, ईसाई नीलकण्ठ शास्त्री से वार्त्तालाप, बाइबिल की एक कहानी, ईसाइयों के परमेश्वर की अज्ञता और मूर्खता, हिन्दू पण्डित की असभ्यता, हिन्दू पण्डित की दुराशा, विद्यार्थियों से आवागमन पर बातचीत, पुनर्जन्म का वेद से समर्थन, म्लेच्छ शब्द का अर्थ, मौलवी का कपट, मुसलमानों में बुतपरस्ती, ब्रह्मचारिणी से धर्मालाप, दयानन्द के पास जाओगे तो पाप लगेगा, बङ्गाली के घर पर व्याख्यान, पर्दे की निन्दा, गङ्गातट पर भ्रमण का कारण, सत्य को मानो, शोकपत्रिका, गर्दभतापिनी उपनिषत्, कल-कारखाने खोलो, मुझे गुरु मत मानो, प्रथमबार के सत्यार्थप्रकाश में कुरान की आलोचना क्यों नहीं की, ब्राह्मण वेद नहीं है, छुआछूत का बखेड़ा, दीन विद्यार्थी पर दया, अपनी नहीं दूसरों की मुक्ति की चिन्ता, जबलपुर, व्याख्यान, शास्त्री शास्त्रार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

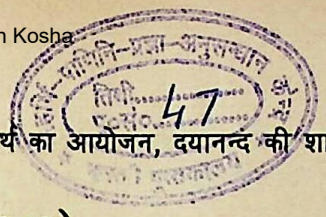

से पश्चात्पाद, स्वामीजी का फोटो, नासिक, पञ्चवटी, दो व्याख्यान, शास्त्रार्थ का आयोजन, दयानन्द की शास्त्रदर्शिता, सुधार कार्य्य की प्रशंसा, दयानन्द की निर्भीकता, मन्तव्य-विवरण।

चतुर्दश अध्याय (पृष्ठ २६६—२८२)

मुम्बई—मुम्बई में स्थानादि का प्रबन्ध, मुम्बई में स्वागत, धर्मालाप का विज्ञापन, घोर आन्दोलन, विद्वेषियों का दोषारोपण, मुम्बई में निमन्त्रित करनेवालों की इच्छा, वल्लभ-सम्प्रदाय के खण्डन का सङ्कल्प, वेद, धर्म-सभा, वल्लभ-सम्प्रदायवाले शत्रु हो गये, वल्लभियों के २४ प्रश्नों का उत्तर, प्रश्न क्यों किये गये, स्वामीजी की इच्छा, वध के लिए पाचक को लोभ, पीटने की चेष्टा, घातकों की नियुक्ति, घातकों से मुठभेड़, डॉक्टर भण्डारकर, पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री, दोनों का दयानन्द से वार्त्तालाप, डॉक्टर का पक्ष, समालोचना, मिथ्या दोषारोपण, शास्त्रीजी की शत्रुता, दोषी कौन था, पहला व्याख्यान, मूर्त्तिपूजा का प्रबल खण्डन, बेचर शास्त्री के प्रश्न, हल्ला हो गया, दूसरा व्याख्यान, 'इन्दुप्रकाश' की आलोचना, टिकट से प्रवेश, 'गुजरात-मित्र' की सम्मति, उक्त सम्मति की आलोचना, स्वामीजी की दिव्य दृष्ट, सर टी० माधवराव से वार्त्तालाप, दो भिन्न मत रखनेवाले एकत्र, वेदभाष्य का नमूना, नमूना विद्वानों के पास भेजा गया, घातक कमरे में घुस आये, खाकी बलदेव का उद्धार, जीवनजी का शिष्य अनुगत, ख्याति समुद्र को पार कर गई, पण्डित गट्टूलाल का परिचय, स्वामीजी से शास्त्रार्थ न करने का कारण, स्वामीजी की प्रतिज्ञा, गट्टूलाल के आक्षेप पर प्रतिज्ञा में परिवर्तन, दयानन्द-कण्टक को दूर करने के लिए सभा, दूसरी सभा, शास्त्रार्थ की शर्तों का विज्ञापन, विज्ञापन का उत्तर, प्रत्युत्तर, सभा की तिथि का रहस्य, स्वामीजी का शास्त्रार्थ के लिए प्रयत्न, स्वामीजी के सन्देशहरों का पण्डित गट्टूलाल से निवेदन, पण्डित गट्टूलाल की शास्त्रार्थ से असम्मति, पण्डित गट्टूलाल की सभा, सभा का विवरण, पण्डित गट्टूलाल का व्याख्यान, प्रतिमा शब्द का अर्थ, पण्डित गट्टूलाल के शिष्य का प्रश्न, गुरु निरुत्तर, विरोधियों की कुटिलता।

पञ्चदश अध्याय (पृष्ठ २८३—३०२)

सूरत, स्वागत के लिए कोई न आया, स्थान परिवर्त्तन, संस्कार-विधि का आरम्भ, आहारादि का प्रबन्ध न हुआ, खिचड़ी पर ही निर्वाह, सूरत का लूथर, पहला व्याख्यान, विद्वेषी सम्पादक, शास्त्रार्थ का चैलेंज, व्याख्यान-मन्दिर बन्द, व्याख्यान यहाँ ही होगा, श्रोता धूप में बैठे रहे, मोहन बाबा, मोहन बाबा कैसे पुरुष हैं, शास्त्री का शास्त्रार्थ, अपमानित करने का सङ्कल्प, मठधारी की सेवा-शुश्रूषा, मठधारी की चेलियों को भी दर्शन दिये, स्त्रियों की ओर न देखा, मठधारी का भोजन स्वीकार किया, ग्रामवासियों का निमन्त्रण, पोंक भी खाई, भय से मार्ग छोड़ दिया, औचित्य में भी अनौचित्य, सरकार के प्रतिकूल भड़काने का यत्न, मैं कथा पर चढ़ावा नहीं चढ़वाता, भड़ौंच, माधवराव से शास्त्रार्थ, माधवराव वेदमन्त्र का अर्थ न कर सके, शिष्यों के सामने अपमान, शिष्य की असभ्यता, स्वामीजी की शान्ति-प्रियता, कल आपका खण्डन करूँगा, स्वामीजी की अद्भुत शक्ति, अप्रासङ्गिक व्याख्यान, माधवराव के खण्डन में व्याख्यान, शिष्य की फिर असभ्यता, सैनिकों का क्रोध, पारसी ईसाई का व्याख्यान, शास्त्रार्थ से नकार, स्त्रियों को उपदेश, मुझे शिष्य बनालो, हम कन-फुँकवा गुरु नहीं हैं, शंकर का अवतार, बड़ों की ओर पैर करके सोना मर्यादा का उल्लंघन, अहमदाबाद, व्याख्यानमाला, शास्त्रार्थ का उपक्रम, शास्त्रार्थ का निमन्त्रण, शास्त्रार्थ की शर्तें, निम्नाद, अहमदाबाद में स्वामीजी का प्रभाव, राजकोट, ८ व्याख्यान, ऐसी वक्तृता कभी नहीं सुनी, शास्त्रार्थ, राजकुमार कॉलेज में व्याख्यान, प्रिंसिपल चकित, क्या सब राजकुमार नरक में जाएँगे, मृगया क्षत्रियों के लिए विहित, ऋग्वेद का पुस्तक उपहार में, घोर आन्दोलन, आर्यसमाज स्थापित करने का प्रस्ताव, आर्यसमाज के नियम, भ्रान्त सम्मति, संवाददाता की सम्मति, आर्यसमाज का कार्य बन्द हो गया, पण्डित गट्टूलाल की कविता, सभा का विवरण समाचारपत्र में, पोलिटिकल एजेण्ट का क्रोध, आर्यसमाज के अधिकारी दण्डित और भयभीत, आर्य्यसमाज टूट गया, स्वामीजी और दीवान का उत्तर-प्रत्युत्तर, स्वामीजी का फ़ोटो लिया गया, प्राचीनकाल में विज्ञान, अहमदाबाद, वक्तृता का सारांश, दूसरा व्याख्यान, आर्यसमाज स्थापित करने का उपक्रम, शास्त्रार्थ के लिए आह्वान, स्वामीजी का अर्थ ठीक है, अकारण द्वेष, विष्णुशास्त्री के अर्थों की अशुद्धि, मूर्त्तिपूजा और वर्णाश्रम पर व्याख्यान, शास्त्रियों के विरुद्ध निर्णय, उपहार, संशयोच्छेदन हो गया, स्वामीजी का कथन ठीक है, अहमदाबाद में आर्यसमाज, प्रार्थना-समाजियों की भूल, वेदों के अत्यन्त युक्तयुक्त अर्थ, स्वामीजी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असाधारण व्यक्ति हैं, बुल्हर से साक्षात्, उपहार स्वीकार करना पड़ा, बालसर, अनीश्वरवादियों का मुँह बन्द, दयानन्द जो कहते हैं सत्य है, मैं गृहस्थ हूँ मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं कर सकता, वसीनरोड़ ।

षोडश अध्याय (पृ० ३०३—३३५)

मुम्बई—वेदमण्डप, स्वामीजी को व्याकरण में परास्त करने की चेष्टा, शास्त्रार्थ-स्थल की चहलपहल, यदि हम उत्तर न दे सकेंगे तो सिंहासन से नीचे उत्तर जाएँगे, वाक्पटु को चुप होना पड़ा, पराजय स्वीकार करना पड़ा, नियोग पर आक्षेप, व्याख्यानों की झड़ी, एक धनी वणिक् की विनय-पत्रिका, यजुर्वेद पर जैनसाधु का आक्षेप, आर्यसमाज का अंकुर, अंकुर फिर फूटा, असत्य पर आर्यसमाज को कदापि स्थापित न करूँगा, राजकृष्ण रुष्ट हो गये, नवीनवेदान्ती राजकृष्ण, रुष्ट होने का कारण, राजकृष्ण की सहायता की उपेक्षा, आर्य्यसमाज स्थापित हो गया, आर्यसमाज के नियम, सभासदों की संख्या १०० के लगभग थी, स्वामीजी अधिनायक नहीं केवल सभासद् ही बने, प्रिंस आफ़ वेल्स का आगमन, हम संन्यासी हैं लार्ड नार्थब्रुक के पास नहीं जाएँगे, आर्य-मन्दिर में हमारा फोटो न रखा जाए, एक भ्रान्ति, अपने जीवन में कभी ऐसा शर्बत नहीं पिया, जन्मस्थान की ओर अंगुलिनिर्देश, अपूर्व सहिष्णुता, वैरागियों के सिवा लड़का कोई नहीं दे सकता, मनोरञ्जक कहानी, शास्त्रार्थ की तैयारी, विरोधियों की गालियाँ सुसराल की गालियाँ हैं, आर्यों का आक्षेप, गट्टूलाल और दयानन्द का मुकद्दमा, मुकद्दमे का निर्णय, पण्डित कमलनयनाचार्य, वैष्णवों की चिन्ता, शास्त्रार्थ का सूत्रपात, देवीभक्त और दयानन्द, देवीभक्त की भेंट स्वीकार करने पर आक्षेप और उसका उत्तर, आचार्य का मूर्त्तिपूजा पर व्याख्यान, श्रोताओं का असन्तोष, विवश होने की मनोरञ्जक कथा, प्रतिज्ञा-पत्र, आचार्य अप्रसन्न, आचार्य स्वामीजी के जोड़ के न थे, दयानन्द के अनुयायी की कमलनयनाचार्य से बात-चीत, शास्त्रार्थ की चर्चा सर्वत्र फैल गई, हिन्दू के अतिरिक्त सभा में कोई न रहे, आचार्य के आने की प्रतीक्षा, आचार्य धमकी में आ गये, अन्त को आचार्य सभास्थल में आये, कार्य आरम्भ हुआ, प्रतिज्ञा-पत्र लिखनेवाले का आक्षेप, आचार्य की आपत्ति, विरोधी सहायक, आचार्य्य की दूसरी आपत्ति, पण्डितों से शपथ ले-ली गई, आचार्य और शास्त्री की बातें, स्वामीजी की आचार्य से प्रार्थना, वेद ही मध्यस्थ हैं, एक अन्य सज्जन की प्रार्थना, मैं मूर्त्तिपूजा को वेद-विरुद्ध सिद्ध करता हूँ, आचार्य एकदम सभा से चले गये, शास्त्री को स्वामीजी का धन्यवाद, सत्ययुग में मूर्त्तिपूजा न थी, स्वामीजी का व्याख्यान, एक महिला को उपदेश, दिनचर्या, पूना, विज्ञापन, विज्ञापन का अभिप्राय, ५४ व्याख्यान, स्वामीजी संस्कृतज्ञ न होने से भाषा में बोलते हैं, मूर्त्ति फेंक दी, पण्डितों ने नाक रखने का प्रयत्न किया, पण्डित वेदज्ञ नहीं हैं, पौराणिक दल उपद्रव करने पर उतारू हो गया, स्वामीजी के व्याख्यानों का खण्डन, मिथ्या दोषारोपण, लज्जाजनक अपवाद, लोकसाधारण को स्वामीजी के विरुद्ध भड़काया गया, उपद्रव का सुयोग, सम्मान-प्रदर्शन का निश्चय, शोभायात्रा की तैयारी, संवर्द्धना-सभा, स्वामीजी हाथी पर सवार न हुए, शोभायात्रा का क्रम, विपक्षियों की लीला, गर्दभ-शोभायात्रा, दोनों यात्राओं की मुठभेड़, स्वामीजी की शोभा-यात्रा पर आक्रमण, पुलिस तमाशा देखती रही, उपद्रव शान्त होने पर स्वामीजी ने व्याख्यान दिया, स्वामीजी का समादर, वेदभाष्य की सहायता, स्वामीजी की निर्भीकता, स्वामीजी चट्टान-सदृश अचल थे, मैजिस्ट्रेट के निर्णय-पत्र का उद्धरण, दयानन्द की दयालुता, पौराणिक दल की ओर से अभियुक्तों का सम्मान, उपद्रव के कर्त्ता का कथन, उक्त कथन की असत्यता, पूना में आर्यसमाज, सतारा, शास्त्रार्थ के लिए सभा, शास्त्रार्थ का आह्वान, फलित ज्योतिष असत्य है, वर्णभेद पर बात-चीत, बम्बई, बड़ौदा, आतिथ्य सत्कार, व्याख्यानमाला, गायक नव्वाव, शास्त्रियों ने कानों में अंगुलियाँ दे लीं, या तो बैठ जाओ या चले जाओ, कितने समय का शास्त्रार्थ करना चाहते हो, संस्कृत में ही शास्त्रार्थ कीजिए, एक पण्डित परास्त हो गये, दूसरा भी परास्त, वर्षाशन, वर्षाशन बन्द होने का भय, राजमहिषी को भी दर्शन न दिये, शास्त्रियों के पेट में चूहे, रीछ सबसे बड़ा त्यागी, तीसरा व्याख्यान, व्याख्यान का सार, दीवान का श्रद्धापूर्वक प्रणाम, सहस्र रुपयों का उपहार वापस, इज़ारेदार पर अभियोग, वेदभाष्य के लिए बीस सहस्र का लोभ, पण्डित कृष्णराम पर फटकार, अभियुक्त जेल से मुक्त, भविष्यवक्ता दयानन्द, असामान्य निःस्पृहत्व और न्यायप्रियता, वेद का अंग्रेजी अनुवाद, मुम्बई, प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स, मोनियर विलियम्स से सम्भाषण, दो और व्याख्यान, संन्यासी शाल लेकर क्या करेगा, चौथा व्याख्यान, पौराणिकों की मानसिक दशा, पण्डित रामलाल ज्योतिषी शास्त्रार्थ के लिए सन्नद्ध किये गये, स्वामीजी हँस पड़े, शास्त्रार्थ-सभा, पण्डित गट्टूलाल सभास्थल में न आये, पण्डित रामलाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असमञ्जस में, मध्यस्थ की सम्मति, श्रोताओं पर प्रभाव, एक लेखक की साक्षी, महान् प्रलोभन, प्रलोभन देने का कारण, गोसाईंजी ने ५००० की माला ले-ली, इन्दौर—महाराजा को उपदेश, महाराजा ने शाल दिया, मैं ऐसी मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं करता, स्वामीजी के विषय में सम्मति ।

सप्तदश अध्याय (पृ० ३३६—३६४)

फ़र्रुखाबाद—व्याख्यान, पाठशाला तोड़ दी, स्वामीजी के गुरुभाई पण्डित उदयप्रकाश, हम अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए अन्य विद्वानों के विपरीत करते हैं, अंग्रेज पादरी से वार्त्तालाप, काशी, वेदभाष्यभूमिका, वेद-भाष्य के लिए ग्रन्थसंग्रह, शिष्य-गुरु-सम्मिलन, जौनपुर, अयोध्या, शास्त्रार्थ के लिए विज्ञापन, राजा का पण्डितों को परामर्श, पण्डितों की कूटनीति, शास्त्रार्थ सरयूबाग़ में ही होगा, एक पण्डितम्मन्य, हमने दयानन्द को हराया था, पण्डितम्मन्य की मनघड़न्त, लखनऊ—स्वामीजी इङ्गलैण्ड जाना चाहते थे, पहला व्याख्यान, प्रश्नों के उत्तर, अशुद्धियों को सरलता से मान लो, पूर्वमीमांसा के भ्रान्त अर्थ, उलटे अर्थों को उलटता हूँ, शाहजहाँपुर—बरेली—पौराणिक दल में हाहाकार, अङ्गदशास्त्री को बुलाया गया, लक्ष्मणशास्त्री परास्त, एक सदाशय विद्वान्, मुरादाबाद—व्याख्यान होने लगे, ब्राह्मण के कटुवचन, यज्ञोपवीत दिये, पादरी से शास्त्रार्थ, पादरी का असमञ्जस, मुसलमान डिप्टी कलक्टर का रोष, मुं० इन्द्रमणि का परिचय, इन्द्रमणि के शिष्य का बेतुकापन, जगन्नाथ के बेतुकेपन की समालोचना, दुराचारी रईस का निमन्त्रण अस्वीकृत, ब्राह्मण का गालीप्रदान, चक्रांकित की धूर्त्तता, सुरापायी का सुरा-त्याग, साधन का उपदेश, छलेसर—पाठशाला का वृत्तान्त, दिल्ली, दिल्ली दरबार, विज्ञापन-वितरण, यह मिट्टी श्रीकृष्णजी ने खाई थी, चौबे का क्रोध, ईरानी मौलवी निरुत्तर, महाराजा इन्दौर से साक्षात्, महाराजा को पण्डितों ने नहीं मिलने दिया, स्वामीजी की इच्छा पूरी न हो सकी, सुधारकों की सभा, वेदों में मांसभक्षण नहीं है, दो और विज्ञापन, मरा हुआ जलमानस, पञ्जाब पधारने का निमन्त्रण, मेरठ, मुंशी इन्द्रमणि का आगमन, पण्डित की डींग, विचित्र मुस्कान, पण्डित की घिग्घी बँध गई, सहारनपुर, तिल धरने को जगह न थी, व्याख्यान के कारण आरती बन्द, दुखी-सुखी का दृष्टान्त, पुजारी की मान-रक्षा, दो पण्डित परास्त, शाहजहाँपुर, चाँदापुर का मेला, चाँदापुर, शास्त्रार्थ चाँदापुर, कबीरपन्थ के सिद्धान्त, उक्त सिद्धान्तों का खण्डन, स्वामीजी का उपदेश, स्वामीजी का सत्परामर्श, विषय-निर्धारिणी सभा, मेले की अवधि पर वाद-विवाद, मेला संस्थापक का आरम्भिक कथन, शास्त्रार्थकर्त्ता कौन-कौन हों, पादरी व मौलवी में झपट, पहले प्रश्न पर विचार, मौलवी मुहम्मद क़ासिम, पाँचवें प्रश्न पर विचार, मेला समाप्त हो गया, पादरियों से बात-चीत, आप आर्य नहीं हैं, विनोद-वार्त्ता, स्वामीजी पूर्ण योगी थे, आप-बीती-कथा, स्वामीजी के बलिदान की तैयारी, स्वामीजी बलिदान से कैसे बचे ।

अष्टादश अध्याय (पृ० ३६५—३८२)

लुधियाना, व्याख्यानमाला, पादरी और उच्च राजकर्मचारी दर्शन करने आये, परमेश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में, स्वामीजी असिस्टेण्ट जुडिशियल कमिश्नर के बङ्गले पर, मेरा मुख न देखो मेरी बात सुनो, चिड़िया हाथ से निकल गई, पुनर्जन्म की विचित्र सिद्धि, संस्कृत बोल चुके अब भाषा बोलो, भूत के खण्डन में तमाशा, लाहौर, स्वामीजी को लाहौर बुलानेवालों का गुप्त अभिप्राय, ब्राह्मसमाजियों का अशिष्टाचार, वेद पर व्याख्यान, वैदिक अलङ्कार, पुनः उसी विषय पर व्याख्यान, स्वामीजी के विरुद्ध अपवाद, एक मुसलमान की शिष्टता, मैं पाषाण के शिव की प्रतिष्ठा नहीं करता, पुष्प तोड़ा बुरा किया, मैं महाराजा काश्मीर को प्रसन्न करूँ वा ईश्वर को, पादरी हूपर से वार्त्तालाप, लाटसाहब के मन्त्री तथा शिक्षाध्यक्ष से मिलन, सरकार वेदभाष्य की सहायता नहीं कर सकती, सरकारी समालोचकों को उत्तर, मिस्टर टानी प्रिंसिपल प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता, आर्यसमाज की ओर से पत्र, तुम विवाह न करना, सनातनधर्म-रक्षिणी सभा, पण्डित भानुदत्त की कलाबाज़ी, 'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ, शिवनारायण अग्निहोत्री का असद् व्यवहार, स्वामीजी का विस्तृत साहित्यज्ञान, सामवेद में उल्लू की कहानी, मनुस्मृति में मूर्त्तिपूजा, योगवासिष्ठ में मूर्त्तिपूजा, मृतक श्राद्ध पर वेदमन्त्र, स्त्रियों को उपदेश, आत्मचरित वर्णन, सिंह मुझे देखकर मुँह फेरकर चला गया, पर्णकुटी में आग लगी दी, पान में विष, आर्यसमाजियों की कर्त्तव्यच्युति, उपदेश का प्रभाव, आर्यसमाज लाहौर की स्थापना, आर्यसमाज के नियम, सत्सभावाले रुष्ट हो गये, आर्यसमाज की उन्नति, मैं आर्यसमाज का संरक्षक नहीं बन सकता, परम सहायक की पदवी भी अस्वीकृत, उपासनाधर्म का निरादर न करो, दयानन्द का वास्तविक स्वरूप, दयानन्द की निर्लेपता, दयानन्द के कार्य की आलोचना ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकोनविंश अध्याय (पृष्ठ ३८३—३९४)

अमृतसर, हम ऐसी सभा में क्या आएँ, ठाकुरपूजा पर व्याख्यान, आर्यसमाज अमृतसर की स्थापना, स्वामीजी द्वारा हवन, मनसुखराय को गुरुमन्त्र, मिश्री और दो रुपये की भेंट, देवमूर्त्तियाँ फेंक दीं, विद्वान् ब्राह्मण घर छोड़कर चला गया, मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करो, स्थूलकाय सरदार, कमिश्नर से बात-चीत, मौलवी से शास्त्रार्थ का आयोजन, गुरुदासपुर, व्याख्यान आरम्भ हो गये, दो मूर्त्तिपूजक रईसों की घबराहट, विरक्त साधु से शास्त्रार्थ की प्रार्थना, शास्त्रार्थ के लिए दो पण्डितों का आगमन, रईसों की असभ्यता, शास्त्रार्थ का आरम्भ, महीधरभाष्य की अश्लीलता, अंग्रेज़ी राज्य न होता तो सिर काट डालता, अंग्रेज़ इञ्जीनियर चिढ़ गया, पितरों को तिल और जौ अपने को खीर और लड्डू, मुसलमानों की मूर्त्तिपूजा, आर्यसमाज स्थापित हो गया, अमृतसर, गुरुमन्त्र की दीक्षा, स्वामीजी के ईसाइयों के वेतनभोगी होने का प्रमाण, जालंधर, सरदार विक्रमसिंह व सुचेतसिंह से परिचय, प्रथम व्याख्यान, ३५ व्याख्यान, वेश्यागामी कञ्जर है, ब्रह्मचर्य का बल-प्रदर्शन, स्वामीजी की विनोदप्रियता, मूर्ख राजा की कथा, श्राद्ध पर व्याख्यान, जीवित पितरों के श्राद्ध की सिद्धि, मन्त्र से मक्खी नहीं डरती, भूत-प्रेत क्या डरेंगे ? तिलकाकार बीट से यम के दूत डर गये, काशी माहात्म्य आदि का खण्डन, स्त्रियों को बुलाने का बिगुल, अथर्ववेद स्त्रियों का गीत है, मौलवी से शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ का सार, लाहौर, धन की अधिकता अवनति का कारण होती है, वेद में ऋषियों के नाम नहीं हैं, ऋषियों को ईश्वर का ज्ञान न था, ब्राह्मसमाज का उत्सव, नियमों के प्रतिकूल कोई कथन न करे।

विंश अध्याय (पृष्ठ ३९५—४२२)

फ़ीरोज़पुर, बेतुका शास्त्री, राजा का धूर्त्त कोठारी, एक क्लर्क से प्रश्नोत्तर, विरोधी अनुकूल हो गया, पञ्जाबी तुक का अर्थ, पूजा का शत्रु—पुजारी, भक्त से योगचर्चा, आर्यसमाज स्थापित हो गया, लाहौर, मुझे सम्मति देने का अधिकार नहीं है, रावलपिण्डी, हिन्दू दूसरे मतों की पुस्तकें नहीं देखते, हमारी कोठी में न रहिए, भीड़ को आने दो, आपकी बातों का कैसे विश्वास हो, जीवन की घटनाओं का वर्णन, महाराजा काश्मीर का निमन्त्रण अस्वीकृत, मारवाड़ का एक मूर्त्तिपूजक राजा, सम्पद्-गिरि का वृथा प्रयास, सम्पद्-गिरि से साक्षात्, हम ऐसा उपदेश नहीं कर सकते, आर्यसमाज की स्थापना, जेहलम, पादरी शास्त्रार्थ का साहस न कर सके, आर्यसमाज की स्थापना, आर्यसमाजी से ब्राह्मसमाजी, ब्राह्मसमाजी होकर मिथ्याभाषण, वृद्ध महात्मा, आर्यसमाज के प्रचार पर हर्ष, गुजरात, सर्वत्र स्वामीजी की ही चर्चा थी, ईसाइयों का प्रचार-कार्य, हिन्दूसभा, पहला व्याख्यान, श्रोता का कर्त्तव्य, मेरी बात यदि सत्य हो तो मानो, राजा और बैंगन की कथा, स्वामीजी की विशालमूर्त्ति देखकर स्तम्भित, मनगढ़न्त श्रुतियाँ, दूसरा व्याख्यान, वेद में मनगढ़न्त श्रुति न दिखा सके, न्याय पर प्रश्नोत्तर, जीवन-चरित वर्णन, मिस्टर बुचानन की डींग, मि० बुचानन कैसे थे, मि० बुचानन से प्रश्नोत्तर, हिन्दूछात्र विधर्मियों से तर्क करने में समर्थ हो गये, तीन महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, वेद का महत्त्व, ब्रह्मचर्य का महत्त्व, सन्ध्या, मैं नमाज़ नहीं पढ़ूँगा सन्ध्या किया करूँगा, गायत्रीमन्त्र सबके सामने पढ़ा, स्वामीजी छद्मवेषी ईसाई हैं, जम्मू का पण्डित, जम्मू के पण्डित से शास्त्रार्थ, एक ही पुस्तक में सब-कुछ है, पुस्तक कोरी थी, पण्डितजी पंसारी भी हैं और पण्डित भी, पण्डितजी कुछ न बोले, स्वामीजी के प्राणहरण का षड्यन्त्र, अन्ही दा पुत्तर, स्वामीजी को गालियाँ, मुझपर कोई आक्रमण नहीं कर सकता, मार्ग में और व्याख्यान में ईंटों की वर्षा, ईंट मारनेवाले को क्षमादान, संन्यासी-मण्डली, आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी, हमें चेला बना लीजिए, एक स्त्री को उपदेश, विरोधी पण्डित अनुकूल, स्वामीजी को वेद कण्ठस्थ थे, वज़ीराबाद, मुख्य पण्डित नगर छोड़कर चले गये, दक्षिणालोलुप पण्डित से विचार, शास्त्रार्थ, यह वाक्य वेद का है नहीं, उपद्रव की आशंका, पण्डित मन्त्र प्रस्तुत न कर सका, उपद्रव आरम्भ हो गया, महाराज के हिन्दुस्तानी क्लर्क को खूब पीटा गया, स्वामीजी के गर्जन से भीड़ भाग गई, गुजरानवाला, पादरियों का हिन्दुओं को स्वामीजी के विरुद्ध उत्तेजित करना, पण्डित विद्याधर की बुद्धिमत्ता, शास्त्रार्थ की छेड़छाड़, शास्त्रार्थ-विवरण, स्वामीजी का सद्-व्यवहार, मध्यस्थ की सम्मति, पादरियों का मिथ्या व्यवहार, पादरियों की धूर्त्तता से सब रुष्ट हो गये, स्वामीजी का ईसाईमत खण्डन पर व्याख्यान, ईसाईमत की पोल खुल गई, वज़ीराबादी मनुष्यों की अनुरक्ति, पण्डित वासुदेव की क्षमा-प्रार्थना, मैं द्वेष बुद्धि से खण्डन नहीं करता, स्वामीजी ज्ञान और विद्या के अथाह समुद्र, स्वामीजी का प्रभाव, विरोधी अनुगामी, पुजारी अनुयायी, उसकी भेंट, ब्रह्मचर्य की महिमा, आर्यसमाज स्थापित हो गया, लाहौर,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस्लाम पर व्याख्यान, ऐसा न हो नवाब अप्रसन्न हो जाएँ, मुझे परमात्मा से भिन्न किसी का भय नहीं है, मुलतान, स्वामीजी के मुलतान पधारने के लिए आयोजन, पहला व्याख्यान, गोकुलिये गोसाईं चिढ़ गये, गोपालदास गोसाईं की धूर्त्तता, धूर्त्तता की पुनरावृत्ति, छावनी में व्याख्यान, पारसी सज्जनों की भेंट, वैदिक अलङ्कारों का स्पष्टीकरण, होली दीपावली का स्वरूप, स्वास्थ्यरक्षा पर व्याख्यान, साथ भोजन करने के दोष, शिखा कब रक्खी जाए कब नहीं, ईसाइयों से शास्त्रार्थ की शर्तें, ब्राह्मसमाजी आर्यसमाजी होने से रुक गये, काबुल के ब्राह्मण का उजड्डपन, वेदान्तियों के चार महावाक्य, सन्त मत की आलोचना, प्राचीनकाल की प्राकृतिक उन्नति, मुसलमान परास्त, नास्तिक की शेखी किरकिरी, महाराज के महामना होने का प्रमाण, हमारा नाम आर्य है, यह महात्मा होनहार हैं, मुक्ति पर बात-चीत, ब्राह्मणों की वर्तमान अवस्था का दृष्टान्त, रेशमी छाता किसी नटवे को देना, गोमेध-अश्वमेध के सत्य अर्थ, मांस-भक्षण निषेध, बिना पूछे प्रश्नों का उत्तर, मांसभक्षण पर प्रश्नोत्तर, पण्डित कृष्णनारायण का अनुभव, मैक्समूलर वेद-विद्या में लड़का है, गायत्री का महत्त्व, ३५ व्याख्यान दिये, एक मुसलमान की सम्मति, आर्यसमाज स्थापित हो गया, मुहम्मद साहब की तो एक स्त्री ही सहायक थी, हमारे सहायक तो सात पुरुष हैं, मुझे काशी में विष दिया गया था, लाहौर, स्वामीजी की नियम-बद्धता, आप लोगों के हित-चिन्तन ने दुबला कर दिया, चिड़चिड़ा क्लर्क, धर्मोपदेश में श्रोता क्यों सो जाते हैं, हम एक जगह बाध्य होकर नहीं रह सकते, अमृतसर विद्याभिमानी पण्डित, पोल खुल गई, पौराणिकों की लीला, शास्त्रार्थ के लिए कोई न आया, अन्ततः पण्डितलोग आये, हल्ला-गुल्ला और ईंटों की वर्षा, पण्डितों ने कोई उत्तर न दिया, निर्धन होने की चिन्ता न करो, मुझे सत्य कहने में कोई भय नहीं है, भँगेड़ी ब्राह्मणों ने सोटा मारना चाहा, केवल साथ भोजन करने से प्रीति नहीं बढ़ती, स्वामीजी के वध के लिए सिक्ख निहङ्गों का षड्यन्त्र, देखें कोई निहङ्ग हमारा क्या करेगा, पौराणिक भी सबके सामने वेदमन्त्र पढ़ने लगे, चालीस हिन्दू युवक ईसाई होने से बचे, विचित्र परिवर्तन, पादरी बहुत घबराये, कई ईसाई वैदिक धर्मी बन गये, विश्वास पर नौकरी का बलिदान, सरदार साहब रूठ गये, निराश क्यों होते हो, भक्त की भावना, भक्त को उपदेश ।

एकविंश अध्याय (पृष्ठ ४२३—४४२)

रुड़की, स्वामीजी का सत्सङ्ग, निज स्थान पर उपदेश, अमेरिका की चिट्ठी और उसका उत्तर, स्वामीजी का अछूतों से प्रेम, व्याख्यानों का प्रबन्ध हो गया, समय का मूल्य, मैंने ऐसी प्रबल युक्तियाँ नहीं सुनी थीं, स्वामीजी बड़ा वाचाल है मैं उससे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, मुसलमान उत्तेजित, मुसलमानों की ओर से विघ्न, इस्लाम का खण्डन न कीजिए, इस्लाम पर प्रबल आक्षेप, शिक्षित समुदाय आश्चर्यान्वित, मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर, कर्नल और कप्तान से वार्त्तालाप, मैजिस्ट्रेट ने व्याख्यान बन्द कर दिये, मुसलमानों से शास्त्रार्थ का आयोजन, संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान्, मैं दयानन्द का मुख नहीं देख सकता, बङ्गाली सज्जन से प्रश्नोत्तर, तुम ब्रह्म हो तो मरी मक्खी को जिला दो, स्वामीजी समय का व्यतिक्रम न करते थे, आर्यसमाज स्थापित हो गया, मैं सम्मति नहीं दे सकता, अलीगढ़, सर सैयद के घर भोजन करने न गये, न बुराई है न भलाई, मुसलमान सबजज ने प्रशंसा की, मेरठ, व्याख्यान-माला, एक मुसलमान का पत्र, प्रश्नों के उत्तर, सनातन धर्मरक्षिणी सभा के प्रश्न और उनके उत्तर, मौलवी का पत्र, सनातन-धर्मरक्षिणी सभा की शास्त्रार्थ के लिए छेड़छाड़, महाराज के प्रस्तावित नियम ये थे, आर्यसमाज स्थापित हो गया, शारीरिक बल की परीक्षा, आक्रमण का आयोजन, गुण्डे कुछ न कर सके, आपने अच्छा न किया, परोक्ष का ज्ञान, ज्योतिषीजी को कुछ न मिला, मानस खेद, दिल्ली, जयपुर से निमन्त्रण, दानापुर से निमन्त्रण, आर्यसमाज स्थापित हो गया, जयपुर ।

द्वाविंश अध्याय (पृष्ठ ४४३—४५४)

अजमेर, एक विद्वेषी की लीला, पुष्कर, विज्ञापन, दर्शकों की भीड़, वाममार्गी साधु, तुम्हारे गुरु को ही मन्त्रसिद्धि दिखाएँगे, साधुओं को हमारे पास ले-आओ, जाओ-जाओ यहाँ मन्त्र कहाँ रक्खे हैं, दिनचर्या, बूँदी का राज-पण्डित, एक और पण्डित, फिर एक और पण्डित, अजमेर, पादरी ग्रे से शास्त्रार्थ, मसूदा, नसीराबाद, प्रबन्ध में विघ्न, जैनियों से प्रश्नोत्तर और तीन व्याख्यान, जयपुर, प्रश्नोत्तर और व्याख्यान, विद्वेषियों की धूर्त्तता, उपदेश पहले से भिन्न क्यों है, बन्दी होने की किंवदन्ती, भक्तों की चिन्ता, रिवाड़ी, रावसाहब का आतिथ्य, ११ व्याख्यान, रावसाहब की वैदिक धर्म में निष्ठा, गायत्री के जप से पाप होता है, पाप हमारा और पुण्य तुम्हारा, वेदान्ती साधु निरुत्तर, चार प्रकार के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य, अभी जाकर पढ़ो, शास्त्रार्थ करने कोई न आया, दिल्ली ।

त्रयोविंश अध्याय (पृष्ठ ४५५—४७३)

हरिद्वार, ज्वालापुर, गोभक्षक से गोरक्षक, नित्य स्नान करना स्वास्थ्यप्रद है, हरिद्वार, विज्ञापन, मेले में महाराज के आगमन की धूम मच गई, व्याख्यानों में भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था, निरन्तर परिश्रम का फल, कर्नल और मैडम का भारत में आगमन, मेले में जानसंख्या कम थी, देहरादून जाने का संकल्प, विशेष घटनाएँ, मुसलमान बड़े बुतपरस्त, मुसलमानों को आर्य बनाना, झूठा खाना निषिद्ध है, एक जाट की कहानी, शास्त्रार्थ से पराङ्मुख, तुम लक्कड़पन्थी हो, अंग्रेज़ भारत में पहले आते तो क्या देखते, शरीर पर मिट्टी क्यों लगाते हो, बूढ़े ब्राह्मण का क्रोध, दो दण्डधारी साधु, उदासी साधु की बकवाद, विधवाओं और गौओं की हाय से देश नष्ट हो गया, जटाधारी नागा, बहिष्कृत आर्यसमाजी, प्रारब्ध कैसे पूरा होगा, उपर्युक्त की आलोचना, अचारज के पुत्र के प्रश्न, दो नागे, दो और नागे, तत्काल नागा बांना छोड़ दिया, निर्मले साधु को वेदों के दर्शन, देश की धार्मिक दशा पर खेद, तीर्थयात्रा की व्यर्थता, आपका पक्ष सत्य है, आश्रम में स्त्रियाँ नहीं ठहर सकतीं, सत्याग्रही मुसलमान तहसीलदार, स्वामीजी वली हैं, हर की नहीं हाड़ की पैड़ी है, तीन जिज्ञासु विद्वान्, अलीक किंवदन्ती, महाराजा काश्मीर का पत्र, कटुभाषी साधु अनुगत, तुम्हारी बातों से अभ्यास में विघ्न पड़ता है, वृद्ध संन्यासी का आदर, नवीनवेदान्त पर वार्त्तालाप, मैंने दयानन्द का मत स्वीकार कर लिया, कुरूप और कर्कश पण्डित, थ्वाडे घर दा पानी कौन पिये, मुर्दे को आश्रम के पास मत गाड़ो, कमिश्नर साहब आदि सन्तुष्ट होकर गये, तीन पौराणिक विद्वानों को पत्र, यूरोपियन डॉक्टर से वार्त्तालाप, डाक्टरों को परामर्श, मैं तो ईश्वरोक्त वेद को ही मानता हूँ, आत्मा की न्यूनताएँ ईश्वराराधना से पूरी होती हैं, स्वामीजी अपने ग्रन्थों का अनुवाद कराना नहीं चाहते थे, तर्कशस्त्र छोड़ने पड़े, विचित्र वार्त्तालाप, गुरुजी के आदेश से ही मैंने प्रचार-कार्य आरम्भ किया है, दयानन्द हमारे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करे नहीं तो पराजित समझा जाए, सनातनियों का पत्र, दयानन्द यहाँ आये तो सिर फोड़ दो, तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते, स्वामी विशुद्धानन्द का पत्र, पं० श्रद्धाराम की धूर्त्तता, पं० श्रद्धाराम से घृणा, मुझे बड़ी लज्जा आई और भय लगा, श्रद्धाराम का शिष्य अनुगत, पं० श्रद्धाराम का वास्तविक स्वरूप, ईसाइयों से दक्षिणा लेकर ईसा का गुणगान, पं० श्रद्धाराम नास्तिक थे, लोगों को चेतावनी, देहरादून, महाराज की शारीरिक दशा, ब्राह्मसमाजियों पर भरोसा न करना चाहिए, व्याख्यानों का आरम्भ, पादरी साहब का कोप-ज्वालामुखी फट गया, पादरी अपने साथी से भी नाराज, आपस में ही एक-दूसरे का खण्डन करने लगे, ब्राह्मसमाजी विरुद्ध हो गये, भक्त की चिन्ता, मुसलमान नियम बनाकर लाये, बङ्गला खाली कर दो, भङ्गन का पकाया, रईस के पुत्र ईसाई होने से बच गये, आर्यसमाज स्थापित हो गया, जन्म के मुसलमान की शुद्धि ।

चतुर्विंश अध्याय (पृष्ठ ४७४—५०६)

सहारनपुर, कर्नल और मैडम, मेरठ, कर्नल और मैडम का बाह्य व्यवहार, मुहम्मद क़ासिम से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़, मुसलमानों के प्रस्तावित नियम, उक्त नियमों पर स्वामीजी की आलोचना, अलीगढ़, छलेसर, मुरादाबाद, राजनीति पर व्याख्यान, मन्त्रोच्चारण से ही लोग मुग्ध हो गये, ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के द्वारा प्रशंसा, सभा में बैठकर कैसी भाषा बोलनी चाहिए, पीपलपत्ते का संस्कृतभाषण, भूल स्वीकार कर ली, डॉक्टर ने फ़ीस नहीं ली, अभिवादन पर शब्दविचार, नमः के अर्थ, शास्त्रार्थी पण्डित काँपने लगे, आर्यसमाज स्थापित हो गया, स्वामीजी ने मोहनभोग में थूक दिया है, अब मैं तुम्हारे घर भोजन करूँगा, बदायूँ, श्रावणी का त्यौहार, शास्त्रार्थ, इसमें भूत का आवेश है, केवल दो ही व्याख्यान हुए, शास्त्रार्थी मुसलमान, अंग्रेज़ पादरी, श्रद्धालु भक्त, बरेली, पादरी स्काट से तीन दिन तक शास्त्रार्थ, नास्तिक मुंशीराम, दोष बच्चों-के-बच्चों का है, इनकी लीला देखी अब उनकी देखो, कमिश्नर की अप्रसन्नता, कमिश्नर का सन्देश कौन दे, भक्त स्कॉट नहीं आये, खत्री के वीर्य से वेश्यापुत्र को क्या कहेंगे, तार्किक का तर्क कुण्ठित, ध्यानावस्थित देखने की धुन, स्वलिखित जीवनचरित, शाहजहाँपुर, आगमन की विज्ञप्ति, जिज्ञासुओं को निमन्त्रण, वेद शङ्कासुर ले-गया, पौराणिक दल विकल और विह्वल, शास्त्रार्थ के लिए पं० अङ्गदराम बुलाये गये, पण्डित अङ्गदराम का पत्र, शास्त्रार्थ के नियम, स्वामीजी का उत्तर, शास्त्रार्थ के नियम, पं० अङ्गदराम का प्रत्युत्तर, दण्डीजी पर मिथ्यादोषारोपण, पण्डित अङ्गदराम का दुराग्रह, पण्डित अङ्गदराम का साक्षी उनके विरुद्ध, स्वामीजी का पत्र, पं० अङ्गदराम का पत्र,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समालोचना, सत्यधर्म की कसौटी, किराये की गाड़ी क्यों लाये, मितव्ययिता, समय का मूल्य, लखनऊ, फ़र्रुखाबाद, रोग की चिकित्सा, पूजकों ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी, गोरक्षा पर व्याख्यान, गोवध से हानि, विद्वेषियों का अपवाद, कुत्ते की दौड़ की उपमा, न्यायकर्त्ता का कर्त्तव्य, आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या, आर्यसमाज का फ़ण्ड, पौराणिक की ईर्ष्या और कूटनीति, सत्य का चमत्कार, भीम नहीं भूराज, वैदिक रीत्यनुसार अन्त्येष्टि संस्कार, अपने नहीं सबके मोक्ष की इच्छा है, देश-प्रेम, शवदाह के लिए ईंधन न मिला, स्वराज्य, सच्चा आनन्द, मायिक दयानन्द, कर्मफल, मेरा काम मन्दिर को तोड़ना नहीं है, कानपुर, प्रयाग, मिर्ज़ापुर, गाड़ी नहीं आई तो पैदल ही सही, विद्याविषय पर व्याख्यान, हमें भ्रान्ति के कूप में क्यों डाले रक्खा, गद्दी पर बैठने में क्या दोष है, काशी नहीं दानापुर जाएँगे ।

पञ्चविंश अध्याय (पृष्ठ ५०७—५२६)

दानापुर, हिन्दू सत्यसभा, सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव, सत्यसभा की जगह आर्यसमाज, स्वागत समारोह, हमारे वचन सुई से समान अन्दर चुभ जाएँगे, कैम्प मैजिस्ट्रेट की आज्ञा, आगमन की सूचना, व्याख्यानमाला, पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज, पौराणिकराज को निकाल दिया, पौराणिकराज की नीचता, स्वामीजी को पीटने का षड्यन्त्र, कैम्प मैजिस्ट्रेट की आज्ञा, सब-इन्सपैक्टर का पक्षपात, मौलवी का व्याख्यान, इस्लाम के विरुद्ध न कहो, अंग्रेज़ी राज्य की बड़ाई, जङ्गी लाट के सामने ईसाई मत का खण्डन, भूतों का भय कैसे जाए, एक विवाह और कर लो, नियमविरुद्ध कार्य के हम पक्षपाती नहीं, सोमलता, चित्त भाँग पीने से एकाग्र होगा, फूल तोड़ा अच्छा न किया, तीन वर्ष का दर्द एक क्षण में दूर, ईश्वर ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष होता है, हम पण्डित चतुर्भुज को पाँच सौ रुपये देंगे, हमें दिक़ न कर अन्यथा अङ्ग-भङ्ग हो जाएगा, स्वामीजी का शिष्टाचार, यूरोपियन लोगों से वार्त्तालाप, एक पादरी से बात-चीत, गोरक्षा, साहब की प्रतिज्ञा, दिनचर्या, श्रीमुख से उपदेश सुनने की इच्छा, अपने चरण मेरे मस्तक पर लगा दो, देव-मूर्त्ति पर पदाघात, दलितों की चिन्ता ने विकल कर दिया, मैं साधारण विद्वान् भी न गिना जाता, काशी, विज्ञापन-पत्र, काशी की दशा, कर्नल और मैडम, राजा शिवप्रसाद, किसी को शास्त्रार्थ का साहस न हुआ, मैजिस्ट्रेट के कान भरे गये, व्याख्यान बन्द, मैजिस्ट्रेट को पत्र, लाटसाहब को पत्र, लाटसाहब का निर्णय, समाचार-पत्रों में आन्दोलन, पायोनियर का लेख, थियोसोफ़िस्ट का लेख, प्रतिबन्ध हटा लिया गया, आत्म-चरित, प्रमदादास की अशिष्टता, कर्नल द्वारा स्वामीजी की प्रशंसा, प्रेस मैनेजर की चिन्ता, वैदिक-यन्त्रालय की स्थापना, आज हम गृहस्थ हो गये, व्याख्यानमाला, आर्यसमाज की स्थापना, ब्रह्म-भोज में सम्मिलित, मिस्टर सिनेट का पत्र, प्रयाग में सिनेट साहब से साक्षात्कार, बाबू सीताराम की सम्मति, यह जल स्वामीजी के पीने योग्य नहीं है, वह स्त्री दुष्टा थी, तिरस्कार के पश्चात् प्रीति, हमें बाबाजी न कहो, आप भी तो बच्चे-के-बच्चे हैं, स्वयं आटा माँडा, आपका छुआ भोजन न खाएँगे, पण्डितों का गुप्तरूप से व्याख्यान श्रवण, कथक्कड़ व्यासों की आलोचना, कार्यव्यस्तता, स्वास्थ्य-चिन्ता, यज्ञोपवीत-प्रदान, स्वामीजी महापुरुष थे, योगाभ्यास, हम ऐसे गन्दे अर्थों को नहीं मानते, गीता के श्लोक के अर्थ, मूर्त्तिपूजा का खण्डन मैं नहीं तुम करते हो, हम दयानन्द का सिर काट लेंगे, जन्मगत वर्णव्यवस्था का खण्डन, क्या आपको गद्दी पर बैठकर अभिमान नहीं होता, मैडम की ऐन्द्रजालिक क्रियाएँ, भूल स्वीकार, मुक्ति से पुनरावृत्ति, पण्डित बालशास्त्री और पण्डित बापूदेवशास्त्री की सत्यप्रियता, स्वामी विशुद्धानन्द का द्रोह, वेद ही ईश्वर की वाणी है, मैं दूकानदार नहीं हूँ, विभु के अर्थ पत्थर के महादेव के नहीं हैं, अद्भुत स्मृति, वैद्यजी को नाड़ी दिखाई, वर्ण जन्मगत नहीं हैं, स्वामीजी के लेखक, कर्मचारियों की भर्त्सना, बेर क्यों तोड़ा, कोतवाल की भक्ति, मैं हित के लिए खण्डन करता हूँ, उपदेश, लखनऊ, अतस्तनू का अर्थ, तुमसे बकरी की टेव नहीं जाती, आर्यसमाज की स्थापना, भक्त को ढाढस, देश-दशा पर खेद, कानपुर, फ़र्रुखाबाद, मैं किसी मत को नहीं मानता, आर्यसमाज की स्थापना, योग पर व्याख्यान, बिना सूँड़ का गणेश, वेद का अपौरुषेयत्व, वेदभाष्य की सहायता, धर्मार्थ कोष, एक आर्यसमाजी के पीटनेवाले को दण्ड, स्वामीजी की अप्रसन्नता, धर्मविषय पर प्रश्नोत्तर, महाराज का आतिथ्य, एक सदाशय विद्वान् से धर्मालाप, वार्त्तालाप का प्रभाव ।

षड्विंश अध्याय (पृष्ठ ५३०—५६५)

मैनपुरी, ऋषि-मुनियों के समागम का आनन्द आ गया, अपूर्व व्याख्यान, घोर नास्तिकों से प्रश्नोत्तर, निष्पक्ष मुसलमान, आर्यसमाज स्थापित हो गया, मेरठ, अध्यापिका की आवश्यकता, पण्डिता रमाबाई का आगमन, रमाबाई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्रचार-कार्य करने से नकार, रमाबाई को विदा कर दिया गया, सम्मान-प्रदर्शन, रमाबाई ईसाई, रमाबाई की स्वामीजी के विषय में सम्मति, स्त्रियों को वेदाधिकार, कर्नल और मैडम का रङ्ग बदला, मैडम के विचार, अविश्वासियों से सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे, योग की शक्ति, सन्ध्या कैसी ? उपासना किसकी ?, मैं ईश्वर को नहीं मानती, ईश्वर-विषय पर विचार, विचार का आरम्भ, सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा, पालिसी से घृणा, पहले सत्यार्थप्रकाश का प्रामाण्य अस्वीकार, विज्ञापनम्, पालिसी से हानि, पहला स्वीकार पत्र, मुज़फ़्फ़रनगर, मृतक श्राद्ध पर बात-चीत, स्त्री-शिक्षा पर आक्षेप, सुख-दुःख की मीमांसा, ढेले आये, मुसलमान नवयुवक की अशिष्टता, साँप मरवा दिया, स्वामीजी पर कृष्णसर्प फेंका गया, मेरठ, सम्बन्ध-विच्छेद का सूत्रपात, जीवन की कुछ घटनाएँ, क्या तुमने सर्प देखा, छाता ले-लिया होता, सहारनपुर, फलित ज्योतिष ढकोसला है, बालक-जन्म पर सूतक, देहरादून, पौराणिकों की छेड़छाड़, मुसलमान भी आये, पादरी भी राज़ी नहीं हुए, महात्मा अलखधारी पूर्व मुहम्मद उमर, मेरठ, आगरा, व्याख्यानमाला, दस दिन में शङ्का मिटा लो, आर्यसमाज की स्थापना, तीन बालकों का यज्ञोपवीत, गिरजा-दर्शन और विशप से वार्त्तालाप, गिरजा बिना देखे वापस, मुसलमान कोतवाल से धर्मालाप, अग्नि शब्द के अर्थ परमेश्वर, दूसरी व्याख्यानमाला, मुंशी इन्द्रमणि से बात-चीत, दो काल सन्ध्या, राधास्वामी साधु, मकान से निकाल देने का जनरव, स्वामीजी मथुरा चलकर शास्त्रार्थ करें, कलकत्ते की सभा, गोकरुणानिधि' की रचना, मन्दिर के ट्रस्टी क्यों नहीं बन जाते, भविष्यवाणी पूरी हुई, गोरक्षिणी सभा, दयानन्द शास्त्रार्थ में हार गया, अपनी स्त्री से कह दो दयानन्द हार गया, तुम नास्तिक से बात-चीत कर रहे हो, चतुर्भुज पौराणिकराज, चतुर्भुज की दो लीलाएँ, जन-संख्या-सम्बन्धी आदेश, दिनचर्या, मुंशी बख्तावरसिंह की वैदिक यन्त्रालय के हिसाब में गड़बड़, स्वामीजी न्यायालय में जाना न चाहते थे, मैं चुप नहीं रह सकता, पञ्चायत में टालमटोल और फिरजाना, दावा दायर किया गया, परन्तु खारिज हो गया, स्वामीजी न्यायालय क्यों गये, स्वामीजी की द्रुतगति, बङ्गाली नास्तिक, मैं शास्त्रार्थ नहीं करूँगा, भरतपुर, जयपुर, केवल एक व्याख्यान, आर्यसमाज का अंकुर, अजमेर, आमगन की सूचना, २६ व्याख्यान, पण्डित लेखराम का आगमन, शङ्का समाधान, अपना कोई चिह्न दीजिए, हिन्दू युवक ईसाई न हुआ, चतुर्भुज पौराणिकराज, नियम सुनकर सब गर्व जाता रहा, स्वामीजी की मितव्ययिता, पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता निरुत्तर, सिर कटाने से लिए गर्दन झुका दी, मसूदा, पादरी शूलब्रेड ने शास्त्रार्थ न किया, पाप क्यों होता है, बिहारीलाल ईसाई, जैनियों से शास्त्रार्थ का प्रस्ताव, धर्मचर्चा के लिए उद्यत हूँ, स्वामीजी और जैनसाधु की भेंट, मैं धर्मचर्चा पर उद्यत हूँ, रावसाहब भी आ पहुँचे, मुख पर पट्टी क्यों बाँधते हो, जैनसाधु को शास्त्रार्थ का आह्वान, पट्टी, तीन प्रश्न, अपनी ही ओर से उत्तर-प्रत्युत्तर, साधु प्रश्नपत्र पाकर अन्दर चले गये, साधु के उत्तर, प्रत्युत्तर, हमसे उत्तर नहीं बन आता, क़िले में व्याख्यान, जैनियों का वैदिक धर्म में प्रवेश, एक लज्जास्पद प्रथा, बिहारीलाल ईसाई फिर आये, वैदिक धर्मी शिष्य का ईसाई शिष्य से शास्त्रार्थ, सम्मान-प्रदर्शन, रायपुर, स्वामीजी के चोट आ गई, रायपुराधीश के आदर्श नौकर, स्वामीजी और राव की भेंट, स्वामीजी को पीटने का षड्यन्त्र, रायपुराधीश की उदासीनता, क़ाज़ीजी से वार्त्तालाप, कुरान का अपमान क्यों किया, रावसाहब की रानी का देहान्त, मैं किसी का हर्ष-शोक नहीं करता, ब्यावर, मसूदा, कबीरपन्थी साधु से बात-चीत, बनेड़ा, सुपठित राजा, शक्ति हो तो स्वामीजी से प्रश्न किया जाए, चारों वेदों के दर्शन, राजगुरु से बात-चीत, पुस्तकालय का उपयोग, सस्वर वेदपाठी राजकुमार, क़िले में उपदेश, पहले प्रश्न का उत्तर, चक्रांकितों की मुक्ति का उपाय, चित्तौड़, महाराणा सज्जनसिंह का चरित्र, स्वामीजी के समाचार सुनने में महाराणा की रुचि, स्वामीजी के दर्शनों की इच्छा, महाराणा ने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा, महाराणा और स्वामीजी के मिलने का सुयोग, स्वामीजी का चित्तौड़ जाने का सङ्कल्प, तैलिङ्गी शास्त्री, शाहपुराधीश, निर्भय वाणी, महाराणा स्वामीजी के आसन पर पधारे, चित्तौड़ की सैर, जीवनगिरि का द्वेष, सम्मान-प्रदर्शन, मातृशक्ति को प्रणाम, इन्दौर।

सप्तविंश अध्याय (पृष्ठ ५६६—५६१)

मुम्बई, ठाकुरसाहब मौर्वी व्याख्यान में पधारे, वक्ता आपके राज्य का ही निवासी है, प्राचीनकाल में दूध-दही की बहुतायत, हमें व्यापार में प्रवृत्त होना चाहिए, वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है, मन्त्र शब्द का अर्थ, श्राद्ध की अप्रामाणिकता, मैं वेद से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करूँगा, स्वामीजी मेरे सामने आने से डरते हैं, दूर से ढोल पीटते रहे, वेद से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करनेवाले को पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार, गोरक्षा का समर्थन, ठाकुरदास जैन का नोटिस, प्रचार में परिवर्तन,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुसल़मान वेदान्ती का वैर-त्याग, राणडे महोदय से भी न मिले, विलक्षण धारणाशक्ति, चतुर्मुख ब्रह्मा, मनोहर सामगान, स्वयमेव शङ्का-समाधान हो गया, उपासना की रीति, मन की एकाग्रता का उपाय, यम-नियम का सेवन करो, एक मुकद्दमे में झूठी साक्षी देकर आये थे, सेठ के लज्जालु पुत्र को उपदेश, पेंशनर ब्राह्मण को उपदेश, १००० रुपये में से ६०० रुपये वापस कर दिये, आर्यसमाज के नियमों में परिवर्तन, पादरी जोज़ेफ़ कुक को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान, पादरी साहब ने कोई उत्तर न दिया, विचित्र किंवदन्ती, समालोचना, उपकार के बदले प्रत्युपकार करो, ठाली रहकर मत खाओ, शिष्टाचार की शिक्षा, श्यामजीकृष्ण वर्मा, स्वामीजी का संस्कृत-पत्र, पत्र पर मोनियर विलियम्स मुग्ध, संस्कृत मृतभाषा नहीं है, मोनियर विलियम्स द्वारा स्वामीजी की प्रशंसा, श्यामजीकृष्ण वर्मा की अकृतज्ञता, दयानन्द-प्रकाश, भ्रमसंशोधन, स्वामीजी और गोरक्षा, गोवध रोकने का यत्न, मेमोरियल स्वयं लेकर जाएँगे, गोकृषिरक्षिणी सभाएँ, राष्ट्र-भाषा-प्रचार, उदयपुर, बोझ से पालकी टूट गई, महाराणा का अनुराग, महाराणा का पठन, दशहरे का उत्सव, निरीह पशुओं की वकालत, बृहद् हवन, राजकुमार का जन्म, महलों में वेश्या का नृत्य, कार्यक्रम, अमूर्त्त का ध्यान कैसे करें, आप मन्दिर के महन्त बन जाएँ, मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता, स्वदेशी चिकित्सा और स्वदेशी वस्त्र, आपका स्मारकचिह्न बनाना चाहिए, वीर्य का नाश आयु का नाश है, हमें भड़ुवेपन की बातें नहीं रुचतीं, धर्म के कारण जागीर जाने दो, हैं हैं यह क्या उत्तर है ?, विद्यार्थियों की परीक्षा, सरदार-पाठशाला, पाठ्यक्रम निर्माण, नागराक्षर प्रचार, महाराणा के लिए दिनचर्या, दैनिक होम, वेश्यागमन का त्याग, हमें ऐसे धन्धों से क्या काम, ब्राह्मणों की जागीरें जब्त कर लो और जूते पहना दो, माला-जाप व्यर्थ है, मूर्त्तिपूजा खण्डन, आप तो अवतार के भी अवतार हैं, स्वामीजी गोरक्षा के घोर पक्षपाती थे, अंग्रेज़ी पढ़ने का उद्योग, अन्धे साधु की कृतघ्नता, संन्यासप्रार्थी, जल पर ध्यानावस्थित, परोक्षदर्शन, अनधिकारियों को उपदेश न दिया करें, अधिकारानधिकार का पचड़ा, जातीय उन्नति के साधन, यदि दो-चार दयानन्द होते, मुसलमान जज से शास्त्रार्थ, मौलवी के सात प्रश्नों के उत्तर, स्वीकार-पत्र लिखने की चिन्ता, स्वीकार-पत्र, स्वीकार-पत्र के नियम, महाराणा का पुत्रजन्म पर दान, विदासमय सम्मान, महाराणा का विद्या-प्रेम, मानपत्र।

अष्टाविंश अध्याय (पृष्ठ ५६२—६२६)

शाहपुरा, ब्राह्मणकुमार को संन्यास-दान, निद्रा पर अधिकार, हमें शास्त्रार्थ से क्या काम, रामसनेहियों से भेंट, बाबाजी स्वामीजी सच कहते हैं, राज-पुरोहित से वार्त्तालाप, विद्यार्थी के प्रश्नों का उत्तर, विचित्र ज्ञानेन्द्रिय-प्रकाश, पत्थर पर चढ़े बताशे, नैयायिक से विनोदवार्त्ता, चौके-चूल्हे का पाखण्ड, स्वामीजी की सत्यप्रियता, लेटते ही सो जाते थे, शाहपुराधीश की चेतावनी, चेतावनी का परिणाम, सम्मान-प्रदर्शन, मानपत्र, अजमेर, जैन सेठ से वार्त्तालाप, मूलासुर के देश में न जाइए, जोधपुर, जोधपुर के मार्ग में कष्ट, जोधपुर में स्वागत, महाराजा दर्शनों को आये, उपदेशगङ्गा, व्याख्यान-माला, आप मुझसे झूठ बुलाना चाहते हैं, वेश्या-गमन की निन्दा, मिथ्या किंवदन्ती, राजाओं को फटकार, सर प्रतापसिंह को पत्र, नन्हीं भगतन शत्रु हो गई, शत्रुओं का दल बन गया, मुस्लिम राज्य में जीते न बचते, मुझे मनुष्य की रक्षा की आवश्यकता नहीं, चक्रांकितों की समालोचना, चक्रांकित मत पर बात-चीत, महाराजा और स्वामीजी का मिलन, महाराज पर उपदेश का प्रभाव, मुझे वैदिक धर्मी लिखाओ, चरित्र पर प्रभाव न पड़ा, स्वामीजी की दिनचर्या, स्वामीजी सहसा घबरा उठे, सन्ध्या शब्द की सिद्धि, मैं स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने योग्य नहीं हूँ, आपके पूर्वपुरुष कितने वीर थे, नवीनवेदान्त पर वार्त्तालाप, शाक्त मत पर वार्त्तालाप करने में अरुचि, महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी, जैनी के प्रश्नों के उत्तर, साधु का शङ्कासमाधान, नवाब से बात-चीत, बेड़ा कभी का डूब जाता, परहित-चिन्ता, पहलवान का मद चूर्ण, पिता-पुत्र ठाकुर की भक्ति, राव राजा पर प्रभाव, सर प्रतापसिंह, न्याय से मोक्ष, सभी आर्यसमाजी मेरे शिष्य हैं, जोधपुर जाने का उद्देश्य, स्वामीजी आम बहुत खाते थे, कहार ने चोरी कर ली, धूर्त्त सेवक, रोग का आक्रमण, विष का सन्देह, डॉक्टर अलीमरदानखाँ का परिचय, इन्हें चौगुनी मात्रा दो, डॉक्टर सूरजमल का अपराध, स्वामीजी के रोगी होने की प्रथम सूचना, यह तो शरीर का धर्म ही है, आर्यसमाज अजमेर को सूचना, दो योग्य डॉक्टर होते हुए अयोग्य की चिकित्सा, राव राजा तेजसिंह का अपराध, अलीमरदानखाँ का असद्भाव, जगन्नाथ रसोइया कौन था, मनगढ़न्त गाथा, राव राजा तेजसिंह का मिथ्या विचार, पिसे हुए काँच के चिह्न न थे, मलेरिया का विष या आमों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का विकार, रोगवृद्धि का मुख्य कारण, एक और सन्देह, इस राक्षस-भूमि में क्यों आ गये, आबू भेजने का प्रस्ताव, जोधपुराधीश का सद्व्यवहार और सम्मान-प्रदर्शन, पालकी का फ़र्श टूट गया, रोग का भयङ्कर रूप, दो ब्राह्मणों को दान, आबू, आबू की चढ़ाई का प्रबन्ध, विपन्न दशा, डॉक्टर लछमनदास का मिलना, मुझे किसी ने अमृत दिया है, आबू पहुँच गये, डॉक्टर लछमनदास का प्रेम और परिश्रम, दशा सुधरने लगी, स्वामीजी ने त्यागपत्र फाड़ डाला, त्यागपत्र दिया पर अस्वीकार, डॉक्टर लछमनदास, रोग का पुनः आक्रमण, भक्तों का समूह, भक्त भूपालसिंह की सेवा, अजमेर, रात्रि में दही खाया, सब लोग घबरा गये, दशा कुछ सुधरी, स्वामीजी का अपथ्य, डॉक्टर लछमनदास ने पुरस्कार न लिया, डॉक्टर लछमनदास के प्रति कृतज्ञता, ओषधि में विष, पण्डित गुरुदत्त का अजमेर आगमन, महाराणा की चिन्ता, एक और किंवदन्ती, रोग फिर कम हुआ, पुनः कुपथ्य, मुमूर्षु दशा, भ्रान्त सम्मति, रात्रि को घबराहट, डॉक्टर लछमनदास का वर्णन सत्य है, अब चिकित्सा न करूँगा, अंग्रेज़ सिविलसर्जन का परामर्श, डॉक्टर न्यूमैन का आश्चर्य, डॉक्टरों में मतभेद, डॉक्टर न्यूमैन से परामर्श, मरना-जीना दोनों सम्भव हैं, राई की खूब गर्म पुल्टिस, आज आराम का दिवस है, शिष्य से प्रश्न, शिष्य का उत्तर, संन्यासी से भी वही प्रश्न, मृत्युसान्निध्य में अपूर्व सावधानी, तेज और अन्धकार का भाव है, वेदपाठ और ईश्वरस्तुति, तेरी यही इच्छा है, मृत्युदृश्य ने नास्तिक को आस्तिक बना दिया, हम शव को गाड़ेंगे, पण्डित सुन्दरलाल आये, नाई को पाँच रुपये, जो इच्छा हो वह भोजन बनाओ, दो सुधारक एक ही समय में रुग्ण, महाराणा की अन्तिम दर्शन की कामना, शवदाह की तैयारी, श्मशान यात्रा, अन्त्येष्टि क्रिया, दाह-संस्कार की सामग्री, पण्डित गट्टूलाल की समवेदना, सर्वत्र शोक की घटा, महाराणा का शोकोद्गार, एक मर्मस्पृक् ललित उद्गार।

परिशिष्ट संख्या १ (पृष्ठ ६२७—६४३)

जन्मस्थान और नाम, महाराज का जन्मस्थान टङ्कारा ही था, भगवान् दयानन्द के पिता कौन थे, कर्शनजीलालजी साहूकार, कर्शनजीलालजी ज़मींदार, कर्शनजीलालजी जमेदार, कर्शनजी घोर शिवभक्त, कर्शनजी के पुत्र का गृहत्याग, ऋषि का आदि नाम क्या था, भगवान् के पूर्वपुरुष।

परिशिष्ट संख्या २ (पृष्ठ ६४४—६७२)

आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी, कर्नल आल्काट का पत्र, महाराज के संस्कृत-पत्र का अनुवाद, कर्नल, मैडम के ऊपर सन्देह, थियोसोफ़िस्टों की गोलमाल, पोलपाल।

परिशिष्ट संख्या ३ (पृष्ठ ६७३—६७६)

मुंशी इन्द्रमणि का मुकद्दमा।

परिशिष्ट संख्या ४ (पृष्ठ ६७७—६८१)

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश।

परिशिष्ट संख्या ५ (पृष्ठ ६८२—६८४)

महर्षि दयानन्द सरस्वतीरचित ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संग्रहकर्त्ता की भूमिका

ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित के लिखने में आर्यसमाज ने अत्यन्त निन्दनीय उदासीनता और उपेक्षा की। आर्यसमाज मुम्बई १० अप्रैल सन् १८७५ को स्थापित हुआ, उसके पश्चात् संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध और पञ्जाब के अनेक नगरों में आर्यसमाज स्थापित होते रहे और वैदिक धर्म के सुनियमित और सुसंगठित केन्द्र अस्तित्व में आ गये। ऋषि ने सन् १८८३ की ३० अक्तूबर को परमपद प्राप्त किया। आर्यसमाज मुम्बई के स्थापित होने के पश्चात् ऋषिवर साढ़े आठ वर्ष जीवित रहे। इन वर्षों में यू०पी० और पञ्जाब, गुजरात और बिहार में प्रमुख आर्यसमाज स्थापित हो चुके थे, जिनमें सुशिक्षित और प्रतिष्ठित सज्जन सम्मिलित थे, परन्तु न किसी आर्यसमाज को ही और न किसी आर्यसमाजी को ही यह चिन्ता हुई कि ऋषि-जीवन की सामग्री एकत्र की जाए। किसी ने भी यह यत्न न किया कि ऋषिवर से पूछताछ करके उनके जीवन की आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व की घटनाओं को लिपिबद्ध करे। यह तो दैवयोग ही समझिए कि कर्नल ऑल्काट को इसका ध्यान आया और उन्होंने श्रीमहाराज से प्रार्थना करके आत्मचरित लिखा कर उसे "थियोसोफ़िस्ट" में प्रकाशित किया और ऋषिवर ने जब पूना में अपनी जीवनकथा का वर्णन किया तो वहाँ के सज्जनों से उसे लिपिबद्ध कर लिया। ऋषि ने अपना जीवन-वृत्तान्त अन्य कई स्थानों में भी वर्णन किया, पर अन्य किसी ने उसे लेखबद्ध करने की ओर ध्यान न दिया। यदि कर्नल ऑल्काट और पूना के सज्जन इस ओर ध्यान न देते तो उस काल का जीवनवृत्त अन्धकार में विलीन हो जाता। यदि ऋषि के जीवन-काल में ही अनुसन्धान आरम्भ हो जाता तो प्रामाणिक जीवनवृत्त लिखने में कुछ भी कठिनाई न होती। उनके पिता के नाम और जन्मस्थान के विषय में यदि उनके अनुयायी उनसे आग्रहपूर्वक जिज्ञासा करते तो सम्भव था कि वे उनकी जिज्ञासा को समीचीन उत्तर देकर शान्त कर देते। ये दोनों बातें असन्दिग्धरूप से ज्ञात हो जातीं और विवाद और अनुसन्धान का विषय न रहतीं और विरोधियों को इस विषय में अपवाद फैलाने का अवसर न मिलता। ऋषि ने सैकड़ों व्याख्यान दिये, सहस्रों से धर्म तथा अन्य विषयों पर वार्त्तालाप किया। उनमें उन्होंने न जाने कितने वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया होगा, कितने विषयों पर अपनी अमूल्य सम्मति प्रकट की होगी जिनका आज हमारे पास कोई लिखित विवरण नहीं है। यदि यह विवरण होता तो उससे संसार को कितना लाभ पहुँचता, मनुष्य की जीवन-यात्रा को सुखपूर्वक बिताने में वह कितना सहायक होता और उससे कितने मिथ्या विश्वासों और भ्रममूलक सम्मतियों का मूलोच्छेद होता, इसका कौन अनुमान कर सकता है? हमने इनमें से कुछ भी नहीं किया और अपने प्रमाद से संसार को एक महान् लाभ से वञ्चित कर दिया। इतना ही नहीं, ऋषि की निर्वाण-प्राप्ति के पश्चात् भी पाँच वर्ष तक हम मौन साधे और हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे।

सन् १८८८ में जाकर हमें सुध आई और आर्य-प्रतिनिधि-सभा पञ्जाब ने स्वर्गीय पण्डित लेखराम को ऋषि-जीवन की सामग्री इकट्ठी करने के लिए नियत किया। पण्डितजी ने पाँच वर्षों तक उसके संग्रह करने में अनथक परिश्रम किया और इसमें उन्हें सफलता भी अच्छी हुई। सामग्री संग्रह करने के पश्चात् वे अपने नोटों को क्रमबद्ध करने बैठे, परन्तु प्रचारकार्य के कारण उसमें अन्तराय पड़ते रहे और वे अपनी संगृहीत सामग्री के स्वल्प अंश को ही क्रम में रखने का प्रयत्न कर पाये कि ६ मार्च सन् १८९६ को एक यवन घातक ने उनका वध कर दिया। न वे सारी सामग्री को ही क्रमबद्ध कर पाये और न उसका पुनर्निरीक्षण ही कर सके। उनके पश्चात् यह काम आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् कार्यकर्त्ता श्री मास्टर आत्माराम अमृतसरी को सौंपा गया। उन्होंने और उनके सहकारियों ने जिस महान् परिश्रम से पण्डित लेखरामजी के छोड़े हुए काम को पूरा किया, उसके लिए वे शतशः और सहस्रशः धन्यवाद के पात्र हैं।

पण्डित लेखरामजी और मास्टर आत्मारामजी के परिश्रम का फलस्वरूप उर्दू में लिखा हुआ वह दयानन्द-चरित है, जो आर्य-प्रतिनिधि-सभा पञ्जाब की ओर से सन् १८९७ में प्रकाशित हुआ। उसे पढ़कर पण्डित लेखरामजी के असाधारण परिश्रम का पता चलता है। उसे देखकर एकदम अवाक् रहना पड़ता है। पण्डितजी ने पाँच वर्षों से कम में इतना काम किया, जितना दो मनुष्य भी नहीं कर सकते थे। वे बीसियों स्थानों पर गये, सहस्रों मनुष्यों से मिले और ऋषि-जीवन-सम्बन्धी घटनाओं को लिपिबद्ध किया। उक्त उर्दू चरित ज्ञान की एक खानि है। ऋषि का कोई भी जीवन-चरित-लेखक उसकी सहायता के बिना एक पग भी आगे नहीं रख सकता. परन्तु उसमें कुछ त्रुटियाँ हैं जो न पण्डित लेखराम की हैं और न मास्टर आत्माराम की। उसमें घटनाओं के वर्णनों का विश्लेषण, समीक्षण और उनकी समालोचना नहीं की गई, न घटनाओं को पूर्वापर सम्बन्ध की दृष्टि से एक क्रम में रक्खा गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक ही घटना के कई प्रकार के वर्णन पाये जाते हैं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक ही घटना का भिन्न-भिन्न काल में होना पाया जाता है। पाठक चक्कर में पड़ जाते हैं कि किस वर्णन को ठीक मानें, कहीं-कहीं तो यह पता लगना ही कठिन हो जाता है कि घटना का वास्तविक रूप क्या था ? इसका वर्णन एक शृङ्खला में भी नहीं है।

ये त्रुटियाँ अवश्य हैं फिर भी यदि यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई होती तो 'ऋषि जीवन-चरित' का पूर्णतया लिखना असम्भव हो जाता। इसलिए हमें सदा के लिए पण्डित लेखराम का नितान्त आभारी रहना होगा। जो सामग्री वे एकत्र कर गये हैं, उसका बहुत बड़ा अंश असंगृहीत ही रह जाता, यदि वे इतना परिश्रम न करते।

बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय एक बङ्गीय सज्जन थे, वे आर्यसमाजी न थे। हम नहीं कह सकते कि उनके हृदय में ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा का उदय किस प्रकार हुआ। एक बार श्रद्धा का अंकुर जम जाने के पश्चात् वह पल्लवित होता ही गया। उन्हें ऋषि का 'जीवन-चरित' लिखने की लौ लग गई। उन्होंने सन् १८६४ ई० में ही दयानन्द-चरित के नाम से एक छोटी पुस्तक दो भागों में बङ्गला भाषा में प्रकाशित की। उसका विज्ञापन किसी बङ्गला समाचार-पत्र में देखकर मैंने उसे मँगाकर पढ़ा। मैंने उसे अत्यन्त रोचक पाया और मन में उसका आर्य-भाषानुवाद प्रकाशित करने की इच्छा उत्पन्न हुई, परन्तु कई वर्ष तक यह इच्छा कार्य में परिणत न हो सकी। सन् १६००-१६१० के बीच में वे किसी समय मेरठ आये और मुझसे मिले। उनके मिलने पर मैंने देखा कि वे दयानन्द के पीछे वास्तव में पागल-से हैं। उन्हें दिन-रात दयानन्द की चिन्ता घेरे रहती थी। वे दयानन्द के जीवन की एक-एक घटना का पता लगाने के लिए सैकड़ों कोस की यात्रा करने और सैकड़ों रुपया व्यय करने के लिए उद्यत थे। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि मेरठ के कुछ आर्यसमाजियों से बात-चीत करते हुए उन्होंने कहा कि "आप लोग दयानन्द के अनुयायी होने का दम्भ करते हैं। आप दयानन्द से प्रेम नहीं करते। क्या आपमें से कोई उसके नाम पर मरने को तैयार है ? मैं गर्व नहीं करता, परन्तु आवश्यकता हो तो मैं दयानन्द के नाम पर अपना शिरश्छेद कराने में इतस्ततः नहीं करूँगा।" देवेन्द्रबाबू निर्धन पुरुष थे। उन्हें अपनी पुस्तकों की बिक्री से ही थोड़ी-सी आय थी। कुछ उनके बङ्गाली साहित्यप्रिय मित्र भी उनकी सहायता करते रहते थे। कहीं-कहीं आर्यसमाजियों से भी उन्हें कुछ मिल जाता था और इस प्रकार जो धन प्राप्त होता था, उसी से वे अपना निर्वाह भी करते थे और ऋषि-जीवन-चरित लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने में भी व्यय करते थे। सम्भवतः सन् १६३१ में मेरठ के भास्कर प्रेस के अध्यक्ष स्वर्गीय बाबू रघुवीरशरण दुबलिश ने मुझसे पूर्वोल्लिखित दयानन्द-चरित का बङ्गला से आर्यभाषा में अनुवाद कराया और देवेन्द्रबाबू की आज्ञा लेकर उसे प्रकाशित किया। उस समय ही आर्यजनता को पता लगा कि कोई बङ्गाली ऋषिभक्त भी संसार में है। देवेन्द्रबाबू एक बृहत् सर्वाङ्ग-पूर्ण दयानन्द-चरित बङ्गला में प्रकाशित करने के नितान्त इच्छुक थे। इसी के लिए उन्होंने असीम कष्ट सहन किया। वह उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गया था। मुझे उसी समय यह निश्चय हो गया था कि मैं उसका आर्यभाषा में अनुवाद करूँ और बङ्गला और आर्यभाषा की पुस्तकें एक साथ प्रकाशित हों। सन् १६१५ वा १६१६ में वे सब सामग्री संग्रह कर चुके थे और निश्चिन्त होकर जीवन-चरित लिखने बैठ गये थे।

ऋषि की जन्म-भूमि

यों तो उनकी संगृहीत सामग्री में अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिनका उनके अनुसन्धान के पूर्व आर्यसमाजियों को कुछ पता न था, परन्तु सबसे अधिक मूल्यवान् उनका ऋषि के पिता और जन्मस्थान का पता लगाना है। उससे पूर्व पण्डित लेखराम ने किसी से सुन-सुनाकर बिना अधिक अनुसन्धान के ऋषि के पिता का नाम अम्बाशङ्कर और ऋषि का नाम मूलशङ्कर लिख दिया था और यही नाम आर्यसमाज में प्रचरित हो गये थे। देवेन्द्रबाबू ने अत्यन्त सावधानी और परिश्रम से खोज करके बताया कि वास्तव में उनके पिता का नाम कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी और उनका नाम दयाराम वा मूलजी (मूलशङ्कर का संक्षिप्त रूप) था और उनका जन्मस्थान मौर्वी राज्य के अन्तर्गत टङ्कारा था। इस विषय पर उन्होंने 'वैदिक-मैगज़ीन' गुरुकुल काङ्गड़ी में एक लेख भी लिखा था और एक पैम्फ़लेट भी प्रकाशित किया था जिसका आर्यभाषानुवाद इसी पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट संख्या १ के नाम से लगा दिया गया है।

देवेन्द्रबाबू प्रस्तावित दयानन्द-चरित की भूमिका और पहले चार अध्याय ही लिख सके। वे ज्यों-के-त्यों प्रकाशित किये जाते हैं। इसके पश्चात् उन्हें अर्द्धाङ्ग रोग ने आ दबाया और उसी में उनका देहान्त हो गया। यह कितने दुःख की बात है कि न तो पण्डित लेखराम ही और न देवेन्द्रबाबू ही अपने कार्य को पूरा कर सके। यदि वे दयानन्द-चरित को पूरा लिख पाते तो इसमें सन्देह नहीं कि क्या साहित्य की दृष्टि से और क्या इतिहास की दृष्टि से वह एक अलौकिक ग्रन्थ होता। बहुत-सी बातें और विचार उनके मस्तिष्क में ही होंगे जो उनकी मृत्यु के साथ लुप्त हो गये। उनकी मृत्यु के पश्चात् मैंने अपने स्वर्गीय मित्र बाबू ज्वालाप्रसाद एम० ए० की सहायता और उद्योग से जो काशी में डिप्टी कलक्टर थे, सम्भवतः सन् १६१७-१८ में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवेन्द्रबाबू की संगृहीत सामग्री प्राप्त की जो विचित्र दशा में थी। वह सैकड़ों छोटे-बड़े काग़ज़ के टुकड़ों, नोटबुकों, पत्रों, पोस्टकार्डों, समाचार-पत्रों के कर्त्तनों के रूप में थी, जो कहीं पेंसिल से और कहीं स्याही से बङ्गाली अथवा अंग्रेजी अक्षरों में लिखी हुई थी। मैंने पहले उन सबको पढ़ा, फिर आर्यभाषा में उनका अनुवाद किया और फिर उन्हें एक क्रम में लिखा।

देवेन्द्रबाबू की संगृहीत सामग्री में पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित गर्भित अनेक बातों का समावेश नहीं था। मेरे विचार में इसका कारण यह था कि पण्डित लेखराम के ग्रन्थ में वर्णित जिन घटनाओं को वे सत्य मानते थे उनके विषय में नोट रखने को उन्होंने व्यर्थ का परिश्रम समझा, अतः जब मैं देवेन्द्रबाबू की संगृहीत सामग्री के आधार पर जीवन-चरित लिखने बैठा तो मैंने अनुभव किया कि यदि पण्डित लेखराम के ग्रन्थ की उपेक्षा की गई तो जीवन-चरित बहुत अंशों में अपूर्ण रह जाएगा और इसलिए मैंने उक्त ग्रन्थ से भरपूर सहायता लेने का निश्चय कर लिया।

देवेन्द्रबाबू के पश्चात् श्री स्वामी सत्यानन्दजी महाराज ने ऋषि की जीवनी लिखने का सङ्कल्प किया और स्थान-स्थान में घूम-फिरकर कुछ सामग्री एकत्र की। उन्होंने देवेन्द्रबाबू की सामग्री को काशी जाकर देखा और उससे पूर्ण लाभ उठाया। यही कारण है कि प्रशंसित स्वामीजी के ग्रन्थ 'श्रीमद्दयानन्दप्रकाश' में बहुत-सी उन घटनाओं का उल्लेख है जिनका देवेन्द्रबाबू के सिवाय अन्य किसी को पता न था।

पण्डित लेखरामजी का अनुसन्धान विशेषकर पंजाब, यू० पी० और राजस्थान तक ही सीमित रहा। मुम्बई और बङ्गाल प्रान्त में न उन्होंने अधिक भ्रमण किया और न अधिक अनुसन्धान किया, अतः इन दोनों प्रान्तों की घटनाओं का उनके ग्रन्थ में उतना विशद वर्णन नहीं है जितना पञ्जाब और यू० पी० तथा राजस्थान की घटनाओं का है। देवेन्द्रबाबू ने इन दोनों प्रान्तों में अधिक अनुसन्धान किया और उनके वहाँ के वृत्तान्त बहुत विस्तृत हैं।

देवेन्द्रबाबू को जो सुविधा अंग्रेजी जानने के कारण थी वह न पण्डित लेखरामजी को और न स्वामी सत्यानन्दजी को ही प्राप्त थी। प्रशंसित दोनों महानुभावों को बङ्गाली और गुजराती भाषा से भी जानकारी न थी और अंग्रेजी भी वे न जानते थे, अतः वहाँ के लोगों के वक्तव्यों के समझने में उन्हें कितनी कठिनता का सामना करना पड़ा होगा, यह सहज में ही समझ में आ सकता है।

'दयानन्द-प्रकाश' वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं लिखा गया। उसके लेखक का मुख्य अभिप्राय ऋषि दयानन्द में भक्ति और श्रद्धा के भावों का उत्पन्न करना है। उसमें ऋषि के स्वरूप का इस ढङ्ग से और ऐसी भाषा में वर्णन किया गया है जिससे पाठक उससे प्रेम करें, उनके हृदय में ऋषि के प्रति भक्ति और श्रद्धा का सञ्चार हो। दयानन्द-प्रकाश ठीक उन्हीं भावों से परिचालित होकर लिखा गया है, जिन भावों से परिचालित होकर गोसाईं तुलसीदास ने रामचरित-मानस और श्री सूरदासजी ने सूरसागर की रचना की। दयानन्द-प्रकाश यद्यपि पद्यात्मक नहीं है, परन्तु उसके गद्यकाव्य होने में कोई सन्देह भी नहीं है। दयानन्द-प्रकाश की भक्तिभावपूर्ण, सरस, मधुर और ललित भाषा को पढ़कर कौन सहृदय पाठक होगा जिसका सिर दयानन्द के चरणों में न झुक जाए, जिसका हृदय भक्ति और श्रद्धा के प्रवाह से प्लावित न हो जाए। दयानन्द-प्रकाश में ऋषि के चरित्र-चित्रण में एक उच्च कोटि के चित्रकार के कलानैपुण्य का परिचय मिलता है। जगह-जगह महाराज की भव्य और विशाल मूर्त्ति का ऐसा सुन्दर वर्णन है कि उनका चित्र आँखों के सामने आकर विराजमान हो जाता है, जिसे पाठक सब कुछ भूलकर उसकी ओर एकटक दृष्टि लगाकर मुग्ध हो जाता है। स्वामी सत्यानन्दजी ने चुन-चुनकर ऐसी घटनाओं का अपने निराले ढङ्ग में वर्णन किया है जिनसे महाराज की योग की विभूतियों का प्रमाण मिलता है, कुछ ऐसी घटनाएँ भी हैं जिनका पता न देवेन्द्रबाबू की संगृहीत सामग्री में है और न पण्डित लेखराम के ग्रन्थ में, अतः मैंने यह उचित समझा है कि इस पुस्तक में उन घटनाओं का भी संनिवेश कर दिया जाए।

मैंने उपर्य्युक्त दोनों ग्रन्थों से सहायता लेने में तनिक भी संकोच नहीं किया है। मैं इस सहायता के लिए हृदय से कृतज्ञ हूँ। यह पुस्तक एक प्रकार से उक्त दोनों ग्रन्थों और देवेन्द्रबाबू की संगृहीत सामग्री का सारसंग्रहमात्र है। इसमें मेरा कुछ नहीं है। मैंने ऐसा यत्न किया है कि इस क्षेत्र में जिन महानुभावों ने कार्य्य किया है, उनके परिश्रम का फल पाठकों को एक जगह ही हस्तगत हो जाए, परन्तु ऐसा न होने पर भी यह न समझना चाहिए कि यह ग्रन्थ उक्त दोनों ग्रन्थों के पद पर आरूढ़ हो गया है।

ऐसी दशा में मेरे लिए यह असम्भव हो गया कि मैं प्रत्येक स्थल पर पण्डित लेखराम के ग्रन्थ अथवा दयानन्द-प्रकाश का नामोल्लेख करूँ। ऐसा न कर सकने से एक त्रुटि अवश्य आगई है। वह यह है कि पाठकों को सहसा यह पता नहीं लग सकता कि ग्रन्थ मं कितना भाग केवल देवेन्द्रबाबू की सामग्री का है और कितना उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों का, परन्तु ऐसा होना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनिवार्य ही था। दयानन्द-प्रकाश का भी बहुत थोड़ा अंश है जो केवल स्वामी सत्यानन्दजी के अनुसन्धान का परिणाम है, उसका अधिकतर भाग भी पण्डित लेखराम के ग्रन्थ और देवेन्द्रबाबू की संगृहीत सामग्री पर अवलम्बित है, परन्तु ग्रन्थ के पाठ से यह पता नहीं लगता कि अमुक स्थल अमुक ग्रन्थ से लिया गया है। इस पुस्तक को उपर्य्युक्त दोनों ग्रन्थों से मिलाकर पढ़ने से ही यह ज्ञात हो सकता है कि ग्रन्थ में केवल देवेन्द्रबाबू की खोज की हुई कितनी घटनाएँ हैं। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भूमिका, पहले चार अध्याय और पितृनाम और जन्मस्थान का निर्णय परिशिष्ट संख्या १ देवेन्द्रबाबू का लिखा हुआ है, परन्तु उक्त परिशिष्ट को मैंने संक्षिप्त कर दिया है। गुजरात, काठियावाड़, बङ्गाल की यात्रा का वर्णन भी उन्हीं का है। मुग़लसराय की यात्रा का उल्लेख किसी अन्य ग्रन्थ में देखने में नहीं आया। जोधपुर, आबू, अजमेर का वर्णन उन्हीं की लेखनी का है। आर्य्यजगत् में यह विश्वास फैला हुआ है कि आर्य्यसमाज मुम्बई ही सबसे पहला आर्य्यसमाज है। वास्तव में सबसे पहला आर्य्यसमाज राजकोट में स्थापित हुआ था, जो कुछ दिन चलकर टूट गया था।

दूसरा मिथ्या विश्वास यह फैला है कि महाराज को विष जगन्नाथ रसोइये ने दिया था और उसने अपना दुष्कर्म स्वीकार भी कर लिया था। इसपर भी उन्होंने अपनी परम दयालुता से उसे कुछ रुपया देकर जोधपुर से भगा दिया।

यह सर्वथा निराधार है। उनके पास किसी जगन्नाथ रसोइये के होने का पता ही नहीं चला। इसी प्रकार देवेन्द्रबाबू ने कितने भ्रमों का संशोधन किया है। मैंने यह यत्न किया है कि जहाँ तक हो, देवेन्द्रबाबू के ही शब्द रक्खे जाएँ। जहाँ कहीं विशेषरूप से अपनी सम्मति प्रकट करना आवश्यक समझा है, वहाँ अपने नाम का उल्लेख कर दिया है। मैंने घटनाएँ पण्डित लेखराम के ग्रन्थ से भी ली हैं और दयानन्द-प्रकाश से भी, परन्तु बहुसंख्यक होने के कारण उनके विषय में यह नोट नहीं कर सका हूँ कि अमुक ग्रन्थ से ली गई हैं; हाँ जहाँ तक किसी घटना के विषय में कोई विशेष आलोचना की आवश्यकता हुई है, वहाँ यह नोट कर भी दिया है।

फ़र्रुखाबाद सम्बन्धी घटनाएँ 'फ़र्रुखाबाद का इतिहास' नामक ग्रन्थ से मिलान करके लिखी गई हैं। यह ग्रन्थ हाल में ही आर्य्यसमाज फ़र्रुखाबाद की ओर से प्रकाशित हुआ है।

उक्त ग्रन्थ से मुझे बहुत सहायता मिली है, जिसे मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।

ऋषि के पत्रों का संग्रह जो पण्डित भगवद्दत्तजी रिसर्चस्कालर आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहोर ने प्रकाशित किया है और स्वामी दयानन्द का पत्रव्यवहार जो महात्मा मुंशीराम ने प्रकाशित किया था, बड़े उपयोगी हैं। उनसे भी यत्र-तत्र सहायता ली गई है, जिसे मैं धन्यवादपूर्वक स्वीकार करता हूँ।

मैंने कोई विस्तृत भूमिका लिखने की आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि प्रथम तो देवेन्द्रबाबू की ही भूमिका पर्याप्त है, दूसरे इस ग्रन्थ का यह तात्पर्य नहीं है कि मैं यह प्रकट करूँ कि ऋषि कैसे मनुष्य थे, वे कैसे विद्वान् थे, उनकी धर्म्मनिष्ठा, ईश्वर-विश्वास, वेदपरायणता, सत्यपरायणता, कर्मठता, योगदक्षता, तार्किकता, निर्भीकता, सहिष्णुता, दयालुता, सरलता, निष्कपटता, वाग्मिता आदि कैसी थीं, अन्य धर्मावलम्बियों के साथ उनका कैसा बर्त्ताव था, उनका ब्रह्मचर्य्य बल, तेज, पुरुषार्थ कैसा था। उनकी महत्त्वपूर्ण सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विषयों पर क्या सम्मति थी? उनके गुणों को उनके जीवन की अनेक घटनाएँ सुस्पष्टतया प्रकट करती हैं, जिन्हें किसी ग्रन्थकार को बताने की आवश्यकता नहीं है, घटनाएँ स्वयं बोलती हैं। इस ग्रन्थ का अभिप्राय ऋषिचरित्र को उसके प्रकृत स्वरूप में जनता के सम्मुख रखना है। यदि यह अभिप्राय इससे सिद्ध होता है तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। इसके निर्णायक पाठक ही हो सकते हैं। मेरे कहने से कुछ नहीं बन सकता। इस ग्रन्थ में यदि कुछ गुण हैं तो उनका श्रेय अन्यों को ही है। मैं जानता हूँ कि पाठकों को अनेक त्रुटियाँ मिलेंगी, उनका उत्तरदाता मैं और केवल मैं हूँ।

मेरठ,
३०.६.१६३३

घासीराम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राक्कथन

जैसे एक नदी की सृष्टि नाना दिग्देशागत जलधाराओं के समवाय से होती है, वैसे ही मनुष्य-जीवन की सृष्टि भी नाना व्यक्ति और प्रभाव-समूह के समवाय से होती है। जिन्होंने ऊँचे पर्वत पर खड़े होकर किसी नदीविशेष के उत्पत्ति-स्थान को देखा है, वे जानते हैं कि कितने छोटे-बड़े स्रोत भिन्न-भिन्न दिशाओं से आकर आपस में मिलकर नदी की उत्पत्ति करते हैं। मनुष्य-जीवन भी ठीक इसी प्रकार से उत्पन्न होता है। किसी एक मनुष्य के जीवन की पर्य्यालोचना करने से मालूम होगा कि उसमें अनेक प्रभावों का सम्मिलन हुआ है। यदि विचार करके देखा जाए कि मैं कौन हूँ और मेरे अहंभाव का विश्लेषण किया जाए और देखा जाए कि मेरा संगठन किस उपादान से हुआ है, मैं किस-किस शक्ति के समवाय से सृष्ट हुआ हूँ, मेरे "मैं" में मेरा कितना निजू भाग और कितना दूसरों का है तो ज्ञात होगा कि उसमें अनेक छोटे-बड़े प्रभावों का समवाय है। प्रथम पूर्वजन्मार्जित संस्कार, दूसरे पितृ-शक्ति, तीसरे मातृ-शक्ति, चौथे परिवेष्टनीय शक्ति, पाँचवें शिक्षा-शक्ति। इन्हीं प्रधान-प्रधान पाँचों शक्तियों के स्रोतों के समवाय से मनुष्य की जीवन-नदी बनती है। इनके अतिरिक्त सूक्ष्मभाव से देखने से उसमें और भी छोटी-बड़ी शक्तियों का समवाय देखने में आता है। प्रागुक्त परिवेष्टनीय शक्ति के साथ जन्म-गृह, जन्म-स्थान और जन्म-पल्ली का घनिष्ट सम्बन्ध है।

परिवेष्टनीय शक्ति उसे कहते हैं जिससे मनुष्य अहरहः घिरा रहता है। उसके भीतर मनुष्य के चतुर्दिग्वर्ती चेतन, अचेतन, और उद्भिजादि समस्त पदार्थभूत की शक्ति परिगणित होती है। हमने जिस घर में जन्म लिया, उसके चतुर्दिक्स्थ जो कुछ भी है, वह सब हमारे मन पर अपने प्रभाव का विस्तार करता है। जिस ग्राम में हमने जन्म लिया है, उसमें जो कुछ भी है, वह हमारे मन को संगठित करने में सहायता करता है। जिस स्थान वा जिस ग्राम में हम भूमिष्ठ हुए हैं उसके वृक्ष, लता, नदी, सरोवर, क्षेत्र, जङ्गल, वनभूमि, शिलास्तूप, सब पदार्थ ही हमारे मनोराज्य को विकसित करते हैं। यह एक विवादरहित सत्य है कि मनुष्य का अध्यात्म जगत् जिस प्रकार बाह्यजगत् के ऊपर कार्य करता है, बाह्यजगत् भी उसी प्रकार अध्यात्म जगत् के ऊपर अहरहः अपना प्रभाव विस्तार करता है। नदी की कल्लोल, सागर-वक्ष का प्रकम्प, अत्युच्च शैल की गम्भीरता, विस्तीर्ण मरु प्रान्तर की भीषणता, मेघमाला की घन-गभीर नीलिमा, निबिड़ वनभूमि की अपरिच्छिन्न निःस्तब्धता—सभी मनुष्य की चित्तवृत्ति का संगठन करती हैं। यही मनस्तत्त्व पण्डितों ने स्थिर किया है। इसलिए हम कहते हैं कि जो लोग संसार में महाजन नाम से विख्यात हैं, जो महान् मन और विशाल मति पाकर धरित्री की पृष्ठ पर आविर्भूत हुए हैं, प्रायः वे सभी प्रकृति की सुन्दरतर महिमा वा रुद्रतरभाव के क्रोड़ में लालित, पालित और परिवर्धित हुए हैं।

अस्तु! अगण्य-सुगण्य, पण्डित-मूर्ख, प्रातःस्मरणीय-परिवर्जनीय, भिखारी-प्रासादवासी, किसी भी मनुष्य को समझने का यदि यत्न किया जाए, अथवा मनुष्य के जीवन को यदि यथार्थ रूप से चित्रित करके देखा जाए तो यह जानना आवश्यक है कि उसके भीतर परिवेष्टनीय शक्ति ने कितना कार्य्य किया है। विशेषतः जो महापुरुष हैं, जिनके आविर्भाव से धरित्री पवित्र हुई है, जिनके प्रभाव से जन-समाज की गति पलटी है, वस्तुतः जो मनुष्य-समाज के प्राण और मेरु-दण्डस्वरूप हैं, उनके चरित्र के वर्णन में उनकी जन्म-भूमि का वर्णन अपरिहार्यरूप से आवश्यक है।

जिन्होंने इस पापपरिपुष्ट युग में जन्म लेकर जीवनभर निष्कण्टक ब्रह्मचर्य का पालन किया, जो विद्या में, वाक्पटुता में, तार्किकता में, शास्त्रदर्शिता में, भारतीय आचार्यमण्डली के बीच में शङ्कराचार्य के ठीक परवर्त्ती आसन पर आरूढ़ होने के सर्वथा योग्य थे, वेदनिष्ठा में, वेद-व्याख्या में, वेद ज्ञान की गम्भीरता में जिनका नाम व्यासादि महर्षिगण के ठीक नीचे लिखे जाने योग्य था, जो अपने को हिन्दुओं के आदर्श-सुधारक पद पर प्रतिष्ठित कर गये हैं और इस मृतप्राय आर्यजाति को जागरित करके उठाने के उद्देश्य से मृतसञ्जीविनी औषध के भाण्ड को हाथ में लेकर जिन्होंने भरतखण्ड में चतुर्दिक् परिभ्रमण किया था, दुःख का विषय है कि उनका चरित्र और उनकी जन्म-भूमि का प्रसङ्ग आज तक भी अप्रकाशित है। वह भारत-दिवाकर दयानन्द कहाँ जन्मा था, यह आज तक भी कोई नहीं जानता। आज प्रायः ३३ वर्ष§ स्वामी दयानन्द सरस्वती को स्वर्गारोहण किये हो गये और जिस आर्यसमाज को उन्होंने इस उद्देश्य से स्थापित किया कि उनके उपदेशों का संसार में प्रचार करे, उसकी आयु भी प्रायः ४० वर्ष§ हो गई, परन्तु उसने स्वामीजी के जन्म स्थानादि को जानने के विषय में कोई विशेष यत्न नहीं किया। यद्यपि दयानन्द के जीवन-चरित के सम्बन्ध में कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु उनमें किसी में भी उनकी जन्मभूमि की कथा निश्चितरूप से नहीं लिखी गई। इसलिए दयानन्द के जितने जीवन-चरित उपस्थित हैं, वे सब

§ यह स्व० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने सन १९१६ में लिखा था। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपूर्ण और अङ्गहीन हैं। इसलिए आवश्यक है कि उनकी जन्मभूमि के विषय में पूरा अनुसन्धान और अन्वेषण किया जाए। इस कार्य को करने का हमने बीड़ा उठाया और हर्ष का विषय है कि असीम प्रयत्न और अनथक परिश्रम के पश्चात् हम अपने सङ्कल्प को पूरा करने में कृतकार्य हुए हैं।

सत्य की खोज के लिए अनुसन्धान के अविश्रान्त स्रोत का प्रवाहित रहना, गवेषणा के आलोक का प्रदीप्त रहना और जहाँ तक हो सके, उसे ले-जाए जाना सत्य के निर्णय के लिए गवेषणा का पुनः-पुनः परिचालन करना आवश्यक है, इसी प्रकार घटनाविशेष को लोगों के सामने उज्ज्वल रूप में रखने के लिए और उसे दृढ़तर भित्ति पर प्रतिष्ठित करने के लिए अनुसन्धान कार्य में बार-बार व्यापृत होना भी अपरिहार्य है। जब तक किसी विषय वा घटना पर नानादिक् से आलोकपात नहीं किया जाता, तब तक वह स्फुटतर और उज्ज्वलतर नहीं हो सकती; जब तक अनेक प्रमाणों को प्रस्तुत नहीं किया जाता, तब तक वह दृढ़तर भूमि के ऊपर स्थापित नहीं हो सकती और यह निर्विवाद है कि नानादिक् से आलोकपात करना और अनेक प्रमाणों का संग्रह करना कष्टसाध्य है।

अतः जो कष्ट हमने सहे, जो धन और समय हमने व्यय किया, उसपर हमें तनिक भी पश्चात्ताप नहीं, क्योंकि दयानन्द के जीवन-चरित का महान् विषय बिना इसके लिखना असम्भव था और उसका लिखना देश के कल्याण के लिए आवश्यक था।

—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

भूमिका

हमसे हमारे बन्धुवर्ग बार-बार यह प्रश्न करते हैं कि तुम यह क्या कर रहे हो ? मनुष्य पृथिवी पर जन्म लेकर जो काम करते हैं, जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तुम उनमें से कोई काम भी नहीं करते ? तुमने अपने जीवन का इतना समय केवल 'दयानन्द, दयानन्द' की रट लगाकर गँवाया है। जीवन के जिस अंश को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है तुमने उसे 'दयानन्द, दयानन्द' कहके ही बिताया है।

बन्धुवर्ग का यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल भी नहीं है, क्योंकि गत १५ वर्ष§ के अधिक भाग को हमने दयानन्द-सम्बन्धी कार्य में ही लगाया है। दयानन्द सरस्वती की जीवन-कथा के कीर्त्तन करने, दयानन्द के एक सर्वाङ्ग-सुन्दर जीवन-चरित के प्रकाशित करने के अभिप्राय से सामग्री और विवरण-माला के संग्रह करने में पूरे १५ वर्ष न भी लगे हों, पर इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि १० वर्ष तो अवश्य ही लगे हैं।

सहस्रों रुपयों की प्राप्ति के लिए मनुष्य जितना उत्साह और परिश्रम करता है, हमने उतना उत्साह और परिश्रम दयानन्द के जीवन की एक-एक घटना का पता लगाने में व्यय कर दिया है। एक घटना की सत्यता का निश्चय करने के लिए हम अनेक बार एक ही स्थान में गये हैं। जिस समय भी यह सुना की अमुक स्थान पर अमुक व्यक्ति के पास जाने से दयानन्द-चरित की अमुक घटना का ठीक-ठीक पता लग सगता है, हम उसी समय टिकट लेकर सैकड़ों मील की यात्रा करके उस स्थान पर पहुँचे हैं। हमारी यह दशा रही है कि यदि आज हम अजमेर हैं, तो दस दिन पीछे जामनगर हैं, एक मास पीछे मुम्बई हैं तो कुछ दिन पीछे अमृतसर हैं, और दो मास पीछे मध्य भारत के इन्दौर नगर में हैं; कभी महाराष्ट्र देश में कोल्हापुर में हैं तो कभी संयुक्तप्रान्त में गङ्गा के तटवर्त्ती ग्राम वर्णवास में। इसी प्रकार इस विशाल भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में (केवल मद्रास प्रान्त को छोड़कर) बरसों पर्यटन किया है। न हमने जाड़े की परवाह की है न गर्मी की, न शरीर के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया, न अस्वास्थ्य की ओर। कभी-कभी हम धनाभाव के कारण अस्थिर तक हो गये, परन्तु हमने अपने व्रत को नहीं तोड़ा। प्रवास के कष्ट-क्लेश को भी हर प्रकार सहन किया। जो व्रत हमने धारण किया था उससे हमें किसी वस्तु ने एक दिन के लिए भी विचलित नहीं किया, न प्रबल धनाभाव ने, न अनेक प्रकार की बाधाओं ने और न ही प्रवास की असुविधाओं से उत्पन्न हुए सामयिक नैराश्य ने, परन्तु प्रश्न यह है कि इन कठिनाइयों ने हमें विचलित क्यों नहीं किया ? दयानन्द कौन है ? उसकी शिक्षा में ऐसी कौन-सी अलौकिक शक्ति है, उसके उपदेशों में ऐसा कौन-सा संजीवन मन्त्र छिपा हुआ है, जिसके कारण हम उसके जीवन-इतिहास के लिए क्लेश-पर-क्लेश सहते आये हैं ? दयानन्द के चरित के प्रकाशन के साथ भारत भूमि का ऐसा कौन-सा हिताहित सम्बद्ध है जिसके कारण हमने सैकड़ों प्रतिकूलताओं के बीच में अपने आपको अटल रक्खा है ? दयानन्द की शिक्षा व उदाहरण के साथ बङ्गवासियों का, बल्कि भारतवासियों का और इससे भी अधिक पृथिवीभर के रहनेवालों का ऐसा कौन-सा कल्याण अनुस्यूत है जिसके कारण हमने अपने आपको इस भीष्मप्रतिज्ञा में बाँधा है ? —इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देना आवश्यक है। इसलिए हम अपने लेख को कुछ खोलकर लिखने का यत्न करेंगे।

१. दयानन्द—आर्षज्ञान का प्रचारक

पाठक ! क्या तुमने पृथिवी पर रहनेवाली इस समय की मनुष्यजाति की अवस्था को विचार कर देखा है ? क्या सारी पृथिवी इस समय घोर अशान्ति से म्रियमाण दशा को प्राप्त नहीं हो रही है ? क्या नाना जाति, नाना जनपद, नाना राज्य, नाना देश अनेक प्रकार की अशान्ति की अग्नि से जलकर छार-खार नहीं हो रहे हैं ? क्या मनुष्य-संसार से शान्ति बिदा नहीं हो गई है ? हम पूछते हैं कि कभी पहले शिक्षा और विज्ञान के नाम पर संसार में इतने उपद्रव, इतनी अशान्ति, इतने अस्वास्थ्य का विस्तार किया गया है ? क्या कभी सभ्यता के नाम पर मनुष्यों ने इतने मनुष्यों के शिर काटे हैं ? क्या कभी उन्नति की पताका हाथ में लेकर मनुष्य ने वसुन्धरा को नर-रक्त से इतना रँगा है ? यदि पहले ऐसा कभी नहीं हुआ तो आज क्यों हो रहा है ? हम उत्तर देते हैं कि इसका कारण है अनार्ष शिक्षा और अनार्ष ज्ञान का विस्तार ! इसका कारण है यूरोप का पृथिवीव्यापी प्रभाव और प्रतिष्ठा !

---

§ देवेन्द्रबाबू ने यह भूमिका सन् १९१६ में लिखी थी। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहाँ यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि यूरोप अनार्ष ज्ञान का गुरु और प्रचारक है। जो यूरोप अनार्ष ज्ञान का प्रचारक है वही यूरोप आज ससागर वसुन्धरा का अधीश्वर है। छोटी-बड़ी, सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, नाना जातियों और जनपदों में उसी यूरोप की शासन-पद्धति प्रतिष्ठित और प्रचलित है। इसलिए जो जाति वा राज्य यूरोप के शासन वा संसर्ग में आ जाता है, उसमें अनार्षज्ञान का प्रचार और प्रतिष्ठा हो जाती है। इसी कारण से उस जाति वा राज्य के भीतर अनेक प्रकार की अशान्ति की अग्नि धक्-धक् करके जल उठती है।

यूरोप ! तूने प्रधानतः दो शिक्षाओं का सहारा लिया है, तूने विशेषतः दो सिद्धान्तों पर अपनी समाज-प्रणाली और सभ्यता के जीवन की स्थिति और उन्नति स्थापित की है। इनमें से पहला है—क्रमोन्नति (Evolution) और दूसरा है, योग्यतम की जय (Survival of the Fittest) इन दोनों सिद्धान्तों के द्वारा तूने संसार का जो अनिष्ट किया है हम उसे कहना नहीं चाहते। "योग्यतम की जय" का नाम लेकर तू सहज में ही दुर्बल के मुँह से भोजन का ग्रास निकाल लेता है, सैकड़ों मनुष्यों को अन्न से वञ्चित कर देता है, एक-एक करके सारी जाति को निगृहीत, निपीड़ित और निःसहाय कर देता है। जब तू बिजली के प्रकाश से प्रकाशित कमरे में संगमर्मर से मण्डित मेज़ के चारों ओर अर्धनग्ना सुन्दरियों को लेकर बैठता है उस समय यदि तेरे भोजन, सुख और सम्भाषण के लिए दस मनुष्यों के सिर काटने की भी आवश्यकता हो तो अनायास ही तू उन्हें काट डालेगा, क्योंकि तेरी तो शिक्षा यही है कि योग्यतम की जय होती है। यूरोप ! आसुरीय वा अनार्ष-शिक्षा तेरे रोम-रोम में भरी हुई है। अपनी अतर्पणीय धन-लालसा को पूरी करने के लिए तू एक मनुष्य नहीं, दस मनुष्य नहीं, सौ मनुष्य नहीं, बल्कि बड़ी-से-बड़ी जाति को भी विध्वस्त कर डालता है। अपनी दुर्निवार्य भोग-तृष्णा की तृप्ति के लिए तू केवल मनुष्य ही को नहीं, वरन् पशु-पक्षी और स्थावर-जङ्गम तक को अस्थिर और अधीर कर डालता है। अपनी भोगविलास-पिपासा की तृप्ति के लिए तू लखूखा मनुष्यों के सुख और स्वतन्त्रता को सहज में ही हरण कर लेता है। तेरे कारण पृथिवी सदा ही अस्थिर और कम्पायमान रहती है।

यूरोप ! तेरे पदार्पण मात्रा से ही शान्तिदेवी मुँह छिपाकर पलायमान हो जाती है। भू-मण्डल के जिस स्थल में तेरे क़दम जाते हैं, जिस राज पर अधिकार हो जाता है, वह स्थल और वह राज्य सुखशून्य और शान्तिशून्य हो जाता है। जिस स्थान पर तू अपनी जय-पताका फहराता है उस स्थान में सौ प्रकार की विशृङ्खलता आकर उपस्थित हो जाती है। जिस देश में तेरे शिक्षा-मन्दिर का द्वार खुलता है, तू उस देश को वञ्चना, प्रतारणा, कपट और मुक़द्दमेबाजी के जाल में फाँस लेता है। जिस-जिस स्थान में तेरे धूमरथ (रेल) का नाद प्रतिध्वनित होता है, वहाँ दुर्भिक्ष और अनावृष्टि पिशाचिनी के डेरे लग जाते हैं। जिस भूमि में तेरे नहरों की जलधारा बहती है उस भूमि में नाना प्रकार की आधि-व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिस जनपद को तेरे कारखानों की चिमनियों से निकला हुआ धुँआ आच्छादित करता है वह जनपद भोगेच्छा का आकार बन जाता है, इससे अधिक हम क्या कहें।

यूरोप ! तूने संसार का जितना अनिष्ट और अकल्याण किया है, मनुष्य का जितना अहित सम्पादन किया, उसमें सबसे बड़ा अनिष्ट और अकल्याण यही है कि तूने मनुष्य-जीवन की प्रगति को उल्टा करने का प्रयत्न किया है। जिस मनुष्य ने निरन्तर मुक्तिरूप शान्ति पाने के उद्देश्य से जन्म लिया था, उसे तूने धन का दास और दुर्निवार्य भोगेच्छा का क्रीत किङ्कर बनने के लिए शिक्षित और दीक्षित कर दिया है। तेरी शिक्षा का उद्देश्य इसी सिद्धान्त का नाना भाव और नाना प्रकार से प्रचार और विस्तार करना है कि धन सञ्चय करना ही मनुष्य-जीवन में सबसे अधिक वाञ्छनीय है। तू भोगमय और भोग-सर्वस्व है। जो वृत्ति मनुष्य-समाज में प्रथम वा प्रधान पर आरूढ़ थी उसे तूने सबसे नीचे स्थान पर रखने का निर्देश किया है और जो वृत्ति सबसे नीचे स्थान पर थी उसे तूने प्रथम प्रधानपद पर आरूढ़ कर दिया है। तूने ब्रह्मवृत्ति का अपमान किया और उसे नीचे गिरा दिया है और वैश्यवृत्ति का सम्मान किया और उसे सबसे ऊँचा आसन दिया है। इसकी अपेक्षा और किस बात से मनुष्य का अधिकतर अनिष्ट साधन हो सकता है ? यद्यपि तूने जहाँ-तहाँ दो चार अनाथालय और रोगी-आश्रम स्थापित करके दया, दाक्षिण्य और परहित-परायणता का भी परिचय दिया है, परन्तु यह ऐसा ही है जैसे कोई पहले गौ का वध करके पीछे दान-दक्षिणा की व्यवस्था करे, क्योंकि तूने अनेक मनुष्यों का विध्वंस कर डाला है, सैकड़ों-सहस्रों नर-नारियों के हाथ में एकदम भीख का प्याला दे दिया है, जो स्थान शान्ति और आनन्द के निकेतन थे, उन्हें श्मशान बना दिया है।

जबकि यूरोप अनार्ष ज्ञान का गुरु वा प्रचारक है, तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है कि उसके प्रभाव से संसार का घोरतर अकल्याण सम्पादित होगा और मनुष्य-समाज में नित्य नूतन अशान्ति की अग्नि प्रज्वलित होकर सबको

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भस्मसात् कर डालेगी। इसमें तनिक भी संशय नहीं हो सकता कि ऋषि-प्रणीत शिक्षा और ऋषि-प्रचारित ज्ञान ही मनुष्य की शान्ति का एकमात्र हेतु है।

यूरोप ने जिन गुरुओं से मन्त्र लिया है वे तत्त्ववित् वा तत्त्वदर्शी नहीं थे। बेन (Bain) और बेन्थम (Bentham), पेन (Payne) और स्पेन्सर (Spencer), कुन्त (Compte) और काण्ट (Kant) अथवा प्लैटो (Plato) और पिथागोरस (Pythagoras), ज्ञान-पर्वत पर बहुत ऊँचे तो चढ़ गये थे और उन्होंने अनेक तत्त्वों का अनुशीलन कर बहुत-सी जटिल समस्याओं की मीमांसा भी की थी, परन्तु वे केवल तत्त्वों की खोज करनेवाले ही रहे, वे किसी वस्तु के प्रकृत स्वरूप वा विषयविशेष के यथार्थ तत्त्व का निश्चय करने में समर्थ नहीं हुए। जो ऋषि-महर्षि आर्यभूमि को पवित्र कर गये हैं उनके सिवाय जगत् में और कोई तत्त्ववित् वा तत्त्वदर्शी पद का वाच्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि वे अविद्यान्धकार से मुक्ति पाने में समर्थ नहीं हुए थे। बेकन (Bacon) वा डार्विन (Darwin), हक्सले (Huxley) वा टिण्डल (Tyndall) ने अवश्यमेव विषयविशेष के प्रकृत तत्त्व के निश्चय करने में यथाशक्ति यत्न किया, परन्तु अविद्यान्धकार से विमुक्तचित्त नहीं हो सके। फिर वे कैसे यथार्थ तत्त्वावधारण में समर्थ हो सकते थे ? और उनकी शिक्षा से मनुष्य-समाज में किस प्रकार शान्ति स्थापित हो सकती है ? इसी कारण से यूरोप स्वयं अपनी अशान्ति की अग्नि में जल रहा है और इसलिए जो कोई जाति भी किसी-न-किसी प्रकार यूरोप के संसर्ग में आजाती है उसे भी अशान्ति की अग्नि से दग्धविदग्ध होना पड़ता है।

इस जगद्-व्यापिनी अशान्तिका प्रतीकार एकमात्र आर्षज्ञान के विस्तार पर निर्भर है। आर्षज्ञान का सूर्य सबसे पहले भारत-भूमि पर उदित हुआ था, परन्तु अब भारत-भूमि स्वयं सहस्रों वर्षों से आर्षज्ञान से वञ्चित हो रही है। इस दीर्घकाल में अन्य देशों में अनेक आचार्यों का अभ्युदय हुआ, अनेक महान् आत्माओं ने जन्म ग्रहण किया, अनेक चिकित्सकों ने आविर्भूत होकर मनुष्य-जाति की मानसिक व्याधियों के जाल को तोड़ने का यत्न किया, परन्तु उनमें से किसी ने भी आर्ष-ज्ञान को पुनरुद्दीपित करने का उद्योग नहीं किया। इन पाँच सहस्र से अधिक वर्षों में स्वयं आर्यभूमि में ही अनेक आचार्यों का आविर्भाव हुआ, परन्तु दुःख है कि उनमें से भी कोई विशेष रूप से ऋषि-महर्षि-प्रवर्त्तित ज्ञान के पुनरुद्धार में मनोयोगी नहीं हुआ। हम यह नहीं कहते कि शङ्कर, रामानुज वा माध्वाचार्य में से किसी ने भी ऋषि-सिद्धान्त के समर्थन में एक बात भी नहीं कही, परन्तु इतना अवश्य कहते हैं कि उन्होंने जितना परिश्रम अपने-अपने सम्प्रदायों के संगठन की पुष्टि में किया उतना आर्ष-ज्ञान के पुनरुद्धार में नहीं किया, अतः यह मानना पड़ता है कि इन पाँच सहस्र से अधिक वर्षों में पृथिवी आर्ष-ज्ञान के आलोक से शून्य ही रही है।

लगभग एक सौ वर्ष हुए होंगे कि यमुना के तट पर मथुरा में एक अन्धे संन्यासी ने इस बात का प्रचार किया कि आर्षज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, आर्षसिद्धान्त ही सर्वोत्तम सिद्धान्त है और आर्षशिक्षा ही मनुष्य के यथार्थ सुख और शान्ति का हेतु है और उसकी शिक्षा-दीक्षा और आदेश से गुजरात देश की एक ब्राह्मण-सन्तान ने ऋषि-प्रवर्त्तित ज्ञान को समस्त संसार में पुनरुद्दीपित करने में अपने जीवन की सम्पूर्ण शक्ति समर्पित की थी। पाठक ! हम समझते हैं कि हमें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस अन्धे संन्यासी का नाम दण्डी विरजानन्द और इस गुजराती ब्राह्मण का नाम दयानन्द सरस्वती था। हम पूछते हैं कि उन पाँच सहस्र वर्षों में दयानन्द सरस्वती के समान किस आर्ष-ज्ञान के पुनरुद्धारक ने जन्म लिया है ? दयानन्द के समान आर्ष-ज्ञान के किस अद्वितीय प्रचारक का वर्त्तमान समय में आविर्भाव हुआ है ? महर्षि कृष्णद्वैपायन के पीछे दयानन्द के समान अन्य कौन आचार्य आर्ष-ज्ञान में तन्मय हुआ है ? वेद आर्ष-ज्ञान का स्वरूप है। क्या दयानन्द के समान दूसरा वेदसर्वस्व वा वेदप्राण मनुष्य दिखाया जा सकता है ? पाठक ! शायद आप हमारी बातों पर अच्छे प्रकार ध्यान न देंगे। इसमें आपका अपराध नहीं है। "यथा राजा तथा प्रजा"—जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी हो जाती है। राजा अनार्षविद्या का प्रचारक है। राजकीय शिक्षा पाने और उसका अभ्यास करने से आपके मस्तिष्क की अवस्था अन्यथा हो गई है और इसलिए हमारे कथन की आपके कानों में समाने की सम्भावना नहीं हो सकती, परन्तु आप सुनें वा न सुनें, हम बिना किसी सन्देह और सङ्कोच के घोषणा करते हैं कि वर्त्तमान युग में दयानन्द ही एकमात्र वेदप्राण पुरुष और आर्ष-ज्ञान का अद्वितीय प्रचारक हुआ है। आर्ष-ज्ञान के विस्तार पर ही सारे विश्व की शान्ति निर्भर है, आर्ष-शिक्षा के साथ ही मनुष्य-समाज की सर्वप्रकार की शान्ति अनुस्यूत है। जैसे और जिस प्रकार यह सत्य है कि एक और एक दो होते हैं, वैसे ही और उसी प्रकार यह भी सत्य है कि आर्ष-ज्ञान ही मानवीय शान्ति का अनन्य हेतु है।

ऐसी अवस्था में क्या फिर भी यह कहने की आवश्यकता रह जाती है कि आर्ष-ज्ञान के अद्वितीय प्रचारक दयानन्द सरस्वती को समझने व समझाने का यत्न करना, उसे अच्छे प्रकार जानने व जनाने का प्रयास करना, उसके विषय में आलोचना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करना और कराने का प्रयत्न करना हर एक व्यक्ति का, जो मनुष्य-जाति का हितैषी हो, कर्त्तव्य है। मनुष्य ! यदि तू शान्ति का इच्छुक है तो तुझे आर्षज्ञान की महिमा समझनी होगी और आर्षज्ञान की महिमा समझने के लिए तुझे दयानन्द को भी समझना होगा। इस दृष्टि से दयानन्द सारे मनुष्यों का आलोचनीय है। वास्तव में दयानन्द ऐसा सर्व-कल्याणकर, सुमहत् और सार्वजनिक कार्य कर गया है कि उसका जीवन सर्वसाधारण की आलोचना का विषय होना ही चाहिए। जो ऋषिगण व्याकुल चित्त से "द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ः शान्तिः" आदि शब्दों से परमात्मा की प्रार्थना कर गये हैं उन्हीं मनुष्यकुल-पूज्य ऋषियों की शिक्षा, ज्ञान और उपदेश को संसार में प्रतिष्ठित करना दयानन्द ने अपने जीवन का अद्वितीय और एकमात्र लक्ष्य बनाया था। तब इसमें क्या सन्देह रह जाता है कि दयानन्द का जीवन सारी भूमि और सब मनुष्यों के साथ संसृष्ट है ? इसलिए जिस जीवन के साथ सार्वभौम और सार्वजनिक कल्याण इस प्रकार संलग्न है, उसके क्रमबद्ध इतिहास के लिखने में जो कठिनाइयाँ हमारे मार्ग में आई हैं, हम उन्हें क्लेश नहीं समझते। हम आशा करते हैं कि अब हमारे पाठक समझ गये होंगे कि उपर्युक्त हेतु दयानन्द की जीवनी प्रकाशित करने में हमारा पहला हेतु है।

२. दयानन्द—मूर्त्तिपूजा का शत्रु

पाठक ! क्या आप बता सकते हैं कि भारतवासी मनुष्यों की अवस्था ऐसी शोचनीय और ऐसी गिरी हुई कैसे हो गई है ? क्या आप बता सकते हैं कि हिन्दुओं का चरित ऐसा हीन और घृणित कैसे हो गया है ? क्या आप बता सकते हैं कि हिन्दू-जाति जगत् में ऐसी हेय और मलिन कैसे हो गई है ? हिन्दुओं की कोई बात भी ठीक नहीं है। हिन्दुओं में मनोबल नहीं है। हिन्दुओं के सामने घोर-से-घोर अत्याचार होता है, परन्तु उनके मुँह से उसके प्रतिकूल एक शब्द तक नहीं निकलता। उनकी आँखों के सामने प्रबल दुर्बल के मुख से ग्रास निकाल लेता है, परन्तु हिन्दुओं में उसके विरुद्ध अंगुली उठाने की भी सामर्थ्य नहीं होती। हिन्दुओं के घर में अन्न नहीं है। उनकी बुद्धि में फ़न-फ़रेब, जोड़-तोड़ के सिवाय कोई उच्चतर गुण नहीं है, उन्होंने अन्यों की भूमि पर, अन्यों के देश में जन्म लिया है और वे प्रवासी बनकर अपना सारा जीवन काटते हैं। चाटुकारिता में ही हिन्दुओं का पुरुषार्थ है। दूसरों के विद्या में पारदर्शिता प्राप्त करने में ही हिन्दुओं को अभिमान है, दूसरों के पैर चाटने में ही उनका गौरव है। पाठक ! बताइए हिन्दुओं को मनुष्योचित गुणों से किसने वञ्चित किया है ?

केवल यही बात नहीं है कि हिन्दू मनुष्योचित गुणों से वञ्चित होकर पशुतुल्य बन गये हैं, इनके चरित्र में तो वे गुण भी दृष्टिगोचर नहीं होते जो पशु, पक्षी आदि इतर जन्तुओं में दिखाई देते हैं। आप एक बन्दर को मारें तो देखेंगे कि तत्काल दस बन्दर इकट्ठे हो जाएँगे और यदि वह और कुछ भी न कर सकें तो कम-से-कम इतना तो अवश्य करेंगे कि आपके मकान की मुंडेर पर बैठकर घुड़की दिखाकर आपको डरावेंगे और काट खाने की चेष्टा करेंगे। आप एक कौए को मारें तो पचासों कौए आन-की-आन में इकट्ठे होकर आपको घेर लेंगे और काँय-काँय करके इतना शोर मचाएँगे कि आपका उस स्थान पर ठहरना दूभर कर देंगे, परन्तु यदि कोई किसी हिन्दू को मारे तो दस हिन्दू खड़े हुए उसके पिटने का तमाशा देखते रहेंगे, कई तो इस भय से कि कहीं गवाही देनी न पड़ जाए और कई डर के मारे वहाँ से धीरे-धीरे खिसक जाएँगे। ओह ! हिन्दू पशुओं से भी नीचे गिर गये हैं। क्षुद्र चींटी में भी आत्म-सम्मान की रक्षा का भाव देखने में आता है, परन्तु हिन्दुओं के चरित्र में यह भाव भी दिखाई नहीं देता। आपके पैर के नीचे आजाने पर चींटी भी काटने की चेष्टा करती है, बिल्ली तक भी बार-बार ताड़ित की जाने पर अपने नख-दाँतों द्वारा आघात पहुँचाने का यत्न करती है, परन्तु हिन्दुओं के आत्म-सम्मान की कोई कितनी ही क्षति करे, उनमें प्रतिकार की चेष्टा उत्पन्न नहीं होती, वे सर्वथा निर्वाक् और निश्चेष्ट रहते हैं। क्या इससे भी नीचे पतन हो सकता है ?

पाठको ! हिन्दुओं के चरित्र में यह अमानुषत्व, पशुत्व और कल्पनातीत नीचत्व कैसे आया और कौन लाया ? हिन्दुओं को पशुओं से भी अधम किसने बनाया ? इन प्रश्नों का एकमात्र उत्तर है—मूर्त्तिपूजा।

शायद हमारे उत्तर से सन्तोष न हो, और यह कहा जाए कि मूर्त्तिपूजा ही सब दोषों की खान नहीं हो सकती। जब रूम ने गर्व से अपना मस्तक उँचा उठाकर जगत् में अपने आधिपत्य का विस्तार किया था तब वह भी मूर्त्तिपूजक था, जब यूनान ने अपनी गौरवछटा से चारों दिशाओं को आलोकित किया था तब वह भी मूर्त्ति-पूजक था, जिस समय मिस्र उन्नति के उच्चतम सोपान पर आरूढ़ था उस समय कोई इतर जन्तु ऐसा नहीं था जिसकी मिस्र की मन्दिर में आराधना न होती हो। तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि मूर्त्तिपूजा दूषणीय है ? परन्तु इस बात को सूक्ष्मभाव से समझने की आवश्यकता है। रोम, यूनान और मिस्र की मूर्त्तिपूजा में और भारतवर्ष की मूर्त्तिपूजा में प्रकृतिगत और प्रकारगत भेद है। भारतवासियों ने अपनी इच्छा और अभिरुचिमात्र से अनेक ईश्वरों की सृष्टि की है। हिन्दुओं ने अपनी कल्पना मात्र से अनेक परमेश्वरों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को गढ़ लिया है। जिस परमात्मा का वेदादि शास्त्रों में अकाय, अव्रण, अशब्द, अस्पर्श आदि शब्दों से कीर्त्तन किया गया है उस परमात्मा में हिन्दू काम, क्रोध, भय, क्षुधा, तृष्णा, व्याधि, आलस्य, निद्रा, विपत्, पुत्रोत्पादन, विद्वेष, हिंसा, कलह, स्वजनद्रोह, पर-स्त्रीगमन प्रभृति का आरोप करने में अणुमात्र भी सङ्कोच और पाप-बोध नहीं करते। हिन्दुओं ने इन स्वकल्पित और नव-निर्मित ईश्वरों में से प्रत्येक की नाना प्रकार के उपकरणों के द्वारा पूजा-अर्चना करने और उस पूजाप्रणाली को चिरकाल तक स्थायी रखने के उद्देश्य से एक-एक पुराण और उपपुराण की रचना भी कर डाली है। यह निर्भ्रान्तरूप से कहा जा सकता है कि अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार नित्य नूतन ईश्वरों की सृष्टि करने की प्रवृत्ति में हिन्दुओं ने अपनी मृत्यु का बीज स्थापित कर दिया है। इसके कारण हिन्दू उत्सन्नता के मार्ग पर जा रहे हैं, इसीलिए आज हिन्दू मरणासन्न की शय्या पर खड़े हुए हैं। यही हिन्दुओं की अवनति का प्रधान कारण है, यही भारत के सर्वनाश का प्रधानतर हेतु है। मूर्त्तिपूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्र की है उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। मूर्त्तिपूजा ने भारतवासियों का जो अनिष्ट किया है उसे प्रकट करने में हमारी अपूर्ण-विकसित भावप्रकाशक-शक्ति अशक्त है। जो धर्म सम्पूर्णभाव से आन्तरिक वा आध्यात्मिक था उसे सम्पूर्ण रूप से बाह्य किसने बनाया ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। कामादि शत्रुओं के दमन और वैराग्य के साधन के बदले तिलक और त्रिपुण्ड्र किसने धारण कराया ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। ईश्वरभक्ति, ईश्वरप्रीति, परोपकार और स्वार्थत्याग के बदले अङ्ग में गोपीचन्दन का लेपन, मुख से गङ्गालहरी का उच्चारण, कण्ठ में अनेक प्रकार की मालाओं का धारण किसने सिखाया ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। संयम, शुद्धता, चित्त की एकाग्रता आदि के स्थान में त्रिसीमा (धारणा, ध्यान, समाधि) में प्रवेश न कर केवल दिनविशेष पर खाद्यविशेष का सेवन न करना; प्रातःकाल, मध्याह्न और सांयङ्काल में अलग-अलग वस्त्रों के पहनने का आयोजन और तिथिविशेष पर मनुष्यविशेष का मुख देखना तो दूर रहा उसकी छाया तक का स्पर्श न करना, यह सब किसने सिखाया ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। हिन्दुओं के चित्त से स्वाधीन-चिन्तन की शक्ति किसने हरण की ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। हिन्दुओं के मनोबल, वीर्य, उदारता और सत्साहस को किसने दूर किया ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। प्रेम, संवेदना और परदुःखानुभूति के बदले घोरतर स्वार्थपरता को हिन्दुओं के चरित्र में कौन लाई ?—**मूर्त्तिपूजा**। हिन्दुओं को अमानुष, अपितु पशुओं से भी अधम किसने बनाया ? **मूर्त्तिपूजा ने**। आर्यावर्त्त के सैकड़ों टुकड़े किसने किये ?—**मूर्त्तिपूजा ने**। आर्यजाति को सैकड़ों सम्प्रदायों में किसने बाँटा ? —**मूर्त्तिपूजा ने**। इस देश को सैकड़ों वर्षों से पराधीनता की लोहमयी शृङ्खला में किसने जकड़ रक्खा है ?—**मूर्त्तिपूजा ने**। कौन-सा अनर्थ है जो मूर्त्तिपूजा द्वारा सम्पादित नहीं हुआ ? सच्ची बात तो यह है कि आप चाहे हाईकोर्ट के न्यायाधीश हों, चाहे गवर्नर (लाट) साहब के प्रधानतर सचिव, आप बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य हों चाहे वाग्मिता में सिसरो (Cicero) और गेटे (Goethe) से भी बढ़कर, आप अपने देश में पूजित हों अथवा विदेश में, आपकी ख्याति का डङ्का बजा हो, आप सरकारी क़ानून को पढ़कर सब प्रकार से अकार्य और कुकार्य को आश्रय देनेवाले अटर्नी (Attorney) कुल के उज्ज्वलतम रत्न हों चाहे मिष्टभाषी, मिथ्योपजीवी सर्वप्रधान, स्मार्त्त (वकील); परन्तु यदि किसी अंश में भी आप मूर्त्तिपूजा का समर्थन करेंगे, तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी सङ्कोच नहीं होगा कि आप किसी अंश में भी भारतवर्ष के मित्र नहीं हो सकते, क्योंकि मूर्त्तिपूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है।

यदि मूर्त्तिपूजा कोई विशाल जङ्गल होता तो हम उसे अग्नि से एक क्षण में जलाकर राख करने का यत्न करते। यदि मूर्त्तिपूजा कोई बहुत शाखा-प्रशाखाओंवाला बड़ा वृक्ष होता तो हमने उसे अब तक कभी का उखाड़कर भारत के सागर में फेंक दिया होता। यदि मूर्त्तिपूजा कोई दस्यु या दानव होता तो हमने उसका सिर काटने का प्राणपण से अबतक कभी का प्रण कर लिया होता, परन्तु खेद है कि मूर्त्तिपूजा इनमें से कुछ भी नहीं है। हिन्दुओं की मूर्त्तिपूजा ऐसे सूक्ष्मभाव से, ऐसी जटिल रीति से, ऐसे कौशल के साथ, ऐसे अनुभूतरूप से प्रत्येक स्थान और स्थल में ऐसे सन्निविष्ट है, ऐसे अदृश्यभाव से हिन्दुओं की शिक्षा, साहित्य, धर्म, कर्म, आचार-व्यवहार के साथ अनुस्यूत है, उसके साथ भारत के इतने असंख्य लोगों का स्वार्थ लगा हुआ है, उसके साथ देश के इतने विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों की जीविका बँधी हुई है कि हमारे अनुमान में वह कदाचित् ही इस देश से उन्मूलित हो सके। हमें भय है कि यह शत्रु जिसने भारत के रहनेवालों का सब प्रकार से अनिष्ट साधन किया है कभी भी प्राणों से वियुक्त न होगा। हमारे अनुमान में कॉन्स्टैनटाइन महान् (Coustantine, the great) के समान कोई वैदिक चक्रवर्त्ती राजा कभी भारत के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुआ तभी इसके सर्वाङ्गी विच्छेद की आशा की जा सकती है। जैसे उस महान् सम्राट् ने ईसाई धर्म को ग्रहण करके रोम-साम्राज्य के सारे मन्दिरों से जूनो (Juno), जूपिटर (Jupiter), वीनस (Venus) और बैकस (Bachhus) आदि की मूर्त्तियों को निकलवाकर फिंकवा दिया था और मन्दिरों को खाली कराकर उन्हें राजकीय कार्य में लाने की आज्ञा दे दी थी। ऐसे ही भारत में भी कभी कोई वैदिक राजा हुआ तो यह सम्भव हो सकता है कि मूर्त्तिपूजा का यहाँ से उच्छेद हो जाए, नहीं तो हम इसे किसी प्रकार भी दूर नहीं कर सकते। परन्तु इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवस्था में तो यह आशा दुराशामात्र है।

कहावत है कि न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी, इसलिए भारत में मूर्त्तिपूजा के उच्छेद का साधन न कभी उपस्थित होगा और न भारतभूमि उन्नति के उज्ज्वलतर आलोक से कभी सुशोभित हो सकेगी। हम दिव्य चक्षु से देख रहे हैं कि भारतभूमि को चिरकाल तक उसी अन्धकार से समाच्छन्न रहना होगा जिससे वह आज समाच्छन्न है, क्योंकि इस देश से मूर्त्तिपूजा के उठने की कोई सम्भावना नहीं है।

दयानन्द ने इस प्रबल शत्रु के विरुद्ध प्रचण्ड युद्ध का आयोजन करके न केवल भारत की आचार्य-मण्डली में अपने लिए अद्वितीय आसन बना लिया है, बल्कि हिन्दुओं के प्रकृत कल्याण के द्वार को भी खोल दिया है। इस देश के प्रायः सभी आचार्यों ने, सम्भवतः सभी सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों ने, मूर्त्तिपूजा के साथ सन्धि करली या उसके साथ किसी-न-किसी प्रकार का समझौता करके चलने की चेष्टा की। महात्मा कबीर मूर्त्तिपूजा के घोर विरोधी अवश्य थे और उसका प्रबल प्रतिवाद भी किया करते थे, परन्तु उनके अनुगामी कबीरपन्थियों ने उसका अनुमोदन करना शुरू कर दिया। भारत के आचार्यों की मानो यह अपरिहार्य नीति रही है कि वह मूर्त्तिपूजा और अद्वैतवाद के साथ किसी-न-किसी प्रकार से मित्रता स्थापित कर-लें। चाहे किसी सम्प्रदाय के अनुगामी उच्चश्रेणी के लोग रहे हों, चाहे किसी सम्प्रदाय ने विशुद्ध मत का प्रचार किया हो और चाहे किसी सम्प्रदाय के प्रचारकों ने उदार धर्म-प्रणाली का प्रचार किया हो, परन्तु सब सम्प्रदायों के आचार्यों ने यही स्थिर किया कि मूर्त्तिपूजा के साथ समझौता करके ही चलना उत्तम है। इस देश में जितने भी आचार्य हुए हैं उनमें से दो-चार को छोड़कर शेष सभी मूर्त्तिपूजा के साथ मित्रता स्थापित करके चलते रहे हैं। ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, रामसनेही और कुम्भपातिया सम्प्रदाय के सिवाय भारत के अन्य सब सम्प्रदाय मूर्त्तिपूजा के साथ सन्धि स्थापन करने के लिए लालायित रहे हैं। इसके अतिरिक्त भारत के पौराणिक धर्म का प्रभाव ऐसा अवसादजनक और विषाक्त है कि वह प्रत्येक उन्नत और विशुद्ध धर्म और मत को विषाक्त और कलुषित कर देता है। भारत में जो भी उदार, मार्जित और परिशुद्ध धर्म-प्रणाली प्रचरित हुई, वही धीरे-धीरे पौराणिक धर्म की कुक्षिगत होकर उसकी मलिनता से मलिन हो गई। महात्मा कबीर ने विशुद्ध एकेश्वरवाद का प्रचार किया था, परन्तु उनके सम्प्रदायवालों ने उसे मूर्त्तिपूजा की मलिनता से दुर्गन्धित कर दिया। गुरुनानकदेव के उन्नत एकेश्वरवाद की कथा सभी को ज्ञात है, परन्तु अब उसमें भी मूर्त्तिपूजा की आवर्जन मिल गई है। हमने पंजाब की बहुत-सी धर्मशालाओं में देखा है कि जहाँ एक ओर ग्रन्थसाहब की आरती होती है वहाँ दूसरी ओर जनार्दन राम् और कृष्ण की पूजा होती है। रावलपिण्डी के सरदार सुजानसिंह के उद्यान में हमने यह देखा कि एक ओर ग्रन्थसाहब के लिए धर्मशाला बना दी गई है और दूसरी ओर हिन्दुओं के देवी-देवताओं के लिए एक मन्दिर निर्माण कर दिया है। एक ओर गुरुनानक के अनुगामी सिक्ख लोग पौराणिक धर्म के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने में रत हैं तो दूसरी ओर पौराणिक धर्मवाले भी सिक्खों के साथ सन्धि करने के लिए उद्यत हैं। हमन पठानकोट के पास नूरपुर ग्राम में एक हिन्दू मन्दिर देखा जिसके एक पार्श्व में एक देवमूर्त्ति स्थापित थी और दूसरी ओर ग्रन्थसाहब विराजमान थे। लोग हिन्दूमूर्त्तियों के साथ-साथ ग्रन्थसाहब की भी समानभाव से पूजा करते थे।

इस दृश्य को देखकर हमारे मन में यह कल्पना उठती है कि हिन्दूसमाज एक भग्न-मन्दिर के समान हैं, जिसके एक पार्श्वर्व में पौराणिक धर्मरूपी एक बहुवृद्ध, जराग्रस्त अजगर पड़ा हुआ है। उसके सामने भला-बुरा, उत्कृष्ट-निकृष्ट, शुद्ध-अशुद्ध जो कुछ भी पदार्थ आ जाता है, वह उसे ही उदरस्थ कर लेता है और यही घोषणा करता है। "यह भी मेरा है, वह भी मेरा है"। यही कारण है कि पौराणिक हिन्दुओं ने बुद्ध तक को अवतार श्रेणी में मिलाकर अपने पूज्य देवों में सम्मिलित कर लिया है और वह बौद्ध धर्म को भी हिन्दूधर्म कहकर घोषणा करने में यत्नपर हैं। यही कारण है कि जहाँ हिन्दू प्रकृत हिन्दूशिक्षा के हिन्दूपन को स्वीकार करते हैं, वहाँ गुरुनानक प्रवर्त्तित धर्म को भी हिन्दूमत के अन्तर्गत मानने को उद्यत हैं। यही कारण है कि जिन गौराङ्गदेव ने 'यदि कृष्ण को भजेगा तो मोची भी शुद्ध हो जाएगा' इत्यादि वचन कहकर वर्णभेद की प्रथा पर कुठाराघात किया। हिन्दुओं ने उन्हें भी अवतार दल में मिला लिया और वैष्णवों ने गौराङ्ग के अनुयाइयों को अपने पक्ष के उपासकों के बीच में अन्यतम उपासक बतलाकर ग्रहण कर लिया है। हम समझते हैं कि पौराणिक धर्मरूपी बहुवृद्ध अजगर ने अबतक ब्राह्मसमाज को भी अपने उदर में डाल लिया होता यदि ब्राह्म लोगों की अवलम्बित विवाह-पद्धति ने बहुत बड़ा अन्तराय उपस्थित न कर दिया होता। फिर भी कभी-कभी यह बात अनुमान रूप से हमारे मन में उठती है कि यदि नवविधान मत के प्रदर्त्तक स्वर्गीय केशवचन्द्रसेन अबतक जीवित रहते, तो वह सम्भवतः मूर्त्तिपूजा से किसी-न-किसी रूप से सन्धि स्थापित कर लेते। उनके 'मृन्मये आधारे चिन्मयी देवी' प्रभृति उपदेशों का स्मरण करके और स्त्रियों के हाथ-में-हाथ देकर सखीभाव से नृत्य करने आदि बातों की आलोचना करके हमें अपने पूर्वोक्त अनुमान के मिथ्या प्रमाणित होने की सम्भावना नहीं रहती,

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतः भारत के जल-वायु के प्रभाव और पौराणिक धर्म के अवसादकर और विषाक्त वातावरण के बीच में विशुद्ध एकेश्वरवाद को लेकर खड़ा रहना बड़ा कठिन है।

शायद यह बात बहुत-से लोगों को ज्ञात नहीं होगी कि स्वामी दयानन्द से बहुत स्थानों में और बहुत बार मूर्त्तिपूजा का खण्डन छोड़ने के लिए अनुरोध किया गया और उन्हें प्रलोभन तक भी दिये गये। सन् १८७७ ई० में जब वे लाहौर में ठहरे हुए थे और उन्होंने पंजाब में प्रबल आन्दोलन उपस्थित कर रक्खा था तब काशमीरपति महाराजा रणवीरसिंह ने पं० मनफूल द्वारा स्वामीजी से अनुरोध किया था कि आप जो कुछ और कार्य कर रहे हैं किये जाएँ, परन्तु मूर्त्तिपूजा के विरोध में कुछ न कहें। यदि आप ऐसा करें तो मैं अपना धनागार आपके समर्पण कर दूँगा, परन्तु दयानन्द ने इसका क्या उत्तर दिया ? उन्होंने पं० मनफूल से कहा कि "मैं वेद प्रतिपादित ब्रह्म को सन्तुष्ट करूँगा न कि काशमीरपति को। आप ऐसी बात फिर मेरे सामने न कहिए।" सन् १८६९ ई० में जब काशी में महाशास्त्रार्थ के कारण चारों ओर महान् आन्दोलन हो रहा था, काशी का एक प्रसिद्ध पण्डित एक दिन, रात्रि के समय दयानन्द के पास आया और यह प्रार्थना करने लागा "यदि आप अन्य सब बातों का खण्डन करें किन्तु एक मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो काशी की समग्र पण्डित-मण्डली एकत्र होकर आपके गले में जयमाला पहनाएगी और आपको हाथी पर सवार कराकर आपकी सवारी सारे नगर में निकालेगी और आप को हिन्दुओं का अन्यतम अवतार मान लेगी।" इसके उत्तर में दयानन्द ने कहा "मैं यह कुछ नहीं चाहता, मैं तो वेदप्रतिपादित सत्य के प्रचार के लिए आया हूँ।" पण्डितजी यह सुनकर चुप हो गये और उठकर चले गये। ऐसा कहा जाता है कि दिल्ली के निकटवर्त्ती किसी स्थान का एक सेठ छकड़े में एक लाख रुपया भरकर स्वामीजी के पास लाया और विनयपूर्वक उनसे बोला "महाराज ! मैं यह लाख रुपया आपकी भेंट करता हूँ, आप मूर्त्तिपूजा के खण्डन की बात जाने जीजिए। इसके सिवाय जो कुछ आप कहना चाहें कहते रहिए, मैं यह लाख रुपया आपके कार्यों के सहायतार्थ देता हूँ।" उस सेठ के इस अनुरोध को देख स्वामीजी हँसने लगे और उस सेठ से केवल इतना कहा, "सेठजी ! आप यहाँ से चले जाइए।" मूर्त्तिपूजा का प्रतिवाद करने में स्वामीजी इतने निर्भय, इतने साहसी और इतने पराक्रमी पुरुष थे कि जिस देवमन्दिर में जाकर विश्राम करते थे उसी के अन्दर उसी देवमूर्त्ति का खण्डन करने को उद्यत हो जाते थे। एक बार वह गोदावरी के तट पर नासिक में रामचन्द्रजी का मन्दिर देखने गये और उसी मन्दिर की सीढ़ियों पर खड़े होकर रामावतार का खण्डन करने लगे। मूर्त्तिपूजा के ऊपर वह इतने प्रचण्ड भाव, इतनी योग्यता और इतनी आन्तरिकता के साथ अस्त्रक्षेप करते थे कि भारत के किसी आचार्य ने उनसे पहले इस प्रकार अस्त्रक्षेप कभी नहीं किया था। स्वामीजी अति सरल, उज्ज्वल और समीचीनभाव से प्रतिपादित किया करते थे कि मूर्त्तिपूजा के समान कोई महा मिथ्या वस्तु नहीं है। काशी शास्त्रार्थ में उनका प्रथम प्रधान पक्ष ही यह था कि "पाषाणादि मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध है।" पूना के शास्त्रियों के साथ भी उनका प्रधान विचारणीय विषय था कि "मूर्त्तिपूजा मिथ्या है।" सारांश यह है कि घोरतम प्रतिकूलताओं के होने, घोरतम प्रलोभनों के दिये जाने और समय-समय पर शत्रुओं के हाथों अपने प्राण-नाश के यत्न किये जाने पर भी मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध प्रचण्ड संग्राम उपस्थित करके उन्होंने भारत की आचार्य-मण्डली में अपने लिए विशेष स्थान बना लिया है। इसमें अणुमात्र भी संशय नहीं है कि इस पक्ष में वह अतुल्य, अनुपम और अद्वितीय थे। जैसे मूर्त्तिपूजा आर्यसंस्कृति की प्रधानतम वैरिणी है, वैसे ही वे मूर्त्तिपूजा के प्रधानतम बैरी थे। उन्होंने समस्त भारत भूमि में अति उज्ज्वल और प्रबल भाव से इस बात का प्रचार किया कि जबतक मूर्त्तिपूजा समूल नष्ट नहीं होगी तबतक भारतभूमि का कोई भी कल्याण साधित नहीं हो सकेगा। इस प्रकार दयानन्द ने जैसे अपनी अपूर्वता और विशेषता की रक्षा की है वैसे ही इस देश का भी अशेष उपकार किया है। इसलिए ऐसे महात्मा के अविकल जीवन-वृत्तान्त को भारत की विविध भाषाओं में प्रकाशित करने के यत्न का यह दूसरा हेतु है।

३. दयानन्द—ब्रह्मचर्य का पोषक

इस पक्ष में हमारा तीसरा कारण है कि जिस प्रकार दयानन्द एक अत्यावश्यक, हितकर और महान् विषय के श्रेष्ठत्व का कीर्त्तन कर गये हैं, वैसा अन्य किसी ने नहीं किया। हम यह स्पष्टरूप से नहीं कहते कि शङ्कराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य, कबीर, गौराङ्ग आदि महापुरुष वृन्द ने ब्रह्मचर्य के श्रेष्ठत्व और महत्त्व को परोक्षभाव और साधारणभाव से प्रतिष्ठित नहीं किया, परन्तु इतना अवश्य कहते हैं कि जिस असाधारण और अपरिहार्यभाव से ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और गौरव का दयानन्द प्रचार कर गये हैं, वैसा अन्य किसी आचार्य को करते हुए हमने नहीं देखा।

मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जयकिशनदास ने हमसे कहा था कि जिस ज़ोर, जिस आग्रह और जिस उत्साह के साथ स्वामीजी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता प्रतिपादन करते थे उस प्रकार से इस विषय पर बोलते हुए हमने किसी को नहीं सुना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"वह सबसे अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे।" दयानन्द का निश्चल विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के बिना मनुष्य का किसी प्रकार का कल्याण साधित नहीं हो सकता, चाहे वह शारीरिक हो वा मानसिक, आर्थिक हो वा आध्यात्मिक। जैसे ब्रह्मचर्य के बिना राजा के लिए सुप्रणाली के अनुसार राज्य शासन करना असम्भव है और शरीर के लिए सुसन्तान उत्पन्न करना असम्भव है, वैसे ही ब्रह्मचर्य के बिना जाति-विशेष का उन्नयन और अभ्युत्थान भी असम्भव है। वे बार-बार कहा करते थे कि कि यदि इन मृतप्राय हिन्दुओं को पुनर्जीवित करना है, इस हृतसर्वस्व आर्यावर्त्त के शिर को एक बार गौरवमुकट से मण्डित करना है, तो इसका उपाय ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। इसीलिए उन्होंने प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुद्धार के लिए विशेष यत्न किया था और इसीलिए उन्होंने गुरुकुल के स्थापन की व्यवस्था की थी। दयानन्द जैसे स्वयं निष्कलङ्क ब्रह्मचारी थे और जैसा लाभ ब्रह्मचर्य के द्वारा उन्होंने स्वयं उपलब्ध किया था, वैसे ही निष्कलङ्क ब्रह्मचारी वह अन्य साधारण मनुष्यों को बना वैसा ही लाभ उन्हें उपलब्ध कराना चाहते थे। इसी हेतु से वे अपने देशवासियों से ब्रह्मचर्य धारण करने का बारम्बार साग्रह अनुरोध करते थे। वे भारतवासियों से सदा ही बलपूर्वक कहा करते थे कि तुम बच्चों-के-बच्चे और लड़कों-के-लड़के हो। यदि कोई उनसे पूछता कि आप ऐसा क्यों कहते हैं तो वे यही उत्तर दिया करते थे कि भारतवर्ष में आजकल माता-पिता ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं करते और इसलिए भारतभूमि में बच्चों-के-बच्चे ही जन्म ग्रहण करते हैं। इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि आये दिन सहस्रों पुच्छविहीन भेड़-बकरियाँ उत्पन्न होकर भारत-भूमि के दुःख और क्लेश को और भी गुरुतर बना रही हैं। यह देश सर्वथा मनुष्य-विहीन और मनुष्यत्व-शून्य हो चला है। नरसिंहों के बदले सहस्रों भेड़-बकरियों ने देश पर अधिकार कर लिया है। आज आर्यावर्त्त भेड़-बकरियों के कोलाहल से परिपूरित और प्रतिध्वनित है। यह सर्वथा सत्य है, परन्तु इसमें भी कोई संशय नहीं है कि केवल यह कहते रहने से कि इस देश के निवासी मनुष्य उत्पन्न नहीं करते, न कर सकते हैं और न कर सकेंगे, भेड़-बकरियों के बदले मनुष्य जन्म-ग्रहण नहीं करने लगेंगे।

भारत की महिमा का मूल क्या था ? **ब्रह्मचर्य !** हिन्दुओं की जिस गरीयसी प्रतिभा को देखकर प्राचीन यूनान और रोम आश्चर्यान्वित हो गये थे उसका हेतु क्या था ? **ब्रह्मचर्य !** जो उपनिषदादि अनुपम और उपादेय ग्रन्थमाला के रचयिता थे, वे कौन थे ? **ब्रह्मचारी !** रामायण और महाभारत के जिस अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मनुष्य-मण्डली अवाक् रह जाती है, उसके सृष्टिकर्त्ता कौन थे ? **ब्रह्मचारी** ! अर्थनीति, युद्धनीति, व्यवहारनीति और धर्मनीति के प्रवर्त्तक कौन थे ? **ब्रह्मचारी !** गम्भीर विचारशीलता और तत्त्वानुसन्धान के अद्भुत क्षेत्रस्वरूप सांख्यमीमांसा की रचना किन्होंने की ! **ब्रह्मचारियों ने !** पाणिनि का पुनरुद्धार साधनपूर्वक भाषानुवाद, साहित्य-विज्ञान के पथ का प्रचारक कौन था ? **एक ब्रह्मचारी !** वैदिक विद्या के पुनरुद्दीपन में आत्मोसर्ग करके नये युग का प्रवर्त्तक कौन था ? **एक ब्रह्मचारी !** सुतराम् देखा जाता है कि भारतभूमि का जो कुछ सम्बल, जो कुछ गौरव, जो कुछ प्रतिष्ठा थी उस सबके मूल में ब्रह्मचर्य ही विद्यमान था, अतः जब तक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान होता रहेगा, तब तक भारत के विलय होने की सम्भावना नहीं हो सकती, जब तक ब्रह्मचारी का अभ्युदय होता रहेगा, तब तक आर्यजाति के लिए निराश होने का कोई कारण नहीं है। यह निश्चय है कि यदि आर्यावर्त्त फिर जागेगा तो ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से जागेगा, यदि इन पददलित-परानुग्रहजीवी हिन्दुओं का पुनरुत्थान होगा तो ब्रह्मचारियों के द्वारा ही होगा। यदि आर्यों का प्रनष्ट गौरव फिर कभी वापस आकर चमकेगा तो ब्रह्मचर्य की ही महिमा से चमकेगा, क्योंकि बल, वीर्य, मेधा, धारणाशक्ति, नीरोगता और शारीरिक पराक्रम जिस प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है, मनुष्य की आशा, उत्साह अध्यवसाय, कष्टसहिष्णुता, श्रमशीलता, तितिक्षा और अटल प्रतिज्ञता आदि का सञ्चार और परिपुष्टि भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। जैसे दयानन्द अपने जीवन में निष्कलङ्क ब्रह्मचर्य का परिचय देकर अपनी विद्या, पाण्डित्य और प्रतिभा आदि के विषय में असाधारणत्व को प्रतिष्ठित कर गये हैं, वैसे ही वे अपने जीवन में ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च आसन पर स्थापित करके इस देश का महान् उपकार कर गये हैं।

४. दयानन्द—भारतीय एकता का प्रतिपादक

गौतम बुद्ध ने शुद्धोदन राजा के घर जन्म लेकर और जीवन के दुःख-क्लेश-मोचन करने के अभिप्राय से गृहत्याग किया था और फल्गु नदी के तीर पर छह वर्ष तक ध्यानावस्थित रहकर, उसके प्रभाव से बुद्धिलाभ किया था। पहले वाराणसी में और उसके पश्चात् उत्तर भारत में अनेक स्थानों में परिभ्रमण करके और निर्वाणतत्त्व को प्रचरित करके लखूखा मनुष्यों के लिए कल्याणपथ को उन्मुक्त किया था और अन्त में कृष्णनगरी के पास एक आम्रकानन में देहत्याग करके परमधाम गमन किया था, परन्तु बुद्ध ने विच्छिन्न भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के पक्ष में क्या कभी एक बात भी कही ? हमें उत्तर में यही कहना पड़ता है कि नहीं कही।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नम्बूद्रि ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर शङ्कराचार्य ने छोटी ही अवस्था में संन्यास ग्रहण कर लिया था। अलौकिक प्रतिभा से वे अल्पावस्था में ही अगाध विद्या के पारदर्शी हो गये थे। वेदान्त-सूत्र का अनुपम भाष्य रचकर वे संसार में अविनश्वर कीर्त्ति स्थापित कर गये हैं, भारत के बहुत-से स्थानों में पर्यटन करके अपने सुशाणित तर्कास्त्र के प्रभाव से नाना दिग्देशीय पण्डित-मण्डली को पराभूत करके वेदान्तमत का प्राधान्य स्थापित कर गये हैं, सौ मनुष्य भी अपने जाने हुए विषय को एकत्र करके जिस कार्य के करने में असमर्थ हैं, शङ्कराचार्य उसे बत्तीस वर्ष की आयु में अकेले ही सम्पादित करके दिव्यधाम को प्रस्थान कर गये हैं। शङ्कराचार्य यह सब कुछ कर गये, परन्तु क्या उन्होंने विभक्त और विच्छिन्न भारत में ऐक्य स्थापन के लिए कोई यत्न किया ? उत्तर सिवाय 'नहीं' के और कुछ नहीं हो सकता।

बङ्गभूमि के प्राञ्चल भाग के गौरव श्री गौराङ्गदेव नवद्वीप में आविर्भूत होकर बङ्गाल को भक्ति की तरङ्ग में निमग्न कर गये, नामजपन और नामकीर्त्तन के माहात्म्य-विस्तार को चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित कर गये, सङ्कीर्त्तन के पूत, पवित्र, पुण्यमय स्रोत को उन्मुक्त करके दीन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग की ओर खींच ले-गये, तन्त्रोक्त घृणित और जुगुप्सित आचार, विचार से सैकड़ों मनुष्यों की रक्षा करके देश का अशेष कल्याण कर गये और अन्त में जगन्नाथ में देह त्यागकर इस लोक से यात्रा कर गये, परन्तु क्या उन्होंने भारत में भारतीयता स्थापन करने के लिए कभी एक बात भी कही ? हमें कहना पड़ता है, एक भी नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में जितने भी आचार्य हुए हैं वे सब-के-सब इस विषय में चुप हैं। यह हो सकता है कि उनके लिए जो समग्र मानव-मण्डली के दुःखहरण का कठोरतम व्रत धारण करते हैं, देश-विदेश अथवा जातिविशेष की उन्नति-साधन करना क्षुद्र बात हो। यह भी हो सकता है कि जो अपनी आलौकिक ज्ञान-चक्षु के आलोक से संसार को ही नहीं, विश्वभर को ही मिथ्या सिद्ध करके दिखा गये हैं, जो अपनी अद्‌भुत शक्ति के प्रभाव से सारे जगत् के अस्तित्त्वबोध को "सर्प और रज्जु" के उदाहरण के समान एक महाभ्रम बता गये हैं, उनके लिए किसी देश में ऐक्य स्थापन करना एक तुच्छ बात रही हो। यह ठीक ही है कि उनके लिए जो ईश्वर-प्रेम में अहर्निश उन्मत्त रहते थे किसी देशविशेष की उन्नति एक गौण बात रही हो। हम यहाँ तक भी कह सकते हैं कि इन बातों का वास्तविक आध्यात्मिक महत्त्व न भी हो तथापि यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ये सब बातें किसी-न-किसी अंश में आवश्यक हैं। यदि मनुष्य अपने घर में दाल, चावल, घी, तेल, मिरच, मसाला आदि का संग्रह करता है, तो क्या दार्शनिक दृष्टि से वह कोई बड़ा काम करता है ? निस्सन्देह नहीं, परन्तु फिर भी ऐसा करना उसके लिए अत्यन्तावश्यक है, क्योंकि इन वस्तुओं के बिना उसकी देह-रक्षा ही नहीं हो सकती। यदि कोई सूई के छिद्र में धागा पिरोकर वस्त्र सीता है वा अपने पुराने कपड़ों की मरम्मत करता है तो क्या ऐतिहासिक दृष्टि से यह बड़ा काम गिना जा सकता है? कदापि नहीं, परन्तु इसका करना उसके लिए आवश्यक है। यदि मनुष्य अपने घर के चारों ओर के गढ़े भरने के लिए गोबर-मिट्टी लाता है, तो क्या राष्ट्रीय दृष्टि से इसे कोई महान् कार्य कहा जा सकता है ? गढ़ों में सर्पादि जन्तु आश्रय लेकर पास रहनेवाले मनुष्यों का प्राणनाश तक कर सकते हैं। फलतः उपर्युक्त कार्य-समूह यद्यपि महत्त्वहीन समझे जाते हैं, तथापि उन्हें करना ही पड़ेगा। यदि उनका सम्पादन न किया जाएगा तो देह-रक्षा के विषय में अनेक विघ्न उपस्थित होंगे, यहाँ तक कि असमय में शरीर के विनाश की भी सम्भावना हो सकती है। यह सभी स्वीकार करते हैं कि देह-रक्षा समस्त आशा, भरोसे, उन्नति और आकाँक्षा की मूल है। इसलिए यद्यपि यह कार्य-समूह सामान्य और अगण्य है और यद्यपि राष्ट्रीय वा दार्शनिक दृष्टि से इसका कुछ मूल्य नहीं है, तथापि उसका नियमित रूप से सम्पादन करना मनुष्य के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार देश में एकता स्थापन करना वा जातीयता के संसाधन की चेष्टा करना भी आवश्यक है। जिस देश में एकता नहीं, परस्पर की प्रीति नहीं, सद्भाव और संवेदना का बन्धन नहीं, उस देश में जीवन-यात्रा का निर्वाह निरापद नहीं हो सकता। जिस जाति के अन्दर जातीयता नहीं जो जाति भाषागत, सम्प्रदायगत, रीति-नीतिगत, आदर्शगत और धर्मगत विभिन्नताओं से शतधा छिन्न-भिन्न हो रही हो, उस जाति का सदस्य रहना अनेक अंशों में ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति में अनेक प्रकार से विघ्नकर ही होगा। यह बात कुछ सूक्ष्म है, इसलिए हम उसे कुछ खोलकर कहना चाहते हैं।

बात यह है कि मनुष्य सामाजिक जीव है। वह अकेला रहकर, सर्वतोभावेन, निःसङ्ग वा सम्बन्धरहित रहकर, किसी से कुछ सहायता न लेकर, देह-यात्रा का निर्वाह नहीं कर सकता और उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे नहीं रख सकता। एक मनुष्य की उन्नति-अवनति और कल्याण-अकल्याण का सम्बन्ध उसके पड़ोसियों, नगर-निवासियों यहाँ तक कि समस्त स्वदेशवासी जन-साधारण की उन्नति-अवनति, कल्याण-अकल्याण के साथ अविच्छिन्नरूप से है। यदि हमारे ग्राम, पथ, घाट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि परिष्कृत और स्वच्छ न हों तो हम स्वास्थ्य भोग नहीं कर सकते। जैसे हम अपने शिक्षा-भवन को परिष्कृत रखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, वैसे ही अपने ग्राम, पथ, घाट आदि को भी स्वच्छ और निर्मल रखना हमें अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि हम अपने पुत्र को सत्त्वभाव-सम्पन्न रखना चाहते हैं तो हमें अपने ग्राम-निवासियों को भी सच्चरित्र बनाने का यत्न करना पड़ेगा। यदि ऐसा न किया जाएगा तो ग्राम के बालक दुष्ट हो जाएँगे और उनके साथ मिलने-जुलने से हमारे पुत्र के भी दुश्चरित्र हो जाने की सम्भावना होगी। यदि हम स्वयं साधु रहना चाहते हैं तो हमें अपने मोदी को भी साधु रखना होगा। कल्पना कीजिए कि हम छुट्टी पाकर पेंशन लेकर यह सङ्कल्प करके अपने घर आये हों कि जीवन का शेष काल आध्यात्मिक चर्चा में बिताएँगे। अब यदि हमारा मोदी कुत्सित भक्ष्य-द्रव्य हमारे उदर में पहुँचता है, हमारा ग्वाला अस्वच्छ, पानी मिला हुआ दूध पिलाकर हमारे शरीर में रोग का सञ्चार कर देता है, तो हम आध्यात्मिक चर्चा वा भजन-साधन निरापदरूप से कैसे कर सकेंगे ? बारम्बार रोगाक्रान्त रहने और अनेक प्रकार की घोरतर अशान्ति से पूर्ण जीवन व्यतीत करने से हम असमय में ही देहत्याग करके परलोक सिधार जाएँगे, फिर कहाँ रहेगा हमारा भजन-साधन और कहाँ रहेगा आध्यात्मिक चर्चा का सङ्कल्प ? इस प्रकार का एक और भी दृष्टान्त दिया जा सकता है, जिससे यह प्रमाणित होगा कि जैसे राष्ट्रीय उन्नति समष्टिगत उन्नति पर निर्भर है वैसे ही समष्टिगत उन्नति व्यक्तिगत उन्नति पर स्थित है। हमारी उन्नति दस मनुष्यों की उन्नति के साथ सम्बद्ध है और हमारी अवनति भी दूसरे मनुष्यों की अवनति के साथ ग्रथित है, क्योंकि हम सामाजिक जीव हैं। अब हम समझते हैं कि इस बात को अधिक विस्तारपूर्वक बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि देशवासियों में देश-प्रेम का बन्धन वा देश में जातीयता का सङ्गठन होना अत्यन्तावश्यक है। मनुष्यजाति का इतिहास इस सत्य की स्पष्टाक्षरों में घोषणा करता है कि धन-धान्य की उन्नति, शिल्प की उन्नति, साहित्य की उन्नति और अन्य सब प्रकार की उन्नाते जातीय एकता, बल्कि यों कहना चाहिए, जातीय स्वाधीनता के बिना हो ही नहीं सकती। इसलिए स्थलविशेष के निष्कण्टक वा निरापद हुए बिना जीव की कैवल्य-प्राप्ति वा परमपुरुषार्थ-साधन की चेष्टा भी सफल नहीं हो सकती।

आर्यजाति के इतिहास की क्रमपूर्वक आलोचना करने से ज्ञात होता है कि इस अपेक्षाकृत सामान्य परन्तु नितान्त आवश्यक विषय के सम्बन्ध में न तो वैदिक समय के आचार्यगण, न बुद्ध और बौद्ध युग के उपेष्टा और न चैतन्य, नानक प्रभृति सन्त-महाजनों के मुख से ही एक शब्द निकला। मनु, अत्रिप्रभृति ऋषिगण स्मृतिकार भी अपनी स्मृतियों के किसी सूत्र में इस विषय पर किसी बात का वर्णन करके नहीं गये। मध्यवर्त्ती काल के पौराणिकगण भी इस विषय पर न आख्यान के रूप में और न उपदेश-भाव से ही कोई उल्लेख कर गये हैं। अपेक्षाकृत आधुनिक समय के व्यवस्थापक और संग्रहकर्त्तागण भवदेवभट्ट, शूलपाणि, स्मार्त रघुनन्दन प्रभृति वृषोत्सर्गादि श्राद्ध के विषय में विस्तारपूर्वक व्याख्या कर गये हैं, यहाँ तक कि छींक और छपकली आदि के शुभाशुभ फल के सम्बन्ध में भी व्यवस्था दे गये हैं; परन्तु इस अत्यन्त प्रयोजनीय विषय के सम्बन्ध में एक पंक्ति भी लिखकर नहीं गये। यही भारत की दुर्दृश्य है, यही आर्यों का अमिट कलङ्क है, यही हमारी जाति की उन्नति के विषय में विघ्न है। ऐसा ज्ञात ही नहीं होता कि भारत में कभी किसी अंश में भी स्वदेशता वा स्वजातित्व का भाव हो रहा हो। इस देश के लोग कुलगत वा वर्णगत गौरव में ही व्यस्त रहते थे। हम अब तक कुलगौरव वा वर्णगौरव ही की बातों की भरमार करते आये हैं। जितना हम इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि तुम ब्राह्मण हो वा क्षत्रिय, श्रोत्रिय हो वा स्मार्त्त परमारों के वंशधर हो वा सीशोदियों के कुल में, इतना हम यह जानने के इच्छुक नहीं रहते कि तुम भारतवासी हो वा आर्यजाति के सदस्य हो। यही कारण है कि हमारे शास्त्र और संहिताएँ कुलगाथाओं और ब्राह्मणादि वर्ण की कथाओं से परिपूर्ण हैं। सारांश यह है कि जाति की एकता वा जाति की उन्नति के विषय में भारतीय आचार्यगण जैसे मौन हैं भारत की शास्त्र संहिताएँ भी वैसी ही निर्वाक् हैं।

यह देश का सौभाग्य था कि वर्त्तमान समय के आचार्य स्वामी दयानन्द ने हमारी युग-युग-व्यापिनी नीरवता को भङ्ग करके चिरन्तनी उदासीनता को छिन्न-भिन्न करके शास्त्र-संस्कार और धर्म-संस्कार के साथ-साथ जातीय एकता की आवश्यकता को भी प्रतिपादित किया। उन्होंने कौपीनधारी संन्यासी होते हुए भी इस बात को सुस्पष्टरूप से जान लिया था कि जब तक स्वदेशीजनों में बल नहीं बढ़ेगा, स्वदेश में जातीयता प्रतिष्ठित नहीं होगी, जाति के अन्दर एकता बन्धन दृढ़तर न होगा, तब तक धर्म-संस्कार, शास्त्र-संस्कार, देशोन्नति, सामाजिकोन्नति आदि कुछ भी न हो सकेगा। इसी कारण से जैसे वह समस्त भारत में एक शास्त्र अर्थात् वेदशास्त्र को स्थापित करने के लिए आजीवन संग्राम करते रहे, वैसे ही वेद प्रतिपादित एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना को प्रतिष्ठित करने के लिए भी मन, वचन, कर्म से चेष्टा करते रहे। उन्होंने जैसा प्रयास भारत के कुलगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत शाखा-प्रशाखा भेद को छिन्न-भिन्न करके आर्यजाति के संगठन के निमित्त किया था, वैसा ही प्रबल परिश्रम उन्होंने इसके निमित्त भी किया था कि आर्यावर्त्त में आदि से अन्त तक एक भाषा प्रचलित हो जाए। वस्तुतः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी उद्देश्य से उन्होंने हिन्दीभाषा को आर्यभाषा, अर्थात् समस्त आर्यावर्त्त में प्रचलित भाषा का नाम दिया था।

बहुत दिन हुए जबकि प्रसिद्ध हंटर (Hunter) साहब की अध्यक्षता में शिक्षा-कमीशन (Education commission) बैठा था तो उन्होंने उसके सामने हिन्दी का पक्ष स्थापित करने के पक्ष में साक्षी देने के लिए देश के उच्च पदारूढ़ और सम्भ्रान्त मनुष्यों को प्रोत्साहित किया था। इन सब बातों की आलोचना करने से स्पष्टरूप से मालूम होता है कि इस संन्यासी के हृदय में यह प्रबल इच्छा और प्रबल उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, एक जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो। यही नहीं कि उनमें केवल ऐसी सद् इच्छा और उत्साह ही था, वरन् वे इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में भी कृतकार्य हुए थे। अतएव स्वामी दयानन्द केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद-व्याख्याता ही नहीं थे, केवल शास्त्रों के मर्मोद्घाटन करने में ही निपुण नहीं थे, केवल तार्किक ही नहीं थे, केवल दिग्विजयी पण्डित ही नहीं थे, अपितु वे भारतीय एकता के स्थापनकर्त्ता भी थे, भारत की जातीयता के प्रतिष्ठाता भी थे! इसलिए भारत की आचार्य-मण्डली में दयानन्द का स्थान विशिष्ट और अद्वितीय है, अतः दयानन्द को सुप्रतिष्ठित करने के पक्ष में यह हमारा चौथा हेतु है।

५. जीवन-चरित्र और इतिहास

जो कष्ट हमने सहे वा जो परिश्रम हमने किये उनके लिए हम कदापि दुःखित नहीं हैं, क्योंकि इतिहास वा जीवन-चरित-सम्बन्धी घटनाओं की सत्यता निर्धारित करने के लिए निरन्तर छान-बीन, गहरे अनुसन्धान और बहुकालव्यापिनी गवेषणा की अत्यन्त आवश्यकता है। अनेक प्रकार के कूड़े-कर्कट से मिले हुए अन्न को जैसे सूक्ष्म और सुछिद्र-सम्पन्न छलनी से छानना आवश्यक है, वैसे ही ऐतिहासिक अथवा चरित्र-सम्बन्धी घटनाओं की यथार्थता निरूपण करने के लिए गवेषणा की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म छलनी का प्रयोग अनिवार्य है। इस देश के लेखकों में अनुसन्धान-वृत्ति का विकास बहुत ही कम है। वे विषयविशेष के यथार्थ्य की पुनः-पुनः निरूपण करने की चेष्टा नहीं करते, हाथ में गवेषणा की छुरी लेकर विश्लेषण करने के वास्ते अग्रसर नहीं होते। इसलिए इस देश में ऐतिहासिक तत्त्व और चारित्रिक वृत्तान्त सत्य की प्रभा से प्रभावित नहीं होते और प्रमाण की दृढ़तर भित्ति पर प्रतिष्ठित नहीं होते। जब तक सत्य के दुरारोह शृङ्ग पर पहुँचने की शक्ति न हो तब तक गवेषणा का आलोक हाथ में लेकर सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ना पड़ेगा। यूरोपवासियों में गवेषणा-वृत्ति का बहुत विकास है, इसलिए वे एक ही विषय पर ग्रन्थ-पर-ग्रन्थ प्रकाशित करने में समर्थ हो जाते हैं। एक ही महापुरुष के कई-कई जीवनवृत्त लिखे जाते हैं। गिबन ही के साथ रोम का इतिहास-लेखना समाप्त नहीं हुआ, उसके पश्चात् अन्य कई लेखकों ने रोम का इतिहास लिखा, हैलम (Hallam) के अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थकारों ने मध्ययुग का इतिहास लिखा है।

स्वामी दयानन्द की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के निर्णय करने के लिए हमने इतने समय तक जो यत्न, परिश्रम और गवेषणा की है उसका उल्लेख हमने अपना कार्य, प्राधान्य वा गौरव दिखाने के अभिप्राय से नहीं किया है और न उसके परिचय देने के उद्देश्य से हमने इस ग्रन्थ की रचना की है। हमारे उसके उल्लेख से केवल यह दिखाने और समझाने का प्रयोजन है कि बिना स्वतन्त्र, सूक्ष्म और पक्षपातरहित गवेषणा के ऐतिहासिक घटनाओं और विचारों की सत्यता का निर्णय नहीं किया जा सकता।

इतिहास और जीवन-चरित एक ही वस्तु है। दोनों में यदि कोई प्रकारगत पार्थक्य हो भी तो भी कोई प्रकृतिगत पार्थक्य नहीं है। महापुरुषों की चरितमाला ही इतिहास का प्रधान अङ्ग वा उपादान है। महापुरुष ही संसार की महती घटनाओं के प्रवर्त्तक होते हैं। जो स्रोत समाज की मूलभित्ति तक को हिला देता है, जो स्रोत समाज-शरीर में नई शक्ति का सञ्चार कर देता है, जो स्रोत राज्यविशेष के अभ्युत्थान वा विनाश का साधन होता है, जो स्रोत मानव-समाज के कुत्सित आचार-विचार और विश्वास को सर्वथा परिवर्त्तित कर देता है, महापुरुष ही उस स्रोत के उत्पादक होते हैं। अकेले मार्टिन लूथर के नाम और कार्य से इतिहास के सैकड़ों पृष्ठ भरे पड़े हैं। मेज़िनी और गैरीबाल्डी के कृत्य और विचारों से ही नवीन इटली के नवीन इतिहास का कलेवर बना है। अकेले गौतमबुद्ध के उपदेशों और सन्देशों के प्रभाव से ही प्रायः एक सहस्र वर्ष व्यापी भारत का इतिहास रचा गया है, इसलिए महापुरुष ही इतिहास की मूलभित्ति और आधार हैं। इसी कारण से प्रख्यात नामा पण्डित फ्रेड्रिक हैरिसन (Frederic Herrison) ने इस विषय में कहा है—

"There is one mode in which history may be most easily, perhaps most usefully, approached. Let him who desires to find profit in it begin by knowing something of the lives of great men."

—The meaning of History p. 23

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"जो लोग इतिहास से लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें इतिहासाध्ययन करने से पहले महापुरुषों के जीवन-चरितों का कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि यह एक ऐसी रीति है जिसके अनुसार इतिहास का अध्ययन बहुत सुगमता और सम्भवतः उपयोगिता के साथ किया जा सकता है।" —मीनिंग आफ़ हिस्ट्री (इतिहास का अर्थ) पृष्ठ २३

अर्थात् इतिहास को समझने से पहले महापुरुषों को समझना चाहिए।

अतएव इतिहास के तत्त्वों का निर्णय करने के लिए जैसी गवेषणा की आवश्यकता है महापुरुषों के चरित को लिपिबद्ध करने के लिए भी वैसी ही गवेषणा की आवश्यकता है, परन्तु जिस देश में इतिहास नाम की कोई वस्तु न हो, जिस देश के वासियों के चरित में इतिहासवृत्ति के नाम की कोई वृत्ति देखने में न आती हो, जिस जाति के हृदय में इतिहास के प्रति कोई रुचि, अवस्था वा अनुराग दृष्टिगोचर न होता हो, उस देश वा उस जाति में गवेषणा चाहे वह कैसी ही स्वतन्त्र, कैसी ही सूक्ष्म और कैसी ही पक्षपातरहित क्यों न हो, कृतकार्य नहीं हो सकती।

हमारा यह कथन कि इस देश में इतिहास नाम की कोई वस्तु वा कोई वृत्ति नहीं है किसी-किसी को बुरा लगेगा। कुछ लोग कहेंगे कि जिस देश में रामायण और महाभारत विद्यमान हों, जिस देश में बहुसंख्यक पुराण, उपपुराण वर्त्तमान हों, उसके विषय में यह कैसे कहा जा सकता है कि उसमें इतिहास नाम की कोई वस्तु नहीं है। जब संस्कृत साहित्य में इतिहास वा "इतिह-आस" शब्द पाये जाते हैं तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उस देश में इतिहास नाम की कोई वस्तु न हो? जो सज्जन ऐसा विश्वास रखते हैं वे वास्तव में यह नहीं जानते कि इतिहास किसे कहते हैं और उसका क्या स्वरूप है। जो बात सत्य है वह कहनी पड़ती है। रामायण और महाभारत को इतिहास का नाम नहीं दिया जा सकता।§ वह काव्य, महाकाव्य है।

रामायण का इतिहास न होना स्वयं उसके कर्त्ता महर्षि वाल्मीकि ने फल-श्रुति स्थल अर्थात् लङ्काकाण्ड के अन्तिम भाग में स्वीकार किया है और रामायण को काव्य कहा है।

शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।
ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राघवात्॥ —स० १३०। श्लोक० ११६॥

जो इस काव्य को जिसे प्राचीन समय में वाल्मीकि ने बनाया था सुनते हैं, वे इस संसार में रामचन्द्रजी से अपने माँगे हुए सारे वरों को प्राप्त करते हैं।

ऐसे ही महाभारत भी काव्य या महाकाव्य है। आदिपर्व की अनुक्रमणिका में लिखा है "मैं जानता हूँ कि तुमने जन्म से सत् और ब्रह्मविषयक वाक्य ही कहे हैं और तुम स्वप्रणीत ग्रन्थ को काव्य कहकर ही प्रसिद्ध करते हो इसलिए वह काव्य नाम से ही प्रसिद्ध होगा और जैसे आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्व-प्रधान है वैसे ही यह काव्यों में सर्वश्रेष्ठ होगा।"

अनेक राजाओं के कथा-कीर्त्तन, अनेक युद्धों के वर्णन और अनेक महर्षि-महापुरुषों के चरितोपाख्यानों से परिपूरित

---

§ जिन यूरोपीय ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने भारतीय प्रसङ्ग का वर्णन वा भारत-कथा की विवेचना में अपनी शक्ति और समय लगाया है, उनमें से जेम्समिल (James Mill), मेजर विल्फ़ोर्ड (Major Wilford) और पादरी वार्ड (Rev. Ward) आदि भारत को इतिहास-शून्य देश कहकर कुण्ठित हुए हैं। इस विषय में उनका जो सिद्धान्त है, वह चाहे हमारे लिए कर्णकटु हो, परन्तु है सत्य। मेज़र विल्फ़ोर्ड ने एशियाटिक रिसर्च जनरल के आठवें खण्ड में भारत की इतिहासशून्यता के विषय में लिखा है—

"With regard to History the Hindus have really nothing but Romances from which some truth occasionally may be extracted."

"गल्प वा उपन्यास को छोड़कर हिन्दुओं के पास वास्तव में कोई इतिहास नहीं है, जिनमें से कभी-कभी कोई सत्य निकाला जा सकता है।"

हिन्दुओं की इतिहासशून्यता के विषय में पादरी वार्ड अपनी पुस्तक 'A view of History, Literature and Mythology of the Hindus' की पहली जिल्द के पृष्ठ ४०-४१ पर कहते हैं—

"The proneness of the Hindus to magnify objects and events may rather be ascribed to climate, to the magnificence of the mountains, the plains, the rivers and the various objects of nature around them and to the florid allusions of their poets."

"हिन्दुओं की वस्तुओं और घटनाओं को बड़ा करके दिखाने की ओर झुकाव का कारण भारत का जल-वायु, विशाल पर्वत-मालाएँ, मैदान, नदियाँ और अनेक पदार्थ जो इनके चारों ओर हैं और उनके कवियों के अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हैं।"

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने पर भी पुराण, उपपुराण इतिहास नाम से अभिहित होने के योग्य नहीं हैं। यदि कहो कि राजतरङ्गिणी तो इतिहास की कोटि में आती है, परन्तु राजतरङ्गिणी केवल एक विवरणमाला है और इतिहास (History) और विवरणमाला एक ही वस्तु नहीं है। आजकल इतिहास शब्द के अर्थों ने जो परिवर्त्तितरूप धारण किया है, हम समझते हैं, पाठक उससे अनभिज्ञ नहीं हैं। जिस समय जोसिफ़स प्राचीन यहूदी-जाति के इतिहास की वेदी के आसन पर समासीन हुए थे, जिस समय इतिहास-रचना कला के पथ-प्रदर्शक वा पितृस्वरूप यूरोपीयगण विविध जातियों के इतिहास-प्रणयन में लगे हुए थे, उस समय जो अर्थ इतिहास शब्द के थे वे अर्थ अब नहीं हैं। अब इतिहास ने सुन्दरतर और उज्ज्वलतर मूर्त्ति धारण कर ली है। अब इतिहास को दार्शनिकता की भित्ति पर स्थापित कर दिया गया है। अब केवल विवरणमाला का समावेश ही इतिहास में नहीं है। केवल घटना परम्परा के विज्ञान और वर्णन करने से ही इतिहास नहीं लिखा जाता, केवल युद्धों के वर्णन, युद्ध-नेताओं की पदाति, अश्वारोही सेना की संख्या के निरूपण और युद्धों के जय-पराजय के संवाद-लेखन ही ऐतिहासिक कर्म नहीं है। यह सब इतिहास के बहिरङ्ग मात्र हैं। घटनाविशेष का वर्णन करके यदि उसके कारणों को न बताया जाए, राज्य-विशेष के अभ्युत्थान के विवरण को लिपिबद्ध करके यदि उसके कारणों का निदर्शन न किया जाए तो उसकी इतिहास में गणना न होगी। कल्पना करो कि आप बूअर-इंग्लिश-युद्ध का इतिहास लिखने बैठते हैं और केवल इतना ही उल्लेख कर कि 'बूअर सेना के इतने सैनिक क्षत-विक्षत हुए, अंग्रेज़ी सेना के इतने योद्धा हत-आहत हुए, अंग्रेज़ी सेना ने इस प्रकार जय लाभ किया और बूअरों को इतनी हानि पहुँचाई', अपने इतिहास को समाप्त कर देते हैं, तो हम कहेंगे कि आपने इतिहास नहीं लिखा। यदि आप वास्तविक अर्थों में उस युद्ध का इतिहास लिखना चाहते हैं, तो उपर्युक्त विषयों का समावेश करने के साथ-साथ आपको यह भी लिखना होगा कि युद्ध के क्या-क्या कारण थे और वे कारण-परम्परा कितने दिनों से दोनों जातियों के जीवन में उत्पन्न हो रही थी और किस विशेष घटना के उपस्थित होने पर उस कारण-परम्परा ने कार्यरूप धारण करके दोनों जातियों को तुमुल युद्ध में प्रवृत्त कर दिया, इत्यादि। इन विषयों को सूक्ष्मभाव से चित्रित किये बिना आपका इतिहास इतिहासपद वाच्य नहीं हो सकता।

सारांश यह है कि केवल कार्य का विवरण करने से काम नहीं चलता, उसके साथ कारण का भी उल्लेख करना चाहिए। ऐतिहासिक-शिरोमणि गिबन ने जिस भाव से रोम की क्रमोन्नति और अधःपतन का इतिहास लिखा है, जिस प्रणाली का अवलम्बन करके हैलम ने मध्ययुग के इतिहास का सङ्कलन किया है, जिस रीति का अनुसरण करके सभ्यता का इतिहास प्रणयन किया है और जिस पद्धति का सहारा लेकर डॉक्टर मिलमैन ने लैटिन क्रिश्चैनिटी का इतिहास मानव-समाज के सामने रक्खा है, उस भाव, प्रणाली, रीति वा पद्धति का अनुगमन करके भारत में आज तक कोई इतिहास नहीं लिखा गया।§ अतः यह कहना पड़ता है कि हिन्दुओं का कोई इतिहास नहीं है, उनमें इतिहास-रचनाकला का अभाव है इस कारण भारत-भूमि में प्रकृत इतिहास रचना का मार्ग कण्टकाकीर्ण है और प्रकृत-जीवन-वृत्तान्त रचना का मार्ग भी सैकड़ों विघ्न-बाधाओं से परिपूर्ण है। हमने यथाशक्य सब कण्टक और विघ्न-बाधाओं को सहन करके भी स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित को लिखने का यत्न किया है। इस सम्बन्ध में हमसे जो कुछ बन पड़ा है, किया है। हमने अपने ऊपर यह भार केवल इसलिए लिया है कि हमारा विश्वास है कि हिन्दूजाति के अभ्युत्थान और वैदिक धर्म की उन्नति दयानन्द के जीवनवृत्त की सम्यक् आलोचना के बिना नहीं हो सकती। दयानन्द ने हिन्दू-जाति के रोग का निदान जिस सुन्दरता से किया है उस सुन्दरता के साथ और किसी सुधारक ने नहीं किया है। दयानन्द हिन्दू-जाति के आदर्श सुधारक थे।‡ अतः यदि हिन्दू-सन्तान हिन्दू बनी रहकर ही उठना चाहती है, हिन्दू बनी रहकर ही जगना चाहती है और हिन्दू बनी रहकर ही मुक्तिलाभ करना चाहती है, यदि वैदिक सभ्यता का फिर से जगत् में विस्तार होना है, हिन्दू-शिक्षा को उसके लिए संसार में प्रचरित होना है, हिन्दू-आदर्श को फिर से मानवजाति

---

§ विख्यात लेखक फ़ेड्रिक हैरिसन ने इतिहास शब्द की इस प्रकार व्याख्या की है—The History of the human race is the history of a growth. अर्थात् मनुष्य-जाति का इतिहास विकास वा उन्नति का इतिहास है। —Meaning of History, p.-22
दार्शनिक हीगल ने इतिहास शब्द का यह अर्थ किया है—History is general development of Spirit in Time as nature is the devlopment of the Idea in Space. इतिहास साधारणतः भगवच्छक्ति के काल में विकास का नाम है, जैसे प्रकृति भगवद्भाव के देश में विकास का नाम है। —Hegel's Philosophy of History.
हीगल की व्याख्या यद्यपि कुछ गूढ़ अवश्य है, परन्तु है अति सुन्दर।

‡ देवेन्द्रबाबू ने अपनी अति मनोहर और सुन्दर पुस्तिका 'आदर्श सुधारक दयानन्द' में जिसका आर्य भाषानुवाद श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा युक्तप्रान्त की ओर से छप चुका है, इस विषय का बड़े गम्भीर और मर्मग्राहीभाव से प्रतिपादन किया है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में प्रतिष्ठित होना है, तो दयानन्द-प्रदर्शित मार्ग का अवलम्बन करने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

परन्तु खेद है कि भगवान् दयानन्द के जीवन-चरित सम्बन्धी सामग्री के एकत्र करने का कोई क्रमबद्ध और संगठित रीति से यत्न नहीं किया गया। "जिन्होंने जन्म ग्रहण करके सौराष्ट्र भूमि को समुज्ज्वल किया, जिनके आविर्भाव से सौराष्ट्र भूमि ने अपने कण्ठ में गौरव की माला धारण की, उनके सम्बन्ध में, उनके नाम, जन्मस्थान, बाल्यचरित के सम्बन्ध में सौराष्ट्रवासी सर्वथा उदासीन और आस्थाहीन हैं। मूर्त्तिपूजक हिन्दुओं से तो ऐसी आशा करनी ही व्यर्थ है, क्योंकि ऋषि ने मरणपर्यन्त मूर्त्तिपूजा पर अस्त्रनिक्षेप किया और काठियावाड़ में अधिकतर वल्लभ-सम्प्रदायवाले और स्वामी-नारायण-मतानुयायी बसते हैं और दोनों के मन्तव्य ही ऋषि की तीव्र आलोचना का विषय रहे हैं। सामवेदी औदच्यों में अब न विद्या है और न धन है, वे अधिकतर भिक्षोपजीवी हैं। उनसे यह आशा करना कि वे अपनी जाति के इस महापुरुष की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं में कुछ मनोग्राहिता दिखाएँगे, दुराशामात्र है§। अस्तु, आर्यसमाज को इस विषय में जितना सचेष्ट होना चाहिए था

---

§ स्वयं मौरवी के ठाकुर साहब ने जिन्होंने ऋषि से साक्षात करने पर यह कहा था, "मुझे बहुत गर्व है कि आप-जैसा रत्न मेरे राज्य में उत्पन्न हुआ", देवेन्द्रबाबू के कार्य में मनोलग्नता से सहायता नहीं दी, तब अन्यों की तो कथा ही क्या है। यदि ठाकुर साहब मौरवी आन्तरिकता के साथ उनके कार्य में योग देते तो ऋषि के नाम और जन्मस्थानादि के लिखित प्रमाण उपलब्ध होने सम्भव थे और फिर इस विषय पर कोई विवाद वा सन्देह करने को जगह न रहती। अस्तु, यह तो हुई उन लोगों की बात जो ऋषि के गौरव को या तो जानते ही नहीं थे या जान-बूझकर द्वेष वा साम्प्रदायिक दुराग्रह के कारण उसे नहीं मानते; परन्तु सबसे अधिक दुःख आर्यसमाज पर प्रकट करना पड़ता है। उसने भी कोई वास्तविक प्रयत्न इस विषय में नहीं किया। उनके परमधाम सिधारने के कितने ही वर्ष पीछे आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने स्वर्गीय पण्डित लेखरामजी को ऋषि-जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का अनुसन्धान करके उन्हें सर्वाङ्गपूर्ण जीवनी के रूप में प्रकाशित करने के लिए नियत किया था। प्रशंसित पण्डितजी ने कई वर्ष तक इस कार्य को बड़ी लगन और उत्साह के साथ किया और उन्होंने अनेक स्थानों पर अनेक लोगों से मिलकर बहुत-सी घटनाओं को ज्ञात करके नोट भी लिये। वे नाम, जन्मस्थानादि का निर्धारण करने के लिए टङ्कारा, मौरवी प्रभृति स्थानों में भी गये, परन्तु उन्हें अधिक कृतकार्यता न हुई और वहाँ से कुछ लोगों की बातों को लिखकर लौट आये। इसके पश्चात उन्हें इतना समय नहीं मिला जो स्वयं अपनी संग्रहीत सामग्री के आधार पर ऋषि-जीवन-कथा वर्णन कर पाते। सन १८९७ में एक दुष्ट यवन ने उनका वध कर डाला। उनके देहान्त के पश्चात श्रद्धास्पद श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी (पूर्व ला० मुंशीराम) ने उन नोटों को देखा और लाला आत्माराम अमृतसरी द्वारा उन्हें एकत्र करके पुस्तकाकार में छपवा दिया, जो अब पं० लेखरामकृत दयानन्द-जीवन-चरित के नाम से प्रसिद्ध हैं। उसमें अनेक त्रुटियाँ हैं और वह किसी अर्थ में भी क्रमबद्ध अथवा घटनाओं की आनुपूर्विकता की दृष्टि से शृंखलाबद्ध जीवन-चरित नहीं कहा जा सकता, परन्तु उसके लिए पं० लेखरामजी को उत्तरदाता समझना उतना ही न्यायप्रतिकूल है जितना स्वर्गीय देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को इस ग्रन्थ का उत्तरदाता समझना होगा जो हम उनकी एकत्र सामग्री के आधार पर पाठकों के सामने रख रहे हैं। जो सामग्री पं० लेखराम इकट्ठी करके छोड़ गये वह उस कच्चे बहुरंगे सूत के गोले के समान थी जो एक जुलाहे को कई रंगों से युक्त वस्त्र बनाने के लिए दिया जाए। तन्तुवाय को सबसे पहले प्रत्येक रंग के सूत को सुलझाकर अलग-अलग नलियों पर चढ़ाना और फिर ताना तानना होगा। उसके पश्चात राछ में भरना होगा। तब उसे जो-जो और जितना-जितना सूत जहाँ अपेक्षित होगा लगाना होगा, तब कहीं वस्त्र प्रस्तुत कर सकेगा। ऐसे ही उस सामग्री में से प्रथम असम्बद्ध बातों को पृथक करना और फिर शेष बातों को विषय के अनुसार अलग-अलग करना और तर्क और विश्लेषण की क्षुरिका हाथ में लेकर समालोचना के प्रकाश में जो असत्य वा असम्भव वा निराधार सिद्ध हो उसे काट-छाँटकर रद्दी की टोकरी में फेंकना और अन्त में सबको यथास्थान संगठित करना जीवन-चरित लेखक के अपरिहार्य कार्य हैं। यदि सामग्री को जिस रूप में है उसी रूप में सर्वसाधारण के सामने रखकर उसे जीवन-चरित का नाम दे दिया जाए तो वह ऐसा ही है जैसाकि पाँच-सात रंग के सूत के ढेर को वस्त्र की संज्ञा से अभिहित किया जाए, अतः हम पं० लेखराम की एकत्र सामग्री को क्रमबद्ध जीवन-चरित नहीं कह सकते और न जो कुछ इस नाम से छपा है उसके विषय में यह कह सकते हैं कि पण्डितजी उस सबको सत्य मानते थे। उक्त ग्रन्थ में ऋषि के नाम और जन्मस्थान के विषय में जो कुछ भी लिखा गया है वह हमारे अनुमान में पण्डितजी की विचारपूर्वक स्थिर की हुई सम्मति नहीं है। देवेन्द्रबाबू ने कई स्थलों पर यह कहकर कि पं० लेखराम अपने रचे दयानन्द-चरित में अमुक घटना लिखते हैं, कई घटनाओं का खण्डन किया है। हम समझते हैं उन्होंने ऐसाइस बात को जाने बिना ही किया है कि वह दयानन्द-चरित वास्तव में पं० लेखरामरचित नहीं है। हाँ, यह दुःख अवश्य है कि सर्वसाधारण ने उसे पं० लेखरामकृत समझ लिया और वह प्रामाणिक गिना जाने लगा और अन्य कई लेखकों ने भी जिन्होंने आर्यभाषा, उर्दू वा अंग्रेज़ी में ऋषि-जीवनी लिखी, उसी का अनुकरण किया। इस प्रकार यह भ्रम सर्वसाधारण में फैल गया और अब दूसरे लेखक को इतना कार्य और बढ़ गया कि वह उन भ्रमों और त्रुटियों का भी खण्डन करे। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह उतना सचेष्ट नहीं हुआ। यदि उसी समय जबकि आर्यसमाज स्थापित होने आरम्भ हो गये थे किसी सुशिक्षित लेखक को ऋषि के साथ रख दिया जाता और वह उनकी व्याख्या, शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तरों को लिपिबद्ध करता रहता तो उसके द्वारा निःसन्देह संसार का बड़ा उपकार होता। श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास कहते हैं कि स्वामीजी ने राजकोट में वेद-विषय पर ऐसा व्याख्यान दिया था कि उच्चता, गम्भीरता और युक्ति-युक्तता में, मेरी सम्मति में यह अपूर्व था। इस प्रकार के केवल एक व्याख्यान से ही संसार वञ्चित नहीं रहा है, बल्कि न जाने इस प्रकार के कितने अपूर्व व्याख्यानों से मानव-समाज को वञ्चित रहना पड़ा है। जिसका धार्मिक जीवन अशेष अभिज्ञता पर प्रतिष्ठित था, जिनकी शास्त्रदर्शिता, तार्किकता, मनस्विता सब प्रकार से असाधारण थी और विशेषतः जिनके निष्कण्टक ब्रह्मचर्य का निर्मल प्रभाव उस शास्त्रदर्शिता, तार्किकता और मनस्विता को उज्ज्वल और सुतीक्ष्ण बनाता था, उनके मुख से निकला हुआ उपदेश नहीं, वरन् एक-एक शब्द लिपिबद्ध करने, मनुष्यों के आलोचना करने तथा संसार के कल्याणार्थ प्रचार करने योग्य था, परन्तु दुःख है उस समय आर्यगण इस बात को हृदयङ्गम नहीं कर सके और किसी लेखक को नियुक्त करके स्वामीजी के साथ नहीं रख सके और रखते भी कैसे ? आर्यसमाज वा आर्यसमाजियों के कलेवर को किसी स्वर्गागत वा अन्य अज्ञात लोकागत देवता ने तो परिपुष्ट किया ही नहीं, वे भी तो उन्हीं हिन्दुओं में से हैं, उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी तो उन्हीं हिन्दुओं से बना है, जिनके पास इतिहास नाम की कोई वस्तु नहीं, जिनके चरित्र में कोई ऐतिहासिक नाम की वृत्ति लक्षित नहीं होती, जिनमें किसी घटनाविशेष को, चाहे वह कैसी ही गुरुतर वा आवश्यक क्यों न हो, लिपिबद्ध करने की प्रणाली देखने में नहीं आती। फिर आर्यसमाजियों के चरित्र में ऐतिहासिक भावों का आविर्भाव कैसे हो सकता था ? हम यद्यपि आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं, तथापि इस बात के कहने से नहीं रुक सकते कि आर्यसमाज का जीवन नितान्त दुर्बल है, ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त क्षीण है और उसमें किसी विषय को विचार की तथा विश्लेषणपूर्ण दृष्टि से देखने की शक्ति अत्यल्प है।

यदि आर्यसमाज स्वामीजी के देहान्त के पश्चात् ही किसी व्यक्ति को उनके जीवनवृत्त लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने के लिए नियत कर देता, तो भी इतनी अड़चन न पड़ती, इतना परिश्रम न करना पड़ता और अनेक ऐसी घटनाओं का ठीक-ठीक पता लग जाता जिनका अब, इस कारण से कि उनके जाननेवाले इस संसार में नहीं हैं, कोई पता नहीं लगा सकता। बहुत-सी ऐसी बातें जो अब सन्दिग्धावस्था में हैं, स्पष्ट हो जातीं और बहुत-सी विघ्न-बाधाएँ जो अब मार्ग की अवरोधक हुई हैं, न होतीं, परन्तु आर्यसमाज ने इस विषय में कोई यत्न करना आवश्यक नहीं समझा। उस आर्यसमाज ने जिसके हाथ में स्वामीजी अपनी शिक्षा के प्रचार का कार्य सौंप गये थे और जो आज सहस्र मुख से उनके गुण-कीर्त्तन करता हुआ नहीं थकता, उस आर्यसमाज ने जो उन्हें ऋषि-पदवी प्रदान करने में अत्यन्त आग्रही है, जो उनके वचनों को निर्भान्त तक मानने को भी शायद उद्यत हो सकता है, यह आवश्यक नहीं समझा कि उनका एक सर्वाङ्गपूर्ण जीवन-चरित प्रकाशित करने का यत्न करे और न उस परोपकारिणी सभा ने ही, जिसे स्वामीजी ने अपना उत्तराधिकारी बनाया, इस विषय में कुछ ध्यान दिया। कितनी घोर कर्त्तव्यच्युति है ! कितनी अतुलनीय कर्त्तव्यग्लानि है !!

विगत चालीस वर्षों में जब भारत की जनसंख्या के चालीस भागों में से एक भाग दयानन्द के अधिकृत हो गया है, भारतवासियों में से तीन-चार लाख मनुष्यों के हृदय पर दयानन्द ने अपना आसन जमा लिया, सैकड़ों पाश्चात्यालोकप्राप्त, पाश्चात्य-भव-परिपुष्ट हिन्दू सन्तानों के जीवन का आदर्श स्वामी दयानन्द की शिक्षा और संसर्ग से परिवर्त्तित हो गया है, दयानन्द का स्थापित किया आर्यसमाज भारत के प्रायः सभी भागों में अपनी शाखाओं का विस्तार करने में समर्थ हो गया है, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैनप्रभृति धर्मों और अंग्रेज़ राजपुरुषों ने उसे प्रबल और प्रधानशक्ति मान लिया है, तो यह कौन कह सकता है कि और चालीस वर्ष वा चार सौ वर्ष पीछे लाखों हिन्दू व अन्य मतावलम्बी दयानन्द के नाम पर अपनी प्रीति और भक्ति की पुष्पाञ्जलि अर्पित नहीं करेंगे ? कौन कह सकता है कि हिमालय के पादप्रदेश से कन्याकुमारी तक सारे स्थानों में, भारतभूमि के अधिकांश स्थलों में दयानन्द का प्रभाव प्रतिष्ठित नहीं होगा ? कौन कह सकता है कि आर्यसमाज उस समय बहुशाखा-प्रशाखासमन्वित एक विशाल वृक्ष के समान भारतभूमि में बद्धमूल न होगा। बुक्क राजा का मन्त्रित्व प्राप्त करके सायणाचार्य जिस वेदभाष्य का प्रणयन कर गये हैं, यदि वह वेदभाष्य प्रायः ५०० वर्ष के भीतर ही इतना प्रचलित हो गया है और हिन्दुओं का अधिकांश उसे स्वीकार करने लगा है, तो कौन कह सकता है कि अपने जीवनभर ज्ञान की आराधना करके अपने चरित्र में अखण्ड ब्रह्मचर्य का उज्ज्वल दृष्टान्त दिखाकर दयानन्द जिस वेदभाष्य की रचना कर गये हैं वह वेदभाष्य पाँच सौ वर्ष पीछे लाखों मनुष्यों के सम्मान का पात्र नहीं होगा ? कौन कह सकता है कि इस देश के भावी वंशीयगण शङ्कर और रामानुज के आचार्यत्व को इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा और सम्मान के साथ ग्रहण नहीं करेंगे जितनी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रद्धा और भक्ति के साथ वे अब करते हैं ? कौन कह सकता है कि भारत की आचार्य-मण्डली में स्वामी दयानन्द आचार्यशिरोमणि का पद प्राप्त न करेंगे ? पाठक ! विवेचना करके देखो, क्या दयानन्द-दिवाकर के मध्याह्निक विकास के समय तत्कालीन मनुष्यों के मन में स्वतः ही यह प्रश्न नहीं उठेंगे कि ये दयानन्द कौन थे ? वे किस कुल वा परिवार में जन्म लेकर समस्त भारत को धन्य कर गये हैं ? कौन भाग्यवान् पिता इस पुरुषरत्न के जन्मदाता थे ? यदि इन सब विषयों का निर्धारित, निश्चित और प्रमाणित विवरण न रहेगा तो इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि भावी वंशीयगण बड़ी गड़बड़ में पड़ेंगे और नाना मनुष्य नाना प्रकार के मत प्रकट करेंगे और विरोधी पक्ष बहुत प्रकार की अलीक और अवास्तविक बातों के प्रचार में अग्रसर होंगे ? अतः हम भारत के इतिहास की रक्षा के नाम पर और दयानन्द-चरित के गुरुत्व और सर्वाङ्गीणत्व के नाम पर सहस्र बार यह बात कहेंगे कि स्वामीजी की जन्म-भूमि आदि के विवरण का प्रामाणिक भित्ति पर स्थापित होना नितान्त आवश्यक है।

काल के अनागत स्तर में जो कुछ होनेवाला है वा जिसके होने की पूरी सम्भावना है वह काल के वर्तमान स्तर का आश्रय लेकर ही होगा। सदा ऐसा ही हुआ है और अब भी ऐसा ही हो रहा है, अतः हमें यत्न करना चाहिए कि हम स्वामीजी के विषय में यथाशक्य सब बातें स्पष्ट रूप में स्थिर कर जाएँ ताकि आनेवाले समय में किसी को उनके विषय में भ्रम न रहे। हम देख रहे हैं कि अब भी कई दुष्ट दुरभिसन्धि-प्रचालित मनुष्य उनके जन्म-स्थानादि के विषय में नाना प्रकार की मिथ्या बातों के प्रचार में लगे हुए हैं। हमें विश्वास रखना चाहिए कि स्वामीजी के जीवन, उनकी शिक्षा, उनके सिद्धान्त यहाँ तक कि उनके सामान्य कार्य भी भारत के भावी वंशीयगण की गुरुतर आलोचना के विषय होंगे। उनकी बातों को लेकर उनकी शिक्षा के विरोधी सहस्रों मनुष्य प्रत्येक दिशा से समालोचना के सुतीक्ष्ण बाणसमूह का निक्षेप करेंगे। ऐसी दशा में यह बहुत ही अच्छा होता यदि स्वामीजी अपनी मृत्यु से पहले अपने नाम और जन्म-स्थानादि की कथा प्रकाशित कर देते, परन्तु दुःख का विषय है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया या वे ऐसा नहीं कर सके।§

जैनसम्प्रदाय बहुत दिन से स्वामीजी का घोर विरोधी चला आता है। पं० जियालाल नामक एक जैन ने कई वर्ष हुए एक मिथ्यापूरित निन्दोक्तिपूर्ण पुस्तक 'दयानन्द-छल-कपट-दर्पण' नामक प्रकाशित की थी। उसमें जो बातें लिखी हैं उनका कोई प्रमाण नहीं और न कोई प्रमाण हो सकता है। वह सर्वथा निराधार और निर्मूल हैं। ऐसी ही अलीक घटनाओं से उक्त पुस्तक का कलेवर बना है। ऐसी पुस्तक की समालोचना करनी तो दूर रही, उसका नामोल्लेख करना भी निष्प्रयोजनीय है।

स्वामीजी के चिरवैरी देवसमाज लाहौर के स्थापक सत्यानन्द अग्निहोत्री ने एक बार अपने एक शिष्य को मौरवी भेजा कि वहाँ से स्वामीजी के सम्बन्ध में कुछ मिथ्या और ग्लानिकर समाचार संग्रह करके ले आवे, परन्तु शिष्य अपने देवगुरु की सदिच्छापूर्त्ति में अकृतकार्य रहा और निष्फल प्रयत्न होकर लौट आया। इसके कुछ दिन पीछे मौरवी महाराज के पुरोहित कवि नानाजी पुरुषोत्तम लाहौर आये और उस शिष्य का उसके साथ साक्षात्कार हुआ। शिष्य उन्हें देख गुरु के पास ले-गया और उन्होंने राजपुरोहित को कुछ प्रलोभन दिखाकर उनसे कहा कि आप यह लिख दें कि "दयानन्द छल-कपट दर्पण" में लिखी हुई बातें सत्य हैं, परन्तु उन्होंने इस बात को स्वीकार न किया और अपने मन में देवगुरु के प्रति घृणा के भाव लेकर वे लौट आये। यह सच है कि अग्निहोत्री सत्यानन्द मिथ्या मेघ की सृष्टि करने के यत्न में समर्थ नहीं हुए और उनका पुनीत उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, परन्तु यदि पूरा भी हो जाता तो सत्य बहुत दिनों तक छिपा नहीं रह सकता था। मेघ छोटा हो वा बड़ा, तरल हो वा गम्भीर, बहुत समय तक सहस्ररश्मि को अस्तमित करके नहीं रख सकता। ऐसे ही मिथ्या के सहस्र प्रचार से भी सत्य का सूर्य बहुत काल तक अस्तमित नहीं रह सकता। सत्य को कोई लाख यत्न से छिपाए, परन्तु वह एक-न-एक समय अवश्य ही प्रकट होकर रहेगा। यह सत्य है कि सत्य की शक्ति चिरकाल तक अजय और अक्षुण्ण रहती है, परन्तु फिर भी इतिहास व जीवन-चरित-प्रणयन के क्षेत्र में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गवेषणा की आवश्यकता है, परिवेष्टनीय शक्ति के विश्लेषण के लिए घटनाओं का यथायथपूर्वक अवधारण करके उनके प्रभाव को स्पष्टरूप से दर्शाना नितान्त कर्त्तव्य है। यदि ऐसा न किया जाए तो दुर्जनों को अपने मिथ्या जाल फैलाने का सु-अवसर मिलता है। पाठक स्वयं देख सकते हैं

§ पण्डित शिवराम पाण्डे वैद्य, प्रयाग से ज्ञात हुआ कि मिर्ज़ापुर में स्वामीजी ने उनसे कहा था कि देहान्त होने से पहले वे अपने जन्मस्थानादि की कथा लिखकर किसी विश्वस्त व्यक्ति को दे जाएँगे, परन्तु वे मृत्यु से पहले घोर पीड़ा में रहे और ज्ञात होता है इसी कारण वे न लिख सके।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि यदि आर्यसमाज ने यत्नपूर्वक स्वामीजी के जन्मस्थान, परिवारादि का निर्धारण कर दिया होता तो जैनी जीयालाल और अग्निहोत्री सत्यानन्द जैसे विरोधियों को ऐसे दुःसाहस का साहस न होता।

उपसंहार

अब हमारा दयानन्द-परिक्रम व्रत परिसमाप्त हो गया। संन्यासी परमहंसों के गङ्गापरिक्रम के समान दयानन्द-गङ्गा के परिक्रम का कार्य शेष हो गया। परमहंसगण गङ्गा की उत्पत्ति-भूमि से आरम्भ करके गङ्गा के किनारे-किनारे विचरते हुए गङ्गासागर तक गमन करके अपने परिक्रम का कार्य समाप्त करते हैं। हमने भी दयानन्द के जन्म-गृह से आरम्भ करके उनकी श्मशान-भूमि तक पर्यटन किया है। टङ्कारा से, जिसके जीवापुर मुहल्ले के जिस घर में उन्होंने जन्म लिया था, आरम्भ करके अजमेर के तारागढ़ के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस निदारुण श्मशान-भूमि को देखकर आये हैं जहाँ उस भारत के सूर्य के दिव्यदेह को चितानल ने कुछ मुट्ठीभर भस्म में परिणत कर दिया था। जैसे गङ्गापरिक्रमकारीजन गङ्गा के दैर्घ्य, गङ्गा के विस्तार, गङ्गा की विशालता, गङ्गा की भीषणता, गङ्गा के आवेग, गङ्गा के आवर्त, गङ्गा के क्षोभ, गङ्गा की तरङ्ग, गङ्गा की कल्लोल और गङ्गा की हिल्लोल को देखते हैं, वैसे ही हमने भी दयानन्द-गङ्गा का सब-कुछ देखा है; इसके प्रत्येक तरङ्ग-निक्षेप पर दृष्टि दी है। कोई-कोई संन्यासी कहते हैं कि हरिद्वार से आरम्भ करके गङ्गासागर तक पर्यटन करने में प्रायः तीन वर्ष लगते हैं, परन्तु हमने दयानन्द-गङ्गा के परिक्रम में प्रायः पन्द्रह वर्ष काटे हैं, अतः दयानन्द-गङ्गा हरिद्वारवाहनी गङ्गा की अपेक्षा कुछ दीर्घतर है, कुछ विशालतर है। संन्यासी परमहंसगण अपने विश्वास में गङ्गा-परिक्रमण वा नर्मदा-परिक्रमण से कुछ-न-कुछ पुण्यार्जन करते हैं। पाठक! तो क्या हमने दयानन्द-गङ्गा का परिक्रमण करके कुछ पुण्यार्जन नहीं किया है ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो शब्द

महाभारत युद्ध के पाँच सहस्र वर्ष पश्चात् भारत में दयानन्द के रूप में एक महर्षि का प्रादुर्भाव हुआ। महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व अनुपम था। वे अनुपमेय थे। उनकी तुलना करना सम्भव नहीं। यदि यह कहा जाए कि वे सूर्य के समान थे तो बात जँचती नहीं, क्योंकि सूर्य ढलता है, यदि उन्हें चन्द्रमा से उपमित किया जाए तो चन्द्रमा घटता और बढ़ता है—इन दोनों को ग्रहण भी लगता है। यदि उनकी समुद्र से उपमा दी जाए तो भी बात ठीक नहीं है, क्योंकि समुद्र खारी है। हिमालय भी उनकी समता नहीं कर सकता, क्योंकि हिमालय गलता है। दयानन्द तो बस दयानन्द ही थे।

महर्षि दयानन्द वेदोद्धारक, योगिराज और आदर्श सुधारक थे। महर्षि ने उस समय समाज में फैली हुई सभी कुरीतियों का भरपूर खण्डन किया। महर्षि दयानन्द मूर्त्तिपूजा के प्रबल शत्रु थे। उन्होंने अवतारवाद का खण्डन किया, मृतकश्राद्ध की अवैदिकता सिद्ध की। महर्षि दयानन्द के खण्डन से पौराणिक उनके घोर विरोधी हो गये। यदि ऋषिवर मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद आदि का खण्डन न करते तो वे करोड़ों हिन्दुओं के पूज्य बन जाते। उन्हें भी अवतार घोषित कर दिया जाता, स्थान-स्थान पर उनके मन्दिर बन जाते, उनकी पूजा और उपासना आरम्भ हो जती। महर्षि दयानन्द के खण्डन पक्ष के कारण पौराणिकों ने ऋषि के प्रति कोई श्रद्धा नहीं दिखाई।

आर्यसमाज महर्षि दयानन्द का उत्तराधिकारी है, परोपकारिणी सभा, अजमेर को वे अपनी सारी सम्पत्ति सौंप गये थे। इन्हें महर्षि के प्रति जिस कर्त्तव्य का पालन करना था, उसमें प्रमाद हुआ। आर्यप्रतिनिधि सभा, पञ्जाब, लाहौर ने ऋषि की मृत्यु के पाँच वर्ष पश्चात् पं० लेखरामजी को ऋषि-जीवन की खोज का कार्य सौंपा। उस अमरशहीद, धुन के धनी, दयानन्द के दीवाने ने दिन-रात एक करके महर्षि दयानन्द के जीवन की सामग्री एकत्र की। यदि उन्हें प्रचार-कार्य से मुक्त कर दिया जाता तो वे प्रामाणिक जीवनी लिख जाते, परन्तु उनके बलिदान के कारण यह कार्य अधूरा ही रह गया।

एक बङ्गाली सज्जन बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के हृदय में प्रबल भावना उत्पन्न हुई कि महर्षि की जीवनी लिखी जाए। वे ऋषि की जीवनी लिखने में क्यों प्रवृत्त हुए इसका वर्णन उन्होंने अपनी भूमिका में कर दिया है। श्री देवेन्द्रनाथजी आर्यसमाजी नहीं थे फिर भी ऋषि के जीवन से प्रभावित होकर उन्होंने अपने जीवन के १५-१६ वर्ष लगाकर और सहस्रों रुपया व्यय करके ऋषि-जीवन की सामग्री एकत्र कर ली। सामग्री एकत्र करके वे महर्षि की प्रामाणिक और क्रमबद्ध जीवनी लिखने के लिए बैठ गये, परन्तु अभी भूमिका और चार अध्याय ही लिख पाये थे कि उनपर फालिज गिर गया और इसी में उनका देहावसान हो गया। उनके द्वारा संग्रहीत साममग्री तथा पं० लेखरामजी आर्यपथिक और स्वामी सत्यानन्दजी के 'श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश' की सहायता से पं० श्री घासीरामजी ने इसे पूर्ण किया।

महर्षि का यह सबसे अधिक प्रामाणिक जीवन-चरित है। इसके दो संस्करण आर्यसाहित्य मण्डल, अजमेर से प्रकाशित हुए थे। दूसरे संस्करण का संशोधन पं० श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक ने किया था। उन्होंने अनेक स्थानों पर उपयोगी टिप्पणियाँ दी थीं, जिनपर उनके नाम का संक्षिप्त रूप यु०मी० लिखा हुआ है।

लगभग ३० वर्षों से यह पुस्तक बाज़ार में उपलब्ध नहीं थी, पुस्तक की माँग थी। मेरी प्रेरणा पर गोविन्दराम हासानन्द के स्वामी और सञ्चालक श्री अजयकुमार ने इस महनीय ग्रन्थ को प्रकाशित करके अपनी ऋषि-भक्ति का परिचय दिया है।

इस संस्करण का सम्पादन मेरे द्वारा हुआ है। पूर्व प्रकाशित संस्करणों में अनेक अशुद्धियाँ रह गई थीं, उनका संशोधन कर दिया है। कहीं-कहीं शब्दों को आगे-पीछे करके भाषा में निखार लाने का प्रयत्न किया है। आधुनिक साज-सज्जा में प्रकाशित इस ग्रन्थ का पाठक स्वागत करेगा, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

स्वामी सत्यानन्द स्मारक ट्रस्ट, आर्यसमाज हिण्डौन ने सौ प्रतियों का अग्रिम धन देकर जो सहयोग किया है, तदर्थ उनका हार्दिक आभारी हूँ।

प्रिय विजय कुमार झा ने जिस परिश्रम और मनोयोग से पुस्तक को सजाया है, तदर्थ उन्हें भी साधुवाद देता हूँ।

वेदसदन
एच-१।२, मॉडल टाउन, दिल्ली-६

विदुषामनुचरः
—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित

प्रथम अध्याय

संवत् १८८१ वि०=१८२४-२५ ई०

भारत-भूमि के पश्चिम में मुम्बई गवर्नमैण्ट के अधीन उपद्वीप के आकार का एक प्रदेश है। इस प्रदेश का सौरदेश गुर्जर-भूमि के साथ सम्बन्ध है। इसके दो ओर कैम्बे और कच्छ उपसागर दो भुजाओं के समान विस्तृत हैं और इसके पैरों को अरब-सागर की अनन्त ऊर्मिमाला नित्य प्रक्षालित करती है।

पुराणादि ग्रन्थों में इस प्रदेश को सौराष्ट्र नाम से पुकारा गया है। अब यह काठियावाड़§ के नाम से प्रसिद्ध है। काठियावाड़ का थोड़ा-सा ही भाग अंग्रेज़ी राज्य के अधिकार में है और उसका शेष भाग देशीय राजाओं के शासन और नियन्त्रण में है और छोटे-बड़े खण्ड-राज्यों में विभक्त है, जिनपर बहुत-से छोटे-छोटे राजाओं के अधिकार हैं। इन्हीं खण्ड-राज्यों के अन्तर्गत एक मौरवी राज्य भी है। मौरवी का प्राचीन-नाम मयूरध्वजपुरी था।

मौरवी राज्य भी कई विभागों में विभक्त है। उसके एक भाग का नाम टङ्कारा है। टङ्कारा एक बड़ा और विशेष ग्राम है। किसी समय वह अपने वाणिज्य-व्यापार की अधिकता, धनशालिता तथा अपने निवासियों

---

§ काठिजाति से ही काठियावाड़ शब्द उत्पन्न हुआ है। बहुत काल पहले काठि लोगों ने सौराष्ट्र में आकर अपना अधिकार स्थापित किया था और इसलिए सौराष्ट्र का वह भाग जिसपर काठिजाति के लोगों ने अधिकार स्थापित किया था काठियावाड़ के नाम से प्रसिद्ध हो गया, परन्तु बाद में सम्भवतः महाराष्ट्रिय विजेताओं ने सारे देश को ही काठियावाड़ नाम दे दिया और उनकी देखादेखी ब्रिटिश गवर्नमैण्ट ने भी सारे देश को इसी नाम से अभिहित करना आरम्भ कर दिया। जिस भाग पर आरम्भ में काठि लोगों नें अधिकार स्थापित किया था वास्तव में वही काठियावाड़ है और गवर्नमैण्ट के काग़ज़ों में उसे अब भी Kathiyawar proper लिखा जाता है। मुसलमान राज्यकाल में काठियावाड़ को "सरकार सूरत" कहते थे।

प्राचीनकाल में काठि लोग किसी नियत स्थान पर घर बनाकर नहीं रहते थे, प्रत्युत अपने पशुओं को लिये हुए जहाँ-तहाँ घूमते रहते थे। एशिया-माइनर के अन्तर्गत कुर्दिस्तान उनकी आदिम निवासभूमि थी, बहुत-से लोगों का ऐसा मत है। बाइबिल के ओल्ड टेस्टामैण्ट (प्राचीन विधान) में काठि लोगों को हिट्टाइटीज़ (Hittities) नाम से सम्बोधित किया गया है। वे अनेक स्थानों में युद्ध करते और अनेक देशों को लूटते-खसोटते अन्त में भारतवर्ष में आये। उस समय प्रसिद्ध महाराजा पौरस ने इन्हें इस देश से निकाल दिया था, परन्तु पीछे महाराजा शालिवाहन के समय में उन्होंने फिर आकर राजपूताने में अरावली पर्वत के निकट अपनी बस्तियाँ बना लीं। वहाँ से वे मालवा आये, मालवा से कच्छ में, कच्छ से सौराष्ट्र में आकर बस गये और कुछ काल पश्चात् वहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित कर लिया। यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि वे सौराष्ट्र में किस समय आये। काठि लोग हिन्दू नहीं है, परन्तु चिरकाल से हिन्दुओं के देश तथा संसर्ग में रहते-रहते वे ब्राह्मणों में श्रद्धा और हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करने के अभ्यासी हो गये हैं। असल में काठि लोग सूर्य के उपासक हैं और सूर्य ही उनका आराध्य देव है। थल नामक स्थान में उनका बनाया हुआ सूर्य का मन्दिर भी विद्यमान है। वे अपनी दस्तावेज़ें और आवश्यक काग़ज़-पत्रादि भी सूर्य की शपथ लेकर लिखते हैं और किसी-किसी विशेष कार्य को आरम्भ करने से पहले सूर्य की प्रार्थना करते हैं। वे बड़े ही अतिथि-सेवक और अत्यन्त मिलनसार हैं, परन्तु साथ ही वे आलसी भी बड़े हैं और उनमें कुसंस्कार भी बहुत हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की संख्या के कारण सारे काठियावाड़ में प्रसिद्ध था। सन् १८७२ ई० में उसकी जनसंख्या ली गई थी तो ४६०३ हुई थी। सन् १८८१ में उसकी जनसंख्या ५७२४ थी, परन्तु सुनते हैं किसी समय उसके निवासियों कि संख्या सात-आठ हज़ार थी। उक्त कारणों से टङ्कारा की गिनती नगरों में होती चली आती है।§ सन् १६१८ ई० में विषूचिका रोग के भयङ्कर प्रकोप से बहुत-से लोग मर गये और उसकी जनसंख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई।

टङ्कारा एक नगर है और वह कितने ही भागों वा मोहल्लों में विभक्त है। उसका जीवापुर मोहल्ला दरबारगढ़ वा राजमहल से थोड़ी ही दूर पर पश्चिम की ओर अवस्थित है। जब टङ्कारा दुर्ग की परिखा बनी हुई थी तब उसकी पश्चिम की परिखा को पार करना पड़ता था और थोड़ी ही दूर आगे चलकर जीवापुरा में पहुँच जाया करते थे। इस समय परिखा टूट-फूटकर भूमि के समतल हो गई है, उसका केवल थोड़ा-सा भाग खड़ा है, जो टङ्कारा-दुर्ग को जीवापुरा मोहल्ले से अलग करता है।

कर्शनजी त्रिवाड़ी—जिस समय की बात हम कह रहे हैं, उस समय जीवापुर मोहल्ले में कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी नाम के एक सामवेदी उदीच्य ब्राह्मण निवास करते थे। कर्शनजी उनका और लालजी उनके पिता का नाम था। काठियावाड़ में यह प्रथा चली आती है कि लोग अपने नाम के साथ अपने पिता का नाम जोड़कर बोलते है, इसी कारण हमने उन्हें कर्शनजी लालजी लिखा है। त्रिवाड़ी उनकी उपाधि थी। त्रिवाड़ी शब्द त्रिपाठी शब्द का अपभ्रंश है। इससे ज्ञात होता है कि कर्शनजी के पूर्वपुरुष वंशपरम्परा के अनुसार त्रिवेद के पाठ में प्रवृत्त रहते थे। उदीच्य कहने से उत्तर दिशा वा उत्तर देश के व्यक्ति से प्रयोजन है। अन्हलवाड़ा के अधिपति मूलराज सोलङ्की ने किसी विशेष कार्य के लिए उत्तर भारत के अनेक स्थानों से एक सहस्र शुद्धचरित्र और वेदवेदाङ्ग-परायण ब्राह्मणों को बुलाकर और उनकी यथोचित सेवा और सत्कार करके उन्हें गुजरात प्रदेश के नाना स्थानों में बसाया था। वही ब्राह्मणगण गुजरात और काठियावाड़ प्रदेश में 'उदीच्य-सहस्र' नाम से प्रसिद्ध हुए।‡ कर्शनजी के त्रिवाड़ी-उपाधिधारी होने से ही विदित होता है कि उनके पूर्वपुरुष इन्हीं 'उदीच्य-सहस्र' ब्राह्मणों में से थे।

---

§ जिन-जिन लक्षणों से किसी स्थान की गिनती नगरों में हो सकती है, वे सब लक्षण टङ्कारा में विद्यमान हैं। श्री देवेन्द्रबाबू ने यह बात विशेषरूप से अपनी "दयानन्द सरस्वती के जन्मस्थानादि का निर्णय" नामक पुस्तक में लिखी है। इस पुस्तक में दयानन्द के पिता और पूर्वपुरुषों के सम्बन्ध में इस बात की तर्क और प्रमाणपूर्वक आलोचना और मीमांसा की गई है। उक्त पुस्तक को मनोयोग से पढ़े बिना दयानन्द के जीवन-वृत्त के उस अंश को जिसमें उनकी जन्मभूमि आदि का वर्णन है, भली-भाँति नहीं समझा जा सकता। पाठकों के लाभार्थ उक्त पुस्तक परिशिष्टरूप से इस ग्रन्थ के अन्त में छाप दी गई है।

‡ गुजरात का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि मूलराज सोलंकी अन्हलवाड़ा के राजा थे। वे अपने मातृपक्ष के किसी बन्धु के वध के कारण चित्त में इतने अनुतप्त हो गये थे कि उन्होंने राज्य का कार्य करना तक छोड़ दिया था और तीर्थयात्रादि करने चले गये थे, परन्तु जब तीर्थयात्रा से भी वे चित्त की शान्ति प्राप्त न कर सके तब वे उत्तर भारत से एक सहस्र शुद्धचरित्र और वेदविद् ब्राह्मणों को लाये और उन्हें भूमि आदि सम्पत्ति देकर अपने राज्य के नाना स्थानों में बसाने का संकल्प किया। उन्होंने गान्धार देश से १००, कन्नोज से २००, कुरुक्षेत्र से २७२, नेमिषारण्य से १०० और इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों से भिन्न-भिन्न संख्या में ब्राह्मणों को बुलाकर सब मिलाकर एक सहस्र ब्राह्मण अन्हलवाड़ा नगर में एकत्र किये थे। उन ब्राह्मणों में से मूलराज ने किसी को भूमि, किसी को ग्राम, किसी को और कुछ सम्पत्ति देकर अपने राज्य के भिन्न-भिन्न स्थानों में बसाया था। इन्हीं ब्राह्मणों के वंशधर इस समय गुजरात व काठियावाड़ में 'उदीच्य-सहस्र' कहलाते हैं। मूलराज की मृत्यु सन् ६६७ ई० में हुई, इससे अनुमान होता है कि ब्राह्मण-संस्थापन का यह महान् कार्य ईसा की १० वीं शताब्दी के मध्य में वा उससे कुछ पीछे समाप्त हुआ था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्शनजी के पूर्वपुरुषों का निवासस्थान—अनुसन्धान द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि मूलराज ने जिन 'उदीच्य-सहस्र' ब्राह्मणों को बुलाया था, उनके भीतर जो सामवेदी त्रिवाड़ी ब्राह्मण थे, उन्हें मूलराज ने सिद्धपुर ग्राम देकर बसा दिया था। इससे ज्ञात होता है कि कर्शनजी के पूर्वज गुजरात प्रदेश में आने के पश्चात् अधिकारी हो गये थे। यद्यपि यह निर्णय नहीं हो सकता कि वे उत्तर भारत के किस स्थान से आये थे तथापि यह सिद्ध होता है कि दक्षिण भारत में पदार्पण करने के पश्चात् उन्होंने सबसे पहले सिद्धपुर को ही अपनी निवासभूमि बनाया था§। यह भी निश्चय होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी के पूर्व-पुरुषों में से कोई व्यक्ति बाद में कच्छ राज्य के भुज नगर में आकर बस गये थे और उसके कुछ समय पश्चात् वे काठियावाड़ में सम्भवतः जामनगर में आये और फिर जामनगर के अन्तर्गत कोशिया ग्राम में आकर बस गये। सुना जाता है कि कर्शनजी के पिता लालजी ही किसी जाति-सम्बन्धी कार्य के अनुरोध से कोशिया ग्राम को छोड़कर टङ्कारा में आ बसे थे, अतएव पिता के समय से ही टङ्कारा कर्शनजी की निवासभूमि समझनी चाहिए। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि कर्शनजी का घर टङ्कारा के जीवापुर मोहल्ले में था।

जन्म-ग्रहण—कर्शनजी त्रिवाड़ी के इसी टङ्कारा के जीवापुर मोहल्लेवाले घर में संवत् १८८१ वा सन् १८२५ ई० में एक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। यही पुत्र पीछे घर छोड़कर निकल गये और संन्यासाश्रम ग्रहण करके संसार में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुए। इससे पहले काठियावाड़ प्रदेश सिंहों के लिए ही प्रसिद्ध था। अब वह कर्शनजी के घर पुरुषसिंह को जन्म देकर गौरव के प्रोज्ज्वल मुकुट से मुकुटित हो गया। यह पुत्र कर्शनजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। नामकरण का समय आने पर कर्शनजी ने उनका नाम मूलजी रक्खा।‡

कर्शनजी का वंश—मूलजी को छोड़कर कर्शनजी के और भी दो पुत्र और दो कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। उन दोनों पुत्रों में से एक का नाम वल्लभजी था। दूसरे का न तो नाम ही ज्ञात हो सका और न उसके विषय में कोई और बात ही ज्ञात हो सकी। कोई-कोई कहते हैं कि संवत् १९१८ के विषूचिका रोग में उस पुत्र की मृत्यु हो गई थी। दोनों कन्याओं में से एक कन्या छोटी आयु में ही मृत्यु का कवल हो गई थी। मूलजी वा दयानन्द के गृहवास के समय उनके सामने ही उसकी मृत्यु हुई थी। दयानन्द ने उसकी मृत्यु का वर्णन स्वरचित आत्मचरित† में किया है। कर्शनजी का छोटा पुत्र वल्लभजी विवाह के दो मास पीछे ही मर गया था। अपनी बड़ी पुत्री प्रेमबाई का विवाह करने के अभिप्राय से गोंडाल नगर के पास के गुंदिमाडू नामक एक छोटे-से ग्राम से एक ब्राह्मणकुमार मङ्गलजी लीलारावल को कर्शनजी टङ्कारा ले-आये थे और उसे वहाँ ही बसा दिया था, फिर उसी के साथ प्रेमबाई का विवाह कर दिया था। इस समय कर्शनजी के वंश में इस

---

§ 'उदीच्य प्रकाश' ग्रन्थ में लिखा है कि इन्हीं बुलाये हुए एक सहस्र ब्राह्मणों में से मूलराज ने इक्कीस ब्राह्मणों को छाँटकर और आसनों पर बिठाकर उनकी पूजा—सत्कार किया था। उन आसनों पर बैठे हुए ब्राह्मणों में से चौथे आसन पर जो ब्राह्मण बैठे थे, वे त्रिवाड़ी उपाधिधारी, सामवेदी, दाल्भ्य गोत्री, पञ्चप्रवर और कौथुमी शाखा के थे। इसलिए कर्शनजी त्रिवाड़ी के सिद्धपुर आये हुए पूर्वपुरुषों में से पूर्वोक्त ब्राह्मण को प्रधान पुरुष समझना चाहिए। मूलराज ने उन्हें सिद्धपुर का मध्यस्थान देकर बसाया था। सामवेदी त्रिवाड़ी उपाधिधारी ब्राह्मणों की कुलदेवी महागौरी, कुलदेवता दिवेश्वर महादेव, गणपति विघ्नविनायक और भैरव कालभैरव हैं।

‡ कोई कहते हैं कि दयानन्द का आदि नाम मूलशङ्कर था। कर्शनजी-जैसे शंकरनिष्ठ वा शंकर-परायण के लिए पुत्र को मूलजी नाम देना वा मूल शब्द के साथ शङ्कर शब्द का संयोग करके अपने पुत्र को पुकारना किसी प्रकार भी असङ्गत नहीं हो सकता। बम्बई के प्राण जीवनदास कहते हैं कि स्वामीजी ने उनसे कहा था कि उनका नाम मूलशंकर था।

† यह आत्मचरित परोपकारिणी सभा, अजमेर और रामलालकपूर ट्रस्ट बहालगढ़ (सोनीपत) से प्रकाशित हुआ है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कन्या के प्रपौत्र को छोड़कर और कोई जीवित नहीं है। इस प्रपौत्र का नाम प्रभाशङ्कर कल्याणजी रावल है, परन्तु वह साधारणतः पोपट रावल के नाम से जाना जाता है। पोपट रावल इस समय तक टङ्कारा में कर्शनजी त्रिवाड़ी के घर में निवास करता है। मूलजी के संसारत्यागी होने और अन्य दोनों पुत्रों की मृत्यु हो जाने के कारण कर्शनजी के वंश की रक्षा करनेवाला—उनका उत्तराधिकारी बननेवाला कोई नहीं रहा था, अतएव उन्होंने अपने जामाता मङ्गलजी को ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था और अपनी भूमि, घर, धन, सम्पत्ति, लेन-देन सब-कुछ उसे ही दे दिया था। इस प्रकार वह कर्शनजी की सारी सम्पत्ति का अधिकारी हो गया था। मङ्गलजी का पुत्र बोगा हुआ, बोगा का पुत्र कल्याणजी और कल्याणजी का पुत्र उपर्युक्त प्रभाशङ्कर वा पोपट रावल हुआ और उनमें से एक के पश्चात् दूसरा कर्शनजी की सम्पत्ति का स्वामी होता रहा।

कर्शनजी का लेन-देन—कर्शनजी के परिवार में सांसारिक दृष्टि से किसी प्रकार की कमी वा क्लेश नहीं था, क्योंकि वे स्वयं धनशाली व्यक्ति थे। उनका लेन-देन का कारबार था, परन्तु यह कारबार परिमित धनराशि पर निर्भर नहीं था। पोपट रावल के घर में कर्शनजी के लेन-देन का बहीखाता विद्यमान है, उसके देखने से विदित हुआ कि वे एक समय में कई-कई सहस्र रुपया दूसरों को ऋण दे सकते थे। गुजरात काठियावाड़ में मेमन नाम की एक मुसलमान जाति है। मेमन लोग वाणिज्य-व्यापार करने में जगत् प्रसिद्ध हैं। पहले समय में टङ्कारा में बहुत-से मेमन लोग बसते थे। उनमें से अधिकतर वाणिज्य-व्यापार ही करते थे और प्रायः नये वर्ष के आरम्भ में वे अपने व्यापार के लिए विदेशयात्रा किया करते थे और प्रायः कर्शनजी त्रिवाड़ी से उसके लिए रुपया ऋण पर लिया करते थे तथा यथासमय विदेश से लौटकर कर्शनजी का रुपया चुका दिया करते थे। यह बात अबतक§ भी टङ्कारा के किसी-किसी पुराने मनुष्य के मुख से सुनी जा सकती है।

कर्शनजी केवल साहूकार वा महाजन ही नहीं थे, वे विस्तृत भू-सम्पत्ति के भी स्वामी थे। वे जामनगर के अन्तर्गत उक्त कोशिया ग्राम के एक बड़े भाग के अधिकारी थे। जामनगर के अन्तर्गत हरियाना ग्राम में कर्शनजी की दो बहिनें दो ब्राह्मणों से विवाही थीं। उन बहिनों के पुत्र अर्थात् अपने भानजों को कर्शनजी ने कोशिया ग्राम की कुछ भूमि दान कर दी थी। अपने जामाता मङ्गलजी रावल को भी उन्होंने कोशिया की कुछ भूमि दान कर दी थी और अपनी विधवा पुत्रवधू वल्लभ की स्त्री मोगीबाई के भरण-पोषण के लिए भी वहाँ की कुछ भूमि उसके नाम पर कर दी थी। इसके अतिरिक्त मेधपुर, जिरागढ़, धूरकोट प्रभृति ग्रामों में कर्शनजी के जो शिष्य थे, उनकी वृत्ति भी उन्होंने मोगीबाई को दे दी थी। इसके सिवाय कर्शनजी राज-पदारूढ़ व्यक्ति थे। सन् १८७३ ई० में जब दयानन्द कलकत्ता‡ में थे तो उन्होंने प्रसङ्ग-वश बातों-बातों में श्रीयुत मन्मथनाथ चौधरी, बी० एल०† महाशय से कहा था कि जो तुम्हारे कलेक्टर करते हैं, वही कार्य हमारे पिता किया करते थे। इसके अतिरिक्त दयानन्द ने स्वरचित आत्मचरित्र में भी कहा है कि वे जमादार थे और जमादार शब्द का अर्थ भी उन्होंने स्वयं ही यह किया है कि वे नगर के फ़ौजदार और राजकर उगाहनेवाले दोनों ही थे। वस्तुतः यह शब्द जमादार नहीं अपितु जमेदार है। हमने इस बात की आलोचना विशेषरूप से दयानन्द जन्मस्थानादि-निर्णय नामक पुस्तक में की है। पिता की धनशालिता के सम्बन्ध में उन्होंने स्वलिखित आत्मचरित में और भी निदर्शन दिया है। जब घर से निकलकर मूलजी शैला योगी के पास पहुँचने के लिए

---

§ अर्थात् सन् १९१६ ई०।

‡ ऋषि दयानन्द ने कलकत्ता में पौष कृष्णा १ या २ सं० १९२९ से चैत्र शु० ४ सं १९३० तक निवास किया था। देखो इसी ग्रन्थ का पृष्ठ २१८-२२८।

† इनके विषय में इसी पुस्तक के पृष्ठ २३१-२३३ द्रष्टव्य हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यात्रा कर रहे थे तो उन्होंने उस समय की एक घटना का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि "मार्ग में एक ब्राह्मण-भिक्षुकों के दल के साथ हमारा साक्षात् हुआ। वे हमारी ओर देखकर कहने लगे कि तुम जितना दान यहाँ करोगे परलोक में उतना ही तुम्हें लाभ होगा। हमारे पास जितना रुपया-पैसा था और हमारे देह पर जितना अलङ्कार था, वह उन्होंने ठग लिया। एक वैरागी ने एक मूर्त्ति रख रक्खी थी। मेरे हाथ में सोने की तीन अंगूठियाँ थीं। उसने मुझे चिढ़ाया कि 'सोने की अंगूठियों से वैराग्य की सिद्धि कैसे हो सकती है'? ऐसा कहकर उसने मेरी अंगूठियाँ मूर्त्ति के समर्पण करा लीं।" जो मनुष्य सोने-चाँदी के अलङ्कारों से अलंकृत हो वह कभी भी निर्धन पिता का पुत्र नहीं हो सकता, जब वे शैला के कोटगङ्गा§ पहुँचे तो वहाँ की अवस्था के विषय में उन्होंने एक और घटना का आत्मचरित में उल्लेख किया है कि उस समय भी हम रेशमी किनारे की धोती पहने हुए थे। वहाँ के वैरागी उसपर प्रायः सदा ही हमारा ठट्ठा किया करते थे, इसलिए हमने मूल्यवान् वस्त्र फेंक दिये और बाज़ार से साधारण वस्त्र क्रय करके पहनने लगे। काठियावाड़ की नीति-रीति और प्रथापद्धति से हमें जितनी अभिज्ञता है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि वहाँ धनी लोगों की सन्तान के सिवाय और कोई साधारणतः रेशमी किनारे की धोती नहीं पहनता। अपने पिता के ऐश्वर्य के प्राचुर्य के विषय में वे एक और घटना का उल्लेख कर गये हैं। जब उनकी तीव्र मेधा, प्रगाढ़ विद्वत्ता और अन्य सद्गुणों का परिचय पाकर ओखी मठ के महन्त उनपर मोहित हो गये और महन्त-पद-प्राप्ति का प्रलोभन दिखाकर उनसे शिष्य हो जाने को कहा तो वे लिखते हैं कि मैंने उत्तर दिया कि यदि मैं धन-सम्पत्ति का इच्छुक होता तो पितृ-गृह छोड़कर कभी न आता, क्योंकि मेरे पिता की सम्पत्ति इस मठ की सारी सम्पत्ति से किसी प्रकार कम नहीं है।

इसके अतिरिक्त मोगीबाई लोगों से प्रायः कहा करती थी कि मेरे श्वशुर धनी और सुखी पुरुष थे। मोगीबाई की यह उक्ति उनके भतीजे बालशङ्कर भीमजीदेव के मुख से सुनी गई है। अस्तु, इन सब दृष्टान्तों से स्पष्टरूप से प्रमाणित होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी विपुल वित्तशाली मनुष्य थे।

इसके पश्चात् हम कर्शनजी के राजकर्मचारी होने के सम्बन्ध में एक दो बातें कहेंगे। शिवमूर्त्ति के प्रति अविश्वासी होकर जब शिवरात्रि की रात्रि में मूलजी जड़ेश्वर के मन्दिर से घर को चलने लगे तो कर्शनजी ने उनके साथ एक सिपाही भेजा था। घर से निकलने के पश्चात् जब कर्शनजी ने मूलजी को सिद्धपुर में पकड़ लिया था तब भी उनके साथ कई सिपाही थे। जब टङ्कारा से निकलकर मूलजी योगियों के अनुसन्धान में शैला की यात्रा कर रहे थे, अर्थात् घर से निकलने के तीसरे दिन तो उन्हें एक सरकारी कर्मचारी के मुख से ज्ञात हुआ था कि एक भागे हुए युवक को ढूँढने के उद्देश्य से कई अश्वारोही दलबद्ध होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। पाठक ! सिपाही वा अश्वारोही सेना किस प्रकार के मनुष्य के अधीन रहते हैं ? सिपाही वा अश्वारोहीगण किस प्रकार के मनुष्य की आज्ञा मानकर चलते हैं ? स्पष्ट विदित होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी राजा के सम्मानपात्र थे वा राजकीय-पद-जनित सम्भ्रम से विभूषित थे। इस विषय में और भी प्रमाण हैं, परन्तु बाहुल्य-भय से हम उन्हें यहाँ नहीं लिखते। कर्शनजी त्रिवाड़ी के लेन-देन, ज़मींदारी और जमेदारी ने उन्हें टङ्कारा का एक सम्भ्रान्त और विशेषपुरुष बना दिया था, अतः ज्ञात होता है कि अपने पितृगृह में शिशु मूलजी सुख और शान्ति के साथ लालित-पालित हुए थे।

पितृ-प्रकृति—कर्शनजी केवल धन, मान वा सम्भ्रम में ही बड़े आदमी न थे, उनकी चरित्रगत-दृढ़ता, प्रकृतिगत धर्म-निष्ठा और हृदयगत धर्म-पिपासा भी कुछ कम सम्मान की वस्तु न थी। दृढ़ता तेजस्विता की उत्पादक है और तेजस्विता कठोरता की प्रवर्त्तक होती है। कर्शनजी का चरित जैसा दृढ़ था वैसा ही तेजस्वी

§ आत्मचरित में 'कोटगांगरा' नाम लिखा है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और कठोर भी था। मूलजी का आठ वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार हो गया था और तब से ही उनके पिता उन्हें पार्थिव पूजन का आदेश और उपदेश किया करते थे, परन्तु यह बात मूलजी की माता की अभिप्रेत न थी, क्योंकि शिव की पूजा में समय-समय पर उपवास का क्लेश सहना पड़ता है। इस विषय में दयानन्द ने लिखा है कि "मुझे सवेरे भोजन करने की बान पड़ गई थी और इस आशङ्का से कि उपवास करने से मेरा स्वास्थ्य बिगड़ेगा मेरी माता मुझे प्रतिदिन शिवपूजा करने से रोका करती थी, परन्तु यह बात किसी प्रकार भी पिता को सह्य न होती थी। इसके ऊपर प्रायः सदा ही मेरे माता-पिता में कलह रहने लगा।" इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि यह घटना कर्शनजी की दृढ़ता को जतानेवाली है। उनकी तेजस्विता के सम्बन्ध में निम्नलिखित एक उज्ज्वल उदाहरण है। मूलजी अपने आत्मचरित में लिखते हैं, "एक बार जब शिवरात्रि आई तो पिता ने मुझे शिवरात्रि के व्रत-ग्रहण करने का आदेश दिया। मेरे अस्वस्थ हो जाने का डर है, इस विषय पर मेरी माता ने प्रबल प्रतिवाद किया, परन्तु उसपर दृक्पात न करके पिता ने मुझसे कहा कि तुम आज उपवास करो और शिवालय में जाकर रात्रि-जागरण करो, क्योंकि तुम्हें आज पवित्र शैवदीक्षा लेनी होगी।" इसके पश्चात् मूलजी व्रतधारी होकर पिता के साथ शिवालय में गये और जगते रहकर शिवपूजादि करने लगे। अन्त में जब उस नीरव रात्रि में शिव-मन्दिर के भीतर बैठे हुए उनके मन में यह संशय उत्पन्न हुआ कि यह महादेव यथार्थ महादेव हैं कि नहीं और जब कर्शनजी ने उस संशय का निराकरण न कर सकने पर सिपाही के साथ मूलजी को घर चले जाने की आज्ञा दी तब भी उन्होंने मूलजी को बार-बार सावधान किया कि ऐसा न करना जिससे तुम्हारा व्रत भङ्ग हो जाए। उनका पुत्र सारे दिन भूखा-प्यासा रहने से अधीर हो रहा था, नींद न लेने के क्लेश से दुखित हो रहा था, सन्देह उत्पन्न हो जाने के कारण अवलम्बित व्रत में अनास्था प्रकट कर रहा था, परन्तु फिर भी उनका यही आदेश था कि पुत्र किसी प्रकार भी भोजन न करने पाए। ऐसा आदेश प्रदान करना कर्शनजी की कठोरता का परिचायक है।

कर्शनजी की धर्म-निष्ठा ऐसी ही अटल थी जैसी उनकी धर्म-पिपासा गम्भीर थी। उनके समान घोर शैव, प्रगाढ़ शिवनिष्ठ और सरल शिवोपासक संसार में विरले ही दिखाई देते हैं। कर्शनजी अपने घर तो प्रतिदिन शिवार्चना करते ही थे, इसके अतिरिक्त उन्होंने डेमी नदी के तट पर एक शिवमन्दिर भी बनवाया था जिसका नाम कुबेरेनाथ महादेव का मन्दिर था। इस मन्दिर की सेवा-पूजा के लिए मौरवी के ठाकुर पृथ्वीराजजी ने कई बीघा भूमि अर्पण कर दी थी। कर्शनजी जितने दिन जीवित रहे अतीव भक्ति के साथ कुबेरनाथ महादेव की सेवा-अर्चना करते रहे। इसके अतिरिक्त जब और जहाँ कहीं भी शिवजी की कथा-वार्ता होती, कर्शनजी वहाँ जाते और श्रद्धान्वित चित्त से उसे सुनते थे। इस विषय में स्वलिखित आत्मचरित में स्वामीजी ने लिखा है—"पिता के साथ मैं शिवालयों में और ऐसे स्थलों में जहाँ शिवजी की पूजा होती थी आने-जाने लगा। पिताजी मुझसे जब कभी कोई बातचीत करते तो सदा यही कहते कि "शिवजी की पूजा करना ही सर्वोच्च धर्म है। मुझसे पिता केवल यही बात कहा करते थे और यही समझाया करते थे कि शिवजी की भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है।" कर्शनजी की असामान्य शिवभक्ति का प्रभाव उनके परिवार के अन्य व्यक्तियों के चरित्र में भी दिखाई देता है। उनकी बड़ी कन्या प्रेमबाई एक शिवभक्ति-परायण स्त्री थीं। जिन्होंने अपनी आँखों से उन्हें देखा था उनके मुख से सुना गया है कि वह विधवा होने के पश्चात् जितने दिन जीवित रहीं नियमित रूप से प्रगाढ़ भक्ति और श्रद्धा के साथ कुबेरनाथ महादेव की पूजा-अर्चना करती रहीं। अपने परम शैव पिता के प्रतिष्ठित किये हुए कुबेरनाथ महादेव की नियमितरूप से पूजा-अर्चना करना भक्तिमती प्रेमबाई के पक्ष में सब प्रकार से सम्भव और सङ्गत है। ज्येष्ठ पुत्र मूलजी के घर से निकल जाने के पश्चात् कर्शनजी हृदय में बहुत ही निर्वेदयुक्त हो गये थे और हृदय के निर्वेद के निराकरण करने के अभिप्राय से ही वे पूजाह्निकादि कर्मानुष्ठान में अधिकतर अनुरक्त हो गये थे, साधुसङ्ग और शास्त्रालोचना में अपना अधिक समय लगाते थे। उसके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्चात् अपने छोटे पुत्र वल्लभजी का मोगीबाई नामी कन्या से विवाह करने, पुत्र और पुत्रवधू के साथ संसार में कुछ सुखी होने का उन्होंने सङ्कल्प किया, परन्तु दुःख है कि विवाहित होने के दो मास पीछे ही वल्लभजी की मृत्यु हो गई। उस कारण से वे चित्त में और भी हताश और व्यथित हो गये। इस प्रकार जब संसार की ओर से उन्हें प्रबल धक्के लगने लगे तो उनकी धर्म-पिपासा जो पहले ही प्रबल थी और भी प्रबल हो गई। इस कारण उनकी जो कुछ सम्पत्ति थी उसे अपने जामाता मङ्गलजी को देकर और उसे अपने वंशधर और उत्तराधिकारी पद पर प्रतिष्ठित करके कर्शनजी संसार को छोड़कर भारतभूमि के प्रधान-प्रधान तीर्थों में भ्रमण करने के उद्देश्य से निकले। प्रयाग, काशी, द्वारका, जिस किसी तीर्थस्थान पर भी वे गये वहाँ की तीर्थ-क्रिया अतिशय श्रद्धा के साथ की और प्रसन्नचित्त होकर सैकड़ों रुपया दान-दक्षिणा में व्यय किया तथा अन्त में ब्रह्मभोज करके तीर्थवासी सैकड़ों-सहस्रों ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। अपना शेष जीवन तीर्थाटनरूप पुण्यप्रद कार्यों में व्यतीत किया। सब लोग यह कहते हैं कि यद्यपि कर्शनजी के चरित्र में धर्म-निष्ठा और धर्म-पिपासा की स्वाभाविक वृत्तियाँ थीं, परन्तु वे उनके जीवन के अन्तिम भाग में अधिकतर स्फुरित हो गई थीं। मूलजी की जननी के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते, इसलिए उनकी प्रकृति का चित्र खींचने में हम असमर्थ हैं।

तत्कालीन भारत की राजनीतिक अवस्था—जिस समय भारत के भावी सुधारक ने कर्शनजी के घर जन्म लिया उस समय के भारत का राजनैतिक आकाश यद्यपि मेघाच्छन्न न था, परन्तु निर्मल भी न था। यद्यपि उस समय मुग़लों का सूर्य अस्त हो गया था, अंग्रेजों का सौभाग्य थोड़ा-थोड़ा उदय होने लगा था और मुग़ल साम्राज्य की विषादपूर्ण समाधि-भूमि पर ब्रिटिश की जय-पताका धीरे-धीरे लीला-विस्तार करने लगी थी तथापि देश में शान्ति स्थापित नहीं हुई थी। अनेक प्रकार और आकार के पाप और अत्याचार देश में सब जगह राज्य कर रहे थे। डकैती, चोरी, नरहत्या, विशेषकर ठगों के नरघातक दल के अत्याचारों में भारत का प्रजावर्ग सदा त्रास और भय का जीवन-यापन करता था।

भारत की सामाजिक अवस्था—भारत की सामाजिक अवस्था इससे भी अधिक शोचनीय थी। समाज के शरीर का प्रायः प्रत्येक अङ्ग रुग्ण था। समाज-मन्दिर की ईंट, पत्थर, चूना, कंकड़ी, बरंगा सब-कुछ एक-एक करके अलग होकर गिर रहा था। जिस समाज का गठन आश्रमचतुष्टय और वर्णचतुष्टय की सुदृढ़ भित्ति पर हुआ था उसकी छत और प्राचीरादि धीरे-धीरे टूटकर गिर रहे थे। इसमें संशय ही क्या है कि जो समाज-गृह इस प्रकार विकृत और विपर्यस्त हो जाए उसमें विविध रोग प्रवेश करेंगे और वे नाना प्रकार की अशान्ति और अमङ्गल की आश्रयभूमि हो जाएगा। इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारतवासियों के अन्तःकरण से प्रीति, ममता, कोमलता और उदारता आदि वृत्तियों का समूह बहुत-कुछ विलुप्त हो गया था। यही कारण था कि वह गंगा-यमुना के दोनों तटों को प्रकाशित करके सैकड़ों-सहस्रों अबलाओं के जीते हुए शरीरों को भस्मसात् करने में परम-धर्म की सिद्धि समझते थे। कभी-कभी जीती हुई विधवाओं को पृथिवी में गाड़ देने में भी उनका चित्त अक्षुण्ण रहता था। गला घोटकर, भूमि में गाड़कर वा किसी प्रकार का विषाक्त द्रव्य पिलाकर कन्याबध करने की प्रथा क्षत्रिय-समाज को कलङ्कित कर रही थी। कुलीन प्रथा ने सैकड़ों कुल-कामनियों को विवाह-सम्बन्ध से आयुभर के लिए पृथक् कर रक्खा था। नारी तत्कालीन भारत-समाज में पशुओं में ही गिनी जाती थी। यह कहना असत्य नहीं होगा कि इस देश के सामाजिक वर्ग इस बात को बिल्कुल भूल गये थे कि सामाजिक उन्नति और जाति की श्रीवृद्धि नारियों के सम्मान, शिक्षादान और चरित-रक्षण पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त नाना आवर्जनाओं, विविध कुरीतियों और बहुविध कदाचारों ने समाज के बलवीर्य, शान्ति और शुद्धता को नष्ट कर डाला था। जैसे सड़क पर एकत्र हुआ जल नाना प्रकार के कृमि-कीटों का आश्रयस्थल हो जाता है, ऐसे ही भारत भी बहुत प्रकार के कृमि-कीट, क्लेद और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्दम का आश्रयीभूत हो गया था।

भारत की धार्मिक अवस्था—जबकि यम-दम का साधन वा विवेक-वैराग्य का अनुसरण न करके तिलक-लेपन वा त्रिपुण्ड्र धारण ही धर्म का अङ्ग माना जाता था, जबकि साधुता वा सत्यप्रियता स्थानविशेष वा नदीविशेष के नामोच्चारण ही में परिणत हो गई थी, जबकि चित्त की शुद्धि और इन्द्रिय-संयम वस्त्रविशेष के पहनने वा दिनविशेष पर वस्तुविशेष के भक्षण ही पर निर्भर हो गया था, जबकि मद्यपान-मांसभक्षण और पर-स्त्रीगमनादि घृणित और कुत्सित कर्मों का शिववाक्य कहकर आदर होने लगा था, तब आर्यों का सनातनधर्म बिना आत्महत्या किये कैसे स्थिर रह सकता था ? उस समय आर्यसन्तान उस आत्मघाती धर्म के दुर्गन्धपूरित मृतदेह को कन्धे पर लेकर भ्रान्ति, कुसंस्कार और भ्रष्टाचार के भीषण श्मशान में ताण्डव नृत्य कर रही थी। उस समय न केवल भारत के धर्म ने ही आत्महत्या करली थी, अपितु भारत के शास्त्र भी सान्निपातिक रोग से विकृत हो गये थे। जो शास्त्र सर्वप्राचीन, अपौरुषेय और धर्म के आधार होने के कारण सर्वजनमान्य तथा सर्वकालगण्य थे, उन शास्त्रों में निष्ठा और उनकी आलोचना आर्यावर्त्त में लुप्त हो गई थी। वेद का पठन-पाठन एक प्रकार से उठ ही गया था। आर्यसन्तान वेदशून्य होकर सैकड़ों वर्षों से दिन काटती चली आती थी। शास्त्री लोगों ने वेद-वेदाङ्ग का संश्रव छोड़कर ब्रह्मवैवर्त्त और विवर्त्त-विलास का आश्रय ले-लिया था। ब्राह्मणगण वैशेषिक और वेदान्त की बात भूलकर गङ्गालहरी और गोपालसहस्रनाम की बार-बार आवृत्ति करना ही श्रेय कर्म समझने लगे थे। उपनिषदों के अत्युत्कृष्ट कानन में अमृत-फल का स्वाद न लेकर पुराण, तन्त्रादि के अन्धकाराच्छन्न, कीटपूर्ण और कण्टकाकीर्ण वन में प्रवेश करके कण्टकफलरूप कालकूट का भक्षण करके हिन्दुओं ने अपनी बुद्धि, धृति और विचार-शक्ति को अवसन्न करके अपने आध्यात्मिक जीवन को भी निर्बल, रुग्ण और अकर्मण्य बना लिया था।

काठियाबाड़ की अवस्था—यहाँ काठियावाड़ की अवस्था की भी कुछ आलोचना करने योग्य है। हम पहले कह चुके हैं कि काठियावाड़ की भूमि अधिकतर देशीय राजाओं के शासनाधीन है, परन्तु ईसा की अठारहवीं शताब्दी से वहाँ मरहटों की शक्ति का प्रभुत्व प्रतिष्ठित हो गया था। पूना के पेशवा और बड़ौदा के गायकवाड़ ने काठियावाड़ के प्रायः सभी राजाओं पर अपना ऐसा आधिपत्य स्थापित किया था कि उनमें से प्रत्येक को इन दोनों शक्तियों को कर देना पड़ता था। गायकवाड़ आज तक भी काठियावाड़ के राजाओं से कर लेते हैं और पेशवा के पराजित होने के पश्चात् अंग्रेज़ी गवर्नमैण्ट उनके स्थानापन्न होने की स्थिति से उनसे कर लेती है। सन् १८१७ की सन्धि होने के पश्चात् से पेशवा के अधिकारों की अधिकारिणी होकर अंग्रेज़ी गवर्नमैण्ट ने सन् १८२० ई० से काठियावाड़ में प्रवेश करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

जब पेशवा वा गायकवाड़ को राजाओं से नियमितरूप से कर प्राप्त नहीं होता था तो कभी तो वे दोनों मिलकर और कभी स्वतन्त्ररूप से काठियावाड़ में फ़ौज भेजा करते थे। यह फ़ौज काठियावाड़ के इतिहास में मुल्कगीरी फ़ौज के नाम से प्रसिद्ध है। इस फ़ौज के आने पर काठियावाड़ के रहनेवालों पर जो विपत्ति आती थी और जो अत्याचार होता था उसे वर्णन नहीं किया जा सकता। वही टङ्कारा, जो दयानन्द की भूमि है, उनके जन्मग्रहण करने से कुछ वर्ष पहले तक कई बार मुल्कगीरी फ़ौज से आक्रान्त होकर, अतिशय विपद्ग्रस्त हो चुका था। उनके जन्मग्रहण करने से केवल १५ वा १६ वर्ष पहले ही मुल्कगीरी सेनाजनित घोर अशान्ति और भीषण उपद्रव से न केवल टङ्कारा की ही रक्षा हुई थी, बल्कि सारी काठियावाड़ भूमि शान्ति और निरुपद्रवता की गोद में आश्रय ले-रही थी, कारण कि सन् १८०७ ई० में कर्नल वाकर के जमाबन्दी बन्दोबस्त के प्रचलित होने के पश्चात् से मुल्कगीरी फ़ौज का आना एक दम बन्द हो गया था। मुल्कगीरी फ़ौज के कारण उत्पन्न होनेवाले उत्पीड़न और अपमान, अशान्ति और लुण्ठन आदि से काठियावाड़

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवासियों की रक्षा करने के उद्देश्य से ही वाकर साहब का जमाबन्दी बन्दोबस्त हुआ था। अस्तु, बहुत काल से मरहटों के प्रभुत्वाधीन रहने और उनसे सम्बन्ध रखने के कारण काठियावाड़वालों के चरित्र में मरहटों के भाषा-भाव, रीति-नीति का प्रभाव स्थापित होना सम्भव है और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। शिवोपासना और शैवमत के समर्थन में महाराष्ट्र के लोग बहुत अग्रवर्ती हैं। इसलिए इनके संसर्ग से शैवमत का काठियावाड़ में अधिक प्रचार हो गया था। उस समय काठियावाड़-वासियों में वा प्रवासी महाराष्ट्रियों में विट्ठलराव देवजी एक अग्रगण्य व्यक्ति थे। विट्ठलराव महाराज गायकवाड़ के प्रतिनिधि की हैसियत से आम्ब्रेली में रहते थे। वे स्वयं भी एक घोर शैव थे। उन्होंने काठियावाड़ में शिवोपासना का प्रचार करने के उद्देश्य से कई स्थानों में शिव-मन्दिर भी बनवाये थे।§

इसके अतिरिक्त एक और बात भी थी। मूलजी के जन्मग्रहण करने के समय टङ्कारा ताल्लुक़ा बड़ौदा के प्रसिद्ध सेठ गोपाल मेड़ेल नारायण के अधीन था। धर्मनिष्ठा और शिवपरायणता के लिए मेड़ेल की बड़ौदा अञ्चल में बहुत प्रसिद्धि है। अस्तु, प्रायः तीस वर्ष तक टङ्कारा के अविच्छिन्न रूप से मेड़ेल नारायण के अधीन रहने से‡ टङ्कारा में और उसके चारों ओर शैवमत का प्राधान्य स्थापित हो गया था। विशेषकर इस समय टङ्कारा के जमेदार कर्शनजी त्रिवाड़ी के चरित्र में शिवभक्ति और शिवनिष्ठा की मात्रा स्फुटतर और उज्ज्वलतर हो गई थी, यह भी सहज ही में अनुमान हो सकता है। इसमें भी सन्देह नहीं है कि स्वामीजी ने स्वलिखित आत्मचरित में शिवभक्ति के प्राबल्य के परिचायक जो दृष्टान्त दिये हैं कि टङ्कारा में स्थान-स्थान पर शिवपुराण का पाठ वा शिवमाहात्म्य का कीर्तन हुआ करता था, उनके भी मूल में मेड़ेल आदि के संसर्ग का प्रभाव ही कार्य करता था।†

उस समय टङ्कारा के आस-पास वा सारे काठियावाड़ में केवल शैवमत का ही प्राधान्य नहीं था वल्लभाचार्य्य के चलाये हुए वैष्णवमत का और स्वामी नारायण के सम्प्रदाय का भी प्रभाव कुछ कम नहीं था। काठियावाड़ के बनिया, लोहाना, भाटिया प्रभृति श्रेणियों के लोग प्रायः सभी वल्लभ सम्प्रदाय में सम्मिलित हैं और कुन्बी तथा अन्य नीची श्रेणियों के लोग अधिकतर स्वामी नारायण के सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं और काठियावाड़ के प्रायः सभी ब्राह्मण, क्या नागर, क्या उदीच्य और क्या श्रीमाली, शिवोपासक और शैवमत के परिपोषक हैं। इस कारण अन्य क्षुद्र मतों के रहते हुए भी यही समझना चाहिए कि काठियावाड़ के सभी लोगों के मानस क्षेत्र पर या बल्लभ सम्प्रदाय या शैवमत अथवा स्वामी नारायण के मत का विशेष प्रभाव

---

§ विट्ठलराव देवजी ने आम्ब्रेली में नागनाथ महादेव का मन्दिर बनवाकर उसके व्यय के लिए दो ग्राम दान कर दिये थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने जूनागढ़ के निकट त्रिनेत्रेश्वर का, पोरबन्दर में विश्वेश्वर और बांकानेर राज्य में सुप्रसिद्ध जड़ेश्वर प्रभृति मन्दिर बनवाकर अपनी शिवभक्ति की पराकाष्ठा दिखाई थी।

‡ गायकवाड़ सरकार की प्राप्तव्य खण्डनि वा कर न दे सकने पर मौरवी के राजा स्वर्गीय जियाजी वाघजी ने उल्लिखित साहूकार से रुपया ऋण लेकर टङ्कारा को उनके पास बन्धक रख दिया था। इस हेतु से टङ्कारा ताल्लुक़ा उक्त साहूकार गोपाल मेड़ेल नारायण के अधीन सन् १८४१ ई० से पूर्व प्रायः ३१ वर्ष तक रहा था। इस अवधि में टङ्कारा का राजस्व लेने का कार्य अपने हाथ में रखकर उन्होंने अपने ऋण का रुपया वसूल कर लिया था। इस विषय का विस्तृत वर्णन हमारी लिखी हुई 'दयानन्द-जन्मस्थानादि-निर्णय' नामक पुस्तिका में देखना चाहिए।

† कर्शनजी त्रिवाड़ी गोपाल मेड़ेल नारायण राव के समय में टङ्कारा में जमेदार तो थे ही, परन्तु इसके अतिरिक्त उनका और मेड़ेल का घर एक ही मोहल्ले अर्थात् जीवापुर में था और मेड़ेल के अधीन जो अन्य महाराष्ट्री कर्मचारी थे उनके पास रहने के कारण दक्षिणी वा मरहटों का प्रभाव कर्शनजी के चरित्र पर खूब पड़ा था। कोई-कोई कहते हैं कि स्वामीजी के पिता ठीक दक्षिणियों जैसी पगड़ी धारण करते थे। इसमें कोई असम्भव बात नहीं है, क्योंकि संसर्ग का प्रभाव बहुत होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ता चला आया है, अतः धर्म-सम्बन्धी शुद्धसार और सत्यभाव के बदले दुःसंस्कार, अन्धविश्वास और भ्रान्ति से ही काठियावाड़-वासियों की चित्तभूमि समाच्छन्न है। पहले ही कहा जा चुका है कि काठियावाड़ का बहुत थोड़ा भाग अंग्रेज़ों के शासनाधीन है। इसलिए अंग्रेज़ी शिक्षा, भाव और सभ्यता प्रणाली का प्रभाव काठियावाड़ वासियों के मन पर बहुत ही कम कार्य कर सका है। अंग्रेज़ी शिक्षा और भाव में चाहे सहस्र दोष हों, परन्तु यह मानना पड़ता है कि वे स्वाधीन चिन्तन और विचारशीलता के उन्मेषक हैं। जो भाग देशीय राजाओं के शासन में हैं, उसमें केवल स्वाधीन चिन्तन और विचारशीलता का ही अभाव देखने में नहीं आता, वरन् कर्त्तव्य-निष्ठा और मानसिक बल का अभाव भी देखने में आता है।

इन सब कारणों से काठियावाड़ के लोगों की मनोभूमि पर धर्म-सम्बन्धी कुसंस्कारों, अन्धविश्वास आदि ने दीर्घकाल से अपने प्रभाव का जैसा अधिक विस्तार किया है, वैसा भारत के किसी अन्य भाग में वा अन्यत्र देखने में नहीं आता। स्वाधीन चिन्तन और विचारशीलता के अत्यन्त अभाव के कारण काठियावाड़ के निवासियों को साधारण बातचीत तक में 'भोला' कहा जाता है, इस कारण बहुत-से लोग यह विश्वास करना नहीं चाहते कि दयानन्द काठियावाड़ के रहनेवाले थे। इस विषय में हम एक दृष्टान्त दिये बिना नहीं रह सकते।

बांकानेर नगर में बांकानेर के राजकवि सुन्दरजी नाथूराम के साथ भेंट होने पर उन्होंने कहा था कि क्या आप यह मानते हैं कि दयानन्द काठियावाड़ के रहनेवाले थे? हमने कहा कि निश्चय ही वे काठियावाड़ के ही रहनेवाले थे। इसपर सुन्दरजी बोले कि काठियावाड़ में कभी ऐसे पुरुषसिंह का जन्म नहीं हो सकता। फिर वे बोले कि एक दिन मैं सन्ध्या समय चोटिला की धर्मशाला में जाकर ठहरा। चोटिला राजकोट से १३-१४ मील दूर है और बत्तोयान (बड़ोयान) को जाते हुए मार्ग में पड़ता है। धर्मशाला में पहुँचकर मैंने देखा कि वहाँ स्वामी दयानन्द उपस्थित हैं। यद्यपि मैंने स्वामीजी को राजकोट में देखा था, परन्तु वहाँ उनसे वार्त्तालाप करने की सुविधा नहीं मिली थी। धर्मशाला में जब रात्रि में उनके पास चोटिला के थानेदार आदि बातचीत करके चले गये तब मैं उन्हें अकेला पाकर उनके समीप गया और कुछ देर तक उनसे बातचीत की। अगले दिन प्रातःकाल उठकर मैंने देखा कि स्वामीजी के नौकर-चाकर प्रस्थान का प्रबन्ध कर रहे हैं। गाड़ीवाला एक मुसलमान मेमन था। उसके साथ स्वामीजी के नौकरों का सम्भवतः भाड़े के ऊपर कुछ वादविवाद हो रहा था। धीरे-धीरे यह वादविवाद बढ़ता गया और मेमन उन्हें मारने को उद्यत हुआ। नौकरों ने सारा वृत्तान्त स्वामीजी से जाकर कहा। तब स्वामीजी बाहर आये और गाड़ीवाले मेमन की ओर देखकर बोले "तुम यह मत समझो कि हम केवल साधु वा फ़क़ीर हैं। यह मत समझना कि तुम हमारा यथोचित सम्मान न करके हमारे काम की अवहेलना कर सकोगे और जो कुछ तुम्हारा हमसे ठहरा है उससे फिर सकोगे। यदि ऐसा करोगे तो हम एक ही थप्पड़ में तुम्हारे बत्तीसों दाँत तोड़ डालेंगे।§" यह बात सुनते ही मेमन एक दम चुप और एक मुग्ध व्यक्ति की भाँति उनके सारे सामान को गाड़ी पर लाद और उन्हें बिठाकर थोड़ी ही देर में बत्तोयान की ओर चल दिया।

उपर्युक्त शब्दों को बोलते समय स्वामीजी के मुख के भाव और उनके बोलने के ढंग से उनकी असाधारण तेजस्विता का परिचय मिलता था। उससे हमारे मन में यह बात आई थी कि ऐसा मनुष्य कभी भी काठियावाड़ का रहनेवाला नहीं हो सकता। यह घटना सन् १८७५ ई० के जनवरी मास की है, जब स्वामीजी राजकोट से अहमदाबाद वापस आ रहे थे। अस्तु, सुन्दरजी का यह अनुमान सर्वांश में निर्मूल नहीं था, क्योंकि काठियावाड़ के लोग साधारणतः इतने भीरुस्वभाव के होते हैं कि अनुमान होता है कि स्वामीजी

§ इस घटना या चोटिला ग्राम की धर्मशाला में ऋषि के ठहरने का उल्लेख इस जीवन-चरित्र में उक्त प्रसङ्ग में (पृष्ठ २६७) में नहीं मिलता। सम्भव है भूल से इस घटना का निर्देश वहाँ रह गया हो।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसे तेजस्वी पुरुष को उत्पन्न करने की काठियावाड़ की भूमि में सामर्थ्य नहीं है, परन्तु विधाता ने ऐसा ही रचा था कि स्वामीजी काठियावाड़ ही की भूमि में उत्पन्न हों।

मनुष्य-जाति का इतिहास विश्व-विधाता की इस असम्भव को सम्भव बनानेवाली शक्ति के भूरि-भूरि परिचय से परिपूर्ण है। रोम, यरोशलम, अण्टियाक, अलक्ज़ण्डरिया के होते हुए ईसा ने उस शहर में क्यों जन्म लिया जो फलस्तीन में सर्वापेक्षा अगम्य था ? जो मनुष्य एक साधारण कोयले की खान में मज़दूरी करनेवाले की सन्तान था, जो मनुष्य अध्ययन-काल में धनाभाव के कारण गली-गली गा-गाकर पैसा-पैसा संग्रह करता था, यह जर्मनी में इतने धनी-मानी लार्ड और काउण्टों की सन्तान के विद्यमान होते हुए अपरिमेय, प्रतापशाली पोपों के नाश के लिए अग्रसर क्यों हुआ ? और फिर उसी मनुष्य के हुङ्कारमात्र से सारी यूरोप भूमि क्यों काँप उठी ? बात यह है कि मनुष्य के लिए जो असाध्य है विधाता के लिए वह सहज और सुसाध्य है। मनुष्य की दृष्टि में जो घृणित है, ईश्वर की दृष्टि में वह आदृत है। जिस भूमि को मनुष्य नाना-विध असार लतागुल्म-युक्त और कण्टक-तरुओं का आश्रय-स्थल समझकर त्याग देता है, विधाता उसी भूमि में पारिजात पुष्पों को खिलाकर मनुष्य की बुद्धि को धिक्कृत और उसकी विचारशक्ति को तिरस्कृत कर देता है, अतः इसमें आश्चर्य की क्या बात है यदि विधाता ने भीरुता वा निर्वीर्यता की आश्रयभूमि काठियावाड़ में दयानन्द के समान तेजस्वी, पराक्रमशाली और भय से सर्वथा शून्य व्यक्ति को जन्म दिया।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धर्म का प्रभाव ही सर्वोपरि है। धर्म ही मनुष्य की जीवन-यात्रा का प्रधान परिचालक है। यह सब प्रकार से माननीय है कि मनुष्य के जितने भी छोटे-बड़े सामाजिक वा पारिवारिक कार्य हैं उनके सम्पादन में धर्म ही श्रेष्ठ नियन्ता और परामर्शदाता है। इसलिए जिस प्रदेश में धर्म नाना आवर्जनाओं से मिश्रित हो, बहुत अंशों में कलुषित हो, उस प्रदेश की समाज वा आश्रयनीति अमार्जित वा कलुषित होगी ही, इसे समझना कुछ कठिन नहीं है, अतः इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि काठियावाड़ निवासियों की सामाजिक अवस्था भी अनेक अंशों में निन्दित और मलिन हो गई थी। एक कन्यावधरूप दुरपनेय कलङ्क ने ही काठियावाड़वालों के सारे सद्गुणों को (यदि उनमें कुछ थे भी) आच्छादित कर रक्खा था। यह निष्ठुर और अमानुषिक प्रथा जाड़ेजा लोगों अर्थात् यदुवंशी क्षत्रियों में इतनी अधिक फैली हुई थी कि उतनी भारत के अन्य विभागों के क्षत्रियों में नहीं थी§। वल्लभाचार्य्य सम्प्रदाय के गुरुओं की रीति-नीति इतनी कलुषित थी और धर्म के नामपर उसका इतने असङ्कोच के साथ अनुष्ठान होता था कि समय-समय पर उसके कारण न केवल काठियावाड़ में ही अपितु सारी गुजरात भूमि में भी व्यभिचार का स्रोत प्रबल मूर्त्ति धारण कर लेता था। इसके ऊपर स्वामी नारायण मत के महन्तों की दुर्निवार्य धन-पिपासा और धन-संग्रहार्थ नाना कौशल-युक्त चेष्टाएँ काठियावाड़ निवासियों की विचार-हीनता का प्रचुर साक्ष्य प्रदान करती है‡। हम समझते हैं कि इस विषय में हमें और अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो प्रदेश अन्यों की अपेक्षा विचार-शून्यता, मानसिक दुर्बलता और कर्त्तव्य-शिथिलता में अग्रवर्त्ती हो, उस प्रदेश में देशाचार का मान्य करके चलना ही सामाजिक उन्नति की पराकाष्ठा समझी जाएगी, फलतः जिस समय काठियावाड़वालों के चरित्र, धर्म और समाज ऐसी दशा में अवस्थित थे, उस समय भारत के आदर्श सुधारक ने काठियावाड़ के उक्त प्रान्त में जन्म ग्रहण किया। टङ्कारा के कर्शनजी त्रिवाड़ी के घर में मूलजी नामक एक शिशु उत्पन्न हुआ।

---

§ इस विषय पर कर्नल वाकर लिखित काठियावाड़ रिपोर्ट और विलसन साहब प्रणीत History of Infanticide in Western India देखने योग्य है।

‡ ऐसी जनश्रुति है कि अहमदाबाद में जो स्वामी नारायण मत वालों का मन्दिर है, उसमें डेढ़ करोड़ रुपया विद्यमान है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीय अध्याय

संवत् १८८२—१९०३=सन् १८२५—१८४६

पाँच वर्ष की अवस्था में मूलजी का विद्यारम्भ हुआ। इस विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "जब मेरी आयु पाँच वर्ष के लगभग थी तब मैंने देवनागरी अक्षर सीखने आरम्भ किये।" जिस वंश में मूलजी ने जन्म लिया था वह विद्यानुराग और धर्मानुराग दोनों के लिए ही प्रसिद्ध था। संस्कृतविद्या की चर्चा और अनुशीलन के विषय में त्रिवाड़ी वंश के लोगों की एक कुलपरम्परागत रीति थी। वर्णशिक्षा आरम्भ करने के पश्चात् उसी कुलपरम्परागत रीति के अनुसार मूलजी विद्याभ्यास करने लगे। इस सम्बन्ध में वे स्वलिखित आत्मचरित्र में लिखते हैं, "उसी समय से माता-पिता और अन्य वयोवृद्ध अभिभावकवर्ग कुल की प्रथा के अनुसार मुझे शिक्षा देने लगे। उसके अनुसार मैं बहुत-से श्लोक और मन्त्रों को कण्ठस्थ करने लगा"।

बाल्य-शिक्षा—विद्यारम्भ के तीन वर्ष बाद अर्थात् ८ वर्ष की अवस्था में मूलजी का उपनयन-संस्कार हुआ। उपनयन होने के पश्चात् विद्याभ्यास के कार्य में उनके लिए अधिक समय लगाना सम्भव नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें सन्ध्योपासनादि के कार्य में भी नियमानुकूल प्रवृत्त होना पड़ा। इसके अतिरिक्त कर्शनजी अपने पुत्र को अपने समान धर्मनिष्ठ और शिवभक्त बनाने के लिए उद्योग करने लगे। इसलिए उपनयन के दो वर्ष पश्चात् से ही अर्थात् दस वर्ष की अवस्था में उन्होंने बालक मूलजी को पार्थिव पूजा का आदेश और उपदेश दे दिया। इसके अतिरिक्त जब कभी कहीं किसी शिव-प्रसंग की आलोचना वा शिव-माहात्म्य का कीर्त्तन होता तो मूलजी को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी पिता के साथ वहाँ जाना पड़ता। बीच-बीच में शिवोपासना के सम्बन्ध में उपवास, व्रत और अन्यान्य कठोरता का अवलम्बन करके चलना दस वर्ष के मूलजी को कठोर-प्रकृति पिता के आदेशनुसार आवश्यक हो गया और उन्हें सब काम नियमपूर्वक सम्पादन करने पड़े। इससे यह सहज में ही समझ में आ सकता है कि उनके पाठ में विघ्न उपस्थित होते रहते थे, परन्तु इन विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी मूलजी अपनी स्वभाव-सिद्ध, सुतीक्ष्ण बुद्धि और समुज्ज्वल धारण-शक्ति के साहाय्य से विद्योपार्जन के मार्ग में क्षिप्रगति से अग्रसर होने लगे। इस विषय में उन्होंने स्वलिखित आत्मचरित में लिखा है कि "चौदहवें वर्ष में पदार्पण करने के पहले ही व्याकरण और शब्दरूपावली का अभ्यास करके और समस्त यजुर्वेद और अन्य वेदों के भी थोड़े-थोड़े भाग को कण्ठस्थ करके मेरा अध्ययन कार्य एक प्रकार से समाप्त हो गया"। यजुर्वेद कण्ठस्थ करने से पहले उन्हें रुद्राध्यायी को भी कण्ठस्थ करना पड़ा था और यह उन्हें सम्भवतः पिता के आदेशानुसार करना पड़ा था, क्योंकि रुद्र शब्द यद्यपि अपने स्वतन्त्र अर्थ का भी बोधक है, परन्तु वर्त्तमान पौराणिक युग में रुद्र कहने से शिव का ही अर्थ समझा जाता है। परम शिवभक्त कर्शनजी के लिए यजुर्वेद पढ़ाने से पहले ही रुद्राध्याय का पढ़ाना स्वाभाविक और सम्भव था। यद्यपि चौदह वर्ष पूरे होने से पहले ही एक प्रकार से मूलजी का अध्ययन-कार्य समाप्त हो गया था, तथापि हम यह नहीं मानते कि वे उसके पश्चात् एक दम विद्या-चर्चा से अलग हो गये थे, क्योंकि शिवरात्रि के व्रत-भङ्ग करने के कारण जब पिता ने उनका तिरस्कार किया और उनके चचा, जननी और अन्यान्य स्वजनगणों ने एक मत होकर उन्हें अधिक समय पढ़ने में ही लगाने का आदेश किया तो उस समय की अपनी विद्यालोचना के विषय में वे लिखते हैं, "मैंने अपना पाठ्य विषय कुछ विस्तृत कर दिया। निरुक्त, निघण्टु, पूर्वमीमांसा और कर्मकाण्डादि के ग्रन्थों को भी मैंने अपनी आलोचना का विषय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बना लिया''। इससे विदित होता है कि उन्होंने जहाँ यह लिखा है कि चौदहवें वर्ष में पदार्पण करने के पूर्व ही मेरा अध्ययन-कार्य एक प्रकार से समाप्त हो गया था तो वहाँ लौकिक रीति के अनुसार समझकर ही विद्याध्ययन समाप्त होना लिखा है और किसी विचार से नहीं। कर्शनजी त्रिवाड़ी के वंश के लोग शिक्षित होने की इच्छा करने तथा गण्य-मान्य होने के इच्छुक होने पर साधारणतः जिन ग्रन्थों का अवलोकन किया करते थे, उन सब ग्रन्थों के अवलोकन कर लेने पर मूलजी ने अपना अध्ययन-कार्य एक प्रकार से समाप्त कर डाला था। इससे एक बात और भी सिद्ध होती है वह यह कि पाँच वर्ष की अवस्था में वर्णशिक्षा आरम्भ करके चौदहवें वर्ष के पूरे होने से पहले ही उन्होंने लौकिक प्रथा-निर्दिष्ट ग्रन्थों का पाठ समाप्त कर लिया था, अतः केवल नौ वर्ष में ही उन्होंने कुल की प्रथा के अनुसार सब पाठ्य विषय समाप्त कर लिये थे।

इसके पश्चात् काशी में जाकर विद्याध्ययन करने की इच्छा मूलजी के मन में प्रकट हुई। ऐसा नहीं है कि यह इच्छा उनके मन में आप ही उठी हो। जब माता-पिता उन्हें विवाह के बन्धन में बाँधने के लिए शीघ्रता करने लगे और विवाह के प्रारम्भिक कार्य—वाग्दान की भी तैयारियाँ करने लगे तो उन्होंने विशेषरूप से पिता को समझाकर वाग्दान को कुछ दिन के लिए स्थगित करा दिया और पिता से सातिशय अनुरोध करने लगे कि ऐसे सुयोग में मैं काशी जाकर व्याकरण और ज्योतिषादि दुरूह शास्त्रों को अच्छे प्रकार आयत्त कर सकूँगा। इस अनुरोध को स्वीकार करने पर पिता तो सहमत हो गये, परन्तु माता ने किसी प्रकार सम्मति प्रदान न की। इसलिए काशी जाकर अध्ययन करने की इच्छा का मूलजी को त्याग करना पड़ा, परन्तु विद्यानुशीलन के विषय में मूलजी एक दम निरस्त नहीं हुए। काशी जाने के सम्बन्ध में मनोरथ निष्फल होने के पश्चात् उन्होंने पिता से एक और प्रस्ताव किया। वह प्रस्ताव यह था कि "यहाँ से तीन कोस दूर हमारी ज़मींदारी के अन्तर्गत ग्राम में एक सुपण्डित अध्यापक रहते हैं। यदि आप मुझे उनके पास जाकर पढ़ने की आज्ञा दें तो स्वदेश में रहकर भी मैं अपना अध्ययन-कार्य समाप्त कर सकता हूँ"। इस प्रस्ताव का मूलजी के माता-पिता दोनों ने ही अनुमोदन किया और वे उस ग्राम में जाकर उस पण्डित के पास पढ़ने लगे, परन्तु घटनावश, कुछ दिन पीछे ही, उन्हें अपना अध्ययन-कार्य छोड़कर घर वापस आना पड़ा और एक प्रकार से मूलजी के विद्याभ्यास की समाप्ति हो गई।

घर वापस आकर मूलजी बहुत दिन तक विद्याभ्यास न कर सके। पिता के पास रहकर अधिक समय तक सांसारिक सुख-भोग करना भी मूलजी के अदृष्ट में नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में दो विशेष घटनाएँ मूलजी के बाल्यकाल में हुईं। उन घटनाओं से केवल उनके पठन-कार्य में और सांसारिक सुख-भोग में ही विघ्न नहीं पड़ा, अपितु उन घटनाओं ने मूलजी के जीवन को ऐसे मार्ग की ओर फेर दिया जो संसार के साधारण लोगों के चलने और अवलम्बन करने योग्य नहीं है। पृथिवी पर जो असाधारण होने के लिए ही जन्म लेते हैं, वे प्रायः जीवन के प्रथम स्वर से ही असाधारण मार्ग पर चलना आरम्भ करते हैं। इन दो घटनाओं में से एक तो मूलजी की बाल्यावस्था में ही हुई थी और दूसरी बाल्यावस्था की समाप्ति पर हुई थी।

मूर्त्तिपूजा में अविश्वास—जब मूलजी की अवस्था तेरह वर्ष की थी तो उनके पिता ने उन्हें शिवरात्रि का व्रत ग्रहण करने का आदेश किया। यह सभी जानते हैं कि इस व्रतग्रहण में क्लेश और कठोरता सहन करनी ही होती है, इसलिए उसमें मूलजी की माता ने आपत्ति की तथा अभिभावक और बन्धुवर्ग ने भी उसका विरोध किया, परन्तु कर्शनजी ऐसे मनुष्य न थे जो इस आपत्ति और विरोध की ओर दृक्पात करते। विशेषकर उन्होंने सोचा कि जब पुत्र का उपनयन हो गया है तो उसे अधिक समय तक धर्मपालन और धर्मानुष्ठान-विरत रखना ठीक नहीं है, अतः उस शिवरात्रि को ही अच्छा अवसर समझकर मूलजी को बुलाकर कहा कि तुम आज उपवास रखना, शिवालय में जाकर रात्रि में जागरण करना, क्योंकि आज तुम्हें पवित्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शैव-धर्म की दीक्षा लेनी होगी। इसके अनुसार मूलजी ने उपवास रक्खा और सायङ्काल को अन्यान्य साथियों के साथ पिता के पीछे-पीछे शिवालय की यात्रा की और शहर के बाहर जो बड़ा शिवालय था, वहाँ पहुँचे। शिवरात्रि को चार प्रहर में चार बार शिवजी की पूजा करनी होती है। जिस समय मूलजी की दूसरे प्रहर की पूजा समाप्त हो चुकी तब उन्होंने देखा कि मन्दिर के पुजारी और मन्दिर में आये हुए गृहस्थ व्रतधारी भी मन्दिर के बाहर जाकर सो रहे हैं, यहाँ तक कि उनके पिता भी निद्रा के वशीभूत हो गये, परन्तु मूलजी न सो सके, क्योंकि उन्होंने सुन रक्खा था कि व्रतधारी के लिए शिवरात्रि में सोना बहुत ही निन्दनीय है और निद्रा के कारण व्रत का भङ्ग करना महापाप है। इसलिए बीच-बीच में प्रबल निद्रा के वेग से अवसन्न होने पर भी मूलजी बार-बार आँखों पर जल छिड़क-छिड़ककर जागते ही रहे। मन्दिर के पुजारी और मन्दिर में आये हुए व्रतधारीगण प्रायः सभी निद्रा के वशीभूत हो गये, परन्तु एक तेरह वर्ष का अकेला बालक जागता रहा। पिता ने निद्रा की गोद में आत्म-विसर्जन कर दिया, परन्तु पुत्र निद्रा पर जयलाभ करके बैठा हुआ जागता रहा। जड़ेश्वर§ के विशाल मन्दिर के भीतर जब मूलजी अकेले बैठे हुए जागरण कर रहे थे, मन्दिर

---

§ कोई-कोई आक्षेप करते हैं कि जब टङ्कारा में कर्शनजी त्रिवाड़ी का बनाया हुआ अपना कुबेरनाथजी का मन्दिर था तो वह पुत्र को शिवरात्रि के व्रत के पालन करने के लिए जड़ेश्वर के मन्दिर में लेकर क्यों गये होंगे ? कर्शनजी के लिए यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह बालक मूलजी को शिवरात्रि की अँधेरी रात्रि में जड़ेश्वर के मन्दिर में जो टङ्कारा से चार मील दूर है, ले-गये हों ? यह बात सब जगह देखने में आती है कि अपना शिवालय रहने पर भी शिवरात्रि प्रभृति विशेष घटनाओं के अवसर पर लोग उसी मन्दिर में जाते हैं जो प्रसिद्ध और माहात्म्य में विशिष्ट समझा जाता है। हमने कर्शनजी की प्रदौहित्री वा पूर्वोक्त पोपट रावल की फूआ श्रीमती बेनीबाई से पूछा कि कर्शनजी के दौहित्र के वंशवाले शिवरात्रि की रात्रि को किस शिवालय में जाते हैं, तो उन्होंने कहा था—"हमारे पिता और भाई शिवरात्रि को कभी कुबेरनाथजी के मन्दिर में और कभी जड़ेश्वर के मन्दिर में जाया करते थे"। इसे छोड़कर स्वयं स्वामी दयानन्द ने लिखा है—"हमारे शहर के बाहर जो बड़ा शिवालय था उसमें शिवरात्रि को बहुत लोगों का समागम होता था, मैं भी एक बार शिव-चतुर्दशी को व्रतधारी होकर सायंकाल पिता के साथ उसी मन्दिर में गया था। रात्रि के दो प्रहर बीतने पर मैंने देखा कि मन्दिर के पुजारी और सेवक और मन्दिर में आये हुए व्रतधारी गृहस्थ मन्दिर से बाहर जाकर सोने लगे"। इन दोनों बातों से यह सिद्ध होता है कि दयानन्द जिस मन्दिर में व्रत के उद्यापन के लिए गये थे वह मन्दिर उनके शहर के बाहर था, बड़ा था और उस मन्दिर के निकट कोई बरामदा आदि आश्रय का स्थान नहीं था, अतः मन्दिर के पुजारी और मन्दिर में आये हुए व्रतधारियों के सोने के लिए स्थान कहाँ से आया ? कुबेरनाथजी का मन्दिर इन लक्षणों से युक्त नहीं है, क्योंकि वह शहर से बाहर नहीं है, अपितु भीतर है। उसके पार्श्व में वा उसके निकट कोई ऐसा आश्रय-स्थान नहीं है जिसमें दो से अधिक मनुष्यों के सोने की जगह हो। उस मन्दिर का आयतन इस प्रकार है कि मन्दिर के बाहर के बरामदे की लम्बाई चार हाथ और चौड़ाई साढ़े तीन हाथ, मन्दिर के भीतरले भाग की लम्बाई सवा तीन हाथ, चौड़ाई तीन हाथ, ऊँचाई चार हाथ और कलशसहित ऊँचाई पाँच हाथ से अधिक नहीं है।

मौरवी नगर के बाहर भी एक जड़ेश्वर महादेव का मन्दिर है, इसलिए किसी-किसी व्यक्ति की अर्थात् उर्दूभाषा में 'दयानन्द-चरित' के लेखक पण्डित लेखराम और उनके अनुयाइयों की यह धारणा है कि दयानन्द का जन्म स्थान मौरवी था और शिवरात्रि व्रत पालन के लिए वे मौरवी नगर के जड़ेश्वर के मन्दिर में ही गये थे, परन्तु यह बात कि टङ्कारा को छोड़कर और कोई स्थान दयानन्द का जन्म-स्थान नहीं हो सकता, 'दयानन्द जन्मस्थानादि निर्णय' नामक पुस्तक में सम्पूर्ण रूप से सिद्ध कर दी गई है, इसके अतिरिक्त मौरवी के बाहर जो जड़ेश्वर का मन्दिर है, वह किसी प्रकार भी बड़ा नहीं है और उसकी महिमा भी इतनी नहीं है कि वह बहुत-से लोगों का चित्ताकर्षण कर सके। विशेषकर शिवरात्रि को बहुत-से लोगों के इकट्ठे होने का स्थान हो सके। इसके विरुद्ध टङ्कारा के बाहर बांकानेर राज्य की सीमा के ऊपर जड़ेश्वर का जो मन्दिर है, वह विशाल तो है ही, इसके सिवाय उसकी प्रतिष्ठा और महिमा सारे काठियावाड़ में इतनी प्रसिद्ध है कि शिवरात्रि में सैकड़ों लोग वहाँ आते हैं। दूरवर्त्ती स्थानों तक से मनुष्यों के दल के दल वहाँ आते हैं। जड़ेश्वर मन्दिर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की निस्तब्धता ने मन्दिर के चारों ओर की निस्तब्धता से मिलकर एक नयी निस्तब्धता की सृष्टि कर दी थी और शिव-चतुर्दशी के घोर तिमिरावरण में वह महानिस्तब्धता आविरत रहकर जिस समय मनुष्य के मन में आतङ्क का उद्दीपन कर रही थी, ऐसे समय में संशय के एक प्रबल झटके ने मूलजी के मन में प्रवेश करके उसे आलोडित कर डाला। इस विषय का उन्होंने स्वयं इस प्रकार वर्णन किया है, "जब मैं मन्दिर में इस प्रकार अकेला जाग रहा था तो एक घटना उपस्थित हुई। कई चूहे बाहर निकलकर महादेव की पिण्डी के ऊपर दौड़ने लगे और बीच-बीच में महादेव पर जो चावल चढ़ाये गये थे, उन्हें भक्षण करने लगे। मैं जाग्रत् रहकर चूहों के इस कार्य को देखने लगा। देखते-देखते मेरे मन में आया कि यह क्या है ? जिस महादेव की शान्त, पवित्र मूर्त्ति की कथा, जिस महादेव के प्रचण्ड पाशुपतास्त्र की कथा और जिस महादेव के विशाल वृषारोहण की कथा गत दिवस व्रत के वृत्तान्त में सुनी थी, क्या वह महादेव वास्तव में यही है? इस प्रकार मैं चिन्ता से विचलित-चित्त हो उठा। मैंने सोचा कि यदि यथार्थ में यह वही प्रबल प्रतापी, दुर्दान्तदैत्य-दलनकारी महादेव है तो यह अपने शरीर पर से इन थोड़े-से चूहों को क्यों विताड़ित नहीं कर सकता? इस प्रकार बहुत देर तक चिन्ता-स्रोत में पड़कर मेरा मस्तिष्क घूमने सगा। मैं आप ही अपने से पूछने लगा कि जो चलते-फिरते हैं, खाते हैं, पीते हैं, हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं, डमरू बजाते हैं और मनुष्य को शाप दे सकते हैं, क्या यह वही वृषारूढ़ देवता हैं जो मेरे सामने उपस्थित हैं‡ ? यह प्रश्न वास्तव में सरल और

के व्यय के लिए जामनगर से प्रति मास पचास, धराङ्गधरा से पच्चीस, साङ्गली से दस रुपये मिलते हैं। बांकानेर प्रति वर्ष ३७५ मन बाजरा, ६ मन घृत, ६ मन तेल, और १६ मन शक्कर देता है। बांकानेर के कृषक प्रति ३० एकड़ भूमि के पीछे ४ सेर बाजरा प्रति वर्ष देते हैं।

कुछ लोग यह कहते हैं कि यह सम्भव नहीं मालूम होता कि व्रतपालन और रात्रिजागरण के लिए दयानन्द जड़ेश्वर के इस मन्दिर में गये हों, क्योंकि उस समय यह स्थान जङ्गल से पूर्ण था और रात्रि के समय वहाँ चीते, बाघ प्रभृति हिंस्र-जन्तु आकर उपद्रव किया करते थे। हमारे विश्वास में यह बात ठीक नहीं जँचती, क्योंकि जहाँ बहुत-से मनुष्य इकट्ठे होकर रहते हों वहाँ हिंस्र-जन्तुओं का भय होते हुए भी हिंस्रजन्तु वास्तव में कुछ कर नहीं सकते। इसके अतिरिक्त जिस समय की बात हम लिख रहे हैं, उस समय इस स्थान का जङ्गल काटकर साफ कर दिया गया था। दयानन्द सम्भवतः संवत् १८६३ वा १८६४ का शिवरात्रि का व्रत पालन करने के लिए जड़ेश्वर के इस मन्दिर में गये थे, क्योंकि उस समय उनकी आयु केवल १३ वर्ष की थी। उससे पहले जड़ेश्वर का स्थान जङ्गल से पूर्ण रहा हो, परन्तु उस समय नहीं था। जड़ेश्वर का मन्दिर पूर्वोक्त विट्ठलराव देवजी ने संवत् १८६६ में बनवाया था और मन्दिर के पश्चिम भाग की सोपानमाला संवत् १८७३ की माघशुक्ला पञ्चमी के दिन प्रागुक्त सेठ सुन्दरजी सिउजी ने बनवाई थी। इससे अनुमान होता है कि संवत् १८६६ से पहले ही जड़ेश्वर की भूमि जङ्गलशून्य कर दी गई थी। वक्ष्यमाण समय में वहाँ हिंस्र-जन्तुओं के आधिक्य की सम्भावना नहीं थी।

‡ उल्लिखित उक्ति से विदित होता है कि मूलजी महादेव के सामने बैठकर चूहों की इस प्रकार की लीला देख रहे थे और इस चिन्ता से आन्दोलित हो रहे थे। वह महादेव अर्थात् जड़ेश्वर केवल लिङ्गमात्र नहीं है, वह महादेव की सुन्दर त्रिशूलधारी मूर्त्ति है, परन्तु देखा गया है कि जड़ेश्वर की मूर्त्ति लिङ्गमूर्त्ति के सिवाय कुछ नहीं है तो फिर यह किस प्रकार विश्वास के योग्य हो सकता है कि शिवरात्रि को व्रतपालन करने के लिए दयानन्द इस जड़ेश्वर के मन्दिर में गये थे, परन्तु इसके विश्वास योग्य होने का यथेष्ट कारण है, क्योंकि शिवरात्रि को और श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को पुजारी लोग शिव की चाँदी की पूरी प्रतिमूर्त्ति लाकर लिङ्गमूर्त्ति के सामने स्थापित कर देते हैं। यह प्रथा जड़ेश्वर मन्दिर में बहुत काल से चली आती है। इसी चाँदी की शिवमूर्त्ति के प्रति लक्ष्य करके दयानन्द ने कहा था कि "क्या यह वही वृषारूढ़ देवता है जो मेरे सामने उपस्थित है ?" इस प्रकार के वचन दयानन्द के लिए किसी अंश में भी असङ्गत वा निर्मूल नहीं हैं। आजकल जो शिवजी की चाँदी की मूर्त्ति शिवरात्रि आदि अवसरों पर जड़ेश्वर की लिङ्गमूर्त्ति के सामने स्थापित की जाती है, वह जामनगर के अधिपति स्वर्गीय विभाजी जाम ने प्रदान की थी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाभाविक है, परन्तु उसका उठाना तेरह वर्ष के बालक के लिए सम्भव मालूम नहीं होता, परन्तु जो भावी जीवन में महापुरुषों की पूज्य और उन्नत पदवी पर आरूढ़ होकर मनुष्यजाति की चिन्ता, सङ्कल्प और लक्ष्य को परिचालित करते हैं, उनका बाल्य-जीवन भी निःसन्देह किसी-न-किसी अंश में महापुरुष का परिचायक होता है। जर्मनी के प्रज्वलगौरव गेटे जब छह वर्ष के बालक थे तो उन्होंने लिस्बन के भीषण भूकम्प का समाचार सुनकर कहा था "तो ईश्वर फिर दयालु कैसे हैं ?"

अस्तु, इस भारी संशय के झटके को शान्त करने के सङ्कल्प से मूलजी ने अपने सोते हुए पिता को जगाया और उनसे प्रश्न किया—"जो महादेव प्रबल पराक्रमी प्रसिद्ध हैं, वे थोड़े-से चूहों को भी भगाने में समर्थ क्यों न हुए" ? शिव-चतुर्दशी की रात्रि में, शिवमन्दिर में, शिवमूर्त्ति के सामने, परम शिवभक्त कर्शनजी त्रिवाड़ी को शिव-व्रतधारी पुत्र के मुख से यह कैसी बात सुनने में आई ! कर्शनजी के मस्तक पर मानो वज्रपात हो गया। उन्होंने सोचा कि कैसा सर्वनाश है ! उन्होंने किंकर्त्तव्यविमूढ़ मनुष्य के समान पुत्र को एक उत्तर तो दिया, परन्तु मूलजी का संशयान्दोलित चित्त उससे शान्त नहीं हुआ। कर्शनजी ने कहा "निबुद्धि बालक ! यह उस महादेव की केवल प्रतिमूर्त्ति है।" संसार में जो सत्य ही चाहते हैं, सत्य के पिपासु होते हैं और जो सत्य के पिपासु कहलाकर ही साधारण मानव-श्रेणी के बहुत ऊँचे स्तर पर अवस्थित होते हैं, वे प्रकृत सत्य को चाहते हैं, सत्य की प्रतिमूर्त्ति नहीं चाहते। यदि उन्हें प्रकृत सत्य कृत्रिमता द्वारा आविरत करके दिखाया और समझाया जाता है तो वे उससे चित्त में तृप्ति-लाभ नहीं करते, क्योंकि वह एक बार ही सरलभाव और सम्यग्रूप से सत्य के प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। इसी कारण मूलजी कर्शनजी के प्रागुक्त उत्तर से सन्तुष्ट न हो सके और प्रतिमूर्त्ति से सन्तुष्ट न होने पर उन्होंने प्रकृत के देखने का सङ्कल्प कर लिया और उसी क्षण और उसी स्थान पर बैठकर स्थिर कर लिया कि जब तक त्रिशूलधारी यथार्थ महादेव को न देखूँगा तब तक किसी प्रकार भी उसकी पूजा नहीं करूँगा। तेरह वर्ष के बालक होते हुए भी सत्य की जिज्ञासा में मूलजी निर्भीक थे ! पिता के अनुरोध, पिता के आदेश और पिता के तिरस्कार पर तनिक भी दृक्पात न करके बालक ने प्रतिज्ञा की कि बिना यथार्थ महादेव को देखे मैं किसी प्रकार भी उस मूर्त्ति की पूजा नहीं करूँगा। इस घटना§ ने केवल यही नहीं किया कि दयानन्द को सदा के लिए मूर्त्तिपूजा का अविश्वासी बना दिया वा कुछ समय पश्चात् उन्हें मूर्त्तिपूजा के घोरतर विरोधी में परिणत कर दिया, अपितु इससे भी अधिक यह किया कि वह सहस्रों मनुष्यों के मन में मूर्त्तिपूजा के प्रति अविश्वास और अश्रद्धा का प्रबल कारण बन गई, भारतभूमि से मूर्त्तिपूजा के उन्मूलन का कारण बन गई।

कर्शनजी पुत्र के कारण बड़े विभ्राट् में पड़ गये। पुत्र का व्रत-उद्यापन करना तो दूर रहा और उसका शैवधर्म की दीक्षा लेना भी दूर रहा, पुत्र के मन में मूल वस्तु के प्रति ही अविश्वास उत्पन्न हो गया। पुत्र इसी विषय में विचलित हो गया कि यह महादेव यथार्थ महादेव है कि नहीं। उन्होंने मूलजी को और अधिक समय के लिए शिव-मन्दिर में रखना उचित न समझा और उधर सारा दिन उपवास करने के कारण मूलजी भी क्षुधा-तृषा से बहुत अधीर हो रहे थे, इसलिए घर जाने के लिए उद्यत थे, अतः उनके लिए भी शिव-मन्दिर से विदा होना वाञ्छनीय हो गया था। अस्तु, अन्त में कर्शनजी ने मूलजी को एक सिपाही के साथ घर भेज दिया और जाते समय बार-बार मूलजी को सावधान कर दिया कि घर जाकर आहार करके व्रतभङ्ग न करना।

---

§ इस घटना की भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं। अलीगढ़ के ख्यातनामा सर सय्यद अहमद खाँ कहते हैं कि वह दैवी प्रेरणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। जिस घटना ने दयानन्द को मूर्त्तिपूजा का अविश्वासी और पीछे चलकर मूर्त्तिपूजा का विरोधी बना दिया, जो दयानन्द को मूर्त्तिपूजा के उच्छेद के लिए जीवनव्यापी संग्राम में प्रवृत्त रखने का कारण हुई, वह ईश्वरीय घटना ही थी, इसमें सन्देह ही क्या है ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जडेश्वर के मन्दिर से टङ्कारा का जीवापुर मोहल्ला प्रायः तीन मील दूर है। रात्रि में जीवापुर मोहल्ले को जाना होगा, इसलिए बालक मूलजी के साथ एक रक्षक वा सिपाही करना आवश्यक था और कर्शनजी के पास रक्षकों और सिपाहियों का अभाव न था, क्योंकि वे टङ्कारा ताल्लुक़ के जमेदार थे।

कुछ देर पश्चात् मूलजी सिपाही के साथ घर आ गये। शिव-व्रतधारी पुत्र को शिव-मन्दिर से रात्रि के तीसरे प्रहर में घर वापस आया हुआ देखकर माता ने कहा कि मैंने व्रत लेने से पहले ही तुझसे कहा था कि व्रत मत ले, क्योंकि मैं जानती थी कि उपवासजनित कठोर क्लेश को तू सह नहीं सकेगा। माता यह समझी थी कि मूलजी उपवास के क्लेश को सहन न कर सकने के कारण ही घर लौट आया है। यह कहकर उसने पुत्र के सामने मिष्टान्नादि खाद्य पदार्थ लाकर रख दिये। जब मूलजी भोजन करने लगे तो पुत्रवत्सला माता उसके सामने बैठ गई और यह परामर्श देने लगी कि तुम दो दिन तक पिता के सामने न जाना और उनसे एक बात भी न करना। मूलजी भोजन करके पलँग पर जाकर सो गये और ऐसी गहरी नींद सोये कि अगले दिन आठ बजे से पहले वह पलँग पर से न उठ सके। जब प्रातःकाल कर्शनजी ने जड़ेश्वर के मन्दिर से वापस आकर यह सुना कि पुत्र ने भोजन करके व्रत भङ्ग किया है तो उन्हें बहुत क्रोध आया और वे पुत्र को फटकारने पर उद्यत हो गये। बन्धुवर्ग की और विशेषकर मूलजी की माता की यह धारणा थी कि व्रतभङ्ग के अपराध पर कर्शनजी सम्भवतः पुत्र को पीटेंगे। कर्शनजी कठोर प्रकृति के कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष थे, इसलिए उनके लिए ऐसा कर बैठना किसी प्रकार भी असम्भव नहीं था, अतः मूलजी की माता, चचा और आत्मीयजन कर्शनजी को समझाने लगे और उनसे यह बात विशेषरूप से समझाकर कही कि पुत्र को उपवासादि का क्लेश सहन करना पड़ा है, वह अल्पवयस्क है, उसके पढ़ने में विघ्न होगा, परन्तु उसने शिवव्रतधारी होकर व्रतभङ्ग किया है और ऐसा करके महापाप किया है, इस कारण से शिवभक्त कर्शनजी का क्रोध एकदम शान्त नहीं हुआ। वे क्रोध में आकर अपराधी पुत्र के सामने आये और उससे बार-बार कहने लगे कि तूने व्रतभङ्ग करके बहुत भारी अपराध किया है, परन्तु पुत्र की दृढ़ता पिता की दृढ़ता से किसी अंश में भी कम न थी। जैसे पिता अपने विश्वासों पर अटल थे, वैसे ही पुत्र भी पने विश्वास पर अटल था। पिता का विश्वास था कि उपवासी न रहकर, आहार करके पुत्र ने घोर अपराध किया है। पुत्र का विश्वास था कि जब मैं किसी प्रकार भी उस पाषाणमूर्त्ति को प्रकृत महादेव नहीं समझता तो फिर उसकी पूजा कैसी? और उसके लिए उपवासादि कैसा ? अन्त में दोनों के बीच में सन्धि स्थापित हो गई, परन्तु कर्शनजी के अन्तःकरण में बहुत दिनों तक अशान्ति की रेखा बनी रही।

इस घटना के पाँच वर्ष पीछे मूलजी के जीवन में एक और घटना घटित हुई। उस घटना के विषय में उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

"एक दिन रात्रि के समय मैं अपने एक बन्धु के यहाँ नृत्योत्सव§ देख रहा था, उस समय एक भृत्य ने घर से आकर एक विषम संवाद दिया। उसने कहा कि मेरी चौदह वर्ष की भगिनी सांघातिक रोग से

---

§ उल्लिखित नृत्योत्सव के अर्थ सम्भवतः सभी पाठक वेश्याओं के नाच के लेंगे, परन्तु जिस समय की बात लिखी जा रही है, उस समय काठियावाड़ में वा मौरवी अञ्चल में वेश्याओं के नाच-गान की प्रथा प्रचलित न थी, उस समय तर्गारा नाम का एक दल नाचने-गाने का पेशा करनेवाला काठियावाड़ में विद्यमान था। जब किसी आमोद वा उत्सव के उपलक्ष में आवश्यकता होती थी तो उन्हें पैसा देकर बुला लेते थे। तर्गारा बहुत प्रकार से सज-धजकर दल बाँधकर नाचते-गाते थे। उनका नाचना-गाना रात्रि में ही होता था, दिन में नहीं। उनमें अधिकतर नीच श्रेणी के ब्राह्मण सम्मिलित रहते थे। इस समय उनके नाचने-गाने की प्रथा काठियावाड़ से एक प्रकार से उठ-सी गई है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं है कि उपर्युक्त नृत्योत्सव तर्गारों के ही नृत्य-गीत का उत्सव था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुग्ण हो गई है। भगिनी की चिकित्सा के लिए सारे ही उपायों का अवलम्बन किया गया, परन्तु दुःख है कि मेरे घर आने के दो घण्टे के भीतर ही वह मृत्यु का ग्रास हो गई। उस भगिनी के वियोग का शोक ही मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से हृदय में बड़ा आघात लगा। उस शोकप्रद घटना के समय जब आत्मीय स्वजनगण मेरे चारों ओर खड़े हुए क्रन्दन-विलाप कर रहे थे, मैं पाषाण-निर्मित मूर्त्ति के समान अविचलित रहकर चिन्ता के स्रोत में डूबा हुआ था। मनुष्य-जीवन की क्षणभंगुरता की बात सोचकर मैं अपने मन में कह रहा था कि जब पृथिवी पर सबको ही इस प्रकार मरना है तो मैं भी एक दिन मरूँगा। कोई ऐसा स्थान भी है वा नहीं जहाँ जाकर मृत्यु-समय की यन्त्रणा से रक्षा हो सके और मुक्ति का उपाय भी मिल सके। अन्त में उसी स्थान पर खड़े-खड़े उसी क्षण मैंने यह सङ्कल्प किया कि मुझ-जैसे ईश्वर-अविश्वासी जिस प्रकार से अवर्णनीय मृत्यु-क्लेश से अपने-आपको बचा सकें, ऐसे उपाय का चाहे जैसे भी हो अवलम्बन करने का यत्न करूँगा। इसके अतिरिक्त उस चिन्ता और विचार के समय मैंने सुदृढ़ रूप से जान लिया कि बाहर की कठोरता वा किसी प्रकार का बाह्यानुष्ठान किसी अंश में भी धर्मलाभ के अनुकूल नहीं है और आत्मिक प्रयत्न की आवश्यकता भी मैं दिन-प्रतिदिन समझने लगा, परन्तु मैंने मन के ये सब भाव सर्वथा प्रच्छन्न रक्खे, अन्तःकरण की गूढ़ आकाँक्षाओं के विषय में मैंने किसी को भी कोई बात जानने न दी।"

उल्लिखित घटना ने मूलजी को तीन शिक्षाएँ दीं। प्रथम, *शरीर की क्षणभंगुरता,* द्वितीय *मुक्ति-प्राप्ति की नितान्त आवश्यकता,* तृतीय *धर्मलाभ के मार्ग में उपवासादि बहिरङ्ग साधनों की अकिञ्चित्कारिता।* इसके पश्चात् इसी प्रकार की एक और घटना उनके सामने उपस्थित हुई। उस घटना के विषय में वे स्वयं इस प्रकार लिखते है—

"थोड़े ही दिन पीछे चचा की भी मृत्यु हो गई। चचा सुपण्डित और साधुचरित्र-व्यक्ति थे। वे मेरे जन्म से ही मुझसे बहुत स्नेह करते थे। उनके वियोग से मैं और भी अवसन्न हो गया। मैंने सोचा कि संसार की सारी वस्तुएँ अस्थायी और चञ्चल हैं, तब ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसके लिए संसार में रहकर सांसारिक लोगों के समान जीवन-यापन करूँ ?" साधारण पुरुष और महापुरुषों के बीच में यही विशेष भेद है कि संसार की नित्यप्रति की घटनाओं के भीतर साधारण मनुष्य जिस बात को नहीं देख सकते, उसे महापुरुष देख लेते हैं।

वैराग्योदय—जन्म-मृत्यु, सम्पद्-विपत्, हानि-लाभ सदा होनेवाली घटनाएँ साधारण मनुष्य को जो शिक्षा देती हैं, महापुरुषों को उनसे कुछ अधिक शिक्षा प्रदान करती हैं। विलाप और रोदन के साथ राजपथ में मृतदेह को ले-जाते हुए किसने नहीं देखा ? परन्तु उस दृश्य को देखकर कपिलवस्तु के युवराज बुद्ध राजसिंहासन पर लात मारकर और गृहस्थ छोड़कर क्यों चले गये ? भगिनी का वियोग और चचा की मृत्यु प्रायः संसार में सब जगह होती हैं, परन्तु ऐसा व्यक्ति कौन है जो उन घटनाओं के स्थल में खड़ा होकर उस शोकावह घटना के लिए अश्रु की एक बूँद भी न गिराकर यह स्थिर कर सके कि "जब संसार की सारी ही वस्तुएँ अस्थायी और चञ्चल हैं, तो ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसके लिए गृहस्थ में रहकर सांसारिक लोगों के समान जीवन-यापन करूँ ?" इससे अब यही प्रश्न उठता है कि साधारण मनुष्यों और महापुरुषों में जो पार्थक्य है, वह किस वस्तु पर निर्भर है, घटना पर वा घटना के देखनेवाले मन पर ? उत्तर यही है कि निश्चय ही मन पर। महापुरुष जिस मन वा मानसिक प्रकृति को लेकर जन्म ग्रहण करते हैं, उस मन और मानसिक प्रकृति को लेकर साधारण मनुष्य जन्म ग्रहण नहीं करते।

हम देखते हैं कि यौवन के प्रारम्भ से ही मूलजी के अन्तःकरण में तीन भाव विशेषरूप से कार्य कर रहे थे। प्रथमतः मूर्त्तिपूजादि पौराणिक धर्मप्रणाली के प्रति अश्रद्धा, द्वितीयतः संसार के प्रति वैराग्य, तृतीयतः उपवासादि बहिरङ्ग साधनों के प्रति अरुचि और अनास्था। वयोवृद्धि के साथ-साथ ये तीनों भाव भी उत्तरोतर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रबलतर होते रहे। इनमें से दूसरे भाव का प्राबल्य अन्यों की अपेक्षा कुछ विशेष मात्रा से देखा जाने लगा। जिस वैराग्य-अग्नि को उद्दीप्त करने के भिप्राय से ज्ञानी ज्ञान के साधन में तद्गत रहते हैं, विवेकी इन्द्रिय-संयमरूप दुर्जेय संग्राम में बारम्बार प्रवृत्त होते हैं, वही वैराग्य की अग्नि एक अठारह वर्ष के युवक के हृदय में इस प्रकार जल उठी कि वह संसार और सांसारिकता की ओर से एकदम मुँह फेरकर खड़ा हो गया। सुतराम पिता के साथ उनकी अप्रीति होने की सम्भावना हो गई। पिता घोर मूर्त्तिपूजक, पुत्र मूर्त्तिपूजा के प्रति श्रद्धाहीन, पिता संसार के धन, मान, यश, प्रतिष्ठा—एक शब्द में अहरहः सांसारिकता के साथ जटित, पुत्र सांसारिकता के सब प्रकार के बन्धनों को छिन्न-भिन्न करने पर उद्यत, पिता अनाहार, एक समय आहार, दिन-विशेष पर व्रतविशेष का अवलम्बन आदि धर्म के बाह्यानुष्ठान के परिपालन में प्रयत्नशील, पुत्र उन सब कार्यों के प्रति उदासीन वा आस्थाहीन, ऐसी अवस्था में पिता और पुत्र में अप्रीति वा असद्भाव हुए बिना नहीं रह सकता था। एक बात और भी है, संसार में सर्वकाल प्रचारित और सर्वजन सम्मत यह सिद्धान्त है कि भाषा भाव की प्रकाशक है, परन्तु हम सब स्थलों में इस सिद्धान्त के पक्षपाती नहीं है, क्योंकि भाषा के न रहते हुए भी भाव-प्रकाशन में कोई विशेष व्याघात नहीं होता। भाव आत्मप्रकाशक है, भाव आप ही अपने को प्रकाशित करने में समर्थ है। भाषा वा स-रवता की अपेक्षा नीरवता के द्वारा ही भाव अपने को अधिक प्रकाशित करता है। इसलिए यद्यपि मूलजी ने अपने प्रागुक्त भावों को गुप्त रक्खा था और अन्तःकरण की निगूढ़ आकाँक्षाओं के विषय में किसी को कुछ जान न लेने दिया था, तथापि मूलजी के माता-पिता आदि सभी उनके प्रकृत मनोभावों को क्रमशः समझ गये थे।

जब मूलजी की अवस्था उन्नीस वा बीस वर्ष की थी तब सांसारिक सम्बन्ध को निरविच्छिन्न कर देने के विषय में उनके चित्त में निरन्तर संग्राम होने लगा। हम समझते हैं कि यह बात सभी जानते हैं कि मुख मनोभावों का एक दर्पण है, इसलिए बन्धु-बान्धवगण मूलजी के मुख को देखकर बीच-बीच में कारण पूछते थे। जो विषय मनुष्य को सर्वोपरि वाञ्छनीय है, जो वस्तु मनुष्य की अधिकतर आकांक्षित है, उसके सम्बन्ध में मनुष्य चाहे निरन्तर सावधानता का व्यवहार करे तो भी कभी-कभी चित्त के आवेग के कारण उसे दूसरों पर, विशेषकर सुहृद्वर्ग पर प्रकाशित कर देता है, मूलजी ने भी ऐसा ही किया।

उस समय यह बात उनके चित्त में सर्वोच्चपदारूढ़ हो गई थी, यह चिन्ता प्रायः सदा उनकी चित्तवृत्ति पर अधिकार किये रहती थी कि मैं किसी प्रकार भी विवाह-सूत्र में आबद्ध न होऊँ। इसलिए कभी-कभी बान्धववर्ग के पूछने पर वे कह दिया करते थे कि विवाह की बात तो दूर है, मुझे तो विवाहित होने की कल्पना से भी विरक्ति है। अथवा कभी बान्धवों के पास जाकर मृत्यु-यन्त्रणा से मुक्ति पाने के उपायों को पूछ बैठते। क्रमशः ये सब बातें कर्शनजी और उनकी पत्नी के कर्णगोचर होने लगीं। उन्होंने तो पहिले से ही मूलजी के मुख की भावभङ्गी को देखकर उनकी मानसिक अवस्था का परिचय पा लिया था, परन्तु इस समय बान्धवों से यह सुनकर कि मूलजी इस प्रकार की बातें कहते फिरते हैं, उन्हें विवाह की शृङ्खला में बाँधने के अभिप्राय से शीघ्रता करने लगे।

संसार में वैराग्य, निवृत्तिपरता, संसार-विरक्ति, संसार-वितृष्णा इत्यादि पवित्र, उन्नत और महान् भावों को मनुष्य के मन से उन्मूलित करने के लिए क्या विवाह के समान कोई कालकूट है वा हो सकता है? इसलिए संसार-विकृतचित्त मनुष्य, यह जानकर कि पुत्र वा अन्य किसी स्वजन के चित्त में उक्त महा-भावों में किसी एक ने आश्रय ले-लिया है, उसके उत्पाटन के लिए इसी कालकूट का प्रयोग करता है, इसलिए मूलजी के लिए भी इसी व्यवस्था का अवलम्बन किया गया, परन्तु मोहाच्छन्न मनुष्य नहीं समझ सकता कि सच्चे वैराग्य के सामने विवाह या विवाहित-जीवन का प्रलोभन किसी अंश में भी कृतकार्य नहीं हो सकता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह कालकूट अन्य क्षेत्र में चाहे फल-प्रद हो परन्तु वैराग्य की मृत्युञ्जयिनी शक्ति के सामने कुछ भी नहीं है। अस्तु, पुत्र की वैराग्याग्नि को शान्त करने के उद्देश्य से कर्शनजी ने पहले तो पुत्र को जमेदारी के कार्य का भार देना चाहा, परन्तु जब पुत्र उससे सहमत न हुआ तो कर्शनजी और उनकी सहधर्मिणी दोनों ने पुत्र का विवाह शीघ्र कर देने का सङ्कल्प कर लिया। यहाँ तक कि वाग्दान का कार्य करने के लिए उत्सुक हो गये और यह स्थिर किया कि बीस वर्ष की आयु पूरी होते ही मूलजी का विवाह कर देना चाहिए। मूलजी जिस काम को न करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे उनके माता-पिता दोनों ही उसी के कराने के लिए समुद्यत थे, यह देखकर मूलजी बहुत ही चिन्ताग्रस्त हो गये और बन्धु-बान्धव को पिता के पास ले-जाकर अनुनय के साथ यह अनुरोध किया कि वाग्दान का कार्य शीघ्र न होना चाहिए। बन्धुवर्ग ने भी इसका अनुमोदन किया और अन्त में कर्शनजी ने वर्ष के शेष भाग तक वाग्दान के कार्य को स्थगित करने का वचन दे दिया। ऐसे सुयोग में काशी में जाकर अध्ययन करने का प्रस्ताव हुआ, परन्तु मूलजी की माता ने उसका किसी प्रकार भी अनुमोदन न किया, इसलिए वह अग्राह्य रहा। इस विषय में व्यर्थ-यत्न होकर मूलजी ने एक और प्रस्ताव किया कि अमुक ग्राम में अमुक पण्डित रहते हैं, वहाँ जाकर पढ़ने की अनुमति दीजिए। इसे माता-पिता दोनों ने स्वीकार कर लिया और मूलजी उस अध्यापक के पास जाकर पढ़ने लगे, परन्तु अभी वहाँ निश्चिन्त चित्त होकर थोड़े ही दिन अध्ययन में रत रहने पाये थे कि फिर वही बात—हृदय के उसी सर्वोपरि सङ्कल्प की बात—अर्थात् यह कि विवाह करने की इच्छा नहीं है, मूलजी ने बाध्य होकर एक दिन प्रकट कर दी और कर्शनजी ने उसे किसी सूत्र से जानकर बिना किसी विलम्ब के मूलजी को घर बुला लिया। कर्शनजी के कान पुत्र की और सब बातें सह सकते थे, परन्तु पुत्र के मुख से यह बात कि मैं किसी प्रकार भी विवाह न करूँगा, किसी अवस्था में भी सहन न कर सकते थे। यह बात उनके कान में कण्टक के समान चुभी थी।

गृह-त्याग—मूलजी ने टङ्कारा में वापस आकर देखा कि विवाहोपयोगी सारा कार्य प्रायः प्रस्तुत हो गया है। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि माता-पिता उन्हें अब और अधिक ज्ञानालोचना के कार्य में रत नहीं रहने देगें और उनका विवाह किये बिना निश्चिन्त न होंगे। उस समय मूलजी ने इक्कीसवें वर्ष में प्रवेश किया था। जिस वैराग्यवह्नि ने तीन वर्ष पहले मूलजी के अन्तःकरण में केवल धूम्रमाला का विस्तार किया था अब वह धधक उठी और उनका निवृत्ति का सङ्कल्प अब दृढ़तर और प्रबलतर हो गया। उन्होंने स्थिर कर लिया कि मैं कोई ऐसा काम करूँगा जिसके करने से मुझमें और मेरे विवाह में सदा के लिए एक प्रतिबन्धक हो जाए। ऐसा स्थिर करके उन्होंने एक दिन संध्या समय संवत् १९०३ सन् १८४६ ई० में किसी से कुछ न कहकर सदा के लिए गृह त्याग दिया§। कर्शनजी का जो घर विवाहकार्यजनित आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था, वह अब विषाद और शोक की समागमभूमि बन गया।

---

§ कोई-कोई कहते हैं कि दयानन्द ने ज्येष्ठ मास में गृह-त्याग किया था। हम इसे असङ्गत नहीं समझते, क्योंकि वे घर से निकलकर शैला आकर रहे और उसके पश्चात् कोटगङ्गा में तीन मास और मार्ग में भी कई स्थानों में कुछ दिन रहकर कार्तिक मास में सिद्धपुर जाकर कार्तिकी के मेले में उपस्थित हुए थे, अतः ज्येष्ठ मास में टङ्कारा ग्राम का त्याग करना असङ्गत नहीं होता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय अध्याय

संवत् १९०३—१९१५=सन् १८४६—१८५८

योगियों का अनुसन्धान—हम पहले ही कह आये हैं कि मूलजी ने बन्धुवर्ग से केवल विवाह से वीतस्पृह होना ही प्रकट नहीं किया था, अपितु मृत्यु का भय जब-जब प्रबल मूर्त्ति धारण करके उनके हृदय में उपस्थित होता था, तभी वे उन बन्धुओं के पास जाकर मृत्यु-यन्त्रणा से निष्कृति का उपाय पूछा करते थे। यह सुनकर पण्डित लोग मूलजी को योगाभ्यास करने का परामर्श दिया करते थे, इसीलिए घर छोड़ने के पश्चात् मूलजी योगियों का अनुसन्धान करने लगे, परन्तु वे केवल २१ वर्ष के युवक थे, इस कारण वे यह कैसे जान सकते थे कि किस स्थान में कौन-सा योगी रहता है ? परन्तु उस समय यह बात काठियावाड़ में सब जगह प्रसिद्ध थी कि शैलानिवासी लालाभक्त§ योगी हैं। यह बात मूलजी ने पितृ-गृह में रहते हुए सुन रक्खी थी, अतः सन्ध्या समय टङ्कारा त्याग करके उन्होंने शैला की ओर प्रस्थान किया।

यह हम ठीक नहीं कह सकते कि शैला टङ्कारा से कितनी दूर है, परन्तु टङ्कारा से शैला गौजा के मार्ग से जाना होता है, जो टङ्कारा के बांकानेर द्वार से जाना हो तो दक्षिण पश्चिम की ओर जाना चाहिए, परन्तु मूलजी ने ऐसा नहीं किया। वे जामनगर के द्वार से होकर पश्चिम की ओर गये थे। यदि यह प्रश्न हो कि इस बात का क्या प्रमाण है कि वे पश्चिम की ओर गये थे तो इसका उत्तर यह है कि टङ्कारा से चलने के पश्चात् की घटना के सम्बन्ध में दयानन्द ने लिखा है कि "चार कोस दूर पर एक ग्राम में मैंने रात्रि बिताई, अगले दिन बहुत सबेरे उठकर मैं चल दिया, थोड़ी दूर पर एक हनुमान् के मन्दिर में पहुँचा और कुछ देर आराम किया।" इससे ज्ञात होता है कि घर से निकलने के दूसरे दिन वे एक हनुमान् के मन्दिर में पहुँचे थे और वहाँ कुछ देर विश्राम किया था। अब प्रश्न यह है कि हनुमान् का मन्दिर टङ्कारा से किस ओर है? काठियावाड़ में हनुमान् के बहुत-से मन्दिर हैं, परन्तु यह हनुमान् का मन्दिर ऐसा होना चाहिए जहाँ पथिकों को आश्रय मिल सके। यह निश्चय है कि जब तक कोई मन्दिर बड़ा न हो और उसमें खान-पान की उपयोगी वस्तु मिलने की सुविधा न हो तो वह किसी प्रकार पथिकों का आश्रय-स्थान और विश्रामस्थल नहीं हो सकता। अब देखना यह है कि इन लक्षणोंवाला कोई मन्दिर टङ्कारा के आस-पास है वा नहीं। ऐसा मन्दिर बड़े रामपुर में है। रामपुर का मन्दिर एक प्रसिद्ध मन्दिर है और उसमें पथिकों

---

§ लालाभक्त वास्तव में योगी न थे। लालाभक्त चार भाई थे—रामभक्त, टीकमभक्त, लालाभक्त और गोपालभक्त। इनमें से रामभक्त ही योगविद्या से अभिज्ञ प्रसिद्ध थे। लालाभक्त मोरवा के ख्यातनामा जीवा मेहता के वंशज थे। लालाभक्त के सम्बन्ध में काठियावाड़ गज़ेटियर नामक ग्रन्थ में पृष्ठ ६४५ पर ऐसा लिखा है—Shaila is famous for the temple of Ram Chandra built by Lala Bhagat a celebrated Baniya Saint who flourished in the beginning of the present century. Here provisions are duly distributed to travellers, ascetics and others. So famous is the reputation of Lala Bhagat that Shaila is often called the Bhagat's Village.' —The Kathiavad Gazetteer p. 645.

उल्लिखित अंग्रेज़ी अंश का मर्म यह है—शैला रामचन्द्र के मन्दिर के कारण प्रसिद्ध है, जिसे लालाभक्त ने बनवाया था। लालाभक्त बनियाजाति का साधु था, वह उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जीवित था। भक्त के मन्दिर से प्रतिदिन पथिकों, साधुओं और अन्यों को सदाव्रत दिया जाता है। भक्त की प्रसिद्धि इतनी बढ़ गई थी कि लोग शैला को साधारणतः भक्त का ग्राम कहा करते थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के आश्रय-स्थान होने की सब प्रकार से उपयोगिता है। इससे यही अनुमान होता है कि टङ्कारा छोड़ने के दूसरे दिन मूलजी ने रामपुर के हनुमान् के मन्दिर में विश्राम किया था।

इस विषय में एक और भी प्रमाण है। रईशाली वासी प्रभुराम आचार्य ने, जो प्रायः अस्सी वर्ष के वृद्ध ब्राह्मण थे, कहा था—"मैंने प्रेमबाई और केशरबाई से सुना था कि दयाराम§ टङ्कारा से निकलकर बड़े रामपुर के हनुमान् के मन्दिर में रहे थे।" यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि प्रेमबाई और केशरबाई को कैसे ज्ञात हुआ कि घर से निकलकर दयाराम बड़े रामपुर के हनुमान् के मन्दिर में रहे थे। इसका उत्तर यह है कि जब कर्शनजी सिद्धपुर से वापस आये तो उन्हीं से प्रेमबाई और केशरबाई ने सुना था। कर्शनजी ने भागे हुए पुत्र को सिद्धपुर में पकड़ लिया था और यह बात स्वयं दयानन्द ने अपने आत्म-चरित में लिखी है। यह सहज में ही अनुमान हो सकता है कि जब पिता ने उन्हें सिद्धपुर में पकड़ लिया तो उनसे सारा वृत्तान्त पूछा होगा और उन्होंने अपने भागने का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया होगा कि वे टङ्कारा से भागकर कहाँ-कहाँ रहे और सिद्धपुर कैसे पहुँचे ? तब इसमें सन्देह ही क्या हो सकता है कि घर से निकलकर दूसरे दिन वे बड़े रामपुर के हनुमान् के मन्दिर में विश्राम करने के लिए ठहरे थे। यह बात भी उन्होंने पिता को बताई होगी और यह सर्वथा सम्भव और स्वाभाविक है कि जब भागा हुआ पुत्र एक बार पकड़ा जाकर दूसरी बार फिर भाग गया और पिता चित्त में और भी हताश और शोक-दग्ध होकर टङ्कारा लौट आये तो टङ्कारा के अनेक लोगों ने उनके भागे हुए पुत्र के विषय में उनसे पूछा होगा और उन्होंने पुत्र के मिलने और दुबारा भाग जाने की और पुत्र के मुख से सुनी हुई भागने की कथा सबसे कही होगी। ऐसी दशा में आश्चर्य ही क्या है कि जो कर्शनजी की कन्या प्रेमबाई और उनकी आत्मीया केशरबाई को दयानन्द के रामपुर के हनुमान् मन्दिर में ठहरने की बात ज्ञात हो गई हो ?‡

(अगस्त सन् १८४६) शैला (श्रावण सं० १९०३)

अब यह सहज में ही प्रतिपन्न हो जाता है कि मूलजी टङ्कारा के जामनगर द्वार से ही गये थे, क्योंकि वह टङ्कारा छोड़ने के दूसरे ही दिन बड़े रामपुर पहुँचे और रामपुर टङ्कारा से पश्चिम की ओर है। शैला को वह गौजा के मार्ग से न गये, अपितु टेढ़े रास्ते से गये। इससे उनका क्या अभिप्राय था ? जो स्थान पूर्व की ओर था वहाँ जाने के लिए पूर्व वा दक्षिण के मार्ग से न जाकर उसके बदले ठीक विपरीत मार्ग से अर्थात् पश्चिम के मार्ग से जाने में मूलजी का क्या अभिप्राय था ? अभिप्राय दो थे—एक तो बांकानेर वा राजकोट के मार्ग के पास के ग्रामों में बहुत-से परिचित लोगों से मिलने की सम्भावना थी, दूसरे उन्हें यह भी अभिप्रेत था कि वे ऐसे मार्ग से जाएँ जिस मार्ग से उन्हें उनके पिता अथवा अन्य भेजे हुए मनुष्य न ढूँढ सकें। वे जानते थे कि सन्ध्याकाल बीत जाने के बहुत देर तक भी प्रतीक्षा करने के पश्चात् उनके माता-पिता और स्वजन देखेंगे कि वह घर नहीं आये तो उनकी पहली धारणा यही होगी कि सम्भवतः वह काशी गया है। ऐसी धारणा उत्पन्न होने का कारण हम पहले लिख चुके हैं। मूलजी ने यह भी विचारा होगा कि जब अधिक रात्रि बीतने पर भी उनके माता-पितादि उन्हें घर पर लौटा हुआ न देखेंगे तो उनकी यह धारणा सम्पूर्णतया स्वाभाविक और सहज होगी। इसके अतिरिक्त मूलजी बालकपन से ही अपनी ज़िद्द

---

§ दयानन्द का आदि नाम मूलजी था, परन्तु उनका पुकारने का नाम दयाराम था। काठियावाड़ में यह प्रथा है कि पुत्र वा कन्या के दो नाम रखते हैं। इनमें से एक नाम असली होता है और दूसरा नाम प्यार का वा पुकारने का होता है। यह बात हम पहले ही विस्तारपूर्वक कह आये हैं कि प्रेमबाई मूलजी की भगिनी थी। केशरबाई कर्शनजी की कोई वृद्धा आत्मीया स्त्री थी।

‡ इसके अतिरिक्त यह भी है कि जब कर्शनजी ने दयानन्द को ढूँढने को सवार भेजे हों, वे ढूँढते-ढूँढते रामपुर भी पहुँच गये हों और वहाँ उन्हें लगा हो कि अमुक आकृति का एक पुरुष हनुमान् के मन्दिर में ठहरा था और उन्होंने यह बात कर्शनजी से कही और उनके द्वारा उनके कुटुम्बियों और अन्य लोगों को ज्ञात हुई।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वा दृढ़प्रतिज्ञता का समय-समय पर परिचय देते रहे थे, इससे भी उनके माता-पितादि के मन में ऐसी धारणा उत्पन्न होना आनुकूल्य होगा और हुआ भी ऐसा ही। टङ्कारा वा काठियावाड़ में दयानन्द का प्रसंग उठने पर लोगों के मुख से यही सुना गया कि कर्शनजी का पुत्र काशी पढ़ने के लिए गया था। हम समझते हैं कि उन्होंने गृह छोड़ने से पहले ही इन सब बातों को विचार लिया होगा। उन्होंने विचारा होगा कि गृहत्याग करने पर माता-पिता की तुरन्त यही धारणा होगी कि वह काशी गया है और इस धारणा के होने पर वह उन्हें ढूँढने के लिए आदमियों, सिपाहियों और चपरासियों को पूर्व वा दक्षिण की ओर ही भेजेंगे, क्योंकि काशी को इन्हीं ओर होकर जाते हैं। ऐसी दशा में यदि वह शैला पहुँचने के लिए पूर्व वा दक्षिण की ओर से जाते तो यह बहुत ही सम्भव था कि उनके पिता उन्हें रास्ते ही में पकड़ लेते। उन्होंने स्वयं लिखा है कि "जिस मार्ग से पथिक साधारणतः आते-जाते हैं, अथवा जिन ग्रामों में मेरे पहचाने जाने की सम्भावना थी, उस मार्ग वा उन ग्रामों का मैंने संस्पर्श भी नहीं किया। ऐसा सावधान होकर चलने से मेरा जो विशेष उपकार हुआ, उसे कहना व्यर्थ है।" गृहत्याग के तीसरे दिन उन्होंने एक सरकारी कर्मचारी के मुख से सुना कि कुछ लोग दलबद्ध होकर अश्वारोहियों को साथ लेकर एक पलायित युवक के अनुसन्धानार्थ इधर-उधर फिर रहे हैं। रामपुर छोड़कर वे क्रमशः शैला की ओर अग्रसर होने लगे। कुछ दूर चलने पर मूलजी का ब्राह्मण-भिक्षुओं के एक दल से साक्षात् हुआ।

उनके विषय में मूलजी ने लिखा है—"वे लोग मेरी ओर देखकर कहने लगे कि तुम यहाँ जितना दान करोगे परलोक में उतना ही अधिक तुम्हें लाभ होगा। यह कहकर वे मुझसे जो कुछ रुपया मेरे पास था और मेरे अंगों में जो सोने-चाँदी के अलङ्कार थे§, उन्हें माँगने लगे और मैंने वे उसी समय उन्हें दे दिये।" इन वस्तुओं के दान करने का एक विशेष कारण भी था। मूलजी को अलङ्कार धारण किये हुए देखकर इन ब्राह्मणों ने कहा था कि तुम जैसे लोगों के लिए योगाभ्यास असम्भव है। जिस योगाभ्यास के लिए वे माता-पिता और घर-बार को छोड़कर आये थे, जिसके लिए वे परदेश और बान्धवहीन स्थानों में क्लेश-पर-क्लेश सहन करने के लिए उद्यत थे, यदि शरीर पर भूषणादि के रहने से वही योगाभ्यास असम्भव हो तो उसी समय उनका परित्याग करना कर्त्तव्य है, यह विवेचना करके उन्होंने उसी समय सारे आभूषण उतारकर दे दिये और सब-कुछ उन्हें देकर निश्चिन्त हो गये। "मार्ग में जगह-जगह साधुओं वा भिखारी-ब्राह्मणों के मुख से लालाभक्त की सुख्याति सुनकर" मूलजी शीघ्र ही शैला पहुँच गये‡ और लालाभक्त के पास उपस्थित होकर उनसे योगाभ्यास सिखाने की प्रार्थना की।†

---

§ उस समय काठियावाड़ प्रदेश में यह प्रथा थी कि बालक, युवा सभी अपनी-अपनी अवस्था के अनुकूल शरीर पर नाना प्रकार के आभूषण धारण किया करते थे। किसी-किसी जगह अपेक्षाकृत अधिक आयु तक युवकों के शरीर पर अलङ्कार देखने में आते थे। इसलिए यह आश्चर्य का विषय नहीं है जो उस समय तक दयानन्द के शरीर पर अलङ्कार थे। इस समय अलङ्कार धारण करने की प्रथा काठियावाड़ से उठ गई है।

‡ "The Life and Teachings of Swami Dayananda Saraswati" नामक पुस्तक के प्रणेता बाबा छज्जूसिंह ने उसके २६ पृष्ठ, प्रथम भाग में लिखा है—"While pursuing his flight Dayananda heard that there was a large gathering of Sadhus at Saila ..... Dayananda turned his steps towards this town." अर्थात् पलायन-यात्रा में यह सुनकर कि शैला में साधु-सम्मेलन है दयानन्द शैला को चल दिये। यह बात सर्वथा निर्मूल है। दयानन्द ने आत्मचरित में कहीं नहीं लिखा कि उन्होंने मार्ग में सुना था कि शैला में साधु-सम्मेलन होगा और वास्तव में उस समय वहाँ कोई साधु-सम्मेलन था भी नहीं; दयानन्द शैला केवल लालाभक्त के कारण से गये थे।

† हम पहले ही लिख चुके हैं कि लालाभक्त के योगी होने की प्रसिद्धि निर्मूल थी। काठियावाड़ के जैसे साधारणतः और भक्त होते हैं, लालाभक्त भी वैसे ही थे। काठियावाड़ के भक्तों में त्यागी भी हैं और गृहस्थ भी हैं। गृहस्थों में ऐसे भी हैं जो पुत्र-कलह के रहते हुए भीं सांसारिक विषयों से बहुत सम्पर्क नहीं रखते। वे प्रायः सदा ही देवमन्दिरों में रहते हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वहाँ की एक दिन की एक घटना के विषय में मूलजी ने लिखा है—"एक दिन रात्रि समय एक वृक्ष के नीचे लालाभक्त के पास बैठा हुआ मैं योगाभ्यास कर रहा था कि वृक्ष पर बैठे हुए पक्षियों के विकट शब्द§ को सुनकर मैं चित्त में डरने लगा और उसी क्षण मठ के भीतर चला गया।" शैला में मूलजी का अधिक ठहरना नहीं हुआ, क्योंकि वे जिस वस्तु को चाहते थे, उन्हें वह लालाभक्त के पास नहीं मिली। शैला में एक और घटना भी हुई। उसके सम्बन्ध में मूलजी ने लिखा है—"शैला में मेरा एक ब्रह्मचारी से परिचय हो गया था। उसने मुझे ब्रह्मचर्य्याश्रम में प्रवेश करने का परामर्श दिया। मैं उससे सहमत हो गया। तब उसने मुझे ब्रह्मचारी की दीक्षा देकर मेरा नाम शुद्धचैतन्य रख दिया। इस कारण मुझे ब्रह्मचारियों के समान वर्त्तना पड़ने लगा, साधारण वस्त्र छोड़ने पड़े और पीले और लाल रंग का ब्रह्मचारियों का पहनावा धारण करना पड़ा।" इस प्रकार शुद्धचैतन्य नाम रखकर और ब्रह्मचारियों के परिच्छद से सज्जित होकर मूलजी ने शैला भी त्याग दिया और उन्होंने कोटगङ्गारा‡ की ओर यात्रा की। कोटगङ्गारा अहमदाबाद के निकट है और एक छोटे राज्य की राजधानी है। इसके अतिरिक्त वह साधु-संन्यासियों के समागम का स्थान भी है। कदाचित् इसी कारण से शुद्धचैतन्य को वहाँ जाने की इच्छा हुई थी। कोटगङ्गारा पहुँचकर शुद्धचैतन्य वहाँ की अवस्था के विषय में लिखते हैं—वहाँ पहुँचकर मैंने वैरागियों की एक बड़ी संख्या देखी। वैरागियों के दल में मैंने एक राजकन्या भी देखी, परन्तु वह राजकन्या कहाँ की थी, इस विषय में मैं कुछ नहीं जान सका। कन्या मुझसे परिहासादि का उद्योग करने लगी, परन्तु मैं इसके परिहासादिरूप पाप से अपने को सदा बचाकर चलने लगा। कोटगङ्गारा में तीन मास काटे। तब भी मेरे परिधान में रेशमी किनारे की धोती थी। वहाँ के वैरागी-गण प्रायः ही मेरा ठट्ठा किया करते थे, इसलिए मैंने वे मूल्यवान् वस्त्र फेंक दिये और बाजार से साधारण वस्त्र क्रय करके पहन लिये, उस समय मेरे पास कुल तीन रुपये रह गये थे।"

(अक्तूबर-नवम्बर सन् १८४६) सिद्धपुर (आश्विन कार्त्तिक सं० १९०३)

वहाँ साधु वा वैरागियों में से किसी से वाञ्छित वस्तु के मिलने की सम्भावना न देखकर शुद्धचैतन्य ने सिद्धपुर जाने का सङ्कल्प किया। सिद्धपुर की यात्रा के कारण के सम्बन्ध में शुद्धचैतन्य ने निम्न प्रकार का वर्णन किया है—"सिद्धपुर में कार्तिक का मेला होगा। मेले में बहुत-से साधु-संन्यासियों के सत्संग का लाभ उठा सकूँगा।" और सम्भव है कि मैं अपने अभीप्सित विषय में भी कुछ-न-कुछ प्राप्त कर सकूँगा। इस आशा से शुद्धचैतन्य अधिक विलम्ब न करके कोटगङ्गारा से सिद्धपुर की ओर चल दिये। सिद्धपुर के मार्ग में एक अप्रीतिकर घटना हुई। उस घटना के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"दुर्भाग्य से मार्ग में मेरा साक्षात् एक परिचित मनुष्य से हो गया। वह मनुष्य एक वैरागी था, हमारे पास के एक ग्राम का रहनेवाला और हमारे परिवार से सुपरिचित था। वह मुझे देखकर जितना विस्मयान्वित होने लगा, मैं उसे देखकर उतना ही हतबुद्धि के समान होने लगा। वह मुझसे पूछने लगा कि

(और अपना अधिकतर समय साधन, भजन और धर्मालोचना में लगाते हैं। अन्य भक्त दान करके वा अन्य किसी उपाय से मनुष्यों की सेवा-सत्कार करने में सदा ही उद्यत रहते हैं और धर्म के सम्बन्ध में किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता वा द्वेष न रखते हुए उदारता का व्यवहार करते हैं।

§ यह कण्ठरव उल्लुओं का था। उल्लू रात्रि के समय सभी को भीतिप्रद होते हैं, विशेषकर काठियावाड़ के रहनेवाले उन्हें बहुत ही अमङ्गलकर समझते हैं।

‡ शैला से कोटगङ्गारा जाने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग बत्तोयान होकर है, और दूसरा चूड़ालिमडी होकर है। बत्तोयान का मार्ग निरापद नहीं है, क्योंकि बत्तोयान काठियावाड़ का द्वार कहलाता है और वहाँ अनेक लोगों का आवागमन रहता है। इसलिए घर से भागे हुए मूलजी चूड़ालिमडी होकर कोटगङ्गारा गये थे। कोटगङ्गारा जाते हुए मूलजी चूड़ालिमडी में एक रात ठहरे भी थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस वेश में इतनी दूर आने का क्या कारण है। मैंने उससे कहा कि पृथिवी के नाना प्रकार देखने के लिए मैं घर से बाहर आया हूँ। यह सुनकर उसने मुझे बुरा-भला कहा और मेरे नये वेश को देखकर मेरा परिहास करने लगा। मुझे हतबुद्धि-भावापन्न देखकर वैरागी यद्यपि मेरे भावी सङ्कल्पों के विषय में समझ गया होगा, परन्तु मैंने उससे कहा कि सिद्धपुर में कार्तिक मास का मेला देखने के लिए जा रहा हूँ। यह बातचीत होने के पश्चात् वैरागी चला गया और फिर मैं सिद्धपुर पहुँचकर नीलकण्ठ के मन्दिर में बहुत-से संन्यासियों और ब्रह्मचारियों के साथ अवस्थिति करने लगा।"

पिता ने पकड़ लिया—उस समय सिद्धपुर में मेले का समारोह हो रहा था। मेला-भूमि सुसज्जित और सहस्रों मनुष्यों से परिपूरित थी। उनमें से प्रत्येक अपनी-अपनी वाञ्छित वस्तु के अनुसन्धान में लगा हुआ था। कोई मौन धारण किये लोकारण्य के दर्शन कर रहा था, कोई लोकप्रवाह के बीच में पड़कर पिसा जाता था, किसी स्थान में कोई प्रणयास्पद व्यक्ति के साथ जी खोलकर वार्तालाप कर रहा था और कोई विचित्र सामग्रियों से सुसज्जित पण्यमाला के भीतर प्रविष्ट होकर अपने अभिलषित वस्तु-समूह का क्रय कर रहा था, परन्तु उस लोक-समुद्र का भेदन करके शुद्धचैतन्य इस अनुसन्धान में इधर-उधर विचर रहे थे कि मेला भूमिका में किस स्थान पर कौन साधु ठहरे हैं, किस स्थान पर कौन महापुरुष हैं और कहाँ कौन योगिवर योगासन पर उपविष्ट हैं। इसके पश्चात् यदि कहीं किसी साधु-महात्मा के दर्शन कर पाते तो उसी क्षण श्रद्धान्वित हृदय के साथ उनके पास बैठकर विमर्श-परामर्श में सन्निविष्ट हो जाते।

इस प्रकार साधु-सङ्ग और परमार्थ-प्रसङ्ग में उनके कई दिन अतिवाहित हो गये, परन्तु उन्हें यह निर्मल और पवित्र सुख अधिक दिन भोगने को नहीं मिला, क्योंकि उल्लिखित वैरागी से संवाद पाकर कर्शनजी कई सिपाहियों को साथ लेकर सिद्धपुर आ पहुँचे और मेला-भूमि में पुत्र का अनुसन्धान करने लगे। अन्त में शुद्धचैतन्य जिस-जिस स्थान में जाकर साधुजनों के साथ सदालाप करते थे, उस-उस स्थान को उन्होंने विशेष प्रकार से ढूँढा। एक दिन शुद्धचैतन्य प्रातःकाल नीलकण्ठ के मन्दिर में सुधि-सज्जनों से परिवृत होकर बैठे हुए थे कि इतने में ही सिपाहियों के साथ कर्शनजी एक दम उनके सामने आकर खड़े हो गये। वे अतिशय अनुनय के साथ पिता की कोप-शान्ति की चेष्टा करने लगे। इस सम्बन्ध में वे कहने लगे कि "एक दुष्ट मनुष्य के परामर्श से प्रेरित होकर मैंने ऐसा किया है और इस कारण मैं हृदय में नितान्त अनुतप्त हूँ। मैं घर लौटने का ही उद्योग कर रहा था कि इतने में आप भी दैवात् आकर उपस्थित हो गये। इसलिए चलिए मैं इसी समय आपके साथ घर लौट जाऊँगा। इस प्रकार विनय करने और अपना अपराध स्वीकार करने पर भी पिता का कोपानल सर्वथा शान्त नहीं हुआ। उन्होंने क्रोध के आवेश में मेरे पहने हुए वस्त्रों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला, मेरे हाथ से तूंबी छीनकर दूर फेंक दी और मुझपर गालियों की बौछार करने लगे और अन्त में मुझे कहा कि तू मातृहन्ता है। उनके साथ घर लौट जाने की इच्छा प्रकट करने पर भी उन्होंने मेरे रक्षण और अवेक्षण का भार कई सिपाहियों को सौंप दिया। सिपाहीगण एक क्षण के लिए भी मुझे न छोड़ते थे। वे दिन-रात मेरे साथ रहने लगे।"

पिता की कोपाग्नि को शान्त करने के पक्ष में शुद्धचैतन्य के उपर्युक्त वचनों में कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे सत्य का अपमान होता है। इसमें संशय नहीं कि उनकी यह बात कि—'एक दुष्ट मनुष्य के परामर्श से प्रेरित होकर मैंने ऐसा किया है', 'मैं इसी क्षण आपके साथ घर लौट जाने को उद्यत हूँ' इत्यादि सत्य के विरुद्ध हैं। इस प्रकार असत्य का आश्रय ग्रहण करना ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य की विपर्यस्त बुद्धि वा युवजनोचित चापल्य का ही परिचायक है, क्योंकि जब वह पिता की प्रकृति को अच्छी प्रकार जानते थे और जब वे इस प्रकार के असत्य से भी क्रुद्ध पिता के कोप को शान्त न कर सकते थे, तो इस प्रकार असत्य बोलने का प्रयोजन ही क्या था ? परन्तु वे पिता की आकस्मिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपस्थिति और पिता के आशा-विरुद्ध रुष्ट और कठोर व्यवहार से इतने भयभीत हो गये थे और उस भय के प्राबल्य से वे बुद्धि और विचार में इतने विपर्यस्त हो गये थे कि वे कुछ भी स्थिर न कर सके कि क्या करूँ, क्या कहूँ, पिता को कैसे शान्त करूँ। ऐसी अवस्था में उन्हें यह देखने और समझने का भी अवसर नहीं मिला कि क्या मिथ्या बोलने से पिता शान्तचित्त होंगे ? यह सहज में अनुमान होता है कि जैसे मनुष्य कभी-कभी किसी आकस्मिक विपद् वा प्रमाद के अभिघात के अवसर पर बुद्धि का परामर्श न लेकर, विचारशीलता का अनुशीलन न करके, चित्तवृत्ति के हठात् आवेग में असत्य बोल देता है, ऐसा ही उपस्थित क्षेत्र में मूलजी ने भी किया था। जैसे बुद्धि-विचार का परामर्श न लेकर आलोचना वा चिन्ता के आलोक से पुनः-पुनः विचार न करके यदि कोई असत्य बोल दिया जाता है तो उसका वक्ता वा कर्त्ता बहुत दोषी नहीं हो सकता, वैसे ही वर्त्तमान स्थल में ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य भी मिथ्या को प्रश्रय देने से बहुत दोष के पात्र नहीं हो सकते। इसलिए उल्लिखित त्रुटि के कारण जो समालोचना की तीव्र शलाका लेकर दयानन्द के चरित्र को बींधने पर उद्यत और आनन्दित होते हैं, उनसे बारम्बार हम यही कहेंगे कि यह घटना केवल युवक दयानन्द की तत्सामयिक प्रमादग्रस्त वा चापल्य-परिचालित बुद्धि की परिचायक है, इसके सिवाय कुछ भी नहीं।

विशेष विनति के साथ क्षमा माँगने पर भी कर्शनजी का क्रोध किसी अंश में भी शान्त नहीं हुआ। इधर पुत्र भी पिता को क्रोधान्ध देख और पिता से इस प्रकार तिरस्कृत हो अपने संकल्प में अचल और अटल हो गये। मैं गृहस्थ होकर नहीं रहूँगा, विवाह की शृङ्खला में नहीं बधूँगा, जिस उपाय से भी हो उसी उपाय से योगाभ्यास करके मृत्यु-यन्त्रणा से निष्कृति प्राप्त करूँगा, इत्यादि विचार उनके चित्त में प्रबल-भाव से बद्धमूल हो गये थे। ये विचार उनके रक्त-मांस में ऐसे मिल गये थे कि पिता का क्रोध, पिता की ताड़ना, पिता का तिरस्कार, शोककातरा माता का विलाप कुछ भी उन्हें विचलित न कर सका। प्रतीत होता है कि यदि संसार की कोई और प्रबलतर और तीव्रतर शक्ति भी प्रतिरोधिनी हो उनके सामने आकर खड़ी होती तो वह भी उन्हें विचलित न कर सकती। शरीर की क्षणभंगुरता और संसार की अकिञ्चित्कारिता के भाव मन में साधारणतया वृद्धावस्था वा विपन्न दशा वा दारिद्र्य-निपीडित अवस्था में ही उद्दीप्त होते हैं; परन्तु एक धनी-मानी का पुत्र होकर इक्कीस वर्ष की वयः में, यौवन के प्रथम उच्छ्वास में, भोगप्रलोभन से सुसज्जित भाण्ड के सम्मुख रहते हुए, संसार-परित्याग करने का, वैराग्य का, तीव्रभाव उद्बुद्ध होकर उठा हो, यह विरले ही जीवनों में परिदृष्ट होता है।

यहाँ एक बात और भी आलोचनीय है। किसी आकस्मिक विपद् के उपस्थित होने पर अथवा किसी अप्रत्याशित प्रबल प्रतिकूलता के सम्मुखीन होने पर, मनुष्य चाहे कितना ही विचारशील क्यों न हो प्रायः किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर चलचित्तता का परिचय दे बैठता है, परन्तु मूलजी ने ऐसा परिचय नहीं दिया। ऐसी आकस्मिक विपत्ति में पड़कर भी वे एक क्षण के लिए भी अपने सङ्कल्पित विषय से च्युत नहीं हुए और यही नहीं, अपितु वे सदा ही सङ्कल्प-सिद्धि की चिन्ता में मग्न रहने लगे और सुयोग की प्रतीक्षा करने लगे। पाठक ! देखो, सिद्धपुर की मेला-भूमि के एक भाग में कर्शनजी खोये हुए पुत्र-रत्न को पाकर अतिशय आनन्दित हो रहे थे और मन में इस प्रकार की आनन्द-दायिनी भावनाएँ करके प्रसन्न और प्रफुल्लित हो रहे थे कि अब विवाह का आयोजन पूर्ण होगा और पुत्र का विवाह करके मैं संसार में सुखी होऊँगा। उसी मेला-भूमि के दूसरे भाग में मूलजी सिपाहियों के पहरे में बैठा हुआ ऐसी चिन्ताओं से उद्विग्न हो रहा था कि मैं पिता के बन्धनों को पुनः तोड़कर किस प्रकार निकल सकूँगा और किस प्रकार योग की सिद्धि करके चित्त की शान्ति प्राप्त कर सकूँगा। इस समय की अवस्था के विषय में मूलजी लिखते हैं—"पिता के सङ्कल्प के समान मेरा सङ्कल्प भी अविचलित था। इसलिए मैं सिपाहियों के हाथ से निकलने के संयोग की सदा ही प्रतीक्षा करता रहा था। घटनावश उसी रात्रि को ही वह सुयोग मिल गया। जब रात्रि के तीन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बजे तो मेरे रक्षकगण मुझे सोया हुआ समझकर आप भी सो गये। तब मैं उत्तम सुयोग देखकर धीरे-धीरे उठा और लोटा हाथ में लेकर थोड़ी दूर बैठा-बैठा चलकर वहाँ से निकला और मेरे भागने का समाचार पाने से पहले ही मैं एक मील दौड़ गया। मार्ग में जाते-जाते मुझे एक बड़ का वृक्ष दिखाई दिया। उस वृक्ष के नीचे पहुँचकर मैंने देखा कि उसकी कुछ शाखा-प्रशाखाएँ एक देवमन्दिर के ऊपर झूल रही हैं। मैं जल्दी से उसपर चढ़ गया। उसकी जो घनपल्लवावृत शाखा-प्रशाखाएँ मन्दिर के गुम्बद से लगी हुई थीं, उन्हीं में छिपकर बैठ गया और यह प्रतीक्षा करता रहा कि भविष्यत् में और क्या होगा ? उषःकाल होने पर मैंने उस गुम्बद के छिद्र से देखा कि सिपाहीगण मुझे ढूँढते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हैं। वे घूमते-घूमते उसी मन्दिर के भीतर आ पहुँचे। मैं इस समय श्वास-प्रश्वास रोककर सर्वथा स्पन्दन-हीन होकर बैठ गया। जब सिपाहीगण मन्दिर के बाहर और भीतर अच्छी तरह देख-भालकर मेरा अनुसन्धान पाने में असमर्थ रहे तो यह समझकर कि वे रास्ता भूलकर उधर चले आये हैं, वहाँ से लौट गये। मैंने यह समझकर कि पीछे कहीं और किसी नई विपत्ति में न पड़ जाऊँ, सारा दिन गुम्बद के ऊपर बैठे-बैठे काटा। सायङ्काल होते ही मैं वृक्ष से नीचे उतरकर विरुद्ध मार्ग से चल दिया। मैं प्रसिद्ध रास्ते से नहीं गया और न मैंने मार्ग के विषय में किसी से बहुत जिज्ञासा की। जिस अहमदाबाद में मेरी लौटने की इच्छा न थी मैं घूम-फिरकर उसी अहमदाबाद में पहुँच गया। अहमदाबाद पहुँचकर मैं तुरन्त ही बड़ौदा की ओर चल दिया।"

उपर्युक्त वर्णन के पढ़ने से ज्ञात होता है कि पिता के हाथ से छुटकारा पाने और प्रव्रज्या के मार्ग पर पुनर्वार चलने के लिए मूलजी को विशेष कौशल का अवलम्बन और विशेष क्लेश सहन करना पड़ा। संसार से वीतस्पृह होकर कपिलवस्तु के युवराज प्रव्रजित अवश्य हुए थे, परन्तु उन्हें प्रव्रज्या के मार्ग में इस प्रकार कष्टसहन करने नहीं पड़े थे। जब राजप्रासाद निद्रा की गोद में सो रहा था, राजा-रानी, पुत्र-वधू, परिचारक-परिचारिका, सभी सुषुप्त थे और शुद्धोदन का विशाल राज-भवन रात्रि की निस्तब्धता में स्थिर, धीर और प्रशान्त था, ऐसे समय में शाक्यसिंह अपनी सेज से उठे और छन्दक नामी भृत्य को साथ लेकर बिना रोक-टोक के प्रव्रज्या के मार्ग पर चल निकले। प्रव्रज्या के मार्ग में भी उन्हें कोई रोक-टोक नहीं हुई। गौतम बुद्ध की प्रव्रज्या का मार्ग कण्टकशून्य था, परन्तु दयानन्द की प्रव्रज्या का मार्ग कण्टकपूर्ण था तथा कण्टकपूर्ण होते हुए और बाधाओं से प्रतिहत होते हुए भी टङ्कारा की यह उदीच्य-ब्राह्मण-सन्तान प्रव्रज्या के मार्ग में दृढ़ और अटल रही। उसके लिए उसने कौन-सा कष्ट था जो नहीं सहा ? सिद्धपुर से पिता के पास से पलायन करते समय थोड़ी दूर तक घुटनियों चलकर गये, एक मील तक दौड़े और एक विशाल वृक्ष पर चढ़कर छिपे बैठे रहे, रात्रि के अवशिष्ट भाग और अगले सारे दिन अर्थात् प्रायः पन्द्रह घण्टे एक आसन, बिना खाये, वृक्ष-शाखाओं में छिपे रहकर, जल की एक बूँद तक न पीकर समय काटते रहे। कोई देख न पावे इस अभिप्राय से सन्ध्या समय वृक्ष से नीचे उतरे और रात्रि में जबकि सारे प्राणी अपने-अपने आश्रय-स्थानों में विश्राम करते हैं, शुद्धचैतन्य ने यात्रा का आरम्भ किया। मार्ग के सम्बन्ध में किसी से पूछा तक नहीं। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहकर उन्होंने अहमदाबाद में पदार्पण किया जहाँ जाने का उन्होंने विचार भी नहीं किया था। हमें सन्देह है कि वैराग्य के मार्ग में अविचलित रहने के सङ्कल्प में इस प्रकार क्लेशों को सहन करने का उदाहरण और किसी मनुष्य में देखा जाता है वा नहीं।

(सन् १८४६—४७) बड़ौदा (१९०३—१९०४)

अहमदाबाद से वे बड़ौदा आये। बड़ौदा में किसी योगी का सन्धान न पाकर वे वहाँ के एक मठ में गये। उस मठ का नाम था चेतनमठ। मठ में ब्रह्मानन्द आदि संन्यासियों और ब्रह्मचारियों से नवीन वेदान्त पर आलोचना हुई। इस आलोचना का यह फल निकला कि उन्होंने जीव और ब्रह्म की एकता स्वीकार करली। इस विषय में शुद्धचैतन्य कहते हैं—"इस तत्त्व को कि मैं ही परब्रह्म हूँ, ब्रह्मानन्द और अन्य संन्यासियों ने मुझे उत्तम रूप से समझा दिया। इससे पहले यद्यपि वेदान्त पढ़ते समय मैंने कुछ-कुछ समझा था अवश्य, परन्तु उनके साथ चर्चा और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बातचीत से सर्वतोभावेन सन्देहमुक्त होकर मैं अपने को ब्रह्म समझने लगा।" बड़ौदा में उन्हें एक स्त्री ने पहचान लिया, अतः वे वहाँ से एक निकटवर्ती स्थान पर एक विद्वानों के सम्मेलन में चले गये। उस समय बड़ौदा अञ्चल में सच्चिदानन्द नाम के एक तत्त्वज्ञानपरायण और बहुत लोगों के श्रद्धाभाजन परमहंस रहते थे। शुद्धचैतन्य इन परमहंस के पास जाकर नाना तत्त्वज्ञान के विषयों पर उनसे वार्तालाप करने लगे और सच्चिदानन्द के मुख से यह सुनकर कि नर्मदा के तीर पर चाणोद कर्णाली§ की पवित्र भूमि बहुत-से साधु-संन्यासियों की निवास भूमि है, वे चाणोद कर्णाली को चल दिये।

(सन् १८८७) चाणोद, कर्णाली (सं० १९०४)

संन्यास प्रवेश—चाणोद,कर्णाली पहुँचने के बाद की घटना के विषय में शुद्धचैतन्य ने लिखा है—"वहाँ मैंने कई ब्रह्मचारियों, चितानन्द‡ प्रभृति संन्यासियों और कई योगदीक्षित साधु-महात्माओं के दर्शन किये। पहले योगदीक्षित साधुओं को कभी नहीं देखा था, प्रथमतः कई दिन के शास्त्रालाप के पश्चात् मैं एक दिन परमानन्द परमहंस के पास गया और उनसे शिक्षा देने की प्रार्थना की। कुछ महीनों में ही मैंने वेदान्तसार और वेदान्त-परिभाषा के ग्रन्थों को पढ़ लिया।" चाणोद, कर्णाली की अवस्थिति के दिनों में शुद्धचैतन्य के मन में संन्यासाश्रम में प्रवेश करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई। किन-किन कारणों से उनमें इन इच्छाओं का उदय हुआ, उनके विषय में वे लिखते हैं—"चूँकि मैं ब्रह्मचारी था, इस लिए मुझे ही अपने हाथ से भोजन पकाना पड़ता था। इससे अध्ययन में विघ्न होता था, विशेषकर इस कारण से भी कि मैंने उस समय तक अपना नाम नहीं त्यागा था। पितृकुल की प्रसिद्धि के कारण कोई बात करने में मुझे पहचान ले और यह जान ले कि अमुक कुल की सन्तान हूँ, इससे सदा भयभीत रहता था और अपना नाम बदलने के लिए भी चिन्तित रहता था। संन्यासाश्रम में प्रवेश करने से ये दोनों अड़चनें मिट जाएँगी, अतः मैं संन्यास-दीक्षा ग्रहण करने के लिए उत्सुक था।"

---

§ चाणोद और कर्णाली एक-दूसरे के पास दो अलग-अलग स्थान हैं। दोनों ही नर्मदा के तट पर हैं। चाणोद और कर्णाली के बीच ऊरी नाम की नदी नर्मदा में गिरती है। नर्मदा माहात्म्य में लिखा है कि ऊरी और नर्मदा के सङ्गम के निकट किसी गुप्त स्थान में सरस्वती भी आकर मिल गई है। इसी कारण से कोई-कोई चाणोद कर्णाली को दक्षिण प्रयाग कहते हैं। चाणोद एक छोटा-सा नगर है। बड़ौदा की स्टेट रेलवे की डाबूई लाइन चाणोद में आकर समाप्त हो गई है। चाणोद में एक रेलवे स्टेशन भी है। इसके अतिरिक्त वह बड़ौदा की एक तहसील भी है और वहाँ गायकवाड़ सरकार के बैमटदार, पुलिस आदि भी रहते हैं और जेलखाना प्रभृति भी हैं। कर्णाली किसी अंश में भी नगर नहीं है, परन्तु पवित्रता, कोलाहलशून्यता और रमणीयता में चाणोद से कर्णाली ही श्रेष्ठ है। उसे शान्त-रसास्पद तपोभूमि भी कह सकते हैं। वहाँ कुवेरेश्वर, सोमेश्वर, पावकेश्वर आदि के मन्दिर हैं। कुवेरेश्वर के घाट पर खड़े होकर नर्मदा के विशाल वक्ष पर नेत्रपात करके मन में इस प्रकार के भाव का समावेश होता है जिसे लिखकर नहीं समझा सकते। यद्यपि नर्मदा के दोनों तटों की भूमि देव-भूमि के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु चाणोद,कर्णाली के पास की भूमि और भी पवित्र और देवभावापन्न है। इन्हीं सब कारणों से साधु, संन्यासी, विरक्त और परमहंस प्रभृति में से अनेक लोग चाणोद कर्णाली में आकर रहते हैं और स्वच्छन्द चित्त होकर परमार्थ-चिन्तन करते हैं। एक ओर संन्यासी परमहंस आदि के समागम स्थान होने से और दूसरी ओर वेदान्तादि शास्त्रों के अनुशीलन से चाणोद कर्णाली दक्षिण-पथ की काशी गिनी जाती है। ऐसा प्रवाद है कि इस स्थान के पास ही चण्ड-मुण्डासुर मारे गये थे, इसी से इसका नाम चाणोद हुआ है।

‡ वेदान्तशास्त्र में विशेष पाण्डित्य के कारण चिदाश्रम "वेदान्तस्वामी" के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। चिदाश्रम के समान वेदान्त-विद्यापरायण और वेदान्ततत्त्वनिष्ठ संन्यासी उस समय अति दुर्लभ थे। वे वेदान्तशास्त्र में इस प्रकार तद्गत रहते थे कि जब कोई आगन्तुक व्यक्ति उनके पास जाता तो उससे अधिक बातचीत न करके वेदान्तविषय में ही बात करने लगते थे। चिदाश्रम के प्रभाव से ही चाणोद, कर्णाली में तत्त्वजिज्ञासु संन्यासी परमहंसगण का समागम होता रहता था। चिदाश्रम स्वामी काशी के अतिप्रसिद्ध वेदान्तिक गौड़स्वामी के गुरुभाई थे।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संन्यास ग्रहण करने की इच्छा करने पर वे गुरु के निर्वाचन की चेष्टा करने लगे और ऐसे विचारों से उनका चित्त आन्दोलित होने लगा कि किसका गुरुरूप से वरण करें, किस व्यक्ति के पास संन्यास की दीक्षा ग्रहण करें। उन्होंने एक दक्षिणी पण्डित से अनुरोध किया कि आप मुझे संन्यास की दीक्षा उनसे दिला दें जो चाणोद में रहनेवाल योग-दीक्षित साधुओं में शास्त्रदर्शिता में अग्रणी हैं, अर्थात् चिदाश्रम स्वामी से। हम नहीं कह सकते कि उस दक्षिणी पण्डित द्वारा वह अनुरोध स्वीकृत हुआ वा नहीं, परन्तु उल्लिखित योगदीक्षित साधु शुद्धचैतन्य को उनकी छोटी आयु के कारण संन्यास-दीक्षा देने में सहमत नहीं हुए§। इस स्थान में यद्यपि मूलजी को व्यर्थ मनोरथ होना पड़ा, परन्तु वे सर्वथा निराश नहीं हुए, क्योंकि वे कहते हैं—"इस घटना के कई मास पीछे दो विरक्त पुरुष दक्षिणापथ से आकर एक टूटे हुए घर में जो जङ्गल में था, ठहरे थे। जहाँ मैं रहता था वहाँ से वह घर प्रायः एक कोस था। उन विरक्त पुरुषों में एक ब्रह्मचारी दूसरा संन्यासी था। पूर्वोक्त दक्षिणी पण्डित को इन नवागत साधुओं के दर्शन की अभिलाषा हुई और वे मुझे साथ लेकर उनके पास पहुँचे। मेरे मित्र वेदान्तशास्त्र में विशेषरूप से पारदर्शी थे। उन्होंने साधुओं के साथ ब्रह्मविद्या की आलोचना प्रारम्भ की। उनकी परस्पर की आलोचना से ज्ञात हुआ कि उन दोनों में से प्रत्येक प्रगाढ़ पण्डित था। उन्होंने कहा कि हम शृङ्गेरी मठ से आ रहे हैं जो दक्षिणापथ में शङ्कराचार्य का स्थापित किया हुआ है और द्वारिका जा रहे हैं। उनमें से एक का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। उनसे अपने लिए सविशेष अनुरोध करने के लिए मैंने दक्षिणी पण्डित से कहा। उसके अनुसार उक्त पण्डित ने मेरे सम्बन्ध में पूर्णानन्द से कहा कि यह एक युवक ब्रह्मचारी हैं। इनकी यह बहुत इच्छा है कि मैं निर्विघ्न होकर वेदान्तशास्त्र पढ़ूँ। पण्डितजी ने कहा कि मैं साक्षी दे सकता हूँ कि इनका स्वभाव, चरित्र बहुत ही शुद्ध और निर्मल है। इन सब कारणों से मेरे विचार में यह संन्यासाश्रम ग्रहण करने के योग्य हैं, यद्यपि संन्यासाश्रम अतीव कठिन और सर्वश्रेष्ठ है। यह कहकर उन्होंने पूर्णानन्द से मुझे संन्यास की दीक्षा देने का अनुरोध किया और उसके साथ यह भी कहा कि संन्यासाश्रम में प्रवेश करके यह सब प्रकार से सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाएँगे और ब्रह्मविद्या की आलोचना के मार्ग पर बिना रुकावट के आगे बढ़ सकेंगे। दक्षिणी मित्र के उल्लिखित अनुरोध पर पूर्णानन्द ने पहले तो आपत्ति की और कहा कि दीक्षार्थी की आयु अधिक नहीं है और यह गुजराती और मैं महाराष्ट्र हूँ, फिर मैं इन्हें कैसे दीक्षा दे सकता हूँ ? इन्हें किसी गुजराती स्वामी से ही दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यह सुनकर मेरे दक्षिणी मित्र ने कहा कि जब दक्षिणी स्वामिगण गौड़ादि को भी दीक्षित कर सकते हैं तो इस दीक्षार्थी को क्यों दीक्षा नहीं दे सकते, क्योंकि यह तो पञ्चद्राविड़ों के ही अन्तर्गत हैं‡। पूर्णानन्द इसपर सहमत हो गये और तीसरे दिन दीक्षित करके मुझे 'दयानन्द सरस्वती' नाम प्रदान कर दिया। दीक्षा के पश्चात् गुरुदेव. की आज्ञा लेकर मैंने दण्ड उनके अर्पण कर दिया, क्योंकि दण्ड को पास रखने से

---

§ स्वामी सत्यानन्दजी ने 'दयानन्द प्रकाश' में लिखा है कि नर्मदा तट पर शुद्धचैतन्य डेढ़ वर्ष रहे। —संग्रहकर्त्ता

‡ ब्राह्माणादि वर्णगत और एक-एक वर्ण के भिन्न-भिन्न प्रशाखागत पार्थक्य भारतवासियों की प्रकृति में इतना घुस गया है कि जो लोग ज्ञान और धर्म में अपने को सर्वोन्नत कहते हैं, जो वर्णाश्रम की सीमा से बाहर जाकर उदार, उन्मुक्त और सर्वतोभावेन असाम्प्रदायिक भूमि के ऊपर खड़े होते हैं, वे भी अवस्थाविशेष वा अनुष्ठानविशेष में इस पार्थक्य को किसी-न-किसी अंश में मानते हैं। इसलिए संसार-त्यागी संन्यासियों को भी पञ्चगौड़ और पञ्च-द्राविड़ का भेद मानते हुए देखा जाता है। इसलिए कोई गौड़ संन्यासी किसी द्राविड़ दीक्षार्थी को संन्यास दीक्षा देना नहीं चाहते और द्राविड़ स्वामी किसी गौड़ को शिष्य नहीं करते। यह तो हुआ शाखागत भेद, संन्यासी लोग प्रशाखागत भेद का भी अनुसरण करते हैं। इसका प्रमाण ऊपर की घटना है, क्योंकि पूर्णानन्द और दयानन्द दोनों पञ्चद्राविड़ के अन्तर्गत थे तो भी पूर्णानन्द ने इस कारण कि वह महाराष्ट्र और दयानन्द गुजराती थे, इतस्ततः किया। जो विश्वमित्र हैं और जिन्होंने विश्व के मङ्गल के लिए ही जीवनोत्सर्ग किया है, उनके लिए गौड़पन और द्राविड़पन कैसा ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दण्डसम्बन्धी कुछ क्रियाओं में व्यापृत रहना पड़ता और उससे ज्ञानालोचना में व्याघात पड़ता।"

(सन् १८४७—१८४८) व्यासाश्रम (सं० १९०४—१९०५)

योग-शिक्षा—यह दक्षिणापथ से आये हुए दोनों साधु चले गये§ चाणोद में कुछ दिन ठहरकर दयानन्द व्यासाश्रम चले गये, क्योंकि उस समय योगानन्द‡ नामी एक योग-विशारद योगी वहाँ रहते थे। इस कारण वे व्यासाश्रम जाकर आग्रह के साथ योगानन्द से योगशिक्षार्थी हुए। इस विषय में वे लिखते हैं—"योगानन्द के पास मैं योग की शिक्षा भी प्राप्त करने लगा और कुछ योग-क्रियाओं का अनुष्ठान भी करने लगा।"

(सन् १९४८—१८५१) सिनोर, चाणोद, अहमदाबाद (सं०१९०५—१९०८)

उनके पास योग की प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करके दयानन्द सिनोर चले गये।† सिनोर में कृष्णशास्त्री नामक एक पण्डित से कुछ दिन व्याकरण पढ़कर फिर चाणोद वापस आ गये और इस बार वहाँ कुछ और अधिक समय तक ठहरे। इस बार उनका दो योगियों से साक्षात् हुआ और वे उनके साथ मिलकर योगाभ्यास में लग गये। योग एक दुरूहतर तत्त्व है और उसमें सिद्धि प्राप्त करना विशेष साधन-सापेक्ष है, इसलिए इस दुरूहतर तत्त्व की आलोचना के लिए ये तीनों व्यक्ति समय-समय पर एकत्र होने लगे। इन दोनों योगियों में से एक का नाम शिवानन्द गिरी और दूसरे का नाम ज्वालानन्द पुरी था। ये दोनों कुछ दिन पश्चात् चाणोद से चले गये और दयानन्द से कह गये कि एक मास पीछे अहमदाबाद के दुग्धेश्वर-मन्दिर में उनके साथ साक्षात् हो सकेगा। योगजिज्ञासु दयानन्द ने ठीक ऐसा ही किया। वे एक मास बाद दुग्धेश्वर के मन्दिर में जाकर उनसे मिले। दुग्धेश्वर के मन्दिर में जाकर साक्षात् करने पर हम तुम्हें "योगविद्या के रहस्य और चरम प्रणाली के विषय में शिक्षा देंगे।" यह बात वह दयानन्द से चाणोद से चलते समय कह गये थे। इसलिए दयानन्द अतीव उत्सुकता के साथ दुग्धेश्वर के मन्दिर में जा पहुँचे। वहाँ इन दोनों योगियों ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इस सम्बन्ध में स्वामीजी स्वयं लिखते हैं—"योगविद्या की जो कुछ भी क्रियागत शिक्षा थी वह मैंने उन्हीं दोनों साधुओं से पाई है और मैं उनके कृज्ञता-पाश में बद्ध रहा हूँ।"

---

§ छज्जूसिंह के पूर्वोक्त अंग्रेज़ी दयानन्दचरित के प्रथम भाग के ३४ पृष्ठ पर लिखा है कि "दयानन्द स्वामी पूर्णानन्द के पास कुछ दिन रहकर और योगाभ्यास करके द्वारिका चले गये थे।" यह सर्वथा निर्मूल है।

‡ ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य की चाणोद की अवस्थिति और संन्यासग्रहण के विषय में कोई कुछ कहते हैं वा नहीं यह जानने के लिए देवेन्द्रबाबू चाणोद, कर्णाली गये थे, परन्तु दुःख है कि न तो चाणोद में ही और न कर्णाली में ही कोई वृद्ध पुरुष मिला जो उस समय की घटना के सम्बन्ध में कोई संवाद दे सकता। कर्णाली के किलेदार के मन्दिर में विनायक शास्त्री पण्डित के साथ इस विषय पर उनकी बातचीत हुई थी। यद्यपि शास्त्रीजी दयानन्द की चाणोद-अवस्थिति, अध्ययन, संन्यास-ग्रहण के विषय में कुछ न बतला सके, तथापि उन्होंने बारम्बार स्वीकार किया कि वे व्यासाश्रम के योगानन्द को जानते थे और योगानन्द एक प्रसिद्ध योगी थे। शास्त्रीजी की बातों से ज्ञात हुआ कि वे तीस वर्ष से अधिक समय से कर्णाली में वास करते हैं।

† उल्लिखित बाबा छज्जूसिंह ने पूर्वोक्त अंग्रेज़ी पुस्तक के प्रथम भाग के ३४ पृष्ठ पर लिखा है—"स्वामीजी व्यासाश्रम से चित्तौड़ गये थे।" केवल बाबा छज्जूसिंह ने ही नहीं, लाला लाजपतराय ने भी उल्लिखित हिन्दी-चरित में यह बात दुहराई है कि स्वामीजी व्यासाश्रम से चित्तौड़ गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा छज्जूसिंह और लाला लाजपतराय दोनों में से किसी ने भी दयानन्द के स्वलिखित आत्मचरित को मनोयग से नहीं पढ़ा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(सन् १८५२—१८५४) आबू (सं० १९०९—१९११)

योग की क्रियागत चरम शिक्षा पाकर भी दयानन्द तृप्तचित्त नहीं हुए, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि—"जब मैंने सुना कि अब तक जो शिक्षा जिन योगियों के साक्षात् वा सङ्ग से मैंने पाई है उससे भी उच्चतर शक्तिसम्पन्न और योगविद्या में अधिकतर निपुण योगिगण विद्यमान हैं और उनमें से कोई-कोई राजपूताना के आबू पहाड़ पर रहते हैं", तब उन्होंने दुग्धेश्वर के मन्दिर से प्रस्थान करके बिना विलम्ब के आबू की यात्रा की। आबू पहुँचकर उन्होंने सब स्थानों में, जो पवित्र स्थान प्रसिद्ध थे, अन्वेषण करना आरम्भ किया और भवानी गिरि नामक एक शृङ्ग पर एक महात्मा से साक्षात् किया तथा उनसे भी योगक्रिया के विषय में कुछ-कुछ शिक्षा प्राप्त की, परन्तु इससे भी उनकी योग-पिपासा की तृप्ति नहीं हुई, अतः एक बार उत्तराखण्ड में भली-भाँति घूम-फिरकर देखने के सङ्कल्प से वे आबू से हरिद्वार की ओर चले गये, इसलिए कि जैसे नर्मदा-तट संसार से विरक्त साधुगण की आश्रय-भूमि प्रसिद्ध है, ऐसे ही उत्तराखण्ड सिद्ध तापसगण की निवास-भूमि प्रसिद्ध है।

(सन् १८५५) हरिद्वार, हृषीकेश (सं० १९११ अन्त १९१२ आरम्भ)

नर्मदातट, आबूपर्वत और दूसरे स्थानों में घूमते-फिरते और कहीं-कहीं ठहरते-ठहराते दयानन्द के सात आठ वर्ष व्यतीत हो गये। वे संवत् १९११§ में आबू से हरिद्वार पहुँचे। उस समय हरिद्वार में कुम्भ का समागम हो रहा था। इस सम्बन्ध में दयानन्द ने लिखा है—"मैंने हरिद्वार का वह पहला ही कुम्भ देखा था। मैंने यह कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कुम्भ के मेले में इतने त्यागी और तत्त्वदर्शी पुरुष आएँगे।" जितने दिन मेला रहा उतने दिन वे चण्डी के जङ्गल में रहकर योग का अनुशीलन करते रहे और मेले की समाप्ति पर हरिद्वार से हृषीकेश जाकर योगाभ्यास करने लगे। हृषीकेश में वे कभी अकेले और कभी किसी शुद्धस्वभाव त्यागी के साथ मिलकर योगाभ्यास करते रहे। वहाँ निर्जन प्रदेश में कुछ समय इस प्रकार बिताकर वे टिहरी चले गये।

(सन् १८५५) टिहरी (वैशाख सं० १९१२)

इस समय दयानन्द के साथ एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु थे। टिहरी की घटना के विषय में दयानन्द ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है—"टिहरी स्थान को मैंने केवल साधुओं और राजपण्डितों से पूर्ण देखा। एक दिन एक राजपण्डित दोपहर के भोजन के लिए मुझे निमन्त्रण दे गया। निर्दिष्ट समय पर उसके घर से एक मनुष्य आया और मैं पूर्वोक्त ब्रह्मचारी को साथ लेकर उस मनुष्य के साथ-साथ चला गया, परन्तु उसके घर में घुसते ही मैंने सबसे पहले देखा कि एक ब्राह्मण कुछ मांस काट रहा है। इसके पश्चात् कुछ और आगे बढ़कर मैंने देखा कि कुछ पण्डित एक मांसराशि, मारे हुए पशु के शिर और दूसरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग समन्वित, मांस-राशि को आगे धरे हुए बैठे हैं। निमन्त्रणकर्त्ता के आदर, अभ्यर्थना करने पर भी मैं वहाँ न ठहर सका और इस आशङ्का से कि मेरे वहाँ रहने से उस पवित्र कार्य में व्याघात न पड़े मैं एक बात भी न कहकर गृहस्वामी से विदा होकर अपने स्थान को लौट आया। कुछ मिनट पीछे ही वह मांसाहारी पण्डित मेरे पास आकर उपस्थित हो गया और मुझसे विनयपूर्वक यह कहकर कि मेरे भोजन के लिए ही उसने वह

---

§ संवत् १९११ का अन्तिम भाग समझना चाहिए, क्योंकि कुम्भ संवत् १९१२ के आदि में था। अतः संवत् १९११ के अन्त में ही कुम्भ का समारोह होना सम्भव है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मांस प्रस्तुत किया था, मुझे दुबारा अपने घर ले-जाने के लिए बारम्बार अनुरोध करने लगा। मैंने तब उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि आप मांसाहारी हैं और मैं एक घोर निरामिष भोजी हूँ, मांस खाना तो दूर रहा, मांस के दर्शन से ही मुझमें अत्यन्त उद्रेक हो जाता है। ऐसी दशा में मेरे भोजन के लिए मांस तैयार करना सर्वथा ही वृथा था। यदि मुझे भोजन कराने की बहुत ही इच्छा है तो कुछ फल, अन्नादि भेज सकते हैं, मैं उसे ब्रह्मचारी द्वारा पकवाकर यहीं भोजन कर लूँगा। यह सुनकर निमन्त्रणकर्त्ता दुःखी-सा हो गया और कुछ देर पश्चात् उसने कुछ फल, अन्नादि भेजकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।"

टिहरी में रहते समय ग्रन्थ पढ़ने की इच्छा होने पर और पूर्वोक्ति राजपण्डित से उसे प्रकट करने पर राजपण्डित बोला—यहाँ साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष और तन्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ मिल सकते हैं। दयानन्द ने तब तक कोई तन्त्रग्रन्थ नहीं पढ़ा था, यहाँ तक कि तन्त्रग्रन्थ कैसे होते हैं, यह भी उन्हें ज्ञात न था। इसलिए पण्डित से उन्हीं के लाने के लिए उन्होंने अनुरोध किया। पण्डित ने कई तन्त्रग्रन्थ लाकर उपस्थित कर दिये। जब उन्हें पढ़ा तो उनमें अशुद्ध शब्द, अशुद्ध व्याख्या, नाना प्रकार की असङ्गति के दोष देखकर और उनमें अभावनी अश्लीलता का समावेश देखकर दयानन्द चित्त में डर गये। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"जब मैंने देखा कि तन्त्र-ग्रन्थों में मातृ-गमन, कन्या-गमन, भगिनी-गमन, चाण्डाली-गमन और चमारी-गमन तक का समर्थन किया गया है, नंगी स्त्रियों की पूजा करनी लिखी है, सब प्राणियों के मांसाहार, मत्स्याहार और मद्यपानादि क्रियाओं का ग्रहण किया गया है, एक शब्द में, पञ्चमकारान्तर्गत सारे पैशाचिक अनुष्ठानों की ब्राह्मण से लेकर चमार तक के लिए व्यवस्था की गई है और इससे भी बढ़कर इन पैशाचिक अनुष्ठानों को अनन्त मुक्ति का उपाय बताया गया है। यह सब देखकर मुझे इतना विस्मय हुआ जिसकी कोई सीमा नहीं। इन तन्त्र-ग्रन्थों को पढ़कर मैंने उज्ज्वल रूप से जान लिया कि ऐसे जघन्य ग्रन्थों को लिखकर धूर्त्त और दुष्ट लोगों ने उन्हें धर्मशास्त्र के नाम से प्रचारित किया है§।"

(सन् १८५५) श्रीनगर, केदारघाट, रुद्रप्रयाग, शिवपुरी आदि (सं० १९१२)

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत करके दयानन्द टिहरी से श्रीनगर आये। वहाँ से रमणीय स्थान केदारघाट में पहुँचे और वहाँ के मन्दिर में रहने लगे। तन्त्रग्रन्थों में घोर पैशाचिक क्रियाओं का उपदेश देखकर और विशेषकर इन पाशविक क्रियाओं के उपदेशों से परिपूर्ण ग्रन्थों को धर्मशास्त्रों के भीतर परिगणित देखकर, वे विस्मित भी हुए और उत्तेजित भी। इसीलिए केदारघाट के किसी पण्डित व पुजारी से जब कभी किसी शास्त्रीय विषय पर बातचीत होती तो वे तुरन्त ही तन्त्रों का उल्लेख करके उसे निरुत्तर कर दिया करते। वहाँ गङ्गागिरि नामक एक निर्मलचरित्र साधु से उनका परिचय हो गया। वह परिचय धीरे-धीरे प्रीति में

---

§ तन्त्रग्रन्थों पर इस प्रकार के आक्रमणों को देखकर एक बङ्गाली ने फ़र्वरी सन् १८८० ई० के थियोसोफिस्ट पत्र (The Theosophist) के पृष्ठ ११३ पर जो कुछ लिखा था उसका सारांश यह था—"स्वामी दयानन्द ने भ्रान्ति के वशीभूत होकर ही तन्त्रों की इस भाँति निन्दा की है, प्रतीत होता है कि उन्होंने कृष्ण-तन्त्रों (Black Tantras) को देखकर ही अत्यन्त विरक्त होकर तन्त्रों पर इस प्रकार का आक्रमण किया है। तन्त्र ही एकमात्र शास्त्र हैं, जिनमें मानव-प्रकृति के गूढ़ तत्त्व निहित हैं और जिनमें वेद, सांख्य और पातञ्जल प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों की अपेक्षा योगविद्या की अधिक शिक्षा दी गई है।" बङ्गाली लेखक के लिए ऐसा कहना उपयुक्त ही है, क्योंकि बङ्गाली पण्डितों की धूर्त्तता और कुटिलता-मिश्रित बुद्धि से ही तन्त्रग्रन्थों की उत्पत्ति हुई है। उपर्युक्त लेख में एक नई और निर्मूल बात पाई जाती है, वह यह है कि कोई कृष्णतन्त्र (Black Tantra) भी हैं तो क्या शुक्लतन्त्रों के नाम से भी कोई ग्रन्थ है ? जो चौंसठ तन्त्र-ग्रन्थ बङ्गाल में प्रचिलत हैं उनके विषय में क्या कोई कह सकता है कि उनमें से अमुक शुक्लतन्त्र हैं और अमुक कृष्णतन्त्र हैं ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिणत हो गया। गङ्गागिरि के सम्बन्ध में दयानन्द ने लिखा है—"जब हम दोनों जने इकट्ठे होते तो कभी योगतत्त्व की आलोचना करते वा किसी अन्य तत्त्व का विचार करते और गुप्त रीति से परस्पर वार्तालाप करने का आनन्द लेते। मुझे यह ज्ञात हो गया कि हम दोनों एक-दूसरे के योग्य हैं। गङ्गागिरि का संसर्ग इतने आकर्षण की वस्तु हो गई कि मैं उनके साथ दो मास से भी अधिक रहा।"

इस प्रकार केदारघाट में वर्षाकाल अतिवाहित करके दयानन्द उसी ब्रह्मचारी और दोनों पहाड़ी साधुओं को साथ लेकर वहाँ से चल दिये और *रुद्रप्रयाग* और *अगस्त्य मुनि के आश्रम* आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए शरत्काल समाप्त करके *शिवपुरी* नामक शैलशृङ्ग पर पहुँचे और वहाँ ही शीतकाल§ बिताया। शिवपुरी जाते समय वह ब्रह्मचारी और दोनों साधु कहीं चले गये। वहाँ सर्वप्रकार से स्वतन्त्र और अबाधसङ्कल्प होकर वे शिवपुरी से नीचे उतरे और चारों ओर घूमते हुए गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, भीम-गुफा और त्रियुगीनारायण के मन्दिर को देखते हुए कुछ दिन पश्चात् फिर केदारघाट आ पहुँचे। प्राकृतिक रमणीयता के कारण से हो अथवा और किसी कारण से केदारघाट दयानन्द के लिए एक प्रीतिप्रद स्थान हो गया था। जब तक उनके उपर्युक्त तीनों साथी लौटकर केदारघाट न आ गये तब तक वे वहाँ ही रहे। केदारनाथ के मन्दिर के पण्डे और पुजारी जङ्गम-सम्प्रदाय के लोग थे और दयानन्द को उस सम्प्रदाय की रीति-नीति और रहस्य जानने की इच्छा थी, इस कारण वे उन पण्डे और पुजारियों से खूब मेल-जोल रखने लगे और इस प्रकार उन्होंने उक्त सम्प्रदाय के विषय में सब ज्ञातव्य बातें जान लीं।

उस समय यद्यपि शीत ऋतु का अन्त हो गया था, परन्तु पर्वतीय देशों में और विशेषकर हिमालय की ऊँची चोटियों में शीत का सवर्था लोप नहीं हुआ था। पर्वतों के ऊँचे भाग तब तक बर्फ से ढके हुए थे और निर्मल धवल मूर्त्ति धारण किये हुए विराज रहे थे। दयानन्द केदारघाट में रहकर शैलशृङ्गमाला की ऐसी मनोहारिणी मूर्त्ति का अवलोकन करते थे और सोचते थे कि सम्भवतः इन्हीं दुरारोह और हिममाला-मण्डित हिमालय के शिखरों पर ही योगसिद्ध तापसगण निवास करते हैं। ऐसे विचारों का कारण यह था कि उस समय तक उनके चित्त में सबसे ऊँचा स्थान इसी इच्छा का था कि योगसिद्ध तापसों का पता लगाकर उनके संसर्ग में रहें और उनसे योगसाधन सीखें। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"चारों तरफ बहुकालव्यापी बर्फ़ से ढके हुए और कहीं-कहीं सञ्चरणशील हिमस्तर से परिशोभित पर्वतमालाओं में भ्रमण करने के लिए मैं उत्सुक हो गया, क्योंकि यद्यपि मैंने स्वयं अपनी आँखों से न देखा था तथापि मैंने सुना था कि उल्लिखित पर्वतमाला में स्थान-स्थान पर महापुरुष-गण अवस्थिति करते हैं और यह निश्चित करने के लिए कि महापुरुषगण इन स्थानों में अवस्थिति करते हैं कि नहीं मैंने पर्वतमाला में चारों ओर अनुसन्धान करने का सङ्कल्प किया, परन्तु दारुण शीत और पर्वत के भीषण मार्गों की भीषण विघ्न-बाधाओं का चिन्तन करके मैंने पहले पहाड़ी लोगों से इस विषय में पूछ-ताछ की। जिस पहाड़ी से भी मैंने पूछा उसी ने मुझे महामूर्ख अथवा महाभ्रान्त समझा। इस प्रकार बीस दिन तक व्यर्थ इधर-उधर घूमकर मैं निरुत्साह हो गया। अन्त में मैंने अकेले ही घूमना आरम्भ किया, क्योंकि मेरे साथी ब्रह्मचारी और दोनों साधु केवल दो ही दिन मेरे साथ रहकर तुरन्त शीतातिशय के कारण वापस चले गये थे।"

तुङ्गनाथ, ओखीमठ, जोशीमठ, अलखनन्दास्रोत, वसुधारा, बद्रीनारायण, रामपुर

उत्साह भङ्ग होने पर भी दयानन्द अनुसन्धान-कार्य से अलग नहीं हुए। घूमते-घूमते वे तुङ्गनाथ के शिखर पर जाकर पहुँचे। तुङ्गनाथ के मन्दिर में बहुत-से पण्डों और बहुत-सी देवमूर्तियों को देखकर वे उसी दिन वहाँ से नीचे उतर आये। उतरते समय मार्ग भूल जाने के कारण वे बहुत ही विपन्न हो गये। हम यहाँ उन घटनाओं को लिखे बिना नहीं रह सकते जिनका वर्णन उन्होंने स्वयं किया है। इस वर्णन से दयानन्द के चरित्र में अकुतोभयता,

---

§ देखो पृष्ठ ७७ की टिप्पणी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असीम साहसिकता और अमोघ क्लेशसहिष्णुता का परिचय मिलता है। वे लिखते हैं—"नीचे उतरते समय मैंने अपने सामने दो मार्ग देखे, एक मार्ग पश्चिम की ओर, दूसरा दक्षिण-पश्चिम की ओर जाता था। मैं यह स्थिर न कर सका कि उन मार्गों में से मुझे किस मार्ग से जाना चाहिए। अन्त में मैं उस मार्ग से चल दिया जो जङ्गल की ओर जाता था। कुछ दूर ही बढ़ा था कि मैं एक घने जङ्गल में घुस गया। जङ्गल में कहीं बड़े-बड़े ऊँचे-नीचे पाषाण-खण्ड थे और कहीं जलहीन छोटी-छोटी नदियाँ थीं। थोड़ी दूर और आगे चलने पर मैंने देखा कि वह मार्ग रुका हुआ है। वहाँ किसी ओर भी कोई मार्ग न पाकर मैं सोचने लगा कि ऊपर चढ़ूँ या नीचे उतरूँ। यदि ऊपर चढ़ता हूँ तो अनेक विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण करना होगा और सम्भव है कि ऊपर चढ़ते-चढ़ते ही रात्रि हो जाए, अतः मैंने नीचे उतरना ही युक्तियुक्त समझा और कुछ घास के गुल्मों को दृढ़ पकड़कर मैं धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। थोड़ी देर पीछे मैं एक सूखी नदी के ऊँचे तट पर जा पहुँचा। उसके पीछे मैं एक ऊँची पत्थर की चट्टान पर खड़ा होकर चारों ओर देखने लगा। मैंने देखा कि चारों ही ओर ऊँची-ऊँची भूमि, छोटे-छोटे पर्वत और मनुष्य के लिए अगम्य और मार्गहीन वनस्थली थी। उस समय दिवाकार भी अस्ताचल की चोटी का अवलम्बन कर रहा था। उस समय यह विचार कर मेरा चित्त बहुत आन्दोलित हो गया कि शीघ्र ही अन्धकार फैल जाएगा, और उस अन्धकार में मुझे इस भीषण वन में, जहाँ न मनुष्य है, न अग्नि जलाने का कोई उपाय है, अकेले रहना होगा। उस समय सिवाय उत्कट पुरुषार्थ का सहारा लेने के और कोई उपाय न था। यद्यपि उस दुर्गम वन के मार्ग में मेरे वस्त्रादि फट गये थे, शरीर क्षत-विक्षित हो गया था, पैर काँटों से छिद गये थे और इस कारण मैं लुञ्जों के समान चलता था तथापि मैं केवल प्रबल पुरुषार्थ के प्रभाव से ही उसे पार कर गया। अन्त में एक पर्वत के पादमूल में आकर मैंने एक मार्ग भी देखा। यद्यपि चारों ओर सब कुछ अन्धकाराच्छन्न था तथापि मैंने विशेष सोच-विचार न करके वही मार्ग पकड़ लिया और किसी प्रकार भी उसे न छोड़कर मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा, कुछ दूर आगे बढ़कर मैंने कुछ कुटियों की एक श्रेणी देखी। कुटीवासियों से पूछने पर उन्होंने कहा कि वह मार्ग ओखीमठ की ओर गया है। मैं भी ओखीमठ की ओर चल दिया और थोड़ी देर पीछे ही वहाँ पहुँच गया।"

ओखीमठ में रात्रि बिताकर दयानन्द बहुत सवेरे उठे और शारीरिक क्लेश की कुछ भी परवा न करके पुनर्वार भ्रमण के लिए निकल खड़े हुए। जिस समय का यह वर्णन है उस समय दयानन्द की आयु प्रायः तीस वर्ष की थी। यौवन के पूर्ण विकास से उनकी शारीरिक शक्ति विकसित हो रही थी, परन्तु ऐसा होते हुए भी क्या कोई तीस वर्ष का युवक उल्लिखित प्रकार से क्लेश-यन्त्रणा सहन करके दूसरे दिन प्रातःकाल ही पर्वत के मार्गों में भ्रमण करने के लिए दुबारा बाहर निकल सकता है ? रात्रि में कुछ घण्टे विश्राम करके ही सम्पूर्ण रूप से सुस्थ और सबल होकर कौन काम करने के योग्य हो सकता है ? क्या शारीरिक शक्ति की इस प्रकार की दुर्जेयता केवल खाने के पदार्थों पर ही निर्भर है ? ओखी मठ से बाहार निकलकर वह कुछ दूर गये तो सही, परन्तु यह यात्रा उनके लिए प्रीतिदायक न हुई और इसलिए वे कुछ दिन बाद ही ओखी मठ लौट आये। इसके अतिरिक्त ओखी मठ के मठधारियों और मठवासियों की रीति-नीति और कार्य-कल्प का पर्यवेक्षण करना भी उनके वापस आने का एक कारण था। ओखी मठ एक विशिष्ठ मठ है§ मठ के विषय में स्वामीजी लिखते हैं—"ओखीमठ प्रसिद्ध मठ है और धनसम्पत्ति-सम्पन्न है। वह धर्म और साधुओं के अनेक आडम्बरों से परिपूर्ण है।" इस कारण उन्होंने कुछ दिन वहाँ अवस्थिति की। वे मठ के महन्त और वहाँ के साधु-संन्यासियों से विशेषरूप से परिचित हो गये। वे यह देखने लगे कि मठ का कार्य

---

§ इस मठ की एक विशेषता यह है कि उसमें दुष्प्राप्य और मूल्यवान् ग्रन्थों का बहुत अच्छा सञ्चय है। ओखी मठ के ग्रन्थभण्डार की ख्याति बहुत समय से सुनी जाती है। इन ग्रन्थों का बहुत समय से बहुत-से साधु-संन्यासी संग्रह और रक्षण करते आये हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किस प्रणाली के अनुसार होता है और मठवासी साधुता और वैराग्य के नाम पर कहाँ तक कृत्रिमता का अवलम्बन करते हैं।

वहाँ का महन्त उनसे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उनसे शिष्य हो जाने का विशेषरूप से अनुरोध किया और यह प्रबल प्रलोभन भी उनके सामने उपस्थित किया कि उसके पीछे मठ के प्रचुर वित्तैश्वर्य्य के वही स्वामी हो जाएँगे, परन्तु महन्त के ऐसा प्रस्ताव करने पर दयानन्द बोल उठे कि—"इस मठ की जितनी सम्पत्ति है उससे मेरे पिता की सम्पत्ति भी किसी अंश में कम न थी।" एक शब्द में, मठाध्यक्ष के इस प्रलोभनात्मक प्रस्ताव को अग्राह्य करके वे ओखी मठ से चल दिये और जोशीमठ§ की ओर चले गये। जोशीमठ में कुछ दक्षिण शास्त्रियों और संन्यासियों के संसर्ग में कुछ दिन काटकर वहाँ के किसी-किसी योगी से योगविद्या के कुछ तत्त्वों की शिक्षा लेकर दयानन्द बदरीनारायण के मन्दिर को चले गये। बदरीनारायण का प्रधान पण्डा रावलजी के नाम से प्रसिद्ध है। वेदादि शास्त्रों के सम्बन्ध में रावलजी के साथ दयानन्द की चर्चा हुई। वहाँ कुछ दिन रहकर अपनी सर्वोपरि कांक्षित वस्तु के विषय में उन्होंने रावलजी से सब बातें कह दीं और उनसे पूछा कि आस-पास कोई यथार्थ योगी वा सिद्धपुरुष रहते हैं कि नहीं ? रावलजी ने उत्तर में कहा कि "नहीं"। यह सुनकर स्वामीजी क्षुण्ण हो गये, परन्तु जब रावलजी ने दुबारा कहा "मैंने सुना है कि कभी-कभी वे मन्दिर में दर्शन करने आ जाया करते हैं," तो दयानन्द कुछ आशान्वित हुए और उन्होंने आसपास के स्थानों में विशेषकर शैल-प्रदेशों में अनुसन्धान करने की प्रतिज्ञा की। वहाँ से बाहर निकलते ही‡ उन्हें जैसा विपन्न होना पड़ा, ऐसा इससे पहले अपने जीवन में कभी नहीं होना पड़ा था।

इस अप्रत्याशित विपत्-कहानी का वर्णन हम उन्हीं की भाषा में करते हैं—"एक दिन सूर्य के निकलते ही मैं बदरीनाथ के मन्दिर से बाहर निकला और पर्वत के नीचे-नीचे चलने लगा। अन्त में अलखनन्दा के तट पर जा पहुँचा। अलखनन्दा के उस पार बड़ा *माना* ग्राम दिखाई देने लगा, परन्तु उस पार जाने की मेरी इच्छा न थी। मैंने पहाड़ के नीचे-नीचे जो मार्ग जाता था उसे पकड़ लिया और अलखनन्दा के साथ-साथ वन की ओर चलने लगा। पर्वत और पर्वत के नीचे का मार्ग सभी मोटे बर्फ़ से ढका हुआ था। इस कारण मैंने बहुत ही कष्ट से उस दुर्गम मार्ग का अतिक्रमण किया और जो स्थान अलखनन्दा का उत्पत्ति-स्थान प्रसिद्ध है, वहाँ पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि मेरे चारों ही ओर गगनभेदी पर्वत-माला खड़ी है। एक ओर तो वह स्थान मेरे लिए सर्वथा अपरिचित था और दूसरी ओर चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ था। अस्तु, किसी ओर भी मार्ग का कुछ पता न पाकर कुछ देर तक तो मैं इतस्ततः घूमता रहा और फिर कुछ आगे बढ़कर मैंने देखा कि मार्ग तो क्या मार्ग का चिह्न तक भी न था। इस हेतु से मैं थोड़ी देर तक तो किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा रहा, पीछे नदी के दूसरे तट पर जाकर मार्ग का अनुसन्धान करना ही कर्त्तव्य स्थिर किया।

उस समय मैं साधारण और पतला कपड़ा पहने हुए था और वहाँ का शीत बहुत ही अधिक और असह्य था। इसपर भूख और प्यास से शरीर क्लान्त हो रहा था। भूख मिटाने के लिए मैंने एक बर्फ का टुकड़ा गले से नीचे उतारा, परन्तु उससे कुछ भी न हुआ। इसके कुछ क्षण पश्चात् ही अलखनन्दा को पार करने के लिए मैं जल में उतरा। उसका जल किसी स्थान में बहुत ही गहरा था और कहीं बहुत थोड़ा था,

---

§ जोशीमठ ज्योतिर्मठ के नाम से भी प्रसिद्ध है। वह शंकराचार्य्य के स्थापित किये हुए चार मठों में से एक है।

‡ स्वामीजी के एक विश्वस्त व्यक्ति के मुख से सुना था कि जब उन्हें सच्चे योगियों का पता न मिला और हृदय की वाञ्छित वस्तु के मिलने की कोई सम्भावना उन्होंने न देखी, तो उन्होंने स्थिर किया कि इस मर्त्यभूमि से और सम्बन्ध न रक्खेंगे। वे पाण्डवों के समान सशरीर स्वर्ग में जाने के लिए इस महा-प्रस्थान नामक यात्रा पर गये थे। अलखनन्दा के उत्पत्ति-स्थान पर पहुँचकर जब कोई मार्ग न पाया और चारों दिशाएँ पर्वतों से घिरी देखीं तो अगत्या वापस आ गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु जहाँ थोड़ा भी था वह भी एक हाथ से कम न था। अलखनन्दा का पाट आठ-दस हाथ होगा। उसकी तली छोटे-छोटे बर्फ़ के टुकड़ों से भरी हुई थी। उन तीक्ष्ण धारवाले बर्फ़ के टुकड़ों के संघर्षण से मेरे नंगे तलवे क्षत-विक्षत हो गये थे। क्षत-विक्षत स्थानों से लोहू चूना आरम्भ हो गया था। इधर मैं उस लोहू के बहने से कातर हो रहा था, उधर निदारुण शीत से हृत-चेतन हो रहा था। मेरे पैर डगमगाने लगे। कई बार उस बर्फ़-माला के ऊपर जा पड़ने का उपक्रम हुआ। उस समय मेरे मन में यह विचार उठने लगा कि सम्भवतः अलखनन्दा के इस असहनीय शीतल गर्भ में गिरकर बर्फ़ में जमकर मेरा जीवन जाएगा। वास्तव में मेरा शरीर इतना अवसन्न और शक्तिहीन हो गया था कि यदि मैं अलखनन्दा की उस सुदूर विस्तृत बर्फ़-माला के ऊपर एक बार भी गिर जाता तो मुझे उसपर से शरीर को उठाना अत्यन्त कठिन हो जाता। अस्तु, अतीव कष्ट और उत्कृष्ट परिश्रम से मैं नदी के दूसरी पार पहुँचा। उस समय की मेरी अवस्था मृतवत् थी। मैंने जल्दी-जल्दी अपने शरीर पर से कपड़े उतारे और उनकी पट्टी बनाकर तलवों से लेकर घुटनों तक बाँधी।

उस समय मैं बहुत ही थका हुआ था और भूख से विह्वल था तथा मुझमें चलने की शक्ति न थी। दूसरे की सहायता की आशा से मैं ललचाती हुई दृष्टि से चारों ओर देखने लगा, परन्तु उस मनुष्यशून्य स्थान में कौन सहायता करेगा और सहायता कहाँ से आएगी, इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता था। जब मैंने अन्तिम बार देखा तो कुछ दूर पर मुझे दो मनुष्य आते हुए दिखाई दिये। थोड़ी देर पीछे ही उन दोनों पहाड़ी मनुष्यों ने मेरे पास आकर नमस्कार किया§। उन्होंने कहा कि हमारे घर चलने से भोजन-सामग्री मिल सकेगी और यह कहकर उन्होंने मुझसे अपने साथ उनके घर चलने को कहा। उन्होंने मेरे क्लेश और विपत्ति की कहानी सुनकर मुझे *सद्-पत* नामक स्थान तक पहुँचा देने का वचन दिया, परन्तु मुझमें चलने का सामर्थ्य न था, इसलिए मैंने उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उनके बारम्बार अनुरोध करने पर भी मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। उनके अधिक आग्रह करने पर मैंने कहा कि मैं यहाँ चाहे मर भले ही जाऊँ, परन्तु मैं उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकता। मरने की बात सोचकर मैं मन में कुछ घबराया, परन्तु फिर तुरन्त ही मैंने सोचा कि यह क्या है ? मैं मरने की इच्छा क्यों करता हूँ ? क्या ज्ञानानुशीलन में रत रहकर ही जीवन का अन्त करना मेरे लिए श्रेष्ठ कर्त्तव्य नहीं है ? देखते-देखते ही वे दोनों पहाड़ी मनुष्य पर्वतमाला में कहीं अदृश्य हो गये। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् मैंने वापस जाने का उद्योग किया और वसुधारा नामक पवित्र स्नानतीर्थ में कुछ देर ठहरकर और माना ग्राम‡ को एक पार्श्व में लेकर मैं चलने लगा और रात्रि के आठ बजे बदरीनारायण के मन्दिर में पहुँच गया।"

जब दयानन्द बद्रीनारायण के मन्दिर में पहुँचे तो रावलजी और वहाँ के अन्य लोग उन्हें देखकर विस्मित हुए और जब उनके पूछने पर कि सारा दिन कहाँ रहे उन्होंने सारे दिन का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक

---

§ थियोसोफ़िस्ट के सम्पादक ने लिखा है—"Here the Swamiji skips over one of the most interesting episodes of his travel, unwilling as he is to impart the name or even mention the person who saved him. He tells it to friends, but declines to publish the facts." the Theosophist 1880 p. 25.

इसका अभिप्राय यह है कि इस जगह स्वामीजी अपनी यात्रा की घटनाओं में से एक अतीव मनोरञ्जक घटना को छोड़ जाते हैं, क्योंकि वे उस पुरुष को वा उसके नाम को बताना नहीं चाहते, जिसने उन्हें बचाया था। उसे वे अपने मित्रों को तो बता देते हैं, परन्तु पत्र में प्रकाशित करना नहीं चाहते।

यह सभी जानते हैं कि पहले-पहल स्वामीजी का स्वलिखित आत्म-चरित थियोसोफ़िस्ट पत्र में छपा था। उसके सम्पादक का यह अनुमान है कि स्वामीजी की इस सङ्कटमय अवस्था से किसी महात्मा ने प्राण-रक्षा की थी।

‡ दयानन्द-प्रकाश में इस ग्राम का नाम मग्रम लिखा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्हें सुनाया तो वे और भी अधिक विस्मित हुए। इसके पश्चात् कुछ भोजन करने के बाद उनका शरीर कुछ सबल हुआ और वे सो गये। उस दिन रात्रि को वे एक साधु के आश्रम में रहे और अगले दिन प्रातःकाल ही चल पड़े। मार्ग में अनेक पर्वतों और घने जङ्गलों में से होते हुए *चिल्किया घाट* को पार करके अन्त में *रामपुर* जा पहुँचे। रामपुर में रामगिरि नाम का एक अद्भुत साधु रहता था। रामगिरि रात्रि में कभी सोते न थे। सारी रात मठ में अकेले रहकर वे कभी अपने आपसे ही बातचीत करने लगते थे और कभी रोने लगते थे। उन्हें देखकर स्वामीजी कुछ आश्चर्यान्वित हुए और उनके शिष्यों से इस अद्भुत व्यवहार का कारण पूछा तो वे कुछ न बता सके। स्वयं उन्होंने कहा कि मेरा ऐसा ही अभ्यास है। रामगिरि के इस अद्भुत व्यवहार के सम्बन्ध में दयानन्द कहते हैं—"रामगिरि के साथ बातें करने पर इस अद्भुत अभ्यास का कारण मैं कुछ-कुछ जान सका, वह कोई योग-क्रिया नहीं थी, परन्तु यह बात नहीं थी कि रामगिरि योग की एक-दो क्रियाएँ भी नहीं जानते थे। कुछ हो, मैं ऐसे योग का प्रार्थी नहीं था।"

उत्तराखण्ड से अवतरण

काशी, द्रोणसागर, मुरादाबाद, सम्भल, गढ़मुक्तेश्वर

यहाँ से चलकर दयानन्द काशीपुर होते हुए द्रोणसागर आये और वहाँ शीतकाल अतिवाहित करने लगे। इस शीत-ऋतु के समय संवत् १९१२ चलता होगा, क्योंकि इससे पहले कहा जा चुका है कि गतवत्सर अर्थात् संवत् १९११ की शीत-ऋतु§ उन्होंने शिवपुरी के शैलशृङ्ग पर अतिवाहित की थी। अस्तु, शीतकाल के अन्त में वे द्रोणसागर से नीचे उतरे और मुरादाबाद व सम्भल होते हुए गढ़मुक्तेश्वर की अनुगाङ्ग भूमि में पहुँचे।

इस मनोहर और विस्मयकारक भ्रमण-वृत्तान्त से सिद्ध होता है कि प्रकृत योगियों के अन्वेषण में दयानन्द ने उत्तराखण्ड में दो वर्ष से कुछ कम समय लगाया। पहाड़ी मार्गों के क्लेश, बर्फ़ से ढके हुए पहाड़ों की दुर्गमता, हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों की दुरारोहता, पर्वतीय वनों की भीषणता, अलखनन्दा की हिमावृत तटभूमि की शीतातिशयता कोई वस्तु भी उन्हें विचलित न कर सकी। श्रान्ति, क्लान्ति, क्षुधा, पिपासा, प्रलोभन कोई भी बाधा उन्हें अवलम्बित मार्ग से पीछे न हटा सकी। वन के कण्टक वृक्षों ने समय-समय पर उनकी पृष्ठ, हस्ततल, पादतल को क्षत-विक्षत किया, शरीर के अनेक स्थानों से रुधिर की धारा बहा दी, परन्तु वे अपनी अनुसन्धित्सा में एक दिन के लिए भी निरस्त नहीं हुए। हमने बहुत प्रकार की मानव-प्रकृति की आलोचना की है, परन्तु थोड़े-से अस्थि-पञ्जर के भीतर इस प्रकार का अपरिमित मानसिक बल छिपा रह सकता है, यह हमने कभी नहीं सुना, कभी नहीं देखा।

---

§ पूर्व पृष्ठ ७३ पर शिवपुरी में जिस शीतकाल के बिताने का उल्लेख है, वह सं० १९११ का नहीं है, वह सं० १९१२ का है, क्योंकि ऋषि दयानन्द १९११ के अन्त में हरिद्वार पहुँचे थे और सं० १९१२ के वैशाख तक वे हरिद्वार में कुम्भ के मेले में रहे। उसके पश्चात् वे टिहरी, केदारघाट आदि में भ्रमण करके शिवपुरी पहुँचे, अतः स्पष्ट ही यहाँ कुछ भूल रही है जो विवेचनीय है। पं० श्री महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फ़ाज़िल ने "महर्षि जीवन-दर्शक" पुस्तक में इसपर कुछ विचार किया है, परन्तु हमें वह युक्त प्रतीत नहीं होता। हमरा विचार है कि ऋषि के स्वरचित जीवन-चरित्र में जहाँ सं० १९११ में हरिद्वार पहुँचना लिखा है, वहाँ सं० १९१२ चाहिए। द्रोणसागर में सं० १९१३ का शीताकल समझना चाहिए, इसी प्रकार पृष्ठ ७८ पर "उस समय सं० १९१२ समाप्त हो चुका था" के स्थान पर सं० १९१३ होना चाहिए। वस्तुतः यह अशुद्धि स्वरचित जीवन-चरित्र में सं० १९११ में हरिद्वार का कुम्भ मानने से हुई है। कुम्भ वस्तुतः १९१२ में था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाड़ीचक्र परीक्षा—इस समय दयानन्द के साथ अन्य धर्मग्रन्थों के अतिरिक्त हठ-प्रदीपिका, योगबीज और शिवसन्ध्या प्रभृति ग्रन्थ थे। इस समय वे प्रायः इन ग्रन्थों का पाठ किया करते थे। उनके किसी-किसी स्थान में उन्होंने नाड़ी-चक्र का वृत्तान्त देखा था। वे बीच-बीच में यह बात जानने के लिए व्यग्र हो जाते थे कि नाड़ीचक्र की बात कहाँ तक सत्य है, परन्तु इसके लिए उनके सामने कोई सुयोग उपस्थित नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त इन सब ग्रन्थों में नाड़ीचक्र का वृत्तान्त ऐसी अस्पष्ट रीति से वर्णन किया गया था कि उससे वे कुछ भी नहीं समझ सके थे। एक प्रकार से वे इस विषय की सत्यता में सन्देह करने लगे थे। जब वे उत्तराखण्ड से उतरकर गङ्गातट पर गढ़मुक्तेश्वर में अवस्थिति करते थे, तब उन्हें इस विषय में अपने संशय-निवारण करने का एक सुयोग हाथ आ गया। इस विषय में दयानन्द की निज उक्ति इस प्रकार है—"एक दिन दैवयोग से मैंने देखा कि एक शव गङ्गा के प्रवाह में बहा जा रहा है। उसे देखकर मैंने सोचा कि यह नाड़ीचक्रविषयक सन्देह को दूर करने का अच्छा अवसर है। अपने साथ की पुस्तकों को मैंने एक ओर रक्खा और अपने वस्त्र जो मैं पहने हुए था, उतारकर मैं नदी में उतर पड़ा और शव को खींचकर तट पर ले- आया। मैंने एक बड़ी छुरी ली और जिन ग्रन्थों में नाड़ीचक्र का वर्णन था, उन्हें खोलकर सामने रक्खा और खूब सावधानता के साथ शव की चीर-फाड़ आरम्भ की। पहले मैंने हृत्पिण्ड बाहर निकालकर परीक्षा की, तत्पश्चात् नाभिदेश से पञ्जर पर्यन्त मैंने शव को काट डाला। मस्तक और गले के किसी-किसी भाग को चीरकर देखा और साथ-साथ उन्हें ग्रन्थों के वर्णन से मिलाकर देखने का यत्न करता रहा, परन्तु जब मैंने देखा कि कुछ भी नहीं मिलता, चीरे हुए शवदेह के किसी अंश वा अङ्ग में भी ग्रन्थों में वर्णन किये हुए नाड़ीचक्र का कोई चिह्न न पाया तब मैंने उसी चीरे हुए शवदेह के साथ ही उन ग्रन्थों को भी टुकड़े-टुकड़े करके नदी के प्रवाह में फेंक दिया।"

ऐसी प्रणाली से ही सत्य का निर्धारण करना आवश्यक है। जब ग्रन्थों के वर्णन के साथ ग्रन्थोक्त विषयों का सादृश्य न पाया, तब दयानन्द के चित्त में यह धारणा उत्पन्न हुई कि ग्रन्थों के ये वर्णन मिथ्या हैं। उन्होंने उस चीरे-फाड़े शव के साथ ही उन मिथ्योक्तिपूर्ण ग्रन्थों को भी गङ्गा में फेंक दिया। यह घटना एक ओर उनकी सत्य के प्रति ज्वलन्त पिपासा की और दूसरी ओर उनकी असत्य के प्रति घृणा की परिचायक है।

कानपुर, इलाहबाद, मिर्जापुर, काशी

अनुगङ्ग भूमि-विचरण—इसके पश्चात् उनका यह विश्वास हो गया कि सांख्य, पातञ्जल आर्षग्रन्थों के सिवाय योग-विषयक अन्य सारे ग्रन्थ मिथ्या हैं। अस्तु, गङ्गातट पर कुछ दिन और विचरकर वे फर्रुखाबाद चले गये और *शृङ्गीरामपुर* होते हुए कानपुर पहुँचे। उस समय संवत् १९१२ समाप्त हो चुका था। संवत् १९१३ के पहले पाँच मास दयानन्द कानपुर और इलाहबाद के बीच के स्थानों में घूमते रहे और भाद्र मास के आरम्भ में मिर्ज़ापुर पहुँचकर *विन्ध्याचलेश्वर*§ के मन्दिर के समीप एक स्थान में एक मास तक रहे। वहाँ से *काशी* गये और वरणा संगम के पास एक गृह में (जो उस समय भूमानन्द स्वामी की गुफा के नाम से प्रसिद्ध था) कुछ दिन रहे और काशी के प्रसिद्ध नामी पण्डित काकाराम और राजाराम प्रभृत्ति विद्वानों से वार्त्तालाप करते रहे। काशी में १२ दिन रहकर *चण्डालगढ़*‡ की ओर चले गये। चण्डालगढ़ के पास दुर्गाकौहर के मन्दिर में दस दिन रहकर वे निकट के एक ग्राम में गये। इस ग्राम में एक शिवालय था, रात्रि बिताने के विचार से वे उस शिवालय में चले गये। उस समय स्वामीजी प्रायः योगभ्यास में ही रत रहते थे। उन्होंने

---

§ दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि मिर्ज़ापुर में स्वामी जी अशोकजी के मन्दिर में रहे थे। —संग्रहकर्त्ता

‡ चुनारगढ़।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चावल खाना छोड़ दिया था और केवल दुग्धपान ही करते थे। इन दिनों उन्हें भाँग पीने की बान पड़ गई थी। शिवालय में जाने के कुछ देर पश्चात् ही उन्हें भाँग का नशा चढ़ गया और नींद आ गई। सोते-सोते उन्होंने एक स्वप्न देखा जिसके विषय में वे लिखते हैं—

"महादेव और पार्वती में मेरे विवाह के सम्बन्ध में कथोपकथन हो रहा है, पार्वती कह रही हैं कि इसका विवाह होना उचित है और महादेव कह रहे हैं कि नहीं, इस स्वप्न से मैं अतिशय विरक्त होकर जाग उठा।" उस समय वर्षा हो रही थी। इस कारण स्वामीजी शिवालय के बरामदे में चले गये। बरामदे में वृषदेवता नन्दी की एक विशाल मूर्त्ति थी। उसी पर वस्त्रादि रखकर ध्यानावस्थित हो गये। इसके बाद जो घटना हुई उसके विषय में स्वामीजी कहते हैं—"थोड़ी देर के पश्चात् जब मैंने एक बार निगाह की तो मैंने अकस्मात् देखा कि उस प्रतिमूर्त्ति के भीतर एक मनुष्य बैठा हुआ है। उसकी ओर ज्यों ही मैंने हाथ फैलाया त्यों ही वह उठकर भाग गया।" तब स्वामीजी उस नन्दी की मूर्त्ति के भीतर जाकर बैठ गये और शेषरात्रि में वहीं सोते रहे। रात्रि के अन्त में एक कौतुकजनक घटना हुई। उसके विषय में उनके वचन ये हैं—"प्रातःकाल एक बुढ़िया आई और वृषदेवता की, जिसके भीतर मैं बैठा हुआ था पूजा करके चली गई। थोड़ी देर पीछे वह देवता के उपाचारार्थ दही और गुड़ प्रभृति पदार्थ लेकर आई। बुढ़िया ने सम्भवतः मुझे ही वृषदेवता समझा था। इसलिए उसने वे पदार्थ मेरे ही सामने रख दिये। मैंने उनका किसी प्रकार भी बुरा उपयोग नहीं किया। मैं भूखा था, इस लिए मैंने उन्हें अपने पेट में पहुँचा दिया, भाँग के नशे में दही बहुत ही मीठा लगा। दही के प्रभाव से भाँग का नशा उत्तर गया और शरीर स्वस्थ हो गया।"

नर्मदा के स्रोत का अनुसन्धान—इसके पश्चात् नर्मदा की उत्पत्ति का स्थान देखने के अभिप्राय से वे वहाँ से चल दिये और अदूरवर्त्तिनी पर्वतमाला की ओर प्रस्थान कर दिया। इस यात्रा में दयानन्द को जैसे क्लेश सहने पड़े और जैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ा वह वास्तव में बहुत ही भयावह हैं। वे बाहर निकलकर, यह प्रतिज्ञा करके कि किसी से मार्ग नहीं पूछेंगे, दक्षिण की ओर चल दिये। कुछ देर पश्चात् वे एक निर्जन वन में पहुँच गये। वहाँ बहुत घना जङ्गल था और उसमें कहीं-कहीं एक दो पर्णकुटीर भी बनी हुई थीं। यह अनुमान करके कि इन कुटियों में मनुष्य रहते होंगे, वे एक कुटी के द्वार पर गये और दुग्ध माँगा। वहाँ दुग्ध मिल गया, उसे पीकर उन्होंने फिर चलना आरम्भ कर दिया, परन्तु आधा मील जाने पर ही रास्ता रुक गया। ढूँढने पर भी किसी ओर भी मार्ग का चिह्न तक नहीं मिला। तब वे एक बहुत ही सङ्कीर्ण मार्ग से आगे बढ़े, परन्तु शीघ्र ही एक भीषण जङ्गल में प्रविष्ट हो गये। उस जङ्गल में उन्हें मार्ग का कोई निदर्शन तक नहीं मिला। सुतरां उस जङ्गल-भूमि में खड़े-खड़े वे यह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए? ऐसे समय में दयानन्द के सामने एक आकस्मिक और भारी विपद् आकर उपस्थित हो गई। उसके विषय में स्वामीजी लिखते हैं—"एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। वह गरजकर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और मुझे खाने के लिए मुँह खोला। मैं उस समय कुछ क्षण तक स्पन्दनहीन अवस्था में खड़ा रहा और अपनी लाठी धीरे-धीरे उसके मुँह पर मारने को उठाई। उसे देखकर न जाने किस कारण से वह रीछ हटकर भाग गया§। उस ओर उस रीछ की विकट गर्ज सुनकर उपर्युक्त कुटियों के रहनेवाले हाथों में मोटे-मोटे लट्ठ और साथ में कुत्ते लिये हुए मेरी सहायता के लिए दौड़ते हुए

---

§ कर्नल अल्काट और मेडम ब्लेवैट्स्की आदि थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सदस्य इस घटना को यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत करते हैं कि दयानन्द योगी थे। वे कहते हैं कि क्या योग की शक्ति का प्रयोग किये बिना दयानन्द केवल एक पतली-सी छड़ी से एक बड़े भारी रीछ को, जो आक्रमण करने पर उद्यत हो, डराकर भगा सकते थे? इसमें सन्देह नहीं है कि इस घटना से दयानन्द की योगशक्तियों का परिचय मिलता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगे न जाएँ। कुटियों के रहनेवाले उनसे विशेष अनुरोध करने लगे कि और आगे न जाओ हमारे साथ लौट चलो, क्योंकि यह जङ्गल व्याघ्र, रीछ, हाथी, जङ्गली भैंसे प्रभृति भयानक-जन्तुओं से भरा हुआ है।

यह बात उन्होंने दयानन्द को समझाई और इस भय से कि जङ्गल में आगे बढ़ने से वे किसी और नई और गुरुतर विपद् में न फँस जाएँ, उन्होंने बारम्बार अनुनय के साथ दयानन्द से वापस लौटने को कहा, परन्तु दयानन्द डरनेवाले लोगों में से नहीं थे। वे किसी के अनुरोध व विनय-वाक्यों से अपने समवलम्बित मार्ग से च्युत होनेवाले नहीं थे। दयानन्द ने उनके बारम्बार अनुरोध करने पर उनसे कहा कि—"मेरे लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं सुरक्षित ही रहूँगा, मैं नर्मदा का उत्पत्ति-स्थान देखने का सङ्कल्प करके बाहर निकला हूँ। मैं किसी विपद् के भय से कभी नहीं लौटूँगा।" कुटियों के रहनेवाले निरुपाय हो गये, परन्तु फिर भी निश्चिन्त नहीं हो सके। वे स्वामीजी की भावी विपदों की चिन्ता मन से दूर न कर सके। वे विवश होकर वापस चले गये, परन्तु दयानन्द को आत्मरक्षा के लिए एक मोटा लट्ठ दे गये। इस सम्बन्ध में दयानन्द लिखते हैं—"मैंने उनका दिया हुआ लट्ठ ले तो लिया, परन्तु दूसरे ही क्षण में उसे फेंक दिया।" उनके दिये हुए लट्ठ को दयानन्द के ले-लेने और दूसरे क्षण में उसे फेंक देने का क्या कारण था ? इसमें सन्देह नहीं है कि जब उन वनस्थ मनुष्यों ने बहुत ही आग्रह किया तो स्वामीजी ने उनके सम्मान को स्वीकार करने के अभिप्राय से उस लट्ठ को पहले तो ले लिया, फिर दूसरे ही क्षण उनके मन में आया कि इस भीषण जन्तु-परिपूर्ण निविड़ वन-मार्ग में मेरा एकमात्र सहाय परमेश्वर ही है, वही मेरा सब प्रकार से आश्रय-स्थल है, उसके द्वारा ही मैं सुरक्षित हूँ। इसलिए किसी अन्य की सहायता किसी अंश में भी मेरे लिए अवलम्बनीय नहीं, अतः वे उस लट्ठ को फेंके बिना निश्चिन्त नहीं हो सके।

अस्तु, उसी पतली छड़ी को साथ में लेकर और विधाता की रक्षा में अपने को सुरक्षित समझकर तथा भग्नोद्यम न होकर वे उस निविड़ और दुर्गम वन में आगे बढ़े। वे बहुत दूर तक चले गये, परन्तु कहीं भी उन्हें मनुष्य का चिह्न तक दिखाई नहीं दिया। मार्ग में कहीं-कहीं उन्हें हाथियों के उखाड़े और तोड़े हुए वृक्ष मिले। आगे चलकर वे उससे भी अधिक घने जंगल में जा पहुँचे। उस जङ्गल का दयानन्द इन शब्दों में वर्णन करते हैं—"असंख्य फूल के वृक्षों और अनेक प्रकार की कटीली झाड़ियों से वह जंगल भरा हुआ था। उसमें से किसी ओर भी निकलने का उपाय नहीं था। वहाँ से छुटकारा पाना मेरे लिए कठिन हो गया। कुछ दूर तक बैठे-बैठे, कुछ दूर तक घुटनियों के बल चलना पड़ा। थोड़ी देर के पश्चात् यद्यपि मैंने अपने को इस नई विपत्ति से मुक्त तो कर लिया, परन्तु मेरे वस्त्र धज्जी-धज्जी हो गये, और काँटे लगने से मेरे शरीर के बहुत-से स्थानों से रक्त की धारा बहने लगी।" देह से लोहू के बहने और भूख-प्यास के प्रबल वेग से दयानन्द का शरीर अवसन्न हो गया। उधर सूर्य देवता अस्ताचल की ओर गमन करने लगे और सायङ्काल का अन्धकार धीरे-धीरे पृथिवी पर फैलने लगा, परन्तु दयानन्द को अब भी विराम नहीं मिला, अन्धकार छा जाने पर भी वे उस विषम वनमार्ग में चलते ही रहे। जिस मनुष्य को अपने भले-बुरे का ज्ञान होता है, वह आनेवाली विपत्तियों की सम्भावना देखकर पहले से ही सावधान हो जाता है, परन्तु दयानन्द इस ओर देखते तक नहीं। यह जानते हुए भी कि बहुत ही शीघ्र उस जंगल पर रात्रि का अन्धकार छा जाएगा, उन्हें एक पल के लिए भी चिन्ता न हुई।

उनकी अलौकिक मानसिक शक्ति के सामने संसार की कोई विपद् मानो पिवद् ही नहीं थी। उनकी अद्वितीय निर्भयता के सामने पृथिवी का कोई भय मानों भय ही नहीं था। अस्तु, थोड़ी देर पीछे ही उनका मार्ग रुक गया, क्योंकि वे एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये जो चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ था। वहाँ दयानन्द ने कुछ देर खड़े होकर चारों ओर की पहाड़ियों पर दृष्टि डाली तो देखा कि उनका कोई भाग तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृक्षों और बेलों से पूर्ण है और कहीं मनुष्यों के रहने के चिह्नस्वरूप पर्णकुटियाँ विद्यमान हैं, किसी-किसी पर्णकुटी के चारों ओर गोबर का ढेर लगा हुआ है, किसी कुटिया के भीतर से धुँधले प्रकाश की रेखा बाहर निकल रही है और कहीं एक छोटी-सी नदी है, जिसके तट पर बकरियाँ चर रही हैं। सुतरां उन्होंने उसी स्थान पर रात्रि बिताने का सङ्कल्प कर लिया और वे उन झोंपड़ियों के पास के एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये। इसके पश्चात् की घटनाओं के विषय में दयानन्द लिखते हैं—"मैं उस नदी में हाथ-पैर धोकर सन्ध्या-उपासना करने के लिए बैठने का उद्योग कर रहा था कि मेरे कान में ढोल के बजाने का शब्द आया। थोड़ी देर पीछे मैंने देखा कि उस पहाड़ी ग्राम के स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका इकट्ठे होकर और अपने गौ आदि पशुओं को साथ लेकर मानो कोई धर्मोत्सव मनाने के लिए जा रहे हैं। वे मुझे एक विदेशी समझकर चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। उनमें से एक बूढ़ा मेरी ओर बढ़ा और उसने पास आकर मुझसे पूछा तुम कहाँ से आ रहे हो ? मैंने कहा कि मैं काशी से आ रहा हूँ और नर्मदा के उत्पत्ति-स्थान को देखने के लिए जा रहा हूँ। यह सुनकर वे सब-के-सब चले गये। तब मैं सन्ध्या-उपासना करने लगा। प्रायः आध घण्टा पीछे ही उनका एक मुखिया पुरुष दो पहाड़ियों को साथ लेकर मेरे पास आकर प्रतीक्षा करने लगा। ऐसा मालूम होता था कि वे दोनों पहाड़ी ग्रामवालों के प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये थे। सन्ध्योपासना समाप्त होते ही वे मुझे अपनी कुटिया में लिवा ले-जाने का अनुरोध करने लगे, परन्तु मैंने यह कहकर कि वे मूर्त्तिपूजक हैं, उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। फिर उसने यह आज्ञा देकर कि सारी रात मेरे पास खूब आग जला रखना, उन दोनों पहाड़ियों को मेरी रक्षा और देखभाल के लिए नियत कर दिया और मेरे खाने-पीने की बात पूछी। मैंने कहा कि मैं दुग्ध के सिवाय और कुछ नहीं खाता। यह सुनकर उसने मेरा कमण्डलु माँगा और शीघ्र ही उसमें दुग्ध भरकर ले-आया। मैंने उसमें से थोड़ा-सा पिया। इसके पीछे वह उन दोनों पहाड़ियों को मेरी रक्षा के लिए छोड़कर चला गया। रात्रि को गहरी नींद में बिताकर मैं प्रातःकाल ही उठा और सन्ध्या-उपासना करके भविष्यत् के लिए प्रस्तुत होने लगा।"

स्वामीजी ने एक बार शिवराम पाण्डे से कहा था कि जब वे पर्यटन किया करते थे तो एक बार चार-पाँच दिन तक भोजन न मिलने के कारण बहुत ही बुभुक्षित हो गये थे। उनका यह नियम था कि वे भोजन के लिए किसी से याचना नहीं करते थे। वे इसी क्षुधातुर अवस्था में थे कि एक मनुष्य ने आकर स्वयं ही उनसे भोजन करने का प्रस्ताव किया। स्वामीजी उसके साथ उसके घर गये और उसके दिये हुए सत्तु को खाकर तृप्त हुए। तत्पश्चात् उस मनुष्य ने स्वामीजी से कहा कि उसकी पुत्रवधू भूताक्रान्त है, आप अनुग्रह करके उसका भूत उतार दें। स्वामीजी उसके साथ उसके घर के भीतर गये और उसकी पुत्रवधू को अपनी लाठी दिखाई। गृहस्थ ने कहा कि और कुछ भी कीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि हमारी लाठी देखकर ही भूत भाग जाएगा। वस्तुतः ऐसा ही हुआ भी। गृहस्थ की पुत्रवधू नीरोग हो गई। गृहस्थ स्वामीजी का बड़ा कृतज्ञ हुआ और कई दिन तक स्वामीजी की सेवा में रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करता रहा।

इस घटना के पश्चात् स्वामीजी पर्यटन करते-करते एक सन्ध्या को एक गृह में जाकर ठहरे। उस गृह के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि उसमें भूत निवास करते हैं और इस भय से कोई मनुष्य उस घर में नहीं टिकता था। स्वामीजी से भी किसी-किसी मनुष्य ने कहा कि आप इस भूताक्रान्त गृह में न ठहरें, परन्तु स्वामीजी ने नहीं माना और उसी घर में रात्रि यापन की। स्वामीजी की देखा-देखी एक और मनुष्य भी उस घर में ठहर गया। रात्रि में वह मनुष्य किसी कार्य-वश उठकर जाना चाहता था कि किसी ने उसे ज़बरदस्ती पकड़ लिया तब वह चिल्ला उठा। स्वामीजी भी उठे। तब उस मनुष्य का छुटकारा हुआ। लोग कहने लगे कि स्वामीजी महात्मा थे। इसलिए उनका भूत कुछ न कर सका, परन्तु यह साधारण मनुष्य था, इस कारण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूत ने इसे दबा लिया।

इस समय संवत् १९१३§ का कार्त्तिक वा आग्रहायण मास होगा। यहाँ पर ही स्वामीजी के स्वलिखित आत्म-चरित की समाप्ति हो जाती है। इसके पश्चात् उन्होंने क्या किया, वे कहाँ गये इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु यह तो अवश्य ही अनुमान होता है कि जब वे नर्मदा के उत्पत्ति-स्थल को देखने के अभिप्राय से ही बाहर निकले थे, और उस अभिप्राय की प्राप्ति के मार्ग पर वे असीम दृढ़ता के साथ चले और विशेषकर जब उपर्युक्त विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी उन्होंने एक पैर भी पीछे नहीं हटाया, प्रत्युत जो पैर बढ़ाया वह आगे को ही बढ़ाया और इतनी दूर आ भी पहुँचे तो वे नर्मदा के उत्पत्ति-स्थान की ओर दिन-प्रतिदिन आगे-ही-बढ़ते रहे होंगे, परन्तु इस विषय में हम कुछ नहीं कह सकते कि नर्मदा के उत्पत्ति-स्थान के दर्शन करने के पश्चात् उन्होंने क्या किया, कहाँ-कहाँ गये, किस-किस नये योगाभ्यास के उद्देश्य से किस-किस योगी के पास गये। वस्तुतः इस पहाड़ी ग्राम के वृक्ष के नीचे रात्रिभर विश्राम करके जब अगले दिन वे सन्ध्योपसन के पीछे आगे जाने को उद्यत हुए उसके पश्चात् का उनका जीवन न केवल हमारे ही लिए अन्धकार में छिपा हुआ है, अपितु संसार के लिए ही अज्ञात है‡।

---

§ संभवतः १९१४ होना चाहिए।

‡ पण्डित लेखराम अपनी कल्पना के बल पर लिख गये हैं कि नर्मदा के उत्पत्ति-स्थान के दर्शन करने के बाद दयानन्द तीन वर्ष तक नर्मदा के तट पर भ्रमण करते रहे थे और अनेक साधु-महात्माओं से मिले थे। वे बुन्देलखण्ड से ही मथुरा आये थे। इस विषय को पण्डितजी के स्वकपोलकल्पित होने के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। जो लोग किसी प्रमाण वा भित्ति का आश्रय न लेकर अपनी कल्पना के आवेग में चाहे सो प्रचरित कर जाते हैं, उन्हें ऐतिहासिक न कहकर औपन्यासिक कहना ही क्या युक्तियुक्त नहीं है ?

हम देवेन्द्रबाबू की इस सम्मति से सहमत नहीं हैं। देवेन्द्रबाबू के समान पण्डित लेखराम भी सत्यान्वेषी थे। वे कोई स्वकपोलकल्पित बात नहीं लिख सकते थे। उन्हें ऐसी सूचना किसी-न-किसी से मिली होगी। उर्दू दयानन्द-चरित को वे पूर्ण न कर सके और यही कारण है कि बहुत-सी बातों के प्रमाण का उसमें उल्लेख नहीं है, परन्तु केवल इसी बात से हम उन बातों को प्रमाणशून्य नहीं कह सकते। यह दूसरी बात है कि जो प्रमाण उन्हें मिले, वे कहाँ तक विश्वसनीय थे और कहाँ तक नहीं। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्थ अध्याय

संवत् १९१६-१७—१९२३=सन् १८५९-६०—१८६६

(अक्तू०-नव० १८६०) हाथरस, मुरसान (कार्त्तिक १९१७)

तीन वर्ष व्यतीत हो गये। विरजानन्द की पुण्य-कीर्त्ति और विद्वत्ता की ख्याति दयानन्द को भी पहले ही स्वामी पूर्णाश्रम से विदित हो चुकी थी। वे उनसे मिलने के लिए अति उत्सुक थे, इसलिए वे मथुरा के लिए चल दिये। मार्ग में हाथरस ठहरे। वहाँ उन्हें समाचार मिला कि स्वामी विरजानन्द का मुरसान में किसी पण्डित से शास्त्रार्थ होनेवाला है, अतः उन्होंने तुरन्त ही मुरसान के लिए प्रस्थान कर दिया। वहाँ जाकर ज्ञात हुआ कि शास्त्रार्थ तो हो चुका, अतः वे स्वामी विरजानन्द के विपक्षी पण्डित से जाकर मिले और उससे अनुरोध किया कि मुझे विरजानन्द के पास ले-चलो। पण्डित की बातों से वे समझ गये कि पण्डितजी विरजानन्द से परास्त हो गये हैं, अतः दयानन्द ने उस पण्डित को उत्तेजना दी कि चलो देखें तो सही कि वे कैसे तार्किक हैं, परन्तु पण्डित ने उत्तर दिया कि विरजानन्द कोई साधारण विद्वान् नहीं हैं, उनका अष्टाध्यायी और महाभाष्य पर पूर्ण अधिकार है। दयानन्द ने पण्डित से फिर कहा कि चलो विरजानन्द के पास चलकर देखें तो सही, परन्तु पण्डित ने कहा कि विरजानन्द तो मथुरा चले गये, क्योंकि उनका नियम है कि रात्रि को मथुरा के बाहर नहीं रहते। वह सायङ्काल से पूर्व ही मथुरा लौट आते हैं, अतः दयानन्द ने मथुरा जाकर ही विरजानन्द से साक्षात करने का सङ्कल्प किया और स्वामीजी मथुरा जा पहुँचे।

(अक्तू०-नव० १८६०-अप्रैल-मई १८६३) मथुरा (कार्त्तिक १९१७-वैशाख १९२०)

मथुरा में होली दरवाजे से विश्रान्त-घाट को जो सड़क जाती है उसके पार्श्व में एक साधारण गृह है। उसकी अट्टालिका में एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। दयानन्द उनके ही पादमूल में विद्यार्थीरूप से जाकर बैठे। दयानन्द के मथुरा आगमन के सम्बन्ध में मथुरावासी और स्वामीजी के सहाध्यायी स्वर्गीय पण्डित युगलकिशोर ने यह वर्णन किया था कि 'दयानन्द मथुरा में सम्भवतः वैशाख वा ज्येष्ठ मास में आये थे।' उस समय पश्चिमोत्तर प्रान्त के प्रायः सभी प्रदेश दारुण निदाघ के ताप से तप्त थे। ग़दर से उत्पन्न हुई अशान्ति और अराजकता भी कहीं-कहीं विराज रही थी। दारुण दुर्भिक्ष के कारण इस प्रान्त के बहुत-से स्थानों के बहुत-से मनुष्य भोजन का क्लेश उठा रहे थे। दयानन्द कुछ दिन तक पहले रङ्गेश्वर के मन्दिर में रहे फिर दण्डीजी के पास गये। उस समय दयानन्द संन्यासी के वेष में थे। उनके ललाट पर भस्म की रेखा और गले में रुद्राक्ष की माला थी। वे गेरुए वस्त्र पहने हुए थे और हाथ में एक लोटा था।

सरकारी रिपोर्ट के पढ़ने से मालूम हुआ कि यह दुर्भिक्ष जिसका पण्डित युगलकिशोरजी ने वर्णन किया है पश्चिमोत्तर देश में नवम्बर सन् १८६० से आरम्भ होकर अक्तूबर सन् १८६१ तक रहा था। संवत् के हिसाब से यह संवत् १९१७ से संवत् १९१८ के कुछ भाग तक समझना चाहिए, अतः पण्डित युगलकिशोर के कथनानुसार स्वामीजी के मथुरा आने का समय संवत् १९१७ और १९१८ के बीच का कोई-न-कोई समय होना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो दयानन्द-चरित पण्डित लेखराम ने उर्दूभाषा में लिखा है और जो पञ्जाब आर्य-प्रतिनिधि सभा की ओर से प्रकाशित हुआ है, उसके पच्चीसवें पृष्ठ पर लिखा है—"स्वामीजी मथुरा संवत् १९१७ के कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया अथवा सन् १८६० के नवम्बर की १४ तारीख को आये थे§ ।' हम पण्डित लेखराम के इस कथन को निर्मूल समझते हैं, क्योंकि वह किसी प्रमाण के ऊपर स्थित नहीं है । स्वामीजी उस समय अपनी कोई डायरी (दैनन्दिनी) नहीं रखते थे, दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में भी इस बात को लिखकर रखने की कोई रीति नहीं थी कि कौन विद्यार्थी कब और कहाँ से आकर उसमें प्रवष्ट हुआ है और न उस पाठशाला में कोई ऐसा रजिस्टर ही रक्खा जाता था जिसमें किसी विद्यार्थी का नाम, धाम और आगमन का समय लिखा जाता हो । तब पण्डितजी किस आधार पर ऐसा लिख गये कि "दयानन्द मथुरा में संवत् १९१७ के कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया को आये थे ?"

मथुरा आने के संवत् के सम्बन्ध में हम जैसे पण्डित युगलकिशोरजी के कथन से सहमत नहीं है, ऐसे ही पण्डित लेखराम के विश्वास से भी सहमत नहीं हैं । हम यह मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं कि दयानन्द मथुरा में संवत् १९१७ के किसी-न-किसी भाग में आये थे । वृन्दावन में जिस स्थान पर अब शाहजी का मन्दिर बना हुआ है, वहाँ पहले हिम्मत बहादुर की कचहरी में संवत् १९१७ में दण्डी विरजानन्द के साथ वासुदेव स्वामी का शास्त्रार्थ हुआ था और दयानन्द उस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे—ऐसा सुनने में आया है । यही बात कुछ वर्ष पहले दण्डीजी के दूसरे शिष्य पण्डित पुरुषोत्तम चौबे से भी सुनी थी । इससे ज्ञात होता है कि स्वामीजी संवत् १९१७ से पहले ही मथुरा आकर दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में प्रविष्ट हो गये थे ।

पण्डित वनमाली चौबे भी दण्डीजी के एक विद्यार्थी थे । उनका कथन था कि "मैं संवत् १९१७ में दण्डीजी की पाठशाला में प्रविष्ट हुआ था । दयानन्द मेरे प्रविष्ट होने के पहले ही प्रविष्ट हो चुके थे ।" इससे सिद्ध होता है कि स्वामीजी ने मथुरा में संवत् १९१७ से पहले ही पदार्पण किया था । मथुरा में कोई-कोई वृद्ध पुरुष यह कहते भी सुने गये हैं कि दण्डीजी की पाठशाला में पाणिनि-युग के प्रवर्त्तित होने‡ के बाद ही दयानन्द उनके पास पढ़ने के लिए गये थे, अतः हमारा निश्चित विश्वास है कि संवत् १९१६ के किसी-न-किसी समय में ही दयानन्द मथुरा अध्ययन करने के लिए आये थे ।†

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि १२-१३ वर्ष योगियों के अनुसन्धान और योगविद्या के अनुशीलन में व्यय करके दयानन्द पुनः अध्ययन के लिए मथुरा क्यों आये ? योगविद्या के ग्रन्थों में लिखी हुई और क्रियात्मक

---

§ जब स्वामीजी ने आर्यसमाज स्थापित कर दिये और उनका वेदभाष्य छपकर प्रचरित होने लगा तब तो उनके विषय में यह समाचार कि वे कब किस स्थान को जाएँगे और कहाँ कितने दिन रहेंगे, उनके क्रमशः प्रकाशित होनेवाले वेदभाष्य के अंकों पर अथवा किसी समाचारपत्र में छपने लगा था, परन्तु जिस समय वे योगशिक्षा के अभिप्राय से कभी उत्तराखण्ड के पर्वतों में और कभी नर्मदा तट पर विचरण करते थे, जिस समय वे दण्डीजी से अध्ययन करने के लिए मथुरा आये थे, उस समय अपने सम्बन्ध में कोई समाचार लिखकर नहीं रखते थे और न उसे किसी पत्र-पत्रिका में ही छपाते थे । उस समय दयानन्ददिवाकर अनुदित अवस्था में था और उसका समाचार जानने के लिए संसार का कोई मनुष्य व्यग्र न था ।

‡ पाणिनियुग संवत् १९१५ के अन्तिम वा संवत् १९१६ के आरम्भ में प्रवर्त्तित हुआ था, ऐसा प्रमाणित होता है।

† मेरी सम्मति में देवेन्द्रबाबू की युक्तियों से यह सिद्ध नहीं होता कि दयानन्द मथुरा संवत् १९१७ से पहले ही आये थे। वासुदेव स्वामी से दण्डीजी के शास्त्रार्थ की अथवा वनमाली चौबे के दण्डीजी की पाठशाला में प्रविष्ट होने की तिथि अज्ञात है । सम्भव है दयानन्द मथुरा संवत् १९१७ के आरम्भ में ही आ पहुँचे हों और उपर्युक्त दोनों घटनाएँ उनके आगमन के पश्चात् संघठित हुई हों । पण्डित लेखराम की पुस्तक में दयानन्द के मथुरा पहुँचने की जो तिथि दी है, वह ज्ञात नहीं किस आधार पर दी गई है, अतः उसके स्वीकार करने में अवश्य संकोच होता है । —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षा को नाना प्रकार से नाना योगियों से पाकर वे अन्त में दण्डी विरजानन्द के पास पढ़ने के लिए क्यों आये ? जो स्रोत निरन्तर १२-१३ वर्ष तक एक ही भाव से, एक ही ओर और एक ही उद्देश्य से प्रवाहित रहा, उसमें सहसा परिवर्तन क्यों हो गया ? प्रथमतः यद्यपि उनके जीवन के १२-१३ वर्ष प्रधानतः योगविद्या में विशेषरूप से पारङ्गत होने में अवश्य अतिवाहित हुए थे, परन्तु उनके चित्त से ज्ञान-स्पृहा और ज्ञानान्वेषण की लालसा एक बार भी विलुप्त नहीं हुई थी। जब कभी योगियों के अन्वेषण-समय में वा योगसाधन के समय में उन्हें सुयोग मिलता था तभी वे ज्ञानोपार्जन के विषय में यत्न किया करते थे। व्यासाश्रम से छिनूर जाकर उन्होंने कृष्णशास्त्री से व्याकरण पढ़ा था। चाणोद में परमानन्द परमहंस से वेदान्तसार और वेदान्त-परिभाषा आदि ग्रन्थों का अभ्यास किया था, टिहरी में जाकर तन्त्रादि ग्रन्थों की आलोचना की थी। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि उनके संन्यासाश्रम ग्रहण करने का प्रधान कारण ज्ञान-लालसा ही थी। जब उस दक्षिणी पण्डित ने दयानन्द को संन्यास की दीक्षा देने के लिए पूर्णानन्द सरस्वती से अनुरोध किया तो उसने भी अनुरोध करते समय कहा था कि "यह (दयानन्द) संन्यास के लिए नितान्त इच्छुक हैं, क्योंकि ऐसा करने से यह निर्विघ्न होकर वेदान्तादि शास्त्रों की आलोचना कर सकेंगे।"

वे संन्यासाश्रम में इसीलिए प्रविष्ट हुए थे कि ब्रह्मचारी रहने की दशा में उन्हें अपने हाथ से भोजन पकाना पड़ता था और इससे अध्ययन में व्याघात होता था। इसके अतिरिक्त वे स्वयं कह गये हैं कि उन्होंने ज्ञानोपार्जन करने की इच्छा के कारण ही आसन्न-मृत्यु का ग्रास बनने से अपनी रक्षा की थी। जब वे अलखनन्दा के परिभ्रमण के समय उसके तुषाराकीर्ण तट पर मुमूर्षु अवस्था में पड़े थे तो उस समय का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—"एक बार मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इसी हिमराशि में पड़े रहकर ही मैं अपने प्राणों का अन्त कर दूँ, किन्तु थोड़ी ही देर पीछे मेरी ज्ञान-लालसा इतनी प्रबल हो उठी कि मैंने यह विचार छोड़ दिया।"

इस सम्बन्ध में एक और बात की आलोचना करना भी आवश्यक है। जब शिवरात्रि का व्रतभङ्ग करके रात्रि के तीसरे प्रहर दयानन्द जड़ेश्वर के मन्दिर से घर वापस आये तो इनका मूर्त्तिपूजा पर से विश्वास उठ गया था। हम समझते हैं पाठक इस बात को भली-भाँति जानते हैं और यह हम पहले ही लिख आये हैं कि उपवासादि बाह्यानुष्ठानों में उसी समय से उनकी श्रद्धा नहीं रही थी। इससे सिद्ध होता है कि दयानन्द उसी समय से हिन्दूधर्म की प्रचलित प्रणाली के प्रति आस्थाहीन हो गये थे, परन्तु इसके साथ ही वे हिन्दूधर्म की प्रकृत प्रणाली को जानने के लिए भी उत्सुक हो गये थे। यह औत्सुक्य १३ वर्ष की अवस्था से ही उनके हृदय में उद्दीप्त रहता चला आया था। फिर यदि यह औत्सुक्य उनके पिछले जीवनकाल में क्रमशः स्थायी हो गया तो इसमें सन्देह की कौन-सी बात है ? इसलिए यह स्वीकार करना होगा कि दयानन्द का जीवन योगलालसा के समान ज्ञान-लालसा से भी परिचालित था। जब वे योगियों के अनुसन्धान में नर्मदा की तट-भूमि खोज रहे थे, जब वे उत्तराखण्ड में एक स्थान से दूसरे स्थान में, एक मठ से दूसरे मठ में जाते थे और इसी प्रकार उन्होंने अपने १३ वर्ष बिताये थे, तब भी उन्होंने एक दिन के लिए भी अपनी ज्ञानोपार्जन की लालसा को नहीं त्यागा था। हम तो यहाँ तक कहने को उद्यत हैं कि उनके अन्तःकरण में योगपिपासा की अपेक्षा ज्ञानपिपासा अधिक प्रबल थी, क्योंकि जब उनके अन्तःकरण में योगपिपासा उद्दीप्त हुई तब उनकी अवस्था १८ वर्ष की थी और जब ज्ञानपिपासा उत्तेजित हुई थी तब उनकी अवस्था १३ वर्ष की थी। यदि वे प्रबल ज्ञानपिपासा की तृप्ति के उद्देश्य से मथुरा दण्डी विरजानन्द की सेवा में उपस्थित हुए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

हाँ ! एक प्रश्न रहता है। भारतभूमि के बहुत-से स्थानों में अनेक आचार्यों के रहते हुए दयानन्द इस अन्धे आचार्य के पास क्यों आये ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पं० लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि दयानन्द ने नर्मदातट-परिभ्रमण के समय किसी से विरजानन्द की विद्वत्ता की प्रशंसा सुनी थी और इसी से वे दण्डीजी के पास विद्याग्रहण करने के लिए आये थे। सम्भव है कि ऐसा ही हुआ हो, परन्तु अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि दयानन्द को विरजानन्द के अपूर्व पाण्डित्य का समाचार उत्तराखण्ड की यात्रा से पूर्व ही ज्ञात हो गया था§।

यद्यपि यह बात कि पूर्णाश्रम स्वामी पाणिन्यादि आर्षग्रन्थों के प्रचार के पथप्रदर्शक थे, सर्वसाधारण को विदित नहीं है, तथापि यह सत्य हो सकती है। यह तो निश्चित ही है कि उस समय पूर्णाश्रम स्वामी अपनी असाधारण शास्त्रदर्शिता और आर्षग्रन्थों के पक्ष के लिए साधु-मण्डली और पण्डित-मण्डली में विशेष ख्याति रखते थे।

हमारा अनुमान है कि दयानन्द पूर्णाश्रम के पास उत्तराखण्ड की यात्रा आरम्भ करने से पूर्व ही गये होंगे। जब दयानन्द अलखनन्दा के हिमाच्छादित तट पर मुमूर्षु दशा को प्राप्त होकर मरने की इच्छा करने लगे थे तो तत्काल ही उनके मन में यह विचार उदित हुआ था कि ऐसे मरने से क्या लाभ, यदि मरना ही है तो ज्ञानोपार्जन करके मरना चाहिए। पूर्णाश्रम से विरजानन्द की प्रशंसा सुनकर उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि उनके लिए ज्ञानपिपासा की शान्ति के साधन विद्यमान हैं और इसी कारण उन्होंने मरने का विचार त्याग दिया था।

यहाँ एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब दयानन्द ने केवल ज्ञानोपार्जन के लिए ही प्राणान्त करने का सङ्कल्प छोड़ा था, जैसाकि वे स्वयं लिखते हैं कि उस समय "एक क्षण में ही ज्ञानलालसा नितान्त प्रबल हो उठी" तो वे उसके पश्चात् तुरन्त ही विरजानन्द के पास विद्याग्रहणार्थ क्यों नहीं चले गये। इसका उत्तर यही है कि यद्यपि वे विरजानन्द से विद्याप्राप्ति का संकल्प उत्तराखण्ड की यात्रा से पहले ही कर चुके थे, परन्तु उनकी अभिलाषा थी कि एक बार काशी आदि स्थानों में अन्वेषण कर लें और नर्मदा के उत्पत्तिस्थान के दर्शन कर लें, तब निश्चिन्त होकर अध्ययनकार्य में प्रवृत्त हों। इसीलिए वे काशी आदि स्थानों में घूमने और नर्मदा के उद्गम को देखने के पश्चात् ही मथुरा में दण्डी विरजानन्द की सेवा में शिष्यभाव से उपस्थित हुए।

परन्तु यह सब अनुमान ही है। वास्तव में तो हमारे पास कोई सामग्री ऐसी नहीं है जिसके आधार पर हम इस प्रश्न का कि दयानन्द को विरजानन्द का संवाद उत्तराखण्ड की यात्रा से पहले मिला वा नर्मदातट-परिभ्रमण के समय मिला निश्चित रूप से उत्तर दे सकें।

दण्डी विरजानन्द से मिलन—मथुरा पहुँचकर पहले दयानन्द कुछ दिन रङ्गेश्वर के मन्दिर में ठहरे फिर एक दिन विरजानन्द की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम किया और अपना सङ्कल्प उनपर प्रकट किया। विरजानन्द जो अन्य विद्यार्थियों से कहा करते थे, वही उन्होंने दयानन्द से भी कहा। विरजानन्द ने कहा—आज तक जो कुछ तुमने मनुष्यप्रणीत ग्रन्थों में पढ़ा है, वह सब भूल जाओ, क्योंकि जब तक मनुष्यप्रणीत ग्रन्थों का प्रभाव रहेगा तब तक आर्षग्रन्थों का प्रकाश तुम्हारे चित्त में प्रवेश न कर सकेगा और यदि कोई मनुष्यप्रणीत ग्रन्थ तुम्हारे पास हो तो उसे यमुना के प्रवाह में फेंक आवो। एक और बात है, तुम संन्यासी हो, मैं कभी किसी संन्यासी को विद्यार्थीरूप से ग्रहण नहीं करता हूँ, क्योंकि जिसके भोजन और रहने के स्थान की स्थिरता

---

§ श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के मन्त्री मथुरानिवासी स्वर्गीय पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने दयानन्द का निम्न कथन देवेन्द्रबाबू से कहा कि—"पढ़ने के लिए मैं पहले हरिद्वार में पूर्णाश्रम स्वामी के पास गया था, परन्तु उस समय वे बहुत वृद्ध हो गये थे और उन्होंने मौनव्रत धारण कर रक्खा था, इसलिए वे मुझे पढ़ाने पर सम्मत नहीं हुए। जब मैंने बहुत आग्रह किया तो उन्होंने एक काग़ज पर लिख दिया कि यदि तुम मथुरा में जाकर विरजानन्द से पढ़ो तो तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।" —संग्रहकर्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न हो वह मनोयोग के साथ विद्याभ्यास कैसे कर सकता है ? इसलिए पहले तुम अपने खाने-पीने और रहने के स्थान की व्यवस्था कर आओ और फिर मेरे पास आकर विद्याभ्यास में लगो।"

हिन्दूशास्त्रराशि में प्रत्येक ग्रन्थ ऋषिप्रणीत हो ऐसी बात नहीं है, प्रत्युत उन ग्रन्थों के पढ़ने पर अधिकांश मनुष्यप्रणीत प्रतीत होते हैं। ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को छोड़कर और किसी ग्रन्थ के प्रति विरजानन्द आस्थावान् नहीं थे। वे किसी मनुष्यप्रणीत ग्रन्थ को प्रामाणिक रूप से ग्रहण नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि मनुष्य-प्रणीत वा अनार्षग्रन्थों के प्रचार से ही भारतभूमि का अनेक प्रकार का अनर्थ हुआ है। उनकी धारणा थी और अवलम्बन था कि इस प्रलीयमान आर्यजाति के पुनरुत्थान का एकमात्र उपाय आर्षग्रन्थों का पुनः प्रचार करना ही है। शेखर, मनोरमादि व्याकरणग्रन्थों के खण्डन में स्वयं विरजानन्द ने एक ग्रन्थ वाक्यमीमांसा नाम से रचा था और पाणिनि के प्रायः आधे भाग का एक भाष्य भी प्रणयन किया था; परन्तु इस आशङ्का से कि लोकसमाज में उनके ग्रन्थ का प्रचार होकर और उनके भाष्य की उपस्थिति में मूलग्रन्थों में लोगों की प्रवृत्ति न होने से मनुष्यप्रणीत ग्रन्थों की ही संख्या में वृद्धि होकर और भारतभूमि का अधिक अकल्याण हो, उन्होंने स्वरचित वाक्यमीमांसा और पाणिनिभाष्य को अपने एक शिष्य को देकर उन्हें यमुना में फिंकवा दिया। इससे अनुमान होता है कि विरजानन्द श्रुति-प्रतिपादित धर्म के ही पक्षपाती थे। वे वैदिक धर्म को सत्य और सनातनधर्म मानते थे। यद्यपि उनकी अवस्था अस्सी वर्ष से भी अधिक हो गई थी। शरीर जराभार से आक्रान्त हो गया था, तथापि वे सदा इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे कि समस्त भारत में वैदिक धर्म पुनः प्रतिष्ठित कैसे हो ? समय-समय पर विरजानन्द इतने उत्तेजित हो जाते थे कि वैदिक धर्म के पुनरुत्थान और आर्षग्रन्थों के पुनः प्रचार के उपाय सोचने में ही लगे रहते थे। इसी उद्देश्य से वे एक सार्व-भौमसभा स्थापित करने पर उद्यत हुए थे। जयपुराधीश महाराजा रामसिंह से भी उन्होंने इस सभा का प्रस्ताव किया था तथा महाराजा रामसिंह ने उसका अनुमोदन भी किया था और उसके लिए विशेष प्रयत्न करने का वचन भी दिया था।

दण्डी विरजानन्द—यद्यपि दण्डी विरजानन्द प्रायः जन्मान्ध थे तथापि सब शास्त्र उनकी जिह्वा पर नृत्य करते थे। उनकी बुद्धि का सारे शास्त्रों में प्रवेश था, उनकी दृष्टि सर्व-शास्त्र-प्रचारिणी थी, उनकी विचारशक्ति शास्त्रों के पढ़ने में असाधारण थी, विशेषकर शब्दशास्त्र के मर्मों के अवधारण और मीमांसा करने में तो उनकी प्रतिभा अलौकिक ही थी। इसपर सर्वसाधारण उन्हें 'व्याकरण-सूर्य' के नाम से अभिहित करते थे। विरजानन्द का पाण्डित्य अपूर्व था, उनकी प्रतिभा असाधारण थी और उनकी स्मृतिशक्ति विस्मयकारक थी। किसी श्लोक वा सूत्र को एक अथवा अधिक-से-अधिक दो बार सुनने से वह उसे अभ्यस्त विषय के समान बिना किसी क्लेश के दुहरा सकते थे। इन कारणों से उनका नाम श्रुतिधर होना सर्वतोभावेन उपयुक्त था। विरजानन्द के असाधारणत्व के सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनका विस्तारपूर्वक उल्लेख करना यहाँ अनावश्यक है।§ चक्षुहीन होने के कारण कोई उन्हें सूरदास, कोई धृतराष्ट्र और कोई प्रज्ञाचक्षु के नाम से पुकारते थे।

यह हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के प्रचार और वैदिक धर्म के विस्तार में

---

§ देवेन्द्रबाबू ने विरजानन्द की भी जीवनी लिखी है। उसका आर्यभाषा में अनुवाद होकर आर्य प्रतिनिधि सभा उ०प्र० द्वारा छपवा दी गई है।

यह जीवनी बहुत समय से अप्राप्य थी। सं० २०४८ में श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट करतारपुर, जिला जालन्धर ने यह पुनः प्रकाशित कराई है।

स्वामी श्री वेदानन्दजी तीर्थ ने भी एक जीवनी लिखी है। विरजानन्द चरित्र के नाम से पं० श्री भीमसेनजी एम.ए. ने भी उनका जीवन-चरित्र लिखा है। ये दोनों भी पठनीय हैं। —**जगदीश्वरानन्द**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरजानन्द का दृढ़ अनुराग और अटल विश्वास था। इससे यह सहज में ही समझ में आ सकता है कि पाठशाला स्थापित करने के मूल में और अध्यापन कार्य करने की तह में उनका कोई विशेष लक्ष्य था। विरजानन्द की पाठशाला अन्य पाठशालाओं के समान साधारण पाठशाला न थी और न उनके अध्यापन का उद्देश्य अन्य गुरुओं के अध्यापन के समान केवल कुछ वैयाकरण, कुछ नैयायिक अथवा कुछ वेदान्तिक तैयार करना था। जैसे उनकी पाठशाला का उद्देश्य सबसे विलक्षण था, ऐसे ही उनका अध्यापन भी अन्यों से निराला ही था। इस कारण से विरजानन्द अपने विद्यार्थियों से प्रायः कहा करते थे—"आज मैं जिस अग्नि को धूमाकार में तुम्हारे भीतर प्रविष्ट करता हूँ कल वह महाग्नि में पर्यवसित होकर भारतभूमि के भ्रान्त मत और भ्रान्त विश्वास के जञ्जाल को भस्मीभूत कर डालेगी।"

दण्डीजी के वचन को सुनकर दयानन्द पाठशाला से बाहर निकले और आहार तथा निवास-स्थान के स्थिर प्रबन्ध के विषय में चिन्तित हो गये। मथुरा में कोई उनका परिचित न था, वे अपरिचित स्थान में और अपरिचित मनुष्यों के बीच में थे, न कोई बन्धु था, न मित्र। सहायता के लिए किसके आगे हाथ फैलाएँ और किससे आशा करें जो उनके स्थिररूप से रहने और खान-पान का भार अपने ऊपर ले-ले। यदि यह प्रबन्ध नहीं होता है तो उनकी जन्मभर की आशाओं पर, जिनके सहारे वे इतने कष्ट और क्लेशों को सहन करते आये हैं, पानी फिर जाता है। ज्ञानपिपासु ज्ञानस्रोत के तट पर बैठा है, परन्तु वह उस ज्ञान का पान करके अपनी तृषा को नहीं बुझा सकता। प्यासे के मुँह से पानी का कटोरा हटाया जा रहा है, भूखे के सामने से भोजन का थाल सरकाया जा रहा है। कैसा दुःखप्रद दृश्य है! दयानन्द के हृदय पर नैराश्य की घटा छाने लगी और वे **'किं करोमि क्व गच्छामि'** कहकर चिन्ता से व्याकुल हो गये। इतने में आशा की किरण दिखाई दी, नैराश्य की घटा फट गई।

जिस समय की हम कथा लिख रहे हैं उस समय मथुरा में एक परोपकारी और उदारचित्त गुजराती ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था अमरलाल जोषी। मथुरा में कभी उनका कोई पूर्व-पुरुष आया था और यहीं बस गया था। उन्हें लोग जोषी बाबा§ कहा करते थे। वे उदीच्य श्रेणी के ब्राह्मण थे। घटनावश उनसे दयानन्द का परिचय हो गया। दयानन्द ने अपनी विपत् कहानी उन्हें कह सुनाई और उन्होंने दयानन्द के भोजन का भार सहर्ष अपने ऊपर ले-लिया और उनके भोजन का स्थिर प्रबन्ध हो गया। अमरलाल‡ के विषय में दयानन्द ने लिखा है—"आहार और गृह आदि की मुक्तहस्त से सहायता करने के कारण मैं अमरलाल का नितान्त आभारी हूँ। भोजन के सम्बन्ध में वे इतने तत्पर रहते थे कि जब तक मेरे भोजन का प्रबन्ध न हो जाता था तब तक वे स्वयं भोजन न करते थे। वस्तुतः अमरलाल एक महदन्तःकरण के मनुष्य थे। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।" इसके पश्चात् दयानन्द के रहने के स्थान का भी प्रबन्ध हो गया। विश्रामघाट पर लक्ष्मीनारायण का जो मन्दिर है, उसके नीचे की मंज़िल में एक कोठरी उन्हें रहने के लिए मिल गई। यह कोठरी मन्दिर के द्वार के एक पार्श्व में थी और यद्यपि वह कुछ बड़ी न थी तथापि एक मनुष्य के रहने के लिए पर्याप्त थी। उसका मौक़ा भी बहुत अच्छा था। मन्दिर के गवाक्ष के पास खड़े होते ही यमुना की तरङ्ग-भङ्गिमय श्याम सलिलराशि पर दृष्टि पड़ती थी। यमुना के दूसरी पार कहीं शुभ्रोज्ज्वल सैकत भूमि, कहीं लतापादप-परिपूर्ण छोटी-छोटी वनस्थली के दर्शन करके मनुष्य आनन्द से पुलकित हो जाता था। अमरलाल ने इस निःसहाय संन्यासी की सहायता करके अपने को अमर कर लिया था। कौन जानता था कि वह संन्यासी

---

§ ज्योतिश्शास्त्र में पारदर्शिता के कारण ही अमरलाल को जोषी बाबा की पदवी मिली थी। ज्योतिष में उनका विशेष पाण्डित्य देखकर महाराजा सिन्धिया ने उन्हें १०-१२ ग्राम दे दिये थे। उनकी ही आय से अमरलाल का निर्वाह होता था। अमरलाल प्रतिदिन प्रायः एक ब्राह्मण को भोजन कराया करते थे।

‡ अमरलाल के घर भोजन का प्रबन्ध होने से पहले दयानन्द ने कुछ दिन तक दुर्गाप्रसाद खत्री के घर भोजन किया था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक दिन वैदिक धर्म का पुनरुद्धारक और आर्यजाति का उन्नायक होगा। अमरलाल को क्या खबर थी कि वह उक्त अपरिचित संन्यासी का पालन-पोषण करके भारत के ही नहीं, प्रत्युत सारी पृथिवी के धर्मबुभुक्षुओं को अन्न दे रहा है। अमरलाल तू धन्य है! दयानन्द दिवाकर में जो तेजःपुञ्ज था उसके सञ्चय में तेरा भी भाग है और जिन्होंने उस दिवाकर के प्रकाश से अपने हृदयाविष्ट तिमिर-राशि को छिन्न-भिन्न किया है तू भी उनकी श्रद्धाञ्जलि का अधिकारी है।

जब भोजन और घर का इस प्रकार स्थिररूप से प्रबन्ध हो गया तो दयानन्द दण्डीजी की पाठशाला में पढ़ने के लिए प्रविष्ट हुए। वहाँ जाकर उन्होंने क्या देखा कि जैसे सूर्य-मण्डल से अविश्रान्त तेजोराशि निःसृत होती है, अथवा जैसे झरने से अनवरत वारिधारा झरती है, ऐसे ही विरजानन्द के वागिन्द्रिय से नाना शास्त्रों के नाना प्रसङ्ग अनवरतरूप से निकलकर शिष्यमण्डली को विभावित कर रहे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि चक्षुहीन होते हुए भी दण्डीजी अपनी प्रज्ञाचक्षु§ द्वारा सारे शास्त्रों के सारे स्थानों को देखकर जिज्ञासित विषय का सिद्धान्त सुचारुरूप से कह रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखा कि दण्डीजी की देहयष्टि यद्यपि केवल अस्थियों के पञ्जर में पर्यवसित हो गई थी तथापि वे युवजनोचित उत्साह और तेजस्विता के साथ पढ़ाने के कार्य में रत हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य का विषय यह था कि जन्मभर किसी ग्रन्थ वा किसी ग्रन्थ के पत्रों का दर्शन न कर सकने पर भी दण्डीजी अपनी सर्व-विषयग्राहिणी स्मृतिशक्ति के प्रभाव से व्याकरण, दर्शन, साहित्य, संहिता, वेद तथा वेदान्त सब विद्याओं के सब प्रकार के तत्त्वों को बातों-बातों में ही समझा देते हैं, परन्तु जैसे दयानन्द ने विरजानन्द के समान आचार्य कभी नहीं देखा था, ऐसे ही दयानन्द के समान कोई शिष्य भी कभी पहले विरजानन्द के पास नहीं आया था।

नये आचार्य के पास नई पद्धति के अनुसार दयानन्द ने पढ़ना आरम्भ किया। पहले वे पाणिनिसूत्रों का अध्ययन करने लगे। विरजानन्द की अध्यापनरीति कुछ अपूर्व थी। उसके प्रभाव से विद्यार्थीगण अपेक्षाकृत थोड़े समय में अष्टाध्यायी पर अधिकार प्राप्त कर सकते थे। दयानन्द इससे पहले ही एक प्रकार से व्याकरण-शास्त्र में व्युत्पन्न हो गये थे। इसके अतिरिक्त अपनी अत्युज्ज्वल मेधा और दण्डी विरजानन्द की अपूर्व अध्यापन शैली के मिलने से उन्होंने अपेक्षाकृत थोड़े ही समय में व्युत्पन्नता प्राप्त कर ली। उच्चारण की शुद्धि पर विरजानन्द की तीव्र दृष्टि थी। कोई विद्यार्थी भी उनके सामने किसी श्लोक वा शब्द का अशुद्ध उच्चारण करके बच नहीं सकता था। वस्तुतः अध्यापक-समाज में विरजानन्द के समान शुद्ध और यथावत् आवृत्ति करनेवाला अन्य कोई दृष्टिगोचर नहीं होता था। यद्यपि दयानन्द ने इससे पहले अनेक अध्यापकों से पढ़ा था, परन्तु उनका उच्चारणदोष सर्वथा दूर नहीं हुआ था। अब विरजानन्द के पास पढ़ने से उनका यह दोष धीरे-धीरे दूर होने लगा। अष्टाध्यायी की समाप्ति के पश्चात् दयानन्द ने महाभाष्य आरम्भ किया। व्याकरण में जैसे अष्टाध्यायी अद्वितीय है, वैसे ही पाणिनि के सूत्रों के सार को विशदरूप से खोलने और अष्टाध्यायी के सब स्थलों को सुस्पष्ट करने में महाभाष्य भी अद्वितीय है। कौमुदी आदि व्याकरणों के ज्ञान को परिपक्व और प्रबुद्ध करने के लिए जैसे भट्टिकाव्य के आयोजन की आवश्यकता है, ऐसे ही अष्टाध्यायी में प्रवेश पाने और उसके ज्ञान को हृदयंगम करने के लिए महाभाष्य अपरिहार्य है। पुराणकथित समुद्र-मन्थन जैसे गुरुतर कार्य में सुमेरु पर्वत ने मन्थन-दण्ड का कार्य किया था, संस्कृत और वैदिक शब्दरूप शास्त्र-समुद्र के मन्थन करने के लिए महाभाष्य ही मन्थन-दण्ड का काम दे सकता है। जिसने अष्टाध्यायी और महाभाष्य पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया है, उसने शब्द-साम्राज्य में सम्राट् की पदवी प्राप्त कर ली है। दयानन्द ने दण्डीजी के पास अष्टाध्यायी और महाभाष्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। इसी कारण पूना और काशी के व्याकरणविशारद पण्डितगण का उनके सामने सिर नीचा रहता था। विशेषकर महाभाष्य में तो वे ऐसे व्युत्पन्न हो

---

§ दयानन्द विरजानन्द को प्रज्ञाचक्षु के नाम से अभिहित करते थे और इसी नाम से उन्होंने अपने ग्रन्थों में दण्डीजी का वर्णन किया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये थे कि सारा ग्रन्थ उनकी जिह्वा पर था।

विरजानन्द विद्यार्थियों को बड़े प्रयत्न के साथ पढ़ाते थे। वे विद्यार्थियों को स्नेह की दृष्टि§ से देखते थे और जिससे विद्यार्थियों का कल्याण-साधन हो सके, उसे करने में सदा प्रयत्नशील रहते थे।

जैसे दण्डीजी यह बात जान गये थे कि दयानन्द के समान कोई अध्येता इससे पहले कभी उनकी पाठशाला

---

§ पण्डित लेखराम ने लिखा है कि दण्डी विरजानन्द ने दयानन्द को एक दिन मारा भी था और उस चोट के चिह्न को दयानन्द लोगों को दिखाया करते थे और विरजानन्द दयानन्द से यमुना से जल के घड़े मँगवाया करते थे। देवेन्द्रबाबू के मत में ये घटनाएँ अलीक हैं। वे कहते हैं कि विरजानन्द विद्यार्थियों से सदा स्नेह का व्यवहार करते थे और विद्यार्थियों की क्लेश और विपद् में यथाशक्ति सहायता देते थे। एक बार मथुरा के विख्यात सेठ गुरुसहायमल ने स्वयं ही बिना किसी की प्रेरणा के विरजानन्द के विद्यार्थियों को कुछ रुपया देने का प्रस्ताव किया था तो दण्डीजी ने विद्यार्थियों के गौरव-रक्षणार्थ उसे स्वीकार नहीं किया था और यह कह दिया था—"क्या हमारे विद्यार्थी भूखे हैं जो तुमसे रुपयों की सहायता लेवें"। उनका किसी विद्यार्थी पर प्रहार करना और विशेषकर दयानन्द को पीटना वा उनसे यमुना से जल के घड़े मँगवाना युक्ति और कल्पना दोनों के विरुद्ध है। विरजानन्द के पास रुपये की कमी नहीं थी। सेवा-शुश्रूषा के लिए उनके पास सेवकों का अभाव नहीं था। ऐसी अवस्था में वे दयानन्द से अपने लिए यमुना से जल के घड़े क्यों मँगवाते? दण्डीजी के विद्यार्थियों में से चौबे रङ्गदत्त, चौबे पुरुषोत्तम और पण्डित युगलकिशोर ने दण्डीजी के चरित्र में इस मिथ्या दोषारोपण की बात को सुनकर बहुत दुःख प्रकट किया था और दोषारोपण करनेवाले की बहुत निन्दा की थी।

देवेन्द्रबाबू की सम्मति कुछ हो, परन्तु हमारी सम्मति में ये दोनों बातें ऐसी नहीं है, जिनसे दण्डीजी के चरित में कुछ दोष आता हो। यह असम्भव नहीं है कि दण्डीजी कभी-कभी भृत्यादि की अनुपस्थिति में दयानन्द से यमुना से जल मँगवा लेते हों और यदि ऐसा हुआ तो उससे उनके चरित में कुछ दोष नहीं आता, गुरुसेवा शास्त्रविहित है। रही यह बात कि विरजानन्द ने दयानन्द को मारा था या नहीं, यह भी कोई असम्भव बात नहीं है। पण्डित लेखराम ने यह घटना स्वयं तो घड़ी नहीं, किसी अन्य से ही सुनकर लिखी है। पण्डित ब्रह्मशङ्कर देवशङ्कर ग्वालियरवाले ने स्वयं देवेन्द्रबाबू से कहा था कि विरजानन्द दुर्गापाठ किया करते थे। एक बार दयानन्द ने उसका प्रतिवाद किया तो विरजानन्द दण्ड लेकर उन्हें मारने को उठे। विरजानन्द क्रोधशील तो थे ही, यदि वे ऐसा कर बैठे हों तो आश्चर्य ही क्या है। —**संग्रहकर्त्ता**

पण्डित लेखरामकृत दयानन्द जीवन-चरित में इतना और विशेष है—

एक जन गोवर्द्धन सर्राफ़ दयानन्द को चार आने मासिक तेल के लिए दिया करता था, जिससे वे रात्रि में दीपक जलाकर अपना पाठ याद किया करते थे। हरदेव पत्थरवाला उन्हें दो रुपया मासिक दूध के लिए दिया करता था।

एक दिन दयानन्द से दण्डीजी अप्रसन्न हो गये और उनके लाठी मारी जिससे दण्डीजी का हाथ दर्द करने लगा। तब दयानन्द ने उनसे कहा कि महाराज आप मुझे न मारा करें, मेरा शरीर वज्र के समान कठोर है। उसपर प्रहार करने से आपके कोमल हाथों को दुःख होगा। इस चोट का चिह्न दयानन्द के शरीर पर अन्त समय तक रहा जिसे देखकर वे दण्डीजी के उपकारों को स्मरण किया करते थे।

एक बार फिर दण्डी ने अप्रसन्न होकर दयानन्द के सोटा मारा। नैनसुख जड़िये ने दण्डीजी से कहा कि दयानन्द हमारे समान गृहस्थी नहीं हैं, वह संन्यासी है, उसे न मारना चाहिए। तब दण्डीजी ने कहा कि भविष्य में प्रतिष्ठा के साथ पढ़ाएँगे। पाठशाला के बाहर आकर दयानन्द नैनसुख से बोले कि तुमने मेरी सिफ़ारिश क्यों की? दण्डीजी तो सुधार के लिए ही मारते हैं, द्वेष से नहीं मारते, जैसे कुम्हार मिट्टी को पीट-पीटकर घड़ा बनाता है। यह तो उनकी कृपा है। तुमने बुरा किया जो उन्हें मारने से निषेध कर दिया।

विद्या-समाप्ति में १५, २० दिन रह गये थे। इसके पश्चात् दयानन्द मथुरा से जानेवाले थे। दण्डीजी ने दयानन्द से कहा कि ऊपर जहाँ हम बैठा करते हैं झाड़ू लगा दो। उन्होंने झाड़ू लगाकर कूड़ा एक जगह इकट्ठा कर दिया। घटनावश ऐसा हुआ कि टहलते-टहलते दण्डीजी का पैर उस कूड़े पर जा पड़ा। इसपर दण्डीजी ने दयानन्द को बुरा-भला कहा और उनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी, अर्थात् पाठशाला से निकाल दिया। इससे दयानन्द को बहुत दुःख हुआ। नन्दन चौबे और नैनसुख जड़िये की सिफ़ारिश से उन्हें फिर पाठशाला में आने की आज्ञा मिल गई।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में पढ़ने के लिए नहीं आया था, वैसे ही दयानन्द भी यह समझ गये थे कि इससे पहले वे कभी कहीं विरजानन्द-जैसे अध्यापक के पास पढ़ने के लिए नहीं गये थे, अतः विरजानन्द-सरीखे अध्यापक और दयानन्द-सरीखे अध्येता का यह समागम इस प्रकार से असाधारण ही था।

अस्तु! अष्टाध्यायी और महाभाष्य पर पूर्णरूप से आयत्व कर लेने के पश्चात् दयानन्द अन्यान्य ग्रन्थों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए, परन्तु उन्होंने किस-किस ग्रन्थ की आलोचना की इस विषय में हम निश्चयपूर्वक कोई बात नहीं कह सकते। दयानन्द ने विरजानन्द के पास वेदान्तादि दर्शन-शास्त्र के सम्बन्ध में कोई ग्रन्थ पढ़े थे कि नहीं, वेदानुष्ठान‡

नैनसुख जड़िया कुछ पढ़ा-लिखा न था, परन्तु दण्डीजी की पाठशाला में जाया करता था और जो कुछ दण्डीजी विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे, उसे सुन-सुनकर उसे संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो गया था।

एक दिन दयानन्द यमुना की रेती में ध्यानावस्थित बैठे थे। एक देवी यमुना में स्नान करने आई और उसने दयानन्द के चरणों पर मस्तक रखकर उन्हें अत्यन्त श्रद्धा से नमस्कार किया। दयानन्द कभी स्त्री-स्पर्श न करते थे। वे एकदम चौंक पड़े और माता-माता कहते हुए उठ खड़े हुए। स्त्री-स्पर्श का प्रायश्चित्त करने के लिए वे गोवर्द्धन की ओर गये और एक निर्जन स्थान में तीन रात और तीन दिन निराहार और ध्यान में रत रहकर उन्होंने प्रायश्चित्त किया। जब वे पाठशाला में वापस आये तो गुरुदेव ने उनसे इतने दिन अनुपस्थित रहने का कारण पूछा। तब उन्होंने व्रत-भङ्ग और प्रायश्चित्त की सब कथा सुनाई जिसे सुनकर दण्डीजी ने उनकी बहुत-बहुत प्रशंसा की। —**दयानन्द-प्रकाश**

एक दिन दण्डीजी का कोई दूर का सम्बन्धी मथुरा आया। उन दिनों दण्डीजी ने यह आज्ञा दे रक्खी थी कि पाठशाला में विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य कोई न आने पावे। आगन्तुक की दण्डीजी के दर्शनों की बड़ी लालसा थी, परन्तु वह यत्न करने पर भी दर्शन न कर सका था। उसने दयानन्द से प्रार्थना की कि किसी-न-किसी तरह मुझे दण्डीजी के दर्शन करा दीजिए। दयानन्द ने बहुतेरा कहा कि यदि मैं आपको अपने साथ पाठशाल में ले-जाऊँगा तो गुरुजी बहुत अप्रसन्न होंगे, परन्तु वह आग्रह करता ही रहा। उसके अनुनय-विनय पर दयानन्द का मन भी पसीज गया और वे उसे अपने साथ पाठशाला में ले-गये। थोड़ी देर पश्चात् दयानन्द और वह चुपके से पाठशाला से चले आये। वे सीढ़ी उतर ही रहे थे कि उनका एक सहाध्यायी मिल गया, उन्होंने उसे संकेत से समझा भी दिया कि दण्डीजी से कुछ न कहना, परन्तु उसने कह ही दिया कि महाराज आज दयानन्द के साथ एक पञ्जाबी-सा कौन आया था? दण्डीजी दयानन्द पर बहुत अप्रसन्न हुए और उनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी। दयानन्द ने बहुत क्षमा-प्रार्थना की, परन्तु उस समय स्वीकार न हुई। अन्त में नैनसुख जड़िये की सिफ़ारिश से उनकी ड्योढ़ी खुली।

—**दयानन्द-प्रकाश**

'दयानन्द-प्रकाश' में दयानन्द के सम्बन्ध में कुछ और भी लिखा है, उसका सारांश यह है—

दयानन्द की धारणाशक्ति अलौकिक थी। वे पाठ को एक-दो बार सुनने पर ही स्मरण कर लेते थे, परन्तु एक दिन अष्टाध्यायी की प्रयोग-सिद्धि उन्हें विस्मृत हो गई, अतः उन्होंने उसे दण्डीजी से दुबारा पूछा। दण्डीजी ने न बताई और कहा कि जाओ और स्मरण करके लाओ, हम बार-बार बताने के लिए नहीं हैं। दयानन्द ने बहुतेरा प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न हुई। वे फिर गुरुदेव के पास गये और कहा महाराज मैं तो बहुत यत्न कर चुका, परन्तु वह प्रयोग स्मृति-पथ पर नहीं आता। दण्डीजी अपनी हठ के पक्के थे। शिष्य की प्रार्थना पर उन्होंने कान न दिया, बल्कि डाँटकर बोले कि जब तक पहला पाठ न सुनाओगे तुम्हारा पाठ आगे न चलेगा। यदि तुम्हें वह प्रयोग याद नहीं आता तो यमुना में भले ही डूब मरना, परन्तु मेरे पास न आना। दयानन्द को गुरुजी के वचन तीर के समान चुभे। उन्होंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि या तो पाठ स्मरण करूँगा नहीं तो यमुना में डूबकर प्राणान्त कर दूँगा। यह सङ्कल्प करके वे विश्राम घाट के समीप सीता-घाट के शिखर पर चढ़कर समाधिस्थ हो गये कि यदि पाठ उपस्थित न हुआ तो यहीं से यमुना में कूद पड़ूँगा, परन्तु समाधि-अवस्था में ही उन्हें पाठ स्मरण हो आया और विपत्ति दूर हो गई।

‡ स्वामी विरजानन्द के पास अध्ययनार्थ आने से पहले दयानन्द ने यजुर्वेद को छोड़कर कोई अन्य वेद पढ़ा हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। विरजानन्द के पास भी उन्होंने किसी वेद की आलोचना नहीं की थी। यह भी ज्ञात नहीं होता कि उन्होंने यजुर्वेद नियमपूर्वक पढ़ा था। पिता के घर में रहते हुए उन्होंने यजुर्वेद कण्ठस्थ किया था और कण्ठस्थ करते हुए कुछ-कुछ अर्थबोध भी कर लिया होगा, परन्तु इससे अधिक वेदों के विषय में उनकी आलोचना का पता नहीं लगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के भीतर किसी वेद का नियमपूर्वक अध्ययन किया था कि नहीं, अथवा वे रामायण और महाभारत की आलोचना में प्रवृत्त हुए थे कि नहीं, इतिहासादि के विषय में उन्होंने कुछ ग्रन्थ विचारे थे कि नहीं, इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में हम कोई बात नहीं कह सकते, परन्तु यह हमने अवश्य सुना है कि उन्होंने निरुक्त, निघण्टु प्रभृति वैदिक ग्रन्थों में से कुछ ग्रन्थ प्रज्ञाचक्षुजी से पढ़े थे। यह भी अनुमान होता है कि वेदों के प्रकृत अर्थों को समझने के लिए वा वैदिक साहित्य का पूर्ण अधिकरी बनने के लिए जिन-जिन शास्त्रों का अध्ययन और आलोचन विशेषरूप से आवश्यक है, उन्हें पढ़ाये बिना विरजानन्द कभी शान्त हुए भी न होंगे, परन्तु यह बात सर्वसम्मत है कि दयानन्द ने विरजानन्द से अष्टाध्यायी और महाभाष्य§ विशेषरूप से पढ़े थे।

विरजानन्द की पाठशाला में दयानन्द साधारण विद्यार्थियों के समान नहीं थे। दयानन्द के साथ विरजानन्द वैसा व्यवहार नहीं करते थे, जैसा वे अन्य विद्यार्थियों के साथ किया करते थे। दयानन्द विरजानन्द की विशेष प्रीति के पात्र हो गये थे। पढ़ाते हुए विरजानन्द दयानन्द को 'कालजिह्व' और कुलक्कर' कहा करते थे। ये उनके प्यार के नाम थे। 'कालजिह्व' के अर्थ हैं जिसकी चिह्वा असत्य के खण्डन और भ्रान्तिजाल के छेदन में काल के समान कार्य करे। 'कुलक्कर' का अर्थ है खूँटा, अर्थात् जो खूँटे के समान दृढ़ और अविचलित रहकर विपक्षी को पराभूत कर सके। दयानन्द को इन नामों से पुकारकर वे बहुत प्रसन्न होते थे। पाठशाला और पाठप्रसङ्ग को छोड़कर विरजानन्द का अन्य विद्यार्थियों के साथ और कोई सम्बन्ध न रहता था, परन्तु दयानन्द के साथ उनके पाठ-प्रसङ्ग को छोड़कर अन्य विषयों की भी आलोचना हुआ करती थी। गुरुदेव के साथ उनका विशेष वार्त्तालाप हुआ करता था। यह वार्त्तालाप किस विषय पर हुआ करता था पता नहीं, क्योंकि जब कभी वह होता था तब एकान्त में ही होता था। उस समय गुरु-शिष्य के अतिरिक्त और कोई रहने न पाता था, परन्तु फिर भी हम अनुमान कर सकते हैं कि इस विशेष वार्त्तालाप के क्या-क्या विषय रहे होंगे। पढ़ाते-पढ़ाते दण्डीजी को यह ज्ञात हो गया था कि दयानन्द केवल विद्यार्थी ही नहीं है, अपितु भारत का सुधारप्रार्थी भी है। वे यह भी समझ गये थे कि जैसे कोई योद्धा समरभूमि में पदार्पण करने से पहले अस्त्र ग्रहण करने के लिए अस्त्रागार में आता है, ऐसे ही शास्त्र के रणक्षेत्र में अवतीर्ण होने से पहले दयानन्दयोद्धा शास्त्रागाररूपी पाठशाला में आया है। यह जानकर दण्डीजी प्रसन्न हुए, क्योंकि इतने समय तक वे जिसे ढूँढ रहे थे, मथुरा की पाठशाला में आज उन्हें वह प्राप्त हो गया।

विरजानन्द को यह बड़ी चिन्ता रहती थी कि वैदिक धर्म के प्रचार और आर्यावर्त के अभ्युत्थानरूपी महायज्ञ में अपने पीछे वे किसे होतापद पर नियुक्त करके जाएँगे, जिस आर्षग्रन्थ-प्रचाररूपी पताका को वे इतने दिन से अपने कन्धे पर रक्खे चले आ रहे हैं, उसे अपने देह-त्याग के पीछे किसे देकर जाएँगे, उनके मरने के पीछे उनके बहुवत्सर-लालित व रक्षित सङ्कल्प-राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा ? इस चिन्ता से उनमें उत्कण्ठा का उद्दीपन हो गया था और उत्कण्ठा ने अशान्ति उत्पन्न कर दी थी। इसी अशान्ति में इस वृद्ध ब्राह्मण को रात्रि के पश्चात् रात्रि व्यतीत होती थी। अब वह अशान्ति का काँटा उनके हृदय से निकल गया और उनकी उत्कण्ठा पूरी हो गई। इस विद्यार्थी के आने पर वे चित्त में शान्त हो गये। उन्होंने सोचा कि यह संन्यासी विद्यार्थी उनके सङ्कल्प-राज्य का उत्तराधिकारी बनने में सब प्रकार से योग्य है। सत्यशास्त्र निर्धारण के लिए विरजानन्द ने अष्टाध्यायी-महाभाष्यरूपी कुञ्जी दयानन्द के हाथ में दे दी। शास्त्रसंस्कार और धर्मसंस्काररूपी भावी संग्राम में अजेय रहने के लिए उन्होंने दयानन्द को आर्षज्ञान के अक्षय कवच से अलंकृत कर दिया। निघण्टु और निरुक्तादि वैदिक ग्रन्थों में निपुण करके वेद-व्याख्यान

§ दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि स्वामीजी के लिए नगर से चन्दा करके ३१) में महाभाष्य की पुस्तक मँगवाई गई थी। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और वेद के प्रकृत अर्थों के अवधारण की रीति विरजानन्द ने बतला दी, उसके सारे संशयों को अपने उपदेश से धीरे-धीरे दूर कर दिया। शिष्य ने जब पाठ समाप्त किया तो पूर्ण तृप्ति प्राप्त की। इस विषय में दयानन्द ने आगरा में पण्डित सुन्दरलाल से बातों के प्रसङ्ग में स्वयं कहा था कि "बहुत दिन तक ज्ञान का अन्वेषण करके और बहुत-से स्थानों में भ्रमण करके अन्त में विरजानन्द के पास आने से मेरी तृप्ति हुई।"

तीन वर्ष में दयानन्द का पाठ समाप्त हुआ। हमारा अनुमान है कि दयानन्द का विरजानन्द की पाठशाला में अध्ययन-काल प्रायः तीन वर्ष था, परन्तु हम निःसंशय होकर नहीं कह सकते दयानन्द ने उनकी पाठशाला में कितने दिन पढ़ा था§। विरजानन्द के पास अध्ययन करने से पहले दयानन्द जैसे थे, पाठ समाप्त करने के पीछे वैसे नहीं रहे। यदि दयानन्द विरजानन्द की शिक्षा और संसर्ग न पाते तो न जाने उनका जीवन कैसा होता ? अब दयानन्द ने उत्तरकाल में अपने को भारत के आदर्श सुधारक के पद पर प्रतिष्ठित किया, परन्तु यदि उन्हें विरजानन्द के सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त न होता तब भी वे इस पद के योग्य बनते या केवल एक कमण्डलुधारी संन्यासी ही बने रहते, कुछ नहीं कहा जा सकता। यह बात निःसन्देह है कि विरजानन्द के साथ दयानन्द का अति घनिष्ठ सम्बन्ध था। शोणित-सम्बन्ध न होते हुए भी वह शोणित-सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक निकट था। जैसे पुत्र की प्रकृति के भीतर पिता प्रच्छन्नभाव से विद्यमान रहता है, शिष्य की प्रकृति में आचार्य भी वैसे ही निगूढ़भाव से स्थित रहता है। अस्तु, गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र के सम्बन्ध के समान सब प्रकार से अविच्छिन्न होता है। दयानन्द की जिस प्रदीप्त वह्नि ने इस देश के कुसंस्कारों की राशि को भस्मीभूत कर दिया है, दयानन्दरूपी जो महाप्रवाह भारत की समस्त आवर्जनाओं को बहा ले-जाने के लिए प्रवाहित हुआ है, दयानन्दरूपी जिस महीयसी प्रतिभा ने सायण, महाधीरादि वेदव्याख्याताओं को अप्रतिम करके वैदिक ऋषि-महर्षियों के समान महत्ता को सर्वोपरि स्थापित किया है, विरजानन्द की शिक्षा और संसर्ग ही उस प्रदीप्त वह्नि का ईंधनस्वरूप, उस महाप्रवाह का प्रस्रवणस्वरूप और उस महीयसी प्रतिभा का प्राणस्वरूप है। इससे अधिक विस्तार हम क्या करें ?

विद्या-समाप्ति और गुरु-दक्षिणा—इस देश में यह प्रथा चली आती है कि शिक्षा-समाप्ति पर शिष्य गुरु को दक्षिणा दिया करता है। अध्ययन-समाप्ति पर विद्यार्थीगण अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को दक्षिणा देते हैं। शिष्यों से पढ़ाने की कोई दक्षिणा ग्रहण करना वा किसी अन्य प्रकार से अर्थ ग्रहण करना विरजानन्द के सङ्कल्प के विरुद्ध था। वे अपने शिष्यों से कोई दक्षिणा नहीं लिया करते थे। विशेषकर दयानन्द से तो वे क्या दक्षिणा लेते ? वे तो संन्यासी थे, फूटी कौड़ी तक पास न थी, इनके पास दक्षिणा के लिए रुपया कहाँ से आता ? जब दयानन्द गुरु विरजानन्द के पास विदा होने को गये‡ तो गुरुदेव ने प्रेम के साथ कहा 'सौम्य ! मैं तुमसे किसी प्रकार के धन की दक्षिणा नहीं चाहता हूँ। मैं तुमसे तुम्हारे जीवन की दक्षिणा चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे उतने दिन आर्यावर्त्त में आर्षग्रन्थों की महिमा स्थापित करोगे, अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे और भारत में वैदिक धर्म की स्थापना

---

§ पण्डित लेखराम ने लिखा है कि स्वामी दयानन्द दण्डी विरजानन्द के पास दो वर्ष और छह महीना पढ़े थे। इस प्रकार से दयानन्द का अध्ययनकाल निश्चित करने के विषय में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि विरजानन्द की पाठशाला में कोई लेखा नहीं रहता था।

‡ कहते हैं कि दण्डीजी को लवङ्ग बहुत प्यारी थी, अतः गुरुदक्षिणा के रूप में दयानन्द ने आधा सेर लवङ्ग दण्डीजी को अर्पण की थीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में अपने प्राण तक अर्पण कर दोगे। दयानन्द ने इसके उत्तर में केवल एक शब्द कहा—"तथास्तु।" यह कहकर गुरुदेव के चरणों में प्रणत हो गये और फिर उन्होंने मथुरा से प्रस्थान कर दिया।§

दयानन्द ने गुरु की आज्ञा के सामने सिर झुका दिया। कुछ इतस्ततः नहीं काया, कोई आपत्ति खड़ी नहीं की, कोई बहाना नहीं ढूँढा। उत्तर देने के लिए कोई समय नहीं माँगा। हमें कहीं दो पैसे भी देने होते हैं तो देने से पहले बीस बातें सोचते हैं। गुरु विरजानन्द शिष्य दयानन्द से जीवन माँगते हैं और शिष्य निःसंकोच होकर उसे अर्पण कर देता है। कैसी गुरुभक्ति है ? कैसी अनन्य-साधारण उदारता है ? कौन कह सकता है कि दयानन्द ने अपने जीवन का उद्देश्य क्या सोचा था ? कौन जाने इतना ज्ञानोपार्जन और इतना योगसाधन करने के पश्चात् वे अपने जीवन का लक्ष्य क्या बनाना चाहते थे ? उन्होंने इसपर कितना सूक्ष्म विचार किया होगा, क्या-क्या सोचा होगा ? वह सब-कुछ निष्फल हो गया और एक क्षण में गुरु के आदेश से उनका जीवन-लक्ष्य सदा के लिए स्थिर हो गया।

दयानन्द जीवन-दान करके संसार को जीवनप्रदान करने के लिए गुरुदेव से विदा हुए।

(अप्रैल-मई १८६३-सित०-अक्तू० १८६४) आगरा (वैशाख १९२०-आश्विन १९२१)

गमन—दयानन्द मथुरा से आगरा पहुँचे। इस समय संवत् १९२० का प्रारम्भ और ग्रीष्मकाल था। आगरा पहुँचकर वे बालूगञ्ज के पास, यमुना तट पर सेठ गुल्लामल के बाग़ में टिके। इस बाग को सेठ रूपचन्द का बाग़ भी कहते हैं। सेठ रूपचन्द गुल्लामल के पिता थे। कोई-कोई कहते हैं कि स्वामीजी मथुरा से आगरा में आकर पहले एक मास तक किसी और जगह रहे थे। यह बाग़ साधु-संन्यासियों की सेवा के लिए ही बनाया गया था। कोई भी साधु वा संन्यासी वहाँ आश्रय ले-सकता था। आनेवाले साधु-संन्यासियों की सेवा-सुश्रूषा करने के लिए बाग़ में एक ब्रह्मचारी रहता था। उसके अतिरिक्त एक माली भी रहता था। आनेवाले अतिथियों के निवासार्थ बाग़ में छोटी-छोटी कोठरियाँ बनी हुई थीं।

उस समय पण्डित सुन्दरलाल नामक एक सज्जन आगरा के सम्भ्रान्त पुरुषों में से थे। वे डाक-विभाग में एक उच्चतर पद पर प्रतिष्ठित थे, परन्तु उनका बड़प्पन केवल उनके उच्चपद के कारण से ही न था, अपितु इस हेतु से था कि वे एक धार्मिक, धर्मपिपासु सज्जन थे। उनके साथी उनके दो मित्र और थे। उनमें से एक का नाम पण्डित बालमुकुन्द और दूसरे का नाम दयाराम था। ये दोनों भी डाक-विभाग के ही कर्मचारी थे। ये दोनों भी पण्डित सुन्दरलाल के समान धर्म-पिपासु थे। इसी कारण से वे तीनों ही साधु-संन्यासियों की सेवा द्वारा शान्ति-लाभ करने के उद्देश्य से उनकी सेवा के लिए सदा उत्सुक रहा करते थे। उनका यह नियम था कि दफ़्तर से वापस आकर प्रायः प्रतिदिन ही सायङ्काल को सेठ रूपचन्द के बाग़ में जाया करते थे। जब कभी वे सुन लेते कि कोई नया साधु-महात्मा आया है तो आग्रह और उत्कण्ठा के साथ उसके दर्शनों को जाते और उससे धार्मिक विषयों पर बातचीत करते। इसलिए उन्होंने बाग़ के कार्यकर्त्ता ब्रह्मचारी से भी कह रक्खा था कि जब कभी कोई उन्नत-चरित्र और विरक्त पुरुष आवे तो उन्हें उसका संवाद पहुँचा दे। इसके अनुसार एक दिन ब्रह्मचारी ने सुन्दरलाल के घर पर आकर यह सूचना दी कि आजकल एक

---

§ देवेन्द्रबाबू दयानन्द-चरित की सब सामग्री एकत्र करके ग्रन्थ लिखने बैठ गये थे। वे यहीं तक लिख पाये थे कि उनपर फ़ालिज (पक्षाघात) गिर गाया और उसी में उनका देहान्त हो गया। आगे जो कुछ लिखा गया है वह उनके नोटों का संग्रहमात्र है। कहीं-कहीं मेरा भी लेख है। मैंने पण्डित लेखराम तथा स्वामी सत्यानन्दजी की एकत्र की गई सामग्री का भी सन्निवेश कर दिया है। स्वामी सत्यानन्दजी के 'दयानन्द-प्रकाश' में बहुत-सी बातें देवेन्द्रबाबू के नोटों से ली गई हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्वान् संन्यासी मथुरा से आकर बाग़ में ठहरे हुए हैं। यह सुनकर वे तीनों मित्र उसी दिन सायङ्काल बाग़ में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक साधु कुटिया में बैठे भोजन कर रहे हैं। यह देखकर वे कुटिया से बाहर यमुना की रेती में बैठ गये और साधु की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर पश्चात् साधु कुटिया से बाहर निकले और एक श्लोक पढ़ते हुए उनके पास आये। इन तीनों मित्रों में से बालमुकुन्द का संस्कृत में कुछ प्रवेश था। वह साधु के श्लोकपाठ को सुनकर मन में कहने लगे कि यह साधु साधारण कोटि का विद्वान् नहीं है। वह साधु से बातचीत करने लगे और थोड़ी ही देर में उनकी बातों से तृप्त-चित्त हो गये। इसके पश्चात् फिर तो वे प्रतिदिन सायङ्काल को बाग़ में जाने और संन्यासी के साथ सदालाप करने लगे। धीरे-धीरे उनमें और संन्यासी में आत्मीयता के भाव उत्पन्न हो गये। एक दिन संन्यासी ने उनसे कहा—"इस प्रकार का सम्मिलन दोनों के लिए ही विशेष फलदायक नहीं है। कोई ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिससे दोनों का उपकार हो।" यह कहकर संन्यासी ने अपने सम्बन्ध में कहा कि "अध्ययन-समाप्ति के पश्चात् जब गुरु-दक्षिणा देने का समय आया तो मैंने गुरुदेव से निवेदन किया कि मैं एक संबलहीन संन्यासी हूँ, मैं दक्षिणा देने का समार्थ्य कहाँ से लाऊँ ? इतना सुनकर गुरुदेव बोले—मैं तुझसे धन नहीं माँगता, अपितु तेरा जीवन चाहता हूँ। तू अपना जीवन मुझे दक्षिणा में दे और प्रतिज्ञा कर कि जितने दिन जीवित रहेगा उतने दिन वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने और भारत के आज्ञानान्धकार को नष्ट करने का यत्न करेगा। इसके अनुसार गुरुदेव से प्रतिज्ञाबद्ध होकर मैंने यह व्रत धारण किया है। मैं ज्ञान के अनुसन्धान में बहुत स्थानों में, बहुत दिनों तक फिरा हूँ, परन्तु मेरी तृप्ति अन्त में गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठकर ही हुई है।"

यह बात सुनकर सुन्दरलाल ने दयानन्द से अष्टाध्यायी और भगवद्गीता पढ़नी आरम्भ की और अष्टाध्यायी के चार अध्याय पढ़े। इन तीनों पुरुषों के लिए दयानन्द का संसर्ग इतना प्रीतिजनक और आकर्षक हो गया था कि वे दफ्तर से लौटकर हाथ-मुँह धोते ही, बिना किसी विलम्ब के बाग़ में पहुँच जाया करते थे और घण्टों दयानन्द से धर्म-सम्बन्धी विषयों पर बात-चीत करते रहते थे।

पण्डित बालमुकुन्द से सुना गया है कि दयानन्द ने सुन्दरलाल को शिवलिङ्ग की पूजा और उन्हें दुर्गाष्टक का पाठ करने का उपदेश दिया था, परन्तु पण्डित सुन्दरलाल के पुत्र से पूछा गया तो उन्होंने कहा कि "मैं यह तो नहीं कह सकता कि पिताजी स्वामीजी की शिक्षा के अनुसार ही शिवलिङ्ग की पूजा किया करते थे वा नहीं, परन्तु यह मैं कह सकता हूँ कि वे पार्थिव लिङ्ग की पूजा स्वामीजी के मिलने के पहले से ही किया करते थे और स्वामीजी इस बात को जानते थे"।

स्वामीजी सुन्दरलालजी से इतनी प्रीति करने लगे थे कि जब वे आगरा से जाने लगे तो उन्होंने सुन्दरलाल को अपने गले से रुद्राक्ष की माला उतारकर दे दी थी। सुन्दरलाल इस माला को बड़े यत्न से सुरक्षित रखते थे। इसके अतिरिक स्वामीजी ने सुन्दरलाल को कुछ योग की क्रियाएँ भी सिखाई थीं। सुन्दरलाल को बहुत दिन से शिरःपीड़ा रहती थी और इसके कारण नाना प्रकार के रोग भी उत्पन्न हो गये थे। उनकी आँखों की ज्योति भी कम हो गई थी। बड़े-बड़े डाक्टरों से चिकित्सा करने पर भी वे इन रोगों से मुक्त नहीं हुए थे। अन्त में जब स्वामीजी ने उन्हें नेती-धोती की क्रिया सिखाई और उन्होंने उनका अभ्यास किया तो उनके ये रोग दूर हो गये और उनके नेत्र पूर्व के समान ज्योतिष्मान् हो गये। दयानन्द जब इस बाग़ में रहते थे तो अपना अधिक समय योगाभ्यास में ही व्यय किया करते थे। वे प्राणायामादि योग के अङ्गों के साधन में विशेषरूप से रत रहते थे। कभी-कभी वे अठारह-अठारह घण्टे तक एक आसन पर ध्यानावस्थित होकर बैठे रहते थे। उस समय अनार्षग्रन्थों की निकृष्टता प्रतिपादन करने और भागवत का खण्डन करने के अतिरिक्त और कोई खण्डन-मण्डन विशेषभाव से नहीं करते थे। वे आगरा नगर के भीतर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत कम जाते थे। कभी-कभी सुन्दरलाल के घर भोजन करने चले जाते थे। जब योगसाधन से अवकाश पाते थे तब पुस्तकें मँगाकर पढ़ा करते थे। सायङ्काल को आगरा के बड़े-बड़े पण्डित उनके पास जाया करते थे और स्वामीजी पण्डितों के साथ किसी-न-किसी ग्रन्थ के अर्थों के विषय पर आलोचना किया करते थे। कभी-कभी स्वामीजी योगवासिष्ठ वा भगवद्गीता की व्याख्या करने लगते थे। उनकी व्याख्या ऐसी अपूर्व और सरल होती थी कि उसे पण्डित से लेकर साधारण मज़दूर तक सभी समझ जाते थे§।

दयानन्द की अवस्थिति के समय स्वामी कैलाशपर्वत भी सेठ रूपचन्द के बाग़ में ही ठहरे हुए थे, परन्तु उनका दयानन्द के साथ कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ था, हाँ सुना गया है कि शास्त्रार्थ की चर्चा अवश्य हुई थी। एक दिन स्वामीजी ने साधुओं का भण्डारा किया था। स्वामी कैलाशपर्वत दयानन्द से मन में द्वेषभाव रखते थे। उन्होंने रसोइयों से मिलकर भोजन को निःस्वाद करने के उद्देश्य से उसमें बहुत अधिक मात्रा में लवण मिलवा दिया।

उस समय तक दयानन्द दण्डी विरजानन्द के आदेशानुसार सुधार का कार्य करने को उद्यत नहीं हुए थे, परन्तु उसकी तैयारी कर रहे थे। पण्डित विष्णुलाल मोहनलाल पंण्ड्या ने आगरे में ही उनसे इस विषय में पूछा था तो उन्होंने यह उत्तर दिया था कि "मैं विचार कर रहा हूँ"। इसके पश्चात् भी एक बार पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या का मेरठ के प्रसिद्ध कुण्ड—सूरज-कुण्ड पर दयानन्द से साक्षात हुआ था। दयानन्द उस समय कुण्ड में वस्त्र धो रहे थे। दयानन्द आगरा से ही किसी कार्यवश मेरठ गये थे। पण्ड्याजी को देखकर दयानन्द ने उनसे दण्डीजी की कुशल पूछी। उत्तर में पण्ड्याजी ने कहा कि दण्डीजी दुःख प्रकट करते हैं कि उनके किसी शिष्य ने भी यहाँ तक कि आपने भी कुछ नहीं किया। इसपर दयानन्द ने कहा कि देखा जाएगा, परमात्मा क्या करता है। पण्ड्याजी के पुनः प्रश्न करने पर दयानन्द ने कहा कि "मैं अभी विचार और विचरण कर रहा हूँ"। जब कभी यह विषय उनके सम्मुख उपस्थित किया जाता था तो वे प्रायः यही कह दिया करते थे कि जब तक मैं सम्पूर्ण रूप से वेदों की आलोचना नहीं कर लूँगा तब तक गुरुदेव के आदेश को पूर्णतया कार्य में परिणत नहीं कर सकूँगा। पण्डित सुन्दरलाल ने दयानन्द के कहने पर जयपुर राज्य के पुस्तकालय से ऋग्वेद की पुस्तक मँगाकर उन्हें दी थी।

इस समय दयानन्द का मन सन्देह-दोला में झूल रहा था। उनके मन में अनेक सङ्कल्प-विकल्प उठते थे, अनेक शङ्काएँ उठती थीं। उनमें से जिनका वे समाधान नहीं कर सकते थे, बीच-बीच में मथुरा जाकर गुरुदेव से उनका समाधन कर आते थे, कभी-कभी पत्र लिखकर भी शङ्काओं की निवृत्ति कर लेते थे।

कौन जाने ये शङ्काएँ कैसी होती थीं और दण्डीजी उनका क्या समाधान करते थे, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि शङ्काएँ भी असाधारण होती होंगी और उनका समाधान भी असाधारण होता होगा। आह ! यदि कोई हमें शिष्य-गुरु के प्रश्नोत्तरों को बता सकता तो उनसे संसार का कितना लाभ होता, कितनी दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझ जातीं, वेद और आर्षग्रन्थों के कितने गूढ़ तत्त्वों का रहस्य खुल जाता, व्याकरण के कितने सन्दिग्ध और विवादस्पद-स्थल सुस्पष्ट हो जाते, दण्डीजी की अलौकिक प्रतिभा के आलोक से धर्म के कितने गुहाप्रविष्ट तत्त्व आलोकित हो उठते। उन पत्रों में से भी किसी का पता नहीं जो दयानन्द गुरुदेव को लिखा करते थे। वे भी होते तो उनसे कम-से-कम शङ्काओं का तो पता लग जाता। इतना ही क्या कम लाभ होता ?

---

§ दयानन्द ने भगवद्गीता की कथा भी की थी जिसमें एक मास से अधिक लगा था। वे देवीभागवत से भी अच्छे-अच्छे उपदेश सुनाया करते थे। —**लेखरामकृत दयानन्द-चरित**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द आगरा में दो वर्ष रहे। आगरा से वे ग्वालियर चले गये§। जाते समय अपने ग्रन्थादि सब सामग्री पण्डित सुन्दरलाल के यहाँ रख गये और उनसे कह गये कि जब तक तुम्हें हमारा पुनः संवाद न मिले तब तक सब वस्तुओं को अपने पास रखना। इन वस्तुओं में दो शीशियाँ भी थीं। इनमें से एक में अभ्रक-भस्म थी, उसपर एक काग़ज़ चिपका हुआ था, जिसपर संवत् १६२० लिखा हुआ था, जिससे प्रकट होता था कि वह संवत् १६२० में तैयार की गई थी। दूसरी शीशी में भी अभ्रक भस्म ही थी, परन्तु वह पूर्णरूप से तैयार नहीं हुई थी‡।

---

§ पण्डित लेखरामकृत उर्दू जीवन-चरित में लिखा है कि दयानन्द आबू से ग्वालियर आये थे, परन्तु यह ठीक नहीं है, वे आगरा से ही ग्वालियर गये थे।

‡ पण्डित लेखराम के दयानन्द-चरित में इतना और विशेष उल्लेख है—

एक दिन स्वामीजी कैलाशपर्वत ने गीता के **"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"** इस श्लोक की व्याख्या की, परन्तु उनके अर्थों से श्रोताओं की तृप्ति नहीं हुई तो लोगों ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि आप भी इस श्लोक के अर्थ समझाने की कृपा करें। इसपर उन्होंने उसके ऐसे सुन्दर अर्थ किये कि सब लोग चकित हो गये और कैलाशपर्वत ने भी कहा कि इनकी विद्या बहुत अच्छी है और कहा यदि कोई पढ़ना चाहे तो यही एक शरीर है जो पढ़ा सकता है। उस समय स्वामीजी कृष्ण भागवत का खण्डन करते थे और महाभारत विचारा करते थे। लोई और धुस्सा ओढ़ते थे, अम्बरा बाँधते थे, जूता पहनते थे। सायं-प्रातः समाधि लगाया करते थे।

एक दिन कुछ लोगों ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि आप कोई ग्रन्थ बाँचें तो काल व्यतीत हो और हम लोगों का भी लाभ हो। उन्होंने विद्यारण्यस्वामीकृत पञ्चदशी बाँचने को कहा। महाराज ने इसे स्वीकार कर लिया। बाँचते-बाँचते उसमें ऐसा आया कि कभी-कभी ईश्वर को भी भ्रम हो जाया करता है। इसपर स्वामीजी ने कहा कि यह मनुष्यकृत ग्रन्थ है और फिर उसे नहीं बाँचा। हाँ, गीता की कथा कहते रहे। यह कथा आश्विन के मास से दिवाली के एक मास पश्चात् तक हुई।

एक बार स्वामीजी के पैरों पर फुंसियाँ निकल आईं। उन्होंने कहा कि उदर में कुछ विकार है, अतः वे तीन-चार मनुष्यों को साथ लेकर यमुना पर न्यौली-क्रिया करने चले गये। वहाँ जल में बैठकर तीन बार मूलद्वार से जल खींचा और बाहर आकर नाभिचक्र को घुमाकर उसे बाहर निकाल दिया और उदर शुद्ध हो गया। इससे वे कुछ निर्बल हो गये थे। डेरे पर आकर दालभात खाया और अपने साथियों से कहा कि हमने यह क्रिया नर्मदा के किनारे पर कनफटे योगी से सीखी थी। इन क्रियाओं के सीखने में उनके मस्तिष्क पर शीत का प्रभाव हो गया था। उसके निवारणार्थ वे कभी-कभी अभ्रक-भस्म खाया करते थे। अभ्रक-भस्म बनाने की विधि उन्होंने पण्डित सुन्दरलाल को भी बताई थी।

स्वामीजी के उपदेश से सेठ रूपलाल ने सन्ध्या पुस्तक छपवाई जिसके अन्त में लक्ष्मीसूक्त था। उसकी ३०,००० प्रतियाँ छपी थीं और एक आना प्रति पुस्तक की दर से बेची गई थीं। उसपर सेठ रूपलाल का १५००) व्यय हुआ था।

स्वामीजी उन दिनों भी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते थे। आगरे के प्रसिद्ध सज्जन पण्डित चेतूलाल व कालिदास ने स्वामीजी के तर्कों को सुनकर यह स्वीकार कर लिया था कि मूर्त्तिपूजा अवैदिक है, परन्तु उन्होंने कहा कि गृहस्थ होने के कारण वे प्रकट रूप से उसका प्रतिवाद नहीं कर सकते। यह बात सुनिश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि स्वामीजी उन दिनों भी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते थे। भागवत का खण्डन वे अवश्य करते थे। यह भी निःसन्देह है कि मूर्त्तिपूजा में उनकी आस्था नहीं थी, परंन्तु वे उसका खण्डन प्रचाररूप से करते थे, संशयास्पद है।

पण्डित चेतूजी व कालिदास ने वेद के कुछ पन्ने दयानन्द को दिये थे, परन्तु वे थोड़े थे। उन्हें देखकर दयानन्द ने कहा था कि इनसे काम नहीं चलेगा।

एक अपठित ब्राह्मण जो योग के ६४ आसन लगाना जानता था, आ गया था, उसे स्वामीजी ने धोती धोने आदि के कार्य पर रख लिया था और जब कभी मौज होती आसन लगवाकर देखा करते थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अक्तू०-नव० १८६४—६,७ मई १८६५) **ग्वालियर** (का० १६२१—वै० शु १२, १३ सं० १६२२)

जिस समय दयानन्द ने आगरा से ग्वालियर§ के लिए प्रस्थान किया, उस समय ग्वालियर नरेश महाराज जियाजीराव सिंधिया ने एक सौ आठ भागवत पाठ का आयोजन कर रक्खा था। उसके लिए मण्डपादि बनाये जा रहे थे। विद्वान् पण्डितों को ग्वालियर बुलाने के लिए महाराजा ने पूना, सतारा, नासिक, काशी आदि स्थानों में आदमी भेज रक्खे थे। जो पण्डित-वर्ग आ गये थे, उनका महाराजा बड़े प्रेम से सत्कार कर रहे थे।

महाराज जियाजीराव बड़े ही धर्मनिष्ठ थे। एक बार उन्होंने एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया था। चातुर्मास में वे ब्राह्मण-दम्पतियों को प्रति वर्ष भोजन कराया करते थे और उनकी सेवा-पूजा करके बड़े प्रसन्न होते थे। उन्होंने वृन्दावन में ब्रह्मचारी का मन्दिर बनवाने और उसमें मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा कराने में एक लाख रुपये से अधिक व्यय किया था।

भागवती पण्डितों की खोज में महाराजा के आदमी आगरा भी आये थे, और सम्भव है, उनसे ही भागवत की कथा का समाचार सुनकर दयानन्द ने ग्वालियर जाने का विचार किया हो। दयानन्द भागवत के कट्टर विरोधी थे और अवसर मिलने पर उसका खण्डन करने से न चूकते थे। ग्वालियर में देश के प्रमुख भागवती पण्डितों का जमाव होनेवाला था। यह समझकर कि भागवत के विषय में शास्त्रार्थ करने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिल सकता, उन्होंने ग्वालियर जाने का निश्चय किया हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

महाराज जियाजीराव ने भागवत की कथा के विषय में बड़े-बड़े ज्योतिर्विद पण्डितों से परामर्श किया था। उन्होंने स्थिर किया था कि माघ शुक्ला ६ संवत् १६२१ को पाठ आरम्भ होना और माघ की पूर्णिमा को समाप्त होना चाहिए। यह निश्चय होते ही कथा के उपकरणों को प्रस्तुत करने के लिए बड़े वेग से आयोजन होने लगा। निर्दिष्ट तिथि को प्रातःकाल तोपध्वनि हुई और माङ्गल्यसूचक बाजे बजने लगे, जिनसे सारा ग्वालियर नगर अनुनादित हो उठा। नियत समय पर पाठ आरम्भ हो गया।

दयानन्द ग्वालियर में पहले महारुद्र मोटेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे थे। उनके पहुँचते ही उनके ग्वालियर पधारने का समाचार सारे नगर में फैल गया। यह हम पहले ही कह आये हैं कि उनके ग्वालियर पदार्पण करते समय भागवत के अष्टोत्तरशत पाठ का तीव्र और तुमुल आयोजन हो रहा था। दयानन्द ने प्रसिद्ध शास्त्रियों के आगमन से लाभ उठाना चाहा, परन्तु इसमें उन्हें सफलता न हुई‡।

---

§ पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित में लिखा है कि आगरे से दयानन्द वेदों की खोज में पहले धौलपुर गये, वहाँ १५ दिन ठहर कर ग्वालियर गये। —**संग्रहकर्त्ता**

‡ इस विषय में पण्डित लेखराम-कृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि दयानन्द ने गङ्गाप्रसाद दफ़ेदार को पण्डित सीताराम शास्त्री के पास यह सन्देश लेकर भेजा कि मैं बड़े-बड़े शास्त्रियों के दर्शन करना चाहता हूँ और इसी उद्देश्य से मैं यहाँ आया हूँ। यदि शास्त्री लोग मेरे पास न आ सकें तो मैं स्वयं उनके पास चला आऊँगा, परन्तु इसका परिणाम उलटा निकला। गङ्गाप्रसाद पण्डित सीताराम को साथ लेकर बापूशास्त्री के पास गये और उनसे कहा कि दयानन्द भागवत का खण्डन करते हैं। इससे लश्कर में बड़ा कोलाहल खड़ा हो जाएगा। उन्होंने यह बात महाराजा के कानों तक पहुँचा दी। महाराजा ने पण्डित विष्णुदीक्षित को स्वामीजी के पास भेजकर भागवत-सप्ताह बचवाने का माहात्म्य पूछा। दयानन्द ने हँसकर उत्तर दिया कि सिवाय दुःख और क्लेश के और कोई फल नहीं होगा, चाहे कराके देख लो। महाराजा दयानन्द का उत्तर सुनकर चित्त में खिन्न हुए, परन्तु उन्होंने अप्रसन्नता प्रकट नहीं की, केवल इतना ही कहा कि स्वामीजी बड़े समर्थ हैं जो चाहें सो कहें। अब तो हम सब तैयारी कर चुके हैं, दूर-दूर से बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित आ गये हैं, अब कैसे हो सकता है कि न करें। इसके पश्चात् भी विद्वानों के कहने पर कि ऐसे महात्मा को यज्ञ में अवश्य निमन्त्रित करना चाहिए, महाराजा ने दयानन्द को बुलाने के लिए पण्डित भेजे, परन्तु उन्होंने जाना स्वीकार नहीं किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हनुमन्ताचार्य और रामाचार्य आदि राजपण्डित स्वामीजी से शास्त्र-चर्चा करने आया करते थे, परन्तु हनुमन्ताचार्य सदा एक साधारण मनुष्य के वेश में आया करते थे। उस समय महाराजा की सभा में बड़े-बड़े विद्वान् थे जिनमें मुख्य दक्षिणी पण्डित हनुमन्ताचार्य थे। वे बड़े नैयायिक और तीक्ष्णबुद्धि थे और मध्वाचार्य के सम्प्रदाय के थे। वे नवद्वीप के प्रसिद्ध पण्डित गोलोक न्यायरत्न के शिष्य थे और महाराजा उनका बड़ा सम्मान करते थे। उनके विषय में दयानन्द ने अपने आत्मचरित में लिखा है—"ग्वालियर में अनुमन्ताचार्य§ नामक एक माध्व शास्त्रालाप सुनने के लिए मेरे पास प्रायः आया करते थे और जब कभी कोई अशुद्ध शब्द मेरे मुख से निकल जाता था तो वह उसी क्षण मुझे बता दिया करते थे। मैंने उनसे बहुत बार पूछा कि आप कौन हैं और किस पद पर नियत हैं, परन्तु वे सदा यही कह दिया करते थे कि मैं एक साधारण कारकुन हूँ और कुछ नहीं, मैंने जो कुछ सीखा है लोगों से सुनकर सीखा है। एक दिन व्याख्यान में तिलक आदि का खण्डन करते हुए मैंने कहा कि यदि ललाट पर एक रेखा खींचने से वैष्णवों को मोक्ष मिल जाता है तो सारे मुख को काला करने से तो उन्हें मोक्ष की अपेक्षा भी कोई उच्चतर वस्तु मिल सकती है। यह सुनकर वे बड़े रुष्ट हुए और मेरे पास से चले गये। पीछे अनुसन्धान करने पर मुझे मालूम हुआ कि वह अनुमन्ताचार्य थे।"

ग्वालियर में स्वामीजी की दिनचर्या यह थी कि प्रातःकाल उठकर स्नान करके सूर्य को अर्घ्य देते थे‡ और फिर १२ बजे तक मकान में बन्द रहकर प्राणायाम करते थे। बारह बजे बाहर आकर आध सेर दूध पीते थे और अपराह्न में शास्त्रालाप करते थे। सायङ्काल को फिर स्नान करके सूर्य को अर्घ्य देते थे और फिर रोटी और मूँग की दाल का भोजन करके शिवसहस्रनाम का पाठ करते थे। स्वामीजी मोटेश्वर महादेव के मन्दिर में रहते थे, परन्तु वहाँ भोजन नहीं खाते थे, क्योंकि मोटेश्वर की मूर्त्ति कृत्रिम थी। वे नर्मदेश्वर वा राधाकुण्ड के मन्दिरों का भोग खाते थे। त्रिपुण्ड्र का समर्थन करते थे। वैष्णवों का और विशेषकर चक्राङ्कितों का खण्डन करते थे†।

महाराजा जियाजीराव के पास स्वामीजी का संवाद पहुँचा था, परन्तु वे भागवत पाठ के कार्य में लगे हुए थे और स्वामीजी भागवत का खण्डन करते थे, इसलिए महाराज स्वामीजी के पास नहीं आये। मोटेश्वर के मन्दिर में कुछ दिन रहने के पश्चात् स्वामीजी अनन्तनारायण के मन्दिर में चले गये थे। यह मन्दिर बापुआड़ का बनाया हुआ था, जो ग्वालियर के सेनापति थे¶। बापुआड़ के मन्दिर से उठकर स्वामीजी यादो साहब के बाग़ में कुछ दिन रहे और वहाँ से करौली चले गये।

---

§ वास्तव में उनका नाम हनुमन्ताचार्य था, अनुमन्ताचार्य नहीं था।

‡ इससे प्रकट होता है कि स्वामीजी उस समय शैवमत की ओर झुके हुए थे, अतः हो सकता है कि पं० बालमुकुन्द के कथनानुसार उन्होंने पं० सुन्दरलाल को शिवपूजा का उपदेश दिया हो। कम-से-कम यह तो असन्दिग्ध ही है कि यह जानते हुए भी कि पं० सुन्दरलाल पार्थिव पूजा करते थे, उन्होंने पण्डितजी को उससे रोका नहीं। कुछ भी हो, है यह बात विचित्र कि बालक मूलशङ्कर तो शिवपूजा के प्रति आस्थाहीन हो और युवा दयानन्द इतना ज्ञानोपार्जन करने के पश्चात् उसका विश्वासी हो।

† पण्डित लेखराम के दयानन्द-चरित में लिखा है कि कथा आरम्भ होने से पहले किसी ने स्वामीजी से उसकी चर्चा की थी, तो उन्होंने कह दिया कि उससे राज्य का अनिष्ट ही होगा, इष्ट नहीं होगा। यह भविष्यवाणी पूरी भी हो गई, क्योंकि महाराणी के पाँच मास के गर्भ का पात हो गया और पाँच वर्षीय राजकुमार का देहान्त हो गया इत्यादि। हम नहीं कह सकते यह कहाँ तक सत्य है।

¶ कहते है कि स्वामीजी के भागवत-खण्डन की बात सुनकर महाराजा उनसे रुष्ट हो गये थे और जब उन्होंने सुना कि स्वामीजी बापुआड़ के मन्दिर में रहते है, ते उन्होंने बापुआड़ से कहा कि ऐसे मनुष्य को तुमने अपने मन्दिर में क्यों ठहरने दिया ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्वालियर की अवस्थिति के समय स्वामीजी दुर्गासप्तशती को मानते थे और उन्होंने एक पुस्तक शोधकर बालाप्रसाद मोटेश्वर मन्दिर के पुजारी को दी थी, जिसमें अनेक स्थलों पर 'ऋषिरुवाच' पद कटा हुआ था और वह पुस्तक देवेन्द्रबाबू ने स्वयं अपनी आँख से देखी तो उसमें यह पद कटा हुआ था। बालाप्रसाद के पिता जगन्नाथ को अधिक चरस पीने से श्वास का रोग हो गया था, उसे स्वामीजी ने कुञ्जर क्रिया बताई थी। उससे जगन्नाथ का रोग शान्त हो गया था। स्वामीजी स्वयं भी सप्ताह में एक बार यह क्रिया करते थे। स्वामीजी ने उक्त पुजारी को कूर्म और लिङ्गपुराण पढ़ने का उपदेश दिया था।

(मई—सित०-अक्तू० सन् १८६५) करौली (ज्येष्ठ—आश्वनि सं० १९२२)

स्वामीजी करौली जाकर गोपालसिंह के बाग में ठहरे जो भद्रवती नदी के तट पर है। उस समय उनके साथ दो साधु और दो मनुष्य थे। करौली के महाराजा मदनपाल ने उनके आने का समाचार पाकर उनके भोजन आदि का प्रबन्ध कर दिया था।

कोई-कोई कहते है कि स्वामीजी की गम्भीर विद्वत्ता को देखकर करौली के पण्डितों ने महाराजा से जाकर शास्त्रार्थ का अभिप्राय प्रकट किया। उस समय राजसभा में पण्डित मणिराम सबसे श्रेष्ठ पण्डित समझे जाते थे, परन्तु वे इस भय से कि कहीं दयानन्द से परास्त न हो जाएँ स्वयं उनके सामने नहीं गये थे। बल्कि अपने शिष्य दक्षिणीदत्त को उनसे शास्त्रार्थ करने भेजा था। कोई यह कहते हैं कि उस समय पण्डित मणिराम करौली में थे ही नहीं और इस कारण दक्षिणीदत्त शास्त्रार्थ के लिए गया था।

परन्तु वास्तव में बात यह है कि करौली में स्वामीजी का किसी पण्डित से शास्त्रार्थ ही नहीं हुआ। पण्डित मणिराम करौली में ही थे। एक दिन ऐसा हुआ कि स्वामीजी भी उपस्थित थे और मणिराम महाराज मदनपाल को संकल्प का मन्त्र बता रहे थे। पण्डित मणिराम ने उक्त मन्त्र में 'करिष्ये' के स्थान पर 'करिस्ये' बोला। इसे सुनकर स्वामीजी ने महाराज की ओर देखकर कहा कि आपके यह पण्डित मूर्ख हैं और आपकी सभा मूर्ख-सभा है, फिर इसमें शास्त्रार्थ ही कौन करेगा। यह कहकर स्वामीजी वहाँ से उठकर चले आये।

इसके अतिरिक्ति एक और कारण से महाराजा मदनपाल स्वामीजी से असन्तुष्ट हो गये थे। स्वामीजी की उपस्थिति में एक पण्डित ने आकर महाराजा को आशीर्वाद दिया और उन्हें 'अन्नदाता' शब्द से सम्बोधित किया। इसे सुनकर स्वामीजी ने कहा कि यह क्या है ? अन्नदाता तो परमेश्वर है, मनुष्य अन्नदाता कैसे हो सकता है ?§

---

§ करौली हाईस्कूल के पण्डित अर्जुनदत्त ने अपने पिता बलदेव और अन्य पण्डितों की बनाई हुई एक 'सोमवंशकल्पद्रुम' नामक पुस्तक में से स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ सूचक एक श्लोकाष्टक सुनाया था। उस श्लोकाष्टक में ऐतिहासिक घटना का ज्यों-की-त्यों वर्णन नहीं किया गया था, अपितु उसमें कवि-कल्पनाओं का समावेश करके उसे काव्य का रूप दे दिया गया था, ऐतिहासिक सत्य को कल्पना की छटा से मिश्रित करके एक-काव्य-कथा बना दिया गया था। पण्डित अर्जुनदत्त से इस श्लोकाष्टक की प्रतिलिपि माँगने पर उन्होंने देने से इनकार किया कि अभी इस पुस्तक का महाराजा ने अनुमोदन नहीं किया है और इसी कारण से अभी तक यह पुस्तक मुद्रित नहीं हुई है। उन श्लोकों का सरांश यह था—स्वामी दयानन्द करौली में आकर गोपालसिंह के बाग में ठहरे। उस समय पण्डित मणिराम करौली में नहीं थे। इस कारण से दक्षिणीदत्त के साथ स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ तीन दिन तक होता रहा, परन्तु उभय पक्ष में से किसी ने भी जय-पराजय स्वीकार नहीं किया। तीन दिन पीछे मणिराम आ गये और फिर उनसे शास्त्रार्थ होने लगा। जब मणिराम की कोई बात स्वामीजी की समझ में न आती तो वे उसे बार-बार पूछने लगते। मणिराम यद्यपि उसका यथावत् उत्तर दे देते थे, परन्तु स्वामीजी फिर उसी बात को पूछने लगते। अन्त में वे थोड़ी ही देर में रुष्ट हो गये और मणिराम को मूर्ख कह दिया। इसपर महाराजा नाराज़ हो गये और सभा भङ्ग हो गई। स्वामीजी को राजप्रासाद से चले जाने को कहा। जब स्वामीजी करौली से चलने लगे तो महाराजा ने उन्हें ५०० रुपया और एक दुशाला भिजवाया, परन्तु स्वामीजी ने उसे स्वीकार न किया। इसमें सत्य तो थोड़ा ही है। शेष सब कल्पनामात्र है। महाराजा मदनपाल की संवत् १९२६ में मृत्यु हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस समय करौली में एक कबीरपन्थी साधु रहते थे, उसके साथ स्वामीजी की कुछ बातचीत हुई थी। उसके सम्बन्ध में स्वामीजी ने स्वरचित आत्मचरित में लिखा है—"ग्वालियर से मैं करौली गया वहाँ एक कबीरपन्थी साधु मिला। उसने कबीर शब्द का अर्थ किया एक-वीर। उसने यह भी कहा था कि एक कबीर-उपनिषद् भी है"। इस साधु का नाम गुदड़िया बाबा था। यद्यपि महाराजा कबीरपन्थी न थे तथापि इस साधु का बहुत सम्मान करते थे§।

खुशहालगढ़

स्वामीजी सात-आठ दिन करौली रहकर खुशहालगढ़ चले गये और एक दो दिन खुशहालगढ़ ठहरे। सुनते हैं कि वहाँ के ब्राह्मणों ने उनका यथोचित सत्कार किया और अपनी शास्त्रानभिज्ञता के कारण स्वामीजी से किसी शास्त्रीय विषय पर विचार वा शास्त्रार्थ नहीं किया। खुशहालगढ़ से प्रस्थान करके स्वामीजी जयपुर पहुँचे।

(अक्तू०-नव०—६ मार्च सन् १८६६) **जयपुर** (कार्त्तिक—चैत्र कृ० ५ सं० १९२३)

जयपुर पहुँचकर स्वामीजी भवानीराम बोहरे के बाग में उतरे। वहाँ से धूलेश्वर महादेव के मन्दिर में चले गये और कुछ दिन पश्चात् माली रामपुण्य दरोग़ा के बाग़ में चले गये। (कोई कहते हैं कि स्वामीजी पहले गन्दीभीरी के पास रामकँवार मोदी की बग़ीची में ठहरे थे।) जब स्वामीजी माली रामपुण्य दरोग़ा के बाग़ में ठहरे हुए थे तो गोपालानन्द परमहंस ने उन्हें यह प्रश्न लिखकर भेजा कि ईश्वर और जीव परतन्त्र हैं वा स्वतन्त्र। स्वामीजी ने इसका उत्तर लिखकर भेजा, जिसे देखकर गोपालानन्दजी इतने प्रसन्न हुए कि अपना निवासस्थान छोड़कर स्वामीजी के ही पास आ ठहरे। उस समय स्वामीजी के साथ तीन ब्राह्मण थे, एक का नाम सच्चिदानन्द, दूसरे का चेतनराम और तीसरे को ब्रह्मचारी नाम से पुकारते थे। वे लोग कुछ अधिक पढ़े-लिखे न थे, केवल सेवा के लिए स्वामीजी के साथ थे। इनमें से सच्चिदानन्द को स्वामीजी ने सूर्य के मन्त्र का उपदेश कर रक्खा था। वह नित्य सूर्य के सम्मुख खड़ा होकर उसका जप किया करता था।

लक्ष्मणनाथजी एक व्यक्ति श्रवणनाथजी के शिष्य थे, उन्हें महाराजा रामसिंह ने जोधपुर से बुलाया था। ब्रजानन्दजी के मन्दिर में स्वामीजी से उनका सम्भाषण हुआ। लक्ष्मणनाथजी स्वामीजी की विद्वत्ता को देखकर उनसे कहने लगे कि आप साम्प्रदायिक शास्त्रार्थ में हमारी सहायता कीजिए और इसी मन्दिर में आ विराजिए, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि यदि शास्त्रार्थ में मुझे बुलाया भी गया तो मैं अपनी सम्मति के अनुकूल ही कथन करूँगा और उस मन्दिर में न गये।

जयपुर की संस्कृत पाठशाला के पण्डितों के पास स्वामीजी ने १५ प्रश्न लिखकर उत्तर के लिए भेजे, परन्तु पण्डितों ने उत्तर देने के बदले स्वामीजी को दुर्वचन लिख भेजे। पण्डितों में हरिश्चनद्र दिल्लीवाले भी थे। स्वामीजी ने प्रत्युत्तर में पण्डितों के कथन में आठ प्रकार के दोष दिखाकर फिर पत्र भेजा। पण्डितों को स्वामीजी के पत्र से बहुत क्षोभ हुआ, परन्तु उन्होंने फिर कोई उत्तर न दिया। वे सीधे व्यासजी के समीप गये और उनसे प्रार्थना की कि हमारा स्वामीजी से शास्त्रार्थ करा दीजिए। व्यासजी के अनुरोध से स्वामीजी राजराजेश्वर के मन्दिर में पधारे। वहाँ ही सब पण्डित लोग भी आ गये और पण्डित हरिश्चन्द्र ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि क्या यह प्रश्न आपके ही लिखे हुए हैं? स्वामीजी ने कहा, हाँ मेरे ही लिखे हुए हैं। उन

---

§ गुदड़िया बाबा का मन्दिर भद्रवती नदी के किनारे था। स्वामीजी प्रतिदिन उसी मन्दिर के निकट जङ्गल में नित्यकर्म करने जाया करते थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१५ प्रश्नों में से केवल दो का पता चला है जो इस प्रकार थे—

१—कल्म च किं भवति ?

३—येन कर्मणा सर्वे धातवः सकर्मकाः किं तत्कर्म ?

पण्डितों ने पहले प्रश्न का उत्तर देने का उद्योग किया, परन्तु स्वामीजी ने तुरन्त ही उनके कथन का खण्डन कर दिया। इसपर पण्डितों ने कहा कि यदि हमारी व्याख्या ठीक नहीं है तो आप कीजिए। यहाँ क्या देर थी, स्वामीजी ने व्याख्या कर दी। इसपर एक मैथिल पण्डित ओझा ने जो पण्डितों में प्रधान था, स्वामीजी से पूछा कि आपका अर्थ कहाँ लिखा हुआ है। स्वामीजी ने कहा कि महाभाष्य में। इसपर उस ओझा पण्डित ने कहा कि महाभाष्य की व्याकरण में गणना नहीं है। यह सुनते ही स्वामीजी को रोष आ गया। उन्हें ऋषिप्रणीत ग्रन्थों की निन्दा कैसे सह्य हो सकती थी ? उन्होंने कहा कि यह सभा विद्वानों के बैठने योग्य नहीं है। जहाँ महाभाष्य की व्याकरण में गणना न होती तो वहाँ क्या बात-चीत की जाए ? स्वामीजी ने कहा कि यदि आपकी ऐसी ही धारणा है कि महाभाष्य की गणना व्याकरण में नहीं है तो इसे लिख दीजिए। इसे सुनकर पण्डित लोग बड़े लज्जित हुए।

व्यास बख्शीराम ने इस भय से कि आगे पण्डितों की और कलई खुले, मन्नालालजी से कहा कि भाई इस अग्नि को शान्त करो। तब मन्नालालजी ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि आपको बाहर पधारना है और नगर के दरवाजे बन्द होनेवाले हैं, इस कारण इस विवाद को समाप्त कीजिए। स्वामीजी ने फिर कहा कि पण्डितजन यह लिख तो दें कि महाभाष्य की गणना व्याकरण में नहीं है, परन्तु कोई उद्यत न हुआ और स्वामीजी वहाँ से अपने निवास्थान को चले गये।

उस समय जयपुर में ओसवाल वैश्यों के गुरु पूज्य श्री जतीजी नामक निवास करते थे। उन्हें भी अपनी विद्या का कुछ अभिमान था। जब उन्होंने पण्डितों की सभा का वृत्तान्त सुना तो स्वामीजी के पास अपने आदमी भेजकर प्रार्थना की कि जतीजी आपसे वार्त्तालाप करने के इच्छुक हैं। स्वामीजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि हम प्रस्तुत हैं। जब उनकी इच्छा हो पधारें। इसपर जतीजी ने कहला भेजा कि हमारे आने से ओसवाल लोगों में हमारी प्रतिष्ठा भङ्ग हो जाएगी, इसलिए यदि कभी कहीं मिलने का अवसर प्राप्त हुआ तो दर्शन करेंगे। स्वामीजी ने इसपर वही १५ प्रश्न जतीजी के पास भेजे, परन्तु उनका उत्तर उन्होंने कुछ न दिया, परन्तु ८ प्रश्न जैन-मतविषयक स्वामीजी के पास भेज दिये। स्वामीजी ने उनका उत्तर भी दे दिया और साथ में जैनमत पर ८ प्रश्न भी कर दिये, परन्तु जतीजी उन प्रश्नों को लेकर मौन हो गये।

अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंहजी साधु-संन्यासियों के सत्सङ्ग के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने जब स्वामीजी की विद्वत्ता की चर्चा सुनी तो उन्हें स्वामीजी से मिलने की बड़ी इच्छा हुई। उन्होंने जोषी रूपराम को स्वामीजी की सेवा में भेजा कि स्वामीजी को देखकर आवें कि कैसे साधु हैं ? जोषी रूपराम स्वामीजी की विद्या, वेदान्त-निष्ठा, त्याग, वैराग्यादि गुणों को देखकर मोहित हो गये और वापस आकर ठाकुर साहब से स्वामीजी की बहुत प्रशंसा की। ठाकुर साहब ने स्वामीजी को भोजन के लिए निमन्त्रित किया और उनकी सवारी के लिए अपनी बहल भेजी, परन्तु स्वामीजी उसपर सवार न हुए और पैदल ही ठाकुर साहब की हवेली पर पधारे। उन दिनों स्वामीजी कच्ची रसोई केवल ब्राह्मण के हाथ की बनी खाते थे, अतः ठाकुर साहब ने पक्की रसोई बनवाई थी। ठाकुर साहब स्वामीजी से सम्भाषण करके उनके भक्त बन गये और उनसे नम्रभाव से प्रार्थना की कि आप जब तक जयपुर में विराजमान रहें मेरे बाग़ में रहें। स्वामीजी ने आतिथ्य स्वीकार कर लिया। बाग़ में निवासस्थान कुछ सङ्कीर्ण था, इसलिए ठाकुर साहब ने और नवीन स्थान बनवा दिया और स्वामीजी ठाकुर साहब के बाग़ में जो गङ्गापोल दरवाजे के बाहर बदनपुरे में है जा ठहरे। स्वामीजी की चर्चा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शहर में फैल गई और अनेक विद्यार्थी उनसे पढ़ने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे। स्वामीजी भी उन्हें प्रेमपूर्वक अष्टाध्यायी, महाभाष्य, धातुरूपावलि आदि पढ़ाने लगे।

स्वामीजी उन दिनों देवीभागवत का मण्डन और कृष्णभागवत का खण्डन करते, शरीर पर भस्म लगाते तथा रुद्राक्ष पहनते थे, मुख्य शिक्षा मनुस्मृति, भगवद्गीता आदि की करते थे। ठाकुर साहब के बड़े पुत्र लक्ष्मणसिंह को स्वामीजी ने भगवद्गीता पढ़ाई थी और ठाकुर साहब उनसे तत्त्वबोध, निरालम्बोपनिषद्, बृहदारणयक और छान्दोग्योपनिषद् तथा देवीभागवत सुना करते थे।

उन दिनों जयपुर में शैव और वैष्णवों का विवाद चल रहा था। महाराजा रामसिंहजी शैवमत की ओर झुके हुए थे और व्यास बख्शीराम और उनके भाई कान्हजी शैवमत का स्थापन करने के लिए अधिष्ठाता नियत थे। व्यासजी ने स्वामीजी के पाण्डित्य से प्रभावित होकर उनसे वैष्णवों को परास्त करने के लिए सहायता माँगी और महाराज से भी स्वामीजी की प्रशंसा की। ठाकुर साहब अचरौल ने भी महाराज साहब से स्वामीजी की प्रशंसा की तो महाराज ने उनसे स्वामीजी से मिलने को कहा और यह बात निश्चित हो गई कि महाराज साहब और स्वामीजी की भेंट राजराजेश्वर के मन्दिर में हो। एक दिन स्वामीजी उक्त मन्दिर में महाराज से मिलने पधारे, परन्तु मन्दिर में जाकर मूर्त्ति को नमस्कार न किया। किसी ने व्यास बख्शीराम के कानों में यह बात फूँक दी कि यदि तुम स्वामीजी को महाराज से मिला दोगे तो तुम्हारा रङ्ग महाराज के ऊपर से उतर जाएगा, क्योंकि स्वामीजी बड़े चालाक और विद्वान् हैं। व्यासजी के मन में यह बात घर कर गई और उन्होंने यह ढोंग रचा कि जब स्वामीजी मन्दिर में पधारे तो एक चेले§ से कहला दिया कि महाराज साहब को इस समय अवकाश नहीं है, आज भेंट न हो सकेगी। स्वामीजी को व्यासजी के षड्यन्त्र का कुछ पता न चला, वे वापस चले आये और दूसरे दिन पीनस में सवार होकर फिर उसी मन्दिर में पहुँचे। इस दिन व्यासजी की लीला का कुछ-कुछ पता लगा। उसके पश्चात् लोगों के अनुरोध करने पर भी स्वामीजी महाराज साहब से मिलने के लिए नहीं गये। स्वामीजी ने जयपुर-निवास के समय वैष्णवमत का खूब खण्डन किया और शैवमत का प्रचार किया। इसके विषय में उन्होंने अपने आत्म-चरित में लिखा है—"वहाँ (जयपुर में) मैंने प्रथम वैष्णवमत का खण्डन करके शैवमत की स्थापना की। जयपुर के राजा महाराजा रामसिंह ने भी शैवमत को ग्रहण किया। इससे शैवमत का फैलाव होकर सहस्रों रुद्राक्षमाला मैंने अपने हाथ से दीं। वहाँ शैवमत इतना पक्का हुआ कि हाथी-घोड़े आदि के गलों में भी रुद्राक्ष की मालाएँ पड़ गईं"।

जयपुर में वैष्णव और शैवमत के विरोध ने बड़ा भयङ्कर रूप धारण कर लिया था। यह विरोध संवत् १६२१ से संवत् १६२७ तक चलता रहा। कहते हैं कि महाराजा रामसिंह वैष्णवों के दुराचार से बहुत असन्तुष्ट हो गये थे। उनके मन्दिरों में व्यभिचार बहुत होने लगा था। चक्राङ्कित लोग शूद्र तक को जो चक्राङ्कित हो जाता था मन्दिर के भीतर जाने और पूजा करने का अधिकार देते थे, परन्तु ब्राह्मण तक को भी यदि वह चक्राङ्कित नहीं होता था, यह अधिकार प्राप्त नहीं होता था। इससे जयपुर के ब्राह्मण चक्राङ्कितों के बहुत विरुद्ध हो गये थे। महाराज रामसिंह के असन्तुष्ट होने का एक अन्य कारण यह भी था कि यदि कोई अपराधी अपराध करके वैष्णव मन्दिर की शरण ले-लेता था तो उसे वे लोग दण्ड पाने के लिए राज्य के न्यायालयों को नहीं सौंपते थे। व्यास बख्शीराम ने जिनकी पहुँच महाराजा तक हो गई थी, उन्हें और भी भड़का दिया था और वे वैष्णवों के विरुद्ध हो गये थे। इसपर महाराजा ने वैष्णवों और शैवों के शास्त्रार्थ का आयोजन किया। महाराज ने जोधपुर से लक्ष्मणनाथ को और दिल्ली से पण्डित हरिश्चन्द्र व अन्यान्य

§ चेले का अर्थ है गोला। गोला एक जाति का नाम है, जिसके स्त्री-पुरुषों को दासों के बराबर ही समझना चाहिए। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितों को अन्य स्थानों से बुलाया। उधर वैष्णवों ने भी बाहर से अपने पक्ष-समर्थन के लिए प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पण्डितों को एकत्र किया। वृन्दावन से रङ्गाचार्य ने पण्डित सुदर्शनाचार्य को भेजा। दोनों ओर से एक-दूसरे के खण्डन में ग्रन्थ लिखे जाने लगे और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। बहुत दिनों तक वाद-विवाद चलता रहा। महाराजा संवत् १६२१ में कलकत्ता गये थे। पण्डित हरिश्चन्द्र उनके साथ थे। उस समय जयपुर के एक पण्डित शिवराम शास्त्री काशी में रहते थे। जब महाराजा कलकत्ता जाते हुए काशी में ठहरे तो पण्डित शिवराम इनसे मिलने आये। महाराजा ने उनपर काशी के पण्डितों से शैवमत के पक्ष में व्यवस्था प्राप्त करने का भार अर्पण किया। वहाँ क्या था ? काशी के पण्डितों से चाहे जो व्यवस्था ले-लीजिए। वहाँ तो रुपये की बात है। व्यवस्थाओं का खुल्लम-खुल्ला सौदा होता है। जो अधिक देता है उसी को उसी के अनुकूल व्यवस्था मिल जाती है। अस्तु, काशी के ढाई सहस्र पण्डितों ने अपने हस्ताक्षर करके लिख दिया कि शैवमत वेदवहित और वैष्णवमत वेदविरुद्ध है। यह व्यवस्था लेकर माघ मास में पण्डित शिवराम जयपुर पहुँचे। काशी की व्यवस्था के कवच से रक्षित होकर शैव लोग रणक्षेत्र में आस्फालनपूर्वक वैष्णवों को ललकारने लगे। जहाँ राजा एक पक्ष का समर्थक हो वहाँ दूसरे पक्ष का पराजय होना कोई दुष्कर नहीं है। वैष्णवों की हार हो गई या समझी गई। महाराजा ने स्वयं अनेक वैष्णवों को वैष्णवमत के त्यागने और शैवमत स्वीकार करके रुद्राक्ष वा त्रिपुण्ड्र धारण करने की प्रेरणा की। उन्होंने कहा कि जब वैष्णवमत वेदविरुद्ध है तो वैष्णवों को इस प्रकार प्रायश्चित करना ही चाहिए। बहुतों ने ऐसा किया भी। दूसरों ने जो अपने अन्तःकरण को राजा की प्रसन्नता के बदले बेचना नहीं चाहते थे, ऐसा करना अस्वीकार कर दिया§।

महाराजा के वैष्णवों से चिढ़जाने का एक और कारण भी हो गया था। एक दिन महाराजा ने वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिर के अध्यक्ष को मिलने के लिए बुलाया था। वे जिस समय महाराजा से वार्त्तालाप कर रहे थे, घटनावश उसी समय महाराजा के मन्त्री सर फ़ैज़अलीखाँ भी आकर उसी फ़र्श पर बैठ गये जिसपर महाराजा और अध्यक्ष महाशय बैठे हुए थे। जब अध्यक्ष मन्दिर में वापस आये तो उन्होंने इस पाप का, कि वह और एक मुसलमान एक ही फर्श पर बैठे थे, प्रायश्चित किया और उसके उपलक्ष में उपवास किया। यहाँ यार लोगों को एक चुटकुला हाथ आया और उन्होंने अपनी ओर से नोन-मिरच लगाकर महाराजा से यह बात जड़ दी कि देखिए महाराज ! इस वल्लभाचारी की धृष्टता ! वह यह समझता है कि आप चूँकि शैव हैं, इसलिए आपके साथ एक फ़र्श पर बैठने और बातचीत करने से उसे पातक लग गया है और अब वह मन्दिर में बैठा हुआ उपवास कर रहा है और आपको शाप दे रहा है। महाराजा लोग आपनी आँखें और कान तो रखते ही नहीं हैं जैसा किसी ने दिखा दिया, वैसा देख लिया और जो सुना दिया सुन लिया, उन्होंने जो कुछ उन्हें बताया गया था, सब सत्य समझ लिया और वैष्णवों पर उनकी दृष्टि और भी क्रूर हो गई। उधर नगर में यह जनरव फैल गया कि महाराजा वैष्णवों को जयपुर से निकालना और मन्दिरों की जागीरें ज़ब्त करना चाहते हैं। उस समय जयपुर में चार सम्प्रदाय के वैष्णव थे। वल्लभ-सम्प्रदायवालों के दो मन्दिर थे, एक गोकुल-चन्द्रमा का और दूसरा मदनमोहन का। चक्राङ्कितों का लक्ष्मीनारायण का मन्दिर

§ जो लोग वैष्णव मत छोड़कर शैव बनते थे वे शूद्र-संसर्ग और चक्राङ्कणजनित पाप का प्रायश्चित करते थे। उनके प्रायश्चित का प्रबन्ध रूपनिवस बाग़ में होता था। वे तिलक छोड़कर त्रिपुण्ड्र धारण करते थे और कण्ठी तोड़कर रुद्राक्ष की माला पहनते थे और फिर हाथियों पर सवार होकर बड़े समारोह के साथ 'जय सदा शिव' और 'जय हरिहर' बोलते हुए नगर के बाज़ारों में निकलते थे। एक-एक दिन में पचास-पचास, सौ-सौ पुरुषों का प्रायश्चित्त हो जाता था। रुद्राक्ष की असंख्य मालाएँ वितरण होती थीं। एक गोसाईं ने केवल रुद्राक्ष की मालाओं की ही दुकान खोल ली थी। वह किसी-किसी दिन दो-दो और पाँच-पाँच सहस्र माला तक बेच लेता था। प्रायश्चित्त का कार्य एक वर्ष तक चलता रहा, परन्तु छह मास तक खूब ज़ोर से चला। प्रायश्चित्त का सब व्यय महाराजा ही वहन करते थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था और मध्वाचार्य्य के सम्प्रादायवालों का श्रीजी का मन्दिर था।

यद्यपि महाराजा की ओर से किसी मन्दिर के साथ कोई क्रूर व्यवहार नहीं किया गया था तथापि लोग अनेक भयावह जनरवों के कारण भयभीत हो गये थे। इसलिए जिन वैष्णवों ने शैवमत ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया था वे भय के कारण जयपुर छोड़कर जाने लगे। गोकुल-चन्द्रमा और मदनमोहन की मूर्तियों को भी उक्त मन्दिर के पुजारी उठाकर ले-गये और कितने ही दिन तक जयपुर से बहर दो मील पर उन्हें रक्खे रहे। जिस दिन वे लोग मूर्तियों को उठाकर ले-गये उस दिन नगर में बड़ा कोलाहल हुआ, सहस्रों नर-नारी उनके पीछे रोते और शोक मनाते गये।

महाराजा से बहुत-से लोगों ने जाकर इस विषय में प्रार्थना की तो उन्होंने कह दिया कि हमने उन्हें मूर्त्तियाँ उठा ले-जाने को नहीं कहा, उन्होंने अपनी इच्छा से ऐसा किया है और यदि वे वापस आना चाहें तो आ सकते हैं, हमारी ओर से कोई रोक-टोक नहीं है। महाराजा ने किसी मन्दिर की जागीर भी ज़ब्त नहीं की थी।

यह विवाद इतना बढ़ गया था और उससे इतना आन्दोलन उत्पन्न हो गया था कि पोलिटिकल एजेण्ट तक को अपनी वार्षिक शासन-रिपोर्ट में उसका सविस्तर उल्लेख करना पड़ा था। वह रिपोर्ट सन् १८६५-६६ के जयपुर के शासन-सम्बन्धी तारीख ३० मार्च सन् १८६७ की लिखी हुई है।

हम उनकी रिपोर्ट का अनुवाद नीचे देते हैं—

"गत वर्ष महाराजा ने अपने राजप्रासाद में कई शास्त्रार्थ कराये हैं, जिनमें जयपुर नगर के मन्दिर के अध्यक्ष उपस्थित थे। शास्त्रार्थ का विषय वैष्णवों की साम्प्रतिक पूजा-विधि थी, जिसे महाराजा शास्त्रविरुद्ध समझते हैं। जयपुर के कुछ मुख्य-मुख्य मन्दिरों के अध्यक्षों का मत इसके विरुद्ध था। उनके और उन लोगों के मन में जो वैष्णव-मन्दिर में जाते हैं, इससे क्षोभ और भय उत्पन्न हुआ और नगर में यह जनरव फैल गया कि महाराजा अपने मत के विरुद्ध मन्तव्य रखनेवालों को निकालना चाहते हैं। यद्यपि महाराजा ने उचित समयों पर मन्दिराध्यक्षों और जनता के मन पर यह बात अङ्कित करनी चाही कि उनका विचार ऐसा नहीं है और कहा कि यद्यपि हम इस विषय पर कि सत्य हिन्दू-धर्म क्या है अपनी स्वतन्त्र सम्मति रखते हैं, परन्तु अन्य लोगों को अपने मतानुसार चलने की पूरी स्वतन्त्रता है।

परन्तु सहिष्णुता (Toleration) का ऐसा विश्वास दिलाने पर भी लोगों का भय बढ़ता ही रहा और जुलाई के महीने में गोकुलजी के मन्दिर का अध्यक्ष मूर्त्ति को साथ लेकर नगर के बाहर चला गया और नगर के सहस्रों लोग उसके पीछे रोते-चिल्लाते गये और रो-रोकर अपना दुःख और भीति प्रकाशित करने लगे कि नगर पर भारी आपत्ति आई है। अध्यक्ष एक सप्ताह तक जयपुर से दो मील पर डेरा डाले पड़ा रहा और उसके अनुयायी उससे वापस चलने का अनुरोध करते रहे, परन्तु उसने कहा कि मैं लौट जाता, यदि महाराजा की ओर से मुझे कुछ आश्वासन मिलता।

महाराजा से जब इस विषय में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि वह स्वयं नगर छोड़कर गया है और स्वयं ही वापस भी आ सकता है। उसके साथ कुछ हस्तक्षेप नहीं होगा।

जयपुर के अन्य वैष्णव मन्दिरों के पुजारी भी सताये जाने के भय से चुपचाप नगर छोड़कर चले गये हैं।

महाराजा ने इन शास्त्रार्थों में जो भाग लिया है उनके विषय में मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने स्वयं एक पुस्तक में इसका वर्णन किया है, जिसे मैं अपनी चिट्ठी नं० १६३-१०१ ता० २४.११.६६ के साथ भेज चुका हूँ।

इस विवाद के विषय पर बनारस, मथुरा आदि के पण्डितों में भी विचार हो चुका है और भारतवर्ष के पत्रों में भी इसपर आन्दोलन हो चुका है, फिर भी यह जनरव फैल गया कि महाराजा का वैष्णव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मतानुयायियों के साथ कठोर बर्त्ताव रहा है और मन्दिराध्यक्ष नगर छोड़कर चले गये हैं। उन्हें या तो निकाला गया है या वे सताये जाने के भय से भागे हैं, परन्तु महाराजा ने मुझे विश्वास दिलाया है और अन्य लोगों ने भी जो सब घटनाओं से परिचित हैं, मुझसे यही कहा कि यह जनरव ठीक नहीं है।

महाराजा इस आन्दोलन में बहुत ही सहिष्णु रहे हैं। यद्यपि यह कहा जाता है कि महाराजा की मृत्यु के लिए प्रार्थना की गई और तदर्थ यन्त्र-मन्त्रों का भी उपयोग किया गया, परन्तु जो ग्राम मन्दिरों को दिये हुए हैं और उनके साथ में जो और रिआयतें हैं, वे अभी तक जारी हैं। मन्दिरों के पुजारियों वा उनके नौकरों पर कोई दबाव नहीं डाला गया। जो नगर छोड़कर गये हैं, वे स्वयं अपनी इच्छा से गये हैं और जब उनका जी चाहे वापस आ सकते हैं।"

ऐसा जान पड़ता है कि महाराजा रामसिंह वैष्णवों को पराजित करके भगाने में कुछ राजनैतिक उद्देश्य रखते थे। मन्दिरों के भीतर मन्दिराध्यक्षों का पूर्ण आधिपत्य था। वहाँ वे लोगों को यथेच्छ दण्ड देते थे और यदि कोई अपराधी मन्दिरों में शरण ले-लेता था तो उसे राज्य-कर्मचारी पकड़ नहीं सकते थे। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर महाराजा शैवमत का अवलम्बन करके वैष्णवों के विपक्ष में खड़े हुए थे।

स्वामीजी की शिक्षा को ठाकुर रणजीतसिंहजी अचरौलवालों के अतिरिक्त और भी कई सम्भ्रान्त लोगों ने ग्रहण किया था। उनमें मुख्य ठाकुर इन्द्रजीतसिंह दूदूवाले थे।§

इस समय स्वामीजी कृष्णभागवत का खण्डन करते थे। इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि वे शैवमत का पोषण करते थे। यह उन्होंने स्वलिखित आत्म-चरित में स्वीकार किया है। भस्म और रुद्राक्ष भी धारण करते थे, परन्तु मूर्त्तिपूजा का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। एक भी साक्षी ऐसी नहीं मिलती जिससे सिद्ध होता हो कि उन्होंने स्वयं कभी भी मर्त्तिपूजा की हो। शिव मन्दिरों में महीनों ठहरे, परन्तु लिङ्ग पर एक बार भी जल नहीं चढ़ाया, न उसके सामने दण्डवत् की वा मस्तक नवाया। इस समय भी उनका निर्भर केवल वेद पर ही था और लोगों को सन्ध्या-गायत्री ही का उपदेश देते थे।

कोई-कोई कहते हैं कि जयपुर में वैष्णव-मत का खण्डन स्वामीजी ने विरजानन्दजी के आदेश से ही किया था।

बगरू, दूदू, किशनगढ़, अजमेर

साढ़े चार मास जयपुर में रहकर स्वामीजी चैत्र बदी ५ को पुष्कर की ओर रवाना हुए। ठाकुर साहब अचरौल ने तीन ब्राह्मण उनके साथ कर दिये, सवारी का प्रबन्ध भी कर दिया और अपने कामदार रूपराम को भी उनके साथ इस अभिप्राय से भेजा कि वह महाराज को पुष्कर-स्नान कराने के पश्चात् जयपुर वापस ले-आये।

---

§ हीरालाल कायस्थ कामदार, ठाकुर अचरौल, मद्य पिया करते थे। एक दिन ठाकुर साहब अचरौल ने उन्हें स्वामीजी को बुलाने भेजा, परन्तु वह मद्य की तरङ्ग में उनके पास जाना भूल गये। सहसा वह स्वामीजी के निवास-स्थान की ओर किसी कार्यवश जा निकला। वहाँ उन्हें स्वामीजी को निमन्त्रण देने का ध्यान आया तो वह स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। स्वामीजी उस समय मनुस्मृति का प्रायश्चित्ताध्याय बांच रहे थे और मांस-भक्षण, सुरा-पान आदि का दण्डविधान श्रोताओं को समझा रहे थे। हीरालाल के चित्त पर उनके उपदेश का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि उसी क्षण उन्होंने मद्य-पान और मांस-भक्षण को छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली और उसके पश्चात् वे प्रतिदिन श्री महाराज की सेवा में उपस्थित होकर उनके उपदेशामृत से अपने चित्त को शान्त करते रहे। स्वामीजी ने उनसे कहा कि मूर्त्तिपूजा अच्छी नहीं, परमात्मा तो हृदय में है। हृदय में उसका ध्यान धरो। स्वामीजी ने उन्हें **'विश्वानि देव सवितः'** का उपदेश दिया और यज्ञोपवीत लेने को कहा, फिर यमुना के तट पर जाकर यज्ञोपवीत दिया। स्वामीजी ने अचरौल के ठाकुर को गायत्री का उपदेश दिया। उनके लिए दशोपनिषद् बम्बई से मँगवाये गये थे। ठाकुर साहब ने उनके उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ दी। एक परचा तत्त्वबोध का ठाकुर साहब को और एक हीरालाल को दिया। वह परचा पण्डित लेखराम ने देखा था जो चैत्र शुक्ला ५, बुधवार, संवत् १९२३ का लिखा हुआ था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मार्ग में स्वामीजी दो दिन *बगरू*, दो दिन ठाकुर इन्द्रसिंह के ग्राम *दूदू* और ६।७ दिन *किशनगढ़* ठहरे। उस समय किशनगढ़ के राजा पृथ्वीसिंह गद्दी पर विराजमान थे। वे वल्लभ-सम्प्रदायी थे, परन्तु विद्याप्रेमी थे और सब साधु-संन्यासियों की सेवा-शुश्रूषा का उनमें भाव था। स्वामीजी सुखसागर पर जाकर ठहरे। सुखसागर एक कूप का नाम है। उसका जल बहुत-बहुत मीठा है। उसके पास ही एक मन्दिर है और वटादि वृक्षों की सघन छाया है। इस कारण वहाँ ठहरने में साधु-संन्यासियों को बहुत सुभीता रहता है। स्वामीजी के साथ उस समय दो संन्यासी और थे। उनके आगमन का समाचार पाकर महाराज पृथ्वीसिंह ने उनके भोजनादि का प्रबन्ध कर दिया। राजा ने उनका संवाद लाने के लिए अपने पण्डित विट्ठलदास को भेजा। स्वामीजी ने उनके ललाट को रेखा-तिलक आदि से रञ्जित देखकर तिलक आदि का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया। नाम पूछने पर जब पण्डित ने विट्ठलदास बताया तो विट्ठल शब्द पर ही शास्त्रार्थ करना आरम्भ कर दिया और कहा कि दास शब्द शूद्रत्व का ज्ञापक है और विट्ठल शब्द विष्ठा का अपभ्रंश है। विट्ठल वल्लभाचार्य के पुत्र का नाम था। विट्ठल शब्द सब प्रकार से ही बुरे अर्थों का बोधक है। इसी प्रकार दूसरे राजपण्डित देवीदत्त से भी, जो महाराजा को कौमुदी पढ़ाया करते थे, देव शब्द पर शास्त्रार्थ किया। दिवु क्रीडने आदि व्याकरण के प्रयोग लेकर विचार करने लगे। स्वामीजी के साथ दो-चार मिनट तर्क-वितर्क करके पण्डित देवीदत्त भी परास्त हो गये। दोनों ही राजपण्डित स्वामीजी से परास्त होकर अपना-सा मुँह लेकर महाराजा के पास पहुँचे और उनकी भरपेट निन्दा की कि वह भागवत का खण्डन करता है और वैष्णवों का परम शत्रु है। इसी ने जयपुर में महाराजा रामसिंह से उन्हें पीड़ित कराया है। महाराजा पृथ्वीसिंह इस तरह की बातें सुनकर स्वामीजी से चिढ़ गये और आज्ञा दी कि वे तुरन्त किशनगढ़ छोड़ दें, परन्तु इस धमकी पर उन्होंने भ्रूक्षेप भी नहीं किया और कहा कि हमारे चारों ओर के एक-एक गज़ परिमित स्थान से हमें उठा देने की शक्ति किसी में नहीं है। ५-६ दिन तक स्वामीजी ठहरे रहे। उसके पश्चात् (अजमेर जाकर दौलतराम के बाग़ में चार दिन ठहरकर) पुष्कर चले गये।

पुष्कर

पुष्कर में जाकर स्वामीजी ने ब्रह्मा के मन्दिर में निवास किया। ब्रह्मा की पूजा सारे भारतवर्ष में केवल पुष्कर में ही होती है। वहाँ भी उन्होंने मूर्त्तिपूजा और वैष्णवमत का खण्डन प्रारम्भ कर दिया जिससे ब्राह्मणों में बड़ी खलबली मची। उन दिनों पुष्कर में एक दक्षिणी विद्वान् पण्डित व्यंकट शास्त्री रहते थे, ब्राह्मण लोग उनके पास दौड़े गये। उनका गुरु एक अघोरी था जो लोगों को पत्थरों से मारता और गाली दिया करता था और चिता में से मुर्दा निकालकर खा जाया करता था, परन्तु संस्कृत का अच्छा पण्डित था। वह पुष्कर के पहाड़ में अगस्त की गुफ़ा में रहता था।

व्यंकट शास्त्री, यह निश्चित हो जाने पर भी कि वे शास्त्रार्थ करने स्वामीजी के पास आएँगे, न आये। तब स्वामीजी स्वयं ही उनके पास गये। शास्त्रीजी ने कहा—**'विद्यावतां भागवते परीक्षा'**। स्वामीजी ने उत्तर दिया **'विद्यावतां भागवते अपरीक्षा'**—एक घण्टे तक संस्कृत में बातचीत होती रही। एक बार शास्त्रीजी ने 'देवासुर' शब्द का प्रयोग किया तो स्वामीजी ने कहा 'दैवासुर' होना चाहिए। शास्त्री निरुत्तर हो गये और कहने लगे आपकी विद्या बहुत प्रबल है। फिर वह स्वामीजी को अपने अघोरी गुरु के पास ले गये। उससे वार्त्तालाप हुआ और उसने स्पष्ट कह दिया कि स्वामीजी जो कहते हैं वह सत्य है। व्यंकट शास्त्री बड़े नैयायिक थे। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि यदि आपका किसी से शास्त्रार्थ हो तो मुझे बुला लेना। स्वामीजी मार्कण्डेय ऋषि की गुफा से विभूति के गोले मँगाकर शरीर पर रमाते थे और रुद्राक्ष की माला जिसमें बीच-बीच में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक श्वेत काँच का मनका था, पहनते थे। उस समय वे उपनिषदों का अभ्यास करते थे।

एक दिन स्वामीजी ने मन्दिर के पुजारी से कहा कि तेरे पास यह ढाई मन के पत्थर की मूर्त्ति पारस-पथरी है, साधुओं को खूब लड्डू खिलाया करो और रण्डी-भड़ुओं से बचते रहो।

पण्डित लेखराम के नाम से प्रकाशित दयानन्द-चरित में स्वामीजी के पुष्कर-निवास की निम्नलिखित घटनाएँ और वर्णित हैं—

स्वामीजी कहा करते थे कि प्रचलित स्तोत्र जिन आचार्यों के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके बनाये हुए नहीं हैं, अपितु और लोगों ने बनाकर आचार्यों के नाम से प्रसिद्ध कर दिये हैं, ताकि प्रचलित हो जाएँ।

स्वामीजी ने एक रत्नगिरि नामक साधु से कहा कि विद्या में ही परिश्रम करो, खीर-पूरी के जाने की सोच मत करो। खीर-पूरी भी विद्या से ही अधिक मिलेगी।

एक दिन स्वामीजी ने पुष्कर के एक रईस से कहा कि कण्ठी मत बाँधो। उन्होंने कहा कि यदि संन्यासियों में विद्वान् ब्राह्मणों के सिवाय अन्य कोई संन्यासी न हो तो हम कण्ठी बाँधना छोड़ दें। स्वामीजी ने कहा हम क्या करें यहाँ तो आकाश फट गया है। यदि हमसे कोई पूछे तो हम स्पष्ट कह दें कि विद्वान् ब्राह्मण के सिवाय अन्य किसी को संन्यास ग्रहण करने का अधिकार नहीं है।

एक दिन स्वामीजी ने एक ब्राह्मण की कण्ठी उतार दी, वह बहुत बिगड़ा और स्वामीजी को लेकर व्यंकट शास्त्री के पास गया। शास्त्रीजी ने कहा कि स्वामीजी जो कहते हैं सच है, परन्तु इनकी बात तब चल सकती है जब कोई राजा इनके पक्ष का अनुयायी हो जाए और लोगों ने भी शास्त्रीजी से स्वामीजी द्वारा उनकी कण्ठी उतारने की बात कही। उसपर भी उन्होंने पूर्वोक्त उत्तर दिया।

पुष्कर की रीति के अनुसार पूर्णिमा के दिन लोगों ने अन्य संन्यासियों की भाँति स्वामीजी की पूजा की।

स्वामीजी रामानुजसम्प्रदायवालों के **'तप्ततनुः स्वर्गं गच्छति'** इस वाक्य का खण्डन करते थे और कहते थे कि इसके सत्य अर्थ यह हैं कि व्रत, तप, नियम से शरीर को तपाने और मन को विषयों से रोककर जप आदि में लगाने से सुख प्राप्त होता है, यह नहीं कि शरीर को दग्ध करने से स्वर्ग मिलता है।

पुष्कर में एक ब्राह्मण था जो सब संन्यासियों का पुरोहित था। उसने स्वामीजी से निवेदन किया कि एक पुरोहिताई का श्लोक बना दो, स्वामीजी ने हँसकर कहा कि क्या हमारे भी पुरोहित बनना चाहते हो और उसे टाल दिया।

स्वामीजी लोगों को अर्द्धपुण्ड्राकार और ऊँचा तिलक लगाने से निषेध करते थे और सीधा तिलक लगाने के लिए कहते थे।

ब्रह्मा के मन्दिर का एक पुजारी था जिसका नाम शिवदयालु था। जब वह ब्रह्मा की मूर्त्ति की पूजा करता तो स्वामीजी उससे कहते अरे शिवदयालु क्या तेरा ब्रह्मा मुँह से बोलता है और तुझसे बातें करता है? नक्कारा बजाने पर कहते के चमड़ा कूटने से क्या लाभ है? शिवदयालु ने कहा—महाराज! मारवाड़ में पाखण्ड बहुत फैल रहा है, वहाँ जाकर सुधार करो। इसपर स्वामीजी ने कहा कि यदि वहाँ का कोई कामदार हमें बुलाएगा तो अवश्य जाएँगे। शिवदयालु ने स्वामीजी से पूछा कि ईश्वर के किस नाम का जप किया करूँ तो स्वामीजी ने 'सच्चिदानन्द' का जप करना बतलाया था।

स्वामीजी शिव वा विष्णु की पूजा का उपदेश नहीं करते थे, केवल ईश्वर की उपासना का आदेश करते थे।

शिवदयालु की कण्ठी भी उतरवा दी थी और उससे घाटों पर माँगना छुड़वा दिया था। अन्त में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी के उपदेश से उसने पुजारी का कार्य छोड़ दिया और वह डाकखाने में नौकरी करके जीवन-निर्वाह करने लगा।

गौघाट पर एक द्राविड़ संन्यासी रहता था। वह पुराणों की कथा कराया करता था और कथा की समाप्ति पर ब्रह्मभोज किया करता था। एक दिन स्वामीजी उससे शास्त्रार्थ करने गौघाट पर गये। उसे शास्त्रार्थ के लिए बुलाया, परन्तु वह न आया।

ब्रह्मा के मन्दिर का बड़ा पुजारी गोसाईं मानपुरी स्वामीजी को दुग्ध पिलाया करता था। एक दिन उसने मूर्त्ति को भोग लगाया हुआ दूध स्वामीजी को पिला दिया। यह बात स्वामीजी को विदित हो गई तो दुखित हुए और पुजारी से कहा—अरे! पत्थर को भोग लगाकर दुग्ध हमें पिला दिया। स्वामीजी के मुख से ब्रह्मा को पत्थर शब्द से अभिहित होता हुआ सुनकर पुजारी को बहुत क्रोध आया और फिर उसने स्वामीजी को दूध पिलाना छोड़ दिया।

पण्डित गङ्गाराम एक ब्राह्मण भागवत की कथा कहा करते थे। उनसे स्वामीजी ने कहा कि भागबत व्यास का नहीं वरन् बोपदेव का बनाया हुआ है। इससे पण्डितजी चिढ़ गये और चार दिन तक स्वामीजी से नहीं मिले। तब फिर एक दिन स्वामीजी उनके पास गये और उनका हाथ पकड़ लिया। पण्डितजी ने कहा कि महाराज ज़ोर करो। महाराज ने कहा कि घर की लुगाइयाँ-माइयाँ कहेंगी कि अंगुलियाँ तोड़ दी। फिर स्वामीजी ने अपने रसोइया गोविन्द से कहा कि तू पण्डितजी से ज़ोर कर। ज़ोर करने में उसका पंजा आहत हो गया और वह रोटी पकाने के योग्य न रहा।

वे केवल सच्चिदानन्द परमेश्वर को मानते थे। एक दिन पण्डित गङ्गाराम ने पूछा आप शिव को मनते हैं? स्वामीजी ने कहा कि शिव कल्याण करनेवाले का नाम है, उसे हम मानते हैं, परन्तु पार्वती के पति शिव को नहीं मानते।

स्वामीजी ने इतने लोगों की कण्ठियाँ उतरवा दी थीं कि ब्रह्मा के मन्दिर में एक बालिश्त ऊँचा कण्ठियों का ढेर लग गया था।

एक बार जोधपुर का एक वकील भी स्वामीजी के दर्शनों को आया था और उसने स्वामीजी से मारवाड़ जाने की प्रार्थना की थी। शिवदयालु पुजारी ने नागौर के पास मूँडवा ग्राम में जाकर वहाँ के हाकिम से स्वामीजी को मारवाड़ में बुलाने को कहा। उसने स्वामीजी के लिए सवारी भी भेजी, परन्तु जब वह पुष्कर पहुँची तो स्वामीजी वहाँ से अजमेर के लिए प्रस्थान कर चुके थे।

स्वामीजी पुष्कर में लोगों को शैवमत का उपदेश देते और वैष्णवमत का खण्डन करते रहे। जिस वैष्णव को शास्त्रार्थ में परास्त करते, उसके गले से तुलसी की माला उतरवा देते और तिलक के लिए उसे अपने पास से विभूति दे देते। अभी स्वामीजी पुष्कर में ही विराजमान थे कि पूर्णिमा का मेला आ पहुँचा। उस समय उन्होंने बहुत-से लोगों को शैवमत की दीक्षा दी और तुलसी की माला उतरवा कर रुद्राक्ष पहनने का आदेश किया। दो महीने के लगभग पुष्कर रहकर वे अजमेर पधारे।

(जून सन् १८६६) **अजमेर** (अधिक ज्येष्ठ संवत् १९२३)

जब स्वामीजी अजमेर पधारे तो १८६६ का जून मास था। वे वंशीधर सरिश्तेदार के बाग़ में ठहरे थे। उस समय उनके कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, मस्तक पर विभूति थी। तब वे दयानन्द के नाम से इतने प्रसिद्ध नहीं थे जितने दण्डीजी के नाम से थे। उनके विषय में यह जनरव था कि जो वेद भारतवर्ष से लुप्त हो गये थे, दण्डीजी के प्रभाव से उनका पुनः प्रचार हुआ है। उस समय वे शैवमत का पक्ष-पोषण करते थे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और कहते थे कि विष्णु की उपासना की अपेक्षा शिव की उपासना श्रेष्ठ है। उसमें एक युक्ति दिया करते थे कि शिव ही आदि देवता है। विष्णु ने अनेक अवतार लिए, परन्तु शिव ने कोई अवतार नहीं लिया।

स्वामीजी का अजमेर में अनेक लोगों से शास्त्रार्थ हुआ। एक दिन एक मौलवी से धर्म-विषय पर बात-चीत हुई और मौलवी निरुत्तर होकर चला गया। पादरी जान राबसन से भी विचार हुआ जिसका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक हिन्दुधर्म व खीस्तधर्म' (Hinduism and Christianity) में किया है। यह वर्णन निष्पक्ष भाव से लिखा हुआ ज्ञात नहीं होता, क्योंकि उन्होंने अपना ही पक्ष प्रबल रहने का उल्लेख किया है। जिन लोगों ने उस शास्त्रार्थ को अपनी आँखों से देखा और कानों से सुना उनकी साक्षी इसके सर्वथा प्रतिकूल है। हम राबसन साहब के पत्र से कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जो उन्होंने ८ सितम्बर, सन् १९०३ को देवेन्द्रबाबू को लिखा था।

"उनका शरीर विशाल, सुगठित और दर्शनीय था। एक गेरुआ वस्त्र उनके कटिप्रदेश में और एक ढीले ढङ्ग पर उनके शरीर पर पड़ा हुआ था। मुझे वे तीक्ष्णबुद्धि और प्रभावशाली व्यक्ति प्रतीत हुए और यह अच्छी भाँति समझ में आ गया कि अपने अनुयायियों को वे क्यों आकृष्ट करते थे। उस समय ज्ञात होता था कि उन्होंने पौराणिक हिन्दुओं से सर्वथा सम्बन्ध-त्याग नहीं किया था और वेदान्त के सिद्धान्त में उन्हें सन्देह नहीं था, परन्तु एकेश्वरवाद की ओर उनका नैसर्गिक झुकाव था। उन्होंने कहा था कि वे सत्य के खोजी हैं और जहाँ कहीं भी उन्हें सत्य मिलेगा वे उसका अनुगमन करेंगे। सत्य से उनका अभिप्राय सच बोलने से नहीं वरन् वास्तविक पदार्थ Reality से था। .....मनुस्मृति-वर्णित वर्ण-व्यवस्था में उनका विश्वास था....वेदों में उनका दृढ़ विश्वास था। उस समय वे केवल यजुर्वेद ही से परिचित थे। ....वह कहते थे—"मेरा विश्वास है कि वेदों में एक भी भ्रान्तिमूलक बात नहीं है और यदि तुम मुझे कोई ऐसी बात दिखा भी दोगे तो मैं यही कहूँगा कि वह चालाक धूर्त्त की मिलाई हुई है।"

"मेरा उनसे जीव-ब्रह्म की एकता पर वार्त्तालाप हुआ था, जिसका वह प्रतिपादन और मैं खण्डन करता था।"

पादरी साहब कहते हैं—"जब मैंने जीव की चेतनता की नींव पर वाद-विवाद किया तो उन्होंने माया का अवलम्बन किया, फिर मैंने ईश्वर के विभुत्व को दर्शानेवाला संस्कृत का शब्द 'सर्वव्यापक' लेकर यह युक्ति उपस्थित की कि यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो यह स्वयं 'सर्व' नहीं हो सकता। इसपर वे कुछ देर तक तो विवाद करते रहे, परन्तु फिर उन्होंने इस विषय का परित्याग कर दिया"।

पादरी साहब फिर लिखते हैं—"मुझे सन्देह था कि उन्होंने वेद पढ़े थे या नहीं। मैंने अपने पण्डित से कुछ मन्त्रों की टीका के बिना प्रतिलिपि करने को कहा और फिर उन्हें दण्डीजी के सामने रक्खा और कहा कि इनमें ऐसे-ऐसे सिद्धान्त हैं जो मेरे विचार में असत्य हैं। उन्होंने उन्हें देखा और उनके अर्थ लगाने का यत्न किया और अन्ततः स्वीकार किया कि उन्होंने ऋग्वेद नहीं पढ़ा है और बड़ी सरलचित्तता से मान लिया कि उनके लिए ऐसे पुस्तक के निर्भ्रान्त होने पर आग्रह करना जिसे उन्होंने कभी नहीं पढ़ा था, ठीक नहीं था। मैक्समूलर का ऋग्वेद का संस्करण उन्होंने प्रथम बार ही देखा था। इसके पश्चात् उन्होंने तुरन्त ही उसकी एक प्रति अपने लिये मँगाली, परन्तु इस सम्बन्ध में विनोदकारक यह बात है कि उन्होंने ईश्वरीय पुस्तक का सातवाँ नियम यह स्थिर किया है कि 'उसका ज्ञान ऐसी भाषा में होना चाहिए जो धरातल पर कहीं न बोली जाती हो'। जब मैं भारत में १८९०-९१ में आया और मैंने जिस किसी आर्य से ऐसे नियम का कारण पूछा तो उसने हर बार इसी बात की ओर सङ्केत किया कि वेदों की भाषा उस संस्कृत से भिन्न है जो लिखी और बोली जाती है। हमारा खीस्त-धर्म के मन्तव्यों पर भी कुछ विचार हुआ था, परन्तु क्योंकि अजमेर आने से पहले उनके पास खीस्त-धर्म की पुस्तकें नहीं थीं, इस कारण वे विचार करने पर प्रस्तुत नहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे। उन्होंने मुझसे ख्रीस्तियों के मोक्षविषयक सिद्धान्त का वर्णन करने को कहा और मैंने निम्नलिखित वर्णन लिखा था—

मैंने मनुष्य के पापी होने से आरम्भ किया। जब यह बात दण्डीजी से कही गई तो वे चौंक-से गये और कहने लगे कि क्या तुम पादरी होकर भी पापी हो ? क्या मैं पापी हूँ ? मैंने उत्तर दिया—"निश्चय ही मनुष्य पापी हैं"। वे इसपर भी बहस करने को उद्यत प्रतीत होते थे, परन्तु वे चुप रहे और मुझे आगे चलने का सङ्केत किया। वे अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनते रहे और इसी प्रकार सारा जनसमूह भी सुनता रहा, जब तक मैं ख्रीस्त के कार्य का वर्णन करता रहा; परन्तु जब मैं ख्रीस्त के पुनरुत्थान पर पहुँचा तो उन्होंने मुझे फिर रोका और पूछा कि क्या ख्रीस्त का शरीर फिर जी उठा था, क्योंकि उन्होंने ऐसी घटना पहले कभी नहीं सुनी थी। मैंने कहा कि आपने ख्रीस्त-धर्म के मर्मस्थल पर अंगुली रक्खी है और वह ख्रीस्त का पुनरुत्थान है। फिर मैंने यथाशक्य संक्षेप से उसकी साक्षी का वर्णन किया कि उसकी साक्षी ऐसे लोगों ने दी है जिन्हें उसका प्रतिफल, प्रतिष्ठा या पुरस्कार मिलनेवाला नहीं था अपितु उसका फल अपमान, अत्याचार और मृत्यु था। दण्डीजी ने मेरे किसी कथन पर आक्षेप नहीं किया, बल्कि यह सिद्ध करने का यत्न किया कि ऐसा पुरुत्थान उनके दार्शनिक सिद्धान्तों से सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु मैंने उसपर विचार करने से निषेध किया, क्योंकि इससे फिर वही प्रश्न विचारास्पद होते थे जिनपर हम पहले ही विचार कर चुके थे। इसके पश्चात् मैं विदा लेकर चला आया। अब तक श्रोतृवर्ग बड़े चुपचाप रहकर मनोलग्नता से सुनते थे, परन्तु अब वे खड़े हो गये और टीका-टिप्पणी, सम्मतियों से एक कोलाहल मच गया। बहुतों ने दण्डीजी से असन्तोष प्रकट किया कि उन्होंने जब ख्रीस्त-धर्म का मर्मस्थल उनके सम्मुख रक्खा तो उन्होंने उसपर आक्रमण करने से आना-कानी की....।

दण्डीजी ने ख्रीस्त-धर्म के प्रचारकों के समक्ष यह इच्छा भी प्रकट की कि हम उनके साथ सरकार में मूर्त्तियों और मूर्त्तिपूजा के दमन करने के लिए प्रार्थना करने में सम्मिलित हो जाएँ। हमने उत्तर दिया कि यद्यपि हम उनके दृष्टिगत आशय से पूर्णतया सहानुभूति रखते हैं, परन्तु हमारे विचार में किसी मनुष्य के धर्म में हस्तक्षेप करना सरकार के कार्य-क्षेत्र से बाहर है और हम इसका साधन केवल समझाने-बुझाने को ही मानते हैं।"

हमें राबसन साहब के वर्णन पर आश्चर्य भी होता है और हँसी भी आती है। आश्चर्य तो इसलिए कि उन्होंने संवाद को उसके अवास्तविक रूप में प्रकट करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया। नवीन-वेदान्त की युक्तियों के सामने अब भी कोई पादरी नहीं ठहर सकता और राबसन साहब यह दिखलाना चाहते हैं कि स्वामीजी उनसे इतने पिछड़े कि उन्होंने विषय का ही परित्याग कर दिया। पादरी साहब की कौन-सी युक्ति ऐसी प्रबल थी जिसका उत्तर नवीन-वेदान्ती न दे सकते हों या स्वामीजी न दे सकते हों। हँसी इसलिए आती है कि ख्रीस्त के पुनरुत्थान की कथा सुनकर महाराज-सा मूर्त्तिपूजा के दुर्ग पर आक्रमण करनेवाला वीर कोई आक्रमण न कर सका और वह उसे सुनकर उत्तर के लिए बगलें झाँकने लगा। पुनरुत्थान की साक्षी का भाँडा तो अब सर्वथा फूट गया है और सिद्ध हो गया है कि वह इन्द्रजाल सर्वांश में पीछे से गढ़ा गया है, वास्तव में ख्रीस्त का सूली पर प्राण-वियोग नहीं हुआ था और वह जीवित ही क़ब्र से निकाल दिया गया था, परन्तु इस प्रमाण के सम्मुख न होते हुए भी वह हर प्रकार से अनुभवविरुद्ध, युक्तिशून्य और केवल कल्पनात्मक है। दयानन्द के लिए ऐसी बालविनोद की कथा का निराकरण करना कुछ भी कठिन न था। बात यह है कि पादरी साहब दयानन्द की बाणवर्षा से इतने भयभीत हुए कि रणस्थल को ही छोड़ भागे। उसके पश्चात् विजयदुन्दुभि बजाना बहुत ही सहज है। जो लोग उस समय उपस्थित थे, उनकी साक्षी यह है कि पादरी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साहब परास्त हुए और फिर स्वामीजी के सम्मुख ठहरने का साहस न कर सके।

दूसरी बात यह कि महाराज ऋग्वेद के मन्त्रों का अर्थ न कर सके और उन्होंने मुक्तहृदय से स्वीकार कर लिया कि उनके पक्ष में वेदों के निर्भ्रान्त होने पर आग्रह करना ठीक न था। यह सब पादरी साहब की मनगढ़न्त है। स्वामीजी मन्त्रों का अर्थ न कर सके हों यह कदापि समझ में नहीं आता। पादरी साहब ने यह नहीं बतलाया कि वे कौन-से मन्त्र थे। यदि ऐसा करते तो स्पष्ट ही उनके कथन की असत्यता प्रकट हो जाती।

अन्त में पादरी साहब लिखते हैं। "उस समय उनकी बुद्धि और धार्मिक विचारों के विकास का परिपाक हो रहा था। आत्मा और धर्म-सम्बन्धी प्रबल विश्वासों ने उनकी सारी प्रकृति पर अधिकार प्राप्त कर लिया था और प्रचलित धार्मिक पद्धति का अविश्वासी बना दिया था। वे दर्शनों और अपने देश के शास्त्रों की ओर इस दृष्टि से गये कि वहाँ भी उन्हें 'सत्य' मिल सकता है वा नहीं और वे उस समय वेदों का स्वाध्याय आरम्भ कर रहे थे। उनके पश्चात्कालीन व्यवहार से मुझे ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों से अपनी शिक्षाओं का जोड़ मिलाने और उनसे अपने विश्वासों की सङ्गति लगाने का मन से यत्न किया, परन्तु यह बहुत अंशों में ऐसा ही था जैसा पुरानी बोतलों में नये मद्य का भरना होता है।"

यह कोई अनूठा आक्षेप नहीं है। आर्यसमाज के सारे विरोधी विशेषकर ख्रीस्ती लोग यही कहते हैं कि स्वामीजी ने खींचातानी करके वेदों के अर्थ अपने विचारों के अनुकूल किये हैं। आगरा कालेज के प्रसिद्ध प्रिंसिपल मिस्टर टामसन भी यही कहा करते थे कि "स्वामीजी ने पहले तो एकेश्वरवाद वेद में भरा और अब उसे वेदों में से निकाल रहे हैं§। इतना हम मानने को तैयार हैं कि उस समय उनके मन्तव्यों के विकास का परिपाक हो रहा था और उस समय तक उन्होंने सब वेदों को मननपूर्वक नहीं पढ़ा था।

पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित में लिखा है कि वह शास्त्रार्थ पादरी ग्रे, राबसन और शूलब्रेड से हुआ था। प्रथम तीन दिन ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम और वेद-विषय पर बातचीत हुई, चौथे दिन ईसा के ईश्वर होने और मरकर पुनर्जीवित होने पर। इस शास्त्रार्थ में पादरियों ने एक संस्कृत वाक्य को यह कहकर प्रस्तुत किया था कि यह वेदमन्त्र है, परन्तु जब उनसे कहा गया कि उसे वेद में दिखाओ तो न दिखा सके।

दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि किसी आक्षेप पर चिढ़कर शूलब्रेड ने कहा कि ऐसी बातों से आप कभी कारावास में चले जाएँगे। दयानन्द ने उत्तर दिया कि आप यदि ऐसा कष्ट दिलाएँगे तो मुझे तनिक भी चिन्ता न होगी। मैं कारावास जाने के भय से सत्य को नहीं छोड़ सकता।

सम्भवतः इसी समय की स्वामीजी की सिद्धि की एक कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—

श्यामलालसिंह एक व्यक्ति Accountant General of Railways के कार्यालय में क्लर्क थे, उन्हें स्वामीजी में अत्यन्त भक्ति हो गई थी। एक दिन उन्होंने स्वामजी के लिए अपने घर से दुग्ध भिजवाया। उनकी माता को यह बात बुरी प्रतीत हुई और उसने क्रोध करके कहा कि इस मुंडिया (संन्यासी) को दूध क्यों पिलाता है? जब श्यामलालसिंह का भृत्य दूध लेकर स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ तो उन्होंने तिरस्कारपूर्वक उससे कहा कि यह दूध ले-जाओ मुझे ऐसा चिन्तायुक्त दूध नहीं चाहिए और आगे से मेरे लिए ऐसी अनिच्छा से भेजा हुआ दूध कभी मत लाना। श्यामलालसिंह को इसपर बहुत खेद हुआ और जब घर में जाकर पूछा तो उन्हें अपनी माता की इस कृपणता का वृत्तान्त ज्ञात हुआ।

उन दिनों अजमेर में रामसनेहियों के एक महन्त ठहरे हुए थे। स्वामीजी उनके निवास-स्थान के पास होकर निकले तो उन्होंने देखा कि उसके भीतर बहुत-सी स्त्रियाँ जा रही हैं और बाहर आती हैं। स्वामीजी ने जोषी रूपराम को भेजा कि देखो क्या बात है। उन्होंने आकर समाचार दिया कि वहाँ रामसनेहियों के

§ "First he read monotheism into the Vedas and then was reading it out of them."

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महन्त ठहरे हुए हैं और ये स्त्रियाँ उनकी चेली हैं, भेंट लेकर दर्शनों को आती हैं। फिर स्वामीजी ने रूपराम द्वारा महन्तजी से कहला भेजा कि आप हमसे शास्त्रार्थ कर लीजिए, परन्तु महन्तजी ने इन्कार किया कि हमसे और स्वामीजी से उठने-बैठने में न बनेगी। स्वामीजी ने उत्तर में कहला भेजा कि आप इसकी चिन्ता न करें आप गद्दी पर बैठे रहें हम नीचे बैठ जाएँगे, फिर शास्त्रार्थ में जिसकी जीत हो वही गद्दी पर बैठ जाए और एक पत्र रामसनेहियों के मत-खण्डन विषयक लिखकर उनके पास भेजा, परन्तु महन्तजी ने हँसकर कहा कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते। महन्तजी इतने भयभीत हुए कि रात्रि में अजमेर से अपनी मण्डली को साथ लेकर कहीं चले गये।

पण्डित लेखराम के नाम से प्रकाशित दयानन्द-चरित में अजमेर-निवास के सम्बन्ध में निम्नलिखित घटनाओं का उल्लेख है—

शिवदयालु ब्राह्मण पुष्कर से ही स्वामीजी के साथ आया था। वह स्वामीजी से अष्टाध्यायी पढ़ा करता था। ठाकुर रणजीतसिंह ने जोषी रूपराम को स्वामीजी को जयपुर लिवा लाने के लिए पुष्कर भेजा था। शिव नारायण भी स्वामीजी के साथ थे। अजमेर पहुँचकर स्वामीजी ने जोषीजी और शिवनारायण द्वारा मार्गों पर विज्ञापन लगवा दिये कि जिस किसी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना हो कर ले। इसपर अजमेर के पण्डितों ने शास्त्रार्थ के लिए बातचीत की। स्वामीजी ने पुष्कर में पण्डित व्यंकट शास्त्री को कहला भेजा कि यहाँ शास्त्रार्थ होनेवाला है हम आपको मध्यस्थ रखेंगे। व्यंकट शास्त्री ने स्वामीजी से कहा कि जब आवश्यकता हो हमें बुलाइए हम आपकी सहायता करेंगे, परन्तु अन्त में अजमेर के पण्डित शास्त्रार्थ से जी चुरा गये और व्यंकट शास्त्री को बुलाने की आवश्यकता न हुई।

एक दिन स्वामीजी मेजर ए० जी० डेविडसन, डिप्टी कमिश्नर, अजमेर से मिलने गये। स्वामीजी ने उनसे कहा कि राजा प्रजा का पिता होता है और प्रजा पुत्र होती है। जब पुत्र कोई दुष्कर्म करने लगे तो माता-पिता का कर्त्तव्य है कि उसे बचावे। मत-मतान्तरवादी आपकी प्रजा को लूट रहे हैं। आप इसका प्रबन्ध करें। डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि यह धार्मिक विषय है, इसमें सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती, यदि कोई अन्य विशेष बात हो तो हम सहायता करने को उद्यत हैं।

कहते हैं कि स्वामीजी अपटन साहब, असिस्टेंट कमिश्नर से भी मिले थे।

एक दिन स्वामीजी बंशीलाल के बाग़ में कुर्सी पर बैठे हुए थे। सामने होकर कर्नल ब्रुक, एजण्ट गवर्नर जनरल निकले। वह गेरुआ वस्त्रवालों से बहुत चिढ़ते थे। पण्डित वृद्धिचन्द्र जो स्वामीजी से अष्टाध्यायी-महाभाष्य पढ़ते थे, स्वामीजी से बोले कि महाराज आप कुर्सी दूसरी ओर कर लें यह साहब लोग संन्यासियों से बहुत जलते हैं। स्वामीजी ने कहा हम तो यही चाहते हैं और कुर्सी को और आगे करके बैठ गये। ब्रुक साहब बाग़ के भीतर चले आये। स्वामीजी उन्हें बाग़ में प्रवेश करते देख इस विचार से कि यदि कुर्सी पर बैठे रहेंगे तो उनके सम्मान के लिए उठना पड़ेगा, पहले से ही कुर्सी से उठकर टहलने लगे। वृद्धिचन्द्र ने कहा कि मैं आपसे पहले ही कहता था, परन्तु आपने न माना। स्वामीजी ने कहा कुछ परवाह नहीं। ब्रुक साहब ने आकर अपनी टोपी उतारी और स्वामीजी से हाथ मिलाकर स्वामीजी के सामने की कुर्सी पर बैठ गये और बातें करते रहे जो इस प्रकार थीं—

स्वा०—आप धर्म का स्थापन करते हैं वा खण्डन ?

ब्रु०—धर्म-स्थापन करना तो हमारे यहाँ भी अच्छा है, परन्तु जिसमें लाभ हो वह करते हैं।

स्वा०—आप लाभ की नहीं प्रत्युत हानि की बात करते हैं।

ब्रु०—कैसे ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वा०—देखिए, एक गौ से कितना लाभ होता है और उससे कितने मनुष्यों का पालन होता है। फिर आप बतलाइए गो-वध में आपको लाभ है या हानि ?

ब्रु०—होती तो हानि है।

स्वा०—तो आप गो-वध क्यों करते हैं ?

ब्रु०—यह बात आपकी हमें स्वीकार है, आप हमारे बंगले पर पधारें, हम वहाँ बातें करेंगे।

यह कहकर ब्रुक साहब चले गये।

दूसरे दिन स्वामीजी को ब्रुक साहब की गाड़ी लेने के लिए आई। स्वामीजी जोषी रूपराम को साथ लेकर गये और साहब से पौन घण्टे तक गो-रक्षा विषय पर बातचीत हुई। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि गो-वध हानिकारक है, परन्तु उसका बन्द करना मेरे अधिकार में नहीं है, आप लाट साहब से मिलें। ब्रुक साहब ने उन्हें एक चिट्ठी लिखकर दी कि आप यह चिट्ठी लाटसाहब को दिखलावें, वे आपसे अवश्य मिलेंगे। एक चिट्ठी उन्होंने महाराजा रामसिंह को भेजी कि शोक है कि आपने ऐसे वेदवक्ता विद्वान् से बातचीत न की।

कहते हैं कि इस चिट्ठी के पहुँचने पर महाराजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने ठाकुर साहब अचरौल से स्वामीजी को बुलाने के लिए कहा। ठाकुर साहब ने कहा कि मैंने उन्हें जयपुर लिवा लाने के लिए मनुष्य भेजे हैं, वे अवश्य जयपुर पधारेंगे, तब मैं श्रीमानों से निवेदन करूँगा।

कहते हैं कि डिप्टी कमिश्नर ने भी एक चिट्ठी स्वामीजी को दी थी। स्वामीजी भागवत को भड्डुआ पुराण और मन्दिरों को अड्डा कहा करते थे। मालाओं को गले में काष्ठ का भार बतलाते थे। मूर्त्तिपूजा और भागवत का खण्डन करने के कारण ब्राह्मण उनके शत्रु हो गये थे।

एक दिन कुछ ब्राह्मणों ने शिवबाग़ में स्वामीजी से शास्त्रार्थ करना निश्चय किया। उन लोगों का विचार था कि इस मिस से स्वामीजी को उस बाग़ में बुलाकर पीटें। स्वामीजी ने पहले से कुछ मनुष्यों को शिवबाग़ में जाकर वहाँ का हाल देखने को भेज दिया था। उन्होंने जाकर देखा कि वहाँ कोई लिखा पढ़ा मनुष्य नहीं है, केवल शिवबाग़ के पुजारी और कुछ भङ्गड़ ब्राह्मण लट्ठ लिये खड़े हैं। यह बात उन्होंने स्वामीजी से आकर कही। स्वामीजी शिवबाग़ में जाने को तैयार थे और कमरे से बाहर आ गये थे, परन्तु वहाँ का हाल सुनकर फिर वहाँ नहीं गये।

एक पटवारी ने दस प्रश्न लिखकर स्वामीजी से पूछे कि संन्यासी को एक स्थान में तीन दिन से अधिक न ठहरना चाहिए और बग्घी आदि में सवार न होना चाहिए, इत्यादि। इन प्रश्नों का स्वामीजी ने उत्तर दिया और लिखा कि संन्यासी को एक स्थान में तीन दिन से अधिक न ठहरने की बात सत्य है, परन्तु जहाँ अन्धकार हो वहाँ तीन दिन से भी अधिक उपदेश के लिए ठहरना ठीक है।

ब्राह्मणों ने कहा कि आप भागवत का खण्डन करते हैं, उसकी अशुद्धियाँ लिखकर दीजिए। स्वामीजी ने तीन चार पत्रों पर उसकी अशुद्धियाँ संस्कृत में लिखकर दी थीं।

पं० वृद्धिचन्द्र और छगनलाल के पास एक भड्डुआ भागवत की पुस्तक थी, जिसके अन्त में ज्येष्ठ द्वितीय ६=७ जून १८६६ बृहस्पतिवार लिखा था।

अजमेर-निवास के दिनों में ही दो तैलिङ्गी वा महाराष्ट्र साधु नागपर्वत के जङ्गल से स्वामीजी से मिलने आये। वे संस्कृत बोलते थे, आर्यभाषा नहीं जानते थे। वे स्वामीजी के दर्शनों को दो बार आये थे। दूसरी बार उन्होंने स्वामीजी से प्रसङ्गवश बात-चीत करते हुए कहा कि हम सर्वथा शान्त हैं। स्वामीजी ने उनसे कहा कि आपने अभी अहङ्कार नहीं जीता है। उन्होंने कहा कि हमने जीत लिया है। स्वामीजी ने अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचारी को सङ्केत कर दिया। जब वे स्वामीजी से विदा होकर बाहर गये तो स्वामीजी का ब्रह्मचारी किसी बात पर उनसे उलझ पड़ा और वह और ब्रह्मचारी आपस में गुत्थम-गुत्था हो गये, इसपर कोलाहल हुआ। स्वामीजी ने समझाकर उन्हें अलग किया और कहा कि आप तो कहते थे हमने अहङ्कार को जीत लिया है। इसपर वे लज्जित हुए और स्वामीजी से क्षमा माँग और नमोनारायण कहकर विदा हो गये और लोग भी स्वामीजी से नमोनारायण ही करते थे और स्वामीजी उसका उत्तर नमोनारायण से देते थे।

दिल्लीवाले पं० हरिश्चन्द्र के गुरुभाई दिल्ली-निवासी पण्डित से स्वामीजी का वार्त्तालाप हुआ था। स्वामीजी ने मनुस्मृति और उपनिषदों के प्रमाणों से उसे निरुत्तर कर दिया था। वह स्वामीजी के पाण्डित्य और वाक्चातुर्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने एक दिन स्वामीजी को भोजन कराया।

बाबूलाल जैनी से तीन दिन तक धर्म-विषय पर स्वामीजी का वार्त्तालाप हुआ। अन्त में उसने स्वामीजी को नमस्कार करके कहा कि महाराज आप जो कहते हैं, वह ठीक है।

धन्नालाल व अमृतसिंह जैनियों से भी वार्त्तालाप हुआ था। धन्नालाल ने कुछ प्रश्न स्वामीजी से किये। स्वामीजी ने उसे समझाया, परन्तु वह हठ करता रहा। स्वामीजी ने उसकी पुस्तक रख ली और कहा कि तुम नास्तिक हो, तुम फिर यहाँ आना, हम तुम्हें भली-भाँति समझा देंगे, परन्तु वह फिर न आया। वह डिप्टी कमिश्नर के पास गया और कहा कि स्वामीजी ने मेरी पुस्तक छीन ली है। साहब ने राय दौलतराम से कहा और उन्होंने स्वामीजी से उसकी पुस्तक दिलवा दी।

अजमेर में भी स्वामीजी ने लोगों की कण्ठियाँ उतरवाई थीं। अजमेर के निकट सावर के ठाकुर साहब उनकी सेवा में उपस्थित हुए थे और उनके उपदेश से अपनी कण्ठी उतार दी थी।

"स्वामीजी के विचार उस समय तक परिपक्व नहीं हुए थे। यह ठीक है कि उस प्रसिद्ध शिवरात्रि से उनके मन में मूर्त्तिपूजा के प्रति अश्रद्धा हो गई थी, परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे मूर्त्तिपूजा को सर्वथा त्याज्य ही समझते रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है उनके पैतृक संस्कार एक बार पुनः जाग्रत् हो उठे थे और थोड़े समय के लिए वे शैवमत के पक्षपाती हो गये थे। हम नहीं कह सकते कि मथुरा में गुरु विरजानन्द के पास रहते हुए उनके धार्मिक विश्वासों की क्या अवस्था थी। स्वयं विरजानन्द के धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना कठिन है। यह तो अवश्य ज्ञात होता है कि प्रचलित रीति की मूर्त्तिपूजा में उनका विश्वास न था, परन्तु वे इस विश्वास को कभी उत्कटरूप से प्रकट नहीं करते थे। विरजानन्द के पास आने के समय भी स्वामी दयानन्द विभूति लगाते थे और रुद्राक्ष की माला पहनते थे। इससे प्रतीत होता है कि वे उस समय तक शैवमतानुयायी थे। विरजानन्द भी दुर्गा-सप्तशती का पाठ किया करते थे और इसे दयानन्द भी ग्वालियर की स्थिति के समय तक करते रहे। आगरा में रहने के समय भी स्वामीजी के विचारों में कोई परिवर्तन नहीं आया था। यहाँ उन्होंने अपने गले में से रुद्राक्ष की माला उतार कर प्रीति के चिह्न के रूप में पण्डित सुन्दरलालजी को दी थी और या तो पार्थिव पूजा का उपदेश दिया था या यह जानते हुए कि पण्डित सुन्दरलाल पार्थिव पूजा करते हैं, उन्हें ऐसा करने से रोका नहीं था। ग्वालियर में भी वे शिव-सहस्रनाम का पाठ करते थे और दुर्गा-सप्तशती, लिङ्गपुराण के पठन का भी उपदेश करते रहे थे। यहाँ यह ठीक है कि वे शिव की कृत्रिम मूर्त्ति के विरोधी थे और इसी कारण वे महारुद्र मोटेश्वर के मन्दिर का प्रसाद भी ग्रहण नहीं करते थे, परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कठिन है कि उस समय वे मूर्त्तिपूजा के सर्वांश में और सर्वथा विरोधी थे। हमारे अनुमान में उस समय वे शिव की अकृत्रिम मूर्त्ति की पूजा को छोड़कर शेष सब प्रकार की मूर्त्तिपूजा के विरोधी थे। एक बात अवश्य ऐसी है कि जिसे इस प्रमाण में प्रस्तुत किया जा सकता है कि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा का खण्डन ही करते थे, मण्डन नहीं करते थे और वह यह है कि किसी ने कभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी और कहीं भी स्वामीजी को शिवलिङ्ग की पूजा करते नहीं देखा। वे बहुधा शिवमन्दिरों में जाकर ठहरे, परन्तु उन्होंने कभी शिवलिङ्ग पर जल तक नहीं चढ़ाया। पण्डित लेखरामकृत जीवनचरित में जयपुर के वृत्तान्तर्गत लिखा है कि वे परमात्मा को शिव नाम से मानते थे, परन्तु पार्वती के पति शिव की कभी चर्चा नहीं करते थे, अपितु उसके विरोधी थे ! परन्तु जब उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने (जयपुर में) शिवमत का समर्थन किया तो इसमें कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि उस समय तक वे शैव थे। यह हो सकता है कि उनके विचार, साधारण शैवों से किन्हीं अंशों में विलक्षण हों, परन्तु यह कहना कि वे शैव नहीं थे ठीक प्रतीत नहीं होता। इस बात को छोड़कर यह स्पष्ट है कि वे सन्ध्या-गायत्री का उपदेश करते थे। आर्षग्रन्थों की महिमा को मानते थे। सूर्य को अर्घ देने में भी उन्हें विश्वास था और यह तो बहुत दिनों तक रहा प्रतीत होता है, क्योंकि संवत् १६३१ में जो सन्ध्या की पुस्तक उन्होंने संस्कृत में लिखी थी उसमें सूर्य को अर्घ देना सन्ध्योपासना का एक अङ्ग रक्खा है। उक्त पुस्तक में लिखा है—

पुनः सूर्य्योदये सति परमेश्वरेणैव सूर्य्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा गायत्रीमन्त्रेण अर्घत्रयं सूर्य्याभिमुखं प्रक्षिप्य परं ब्रह्म प्रार्थयेत्॥

इसके अर्थ यह हैं—फिर सूर्योदय होने पर परमार्थस्वरूप परब्रह्म का चिन्तन करें कि परमेश्वर ने ही सूर्यादि सब जगत् रचा है और सूर्य के सामने गायत्री से तीन अर्घ देकर परम ब्रह्म से प्रार्थना करें।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि इसका अभिप्राय सूर्य को उपास्य भाव से अर्घ देना नहीं है। यह हम भी मानते हैं, क्योंकि उपर्युक्त उद्धरण में स्वयं लिखा है कि सूर्यादि सब जगत् परमेश्वर ने ही रचा है और इसलिए सूर्य को जो अर्घ देना है वह सूर्य को उपास्य-देव मानकर अर्घ देना नहीं है, परन्तु किसी भाव से हो, अर्घ देना तो स्पष्ट ही लिखा है। यह नहीं लिखा कि अर्घ किस प्रयोजन के लिए देना चाहिए, अतः इसमें ननु-नच का कोई स्थल नहीं है कि अभी तक स्वामीजी अनेक आवश्यक विषयों पर अपने सिद्धान्त निश्चित नहीं कर सके थे। आगरे में जब पण्डित विष्णुलाल मोहनलाल पण्ड्या ने स्वामीजी से पूछा कि विरजानन्द से जो प्रतिज्ञा आप करके आये हैं उसके विषय में क्या कर रहे हैं तो उन्होंने उसका उत्तर दिया था कि जब तक मैं सब वेदों को सम्यग्रूप से नहीं विचार लूँगा तब तक गुरुजी से की हुई प्रतिज्ञा कार्य में परिणत न हो सकेगी। यही उत्तर इन्हीं पण्ड्याजी को स्वामीजी ने इसी प्रश्न के उत्तर में मेरठ में दिया था। अस्तु, स्वामीजी स्वयं जानते थे कि जो कार्य विरजानन्द ने उन्हें सौंपा है, अभी वे उसके योग्य नहीं हैं। उन्हें बीच-बीच में जो संशय होते रहते थे, उनकी वे लिखकर वा स्वयं मथुरा जाकर विरजानन्द से निवृत्ति कर आते थे। यह बात स्वामीजी ने आत्म-चरित में स्वीकार की है। वस्तुतः स्वामीजी इस समय अपने भावी कार्य के लिए, जो संसार में एक नया युग लानेवाला था, तैयारी कर रहे थे।

(जून सन् १८६६) किशनगढ़ (अ० ज्येष्ठ संवत् १६२३)

स्वामीजी अजमेर से लौटते हुए किशनगढ़ आये और सुखसागर पर ठहरे। वहाँ पण्डित कृष्णवल्लभ जोषी अच्छे विद्वान् थे। एक दूसरे सज्जन महेशदास राजा की माता के दीवान थे। ये दोनों स्वामीजी से बहुत प्रीति करते थे। किशनगढ़ के महाराजा पृथ्वीसिंह वल्लभकुल सम्प्रदाय के अनुयायी थे और स्वामीजी उसके कट्टर वैरी थे, अतः वे स्वामीजी से द्वेष करते थे। किशनगढ़ पहुँचने के दूसरे दिन ठाकुर गोपालसिंह ३०-४० मनुष्यों और ५-७ राजपण्डितों को साथ लेकर स्वामीजी को अप्रतिष्ठित करने के अभिप्राय से स्वामीजी के डेरे पर आये। सम्भव है इसमें महाराजा का भी परामर्श वा सङ्केत रहा हो। वृद्धिचन्द्र और रूपराम स्वामीजी के साथ थे। सायङ्काल के ५ बजे थे। स्वामीजी ने वृद्धिचन्द्र से कहा कि पहले शौच से निवृत्त हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लें फिर इन लोगों से बात-चीत करेंगे। शौचादि से लौटकर स्वामीजी ने स्नान किया और विभूति लगाकर काष्ठ के तख्ते पर विराजमान हो गये। वे लोग जाजम बिछाकर बैठे हुए थे। स्वामीजी ने पूछा आप लोग क्यों आये हैं ? इसके उत्तर में एक वल्लभकुलीय पण्डित ने एक पुस्तक के कुछ पत्रे स्वामीजी के सम्मुख रक्खे। स्वामीजी ने कहा तुम ही पढ़ो, हम उत्तर देंगे। उनमें वल्लभकुल की प्रशंसा लिखी थी। सुनकर स्वामीजी ने वल्लभकुल के मत का खण्डन करना आरम्भ किया। इसका वह पण्डित उत्तर न दे सका। इसपर वे लोग स्वामीजी पर आक्रमण करने को उद्यत हुए। स्वामीजी यह देखकर तख्त पर खड़े हो गये और कहा कि तुम मुझे अकेला मत समझो और मैं अकेला भी तुम्हारे लिए पर्याप्त हूँ। यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहो तो शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूँ और शस्त्रार्थ करना चाहो तो उसके लिए भी उद्यत हूँ, इतने में ही कुछ लोग, जो संन्यासियों के श्रद्धालु थे, आ गये। उन्हें देखकर वे लोग चले गये। ५ दिन किशनगढ़ ठहरकर स्वामीजी दूदू पहुँचे और ठाकुर साहब के महल में ठहरे। तीन दिन विश्राम करके और उपदेश देकर बागरू गये। वहाँ केवल एक रात एक बग़ीचे में टिके और वहाँ से चलकर अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंह के बाग में जा उतरे।

(जून—अक्तू० सन् १८६६) **जयपुर** (अ० ज्येष्ठ—आश्विन संवत् १९२३)

ठाकुर रणजीतसिंह ने स्वामीजी के जयपुर पधारने का समाचार महाराजा रामसिंहजी से निवेदन किया। महाराज ने व्यास बख्शीराम से कहा कि स्वामीजी को महलों में लिवा लाओ। व्यासजी ने स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होकर महाराजा की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने कहा कि हमारी इच्छा महलों में जाने की नहीं है। यदि महाराजा को हमसे सम्भाषण करने की इच्छा है तो किसी समय यहाँ ही पधारें। यह बात व्यासजी ने महाराजा से जा कही। तब उन्होंने ठाकुर रणजीतसिंह से कहा कि स्वामीजी को महलों में अवश्य लाना चाहिए। इसपर ठाकुर रणजीतसिंह कई प्रतिष्ठित सरदारों के साथ स्वामीजी की सेवा में आये और अनेक आग्रह-अनुरोध करके स्वामीजी को महलों में पधारने पर राजी कर लिया। तब उनके साथ चलकर वह मौज-मन्दिर में विराजमान हुए, परन्तु दैवयोग से उसी समय महाराजा अन्तःपुर में चले गये और एक चेले ने आकर कहा कि अब महाराजा बाहर नहीं पधारेंगे। इसपर सब सरदार और स्वामीजी वापस चले आये और फिर महाराजा के अनेक यत्न करने पर भी महलों में जाने को उद्यत नहीं हुए।

आधे आश्विन तक स्वामीजी जयपुर में रहे, फिर वहाँ से हरिद्वार जाने के विचार से उन्होंने प्रस्थान का संकल्प किया तो रामदयालु कामदार और सरदार रणपतसिंह रोने लगे। स्वामीजी ने कहा कि हमने तुम्हें रोने का उपदेश नहीं दिया है, किन्तु हँसने का उपदेश दिया है।

(अक्तू०—नव०सन् १८६६) **आगरा** (कार्तिक कृ०—मार्गशीर्ष संवत् १९२३)

कार्त्तिक बदी ६, संवत् १९२३ के निकट महाराज आगरा पहुँचे। उन दिनों वहाँ लार्ड लॉरेन्स के दरबार का उपक्रम हो रहा था। कहते हैं कि यह दरबार तड़क-भड़क में लार्ड केनिंग के दरबार से दूसरे नम्बर पर था। दरबार १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक होनेवाला था, परन्तु १६ नवम्बर को लार्ड लॉरेन्स के रुग्ण हो जाने के कारण २० नवम्बर को समाप्त हुआ। स्वामीजी दरबार में आये हुए लोगों को धर्म का उपदेश देते रहे और एक लघु पुस्तक ७, ८ पृष्ठ की श्रीवैष्णवों के खण्डन में लिखकर छपवाई तथा उसकी कई सहस्र प्रतियाँ आगरे में बाँटी और शेष हरिद्वार में बाँटने के अभिप्राय से साथ ले-गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मथुरा, मेरठ

आगरे से महाराज मथुरा पधारे। स्वामीजी ने विरजानन्द की सेवा में उपस्थित होकर दो अशरफ़ी और एक मलमल का थान उनकी भेंट किया और वह पुस्तिका उन्हें सुनाई और निवेदन किया कि मैं धर्मोपदेश के लिए हरिद्वार जाता हूँ। दण्डीजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। स्वामीजी ने दण्डीजी से अपने सन्देह निवृत्त किये और कई दिन गुरु-सेवा में रहकर विदा हुए। मेरठ पहुँचकर वे सूर्यकुण्ड पर देवी के मन्दिर में ठहरे। मेरठ में वहाँ के सुप्रसिद्ध रईस पं० गङ्गाराम डाकवाले से साक्षात् हुआ। उन दिनों स्वामीजी दोशाला ओढ़ते, जुर्राब पहनते और गले में स्फटिक की माला धारण करते थे। गोरक्षा और वेद के पठन-पाठन पर बल देते थे। स्वामीजी ने पण्डित गङ्गाराम से गोरक्षा में सहायता देने के लिए कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि इस विषय में यदि आप राजाओं की निज सम्मति ला दो तो मैं भी सहायता करूँगा। पं० गङ्गाराम ने स्वामीजी से कहा कि एक ब्रह्मचारी ने मुझे कृष्ण अभ्रक दिया था जिससे बुढ़ापे में जवानी की शक्ति आ जाती है। स्वामीजी ने कहा कि हमारे पास भी है ले-लेना और एक पुड़िया उसे बाँधकर दी। पं० गङ्गाराम ने कहा कि मुझे सब दिखला दो। उनके आग्रह पर जितना कृष्ण अभ्रक उनके पास था, सब दिखला दिया, और उसमें से यथेच्छ उन्हें दे दिया। फिर पण्डित गङ्गाराम ने स्वामीजी से कहा कि इससे तो कामदेव बढ़ता है, आप इससे कैसे बचे ? उन्होंने कहा इसकी युक्ति है—एकान्तसेवी रहो, नाच-तमाशे मत देखो, प्रणव का रात-दिन जप करो, जब अत्यन्त आलस्य प्रतीत हो तब सोओ, इससे गहरी निद्रा आती है और मनुष्य स्वप्न नहीं देखता, निद्रा खुलने पर भजन में रत हो जाओ, न बुरा देखो, न बुरा सुनो और चित्त की वृत्तियों को चलायमान मत होने दो। पं० गङ्गाराम ने स्वामीजी से कीमिया बतलाने को कहा। उन्होंने कहा एक साधु ने हमें बतलाई थी, परन्तु हमने की नहीं है। उसकी युक्ति यह है कि एक भिलावे के वृक्ष को जो एक हाथ ऊँचा हो लो, उसमें तले में एक बरमे से छिद्र करो, उसमें पहले पारा डालो फिर फिटकरी और फिर पारा, इसी प्रकार उसे भरो और चारों ओर से उसे खोद कर पत्तों सहित जला दो तो उसमें से चाँदी की डली निकल आवेगी। यदि हम से हो गया तो हम तुम्हें सूचना देंगे और तुमसे हो जाए तो तुम हमें सूचना देना, परन्तु हम समझते हैं इसमें प्रयत्न करना निष्फल होगा।

फिर वे हरिद्वार को चले और फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा संवत् १९२३ अर्थात् ७ मार्च सन् १८६६ को वहाँ पहुँच गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चम अध्याय

संवत् १९२४ वि०=सन् १८८७ ई०

(७ मार्च—मई १८६७) हरिद्वार (फाल्गुन शु० १ सं० २३—वैशाख सं० १९२४)

खण्डन-पताका—हरिद्वार पहुँचकर स्वामीजी सप्तसरोवर पर ठहरे जो हृषीकेश और हरिद्वार के बीच में हरिद्वार से तीन कोस पर हैं। वहाँ बाड़ा बाँधकर और ८-१० छप्पर डालकर उन्होंने डेरा किया और एक पताका गाड़ दी, जिसपर 'पाखण्ड-खण्डन' शब्द लिखे हुए थे। उस समय १५-१६ संन्यासी और ब्राह्मण उनके साथ थे, उनके वस्त्र गेरुआ थे, गले में रुद्राक्ष की माला थी, जिसमें एक स्फटिक का मनका पड़ा हुआ था।

अद्‌भुत संन्यासी—स्वामीजी ने प्रतिदिन उपदेश देना आरम्भ किया जिसमें उन्होंने मूर्त्तिपूजा, अवतार-वाद, भागवत, तीर्थ, तिलक, छाप, कण्ठी चक्राङ्कण आदि का प्रबल खण्डन किया, जिसकी चर्चा सारे मेले में फैल गई और सैकड़ों मनुष्य इस अद्‌भुत संन्यासी को, जो हिन्दू (पौराणिक) धर्म के आधारभूत पुराणों और मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता था, देखन के लिए आने लगे और उनके डेरे पर हर समय मेला-सा लगा रहने लगा। दर्शकों में सभी प्रकार के लोग होते थे। कोई आते और उनके विचित्र उपदेश को सुनकर चकित रह जाते और चुपचाप जले जाते। किन्हीं के मन में उनका उपदेश घर कर जाता, ज्ञानचक्षु खुल जाते, भ्रम दूर हो जाते और उनके अनुयायी बन जाते। प्रचलित धर्म के ठेकेदार भी आते, स्वामीजी की युक्तियों का उत्तर न दे सकते तो खीजकर उन्हें नास्तिक आदि कुवाक्य कहकर अपनी राह लेते। कुछ संस्कृतज्ञ लोग भी शास्त्रचर्चा करने आते, परन्तु उत्तर न दे सकने पर मौन होकर चले जाते। इस प्रकार महाराज का उपदेशप्रवाह बहता रहा। काशी के प्रसिद्ध पण्डित स्वामी विशुद्धानन्द भी मेले में उपस्थित थे। उन्होंने यजुर्वेद अध्याय ३१ के ११वें मन्त्र—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

का यह अर्थ किया था कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से उत्पन्न हुए, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य ऊरू से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए। स्वामीजी ने उसका खण्डन किया और कहा कि यदि इसका यही अर्थ है तो मुख से तो खखार भी उत्पन्न होता है। इसका शुद्ध अर्थ करके उन्होंने बताया कि समाज में ब्राह्मण मुख के, क्षत्रिय भुजाओं के, वैश्य ऊरू के और शूद्र पैरों के समान हैं।

इस घटना से स्पष्ट है कि स्वामीजी उस समय भी वर्णव्यवस्था गुण-कर्मानुसार ही मानते थे, जन्मगत नहीं मानते थे।

स्वामीजी ने एक पुस्तक भागवत के खण्डन में लिखी थी। उसकी सहस्रों प्रति छपवाकर वे अपने साथ लाये थे और वे मेले में बँटवाई गई थीं।

बहुत-से श्रद्धालु जन फल, मेवा, मिष्टान्न, पकवान महाराज के लिए लाते थे। सायङ्काल तक वे अच्छी मात्रा में इकट्ठे हो जाते थे। महाराज वे सब पदार्थ दीन-दरिद्रों में बाँट देते थे, अपने लिए कुछ भी न रखते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवसर पर स्वामीजी का किसी प्रसिद्ध पण्डित से शास्त्रार्थ नहीं हुआ था, परन्तु ऐसी किंवदन्ती है कि कुछ प्रसिद्ध पण्डित और धर्माचार्य प्रच्छन्नरूप से स्वामीजी का उपदेश सुनने आया करते थे और कुछ अपने विद्यार्थियों को भेज दिया करते थे और वे महाराज से मतामत पूछकर चले जाया करते थे।

एक दिन गोसाइयों और स्वामी विशुद्धानन्द में कुछ झगड़ा हो गया। गोसाइयों ने उनपर न्यायलय में अभियोग कर दिया। गोसाईं लोग समझते थे कि स्वामीजी विशुद्धानन्द के विरुद्ध हैं, अतः उन्होंने स्वामीजी से सहायता माँगी, परन्तु महाराज ने स्पष्ट कह दिया कि हम न तुम्हारे पक्षपाती हैं और न स्वामी विशुद्धानन्द के; हम तो सत्य के पक्षपाती हैं और जो वेद में लिखा है, उसके अनुयायी हैं।

एक दिन एक निर्मले साधु सन्तसिंह ने महाराज से चित्सुखी की एक पंक्ति का अर्थ पूछा। उन्होंने अर्थ तो कर दिये, परन्तु यह कह दिया कि यह अनार्ष ग्रन्थ है, हम इसे प्रमाण नहीं मानते।

दादूपन्थी स्वामी महानन्द संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने प्रथमबार वेद के दर्शन स्वामीजी के पास ही किये थे। वे महाराज के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि वैदिक धर्म के अनुयायी और प्रचारक बन गये। देहरादून के आर्यसमाज-मन्दिर में महानन्द पुस्तकालय उन्हीं के नाम पर स्थापित है।

सर्वं वै पूर्ण ॐ स्वाहा—महाराज ने कुम्भ पर देखा कि जनता अन्धकार में फँसी हुई है। संस्कृत के विद्वान् स्वार्थान्ध होकर लोगों को धर्म के नाम पर लूट रहे हैं। जिन लोगों का कार्य गृहस्थों को धर्मोपदेश करना था वे स्वयं ही उन्हें असत्य सिद्धान्तों की कीचड़ में फँसाकर धर्म-विमुख बना रहे हैं। साधुसमाज की भी वैसी ही हीन दशा है। वह अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त है। नाम के ही साधु हैं, वस्तुतः गृहस्थों से भी गये-बीते हैं। कौन-सा दुर्व्यसन है जो गृहस्थों में है और उनमें नहीं है ? अन्यों में शान्तिस्थापन तो दूर रहा, साधु-संन्यासी स्वयं ही आपस में अनेक प्रकार के कलह-विवाद उठाकर अशान्त हो रहे हैं। धर्म केवल आडम्बर का नाम रह गया है। ऐसी दशा में स्वामीजी के मन में देश-हित और समाज-कल्याण की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार अन्य साधुओं की भाँति रहने-सहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें संसार की मोह-वासना से सर्वथा ऊँचा उठना चाहिए। जो ज्ञान उन्हें गुरु विरजानन्द की कृपा और वेदादि सत्य शास्त्रों के अवगाहन और अनुशीलन से प्राप्त हुआ है उसका निर्भय होकर प्रचार करना चाहिए। जो सामग्री, वस्त्र, पुस्तक, धन आदि उनके पास थी, वह भी उनके मार्ग में बाधाजनक प्रतीत होने लगी। इन विचारों का उनके मन में स्फुरण हो ही रहा था कि एक दिन व्याख्यान देते-देते वे एक बार ही गद्‌गद हो गये और **'सर्वं वै पूर्ण ॐ स्वाहा'** कहकर उठ खड़े हुए और उठते ही जो कुछ सम्बल उनके पास था उसे लोगों में बाँटने लगे। स्वामी कैलाशपर्वत ने उनसे कहा भी कि आप ऐसा क्यों करते हैं ? तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि हम सब-कुछ स्पष्ट-स्पष्ट कहना चाहते हैं और यह तब तक नहीं हो सकता जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करें। केवल एक लंगोट रखकर शेष सब सामग्री, जिसके योग्य देखी उसे दे दी और यह प्रण करके कि जब तक हमारी इष्टसिद्धि न होगी हम गङ्गा-तट पर विचरण और संस्कृतभाषण करेगें, उठ खड़े हुए। यह मेला समाप्ति के १०-१२ दिन पश्चात् की बात है।

स्वामीजी ने हरिद्वार से एक पत्र ठाकुर रणजीतसिंह अचरौलवाले को भेजा था। उसपर ठाकुर साहब ने जोषी रूपराम को हरिद्वार इस अभिप्राय से भेजा कि स्वामीजी को अपने साथ जयपुर लिवा लावें और दो अशरफ़ी स्वामीजी की भेंट के लिए भेजी, परन्तु जब जोषी जी हरिद्वार पहुँचे तो उन्होंने देखा कि स्वामीजी सब-कुछ लोगों को बाँट रहे हैं। स्वामीजी ने उन्हें भी दस रुपये, दुर्गापाठ की पुस्तक और एक माला देनी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाही । पुस्तक और माला तो उन्होंने लेली, परन्तु रुपये नहीं लिये । स्वामीजी ने पं० दयाराम के हाथ महाभाष्य की पुस्तक, ३५ रुपये और एक मलमल का थान दण्डी विरजानन्द की सेवा में भेज दिया ।

दयानन्द मौनी—स्वामीजी ने वस्त्रों का भी त्याग कर दिया और मौनव्रत धारण कर लिया, परन्तु उनका यह व्रत चला नहीं, क्योंकि एक मनुष्य ने एक दिन उनकी कुटी के द्वार पर आकर यह वाक्य पढ़ा कि **'भागवतं निगमतरोर्गलितं फलम्'** इसे स्वामीजी सहन न कर सके और तुरन्त ही उसका खण्डन करने लगे ।

हृषीकेश, हरिद्वार, कनखल, लँढोरा, शुक्रताल आदि

गङ्गातट-विचरण—पाँच-छह दिन के लिए हृषीकेश गये, वहाँ से हरिद्वार लौट आये और गङ्गा-तट पर विचरण करने के लिए चल खड़े हुए । कनखल होते हुए लँढोरा, सहारनपुर पहुँचे । यहाँ तीन दिन तक निराहार रहना पड़ा । एक खेतवाले को संकेत किया । उसने उन्हें तीन बैंगन दिये । उन्हीं को खाकर क्षुधानिवृत्ति की । शुक्रताल होते हुए मीराँपुर ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर पहुँचे । यहाँ किसी पण्डित से दो दिन तक शास्त्रार्थ किया । एक दिन मुहम्मदपुर ज़िला बिजनौर में एक पीपल के वृक्ष के नीचे बसेरा किया ।

माँझी की आधी रोटी—फिर परीक्षितगढ़ ज़िला मेरठ होते हुए गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे । वहाँ कई दिन रहे। वहाँ भी तीन दिन तक निरन्न रहे, तब एक माँझी ने अपनी रोटी में से आधी रोटी तोड़कर उन्हें दी और वे उसी को खाकर रह गये । स्वामीजी का यह नियम था कि किसी से कुछ माँगते न थे, जो कोई उन्हें कुछ दे देता था उसी को खाकर रह जाते थे । गढ़मुक्तेश्वर में वे गङ्गा की रेती में पड़े रहते थे ।

कर्णवास

इसी प्रकार गङ्गातटवर्त्ती स्थानों में विचरते हुए स्वामीजी कर्णवास पधारे । कर्णनास गङ्गा के दक्षिणतट पर अनूपशहर से १२ मील की दूरी पर क्षत्रियों की बस्ती है । यहाँ पर वे एक दिन ही रहे । दो विद्यार्थियों ने देखा कि एक विशालकाय परमहंस जिनके मुखमण्डल पर एक अनूठी ज्योति विराजमान थी, गङ्गापुलिन पर आसन लगाये बैठे हैं । दोनों विद्यार्थी उनकी ओर आकृष्ट हुए और उनके समीप जाकर प्रेमपूर्वक उनके शरीर पर गङ्गा-रज लगाने लगे । परमहंस के पूछने पर कि क्या पढ़ते हो, उन्होंने कहा कि हम भागवत और कौमुदी पढ़ते हैं । परमहंस ने उन्हें मनुस्मृति पढ़ने और उसके अनुसार चलने तथा अष्टाध्यायी पढ़ने का आदेश किया ।

एक दिन रहकर परमहंस आगे चल दिये । ज्येष्ठ संवत् १९२४ में फ़र्रुखाबाद पहुँचकर ला० जगन्नाथ रईस के स्थान पर ठहरे ।

(मई—जून) फ़र्रुख़ाबाद (ज्येष्ठ)

इस समय फ़र्रुखाबाद में उनकी कोई विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई । जो पुरुष दर्शनों को गये उनके प्रश्नों का उत्तर देने के अतिरिक्त उन्होंने कोई उपदेशादि नहीं दिये । एक सज्जन ने पूछा कि गङ्गा और सूर्य कैसे पदार्थ है ? तो उन्होंने कहा कि जड़ पदार्थ हैं ।

ला० मुन्नीलाल और जगन्नाथ उनके दर्शनों को गये । उस समय वे समाधिस्थ थे । ये लोग जाकर चुप-चाप बैठ गये । जब उनकी समाधि भङ्ग हुई तो उन्होंने पूछा कि गायत्री-जाप का क्या फल है ? स्वामीजी ने कहा कि उससे बुद्धि शुद्ध होती है और सन्ध्या में सब द्विजों को गयत्री का जप करना चाहिए ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फ़र्रुखाबाद स्वामीजी केवल तीन दिन ठहरे। वहाँ से विचरते हुए वे अनूपशहर आये।

(जून—जुलाई) **अनूपशहर** (आषाढ़)

अनूपशहर स्वामीजी आठ दिन ला० गौरीशंकर कायस्थ की बाँसों की टाल पर रहे। उन दिनों वे कुछ रुग्ण थे। वहाँ तुलसीदल और कालीमिर्च घुटवाकर और मूँग की दाल में सोंठ डालकर पकवा कर पी, जिससे वे स्वस्थ हो गये। इस समय अनूपशहर में राजा बूँदी के गुरु रामदास वैरागी रहा करते थे। वे मूर्त्तिपूजक नहीं थे, अतः उनसे स्वामीजी की प्रीति हो गई थी। उन्हीं दिनों अनूपशहर में एक दक्षिणी स्वामी, सूरजपुरी और मौज बाबा परमहंस भी रहते थे। रामदास ने दक्षिणी स्वामी से कहा कि यहाँ दयानन्द आये हैं। वे यद्यपि हमारे तुम्हारे मत की बात कहते हैं, परन्तु गृहस्थों के प्रतिकूल हैं। दक्षिणी स्वामी ने सूरजपुरी को भेजकर कई प्रश्न पुछवाये। स्वामीजी ने सबके युक्ति-युक्त उत्तर दिये, परन्तु वे दक्षिणी स्वामी की समझ में नहीं आये। उन्होंने बार-बार वे ही प्रश्न किये। तब स्वामीजी ने उन्हें कहला भेजा कि तुम्हारी बुद्धि मोटी है, हमारी बात तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती। यदि चीनी को रेत में मिला दिया जाए तो हाथी चीनी के कणों को नहीं निकाल सकेगा, परन्तु चींटी निकाल लेगी।

स्वामीजी बाँसों की टाल से उठकर नगर के समीप दूसरी ओर जाने लगे तो बाबा रामदास ने कहा कि नगर में भागवत की कथा हो रही है और आप भागवत का खण्डन करते हो, कोई रोटी को भी न पूछेगा। स्वामीजी न कहा हमें इसकी कोई परवाह नहीं, हमारा प्रारब्ध हमारे साथ है। यह कहकर स्वामीजी नर्मदेश्वर के पास सती की मढ़ी में आ विराजे।

नवलजङ्ग पहलवान—मढ़ी से अनतिदूर नवलजङ्ग पहलवान का अखाड़ा था। वह सदाचीरी, सुशील और बलवान् था। उसकी एक ब्रह्मचारिणी बहिन भी थी। दोनों भाई-बहिन तैरने में ऐसे निपुण थे कि बरसात की चढ़ी गङ्गा को तैरकर पार कर जाया करते थे। श्रीचरणों में नवलजङ्ग की अगाध प्रीति हो गई थी। वह गङ्गा-रज लाकर और चन्दन की भाँति रगड़कर प्रेम से उनके शरीर पर लगाया करता था। उसने महाराज के लिए फूँस डालकर एक चटाई डाल दी थी और रात्रि में उनके ऊपर कम्बल डाल दिया करता था।

वामी गुण्डे—एक दिन कुछ वामी मदिरा पीये ऊल-जलूल बकते स्वामीजी के आसन के पास आये और बकने लगे कि अरे दयानन्द ! बाहर निकल, तुझे वारुणी पिलाकर शुद्ध करें। जब महाराज न देखा कि ये लातों के भूत हैं, बातों से नहीं मानेंगे तो उन्होंने नवलजङ्ग को पुकारा। वह स्वामीजी का शब्द सुनते ही दौड़ आया। स्वामीजी ने उससे कहा कि ये वामी कुछ उपद्रव करना चाहते हैं, तनिक इनका नशा उतार दो। वह उनकी ओर ऐसा झपटा जैसे श्येन कपोत पर झपटता है। उसे आता हुआ देखकर उनका सब नशा हिरन हो गया।

बुद्धा से बुद्धिसागर—एक सुपठित ब्राह्मण बुद्धा नामी ने भी स्वामीजी से शास्त्र-चर्चा की। कुछ देर तक तो वह धाराप्रवाह संस्कृत बोलता रहा, परन्तु फिर पीछे रह गया और अन्त को उसने स्वामीजी के कथन की सत्यता स्वीकार कर ली। उस दिन से वह उनका प्रीतिभाजन बन गया था और स्वामीजी उसे बुद्धा के बदले बुद्धिसागर कहने लगे थे।

तत्कालीन उपदेश—अनूपशहर से महाराज गढ़मुक्तेश्वर की ओर गये और वहाँ से लौटकर फिर सती की मढ़ी में आ विराजे। इस समय उनका बिस्तर रेत का और तकिया ईंटों का रहता था। उनके पास केवल एक कौपीन था। अनेक लोग उन्हें वस्त्र देना चाहते थे, परन्तु वे ग्रहण नहीं करते थे। वे अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों की श्रेष्ठता स्वीकार करते थे। उस समय वे विशेष खण्डन-मण्डन नहीं करते थे। उनका विशेष आग्रह ब्राह्मणों के उठाने पर था, अतः वे ब्राह्मणों को सन्ध्या, गायत्री, अग्निहोत्र करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की शिक्षा देते थे और मथुरा जाकर दण्डीजी की पाठशाला में व्याकरण पढ़ने का अनुरोध करते थे। वे किसी को रात्रि में अपने पास नहीं ठहरने देते थे। किसी से कुछ इच्छा नहीं करते थे, जो कोई अपनी इच्छा से उनकी सेवा में भोज्य समाग्री ले-आता था, उसे ही प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लेते थे और यदि कुछ बच रहती थी तो भिक्षुक आदि को दे देते थे। बहुत सवेरे उठकर शौच, स्नान, ईश्वराराधना से निवृत्त होकर बैठ जाते थे और आगन्तुकों से बात-चीत करते रहते थे।

एक दिन एक मनुष्य ने आकर स्वामीजी से प्रश्न किया कि मेरा एक मित्र घर से कहीं चला गया है उसका पता नहीं मिलता तो स्वामीजी ने हाथ से इशारा किया। जो पण्डित वहाँ बैठे थे उन्होंने बताया कि कहते हैं कि रामेश्वर की ओर गया है। यदि कोई वेदानुकूल कोई बात कहता था तो उसे स्वीकार कर लेते थे और पुराणादि की वेदविरुद्ध बातों को सुनकर कह दिया करते थे **'गप्पाष्टकम्, मनुष्याणां कोलाहलः'**।

एक दिन एक पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आया। वह अपना वक्तव्य एक काग़ज पर लिख लाया और उन्हें सुनाने लगा। स्वामीजी ने कहा कि क्या अपने पुत्र का लग्नपत्र लाये हो। यह सुनकर वह इतना घबराया कि फिर एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला।

(जून—जुलाई) चासी (आषाढ़)

नन्दराम चक्राङ्कित—अनूपशहर से स्वामीजी चासी ज़िला बुलन्दशहर के जङ्गल में जा विराजे। चासी जाने का विशेष कारण था। कर्णवास में उन्होंने पूर्वोक्त विद्यार्थियों से सुना था कि चासी में नन्दराम नामक ब्राह्मण चक्राङ्कित है और अन्य लोगों को भी चक्राङ्कित सम्प्रदाय में सम्मिलित होने की प्रेरणा करता है। उसने खन्दोई ग्राम परगना अहार के कुछ जाटों को उक्त सम्प्रदाय में प्रवेश करने के लिए पक्का भी कर लिया था। चक्राङ्कित मत के स्वामीजी पहले से ही विरुद्ध थे और यथावसर उसका खण्डन करते रहते थे, अतः उन्होंने उन लोगों को चक्राङ्कित बनने से रोकना अपना कर्त्तव्य समझा। जब वे चासी पहुँचे और लोगों को उनके आगमन का समाचार विदित हुआ तो बीस-पच्चीस ब्राह्मण और कुछ जाट नन्दराम को साथ लेकर स्वामीजी की सेवा में इस अभिप्राय से पहुँचे कि स्वामीजी के सामने वह अपने मत का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित करे, परन्तु अभी एक बात भी न होने पाई थी कि नन्दराम चुपके से खिसककर गङ्गा की परली बड़ी धार पर भाग गया। स्वामीजी परली छोटी धार पर थे। उसे बहुतेरा बुलाया पर वह न आया और अहार चला गया, उसी से उसकी सब पोल खुल गई और कोई भी चक्राङ्कित न हुआ।

थारपुर (ताहीरपुर) रामघाट

दयानन्द का प्रथम शिष्य टीकाराम—चासी से स्वामीजी थारपुर (ताहीरपुर) गये और वहाँ कुछ दिन निवास करके रामघाट चले गये। वहाँ एक पर्णकुटी में ठहरे। पण्डित टीकाराम, एक सुविज्ञ ब्राह्मण, जो कर्णवास के रहनेवाले थे, उन दिनों रामघाट में रहते थे। एक केशवदेव ब्रह्मचारी भी वहाँ रहता था। उसने पण्डित टीकाराम से स्वामीजी की विद्या की प्रशंसा की, अतः वह ब्रह्मचारी को साथ लेकर आषाढ़ शु० ५ सं० १६२४ को वनखण्डी महादेव पर स्वामीजी की सेवा में पहुँचे। उन्होंने पण्डित टीकाराम से पूछा, तो पण्डितजी ने कहा कि गायत्री कण्ठस्थ है। स्वामीजी ने सुनाने के लिए कहा तो पण्डितजी बोले कि गुरुजी ने गायत्री सुनाने का निषेध कर दिया है। स्वामीजी ने कहा कि संन्यासी ब्राह्मणों का गुरु होता है, अतः हमारे सामने सुनाने में कोई दोष नहीं है। ब्रह्मचारी केशवदेव ने भी स्वामीजी का समर्थन किया तो पण्डितजी ने गायत्री-मन्त्र सुनाया। स्वामीजी उनके शुद्ध उच्चारण पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सन्ध्या का पाठ उन्हें स्वयं लिखकर दिया तो पण्डितजी का स्वामीजी से प्रतिदिन धर्मालाप होने लगा, जिसका फल यह हुआ कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितजी के सारे संशयों का समूल उच्छेद हो गया, उनका समस्त भ्रमजाल कट गया। मूर्त्तिपूजा पर से विश्वास उठ गया और वे पूर्णरूप से स्वामीजी के अनुगामी हो गये। उन्होंने अपनी देवमूर्त्तियाँ गङ्गा में फेंक दीं। विद्या और धर्म का अपरिमित कोष पण्डित टीकाराम के हाथ आ गया। उन्होंने इस कोष को एक कृपण के समान छिपाकर नहीं रक्खा। वे प्रसन्नतापूर्वक कर्णवास दौड़ गये और अपने यजमान ठा० गोपालसिंह आदि से स्वामीजी की अगाध विद्या की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा, अवतार, तीर्थ, कण्ठी, माला, तिलक, छाप, भागवत आदि का खण्डन करते हैं, केवल एक निराकार परमेश्वर की उपासना का उपदेश करते हैं; सन्ध्या, गायत्री, बलिवैश्वदेवहवन पर बल देते हैं, मैंने भी उनके उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ दी है, अब मैं आपके मन्दिर में पुजारी का कार्य नहीं करूँगा। क्षत्रिय लोग इस अद्भुत संन्यासी की अश्रुतपूर्व बातें सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए और उनके मन में उनके दर्शनों की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। उन्होंने पं० टीकाराम को उन्हें कर्णवास लिवा लाने के लिए रामघाट भेजा।

कर्णवास

इधर तो पण्डितजी रामघाट गये, उधर स्वामीजी कर्णवास आकर गङ्गा के पक्के घट पर एक मढ़ी के आगे जो नागा बाबा की मढ़ी के नाम से प्रसिद्ध थी, बसेंदू के वृक्ष के नीचे आसन लगाकर विराजमान हो गये। पण्डित भगवान्दास भागवती पण्डित ने भोजन से उनका सत्कार किया। अगले दिन पण्डित टीकाराम ने रामघाट से लौटकर सब लोगों से स्वामीजी के कर्णवास पधारने का समाचार कहा। क्षत्रियवर्ग तथा अन्य लोग स्वामीजी के दर्शनों को आये और उनकी भव्यमूर्त्ति के दर्शन और उनके दिव्य उपदेशों को श्रवण करके परम तृप्त और सन्तुष्ट हुए। पहले ही मिलन में महाराज के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा का बीज वपित हो गया, जो शीघ्र अंकुरित होकर दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। महाराज की ख्याति-चन्द्रिका दिन-प्रतिदिन आसपास के ग्रामों में फैलने लगी। एक दिन महाराज ने साधारणरूप से पण्डित भगवान्दास से कण्ठी; तिलक आदि धारण करने का निषेध किया, उस समय तो उन्होंने कुछ न कहा, परन्तु मन में स्वामीजी से बहुत खिज गये, यहाँ तक कि उन्होंने स्वामीजी का भोजन से सत्कार करना भी बन्द कर दिया।

उपदेश का प्रभाव—महाराज को कर्णवास में निवास करते हुए आषाढ़ से आश्विन आ गया। लोगों में उनके प्रति श्रद्धा के भाव बढ़े, किन्तु भगवान्दास आदि इसे देखकर कुढ़ने लगे। आश्विन में अनेक लोग कर्णवास में गङ्गास्नान करने आते हैं। उन्होंने महाराज के दर्शन और उपदेश श्रवण किये तो उन्हें अचम्भा हुआ, क्योंकि अभी तक किसी ने ऐसा संन्यासी न देखा था जो मूर्त्तिपूजा आदि का खण्डन करता हो। इन लोगों ने अपने-अपने निवासस्थानों पर वापस जाकर स्वामीजी की चर्चा की। फिर तो यह दशा हुई कि लोग चारों ओर के समीपवर्त्ती स्थानों से कर्णवास आने लगे और महाराज के स्थल पर हर समय भीड़ रहने लगी।

प्रथम शास्त्रार्थ—भगवान्दास आदि को महाराज की बढ़ती हुई लोकप्रियता असह्य हो गई। उन्होंने सोचा कि उनके मार्ग से दयानन्दरूपी कण्टक तभी दूर हो सकता है जब उसे शास्त्रार्थ में परास्त किया जाए, अतः वे अनूपशहर निवासी पण्डित अम्बादत्त पर्वती को, जो संस्कृत में बहुत व्युत्पन्न समझे जाते थे, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए बुला लाये। पण्डित अम्बादत्त से शास्त्रार्थ हुआ। परिणाम यह निकला कि पण्डितजी परास्त हुए§ और उन्होंने एक सत्यप्रिय मनुष्य की भाँति भरी सभा में मुक्त-कण्ठ से कहा कि जो कुछ स्वामीजी

---

§ कहते हैं कि शास्त्रार्थ के समय पण्डित अम्बादत्त का श्वास फूल गया था और वे हाँपने लगे थे। वे वृद्ध थे और संस्कृत बोलने का अभ्यास न था। स्वामीजी ने उनकी यह दाश देखकर उनसे कहा कि मुझे संस्कृत बोलने का अभ्यास है, आपको नहीं हैं, आप चुप हो जाइए, मैंने जान लिया है कि अनूपशहर में आपके समान पण्डित नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहते हैं वह सत्य है, मूर्त्तिपूजा अवैदिक और त्याज्य है‡ ।

इतना सुनते ही महाराज के अनुयायियों के हृदय-कमल विकसित हो गये और पौराणिक वृन्द की आशाओं पर ओस पड़ गई । पण्डित अम्बादत्त जो पौराणिक धर्म के स्तम्भ समझे जाते थे, रेत की दीवार निकले । पौराणिक दल पर नैराश्य की घटा छा गई । उन्होंने परामर्श किया कि दयानन्द का मुख यदि कोई बन्द कर सकता है तो पं० हीरावल्लभ कर सकते हैं, क्योंकि वह वेदज्ञ और पूर्ण वैयाकरणी हैं, अतः उन्हें बुलाकर दयानन्द से शास्त्रार्थ कराना चाहिए ।

पण्डित अम्बादत्त के पराजय से स्वामीजी की ख्याति को चार चाँद लग गये और शतशः लोग उनकी ओर आकृष्ट हो गये । क्षत्रिय तो बहुत बड़ी संख्या में उनके अनुगत हो गये और बीसियों ने यज्ञोपवीत धारण करके उनकी उपदिष्ट पद्धति के अनुसार नित्यकर्म करने आरम्भ कर दिये ।

अहार

कर्णवास से स्वामीजी अहार गये और वहाँ दो दिन हीरावल्लभ की कुटी में ठहरे । १५ दिसम्बर सन् १८८६ को वह स्थान पण्डित लेखराम ने देखा था । उस समय कुटी गिर चुकी थी केवल एक टीला-सा शेष रह गया था । अहार से स्वामीजी चासी पधारे ।

चासी

वहाँ वे एक कुटिया में ठहरे । स्वामीजी जहाँ जाते थे वहाँ ही उनके पांस मेला-सा लग जाता था और यह समय तो कार्त्तिक-स्नान का था । उन दिनों वहाँ यात्रियों का बहुत ही समागम था । सहस्रों मनुष्य गङ्गास्नान कर पुण्य कमाने आये हुए थे । स्वामीजी के स्थल पर हर समय दर्शकों और जिज्ञासुओं की भीड़ रहती थी और वे सबको निर्भयतापूर्वक धर्मोपदेश देते और मूर्त्तिपूजा, तीर्थस्नान आदि का खण्डन करते थे। पास ही एक वैरागी का स्थल था । उसे महाराज के उपदेश बहुत खलते थे । वह चाहता था कि किसी प्रकार स्वामीजी वहाँ से अन्यत्र चले जाएँ, परन्तु भय के कारण उनसे कुछ कह न सकता था । उस समय स्वामीजी का यह नियम था कि जो कोई सबसे पहले उनके लिए जैसा भी भोजन ले-आता था, उसे ही प्रसन्नता-पूर्वक पा लेते थे । वैरागी ने यह बात जान ली और उसने यह धूर्त्तता करनी आरम्भ करदी कि सबसे पहले दो चार जले-भुने टिक्कड़ स्वामीजी को दे देता । वे उन्हें ही पा लेते और उससे कुछ न कहते । जब कई दिन तक उसने ऐसा किया तो उन्होंने समझ लिया कि वैरागी हमारे यहाँ रहने से अप्रसन्न है और वे उस कुटिया को छोड़कर दूसरे स्थान पर जा ठहरे ।

दयानन्द की बल परीक्षा—जहाँगीराबाद ज़ि० बुलन्दशहर निवासी ओङ्कारदास बोहरा एक समृद्ध पुरुष था । वह व्यायामशील और दण्डपेल जवान था । वह भी गङ्गास्नानार्थ चासी आया था । स्वामीजी के उपदेश सुनकर वह उनका भक्त बन गया और इसलिए कि उनकी सत्सङ्गति से अधिक-से-अधिक लाभ उठाने का अवसर मिले, उसने अपना डेरा दूसरी जगह से उठाकर उनके समीप ही गाड़ लिया । एक दिन उसके जी में स्वीमीजी के शारीरिक बल की परीक्षा करने की आई तो वह उनसे प्रार्थी हुआ कि मुझे श्रीचरणों के दबाने की आज्ञा दी जाए । स्वामीजी ने कहा कि हमारे चरण तो दबे-दबाये हैं, परन्तु वह न माना और

‡ 'दयानन्दप्रकाश' में लिखा है कि यह शास्त्रार्थ अनूपशहर में हुआ था, हमारी धारणा यह है कि कर्णवास में ही हुआ था। दयानन्दप्रकाश में कर्णवास में भी दूसरे शास्त्रार्थ का अम्बादत्त से होना लिखा है, परन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता । यदि अनूपशहर में शास्त्रार्थ हुआ था और उसमें अम्बादत्त की यह दशा हो गई थी कि वह घबराकर हाँफने लगे थे तो क्या फिर उनका यह साहस होता कि वे दुबारा शास्त्रार्थ करने कर्णवास चले आते ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरण दबाने ही लगा। उसे यह प्रतीत हुआ कि उनके पैर लोहे की लाट हैं, पूरा बल लगाने पर भी उनमें अंगुलियाँ नहीं धसीं, अन्त में वह पसीना-पसीना हो गया और थककर बैठ रहा।

यज्ञोपवीत उतारा भी जाता है—पण्डित गङ्गाप्रसाद महाराज के एक और भक्त थे। वे स्वामीजी के उपदेश से लोगों को यज्ञोपवीत धारण करने की प्रेरणा करते थे और गायत्री जपने को कहते थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि मैंने बहुत-से पुरुषों को यज्ञोपवीत धारण कराया है। महाराज इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु उन्होंने कहा कि यज्ञोपवीत देते ही जाते हो, किसी का उतारते भी हो। यह सुनकर पण्डितजी कुछ विस्मयान्वित हुए और बोले कि क्या यज्ञोपवीत उतारा भी जा सकता है। महाराज ने कहा कि यदि कोई अधर्म करे तो उसका यज्ञोपवीत उतार लेना चाहिए।

पण्डित गङ्गाप्रसाद के गुरु भी स्वामीजी के पास आया करते थे। एकदिन उन्होंने अपने वस्त्र उतारकर कुटिया पर रक्खे और गङ्गा-स्नान को जाने लगे। महाराज ने देखा कि उनकी भुजा पर अनन्त बँधा हुआ है। महाराज तुरन्त उनके पास गये और उनसे पूछा कि यह क्या है ? उन्होंने कहा कि अनन्त है। महाराज ने उसे अंगुलियों से नापकर कहा कि यह तो इतने अंगुल है। यह अनन्त कैसा ? इसपर उन्होंने तत्काल उसे उतारकर फेंक दिया।

चपत द्वारा नवीनवेदान्त-खण्डन—खन्दोई ग्राम का छत्रसिंह जाट वेदान्ती था। स्वामीजी नवीनवेदान्त का प्रबल प्रतिवाद करते थे। एक दिन वह महाराज से नवीनवेदान्त पर वार्त्तालाप करने लगा। जब वह उनकी युक्तियों का उत्तर न दे सका तो उसने कहा कि महाराज आप चाहे जो कहें, परन्तु सत्य तो यही है कि जगत् मिथ्या है। महाराज ने इसका कोई उतर न दिया, परन्तु आगे बढ़कर उसके कपोल पर एक चपत लगा दिया। इसपर उसे रोष आया और वह कहने लगा कि महाराज आप जैसे ज्ञानी पुरुष को केवल मतभेद से चिढ़कर चपत नहीं लगाना चाहिए था। महाराज ने कहा कि चौधरीजी सब जगत् मिथ्या है और ब्रह्म के अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं तो वह कौन है जिसने आपके चपत लगाया ? छत्रसिंह जो युक्ति से न माना था चपत खाकर सीधा हो गया। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये और उसने स्वामीजी के चरण पकड़कर कहा कि महाराज आपने मेरी आँखें खोल दीं। वेदान्त-वाद अनुभव-विरुद्ध बौड़ाये मनुष्य की बड़बड़ाहट है।

धुनिया को उपदेश—एक धुनिया नित्य श्रीसेवा में उपस्थित हुआ करता था और बड़े चाव और श्रद्धा से महाराज के उपदेश सुना करता था। बेचारा था अनपढ़। उसने एक दिन अत्यन्त विनम्रभाव से निवेदन किया कि महाराज कोई विधि ऐसी भी है जिससे मुझ-जैसे अज्ञानी जीव का कल्याण हो। महाराज ने परम दयालुता से उसे 'ओ३म्' का जप करने का आदेश किया और कहा कि व्यवहार में सच्चे रहो, जितनी रुई कोई तुम्हें धुनने को दे, धुनकर उतनी ही रुई लौटा दो, इसी से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।

चाँदोख ज़ि० बुलन्दशहर के निवासी ठाकुर महावीरसिंह श्रीदर्शनों को जाया करते थे और महाराज से धर्म-विषय पर बातचीत किया करते थे। धर्म के लक्षण पूछने पर महाराज ने उन्हें मनुस्मृति के अनुसार दश लक्षण बतलाये थे और अधर्म के विषय में कहा था कि भारत के दण्डविधान की धाराओं को पढ़ने से तुम्हें ज्ञात हो जाएगा कि अधर्म क्या है ? स्वामीजी उस समय वेदादि ग्रन्थों को मानते थे। उन्होंने ठाकुरजी को विष्णुसहस्रनाम और भगवद्गीता का पाठ करने को कहा था। उस समय स्वामीजी जीव-ब्रह्म का पृथक्त्व मानते थे। पुराणों की जगह ब्राह्मणग्रन्थ पढ़ने को कहते थे। यह भी उपदेश करते थे कि वेद जाननेवाले को ब्राह्मण और सत्योदेष्टा को गुरु मानो।

चासी में जीवित पितरों का श्राद्ध—चासी में स्वामीजी ने *शफ़ीपुर* के मयाराम जाट से कहा था कि जीवित पितरों का ही श्राद्ध किया करो और इसकी पद्धति बनाकर वे पण्डित ज्वलाप्रसाद को दे गये थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित लेखराम ने पण्डित ज्वालाप्रसाद से इसके विषय में कुछ नहीं पूछा। यह बात बड़ी आवश्यक थी, क्योंकि अनेक लोग यह कहते हैं कि स्वामीजी पहले मृतक पितरों के श्राद्ध को मानते थे। यदि यह पद्धति उपस्थित होती तो इस लाञ्छन के निराकरण में एक अकाट्य प्रमाण सिद्ध हो जाती।

स्वामीजी को एक मनुष्य ने अपना हाथ दिखलाया। स्वामीजी ने उसे देखकर कहा इसमें चर्म, अस्थि और रुधिर है और कुछ नहीं है। किसी ने जन्मपत्र का प्रसङ्ग उठाया तो स्वामीजी ने कहा—**'जन्मपत्रं किमर्थम् कर्मपत्रं श्रेष्ठम्'**। यदि कर्म की विधि मिल जाए तो मानो, नहीं तो गप्पाष्टक जानो।

कोई-कोई कहते हैं कि स्वामीजी चासी में कार्त्तिक से फाल्गुन वा चैत्र तक रहे, परन्तु हमें यह ठीक प्रतीत नहीं होता। वे चासी से रामघाट गये और वहाँ से बेलौन होकर कर्णवास आये।

(नवम्बर-दिसम्बर) रामघाट (मार्गशीर्ष)

घोर मूर्त्तिपूजक—इसके पश्चात् मार्गशीर्ष सं० १९२४ में हम स्वामीजी को रामघाट में गङ्गातट पर पद्मासनस्थ पाते हैं। १० बजे दिन से सायङ्काल तक एक ही आसन से बैठे हुए हैं। शरीर में कोई गति नहीं, किसी अङ्ग में स्पन्दन नहीं, किसी से बोलते भी नहीं। एक पुराने मूर्त्तिपूजक का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट होता है। यह साधारण मूर्त्तिपूजक नहीं है। इसकी पूज्य मूर्त्तियों का भार बीस सेर§ से कम नहीं है। जहाँ भी यह जाता है उन्हें घोड़े पर लादकर साथ ले-जाता है। हाथों पर और गले में रुद्राक्ष की बड़ी-बड़ी मालाएँ पहने हुए है, मस्तक पर त्रिपुण्ड विराजमान है, अन्य अङ्ग भी चन्दन से लिप्त हैं, जिह्वा पर इष्टदेव का नाम है, परन्तु इसे अभी तक यह पता नहीं कि यह दिव्य-देहधारी संन्यासी मूर्त्तिपूजा का परम शत्रु है। कदाचित् उसे यह ज्ञात होता तो वह उसकी ओर भ्रूपात भी न करता। यह अपने एक साथी को लेकर संन्यासी के समीप जाता है ताकि उससे पूछे कि भिक्षा की है वा नहीं। वह एक श्लोक का एक चरण—

'ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः' ।‡

पढ़ता हुआ संन्यासी के सामने जाता है। संन्यासी मुस्कराता है और 'हूँ' शब्द करता है। इसके अनुरोध पर संन्यासी घाट से उठकर बनखण्डीश्वर महादेव में चला आता है। वहाँ दो पण्डित संस्कृत में विवाद कर रहे थे, संन्यासी भी उनमें सम्मिलित हो जाता है। दोनों विवादकर्त्ता संन्यासी के अनर्गल†, सरल और सुमधुर संस्कृतभाषण को सुनकर चकित हो जाते हैं। रात्रि हो जाती है और एक व्यक्ति संन्यासी को भोजन करा देता है।

कृष्णानन्द से शास्त्रार्थ—प्रातःकाल होता है। संन्यासी स्नान करके, ईश्वर का ध्यान करता है। लोगों को ज्ञात होता है कि वह संन्यासी कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। वह दयानन्द है जो मूर्त्तिपूजा, अवतार, तीर्थ आदि सब पौराणिक प्रपञ्च का खण्डन करता है। पुराणों में परम प्रसिद्ध भागवत को भी नहीं मानता। इन दिनों रामघाट पर एक और संन्यासी रहते हैं, जिनका नाम कृष्णानन्द है और वह वाममार्गी हैं। उनकी संस्कृतज्ञ होने की बड़ी ख्याति है। लोग कृष्णानन्द से कहते है कि दयानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित करके हिन्दूधर्म की टेक रक्खो। दयानन्द के नाम में कुछ ऐसा जादू है कि बड़े-बड़े पण्डित उससे शास्त्रार्थ करते घबराते हैं, कृष्णानन्द भी उन्हीं की कोटि का है। वह इन्कार करता है, परन्तु लोग उसे बाध्य करते हैं, शास्त्रार्थ आरम्भ होता है, वह भी एक अनोखे ढंग से। एक मनुष्य कृष्णानन्द से आकर पूछता है कि महाराज महादेव पर जल चढ़ा आऊँ। कृष्णानन्द उत्तर देने नहीं पाता कि दयानन्द बोल उठते हैं कि यहाँ महादेव नहीं, यहाँ तो पत्थर है, महादेव तो कैलास पर है।

---

§ लगभग १८$\frac{3}{4}$ किलो। ‡ भागवत १२।१३।१। † धारावाहिक। —जगदीश्वरानन्द

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृष्णा०—क्या महादेव यहाँ नहीं है ?

दया०—वह महादेव तो मन्दिर के अतिरिक्त यहाँ भी है। वहाँ जाना व्यर्थ है।

कृष्णा०—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ —गीता ४।७

दया०—ईश्वर निराकार है, देह धारण नहीं करता, देह धारण करना तो जीव का धर्म है।

कृष्णा०—कोई उत्तर न देकर वही श्लोक पढ़ता है और दयानन्द की ओर न देखकर श्रोताओं की ओर देखता है, घबराहट के कारण मुँह में झाग आ जाते हैं।

दया०—आप लोगों से शास्त्रार्थ करते हैं वा मुझसे, मेरी ओर मुख करके बातें कीजिए।

कृष्णा०—[विक्षिप्त-सा हो जाता है और **"गंधवती पृथिवी, धूमवान् अग्निः"** कहकर न्याय का विषय उठाता है। तीन दिन तक बातें होकर] लक्षण का भी लक्षण होता है।

दया०—लक्ष्य का लक्षण होता है, लक्षण का लक्षण नहीं होता। पूज्य का पूज्य वा आटे का आटा नहीं हो सकता।

(इसपर सब लोग हँस पड़ते हैं और कृष्णानन्द सभास्थल से उठ जाता है)

घोर मूर्त्तिपूजक की मूर्त्तियाँ गङ्गा में—इस शास्त्रार्थ का और स्वामीजी के उपदेश का उस मूर्त्तिपूजक पर यह प्रभाव पड़ा कि उसने अपनी मूर्त्तियों का बोझा गङ्गा के अर्पण कर दिया, जिसे ढोते-ढोते उसके घोड़े की पीठ भी क्षत-विक्षत हो गई थी। इसका नाम ब्रह्मचारी क्षेमकरण था, जिसने पीछे संन्यास ग्रहण कर लिया था।

हमारे तो तुम ही शालिग्राम हो—स्वामीजी भोजन के पश्चात् तुलसी की पत्ती खाया करते थे। कारण पूछने पर कहते थे कि इससे मुँह सुगन्धित रहता है। लोगों को तुलसी का पौधा अपने घरों में लगाना चाहिए। इनमें से अच्छी वायु निकलती है। एक गुसाईं स्वामीजी को तुलसी की पत्ती लाकर दिया करता था और देते समय विनोद में कहा करता था कि महाराज! हमारे तो आप ही शालिग्राम हैं। महाराज का नाम यहाँ कोलाहल स्वामी पड़ गया था, क्योंकि जब बातचीत में दो-चार लोग एक साथ बोलने लगते थे तो वे कह दिया करते थे कि यह कोलाहल है। एक दिन एक व्यक्ति ने गुरु की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा की तो महाराज ने कहा कि गुरुसमेत गङ्गा में प्रवेश करना चाहिए।

उन दिनों स्वामीजी सबको सन्ध्या, गायत्री, बलिवैश्वदेवयज्ञ करने और मूर्त्तिपूजा, तीर्थयात्रादि त्यागने का उपदेश करते थे। पण्डित टीकाराम, पण्डित बालमुकुन्द, ब्रह्मचारी आनन्दकिशोर आदि बीसियों मनुष्यों ने स्वामीजी के उपदेश से मूर्त्तिपूजा करनी छोड़ दी थी और अपनी देवमूर्त्तियाँ गङ्गा में फेंक दी थीं।

बेलौन

रामघाट से स्वामीजी बेलौन ज़ि० बुलन्दशहर पधारे। वहाँ खेरानामक स्थान पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे उतरे। वहाँ एक तख्त पड़ा हुआ था उसी पर बैठा करते थे। भक्तजनों ने तख्त पर एक सिरकी डलवा दी थी और गद्दा डाल दिया था। लोगों को सन्ध्या-गायत्री का उपदेश देते थे। जो कोई उनके पास आता उससे पूछते कि गायत्री जानते हो। यदि वह कहता कि नहीं, तो उसे गायत्री सिखाते और लिखकर दे देते थे। पण्डित इन्द्रमणि ने गायत्री की बहुत-सी प्रतियाँ लिखकर उनके पास रख दी थीं। वह किसी को कोई प्रति देता तो स्वामीजी उसके नीचे १००० का अङ्क लिख देते थे कि १००० बार ज़प करो। इस प्रकार उन्होंने लगभग ५० मनुष्यों को गायत्री की प्रतियाँ बाँटीं। एक पण्डित ने उनसे पूछा कि श्रीराम और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीकृष्ण अवतार थे वा नहीं; तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे अवतार नहीं थे। ईश्वर अवतार धारण नहीं करता, वे केवल प्रतापी राजा थे। उसने कहा कि श्रीकृष्ण ने गोपियों से रासलीला की तो उन्होंने कहा कि यह मिथ्या है, इससे तो वे साधारण मनुष्य सिद्ध होते हैं न कि अवतार। एक व्यक्ति के पूछने पर कहा कि गङ्गा केवल एक नदी है। एक दिन एक व्यक्ति ने आकर कहा कि महाराज दण्डवत् तो उन्होंने कहा कि तुम्हीं दण्डवत् होओ।

(नव०-दिस० ६७—फरवरी ६८) कर्णवास (मार्गशीर्ष—फाल्गुन कृष्ण सं० १९२४)

स्वामीजी बेलौन में ३-४ दिन ठहरकर कर्णवास चले गये। महाराज के कर्णवास पधारते ही आस-पास के ग्रामों में उनके आगमन का समाचार फैल गया और चारों ओर से लोग उनके स्थल पर आकर धर्मोपदेश सुनने और अपनी शङ्काएँ मिटाने लगे।

हीरावल्लभ के साथ शास्त्रार्थ—पौराणिकों को पण्डित अम्बादत्त के पराजय की कालिमा धोने की चिन्ता थी ही। वे अनूपशहर गये और पण्डित हीरावल्लभ को बुलाकर लाये। पौष मास की किसी तिथि को पण्डित हीरावल्लभ कर्णवास आये और बड़े ठाठ से आये। वे अपने आराध्य देवों की मूर्त्तियों को एक सुन्दर सिंहासन में सजाकर साथ लाये। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। उसमें पण्डित हीरावल्लभ प्रवृत्त हुए तो अनोखे ढङ्ग से। देवमूर्त्तियों का सिंहासन सामने रखकर और यह प्रतिज्ञा करके कि मैं इन देवमूर्त्तियों को दयानन्द के हाथ से भोग लगवाकर उठूँगा। छह दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा तथा नियम और न्यायपूर्वक होता रहा। छठे दिन पण्डित हीरावल्लभ ने अस्त्र-शस्त्र डाल दिये, अपनी हार स्वीकार की, वाणी से भी और कर्म से भी। पण्डितजी ने महाराज को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और साथ ही देवमूर्त्तियों को भी सदा के लिए हाथ जोड़कर गङ्गाजल में प्रविष्ट कर दिया। उन देवमूर्त्तियों को जिन्हें वह दयानन्द के हाथ से भोग लगवाने की प्रतिज्ञा करके शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए थे, स्वयं भोग लगाना छोड़कर शास्त्रार्थ से निवृत्त हुए। सभा में २००० मनुष्य उपस्थित थे। स्वामीजी पण्डित हीरावल्लभ की न्यायप्रियता देखकर गद्गद हो गये और उन्होंने पण्डितजी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। निष्पक्ष मनुष्यों ने भी उन्हें हृदय से साधुवाद कहा। सबके मुखमण्डल हर्ष से खिल उठे। मूर्त्तिपूजकों के हृदय शोक से सन्तप्त और उनके मुख विषाद से तेजोहीन हो गये और वे आह करते और ठण्डे साँस भरते सभा से उठकर चले गये। इस शास्त्रार्थ का यह प्रभाव हुआ कि सैकड़ों मनुष्यों की आस्था मूर्त्तिपूजा से उठ गई और बीसियों लोगों ने पण्डित हीरावल्लभ का अनुकरण करते हुए अपनी देवमूर्त्तियाँ गङ्गा के प्रवाह में डाल दीं।

श्रद्धा की बाढ़—फिर तो कर्णवास तथा अन्य ग्रामों के लोगों की श्रद्धा श्रीचरणों में इतनी बढ़ी कि वे हृदय से महाराज के अनुगामी बन गये और बहुतों ने महाराज के कर-कमलों से यज्ञोपवीत धारण किये तथा महाराज से सन्ध्या-गायत्री की शिक्षा प्राप्त करके अपना जन्म सफल किया। स्वामीजी के स्थल पर ही यज्ञ-वेदी रची गई तथा विधि और समारोहपूर्वक यज्ञ समाप्त हुआ। इस अवसर पर लगभग ४० पुरुष शिक्षित और दीक्षित हुए।

क्षत्रियों के कुलगुरुओं ने भी अपने शिष्यों का अनुकरण करते हुए मूर्त्तिपूजा छोड़ दी और कण्ठी तोड़ डाली।

इस समय स्वामीजी आठ गप्पों का खण्डन और आठ सत्यों का मण्डन करते थे। इनका विस्तृत वर्णन आगे आएगा।

एक नौ-मुस्लिम रईस—एक दिन धर्मपुर के नौ-मुस्लिम रईस ने स्वामीजी से पूछा कि महाराज क्या हम भी किसी प्रकार शुद्ध हो सकते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि यदि धर्म का आचरण करोगे तो अवश्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्ध हो जाओगे।

हम उच्छिष्ट नहीं खाएँगे—एक दिन एक ब्राह्मण ने महाराज को भोजन का निमन्त्रण दिया। महाराज ने उसे स्वीकार कर लिया। उस ब्राह्मण ने उस भोजन में से ठाकुरों को भोग लगाकर उसे महाराज के सामने रक्खा, परन्तु उन्होंने यह कहकर कि हम किसी का उच्छिष्ट नहीं खाते, उसे ग्रहण नहीं किया।

सूर्यग्रहण के समय भोजन—माघ कृ० ३० सं० १९२४ को सूर्यग्रहण था। सैकड़ों-सहस्रों नर-नारी गङ्गास्नान के लिए कर्णवास आये हुए थे। किसी ने स्वामीजी से पूछा कि महाराज ग्रहण का सूतक कब तक मानना चाहिए तो उन्होंने कहा कि सूतक कोई वस्तु नहीं है। उसने फिर पूछा कि भोजन कब करना चाहिए तो कहा कि जब क्षुधा लगे। ग्रहण के दिन उन लोगों ने जो ग्रहण के कारण गङ्गास्नान के लिए आये थे तीन बजे तक न तो स्नान किया और न भोजन किया। उन्हें यह ज्ञात न था कि ग्रहण किस समय पड़ेगा। प्रतीक्षा करके उन्होंने स्नान किया और भोजन करने लगे, परन्तु उनके ऐसा करते ही ग्रहण पड़ने लगा। इसपर स्वामीजी जोर से हँसे और कहने लगे कि इन लोगों की विचित्र गति है कि ग्रहण से पूर्व तो स्नान और भोजन नहीं किया, परन्तु अब ग्रहण के समय कर रहे हैं।

दिनचर्या—कर्णवास में स्वामीजी माघ के अन्त वा फाल्गुन के आरम्भ तक रहे। ठाकुर गोपालसिंह ने स्वामीजी के लिए एक कुटिया अलग बनवा दी थी और एक तख्त डलवा दिया था। स्वामीजी रात्रि के दो बजे उठकर गङ्गातट पर दूर चले जाते थे और वहाँ शौचादि से निवृत्त होकर समाधिस्थ हो जाते थे। समाधि खुलने के पश्चात् व्यायाम करते और फिर कुटिया में आकर तख्त पर विराजमान हो जाते थे। इतने में एक घण्टा दिन चढ़ जाता था और आगन्तुकों की भीड़ लग जाती थी। फिर वे लोगों की शङ्काओं के समाधान और उपदेश में प्रवृत्त हो जाते थे। शरीर पर रज लगाते और संस्कृत बोलते थे, एक लंगोट के अतिरिक्त कोई वस्त्र वा पात्र न रखते थे। शीतकाल में भी कोई वस्त्र न ओढ़ते थे। रात्रि में केवल पियार§ डाल लेते थे, ईंटों का तकिया लगाते थे।

६० वर्ष की वृद्धा का धर्मप्रवेश—ठा० गोपालसिंह की ६० वर्ष की वृद्धा एक ताई थी, जिसका नाम हंसा ठकुरानी था। वह पाँच-छह ग्रामों की स्वामिनी थी, परन्तु उसका जीवन बड़े संयम का था। जौ की रोटी और मूँग की दाल उसका नित्य का भोजन था, जिसे वह स्वयं बनाया करती थी। परिवार में उसका बड़ा मान था। जब उसने अपने परिवार के पुरुषों के जीवन में स्वामीजी के उपदेशों से एक आश्चर्यजनक परिवर्त्तन देखा तो उसके मन में भी उनके दर्शनों की लालसा उत्पन्न हुई। ठाकुर गोपालसिंह द्वारा उसने उनकी सेवा में उपस्थित होने की अनुमति माँगी। महाराज ने थोड़ी देर सोचकर अनुमति प्रदान कर दी। वह आई और उपदेश ग्रहण की इच्छा प्रकट की। महाराज ने उसे 'ओ३म्' और 'गायत्री' का जाप बताया और मूर्त्तिपूजा छोड़ने का आदेश किया। उसने आदेश स्वीकार किया और अपने जीवन के शेष दिनों में वह उसका पालन करती रही।

कर्णवास से स्वामीजी ने एक विद्यार्थी को मथुरा में दण्डी विरजानन्द के पास पढ़ने के लिए भेजा था।

यज्ञोपवीत की आवश्यकता—स्वामीजी द्विजमात्र के लिए यज्ञोपवीत लेना आवश्यक समझते थे और कहते थे कि बिना उपवीत हुए किसी को वैदिक कर्म करने का अधिकार नहीं है। संस्कारों के करने पर भी बल देते थे। संस्कारों के लाभ के विषय में एक जिज्ञासु के पूछने पर उन्होंने कहा था कि इससे जन्म प्रबल होता है। इस प्रश्न के उत्तर में कि यदि एक उपवीत मनुष्य अशुभ कर्म करे और दूसरा अनुपवीत मनुष्य शुभ कर्म करे तो उनमें कौन उत्तम है, उन्होंने कहा था कि उत्तम तो वही है जो उत्तम कर्म करे, परन्तु

§ पुआल—धान आदि के दाने झड़े हुए सूखे डण्ठल पराल।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपनयन-संस्कार आवश्यक है। एक दिन पण्डित इन्द्रमणि ने स्वामीजी से कहा कि आप अवधूत होकर खण्डन-मण्डन के बखेड़े में क्यों पड़े हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे लिए बखेड़ा नहीं हैं, प्रत्युत यह ऋषि का ऋण चुकाना है। स्वार्थी लोगों ने ऋषि-सन्तान को कुरीतियों में फँसा रक्खा है, मुझसे उसकी यह दीन दशा देखी नहीं जाती। मैंने उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रण कर लिया है।

बुलन्दशहर के कलक्टर—एक दिन बुलन्दशहर के कलक्टर भी महाराज की कुटिया पर आये थे। उस समय महाराज कुटिया के भीतर थे। कलक्टर साहब ने अपने आगमन की सूचना दी तो महाराज ने कहला भेजा कि इस समय हमें उनसे मिलने का अवकाश नहीं है। उन्होंने पुछवाया कि आपको कब अवकाश होगा। महाराज ने इसका तो कोई उत्तर न दिया, उलटा कलक्टर साहब से ही पुछवाया कि आपको कब अवकाश होगा। कलक्टर साहब ने कहा कि चार घण्टे के पश्चात् मुझे अवकाश-ही-अवकाश है। यह सुनकर महाराज कुटिया से बाहर निकल आये और कलक्टर साहब को आसन देने के पश्चात् उन्हें राजधर्म का उपदेश दिया और कहा कि जिस मनुष्य पर एक परिवार के भरण-पोषण का भार होता है, उसे सिर खुजाने का भी अवकाश नहीं मिलता और आपके ऊपर तो सहस्रों मनुष्यों के संकट-निवारण का भार है, मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि आपको चार घण्टों के पश्चात् अवकाश-ही-अवकाश है।

बिना युद्ध पहलवान परास्त—रतिराम नामी एक पहलवान था, जिसे अपने बल पर बहुत घमण्ड था। एक दिन वह महाराज के स्थल पर आया और महाराज को देखकर तिरस्कारपूर्वक बोला, अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट-पुष्ट है। महाराज ने उत्तर में कुछ न कहा, परन्तु उसपर अपने नेत्रों की ऐसी ज्योति डाली कि उसका सारा घमण्ड चूर्ण हो गया और उसपर ऐसा आतङ्क छाया कि वह श्रीचरणों में लोटता ही दिखाई दिया और हाथ जोड़कर अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा-प्रार्थी हुआ।

बिना शास्त्रार्थ पण्डितगण पर विजय—एक दिन पन्द्रह-बीस पण्डित जिनमें पण्डित कमलनयन और सुखदेव अच्छे विद्वान् थे, कुछ अतिक्लिष्ट प्रश्न पूछने के अभिप्राय से महाराज के स्थल पर पहुँचे। उस समय महाराज गङ्गा पर गये हुए थे। वे लोग उनकी प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर में ही महाराज वहाँ से आ गये तो सब लोगों ने उठकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज बैठकर थोड़ी देर ध्यानावस्थित हो गये, फिर उन्होंने आँखें खोलकर आगन्तुकों से कहा कि जो कुछ पूछना हो पूछिए। उन्होंने एक बार कहा, दो बार कहा, परन्तु किसी के मुख से एक शब्द भी न निकला। तब स्वामीजी ने उपदेश करना आरम्भ कर दिया। वे लोग सुनते रहे और 'सत्य है, सत्य है' कहते रहे। थोड़ी देर के पश्चात् वे लोग चले गये। मार्ग में जाते हुए वे लोग कहने लगे कि न जाने दयानन्द में कौन-सी शक्ति है कि हम सबके मुख पर उसके सामने जाकर ताले लग गये और जो प्रश्न हम सोचकर गये थे उनमें से एक भी न पूछ सके।

तुमने फलियाँ चुराई हैं—एक दिन पण्डित नन्दकिशोर अध्यापक स्वामीजी के पास जा रहे थे। मार्ग में एक खेत में श्याम सेम की फलियाँ देखकर उन्होंने कुछ फलियाँ तोड़ लीं और स्वामीजी के सामने जा रक्खीं। उन्होंने कहा कि नन्दकिशोरजी ! आप ये फलियाँ चोरी करके लाये हैं। ये शब्द सुनकर वे कुछ सिटपिटाये और बोले कि महाराज मैंने किसकी चोरी की है ? महाराज ने हँसकर कहा कि सच कहिए क्या आप यह फलियाँ खेत के स्वामी की आज्ञा से तोड़कर लाये हैं ? इसपर पण्डित नन्दकिशोर लज्जित हुए और अपने कर्म पर पश्चात्ताप किया। महाराज ने वे फलियाँ ग्रहण नहीं कीं।

द्वन्द्वातीत दयानन्द—स्वामीजी ने द्वन्द्वों को जीत लिया था, उन्हें न जाड़ा सताता था न गर्मी। माघ में एक दिन प्रातःकाल अत्यन्त शीतल वायु चल रही थी। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। लोग गदेले और लिहाफ़ों को छोड़कर बाहर न निकलना चाहते थे। ग़रीब-अमीर सभी घरों में बैठे अग्नि ताप रहे थे, परन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी के कुछ भक्त ऐसे थे जो वर्षा हो या आँधी, जाड़ा हो या गर्मी, महाराज के उपदेश के अलभ्य लाभ से वञ्चित रहना न चाहते थे और महाराज भी उपदेश कार्य से छुट्टी न लेते थे। उस दिन भी सदा की भाँति महाराज पद्मासन लगाये उपदेश कार्य में रत थे। स्वर वा शरीर में कोई प्रकम्प न था, उनपर शीतातिशय का कोई प्रभाव न था, परन्तु श्रोता रूई और ऊन के वस्त्र पहने हुए, रजाई और कम्बल ओढ़े हुए भी ठिठुरे जाते थे, उनकी बत्तीसी कटाकट बज रही थी। ठाकुर गोपालसिंह ने महाराज से पूछा कि आपपर शीत का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। उन्होंने कहा कि ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है। ठाकुर महाशय ने कहा कि हम कैसे जानें तो महाराज ने अपने हाथों के अँगूठे दोनों घुटनों पर रखकर दबाये और तत्काल सारे शरीर से पसीना चू निकला। लोग देखकर चकित रह गये और उन्हें महाराज के योगबल में पूरा विश्वास हो गया।

एक दिन एक मनुष्य ने स्वामीजी से पूछा कि क्या आप गङ्गा को मानते हैं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया, मानते हैं। "कैसी है ?" उसने पुनः पूछा। उन्होंने कहा कि जो कुछ दिखाई देती है। उसने फिर पूछा कि क्या दिखाई देती है ? उत्तर दिया कि तुम्हें क्या दिखाई देती है ? उसने कहा कि मुझे तो जल दिखाई देता है। महाराज ने कहा यही हमें दिखाई देता है।

अङ्गद शास्त्री का पत्र—कर्णवास की स्थिति के समय अङ्गद शास्त्री ने पीलीभीत से स्वामीजी के पास एक चिट्ठी संस्कृत में भेजी थी, जिसमें अत्युक्तिपूर्ण आत्मश्लाघा की गई थी। महाराज ने उनके उत्तर में एक लम्बा पत्र लिखा था जिसमें उनकी भाषा और भागवत में अनेक अशुद्धियाँ दिखाई थीं। वह पत्र बड़ा ही मनोरञ्जक और सुन्दर था। उसका अङ्गद शास्त्री से कोई उत्तर न बना।

रात्रि में दो यूरोपियनों से साक्षात्—एक दिन जो जी में आई तो महाराज किसी को सूचना दिये बिना ही कर्णवास से चल खड़े हुए और गङ्गातट पर विचरने लगे। वे कहाँ-कहाँ घूमे इसका कुछ पता नहीं चला। इसके पश्चात् एक दिन रात्रि के समय हम उन्हें गङ्गा के दूसरे तट पर गङ्गा की सिकता में समाधिस्थ पाते हैं। चाँदनी छिटक रही थी, शीत अपना साम्राज्य जमाये हुए था। घटनावश दो अंग्रेज़ उधर आ निकले। इतनी रात्रि बीतने के समय उनका वहाँ जाना आखेट के कारण ही हो सकता था। वे एक साधु को ऐसे शीत में विवस्त्र दशा में गङ्गा की ठण्डी बालुका में बैठा देखकर आश्चर्य में निमग्न हो गये और टकटकी लगाकर उनकी ओर देखते रहे। जब साधु ने आँखें खोलीं तो वे उसके पास गये। उनमें से एक बदायूँ का कलक्टर था और दूसरा उसका मित्र एक पादरी था। कलक्टर साहब ने कहा कि हमें बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे शीतकाल में आप नदी के तट पर, ठण्डी रेत में, रात्रि के समय, केवल एक लँगोट लगाये बैठे हैं। स्वामीजी अभी कुछ कहने न पाये थे कि उनका पादरी मित्र बोल उठा कि ये माल खाकर मुटा गये हैं, इन्हें जाड़ा कैसे लग सकता है ? स्वामीजी ने कहा कि हम दाल-रोटी खानेवाले क्या माल खा सकते हैं ? माल तो आप खाते हैं, मांस, अण्डे और मदिरा उड़ाते हैं। यदि शीत का लगना, न लगना माल खाने, न खाने पर ही निर्भर हो तो आइए वस्त्र उतारकर थोड़ी देर मेरे साथ बैठ जाइए। इसपर वह लज्जित हो गया और विषय बदलकर कहने लगा कि अच्छा तो क्या कारण है कि आपको शीत नहीं लगता। महाराज ने कहा कि इसका मुख्य कारण अभ्यास है, आपका मुख सदा खुला रहता है, इससे इस समय भी आपको उसे ढकने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कलक्टर साहब ने अपने मित्र को संकेत से आगे कुछ कहने से रोक दिया और दोनों नमस्कार करके चले गये।

स्वामीजी इस प्रकार भ्रमण करते हुए गढ़ियाघाट पहुँचे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षष्ठ अध्याय

संवत् १९२५ चैत्र—मार्गशीर्ष=सन् १९६८ अप्रैल—नवम्बर

(अप्रैल १९६८) गढ़ियाघाट (चैत्र शु० सं० १९२५)

भक्त बलदेवगिरि—सोरों, जिला एटा, जिसका संस्कृत नाम शूकर-क्षेत्र है, हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसकी विशेषता यह है कि यहाँ वराह का मन्दिर है जो सारे भारतवर्ष में पुष्कर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ पर्वादि के अवसर पर सहस्रों नर-नारी एकत्र होते हैं। सोरों के पास ही गढ़ियाघाट है। जब स्वामीजी गढ़ियाघाट पहुँचे तब चैत्र संवत् १९२५ था। सोरों में बलदेवगिरि गोसाईं प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे। उन्होंने पहले से ही स्वामीजी की प्रशंसा सुन रक्खी थी और उनके दर्शनों के लिए लालायित थे। जब उन्हें स्वामीजी के आने का समाचार ज्ञात हुआ तो वे पं० नारायण चक्रांकित तथा अन्य पण्डितों को साथ लेकर स्वामीजी के दर्शनों को अपने स्थान अम्बागढ़ से गढ़ियाघाट आये। नारायण पण्डित से स्वामीजी का शास्त्र-विषय पर विचार हुआ, परन्तु वह कुछ मिनटों में ही निरुत्तर हो गये। गोसाईंजी को महाराज की विचार-शैली इतनी भाई और उनकी विद्या,तप और तेज से वे इतने मुग्ध हुए कि प्रतिदिन सेवा में उपस्थित होने लगे और उनके लिए भोजन भी अपने ही स्थान से भिजवाने लगे।

उजड्ड ठाकुर—एक दिन ऐसा हुआ कि एक ठाकुर और उसके तीन साथी स्वामीजी के स्थान पर आये। उनमें से दो के हाथ में तलवार और दो के हाथ में लाठी थीं। वे वास्तव में स्वामीजी को आघात पहुँचाने आये थे। कारण यह कि सोरों चक्राङ्कितों का गढ़ था। महाराज उनके मत का तीव्र खण्डन करते थे तथा भागवत को अशुद्ध और त्याज्य बताते थे। यही कारण स्वामीजी से चक्राङ्कितों के विरोध का था। यह ठाकुर भी निम्बार्क सम्प्रदाय का था। इसके ललाट पर निम्बार्कों का तिलक भी था, गले में कण्ठी बँधी थी। बलदेव भक्त उस समय भी स्वामीजी के पास बैठे हुए थे। वह ठाकुर वहाँ आकर उजड्डता से महाराज के बराबर बैठ गया। बलदेवगिरि ने उसे रोका, परन्तु वह न माना। महाराज ने भी उसका असभ्य व्यवहार देखकर उसे समझाया, परन्तु वह दुष्टता करता ही गया। इसपर स्वामीजी उठकर दूसरी मढ़ी में जा बैठे। उसने अपने आदमियों को संकेत किया कि यह आदमी (बलदेवगिरि) कौन है इसे पकड़ लो, यह क्या बकता था। उसके आदमी उनकी ओर लपके, परन्तु वे थे डण्डपेल जवान, दाव-घात से परिचित। उन्होंने एक का हाथ और एक का पाँव पकड़कर नीचे गिरा दिया। वह गिरा तो उसके हाथ से लाठी छूट गई। वह उन्होंने उठा ली। उनके साथी भी वहाँ थे। उनमें से एक ने ठाकुर के आदमी की दाढ़ी और तलवार पकड़ ली। ठाकुर का भी जूड़ा पकड़ लिया और सबके दो-दो लाठी लगाकर नीचे धकेल दिया और वे फिसलते-फिसलते गङ्गा में जा गिरे और दलदल में फँस गये। कुछ लोग इकट्ठे हो गये और जब उन्होंने गोसाईं को देखा तो ठाकुर को गालियाँ देने लगे कि दुष्ट ! तू हमारे गुरुजी से क्यों लड़ा। बलेदेवगिरि को यह भय हुआ कि स्वामीजी उक्त मनुष्यों को पीटने के कारण उससे अप्रसन्न होंगे और सम्भव है उनके गृह पर भोजन न करें, परन्तु स्वामीजी ने उनसे कहा कि हाथ-पैर धोकर भोजन ले-आओ और उनके शौर्य की बहुत प्रशंसा की।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अप्रैल—मई) सोरों (चैत्र शु०—वैशाख)

गढ़ियाघाट से बलदेवगिरि यह कहकर कि सोरों में १०,००० ब्राह्मण रहते हैं, वहाँ जाकर उपदेश देने से सैकड़ों मनुष्य मूर्त्तिपूजा के गर्त और चक्राङ्कितों के जाल से निकलेंगे, सोरों लिवा लाये और अपने स्थान पर अम्बागढ़ में ठहराया।

सोरों में महाराज का आना था कि उनकी प्रसिद्ध चारों ओर फैल गई और पण्डितों और अपण्डितों के झुण्ड उनके दर्शनों को आने लगे।

पण्डितों में चर्चा हुई, शास्त्रार्थ करने का निश्चय हुआ और उनके मुखिया पं० खमानी अपने दलबल के साथ चले मैदान जीतने, परन्तु चार-पाँच बातों में ही वे निरुत्तर होकर मौन हो गये और उनके साथी खिजकर कोलाहल करने लगे। तब गोसाईं बलदेवगिरि तथा अन्य न्यायप्रिय लोगों ने उन्हें डाँटा और वे लोग शोर करते हुए चले गये। इस शास्त्रार्थ का तत्काल यह प्रभाव हुआ कि पं० गोविन्दराम चक्राङ्कित ने महाराज की शिक्षा स्वीकार कर ली।

पं० अंगदशास्त्री शिष्य हो गये—सोरों के पास *बदरिया* एक ग्राम है। वहाँ एक पण्डित अङ्गदराम शास्त्री निवास करत थे, जो दण्डी विरजानन्द से, जब वे सोरों में रहा करते थे कुछ दिन सिद्धान्तकौमुदी पढ़े थे। वे संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे और व्याकरण में उनकी बहुत धाक थी। उनके साथ शास्त्रार्थ करने से अच्छे-अच्छे विद्वान् घबराते थे। वह शालिग्राम की पूजा और भागवत की कथा कहा करते थे। वह भी स्वामीजी की प्रशंसा सुनकर और शास्त्रार्थेच्छु होकर स्वामीजी के पास आये। विचार आरम्भ हुआ। मूर्त्तिपूजा पर बात चली। स्वामीजी ने उसका अनेक युक्ति-प्रमाणों से ऐसा खण्डन किया कि अन्त में पण्डित अङ्गदराम को उत्तर न सूझा। स्वामीजी ने भागवत की भी तीव्र आलोचना की और उसकी अनेक अशुद्धियाँ दिखाईं§। पण्डित अङ्गदराम हठी न थे, उन्हें पराजय स्वीकार करने में लज्जा न थी। उन्होंने स्वामीजी का पक्ष स्वीकार किया और सबके सामने शालिग्राम को, जिसपर वे प्रतिदिन गङ्गाजल चढ़ाया करते थे, उसी क्षण गङ्गा पर चढ़ा दिया और भागवत की कथा न कहने की मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली। उन्हें देखकर बलदेवगिरि ने भी 'तथास्तु' कहकर अपनी देवमूर्त्तियों को गङ्गा में डुबो दिया।

सहपाठी पं० युगलकिशोर—एक दिन पण्डित युगलकिशोर, जो स्वामीजी के सहाध्यायी थे, सोरों आये और स्वामीजी से मिले। पं० अङ्गदराम ने स्वामीजी से कहा कि महाराज ! आप औरों से तो कहते हैं कि शालिग्राम मत पूजो, तिलक न लगाओ, कण्ठी मत पहनो, परन्तु अपने इस सहपाठी से कुछ नहीं कहते। स्वामीजी ने कहा कि यह मथुरावासी हैं, इसी पर इनका निर्वाह है। इसपर पं० युगलकिशोर रुष्ट होकर चले गये। कहते हैं कि उन्होंने मथुरा पहुँचकर दण्डी विरजानन्द से शिकायत की कि दयानन्द सोरों में अधर्म कर रहा है, पुराण, शालिग्राम, कण्ठी-तिलक आदि का खण्डन करता है। दण्डीजी ने कहा—हे युगलकिशोर ! शालिग्राम क्या होता है ? **"शालीनां यो ग्रामः सः शालीग्रामः"** जब यह शब्द ही अशुद्ध है तब क्या इसकी पूजा निष्फल नहीं है ? कण्ठी, तिलक का भी प्रमाण दो कि कहाँ लिखे हैं। पं० युगलकिशोर ने कहा कि—यदि ऐसा ही है तो यह लो और झट कण्ठी तोड़कर फेंक दी।'

पं० अङ्गदराम के मूर्त्तिपूजा आदि छोड़ देने से मूर्त्ति पूजकों के दल में खलबली मच गई और सहस्रों मनुष्यों ने पं० अङ्गदराम का अनुकरण किया और सन्ध्या-गायत्री करनी आरम्भ कर दी। चक्राङ्कितों के गुरु

---

§ उन्होंने भागवत का यह श्लोक **"कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः। राज्ञां चोभयवंशानां चरितं परमाद्भुतम्॥"** उद्धृत करके कहा कि इसमें विस्तार शब्द अशुद्ध है, विस्तर होना चाहिए। अष्टाध्यायी के अनुसार वंश वा वार्त्ता के अर्थ में विस्तर और नाप के अर्थ में विस्तार होता है। यह बात पं० अङ्गदराम ने स्वीकार की।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृन्दावन के रङ्गाचार्य प्रति वर्ष सोरों में आकर नर-नारियों को चक्राङ्कित किया करते थे, परन्तु स्वामीजी के आगमन के पश्चात्, उनका सोरों में आना-जाना बन्द हो गया।

कैलासपर्वत कुटिया में कैसे समा गया ?—स्वामी कैलाशपर्वत जिनसे आगरा-निवास के समय स्वामीजी का परिचय हो चुका था, उन दिनों सोरों में ही थे। उन्हें लोगों ने स्वामीजीकृत आन्दोलन को शान्त करने के अभिप्राय से काशी से बुलाया था। वे एक दिन सोरों से गढ़ियाघाट गये। स्वामीजी उन्हें देखकर उनकी कुटिया में चले गये और कहा कि "इतना बड़ा कैलासपर्वत ऐसी छोटी-सी कुटिया में कैसे समा गया।" कैलाशपर्वत का कहना है कि स्वामीजी ने उनसे कहा था कि रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क, माध्व सम्प्रदायों का खण्डन करने में आप हमारी सहायता कीजिए, परन्तु हमने यह स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उन्होंने हमारी दो बातों, अर्थात् मूर्त्तिपूजा और पुराणों का खण्डन न करना स्वीकार नहीं किया।

स्वामी कैलाशपर्वत का सोरों में वराह का मन्दिर था। स्वामीजी के सदुपदेश से सैकड़ों पुरुषों ने उसमें जाना छोड़ दिया। कैलाशपर्वत से स्वामाजी की बात-चीत तो हुई, परन्तु कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ। वे साधारण बात-चीत में भी स्वामीजी के मूर्त्तिपूजन के खण्डनात्मक प्रश्नों का उत्तर न दे सके। स्वामी कैलाशपर्वत ने धर्मसंरक्षिणी नामक एक लघु पुस्तक भी लिखी थी, जिसमें अपने विचार में उन्होंने मूर्त्तिपूजा, पुराणों की प्रामाणिकता, एकादशी व्रत आदि सिद्ध किये थे, परन्तु वास्तव में, वह निःसार थी और उसमें वे कुछ भी सिद्ध न कर सके थे।

जब स्वामीजी सोरों गये और मूर्त्तिपूजा का प्रवृद्ध वेग से खण्डन किया तो कैलाशपर्वत को बहुत क्रोध आया और वह स्वामीजी को बुरा-भला कहने लगे, परन्तु स्वामीजी ने कभी उनके लिए किसी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया। हम यहाँ यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि सिवाय इस अवसर के स्वामी कैलाशपर्वत ने स्वामीजी की निन्दा से अपनी जिह्वा को कभी कलुषित नहीं किया था, प्रत्युत उनकी विद्या, वाग्मिता, तप, त्याग की प्रसंशा ही करते रहते थे। मूर्त्तिपूजा पर उनका स्वामीजी से मतभेद होते हुए भी स्वामीजी के लिए उनके हृदय में मान था।

कैलाशपर्वत भयभीत—किसी ने स्वामी कैलाशपर्वत से जाकर कह दिया कि बलदेवगिरि आपको पीटने को फिरता है, यदि आप बाहर जंगल जाओगे तो वह आपको पीटेगा। उन्होंने इसकी थाने में रिपोर्ट कर दी और अपनी रक्षा के लिए दो सिपाही बुला लिये। यह खबर बलदेवगिरि को भी लग गई और उन्होंने जाकर कैलाशपर्वत से कहा कि आपको किसी ने बहका दिया है, हम आप एक हैं, हमसे कुछ भय न कीजिए। तब उनका मनोमालिन्य दूर हुआ।

नग्न साधु चुप—इन्हीं दिनों एक और नग्न साधु चिदानन्द सोरों आया। वह संस्कृतज्ञ था और मूर्त्तिपूजन सिद्ध करने की डींग मारता था। स्वामीजी ने उसे पत्र लिखा कि तुम मेरे समीप आओ वा मुझे अपने पास बुलाओ और शास्त्रार्थ कर लो, परन्तु उसने कोई उत्तर न दिया। एक दिन स्वामीजी को खबर मिली कि वह सोरों से जा रहा है। स्वामीजी उसके पीछे गये और एक मील पर उसे जा पकड़ा। वह वहीं बैठ गया, स्वामीजी भी बैठ गये और उससे पूछा कि मूर्त्तिपूजा की सिद्धिवाला मन्त्र बोलो, परन्तु उसने ऐसा मौन साधा कि हूँ-हाँ कुछ न की। स्वामीजी ने कहा कि झूठ ने तुम्हारे मुख पर मुहर लगा दी है, यदि तुम्हारा पक्ष सच्चा है तो बोलते क्यों नहीं ? परन्तु वह बुत बना बैठा रहा। जब एक घण्टा बीत गया तो विवश होकर स्वामीजी चले आये।

कासगंज के पण्डित अयोध्याप्रसाद और चेतराम भी महाराज के दर्शनों को आये थे। वे उनके उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि महाराज के अनुगत हो गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित सुखानन्द भागवती पण्डित थे। उनका पं० अयोध्याप्रसाद से सौहार्द था। पं० सुखानन्द स्वामीजी के भागवत-खण्डन के कारण उनसे बहुत अप्रसन्न थे और उन्हें नास्तिक के समान मानते थे।

भागवती पण्डित अनुगत—एक दिन पण्डित अयोध्याप्रसाद पण्डित सुखानन्द को महाराज के पास ले-गये। संस्कृत में परिचय होने के पश्चात् ज्योतिष पर विचार आरम्भ हुआ। इस प्रसङ्ग में ऋषि ने **'शन्नो देवी०'** इत्यादि मन्त्र की ऐसी अपूर्व व्याख्या की कि पं० सुखानन्द का चित्त कुछ द्रवित हुआ और उनका मनोमालिन्य दूर होने लगा, फिर ऋषि-मुख से और मन्त्रों की व्याख्या सुनकर वे मुग्ध हो गये और ऋषि का संसर्ग-त्याग उन्हें कष्टकर प्रतीत होने लगा। वे निरन्तर छह दिवस तक उनके पास जाते और उनके उपदेशामृत से अपने मन को शान्त करते रहे। अन्त को उनके अनुगत हो गये और देवमूर्त्तियाँ गङ्गा में फेंक दीं।

कासगंज के एक पण्डित दुर्गादत्त ने स्वामीजी की निन्दा में उनके नाम पर कई श्लोक रचे थे; उनमें से एक श्लोक यह है—

धर्मपादा दया लोके सा नष्टा कलिदोषतः।
आनन्दो हि गुणातीतो दयानन्दो निरर्थकः॥

अम्बागढ़

महाभारत का संशोधन—अम्बागढ़‡ निवास के समय पं० अङ्गदराम महाभारत पाठ करते थे। वे पढ़ते जाते थे और स्वामीजी के साथ-साथ विचार करते जाते थे कि कौन-सा श्लोक आर्ष है और कौन-सा अनार्ष, कौन-सा शुद्ध है और कौन-सा अशुद्ध।

दुःख है किसी ने इस संशोधित ग्रन्थ को प्राप्त करने का यत्न नहीं किया। यदि वह मिल जाता तो कितना अमूल्य सिद्ध होता। स्वामीजी की इच्छा थी कि महाभारत का एक संशोधित संस्करण प्रकाशित किया जाए। सम्भव है उन्होंने इसी लिए उसे शोधा हो।

पण्डित अङ्गदराम ने स्वामीजी के उपदेशों को श्लोकबद्ध किया था। उन श्लोकों में से एक यह था—

रुद्राक्ष-तुलसी-काष्ठ-माला-तिलकधारणम्।
पाखण्डं विजानीयात् पाषाणादिकाऽर्चनम्॥§

एक दिन साल्ट इंस्पेक्टर ड्युरेंड (Durand) भी महाराज के दर्शन करने आये थे और उनके अनुरोध से रा० ब० बालमुकन्द डिपुटी कलक्टर भी, जो उन दिनों इनकम टैक्स का अनुसन्धान करने सोरों आये थे, श्रीसेवा में उपस्थित हुए थे।

पं० अङ्गदशास्त्री पीलीभीतवाले सम्मुख न आये—पण्डित अङ्गदरामशास्त्री पीलीभीतवाले भी उन दिनों सोरों में गये थे। उनसे स्वामीजी के शिष्य पं० अङ्गदराम शास्त्री बदरियावाले का शास्त्रार्थ भी हुआ था, जिसमें पीलीभीतवाले शास्त्री को परास्त होना पड़ा था। इन शास्त्री महोदय को अपने पाण्डित्य पर बड़ा घमण्ड था और बड़ी आत्मश्लाघा किया करते थे। एक बार सोरों आने से पहले जब स्वामीजी कर्णवास में विराजमान थे, शास्त्री महोदय ने स्वामीजी के पास एक पत्र भेजा था, जिसमें अपनी प्रशंसा में यह श्लोक लिखा था—

---

‡ यह घटना अस्थान में जुड़ी हुई प्रतीत होती है। पृष्ठ १३७ के अनुसार वे सोरों ही रहे थे। अम्बागढ़ का वर्णन पृष्ठ १४१ पर आगे होगा। यह घटना उसी समय की होगी। —**यु०मी०**

§ अयोध्याप्रसाद नामक एक धनाढ्य व्यक्ति ने एक मन्दिर बनवाया था। उसने पं० अङ्गदराम से उसकी प्रतिष्ठा कराने को कहा तो उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शेषः पातालके चास्ति स्वर्गलोके च बृहस्पतिः ।
पृथिव्यामङ्गदः साक्षाच्चतुर्थो नैव विद्यते ॥

अर्थात् पाताल में शेषनाग है, स्वर्गलोक में बृहस्पति है, पृथिवी पर साक्षात् अङ्गद है, चौथा नहीं है ।

स्वामीजी ने इसके उत्तर में बहुत लम्बी चिट्ठी लिखी थी जिसमें उसकी विद्वत्ता की खूब खबर ली थी।

सोरों में स्वामी कैलाशपर्वत ने पं० जगन्नाथ को बरेली से स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराने के लिए बुलवाया था । वे सोरों आ तो गये, परन्तु स्वामीजी के सम्मुखीन होकर शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए । पुराण-सिद्धि के पक्ष में अवश्य उन्होंने मनुस्मृति का **'इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि श्रावयेत्'** यह श्लोक लिख भेजा, जिसका उत्तर स्वामीजी ने दे दिया कि यहाँ 'पुराणानि' से १८ पुराण अभिमत नहीं हैं, प्रत्युत सनातन इतिहास है ।

गोसाईं बलदेवगिरि तो महाराज के इतने अनुगत हुए थे कि वे अपने को उनका शिष्य कहने में बड़ा गौरव मानते थे और हर समय प्राणपण से उनकी सेवा करने के लिए उद्यत रहते थे । उन्होंने अपने शिष्य हृदयगिरि को यह आदेश दिया था कि मृत्यु के पश्चात् उनेक शव को पृथिवी में गाड़ा न जाए, अपितु वेदोक्त रीति के अनुसार अग्नि में दाह किया जाए । शिष्य ने भी उनके देहावसान पर अक्षरशः गुरु की आज्ञापालन करके अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया ।

बलदेवगिरि बड़े शूरवीर पुरुष थे । उनकी स्वामीजी में अनुपम भक्ति और प्रीति को देखकर दुष्ट लोग भयभीत रहते थे और स्वामीजी को हानि पहुँचाने का विचार रखते हुए भी कोई दुष्टता न कर सकते थे ।

दयानन्द के धोखे में एक साधु का गंगा में मज्जन—स्वामीजी की मूर्त्तिपूजा आदि की तीव्र आलोचना से मूर्त्तिपूजक दल बहुत रुष्ट हो गया था । यहाँ तक कि उसमें जो गुण्डे और लुंगाड़े थे, वे तो उनका प्राणहरण ही करना चाहते थे । एक रात को ऐसे कुछ लोग इकट्ठे होकर आये कि दयानन्द को पकड़कर गङ्गा में डुबा दें । जहाँ स्वामीजी सोया करते थे, उसके समीप ही एक साधु सो रहा था । उन्होंने उसे दयानन्द समझकर गङ्गा में डाल दिया । वह चिल्लाया कि मुझे बचाओ तब गुण्डों को ज्ञात हुआ कि उन्होंने दयानन्द के धोखे में अन्य साधु को गङ्गा में डाल दिया है और तब उस साधु को जल से बाहर निकाला ।

क्रोधी जाट—एक दिन महाराज उपदेश कर रहे थे । सभा-मण्डप श्रोताओं से खचाखच भरा था कि एक जाट क्रोध में भरा हुआ एक मोटा लट्ठ लिये हुए आया और आते ही स्वामीजी को सम्बोधित करके बोला 'अरे साधु ! तू मूर्त्तिपूजन का खण्डन करता है, गङ्गामैया की निन्दा करता है, देवी-देवताओं को बुरा कहता है । झटपट बता यह लट्ठ तेरे कहाँ मारकर तुझे समाप्त करुँ । यह सुनकर एक बार तो सारी सभा विचलति हो गई, परन्तु महाराज की शान्ति व धैर्य भङ्ग न हुए । उन्होंने गम्भीरतापूर्वक उससे कहा कि यदि तू समझता है कि मेरा धर्म-प्रचार करना अपराध है तो उसका अपराधी मेरा मस्तिष्क है । वही मुझसे यह कार्य कराता है । इसीलिए यदि तू अपराधी को दण्ड देना चाहता है तो अपना लट्ठ मेरे सिर पर मार । यह कहकर महाराज ने अपनी दृष्टि उसपर डाली । महाराज की आँखें ज्योंही उसकी आँखों के सामने हुई त्योंही उसका हिंस्र-भाव विलुप्त हो गया । वह श्रीचरणों में गिर पड़ा और रोकर अपना अपराध क्षमा कराने लगा। महाराज ने उससे कहा कि तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया । यदि तुम मुझे मारते तो भी कोई बात थी। अब व्यर्थ क्यों रो रहे हो, जाओ ईश्वर तुम्हें सन्मार्ग दिखाए ।

वैरागियों का द्वेष—गढ़ियाघाट में स्वामीजी से वैरागी लोग बहुत द्वेष करने लगे थे । महाराज वहाँ एक क्षत्रिय के यहाँ ठहरे थे, जो वैष्णव था । वह महाराज के उपदेश से भ्रमजाल से मुक्त हो गया था । उसने कण्ठी तोड़ डाली थी और ठाकुरपूजा छोड़ दी थी । वैरागियों को भय हुआ कि दयानन्द की शिक्षा से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसे समृद्ध व्यक्ति भी मूर्त्तिपूजा छोड़ने लगे तो किसी दिन उनकी आजीविका बिल्कुल ही समाप्त हो जाएगी। स्वामीजी वैरागियों की प्रकृति को जानते थे। उन्होंने सुन रक्खा था कि कानपुर के पास वैरागियों का एक बहुत बड़ा अड्डा है। एक बार वहाँ एक विरजानन्द नाम का साधु जा निकला था। उन्होंने उसे दयानन्द समझकर एक रात सोते हुए को उठाकर गङ्गा में डाल दिया। वह साधु तैरना जानता था, अतः तैरकर पार हो गया, अन्यथा उसके प्राण जाने में कोई सन्देह न रहा था, अतः स्वामीजी वैरागियों से सदा सावधान रहा करते थे।

एक दिन जो मौज आई तो सूर्योदय से पहले ही किसी से कुछ कहे-सुने बिना ही स्वामीजी सोरों से चल दिये।

(मई—अक्तूबर) **कर्णवास** (ज्येष्ठ कृ०—कार्तिक)

राव कर्णसिंह का आक्रमण—ज्येष्ठ संवत् १६२५ में स्वामीजी फिर कर्णवास पधारे और जिस कुटी में पहले ठहरे थे, उसी में ठहरे। आपके आगमन का शुभ समाचार सुनकर आपके भक्त सेवा में उपस्थित होकर आतिथ्य में प्रवृत्त हुए। महाराज पूर्व की भाँति लोगों को सत्य सनातन वैदिक धर्म्म के तत्त्व समझाने और अवैदिक रूढ़ियों का खण्डन करने लगे। ज्येष्ठ शुक्ला १० को कर्णवास में गङ्गास्नान का मेला होता है और आस-पास के प्रदेश के सहस्रों नर-नारी मेले में इकट्ठे होते हैं। कर्णवास से कुछ दूर बरोली नाम का एक ग्राम है। उन दिनों वहाँ एक बड़े ज़मीदार और रईस निवास करते थे जिनका नाम राव कर्णसिंह था। वे बड़गूजर क्षत्रिय थे। वे वृन्दावन के प्रसिद्ध रङ्गाचारी चक्राङ्कित सम्प्रदाय के धर्माचार्य के शिष्य थे। उनकी ससुराल भी कर्णवास में ही थी। वे भी इस अवसर पर गङ्गास्नान के लिए आये थे। एक दिन जबकि महाराज लोगों को सदुपदेश कर रहे थे और शङ्काओं का निराकरण कर रहे थे, राव कर्णसिंह भी अपने शस्त्रधारी अनुचरों के साथ सभास्थल में आये। आते ही महाराज को प्रणाम करके बोले—

कर्ण—हम कहाँ बैठें ?

स्वामीजी—जहाँ आपकी इच्छा हो।

कर्ण—(कुछ घमण्डसहित विकृत स्वर में) हम तो जहाँ आप बैठे हैं, वहाँ बैठेंगे।

स्वामीजी—(शीतलपाटी के एक सिरे की ओर हटकर) आइए, बैठिए।

कर्ण—(बैठकर) आप गङ्गा को नहीं मानते ?

स्वामीजी—गङ्गा जितनी है, उतनी मानते हैं।

कर्ण—कितनी है ?

स्वामीजी—हम संन्यासियों के लिए तो कमण्डलुभर है, क्योंकि हमारे पास कोई अन्य पात्र नहीं है।

कर्ण—गङ्गा की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़ता है।

स्वामीजी—तुम्हारी यह बात गप्प है। यह तो जल है, जल से मोक्ष नहीं होता, मोक्ष तो कर्मों से होती है।

कर्ण—हमारे यहाँ रामलीला होती है। वहाँ चलिए।

स्वामीजी—तुम कैसे क्षत्रिय हो। महापुरुषाओं का स्वांग बनाकर नचाते हो। यदि कोई तुम्हारे पुरुषाओं का स्वांग बनाकर नचावे तो तुम्हें कैसा बुरा लगे ? (उसके ललाट पर चक्राङ्कितों का तिलक देखकर) तुम क्षत्रिय हो, तुमने अपने मस्तक पर यह भिखारियों का तिलक क्यों लगाया है और भुजाएँ क्यों दग्ध की हैं?

कर्ण—(क्रोध में भरकर) हमारा धर्म्म है, यदि तुमने उसका खण्डन किया तो हम बुरी तरह पेश आएँगे।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी शान्ति और गम्भीरतापूर्वक चक्राङ्कित मत का खण्डन करते रहे, उसके क्रोध की किञ्चिन्मात्र भी परवाह न की।

खण्डन-वचन सुनकर कर्णसिंह के तन में आग लग गई और उसने म्यान से तलवार निकाल ली।

स्वामीजी—(कुछ भी भय न करते हुए) यदि सत्य कहते हुए सिर कटता है तो तुम्हें अधिकार है काट लो, यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर आदि के राजाओं से लड़ो, शास्त्रार्थ कराना है तो वृन्दावन से अपने गुरु रङ्गाचारी को बुलवा लो और प्रतिज्ञा लिखा लो कि यदि वह हार जाए तो अपना मत छोड़ दे।

कर्ण—(क्रोध में) महाराज रङ्गाचारी के सामने तू कीड़े के तुल्य है, तुझ-जैसे उसके आगे जूतियाँ उठाते हैं।

स्वामीजी—(ने केवल इतना ही कहा—) रङ्गाचारी की मेरे सामने क्या गति है !

कर्णसिंह महाराज को इसी प्रकार गालियाँ देने लगा, महाराज पद्मासन लगाये सुनते और हँसते रहे। कहते हैं कि उसने महाराज पर तलवार चलाई। तब महाराज ने गरजकर उसके हाथ से तलवार छीन ली और पृथिवी पर टेककर तोड़ दी तथा कहा कि कहे तो यह तलवार तेरे शरीर में घूँस दूँ। इसपर ठाकुर किशनसिंह खड़े हो गये और कहा कि यदि तूने महाराज के लिए एक शब्द भी कहा तो फ़ौजदारी हो जाएगी, तुझे उपदेश नहीं सुनना है तो चला जा, तब तो कर्णसिंह घबराया और लज्जित होकर अपने डेरे को चला गया।§

हम ब्राह्मणत्व से पतित नहीं होंगे—कर्णसिंह के चले जाने पर कुछ सभास्थ लोगों ने महाराज से कहा कि इस घटना की थाने में रिपोर्ट कर दीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि जब वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो क्या हम अपने ब्राह्मणत्व से पतित हो जाएँ ? दूसरे, हमें उससे कुछ हानि भी नहीं पहुँची है, सन्तोष करना ही हमारा धर्म है और यह श्लोक पढ़ा—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

और कहा उसके लिए इतनी लज्जा ही पर्य्याप्त दण्ड है, यदि बुद्धिमान् होगा तो फिर ऐसा कर्म न करेगा।

प्राणों पर आक्रमण होने के समय भी शान्त रहना, प्राणघातकों पर भी क्रोध न करना, अपकार के बदले अपकार न करना अपितु उपकार करना, किसी के प्रति द्वेष का लवलेश न रखना दयानन्द से वेदज्ञ, दयानन्द से योगी, दयानन्द से दयालु का ही काम था ! क्या अब भी कोई कह सकता है कि दयानन्द ऋषि नहीं था।

कर्णसिंह के चले जाने पर महाराज पूर्ववत् शान्ति और सुमनस्कता के साथ उपदेश करने लगे मानो

---

§ पं० लेखराम ने इस घटना के विषय में जिन सज्जनों के वर्णन दिये हैं उनमें से कई यह कहते हैं कि कर्णसिंह ने तलवार की मूठ पर हाथ रक्खा था और कोई यह कि उसने तलवार म्यान से निकाल ली थी। कई यह कहते हैं कि तलवार निकालकर कर्णसिंह का एक अनुचर बलदेवदास वैरागी महाराज पर आक्रमणकारी हुआ था और महाराज ने उसे इतने ज़ोर से धक्का दिया था कि वह पीछे को जा पड़ा था। तलवार छीनकर और पृथिवी पर टेक कर तोड़ देना केवल एक सज्जन ने बयान किया है, परन्तु इनकी यह घटना सुनी हुई है, देखी हुई नहीं। जो घटना के समय उपस्थित थे, उनमें से कोई यह बात नहीं कहता। देवेन्द्रबाबू ने भी केवल इतना ही लिखा है कि 'कर्णसिंह ने तलवार सँभाली'। हम समझते हैं कि जब कर्णसिंह ने तलवार निकाली तो उसी समय ठाकुर किशनसिंह आदि महाराज की रक्षा के लिए खड़े हो गये और कर्णसिंह अपने दुष्ट सङ्कल्प में कृतकार्य न हो सका। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई विघ्नकारी घटना हुई ही न थी। भक्त-जन महाराज का धैर्य, महाराज का गाम्भीर्य, उनकी शान्ति, उनकी तितिक्षा, उनका सन्तोष, उनमें प्रतिहिंसा का अभाव देखकर विस्मित रह गये और उनके हृदय में महाराज के प्रति प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और सम्मान के भाव शतशः और सहस्रशः अधिक हो गये।

पाप का फल—कर्णसिंह इस प्रकार लज्जित और तिरस्कृत होकर घर पहुँचे। जाते ही उनका एक बहुत अच्छा घोड़ा जिसे वे बहुत प्यार करते थे, अकस्मात् एक मारक रोग में ग्रस्त होकर मर गया। लोगों की यह धारणा हो गई कि दयानन्द जैसे महात्मा को कुवाक्य कहने और उनपर आक्रमण करने का परिणाम कर्णसिंह को तुरन्त ही मिल गया। कहते हैं कि वर्षा के कारण रामलीला भी पूरी न हो सकी और रावण तक न जल सका। कर्णसिंह के एक शूल उठा, जिसके कारण उसे बहुत पीड़ा हुई। एक पण्डित ने उससे कहा कि यह सब तुम्हारे एक महात्मा को दुर्वाक्य कहने का परिणाम है। इसपर उसने कई रुपये का मिष्टान्न स्वामीजी के पास भेजा और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी, परन्तु महाराज ने वह मिष्टान्न यह कहकर लौटा दिया कि उसने हमारा कोई अपराध नहीं किया।

पुनः प्राणहरण-चेष्टा—शरत् पूर्णिमा को राव कर्णसिंह फिर गङ्गास्नान को आये और बारहदरी में ठहरे। स्वामीजी पहली कुटिया में ही विराजमान थे। उन्होंने देखा कि स्वामीजी अभी तक कर्णवास में उपस्थित हैं और निःसंकोच होकर वेदविरुद्धमतों का खण्डन कर रहे हैं। उसके दुष्ट भाव फिर जाग्रत् हुए। पहली बार वह अपने जुगुप्सित कार्य में असफल रहा था और अत्यन्त अपमानित होकर उसे वापस जाना पड़ा था। यह असफलता और अपमान उसके हृदय का शूल बना हुआ था। स्वयं तो वह महाराज पर आक्रमण करने का साहस न कर सकता था, उसने महाराज का शिरच्छेद कराने का दूसरा उपाय सोचा। उसने सोचा कि किसी अन्य दुष्कर्म-रत मनुष्य से यह कार्य कराना चाहिए, अतः पहले तो उसने वैरागियों को उकसाया और कहा कि दयानन्द का सिर काट डालो, मैं रुपया व्यय करके तुम्हें बचा लूँगा, परन्तु वे घबरा गये और कर्णसिंह के बहकाने में न आये, फिर उसने अपने सेवकों को इस कार्य के लिए उद्यत किया।

स्वामीजी वस्त्र तो पहनते ही न थे, रात्रि को भी भर जाड़े में अपने ऊपर पियार डालकर सो जाते थे। उनके भक्तों ने यह परामर्श किया कि स्वामीजी जब सो जाया करें तो उनके ऊपर कम्बल डाल दिया करें, अतः वे ऐसा ही करने लगे, परन्तु रात्रि में यदि कम्बल शरीर से उतर जाता तो वे स्वयं दुबारा न ओढ़ते। भक्तजन को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने एक व्यक्ति कैथलसिंह नामक को इसलिए नियत कर दिया कि वह जगता रहा करे और रात्रि में जब कम्बल उतर जाया करे तो पुनः उढ़ा दिया करे।

हुंकारमात्र से घातकों का पलायन—एक दिन रात्रि के दो बजे कर्णसिंह ने अपने तीन सेवकों को तलवार देकर भेजा कि दयानन्द का मूँड काट लाओ। ये गये तो सही, परन्तु कुटी के भीतर जाने का साहस न हुआ। स्वामीजी और कैथलसिंह दोनों ही सो रहे थे। कैथल तो सोता ही रहा, परन्तु स्वामीजी खटका सुनकर उठ बैठे। कर्णसिंह के आदमी लौट गये और उससे जाकर कहा कि हमारी हिम्मत नहीं पड़ती। कर्णसिंह ने उन्हें धमकाकर फिर भेजा, परन्तु इस बार भी वे कुटी के भीतर पैर न रख सके। इस बार तो कर्णसिंह को उनपर बहुत क्रोध आया और उन्हें गालियों देकर फिर भेजा। वे गये और कुटी के द्वार पर जाकर कहा कि कुटी में कौन है ? स्वामीजी यह सुनकर खड़े हो गये और कुटी के द्वार पर इस जोर से हुङ्कार शब्द किया कि घातक लोग घबराकर उलटे होकर गिर पड़े और उनके हाथ से तलवार छूट गई, फिर वे ज्यों-त्यों करके सँभले और उलटे पाँव भाग गये। महाराज की हुङ्कार सुनकर कैथल भी जाग पड़ा और उसने महाराज से कहा कि आप अन्यत्र चले जाइए, परन्तु महाराज ने भगवद्गीता का **"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥"** यह श्लोक पढ़कर कहा कि मुझे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई नहीं मार सकता, फ़कीर कहीं गढ़ों और घरों में घुसते हैं, हमारा मनुष्य नहीं प्रत्युत देव रक्षक है और घबरा मत, मैं उसी का शस्त्र लेकर उसे हनन कर डालूँगा, परन्तु वह डर गया और उसने भागकर महाराज के भक्त क्षत्रियों को जगाया और सारा वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर बहुत-से क्षत्रिय कुटी पर पहुँचे गये। जब ये लोग वहाँ पहुँचे तो केवल चार घड़ी रात्रि रह गई थी। ठाकुर किशनसिंह ने उच्च स्वर से कर्णसिंह को गालियाँ देनी आरम्भ की और ललकार कर कहा कि यदि क्षत्रिय का वीर्य्य है तो हथियार बाँधकर हमारे सामने आ। महाराज ने उन्हें बहुत समझाया कि वह स्वयं भीरु है, हमारा कुछ नहीं कर सकता, परन्तु उनका क्रोध शान्त न हुआ, उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि यदि आज कर्णसिंह यहाँ रहा तो उसे बिना पीटे न छोड़ेंगे। ठाकुरों ने महाराज से भी कहा कि जो आज्ञा हो वह करें, परन्तु उन्होंने उदासीन भाव से यही कहा कि हम कुछ नहीं कहते; परन्तु हम नहीं चाहते कि तुम लोग हमारे लिए आपस में लड़ो। कर्णसिंह के ससुर ने जब ठाकुर किशनसिंह आदि के विचार सुने तो वह उसके पास गया और उससे कहा कि यदि तुम्हारे दिन अच्छे हैं तो तुरन्त यहाँ से चले जाओ, अन्यथा यह सत्य समझो कि आज तुम्हारी इज़्ज़त जरूर बिगड़ जाएगी, तुम्हारे हथियार छिन जाएँगे और तुम खूब पिटोगे। कर्णसिंह में इतना दम कहाँ था, वह ससुर की बात मानकर अपना डेरा-डण्डा सँभालकर वहाँ से चलता बना।

कहते हैं कि कर्णसिंह घर जाते ही बीमार हो गया और विक्षिप्तों की भाँति अण्ड-बण्ड बकने लगा। रोगमुक्त होने पर वह अपने मत के विरुद्ध मद्य पीने और मांस खाने लगा, एक बड़ी रकम का मुक़द्दमा भी हार गया और उसकी बड़ी दुर्दशा हुई।

कहते हैं कि घातक लोगों ने पीछे स्वीकार किया कि यद्यपि हम शस्त्रधारी थे और पहले भी हम ऐसे कर्म कर चुके थे, परन्तु उस रात्रि को स्वामीजी का हमपर ऐसा आतङ्क छाया कि हम कुछ न कर सके।

अम्बागढ़-सरदोल

इसके पश्चात् स्वामीजी चार-पाँच दिन कर्णवास और रहे और फिर अम्बागढ़ चले गये। वहाँ थोड़े ही दिन ठहरकर सरदोल पहुँचे। वहाँ के ज़मीदार ठा० हुलाससिंह और कतिपय अन्य क्षत्रियों ने स्वामीजी की शिक्षा को ग्रहण किया। सरदोल से महाराज शहबाज़पुर गये।

शहबाज़पुर

यह ग्राम सोरों से चार-पाँच कोस पर है। सोरों में जब उनके शहबाज़पुर में ठहरने का समाचार पहुँचा तो वहाँ से भक्त बलदेवगिरि, पं० अयोध्याप्रसाद व नारायण पण्डित उनसे मिलने गये। उन्हें महाराज का एक दिन का वियोग भी असह्य हुआ। सम्भवतः उसी दिन सोरों में यह समाचार आया था कि आश्विन कृष्णा १३ संवत् १९२५ को दण्डी विरजानन्द का देहावसान हो गया। इन लोगों ने जब यह दुःखप्रद समाचार स्वामीजी से कहा तो वे शोकातुर हो गये और थोड़ी देर चुप रहकर उन्होंने अन्तर्वेदना के साथ कहा कि आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने को सँभाला और उपदेश के कार्य में लग गये।

दयानन्द के शिरच्छेद का यत्न—दो वैरागी गङ्गा पार से शहबाज़पुर एक ठाकुर के पास आये। उनमें से एक ठाकुर का मित्र था। उसने उस ठाकुर से तलवार माँगी और कहा कि हम इस गप्पाष्टक का मूँड काटेंगे। ठाकुर महाराज का उपदेश सुन चुका था और उनका श्रद्धालु बन गया था। उसने वैरागी को दुत्कारा और कहा कि वे तो बड़े महात्मा हैं, दुष्टो ! यदि तुमने फिर यह बात मुँह से निकाली तो मैं तुम्हारा ही मूँड काट डालूँगा, जाओ और मेरे सामने से दूर होओ। ठाकुर को यह भय हुआ कि दुष्ट वैरागी महाराज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर आक्रमण न कर बैठें, अतः वह और दो-चार अन्य क्षत्रिय शस्त्र धारण करके महाराज के समीप गये और उनसे सब वृत्तान्त कहा। महाराज ने उदासीन भाव से कहा कि उनकी क्या समार्थ्य है जो हमें मारें। स्वामीजी के निषेध करने पर भी वह वीर क्षत्रिय रातभर पहरा देता रहा।

एक चक्राङ्कित ठाकुर भी महाराज के पास आया था। उसने महाराज से धर्मसम्बन्धी कुछ प्रश्नोत्तर किये। जब वह निरुत्तर हो गया तो लगा बेहूदा बकने। तब उन्हीं ठाकुर ने उससे कहा कि सीधा क्यों नहीं बोलता, मुँह सँभालकर बोल। उसे बहुत कुछ धमकाया और वह चुपचाप चला गया। उस क्षत्रिय का नाम ठाकुर गङ्गासिंह था, वह कई ग्रामों का ज़मीदार था।

शहबाजपुर में साधु मायाराम उदासी ने यह देखकर कि ब्राह्मण लोग उनकी बहुत निन्दा करते हैं, महाराज से कहा कि आप मूर्त्तिपूजा आदि का खण्डन करके क्यों लोगों को शत्रु बनाते हैं, हमारी भाँति भोजन कीजिए और मग्न रहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि **हमें तो ईश्वराज्ञा-पालन और वेद के प्रचार में ही आनन्द आता है।**

कादिरगंज, नरदौली, ककोड़ा

शहबाज़पुर से महाराज कादिरगंज पधारे। वहाँ अधिकतर लोग वैष्णव मतावलम्बी थे। उनमें से कुछ लोग उनसे वार्त्तालाप करने आये, परन्तु वे हल्ला-गुल्ला करके ही चले गये। कादिरगंज से स्वामीजी नरदौली गये। नरदौली में लगभग १० दिन महाराज की स्थिति रही। उनके आगमन का समाचार चारों ओर फैल गया और बीस-बीस कोस से लोग उनके दर्शनों को आये। अनेक पण्डित और पण्डितम्मन्य भी आये, परन्तु सभी शास्त्र-विचार में उनसे परास्त होकर चले गये। अनेक लोगों ने उनकी शिक्षा स्वीकार की, जिनमें मुख्य ला० लीलाधर, पं० मूलचन्द और पं० प्राणनाथ थे। महाराज ने अनेक लोगों को सन्ध्योपासना की पुस्तक पढ़ाई और विधि बतलाई।

ककोड़े का मेला—जब महाराज वहाँ से जाने लगे तो ला० लीलाधर ने उनसे कहा कि यहाँ से चार कोस पर गङ्गा के तट पर ककोड़े में गङ्गास्नान का बड़ा भारी मेला होता है, जहाँ दूर-दूर से लाखों यात्री आते हैं, यदि आप वहाँ पधारें तो सहस्रों मनुष्यों को आपके धर्मोपदेश से लाभ पहुँचेगा। महाराज तो ऐसे अवसरों की खोज में रहते ही थे, वे ऐसे अवसर को हाथ से कब जाने देते। उन्होंने तुरन्त ही यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कार्त्तिक शु० १३ संवत् १९२५ को पं० प्राणनाथ को साथ लेकर मेले में जा पहुँचे और पश्चिम की ओर ब्राह्मणों के स्थान पर डेरा किया। उस दिन ऐसा हुआ कि किसी ने उन्हें भोजन के लिए न पूछा और उन्हें और पं० प्राणनाथ को निराहार रहना पड़ा। अगले दिन प्रातःकाल ही पं० प्राणनाथ नरदौली चले गये ताकि महाराज के लिए भोजन लावें। नरदौली में उन्होंने लीलाधर से कहा कि कल मैं और स्वामीजी निराहार रहे हैं। उन्होंने मूलचन्द से कहा कि शीघ्र भोजन तैयार कराकर ले-जाओ और स्वामीजी को भोजन कराओ। वे यथासम्भव शीघ्र भोजन बनवाकर ककोड़ा चले गये, परन्तु उनके मेले में पहुँचने से पहले ही सोरों से बलदेवगिरि, पं० अङ्गदराम और अन्य कतिपय सज्जन मेले में पहुँच गये थे और उन्होंने महाराज के भोजनादि का सुप्रबन्ध कर दिया था। जब पं० मूलचन्द यहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि अनेक प्रकार के पकवान और मिष्टान्नादि महाराज के पास रक्खे हैं और सोरों के भक्तजन बैठे हैं। महाराज ने पं० मूलचन्द को देखकर अपने पास बुला लिया। पण्डितजी ने भोजन महाराज के समीप रख दिया। उन्होंने पूछा कि अन्य लोग भी आ रहे हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि बहुत-से लोग आ रहे हैं। तब महाराज ने कहा कि हमारे पास मिष्टान्नादि बहुत रक्खा है, आप सब लोग भोजन करके हमारे पास आ जाओ। बलदेवगिरि ने महाराज के स्थल पर कनात लगवा दी थी और उनके बैठने के लिए एक ऊँची जगह बनाकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसपर गद्दे डाल दिये थे।

पादरी से वार्त्तालाप—राय बालमुकुन्द बहादुर डिपुटी कलक्टर भी मेले में गये थे। उन्होंने एक दिन देखा कि एक जगह सहस्रों मनुष्यों की भीड़ लगी हुई है। कारण पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का उपदेश हो रहा है। वह भी उपदेश-स्थल पर गये तो उन्होंने देखा कि एक अंग्रेज पादरी से उनके प्रश्नोत्तर हो रहे हैं। एक देसी पादरी दुभाषिये का कार्य कर रहा है। अन्य धर्मविषयक प्रश्नों के अतिरिक्त पादरी से निम्नलिखित प्रश्नोत्तर भी हुए थे—

पादरी—आप नङ्गे क्यों रहते हैं ?

स्वामीजी—सुख के अर्थ, इससे सुख रहता है। आपके कपड़ों पर यदि धूलि गिर जाए तो वे मैले हो जाएँ। मेरे शरीर पर यदि गिर जाए तो कोई हानि नहीं, क्योंकि इसपर पहले से ही मिट्टी मली हुई है।

पादरी—आप खूब तन्दरुस्त और मोटे हैं ?

स्वामीजी—इसका कारण सन्तोष है ?

पादरी—खूब माल खाते हैं ?

स्वामीजी—मेरे साथ जङ्गल में दिन-रात रहकर देख लो कि मैं क्या माल खाता हूँ।

पं० उमादत्त से शास्त्रार्थ—बरेली के पण्डित उमादत्त कई पण्डितों के साथ स्वामीजी से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आये, परन्तु थोड़ी देर में ही निरुत्तर हो गये, तब उन्होंने कहा कि महाभारत से मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। देखिए, एकलव्य भील ने द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बनाकर पूजा की थी। स्वामीजी ने कहा कि अज्ञानी भील का कर्म धर्मविषय में प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। फिर उन्होंने दुर्योधन का उदाहरण दिया तो स्वामीजी ने कहा कि महामूढ़ दुर्योधन का कर्म भी इस विषय में अमान्य है। पण्डित उमादत्त ने भगवद्गीता के कुछ श्लोक प्रस्तुत किये। स्वामीजी ने उनकी ऐसी व्याख्या की कि उसे सुनकर सब लोग हँस पड़े। स्वामीजी ने पण्डित उमादत्त के शुद्ध उच्चारण पर प्रसन्नता प्रकट की और उनकी प्रशंसा की आप साक्षर हैं।

वैरागी निरुत्तर—गोविन्ददास एक कायस्थ था जो वैरागी हो गया था। उसके साथ कई लड़के ब्राह्मण आदि के थे। वह उन्हें अपना उच्छिष्ट खिलाता था और उनसे सेवा कराता था और उन लड़कों के हाथों में गोमुखी देकर उनसे यह जप कराता था कि 'हरि भजो सब छोड़ो धन्धा।' एक दिन जब वे प्रातःकृत्य करने के पश्चात् अपने स्थल को वापस आ रहे थे तब घाट पर स्वामीजी का उससे साक्षात् हो गया। स्वामीजी ने उससे कहा कि तुम सब शुभ काम कैसे छुड़ाते हो और सब काम कैसे छूट सकते हैं ? भोजन करना आदि कर्म कैसे छूट जाएँगे ? इसका उसने कुछ उत्तर न दिया, तब स्वामीजी ने उसके मत का तीव्र खण्डन किया, परन्तु वह सर्वथा मौन रहा।

क़ायमगंज के पं० श्यामलाल भी स्वामीजी से मिले थे। स्वामीजी ने पं० श्यामलाल से पूछा कि कहाँ रहते हो और क्या काम करते हो ? उन्होंने कहा कि क़ायगंज रहता हूँ और कथा-पुराण बाँचता हूँ। स्वामीजी ने फिर पूछा कि कौन-सी कथा ? तो उन्होंने कहा कि आजकल ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण का कृष्णखण्ड बाँच रहा हूँ। स्वामीजी ने कहा कि २० दिन तक यह शरीर वहाँ पहुँच जाएगा, शीघ्र समाप्त करलो ताकि तुम्हारी हानि न हो।

उस अंग्रेज पादरी के अतिरिक्त अन्य पादरी, मुसलमान मौलवी भी स्वामीजी से धर्म-विषय पर बातचीत करने आये, परन्तु सब निरुत्तर होकर चले गये। यही दशा पौराणिक पण्डितों की हुई, सभी परास्त होकर गये।

इस प्रकार धर्म-मेघ बरसाकर और धर्म-चातकों की पिपासा को शान्त करके महाराज मार्गशीर्ष कृष्णा १० को नरदौली लौट आये और एक संन्यासी से जीव-ब्रह्म की एकता पर शास्त्रार्थ किया, जिसमें संन्यासी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की वह गति हुई जो अन्यों की महाराज से शास्त्रार्थ करने में होती थी।

गोसाईं ने मूर्त्तियाँ फेंक दी—नरदौली में स्वामीजी के उपदेश से रामपुरी गोसाईं ने मूर्त्तियाँ गङ्गा में फेंक दी थीं। मार्गशीर्ष कृष्णा ११ को महाराज ने नरदौली से प्रस्थान किया।

(१०—३० नव०) क़ायमगंज (मार्गशीर्ष कृ० ११—शु० १५)

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष संवत् १९२५ में स्वामीजी क़ायगंज पहुँचकर हरिशङ्कर पाँडे के शिवालय में ठहरे जो नगर से बाहर उत्तर की ओर है। पण्डित गङ्गाप्रसाद कान्यकुब्ज आदि सज्जन उनके आगमन का समाचार सुनकर उनके दर्शनों के लिए गये। जब भोजन का समय हुआ तो उन लोगों ने स्वामीजी से कहा कि महाराज स्नान कर लीजिए और भोजन पा लीजिए। वे बोले कि हमारे पास सिवाय एक लँगोट के और कुछ नहीं है और यहाँ माईयों का गमनागमन है, अतः यहाँ स्नान के बाद नग्न नहीं रह सकते। जब तक लँगोट नहीं सूखता तब तक हम कोई दूसरे वस्त्र धारण नहीं कर सकते। तब सब लोगों के कहने से वे लाला गिरधारीलाल महाजन के बाग़ में जो एकान्त स्थान में है, चले गये और वहीं जाकर स्नान और भोजन किया। इस बार स्वामीजी क़ायमगंज में लगभग बीस दिन रहे। लोगों के पूछने पर उन्होंने त्रिकाल-सन्ध्या का निषेध किया और दो काल सन्ध्या करने का उपदेश दिया। **हवन में यव डालने का निषेध करते थे और कहते थे कि कि यव तो पशुओं का खाद्य है। स्वयं तो लोग हलवा-पूरी खाते हैं और देवताओं को यव खिलाते हैं।** सन्ध्या, गायत्री और बलिवैश्वदेव का उपदेश करते थे। एक ब्राह्मण ने उनसे कहा कि हम सत्यनारायण की कथा के लिए एक रुपये की मिन्नत मानते हैं और काम सिद्ध हो जाता है, आप उनका क्यों खण्डन करते हैं। स्वामीजी ने कहा कि हम पाँच रुपये सत्यनारायण के रखाते हैं कि लखपति हो जाएँ, तो क्या हो जाएँगे ? विद्यादि पदार्थ श्रमसाध्य हैं। यदि मनौती से मनोकामना सिद्ध हो जाए तो ईश्वर उत्कोच लेनेवाला सिद्ध होगा। यदि ये पदार्थ मनौती से प्राप्त हो जाया करें तो उनके उपार्जन के लिए शरीर और मन को कष्ट क्यों दें ? इसपर वह ब्राह्मण चुप हो गया।

जैसा भोजन कोई उनके लिए ले-जाता था वैसा ही ग्रहण कर लेते थे। जितनी इच्छा होती थी उतना रख लेते थे, शेष बाँट देते थे और यह कहा करते थे कि **"अन्नं न निद्यात् तद् व्रतम्"**, अर्थात् अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए। आधी रात्रि के पश्चात् वे किसी को अपने पास नहीं रहने देते थे। लोग उन्हें कम्बल उढ़ा आते थे, परन्तु वे उतारकर फेंक दिया करते थे। पण्डित बंसीधर ने उनके उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ दी थी। वह स्नान के समय महाराज का शरीर मल-मलकर धोया करते थे और वही उनके संस्कृत-कथन का भाव लोगों को समझाया करते थे।

मुर्शिदाबाद परगना कम्पिल से १०-१५ मुसलमान आये और उन्होंने अपने धर्म और पैग़म्बर के महत्त्व पर बातचीत की, परन्तु स्वामीजी ने युक्ति-युक्त उत्तर देकर उन्हें निरुत्तर कर दिया।

एक ठाकुर ने पूछा—आप शिवलिङ्ग-पूजन का निषेध करते हैं, परन्तु इसकी तो शास्त्रों में आज्ञा है। स्वामीजी ने कहा कैसी लज्जा की बात है **जब शिवलिङ्ग अलग होकर यहाँ आ गया तो आपका शिव तो हिजड़ा रह गया।**

ब्रह्मचर्य का उपदेश—स्वामीजी ने कहा जो लोग अधिक स्त्री-प्रसंग करते हैं वे दुर्बल हो जाते हैं और जो अधिक नहीं करते वह बलिष्ठ रहते हैं। लोगों को ऋतुगामी होने का उपदेश करते थे और कहते थे कि सन्तान-उत्पत्ति के समय नाड़ी-छेदन स्त्रियों को स्वयं करना चाहिए, नीचजाति की स्त्रियों से कराना ठीक नहीं। वह बालक के मुख में अंगुली डालती हैं, यह उचित नहीं है।

अचारी अवश्य खाऊँगा—एक बार एक मनुष्य भोजन के साथ अचारी भी लाया। उसने पूछा महाराज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप अचारी खाएँगे। स्वामीजी ने कहा इसे तो मैं अवश्य खाऊँगा, क्योंकि मैं तो इसके मत का खण्डन करता हूँ।

मौलवी अहमदअली टूबान से मनुष्योत्पत्ति विषय पर बात-चीत हुई तो स्वामीजी ने पूछा कि आदम-हव्वा का वियोग क्यों हुआ ? खुदा ने उनके मन में प्रेम क्यों न उत्पन्न कर दिया, जो वियोग का दुःख न सहते। इसका मौलवी कोई उत्तर न दे सका। मौलवी स्वामीजी की बात से प्रसन्न हुआ और उनके कथन की पुष्टि करता रहा। उसने महाराज की बहुत प्रशंसा की और कहा यह फकीर बहुत बड़ा आलिम (विद्वान्) है और बुत-परस्त नहीं है।

पादरी अनलन—एक दिन पादरी अनलन, हरप्रसाद व कतिपय अन्य ईसाई बात-चीत के लिए आये और बाग़ की डौल पर बैठे गये। लोगों ने कहा कि ये स्वामीजी से ऊँचे स्थान पर बैठ गये, यह अनुचित है। स्वामीजी ने कहा **'पक्षिणः सन्ति, पक्षिवदेषां गतिः'** कुछ आक्षेप की बात नहीं है। उन्होने पूछा हम पापी हैं, हमारे पाप कैसे क्षमा हों ? स्वामीजी ने कहा पाप क्षमा नहीं हो सकते। थोड़ी देर बात-चीत के पश्चात् हरप्रसाद ने कहा हम संस्कृत नहीं जानते और स्वामीजी भाषा बोलते नहीं, इसलिए शास्त्रार्थ नहीं हो सकता और उठकर चले गये।

चौबे परमानन्द और पं० बलदेवप्रसाद तो महाराज के इतने अनुरक्त हो गये थे कि जब महाराज क़ायमगंज से फ़र्रुखाबाद गये तो वहाँ उनके दर्शनों को गये।

काशीप्रसाद तहसीलदार ने स्वामीजी से कहा—भागवत सत्य है वा मिथ्या ?

स्वामीजी ने कहा—है तो गप्प ही।

कम्पिल, शकरुल्लापुर

क़ायमगंज और कम्पिल होते हुए श्रीमहाराज सायङ्काल के समय जबकि वर्षा हो रही थी शकरुल्लापुर परगाना शम्साबाद ज़िला फ़र्रुखाबाद पहुँचे। वहाँ के रईस पण्डित चोखेलाल को जब महाराज के पदार्पण करने का समाचार मिला तो वह उन्हें आपने बाग़ में लिवा ले-जाने को श्रीसेवा में उपस्थित हुए, परन्तु बाग़ का द्वार बस्ती की ओर था और बस्ती में होकर बाग़ में जाना होता था, अतः महाराज को बस्ती में जाने में संकोच हुआ तो पण्डित चोखेलाल ने तुरन्त ही सड़क की ओर दीवार तुड़वाकर बाग़ में जाने के लिए मार्ग कर दिया और महाराज बाग़ के भीतर के गृह में ठहर गये। वहाँ महाराज शान्तिपर्व आदि से अनेक शिक्षाप्रद कथाएँ सुनाते और धर्मोपदेश करते रहे। महाराज कभी-कभी बथुए के रस में लवण डालकर पान किया करते थे।

आशीर्वाद की सफलता—पं० चोखेलाल संग्रहणी रोग से पीड़ित रहते थे और निःसन्तान थे। उनकी स्त्री वन्ध्या थी, उन्होंने महाराज की अनुमति से दूसरा विवाह किया और महाराज के उपदेशानुकूल सन्ध्या, अग्निहोत्र, आह्निक कर्म करते रहे और रोग की चिकित्सा करने से स्वस्थ हो गये और उनके कई सन्तानें हुईं। पं० चोखेलाल के साथ मझौली में सवार होकर स्वामीजी फ़र्रुखाबाद पहुँचे, परन्तु ज्योंही मझोली मौ० दरवाजे पहुँची, महाराज मझोली से उतरकर गङ्गा-तट की ओर चले गये जो चार मील दूर था। पं० चोखेलाल के बहनोई पक्के मूर्त्तिपूजक थे और इस अंश में स्वामीजी के विरोधी थे, परन्तु वे महाराज की विद्या और सत्य सङ्कल्प की सदा प्रशंसा किया करते थे। पौराणिक होते हुए भी पीछे उन्होंने अपने पुत्र गंगाधर को सत्यार्थ-प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका मँगवाकर पढ़वाये थे। वे कहा करते थे कि 'मेरे समान अनेक मनुष्य जो सांसारिक विषयों में डूबे हुए और अपने कर्त्तव्य को भूले हुए थे, महाराज के सदुपदेश से मनुष्यत्व को प्राप्त हुए हैं।'

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तम अध्याय

पौष सं० १९२५—आश्विन सं० १९२६=दिसम्बर १८६८—सितम्बर १८६९

(दिसम्बर १८६८—मई १८६९) फ़र्रुख़ाबाद (पौष १९२५—ज्येष्ठ १९२६)

यह पौष संवत् १९२५ का समय था, जब महाराज दूसरी बार फ़र्रुखाबाद पधारे। फ़र्रुखाबाद पहुँचकर आप लाला जगन्नाथ के विश्रान्त घाट पर ठहरे। जगन्नाथ पहली बार ही उनके श्रद्धालु भक्त बन गये थे और श्रीचरणों में उनकी अनन्य भक्ति हो गई थी। उन्होंने महाराज से सन्ध्या-विधि सीखी और उसी के अनुसार सन्ध्या करनी आरम्भ कर दी। पीछे चलकर उन्होंने सब गृह्यानुष्ठान महाराज की उपदिष्ट पद्धति के अनुसार करने आरम्भ कर दिये थे। उनके पुत्र का नामकरण-संस्कार भी महाराज के आदेशानुसार हुआ था और महाराज ने उसका नाम पुरुषोत्तम नारायण रखवाया था। जब उनकी माता का देहान्त हुआ तब उन्होंने उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी महाराज की निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार ही की थी।

लाला जगन्नाथ ने स्वामीजी के लिए उनके स्थान पर पियार डलवा दी थी। रात्रि को वे उसी में से कुछ अपने नीचे और कुछ ऊपर डालकर सो जाते थे। लोग कम्बल आदि देना चाहते थे तो वे न लेते थे। उनके उपदेश में सहस्रों मनुष्य इकट्ठे होते थे, जिनमें उच्च-से-उच्च कोटि के लोग होते थे। महाराज के उपदेशों में साधारण धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त मूर्त्तिपूजा आदि अवैदिक क्रियाओं का तीव्र खण्डन होता था और सन्ध्योपासन, अग्निहोत्रादि पञ्चमहायज्ञ करने की सब लोगों को प्रेरणा होती थी।§

वैश्य रईसों का यज्ञोपवीत—मूर्त्तिपूजा का वे तीव्र खण्डन करते थे और अनेक लोगों ने उनके उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ दी थी। ला० द्वारकाप्रसाद, गिरधारीलाल, जगन्नाथ आदि कई सज्जनों ने उनके उपदेश से विधिपूर्वक यज्ञोपवीत लिया। जगन्नाथ के घाट पर यज्ञवेदी निर्मित हुई, पुष्कल सामग्री से हवन हुआ और महाराज की निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार उन्हें यज्ञोपवीत धारण कराया गया। उसी समय बा० दुर्गाप्रसादजी का भी यज्ञोपवीत हुआ था, परन्तु उन्होंने अपने गृह पर ही संस्कार कराया था। ला० जगन्नाथ का यज्ञोपवीत भी उनके घर पर ही पं० पीताम्बरदास ने स्वामीजी की निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार किया था। उससे पहले ११ दिन तक ब्राह्मणों ने विश्रान्तघाट पर गायत्री जप और हवन किया था। लालाजी ने पीछे छह मास में एक लाख गायत्री-जप किया था।

लाला जगन्नाथ के यज्ञोपवीत पर पौराणिक पण्डितों ने कहना आरम्भ किया कि यह यज्ञोपवीत अत्यन्त अनिष्टकारी होगा, क्योंकि प्रथम तो गणेशादि का पूजन नहीं हुआ, दूसरे, शुक्रास्त के समय हुआ है। इसका

---

§ कहते हैं कि उस समय महाराज श्राद्ध का समर्थन करते थे और मांसाहार को क्षत्रियों के लिए विहित बताते थे, परन्तु हम इन दोनों बातों को विश्वसनीय नहीं समझते, कारण कि इसके अनेक प्रमाण हैं कि महाराज मांसाहार का बराबर खण्डन करते रहे थे और यदि वे श्राद्ध का समर्थन करते तो उन्हें मांसाहार का भी समर्थन करना पड़ता, क्योंकि आधुनिक मनुस्मृति के अनुसार श्राद्ध में मांस-पिण्ड देने का विधान है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि गणेशादि का पूजन तो वेदविरुद्ध है, इसका न होना कभी अनिष्टकारी नहीं हो सकता और हमारा शुक्र तो ब्रह्म है (तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म) वह कभी अस्त नहीं होता।

फ़र्रुख़ाबाद के साध—सुखवासीलाल और झुन्नीलाल प्रभृति साध§ लोग महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे। उनमें से किसी ने स्वामीजी से कहा कि महाराज हम भी मूर्त्तिपूजा नहीं करते, केवल एक ईश्वर को मानते हैं, परन्तु वेद को नहीं मानते। इसपर स्वामीजी के उत्तर से कुछ साध लोग असन्तुष्ट होकर सभा से उठ गये, परन्तु सुखवासीलाल बराबर आते रहे और उनके सत्सङ्ग से लाभ उठाते रहे।

साधों की कढ़ी-भात का भोजन—एक दिन सुखवासीलाल साध स्वामीजी के लिए कढ़ी और भात बनवाकर लाये और उन्होंने उसे खाया। इसपर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये ज़ो साधों के घर का भोजन खा लिया। महाराज ने उत्तर दिया कि **भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है, एक तो यदि किसी को दुःख देकर धन प्राप्त किया जावे और उससे अन्न आदि क्रय करके भोजन बनाया जावे, दूसरे, भोजन मलिन हो वा उसमें कोई मलिन वस्तु गिर जावे।** साध लोगों का परिश्रम का पैसा है, उससे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है। इसपर ब्राह्मण लोग निरुत्तर हो गये।

पं० गङ्गाराम सम्मुख न आये—गङ्गाराम शास्त्री बरतियावाले बहुत डींग हाँका करते थे कि हम स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु वे किसी प्रकार शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए। हाँ, स्वामीजी के स्थल से कुछ दूर पर भगवद्गीता की कथा आरम्भ कर दी। स्वामीजी ने उनसे कहला भेजा कि यदि वह गीता के निम्न श्लोक के अर्थ हमारे सम्मुख कर दें तो हम परास्त हो जाएँगे—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ —अ० १३। श्लो० २

शास्त्रीजी ने इसका कुछ अर्थ किया, परन्तु स्वामीजी ने उनके अर्थों पर वह कटाक्ष किये कि उन्हें उत्तर न आया। एक दिन गङ्गा तट पर सुखवासीलाल साध ने उन्हें जा पकड़ा और कहा कि तुम रोज़ कहते हो मैं शास्त्रार्थ करूँगा, आज हमारे साथ चलो और शास्त्रार्थ करो। इसपर वे इतना घबराये कि वहाँ से भागकर अपना पीछा छुड़ाया। एक दिन वह गङ्गास्नान करके आ रहे थे कि किसी ने स्वामीजी से कह दिया कि यही गङ्गाराम शास्त्री हैं, परन्तु वे रास्ता छोड़कर चले गये।

दो उद्दण्ड युवक—पं० गङ्गाराम को पहले स्वामीजी की अगाध विद्या का पता न था, इसी से वह स्वामीजी को शास्त्रार्थ में परास्त करने की शेखी बघारा करते थे। एक दिन उन्होंने अपने पुत्र और एक शिष्य को स्वामीजी के पास उनकी विद्या की जाँच करने के लिए भेजा। जिस समय वे दोनों महाराज के पास पहुँचे वे बा० दुर्गाप्रसादजी रईस के पुरोहित पं० गङ्गादास को मनुस्मृति पढ़ा रहे थे। दोनों युवकों ने जाकर अभिवादन किया। स्वामीजी ने 'आयुष्मान् भव' कहने के अतिरिक्त और कुछ न कहा। इससे उन उद्दण्ड युवकों को असन्तोष हुआ। थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने कहा कि अहङ्कारी चाण्डाल होता है। महाराज इसपर भी कुछ न बोले। जब वह पं० गङ्गादास का पाठ समाप्त कर चुके, तो उन्होंने उन युवकों से कहा, कि अब कहो तुम क्या कहते थे ? उन्होंने वही वाक्य दुहराया। महाराज ने कहा कि तुम जानते हो कि अहङ्कार क्या वस्तु है ? मुझे अहङ्कारी कहने में क्या तुमने स्वयं अहङ्कार नहीं किया ? भद्र ! मनुष्य को

---

§ साध एक सम्प्रदाय है, फ़र्रुखाबाद में उसके माननेवाले अधिक पाये जाते हैं। वे ईश्वर को निराकार मानते हैं, हिन्दुओं की भाँति संस्कार नहीं करते। मुर्दे जलाते हैं, परन्तु परिवार में मृत्यु हो जाने पर रोते-पीटते नहीं। शव को गाते-बजाते श्मशान में ले-जाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिथ्याभिमान नहीं करना चाहिए। इसपर उन युवकों ने कहा कि भवादृश महानुभावों को अहङ्कार नहीं करना चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि कार्य में प्रवृत्ति अभिमान नहीं है। संसार में जितने भी कार्य-कुशल पुरुष हुए हैं, क्या श्री रामचन्द्र, क्या श्रीकृष्णचन्द्र—सभी प्रवृत्त कर्त्तव्यपालन के पश्चात् अन्य कार्य आरम्भ करते थे। महाराज के यह वचन सुनकर दोनों युवक 'हाँ-हाँ महाराज ! ठीक है' कहकर चले गये। उन्होंने सब वृत्त पण्डित गङ्गाराम से कहा और स्वामीजी के मनुस्मृति पढ़ाने के ढङ्ग और उनकी विद्या की बहुत प्रशंसा की। उसे सुनकर गङ्गाराम का साहस भङ्ग हो गया और वे फिर किसी प्रकार भी महाराज से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए।

पण्डित श्रीगोपाल से शास्त्रार्थ—महाराज के आगमन से नगर में घोर आन्दोलन मच गया। मूर्त्तिपूजक दल विकल और विह्वल हो उठा। उनमें जो विद्वान् थे और घर में बैठे-बैठे दून की लिया करते थे वे दयानन्द के सामने जाकर शास्त्रार्थ करना तो क्या, उनके नाम तक से थर-थर काँपने लगे। जब मूर्त्तिपूजक लोग उनकी ओर से हताश और निराश हो गये तो उन्होंने सोचा कि फ़र्रुखाबाद से बाहर के किसी विद्वान् को लाकर दयानन्द को परास्त करके उसका मुख बन्द करना चाहिए, नहीं तो मूर्त्तिपूजा का दुर्ग उसके आक्रमणों से भूमिसात् हो जाएगा, अतः वे मेरठ से श्रीगोपाल नामक एक पण्डित को बुलाकर ले-आये। पण्डित श्रीगोपाल आये और शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। पण्डित पीताम्बरदास उसके मध्यस्थ हुए।

श्रीगोपाल—स्वामीजी ! मैंने रात्रि में विचार किया है कि मूर्त्तिपूजन की सर्वत्र व्यवस्था है, फिर आप क्यों खण्डन करते हैं ?

स्वामीजी—कहाँ लिखा है ? कहिए।

श्रीगोपाल—मनु० अध्याय २ श्लोक १७१ में लिखा है कि—

देवताभ्यर्चनञ्चैव समिदाधानमेव च।

स्वामीजी—इसका अर्थ कीजिए।

श्रीगोपाल—देवताओं का पूजन करे और सायं-प्रातः होम करे। पूजा मूर्त्ति की ही होती है, इस कारण यहाँ मूर्त्तिपूजा का विधान है।

स्वामीजी—व्युत्पत्ति द्वारा इसका अर्थ सुनिए। **'अर्च पूजायाम्'** इस धातु से अर्चन शब्द बनता है, जिसका अर्थ सत्कार है। यहाँ होम में विद्वानों के सत्कार का अभिप्राय है, मूर्त्ति-पूजा नहीं है। यह कार्य मूर्ख नहीं करा सकता। यह कार्य विद्वानों के द्वारा ही उपादेय है, अतएव उन देवों अर्थात् विद्वानों का सत्कार अवश्य करना चाहिए।

इसके पश्चात् कुछ और समय तक तर्क-वितर्क होता रहा। स्वामीजी ने अनेक युक्ति और वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया, जिसका पण्डित श्रीगोपाल कुछ उत्तर न दे सके। अन्त को मूक और मौन होकर अपने स्थान को लौट आये।

काशी के पण्डितों की व्यवस्था—पण्डित श्रीगोपाल तथा उनके समर्थकों को यह पराजय असह्य हुई। उन्होंने उसका प्रतीकार यह सोचा कि काशी जाकर वहाँ के पण्डितों से मूर्त्तिपूजा के पक्ष में व्यवस्था लाई जाए। एक वणिक् कृष्णलाल उनके सहायक हुए। पण्डित श्रीगोपाल काशी गये और पण्डित शालिग्राम शास्त्री से मिले, जो फ़र्रुखाबाद के निवासी थे और उन दिनों काशी में रहते थे। पण्डित श्रीगोपाल ने उनसे काशी के पण्डितों की व्यवस्था दिलाने की प्रार्थना की। वह उन्हें अपने गुरु पण्डित राजाराम शास्त्री के पास ले-गये। उन्होंने कहा कि एक बार पहले दक्षिण में इसी प्रकार मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध आन्दोलन उठा था, तब काशी के पण्डितों ने एक व्यवस्था दी थी, वह हमारे पास है, आप उसी की प्रतिलिपि करके ले-जाइए। निदान पण्डित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीगोपाल उसी को लेकर लौट आये।

इस व्यवस्था में मूर्त्तिपूजा के पक्ष में कोई वैदिक प्रमाण नहीं दिया गया था, केवल आधुनिक उपनिषद् देवीयशीर्ष (?) और गोपालतापिनी का उल्लेख था तथा विंशति-ब्राह्मण के इस प्रसिद्ध वचन का कि *'अद्भुतशान्तौ देवतायतनानि प्रकम्पन्ते, देवप्रतिमा हसन्ति, रुदन्ति, गायन्ति, स्विद्यन्ति'*, तथा मनुस्मृति के *'न जीर्णदिवायतने न वल्मीके कदाचन'*, *'देवानां गुरोराज्ञा च; देवब्राह्मणसान्निध्यम्; सीमासन्धिषु कार्याणि देवतायतनानि च' स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये'* आदि एवं तैत्तिरीय आरण्यक के *'ब्राह्मणानीतिहासानि पुराणानि कल्पान् गाथाः'* एवं बौधायन, कौशिक परिशिष्ट, आश्वलायन परिशिष्ट और महाभारत के वाक्यों की ओर सङ्केत करके मूर्त्तिपूजा की सिद्धि और अष्टादश पुराणों की प्रामाणिकता के दर्शाने का प्रयत्न किया गया था। अन्त में स्वामीजी के लिए दुर्वचनों का समावेश था। पूर्वोक्त लाला कृष्णलाल इस व्यवस्था को लेकर स्वामीजी के पास पहुँचे। वे उसे देखकर पहले तो खूब हँसे और फिर उसका ऐसा खण्डन किया कि लाला कृष्णलाल अवाक् रह गये। स्वामीजी ने तत्पश्चात् कहा कि काशी के पण्डितों की बहुत-कुछ विद्या तो देख ली, शेष वहाँ जाकर देख लूँगा।

रेत में धर्मध्वजा—श्रीगोपाल ने इस व्यवस्थापत्र को लेकर बड़ा कोलाहल मचाया। वैशाख शुक्ला १२ संवत् १९२५ को एक विज्ञापन दिया कि हम और मुंशी ज्वालाप्रसाद स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। २२ मई सन् १८६८ वैशाख शुक्ला १४ संवत् १९२५ को बहुत बड़ी भीड़ लेकर वह टोका घाट पर पहुँचा और रेत में एक झण्डा गाड़कर उसपर लिखा 'धर्मध्वजोऽयम्'। धर्मध्वज का अर्थ धर्म का ढोंग भरनेवाले का है। यह शब्द उसने स्वामीजी के लिए प्रयुक्त किया था। उसी झण्डे पर उस व्यवस्था-पत्र को लटकाया और एक बाँस अलग गाड़कर लोगों से कहा इसपर जल चढ़ाओ और कुछ मूर्खों ने उसपर जल चढ़ाया भी। उस दिन नृसिंह-चतुर्दशी का मेला भी था। इससे भी भीड़ अधिक थी।

दयानन्द ने विश्रान्त कील दी है—श्रीगोपाल के कुछ साथी स्वामीजी के पास गये और कहा कि नीचे रेती में शास्त्रार्थ कीजिए। स्वामीजी श्रीगोपाल की यह सब लीला देख रहे थे। उन्होंने उस हुल्लड़ में जाना पसन्द न किया और कह दिया कि यदि शास्त्रीजी को वास्तव में शास्त्रार्थ करना है तो यहाँ आकर शास्त्रार्थ करें, यहाँ सब प्रबन्ध भी है और शान्ति भी। लोगों ने यह बात शास्त्रीजी से कही तो उन्होंने कहा कि स्वामीजी ने विश्रान्त कील दी है, यदि मैं वहाँ जाकर शास्त्रार्थ करूँगा तो निश्चय ही मेरा पराजय होगा। यह उत्तर सुनकर समझदार लोग समझ गये कि शास्त्रीजी में वास्तव में शास्त्रार्थ करने की योग्यता नहीं है। श्रीगोपाल इसी प्रकार हुल्लड़ मचाता रहा और बार-बार यह कहता रहा "भाइयो! देखो यह काशी के पण्डितों की व्यवस्था है, दयानन्द परास्त हुआ, बोलो देवी की जय, काली की जय।"

पुलिस का सब-इन्सपेक्टर—ज़िला मजिस्ट्रेट ने इस गड़बड़ का वृत्तान्त सुनकर एक सब-इन्सपेक्टर को नियत किया कि विश्रान्त पर जाकर प्रबन्ध करो, जिससे शान्ति भङ्ग न होने पाए। तदनुसार सब-इन्सपेक्टर विश्रान्त पर गया। वह स्वयं तो बाहर रहा और एक सिपाही को स्वामीजी के पास भेजा कि देखो कौन फ़क़ीर आया है, नित्य शास्त्रार्थ करता है, बड़ा जन-समूह होता है, हमारे पास बुला लाओ। उसने आकर स्वामीजी से कहा कि कोतवाल साहब बुलाते हैं। स्वामीजी तो कुछ न बोले, उनके भक्तों में से एक ने कहा, ये किसी के पास नहीं आते-जाते, यदि किसी को मिलना हो तो यहाँ आकर मिल जाएँ। इसपर कोतवाल स्वयं आया और उसने कहा कि बाबाजी तुम यहाँ क्या करते हो, दंगा-बखेड़ा मचाया करते हो? स्वामीजी ने कहा कि तू राज-आज्ञा से ऐसा कहता है वा स्वयं ही? तब और लोगों ने कोतवाल को समझाया कि ये क्या किसी को बुलाते हैं। धूर्त्त लोग स्वयं ही आकर ऊधम मचाते हैं। इसपर कोतवाल ने कहा कि अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पास धूर्त्तों को न आने दिया करो। स्वामीजी ने कहा कि सब वर्णों की रक्षा और प्रबन्ध करना क्षत्रियों का काम है, तुम स्वयं बन्दोबस्त करो। यह सुनकर वह चला गया और दो काँस्टेबल पहरे पर छोड़ गया कि किसी बदमाश को मत आने दो, यदि कोई भलमनसाहत से बात-चीत करने आए तो उसे आने दो।

ज्वालाप्रसाद मद्यप की लीला—ज्वालाप्रसाद नामक एक मद्यप और मांसाहारी ब्राह्मण जो उन दिनों फ़र्रुखाबाद में पोस्टमास्टर था, एक दिन एक वाममार्गी ब्राह्मण को पालकी में सवार कराकर महाराज के पास ले-गया और स्वामीजी के सम्मुख कुर्सी डालकर बैठ गया और उन्हें दुर्वचन कहने लगा, परन्तु उन्होंने उससे कुछ न कहा। ऐसे वीतराग, जितेन्द्रिय को कहना भी क्या था और वह एक मूर्ख की बातों पर भ्रूक्षेप करनेवाले भी कब थे ? उन्होंने इतना किया कि अपना स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर चले गये, परन्तु उस दुष्ट का व्यवहार महाराज के भक्त साध लोगों को, जो उस समय सेवा में उपस्थित थे, इतना असह्य हुआ कि उन्होंने उसे खूब पीटा, जिससे कि उसका सारा नशा झड़ गया। उन लोगों ने उसकी कुर्सी भी जलाकर राख करदी।

हम सच्ची बात कह देंगे—वह गिरता-पड़ता अपने घर चला गया। यह बात महाराज को मालूम हुई तो उन्होंने पूर्व स्थान पर जाकर अपने भक्तों को बहुत डाँटा और कहा कि यदि वह मर गया तो हम सच्ची बात कह देंगे कि इसे आप लोगों ने मार डाला है।

ज्वालाप्रसाद के समधी पाँडे ठाकुरदास भी फ़र्रुखाबाद में ही रहते थे। जब यह घटना उन्हें मालूम हुई तो उन्हें बहुत क्रोध आया और वह २०-२५ लट्ठबन्द लोगों को लेकर बदला लेने के लिए स्वामीजी के स्थान पर पहुँचे, परन्तु उनका कुछ कहने का साहस न हुआ और जैसे गये थे वैसे ही लौट आये। इधर लाला जगन्नाथ ने भी कुछ मनुष्य स्वामीजी की रक्षार्थ भेजे, परन्तु उनके पहुँचने के पहले ही पाँडे ठाकुरदास का दल वहाँ से चला गया था।

इस घटना के पश्चात् साध लोगों ने यह नियम कर लिया कि उनमें से कुछ मनुष्य स्वामीजी की रक्षार्थ विश्रान्त पर रहने लगे।

मुंशी ज्वालाप्रसाद का विचार अभियोग चलाने का हुआ तो लाला जगन्नाथ ने स्वामीजी से जाकर कहा कि ऐसा सुना है कि ज्वालाप्रसाद नालिश करेगा तो स्वामीजी ने कहा कि हमसे यदि हाकिम पूछेगा तो हम तो जो सत्य है वही कहेंगे चाहे वह किसी के अनुकूल पड़े वा प्रतिकूल, परन्तु ज्वालाप्रसाद ने कोई अभियोग नहीं चलाया।

मेरी परमात्मा ही रक्षा करेंगे—लाला जगन्नाथ ने स्वामीजी से कहा कि आप विश्रान्त के नीचे के भाग में रहने लगिए, वह चारों ओर से सुरक्षित है। स्वामीजी ने कहा कि यहाँ तो आप मेरी रक्षा कर लेंगे, परन्तु अन्यत्र कौन करेगा ? मैंने आज तक अकेले भ्रमण किया और आगे भी करूँगा। कई बार मेरे प्राण-हरण की चेष्टा की गई, परन्तु सर्वरक्षक परमात्मा ने सर्वत्र मेरी रक्षा की, भविष्य में भी वही करेगा, आप चिन्ता न करें।

गोवर्धनदास पटेरेवाले बाबा ने एक दिन एक दुष्ट को स्वामीजी को अपमानित करने के लिए भेजा। उसने स्वामीजी से पूछा कि गङ्गा मुक्ति देती है कि नहीं। उन्होंने कहा कि नहीं। इसपर उसने उनपर जूता फेंका और भागने लगा। साधों ने उसे पकड़कर पीटा, परन्तु स्वामीजी ने उसे छुड़ा दिया कि उसने अज्ञानवश ऐसा किया है। निर्बल पर दया करना ही बल की प्रशंसा है।

एक दिन पं० रामसहाय शास्त्री की, जो संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, स्वामीजी से बात-चीत हुई, परन्तु वह महाराज के सामने कुछ भी न बोल सके। पीछे आकर उन्होंने साथियों से कहा कि तुम मुझे कहाँ छोड़

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आये, मुझसे तो स्वामीजी के सामने बात ही न हो सकी।

मुसलमानों से वार्त्तालाप—एक दिन कुछ मुसलमान लोग आये। उन्होंने स्वामीजी के से धर्म विषय पर बातचीत करनी चाही। स्वामीजी ने कहा कि सत्य बात को सुनकर विचार करो न कि लड़ने को दौड़ो। अब तो तुम धर्म पर वार्त्तालाप करने को कहते हो, परन्तु पीछे चिढ़कर लड़ोगे। उन्होंने कहा हम ऐसा नहीं करेंगे। मुहम्मद साबह के सम्बन्ध में बात चली। स्वामीजी ने कहा तुमने उनका अनुकरण किया, बुरा किया, जब चोटी कटाई तो डाढ़ी रखने से क्या मतलब, ऊँची बाङ्ग देते हो तो क्या यह खुदा की उपासना है। खतने के विषय में भी कहा। मुसलमान उत्तर में कुछ न कह सके।

काशी की व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा—लाला पन्नीलाल फ़र्रुखाबाद के एक प्रतिष्ठित रईस और धर्मनिष्ठ सदाशय पुरुष थे। सन्ध्योपासना और जप में उनकी बड़ी आस्था थी। वे दानकार्य में भी बहुत उदार थे। उनके यहाँ सदावरत भी होता था। वे रात्रि में महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे। यों तो श्रीगोपाल की करतूत सबपर प्रकट हो गई थी और सब लोग जान गये थे कि वह केवल एक ढोंगिया पुरुष है, परन्तु फिर भी कुछ हठी मनुष्य ऐसे थे, जो कहते थे कि काशी के पण्डितों की व्यवस्था ठीक है और स्वामीजी उसका उत्तर न दे सके, अतः लाल पन्नीलाल ने पं० पीताम्बरदास को काशी भेजा कि वहाँ जाकर पण्डितों से पूछें कि उन्होंने पं० श्रीगोपाल को कोई व्यवस्था दी है कि नहीं। वे काशी गये और पण्डितों से पूछताछ की तो उन्होंने कहा कि एक पुरानी व्यवस्था पड़ी हुई थी, जिसपर कुछ पण्डितों के हस्ताक्षर थे, वही पं० श्रीगोपाल ले-गये हैं, चार वेदसंहिता के आधार पर कोई व्यवस्था नहीं दी गई, मूर्त्तिपूजा लौकिक है, समझनेवालों के लिए गुड़ियों का-सा खेल है। यह सुनकर पं० पीताम्बरदास फ़र्रुखाबाद लौट आये और सारा वृत्त लाला पन्नीलाल से कह दिया। इसपर लाला साहब का चित्त मूर्त्तिपूजा से हट गया और उन्होंने उसे त्याग दिया।

पाठशाला स्थापन—ला० पन्नीलाल एक देवालय बनाना चाहते थे। उन्होंने उसका विचार छोड़ दिया और जो धन उसपर लगाना चाहते थे उसे स्वामीजी के परामर्श से संस्कृत-पाठशाला पर व्यय करने का निश्चय कर लिया। पाठशाला स्थापित हो गई। पण्डित ब्रजकिशोर को तीस रुपये मासिक पर अध्यापक नियत किया गया। यह व्यय लाला पन्नीलाल वहन करते थे, विद्यार्थियों के अन्न-वस्त्र का व्यय बाबू दुर्गाप्रसाद देते थे।

दुराचारी को सदाचारी बना दिया—फ़र्रुखाबाद के किसी प्रतिष्ठित पुरुष का पुत्र दुराचारी और वेश्यागामी हो गया था। उसने लाला पन्नीलाल से विनयपूर्वक कहा कि यदि आप स्वामीजी से मेरे पुत्र का सुधार करा दें तो मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा। लाला पन्नीलाल ने यही बात स्वामीजी से कही। उन्होंने कहा कि यदि आप उस युवक को मेरे पास ले-आएँ तो मैं उसका कुव्यसन छुड़ा दूँगा। लाला साहब ने उसके दो मित्रों से, जो सदाचारी थे, कहा कि किसी प्रकार उस लड़के को स्वामीजी के पास लिवा ले-जाओ। मित्रद्वय ने उससे स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की और अन्त को एक दिन वे उसे श्रीसेवा में ले-गये। स्वामीजी ने कुशल प्रश्नोत्तर के अनन्तर नवयुवकों को उपदेश देना आरम्भ किया। वेश्यागमन के दोष दिखाते हुए महाराज ने उनसे पूछा कि यह तो बताओ कि यदि किसी वेश्यागामी के वीर्य से वेश्या के गर्भ से कन्या उत्पन्न हो जाएगी तो वह क्या करेगी ? नवयुवक बोले कि वेश्या ही बनेगी। तब महाराज ने अत्यन्त मर्मस्पृक् शब्दों में कहा कि संसार में ऐसा कौन सत्पुरुष है जो अपनी कन्या से वेश्यावृत्ति कराये, परन्तु वेश्यागामी पुरुष ही इतने नीच हैं, जो अपनी कन्याओं को वेश्या बनाते हैं। महाराज के शब्द सुनकर उस कुव्यसनी युवक के रोंगटे खड़े हो गये और उसने तत्क्षण महाराज के पैर छूकर इस व्यसन को छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर ली और इस प्रकार उन्होंने उस युवक के जीवन को सुधार कर उसके कुल को नष्ट होने से बचा दिया।

हलधर ओझा से शास्त्रार्थ का उपक्रम—श्रीगोपाल के पराजय से पौराणिक दल अत्यन्त खिन्न और विपन्न था। कुछ लोग प्रेमदास, देवीदास खत्री रईस से मिले और उन्हें इस बात पर उद्यत किया कि कानपुर से पं० हलधर ओझा को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया जाए। पं० हलधर के पल्ले का कोई विद्वान् नहीं है। वह आते ही दयानन्द को परास्त कर देंगे। देवीदास उनकी बातों में आ गये और उन्होंने पं० हलधर को बुला लिया और यह कहना आरम्भ किया कि अब बद-बदके शास्त्रार्थ होगा। लाला जगन्नाथ के कानों में भी यह शब्द पड़े तो उन्होंने २५००) देवीदास के पास भेजे और कहलाया कि इतने ही रुपये आप जमा करा दीजिए, यदि स्वामीजी परास्त हो गये तो सब रुपये आपके और जो पं० हलधर की पराजय हुई तो सब रुपये मैं ले-लूँगा। देवीदास ने यह स्वीकार न किया और यह कहकर रुपये लौटा दिये कि ओझाजी को स्वामीजी से धर्मालाप करने को बुलाया गया है, हार-जीत की कोई बात नहीं है।

लाला जगन्नाथ ने स्वामीजी से कहा कि पं० हलधर ओझा शास्त्रार्थ के लिए बुलाये गये हैं। स्वामीजी ने तत्काल कह दिया कि हम प्रस्तुत हैं। ज्येष्ठ शुक्ला १० संवत् १९२६ तदनुसार १९ जून सन् १८६९ को एक बड़ा जन-समूह पं० हलधर ओझा के साथ स्वामीजी के आश्रम की ओर जाता हुआ दिखाई दिया, जिसमें देवीदास के अतिरिक्त बहुत-से प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त व्यक्ति और फ़र्रुखाबाद के प्रसिद्ध पण्डित सम्मिलित थे। मार्ग में लोग अनेक प्रकार की बातें कहते जाते थे। एक ने कहा कि ओझाजी प्रथम तो दयानन्द को संस्कृत बोलने में निरुत्तर कर देंगे, दूसरा बोला कि यदि दयानन्द इससे भी बच रहा तो ओझाजी अपने मन्त्रबल से उसे परास्त कर देंगे।

शास्त्रार्थ—जब ये लोग विश्रान्त पर पहुँचे तो लाला जगन्नाथ ने सबको आदरपूर्वक बिठाया। पं० हलधरजी ने भी महाराज को प्रणाम किया और उन्होंने कुशल पूछकर उनसे आने का कारण पूछा। इसपर लाला देवीदास ने कहा कि ओझाजी आपसे कुछ शास्त्रीय विचार करने आये हैं। स्वामीजी ने कहा प्रश्न कीजिए। तदनन्तर पहले तो मूर्त्तिपूजा पर प्रश्नोत्तर हुए फिर ओझजी ने मद्यपान की बात छेड़ी। इसपर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिज्ञा से भिन्न अन्य विषय की चर्चा नहीं करनी चाहिए और मद्यपान तो सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है। इसके पश्चात् निम्नलिखित बात-चीत हुई।

ओझाजी—शास्त्रविरुद्ध कैसे ? यज्ञ में तो मद्यपान किया जाता था, जैसाकि लेख है **'सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्'**।

स्वामीजी—यहाँ सुरा से सोमलता अभिप्रेत है न कि मदिरा। मद्यपान सब शास्त्रों में वर्जित है।

ओझाजी—आप संन्यासी के लक्षण बताइए।

स्वामीजी—**क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।**
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥ —मनु अ० ६ श्लोक ५२
यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्व गृहाद्वा। ब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेत्। —ब्राह्मणवचन

अर्थात्—केश, मूँछ, दाढ़ी, नख दूर करे, पात्र, दण्ड और कुसुम्भ के रंग के वस्त्र धारण करे और किसी प्राणी को पीड़ा न देता हुआ सदा नियम में रहकर विचरण करे।

जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ले-लेवे, वानप्रस्थाश्रम से वा गृहस्थाश्रम से वा ब्रह्मचर्याश्रम से।

स्वामीजी—आप ब्राह्मण के लक्षण बताइए।

ओझाजी—(संस्कृत के एक-दो वाक्य बोलकर चुप हो गये)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी—(यह देखकर कि ओझाजी संस्कृत नहीं बोल सकते) भाषा में कहिए और प्रकरण के बाहर न जाइए।

ओझाजी—मैं प्रकरण के बाहर नहीं जा रहा हूँ, परन्तु आप बार-बार प्रकरण का उल्लेख करते हैं, बताइए, प्रकरण शब्द की सिद्धि कैसे होती है ?

स्वामीजी—प्रपूर्वक डुकृञ् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से प्रकरण शब्द सिद्ध होता है।

ओझाजी—धातु समर्थ होता है वा असमर्थ होता है ?

स्वामीजी—**समर्थः पदविधि।** —अष्टा० २।१।१ इस पाणिनीयसूत्र के अनुसार धातु समर्थ होता है।

ओझाजी—असमर्थ किसे कहते हैं ?

स्वामीजी—**सापेक्षोऽसमर्थो भवित**—अपेक्षा करनेवाला अमर्थ होता है। यह महाभाष्य का वचन है।

ओझाजी—यह वचन महाभाष्य का नहीं हैं।

स्वामीजी ने महाभाष्य की पुस्तक मँगाकर अ० २ पाद १ सूत्र १ में उक्त वाक्य दिखा दिया।

पण्डित मण्डली स्वामीजी के प्रकाण्ड पाण्डित्य पर चकित हो गई। ओझाजी का ऊपर का दम ऊपर और नीचे का दम नीचे रह गया। उनसे कुछ करते-धरते न बना। अन्त में क्रोध में भरकर बोले।

ओझाजी—हम जो कुछ कहते हैं, वह भाष्यकार के वचन से कम नहीं है।

स्वामीजी—आप महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि के सामने किसी गणना में नहीं हैं। अच्छा यदि पाण्डित्य का गर्व है तो बताइए *'कल्म'* किसकी संज्ञा है ?

व्याकरण हार-जीत की कसौटी—ओझाजी को फिर कुछ उत्तर न बन आया। तब स्वामाजी ने महाभाष्य खोलकर सबको बताया कि *'अकथितं च'* (अष्टा० १।४।५१) इस सूत्र के भाष्य में महाभाष्यकार ने कर्म की कल्म संज्ञा की है। पण्डित लोग मन-ही-मन स्वामीजी की सहस्र मुख से प्रशंसा करने लगे। इस समय रात्रि का एक बज गया था, अन्त को यह निश्चय हुआ कि कल फिर शास्त्रार्थ हो। यदि स्वामीजी यह सिद्ध कर दें कि **'समर्थः पदविधिः'** सूत्र सर्वत्र लागू होता है तो स्वामीजी की जीत समझी जाए और जो यह सिद्ध हो कि यह सर्वत्र नहीं घटता तो ओझाजी की जीत मानी जाए। तत्पश्चात् सब लोग अपने घरों को चले गये।

मार्ग में जाते हुए कोई तो हलधर की और कोई स्वामीजी की प्रशंसा करने लगा। किसी ने कहा कि ओझाजी का पक्ष प्रबल रहा, किसी ने स्वामीजी के पक्ष को प्रबल बताया। अगले दिन लाला जगन्नाथ और मुन्नीलाल ने स्वामीजी से निवेदन किया कि नगर में कुछ पण्डित कहते हैं कि स्वामीजी हठ करते हैं, ओझाजी का ही कथन ठीक है, अतः यदि आपको कुछ संशय हो तो शास्त्रार्थ को टाल दिया जाए। स्वामीजी ने कहा कि ओझाजी को शास्त्रार्थ के लिए अवश्य लिवाकर लाइए। यदि आप लोग इसमें प्रमाद करेंगे तो आपको और यदि ओझाजी शास्त्रार्थ के लिए न आये तो उन्हें गोहत्या का पातक लगेगा।

ओझाजी हारे—ज्येष्ठ शु० ११ रात्रि के ८ बजे फिर शास्त्रार्थ-सभा संगठित हुई। कुछ लोग उपद्रव करने पर उतारू दिखाई दिये। उन्हें लाला जगन्नाथ ने डाँट दिया, तब शान्ति स्थापित हुई। तब स्वामीजी ने अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया कि जो शास्त्रार्थ न करेगा उसे गोघात का पाप लगेगा। फिर ओझाजी को सम्बोधित करके कहा कि मैं संन्यासी हूँ यदि मैं हार गया तो कोई हानि नहीं; तुम गृहस्थ हो, पराजय से तुम्हारी अधिक हानि होनी सम्भव है। ओझाजी बोले कि मैं हारुँगा ही क्यों ? तब स्वामीजी ने दीपक और महाभाष्य की पुस्तक मँगाकर **'समर्थः पदविधिः'** की व्याख्या सबको सुनाई और अनेक उदाहरणों से उक्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूत्र की व्यापकता दिखलाई। ओझाजी कोई उत्तर न दे सके। उनके साथियों में से कई एक ने कुछ कहना चाहा, तो स्वामीजी ने रोक दिया कि पहले प्रस्तुत विषय का निर्णय हो जाए तब दूसरा विषय छेड़ा जाए। तदनन्तर ला० जगन्नाथ ने खड़े होकर पण्डितों को लक्ष्य करके कहा कि हे विद्वज्जनो ! धर्म की साक्षी देते हुए कहिए किसका पक्ष ठीक है। इसपर अनेक पण्डितों ने कहा कि पण्डित हलधरजी अपनी प्रतिज्ञा प्रमाणित नहीं कर सके।

ओझाजी मूर्च्छित हो गये—पण्डितों के ये वचन सुनकर ओझाजी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और वे मूर्च्छित-से हो गये। उनके साथी उन्हें उठाकर ले-गये। स्वामीजी के जय-घोष से सारा वायु-मण्डल निनादित हो गया। उस रात्रि को लोग स्वामीजी के पास ही बैठे रहे। वे भी सारी रात्रि प्रेमीजनों को उपदेशामृत चखाते रहे।

ओझा ने मन्त्र मार दिया—समस्त रात्रि के जागरण से ला० जगन्नाथ को ज्वर हो गया तो गुण्डा पार्टी ने यह कहना आरम्भ किया कि लालाजी ने ओझाजी का अपमान कराया है, इसी से उन्होंने लालाजी पर मन्त्र मार दिया है और इसीलिए उन्हें ज्वर हो गया है। यह बात जब ओझाजी ने सुनी तो वह स्वयं लालाजी को देखने गये और उनसे कहा जो लोग ऐसा कहते हैं, वह गुण्डे हैं। लाला साहब ने उनका उचित आदर करके उन्हें विदा किया। ओझाजी एक हीन-सर्वस्व मनुष्य के समान विषादपूर्ण हृदय के साथ कानपुर वापस चले गये। जो लोग इतने मान के साथ बुलाकर लाये थे, वे भी उनसे आँखे चुरा गये और जो आर्थिक लाभ उन्हें होना था, वह भी न हुआ।

पहलवान कौपीन न निचोड़ सके—एक दिन कुछ पहलवान भी अन्य लोगों के साथ स्वामीजी के आश्रम पर बैठे थे। स्वामीजी गंगा-स्नान करने गये थे। जब वे स्नान करके आये तो एक पहलवान न हँसते हुए कहा कि यदि स्वामीजी व्यायाम करें तो बल में भी किसी के हिलाये न हिलें। स्वामीजी ने यह सुनकर अपना कौपीन निचोड़ा और फिर पहलवानों से कहा कि हम तो आपके बल की तब प्रशंसा करें कि इसमें से जल की एक बूँद भी निकाल दो। पहलवानों में से हरएक ने कौपीन को बहुत-कुछ ऐंठा-मरोड़ा, परन्तु कोई भी उनमें से जल की एक बूँद न निकाल सका। सब पहलवान स्वामीजी का बल देखकर दंग रह गये।

मन्दिर न बनाकर यज्ञशाला का विचार—फ़र्रुखाबाद में वासुदेव महानन्दराम के नाम से एक दुकान थी। उसके बही खाते में धर्मकार्यों के लिए कुछ रुपया अलग निकालकर जमा होता रहता था। दुकान के मालिकों ने उस रुपये से एक शिव-मन्दिर बनाने का संकल्प किया था और तदनुसार उसके बनाने की तैयारी होने लगी थी। मिर्ज़ापुर से उसके लिए पत्थर भी मँगा लिया गया था, परन्तु उसकी नींव रक्खे जाने से पूर्व ही महाराज फ़र्रुखाबाद पहुँच गये और महानन्दराम श्रीसेवा में उपस्थित होने लगे। महाराज के उपदेशामृत पान करने से उनका चित्त मूर्त्तिपूजा से हट गया। उन्होंने मन्दिर बनवाने का सङ्कल्प छोड़कर एक यज्ञशाला बनवाने का विचार किया, परन्तु वासुदेव के आग्रह और अन्य मूर्त्तिपूजकों के दबाब से उनकी यह सदिच्छा पूरी न हुई और अन्त को उस रुपये से एक गंगा-मन्दिर ही बनाया गया।

मिथ्यादोषारोपण—जगन्नाथ के घाट पर एक शिव-मन्दिर था। एक रात मुर्दा-फ़रोश ने उसमें से शिवलिंग उठाकर गङ्गा में फेंक दिया और प्रातःकाल यह प्रसिद्ध कर दिया कि यह कार्य दयाननन्द ने किया है। जगन्नाथ के बाग के माली ने यह बात सुनकर जगन्नाथ से कही तो उन्होंने कहा कि महादेव को कौन फेंक सकता है ? स्वामीजी के विरोधियों की उन्हें हानि पहुँचाने की यह चाल भी निष्फल ही हुई। स्वामीजी पर यह दोषारोपण तो मिथ्या ही था, परन्तु उनके उपदेश से अवश्य अनेक लोगों ने मूर्त्तियाँ, जिन्हें वह अपना इष्ट-देव समझकर अब तक पूजते रहे थे, उठाकर फेंक दी थीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुर्वचन कहनेवाले का स्वागत—एक दिन प्रातःकाल महाराज भ्रमण करने जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें एक हट्टा-कट्टा उजड्ड प्रकृति का मनुष्य मिला। उसने अनेक दुर्वचन कहने आरम्भ किये कि तू ईसाइयों का नौकर है और हिन्दुओं को ईसाई बनाने आया है। महाराज उसके दुर्वाक्य सुनकर मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये। उसका नाम सद्धू था। वह जन्म का ब्राह्मण था, परन्तु था निरक्षर और कोरा लट्ठ। जब स्वामीजी ने उसकी गालियों पर उसे कुछ न कहा तो उसका साहस और बढ़ा और जब वे भ्रमण करके अपने स्थल पर आये तो उस गँवार ने चाहा कि उनके स्थल पर आकर भी उन्हें गालियाँ दें, अतः वह वहाँ गया। स्वामीजी ने उसे देखकर अत्यन्त प्रेमभरे स्वर और कोमल शब्दों में उसका स्वागत करके उससे बैठने को कहा। इस शिष्टाचार से उसका कठोर हृदय भी पिघल गया और उसका जी भर आया। वह महाराज के चरणों पर गिर गया और रोकर अपना अपराध क्षमा कराने लगा। महाराज ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम्हारे दुर्वचन हम तक नहीं पहुँचे, वे आकाश से प्रकट हुए थे और उसी में विलीन हो गये। तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया, तुम्हें शोक का कोई कारण नहीं है, तुम सन्तोष करो।

एक नामी गुण्डा श्रीचरणों में—परसाद नामी एक गुजराती ब्राह्मण फ़रुखाबाद के नामी गुण्डों में था। कहते हैं कि कुछ द्वेषी लोगों ने उसे रुपयों का लालच देकर स्वामीजी को पीटने के लिए उद्यत किया। एक दिन वह इस दुष्ट विचार से एक मोटा लट्ठ लिये स्वामीजी के पास पहुँचा और उद्धतपन से कहा—बाबाजी! देवमूर्त्ति को साक्षात् ईश्वर मानते हो कि नहीं ?

स्वामीजी—पाषाणादि की मूर्त्ति ईश्वर नहीं। तुम ईश्वर का स्वरूप नहीं जानते।

परसाद—मैं जानता हूँ, ईश्वर सच्चिदानन्द और भक्तवत्सल है और भक्तों के कारण जन्म लेता है।

स्वामीजी—सच्चिदानन्द और भक्तवत्सल जो तुमने कहा वह ठीक है, परन्तु वह जन्म नहीं लेता। उसको अजन्मा कहा गया है। यह शब्द रामायण में भी तुमने सुना होगा। सत्य कहो।

परसाद—हाँ, सुना तो है।

इस प्रकार कुछ समय तक और बात-चीत हुई। उसपर स्वामीजी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने लाठी फेंक दी और उनके चरणों पर गिर पड़ा। इसके पश्चात् वह जब तक जीवित रहा, एक सदाचारी ब्राह्मण की तरह रहता रहा।

मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर—चौबे परमानन्द रईस कायगंज व दीवान झालावाड़ राज्य पं० बलदेवप्रसाद के साथ स्वामीजी के दर्शनार्थ फ़र्रुखाबाद आये। उनसे वे कायगंज में मिल चुके थे और तभी से उनके हृदय में स्वामीजी के प्रति श्रद्धा के भाव अंकुरित हो गये थे। फर्रुखाबाद आकर उन्होने स्वामीजी से अपनी शङ्काओं का समाधान किया, जिसका विवरण निम्न प्रकार है—

बलदेव—क्षत्रिय लोग जो मृगया में जीवों का वध करते हैं, उन्हें जीव-हिंसा का पाप लगता है वा नहीं ?

स्वामीजी—जो हिंसक जीव अपने दुष्ट स्वभाव से खेती और पालनीय पशुओं का तथा मनुष्यों का नाश करते हैं, उनके मारने से मनुष्यों तथा पशुओं की रक्षा होती हैं, किसी की हानि नहीं, अतः ऐसे शिकार में दोष नहीं।

बलदेव—पाप क्या है ?

स्वामीजी—जिससे मनुष्यों की हानि हो वह पाप कर्म है।

बलदेव—इस प्रकार तो बूढ़े मनुष्यों के मारने में पाप न होना चाहिए।

स्वामीजी—बूढ़ों के मारने में कृतघ्नता का महापाप है। वे पुरुष अपने अनुभव से जनसमुदाय की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भलाई कर सकते हैं।

चौबेजी—मद्यपान में क्या दोष है ? उससे तो किसी का प्राण-नाश नहीं होता।

स्वामीजी—मद्यपान सब भाँति निन्दित है। मद्यप मनुष्य उन्मत्त होकर औरों की सामान्य हानि नहीं वरन् प्राणनाश तक कर देता है और आप भी अपराधवश मारा जाता है तथा ऊँचे-नीचे गिरकर मृत्यु को प्राप्त होता है अथवा रोगी होकर मरता वा दुःख को प्राप्त होता है, अकरणीय करते हुए विद्या, धन आदि उत्तम पदार्थों से वञ्चित रहता है।

चौबेजी—सब मद्यों अर्थात् भांग, शराब आदि में समान दोष है वा न्यूनाधिक ?

स्वामीजी—जिसमें जितनी अधिक मादकता होती है, उसमें उतना ही अधिक दोष है।

लाला जगन्नाथ के पूछने पर कि मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है, स्वामीजी ने कहा कि मनुष्य का कर्त्तव्य ईश्वर-प्राप्ति है, जो ईश्वरीय आज्ञाओं के पालन अर्थात् वेदानुकूल आचरण, मनूक्त धर्म के दश लक्षणों पर चलने और अधर्म-त्याग से हो सकती है।

मनुष्य का कर्त्तव्य—एक साध ने स्वामीजी से पूछा कि मनुष्य को क्या करना चाहिए तो उन्होंने उत्तर दिया कि जैसे ईश्वर दयालु है वैसे मनुष्य को भी सबपर दया करनी चाहिए और जैसे ईश्वर सत्य है वैसे मनुष्य को भी सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना चाहिए।

लड़कों के ढेले खाये—एक दिन महाराज विश्रान्तघाट पर जल में पैर लटकाये हुए बैठे थे कि कुछ शरारती लड़कों ने रेत के गोले बनाकर उनके मारने शुरु किये, परन्तु वे चुपचाप गोले खाते रहे और लड़कों से कुछ न कहा। अन्त को जब कुछ रेत उनकी आँख में पड़ी तो वहाँ से उठकर चले गये।

एक दिन नवाब साहब ने स्वामीजी से पूछा कि कोई ऐसी भी विद्या है कि यहाँ बैठा हुआ मनुष्य अन्यत्र की बात जान ले। उन्होंने उत्तर दिया कि योगी लोग इच्छा नहीं करते। सबसे गुप्त ब्रह्मविद्या है, योगी का उद्देश्य उसी को जानना है, अतः योगी यदि चाहे तो योगविद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।

(जून सन् १८६६) शृंगीरामपुर (ज्येष्ठ सं० १९२६)

स्वामीजी जून सन् १८६६ की किसी तारीख को किसी से कुछ कहे बिना फ़र्रुखाबाद से चल दिये और शृङ्गीरामपुर पहुँचे। वहाँ पर विश्रान्त पर उतरे। स्वामीजी गंगा में स्नान कर रहे थे कि एक सामवेदी ब्राह्मण ने कुछ वेद के मन्त्र अशुद्ध पढ़े, स्वामीजी ने उसे टोका और उनका शुद्ध उच्चारण बतलाया।

जलालाबाद

एक दिन शृङ्गीरामपुर में रहकर स्वामीजी जलालाबाद पहुँचे और प्रयागदत्त के बाग़ में एक अनार के पेड़ के नीचे बैठ गये। फिर पण्डित गयाप्रसाद के अनुरोध से वे सरनदास उदासी की कुटिया में चले गये। वहाँ और दो उदासी बैठे हुए थे, उनसे बातचीत होती रही और उनका शङ्का-समाधान करते रहे। लोगों ने ग्राम से उनके लिए बिस्तर ले-जाना चाहा, परन्तु उन्होंने निषेध कर दिया और दो ईंटों का तकिया लगाकर लेट गये।

कच्ची रसोई कच्ची नहीं पक्की है—पण्डित गयाप्रसाद ने उनके लिए अपने घर पर कच्ची रसोई बनवाई थी, परन्तु जब उसने कहा कि आप घर पर चलकर भोजन पा लें तो उन्होंने उत्तर दिया कि यदि हम तुम्हारे घर पर जा सकते तो वहाँ उतरते ही क्यों न ? तब पण्डित गयाप्रसाद ने उनसे कहा कि मैंने इस आशा से कि आप मेरे घर पर पधार कर भोजन करेंगे कच्ची रसोई बनवाई थी, अब आप कुछ देर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतीक्षा करें जिससे मैं पक्की रसोई बनवा लूँ। महाराज ने कहा कि वह कच्ची नहीं पक्की है, जो बना है, वही ले-आओ।

जलालाबाद में पण्डित हकूमतराय बड़े विद्वान् प्रसिद्ध थे। स्वामीजी ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए बुलाया, परन्तु वह शिरःपीड़ा का बहाना करके और यह कहकर कि दयानन्द नास्तिक है, शास्त्रार्थ से जी चुरा गये।

(जून-जुलाई) कन्नौज (आषाढ़)

जलालाबाद में वे केवल एक रात-दिन ठहरे फिर वहाँ से कन्नौज चले गये। जब कन्नौज पहुँचे तो संवत् १६२६ का आषाढ़ मास था। कन्नौज में महाराज कालिन्दी नदी के तट पर गौरीशङ्कर महादेव के चबूतरे पर विराजमान हुए। नगर के पण्डित-गण उनके पास गये और दो प्रसिद्ध पण्डित हरिशङ्कर शास्त्री और गुलज़ारीलाल से उनका शास्त्रार्थ हुआ।

एक सत्यप्रिय पण्डित से शास्त्र-विचार—पण्डित हरिशङ्कर से जो शास्त्रार्थ हुआ वह बड़ा मनोरञ्जक था। जब पण्डितजी स्वामीजी के पास गये, तो उन्होंने पण्डितजी का नाम पूछा। पण्डितजी ने एक श्लोक पढ़ा, जिसका अर्थ था कि अपना और अपने गुरु का नाम लेना वर्जित है§। स्वामीजी ने कहा कि जब आप सङ्कल्प पढ़ते हैं तो अपना नाम लेते हैं वा नहीं। इसपर निरुत्तर होकर उन्होंने अपना नाम बतला दिया। उस समय अनेक लोग महाराज के पास बैठे थे। पण्डितजी बड़े अच्छे वैयाकरण थे और कन्नौज के विद्वानों में अग्रगण्य थे। स्वामीजी ने मूर्त्तिपूजा के खण्डन और पञ्चमहायज्ञादि के मण्डन पर वक्तृता दी। इसपर पण्डितजी से वार्त्तालाप छिड़ गया। बलिवैश्वदेव के विषय में स्वामीजी ने कहा कि **जो बलिवैश्वदेव किये बिना भोजन करते हैं, वे मानो गो-मांस भक्षण करते हैं**। पण्डितजी ने कहा ऐसा न कहो यहाँ तो कोई भी बलिवैश्वदेव नहीं करता। स्वामीजी ने कहा कि मैं तो थोड़ा ही कहता हूँ, शास्त्र में तो इससे अधिक लिखा है और गीता का यह श्लोक पढ़ा—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

पण्डितजी ने कहा कि मूर्त्तिपूजा के निषेध में कोई शास्त्रीय वचन पढ़ो। स्वामीजी ने कहा तुम्हीं कोई विधि-वाक्य पढ़ो। पण्डितजी ने मनु-श्लोक **'श्रुतिःस्मृतिःसदाचारः'** इत्यादि पढ़कर कहा कि मूर्त्तिपूजा सदाचार है। स्वामीजी ने कहा सदाचार पञ्चमहाज्ञादि हैं। मनु के इस वाक्य पर कि राजा प्रतिमाओं की रक्षा करे, स्वामीजी ने कहा कि यहाँ प्रतिमा के अर्थ बाट-तौल के हैं। पण्डितजी ने अपने पक्ष के समर्थन में कहा कि पूर्वमीमांसा में भी ऐसा ही लिखा है। स्वामीजी ने इसका प्रतिवाद किया तो पण्डितजी ने कहा कि यदि पूर्व-मीमांसा में ऐसा लेख न हो तो मैं शिखासूत्र त्यागकर संन्यासी हो जाऊँगा। स्वामीजी ने कहा कि यह आपकी इच्छा की बात है। मीमांसा में जैसा हमने कहा ऐसा लिखा है, जैसा आप कहते हैं, वैसा लेख नहीं हैं। उस समय बात यहीं समाप्त हो गई। पण्डितजी ने घर पर आकर मीमांसाशास्त्र देखा तो वैसा ही लेख पाया जैसा स्वामीजी कहते थे। पण्डितजी ने अपने मित्रों से कहा मेरा पक्ष गिर गया, मैं संन्यासी होने को तैयार हूँ। मित्रों ने कहा कि स्वामीजी के पास चलो, हम आपका पक्ष गिरने न देंगे और जय बोलकर आपको उठा लावेंगे। पण्डितजी सत्यप्रिय पुरुष थे। उन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की। दूसरे दिन उन्होंने स्वामीजी के पास जाकर स्पष्ट कह दिया कि मैं हार गया, मुझे संन्यास दीजिए। स्वामीजी ने कहा संन्यास ज्ञान से होता है, हार-जीत की प्रतिज्ञा पर लेना ठीक नहीं है। उन्होंने सबके सामने पण्डितजी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि हमने ऐसा सत्यवादी और धार्मिक पण्डित नहीं देखा। यह प्राचीन काल के पण्डितों का आदर्श है।

---

§ आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् तथा पुत्रकलत्रयोः॥ —यु०मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्य का अंकुर दब नहीं सकता—पण्डित हरिशङ्कर महाराज के अनुयायी बन गये, परन्तु पीछे पौराणिक पण्डितों का दबाव पड़ने पर वे स्वामीजी का पक्ष समर्थन करने पर आरूढ़ न रह सके, परन्तु सत्य का अंकुर जो उनके हृदय में उत्पन्न हो गया था, वह कैसे नष्ट हो सकता था। वह वृद्धिगत होता रहा और फिर वह महाराज के पक्षपोषक बन गये। पण्डित गुलज़ारीलाल ने यद्यपि उस समय महाराज का पक्ष स्वीकार नहीं किया था, परन्तु पीछे सत्यार्थप्रकाश पढ़कर वे वैदिक सिद्धान्तों को मानने लगे थे। एक दिन गार्गीदीन मिश्र ने पं० हरिशङ्कर से कहा कि दयानन्द से कह दो कि मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करे, नहीं तो हम उसे पीटेंगे। हरिशङ्कर ने यह बात महाराज से कह दी। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम हमारे पिटने से मत डरो, दो आदमियों का मूँड तोड़ने को तो हम अकेले ही पर्याप्त हैं, यदि अधिक लोग आक्रमण करेंगे तो हम सरकार में रिपोर्ट कर देंगे।

स्वामीजी का उपदेश सुनकर अनके लोगों को मूर्त्तिपूजा से ग्लानि हो गई थी। पं० पुतईलाल भट्टाचार्य भी मान गये कि मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध है, परन्तु वह उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास ५० वर्ष से मूर्त्तियों का सिंहासन है। जिनकी मैं अब तक पूजा करता आया हूँ, उन्हें मैं गंगा में कैसे विसर्जन कर दूँ? महाराज ने हँसी में कहा कि प्रतिमाओं के मुँह में रात को मिष्टान्न लगा देगा, वे स्वयं पधार जाएँगी।

एक दिन पं० गयादीन जब स्वामीजी से मिले और अपना नाम बताया तो महाराज ने कहा कि जब दीन (धर्म) ही गया तो आपके पास बचा ही क्या ? फिर कहा कि खेद है कि लोगों को ठीक नाम रखने भी नहीं आते और नामकरण की रीति दर्शाते हुए कहा कि शास्त्रोक्त नाम रखने चाहिएँ।

एक सज्जन ने कायस्थों के विषय में प्रश्न किया तो स्वामीजी ने कहा ये लोग शूद्र नहीं हैं। यदि इनका वंश चित्रगुप्त से सम्बद्ध है, जैसाकि ये कहते हैं तो वैश्य हो सकते हैं, क्योंकि गुप्त शब्द वैश्यों के लिए आना शास्त्रोक्त है। ये लोग अपने स्वरूप को भूलकर मद्य-मांस में अधिक प्रवृत्त हो गये। इस अशास्त्रीय व्यवहार को त्यागने पर पुनः उच्चता प्राप्त कर सकते हैं।§

कन्नौज में एक संन्यासी रहते थे, जो शिवालयवाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। एक दिन लोगों के अनुरोध से स्वामीजी उनके पास गये। उन्होंने स्वामीजी का बहुत सत्कार किया, किन्तु धार्मिक-विषय पर कोई बातचीत नहीं हुई।

एक वैश्य को उसके गुरु ने यह गायत्री बता रक्खी थी **'तत्पुरुषाय विद्महे कुवेराय धीमहि। तन्नो धनदः प्रचोदयात्'**। स्वामीजी ने उसे गायत्री मन्त्र का उपदेश किया और कहा कि गायत्री सबके लिए एक ही है।

एक दिन संकटादीन आचार्य ने स्वामीजी के सामने पं० हरिशङ्कर से कहा कि तुम तो कहा करते थे कि भागवत धर्म है और स्वामीजी उसका खण्डन करते हैं। तुम या तो स्वामीजी को पराजित करो नहीं तो हम मार्ग में तुम्हें पीटेंगे। स्वामीजी इसपर हँस पड़े और कहा कि यह आचार्य हमपर तरस खाता है।

स्वामीजी कन्नौज केवल ७-८ दिन रहे और फिर बिठूर, मदारपुर होते हुए कानपुर पहुँच गये।

(जुलाई-सितम्बर) **कानपुर** (आषाढ़-आश्विन)

जब महाराज ने कानपुर में पदार्पण किया तब वर्षाकाल था। कानपुर में वे भैरों के मन्दिर के पास बा० दरगाहीलाल वकील के घाट पर ठहरे। उनके पधारते ही सारे नगर में हल्ला-सा मच गया और सैकड़ों लोग उनके दर्शनों को जाने लगे। महाराज से लोगों के प्रश्नोत्तर अधिकतर मूर्त्तिपूजा के विषय पर होते थे और वे उसका तीव्र

---

§ एक और अवसर पर स्वामाजी ने कायस्थों को अम्बष्ठ बताया था। मनु० अध्याय १० श्लोक ८ में अम्बष्ठ को ब्राह्मण पिता और वैश्या माता की सन्तान कहा गया है। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खण्डन करते थे, जिससे मूर्त्तिपूजकों में खलबली मच गई थी। महाराज ने एक विज्ञापन भी संस्कृत‡ में छपवाकर बँटवाया था, जिसमें आठ गप्प त्याज्य और आठ सत्य ग्राह्य बतलाये थे। वे गप्प और सत्य निम्नलिखित थे—

आठ गप्प—

१—मनुष्यकृत सब ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण।

२—देवताबुद्धि से पाषण आदि की पूजा।

3—शैव, शाक्त, वैष्णाव, गाणपत्य आदि सम्प्रदाय

४—तन्त्रग्रन्थोक्त वाममार्ग।

५—भाँग आदि मादक द्रव्यों का सेवन।

६—परस्त्री-गमन।

७—चोरी

८—छल, कपट, अभिमान, मिथ्याभाषण।

आठ सत्य—

१—ऋग्वेदादि ईश्वरकृत चार वेद और ऋषिकृत अन्य २१ ग्रन्थ।

२—ब्रह्मचर्य्याश्रम में रहकर गुरु की सेवा और स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक वेदों का अध्ययन।

३—वेदोक्त वर्णाश्रम में स्वधर्मानुकूल सन्ध्यावन्दनादि, अग्निहोत्रादि का करना।

४—पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में अपनी स्त्री से सहवास, श्रुति, स्मृति, सदाचारानुकूल आचरण।

५—शम, दम, तपश्चरण, यमादि से लेकर समाधि तक उपासना, सत्यसङ्गपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान।

६—विचार, विवेक, वैराग्य और पराविद्या का अभ्यास तथा संन्यास ग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग।

७—ज्ञान और विज्ञान से सब प्रकार के अनर्थ, मरण, जन्म, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, सङ्गदोष के त्यागने का अनुष्ठान।

८—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, तमस्, रजस्, सत्त्व—सब क्लेशों की निवृत्ति, पञ्च महाभूतों से अतीत होकर मोक्ष के स्वरूप और स्वराज की प्राप्ति।

गप्पा बाबा—लोग इन आठ गप्पों के कारण महाराज को गप्पा बाबा कहने लगे थे, क्योंकि जब कोई किसी ऐसी बात को उनके सम्मुख कहता था जो गप्पों की परिभाषा के अन्तर्गत होती थी तो वे यही कह दिया करते थे कि "एतदपि गप्पमस्ति"।

नास्तिक दयानन्द को भैरों घाट से निकाल दो—इस बार की विशेष घटना पं० हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री से महाराज का मूर्त्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ है, जिसका सूत्रपात इस प्रकार हुआ।

महाराज के कानपुर पधारने के कुछ दिन पश्चात् एक संन्यासी ब्रह्मानन्द सरस्वती नामक कानपुर आये। कानपुर में उनकी विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा थी और लोग उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। उन्होंने कानपुर के पण्डितों और अन्य गण्य-मान्य हिन्दुओं से कहा "दयानन्द नास्तिक और ईसाई है, उसे और अन्य कई लोगों को अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए नियत किया है। यदि आप सब सहमत हों तो हम उसे भैरों घाट से निकाल दें"। तदनुसार पण्डितगण और कुछ अन्य लोग इकट्ठे होकर स्वामीजी के पास गये

‡ यह विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में पृ० १-३ तक छपा है। —**यु०मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और ब्रह्मानन्द उन्हें दुर्वचन कहने लगे।

मूर्ख से शास्त्रार्थ क्या करें—स्वामीजी ने उससे कहा—"तू मूर्ख है, तुझसे शास्त्रार्थ क्या करें, यदि विद्वान् होता तो शास्त्रार्थ करते।

ब्रह्मानन्द की लीला—इसके पश्चात् ब्रह्मानन्द ने उन लोगों से जो महाराज के पास बहुत जाया करते थे, यह कहकर कि तुम दयानन्द के संसर्ग से अशुद्ध हो गये हो, तुमने देवताओं की निन्दा सुनी है, तुम्हें प्रायश्चित्त करना चाहिए, उन्हें गङ्गा में स्नान कराकर, पञ्चगव्य खिलाकर और यज्ञोपवीत बदलवाकर उनका प्रायश्चित्त कराया, परन्तु एक व्यक्ति रामचरण अवस्थी ने प्रायश्चित्त न किया और प्रायश्चित्त करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। ब्रह्मानन्द ने एक विज्ञापन भी छपवाकर बाँटा जिसमें लिखा था कि जो ब्राह्मण दयानन्द के समीप जाएँगे वे त्याज्य हो जाएँगे, परन्तु इन सब कार्यों का कोई परिणाम न निकला। लोग पूर्ववत् श्रीसेवा में जाते रहे और उपदेशामृत पान करके अपने सन्तप्त आत्माओं को शान्त करते रहे।

ब्रह्मानन्द उस दिन फटकार खाकर और भी चिड़ गया और अपना खिसियानपन उतारने के लिए चाहता था कि किसी प्रकार शास्त्रार्थ का आयोजन करके दयानन्द को जैसे-तैसे परास्त किया जाए। वह कानपुर के प्रसिद्ध रईस पण्डित गुरुप्रसाद और प्रयागनारायण के पास गया।

मन्दिरों पर लाखों रुपया व्यर्थ खो दिया—पं० गुरुप्रसाद और प्रयागनारायण ने "कैलास" और "बैकुण्ठ" नामक दो मन्दिर बहुत रुपया लगाकर बनवाये थे। स्वामीजी ने उनसे कहा था कि आप लोगों ने लाखों रुपया व्यर्थ खो दिया जिसे चूहड़े, चमार और मुसलमान आदि खा गये। इससे तो यह अच्छा होता कि आप कान्यकुब्ज कन्याओं का जो ३०-३० वर्ष की कुमारी बैठी हैं, विवाह करा देते वा कोई कला-कौशल का कारखाना खोलते जिससे देश और जाति का भला होता।

शास्त्रार्थ की उत्तेजना—ब्रह्मानन्द ने पण्डित गुरुप्रसाद और प्रयागनारायण को उत्तेजना दी कि वह हलधर ओझा से स्वामीजी का शास्त्रार्थ करावें। तदनुसार शास्त्रार्थ की बात पक्की हो गई। पण्डित हलधर और लक्ष्मण शास्त्री को स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिए उद्यत किया गया। ३१ जुलाई सन् १८६१ शास्त्रार्थ के लिए नियत हुई। उस दिन शास्त्रार्थ देखने के लिए कानपुर की जनता उमड़ पड़ी। २०-२५ सहस्र की भीड़-भाड़ हो गई। इतना जन-संघट्ट था कि लोग स्थानाभाव से छतों और पेड़ों तक पर बैठे थे।

शास्त्रार्थ के मध्यस्थ थेन साहब—हलधर ओझा ने शास्त्रार्थ से पहले यह शर्त लगाई कि यदि थेन साहब असिस्टैण्ट कलक्टर जो संस्कृतज्ञ थे, मध्यस्थ बनना स्वीकार करें तो मैं शास्त्रार्थ करूँगा। इसपर पं० प्रयागनारायण ने थेन साहब से मध्यस्थ बनने की प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

पहले स्वामीजी से कहा गया कि वे ऊपर तट पर आ जाएँ और वहीं शास्त्रार्थ हो। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हमने किसी को नहीं बुलाया। जिसका जी चाहे हमारे पास आकर शास्त्रार्थ करले, अतः दर्गाहीलाल के घाट पर ही शास्त्रार्थ हुआ।

शास्त्रार्थ सभा में बाबू क्षेत्रनाथ घोष सब-जज, बाबू काशीनारायण मुन्सिफ़, सुलतान मुहम्मद कोतवाल तथा अन्य सम्भ्रान्त और प्रतिष्ठित पुरुष पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे। कई अंग्रेज़ भी आये थे। मध्याह्नोत्तर साढ़े चार बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

हलधर ओझा से दूसरा शास्त्रार्थ—

हलधर—आपने जो अष्टगप्पम् और अष्टसत्यम् का विज्ञापन दिया है उसमें व्याकरण की अशुद्धि है।

स्वामीजी—ये बातें पाठशाला के विद्यार्थियों की हैं, ऐसे शास्त्रार्थ पाठशाला में हुआ करते हैं। आज उस विषय पर कहो जिसके लिए सहस्रों मनुष्य इकट्ठे हुए हैं। व्याकरण के विषय में कल मेरे पास आना,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं समझा दूँगा।

इसके पश्चात् हलधर ने ग्रन्थ-प्रामाण्य की बात उठाई और पूछा।

हलधर—आप महाभारत को मानते हैं ?

स्वामीजी—हाँ।

हलधर—(श्लोक पढ़कर) एक नीच कुलोत्पन्न पुरुष (भील) ने द्रोणाचार्य्य की मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा की और शस्त्रों का अभ्यास किया, उसे यह फल मिला कि वह शस्त्रविद्या में निपुण हो गया, अतः मूर्त्तिपूजा विहित सिद्ध होती है।

स्वामीजी—इससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। यह कार्य्य उस शूद्र ने अज्ञानवश किया था, जैसाकि अज्ञानी लोग आज तक करते हैं और शस्त्रप्रयोग की निपुणता मूर्त्तिपूजा का नहीं वरन् उसके निरन्तर अभ्यास का फल था। जैसे देखो ! अंग्रेज़ लोग चाँदमारी करते हैं, परन्तु वे किसी की मूर्त्ति को सामने नहीं रखते। आप कोई वेद-वाक्य दिखावें जिसमें मूर्त्तिपूजा की आज्ञा हो।

कुछ देर चुप रहने के पश्चात् ओझा ने पूछा—वेद में प्रतिमापूजन की यदि आज्ञा नहीं है, तो निषेध भी कहाँ है ?

स्वामीजी—जब विधि नहीं है तो निषेध ही समझना चाहिए। यदि कोई मनुष्य अपने भृत्य से पश्चिम की ओर जाने को कहे तो यह समझा ही जाएगा कि वह पूर्वादि दिशाओं में जाने का निषेध करता है।

तत्पश्चात् वेदों के अनेक मन्त्र उद्धृत करके महाराज ने सिद्ध कर दिया कि ईश्वर निराकार है, उसकी मूर्त्ति नहीं हो सकती।

लक्ष्मण—ईश्वर सर्वव्यापक है तो पत्थर में भी है फिर मूर्त्तिपूजन में क्या दोष है ?

स्वामीजी—जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो पत्थर में ही क्या विशेषता है और चेतन को छोड़कर जड़ की पूजा में क्या भलाई है ?

इसे सुनकर पं० हलधर और लक्ष्मणशास्त्री ने मौन धारण कर लिया।

तत्पश्चात् थेन साहब ने स्वामीजी से पूछा कि आप किसको मानते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं केवल एक परमेश्वर को मानता हूँ।

थेन०—तो फिर आप अग्नि में होम करके अग्नि की पूजा क्यों करते हैं।

स्वामीजी—हम अग्नि की पूजा नहीं करते। अग्नि सर्वव्यापक है, जो पदार्थ अग्नि में डाला जाता है, वह (सूक्ष्म होकर) सर्वत्र फैल जाता है।

इसके पश्चात् थेन साहब ने अपनी छड़ी उठाई और कुर्सी पर से उठ खड़े हुए। उनके उठने के साथ ही सब लोग उठ खड़े हुए और शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। हलधर के साथी गङ्गाजी की जय बोलते हुए और यह कहते हुए 'हलधर जीत गये' उन्हें गाड़ी में सवार कराकर शास्त्रार्थ स्थल से चले गये।

असत्य का बवंडर—पं० गुरुप्रसाद शुक्ल स्वामीजी के कट्टर शत्रु थे। यह हम कह ही चुके हैं कि शुक्लजी के मन्दिर बनवाने पर स्वामीजी ने आक्षेप किया था। दूसरे शुक्लजी ने कोतवाल के पुत्र के विवाह में मन्दिर के आँगन में मुसलमानी वेश्या के नृत्य की अनुमति दी थी। इसपर भी महाराज ने शुक्लजी को फटकारा था। इससे शुक्लजी महाराज से बहुत चिढ़े हुए थे और अब तो उनके चिढ़ने का एक और प्रबल कारण उपस्थित हो गया था। उनके पण्डितों ने जिन्हें वे बड़े दल-बल के साथ स्वामीजी को परास्त करने के लिए लिवाकर लाये थे, शास्त्रार्थ में ऐसा पराजय प्राप्त किया कि जिसका उदाहरण मिलना कठिन था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब उन्होंने सत्य को झूठ से दबाना चाहा। सूर्य पर धूल फेंकने का वृथा प्रयास किया, जिसका अन्तिम फल यह हुआ कि धूल उनके ही चेहरे पर आकर पड़ी।

शोलाए-तूर का शोला—उन दिनों कानपुर से एक उर्दू समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ करता था, जिसका नाम शोलाए-तूर था। शुक्लजी उसके सम्पादक के पास गये जो उनका किरायेदार भी था और उससे कहा कि कल के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त छापो और उसमें लिखो कि शास्त्रार्थ में हलधर ओझा जीते और दयानन्द हारे।

सम्पादक ने कहा कि शास्त्रार्थ में उच्च राज्य-कर्मचारी उपस्थित थे, मैं ऐसी मिथ्या बात कैसे प्रकाशित कर दूँ, कल को कोई दावा हो गया तो क्या होगा ? शुक्लजी ने पूछा, दावे में क्या होगा ? सम्पादक ने उत्तर दिया कि जुर्माना होगा। शुक्लजी ने कहा कि क्यों डरते हो दस हज़ार तक जुर्माना मैं दे दूँगा।

अन्तकथा यह है कि शोलाए-तूर के सम्पादक ने शुक्लजी के आग्रह पर जैसा वे चाहते थे, वैसा ही प्रकाशित कर दिया ('शोलाए-तूर' जिल्द १० मं० ३१)।

पं० शिवसहाय, जो स्वामीजी के भक्त थे और जिन्हें महाराज इस कारण से कि वह उनका पक्ष लेने में किसी से न डरते थे 'शूरवीर' कहा करते थे, शोलाए-तूर के उस अङ्क को लेकर महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और उन्हें वह लेख पढ़कर सुनाया। उनपर उसका क्या प्रभाव होना था। उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो इस विषय में कुछ करेंगे नहीं, यदि आप लोग कुछ करना चाहें तो करें, परन्तु ऐसा न हो कि हमें अदालत में जाना पड़े। पं० शिवसहाय ने कहा कि हम ही कुछ करेंगे।

पं० शिवसहाय, पं० हृदयनारायण दत्तात्रेय वकील को साथ लेकर मुन्सिफ साहब और फिर सब-जज साहब के पास गये और उनका पत्र लेकर थेन साहब के बँगले पर गये और उनसे प्रार्थना की कि आप शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थे, आपकी जो सम्मति हो वह कृपा करके लिख दीजिए। इसपर थेन साहब ने अपनी सम्मति इन शब्दों में लिखकर उन्हें दे दी—

मध्यस्थ का निर्णय—भद्र पुरुषो ! उस समय मैंने दयानन्द सरस्वती फ़क़ीर के पक्ष में अपना निर्णय दिया था और मुझे विश्वास है कि उनकी युक्तियाँ वेद के अनुकूल थीं। मेरे विचार में उनकी विजय हुई। यदि आप कहेंगे तो मैं अपने निर्णय के कारण थोड़े दिन में आपको बतला दूँगा।

हस्ताक्षर—आपका आज्ञानुवर्त्ती—
डब्ल्यू० थेन०

कानपुर, ७-८-६९§

स्वामीजी के लिए भोजन पण्डित हृदयनारायण वकील के यहाँ से कुछ दिन आता रहा, फिर बाबू दर्गाहीलाल ने उनके लिए एक पाचक नियत कर दिया था और उनके लिए घाट पर ही भोजन बनने लगा था। इस समय की बहुत-सी मनोरञ्जक घटनाएँ महाराज के विषय में प्रसिद्ध हैं, जिनमें से हम कुछ यहाँ उद्धृत करते हैं।

आधुनिक जन्म के ब्राह्मणों के लिए महाराज निम्न श्लोक पढ़ा करते थे—

टका‡ धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टका टकटकायते ॥

---

§ Gentlemen ! At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati, Fakir, and believe his arguments are in accordance with Vedas, I think he won the day. If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

Yours Obediently,
W. Thaine.

Cawnpore 7-8-1869.

‡ यहाँ टका शब्द का अर्थ रुपया है, अधन्ना नहीं।—यु० मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मगर हमें दुःख न देगा—एक दिन महाराज मौज में जल में लेटे हुए थे, आधा शरीर जल में और आधा जल से बाहर था कि इतने में थोड़ी दूर पर ही एक मगर निकला। पण्डित हृदयनारायण वकील के लघु भ्राता उसे देखकर भागे और चिल्लाये कि स्वामीजी मगर निकला है, परन्तु उनके मुख पर भय की किञ्चिन्मात्र रेखा भी दिखाई नहीं दी, वे जैसे पड़े थे वैसे ही पड़े रहे और बोले कि जब हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमें दुःख न देगा†।

जब वे ध्यानावस्थित होकर बैठते थे तो उनका शरीर हर प्रकार से गति और स्पन्दन-शून्य हो जाता था और उनका दिव्य मुखमण्डल अपूर्व शान्ति और आभा धारण कर लेता था।

वे ऐसी मधुर और सरल संस्कृत बोलते थे कि थोड़े दिन उनके संसर्ग में रहने से संस्कृत से अनभिज्ञ, यहाँ तक कि सर्वथा अनपढ़ मनुष्य भी उनके वचनों को समझने लगते थे।

योगासनारूढ़—पण्डित हृदयनारायण वकील व पण्डित काशीनाथ मुंसिफ़, जो दोनों काश्मीरी ब्राह्मण थे, स्वामीजी के पास बहुधा जाया करते थे। एक दिन वे रात्रि के समय गये तो उन्होंने देखा कि स्वामीजी नहा-धोकर सारे शरीर पर मिट्टी लगाये हुए ध्यानावस्थित बैठे हैं। उनके शरीर में तनिक भी कोई कम्पन वा किसी अङ्ग का सञ्चालन नहीं दीखता था। उनके सामने वे पन्द्रह मिनट तक उसी अवस्था में बैठे रहे, फिर ध्यान भङ्ग करके बात-चीत करने लगे।

उन दिनों स्वामीजी एक ही समय भोजन करते थे। बहुधा भोजन पण्डित हृदयनारायण के यहाँ से आया करता था। वे कहा करते थे कि काश्मीरियों का भोजन अच्छा बनता है और शोक करते थे कि और बातें तो अलग रहीं लोग पाक बनाना भी भूल गये।

पण्डित हृदयनारायण की उनके सत्संग से संस्कृत में इतनी गति हो गई थी कि वह अन्यों को स्वामीजी के वाक्यों का अनुवाद करके समझा दिया करते थे।

अनेक लोगों ने स्वामीजी के उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ दी थी और मूर्त्तियाँ गङ्गा में डाल दी थीं।

अंगोछे में से पुस्तक न खुल सकी—अनेक पण्डित उनसे मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आते थे, परन्तु सब परास्त होकर चले जाते ते। एक दिन कुछ पण्डित षड्विंशब्राह्मण का प्रमाण 'प्रतिमा हसन्ति', इत्यादि लेकर इस आशा से स्वामीजी के पास आये कि आज स्वामीजी को परास्त करें। स्वामीजी ने उनसे पूछा, कोई प्रमाण लाये हो? उन्होंने कहा कि लाये हैं। स्वामीजी ने कहा, वही षड्विंशब्राह्मण का 'प्रतिमा हसन्ति' वाला लाये होंगे। यह सुनकर वे इतने घबराये कि अंगोछे से पुस्तक ही न खुल सकी और लज्जित होकर वापस चले गये।

भैरव की मूर्त्ति जलसात्—भैरव की मूर्त्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि वह जागती जोत और प्रत्यक्ष कला है। एक किंवदन्ती यह फैली हुई थी कि मन्दिर के निकट सरकारी मैगज़ीन (गोले-बारूद आदि रखने का स्थान) था। उसपर सिपाहियों का पहरा रहता था। एक दिन जब भैरवजी की सवारी निकली तो सन्तरी ने टोका, भैरवजी ने कोप में आकर उसे दे मारा। लोगों ने इस कथा को स्वामीजी से भी कहा, तो उन्होंने कहा—"भैरव ने क्या दे मारा होगा, निद्रालु होगा, ऊँघ में गिर पड़ा होगा। हम तो रोज भैरव का खण्डन करते हैं, देखें हमें तो दे मारे"। थोड़े दिन पश्चात् गङ्गा के प्रवाह ने भैरव के मन्दिर को काटकर जलसात्

---

§ हमें तो इस घटना से महाराज का पूर्ण योगी होना दृष्टि पड़ता है। उन्होंने अहिंसा-व्रत का पूर्णरूप से पालन लिया था और योगशास्त्र के इस वचन के अनुसार ["**अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः**" कि जब योगी अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है तो प्राणिमात्र उससे वैर करना छोड़ देते हैं] वैर पर विजय प्राप्त कर ली थी। यह योगानुष्ठान का ही फल था जो उनमें इतनी द्वन्द्व-सहिष्णुता थी कि शीतकाल की यौवनावस्था में गङ्गा के तट पर पियार के भीतर सुख से सो जाते थे, जब कि अन्य लोगों की बन्द मकानों में मोटे-मोटे लिहाफों के भीतर भी जाड़े से किड़ीकिड़ी बँधती थी। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर दिया और भैरव की मूर्त्ति भी उसके साथ नदी के प्रवाह में गिर गई।

यदि किसी भिखारी के मस्तक पर श्री (तिलक) देखते थे तो कहते थे कि देखो मस्तक पर श्री (लक्ष्मी) तिलक लगाता है और माँगता है भीख।

ऊँट का चारा—एक दिन श्रावण मास में कुछ ब्राह्मण शिव-लिङ्ग पर बिल्व-पत्र चढ़ाकर स्वामीजी के पास गये। उनके प्रश्न करने पर कि कहाँ आये थे, ब्राह्मणों ने कहा कि शिवजी पर बिल्व-पत्र चढ़ाकर आ रहे हैं। इसपर महाराज बोले कि ऊँट को खिलाते तो उसका चारा होता, पाषाण पर चढ़ाने से क्या लाभ हुआ ?

मूर्त्ति फेंक दी, माला तोड़ दी—एक दिन एक हैड काँस्टेबिल हाथ में नर्मदेश्वर महादेव लिये हुए और रुद्राक्ष की माला पहने हुए महाराज की सेवा में आया। उनके सदुपदेश से उसने तत्काल ही महादेव को फेंक दिया और रुद्राक्ष की माला तोड़ डाली। उसके यह कहने पर कि यदि इसमें पाप हुआ तो किसे होगा, आपने मन्दमुस्कान करते हुए कहा कि जो पाप होगा वह मुझे होगा और जो पुण्य होगा वह तुझे।

विनोद-वाक्य—स्वामीजी में विनोद-कला का भी पूर्ण विकास था और तत्काल उत्तर देने में और व्यंग्य में तो वे अद्वितीय थे। चक्राङ्कितों के विषय में कहते थे कि यह अपना लिङ्ग शतवार देखते हैं, परन्तु इनकी श्री नहीं शर्माती, परन्तु पाषाण का शिवलिङ्ग देखकर शर्मा जाती है। ये लोग तो एक प्रकार से नर-मांस खाते हैं, क्योंकि छाप को तप्त करके शरीर दग्ध करते हैं और फिर उसी को धोकर पीते हैं।

जब किसी को स्वामीजी रुद्राक्ष पहने देखते थे तो उससे कहा करते थे कि इन गुठलियों के पहनने से क्या लाभ है ? इनसे मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तो ज्ञान से होती है।

स्वामी कैलाशपर्वत भी घटनावश कानपुर आये हुए थे। महाराज ने उन्हें विचारार्थ बुलाया तो वे न आये और कहला भेजा कि हम शूद्र के स्थान पर न आवेंगे§। स्वामीजी ने इसके उत्तर में उनके पास कहलवाया कि म्लेच्छ के राज्य में क्यों आये ? कैसा फबता और फड़कता हुआ उत्तर था ! कैलाशपर्वत भी सुनकर फड़क उठे होंगे।

मूर्त्तिपूजकों की घबराहट—महाराज के उपदेश से कानपुर में कितने ही लोगों ने मूर्त्तिपूजा को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर मूर्त्तियाँ गङ्गा में प्रवाहित करना आरम्भ कर दीं। इससे मूर्त्तिपूजकों में बड़ी सनसनी फैली और उन्हीं हलधर ओझा ने, जिन्हें शास्त्रार्थ में पं० गुरुप्रसादादि ने विजेता प्रसिद्ध करने के लिए झूठे लेख प्रकाशित कराये थे, विवश होकर एक विज्ञापन प्रकाशित किया जो संस्कृत, उर्दू और आर्य-भाषा में था। हम उसके आर्य-भाषा अंश को नीचे उद्धृत करते हैं।

मूर्त्तियों को फेंको नहीं, मन्दिर में पहुँचा दो—जो दयानन्द सरस्वती के मत के मुताबिक़ बहुत लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वगैरः अपना कुलधर्म छोड़कर मूर्त्ति, देवताओं को गङ्गाजी में प्रवाह कर देते हैं, यह बात बेजा व नामुनासिब है। इसलिए यह इश्तिहार जारी किया जाता है कि जो लोग उनका मत अख्तियार करें उनको चाहिए कि मूर्त्तियों को मेहरबानी कर एक मन्दिर कैलासजी में जो महाराज गुरुप्रसाद शुक्ल का है उसमें या मन्दिर महाराज प्रयागनारायण तिवारी में पहुँचा दिया करें और अगर उनको पहुँचाने की गुञ्जायश न हो इत्तिला करें हम उनको उठा लिया करेंगे और उनके बहाने वा फेंकने में जो पाप है, वह संस्कृत में लिखा है। फ़क्त।

दस्तखत—ओझा हलधर

---

§ स्वामीजी बाबू दर्गाहीलाल के घाट पर ठहरे हुए थे, जो कायस्थ थे और उस समय के पौराणिक कायस्थों की गणना शूद्रों में करते थे। इसी से स्वामी कैलाशपर्वत ने ऐसा कहा था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओझाजी के पराजय का इससे अधिक सुस्पष्ट और अकाट्य प्रमाण और क्या हो सकता है ? यदि ओझाजी विजयी हुए होते तो लोगों की श्रद्धा मूर्त्तिपूजा में घटती या बढ़ती ? और उन्हें प्रतिदिन और दयनीय दशा को क्यों प्राप्त होना पड़ता ?

यह विज्ञापन शोलाए-तूर के ३-८-१८६६ के अङ्क में प्रकाशित हुआ था।

गङ्गा तट पर बेदगान—एक बार पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या एक मास्टर (अध्यापक) के साथ कानपुर गये थे। एक दिन वे सन्ध्या समय गङ्गा तट पर भ्रमण करने चले गये तो उन्होंने महाराज का कण्ठ-रव सुना। ऐसा प्रतीत होता था कि वे कुछ गा रहे हैं। जब वे आगे बढ़े तो क्या देखते हैं कि महाराज घाट के एक बुर्ज़ पर अर्द्ध-निमीलित चक्षु होकर बैठे हुए हैं और सामगान कर रहे हैं।

दुष्टों का आक्रमण—थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने पण्ड्याजी और अध्यापक से वहाँ से चले जाने को कहा कि उपद्रव होनेवाला है। वे जाने को ही थे कि कुछ लोग लाठी और ढेले लिये हुए आये और महाराज पर ढेले फेंकने लगे और एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर उनपर लाठी चलाई। उन्होंने उसकी लाठी पकड़ ली और उसे गङ्गा में धकेल दिया।

मैं निरा साधू ही नहीं हूँ—फिर पास के एक वृक्ष की शाखा तोड़कर इन प्रहारोद्यत मनुष्यों को हटाते हुए कहने लगे कि मित्रगण आओ और कई मनुष्यों को मारा और बोले मैं निरा साधू ही नहीं हूँ। इसके पश्चात् वे लोग चले गये और आप गङ्गा में तैरने लगे। महाराज तैरने में भी बड़े निपुण थे। अध्ययन-काल में कई-कई मील तक तैरते हुए यमुना की एक धार से दूसरी धार में चले जाते थे। आप कभी-कभी मालकँगनी का तैल खाया करते थे और कहा करते थे कि इसे खाकर जल में बहुत देर तक रहा जा सकता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि इस तैल को गोले के साथ खाने से स्मरण-शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

ईंट फेंकनेवाला अनुगत—पं० सूर्य्यकुमार शर्मा रईस, पुराना, कानपुर स्वामीजी के बड़े विरोधी थे। वे हलधर के शास्त्रार्थ में भी उपस्थित थे। जब वह शास्त्रार्थ-भूमि से चलने लगे तो विरोध के कारण वे स्वामीजी की ओर ईंटें फेंक आये थे। शास्त्रार्थ में स्वामीजी को मूर्त्तिपूजा का इतने जनसमूह के सामने स्पष्ट खण्डन करते देखकर उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ गई। वे उनके नाम तक से जलने लगे। यहाँ तक कि इस घटना के वर्षों पश्चात् भी यदि कोई उनके पास स्वामीजी की कोई पुस्तकें लाता, तो वह उन्हें फड़वा डालते थे। संवत् १६३६ तक उनकी यही दशा रही। मार्गशीर्ष संवत् १६३६ में उनका छाटा भाई स्वामीजी की कई पुस्तकें खरीद लाया। ये इन्हें फड़वाना ही चाहते थे कि उन पुस्तकों की सुन्दरता को देखकर उनका जी उनके पढ़ने को कर आया। मेला चाँदापुर का वृत्तान्त पढ़कर उनकी बुद्धि से अज्ञान का पर्दा हटा और स्वामीजी की युक्तियों की प्रबलता ने उनके मन में घर करना आरम्भ किया। फिर क्या था ? 'सत्यासत्यविवेक' शास्त्रार्थ बरेली पढ़कर उनके सारे सन्देह दूर हो गये और श्रावण संवत् १६४० में जब वहाँ आर्य्यसमाज स्थापित हुआ तो वे भी उसके सभासद् बन गये। यह प्रमाण है दयानन्द के अकाट्य तर्क और सूक्ष्म दार्शनिक युक्तियों का, जो कट्टर-से-कट्टर शत्रु को मित्र बनाकर छोड़ती थीं।

मैं सत्य का प्रचार करूँगा—कभी प्रसङ्ग उपस्थित होने पर महाराज कहा करते थे कि पण्डित लोग अपनी प्रतिष्ठा, हानि और निन्दा के भय से सत्य को प्रकट नहीं करते, परन्तु मैं इस मार्ग का अनुसरण नहीं करूँगा; प्रत्युत अपने गुरुदेव के आदेशानुसार सत्य का प्रचार करके देश में तुमुल आन्दोलन उपस्थित करूँगा।

तत्कालीन उपदेश—महाराज की यह इच्छा थी कि महाभारत आदि आर्षग्रन्थों के प्रक्षिप्त अंश को छोड़कर उनका विशुद्ध संस्करण प्रकाशित होना चाहिए।

स्वामीजी बाल-विवाह और बाल-सहवास का घोर प्रतिवाद किया करते थे। वे कहा करते थे कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिणतवय से पहले विवाह और स्त्री-सहवास करने से सन्तान कभी बलिष्ठ नहीं हो सकती और दृष्टान्त में अपने बल-वीर्य का उल्लेख करके कहा कहते थे कि **हमारे जन्म के समय हमारे माता-पिता की अवस्था ४०-४२ वर्ष की थी।**

विधवा-विवाह का भी वे समर्थन करते थे कि विधवा का मृत-पति के भाई (देवर) से पुनर्विवाह हो जाना चाहिए§। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम को आवश्यक बतलाते थे। **वे कहते थे कि वेद का अभ्यास न रहने से सबका पराक्रम नष्ट हो गया है, अन्यथा भारत-सन्तान अब भी वैसी ही पराक्रमी होती जैसी प्राचीनकाल में थी।** गायत्री के जप की बड़ी महिमा बतलाते थे और कहते थे कि प्राणायाम से बड़ी शक्ति उत्पन्न होती है। नई रोशनीवालों का यह विचार ठीक नहीं है कि योग में कुछ नहीं है, **अब भी ऐसे बहुत-से योगी विद्यमान हैं जो पृथिवी से एक हाथ ऊँचे उठ सकते और स्थित रह सकते हैं।**

क़ुरान ईश्वरोक्त नहीं—एक दिन एक मौलवी ने आकर क़ुरान के विषय में बातचीत शुरू की और कहा कि क़ुरान खुदा का कलाम है ? स्वामीजी ने कहा कि क़ुरान ईश्वरवाक्य नहीं हो सकता; क्योंकि उसके आदि में ही यह कहा गया है—'आरम्भ करता हूँ, मैं अल्लाह के नाम से, जो बख्शनेवाला और दया करनेवाला है'। यदि क़ुरान का कर्त्ता अल्लाह होता तो वह यह क्यों कहता कि मैं अल्लाह के नाम से आरम्भ करता हूँ ? इसे सुनकर मौलवी चुप हो गये।

मूर्त्तिपूजा क्यों त्याज्य है—एक व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा कि मूर्त्तिपूजा में क्या दोष है ? तो उन्होंने कहा कि वेदों की आज्ञा पर चलना धर्म है, वेदों में कहीं मूर्त्तिपूजा की आज्ञा नहीं है। जो यह कहते हैं कि भावना का फल होता है, यह भी ठीक नहीं है। यदि तुम घर बैठे हुए चक्रवर्ती राजा बनने की भावना किये जाओ तो क्या बन जाओगे ?

तेरे पास तो लोटा है उसी से जल चढ़ा—एक दिन एक साधु ने स्वामीजी से लोटा माँगा। उन्होंने पूछा कि क्या करेगा ? उसने कहा कि शिवजी पर जल चढ़ाऊँगा। स्वामीजी ने कहा कि तेरे पास लोटा है, उससे जल क्यों नहीं चढ़ाता। मुख में भरकर कुल्ले कर दो।

एक दिन महाराज ने विनोद में कहा कि लोग आधे-आधे मन्त्र देकर गुरु बन जाते हैं, परन्तु हम सैकड़ों मन्त्र देते हैं तो भी हम गुरु नहीं बन सकते।

नियमपूर्वक गालि-दान—जो लोग गङ्गा के यात्रियों के दान से जीविका करते हैं वे गङ्गापुत्र कहलाते हैं। एक गङ्गापुत्र स्वामीजी के स्थल के पास ही रहा करता था। उसने यह नियम कर लिया था कि प्रतिदिन नियत समय पर महाराज को गालियाँ सुनाया करे। उसे ऐसा करते हुए कई दिन हो गये। महाराज ने उसकी गालियों पर कुछ ध्यान न दिया।

श्रद्धालुजनों में से अनेक लोग महाराज के लिए मिष्टान्न, फल आदि लाया करते थे। जो पदार्थ बच रहते थे, उन्हें वे आगुन्तकों में बाँट देते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कुछ भोज्य पदार्थ बचे हुए रक्खे थे। महाराज सोच रहे थे कि किसे देवें कि इतने में वही गङ्गा-पुत्र सामने से जाता हुआ दिखाई दिया। महाराज ने प्रेमभरे शब्दों में उसे बुलाया और उसे वे पदार्थ दे दिये और कह दिया कि प्रतिदिन हमारे पास से भोज्य वस्तुएँ ले-जाया करो। वह कई दिन तक आता और खाद्य वस्तुएँ ले-जाता रहा। एक दिन उसके आत्मा ने उसे धिक्कारा कि ऐसे दयालु प्रकृति के महात्मा के प्रति इस प्रकार का दुष्ट व्यवहार करके उसने घोर पाप किया है। वह श्रीचरणों में गिरकर कहने लगा कि महाराज यदि मेरी दुष्टता का पार नहीं तो आपकी सुजनता

---

§ यहाँ स्वामीजी का अभिप्राय बाल-विधवा-विवाह और नियोग से ही है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि पुनर्विवाह का बिना किसी प्रतिबन्ध के उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की भी सीमा नहीं। मेरा अपराध क्षमा कीजिए। महाराज ने कहा कि तुम्हारी गालियों को हमने अपनी स्मृति में स्थान नहीं दिया है, तुम्हें उनके कारण दुःखी होने की आवश्यकता नहीं।

एक दिन एक ब्राह्मण ने पूछा कि महाराज मैं क्या काम करूँ जिससे मैं मुक्ति पा जाऊँ। स्वामीजी ने कहा कि सन्ध्या आदि पञ्चयज्ञ किया करो, लोगों के यज्ञोपवीत कराओ, ब्राह्मणों के पुत्रों को पढ़ाओ; पानी, पत्थर, जड़ पदार्थों की पूजा कभी मत करो। इसपर उसने कहा कि मूर्त्तिपूजा तो पुरानी है, स्वामीजी ने कहा कि चोरी भी तो पुरानी है।

कानपुर तीन मास के लगभग रहने के पश्चात् एक दिन प्रातःकाल बिना किसी को सूचना दिये लंगोट भी वहीं छोड़कर किसी अनिर्दिष्ट स्थान को चले गये। स्वामीजी एक ही लंगोट रखते थे। कानपुर में दूसरा लँगोट एक सज्जन ने उन्हें दे दिया था, परन्तु यात्रा में दूसरे लँगोट का रखना उन्हें भार प्रतीत हुआ, इसलिए जाते समय उसे कानपुर ही छोड़ गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टम अध्याय

आश्विन १९२६—माघ १९२६=सितम्बर १८६९—जनवरी १८७०

(सितम्बर-अक्तूबर) रामनगर (आश्विन-कार्त्तिक)

कानपुर से चलकर महाराज गङ्गा-तट पर भ्रमण करते हुए आश्विन संवत् १९२६ में जबकि रामलीला हो रही थी, रामनगर पधारे और एक वृक्ष के नीचे आसन लगाया।

एक टीकाकार के पीछे—स्वामीजी के रामनगर पधारने की कथा भी बड़ी मनोरञ्जक है। काशी-शास्त्रार्थ से पहले स्वामीजी प्रयाग आये थे। वहाँ उनका शिवसहाय नामक एक पण्डित से शास्त्रार्थ हुआ। उस पण्डित ने वाल्मीकीय रामायण की टीका बनाई थी। किसी ने वह लाकर स्वामीजी को दिखाई। स्वामीजी ने उसे देखकर कहा कि टीकाकार को हमसे मिलवाओ। जब वह आया तो स्वामीजी ने उसकी टीका में अर्थदोष और शब्ददोष बताये। इसपर वह स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने लगा, परन्तु परास्त हो गया और उठकर गङ्गा के तट-तट रामनगर को चल दिया। आपको जो मौज आई तो आप भी उसके पीछे-पीछे रामनगर चले गये और काशी नरेश के जिस मकान में वह था, उसके बाहर खड़े हो गये और जो कोई उस मकन में आता-जाता उससे यही कहते कि जो इसके भीतर छिपा है, उसे बुलाओ।§

रामनगर में श्रीचरणों के पहुँचते ही महाराज के शुभागमन का समाचार बिजली की भाँति क्या रामनगर और क्या काशी में आन-की-आन में फैल गया। स्थान-स्थान पर यह चर्चा होने लगी कि एक परमहंस आये हैं जो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं और कहते हैं कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है। इस समाचार को सुनकर अनेक जन कौतूहलवश उनके दर्शनों को आने लगे।

नरेश का आतिथ्य—रामनगर नरेश महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह साधु, संन्यासी, परमहंसों में अत्यन्त भक्ति रखते थे। उन्होंने महाराज के आहारादि के लिए आठ आने प्रतिदिन नियत कर दिया और एक बहुमूल्य पश्मीने का अलवान उनकी सेवा में भेजा, परन्तु उन्होंने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। महाराज ने अपने पण्डित भी उनके पास भेजे। उन पण्डितों से भी उन्होंने मूर्त्तिपूजा पर वाद आरम्भ कर दिया और उसका खण्डन करने लगे। इसे सुनकर महाराजा अप्रसन्न हुए और अपने पण्डितों से कहा कि दयानन्द से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना चाहिए। रामनगर-नरेश पार्थिवपूजा किया करते थे और अपने हाथ से पार्थिव-लिङ्ग बनाया करते थे।‡

---

§ यह कथा पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित में लिखी है जो पण्डित मोतीराम ने पण्डित ज्योतिःस्वरूप उदासी से सुनी थी। नोट में यह भी कहा गया है कि पण्डित बलदेवप्रसाद शुक्ल फ़र्रुखाबाद निवासी ने भी कही थी, परन्तु न पण्डित लेखराम ने ही, न देवेन्द्रबाबू ने ही पण्डित ज्योतिःस्वरूप से इस विषय में कुछ पूछा। —**संग्रहकर्त्ता**

‡ स्वामीजी और महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह का रामनगर में साक्षात् नहीं हुआ था। बलदेवप्रसाद शुक्ल जो उस समय स्वामीजी के साथ थे, कहते हैं कि एक दिन महाराजा ने स्वामीजी को बुलाने के लिए एक चौबे को भेजा था, परन्तु स्वामीजी ने कहला भेजा कि यदि महाराजा की इच्छा हो तो स्वयं हमारे पास चले आवें, हम तो उनके पास जाएँगे नहीं। कई बार महाराजा ने उन्हें बुलाया, परन्तु वे न गये। चौबे ने महाराजा से जाकर कह दिया कि दोनों मस्त हैं, आप राजा हैं और वह साधु। आपका और उनका मेल न होगा। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक बार महाराजा ने यह उद्योग भी किया कि किसी तरह स्वामीजी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने एक विश्वस्त पुरुष को स्वामीजी की सेवा में भेजकर उन्हें यह प्रलोभन दिया कि यदि वे मूर्त्तिपूजा का प्रतिवाद करना छोड़ दें तो उन्हें राज्य से १००) मासिक की वृत्ति मिल जाया करेगी। स्वामीजी ने उत्तर में कह दिया कि यदि महाराजा अपना सारा राज्य भी मुझे देदें तो भी मैं मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं छोड़ूँगा। ये ही कारण महाराजा के स्वामीजी से अप्रसन्न हो जाने के थे और उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराकर उन्हें परास्त कराया जाए। स्वामीजी से विरोध होने पर भी वे यह नहीं चाहते थे कि रामनगर में रहते हुए कोई स्वामीजी के साथ दुर्व्यवहार करे। एक दिन ५०-६० वैरागी इकट्ठे होकर महाराज के पास गये और उन्होंने महाराज को कुवाक्य कहे। जब महाराजा ने यह बात सुनी तो उन्होंने वैरागियों की भर्त्सना की कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ चाहे जो करे, परन्तु यदि कोई उन्हें गाली-गुफ़्ता देगा वह हमें देगा, क्योंकि स्वामीजी हमारे यहाँ आये हैं।

दयानन्द जो कहते है ठीक ही है—एक दिन रामनगर-निवासी बाबू अविनाशीलाल खत्री महरोत्रा, मुंशी हरवंशलाल§ और ज्योतिःस्वरूप उदासी, महाराज के दर्शनों को गये। महाराज एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए कुछ पण्डितों से उसी सर्वव्यापी विषय मूर्त्तिपूजा पर वार्त्तालाप कर रहे थे। यह वार्त्तालाप दो घण्टे तक होता रहा और महाराज अनेक युक्ति-प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा को अवैध सिद्ध करते रहे। बाबू अविनाशीलाल ने पण्डित ज्योतिःस्वरूप से कहा कि आप भी कुछ कहें। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या कहूँ, जो कुछ परमहंसजी कह रहे हैं, ठीक ही है।

वास्तव में बात यह थी कि स्वामीजी के मूर्त्तिपूजा का प्रतिवाद करने से पहले भी अनेक विद्वान् मूर्त्तिपूजा को अवैध समझते थे, परन्तु प्रकटरूप से उसका प्रतिवाद करने का साहस न कर सकते थे। जब स्वामीजी ने यह कार्य आरम्भ किया, तो दूसरे विद्वानों को भी उसे अवैध कहने का साहस हो गया और वह सर्वसाधारण में नहीं तो निज में तो स्वामीजी के कथन का समर्थन करने ही लगे।

वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है—इसी समय की रामनगर की ही एक और घटना है कि एक दिन महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह स्वामी निरञ्जनानन्दजी के पास गये और उनसे पूछा कि वेद में मूर्त्तिपूजा वा रामलीला का विधान है वा नहीं, दयानन्द कहते हैं कि नहीं है। स्वामी निरञ्जनानन्द ने स्पष्ट कह दिया कि वेद में तो कहीं नहीं है, परन्तु लोकरीति चली आई है, करते चले जाओ। पिछले वाक्य हमारी सम्मति में उन्होंने महाराजा का मन रखने के लिए ही कहे होंगे।

(२२, २३ अक्टूबर-नवम्बर) काशी (कार्तिक २, ३ मार्गशीर्ष)

रामनगर में लगभग एक मास रहकर महाराज कार्तिक कृष्णा २ वा ३ संवत् १६२६ को (२२ वा २३ अक्तूबर सन् १६६६ को) काशी पधारे और पहले गोसाईंजी के बाग़ में रहे, फिर अमेठी के राजा के आनन्दबाग़ में, जो दुर्गाकुण्ड पर है, चले गये।

काशी महत्त्व—काशी हिन्दुओं में विशेष मान की दृष्टि से देखी जाती है। काशी सुख-राशि कहलाती है, पृथिवी-तल पर स्वर्णसमान समझी जाती है। काशी में मरना सीधा वैकुण्ठ वा शिवलोक को चला जाना

---

§ अविनाशीलाल ने स्वामीजीकृत पञ्चमहायज्ञविधि के दो संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किये थे। देखो हमारा ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ ५०। हरवंशलाल ने स्वामीजी की आज्ञा से योगदर्शन व्यासभाष्य छपवाया था, देखो ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास परिशिष्ट ८२। सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण भी इन्हीं के स्टार प्रेस काशी में छपा था। अविनाशीलाल, हरवंशलाल और ज्योतिःस्वरूप तीनों काशी के रहनेवाले थे। —**यु० मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, काशी पुनीततम स्थान है, पौराणिक धर्म का केन्द्र और दुर्ग है, संस्कृतविद्या की खानि है, काशी का एक-एक कंकर शङ्कर के समान समझा जाता है। काशी शिवजी के त्रिशूल पर स्थित मानी जाती है और स्वयं त्रिशूलधारी शिव अपने अगणित गणोंसहित उसकी रक्षा करते हैं। काशी की रक्षा के लिए सहस्रशः दिग्गज पण्डित अपनी अगाध विद्या और असीम पण्डित्य से अहर्निश सन्नद्ध रहते हैं। काशी-नरेश अपने धन और बल के साथ उसकी रक्षा के लिए उद्यत हैं। इस प्रकार से सुरक्षित, दैविक और मानुषिक छत्र-छाया में पालित उसी काशी में आज दयानन्द पदार्पण करते हैं। दयानन्द एकाकी हैं, उनके पास न धनबल है, न जनबल। केवल एक लँगोटी बाँधे हुए वृषभवाहन भगवान् शङ्कर और उनके भैरवादि विकट और विकराल अनुचरों की परवाह न करते हुए, सहस्रों पण्डितों की विद्या और काशी-नरेश के वैभव और ऐश्वर्य को तुच्छ समझता हुआ दयानन्द आज उसी मूर्त्तिपूजा के दृढ़तम दुर्ग पर आक्रमण करता है। कैसा अपूर्व साहस है, कैसा अतुल शौर्य, कैसा अनुपम वीर्य और कैसा अद्वितीय धैर्य है !

दयानन्दजनित आन्दोलन—दयानन्द के आगमन का समाचार विद्युत् के वेग से सारे नगर में दौड़ जाता है। पण्डित-मण्डली दयानन्द के साहस को दुःसाहस समझती है और उसपर आश्चर्य करती है। कोई दयानन्द की मूर्खता पर हँसता है। नगर के गुण्डे और लफंगे उन्हें अपनी दुष्टता से दबा देने का विचार करते हैं। पण्डितों में जो समझदार हैं, वे यद्यपि प्रकटरूप से कुछ नहीं कहते, परन्तु अपने पक्ष की निर्बलता को जानते हुए मन में सहम जाते हैं। इस प्रकार सारा नगर आन्दोलित, उत्तेजित, चकित, चमकित और आतङ्कित हो उठा है।

काशी के सैकड़ों मनुष्य प्रतिदिन उनके दर्शन करने और उनका शास्त्रालाप सुनने आते हैं। कई सन्तुष्ट और कई असन्तुष्ट होकर जाते हैं। उनके स्थान पर मेला-सा लगा रहता है। मूर्त्तिपूजा के गढ़ काशी में आकर दयानन्द आस्फालन-पूर्वक, वेद के आधार पर मूर्त्तिपूजा का खण्डन करें यह अश्रुतपूर्व और अभूतपूर्व बात थी। इसीलिए लोगों के मन में असाधारण कुतूहल उत्पन्न हो गया था।

काशी की निद्रा भङ्ग हुई—काशी के पण्डितों की सुख-निद्रा भङ्ग हो गई थी। उन्हें यही विस्मय हो रहा था कि यह अनहुई और अनहोनी हुई कैसे ? अपनी विद्या और शास्त्रज्ञता के गर्व में वे यह सम्भव ही नहीं समझते थे कि कोई हिन्दू काशी जैसे स्थान में मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस भी कर सकता है, परन्तु जब यह असम्भावित घटना घटी तो विस्मय से अवाक् रह गये। पहला विचार जो उनके मन में उठा वह दयानन्द को तुच्छ समझने का था, जिसकी ओर उन्हें दृष्टिपात करने की भी आवश्यकता न थी, परन्तु जब उन्होंने देखा कि दयानन्द का सिंहगर्जन काशी के कोने-कोने को निनादित किये ही चला जाता है तो उनके मन में भय का भाव उत्पन्न हुआ। जो दशा एक अकिञ्चिनकर मनुष्य को अपने सामने विरोध करने के लिए खड़ा हुआ देखकर एक सर्वदमनकारी शक्तिशाली पुरुष की होती है, वही दशा काशी के पण्डितों की हुई।

स्वामीजी के उपदेशों का यह प्रभाव था कि जो लोग दुर्गा के दर्शन को जाते थे वे उनका उपदेश सुनने के लिए रुक जाते थे और उपदेश सुनने के पश्चात् मूर्त्तिपूजा में इतनी अश्रद्धा हो जाती थी कि दुर्गा के दर्शन किये बिना ही अपने घरों को लौट जाते थे। दुर्गामन्दिर की आय में इतनी कमी हो गई थी कि पुजारियों ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि कृपा करके अब किसी दूसरी जगह पधारें।

विद्याबल की जाँच—सबसे प्रथम उन्होंने दयानन्द के विद्याबल की जाँच करने का प्रयत्न किया। उन्होंने विद्यार्थियों को स्वामीजी के पास जाकर शास्त्रचर्चा करने और शङ्का-समाधान के लिए भेजा। फिर स्वयं भी प्रच्छन्न रूप से सभा में आये। जो पण्डित इस प्रकार दयानन्द की जाँच के लिए आते थे, उनके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम निम्नलिखित हैं—

राम शास्त्री, दामोदर शास्त्री, बाल शास्त्री और सम्भवतः राजाराम शास्त्री भी।

पण्डितों ने देखा कि दयानन्द कोई साधारण कोटि का विद्वान् नहीं है। उसकी विद्या, उसकी प्रतिभा, उसकी तर्कशक्ति सभी आलौकिक हैं, दूसरे, दयानन्द जो बात कहता है, वेद के आधार पर कहता है और वेद में काशी के पण्डितों की गति नहीं थी, अतः वे दयानन्द के सम्मुख आने से घबराते थे।

नरेश से मूर्त्तिपूजा पर प्रहार न देखा गया—दिन के पश्चात् दिन और सप्ताह के पश्चात् सप्ताह बीतता गया और दयानन्द विशुद्ध संस्कृत में मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता रहा। यह दृश्य काशी-नरेश से देखा न गया। उन्होंने पण्डित लोगों को बुलाकर कहा—हम तो शास्त्रज्ञ हैं नहीं, आप लोगों को जो जनता का लाखों रुपया मूर्त्तिपूजा पर व्यय कराते हैं, मूर्त्तिपूजा का प्रमाण देना चाहिए। पण्डितों ने उत्तर दिया कि दयानन्द कुछ विशेष तो जानता नहीं है, कुछ व्याकरण जानता है और वह तो क्रिस्टान है और सरकार का गुप्तचर है। काशी-नरेश ने कहा—नहीं, जब वह काशी के बीच में खड़ा होकर इस प्रकार की बातें कहता है तो वह उपेक्षणीय नहीं हो सकता, आप लोग उससे शास्त्रार्थ करें।

पण्डितजन सिटपिटाये—नरेश का आदेश पाकर पण्डितजन कुछ सिटपिटाये और उन्होंने नरेश से कहा कि यद्यपि हमने वेद नहीं देखे हैं, परन्तु अन्य शास्त्र देखे हैं, हमें तैयारी और खोज के लिए कुछ समय मिलना चाहिए। नरेश ने पण्डितों की यह प्रार्थना स्वीकार की और शास्त्रार्थ की तैयारी होने लगी।

इधर महाराज यथापूर्व अपने कार्य में रत रहे, उन्हें न कोई खोज करनी थी, न कोई तैयारी करनी थी।

वेदान्त पर १४ दिन तक विचार—पण्डित ज्योतिःस्वरूप उदासी से स्वामीजी का नवीनवेदान्त पर १४ दिन तक विचार होता रहा और अन्त में उन्होंने स्वामीजी की सब बातें स्वीकार कर लीं।

पण्डित शिरोमणि को शास्त्रार्थ का आह्वान—एक दिन महाराज ने पण्डित राजाराम शास्त्री को, जो काशी के पण्डितों में शिरोमणि समझे जाते थे, शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया और निम्नलिखित प्रश्न लिखकर उनके पास भेजा।

येनोच्चरितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणप्रत्ययो भवति स शब्दः, अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः, अथवा श्रोत्रोपलब्धिबुद्धिनिर्ग्राह्य आकाशदेशः स शब्दः, अस्योदाहरण-प्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं कुर्यात्।§

शास्त्रार्थ में मध्य में छुरी रख लो—पण्डित राजाराम ने इस प्रश्न को देखा और कहा कि मध्य में छुरी रख लो यदि हम इसका उदाहरण-प्रत्युदाहरण कर देंगे तो नासिका छेदन कर लेंगे। इस उत्तर को सुनकर स्वामीजी ने कहा कि एक नहीं दो छुरी रखनी चाहिएँ, शास्त्र की जगह शस्त्र ही सही। पण्डित राजाराम ने स्वामीजी का उत्तर सुनकर कहा कि दयानन्द काशी में आ गया है, चिन्ता क्या है, देखा जाएगा।

विद्याबल की परीक्षा—पण्डित राजाराम कहने को तो इतना कह गये, परन्तु उन्हें यह चिन्ता हुई कि ऐसा न हो किं कहीं सचमुच ही दयानन्द से शास्त्रार्थ छिड़ जाए और विद्या में हम उसके पल्ले के न निकलें और हमें नीचा देखना पड़े, अतः उन्होंने अपने एक शिष्य पण्डित शालिग्राम को, जो पीछे आकर गवर्नमेंट कॉलेज, अजमेर में संस्कृत के प्रोफेसर नियत हुए,‡ स्वामीजी के पास भेजा कि देखकर आओ कि दयानन्द की विद्या कैसी है, पण्डित शालिग्राम ने दयानन्द के पास जाकर पूछा कि नस्य लेना कहाँ लिखा है। स्वामीजी

---

§ ये वचन अथ शब्दानुशासनम् और अईउण् सूत्र के महाभाष्य में हैं। —**यु० मी०**

‡ अजमेर निवासकाल में इनका स्वामीजी से पत्र-व्यवहार भी हुआ था। देखो महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्दजी) द्वारा प्रकाशित ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने झट मनु का श्लोक पढ़कर उत्तर दिया कि रोगनिवृत्यर्थ है, कुछ व्यसन नहीं है। पण्डित शालिग्राम ने जाकर अपने गुरु से कह दिया कि दयानन्द पण्डित तो तगड़ा है, परन्तु नास्तिक है।

शास्त्रार्थ की तैयारी—काशी के पण्डित कई प्रकार से शास्त्रार्थ की तैयारी करने लगे। एक वर्ग तो अपने को शास्त्रालोचन और प्रमाण-संग्रह से सुसज्जित करने लगा और दूसरा दयानन्द के विरुद्ध जनता में भ्रमजाल फैलाने लगा कि दयानन्द सरकार का गुप्तचर है और मूर्त्तिपूजा के खण्डन से उसका अभिप्राय लोगों को क्रिस्टान बनाना है। नगर का गुण्डावर्ग इस प्रयत्न में लगा कि दयानन्द को अपमानित करने में कोई कसर न की जाए। निदान यह मनसूबा पक्का कर लिया गया कि येन केन प्रकारेण दयानन्द को पराभूत और परास्त किया जाए, विद्या से हो वा छल से वा बल से।

हाँ, मैं शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ—शास्त्रार्थ की तिथि नियत होने से पहले पण्डित बालशास्त्री आदि ने अपने विद्यार्थियों को स्वामीजी के पास भेजा। उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि चाहते हैं। इसपर उन्होंने प्रश्न किया कि आप किन ग्रन्थों का प्रमाण स्वीकार करते हैं ? उस समय स्वामीजी के पास मुंशी हरवंशलाल छापेखानेवाले बैठे थे, उन्होंने स्वामीजी से संकेत से कह दिया कि ये पण्डितों के विद्यार्थी हैं, आप इनसे कुछ न कहें। जब उनके गुरु आवेंगे तब सब बातों का निर्णय हो जाएगा। स्वामीजी ने उनसे कह दिया कि अभी नहीं बतलाएँगे। विद्यार्थियों ने यही बात अपने गुरुओं से कह दी और उन्होंने काशीनरेश से कहला भेजा कि जब तक ग्रन्थ-प्रामाण्य का निर्णय न हो जाएगा हम लोग शास्त्रार्थ न करेंगे। दो-तीन दिन के पश्चात् बाबू रघुनाथप्रसाद कोतवाल के बीच में पड़ने पर स्वामीजी ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थों के नाम लिखा देना स्वीकार कर लिया। फिर वही विद्यार्थी दुबारा महाराज के पास आये तो उन्होंने लिखा दिया कि हम चार वेद, चार उपवेद, छह अङ्ग, छह उपाङ्ग और प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़कर मनुस्मृति का प्रमाण स्वीकार करते हैं और उस पत्र पर अपने हस्ताक्षर कर दिये।

शास्त्रार्थ का विज्ञापन—इसके कुछ दिन पश्चात् शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया गया। शास्त्रार्थ का समाचार साहब कलक्टर को भी मिल गया था। उन्होंने काशी-नरेश को यह सूचना दे दी थी कि शास्त्रार्थ-दिवस रविवार हो तो अच्छा है, ताकि हम भी उपस्थि हो सकें, परन्तु महाराजा ने यह सोचकर कि यदि कलक्टर साहब आ गये तो कोई गड़बड़ न हो सकेगी, रविवार का दिन न रक्खा।

शास्त्रार्थ की तिथि नियत हो गई। दिन था मङ्गलवार, तिथि थी कार्त्तिक शुक्ला १२ संवत् १९२६, तारीख थी १६ नवम्बर सन् १८६९।

सारी काशी में तुमुल आन्दोलन उपस्थित हो गया। आबालवृद्ध, पण्डित और मूर्ख बड़ी उत्सुकता और उत्कण्ठा से उस तिथि की प्रतीक्षा करने लगे।

पहले मुझसे शास्त्रार्थ करो—एक दिन पण्डित ज्योतिःस्वरूप उदासी महाराजा काशी की सभा में गये और राजसभा के पण्डितों से कहा कि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने से पहले मुझसे शास्त्रार्थ कर लो। पण्डितवर्ग उनके पाण्डित्य से परिचित था, वह उनसे शास्त्रार्थ कैसे करता, उन्होंने शास्त्रार्थ करने से आनाकानी की।

दयानन्द को परास्त करने का निश्चय—महाराजा काशी ने शास्त्रार्थ के लिए विशेष उद्योग किया था। पण्डितों से उसके लिए सविशेष और साग्रह अनुरोध किया था। यह पहले ही स्थिर हो गया था कि शास्त्रार्थ में जैसे बने वैसे दयानन्द को परास्त करना चाहिए। महाराजा दयानन्द के प्रकाण्ड पाण्डित्य, कुशाग्रबुद्धि और अदम्य शक्ति से परिचित हो चुके थे। इसी से उन्हें बड़ी चिन्ता थी। उन्होंने कहा था कि यदि दयानन्द मूर्त्तिपूजा का प्रतिवाद न करते तो हम उन्हें गुरु मानते और उनपर छत्र चढ़ाते। महाराजा ने पण्डितों के घर पर शास्त्रार्थ से पहली रात्रि को तैल भिजवा दिया था कि वे रात्रि में जागकर शास्त्रालोचन और विचार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करके शास्त्रार्थ-भूमि में सुसज्जित होकर आएँ।

सत्योपदेष्टा को भय कहाँ—अन्त को शास्त्रार्थ का दिन आया। बलदेवप्रसाद ने स्वामीजी से कहा कि महाराज आज बहुत भीड़-भाड़ होगी। काशी गुण्डों का नगर है, यदि फ़र्रुखाबाद होता तो दस-बीस मनुष्य आपकी ओर भी होते। स्वामीजी यह बात सुनकर हँसे और बोले कि योगियों का निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार की सेना पर अकेला ही विजय पाता है। **जो पक्षपातरहित होकर ईश्वराज्ञानुकूल सत्य का उपदेश करता है, उसे भय कहाँ ?** सत्पुरुष डरकर सत्य को नहीं छिपाते। जान जाए तो जाए, परन्तु ईश्वर की आज्ञा जो सत्य है वह न जाए। हे बलदेव ! क्या चिन्ता है, एक मैं हूँ, एक ईश्वर है; एक धर्म है और कौन है, यदि उन लोगों को आना होगा तो उनकी देखी जाएगी। जाओ, एक नापित को बुला लाओ। ओह ! कितना दृढ़ ईश्वर-विश्वास, कितनी अटल सत्य-निष्ठा थी ! पाठक क्या आपने आधुनिक काल में इसका उदाहरण अन्यत्र भी देखा है ?

बलदेवप्रसाद नापित को बुला लाये। महाराज ने क्षौर कराया, स्नान किया, अपने सुन्दर शरीर पर सुन्दर मृतिका लगाई, पद्मासनस्थ होकर थोड़ी देर परमेश्वर का ध्यान किया और फिर भोजन किया।

पण्डित चिन्तित दयानन्द निश्चिंत—दयानन्द के विपक्षी अनेक थे, उनके साथ राजबल था, धनबल था, जनबल था, परन्तु फिर भी चिन्ता और आशङ्का से संकुचित और कम्पायमान थे, उनके चेहरे उदास थे। दयानन्द अकेला था, उसकी पीठ पर न कोई राजा था, न कोई धनाढ्य पुरुष था। एक लँगोटी के अतिरिक्त उसके पास कोई संबल भी न था, परन्तु एक वस्तु थी जो उसके विपक्षियों के पास न थी। वह था ईश्वर पर विश्वास, सत्य पर श्रद्धा, जिसके होते हुए वह निःसहाय होता हुआ भी साहस और धैर्ययुक्त था, भय उसके पास नहीं फटक सकता था, चिन्ता और आशङ्का उसे मुख न दिखा सकती थी।

प्रशान्तसागर में क्षोभ—हाँ तो शास्त्रार्थ का दिन आया। उस दिन काशी—प्रशान्त-काशी क्षुब्ध समुद्र के समान तरङ्गाकुल हो उठी। शास्त्रार्थ के समय से बहुत पहले से आनन्दबाग़ की ओर जनस्रोत बहना आरम्भ हो गया और थोड़ी देर में ही शास्त्रार्थ-भूमि लोकारण्य बन गई। सहस्रों दर्शक वहाँ इकट्ठे हो गये। कहते हैं कि ५० सहस्र से कम जन-संख्या न होगी। रघुनाथप्रसाद भोजपुर थाने के थानेदार वहाँ आये और उन्होंने शान्ति-रक्षा के लिए पुलिस का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

प्रबन्ध यह था कि दालान की खिड़की में तो स्वामीजी को बिठाया और उनके सामने एक आसन मूर्त्तिपूजा-समर्थक पण्डित के लिए और तीसरा आसन काशी-नरेश के लिए और अन्य पण्डितों के लिए उसके पास ही बैठने का प्रबन्ध कर दिया।

पण्डितों की समारोह यात्रा—काशी-नरेश ने दयानन्द पर विशेष आतङ्क बिठाने के लिए पण्डितों के लिए तामझामों का प्रबन्ध कर दिया था। शास्त्रार्थ में भाग लेनेवाले पण्डित तामझामों पर चढ़कर चँवर डुलवाते हुए, जय बुलवाते हुए बड़े समारोह से शास्त्रार्थ-भूमि में आये, परन्तु दयानन्द पर इस तमाशे का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। पण्डित लोग यथास्थान बैठ गये। इसके पश्चात् काशी-नरेश पधारे। तब सब पण्डितों ने उठकर राजा को आशीर्वाद दिया और कोतवाल साहब के स्थिर किये हुए नियम के विरुद्ध स्वामीजी को घेर कर बैठ गये और सारा प्रबन्ध गड़बड़ कर दिया।

दयानन्द के पक्षवालों को सभा में नहीं जाने दिया—स्वामीजी के पक्ष में कुछ परमहंस थे, जो यद्यपि साक्षाद्रूप से मूर्तिपूजा का खण्डन करने को तो उद्यत न थे, परन्तु अन्य प्रकार से उनके सहायक थे। उनमें से मुख्य पं० ज्योतिःस्वरूप उदासी थे। इन्हें विपक्षियों और उनके सहायकों ने बाग़ के भीतर न घुसने दिया। तब इन लोगों ने एक चिट्ठी लिखकर स्वामीजी के पास पहुँचाई कि हमें बाग़ के अन्दर नहीं घुसने दिया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाता। इसपर स्वामीजी ने कोतवाल साहब से कहा कि क्या कारण है जो इन परमहंसों को भीतर नहीं आने दिया जाता ? तत्पश्चात् कोतवाल साहब ने अपना आदमी भेजकर इन लोगों को भीतर बुलवा लिया। स्वामीजी ने सत्कारपूर्वक पण्डित ज्योतिःस्वरूप को अपने पास बिठलाया और अन्यों को अपने सामने बिठाया।

सिंह और व्याघ्र सम्मिलन न होने दो—यह बात पण्डितों को बहुत अखरी। उन्होंने काशी-नरेश को संकेत किया कि प्रथम तो अकेले दयानन्द को ही जीतना कठिन है और जब पं० ज्योतिःस्वरूप उनके साथ मिल जाएँगे तो एक और एक ग्यारह हो जाएँगे, सिंह और व्याघ्र का सम्मिलन हो जाएगा, फिर शास्त्रार्थ में विजय-लाभ सर्वथा दूभर हो जाएगा। महाराजा ने यह संकेत पाते ही साधुओं के आगे पण्डितों को बिठा दिया और पं० ज्योतिःस्वरूप का हाथ पकड़कर स्वामीजी के पास से उठा दिया।

नरेश को प्रबन्ध भङ्ग करने का उपालम्भ—रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने महाराजा से कहा कि राजन्! बड़ा अनर्थ हो रहा कि अकेले स्वामीजी को इतने पण्डितों ने घेर लिया और जो व्यवस्था मैंने की थी वह आपने नहीं रहने दी, मैं आपसे कुछ नहीं कह सकता, परन्तु यह बात सरकारी आज्ञा के विरुद्ध है, परन्तु राजा ने उसपर कर्णपात न किया और इसी अव्यवस्था में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। शास्त्रार्थ में दो अंग्रेज पादरी भी उपस्थित थे। काशी के २७ प्रसिद्ध पण्डितों ने शास्त्रार्थ में योग दिया था। इन २७ पण्डितों में पं० बालशास्त्री भी थे।

मैं अकेला २७ के लिए पर्याप्त हूँ—एक दिन साधु जवाहरदास ने स्वामीजी से पूछा था कि काशी के पण्डित बड़े विद्वान् हैं और शास्त्र के ज्ञाता हैं, आप इन सबको शास्त्रार्थ में कैसे जीतेंगे ? यदि आपने एक को जीत भी लिया तो सबको आप कैसे जीत सकेंगे ? इसपर स्वामीजी ने उत्तर दिया था कि पण्डितों में एक शास्त्री हैं, जो दाक्षिणात्य है, उसे वेद का कुछ अभ्यास है, वह हमसे कुछ समय तक बातचीत कर सकेगा, शेष इतनी योग्यतावाला कोई नहीं है और जो हैं वे काक-भाषा (नवीन न्याय और शुष्क व्याकरण) में कुशल हैं, वेद-विद्या में कुशल नहीं हैं।

बालशास्त्री की शास्त्रार्थ में आने की अनिच्छा—कहते हैं कि बालशास्त्री शास्त्रार्थ में जाने पर सम्मत नहीं थे, उन्हें एक चाल से ले-जाया गया था। उनसे कहा गया था कि पं० सखाराम भट्ट भी शास्त्रार्थ में जाएँगे, आप भी पधारिए। पं० सखाराम भट्ट महाराष्ट्री थे और काशी के पञ्च-द्राविड़ पण्डितों के शिरोमणि थे। उपर्युक्त बात को सुनकर पं० बालशास्त्री ने सोचा कि जब सखाराम भट्ट भी शास्त्रार्थ में जाएँगे तो हमारे जाने में ही क्या हानि है, इसीलिए वे चले गये।

पं० सखाराम भट्ट शास्त्रार्थ में क्यों नहीं गये—परन्तु पं० सखाराम के शास्त्रार्थ में जाने की बात मिथ्या थी। वे शास्त्रार्थ में नहीं गये थे और न उन्होंने वहाँ जाना स्वीकार किया था। उनके न जाने का कारण भी था। काशी के पण्डितों की यह बान है कि शास्त्रार्थ का विषय कुछ भी हो, वैदिक हो वा स्मार्त, वे सबसे पहले व्याकरण का विचार खड़ा कर देते हैं और शुद्धाशुद्ध के विवाद में ही सारा समय नष्ट कर देते हैं। पं० सखाराम भट्ट इस बात को जानते थे और यह भी जानते थे कि दयानन्द को व्याकरण में पराभूत करना सम्भव नहीं है, क्योंकि दयानन्द दण्डी विरजानन्द जैसे व्याकरण-केसरी के शिष्य हैं। पं० सखाराम को दण्डीजी की व्याकरण-विदग्धता का स्वयं परिचय था। वे एक बार मथुरा गये थे और विरजानन्द की पाठशाला में उपस्थित हुए थे। विरजानन्द से किसी ने पहले ही कह दिया था कि काशी के पं० सखाराम पाठशाला देखने आये हैं, परन्तु पूछने पर उन्होंने अपने को काशी का एक ब्राह्मण ही बताया था और कहा था कि कौमुदी से कुछ अभिज्ञ हूँ। दण्डीजी यह सुनकर कि काशी के एक पण्डित उनके पाण्डित्य की परीक्षा लेने आये हैं ग्रीवा उत्तोलन करके बैठ गये। पं० सखाराम ने कई दिन तक दण्डीजी का पढ़ाना सुना। एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन विशेषरूप से दण्डीजी के व्याकरण-ज्ञान की परीक्षा करने के अभिप्राय से उन्होंने दण्डीजी से महाभाष्य के एक अतिदुरूह-स्थल के विषय में शङ्का की। दण्डीजी ने उनकी शङ्का का ऐसी रीति से समाधान किया कि वह स्थल जल के समान सुगम हो गया। पं० सखाराम ने मन-ही-मन उनकी प्रशंसा की और उन्हें विश्वास हो गया कि दण्डीजी व्याकरण में अद्वितीय हैं। ऐसी अवस्था में उनका कैसे साहस हो सकता था जो दण्डीजी के शिष्य दयानन्द से व्याकरण में टक्कर लेते ? दूसरा कारण यह भी था कि जिस प्रकार न्याय में बङ्गालियों का और व्याकरण में मैथिलों का विशेषत्व है उसी प्रकार वेदविषय में पञ्च द्राविड़ों का विशेषत्व है। पण्डित सखाराम स्वयं वैदिक विषय में व्युत्पन्न थे। वे जानते थे कि दयानन्द जो कुछ कहते हैं, वह वेदानुकूल है, फिर वह उसका खण्डन करने किस प्रकार जा सकते थे ? इन्हीं कारणों से उन्होंने शास्त्रार्थ में जाने से इन्कार कर दिया था। इन्होंने ये सब हेतु दर्शाकर अन्य पण्डितों से भी कह दिया था कि शास्त्रार्थ में दयानन्द को परास्त करने की कोई सम्भावना नहीं है। इतना ही नहीं, उन्होंने पण्डितों को भी शास्त्रार्थ में जाने से निषेध किया था।

काशी-शास्त्रार्थ—प्रथम काशी-नरेश ने अपनी सभा के पण्डित ताराचरण तर्करत्न की पीठ पर हाथ रखकर उन्हें आगे बिठाया और उनमें और दयानन्द में प्रश्नोत्तर आरम्भ हुए।

दयानन्द—आप वेद का प्रमाण स्वीकार करते हैं ?

ताराचरण—हाँ।

दयानन्द—यदि वेद में मूर्त्तिपूजा का कोई प्रमाण हो तो कहिए।

ताराचरण—क्या वेद में यह भी लिखा है कि जो कुछ वेद में लिखा है उसके अतिरिक्त और किसी का प्रमाण न मानना चाहिए ? दयानन्द ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया और अपने प्रश्न को ही दोहराया। पं० ताराचरण वेद का कोई प्रमाण न दे सके। तब बाबू प्रमदादास मित्र ने महाराजा से कहा कि राजसभा के पण्डित को हटाकर किसी दूसरे विषय का अवतरण होना चाहिए। तब स्वामी विशुद्धानन्दजी उठे। इतने में ही एक वृद्ध पण्डित आवेश में आकर कहने लगा कि यह तो नास्तिक है, इसकी बात सुनने योग्य नहीं है। स्वामीजी ने शान्तिपूर्वक कहा कि आपके समान मुझमें तेज़ी नहीं है, इसलिए एक-एक को बोलना चाहिए। तब स्वामी विशुद्धानन्दजी आगे बढ़े और शारीरक सूत्रों में से एक सूत्र पढ़कर दयानन्द से बोले कि यह दिखलाइए कि यह सूत्र वेद-मूलक है।

दयानन्द ने सत्यता और सरलता से उत्तर दिया।

दयानन्द—जब तक समस्त वेद को न देख लिया जाए तब तक इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता और सब वेद-शास्त्र तो पण्डितों में से किसी को भी उपस्थित नहीं हैं।

विशुद्धानन्द—(आस्फालनपूर्वक) यदि सब वेद-शास्त्र तुम्हें उपस्थित नहीं थे तो काशी में शास्त्रार्थ करने क्यों आये थे ?

दयानन्द—क्या आपको सब-कुछ उपस्थित है ?

विशुद्धानन्द ने मौन धारण कर लिया, परन्तु बालशास्त्री ने कहा, हाँ उपस्थित हैं।

दयानन्द—धर्म के लक्षण कहिए।

बालशास्त्री ने अपना बनाया हुआ एक संस्कृत वाक्य पढ़ा !

दयानन्द—यह किसी शास्त्र का वचन नहीं है, यह आपका रचा हुआ है।

इसपर पण्डित शिवसहाय आगे बढ़े।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिव०—मुझे सब शास्त्र उपस्थित हैं (और मनु का यह श्लोक पढ़ा)—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षण् ॥ —मनु०

द०—(स्फूर्ति से) आप अधर्म के लक्षण कहिए ।

विशुद्धनन्द के समान यह पण्डित भी निरुत्तर होकर पीछे हट गया । इसके कुछ देर पश्चात् पं० माधवाचार्य ने कुछ पुराने पत्रे निकाले और कहा—

माध०—देखो! ये वेद के पत्रे हैं (और एक वाक्य पढ़कर बोले) इसमें प्रतिमा और मूर्त्ति शब्द मूर्त्ति के वाचक हैं ।

द०—इन शब्दों के ये अर्थ नहीं हैं ।

इसपर सब पण्डित चुप हो गये । तब माधवाचार्य बोले ।

माधव०—**'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि'**§ (तै० अ० २।६) इस वाक्य में 'पुराणानि' शब्द पुराणों के लिए आया है ।

द०—पुराण शब्द यहाँ विशेषण है, किसी पुस्तक विशेष का नाम नहीं है ।

माधवाचार्य तो चुप हो गये, परन्तु पं० वामनाचार्य ने दो पुराने पत्रे, जो बहुत ही अस्पष्ट लिखे हुए थे, निकालकर कहा कि ये वेद के पत्रे हैं , उनमें लिखा है **'यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणपाठं श्रुणुयात्'** इस वाक्य में पुराण शब्द विशेषण नहीं है ।

दयानन्द उन पत्रों को हाथ में लेकर देखने लगे । सन्ध्या के सात बज चुके थे, अँधेरा हो गया था, जो लालटेन थी वह भी बहुत धुँधली थी, पत्रों के अक्षर बहुत ही अस्पष्ट लिखे हुए थे । इस दशा में ही दयानन्द उन्हें पढ़ने का यत्न कर रहे थे । उन्हें पत्रे देखते अभी दो मिनिट भी न बीते थे कि विशुद्धानन्द ने कहा कि हमें देरी होती है और दयानन्द की पीठ पर हाथ रखकर बोले 'ओहो हार गये' । यह कहकर उन्होंने ताली बजाई, अन्य पण्डितों और

---

§ किसी-किसी का यह आक्षेप है कि शास्त्रार्थ के समय माधवाचार्य ने जो पुराने पत्र प्रस्तुत किये थे, उनमें आये हुए **'ब्राह्मणानीतिहासपुराणानि'** इस वाक्य के 'पुराण' शब्द को स्वामीजी का विशेषण बताना ठीक नहीं था । आक्षेप्ता कहते हैं कि प्राचीन साहित्य में 'पुराण' शब्द अनेक स्थलों में विशेष्य के रूप में व्यवहृत हुआ है । सायणाचार्य ने अपनी वेदभाष्य-भूमिका में लिखा है कि 'वेद के जिन अंशों में सृष्ट्यादि की कथा हैं, उनका नाम 'पुराण' है ।

यह आक्षेप ठीक नहीं है । पहली बात तो यह है कि जब स्वामीजी ने उक्त वाक्य में आये हुए पुराण शब्द को विशेषण बताया था और उदाहरण में छान्दोग्य उपनिषत् का वाक्य **'इतिहास-पुराणःपञ्चमो वेदानां वेदः'** (छान्दो० उप० ७।४) देकर पुराण शब्द को विशेषण के रूप में व्यवहृत होता दर्शाया था तो पण्डित लोग कुछ भी उत्तर न दे सके थे । यदि स्वामीजी का पक्ष निर्बल होता तो पण्डित लोग कभी भी उससे टलने न देते, अपितु उसकी निर्बलता प्रकट करके दयानन्द को खुले मैदान पराजित करके यश और कीर्ति लाभ करते और अन्याय और असद् व्यवहार का अवलम्बन करके अपने नाम को बट्टा न लगाते । दूसरे, यदि यह भी मान लिया जाए कि पुराण शब्द विशेष्य के रूप में प्रयुक्त होता है, तो भी आज तक किसी ने यह सिद्ध न किया कि माधवाचार्य के पत्रों में पुराण शब्द विशेष्य ही था, विशेषण नहीं था । यह भी नहीं बताया गया कि वे पत्रे किस ग्रन्थ के थे और उक्त वाक्य किस प्रकरण में आया था । तीसरे, यदि दुर्जनतोष न्याय से यह भी मान लिया जाए कि वे वेद के ही पत्रे थे और उनमें पुराण शब्द विशेष्य ही था, तो इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि पुराण शब्द से १८ पुराण ही अभिप्रेत थे ? यदि ऐसा कहा जाएगा तो वेद ही १८ पुराणों के पश्चात् रचे हुए ठहरेंगे जिसे स्वयं पौराणिक भी स्वीकार नहीं करते और न ही करेंगे । अन्तिम बात यह है कि सायणाचार्य ने स्वयं वेद के उस अंशविशेष को ही पुराण नाम दिया है, जिसमें सृष्ट्यादि विषय का वर्णन है, इससे मूर्तिपूजा कैसे सिद्ध हो गई ?

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराजा ने भी उनका साथ दिया और 'दयानन्दः पराजितः' कहते हुए सभा से उठ गये। फिर क्या था सारी सभा में कोलाहल मच गया। जनता ने पण्डितों का अनुकरण किया और सब खड़े हो गये। सारा सभा-मण्डप 'दयानन्द हार गया, दयानन्द हार गया' के शब्दों से निनादित हो उठा।

दयानन्द पर ढेले आदि की वर्षा और कोतवाल द्वारा उनकी रक्षा—उस समय कुछ गुण्डों ने दयानन्द के ऊपर ढेले, गोबर, मिट्टी फेंकी, परन्तु पं० रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने उन्हें खिड़की के भीतर करके किवाड़ बन्द किये और अपने काँस्टेबिलों से उपद्रवी गुण्डों को पिटवाकर भगा दिया। यदि वे महाराज की रक्षा न करते तो इसमें सन्देह नहीं कि महाराज क्षत-विक्षत हुए बिना न रहते।

कोतवाल की निष्पक्षता—समस्त भारतवासी ही नहीं वरन् संसार के सब मनुष्य सदा के लिए इस कर्तव्यनिष्ठ, न्यायशील कोतवाल के आभारी रहेंगे। वह मूर्त्तिपूजक था, परन्तु उसने एक क्षण के लिए भी पक्षपात नहीं किया और वह अणुमात्र भी अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख नहीं हुआ।

जब महाराजा ने उसकी व्यवस्था और प्रबन्ध में गड़बड़ की, उस समय भी वह उनके कार्य की निन्दा करने से न चूका। ऐसे कर्तव्यपरायण, न्यायप्रिय व्यक्ति को शतशः सहस्रशः धन्यवाद हैं। जब स्वामीजी ने प्रथमबार पण्डितों के विद्यार्थियों को अपने प्रामाण्य ग्रन्थों की सूची देने से इन्कार किया था और केवल इसी कारण पण्डितों ने शास्त्रार्थ करने से अनिच्छा प्रकट कर दी थी, तब भी रघुनाथप्रसाद ने ही उनसे पुनर्वार सूची दिलवाई। यदि वह यत्न न करता तो शास्त्रार्थ ही न होता। यदि वह न होता तो शास्त्रार्थ में स्वामीजी सुरक्षित न रहते, अतः जब तक दयानन्द का नाम संसार में जीवित रहेगा तब तक रघुनाथप्रसाद कोतवाल का नाम भी गौरव और प्रतिष्ठा के साथ संसार में जीवित रहेगा। सत्य तो यह है उस दिन रघुनाथप्रसाद ने अपना कर्तव्य-पालन करके अमरत्व प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार वह महान् शास्त्रार्थ, जिसके लिए काशी ने अपना सारा विद्या-धन और वैभव-बल लगाया, जिसके लिए काशी के दिग्गज पण्डितों ने रातों जागकर तैयारी की थी और जिससे यह आशा थी कि मूर्त्तिपूजा के वेदविहित न होने का अन्तिम निर्णय हो जाएगा, इस उच्छृङ्खलता के साथ समाप्त हो गया और प्रकृत प्रश्न का अन्तिम निर्णय न हो सका।

नरेश का अन्याय—इस शास्त्रार्थ में जो असभ्योचित व्यवहार स्वामीजी के साथ किया गया, जो अन्याय किया गया, जिस हुल्लड़बाजी से काम लिया गया, वह यदि एक साधारण कोटि का मनुष्य भी करता तो निन्दनीय होता और जब वह एक राज्यसिंहासनस्थ व्यक्ति की ओर से हो, और उन लोगों की ओर से हो जो सारे भारतवर्ष के विद्वानों की नाक समझते जाते हैं, तो वह कितना गर्हित और ग्लानिजनक है, यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

दयानन्द पूर्ववत् शान्त—यह सब-कुछ हुआ और पण्डित लोग अपनी विजय-दुन्दुभि बजाते, काशी के मार्गों, उप-मार्गों, हाट-बाजारों को अपने विजयघोष से गुँजाते अपने-अपने घरों को सिधारे, परन्तु दयानन्द पर इस अन्याय का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। ने कुछ दुःखित अवश्य हुए, परन्तु इसलिए नहीं कि उनका पराजय हुआ था, क्योंकि पराजय तो हुआ ही न था, अपितु इसलिए कि काशी के पण्डितों ने उनके साथ न्याय का नहीं, प्रत्युत अन्याय का व्यवहार किया था। फिर भी उनके मुख-मण्डल की शोभा ज्यों-की-त्यों बनी थी, उनके मुख पर शोक की कोई रेखा न थी, विषाद का कोई चिह्न न था। उनका मनःसमुद्र शान्त था, उसमें कोई क्षोभ न था, कोई तरङ्गमाला न थी। दयानन्द किसी अवस्था में भी घबराने और औसान खानेवाले न थे। वे अपना मनःप्रसाद छोड़नेवाले न थे। उस समय भी जब उनके उपहास में तालियाँ पीटी जा रही थीं, वे शान्त और अक्षुण्ण थे। उस समय उन्होंने मुस्कराते हुए काशी-नरेश से हास्यभाव से कहा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, "राजन् ! तोप और नौबत के स्थान में आपका कर-ताली द्वारा सम्मान किया जा रहा है ।"

दयानन्द ने पं० जवाहरदास से इतना अवश्य कहा, 'बड़ी आशा थी कि इतने विद्वानों के एक होने पर शास्त्रार्थ न्यायपूर्वक होगा । शास्त्रार्थ तो कई दिन होने को था, एक ही दिन के लिए होने की बात नहीं थी । पण्डितों ने इस प्रकार का व्यवहार करके बहुत ही अन्याय किया है' ।

सन्ध्या समय वे अन्य दिनों की भाँति अम्लानवदन होकर अग्नि जलाकर तापने लगे ।

मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता—जिस समय गुण्डे महाराज पर ढेले फेंकने लगे तो पं० जवाहरदास उदासी ने उनसे सावधान रहने को कहा था । उन्होंने उत्तर दिया था कि आप इसकी कुछ चिन्ता न करें, मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता । शास्त्रार्थ के पश्चात् पं० बालशास्त्री आदि पण्डितों ने अपने हस्ताक्षर से एक विज्ञापन छपवाकर काशी में स्थान-स्थान पर लगवाया और बँटवाया कि शास्त्रार्थ में दयानन्द का पराजय हुआ। इसके उत्तर में दयानन्द ने अपना विज्ञापन निकाला और पण्डितों के विज्ञापन के पास ही हर स्थान पर लगवाया कि मैं परास्त नहीं हुआ हूँ और अब भी शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ ।

राजपण्डित दयानन्द के पक्ष में—पण्डित लोग अपने मन में जानते थे कि स्वामीजी का पक्ष सत्य और वेदमूलक है, परन्तु लोक-लज्जा और जीविका हानि के भय से प्रकटरूप में उसकी सत्यता और वेदमूलकता स्वीकार करने का साहस न कर सकते थे । राजपण्डित तारानाथ तर्करत्न ने एक प्रतिष्ठित बङ्गाली सज्जन बाबू चन्द्रशेखर से निज में स्पष्ट कह दिया था कि मैं भली-भाँति जानता हूँ कि यह पौराणिक प्रपञ्च ठीक नहीं है, दयानन्द जो कहते हैं वही ठीक है, परन्तु कौन जानता है कि राजा के मन में हमारी ओर से क्या भाव उत्पन्न हो जाएँ, यदि हम दयानन्द के पक्ष की सत्यता स्वीकार कर लें । इसलिए राजा की प्रसन्नता के लिए सब-कुछ करना पड़ता है और यही कहना पड़ता है कि मैं दयानन्द को शास्त्रार्थ में हरा दूँगा ।

पक्षपात—विपक्षी लोगों ने पत्रों में भी स्वामीजी के पराजित होने के समाचार प्रकाशित कराये । २२ नवम्बर सन् १८६६ के इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेज़ी दैनिक पायोनियर में एक व्यक्ति ने तो यहाँ तक लिख दिया कि "पण्डित माधवाचार्य और वामनाचार्य ने दयानन्द को दबा लिया और उन्हें अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी ।"

निष्पक्ष लोगों की सम्मति—परन्तु शास्त्रार्थ-सभा में सभी लोग काशी के पण्डितों के पक्षपाती न थे । कुछ लोग निष्पक्ष भी थे । ऐसे लोगों में से भी कुछ ने शास्त्रार्थ का वर्णन समाचारपत्रों में प्रकाशित किया और सब घटनाओं का याथातथ्य वर्णन किया ।

एक सज्जन ने A.K.M. के नाम से २० नवम्बर सन् १८६६ को काशी से एक पत्र लिखकर पायोनियर में छपवाया, जिसमें उन्होंने लिखा कि "शास्त्रार्थ कुछ देर तक उत्तेजना के साथ चलता रहा, उसमें यद्यपि किसी पक्ष को कोई सफलता नहीं हुई, तथापि काशी के पण्डितों की ही हानि हुई । फिर माधवाचार्य ने कुछ हस्तलिखित पत्रे यह कहकर कि ये वेद के पत्रे हैं, इस बात को प्रकट और प्रमाणित करने के अभिप्राय से कि पुराण वेदों से निकले हैं, संन्यासी (दयानन्द) के हाथ में दिये । संन्यासी ने उन पत्रों को मनोलग्नता और ध्यान से पढ़ा और उनपर विचार करने लगे कि इतने ही में पण्डितों ने उनसे उत्तर देने और विषय की आलोचना करने को कहा । इसपर वे चुप रहे । विषय पर विचार करने के लिए लगभग दस मिनट का समय दिया गया । काशी के पण्डितों ने मौन को स्वीकारी का चिह्न समझकर तालियाँ पीट दीं । फिर सहस्रों मनुष्यों ने जो उस समय उपस्थित थे उनका अनुकरण किया, यहाँ तक कि किसी अंश तक स्वयं महाराजा बनारस भी उनके साथ सम्मिलित हो गये । इसके अतिरिक्त नगर के जनसाधारण में जो इस दृश्य को देखने के लिए बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए थे, संन्यासी के साथ दुर्व्यवहार करने के चिह्न बढ़ने लगे । तब कोतवाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संन्यासी के पास आकर खड़े हो गये और उनकी इस दुर्व्यवहार से, जो काशीनगर में कोई असाधारण घटना नहीं है, रक्षा की।"

आगे चलकर फिर वही सज्जन लिखते हैं कि "धर्म के विषय में शीघ्रता से परिणाम निकालने से उसकी बातों की सत्यता व असत्यता सिद्ध नहीं हो सकती। संन्यासी को इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, जो शास्त्रार्थ के मुख्य विषय से किसी अंश तक भिन्न थे, समय दिया जाना चाहिए था। बहुत लोग यह भी कहते हैं कि संन्यासी पण्डितों के उठाये हुए प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उद्यत था और उत्तर देने की उसने इच्छा भी प्रकट की थी, परन्तु हमारे बनारस के पण्डितों ने यह सोचकर कि यह विलम्ब उनके विपक्षी को परास्त करने का सबसे अच्छा अवसर है, उसे बोलने न दिया और इस प्रकार वह साहित्य-क्षेत्र से बलात्कार करके विजयश्री छीन ले-गये। हमें यह कभी आशा न थी कि महाराजा और लगभग समस्त प्रतिष्ठित नागरिकों की उपस्थिति में विषय का निर्णय ऐसी उतावली और ऐसे असभ्य व्यवहार से पण्डितों के अनुकूल ज़बरदस्ती कर लिया जाएगा।"

अन्त में लेखक ने यह परामर्श दिया है कि "विषय का नियम और क्रमबद्धता से अन्तिम निर्णय करने के लिए दूसरी सभा होनी चाहिए।"

एक और निष्पक्ष सम्मति—एक और ईसाई लेखक ने A.F.R.H. के नाम से क्रिश्चियन इनटेलीजेन्सर मार्च १८७० में स्वामीजी के विषय में एक विस्तृत लेख लिखा था। उसमें उन्होंने काशी-शास्त्रार्थ का भी वर्णन किया था जो प्रायः सर्वांश में हमारे दिये हुए उपर्युक्त वर्णन से मिलता है। केवल इतना भेद है कि उन्होंने शास्त्रार्थ की तारीख १६ नवम्बर की जगह १७ नवम्बर लिखी है। वास्तव में ठीक तारीख १६ नवम्बर ही है।

पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी का शास्त्रार्थ-विवरण—पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी§ कलकत्ता के प्रसिद्ध वेदज्ञ ने अपनी पत्रिका प्रत्नकम्रनन्दिनी के दिसम्बर सन् १८६६ के अङ्क में इस शास्त्रार्थ का विवरण संस्कृत में प्रकाशित किया था। उसका आशय हम नीचे देते हैं—

दयानन्द एक साधु हैं जिन्होंने सद्धर्म के प्रकाश से असत्य के दूर करने का बीड़ा उठाया है।

विशुद्धानन्द—वेदों के मन्त्र ही देवता हैं ? (काशी-नरेश की भौंहें चढ़ गईं)‡

दयानन्द—फिर उपासना कैसे होगी ?

विशु०—प्रतीकोपासना शालिग्राम आदि में।

दया०—ऐसा वेद में कहाँ लिखा है ?

विशु०—एक सामवेद की सहस्र शाखाएँ हैं। क्या आपने सब देखी हैं ?

दया०—सुनो, सुनो, इसके यह अर्थ हैं कि सामवेद सहस्रवर्त्मा अर्थात् सहस्र मार्गवाला है, सब शाखाओं में संहिता तो एक ही है।

विशु०—वही ईश्वर है।

दया०—(हँसकर) है ! वही ईश्वर है ? अनर्थ विचार न करो, जो प्रकरण है उसे ही कहिए।

---

§ पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी को दोनों पक्षों की ओर से शास्त्रार्थ लिखने के लिए नियत किया था। देखो इनका ऐतरेयालोचन ग्रन्थ, पृष्ठ १२७।

‡ जब स्वामी विशुद्धानन्द ने यह वाक्य कहा तो काशी-नरेश ने समझा कि जब मन्त्र ही देवता हैं तो प्रतिमा पूजन का तो अपनी ही ओर से खण्डन हो गया, इसलिए वे अप्रसन्न हुए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

विशु०—(दयानन्द की पीठ पर बायाँ हाथ रखकर) अरे बाबा ! तू। अभी कुछ पढ़ा नहीं, अभी कुछ दिन पढ़।

दया०—(उनके हाथ को ज़ोर से हटाकर)—क्या आपने सब पढ़ लिया है ?

विशु०—(हँसकर) हाँ, सब पढ़ लिया है।

दया०—(पुनः पुनः उनके हँसने के उत्तर में हँसकर) क्या व्याकरण भी ?

विशु०—हाँ, वह भी।

दया०—(लाल आँखें करके) 'कल्म' किसकी संज्ञा है, बोलो, बोलो !!!

जब विशुद्धानन्द से कुछ उत्तर न बन पड़ा तो पण्डित बालशास्त्री आगे बढ़े और बोले कि मैं उत्तर देता हूँ।

दया०—(आप ही) कहिए§। 'कल्म' किसकी संज्ञा है ?

बाल०—एक सूत्र में संज्ञा तो नहीं की, परन्तु महाभाष्यकार ने उपहास किया है।

दया०—कौन-से सूत्र के भाष्य में संज्ञा तो नहीं की, किन्तु उपहास किया है, इसका उदाहरणपूर्वक समाधान कीजिए।

गम्भीर बुद्धि और चारचक्षु महाराजा शास्त्रार्थ का आदि-अन्त देखकर और कोलाहल पर विचार करके सन्तुष्ट तो न हुए, परन्तु प्रकट में उन्होंने कहा कि हमारा आना अच्छा हुआ। दयानन्द ढीठ और मूर्ख है, परन्तु किसी विद्वान् को भी पराजित करना सम्भव नहीं है। कर्ण को छह योद्धाओं ने गिराया था, इस न्याय से दयानन्द का बल नष्ट कर देने और उसे हरा देने पर भी, केवल हरा देनेमात्र से विचार समाप्त नहीं हुआ। मैंने सब पण्डितों को आज्ञा दी है कि आपस में मिलकर खण्डन-मण्डन और मण्डन-खण्डनात्मक ग्रन्थ बनाओ।

निष्पक्ष पण्डितों की सम्मति—श्री हरेकृष्णव्यास, श्री जयनारायण तर्कपञ्चानन, श्री शिवकृष्ण वेदान्त सरस्वती आदि कतिपय विद्वान् कहते हैं कि शास्त्रार्थ तो ठीक नहीं हुआ, परन्तु यह सत्य है कि दयानन्द हार गया।‡

हिन्दू पेट्रियट की सम्मति—हिन्दू पेट्रियट नामक पत्र के १७ जनवरी सन् १८७० के अङ्क में इस शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित हुआ था। उसमें भी सम्पादक ने वास्तविक घटना को प्रकाशित किया है। वे लिखते हैं—

"कुछ समय हुआ कि महाराजा रामनगर ने एक सभा की जिसमें उन्होंने बनारस के चुने हुए और बड़े-बड़े पण्डितों को बुलाया। दयानन्द सरस्वती और पण्डितों में बड़ा भारी और लम्बा शास्त्रार्थ हुआ, परन्तु पण्डितों का, जिन्हें अपनी शास्त्रज्ञता का बड़ा गर्व था, पूर्ण पराजय हुआ। पण्डितों ने जब जान लिया कि नियमबद्ध शास्त्रार्थ में ऐसे महान् व्यक्ति से वर आना असम्भव है तो वे अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए पापमय उपायों के अवलम्बन पर उतारू हो गये। उन्होंने ऋषि को पुराणों का एक पत्रा दिया जिसमें मूर्त्तिपूजा का विषय अङ्कित था और उनसे कहा कि ये वेदों के मन्त्र हैं। जब वे उस पत्रे को देख रहे थे तब पण्डित-मण्डली ने महाराज के नेतृत्व में यह प्रकट करते हुए कि धार्मिक शास्त्रार्थ में वह पण्डितवर्य पराजित

---

§ वास्तव में जब बालशास्त्री उत्तर देने लगे तो दयानन्द ने उनसे कहा था कि तुम अधर्म के लक्षण बोलो। इसपर वे भी चुप हो गये।

‡ यह महाराज का पक्षपात नहीं तो और क्या था कि शास्त्रार्थ से सन्तुष्ट न होने पर भी वह दयानन्द का पराजित होना प्रकट करते रहे। पण्डितों की बात ही और है। यह भी कहते जाते हैं कि शास्त्रार्थ ठीक नहीं हुआ और यह भी कहते हैं कि दयानन्द हार गया। जब शास्त्रार्थ ही ठीक न हुआ तो दयानन्द हार कैसे गया ? —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो गया, तालियाँ बजा दीं ।"

इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि स्वामीजी शास्त्रार्थ में पराजित नहीं हुए । शास्त्रार्थ के बीच में उन्होंने कई बार पण्डितों के मुँह बन्द कर दिये, कई बार उन्हें निरुत्तर कर दिया, परन्तु पण्डितों की ढिठाई देखिए कि पराजित होने पर भी उन्होंने लज्जा को सर्वथा तिलाञ्जलि देकर अपनी विजय-घोषणा की !! धर्म के नेता ही जब ऐसी झूठी, असभ्य, अन्याययुक्त और अशिष्ट कार्यवाही करें तो इतरजनों की कथा ही क्या है ?

काशी के दिग्गज पण्डितों की ओर से भरी सभा में सहस्रों मनुष्यों की उपस्थिति में एकाकी संन्यासी के साथ इस प्रकार का अन्याययुक्त और सभ्यता-शून्य व्यवहार होना प्रकट करता है कि उनका अभिप्राय सत्यासत्य का निर्णय नहीं प्रत्युत येन केन प्रकारेण पौराणिक धर्म के एकमात्र अवलम्बन मूर्त्तिपूजा के कट्टर विरोधी दयानन्द को दबाना और पराजित करना था । उन्होंने यह पहले ही निश्चय कर लिया था कि जैसे बने वैसे अपने पक्ष की रक्षा करनी चाहिए । इसका उल्लेख हम पूर्व भी कर चुके हैं ।

काशी-नरेश भी पण्डितों के इस षड्यन्त्र में सम्मिलित थे । यह उनके उस समय के तथा पीछे के व्यवहार से स्पष्ट है । वे चाहते थे कि न्याय से हो वा अन्याय से, सत्य का अवलम्बन करके हो वा असत्य की शरण लेकर हो, दयानन्द को पराजित करके पौराणिक धर्म की रक्षा करनी चाहिए । शास्त्रार्थ के समय उन्होंने पण्डितों को असभ्योचित व्यवहार से नहीं रोका, प्रत्युत उन्होंने स्वयं उसमें भाग लिया । उन्होंने वामनाचार्य को जिसने चालाकी से किसी अन्य ग्रन्थ के पत्रे उन्हें वेद के पत्रे बताकर शास्त्रार्थ में प्रस्तुत किये थे, उसकी कुटिल-नीति से प्रसन्न होकर एक दुशाला पुरस्कार में दिया । इससे भी अधिक, एक बार एक बाबू रजनीकान्त मुखोपाध्याय एक न्यायपरायण बङ्गाली सज्जन ने पण्डितों के मलिन कृत्य से अप्रसन्न होकर महाराजा को इसका उपालम्भ दिया तो उन्होंने पश्चात्ताप करने के बदले लज्जा को तिलाञ्जलि देते हुए यह उत्तर दिया कि पण्डितों का शास्त्रार्थ तो आपने देख ही लिया, परन्तु प्रचलित धर्म की रक्षा तो किसी-न-किसी प्रकार करनी ही थी ।

इससे अधिक प्रबल प्रमाण इस बात का क्या हो सकता है कि मनुष्य दुराग्रहवश हठ में अन्धा होकर सत्य-असत्य से कोई प्रयोजन नहीं रखता, चाहे किसी प्रकार से भी उसे अपने पक्ष को प्रबल रखना ही अभिप्रेत हो जाता है और उसके लिए वह उचित-अनुचित सभी प्रकार के प्रयत्नों को करने पर कटिबद्ध हो जाता है, परन्तु वह भूल जाता है कि **'सत्यमेव जयते नानृतम्'** । सत्य बल से, भय से, आतङ्क से, लोभ से, कुछ समय के लिए भले ही दबाया जा सके, परन्तु वह उन कारणों के नष्ट होने पर फिर उभरता है । सत्य की अग्नि की शिखाओं को उनपर धूलि डालकर विनिर्वापित-समान अवश्य किया जा सकता है, परन्तु वह अग्नि उस धूलि के नीचे-ही-नीचे सुलगती रहती है, सर्वथा बुझाई नहीं जा सकती । समय आने पर, धूलि के हट जाने पर, वह पुनः धधक उठती है, उसकी शाखाएँ पुनः ऊँची उठकर जगत् को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर देती हैं, उसकी स्फुलिङ्गियाँ चारों ओर उड़कर असत्य के कूड़े-करकट को भस्मसात् कर डालती हैं ।

उस समय अन्याय और असत्य की सेना ने न्याय और सत्य को दबा लिया । काशी के पण्डितों ने अपने दल-बल के सहारे, काशी-नरेश की पृष्ठपोषकता के भरोसे शास्त्रार्थ में अवश्य गड़बड़ फैला दी, अपनी विजय-घोषणा की और सहस्रों से कराई, परन्तु इससे क्या न्याय पराभूत हो गया ? सत्य परास्त हो गया ? दयानन्द पराजित हो गया ? यदि ऐसा हुआ होता तो दयानन्द का जीवन मूर्त्तिपूजा के एक शत्रु की स्थिति से उसी क्षण समाप्त हो गया होता, वह फिर कभी जीवनभर यह कहने का कि मूर्त्तिपूजा वेद-विरुद्ध है साहस भी न करते, परन्तु हुआ क्या ? दयानन्द पण्डितों के अन्याय से घबराये नहीं, सहमे नहीं, उदासीनचित्त वा साहसहीन नहीं हुए । उनकी मुखकान्ति पूर्ववत् समुज्ज्वल रही, उनके चेहरे पर मालिन्य का लव-लेश भी नहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आया, उनके चित्त की शान्ति अणुमात्र भी भङ्ग नहीं हुई। वे पूर्ववत् अपने सब कार्य नियत और नियमित रूप से करते रहे।

शास्त्रार्थ में गड़बड़ करने से, यह घोषणा करने से कि दयानन्द हार गया, जयनादों से, काशी और भारत के अन्य स्थलों को गुञ्जायमान करने से, विजय-पत्र छपाकर सर्वत्र बाँटने से फल क्या हुआ ? क्या आजतक भी कोई पण्डित मूर्त्तिपूजा के समर्थन में वेद का एक मन्त्र भी उपस्थित कर सका ?

दयानन्द यदि पराजित हो जाता तो क्या शास्त्रार्थ के पीछे उसके पैर काशी में जमे रहते और पण्डित लोग जमे रहने देते ? विजेता विजित को कभी चैन से बैठने देता ? परन्तु हम देखते क्या हैं ? दयानन्द रणस्थल छोड़कर नहीं भागता, काशी के पण्डितों से मुँह नहीं छिपाता। शास्त्रार्थ के पीछे वह काशी में एक मास तक ठहरता है, मूर्त्तिपूजा का अक्षुण्ण और अदम्य भाव से खण्डन करता रहता है। यह ठीक है कि उसके पास आने-जानेवालों की संख्या पूर्वापेक्षा कुछ कम हो गई है, परन्तु इसलिए नहीं कि जनता उसके पक्ष को निर्बल, उसकी युक्तियों को सारहीन समझने लगी है, बल्कि इसलिए कि इन धर्म के ठेकेदारों ने लोगों को यह कहकर डराना आरम्भ किया कि जो कोई दयानन्द के पास जाएगा वह पापी और पतित होगा और बिरादरी से बहिष्कृत होगा। दयानन्द पण्डितों को निरन्तर शास्त्रार्थ के लिए आहूत करता रहा, परन्तु वे अपने घरों में घुसे रहे, किसी को उसके सामने आने का साहस न हुआ। उसके सम्मुख आते भी कैसे ? उस बार भी वे काशी-नरेश की पृष्ठपोषकता, जनसाधारण की सहानुभूति और सहायता आदि कारणों से उस सिंह के सामने आने की भूल कर बैठे थे। उसी बार उनको ज्ञात हो गया था कि दयानन्द काशी के एक-एक पण्डित का व्यष्टिरूप से और सबका एक साथ समष्टिरूप से शास्त्रार्थ में मुँह बन्द कर सकता है। वे जानते थे कि वे दयानन्द के एक प्रश्न का भी उत्तर न दे सके थे। उस बार उन्हें किसी-न-किसी प्रकार दयानन्द से अपना पीछा छुड़ाने का अवसर मिल गया था। यदि ऐसा न होता तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि दयानन्द उनके गर्व को चूर्ण और उनके गौरव को धूलि में मिलाकर रख देता।

पुनः पुनः शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज—दयानन्द ने केवल इस बार ही नहीं, परन्तु इसके पीछे भी पाँच बार काशी में पधारकर काशी के पण्डितों को चैलेञ्ज-पर-चैलेञ्ज दिया, परन्तु एक पण्डित भी ऐसा न निकला कि उसके चैलेञ्ज को स्वीकार करके रणक्षेत्र में आता और उससे तर्कयुद्ध करता। वे दिग्गज पण्डित जो सर्वज्ञ होने का दम भरते थे, जो यह अभिमान करते थे उनके सरीखा विद्वान् भारतवर्ष में नहीं है, जो धर्म-विषयों पर अपनी व्यवस्था देते थे और जिनकी व्यवस्था समस्त भारतवर्ष में माननीय और अनुकरणीय समझी जाती थी, पुनः पुनः आहूत किये जाने पर भी रणक्षेत्र में न आये। दयानन्द के सिंहनाद को सुनकर उनके कलेजे दहलते और मृगशावकों की भाँति वे इधर-उधर फिरते रहे।

नरेश का पश्चात्ताप—समय बीतता गया, दयानन्द का धर्म-प्रचार विस्तृत होता गया, सैकड़ों और सहस्रों मनुष्य उनके अनुयायी होते गये, 'पराजित' दयानन्द की विजयश्री निर्मल चन्द्रिका की भाँति अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना भारतवर्ष के प्रान्त और प्रान्तरों में प्रसारित करती रही। अन्त को एक दिन आया। काशी-नरेश के आत्मा ने उन्हें उस कुटिल चाल के लिए जो उन्होंने वेद-प्रचारक, सरल-चित्त दयानन्द के साथ काशी-शास्त्रार्थ में खेली थी, धिक्कारा और उन्हें दयानन्द से क्षमा-प्रार्थना करने पर बाधित किया। यह पराजित और पराभूत दयानन्द की विजय थी, जिसमें कोई भी ननु-नच नहीं कर सकता।

मित्र का परामर्श—शास्त्रार्थ के कितने ही वर्ष बाद स्वामीजी मुम्बई से लौटते हुए काशी पधारे और गोसाईं बिहारीलाल के बाग़ में ठहरे। महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने अपने कुछ मनुष्य उनकी सेवा में भेजे और कहलाया कि महाराजा की आपसे यह प्रार्थना है कि आप एक बार उनके पास पदार्पण करें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी ने उनसे यह कह दिया कि इसका उत्तर फिर देंगे और अपने हितचिन्तक पण्डित जवाहरदास से परामर्श किया। पण्डित जवाहरदास संसार के अनुभवी मनुष्य थे, उन्होंने महाराजा के निमन्त्रण का अभिप्राय भाँप लिया और स्वामीजी से स्पष्ट कह दिया कि राजा आपके अपमान-जनित पाप के प्रायश्चित्त के लिए आपको बुलाते हैं, आपको वहाँ जाना न चाहिए।

दयानन्द की दया—उस समय तो महाराज अपने मित्र के परामर्श से सहमत हो गये, परन्तु जब दूसरे दिन महाराजा ने अपने एक उच्च कर्मचारी को बग्घी साथ में करके महाराज के लिवाने को भेजा और, उसने महाराजा की ओर से अत्यन्त अनुनय-विनय किया तो दयालु दयानन्द का चित्त द्रवीभूत हो गया और अपने मित्र के परामर्श पर दृष्टि न डालते हुए बग्घी में सवार होकर रामनगर के राजगृह में पहुँच गये।

नरेश का सत्कार—काशी-नरेश ने बड़े सम्मान के साथ महाराज का स्वागत किया। उन्हें स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाया और आप रजतमय सिंहासन पर बैठे। स्वयं अपने हाथों से महाराज के गले में फूलों की माला डाली, चरणवन्दना की और विनीतभाव से कहा, "मैं बहुत दिन से मूर्त्तिपूजा करता आया हूँ उसके प्रति मेरा अनुराग और श्रद्धा है, इसलिए आपके उसका प्रतिवाद करने पर मुझे बहुत कष्ट हुआ। शास्त्रार्थ के समय यदि आप मेरे किसी आचार से क्षुब्ध हुए हों तो आप मुझे क्षमा करें।"

क्षमादान—नरेश के मुख से यह शब्द निकलने थे कि महाराज की दया-गङ्गा में बाढ़ आ गई और उन्होंने महाराजा को क्षमादान दे दिया। यों तो उनके चित्त में महाराजा की ओर से पहले से ही कोई बुरे भाव नहीं थे और उनके लिए क्षमा करने न करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। जो दयानन्द अपने घातकों तक से वैर-विरोध के भाव न रख सकता था, वह महाराजा काशी के विरुद्ध ऐसे भावों को अपने मनोभवन में, जो नित्य प्रेम-प्लावित रहता था, स्थान कहाँ दे सकता था ? परन्तु महाराज ने नरेश की सान्त्वनार्थ क्षमादान देकर उनके चित्त के विषाद को दूर किया और अपने डेरे को लौट आये। पीछे महाराजा ने ५-७ रुपये के मुरब्बे मिष्टान्न आदि और अन्य वस्तुएँ उपहारस्वरूप महाराज की सेवा में भेंट की।

अच्छा नहीं हुआ—पण्डित जवाहरदास ने कहा कि यह काम अच्छा नहीं हुआ। यदि आप न जाते तो वे स्वयं ही आपके पास आते।

अब हम न्यायशील पाठकों से पूछते हैं कि पराजय किसका हुआ, दयानन्द का वा काशी के पण्डितों का ?

दूषण-मालिका—शास्त्रार्थ के पीछे पौराणिक दल की ओर से दूषणमालिका नामक एक प्रश्नावली प्रकाशित हुई थी, जो लाजर्स कम्पनी के मेडिकल हॉल प्रेस में छपी थी। उसमें स्वामीजी को कुवाक्य कहे गये थे, उनसे ६४ प्रश्न किये गये थे और यह कहा था कि दयानन्द के चार प्रश्नों के उत्तर में यह ६४ प्रश्न किये हैं। हम पौराणिक-मण्डली के शिष्ट व्यवहार के एक उदाहरण के रूप में उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं, पाठक स्वयं देख लेंगे कि प्रश्न कैसे ऊटपटाङ्ग हैं और प्रश्नकर्त्ता का उनसे क्या उद्देश्य था ?

"मूर्त्तिपूजा का निषेध करनेवाले दयानन्द प्रभृति लोगों के गले की दूषणमालिका।"

॥ श्री श्रीवल्लभो विजयते ॥

अथ दयानन्द नामी एक नग्न पुरुष, न जाने किस जाति वा आश्रम का, सब देशों में भ्रमण करता हुआ, सनातन सद्धर्मरूपी सूर्य को राहु की भाँति ग्रस्ता हुआ, मूर्ख और आलस्यपूर्ण जीवों के हृदय-वस्त्र को अपने रंग में रंगता हुआ, इसी बहाने से अपना नाम जनता में प्रसिद्ध करता हुआ और अपने वाग्बाणों से सज्जनों के हृदय को दहन करता हुआ, काशी नगर में आया और दुर्गाकुण्ड निवासियों का सहवासी हुआ। उसने जो व्यर्थ उपद्रव किये वे सबपर विदित हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब उसने एक छोटी-सी पुस्तक छपवाकर§ लोगों पर यह विदित करना चाहा है कि मैं हारा नहीं हूँ। इसमें मैंने ऐसा विचार किया कि ऐसे मनुष्य से सम्भाषण करना उचित नहीं और पत्र द्वारा शास्त्रार्थ करना जिससे लोगों पर सदसत् का प्रकाश और हारने-जीतने का निश्चय हो जाए, इस हेतु यह दूषणमालिका उसके गले में पहनाई जाती है। उसे उचित है कि इन सब प्रश्नों का प्रतिपद उत्तर दे और इस प्रकार से बराबर पत्र द्वारा शास्त्रार्थ हो और इतने प्रश्नों का एक जीतने के इश्तिहार की भाँति उत्तर न दिया जाए, क्योंकि इन शब्दों के प्रतिशब्द का उत्तर न देने से परास्त समझा जाएगा और प्रश्नोत्तर करते-करते जो थक जाए और जिसकी बुद्धि में उत्तर की युक्ति न आवे वह हारा समझा जाएगा, इति।

१. आपने जो पुस्तक छपाई है उसमें वेद के मन्त्र हैं, अतः वेद के मन्त्र शूद्रों तथा म्लेच्छादिकों के हाथ में देने से दोष हुआ कि नहीं ?

२. आप कौन आश्रम और किस जाति के हैं और किस धर्म को मानते हैं ? जो कहिए कि हम वेद-धर्म को मानते हैं तो वेद-धर्म ही को मानना और ख्रीष्ट और मुहम्मदी मत को न मानना इसमें क्या प्रमाण है ? जो कहिए कि हम उसी कुल में उत्पन्न हुए हैं जिसमें यही धर्म मानना योग्य है तो आप मूर्त्तिपूजक के वंश में हो कि नहीं ?

३. जो आप कहें कि हम अमुक जाति के थे अब योगी हुए हैं तो आपके पिता पुरखा उसी जाति में उत्पन्न हुए, इसे किसने देखा है और इसमें क्या प्रमाण है ?

४. जो कहिए कि शिष्टाचार प्रमाण है और सुनते आते हैं कि हम अमुक वंशीय हैं तो इसी भाँति मूर्त्तिपूजनादि शिष्टाचार क्यों नहीं मानते ?

हमें इस प्रश्नावली के विषय में कुछ नहीं कहना है, पाठक स्वयं इसके औचित्य-अनौचित्य तथा इसके उद्देश्य के विषय में अपनी सम्मति स्थिर कर सकते हैं।

काशी-शास्त्रार्थ का इतिवृत्त पुस्तकाकार छपा हुआ है, जिससे उसका पूरा विवरण ज्ञात हो सकता है।

नागाजी का निमन्त्रण—एक दिन पण्डित जवाहरदास डुमराऊँ के नागाजी साधुराम उदासी को साथ लेकर स्वामीजी से मिलने गये। नागाजी से स्वामीजी का विशेष परिचय हो गया। एक दिन स्वामीजी ने कलकत्ता जाने का विचार प्रकट किया तो नागाजी ने उनसे डुमराऊँ होकर जाने के लिए विशेष अनुरोध किया।

वामनाचार्य के पत्र का उत्तर—स्वामीजी ने शास्त्रार्थ से अगले दिन **'दशमेऽहनि किञ्चित्पुराण-माचक्षीत'** का विस्तृत अर्थ छपाकर बँटवा दिया और पण्डितों को सत्यासत्य के निर्णय के लिए आहूत किया। यह वही वाक्य था जो वामनाचार्य के दिये हुए पत्रों में अङ्कित था और जिसे स्वामीजी देख रहे थे, जबकि पण्डितों ने हल्ला-गुल्ला करके शास्त्रार्थ की समाप्ति कर दी थी। स्वामीजी के आह्वान पर कोई भी पण्डित उनके अर्थों को असत्य सिद्ध करने के लिए सामने न आया।

अपमान में शान्त और अविचलित—पण्डित ईश्वरसिंह एक निर्मले साधु थे जो वेदान्ती थे। उन्होंने जनता को शास्त्रार्थस्थल से लौटते हुए देखा और अपने कानों से लोगों को स्वामीजी को गाली देते हुए सुना। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि स्वामीजी पर गुण्डों ने ढेले, गोबर, जूतादि फेंके थे। उनके जी में आया कि चलकर देखें कि इस घोर अपमान का स्वामीजी के चित्त पर क्या प्रभाव पड़ा, अतः वे स्वामीजी के पास गये। स्वामीजी ने उनका प्रसन्नवदन होकर स्वागत किया।

---

§ प्रतीत होता है यह काशी शास्त्रार्थ का संवत् १९२६ वाला संस्करण है। काशी शास्त्रार्थ का प्रथम संस्करण सं० १९२६ में ही छप गया था। देखो हमारा ऋ०द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ १७८। —**यु०मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रज्ञ ही नहीं महात्मा भी हैं—दोनों में बहुत देर तक ज्ञानचर्चा होती रही। पण्डित ईश्वरसिंह ने किसी प्रकार का कोई भी चिह्न न पाया जिससे प्रकट होता कि स्वामीजी के मन में शोक वा विषाद था। उन्होंने स्वामीजी को सदा की भाँति शान्त और क्षोभरहित पाया। तब उन्होंने स्वामीजी से कहा कि अब तक मैं आपको वेदशास्त्रज्ञ एक पण्डित मानता था, परन्तु आज मैंने जाना कि आप वीतराग महात्मा भी हैं।

रामस्वामी मिश्र का घमण्ड—रामस्वामी मिश्र नाम के संस्कृत के बड़े गर्वीले विद्वान् थे। वे स्वामीजी को गाली देने में संकोच न करते थे। वे बड़े घमण्ड से कहा करते थे कि यदि मैं दयानन्द से बातचीत करूँ तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन छुड़वाकर उसे सीधा कर दूँ, परन्तु स्वामीजी के सम्मुख इसलिए न आते थे कि उनका मुख देखने से उन्हें पातक लग जाएगा। एक दिन वे रात्रि के अँधेरे में स्वामीजी के पास आये ताकि उनका मुख न देख सकें और बोले—

दयानन्द से देववाणी में बात करना पाप है—तुझसे देववाणी में बातें करना हम पाप समझते हैं, इसलिए देश-भाषा में ही बातचीत करेंगे, परन्तु हमारी एक बात तुझे माननी पड़ेगी। स्वामीजी ने कहा कि आप मुझे संस्कृत बोलने से तो रोकते हैं, परन्तु संस्कृत के शब्द तो बोलने देंगे। अच्छा यही सही अब आप अपनी शर्त कहिए।

बीच में एक छुरी नहीं, दो रक्खो—रामस्वामी ने कहा कि मैं अपने साथ एक छुरी लाया हूँ। यह बीच में रक्खी जाएगी। जो हारेगा उसकी नाक काट ली जाएगी। स्वामीजी ने हँसते हुए कहा कि एक छुरी और होनी चाहिए जिससे हारनेवाले की जिह्वा काट ली जाए, क्योंकि वाद-विवाद में नाक तो निर्दोष है, जो कुछ अपराध होता है, वह जिह्वा का होता है।

शेखी किरकिरी—इसके पश्चात् रामस्वामी कुछ देर तक उद्दण्डता से बातें करते रहे। स्वामीजी सभ्यतापूर्वक उनका उत्तर देते रहे। परिणाम यह हुआ कि उनका टेढ़ापन दूर हो गया और वे सरलता और सभ्यता से बातें करने लगे और अन्त में सारी शेखी को छोड़कर और निरुत्तर होकर चले गये। कोई अन्य होता तो उनसे नाक वहीं धरवा लेता, परन्तु स्वामीजी ने उनपर दया की।

मुसलमान चिढ़े—महाराज वेद-विरुद्ध मतों के खण्डन में किसी का पक्षपात न करते थे। सभी मत उनकी समीक्षा का विषय होते थे। काशी में भी उन्होंने ऐसे सभी मतों की आलोचना की। इस्लामी मत का भी खण्डन किया। इससे मुसलमान कुछ चिढ़ गये। एक दिन महाराज गङ्गातट पर अकेले बैठे थे कि एक ओर से मुसलमानों की एक टोली गङ्गातट पर टहलती हुई उनके समीप से होकर जाने लगी।

दो यवनों को बग़ल में दबाकर जल में कूद गये—उसमें से किसी ने महाराज को पहचानकर अपने साथियों से कहा कि यही बाबा है जो दीन इस्लाम के खिलाफ़ बोला करता है। इसपर दो व्यक्ति आगे बढ़े। एक ने महाराज की एक बग़ल और दूसरे ने दूसरी बग़ल में हाथ देकर उन्हें अधर उठा लिया। उन्होंने चाहा कि महाराज को गङ्गा में डाल दें। महाराज भी उनके दुष्ट सङ्कल्प को जान गये। उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ अपने दोनों पार्श्वों से इस प्रकार चिपटा लीं कि दोनों यवनों के हाथ मानो शिकञ्जे में कस गये। फिर महाराज उन दोनों व्यक्तियों के साथ गङ्गा में कूद गये। वे चाहते तो दोनों यवनों को जलमग्न कर देते, परन्तु दया करके उन्हें तो जल में डुबकी खाता छोड़ दिया और आप जल के नीचे-ही-नीचे तैरते हुए दूर निकल गये। दोनों मुसलमान ज्यों-त्यों करके जल से बाहर निकल आये। कितनी देर तक हाथों में ढेले लिये हुए उनकी प्रतीक्षा में खड़े रहे कि कब बाबा जल से बाहर सिर निकाले और कब हम उसपर ढेले बरसावें। जब बहुत देर हो गई और महाराज जल से बाहर न निकले तो उन्होंने समझा कि बाबा डूब गया और वे चले गये। महाराज भी रात्रि होने पर अपने स्थल पर आ गये।

विषाक्त भोजन और पान—एक दिन एक मनुष्य भोजन लेकर महाराज के पास आया और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्तिप्रदर्शनपूर्वक भोजन उनके सामने रखकर उसे पाने की प्रार्थना करने लगा। वे भोजन कर चुके थे, अतः उन्होंने यह कहकर कि मैं भोजन कर चुका हूँ, उसे स्वीकार न किया। फिर उस मनुष्य ने यह कहकर कि यदि आप भोजन नहीं करते तो पान तो खा लीजिए। महाराज ने पान ले-लिया, परन्तु ज्योंही महाराज ने उसे खोलकर देखा वह मनुष्य झटपट भाग गया। पीछे ज्ञात हुआ कि पान में विष था।

१०, १५ गुण्डों को मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ—काशी में गुण्डों का एक दल है। उसका वहाँ बड़ा आतङ्क है। किसी मनुष्य को पीट देना उसके लिए अत्यन्त साधारण बात है। साधु जवाहरदास के कानों में एक दिन यह बात पड़ी कि गुण्डे स्वामीजी को अपमानित करना चाहते हैं। वे स्वामीजी के पास गये और बड़ी चिन्ता के साथ उन्हें यह समाचार सुनाया। स्वामीजी ने उनसे कह दिया कि आप घबराएँ नहीं। मेरे लिए यह कोई नई बात नहीं है। ऐसी बातें मेरे साथ बहुत हो चुकी हैं। जब मैं पितृ-गृह में रहता था तो एक समय ऐसा हुआ कि हमारे एक पड़ोसी ने हमारे एक खेत पर अधिकार कर लिया। जब पिताजी ने मुझे यह बात सुनाई तो मुझे इतना आवेश आया कि मैं तलवार लेकर गया और आक्रमणकारी पड़ोसी और उसके आदमियों को मैंने अकेले ही भगा दिया। अब भी यदि दस-पन्द्रह गुण्डे मुझपर आक्रमण करेंगे तो उनके लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ।

भयंकर हुंकारनाद—एक दिन महाराज निश्चिन्त, मौज में चले जा रहे थे कि एक गुण्डा उनके पीछे हो लिया। उनकी दृष्टि जो फिरी तो देखा कि एक हट्टा-कट्टा मनुष्य एक मोटा लट्ठ लिये उनके पीछे आ रहा है। उन्होंने ऐसा हुङ्कारनाद किया कि वह भयभीत होकर भाग गया।

कूँडी-सोटा छिपा लो—एक दिन स्वामीजी अपने मित्र बाबा जवाहरदास के डेरे की ओर निकले तो देखा कि भङ्ग घुट रही है। जवाहरदास ने स्वामीजी को आता देखकर कूँडी-सोटा छिपाने का यत्न किया, परन्तु उनके ऐसा करते-करते स्वामीजी उनके पास पहुँच गये और मुस्कराते हुए उनसे बोले—

शिव बनने का उपाय—अच्छा, शिव-बूटी घुट रही है, आप भी शिव बनना चाहते हैं। शिव बनने में लगता भी कुछ नहीं। भङ्ग पी, 'शिवोऽहम्' कहा और शिव बन गये।

मुझसे उपदेश-कार्य नहीं हो सकता—फिर महाराज ने जवाहरदास से कहा कि आप भी उपदेश-कार्य कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि आपका तो ओई ठौर-ठिकाना है नहीं। आप तो जहाँ चाहें जा सकते हैं। मैं डेरेवाला हूँ, मुझसे उपदेश कार्य नहीं हो सकता। महाराज ने कहा कि डेरे से आप व्यर्थ ममता करते हैं, यह तो पहले भी आपका नहीं था और आपके पीछे भी आपका नहीं रहेगा। इसे छोड़ो और लोकहित का कार्य करो।

एक दिन महाराजा भरतपुर, महाराजा रीवाँ, राजा तिरवा और एक अंग्रेज़ स्वामीजी के पास आये और नास्तिकमत का पक्ष लेकर उनसे बातचीत की। उस समय ये तीनों राजा बनारस कालेज में पढ़ते थे। स्वामीजी ने उन्हें ईश्वर का अस्तित्व भली प्रकार समझा दिया।

शास्त्रार्थ के पश्चात् स्वामीजी लगभग एक मास काशी में रहे। वहाँ से कुछ दिन के लिए वे मिर्ज़ापुर गये और फिर प्रयाग चले गये।

कैलाशपर्वत की न्याय-प्रियता—शास्त्रार्थ के कुछ काल पीछे स्वामी कैलाशपर्वत काशी गये थे। जब उन्होंने शास्त्रार्थ का समाचार सुना तो कहा कि काशी के पण्डितों को दयानन्द का विद्या से मुक़ाबिला करना चाहिए था, परन्तु उन्होंने धूर्त्तता से मुक़ाबिला किया। इससे उनका अपयश और दयानन्द का यश बढ़ेगा।

बाल शास्त्री—एक बार गोस्वामी घनश्यामदास मुलतान से काशी गये थे। वहाँ पण्डित बाल-शास्त्री से मिले थे और उनसे पूछा था कि आपका और स्वामी दयानन्द का जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें किसकी जीत हुई थी। शास्त्रीजी ने उत्तर देते हुए कहा था कि हम गृहस्थ हैं और वे यति, संन्यासी, हमारे पूज्य, उनका हमारा शास्त्रार्थ कहाँ बन सकता है?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नवम अध्याय

माघ १९२६—भाद्रपद १९२७=फरवरी—सितम्बर १८७०

(५ फरवरी—मार्च सन् १८७०) **प्रयाग** (माघ शु० ५ फाल्गुन—सं० १९२६)

स्वामीजी मिर्ज़ापुर होते हुए माघ शुक्ला ५ संवत् १९२६ को प्रयाग पधारे। उन दिनों वहाँ कुम्भ का मेला हो रहा था। स्वामीजी वासुकि के मन्दिर में ठहरे। उनके आगमन का समाचार उनके पदार्पण करते ही सर्वत्र फैल गया और लोग उनके दर्शनों को आने और उपदेशामृत का पान करने लगे। स्वामीजी रात्रि में घाट की बुर्जी पर बिना कोई वस्त्र ओढ़े केवल लंगोट पहने सो जाते थे। एक दिन एक सज्जन ने उनसे पूछा कि आजकल शीत अधिक पड़ता है, परन्तु आपको जाड़ा नहीं लगता, इसका क्या कारण है ? उन्होंने उससे प्रश्न किया कि तुम्हारे मुख को जाड़ा क्यों नहीं लगता ? उसने कहा कि वह सदा खुला रहता है, तब वे बोले कि यही दशा हमारे शरीर की है, वह सर्वदा खुला रहता है।

शीत नहीं सताता—एक दिन पं० मोतीराम मिर्ज़ापुर-निवासी जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, प्रातःकाल चार बजे वासुकि मन्दिर की ओर जा निकले। उनके साथ एक विद्यार्थी था जिसने स्वामीजी के शास्त्रार्थ के अवसर पर दर्शन किये थे। उन्होंने देखा कि एक संन्यासी नग्नशरीर घाट की बुर्जी पर गहरी नींद सो रहा है। यद्यपि उस समय ठण्डी वायु चल रही थी, परन्तु उसपर शीत का कोई प्रभाव नहीं था। विद्यार्थी ने देखकर पण्डित मोतीराम से कहा कि यह वही गप्पाष्टक है, जिसने काशी में शास्त्रार्थ किया था।

एक विद्वान् से साक्षात्कार—स्वामीजी के जगने की प्रतीक्षा में पण्डित मोतीराम नीचे घाट के फ़र्श पर बैठ गये। थोड़ी-सी ही देर में स्वामीजी वहीं चले आये और पण्डित मोतीराम से बात-चीत करनी आरम्भ की।

दया०—आपका वर्ण क्या है और कहाँ से आये हैं ?

मोती०—मेरा वर्ण ब्राह्मण है और मिर्ज़ापुर से आया हूँ।

स्वामीजी ने एक मनुष्य से चटाई मँगवाई और पण्डित मोतीराम से उसपर बैठने को कहा।

मोती०—आप चटाई पर बैठिए।

दया०—मेरा आसन तो सर्वत्र है।

मोती०—जब आप फ़र्श पर बैठते हैं तो मैं भी वहीं बैठूँगा। चटाई की क्या आवश्यकता है ?

दया०—लौकिकी गाथानुसार आपको चटाई पर बैठने का अधिकार है।

मोती०—लौकिकी गाथा सत्य नहीं है।

दया०—सब काम छोड़कर एकान्त में परम-कृत्य सन्ध्या करनी चाहिए, सूर्योदय का समय आ गया है, सन्ध्या से निवृत्त होकर फिर आजाइए।

स्वामीजी के कथानुसार पण्डित मोतीराम सन्ध्या करने चले गये और स्वामीजी भी प्रातःकृत्य करने के लिए गङ्गा-तट चले गये। निवृत्त होकर स्वामीजी उसी स्थान पर लौट आये। थोड़ी देर पश्चात् पण्डित मोतीराम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी वहाँ पहुँच गये। उस समय महाराज के पास सेठ रामरतन लड्ढा रईस, मिर्ज़ापुर और दो आचारी बैठे थे। स्वामीजी आचारियों से कह रहे थे—

मस्तकशृङ्गार नहीं, आत्मशृङ्गार करो—मस्तकशृङ्गार करने की अपेक्षा ईश्वरोपासना द्वारा आत्मशृङ्गार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं है, यह तुमने कैसी माया रची है। आचारी चुप रहे। शोक, महाशोक ! **तिलक आदि चिह्न बनाने में लोगों की रुचि है, योगाभ्यास में नहीं। मूर्खो ! तुम यह तिलक लगाते रहे, इतने समय में गायत्री क्यों न जप ली, व्यर्थ समय नष्ट किया।**

एक आचारी—यदि आप हमारे देश में होते तो पृथिवी में गाड़कर मार डालते। इसपर स्वामीजी हँसने लगे और आचारी उठकर चले गये।

धर्मालाप—

दया०—धर्म्म क्या है और उसका स्वरूप क्या है ?

मोती०—आपके कहने में दोष है।

दया०—क्या दोष है ?

मोती०—धर्म्म का रूप ही नहीं है तो स्वरूप पूछना अनुचित है।

इसपर स्वामीजी ने मनुस्मृति और महाभारत से धर्म का स्वरूप वर्णन किया।

मोती०—जो वेदप्रतिपादित है, वही धर्म है।

दया०—वेद में मूर्त्तिपूजा है वा नहीं ?

मोती०—है।

दया०—कहाँ है ?

मोती०—प्रतिमा की प्रतिष्ठा और देवताओं का आवाहन वेदमन्त्र से होता है, क्या वह प्रमाण नहीं है ?

दया०—प्रतिष्ठा और आवाहन के मन्त्र पढ़ो।

पं० मोतीराम ने वे मन्त्र पढ़े। स्वामीजी ने उनके अर्थ करके पूछा कि इनमें प्रतिष्ठा और आवाहन के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं। इसी प्रकार मूर्त्ति का पूजन करने, उसपर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़ाने तथा नवग्रह-पूजन आदि के मन्त्र पढ़े, परन्तु स्वामीजी के अर्थ करने पर उनमें भी उपर्य्युक्त विषय का कोई सम्बन्ध न निकला।

दयानन्द से सायंकाल तक पं० मोतीराम की बात-चीत होती रही, परन्तु पण्डितजी किसी प्रकार भी मूर्त्तिपूजा के पक्ष में वेद का कोई मन्त्र न दिखा सके।

मोती०—तो फिर माहात्मा और विद्वान् लोग मूर्त्तिपूजा कैसे करते आये हैं ?

दया०—इतिहास में महाभारत और वाल्मीकीय रामायण, मनुस्मृति तथा सूत्रग्रन्थों को देखिए, वेदों का भाष्य देखिए, फिर आपको प्रकट होजाएगा कि मूर्त्तिपूजा निरी गप्प है।

दोनों गुरुभाई शास्त्रार्थ से पराङ्मुख—इसी मेले पर हाथरस के प्रसिद्ध विद्वान् पं० हरजसराय भी आये थे और स्वामी विशुद्धानन्द भी वहीं थे। ये दोनों गुरुभाई थे। पं० हरजसराय अपने विद्यार्थियों से कहा करते थे कि दयानन्द अलग बैठकर मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता है, यदि हमारे सामने आएगा तो उसकी वाक् भी न निकलेगी। विद्यार्थियों ने यही बात आकर स्वामीजी से कह दी। स्वामीजी ने बड़ी प्रसन्नता से उनसे कहा कि ऐसी सिद्धि तो हमें अवश्य देखनी है, जो वाक् भी न निकले, पण्डितजी से हमारी अवश्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेंट करा दो और स्वामी विशुद्धानन्द भी उनके साथ रहें। पं० हरजसराय और स्वामी विशुद्धानन्द से स्वामीजी से भेंट करने के लिए बहुत-कुछ कहा गया, परन्तु वे न आये। इसपर स्वामीजी ने यहाँ तक कहलाकर भेजा कि यदि वे नहीं आते तो हम ही उनके पास चले आएँगे, परन्तु फिर भी वे स्वामजी से वार्त्तालाप करने पर उद्यत न हुए।

काशी-शास्त्रार्थ के कारण महाराज का नाम चतुर्दिक् में प्रतिध्वनित हो रहा था। मेले में जो कोई धर्म्मजिज्ञासु वा प्रतिष्ठित पुरुष आता था वह यथाशक्ति उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनका उपदेश सुनकर और उनके दर्शन करके अपने को कृतकृत्य समझता था।

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर—महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि ब्राह्मसमाज के प्रधान नेता भी मेले में पधारे थे और महाराज का परिचय पाने पर उनसे मिलने आये थे। महाराज उस समय जबकि महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आये, लेटे हुए थे, उनके आने की सूचना पाकर उठकर बैठ गये। दोनों महानुभावों में बहुत देर तक प्रेमालाप होता रहा। महाराज ने उनसे वैदिक पाठशाला स्थापन का प्रस्ताव किया। ठाकुर महाशय ने उत्साहदानपूर्वक कहा कि आप कलकत्ता पधारें। उस समय इस विषय में परामर्श होगा।

महाराज के पूर्व परिचित मित्र काशी निवासी पं० ज्योतिःस्वरूप उदासी भी तीस-चालीस मनुष्यों के साथ श्रीमहाराज से मिलने आये थे और परस्पर के प्रेम-सम्भाषण से सन्तोष लाभ करके चले गये थे।

स्वामीजी ने प्रयाग में अपने भक्तों से अपने जीवन की कुछ घटनाएँ भी कहीं थी, परन्तु अनुसन्धान करने पर किसी ऐसी घटना का पता न लगा जिसका उल्लेख स्वलिखित आत्मचरित में न हो।

ईसाई होने से बच गये—प्रयाग में उन दिनों कुछ लोग ईसाई मत स्वीकार करने पर उद्यत थे। उन्हें महाराज के पास लाया गया। महाराज के संसर्ग और उपदेश से उनके सब संशय मिट गये और वे अपने पैतृक धर्म्म में पूर्ववत् स्थित रहे।

कुछ दुष्ट प्रकृति के मुसलमानों ने महाराज के प्राण-हरण की चेष्टा की थी। उनसे महाराज की रक्षा एक बङ्गाली सज्जन माधवचन्द्र चक्रवर्ती ने की थी।

दयानन्द के सत्संग का प्रभाव—महाराज के सत्संग और उपदेश का लोगों पर असाधारण प्रभाव पड़ता था। न जाने कितने मूर्त्तिपूजक उनके सत्संग से ईश्वर-पूजक बन गये, कितने नास्तिक आस्तिक हो गये, कितने दुराचारी सदाचारी हो गये। उनमें मनुष्यों के चित्त को आकर्षित करने की अद्भुत शक्ति थी, इसका एक देदीप्यमान उदाहरण हम नीचे देते हैं।

दुराचारी की काया पलट—जो लोग महाराज के उपदेश श्रवणार्थ श्रीसेवा में आया करते थे उन्हीं में एक बङ्गाली सज्जन माधवचन्द्र चक्रवर्ती§ भी थे। वे पी०डब्लू०डी० में ओवरसियर थे और उन्होंने पुष्कल धन कमाया था। उस समय वे पेंशन लेकर ठेकेदारी आदि करते थे और उससे भी उन्हें पर्य्याप्त आय थी। वे बड़े तीक्ष्णबुद्धि थे। अंग्रेज़ी के अतिरिक्त वे फ़ारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे और क़व्वालियों (एक प्रकार का फ़ारसी छन्द) के बड़े अनुरागी थे।

१०१ प्रश्न—वे अपने को बड़ा तार्किक समझते थे और अपनी तर्कशक्ति पर उन्हें बड़ा घमण्ड था। वे कहा करते थे कि मेरी युक्तियों का कोई खण्डन नहीं कर सकता। उन्होंने १०१ प्रश्न लिख रक्खे थे और जब कभी किसी धर्म का कोई प्रसिद्ध धर्म्मोपदेशक प्रयाग में आता तो ये उसके पास जाते और वही १०१

---

§ स्वामीजी ने पूना के व्याख्यान में आत्म-चरित वर्णन करते हुए एकजन माधवप्रसाद का उल्लेख किया है। सम्भवतः उनका अभिप्राय इन्हीं माधवचन्द्र से है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रश्न उससे पूछते और उसे निरुत्तर करके चले आते। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भी उन्होंने वही प्रश्न पूछे थे, परन्तु उनके उत्तरों से भी माधवबाबू को सन्तोष न हुआ था।

माधवबाबू जाति के ब्राह्मण थे, परन्तु हिन्दू-धर्म से उनका विश्वास उठ गया था और ईश्वर तक के विश्वास को वे तिलाञ्जलि दे चुके थे। उनके विचार कुछ-कुछ इस्लाम मत की ओर झुके हुए थे।

जैसे उनके विचार थे वैसे ही आचार भी हो गये थे। मद्य-मांस-सेवन तो किसी गिनती में ही न था, उन्होंने एक मुसलमानी वेश्या भी रख छोड़ी थी।

१०१ प्रश्नों का उत्तर—यह तर्क-मदोन्मत्त, विचार-विच्छृङ्खल, आचारहीन व्यक्ति श्रीमहाराज के आगमन का समाचार सुकर श्रीसेवा में भी उपस्थित हुआ और पूर्व अभ्यासानुसार वही १०१ प्रश्न उनसे भी किये, और लगे उनसे टक्कर लेने। थोड़ी ही देर में उन्हें ज्ञात हो गया कि महाराज के सम्मुख पैरों पर खड़ा रहना कठिन कार्य है। कुछ दूर चलकर उनकी तर्कशक्ति ने उनका साथ छोड़ दिया और उनका सारा गर्व चूर्ण हो गया। फल यह हुआ कि उनका हृदय-मन्दिर जो अब तक अश्रद्धा और अविश्वास के तिमिर से आच्छादित था, सत्य और श्रद्धा के आलोक से आलोकित होने लगा। अन्त में उन्होंने महाराज की शिक्षा और उपदेश को ग्रहण किया और जहाँ अपने असत्य विचारों से विदा ली वहाँ अपने कदाचारों की ओर से भी मुँह मोड़ लिया। कल जो घोर नास्तिक था, वही आज ईश्वर का पूर्ण विश्वासी बन गया। महाराज का वह इतना कृपा-पात्र बन गया कि उन्होंने उसे स्वयं अपने करकमलों से सन्ध्या और बलिवैश्वदेव-विधि लिख दी।

माधवबाबू ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर सन्ध्या-हवन और गायत्री जाप करने लगे। उनका आमूल परिवर्त्तन हो गया, धार्मिक दृष्टि से उनका नूतन जन्म हो गया।

माधवबाबू के चित्त और चरित्र में यह परिवर्त्तन देखकर उनके मित्र चकित हो गये। उन्होंने माधवबाबू से इसका कारण भी पूछा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि स्वामीजी जो कुछ कहते थे, उसके विरुद्ध मैं कुछ भी न बोल सका और उसके विरुद्ध मुझे एक भी युक्ति न सूझी और मैंने उनके वचन को सत्य मानकर ग्रहण कर लिया।

मुक़द्दमा हारकर प्रसन्नता—उन दिनों माधव बाबू का एक मुसलमान से मुक़द्दमा चल रहा था, उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि क्या करना चाहिए। स्वामीजी ने कहा जो सत्य हो वही कहना चाहिए। माधवबाबू ने ऐसा ही किया, परिणाम यह हुआ कि वे मुक़द्दमा हार गये और उन्हें भारी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी, परन्तु इससे उन्हें तनिक भी दुःख न हुआ, प्रत्युत बड़ी शान्ति मिली। मुक़द्दमें के विषय में वे कहा करते थे कि जब मुक़द्दमा हारकर मैं कचहरी से बाहर आया और इक्के पर घर लौटा तो जिस निर्मल आनन्द का भोग मैंने उस समय किया वैसा पहले कभी मुक़द्दमा जीतने पर भी नहीं किया था।

मित्र चकित—एक बार माधवबाबू ने अपने एक मित्र शरच्चन्द्र चौधरी ग्वालियरवासी को अपने ग्वालियर आने और उनके ही पास ठहरने की सूचना दी। शरच्चन्द्र उस सूचना को पाकर कुछ असमञ्जस में पड़ गये, क्योंकि उनके गृह पर ब्राह्मसमाज के अधिवेशन हुआ करते थे और माधवबाबू को वह जानते ही थे कि वह मत्स्य-मांसभोजी, सुरापायी और उच्छृङ्खल प्रकृति का व्यक्ति है। ऐसे मनुष्य को ब्राह्म-मन्दिर में ठहराना सर्वथा अनुचित था, परन्तु दूसरी ओर एक प्रणयास्पद सुहृद् के साथ कोई अनुचित व्यवहार करना भी निन्दनीय था। वे इसी चिन्ता में थे कि क्या करना चाहिए कि माधवबाबू आ पहुँचे और शरच्चन्द्र के गृह पर ठहर गये, परन्तु जब शरच्चन्द्र का अपने मित्र से वार्त्तालाप हुआ तो वे पहले के माधवबाबू नहीं रहे थे। उनके कुविचार और कदाचार, सुविचार और सदाचार में परिवर्तित हो गये थे। माधवबाबू ने उनसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा कि एक महापुरुष के दर्शन करके मैंने अपने जीवन में प्रथम बार शान्तिलाभ की है और अब मैंने अपना रहन-सहन, आचार-विचार, चाल-ढाल, सब-कुछ परिवर्तित कर लिया है। उस महापुरुष का नाम 'स्वामी दयानन्दजी सरस्वती' है। प्रातःकाल जब शरत् बाबू उठे तो उन्होंने देखा कि उनके मित्र भी स्नान आदि से निवृत्त होकर सन्ध्या-आग्निहोत्र कर चुके हैं और खड़े होकर गायत्री जाप कर रहे हैं। जप की समाप्ति पर शरत् बाबू ने माधवबाबू से पूछा कि खड़े होकर जप करने का क्या कारण है ? तो माधवबाबू ने कहा कि स्वामीजी का यही आदेश है कि सन्ध्योपासना के पश्चात् खड़े होकर एक सहस्र गायत्री जपने से पूर्वकृत दुष्कर्म्मों का मालिन्य नष्ट हो जाता है।

जब तक श्रीमहाराज प्रयाग में विराजे तब तक माधवबाबू अपने पाचक के हाथ उनके लिए भोजन भेजते रहे।

विदुषी बाजीबढनगरी—विदुषी बाजीबढनगरी जो काशी में बरना संगम पर रहती थीं, उन दिनों विद्योपार्जन कर रही थीं। एक दिन वह भी स्वामीजी के दर्शनों को गई थीं। स्वामीजी उस समय गङ्गा-तट पर पत्थर के फ़र्श पर बैठे थे और बहुत-से संन्यासी और पण्डित वहाँ उपस्थित थे। बाजीबढनगरी के सामने जिसने भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ-चर्चा की वह थोड़ी देर तक भी तर्कयुद्ध में उनके सम्मुख खड़ा न रह सका अन्त में उसे अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर मूक होना पड़ा। कुछ देर तक बाजीबढनगरी यह आनन्द देखकर चली गई। उन्हें स्वामीजी से कथोपकथन करने का अवसर न मिला। अगले दिन वह फिर गई और स्वामीजी से धर्म-विषय पर प्रश्न किये जिनका समुचित उत्तर पाकर वह सन्तुष्ट हो गई। उन्होंने स्वामीजी से यह भी पूछा कि आप प्रयाग से कहाँ जाएँगे तो स्वामीजी ने मिर्ज़ापुर जाने का विचार प्रकट किया, अतः वह भी इस आशा में कि वहाँ महाराज के उपदेश से लाभ उठाने का अच्छा अवसर मिलेगा, मिर्ज़ापुर ही चली गई।

प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग—एक दिन एक साधु ने महाराज से निवृत्ति और प्रवृत्ति-मार्ग के विषय में बातचीत की। महाराज ने उसके कथन की निःसारता प्रतिपादित की और इसी विषय पर उस दिन व्याख्यान भी दिया जिसमें उन्होंने दर्शाया कि जो निवृत्ति मार्ग की महिमा का राग अलापते हैं उनका जीवन पशुजीवन से अच्छा नहीं है। वे लोगों को आलसी बनाते हैं। दूसरों को तो निवृत्ति-मार्ग का उपदेश करते हैं, परन्तु स्वयं दर-दर उदर-पूर्त्ति के लिए भिक्षा माँगते हैं। **क्रियात्मक जीवन ही जीवन है। वेद-विहित शुभ कर्मों का करना ही निवृत्ति-मार्ग है। वही मनुष्य ज़ीवित कहलाने के अधिकारी हैं, जो अपने जीवन को लोकहित के कार्यों में लगाता है।**

(मार्च—अप्रैल) मिर्ज़ापुर (फाल्गुन २६—चैत्र शु० २७)

मिर्ज़ापुर आकर स्वामीजी सेठ रामरत्न लड्ढा के बाग़ में ठहरे, जो मिर्ज़ापुर नगर और विन्ध्याचल पर्वत के बीच में है। स्वामीजी ने अपने आने का समाचार पं० मोतीराम के पास भेजा जो उनसे प्रयाग में मिल चुके थे। पं० मोतीराम तुरन्त ही श्रीसेवा में उपस्थित हुए। स्वामीजी ने उनसे पहला ही प्रश्न यह किया कि मूर्त्तिपूजा के विषय में कोई वेद का प्रमाण मिला वा नहीं। पाठकों को स्मरण होगा कि प्रयाग में स्वामीजी ने पं० मोतीराम से कहा था कि महाभारत, वाल्मीकीय रामायण, सूत्रग्रन्थ और वेदों में इस विषय पर प्रमाण देखना। पं० मोतीराम ने उत्तर दिया कि कोई प्रमाण नहीं मिला। इसपर स्वामीजी ने कहा कि मूर्त्तिपूजा वास्तव में झूठी है, ईश्वर-प्राप्ति तो योगाभ्यास से ही हो सकती है।

दिनचर्या—यहाँ भी महाराज केवल कौपीन धारण करते, शरीर पर मृत्तिका लगाते और संस्कृत ही बोलते थे। रात्रि को एक पत्थर सिर के नीचे और दो पैरों के नीचे रखकर सो जाया करते थे। रात्रि में दो बजे के लगभग उठकर गङ्गा-तट पर चले जाते और शौच-स्नान से निवृत्त होकर शरीर पर मृत्तिका लगाकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लौट आते और तीन बजे से सूर्योदय तक ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते, फिर उठकर टहलने लगते। स्वामीजी की संस्कृत को सुनकर बाग़ के माली टूटी-फूटी संस्कृत बोलने लगे थे।

चौकीदार डर गया—गङ्गा-तट पर जाने का मार्ग मिस्टर सी० बोल्ड एक अंग्रेज़ के लाख बनाने के कारखाने के नीचे होकर था। एक रात्रि में ऐसा हुआ कि सी० बोल्ड के चौकीदार ने स्वामीजी को कारखाने के नीचे से होकर जाते हुए देखा। अँधेरे में वह एक विशाल-काय मनुष्य को कारखाने के पास देखकर डर गया। उनसे सी० बोल्ड को जगाकर कहा कि कोई बड़ा लम्बा-चौड़ा आदमी कारखाने के पास है। वे लालटैन लेकर उसके साथ आये तो उन्होंने देखा कि स्वामीजी हैं। उन्होंने चौकीदार से कह दिया कि ये चाहे जिस समय आवें, इन्हें मत रोका करो।

दयानन्द का दरबार—अन्य स्थानों के समान मिर्ज़ापुर में भी सैकड़ों मनुष्य उनके पास आने-जाने लगे। प्रातःकाल से रात्रि के १२ बजे तक उनके पास दर्शकों का ताँता लगा रहता था। कोई सद्भाव से आता, कोई केवल दर्शन करने, कोई धर्म-विषयक जिज्ञासा करने, कोई शास्त्रार्थ करने तो कोई उन्हें अपमानित करने। ऐसे लोगों की भी कमी न थी जो उन्हें मारने-पीटने के ही सङ्कल्प से आते थे और यदि उनका वश चलता तो इसमें आनाकानी भी न करते। महाराज का दरबार क्या मित्र, क्या शत्रु सबके लिए खुला था। वे सबके साथ प्रेम का बर्ताव करते थे, परन्तु यदि कोई उनके साथ दुष्टता का व्यवहार करने को अग्रसर होता तो वे रुद्ररूप धारण करके उसे दण्ड देने पर भी उद्यत हो जाते थे।

मिर्ज़ापुर में कितने ही लोगों ने स्वामीजी के उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ दी थी और बहुत-से ब्राह्मणों ने सन्ध्या करनी आरम्भ कर दी थी।

कलक्टर मिलने का इच्छुक—उस समय मिर्ज़ापुर के कलक्टर मिस्टर जेंकिन्सन थे। उन्होंने एक दिन मिर्ज़ापुर के रईस चौधरी गुरुचरण से कहा कि रामरत्न लङ्का के बाग़ में एक विद्वान् संन्यासी ठहरा है, जो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता है। आप उसके पास जाकर ज्ञात करो कि उसका क्या अभिप्राय है ? तदनुसार वे स्वामीजी के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक विशाल, तेजोदीप्त मूर्त्ति विराजमान है और चारों ओर से लोग उसे घेरे हुए बैठे हैं। अनेक मनुष्य विविध प्रश्न करते हैं और स्वामीजी उनका सरल, सुन्दर और अनवरत संस्कृत में उत्तर देते और उनका समाधान करते हैं। चौधरी गुरुचरण ने उनसे पूछा कि आपका सङ्कल्प क्या है ? उन्होंने उत्तर दिया कि सनातन वेदोक्त धर्म का इस समम लोप हो गया है, उसे पुनः प्रतिष्ठित करना ही हमारा सङ्कल्प है। चौधरी गुरुचरण ने सब वृत्तान्त कलक्टर साहब से कहा तो उन्होंने भी स्वामीजी से मिलने की इच्छा प्रकट की, परन्तु थोड़े दिन पश्चात् ही उनकी मिर्ज़ापुर से बदली हो गई, वे स्वामीजी के दर्शन न कर सके।

रईस अनुगत—पहली ही भेंट में चौधरी गुरुचरण स्वामीजी के गुणग्राम के इतने प्रभावित हो गये कि वे प्रतिदिन महाराज की सेवा-शुश्रूषा में रत रहने लगे और उनके अनन्य भक्त बन गये।

एक और सेठ अनुगत—सेठ रामरत्न स्वामीजी के प्रयाग में दर्शन कर चुके थे और सम्भवतः इस पूर्वपरिचय के कारण भी स्वामीजी ने उनके बाग में डेरा किया था। यह भी हो सकता है कि वे मिर्ज़ापुर आने के लिए स्वामीजी को निमन्त्रित कर आये हों।

गुरु का दोष-दर्शन—बाबा बालकृष्ण सेठ रामरत्न के गुरु थे। उन्होंने महाभारत की टीका लिखी थी। जिसमें भगवद्गीता को प्रक्षिप्त बताया था। पहले वे स्वामीजी की प्रशंसा करते रहे, परन्तु जब स्वामीजी ने उनकी रची हुई महाभारत की टीका में असंगति दोष, व्याकरण की अशुद्धियाँ दर्शाईं तो वे स्वामीजी की निन्दा करने लगे। स्वामीजी ने उनसे कहलाकर भेजा कि वे अपनी टीका के शुद्धाशुद्ध होने के विषय में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रार्थ कर लें, परन्तु उन्होंने कह दिया कि हम स्वामीजी के स्थल पर नहीं जाएँगे। इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि यह स्थान हमारा नहीं, तुम्हारा ही है, क्योंकि तुम्हारे शिष्य का है, यहाँ नहीं तो अपने दूसरे शिष्य के बाग में जो पास ही है, आ जाइए अथवा गङ्गा पर चलकर गङ्गा की रेती में शास्त्रार्थ कर लीजिए। सेठ रामरत्न ने भी उनसे शास्त्रार्थ करने का अनुरोध किया, परन्तु वे किसी प्रकार सहमत नहीं हुए।

शास्त्रार्थ का पत्र—एक दिन मिर्ज़ापुर के कुछ ब्राह्मणों ने एक पत्र संस्कृत में स्वामीजी की सेवा में भेजा जिसमें उन्होंने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने की अभिलाषा प्रकट की और यह भी लिखा कि आप शास्त्रार्थ में अपने प्रतिपक्षी को मूर्खादि कटु-शब्द कह दिया करते हैं। यदि ऐसे शब्द आपने कहे तो आपको दण्ड दिया जाएगा। स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करना सहर्ष स्वीकार किया और लोगों से यह भी कहा कि गोविन्दभट्ट को (जो पत्र लेखकों में से था) भागवत का बड़ा अभिमान है, यदि वह शास्त्रार्थ करने आएगा तो उस अभिमानी को अवश्य ही मूर्ख बनाऊँगा।

पत्र की अशुद्धियाँ—पत्र भेजने के दो घण्टे पश्चात् वे लोग आये। उनमें गोविन्दभट्ट और पं० जयश्री भी थे। उनके आते ही स्वामीजी ने उस पत्र की अशुद्धियाँ दिखानी आरम्भ की। पण्डित ने कहा कि अक्षर अच्छे न होने के कारण पत्र एक लेखक से लिखाकर दिया गया था, उसने अशुद्ध लिख दिया।

इसपर स्वामीजी बोले कि फिर आप लोगों ने शुद्ध क्यों न कर लिया, क्या शोधने की योग्यता न थी?

भागवत-मण्डन की चेष्टा—पण्डितों ने कहा कि जिस कार्य्य के लिए हम लोग आये हैं वह होना चाहिए। इन बातों को जाने दीजिए। तत्पश्चात् गोविन्दभट्ट ने भागवत का मण्डन आरम्भ किया, परन्तु उनका उच्चारण इतना अशुद्ध था कि स्वामीजी उन्हें टोकने पर बाधित हुए। तब गोविन्दभट्ट के ही एक साथी ने उनसे कहा कि भट्टजी आप हट जाइए और जयश्री से शास्त्रार्थ होने दीजिए। तब जयश्री से शास्त्रार्थ होने लगा, परन्तु दर्शकों की भीड़ बहुत हो गई थी। स्वामीजी ने कहा कि चलो मैदान में चलकर बैठें। वहाँ बात-चीत होगी। इसपर सब लोग खुले स्थान में चले गये। पूर्व की ओर स्वामीजी और पश्चिम की ओर पण्डितगण बैठे और मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ—

जयश्री—मूर्त्तिपूजा के खण्डन में वेदों का कोई प्रमाण दीजिए ?

दयानन्द—**'न तस्य प्रतिमाऽअस्ति'** आदि—यह यजुर्वेद का मन्त्र है, जिसमें स्पष्ट कहा कि कि परमेश्वर की प्रतिमा नहीं है।

जयश्री उक्त मन्त्र का दूसरे प्रकार अर्थ करने लगे। इसपर स्वामीजी ने अपने अर्थ की पुष्टि में प्रमाण दिये तो जयश्री बोले—

जयश्री—इस मन्त्र के अर्थों पर हमारा और आपका युक्तिपूर्वक शास्त्रार्थ होना चाहिए।

ताली किसने बजाई—स्वामीजी ने 'तथास्तु' कहकर जयश्री के अर्थों में युक्तिपूर्वक दोष दिखाये। जयश्री ने उनका उत्तर देने का यत्न किया, परन्तु सफल न हुए और क्रोध में भर गये। इसपर जयश्री के साथी ने जो स्वामीजी के पीछे बैठा हुआ था ताली बजा दी। स्वामीजी एकदम खड़े हो गये और पूछा कि ताली किसने बजाई और ललकार कर बोले कि खबरदार ! यदि ऐसी कुचेष्टा करोगे तो मैं अकेला ही सबको पीट सकता हूँ, तुम मुझे दुष्टता दिखाने आये हो और आज्ञा दी कि बाग़ के द्वार बन्द कर दो। पं० सरयूप्रसाद शुक्ल ने बीच में पड़कर झगड़े को शान्त किया और उस मनुष्य ने भी क्षमा-प्रार्थना की और कहा कि ताली मैंने बजाई थी, परन्तु उपहास के लिए नहीं, प्रत्युत अपने साथियों को चलने का संकेत किया था।

ये लोग इसमें सन्देह नहीं कि झगड़ा करने के लिए तैयार होकर आये थे। इसका संकेत उन्होंने अपने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्र में किया था। पं० सरयूप्रसाद बीच में न पड़ते और वे लोग यदि स्वामीजी की डाँट से भयभीत न हो जाते तो कुछ-न-कुछ उपद्रव अवश्य करते।

स्वामीजी को शान्त होते कुछ देर न लगती थी। वे ताली बजानेवाले मनुष्य की क्षमा-याचना पर ही शान्त हो गये। इस समय सायंकाल हो गया था। स्वामीजी ने सब लोगों से यह कहकर कि सन्ध्यावन्दन का समय हो गया, सब लोगों को सन्ध्योपासना करनी चाहिए, उपस्थित जनता को विदा किया।

गीता के श्लोक की व्याख्या—एक दिन एक सज्जन, जो गीता का बड़ा प्रेमी था, स्वामीजी के पास आकर बोला कि महाराज मैंने गीता की अनेक टीकाएँ देखी हैं, परन्तु इस श्लोक का अर्थ समझ में नहीं आया। आप अनुग्रह करके इसका अर्थ मुझे समझा दें।

सर्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

स्वामीजी ने इसका अर्थ किया कि 'धर्म्मान्' शब्द को यहाँ 'अधर्म्मान्' समझना चाहिए। *'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्'* व्याकरण के नियम के अनुसार 'सर्व' में जो वकार में अकार है वह 'अधर्म्मान्' के अकार में तद्रूप हो गया, अर्थात् वह वकार का अकार उसमें मिल गया, इस प्रकार यद्यपि 'अधर्म्मान्' शब्द ने 'धर्म्मान्' का रूप ग्रहण कर लिया, परन्तु वास्तव में 'अधर्म्मान्' ही रहा। यह अर्थ सुनकर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और जब उसने स्वामीजी से इस अर्थ की पुष्टि में प्रमाण माँगा तो उन्होंने वेद के दो-तीन मन्त्रों का प्रमाण देकर उसका सन्तोष कर दिया।

पुजारी की दुष्टता—मिर्ज़ापुर में बूढ़े महादेव का एक प्रसिद्ध मन्दिर है। उसका पुजारी छोटूगिरि गोसाईं बड़ा हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। वह महाराज के मूर्त्तिपूजा-खण्डन करने के कारण उनसे अत्यन्त द्वेष करता था। एक दिन वह अपने कुछ साथियों को लेकर महाराज के प्राणहरण करने के अभिप्राय से उनके पास आया। उस समय केवल दो-तीन मनुष्य ही महाराज के पास बैठे थे। छोटूगिरि महाराज की जंघा-से-जंघा मिलाकर बैठ गया और बोला कि 'बच्चा ! अभी तू कुछ पढ़ा नहीं है, अभी कुछ पढ़, जिस इन्द्रिय से तेरी उत्पत्ति हुई है, उसी का तू खण्डन करता है, और यह श्लोक पढ़ा **"ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गं तं प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम्"**। स्वामीजी ने कहा कि "वह तो पत्थर है, तुम्हारी उससे उत्पत्ति हुई होगी, मैं तो अपने माता-पिता से उत्पन्न हुआ हूँ"। एक मनुष्य बताशों का एक दोना स्वामीजी को भेंट कर गया था। छोटूगिरि ने कहा यह बताशे हैं ? स्वामीजी ने कहा कि हैं। तब उसने बताशों की ओर हाथ बढ़ाया। स्वामीजी ने कहा कि खा लो, परन्तु उच्छिष्ट मत छोड़ना, परन्तु उस दुष्ट ने उनकी उस आज्ञा का भी तिरस्कार किया और चिल्लाकर बोला 'बच्चा! हम तेरे गुरु हैं, आज सब खण्डन करने का फल तुझे ज्ञात हो जाएगा।'

दुष्टता का उत्तर—स्वामीजी ने देखा कि छोटूगिरि दुष्टता करना चाहता है, तब वे खड़े हो गये और सिरहाने का पत्थर उठाकर ज़ोर से हुङ्कार किया और कहा कि "मूर्ख ! तू मुझे भय दिखाता है; यदि मैं ऐसे ही भय खाता तो देश में घूमकर खण्डन कैसे करता ? और ललकार कर बोले कि "कोई है, किवाड़ बन्द कर दो, मैं अकेला ही इन्हें पीट सकता हूँ।" महाराज के हुंकृत से ही वह दुष्ट और उसके साथी भय से काँपने लगे। छोटूगिरि का एक साथी हाथ जोड़कर बोला कि महाराज हमें कैसे प्रतीत हो कि मूर्त्तिपूजा उचित नहीं है। इसपर महाराज ने शान्तिपूर्वक कहा कि वेदों में उसका कहीं प्रमाण नहीं और परमेश्वर स्वतन्त्र है वह किसी के वश में नहीं आ सकता जैसेकि तुम रात्रि में मूर्त्ति को ताले के अन्दर बन्द करके चले जाते हो। मूर्त्ति तो जड़ है, वह किसी को वर व शाप नहीं दे सकती। केवल एक परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए और ब्राह्मणों का मुख्य कर्म सन्ध्या, गायत्री-जप और अग्निहोत्र करना ही है। इसके पश्चात् थोड़ी देर तक ये लोग और बैठे रहे और सरलता से बात-चीत करके चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रक्षा का प्रबन्ध—इस घटना का समाचार पाकर ज़िला मजिस्ट्रेट ने स्वयं ही अथवा किसी सज्जन के अनुरोध से स्वामीजी की रक्षा के निमित्त एक कान्स्टेबिल को स्वामीजी के निवास-स्थान पर पहरा देने के लिए नियत कर दिया।

चक्री शब्द का अर्थ—एक मनुष्य से बात-चीत करते हुए स्वामीजी ने प्रसङ्गवश मनु के एक श्लोक में आये हुए 'चक्री' शब्द का अर्थ कुम्हार किया। उस मनुष्य ने कहा कि कुल्लूकभट्ट ने तो इसका अर्थ तेली किया है। स्वामीजी ने कहा कि कुल्लूक तो उल्लूक है, तेली के पस तो कोल्हू होता है चक्र (चाक) नहीं, वह तो कुम्हार के पास है, अतः चक्री का अर्थ कुलाल ही हो सकता है।

मिर्ज़ापुर में स्वामीजी ने एक बङ्गाली बनवारीलाल को अंग्रेजी सीखने और मैक्समूलरकृत वेदों का अंग्रेजी अनुवाद सुनाने के लिए नौकर रक्खा था।

पादरी से वार्त्तालाप—मिर्ज़ापुर के पादरी मैथर (Mather) कभी-कभी स्वामीजी से मिलने जाया करते थे। एक दिन कथाप्रसंग में उन्होंने स्वामीजी से कहा कि यदि वेदों की प्रचलित टीकाएँ ठीक नहीं हैं तो आप अपनी ही टीका क्यों नहीं बनाते ? पादरी साहब कहते हैं कि उस समय स्वामीजी ने उन्हें यह उत्तर दिया कि वेदों की टीका केवल (साधारण) बुद्धि के बल से नहीं बन सकती, जब तक तस्यापूत बुद्धि न हो तब तक वेदों के अर्थ ग्रहण करने कठिन हैं।§

वैदिक पाठशाला की स्थापना—इन दिनों स्वामीजी की यह धारणा थी कि स्थान-स्थान पर वैदिक पाठशाएँ स्थापित की जाएँ और जो विद्यार्थी उनमें शिक्षा पाकर निकलें उनसे वैदिक धर्म प्रचार कराया जाए। यही विचार उन्होंने मिर्ज़ापुर में प्रकट किया। उनके उपदेश और अनुरोध से चौधरी गुरुचरण रईस ने वैदिक पाठशाला अपने व्यय से स्थापित करनी और चलानी स्वीकार करली और अपना एक गृह भी जो लालडिग्गी के पास था उसके लिए दे दिया। तब स्वामीजी मथुरा गये और वहाँ से अपने सहपाठी पं० युगलकिशोर को और अन्य पण्डित बलदेवप्रासद नामक को अध्यापक नियत करके अपने साथ ले-आये। इसके अतिरिक्त एक तीसरा पण्डित भी नियत किया गया। विद्यार्थियों को भोजन और पुस्तकों का व्यय भी चौधरी गुरुचरण ही देते थे। पाठशाला पर उनका लगभग १५०) मासिक व्यय होता था। जिसे वे अकुण्ठित चित्त से वहन करते थे। विद्यार्थियों को इस शर्त पर पाठशाला में भर्ती किया जाता था कि वे छह वर्ष से पहले पाठशाला न छोड़ेंगे। उनके लिए प्रत्यह सन्ध्या, अग्निहोत्र करने की व्यवस्था की गई थी। जो विद्यार्थी सूर्य्योदय से पहले नहीं उठता था और सन्ध्या नहीं करता था, उसे दिनभर निराहार कहकर गायत्री जपनी होती थी। पाठशाला के लिए स्वामीजी उपयोगी और आवश्यक ग्रन्थ काशी जाकर स्वयं ले-आये थे। उस समय पाठशाला में विद्यार्थियों की संख्या ३०-३५ हो गई थी। पाठशाला ज्येष्ठ‡ संवत् १६२७ में स्थापित हुई थी। बीच में

---

§ पादरी साहब के कथन से यह टपकता है कि स्वामीजी उस समय अपने को वेदभाष्य करने के योग्य नहीं समझते थे, परन्तु यह बात समझ में नहीं आती। जब तक उन्होंने अपने को प्रचार कार्य के लिए तैयार नहीं कर लिया था तब तक उन्होंने प्रचारकार्य आरम्भ नहीं किया था। यह हो सकता है कि उस समय तक उन्होंने वेद-भाष्य करने का विचार न किया हो और पादरी साहब के इस ओर ध्यान दिलाने पर ही उनके मन में वेद-भाष्य करने का सङ्कल्प जाग्रत् हुआ हो और इसीलिए उन्होंने बनवारीबाबू को मैक्समूलर का वेदों का अंग्रेजी अनुवाद सुनने के लिए नियत किया हो। यह हो सकता है कि स्वामीजी ने वेदभाष्यकर्त्ता के गुण वर्णन करने में उपर्युक्त शब्द कहे हों और स्मृतिदोष से पादरी साहब को सारा प्रसङ्ग और वार्त्तालाप उपस्थित न रहा हो। **—संग्रहकर्ता**

‡ हमारे विचार में यहाँ 'चैत्र' होना चाहिए, क्योंकि मिर्ज़ापुर से वे काशी गये, वहाँ दो मास ठहरे और ज्येष्ठ में कासगंज पहुँचे। देखो अगला पृष्ठ। **—यु०मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी रामरत्न के बाग़ से उठकर मैनपुरी के गोसाईं के बाग़ में चले गये थे, परन्तु वहाँ व्यवस्था अनुकूल न रही और फिर रामरत्न के बाग़ में लौट आये थे।

जब तक स्वामीजी मिर्ज़ापुर में रहे, उनके लिए भोजन पण्डित सरयूप्रसाद शुक्ल के यहाँ से आता रहा। रात्रि में बाग़ का माली दूध गर्म करके उन्हें पिला दिया करता था।

मृत्यु का पुरश्चरण—मिर्ज़ापुर में एक ओझा ठहरा हुआ था। उसने यह डींग मारी कि यदि कोई हमसे मारण का पुरश्चरण कराये तो इक्कीसवें दिन दयानन्द की मृत्यु हो जाए। मूर्त्तिपूजक लोग स्वामीजी से चिढ़े हुए तो थे ही, अतः उनमें ऐसे मूर्खों की कमी न थी जो हृदय से स्वामीजी के मरण के इच्छुक न हों। ऐसा ही एक मूर्ख, परन्तु धनी सेठ उस ओझा को मिल गया। उसने ओझा से कहा कि जितना रुपया चाहिए वह मुझसे लो और दयानन्द पर मन्त्र चलाओ। ओझाजी पुरश्चरण करने लगे।

पुरश्चरण करानेवाला स्वयं मृत्यु के मुख में—अभी उन्हें पुरश्चरण करते हुए तीन-चार दिन ही हुए थे कि कि दैवयोग से सेठजी के गले में एक फोड़ा हो गया। उसने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया कि सेठजी को खाना, पीना, बोलना-चालना दूभर हो गया। सेठजी की पीड़ा बढ़ती रही और उधर ओझाजी की कढ़ाई चढ़ती रही। एक दिन ओझाजी सेठजी के पास आकर बोले कि पुरश्चरण समाप्ति का दिन समीप आ रहा है, बलि की सामग्री प्रस्तुत करा दीजिए, इधर बलि दी जाएगी और उधर दयानन्द का सिर धड़ से अलग होकर भूमि पर गिर पड़ेगा। सेठजी को अपने प्राणों की पड़ी थी। वे बोले कि दयानन्द का सिर तो जब गिरेगा तब गिरेगा अब तो सबसे पहले मेरा ही सिर गिराना चाहता है, अतः कृपा करके अपना पुरश्चरण बन्द कर दीजिए।

पीटने का प्रयत्न—उस दिन छोटूगिरि स्वामीजी के पास से बहुत लज्जित होकर लौटा था। उसकी सारी हेकड़ी और गुण्डापन निकल गया था, परन्तु यह बात उसके मन में काँटे की भाँति खटकती रही और वह किसी-न-किसी प्रकार स्वामीजी से बदला लेने के विषय में सङ्कल्प-विकल्प करता रहा। अन्त को उसने दो गुण्डों को समझा-बुझाकर स्वामीजी को पीटने को भेजा। वे जाकर स्वामीजी के पास बैठ गये। उस समय महाराज पं० रामप्रसाद को कुछ शास्त्रीय बातें बता रहे थे। ये गुण्डे बीच-बीच में हँसने और व्यंग्यपूर्ण बातें करने लगे। एक दो-बार तो महाराज ने उन्हें सभ्यतापूर्वक कोमल शब्दों में रोका, परन्तु जब वे न माने तब महाराज ने उठकर ऐसा हुँकार किया कि दोनों भय से काँपते हुए भूमि पर गिर पड़े, यहाँ तक कि उनका मूत्र-पुरीष भी निकल गया और वे संज्ञारहित हो गये। पं० रामप्रसाद को भी यह हुँकारनाद इतना असह्य हुआ कि उन्होंने अपने कानों में अंगुलियाँ डाल लीं। फिर पं० रामप्रसाद जल के छींटे देकर दोनों गुण्डों को होश में लाये और महाराज ने उन्हें उचित शिक्षा देकर विदा किया। मिर्ज़ापुर से स्वामीजी काशी चले गये।

(अप्रैल—जून) **काशी** (चैत्र शु०—ज्येष्ठ)

पुनः शास्त्रार्थ का चैलैंज—मिर्ज़ापुर से स्वामीजी गङ्ग के तट पर विचरते हुए काशी पधारे और लाला माधोलाल रईस के बाग में, जो दुर्गाकुण्ड के निकट है, निवास किया। इस बार भी वे पूर्ववत् मूर्त्तिपूजादि अवैदिक प्रथाओं का बेधड़क होकर खण्डन करने में प्रवृत रहे। काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा और विज्ञापन छपवाकर बँटवाया, परन्तु उनमें से किसी का उनके सम्मुख आने का साहस न हुआ। अपने प्रियतम और जीविका के आधार मूर्त्तिपूजन पर दयानन्द के तर्कों की चोट-पर-चोट पड़ती देखकर वे मन-ही-मन कुढ़ते और दयानन्द को कोसते अवश्य रहे, परन्तु उनके तर्कों का उत्तर न दे सके।

अद्वैतमत खण्डन—स्वामी शङ्कराचार्य प्रवर्त्तित नवीनवेदान्त—**'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नागरः' हिन्दुओं के प्रायः बड़े-बड़े विद्वानों की विश्वासभूमि है। इस विषय में भी कुछ नहीं कहना है कि उसके समर्थन में स्वामी शङ्कराचार्य और उनके अनुयायी लोगों ने अनेक तर्क और युक्तियों का जाल बना रक्खा है, उसकी सिद्धि में बड़े-बड़े ग्रन्थ रचे गये हैं, जिनपर उच्च कोटि के सुशाणित-बुद्धिसम्पन्न सूक्ष्मदर्शी विद्वानों ने अपना पाण्डित्य समाप्त कर दिया है और उसकी रक्षा के लिए तर्क और युक्ति का सुदृढ़ दुर्ग निर्माण करके खड़ा कर दिया है। उन्हीं युक्तियों से स्वामी शङ्कराचार्य ने अनेक जैन और बौद्ध दार्शनिकों को शास्त्रार्थ में परास्त करके, अनेक राजाओं, महाराजाओं को अपना अनुयायी बनाकर जैन और बौद्धमत को भारत से नष्टप्राय किया था। इस बार दयानन्द ने इसी दुर्ग पर गोला बरसाया और उसके खण्डन में 'अद्वैतमतखण्डन' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की।

काशी में दो मास§ तक अवैदिक मतों की कुरीतियों का खण्डन और सत्य वैदिक धर्म का मण्डन करके स्वामीजी गङ्गा के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चले गये।

सोरों

जिस समय महाराज पहले सोरों पधारे थे तब पं० सुखानन्द व अयोध्याप्रसाद आदि बहुत-से लोगों ने उनसे कासगंज जाने के लिए कहा था तो उन्होंने यह उत्तर दिया था कि अब तो हम गङ्गा-तट पर विचरते हैं, गङ्गा-तट को छोड़कर अन्य स्थान पर तब जाएँगे जब वहाँ के लोग संस्कृत की पाठशाला स्थापित करेंगे, अतः उस समय वे कासगंज नहीं गये।

(जून—अक्तूबर) कासगञ्ज (ज्येष्ठ—आश्विन)

जब वे काशी से लौटकर ज्येष्ठ संवत् १६२७ में सोरों आये तब तक कासगंज के लोगों ने पाठशाला स्थापित करने का प्रबन्ध कर लिया था। उन्हें महाराज के सोरों आने का वृत्त ज्ञात हुआ तो वे उनके पास गये और उन्हें कासगंज लिवा लाये। कहते हैं कि लिवा लाने के लिए उपर्युक्त पण्डित सुखानन्द और अयोध्या प्रसाद आदि १०० मनुष्यों के लगभग गये थे। स्वामीजी गोसाईं बलदेवगिरि की बग्घी में सवार होकर उन्हें अपने साथ लेकर कासगंज पहुँचे।

शोभा-यात्रा—जब बग्घी नगर के निकट पहुँची तो रोक दी गई और जब सब लोग जो पैदल आ रहे थे आ गये तो उन लोगों ने स्वामीजी से पूछा कि आपको नगर में होकर जाने में तो कोई आपत्ति नहीं है। स्वामीजी ने कहा कि कोई आपत्ति नहीं। तब सब लोगों ने स्वामीजी की बग्घी को आगे किया और वे उसके पीछे चले। नगर में सोरों द्वार से प्रवेश करके नदरई द्वार से बाहर निकले। स्वामीजी को मुकन्दराम रईस के उद्यानगृह में ठहराया गया।

पाठशाला स्थापना—पाठशाला स्थापित करने का विचार लोगों ने पहले ही से दृढ़ कर रक्खा था, अतः महाराज के आगमन के कुछ काल पश्चात् ज्येष्ठ मास में पाठशाला स्थापित हो गई। पं० दुलाराम को, जो फ़र्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़ा रहे थे, बुलाकर अध्यापक नियत कर दिया गया। महाराज को उनका नाम पसन्द नहीं था, अतः उन्होंने दुलाराम की जगह उनका नाम दिनेशराम रक्खा।

पाठशाला में निम्नलिखित नियम प्रचारति किये गये—

---

§ ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी मिर्ज़ापुर से काशी सम्भवतः चैत्र मास की किसी तिथि को आ गये थे और काशी से पुनः मिर्ज़ापुर पाठशाला स्थापना करने गये और फिर वहाँ से काशी लौट गये। वापस आकर काशी में थोड़े दिन ठहरे, अतः काशीवास का दोनों बार का सब समय दो मास समझना चाहिए। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१. केवल वही विद्यार्थी भर्ती किया जाए जो सन्ध्या करना जानता हो।

२. वेद, अष्टाध्यायी, महाभाष्य और मनुस्मृति पढ़ाये जाएँ।

३. कोई विद्यार्थी सूर्य्योदय से पहले उठकर सन्ध्य न करे तो उसे मध्याह्न का भोजन न दिया जाए, सायङ्काल को सन्ध्या करने के पश्चात् दिया जाए।

४. भोजन नगर में रहनेवाले विद्यार्थियों को न दिया जाए, केवल बाहर के विद्यार्थियों को ही दिया जाए।

५. एक कोठरी में हवनकुण्ड खुदवाकर विद्यार्थियों को सायं और प्रातः अग्निहोत्र करने की आज्ञा दी जाए।

दिलसुखराय गिरधारीलाल की दुकान पर २८०० रुपये पुण्यार्थ जमा थे, वे भी सबकी सम्मति से पाठशाला को दे दिये गये।

पाठशालार्थ धन-प्राप्ति—इस समय कासगंज में एक तहसीलदार ने सोरों में गङ्गा-तट पर एक पक्का घाट बनवाने के लिए कुछ रुपया इकट्ठा किया था। कुछ लोगों की इच्छा थी कि उस रुपये से कासगंज में ही एक तालाब बनवाया जाए। महाराज की यह अभिलाषा थी कि वह रुपया उनकी स्थापित वैदिक पाठशाला कासगंज को मिल जाए। स्वामीजी के पक्ष के लोगों की ओर से इस अभिप्राय का एक आवेदन पत्र भी एटा के कलक्टर को भेजा गया था। उसपर कलक्टर ने रा० ब० बालमुकन्द को पाठशाला की अवस्था देखकर रिपोर्ट करने के लिए कासगंज भेजा। वहाँ पहुँचकर उन्हें ज्ञात हुआ कि यद्यपि कुछ लोग चाहते थे कि रुपया पाठशाला को ही दिया जावे, परन्तु अधिक लोगों की इच्छा गङ्गा-तट पर पक्का घाट बनवाने की थी। पौराणिक हिन्दू स्वामीजी के बहुत विरुद्ध थे। वह उनकी मूर्त्तिपूजा की तीव्र आलोचना से अत्यन्त दुःखित थे और कहते थे कि स्वामीजी ने पाठशाला उनके पुत्रों को विधर्मी बनाने के लिए ही स्थापित की है। बहुत-से हिन्दू मिलकर रा० ब० बालमुकुन्द के पास गये और उनसे प्रार्थना की ऐसा अनर्थ न होने पाए कि रुपया स्वामजी की पाठशाला को मिल जाए।

निन्दा का अर्थ—रा० ब० बालमुकुन्द तहसीलदार को साथ लेकर स्वामीजी से मिलने गये और उनसे कहा कि आप हिन्दूधर्म की निन्दा करते हैं, इसलिए लोग आपके अत्यन्त विरुद्ध हैं। महाराज ने यह सुनकर निन्दा शब्द की ऐसी सुन्दर व्याख्या की कि डिप्टी साहब उसे सुनकर अवाक् रह गये। महाराज ने उन्हें समझाया कि दोषी के दोषों को प्रकट करना निन्दा नहीं है, यदि ऐसा हो तो सबसे बड़े निन्दक आप हैं, क्योंकि चोर और दस्यु को दस्यु कहकर बाज़ार में मनादी कराते हैं।

दिनचर्या—स्वामीजी जब एक प्रहर रात्रि रहती थी तब उठकर योगाभ्यास करने बैठ जाते और दो घड़ी दिन चढ़े तक ध्यानावस्थित रहते थे। जब वे ध्यान करके बाहर आते तो उनके नेत्र रक्तवर्ण के होते थे। वे धीरे-धीरे दो घड़ी तक नेत्रों पर जल सिञ्चन करते तब उनके नेत्रों की लालिमा दूर होती थी। इसके पश्चात् वे शौच से निवृत्त होकर भोजन करते और फिर आगन्तुकों से वार्त्तालाप करने बैठ जाते थे और सूर्यास्त से एक घण्टा पूर्व तक वार्त्तालाप करते रहते। सायङ्काल शौच के पश्चात् किसी खेत आदि में बैठकर फिर योगाभ्यास करते थे।

रणमस्त साँडों का दमन—एक दिन अपराह्न में स्वामीजी जङ्गल की ओर शौच के लिए जा रहे थे। कई विद्यार्थी और अनुरागी जन उनके साथ थे। थोड़ी दूर चलकर गुलज़ारीलाल खत्री के बाग़ के सामने देखा कि मार्ग रुका हुआ है, कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि मार्ग दूसरी ओर से भी रुका हुआ है, न इधर के लोग उधर जा सकते हैं और न उधर के लोग इधर आ सकते हैं। कारण यह था कि बीच में दो साँड

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपस में लड़ रहे थे। दोनों साँडों के मुँह एक दूसरे से मिल रहे थे और वे एक-दूसरे को धकेलने का यत्न कर रहे थे। यह द्वन्द्वयुद्ध निरन्तर दो घण्टे से हो रहा था। जिन लोगों को अधिक आवश्यक कार्य था वे फेर खाकर बाग़ के पार्श्व से निकल जाते थे। थोड़ी देर तक महाराज भी उस युद्ध की समाप्ति की प्रतीक्षा करते रहे। फिर लोगों ने उनसे कहा कि दूसरे मार्ग से निकल चलें। इस बात को स्वामीजी ने 'हूँ' कहकर अस्वीकार कर दिया और तुरन्त ही उन रणमस्त साँडों की ओर चलने लगे। उनके साथियों ने भी उन्हें रोका और अन्य लोग भी चिल्लाये कि बाबाजी क्या करते हो, परन्तु उन्होंने न सुना और उन युद्धोन्मत्त साँडों के पास जाकर प्रत्येक का एक-एक सींग एक-एक हाथ से पकड़ लिया और इस जोर से उन्हें धक्का दिया कि दोनों का मुँह आकाश की ओर उठ गया और दोनों को एक-दूसरे से अलग-अलग कर दिया। साँड इतने डर गये कि मार्ग छोड़कर चले गये और लोगों के आने-जाने का मार्ग खुल गया।

बिना आज्ञा आम क्यों उठाया—एक दिन महाराज स्नान करने के लिए जीवाराम कायस्थ के बाग़ में जा रहे थे। पाठशाला का एक विद्यार्थी रामप्रसाद उनके साथ था। मार्ग में एक आम पड़ा देखकर उसने उसे उठा लिया। महाराज उससे बहुत अप्रसन्न हुए और कहा कि तूने आम क्यों उठाया, क्या यह तेरे पिता व पितामह का बाग़ है ? और वापस आकर उसपर दो रुपये जुर्माना कर दिया।

बलराम, चकेरी, हनोट

श्रीमहाराज एक दिन कासगंज से बिना किसी को सूचना दिये सूर्योदय से चार घड़ी पहले चले गये। दोपहर को *बलराम* ग्राम में कुछ विश्राम किया जो कासगंज से पश्चिम की ओर दो कोस पर है। वहाँ एक ब्राह्मण सज्जन ने उन्हें दूध पिलाया और ठहरने की प्रार्थना की। वहाँ से चलकर चकेरी ग्राम के समीप उन्होंने एक चमार से संस्कृत में पूछा **'चकेरीग्रामः कास्ति'** वह समझ गया कि चकेरी गाँव को पूछते हैं। उसने हाथ के संकेत से चकेरी का मार्ग बाता दिया। चकेरी के पास से होते हुए रात्रि में किसी स्थान पर निवास किया और प्रातःकाल कुछ दिन चढ़े *हनोट* ग्राम में पहुँचे। वहाँ अनेक लोग उनके दर्शन को आये। वहाँ लोगों ने कहा कि यहाँ के विष्णु-मन्दिर का पुजारी सदा कहा करता है कि मैं दयानन्द से शास्त्रार्थ करुँगा। वह चक्राङ्कित था। यह सुनकर महाराज वहीं रेत में बैठ गये और कहा कि उसे बुलाकर लाओ। कुछ लोग तो उसे बुलाने चले गये और कुछ महाराज के पास बैठे रहे। वह बुलाने से न आया। फिर एक के पीछे दूसरा और दूसरा के पीछे तीसरा उसे बुलाने गया, परन्तु वह टस-से-मस न हुआ। अन्त को वह नम्बरदार स्वयं गया, जिसके मन्दिर का वह पुजारी था। उससे उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं शास्त्रार्थ नहीं करुँगा। नम्बरदार ने यह भी कहा कि मन्दिर से निकाल दूँगा। उसने मन्दिर से निकलना स्वीकार किया, परन्तु शास्त्रार्थ करना स्वीकार न किया। अन्त में कई घण्टे प्रतीक्षा करने के पश्चात् स्वामीजी आगे चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दशम अध्याय

आश्विन १९२७—चैत्र १९२९=अक्तूबर ७०—अप्रैल ७२

(अक्तूबर—नवम्बर) **अनूपशहर** (आश्विन-कार्त्तिक)

श्रीमहाराज विचरते हुए अनूपशहर पधारे। यह संवत् १९२७ की घटना है। पहले दो दिन तो वे महाशय गौरीशङ्कर कायस्थ की बाँस की टाल पर रहे, फिर लालाबाबू की कोठी में चले गये। लालाबाबू बङ्गाल के एक बड़े रईस थे, जिन्होंने वृन्दावन में एक विशाल मन्दिर निर्माण कराया था और उसके व्यय के लिए कई ग्राम, जो तहसील अनूपशहर ज़ि० बुलन्दशहर में थे, दान कर दिये थे। उन्हीं के प्रबन्धादि के लिए अनूपशहर में उनकी कोठी बनी हुई थी।

रामलीला का खण्डन—उस समय अनूपशहर में रामलीला बड़ी धूम-धाम से हो रही थी। उसका कारण यह था कि उस समय वहाँ कल्याणसिंह नामक एक हिन्दू नायब तहसीलदार लगा हुआ था। उसने रामलीला करने का बड़ा उत्साह दिखाया था। श्रीमहाराज ने रामलीला का खण्डन करना आरम्भ किया जिसके कारण लोगों की रामलीला में अरुचि हो गई और फल यह हुआ कि आगे के लिए रामलीला बिल्कुल बन्द हो गई। महाराज कहते थे कि अपने पूर्व-पुरुषों का स्वांग बनाना और उसमें पुरुषों को स्त्री का वेष धारण करना अनुचित है। कल्याणसिंह इसी कारण महाराज के विरुद्ध हो गया और उसने यहाँ तक नीचता की कि लीलाबाबू की ज़मींदारी के प्रबन्धकर्त्ता से कहा कि 'आप दयानन्द को कोठी से निकाल दें', परन्तु या तो इस कारण से कि उसकी महाराज से यह कहने की हिम्मत ही न पड़ी कि आप कोठी से चले जाइए या अपनी भलमनसाहत से उसने स्वामीजी से कुछ न कहा।

कृष्णानन्द सामने न आया—कल्याणसिंह चाहता था कि महाराज को किसी प्रकार नीचा दिखाना चाहिए, अतः वह रामघाट से कृष्णानन्द वाममार्गी को उनसे शास्त्रार्थ करने को लिवाकर लाया। यही कृष्णानन्द एक बार रामघाट में उनसे शास्त्रार्थ करके मुँह की खा चुका था। वह आने को तो अनूपशहर आ गया, परन्तु महाराज के सन्मुख न आया दूर से अण्ड-बण्ड बात बनाता रहा। वह कहता था कि स्वामीजी लक्षण का लक्षण बताएँ। स्वामीजी कहते थे कि लक्षण का लक्षण नहीं होता।

तहसीलदार को उत्तेजना—उन दिनों जानसठ ज़िला मुज़फ्फरनगर के एक मुसलमान, जिसका नाम सैयद मुहम्मद था, अनूपशहर में तहसीलदार थे। कल्याणसिंह ने उन्हें स्वामीजी के विरुद्ध बहुत भड़काया और उनके विरुद्ध बहुत खरी-खोटी जड़ीं। यह कहकर कि स्वामीजी झगड़ा कराना चाहते हैं, उन्हें इस बात पर उद्यत किया कि स्वामीजी को अनूपशहर से निकलवा दें। तहसीलदार स्वामीजी के पास गये और जाकर कहा कि इस कोलाहल का क्या कारण है ? स्वामीजी ने उन्हें सब बातें स्पष्ट रूप से समझा दीं। फिर वे कृष्णानन्द के पास गये और उनसे भी यही प्रश्न किया। कृष्णानन्द ने ऐसे शब्दों में उत्तर दिया कि तहसीलदार उसका आशय न समझ सके। तहसीलदार को विश्वास हो गया कि स्वामीजी सभ्य, शान्तिप्रिय और विद्वान् हैं तथा कृष्णानन्द उद्दण्ड, कलहप्रिय और विद्याशून्य मनुष्य है।

कृष्णानन्द यह कहता था कि स्वामीजी मेरे स्थल पर आकर शास्त्रार्थ करें और महाराज उससे अपने स्थल पर शास्त्रार्थ करना चाहते थे। यह विवाद कई दिन तक चलता रहा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोनों स्थानों के बीच एक स्थान नियत किया जाए और दोनों वहाँ जाकर शास्त्रार्थ करें। तदनुसार एक स्थान और शास्त्रार्थ का दिवस भी निश्चित कर दिया गया। उस दिन कृष्णानन्द के पास ५००-६०० मनुष्यों की भीड़ इकट्ठी हो गई, जिसमें अधिकतर अशिक्षित, झगड़ालू, और उजड्ड मनुष्य थे। इधर कुछ लोग स्वामीजी के स्थल पर भी एकत्र हो गये, परन्तु उनमें अधिक संख्या सभ्य और सुशिक्षित मनुष्यों की थी।

तहसीलदार इसी समय स्वामीजी और कृष्णानन्द के पास गया और दोनों से बातचीत करने और इस दृश्य को देखने से ही उनकी वह सम्मति हुई थी, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है।

अन्त में शास्त्रार्थ न हुआ और तहसीलदार ने कृष्णानन्द को अनूपशहर से चले जाने को कहा। वह वहाँ से चला गया और यह विवाद शान्त हो गया।

जीवित पितरों का श्राद्ध—इन दिनों स्वामीजी जीवित पितरों के श्राद्ध का समर्थन करते थे। श्राद्ध के विषय में एक पण्डित से स्वामीजी की बातचीत भी हुई थी, इस समय स्वामीजी तीर्थों को नहीं मानते थे, जीव ब्रह्म को पृथक् मानते थे, तर्क-संग्रह को नर्क-संग्रह कहते थे। गोरक्षा के लिए भी उनका चित्त बहुत आन्दोलित था और कहा करते थे कि विलायत जाकर महारानी विक्टोरिया और राजपरिषद् के सदस्यों को समझाकर गोवध के बन्द कराने का यत्न करेंगे।

अन्य उपदेश—वे वेदों के आधुनिक भाष्यों को अशुद्ध बताते थे और महीधर के भाष्य का विशेष रूप से खण्डन करते थे। अंग्रेजों की वर्त्तमान न्याय-वितरण-प्रणाली(Administration of justice) पर बहुत दोषारोपण करते थे और कहते थे कि हर ग्राम में एक पंचायत होनी चाहिए और कई-कई ग्रामों के ऊपर एक न्याय-सभा होनी चाहिए और इसी सभा के द्वारा सब मुक़द्दमों का निर्णय होना चाहिए, तभी लोग मुक़द्दमेबाजी के जाल से छुटकारा पा सकते हैं।

अनूपशहर में विपक्षी लोगों ने यह प्रसिद्ध कर रक्खा था कि दयानन्द अंग्रेजों का दूत है और हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए नियत किया गया है।

कलक्टर साहब हमें कोठी से नहीं निकालेंगे—घटनावश ऐसा हुआ कि उन्हीं दिनों अनूपशहर में साहबकलक्टर के आने का समाचार ज्ञात हुआ। लालाबाबू की कोठी के कर्मचारियों ने महाराज से निवेदन किया कि साहबकलक्टर आनेवाले हैं और वे इसी कोठी में आकर ठहरेंगे, अतः आप कोठी खाली कर दें। महाराज ने उत्तर दिया कि यों तो कोठी आपकी है, आप कहें तो हम अन्यत्र चले जाएँ, परन्तु यदि आपको यह भय हो कि कलक्टर साहब हमें कोठी से निकाल देंगे तो आप इसकी चिन्ता न करें, हम स्वयं देख लेंगे। यह उत्तर पाकर कर्मचारीगण निरुत्तर हो गये। कलक्टर साहब आये और उसी कोठी में ठहरे, परन्तु उन्होंने महाराज से एक शब्द भी नहीं कहा कि आप कोठी खाली कर दें। इसके विपरीत वे महाराज से मिले, उनसे बातचीत की और स्वामीजी से बहुत प्रसन्न हुए।

किसी ने कलक्टर साहब से यह शिकायत कर दी कि कल्याणसिंह नायब-तहसीलदार ने रामलीला के लिए लोगों से ज़बरदस्ती चन्दा लिया है। साहब कलक्टर ने इस विषय में अनुसन्धान कराया तो यह बात सत्य निकली और उन्होंने कल्याणसिंह को तीन मास के लिए निलम्बित कर दिया।

मुसलमान तहसीलदार भक्त हो गया—सैयद मुहम्मद स्वामीजी का भक्त हो गया था और उनकी बहुत सेवा-शुश्रूषा करने लगा था। एक दिन उसने स्वामीजी से कहा 'महाराज ! हमारे धर्म में तो मूर्त्तिपूजा (बुतपरस्ती) नहीं है'। स्वामीजी ने इसका प्रतिवाद किया और कहा कि ताज़िये बनाना भी एक प्रकार की मूर्त्तिपूजा है, जिसे सुनकर उसने स्वीकार किया और कहा कि ठीक है, परन्तु इसमें हमारी कुछ नहीं चलती।

पान में विष—एक ब्राह्मण ने स्वामीजी के मूर्त्तिपूजा के खण्डन से रुष्ट होकर उन्हें पान में विष दे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया था। उन्होंने न्योली कर्म करके उसे अपने शरीर से निकाल दिया और स्वस्थ हो गये।

मैं संसार को क़ैद कराने नहीं अपितु छुड़ाने आया हूँ—जब सैयद मुहम्मद को यह वृत्त ज्ञात हुआ तो उस ब्राह्मण पर कोई अभियोग लगाकर उसे क़ैद कर दिया। वह समझता था कि स्वामीजी उसके इस कार्य से प्रसन्न होंगे, परन्तु जब वह उनके सामने आया तो उन्होंने उससे बोलना बन्द कर दिया। उसने इस अप्रसन्नता का कारण पूछा तो कहा—'मैं संसार को क़ैद कराने नहीं, अपितु उसे क़ैद से छुड़ाने आया हूँ। वह यदि अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता क्यों छोड़ें'। इसपर तहसीलदार ने उस ब्राह्मण की अपील कराकर उसे छुड़वा दिया।

दयानन्द ! दयाप्राण दयानन्द ! तू वास्तव में दया का अवतार था। साधारण मनुष्य किसी से थोड़ी-सी भी क्षति उठाकर, तनिक-से अपकार के कारण अपने अनिष्टकर्त्ता की जान के ग्राहक बन जाते हैं, उनमें प्रतिहिंसा के प्रबल भाव जाग्रत् हो जाते हैं; परन्तु एक तू है कि अपने प्राणघातक को भी हानि पहुँचाना नहीं चाहता और जब कभी कोई उसके दुष्कर्म के कारण उसे हानि पहुँचाता है तो तुझे उसकी दशा पर तरस आता है और एक क्षण भी तू उसे उस दशा में नहीं देख सकता। इस कलहपूर्ण, विद्वेषपूर्ण, हिंसापूर्ण, निर्दयतापूर्ण संसार में मनुष्यों के सामने यह स्वर्गीय दृश्य तेरे सिवाय और कौन ला सकता था ? तेरे इन अलौकिक वृत्तों को देखकर हृदय गद्गद हो जाता है और मनुष्य तेरे चरणों में श्रद्धा की पुष्पाञ्जलि चढ़ाने पर विवश हो जाता है। पाठक ! क्या आपने इस अनुपम अनुकम्पा का दूसरा उदाहरण भी अपने जीवन में कहीं देखा है ?

दयानन्द के उपदेश से अनूपशहर के कितने ही विद्वान् और सुपठित व्यक्तियों ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी थी और शालिग्राम, माखनचोर आदि की मूर्त्तियाँ गङ्गा में फेंक दी थीं, कण्ठियाँ तोड़ दी थीं और एक ईश्वर की पूजा करनी स्वीकार कर ली थी। पौराणिकों ने उन्हें हर प्रकार से तङ्ग करना आरम्भ किया और बिरादरी से निकालने की भी धमकी दी।

अनूपशहर के प्रसिद्ध वैद्य पं० अम्बादत्त परबती उस समय जबकि महाराज पहले अनूपशहर पधारे थे, उनके अनुयायी बन गये थे, परन्तु पीछे स्वार्थवश वे फिर मूर्त्तिपूजा करने लगे थे। जब महाराज दुबारा अनूपशहर पधारे और उन्होंने पं० अम्बादत्त को बुलाया तो वह न आया और कहा कि हम गृहस्थी हैं, हम साधु के पास नहीं जाते।

स्वामीजी व्याकरण पर विशेष ध्यान रखते थे। पं० भगवान् वल्लभ वैद्य को जो स्वामीजी के अनुयायी हो गये थे वे भगवान् वल्लभ न कहकर भगवद्वल्लभ कहा करते थे।

अपूर्व धारणा-शक्ति—स्वामीजी की धारणा-शक्ति भी अपूर्व थी। उन्होंने एक बार पं० भगवद्वल्लभ से सुश्रुतसंहिता मँगवाकर देखी और एक-दो दिन में उसपर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि प्रसङ्ग उठने पर वाक्य-के-वाक्य उद्धृत करने लगे।

एक दिन कुछ लोग सूर्य को अर्घ दे रहे थे। महाराज ने उनसे कहा कि जल में जल डालने से क्या लाभ ? यदि किसी वृक्ष में डालते तो कुछ लाभ भी होता।

इसी बार राजा जयकृष्णदास, सी०एस०आई०, डिपुटी कलक्टर महाराज से भेंट करने आये थे।

विपक्षी की विचार-शक्ति को हर लेते थे—बाली के विषय में यह गाथा कही जाती है कि जब कोई युद्धार्थी उसके सामने जाता था तो वह दर्शनमात्र से ही उसका बल हरण कर लेता था, यह बात तो असत्य है, परन्तु जब कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिए स्वामीजी के पास आता था तो वह उसकी विचार-शक्ति को हर लेते थे और विपक्षी दो-चार बात करने के पश्चात् निरुत्तर हो जाता था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुप्त अभिप्राय का ज्ञान—किसी मनुष्य को अपने पास आता देखकर ही स्वामीजी जान लेते थे कि वह किस अभिप्राय से उनके पास आता है। मनुष्यों के गुप्त कर्मों को जानने की उनमें शक्ति थी। एक बार कर्णवास के ठाकुर ने स्वामीजी के उपदेश से पुत्रेष्टि कराई। यज्ञ-पिण्ड एक ब्राह्मण को, जो यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए अनूपशहर से आया था, खाने को दिया गया। उसने न खाया प्रत्युत उसे फेंक दिया। उपस्थित मनुष्यों में से किसी ने भी उसे पिण्ड फेंकते हुए न देखा, परन्तु स्वामीजी ने न जाने कैसे यह बात जान ली। इसपर स्वामीजी ने उस ब्राह्मण का तिरस्कार किया और उसने यह बात स्वीकार की। फिर उसे पिण्ड खाने को दिया। वह उसने खा लिया। यज्ञ सिद्ध हो गया और समय पर उस ठाकुर के पुत्र उत्पन्न हुआ।

नाई की रोटी—एक दिन एक नाई अपने गृह से महाराज के लिए भोजन बनवाकर लाया और उनसे प्रार्थना की कि आज तो मेरी भिक्षा ही स्वीकार कीजिए। महाराज ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। उपस्थित लोगों ने कहा भी कि महाराज ! यह तो नाई की रोटी हैं, परन्तु उन्होंने ईषत्स्मित-भंगी धारण करके उत्तर दिया कि यह नाई की नहीं गेहूँ की रोटी हैं और बड़े प्रेम से उन्हें पाया।

स्वामीजी की शारीरिक शक्ति जैसी असाधारण थी उनका साहस और मनःशक्ति भी वैसी ही असाधारण थी। दुर्गम पर्वतों में, निर्जन वन में, गङ्गातट पर, नगर में, प्रान्त में सभी जगह सदा निर्भयभाव से रहते थे। मूर्त्तिपूजा आदि की तीव्र आलोचना करने के कारण अनेक लोग उनके विरुद्ध हो जाते थे और उनपर आक्रमण करके उनके प्राण-हरण तक पर उद्यत हो जाते थे, परन्तु इससे डरना तो क्या, उनकी ओर दृष्टिपात तक न करते थे।

(८ नवम्बर—नवम्बर) **रामघाट** (कार्त्तिक पूर्णिमा—मार्गशीर्ष)

कार्तिक पूर्णिमा संवत् १९२७ को महाराज रामघाट में विराजमान थे। सहस्रों मनुष्य उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए आते थे। लोग बड़ा बल लगाकर उनसे क्लिष्ट-से-क्लिष्ट प्रश्न पूछते थे, परन्तु वे अनायास ही उन सबका सन्तोषप्रद उत्तर दे देते थे। रामघाट के स्वामी कृष्णानन्द तो पहले ही पारस्त हो चुके थे। कितने ही पण्डित जो उस प्रान्त में महाराज के आगमन से पहले विद्वत्-शिरोमणि गिने जाते थे, उनके उपदेशों को सुनकर और तर्कयुद्ध में परास्त होकर मूर्त्तिपूजा आदि पाखण्ड छोड़कर उनके अनुगत हो चुके थे। महाराज का कार्य-क्षेत्र दिन-प्रतिदिन विस्तृत हो रहा था। दयानन्द-दिवाकर की ज्योति से अज्ञान का अन्धकार विलीन हो रहा था। पाखण्डी, घमण्डी, उल्लूकवत् जहाँ-तहाँ छिपने का यत्न कर रहे थे।

(नवम्बर) **चासी** (मार्गशीर्ष)

संवत् १९२७ के मध्यभाग में स्वामीजी पुनः चासी के जङ्गल में आये, ज्योंही यह समाचार उनके भक्तों ने सुना त्योंही वे उनके दर्शनों के लिए आने लगे। स्वामीजी प्रातःकाल ३-४ बजे उठकर सूर्योदयपर्यन्त प्राणायाम किया करते थे तत्पश्चात् स्नान किया करते थे। सन्ध्या को भी सान्ध्य प्राणायाम करते थे।

प्रामाण्याप्रामाण्य ग्रन्थ—कहते हैं कि ग्रन्थों के प्रामाण्य-अप्रामाण्य विषय में उनका मत किन्हीं अंशों में परिवर्त्तन हो गया था। भगवद्गीता को वे त्रिदोष का सन्निपात् बतलाते थे और कहते थे कि उसमें कहीं तो जीव-ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादित किया गया है और कहीं उनका पृथक्त्व देखने में आता है और कहीं प्रकृति और पुरुष का पृथक्त्व माना गया है। प्रचलित मनुस्मृति को वे मनुसंहिता नहीं मानते थे और उसे भृगुसंहिता कहते थे। पहले वे वेद और ब्राह्मण का पृथक्त्व स्वीकर नहीं करते थे, परन्तु अब करने लगे थे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और ब्राह्मण-ग्रन्थों को वहीं तक प्रामाणिक मानते थे, जहाँ तक वे वेदानुकूल हों।

श्रीगोपाल की धूर्त्तता—इस समय एक धूर्त्त पण्डित श्रीगोपाल महाराज के पीछे-पीछे रहकर उनकी निन्दा किया करता और इसे उसने अपनी जीविका का साधन बना रक्खा था। वह चासी में भी आया और जब महाराज चासी से उठकर दूसरे स्थान में चले गये तो वह उनके स्थान पर आकर ठहर गया और 'दयानन्द ईसाइयों और अंग्रेजों का गुप्तचर है' इस प्रकार की ऊटपटांग बातें कहकर लोगों को बहकाता रहा।

(१२ या १३ नव०—१ दिसम्बर) छलेसर (मार्ग० कृ० ४ या ५—पौष कृ० १)

ज़मींदारी के मन्दिरों से मूर्त्तियों का बहिष्कार—ठाकुर मुकुन्दसिंह एक सम्पन्न व समृद्ध ज़मींदार थे। उन्हें प्रथम बार स्वामीजी के दर्शन कर्णवास में संवत् १९२४ में हुए थे। उन्होंने स्वामीजी से दो घण्टे वार्त्तालाप किया था, सुबोध थे, अतः इस अल्प समय में ही उन्होंने महाराज के उपदेशों को हृदयङ्गम कर लिया था और मूर्त्तिपूजा से उन्हें अत्यन्त घृणा हो गई थी। जब वे कर्णवास से छलेसर लौटे तो उन्होंने अपनी ज़मींदारी के सब मन्दिरों में से जिनकी संख्या २० से ३० के बीच थी, मूर्त्तियाँ उठवाकर गङ्गा में फिकवा दीं। इसपर बड़ा कोलाहल मचा; न केवल ब्राह्मण ही उनके विरुद्ध हो गये, प्रत्युत उनके सजातीय क्षत्रिय भी उनसे बिगड़ उठे, यहाँ तक कि उन्हें बिरादरी से बहिष्कृत करने की धमकियाँ दी जाने लगीं, परन्तु उस वीर पुरुष ने कुछ परवाह न की। वे वैदिक धर्म के मार्ग से एक क्षण के लिए भी विचलित न हुए और मर्यादा-पालन में तत्पर रहे। उनके दृढ़-संकल्प रहने का फल यह हुआ कि अन्त में सब विरोध शान्त हो गया और साठ गाँव के सगोत्री क्षत्रिय वैदिक मतावलम्बी बन गये।

ठाकुर मुकुन्दसिंह की प्रार्थना पर महाराज रामघाट से छलेसर पधारे, स्वामीजी ने ठाकुर मुकुन्दसिंह को रामघाट में ही छलेसर पधारने का वचन दे दिया था। तदनुसार वे मार्गशीर्ष कृष्णा ४ वा ५ संवत् १९२७, १२ वा १३ नवम्बर सन् १८७० को छलेसर पहुँच गये।

स्वागत-समारोह—ठाकुर मुकुन्दसिंह और दो-ढाई सौ अन्य लोग उनके स्वागत के लिए एक पालकी लेकर काली नदी पर छलेसर से दो मील पर पहुँच गये थे। स्वामीजी जब वहाँ पहुँचे तो सब लोगों ने बड़े सम्मान और प्रेम से उनका स्वागत किया। स्वामीजी ने वहाँ पहुँचकर पहले स्नान किया, शरीर पर रज लगाई फिर चलने को तैयार हुए। लोगों ने बहुतेरा कहा कि महाराज पालकी पर सवार हो जाइए, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया और सबके साथ पैदल ही चले।

ठाकुर मुकुन्दसिंह ने उस बाग़ में ही जिसमें उन्होंने पाठशाला स्थापित करने का निश्चय किया था, उनके निवास के लिए एक गृह सुसज्जित कर रक्खा था और एक चौकी पर कालीन बिछाकर उनके बैठने के लिए प्रबन्ध कर दिया था। स्वामीजी दिन के १२ बजे वहाँ पहुँचे। उन्होंने यह कहकर कि हमारे रज लगे हुए शरीर से क़ालीन मैला हो जाएगा चौकी पर बैठने से निषेध किया, परन्तु लोगों के आग्रह करने पर उसपर विराज गये।

स्वामीजी के छलेसर पधारने के पहले से ही पौराणिक दल उत्तेजित हो उठा था और निश्चय कर चुका था कि जब स्वामीजी वहाँ आएँ तो उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त करके पौराणिक मत की रक्षा की जाए। तदनुसार महाराज के आगमन के दो दिन पश्चात् ही आस-पास के पण्डित छलेसर आकर उनसे शास्त्रार्थ करने लगे। वे उन्हें परास्त और पराभूत तो क्या करते स्वयं ही पराजित हो-होकर उनके कथन की सत्यता स्वीकार करने पर बाधित हुए।

पण्डितों के अतिरिक्त कई मौलवी और क़ाजी भी आये और इस्लाम का श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करने में प्रवृत हुए, परन्तु उनका भी वही हाल हुआ जो पण्डितों का हुआ था, निरुत्तर हो-होकर **'यथागतास्तथा गताः'**।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यायप्रिय मुसलमान—मुसलमानों से यह आशा करनी तो व्यर्थ थी कि वे तर्कयुद्ध में परास्त होकर वैदिक धर्म को स्वीकार करेंगे। उनका कट्टरपन और धर्म्मान्धता उन्हें इसकी आज्ञा दे ही नहीं सकती थी, परन्तु उनमें भी एक व्यक्ति ऐसे निकले जिन्होंने स्वामीजी के सिद्धान्तों की युक्तियुक्तता स्वीकार की। इस न्यायप्रिय व्यक्ति का नाम क़ाज़ी इमदाद अली था। यह एक सुपठित और सत्यानुरागी व्यक्ति थे और अतरौली ज़िला अलीगढ़ के रहनेवाले थे।

कोई दिन ऐसा न होता था जो ४००-५०० मनुष्य स्वामीजी के पास एकत्र न रहते हों।

पाठशाला स्थापना—महाराज के पधारने के दो-एक दिन पश्चात् पाठशाला स्थापित करने का उपक्रम हुआ। प्रथम हवन हुआ तत्पश्चात् ब्रह्मभोज हुआ, जिसमें ब्राह्मणों को उचित दक्षिणा दी गई। इससे ब्राह्मण लोग भी बहुत प्रसन्न हुए।

पाठशाला में पं० कुमारसेन को अध्यापक नियत किया गया जो स्वामीजी की फ़र्रुखाबाद की पाठशाला में विद्यार्थी रह चुके थे और जिनसे वे परिचित थे। तीन दिन में ही पाठशाला में बीस विद्यार्थी हो गये।

पाठशाला में यह नियम रक्खा गया था कि सिवाय उन विद्यार्थियों के जो दान का रुपया न लेना चाहें भोजन, वस्त्र और पुस्तकें दी जाएँगी और अध्यापक का वेतन भी वे ही देंगे। पाठशाला में कोई अनार्षग्रन्थ नहीं पढ़ाया जाएगा। विद्यार्थियों को नियम-पूर्वक प्रातःसायं सन्ध्या, अग्निहोत्र करना होगा।

भक्तजन की श्रद्धा—ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंह की श्रीचरणों में प्रगाढ़ भक्ति थी। वे जब तक श्रीमहाराज के दर्शन न कर लेते भोजन न करते थे। जब वे महाराज की सेवा में जाते तो दूर ही जूते उतार कर और बद्धाञ्जलि होकर जाते और जब वापस होते तो कभी उनकी ओर पीठ देकर वापस न होते।

पिता पुत्र का मनोमालिन्य—ठाकुर मुकुन्दसिंह और उनके पुत्र चन्दनसिंह में कुछ मनोमालिन्य हो गया था। महाराज ने दोनों को समझाकर उसे दूर कर दिया था। महाराज के लिए भोजन उनके क्षत्रिय शिष्यों के यहाँ से आया करता था। एक दिन महाराज चबूतरे पर विराजमान थे। अभी तक उनके लिए भोजन न आया था। एक कृषक मक्की की मोटी-मोटी रोटियाँ लिये हुए घर से जा रहा था। जब वह चबूतरे के पास पहुँचा तो उसके जी में उन्हें महाराज की सेवा में समर्पित करने की इच्छा हुई। उसने नम्रतापूर्वक प्रणाम करके निवेदन किया कि महाराज आज तो मेरी रूखी-सूखी मधूकरी पाने की कृपा करें। महाराज ने कृपापूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार की और उसके भोजन को बड़ी प्रसन्नता के साथ पाया। कृषक का हृदय गद्गद और उसके चक्षु प्रेम-जल से पूर्ण हो गये।

वर्षा में ही प्रस्थान—जिस दिन महाराज ने छलेसर से चलने का संकल्प किया उस दिन कुछ बूँदा-बाँदी हो रही थी। शिष्य-वर्ग ने बहुतेरा अनुनय-विनय किया कि आज न जाइए, परन्तु वे न माने और उसी बूँदा-बाँदी में चल दिये।

भक्तों की विरहवेदना—शिष्य-वर्ग बहुत दूर तक उनके साथ आया। उनमें से ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंह को तो महाराज का वियोग इतना असह्य हुआ कि वे आँखों में आँसू भर लाये। महाराज ने उन्हें धैर्य देकर शान्त किया कि अभी तो छलेसर कई बार आना होगा। संन्यासी तो रमते राम हैं उनसे मोह-ममता करना दुःखजनक ही होता है। यदि आप लोग मेरे उपदेशों पर चलेंगे तो मुझे अपने समीप ही समझो।

(मई—जून) रामघाट (ज्येष्ठ सं० १९२८)

छलेसर से चलकर महाराज गङ्गा-तटस्थ स्थानों में भ्रमण करते हुए ज्येष्ठ संवत् १९२८ में रामघाट पहुँचे और वहाँ २१ दिन ठहरकर फिर भ्रमणार्थ चल खड़े हुए। इस यात्रा में वे अधिकतर अपना समय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्र-चिन्तन में लगाते थे। बीच-बीच में अपनी स्थापित पाठशालाओं का निरीक्षण भी करते थे।

(जनवरी—फरवरी ७२) फर्रुख़ाबाद (मार्गशीर्ष—माघ)

पाठशाला का स्थानपरिवर्त्तन—मार्गशीर्ष मास सं० १९२८ में स्वामीजी ने अपने फ़र्रुखाबाद के अनुयायियों को पुनः दर्शन दिये। पूर्व की भाँति महाराज जनता को अपने उपदेशों से कृतकृत्य करते रहे, वैदिक पाठशाला का निरीक्षण और विद्यार्थियों का परीक्षण भी उन्होंने किया। उनकी स्थिति के समय ही एक दिन ऐसा हुआ कि एक विद्यार्थी की धोती और लोटा चोरी चले गये। उन दिनों लाला पन्नीलाल के बाग़ में जहाँ पाठशाला स्थित थी कुछ गृह-निर्माण का कार्य हो रहा था। सुन्दर नाम का एक चौबे मज़दूरों का मेट था। विद्यार्थियों का सन्देह उसकी माता पर हुआ, क्योंकि उन्होंने उसे उस विद्यार्थी की कोठरी से निकलते हुए देखा था, जहाँ उसका कोई कार्य न था। उस विद्यार्थी ने उसकी माता से पूछा कि तुम्हें मेरी धोती-लोटे का कुछ पता है। उसने अपने पुत्र सुन्दर चौबे से जाकर कह दिया कि अमुक विद्यार्थी कहता है कि मेरी धोती-लोटा तू ने ही चुराया है। इसपर सुन्दर ने उस विद्यार्थी को बहुत मारा। विद्यार्थी ने अध्यापक से शिकायत की। अध्यापक ने कहा कि मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता, स्वामीजी से कहो। स्वामीजी ने कहा कि विद्यार्थी क्या मेरे पुत्र, पौत्र वा दौहित्र हैं, पाठशाला अध्यक्ष से कहो। सुन्दर चौबे लाला पन्नीलाल के मुँह लगा हुआ था। उन्होंने विद्यार्थी की शिकायत पर कुछ ध्यान न दिया। स्वामीजी को भले प्रकार निश्चय हो गया कि अपराध सुन्दर का ही है।

जब लाला पन्नीलाल स्वामीजी के पास गये तो स्वामीजी ने कहा कि विद्यार्थी तीन दिन तक तुम्हारा अन्न ग्रहण न करेंगे और उसके पश्चात् यदि तुम न्याय कर दोगे तो ग्रहण करेंगे। लाला पन्नीलाल को बहुत क्रोध आया। उन्होंने कहा कि चौबे ने उस विद्यार्थी को मार ही क्यों न डाला, अच्छा होता यदि मार डालता और उन्होंने चौबे को कोई दण्ड न दिया। तब स्वामीजी पाठशाला को पन्नीलाल के बाग़ से उठाकर विश्रान्त पर ले गये और उसे सेठ निर्भयराम के प्रबन्ध में दे दिया।

(मार्च-१६—अप्रैल ७२) काशी (फाल्गुन २८—चैत्र शु० ६ सं० २६)

मार्च सन् १८७२ अर्थात् फाल्गुन संवत् १९२६ में महाराज काशी पधारे और पूर्ववत् उपदेश कार्य में प्रवृत्त हो गये। शास्त्रार्थ के लिए आहूत होने पर भी कोई पण्डित सम्मुख न आया।

एक दिन महाराज सत्संगियों को उपदेश कर रहे थे कि उपदेश करते-करते एक बार ही रुक गये और कहा कि थोड़ी देर में एक कौतूहलजनक घटना होनेवाली है। कुछ देर के पश्चात् एक ब्राह्मण महाराज के लिए भोजन और पान लाया और उनसे भोजन पाने की प्रार्थना की। वह उन्होंने अस्वीकार कर दी, परन्तु उसके आग्रह पर पान ले-लिया। पान लेकर महाराज ने खोलकर देखा तो वह ब्राह्मण पत्ता तोड़ भाग गया। भोजन और पान दोनों ही विषाक्त थे।

चैत्र शुक्ला ६ सं० १९२६, अर्थात् तारीख १६ अप्रैल सन् १८७२ को महाराज ने कलकत्ते के लिए प्रस्थान किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकादश अध्याय

संवत् १९२९—१९३०=सन् १९७२—१९७३

(अप्रैल—मई) मुग़लसराय (चैत्र शु० ९—वैशाख)

बंगाल जाते हुए स्वामीजी मुग़लसराय ठहरे। कुछ दिन तक तो वे कक्निकल रोड के निकट बाबूगंज के पास श्मशान घट पर रहे। वहाँ शव-दाह की दुर्गन्ध से उन्हें कष्ट होता था, अतएव वे बाबू वृन्दावन-मण्डल के बाग़ में चले गये और बाग़ की कोठी के चौबारे में रहे। दर्शकों से वे कोठी के हॉल में बात-चीत करते थे। हॉल में कुछ अश्लील भावोद्दीपक चित्र लगे हुए थे, उन्हें देखकर वे कुछ अप्रसन्न हुए। यह देखकर वृन्दावनबाबू ने उन्हें उतरवाने का सङ्कल्प किया, परन्तु स्वामीजी ने उसपर आग्रह न किया।

कहते हैं कि स्वामीजी काशी में वैदिक पाठशाला स्थापन करने के लिए धन-संग्रह करने के अभिप्राय से मुग़लसराय में आये थे। वहाँ इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं हुई। डुमराऊँ जाने का भी मुख्य अभिप्राय महाराज से साहाय्य प्राप्त करना कहा जाता है।

पादरी लालबिहारी दे से साक्षात्—एक दिन कलकत्ता के प्रसिद्ध पादरी लालाबिहारी दे स्वामीजी से मिलने आये और स्वामीजी से धर्म-विषय पर बात-चीत की।

दे–देखिए ख्रीस्त धर्म कैसा उत्तम है कि प्रभु ईसा सब लोगों के पाप अपनी पीठ पर लेकर चले गये।

दया०—पाप का प्रायश्चित्त उसका फल भुगते बिना नहीं हो सकता। ईसा महापुरुष अवश्य थे, परन्तु यह बात मिथ्या है कि वे सबके पाप अपने ऊपर लेकर चले गये। यह बात तो पापों की पोषक और आश्रयदाता है। लोग यह जानकर कि ईसा पर विश्वास लाने से ही उनके सब पाप दूर हो जाएँगे, पाप करने में अधिक प्रवृत्त होंगे।

पादरी दे इसपर निरुत्तर हो गये। फिर उन्होंने पूछा—

दे—आप हमारे हाथ का भोजन खा सकते हैं या नहीं ?

दया०—आप क्या, यदि आपसे कोई नीच मनुष्य भी हो और उसके हाथ का भोजन करने की रुचि हो तो उसके हाथ का भी भोजन खा सकता हूँ।

इसके पश्चात् स्वामीजी ने अनुभव किया कि कदाचित् उनके इस उत्तर से दे महोदय समझे हों कि उनका अपमान हुआ है, उन्होंने पादरी दे को विषयान्तर में लगा दिया। थोड़ी देर और बात-चीत करके दे महोदय विदा माँगकर चले गये।

एक दिन वृन्दावनबाबू के अनुरोध और आग्रह पर स्वामीजी उनके घर भी गये थे।

(२६ मई—अगस्त) डमराऊँ (वैशाख—भाद्र० कृ०)

स्वामीजी मुग़लसराय केवल दस दिन रहे फिर कलकत्ते की ओर चले गये।

साधु नागाजी—स्वामीजी शास्त्रार्थ के पश्चात् जब काशी में ठहरे हुए थे तो एक दिन डुमराऊँ के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदासी साधु नागाजी उनसे मिलने गये थे। स्वामीजी का उनसे विशेष परिचय हो गया था और उसी समय नागाजी ने उनसे वचन ले-लिया था कि कलकत्ता जाते हुए डुमराऊँ अवश्य आवें। उसी प्रतिज्ञा की रक्षार्थ स्वामीजी कलकत्ता जाते हुए डमराऊँ पहुँचे§ और नागाजी के मठ पर ही उतरे।

नागाजी नानकपन्थी थे और डुमराऊँ के समृद्धिशाली पुरुषों में गिने जाते थे। उन्होंने अपनी सब सम्पत्ति काशी के उदासी संघ को दे दी थी और स्वयं भी उदासी साधु बन गये थे।

डुमराऊँ पहुँचने के पश्चात् पं० जवाहरदास भी काशी से आकर स्वामीजी से मिल गये। उन दिनों बाबू जयप्रकाशलाल डुमराऊँ के महाराजा महेश्वरबख्शसिंह के नायब दीवान थे। जब उन्हें स्वामीजी के आगमन का समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने महाराजा से कहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जो बड़े भारी विद्वान् हैं, डुमराऊँ आये हुए हैं और नागाजी के मठ पर ठहरे हुए हैं। इसपर महाराजा ने उन्हें आज्ञा दी कि उन्हें राज्य की कोठी में लिवा लाओ। तदनुसार वे आकर स्वामीजी को रेलवे स्टेशन के पास की राज्य की कोठी में लिवा ले-गये और राज्य की ओर से उनके आहारादि का प्रबन्ध कर दिया गया।

तत्पश्चात् राजकुमार, लाला राधाप्रसादसिंह, बाबू जयप्रकाशलाल तथा मुंशी रणधीरप्रसाद, महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी, स्वामीजी से मिलने गये। उस समय स्वामीजी ने इस विचार से कि महाराजकुमार आदि मिलने आये हैं, एक धोती पैरों पर डाल ली थी।

लालसाहब ने स्वामीजी से पूछा कि आप कहाँ से आ रहे हैं, तो उन्होंने कहा काशी से। फिर उन्होंने प्रश्न किया कि क्या आप वैदिक प्रमाण द्वारा मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि नहीं मैं तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं करता, मैं तो जिस प्रकार वेद में लिखा है उसके अनुकूल कहता हूँ अर्थात् यह कि "वेद में मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं है।" बीच में पण्डितों से शास्त्रार्थ कराने की भी बात आई थी।

विद्याभिमानी दुर्गादत्त—तत्पश्चात् ये सब लोग चले गये। वहाँ से चले जाने के पश्चात् चाहे तो बाबू जयप्रकाशलाल ने पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए उद्यत किया हो, चाहे पण्डितों ने ही स्वयं शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की हो, फल यह हुआ कि पण्डित दुर्गादत्त परमहंस जो डुमराऊँ में उच्च कोटि के विद्वान् समझे जाते थे, पं० जयगोविन्द और पं० वंशीधर आचार्य स्वामीजी के पास गये। पं० दुर्गादत्त शैव थे और नर्मदेश्वर महादेव (एक कृष्णवर्ण अण्डाकार प्रस्तर-खण्ड जो नर्मदा में बहुतायत के साथ पाये जाते हैं) की पिण्डी सदैव अपने पास रक्खा करते थे। जब वे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने चले तो उस समय भी उसे साथ लेते आये और शास्त्रार्थस्थल में पहुँचकर पिण्डी को अपने सामने एक कुर्सी पर रख लिया और वार्त्तालाप आरम्भ हुआ।

स्वा०—(नर्मदेश्वर की पिण्डी की ओर संकेत करके) यह क्या है ?

दुर्गा०—यह नर्मदेश्वर महादेव हैं।

स्वा०—इस प्रकार के महादेव तो नर्मदा-तट पर बहुत-सी जगह पड़े हुए हैं।

दुर्गा०—आप द्वैत मानते हैं वा अद्वैत ?

स्वा०—हम तो द्वैत मानते हैं।

---

§ देवेन्द्र बाबू के अनुसार स्वामीजी कलकत्ता जाते हुए डुमराऊँ गये थे और वहाँ से आरा चले गये थे, परन्तु पं० लेखराम के अनुसार वे कलकत्ता से लौटते हुए पहले आरा आये और पीछे डुमराऊँ गये। वास्तव में स्वामीजी दो बार डुमराऊँ गये थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुर्गा०—**'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** इस श्रुति से विरोध होता है, अर्थात् ब्रह्म एक और अद्वितीय है ?

स्वा०—इसका यह अर्थ नहीं है जो आप समझते हैं। इसका अर्थ यह है कि जैसे किसी के घर में अन्य कोई न हो तो वह कहता है कि यहाँ एक मैं ही हूँ और कोई नहीं है, परन्तु इससे गाँववालों, सम्बन्धियों आदि का निषेध नहीं होता, अतः स्वामी शङ्कराचार्य का यह मत कि ब्रह्म सजातीय, विजातीय, स्वगत-भेदशून्य है, मिथ्या है, यहाँ केवल दूसरे ब्रह्म का निषेध है न कि जीव का।

दुर्गा०—हम तो इस सिद्धान्त को नहीं मानते।

स्वा०—आपके न मानने में क्या प्रमाण है।

इसका पण्डित दुर्गादत्त ने कोई उत्तर न दिया।

स्वा०—मूर्त्तिपूजा के लिए किसी श्रुति का प्रमाण नहीं है।

दुर्गा०—है क्यों नहीं, देखिए—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्—इत्यादि (यजुः० अ० ३१, मं० ११)

त्र्यम्बकं यजामहे—इत्यादि (यजुः० अ० ३, मं० ६०)

यदि परमेश्वर के मुख नहीं था तो चारों वर्णों की उत्पत्ति कैसे हुई और मूर्त्ति न हो तो मुख कहाँ? और दूसरा मन्त्र तो विशेषरूप से शिवजी की पूजा का है 'जिसके तीन नेत्र हैं' और जाबालोपनिषद् में लिखा है—

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्धिग्ग्रामाशिवालयम्।

इत्यादि प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध है। आप कैसे कहते हैं कि मूर्त्तिपूजा में श्रुति का प्रमाण नहीं है।

स्वामीजी ने वेद-मन्त्रों के यथार्थ अर्थ करके उन्हें समझाया और जाबालोपनिषद् के विषय में कहा कि यह जाबाल नहीं प्रत्युत जाल उपनिषद् है, उसमें किसी ने वाग्जाल रचा है, वेदविरुद्ध होने से उसका प्रमाण नहीं है।

इसपर पण्डितजी ने कुछ उत्तर दिया। तत्पश्चात् भगवद्गीता के श्लोक **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'** इत्यादि पर कुछ बात-चीत हुई।

गर्व खर्व हो गया—बात-चीत होते-होते पं० दुर्गादत्त ने स्वीकार किया कि वेदों की ऋचाओं में तो मूर्त्तिपूजा की बात नहीं, परन्तु मैं सदा इस महादेव को अपनी आँखों से देखता रहा हूँ। कुछ और बातचीत होने के पश्चात् पं० दुर्गादत्त ने कहा कि वेद में प्रतिमा शब्द है और एक वाक्य उद्धृत किया जिसमें प्रतिमा शब्द आया था।

हारकर वाक्प्रहार—उसे सुनकर स्वामीजी ने कहा कि जिस अंश का आपने पाठ किया है वह वास्तव में वेद नहीं है। इसपर पं० दुर्गादत्त को आवेश आ गया और वह कटु वचन बोलने लगे। तब मुंशी रणधीरप्रसाद ने बीच में पड़कर कहा कि इस प्रकार के वादविवाद का कुछ फल नहीं है और वे पण्डितों को समझाकर वहाँ से उठाकर ले-गये।

उपहार अस्वीकार—इसके तीसरे दिन लाल साहब और बा० जयप्रकाशलाल स्वामीजी के पास आये और ५०) रु० तथा कपड़े का एक थान उनके सामने रखकर कहा कि अब आप यहाँ से जा रहे हैं, अतः यह उपहार स्वीकार कीजिए, परन्तु स्वामीजी ने यह कहकर कि मैं किसी से उपहारादि नहीं लेता, हूँ, उसे अस्वीकार कर दिया।

दुर्गादत्त की अनर्गलता—पण्डित दुर्गादत्त में अत्यन्त अहम्भाव था, उन्हें अपनी विद्या पर अत्यन्त गर्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था। वे दूसरे को अपने बराबर नहीं समझते थे, अपने नाम के पीछे परमहंस, योगिवर्य, विप्रराजेन्द्र आदि स्वकल्पित उपाधियाँ लगाते थे। उन्होंने संवत् १९४१ में स्वामीजी के निर्वाण-पद-प्राप्ति के पश्चात् अपने दिग्विजय की एक पुस्तक छपवाई थी जिसमें इस शास्त्रार्थ का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया था—

न शशाक यदा प्रोक्तुं जहासाथाब्रवद्वचः। धन्यस्त्वं हि महानात्मा सर्वज्ञः शास्त्रपारगः॥

उसकी संस्कृत में टीका इस प्रकार की—

अथ सोऽपि यदा वक्तुं न शशाक तदा निरस्तो भूत्वा धन्यस्त्वमिति प्रशंसया दयानन्दः श्रीमद्योगिवर्यं विप्रराजेन्द्रं प्रणनामेत्याह, अथ त्वं महानात्मा ब्रह्मैव, नाहं त्वदन्यं वक्तारं दृष्टवान् इति।

अर्थात् जब (दयानन्द) उत्तर न दे सका तब दयानन्द हँसा और यह कहा कि हे महात्मन्! आप धन्य हैं, सर्वज्ञ हैं और सब शास्त्रों का आपने पार पा लिया है। इसी आशय की इस श्लोक की टीका है, उसमें इतना और है कि दयानन्द ने श्रीमद्योगिवर्य विप्रराजेन्द्र की प्रशंसा की और प्रणाम करके कहा कि आप धन्य हैं, आप ब्रह्म हैं, मैंने आप-जैसा दूसरा वक्ता नहीं देखा।§

(अगस्त—६ या ७ सितम्बर) आरा (भाद्र कृ०—भाद्र० शु० ३ या ४)

डुमराऊँ से स्वामीजी आरा‡ गये और महाराजा डुमराऊँ के बाग़ में ठहरे। आरा में उनका आतिथ्य-सत्कार मुंशी हरवंशलाल वकील और बाबू रजनीकान्त मुखोपाध्याय ने किया था। अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी उनके डेरे पर दर्शकों का ताँता लगा रहता था।

दो पण्डितो से शास्त्रार्थ—पं० रुद्रदत्त और पं० चन्द्रदत्त पौराणिक से स्वामीजी का मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ था। पं० रुद्रदत्त ने मूर्त्तिपूजा के पक्ष में पुराणों के प्रमाण प्रस्तुत किये। स्वामीजी ने उन्हें यह कहकर अग्राह्य किया कि हम वेद, पाणिनि और मनुस्मृति (प्रक्षिप्त भाग को छोड़कर) के सिवाय अन्य ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते।

पुराण किसने बनाये—तत्पश्चात् यह प्रसङ्ग उठा कि पुराण किसने बनाये। स्वामीजी ने कहा कि पुराण वञ्चक लोगों के रचे हुए हैं। कुरुक्षेत्र के युद्ध में प्रायः सारे ही राजा मर गये थे, राजगृह की स्त्रियाँ उत्पथगामिनी हो गईं, ब्राह्मण असहाय हो गये, अनेक प्रकार के वञ्चक लोग उत्पन्न हो गये, उन्होंने पुराणादि की रचना कर डाली, उन्होंने यह भी कहा कि महाभारत का युद्ध भारतवर्ष की अनेक प्रकार की अवनतियों का मूल हुआ है। तन्त्र-ग्रन्थों के विषय में स्वामीजी ने अनेक बातें कहीं, जिन्हें सुनकर पं० रुद्रदत्त चिढ़ गये

---

§ पाठक इस अनर्गलता को देखकर हँसेंगे, इसमें झूँठ का पहाड़ खड़ा कर दिया गया है। आत्मश्लाघा में निर्लज्जता की पराकाष्ठा कर दी गई है। दयानन्द दुर्गादत्त को सर्वज्ञ, पारग और ब्रह्म कहे! कभी विश्वास किया जा सकता है? जब तक स्वामीजी जीवित रहे तब तक यह दिग्वजय न जाने किस कोने में छिपी पड़ी रही, क्योंकि उनके जीवन-काल में ऐसी बेसिर-पैर की बातों के कहने का साहस ही कैसे होता?

‡ पण्डित लेखराम के अनुसार स्वामीजी ८ अगस्त सन् १८७३ अर्थात् श्रावण शुक्ला १५ को डुमराऊँ से मिर्ज़ापुर चले आये, देवेन्द्रबाबू के अनुसार वे आरा चले गये।

वास्तव में बात यह है कि स्वामीजी डुमराऊँ कलकत्ता जाते हुए भी ठहरे थे और आते हुए भी। देवेन्द्रबाबू के अनुसार पण्डित दुर्गादत्त से शास्त्रार्थ कलकत्ता जाते हुए हुआ था और पण्डित लेखराम के अनुसार कलकत्ता से लौटते हुए। हमें देवेन्द्रबाबू का अनुसन्धान ही समीचीन जान पड़ता है, क्योंकि शास्त्रार्थ का होना प्रथमागमन के अवसर पर ही अधिक सम्भव है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और चटक कर बोले कि ऐसी बातें अश्राव्य हैं, इस स्थान से चला जाना ही उचित है। स्वामीजी ने कहा कि आप तो कुछ विचार करते नहीं, इसी से किसी परिणाम पर नहीं पहुँचते। वेदान्त का प्रसङ्ग उठने पर स्वामीजी ने प्रमाण-चैतन्य, प्रमेय-चैतन्य और प्रमातृ-चैतन्य के विषय में प्रश्न किये जिनके पं० रुद्रदत्त ने यथामति उत्तर दिये।

पण्डित चिढ़कर भाग गये—स्वामीजी दीप्त प्रभाकर के समान थे। उनके गम्भीर विचार और अतिमानुषिक प्रतिभा के सामने पं० रुद्रदत्त प्रभृति कितनी देर ठहर सकते थे। वे अपना श्रेय सभा-स्थल से शीघ्रादपि शीघ्र चले जाने में ही समझते थे। वे केवल वहाँ से चले जाने का बहाना ढूँढते थे, अतः जब स्वामीजी ने तन्त्र-ग्रन्थों की तीव्र आलोचना की तो उन्होंने यह प्रकट किया कि उक्त आलोचना असह्य है और सभास्थल से उठकर चले गये।

दो व्याख्यान—आरा में स्वामीजी के दो व्याख्यान हुए। एक गवर्नमेंट स्कूल के आँगन में और दूसरा अन्यत्र। व्याख्यानों का विषय था 'वैदिक धर्म'। व्याख्यान में श्रोताओं की भीड़ बहुत थी। स्वामीजी ने कहा था कि प्रचलित हिन्दू-धर्म और रीति-रिवाज वेदानुमोदित नहीं है, प्रतिमा-पूजा वेद प्रतिपादित नहीं है, विधवा-विवाह वेद-सम्मत और बाल-विवाह वेदविरुद्ध है, दीक्षा-ग्रहण करने की रीति आधुनिक है, मन्त्र देने का अर्थ कान में फूँक मारने का नहीं है, यदि ऐसा हो तो मन्त्री का अर्थ भी वैसा ही होना चाहिए, अर्थात् कान में फूँक मारनेवाला।

स्वामीजी संस्कृत में बोलते थे और थोड़ी-थोड़ी देर में चुप हो जाते थे, उस अन्तर में बाबू रजनीकान्त उनके कथन का भाषा में अनुवाद करके श्रोताओं को सुना दिया करते थे।

आर्यसमाज की पहली दागबेल—नगर के सभी सम्भ्रान्त पुरुष महाराज के दर्शनार्थ आते थे और सन्ध्या-समय उनके पास अच्छी भीड़ लग जाती थी। स्वामीजी ने आरा में एक सभा की भी स्थापना की थी जिसका उद्देश्य आर्यधर्म और रीति-नीति का संस्कार करना था, परन्तु उसके एक-दो ही अधिवेशन हुए। स्वामीजी के आरा से चले जाने के पश्चात् थोड़े ही दिन में उसकी अन्त्येष्टि हे गई।

ज़िला मजिस्ट्रेट से मिलन—मुंशी हरवंशलाल ने स्वामीजी से कहा कि यदि आपके विचारों के पक्ष में अंग्रेजों का सहाय प्राप्त हो जाए तो आपका कार्य शीघ्र ही सिद्ध हो सकता है, अतः उन्होंने स्वामीजी के आरा के तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर एच०डब्ल्यु० अलेकजेंडर से मिलने का प्रबन्ध किया और एक दिन वे और रजनीबाबू स्वामीजी को उनके पास ले-गये। मजिस्ट्रेट से स्वामीजी की बात-चीत हुई। स्वामीजी संस्कृत बोलते थे, रजनीबाबू उसका अनुवाद करके मजिस्ट्रेट को समझाते जाते थे।

संस्कृत बोलने का कारण—मजिस्ट्रेट स्वामीजी के कथन को बहुत ध्यान से सुनता था। उसने स्वामीजी से संस्कृत बोलने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि भारतवर्ष में द्राविड़ प्रभृति अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। तब मैं किस भाषा में बोलूँ ? इसके अतिरिक्त संस्कृत सारे हिन्दुओं की भाषा है और समस्त भाषाओं का मूल§ है, अतः संस्कृत बोलना ही उचित है।

वर्ण कर्म पर निर्भर है—इसके पश्चात् हिन्दुओं की रीति-नीति और सामाजिक व्यवस्था पर अनेक बातें हुई। वर्णभेद पर स्वामीजी ने कहा कि वर्ण का निर्भर कर्म और चरित्र पर है।

पाचक-कर्म शूद्र-कर्म है—इसी प्रसङ्ग में स्वामीजी ने यह भी कहा कि पहले ब्राह्मण पाचक का कार्य नहीं करते थे, पाचक-कर्म सेवा-कर्म है और सेवा शूद्र का कार्य है, पहले समय में पाचक-कर्म शूद्र ही किया

---

§ इस विषय में विस्तार से देखो, हमारा संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास, प्रथमाध्याय। —**यु० मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते थे, पीछे पुराण बनानेवालों ने इस प्रथा को उठाकर अनिष्ट कर दिया।

इतनी बात-चीत होने पर स्वामीजी और उनके साथी मजिस्ट्रेट से विदा लेकर चले आये।

आरा में १५ दिन ठहरकर स्वामीजी कलकत्ता की ओर अग्रसर हुए।

(६ या ७ सित०—२ अक्टू०) पटना (भाद्र शु० ३ या ४—आश्विन कृ० ३०)

आरा से चलकर स्वमीजी भाद्र शु० ३ या ४ सं० १९२९ अर्थात् ६ या ७ सितम्बर सन् १८७२ को पटना पहुँचे और महाराज भूपसिंह के रोशन बाग़ में ठहरे।

पण्डित मण्डली से शास्त्रार्थ—स्वामीजी के आगमन का समाचार नगर में फैलते ही उच्च राजकर्मचारी, पण्डित, सम्भ्रान्त पुरुष उनके दर्शन और उनसे वार्त्तालाप करने के लिए आने लगे। एक दिन वहाँ के प्रसिद्ध पण्डित रामजीवनभट्ट ५०-६० ब्राह्मणों को साथ लेकर उनसे शास्त्रार्थ करने पहुँचे। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। स्वामीजी के 'दृष्ट्वाहासौ' शब्द कहने पर एक पण्डित ने कहा कि आपने यह पाठ अशुद्ध कहा है।

आपस में फूट—पण्डित रामजीवन तो चुपचाप बैठे रहे, अन्य पण्डित शास्त्रार्थ करते रहे, परन्तु थोड़ी देर में पण्डितों में ही विवाद और कलह होने लगा, अतएव वे लोग स्वयं ही उठकर चले गये और शास्त्रार्थ अधूरा ही रह गया।

मरने के पश्चात् जीव कहाँ रहता है—इस शास्त्रार्थ के थोड़ी देर पश्चात् ही एक सज्जन ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि मरकर जीव कहाँ रहता है ? इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि जीव मरकर वायु के सहारे आकाश में रहता है और फिर वायु-आश्रय, पुष्प-आश्रय, अन्न-आश्रय, जल-आश्रय होकर मनुष्य के हृदय और वीर्य में पहुँचता है और स्त्री में गर्भ स्थापन करता है, वही फिर जन्मता है, उसी को बन्ध और मोक्ष होता है।

शालिग्राम की मूर्त्ति फेंक दी—पं० रामलाल पटना कॉलेज के पण्डित ने स्वामीजी के उपदेश से प्रभावित होकर शालिग्राम की मूर्त्ति फेंक दी थी।

स्वामीजी दुर्गापाठ को मुर्गापाठ कहा करते थे।

इन दिनों स्वामीजी के साथ एक विद्यार्थी भी था। वही उनकी रसोई बनाया करता था, परन्तु वह चोर था और स्वामीजी उससे अप्रसन्न थे।

विद्यार्थी राजनाथ—नार्मल स्कूल का एक विद्यार्थी राजनाथ तिवारी स्वामीजी की प्रशंसा सुनकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने यह विचारा कि यदि स्वामीजी उसे साथ रख लें तो वह उनसे विद्या पढ़कर पूर्ण विद्वान् हो जाए, अतः एक दिन सायङ्काल जब स्वामीजी फुलवारी में टहल रहे थे, वह उनके पास पहुँचा और अपना अभिप्राय उनपर प्रकट किया। उन्होंने उससे कहा कि यदि तेरा पिता कहेगा तो हम तुझे साथ रख लेंगे। उसने कहा कि यदि माता-पिता यह सब वृत्तान्त सुनेंगे तो वे कब अनुमति देंगे, अपितु कहेंगे कि तुझे स्वामीजी साधु बना लेंगे। उसके अत्यन्त अनुनय-विनय करने पर स्वामीजी उसे साथ रखने पर सहमत हो गये। उसने रात्रि को वहाँ ही शयन किया। अगले दिन स्वामीजी ने उसे ही रसोई बनाने की आज्ञा दी और पहले विद्यार्थी को यह कहकर कि तू चोर है, रसोई मत बना और यात्रा के व्यय के लिए पाँच रुपये देकर उसके घर भेज दिया। राजनाथ ने रसोई बनाई और जब स्वामीजी ने उससे कहा कि **'शाकं देहि, सूपं देहि'**, तो वह कुछ न समझा, क्योंकि पटना प्रान्त में सूप छाज को और शाक पालक आदि को कहते हैं तब स्वामी ने हाथ से संकेत करके बतलाया कि सूप से दाल और शाक से आलू आदि अभिप्रेत हैं।

राजनाथ सायङ्काल स्कूल के छात्रावास में वापस आया और सारा वृत्तान्त अपने अध्यापक और डिप्टी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोहनलाल से कहा। उन्होंने कहा तेरे बड़े भाग्य हैं जो स्वामीजी तुझे अपने साथ रखने पर राज़ी हो गये। डिप्टी सोहनलाल ने उसे बुलाकर कहा कि स्वामीजी के लिए दूध और मिश्री ले-जाओ। उसने कहा कि अब सन्ध्या हो गई है और बूँदे भी पड़ रही हैं और स्वामीजी का स्थान भी दो-ढाई कोश है, मुझे डर लगता है, परन्तु उन्होंने यह कहकर कि यदि तू ऐसे डरेगा तो स्वामीजी के साथ कैसे रहेगा, जो प्रायः जंगल में ही रहते हैं, उसे रात्रि में ही स्वामीजी के स्थल पर जाने के लिए बाध्य किया।

मार्ग में कण्टक—विवश होकर वह वहाँ से चला, परन्तु बहुत डरता हुआ। जब वह बस्ती के बाहर पहुँचा तो उसे बहुत डर लगा, क्योंकि रात अँधेरी थी, बूँदे पड़ रही थीं और सड़क के दोनों ओर पानी था। वह थोड़ी दूर चला होगा कि उसे अपने आगे सड़क के बीच में एक सर्प पड़ा हुआ दिखाई दिया। उसने यह सोचा कि लौट जाए, परन्तु पीछे फिरकर जो देखा तो इधर दूसरा सर्प पड़ा था। अब तो वह बहुत घबराया, परन्तु वहाँ खड़े रहने में भी भय था और आगे बढ़ने में भी, अतः उसने आगे बढ़ना ही स्थिर किया और सर्प के पास पहुँचकर आँखें बन्द करके और छलाँग मारकर सर्प के ऊपर से कूद गया और दौड़ता-हाँपता आगे बढ़ा। मार्ग में रेल का फाटक पड़ता था, वहाँ पहुँचकर ही दम लिया।

क्या तूने सर्प देखा ?—जब थोड़ी देर दम ले-लिया तो आगे चला और स्वामीजी के पास पहुँच गया। उस समय स्वामीजी बैठे हुए थे और बाग़ के कुछ माली भी उनके पास बैठे थे। स्वामीजी ने उसे देखकर कहा कि क्या मार्ग मे तू डरा था और क्या तूने सर्प देखा था ? राजनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी ने यह सब वृत्त कैसे जान लिया !

एक वकील से वार्तालाप—एक दिन बाबू गुरुप्रसाद रईस व वकील की स्वामीजी से यह बात-चीत हुई थी।

गुरु०—संसार-आश्रम को त्यागना ठीक है वा नहीं ?

दया०—आप संसार-आश्रम किसे कहते हैं ?

गुरु०—दार-परिग्रह, पुत्रादि के साथ रहना इत्यादि।

दया०—इत्यादि में क्या है ?

गुरु०—धन-उपार्जन करना।

दया०—ग्रह में क्या है ?

बिना पूछे उत्तर मिल गया—अभी बाबू गुरुप्रसाद कुछ कहने न पाये थे कि स्वामीजी ने स्वयं ही कहा कि ग्रह में है खाना-पीना, साँस लेना, शौच, विद्याभ्यास, ज्ञान-उपार्जन करना।

बाबू गुरुप्रसाद के प्रश्न का उत्तर मिल गया, अर्थात् वह यह कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो संसार-आश्रम का त्याग कर सके।

एक दिन स्वामीजी तो शौचादि के लिए जंगल गये थे, ब्राह्मण उनके लिए रसोई बना रहा था। अभी स्वामीजी वापस न आये थे कि उसका चचा आ गया। उसने रसोइया से पूछा कि जब स्वामीजी खा लेते होंगे तब ही तुम खाते होओगे। उसने कहा कि 'हाँ'। उसके चचा ने कहा कि तब तो चौका झूठा हो गया। तुम लकीर आदि का नियम कर लिया करो। उस दिन जब स्वामीजी भोजन करने बैठे तो चौके के बाहर ही बैठे। पाचक ने कहा कि आज आप चौके के बाहर क्यों बैठते हैं। स्वामीजी ने कहा हमें किसी बिरादरी का भय नहीं है कि कोई हमें बिरादरी से निकाल देगा।

हम भागवत जैसे ३८,००० श्लोक बना सकते हैं—एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसने भागवत का प्रमाण दिया, जिसका महाराज ने खण्डन किया। इसपर वह बोला कि ऐसा भी तो कोई नहीं कि जैसे भागवत के १८,००० श्लोक बने हुए हैं, वैसे बनाकर दिखला दे। स्वामीजी ने कहा कि यह कोई शूरता की बात नहीं, उसने जैसा यह बनावटी ग्रन्थ १८,००० श्लोक का बनाया है, हम ३८,००० श्लोक का बना सकते हैं।

जूता-खड़ाऊँ के प्रश्नोत्तर—जूता और खड़ाऊँ के प्रश्नोत्तर लीजिए, आप लिखते जाएँ। स्वामीजी बोलने लगे और वे लिखने लगे, अभी वह दो ही श्लोक लिख पाया था कि उनकी संस्कृत और व्याकरण की योग्यता और भाषा का सौष्ठव देखकर चकित रह गया और स्वामीजी को प्रणाम करके चुपचाप चला गया।

अशुद्ध-भाषी पण्डित का खिसियाना—एक दिन कुछ पण्डित स्वामीजी से शास्त्रविचार करने के अभिप्राय से आये। उस समय २०० के लगभग मनुष्य उपस्थित थे। पण्डितों में से पं० रामावतार सिद्धान्त-कौमुदी का भट्टोजिदीक्षितरचित मङ्गल श्लोक पढ़कर शास्त्रार्थ करने लगे, परन्तु वे इतना अशुद्ध बोलते थे कि स्वयं उनके साथी ही उनसे कहने लगे कि जब तुम संस्कृत नहीं बोल सकते तो स्वामीजी से क्यों बकवाद करते हो। थोड़ी देर तो स्वामीजी चुप रहे फिर वे हँस पड़े और अन्य लोगों को भी हँसी आ गई। इसपर पं० रामावतार खिसयाये और अश्रु-पूर्ण नेत्र होकर उठकर चले गये। तत्पश्चात् स्वामीजी ने उपस्थित लोगों को उपदेश दिया जिसे सुनकर सब लोग उसकी सत्यता की स्वीकृति का सूचक 'हूँ-हूँ' शब्द करते रहे। स्वामीजी कौमुदी को 'कुमति' कहा करते थे।

स्वामीजी ने यहाँ एक विज्ञापन भी दिलवाया था कि वहाँ १५ दिन और टिकेंगे, जिस किसी को मूर्त्तिपूजा व पुराणों पर शास्त्रार्थ करना हो करले ताकि फिर किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के भय से चले गये; परन्तु विज्ञापन देने पर भी कोई शास्त्रार्थ के लिए सामने न आया।

स्वामीजी पटना में एक मास रहे और ३ अक्टूबर १८७२ को बेगमपुर के स्टेशन से मुँगेर के लिए रेल पर सवार हो गये। चलते समय भक्तजनों ने उनकी सेवा के लिए एक कहार साथ कर दिया। रात्रि के बारह बजे जब गाड़ी जमालपुर जंक्शन पर पहुँची तो मुँगेर की गाड़ी के छूटने में एक घण्टे की देर थी। स्वामीजी कौपीनमात्र धारण किये प्लेटफार्म पर टहलने लगे। एक अंग्रेज इञ्जीनियर और उसकी पत्नी प्लेटफार्म पर खड़े थे। मेम साहब को एक नंगे साधु को टहलते हुए देखकर बुरा लगा। उसके पति ने स्टेशन मास्टर को स्वामीजी के पास भेजा कि इस साधु को टहलने से रोक दो। वह तो जानता था कि साधु कौन है। वह डरता-डरता गया और उसने कहा कि महाराज ! आप कुर्सी पर आराम कीजिए, अभी गाड़ी छूटने में देर है। स्वामीजी समझ गये कि उसे गोरे साहब ने भेजा है कि हमें टहलने से रोक दे। उन्होंने स्टेशन मास्टर के कहा कि साहब से कह दो कि हम उस युग के लोग हैं जब बाबा आदम और बीबी हव्वा अदन के उद्यान में नंगे रहने में तनिक भी लज्जा नहीं करते थे। स्वामीजी ने टहलना जारी रक्खा। स्टेशन मास्टर ने साहब से जाकर कहा कि हुजूर वह कोई भिखमँगा तो है नहीं जिसे प्लेटफार्म से निकाल दूँ। वह एक स्वतन्त्र संन्यासी है जो मुझे और आपको कुछ भी नहीं समझता। नाम पूछने पर स्टेशन मास्टर ने महाराज का नाम बताया तो साहब ने कहा कि क्या प्रसिद्ध सुधारक दयानन्द यही है। इसके पश्चात् वह स्वामीजी के पास गया और जब तक गाड़ी छूटने का समय हुआ तब तक उनसे बात-चीत करता रहा।

(४ अक्तू०—१८ अक्तू०) मुँगेर (आश्विन० शु० १—कार्ति० २)

अपरिचित स्थान का परिचय—स्वामीजी ४ अक्तूबर सन् १८७२=आश्विन शु० १ सं० १९२९ वि० के प्रातःकाल मुँगेर पहुँचे और बिना किसी से पूछे एक ओर को चल दिये मानो वे उस स्थान से जहाँ उन्हें ठहरना था पहले से परिचित थे। कुछ दूर चलकर एक साधु के आश्रम पर पहुँच गये, जिसमें दो कमरे थे, कुआँ था, फुलवारी थी और गंगा की धारा भी निकट ही थी। साधु उस समय आश्रम में न था। वहाँ पहुँचकर स्वामीजी ने राजनाथ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्यार्थी और कहार को आश्रम में आसन लगाने की आज्ञा दी और वहाँ ही ठहर गये।

मौनी का मौन भंग—मुँगेर पहुँचने के तीसरे दिन एक मौनी साधु स्वामीजी के पास आया और आकर बैठ गया। स्वामीजी ने उससे दो चार प्रश्न किये, परन्तु उसने कुछ उत्तर न दिया। उससे भोजन के लिए पूछा तो संकेत से उसने भोजन करने की इच्छा प्रकट की। भोजन करने के पश्चात् महाराज ने उससे कहा कि यदि तू मूर्ख है तो तेरा चुप रहना ठीक है और तू पण्डित है तो कुछ बात-चीत कर। इसपर वह बोला और महाराज ने मूर्त्तिपूजा और पुराणों का खण्डन किया। उसने दोनों की असत्यता स्वीकार की। घण्टाभर बात-चीत करके वह चला गया।

ईंधन क्यों माँगा—स्वामीजी को उस आश्रम में ठहरे हुए चार दिन हो गये, परन्तु एक-दो ब्राह्मणों के सिवाय उनके पास और कोई न आया। एक दिन स्वामीजी का कहार, गङ्गा-तट पर जो लकड़ी की टाल थी, उसपर सूखी लकड़ी माँगने चला गया। स्वामीजी को इसकी खबर न थी। टालवाले ने पूछा कि लकड़ी किसके लिए चाहिए। कहार ने कहा कि स्वामीजी के लिए। टालवाले ने कहा कि हम नहीं जानते कौन स्वामी है। जब कहार वापस आया तो स्वामीजी ने राजनाथ विद्यार्थी से कहा कि इसके जूते लगाओ। राजनाथ को आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी ऐसी आज्ञा क्यों दे रहे हैं। उसने स्वामीजी से पूछा कि इसने क्या अपराध किया है तो उन्होंने कहा कि यह टाल पर ईंधन की भिक्षा माँगने गया था। कहार से राजनाथ ने जो पूछा तो उसने सब वृत्तान्त कह दिया। राजनाथ बहुत चकित हुआ कि महाराज ने यह सब वृत्त कैसे जान लिया, क्योंकि उनके स्थान से वह टाल दिखाई न देती थी। इतने ही में टालवाला लकड़ियों के पाँच बोझ मज़दूरों के सिर पर रखवाकर ले-आया। स्वामीजी ने लेने से निषेध किया, परन्तु उसके बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने वह रख लिया। राजनाथ ने कहार के जूते लगा दिये। स्वामीजी ने दोनों से कहा कि यदि फिर कभी किसी से भिक्षा माँगोगे तो दोनों को निकाल देंगे।

किसी के घर पर जाकर भोजन न करेंगे—एक दिन एक ब्राह्मण ने बहुत विनयपूर्वक कहा कि महाराज आज मेरे गृह पर ही भिक्षा कीजिए। उसके आग्रह पर स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया, परन्तु फिर राजनाथ से कहा कि हम किसी गृहस्थ के घर पर जाना नहीं चाहते, राजनाथ तुम ही चले जाओ और स्वयं भोजन करके हमारे लिए यहीं ले-आओ।

इसके अगले दिन से ३०-४० मनुष्य स्वामीजी के स्थल पर आने लगे और मूर्त्तिपूजा का खण्डन होने लगा, सब सुनते रहे परन्तु किसी ने आक्षेप न किया।

अवैदिक पुस्तक गंगा की भेंट—एक दिन स्वामीजी ने राजनाथ को 'आदित्य हृदय' का पाठ करते देख लिया। इसपर उसकी अन्य पुस्तकें देखीं तो वे सब अवैदिक पुस्तकें थी। स्वामीजी ने राजनाथ से कहा कि इन सब पुस्तकों को गंगा में डाल आओ। उसने ऐसा ही किया।

कार्त्तिक कृष्ण २ संवत् १९२९ वि० अर्थात् १८ अक्टूबर १८७२ ई० को स्वामीजी ने भागलपुर के लिए प्रस्थान किया।

(२० अक्तू०—१९ दिस०) भागलपुर (कार्त्तिक कृ० ४—पौष कृ० १)

कार्त्तिक कृष्णा ४§ संवत् १९२९ वि० को सायङ्काल के सात बजे स्वामीजी ने भागलपुर पहुँचकर प्रथम गङ्गातट पर बुड्ढेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरने का विचार किया, परन्तु स्थान को अनुकूल न पाकर

---

§ हमारे विचार में या तो यहाँ कार्त्तिक कृष्णा ३ चाहिए या पहली पंक्ति में कार्त्तिक कृष्णा २ के स्थान में कार्त्तिक कृ० ३ चाहिए, क्योंकि पटना से भागलपुर पास ही है। —**यु० मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वहाँ से तुरन्त ही चल दिये और छपटिया तालाब के एक मन्दिर में ठहर गये। यह मन्दिर पं० मोहनलाल शाकल्य द्वीपी का था, परन्तु उस समय वहाँ कोई न था। थोड़ी देर पश्चात् पं० मोहनलाल भी वहाँ आ गये और उन्होंने स्वामीजी का यथोचित सत्कार किया। वे संस्कृतज्ञ थे। स्वामीजी से उनकी रात्रि के दस बजे तक बात-चीत होती रही।

हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिए—अगले दिन प्रातःकाल से ही बहुत-से लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ आने लगे और मूर्त्तिपूजा का खण्डन होने लगा, परन्तु उसके प्रत्युत्तर में किसी ने कुछ न कहा। पण्डितों के तो स्वामीजी के संस्कृतभाषण को सुनकर ही होश गुम हो गये, उनमें से शास्त्रार्थ कौन करता ? एक अग्रवाल स्वामीजी के लिए अन्नादि और दुग्ध भिजवाने लगा। दो दिन तक तो उन्होंने ग्रहण किया, परन्तु तीसरे दिन यह कहकर कि हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिए, हम ईश्वर नहीं हैं जो तुम्हें पुत्र दें और तुम्हारा अन्न खाएँ। पीछे ज्ञात हुआ कि वह पुत्रहीन था और उसे पुत्र की बड़ी कामना थी और इसी उद्देश्य से वह स्वामीजी के लिए अन्नादि भिजवाया करता था।

राजनाथ ! तेरा पिता आ गया—स्वामीजी को वहाँ ठहरे हुए एक सप्ताह हो गया। सप्ताह के अन्तिम दिन स्वामीजी ने राजनाथ से जबकि वह रसोई बना रहा था कहा कि तेरा पिता आ गया। मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि अपने पिता की आज्ञा लेकर आओ, परन्तु तुमने न माना और उन्हें कष्ट हुआ। वह रसोई से बाहर आया, परन्तु उसके पिता का कहीं पता न था। आधा घण्टे के पश्चात् उसका पिता सचमुच आ गया। वह राजनाथ को देखकर रोने लगा। स्वामीजी को यह देखकर दुःख हुआ और उन्होंने राजनाथ के पिता से कहा कि तुम अपने पुत्र को ले-जाओ हम अन्य साधुओं के समान नहीं हैं कि तुम्हारे पुत्र को चेला बनाकर तुम्हें दुःख देवें। राजनाथ यह समझकर कि अब उसे घर लौटना ही होगा, बरारी (भागलपुर का एक भाग) में एक मित्र से मिलने चला गया। वहाँ जाकर उसने स्वामीजी के आगमन का समाचार गवर्नमेंट हाईस्कूल के पण्डित अभयराम और बाबू पार्वतीचरण से कहा। पार्वतीचरण भागलपुर के एक अत्यन्त साधुचरित और सम्भ्रान्त पुरुष थे। अगले दिन वे स्वामीजी से मिलने आये और उनसे अपने बाग़ में चलकर रहने को कहा। स्वामीजी यह निश्चिय करके कि वहाँ स्त्रियों का गमनागमन नहीं है, पार्वती बाबू के साथ उनके बाग़ में चले गये।

श्राद्ध जीवित का करना चाहिए—एक दिन गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेडमास्टर बाबू निवारणचन्द्र मुखोपाध्याय के उद्योग से गवर्नमेंट हाईस्कूल के हॉल में स्वामीजी का व्याख्यान 'मनुष्य के कर्त्तव्याकर्त्तव्य' पर हुआ, जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ यह कहा कि श्राद्ध-तर्पण जीवित माता-पिता का करना चाहिए, मरे हुओं का नहीं।

स्वामीजी प्रतिदिन उपदेश देते थे और सैकड़ों मनुष्य उपस्थित होते थे। बाग़ में एक मेला-सा लगा रहता था और फल, मिष्टान्न, पान-तम्बाकू आदि बेचनेवालों की दुकाने लग जाती थीं।

चार नैयायिकों से वार्तालाप—वर्द्धमान के महाराजा ने स्वामीजी की प्रशंसा सुनकर चार नैयायिक पण्डितों को उनसे बात-चीत करने के लिए भेजा। पण्डित लोग आये और 'न्याय' पर चार-पाँच घण्टे बात-चीत करके और यह प्रतिज्ञा करके चले गये कि अगले दिन वे महाराज को भी सत्सङ्ग में लावेंगे।

पादरी भी चुप, मौलवी भी चुप—अगले दिन प्रातःकाल ही ३०-४० यूरोपियन, देसी पादरी और कई मौलवी आये और वह दिन उनसे ही बात-चीत करने में व्यतीत हुआ। उनमें से कोई भी महाराज की आक्षेपात्मक युक्तियों का उत्तर न दे सके।

महाराजा वर्द्धमान—अपराह्न में चार बजे महाराजा वर्द्धमान और वे चारों पण्डित आये। उस समय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादरियों से इस विषय पर कि ईश्वर साकार है व निराकर कथोपकथन हो रहा था। महाराज उसे सुनते रहे, परन्तु स्वयं कुछ न बोले। चलते समय पण्डितों से कह गये कि स्वामीजी को हमारे मकान पर ले-आओ। अगले दिन पं० अभयराम और उन्हीं पण्डितों ने आकर स्वामीजी से कहा कि आपको महाराज ने अपने मकान पर ठहरने का निमन्त्रण दिया है। महाराज ने कहा कि यदि वह स्थान एकान्त और हवादार होगा और शोर-गुल न होगा तो हम चले जाएँगे, आप लोग प्रथम जाकर मकान को पसन्द कर आएँ, परन्तु वह मकान सुविधाजनक न निकला, तत्पश्चात् उन्होंने महाराज को एक मस्जिद में ठहरने के लिए कहा, परन्तु उसके निकट क़ब्रिस्तान था। महाराज ने कहा कि हम भूत थोड़े ही हैं, जो क़ब्रिस्तान में निवास करें।

ईसाई होने पर पश्चात्ताप—जब पादरियों से बात-चीत हो रही थी एक बङ्गाली ईसाई जो ब्राह्मण-कुलोत्पन्न था रोने लगा और उसने अत्यन्त सन्ताप प्रकट करके कहा कि यदि आप जैसे उपदेष्टा मुझे पहले मिलते तो मैं कदापि ईसाई न होता। उस समय मैं स्कूल में हिन्दू-धर्म पर पादरियों के कटाक्ष सुनकर जब घर आता था और पण्डितों से उनके उत्तर पूछता था तो कोई भी उनके उत्तर न दे सकता था, यदि मुझे उत्तर मिलते तो मैं ईसाई न होता।

दो दिन तक बाबू निवारणचन्द्र गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेडमास्टर जो ब्राह्मसमाजी थे, अपने कतिपय मित्रों के साथ आकर अपनी शङ्का-निवृत्ति करते रहे। स्वामीजी ने उनसे कहा कि सब पृथिवी के लोगों के साथ खाना ठीक नहीं है, चारों वर्ण पृथक्-पृथक् हैं और वर्ण कर्म पर निर्भर हैं।

वृद्ध पुत्रकाम राजा को उपदेश—एक दिन बनैला के राजा निरानन्दसिंह स्वामीजी को पालकी में सवार कराकर अपने घर ले-गये। स्वामीजी ने समझा था कि राजा उनसे धर्म-विषय पर वार्त्तालाप करेंगे और वैदिक पाठशाला के सम्बन्ध में कुछ पूछेंगे। उन दिनों महाराज को काशी में वैदिक पाठशाला स्थापन करने की बड़ी आकांक्षा थी और वे उसके लिए धन-संग्रह करने का भी यत्न कर रहे थे। राजा ने इन विषयों पर एक बात भी नहीं की। उन्होंने पुत्रोत्पादन के लिए पुत्रेष्टियज्ञ के सम्बन्ध में परामर्श किया। राजा ने बुढ़ापे में तीसरा विवाह किया था और उन्हें पुत्र की अत्यन्त कामना थी। उनकी पहली स्त्री जीवित थी और उससे उनके एक पुत्र पद्मानन्दसिंह था भी, परन्तु उससे और उसकी माता से उनकी बनती नहीं थी। राजा ने स्वामीजी से यह भी पूछ लिया था कि उनका स्त्री-पुत्र से मनोमालिन्य कैसे दूर हो तो स्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया कि उस मनोमालिन्य के कारण तुम ही हो, तुमने ही तीन वार विवाह करके सद्भाव का नाश किया है। पुत्रेष्टियज्ञ से क्या लाभ होगा, तुम्हारी आयु अधिक हो गई है, अब तो यदि पुष्टिकर औषध खाओ तो पुत्रोत्पत्ति की आशा कर सकते हो।

हिन्दू मुसलिम द्वेष का कारण—एक दिन एक सुशिक्षित मौलवी स्वामीजी से धर्मसम्बन्धी वाद-प्रतिवाद करने के लिए आया। स्वामीजी के कमरे में जल तथा अन्य भोज्य पदार्थ रक्खे हुए देखकर वह कमरे के बाहर खड़ा रहा, भीतर न गया। महाराज के बार-बार भीतर आने के लिए कहने पर भी वह भीतर जाने में सङ्कोच ही करता रहा। अन्त में महाराज ने कहा कि तुम्हारे भीतर आने से हमारे भोज्य पदार्थ अशुद्ध नहीं होंगे और उनसे यह भी कहा कि हिन्दुओं में जो मुसलमानों के प्रति सहानुभूति का अभाव और द्वेष का भाव है उसका कारण यह नहीं हैं कि हिन्दुओं को मुसलमानों से निसर्गजात द्वेष है, वास्तव में उसका कारण हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार ही है।

मूर्खता और धूर्त्तता का उदाहरण—एक दिन पर्व का दिन था। गङ्गा के पार एक मेला था। उस दिन महाराज ने संस्कृत में एक व्याख्यान दिया था जिसे सुनकर बंगली सज्जन मुग्ध हो गये थे। सायङ्काल के समय महाराज घूमते हुए मेले में जा पहुँचे तो उन्होंने देखा कि लोग अपनी लड़कियों का पण्डों को दान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर रहे हैं। महाराज का एक भक्त था जिसका नाम नन्दन ओझा था, वही उनके लिए भोजन लाया करता था। उस दिन भी वह भोजन लाया, परन्तु महाराज डेरे पर न मिले। बहुत देर तक प्रतीक्षा करके भोजन रखकर वह अपने घर चला गया। प्रातःकाल जब वह आया तो देखा कि भोजन ज्यों-का-त्यों रक्खा हुआ है। कारण पूछने पर महाराज ने कहा कि लोगों की उपर्युक्त मूर्खता और पण्डों की धूर्त्तता देखकर हमें इतनी वेदना हुई कि भोजन का ध्यान ही न आया।

राजनाथ को भागलपुर में ज्वर हो गया, अतः उसे तो वहीं छोड़ा और गजानन विद्यार्थी को, जो स्वामीजी की मिर्ज़ापुर की पाठशाला में पढ़ा था और जिससे वे परिचित थे, साथ में लेकर कलकत्ता के लिए रवाना हुए। जिस दिन भागलपुर से प्रस्थान किया उस दिन तिथि पौष कृष्णा १ और ता० १५ दिसम्बर थी।

(१५ या १६ दि० ७२—१ अप्रैल ७३) **कलकत्ता** (पौ०कृ० १ या २ सं० २६ चै०शु० ४ सं० ३०)

प्रमोदकानन में निवास—स्वामीजी के कलकत्ता जाने के विषय में मिस्टर चन्द्रशेखर बैरिस्टर ने विशेष उद्योग किया था। पहले वे स्वामीजी को महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के उद्यान में ठहराना चाहते थे, परन्तु कृतसंकल्प न हुए। फिर वे राजा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर के पास गये, परन्तु उन्होंने भी कोई अनुराग प्रदर्शित नहीं किया। सेन महोदय बड़े असमञ्जस में पड़ गये कि क्या करें। अन्त को उन्होंने यही स्थिर किया कि राजा सौरेन्द्रमोहन के प्रमोद-कानन नामक बाग़ में ही स्वामीजी को ठहराने का प्रबन्ध किया जाए, अतः वे स्वामीजी को हावड़ा स्टेशन से लिवाकर सीधे राजा सौरेन्द्र मोहन के यहाँ पहुँचे। उन्होंने यह देखकर कि अब तो स्वामीजी उनके यहाँ आ ही गये, उन्हें न ठहराना और उनका आतिथ्य न करना अशिष्टता की पराकाष्ठा होगी, स्वामीजी की बड़ी शुश्रूषा की और अपने उक्त उद्यान में ठहराया।

आदि-ब्राह्मसमाज के उपदेशक से प्रश्नोत्तर—आदि ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती एक दिन स्वामीजी के पास आये और उनसे निम्नलिखित प्रश्न किये।

प्र०—जातिभेद है वा नहीं ?

उ०—जातिभेद है, जैसे मनुष्यजाति, पशुजाति, पक्षिजाति।

इस उत्तर को सुनकर चक्रवर्त्ती महोदय चुप हो गये तो स्वामीजी ने कहा आपका अभिप्राय संभवतः वर्णादि भेद से है तो चक्रवर्त्ती महोदय ने कहा—'हाँ'।

इसपर स्वामीजी ने कहा—भेद है, जो वेदज्ञ और पण्डित हैं वे ब्राह्मण हैं, जो युद्ध करते हैं और ज्ञानवान हैं वे क्षत्रिय हैं, जो व्यापार करते हैं वे वैश्य हैं और जो मूर्ख हैं वे शूद्र हैं, जो महामूर्ख हैं वह अतिशूद्र हैं।

प्र०—ईश्वर मूर्त्तिवाला है वा निराकार ?

उ०—संस्कृत पुस्तकों में तो बहुत-से ईश्वर हैं, आपको कौन-सा ईश्वर अभीष्ट है ? सच्चिदानन्द आदि लक्षणवाला वा अन्य ? यदि पहला तो वह निराकार है और एक है।

प्र०—ईश्वर से मिलने का क्या उपाय है ?

उ०—बहुत दिन तक योग करने से ईश्वर की उपलब्धि होती है।

प्र०—वह योग कैसा है ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर में स्वामीजी ने अष्टाङ्गयोग की व्याख्या करके सुनाई और उपदेश दिया कि तीन घड़ी रात रहे उठकर गायत्री का अर्थसहित ध्यान किया करो और गायत्री का अर्थ भी लिखवा दिया।

प्र०—सांख्यशास्त्र के कर्त्ता को लोग अनीश्वरवादी कहते हैं और उसमें **'ईश्वराऽसिद्धेः'** यह सूत्र भी है, क्या यह ठीक है ?

उ०—सांख्यकर्त्ता अनीश्वरवादी नहीं है। लोग ऋषिकृत टीकाओं को छोड़कर और भ्रष्ट लोगों की टीकाओं को पढ़कर ऐसा कहने लगे हैं। भागुरि ऋषि की टीका को पढ़ो तुम्हारा सन्देह दूर हो जाएगा। **'ईश्वराऽसिद्धेः'** सूत्र पूर्वपक्ष का है, आगे उसका उत्तर दिया गया है। यदि सांख्यकर्त्ता नास्तिक होता तो वह पुनर्जन्म, वेद, परलोक और आत्मा को क्यों मानता ?

षड्दर्शन समन्वय—कोई दर्शन दूसरे दर्शन का विरोधी नहीं है। छह कारणों से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है—न्यायदर्शन परमाणुओं का, मीमांसादर्शन कर्म का, सांख्यदर्शन तत्त्वों के मेल का, योगदर्शन ज्ञान-विचार का, वैशेषिकदर्शन काल का और वेदान्तदर्शन परमात्मा का वर्णन करता है।

यज्ञोपवीत पहनना चाहिए—उन दिनों ब्राह्मसमाज में बाबू केशवचन्द्र ने यज्ञोपवीत के विरुद्ध आन्दोलन चला रक्खा था। चक्रवर्ती बाबू ने स्वामीजी से पूछा कि यज्ञोपवीत पहनना चाहिए वा नहीं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि अवश्य पहनना चाहिए। इस व्यवस्था को सुनकर उन्होंने और कई अन्य ब्राह्मण लोगों ने यज्ञोपवीत नहीं उतारे। इसके लिए चक्रवर्त्ती महोदय आजन्म स्वामीजी के कृतज्ञ रहे कि स्वामीजी ने उन्हें पतित होने से बचाया। एक दिन स्वामीजी ने चक्रवर्त्ती बाबू से पूछा कि आपने उपनिषद् पढ़ी हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि थोड़ी-थोड़ी पढ़ी हैं। स्वामीजी के कहने से उन्होंने पुनः पढ़नी आरम्भ कीं और उनका उत्साह यहाँ तक बढ़ा कि वे उपनिषद् पढ़ने के लिए स्वामीजी के पास कानपुर और फ़र्रुखाबाद भी गये।

विद्वत्सम्मेलन—दो बजे मध्याह्नोत्तर तक स्वामीजी योगाभ्यास, भ्रमण, विचार आदि में रत रहते थे, अतः उस समय तक उनके पास कोई न आता था। चार बजे से सभा जुड़ती थी। केशवचन्द्रसेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, द्विजेन्द्रनाथ, पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति, पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न आदि अनेक गण्यमान्य और विद्वान् लोग उनसे वार्त्तालाप करने आया करते थे।

स्वामीजी की केशवचन्द्र सेन से पुनर्जन्म तथा अद्वैतवाद पर, राजनारायण वसु से होम के विषय पर बात-चीत हुई थी। राजनारायण वसु ने अपनी बनाई हुई पुस्तक 'हिन्दूधर्म की श्रेष्ठता' स्वामीजी को सुनाई थी। उन्होंने उसे सुनकर कहा था कि पुराण और तन्त्रग्रन्थों के प्रमाण न देकर शास्त्रों से महाभारत तक के ही प्रमाण देने चाहिएँ थे।

कलकत्ता में घोर आन्दोलन—'पताका' पत्रिका के सम्पादक ने लिखा था कि स्वामीजी जब धर्म-प्रचार के निमित्त कलकत्ता पधारे थे तब चारों ओर बहुत ही आन्दोलन खड़ा हो गया था। क्या बाल, क्या वृद्ध क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी चकित हो उठे थे।

संस्कृतभाषा की सरलता और मधुरता—हमने जब सर्वप्रथम स्वामीजी की वक्तृता सुनी तो हमने एक नवीन बात देखी कि संस्कृतभाषा में ऐसी सरल और मधुर वक्तृता हो सकती है, वे ऐसी सरलतम संस्कृत में व्याख्यान देने लगे कि जो संस्कृतज्ञान से सर्वथा शून्य है, वह भी उनके व्याख्यान को समझने लगा। एक और विषय में हम बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए। अंग्रेज़ी भाषा के न जाननेवाले एक हिन्दू संन्यासी के मुख से धर्म और समाज सम्बन्ध में ऐसा उदारमत हमने पहले कभी नहीं सुना था।

एक दिन महर्षि देवेन्द्रनाथकृत ब्राह्म-धर्म ग्रन्थ पढ़वाकर सुना तो कहा कि जब इसमें सब श्लोकादि उपनिषादों के हैं तो इसका नाम 'उपनिषदों की व्याख्या' रखना उचित था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्म-समाज का उत्सव—कलकत्ता ब्राह्म-समाज के उत्सव के उपलक्ष मे द्विजेन्द्रनाथ स्वामीजी को महर्षि देवेन्द्रनाथ के मकान पर बुलाकर लाये। महर्षि देवेन्द्रनाथ ने बहुत आदर-सत्कार किया। स्वामीजी ने धर्मोपदेश दिया और अनेक लोगों से दोपहर से सायङ्काल तक धर्मालोचना हुई, जिससे सब बहुत सन्तुष्ट हुए। देवेन्द्रनाथ ने कहा कि उनके मकान पर आ जाएँ। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं किसी गृहस्थ के मकान पर नहीं ठहरता। यह उत्सव २१ जनवरी सन् १८७३ मंगलवार को था। देवेन्द्रनाथ के मकान में एक मण्डप था जिसमें चारों ओर संस्कृत के श्लोक लिखे हुए थे, स्वामीजी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे। प्रमोदकानन में महर्षि देवेन्द्रनाथ का चित्र देखकर स्वामीजी ने कहा था कि इनका स्वाभाविक अनुराग ऋषि-श्रेणी की ओर है।

गानविद्या के आचार्य की अनभिज्ञता—एक दिन प्रमोदकानन में राजा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर गये। अपराह्न के चार बजे का समय था, स्वामीजी आगन्तुक जनों से बात-चीत कर रहे थे। राजा महोदय ने अपने एक सेवक को स्वामीजी के पास भेजा। उसने स्वामीजी से कहा कि आपको राजा साहब बुलाते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इस समय मैं और लोगों से बात-चीत कर रहा हूँ, इसलिए उन्हें छोड़कर उठना ठीक नहीं है। यह सुनकर राजा महोदय स्वयं ही स्वामीजी के पास आ बैठे। (राजा साहब गान-विद्या के आचार्य समझे जाते थे और वास्तव में वे इस कला में थे भी बहुत निपुण। उन्होंने इस कला पर कई ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिनका सर्वत्र बड़ा मान है।) राजा साहब ने स्वामीजी से 'स्वर' की उत्पत्ति पर प्रश्न किये। स्वामीजी ने उनके उत्तर दिये, परन्तु वे राजा साहब की समझ में न आये। स्वामीजी ने कुछ विरक्ति प्रकट की और राजा महाशय क्रोध में भरकर उठकर चले गये।

राजा चिढ़कर द्वेष करने लगा—इसके पश्चात् राजा साहब के भृत्य और आश्रित लोग स्वामीजी की बुराई करने लगे। उनके आश्रित समाचारपत्र 'सोमप्रकाश' ने अपने अङ्क ता० २ मार्च सन् १८७३ ई०, अर्थात् फाल्गुन शु० ११ सं० १९२९ वि० में लिखा था—"दिग्विजय करते हुए यह (स्वामी दयानन्दजी) कलकत्ता में पहुँचे हैं। शङ्कराचार्य ने दिग्विजय से अद्वैतमत स्थापित करके जैसा जगत् का उपकार किया है स्वामीजी का ऐसा उद्देश्य है या नहीं, हम नहीं कह सकते हैं, परन्तु उनकी विचार-प्रणाली से जैसीकि हमने सुनी है, स्पष्ट है वे कि अपना पाण्डित्य प्रकाशित करके अपनी प्रसिद्धि चाहते हैं।"

सम्पादक का पक्षपात—स्वामीजी के समर्थकों ने 'सोमप्रकाश' को इसका उत्तर लिखा, परन्तु सम्पादक ने उसे न छापा, तब उसे ढाके के 'हिन्दूहितैषी' पत्र में मुद्रित कराया गया।

अपूर्व व्याख्यान—२ मार्च सन् १८७३ को स्वामीजी का एक व्याख्यान बड़ानगर बोरन्यो कम्पनी के हाल में हवन के लाभों पर हुआ। उसमें ईश्वर के एक होने, जीवात्मा-परमात्मा के सम्बन्ध और पञ्चमहायज्ञों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया था। दूसरा व्याख्यान बरहागौर स्कूल में फाल्गुन शु० ११ संवत् १९२९ अर्थात् ९ मार्च सन् १८७३ को हुआ। उसके विषय में कलकत्ता के अंग्रेज़ी दैनिक के १५ मार्च के अङ्क में निम्नलिखित नोट दिया गया था—

दूसरा व्याख्यान—"९ मार्च सन् १८८३ को पं० दयानन्द सरस्वती ने बरहागौर के नाइट स्कूल में वैदिक-सिद्धान्तों पर एक व्याख्यान दिया। उस जगह प्रतिष्ठित व सम्भ्रान्त पुरुषों की बहुत बड़ी संख्या थी। व्याख्यानदाता रेशमी धोती धारण किये बड़ी गम्भीरता से वेदी पर पधारे। व्याख्यान ३॥ बजे आरम्भ हुआ। पहले उन्होंने सर्वशक्तिमान् पिता से प्रार्थना की और बड़ी ओजस्विनी और सरल संस्कृत में तीन घण्टे से अधिक वक्तृता दी। उन्होंने वेदों से बड़ी स्पष्ट और व्यक्त युक्तियों से परमेश्वर का एकत्व, जातपात की हानियाँ, बाल-विवाह की बुराइयाँ सिद्ध कीं। उनके कथन से सिद्ध होता है कि वे केवल बड़े विद्वान् ही नहीं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्युत अत्यन्त गहरे सोच-विचार के पुरुष भी हैं। उनकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल और अकाट्य हैं। उनकी वर्णन-शैली निर्भीक और वीरत्वयुक्त है।"

मार्च के अन्तिम भाग में भी दो-तीन और व्याख्यान हुए जिसमें शिक्षित समुदाय ने बड़े सौमनस्य से लाभ उठाया।

संस्कृत पाठशालाओं की समालोचना—स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में यह भी कहा था कि वेदालोचन के बिना संस्कृत की शिक्षा से कोई लाभ नहीं। पुराणों की कुत्सित शिक्षा से लोग व्यभिचारी हो जाते हैं और जो विचारशील हैं, वे धर्म से पतित होकर हानिकारक बन जाते हैं। बङ्गाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने कलकत्ते के संस्कृत कॉलेज को तोड़ देने का प्रस्ताव किया था। इस बात को सुनकर स्वामीजी ने भी कहा था कि **ऐसे कॉलेज से जिसमें वेद नहीं पढ़ाये जाते कोई लाभ नहीं है।** बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर ने मूलाजोड़ में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी। वे उसमें गये थे और वहाँ उन्होंने यह प्रस्ताव किया था कि इसमें वेदों की शिक्षा दी जाए।

डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार से भी उनकी बात-चीत हुई थी और स्वामीजी ने उन्हें संस्कृत व आयुर्वेद का महत्त्व बतलाया था।

व्याख्यान देने और वेदभाष्य करने का निश्चय—एक दिन स्वामीजी ने बलदेवप्रसाद से कहा कि बलदेव ! **रईसों के पुत्र तो फ़ारसी व अंग्रेज़ी ने ले लिये, दरिद्रों के लड़के संस्कृत के लिए रह गये। इन बानरों से कुछ न होगा।** उन्होंने यह सङ्कल्प किया कि अब हम व्याख्यान दिया करेंगे और वेदभाष्य करेंगे।

न्योता क्यों खाया—एक दिन गजानन विद्यार्थी बिना स्वामीजी की आज्ञा के किसी मारवाड़ी के यहाँ निमन्त्रित होकर भोजन कर आया। स्वामीजी उससे अप्रसन्न हुए और आगे को ऐसा करने से निषेध किया, परन्तु उसके पश्चात् भी एक बार उसने फिर ऐसा ही किया, तब स्वामीजी ने उसे निकाल दिया।

विना परिचय के परिचय—कहते है कि जब बाबू केशवचन्द्रसेन प्रथम वार स्वामीजी से मिले और बात-चीत की तो उन्होंने स्वामीजी को अपना परिचय नहीं दिया था। बात-चीत की समाप्ति पर केशव बाबू बोले—

केशव०—आप बाबू केशवचन्द्र से मिले हैं ?

दया०—हाँ, मिला हूँ।

केशव०—जब वे कलकत्ते में थे ही नहीं तो मिले कैसे ?

दया०—आप ही बाबू केशवचन्द्रसेन हैं।

केशव०—आपने मुझे कैसे पहचाना ?

दया०—जो बात-चीत आपसे हुई है, वह किसी अन्य की हो ही नहीं सकती।

केशवबाबू स्वामीजी की पुरुष-परीक्षा की अपूर्व योग्यता से बड़े प्रसन्न और चकित हुए और वे स्वामीजी के प्रीति-सूत्र में बद्ध हो गये।

वैदिक धर्म ही सच्चा धर्म है—केशवबाबू ने एक दिन स्वामीजी से प्रश्न किया कि इस समय संसार में तीन सबसे बड़े धर्म हैं, कुरान का, बाइबिल का और वेद का, हम किसे सच्चा मानें। स्वामीजी ने वेद के सच्चा होने में छह युक्तियाँ दी थीं जिनमें से एक यह थी कि कुरान व बाईबिल में हर प्रकार के झगड़े-बखेड़े और कथा, कहानी हैं, परन्तु वेद में उपदेश के अतिरिक्त कोई झगड़ा आदि नहीं है।

एक दूसरे की अनभिज्ञता पर शोक—एक दिन केशवबाबू ने स्वामीजी से कहा कि मुझे शोक है कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप सरीखे वेदवेत्ता अंग्रेज़ी नहीं जानते, नहीं तो आप इंग्लैण्ड जाने के लिए मेरे प्रीतिप्रद साथी होते। स्वामीजी ने तुरन्त उसका उत्तर दिया कि मैं भी ब्राह्म-समाज के नेता के संस्कृत न जानने पर शोक प्रकट करता हूँ कि वह एक सभ्य धर्म को उस भाषा में भारतवासियों को सिखाने का दम भरता है, जिसे वे प्रायः समझ भी नहीं सकते।

भाषा बोलने का परामर्श—केशवबाबू ने ही स्वामीजी को संस्कृत के बदले भाषा में व्याख्यान देने का परामर्श दिया था और कहा था कि संस्कृत में आप कहते कुछ हैं और दूसरे लोग श्रोताओं को उसका आशय अन्यथा समझा देते हैं। इस परामर्श को स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया था।

वस्त्र-धारण करने का परामर्श—स्वामीजी को वस्त्र-धारण करने का परामर्श बाबू केशवचन्द्रसेन और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने दिया था। उसे भी स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया था।

असत्य के त्याग पर उद्यत—स्वामीजी में जहाँ अनेक गुण थे, उनमें एक गुण यह भी था कि वे सत्य और युक्तियुक्त परामर्शों को तुरन्त स्वीकार कर लेते थे, चाहे परामर्श देनेवाला विद्या, वय में उनसे कितना ही छोटा हो। वे हठी व दुराग्रही न थे। वे सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग पर सदा उद्यत रहते थे। इसके उपर्युक्त दो उदाहरण तो पाठकों के सामने ही हैं। अन्य अवसरों पर भी उनकी जीवन-घटनाओं में ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं। इससे उनका महत्त्व घटता नहीं, प्रत्युत कई गुना बढ़ जाता है। जो लोग यह कहते है कि उन्होंने कभी कोई भूल की ही नहीं या वे कभी भूल कर ही नहीं सकते थे, वे उनके पद को ऊँचा नहीं प्रत्युत नीचा बनाते हैं। निर्भ्रान्त होना तो केवल ईश्वर का गुण है, उन्होंने कभी ईश्वर वा निर्भ्रान्त होने का दावा नहीं किया। वे सदा यही कहते रहे कि मेरी सत्य बातों को मानो, असत्य को नहीं। सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका पृष्ठ ७६ शताब्दी संस्करण में वे स्वयं लिखते हैं—

"इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूल-चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल-चूक रह जाए उसको जानने-जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जाएगा और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन-मण्डन करेगा उसपर ध्यान न दिया जाएगा। हाँ, जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य-सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।"

ब्राह्मसमाज में मतभेद—बङ्गाल में उन दिनों एक और धार्मिक आन्दोलन हो रहा था। राजा राममोहनराय ने जो सुधारक संस्था स्थापित की थी, वह ब्राह्मसमाज के नाम से प्रसिद्ध है। ब्राह्मसमाज और स्वामीजी के सिद्धान्त कई अंशों में मिलते थे, मुख्य भेद यही था कि ब्राह्मसमाजी वेदों को ईश्वरकृत और आवागमन के सिद्धान्त को नहीं मानते थे, परन्तु फिर भी उन्होंने आर्य-संस्कृति से पूरा सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया था। उन दिनों ब्राह्मसमाज में एक नये सुधारक उत्पन्न हो गये थे। इनका नाम बाबू केशवचन्द्रसेन था। ये अंग्रेज़ी के बड़े ओजस्वी और प्रगल्भ वक्ता थे। ये दावा करते थे कि वे ईश्वर के प्रेरित और प्रेषित व्यक्ति हैं। वास्तव में वह अपना वही पद समझते थे और लोगों को समझाते भी थे, जो पद ईसा का था। उनके विचार ईसाईधर्म के सिद्धान्तों की ओर अधिक झुके हुए थे। ब्राह्मसमाज के नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे। उनसे बाबू केशवचन्द्रसेन का मतभेद था। बाबू केशवचन्द्र सेन ने उनसे अलग होकर नवविधान-समाज स्थापित किया, जिसके आचार्य और अधिनायक वे स्वयं बने थे।

केशवबाबू का निमन्त्रण—एक दिन केशवबाबू ने स्वामीजी को अपने कोलूलोटावाले गृह पर निमन्त्रित किया। केशवबाबू और स्वामीजी का, इस विषय पर कि जन्म कर्माधीन है वा नहीं, विचार हुआ था। केशव बाबू ने किसी प्रसंग के उठने पर एक श्लोक पढ़ा था, जिसका एक चरण था—*'सुविशालमिदं विश्वं पवित्रं ब्रह्ममन्दिरम्'*। स्वमीजी ने इसे सुनकर कहा था कि विश्व को ब्रह्म-मन्दिर कहने से ब्रह्म को छोटा करना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ता है, वास्तव में ब्रह्म ही विश्व का मन्दिर है और ऐसा ही कहना उचित है।

स्वामीजी संस्कृत बोलते थे, परन्तु वह इतनी सरल थी कि केशवबाबू को उसके समझने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई।

मन्तव्यप्रकाश—केशवबाबू न उसी दिन एक सभा भी बुलाई। उसमें स्वामीजी ने सरल संस्कृत में अपने मन्तव्यों को अभिव्यक्त किया। मूर्त्तिपूजा, अद्वैतवाद, वर्त्तमान प्रणाली के जातिभेद के विरुद्ध अनेक बातें कहीं, विधवा-विवाह को समुचित बताया, कन्याओं का विवाह १८ वर्ष की आयु में होना चाहिए यह सम्मति भी प्रकट की।

पण्डित की भूल—सभा समाप्त होने के पश्चात् स्वामीजी, केशवबाबू तथा अन्य लोग तिमंज़िले पर चले गये। जब स्वामीजी ज़ीने पर चढ़ रहे थे तब एक बङ्गाली पण्डित ने उनके भाषण में व्याकरण की भूल दिखाई। स्वामीजी ने तुरन्त व्याकरण का एक सूत्र उद्धृत करके सिद्ध कर दिया कि उनके कथन में कोई भूल न थी।

एक और व्याख्यान—१३ फाल्गुन शाके १७९४ अर्थात् २३ मार्च सन् १८७३ को केशवबाबू के उद्योग से बाबू गोराचाँद के गृह पर स्वामीजी का एक व्याख्यान संस्कृत में 'ईश्वर और धर्म' विषय पर हुआ। उसके सम्बन्ध में २५ मार्च सन् १८७३ को इण्डियन मीटर कलकत्ता में इस प्रकार लिखा था—

"गत रविवार को प्रसिद्ध पं० दयानन्द सरस्वती की वक्तृता सुनने के लिए लगभग ४०० पुरुष एकत्र हुए। वह बिना किसी तैयारी के दो घण्टे तक ईश्वर के एकत्व और गुणों और धर्म के लक्षणों पर बोले।

गर्मागर्म वादविवाद—व्याख्यान की समाप्ति पर व्याख्याता और पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न, प्रिंसिपल संस्कृत कॉलेज के बीच में गर्मागर्म वादविवाद हुआ। शास्त्रार्थ धीरे-धीरे उत्तरोत्तर सजीव होता गया और सारी सभा में उत्तेजित होने का दृश्य दिखाई देने लगा, परन्तु सभा का शीघ्र ही विसर्जन हो गया, क्योंकि लोगों ने इस शाब्दिक विवाद को लम्बायमान करना अनावश्यक समझा"।

इस सभा के सम्बन्ध में 'आचार्य केशवदेव' नामक पुस्तक के लेखक ने पृष्ठ ७००-७०१ पर ऐसा लिखा है—

"केशवबाबू के गृह पर सभा होने के पश्चात् उनके उद्योग से १३ फाल्गुन शाके १७९४ अर्थात् २३ मार्च सन् १८७३ को बाबू गोराचाँद के मकान पर स्वामी दयानन्दजी की एक वक्तृता हुई। वक्तृता संस्कृत में थी। इस वक्तृता का विषय ईश्वर और धर्म था। ईश्वर के विषय में उन्होंने शब्द, प्रत्यक्ष और अनुमान इन तीन प्रमाणों का प्रयोग-प्रदर्शन किया था। धर्म का एकत्व वर्णन करते हुए उसके ११§ लक्षण दिखाये थे। सभागत पण्डितों के साथ उनका तर्क-वितर्क भी हुआ था, परन्तु उनकी तीक्ष्ण मनीषा के सामने उन्हें (पण्डितों को) अपना पराजय स्वीकार करना पड़ा।"

हिन्दू नाम—इस व्याख्यान में स्वामीजी ने यह भी कहा था कि हिन्दू नाम से हमारा परिचय होना हमारी अवमानना का विषय है। अरब के लोग काफ़िर और दुष्ट को हिन्दू कहते हैं, विदेशी यवनों ने हमें यह नाम दिया है।

स्वामीजी ने इस वक्तृता में वेद में बहुदेवता-वाद होने का खण्डन किया था। इसका पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने प्रतिवाद किया था और इसी पर स्वामीजी का उनसे शास्त्रार्थ होने लगा था।

न्यायरत्न का अन्याय—पं० महेशचन्द्र ने स्वामीजी के व्याख्यान का अनुवाद करते हुए एक स्थल पर ऐसा कह दिया कि स्वामीजी ने अमुक बात कही है, परन्तु वास्तव में उन्होंने वह बात नहीं कही थी। इसी

§ सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में स्वामीजी ने धर्म के ११ लक्षणों की ही व्याख्या की है। मनु-प्रोक्त लक्षणों में 'अहिंसा' और जोड़ा हुआ है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर संस्कृत कॉलेज के कुछ विद्यार्थियों ने पण्डित महेशचन्द्र से कहा कि जब स्वामीजी ने यह बात कही ही नहीं थी तो आपने क्यों कह दिया कि उन्होंने यह बात कही है। यह सुनकर पं० महेशचन्द्र बहुत बिगड़े और उठकर चले गये। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यार्थियों ने यह बात शास्त्रार्थ के बीच में कही थी, यदि उन्होंने अनुवाद करते समय कही होती और इसपर ही पं० महेशचन्द्र बिगड़कर चले गये होते तो स्वामीजी का उनसे शास्त्रार्थ ही कैसे हेता, परन्तु यह निश्चित है कि शास्त्रार्थ हुआ था, जैसाकि इण्डियन मीटर और "आचार्य केशवदेव" के उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध है।

भूल पर पछताये—एक दिन स्वामीजी पं० रामकुमार विद्यारत्न के साथ, जो बाद में रामानन्द भारतीय के नाम से प्रसिद्ध हुए, एशियाटिक सोसायटी बङ्गाल में गये थे। वहाँ उनकी बाबू प्रतापचन्द्र घोष से जो वहाँ के प्रधान कर्मचारी थे कुछ कथा-वार्ता हुई थी। पहले प्रतापचन्द्र घोष ने स्वामीजी को साधारण संन्यासी समझा था और इसी से उन्होंने उनके साथ साधारण ज़नोचित व्यवहार किया था, परन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वे स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं तो उन्हें कुछ पश्चात्ताप हुआ और फिर उन्होंने स्वामीजी के प्रति विशेष सम्मान प्रकट किया।

स्वामीजी की कलकत्ता में अवस्थित के समय पं० ताराचरण तर्करत्न भी कलकत्ता में ही थे। उनके सम्बन्ध में स्वामीजी ने अपने पूना के व्याख्यान में, जिसमें उन्होंने आत्मवृत्त वर्णन किया था, इस प्रकार कहा था—

ताराचरण सामने न आये—"राजा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर के पास संवत् १९२९ में मेरी अवस्थिति के दिनों में पं० ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाड़ा ग्राम के निवासी ने, जोकि हुगली के उस पार है (परन्तु आजकल वे काशिराज के पास रहते हैं) तीन बार जा-जाकर यह प्रतिज्ञा की थी कि हम आज अवश्य शास्त्रार्थ करने के लिए चलेंगे, ऐसा ही तीन दिन तक कहते रहे, परन्तु एक बार भी शास्त्रार्थ करने न आये, इससे बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठ जान ली!"

तर्कवाचस्पति के तर्कबाण निष्फल—पण्डित लेखरामकृत दयानन्द जीवन-चरित में पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति के सम्बन्ध में पं० मोतीराम मिर्जापुर निवासी की वर्णित निम्न घटना लिखी है—"पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य, लोगों को कहते थे कि हमारे सामने स्वामीजी का वाक् बन्द हो जाएगा। स्वामीजी ने लोगों को प्रेरणा करके उन्हें बुलाया। आते ही इन्होंने ७० प्रश्न किये जिन्हें वे अपने विचार में बड़े कठिन समझते थे कि उनका उत्तर कोई नहीं दे सकता, परन्तु स्वामीजी ने उन सबका २२-२३ उत्तरों में उत्तर दे दिया। जब उन्होंने उत्तर सुने तो स्वामीजी के पैरों पर गिर पड़े।"

जब संवत् १९३१ में स्वामीजी यहाँ (मिर्ज़ापुर) पधारे, उन दिनों पं० तारानाथजी लखनऊ जाते हुए स्वामीजी के पास बाग़ में उतरे। स्वामीजी ने हमसे (पं० मोतीराम से) उनका परिचय कराया और कहा कि ये तारानाथ हैं। हमने (पं० मोतीराम ने) तारानाथजी से वार्त्ता की तो उन्होंने कहा कि आश्चर्य है हमने जब प्रश्न किये थे तब हमारा विचार था कि पृथिवी-भर में कोई भी इन प्रश्नो का उत्तर देनेवाला नहीं है, परन्तु इन्होंने दमभर में उत्तर दे दिये, उस दिन से हम इनसे अति प्रसन्न हैं।"§

---

§ पं० तारानाथजी, तर्कवाचस्पति संस्कृत के एक बृहत् कोष वाचस्पत्यभिधान के रचयिता और बड़े प्रसिद्ध विद्वन् थे। इस घटना का उल्लेख हमें देवेन्द्रबाबू के कागजों में कहीं नहीं मिला। यदि ऐसी घटना हुई होती तो स्वामीजी पूना के उपर्युक्त व्याख्यान में उसका उल्लेख अवश्य करते। हमें यह घटना संदिग्ध जान पड़ती है। ऐसी घटना देवेन्द्र बाबू की दृष्टि से बचनेवाली न थी। वे प्रश्न क्या थे और स्वामीजी ने उनका क्या उत्तर दिया यह भी ज्ञात नहीं।

—संग्रहकर्त्ता,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्म पत्रिका की सम्मति—'धर्मतत्त्व' ने फिर १ चैत्र १७६४ शक के अङ्क में "दयानन्द सरस्वती" शीर्षक देकर इस प्रकार लिखा था—

"प्रसिद्ध दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आये हैं। हिन्दूशास्त्र में उनका निश्चल अधिकार है। वे मूर्त्तिपूजक नहीं हैं और अद्वैतवादी भी नहीं हैं। वे जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्वीकार करते हैं और एक निराकार ईश्वर की उपासना करते हैं। उनके मत में वेद का मन्त्रभाग निर्भान्त है। अन्तःस्थ ऐश्वरिक ज्ञान को ही वे वेद का नाम देते हैं। मन्त्रभाग उस ज्ञान का प्रकाशक है। विधवा-विवाह के सम्बन्ध में उनकी सम्मति युक्तिसंगत है। बाल्य-विवाह के वे नितान्त विरोधी हैं। वे यह सिद्ध करते हैं कि कन्या के लिए १८ और पुरुष के लिए ३० वर्ष की आयु विवाह के लिए प्रकृत समय और शास्त्रोक्त है। वे जातिभेद स्वीकार नहीं करते; ज्ञान, धर्म के तारतम्य के अनुसार वर्ण-भेद वा अवस्था-भेद स्वीकार करते हैं। वे पुनर्जन्म वा योनि-भ्रमण में विश्वास करते हैं। जिस विषय को वे नहीं जानते उसे सरलभाव से कह देते हैं। वे बड़े विद्वान्, शिष्टाचारी, सदाचारी और सरल हैं, किन्तु मूर्त्तिपूजा के बड़े विद्वेषी हैं। संस्कृतभाषा उनकी मातृभाषा हो गई है। वे अनायास ही श्रुति-मधुर संस्कृतभाषा में वार्त्तालापादि करते हैं, उनके साथ बात-चीत करने से सभी प्रसन्न होकर आते हैं।

"यह एक दिग्गज पण्डित हैं, यह हिन्दू-शास्त्र-विशारद हैं, संस्कृतभाषा इनके आयत्ताधीन है। विशेषकर इनकी संस्कृतभाषा इतनी प्राञ्जल, श्रुति-मधुर और सरल है कि संस्कृत से अनिभिज्ञ पुरुष भी उसे अनायास बहुत-कुछ समझ सकते हैं, सरस्वती की बुद्धि बहुत परिष्कृत और तीक्ष्ण है। उनकी क्षमता असाधारण है, उनमें लोगों को आकर्षित करने की विलक्षण शक्ति है। वे बड़े मिष्टभाषी हैं। एक ईश्वर की उपासना का प्रचार और मूर्त्तिपूजा का विनाश उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। पाश्चात्य विज्ञान के आलोक से आलोकित न होने पर भी वे जिस विशदरूप से, उदारता के साथ सारे विषयों को प्रकट करते हैं, उसे देखकर अवाक् होना पड़ता है। अब तक उन्होंने कलकत्ता में तीन दिन व्याख्यान दिये हैं। पहले दिन ईश्वर के स्वरूप और धर्म पर, दूसरे दिन एक ईश्वर की उपासना पर, तीसरे दिन मनुष्य के कर्त्तव्य पर। ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में जो बातें उन्होंने कहीं, उनमें कई बहुत सूक्ष्म और गूढ़ थीं। आश्चर्य का विषय यह है कि वे सब विषयों को ऐसे परिष्कृत भाव से खोलकर कहते हैं कि वह सबकी समझ में अनायास ही आ जाते हैं। वह कहते हैं कि एक तो अज्ञान-निबन्धन से भारतवर्ष के लोगों की बुद्धि जड़ हो गई है, और जड़ की उपासना करने से वह और भी जड़ हो गई है। एक चैतन्य, निराकार ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। यह उनका दृढ़ विश्वास है। उपासना के कई लक्षण हैं—चित्त-शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, मनःसंयोग, प्रीति, ईश्वर-गुण-कीर्तन और प्रार्थना। उनकी सम्मति में भारतवासियों में से किसी को हिन्दू कहना उचित नहीं है, क्योंकि यवनों ने अपमान करने के अभिप्राय से ही हमें यह नाम दिया था। मनुष्य-जाति में कोई विभिन्नता नहीं है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥§

कर्मों के द्वारा ब्राह्मण शूद्र होवे और शूद्र भी ब्राह्मण हो जाए, यही पुरानी रीति है। यदि ब्राह्मण दुश्चरित, मूर्ख और धर्महीन हो तो उसे शूद्र बना देना चाहिए और शूद्र यदि ज्ञानी, सच्चरित, धार्मिक हो तो उसे ब्राह्मण पद पर प्रतिष्ठित कर देना चाहिए।

उनकी सम्मति में सन्तान पहले माता के पास शिक्षा पाए, पीछे पिता उन्हें शिक्षा देवे। उन्हें भाषा,

---

§ धर्मतत्त्व में मनु के इस श्लोक का आधा भाग उद्धृत किया है और वह भी इस रूप में **"ब्राह्मणः शूद्रतामेति शूद्रो भवति ब्राह्मणः।"**

यह मनुस्मृति (१०।६५) का श्लोक है। —**जगदीश्वरानन्द**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याकरण, धर्मशास्त्र, वेद, दर्शनशास्त्र, पदार्थविद्यादि विषयों की शिक्षा देनी चाहिए। स्त्रियों को भी इसी प्रकार शिक्षा देनी चाहिए। स्त्रियों को इनमें से कई विषयों की विशेष शिक्षा देनी आवश्यक है, जैसे भाषा, धर्मशास्त्र, शिल्पविद्या, सङ्गीतविद्या और वैद्यक शास्त्र स्त्रियों के लिए विशेष प्रयोजनीय है, क्योंकि स्त्रियों को यह जानना नितान्त आवश्यक है कि किन वस्तु के खाने से शारीरिक पुष्टि और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। वह यह बार-बार कहते हैं कि बाल-विवाह ही अनेक पापों का मूल है। विशेष शिक्षा देकर कन्याओं का २० वर्ष की आयु में विवाह करना अच्छा है। जो स्त्री स्वामी की मृत्यु पर विवाह करना चाहे, उसका विवाह कर देना चाहिए।

दयानन्द परमहंस होते हुए भी पृथिवी के ऐश्वर्य के प्रति विरक्त नहीं हैं। उनका यही विशेष मत है कि गृहस्थ के साथ संन्यासी का कोई प्रभेद नहीं हैं। जो विवाह न करना चाहे उसे ज्ञान व धर्म का प्रचार करना चाहिए। एक स्थान में बैठकर ध्यान धरनेमात्र से कोई धार्मिक नहीं हो सकता। यहाँ तक कि वे (लार्ड) नार्थब्रुक§ से वैदिक विद्यालय सथापित करने के लिए सहाय्य लेने के अभिलाषी हैं और इसके लिए केशवबाबू से भी अनुरोध करने में उन्होंने त्रुटि नहीं की। वे कहते हैं कि पुरोहित और भट्टाचार्यों ने देश का सर्वनाश कर दिया है। उन्होंने अर्थ के लोभ से सत्य का विलोप कर दिया है और अन्य लोगों को मूर्ख रक्खा है, फलतः वे उन्नीसवीं शताब्दी के अनुपयुक्त हैं। जैसी उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता है, वैसा ही उनका बहुशास्त्रदर्शन है। बड़े-बड़े ज्ञानी, मानी, अंग्रेज़ उनके सामने सहज ही परास्त हो जाते हैं। जड़वादी और संशयवादी उनके महत्त्व और बुद्धि-परिष्कार की क्षमता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। फलतः हिन्दू-समाज में ऐसे पुरुष का अभ्युत्थान आश्चर्यकर है, यह कहना पड़ता है।

उनमें विनोद करने की क्षमता बहुत है। तर्कस्थान में वे जो दृष्टान्त देते हैं वे बड़े सुन्दर होते हैं। आश्चर्य का विषय यही है कि वेद के इतने पक्षपाती होते हुए भी वे अद्वैतवादी नहीं हैं। वे कहते है कि शङ्कराचार्य के शिष्यों ने ही अद्वैतवाद का प्रचार किया है।

वे वेद के टीकाकार सायणाचार्य को अत्यन्त अग्राह्य कहते हैं। वे कहते हैं कि सायणाचार्य ने ही वेदों के असली अर्थों का लोप कर दिया है। वेद में जो इन्द्र, अग्नि, वरुण प्रभृति शब्द हैं, इसी से लोग मूर्त्तिपूजा का प्रतिपादन करना चाहते हैं, परन्तु यह अत्यन्त मूर्खता है। इन्द्र परमैश्वर्यावान्, अग्नि पूजनीय, वरुण श्रेष्ठ, यही उनके वास्तविक अर्थ हैं। उस अद्वितीय ईश्वर के सिवाय और कौन परमैश्वर्यवान् हो सकता है, उसके सिवाय और किसके पूजनीय और श्रेष्ठ होने की सम्भावना है। 'इदि परमैश्वर्य्ये, अग् गतौ, वृञ् वरणे,' यही तो इनके प्रकृत धात्वर्थ हैं। वे कहते हैं कि क्या इन शब्दों का प्रकृत अर्थ कभी जड़ पदार्थों में घट सकता है। दयानन्द जिस ढंग से बोलते हैं उससे सबको अवाक् कर देते हैं। इस विषय में हम और अधिक कहना नहीं चाहते। पुराणादि को तो वे सर्वथा अग्राह्य करते हैं। संस्कृत-शास्त्रों का विलोप हो जाने के कारण ये स्थान-स्थान पर संस्कृत पाठशालाओं के स्थापन करने में विशेष प्रयत्नवान् हैं। अब भी उनकी अंग्रेज़ी पढ़ने की विशेष इच्छा है।

यही नहीं है कि सरस्वतीजी केवल व्याख्यान ही देते हैं, प्रत्युत प्रातःकाल और सायंकाल की दोनों सन्ध्याओं में पाँच-छह घण्टे ईश्वर के ध्यान और उपासना में लगाते हैं। उनमें अन्तर्दृष्टि विशेषभाव से देखी जाती है। इन्द्रियनिग्रह, आत्मसंयम, उनके विश्वास के अनुगत हैं और इस विषय में उन्होंने विशेष यत्न किया है। इन्हें देखने से वीरत्व, महत्त्व, गाम्भीर्य, उच्चाशा के लक्षण सुस्पष्टतया लक्षित होते हैं। वे अपना जीवन प्रतिदिन उपासना, अध्ययन, व्यायाम और धर्मालाप में बिताते हैं। वे जो कुछ कहते हैं, उसमें से

§ लार्ड नार्थब्रुक उन दिनों भारत के गवर्नर जनरल थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत-कुछ उनके जीवन की कथा है। केवल वेद की निर्भ्रान्तता, पुनर्जन्म प्रभृति हिन्दू-धर्मानुगत कोई-कोई संस्कार अभी तक उनके हृदय में वर्त्तमान हैं। उनका धर्म्- प्रेम और भक्ति का मार्ग नहीं है। जैसे वे धर्म के प्रथम सोपान पर पहुँच गये हैं, यदि ऐसे ही अन्य सोपानों पर पहुँच जाएँगे तो उनका मत विशेषरूप से प्रचरित हो जाएगा। हम आशा करते हैं कि उनके द्वारा हिन्दू-समाज पुनर्जीवित हो जाएगा। ईश्वर उनकी साधु इच्छा को पूर्ण करे।"

हमने 'धर्मतत्त्व' से यब लम्बा उद्धरण केवल इस लिए दिया है कि कलकत्ते में शिक्षित और प्रतिष्ठित पुरुषों के क्या भाव थे और उन्होंने स्वामीजी की शिक्षा को किस दृष्टि से देखा और स्वामीजी के संसर्ग का उनपर क्या प्रभाव पड़ा था। दूसरा कारण यह भी है कि अन्य कहीं हमें यह विवरण नहीं मिलता कि स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में क्या कहा था। यह उद्धरण एक प्रकार से उनके भाषणों की संक्षिप्त रिपोर्ट है। पाठक देखेंगे कि उस समय भी स्वामीजी के मन्तव्य वही थे जो पीछे स्वामीजीकृत ग्रन्थों द्वारा प्रचरित हुए। इस उद्धरण का लेखक एक ब्राह्म-समाजी है, जिसे वेद की निर्भ्रान्तता और पुनर्जन्म का सिद्धान्त मनोनीत नहीं है और इसी कारण उसने लेख के अन्त में इन सिद्धान्तों पर दबे शब्दों में आक्षेप किया है। आक्षेप क्या एक प्रकार उनकी हँसी उड़ाई है और स्वामीजी के प्रति भी कुछ ऐसा भाव प्रकट किया है कि आश्चर्य है कि स्वामीजी जैसे विद्वान्, बुद्धिमान्, विचारशील और उन्नीसवीं शताब्दी के विचार रखनेवाले भी ऐसे लचर सिद्धान्तों को मानते हैं। ये दोनों सिद्धान्त युक्ति-संगत हैं और प्रबल प्रमाणों पर इनका आधार है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त तो अब इतना व्यापक हो गया है कि पश्चिम के बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी उसे मानने लग गये हैं। वेदों की निर्भ्रान्तता अवश्य अभी तक इतनी ग्राह्य नहीं हुई है जितना पुनर्जन्म का सिद्धान्त, परन्तु यह इसी कारण से है कि अभी तक पश्चिम में वेद के सत्य अर्थों और उनकी शिक्षा का प्रचार नहीं हुआ है, परन्तु यह हो रहा है कि वेदों के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के पूर्व विचार परिवर्तित हो रहे हैं और अब उन्हें 'गडरियों के गीत' नहीं समझा जाता, उन्हें पूर्वापेक्षा अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि पाश्चात्य विद्वान् वेदों को ईश्वरीय वाक्य मानने की ओर आरहे है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पहले की अपेक्षा वेदों में उनकी श्रद्धा बढ़ गई है और वे अब वेदों के उतने ऊटपटाँग अर्थ नहीं करते, जितने पहले करते थे। पाश्चात्य विद्वानों के अनुयायी भारतीय विद्वानों के विचारों में भी परिवर्त्तन हो रहा है और वे वेदों के वैज्ञानिक अर्थ करने लगे हैं। यह परिवर्त्तन शुभ है और भविष्य के लिए आशाजनक हैं। हमें यह कहने में तनिक भी सङ्कोच नहीं है कि इन परिवर्तनों का कारण स्वामीजी का वेदभाष्य और उनकी अर्थ करने की शैली ही है।

दूसरी पत्रिका की सम्मति—कई अन्य सुपठित और सम्मानास्पद बङ्गीय सज्जनों ने भी स्वामीजी के विषय में अपनी सम्मति प्रकट की थी और उनकी विद्या, तप, चरित्र और सुधार-कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। हम उनकी सम्मतियों को यहाँ ग्रन्थ का कलेवर बढ़ने के भय से उद्धृत नहीं करते। केवल एक उद्धरण 'तत्त्व-बोधिनी' पत्रिका का और देते हैं। स्वामीजी की कलकत्ता-यात्रा के विषय में उसमें इस प्रकार लिखा था—

"थोड़े दिन हुए पण्डित-वर श्रीयुत दयानन्द सरस्वती अपने विद्या-प्रभाव से कलकत्ता निवासियों को आश्चर्यित कर गये हैं। बङ्ग देश के ब्राह्मण पण्डितों में बहुत-से केवल शास्त्रवचन को लेकर वाणिज्य-व्यवसाय करने में निपुण हैं, परन्तु जब शास्त्र के प्रकृत मर्म, भाव वा तात्पर्य की व्याख्या करनी होती है तो वे चारों ओर अन्धकार ही देखते हैं। बङ्गदेश के पण्डित मूलशास्त्र को सर्वथा भूल गये हैं और केवल देशाचार और लोकाचार को ही सर्वस्व जानते हैं"।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रार्थ—कलकत्ता में स्वामीजी का एक शास्त्रार्थ हिन्दू पण्डितों से बाबू ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय के गृह पर भी हुआ था, परन्तु उसका विवरण ज्ञात नहीं हुआ।

नैयायिकों का जाल—कलकत्ते में नवद्वीप के पण्डितों ने एक दिन एक सभा की। उसमें केशवबाबू स्वामीजी को गाड़ी पर सवार कराकर अपने साथ ले-गये। नवद्वीप के नैयायिक भारतभर में प्रसिद्ध हैं। पण्डितों ने स्वामीजी को अपने न्याय-कौशल से निरुत्तर करने की चेष्टा की। 'भारतजीवन' के सम्पादक ने इस सभा के सम्बन्ध में लिखा था कि अन्त में पण्डितों ने स्वामीजी को न्याय के जाल में डालकर निरुत्तर कर दिया था। केशवबाबू सभा के विसर्जन होने से पहले ही चले गये थे। चलते समय स्वामीजी के लिए गाड़ी तक का प्रबन्ध भी नहीं किया गया। कुछ देर प्रतीक्षा के पश्चात् एक सज्जन ने प्रबन्ध कर दिया तब कहीं वे डेरे पर पहुँचे। हम 'भारतजीवन' के सम्पादक की सम्मति मानने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि प्रथम तो उन्होंने जो प्रश्नोत्तर पण्डितों और स्वामीजी के बीच में हुए उनका उल्लेख नहीं किया, जिन्हें देखकर कोई अन्य मनुष्य भी स्वामीजी के निरुत्तर होने के विषय में अपनी सम्मति स्थिर कर सके। दूसरे, यदि ऐसा हुआ होता तो पण्डितगण तो सहस्रमुख होकर अपनी विजय-घोषणा करते और विज्ञापनों और समाचारपत्रों द्वारा अपनी विजय-दुन्दुभि बजाते हुए नहीं थकते, परन्तु हम इसका कहीं एक चिह्न भी नहीं पाते। हम यह मानने को तैयार हैं कि स्वामीजी नव्य न्याय की व्यर्थ, शुष्क और जटिल फक्किकाओं में पारङ्गत नहीं थे। वे स्वयं नव्यन्याय की भाषा को काकभाषा कहा करते थे और अनार्षग्रन्थों के पठन-पाठन के नितान्त विरोधी थे, परन्तु वे गौतम के न्यायदर्शन और उसके वात्स्यायनभाष्य पर पूर्णतया अधिकार रखते थे और कोई नव्य-न्याय-विशारद पण्डित उनके सामने नहीं ठहर सकता था और कभी भी कहीं भी कोई भी नैयायिक उनसे शास्त्रार्थ में वर नहीं हो सका था, अतः यह हम कैसे मान लें कि नवद्वीप के पण्डितों ने उन्हें निरुत्तर कर दिया था।

कलकत्ता में अवस्थिति के समय स्वामीजी को वैदिक पाठशालाएँ स्थापित करने की चिन्ता रहती थी, परन्तु कलकत्ता में किसी ने इस विषय में कोई उत्साह-प्रदर्शन नहीं किया। यह ज्ञात नहीं कि वहाँ स्वामीजी ने वैदिक पाठशाला के लिए धन एकत्र करने का भी कोई यत्न किया था या नहीं। यदि किया हो तो यह स्पष्ट है कि उन्हें उसमें सफलता नहीं हुई।

स्वामीजी कलकत्ता में भी वस्त्रधारण नहीं करते थे, परन्तु जब लोग उनसे बात-चीत करने आते थे तो वे पैरों पर एक चादर या धोती डाल लिया करते थे। उन्होंने वस्त्र धारण करना कलकत्ता-यात्रा से लौट आने के पश्चात् आरम्भ किया था।

(१ अप्रैल—अप्रैल) हुगली (चैत्र शु० ४—चैत्र शु०)

कलकत्ता से विदा होकर स्वामीजी १ अप्रैल सन् १८७३ को हुगली पहुँचे और बाबू वृन्दावनचन्द्रमण्डल के बाग़ में ठहरे।

स्वामीजी के आते ही समस्त नगर में आन्दोलन उपस्थित हो गया और मनुष्यों के झुण्ड-के-झुण्ड उनके दर्शनों को जाने लगे।

पादरी लालबिहारी दे—उस समय हुगली कॉलेज के प्रिंसिपल पादरी बिहारीलाल दे थे। वे स्वामीजी से पहले से परिचित थे, क्योंकि उनकी मुग़लसराय में स्वामीजी से बात-चीत हो चुकी थी। दे महोदय अपने समय के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे। अंग्रेजी पर उनका विशेष अधिकार था। प्रेसिडेंसी कॉलेज कलकत्ता के रो और वेब नामक दो अंग्रेज़ प्रोफेसरों ने अंग्रेजी पढ़ने की विधि पर एक पुस्तक लिखी थी। उसमें बङ्गालियों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की अंग्रेज़ी की अशुद्धियों को लेकर खिल्ली उड़ाई गई थी। दे महोदय ने उसके उत्तर में स्वयं उन दोनों प्रोफेसरों की अंग्रेज़ी भाषा में त्रुटियाँ दिखाकर उन्हें लज्जावन्त किया था। दे महोदय हुगली में भी स्वामीजी से वार्त्तालाप करने के लिए आये थे और वर्ण-भेद के विषय में उनका और स्वामीजी का वार्त्तालाप हुआ था। अन्त को दे महोदय को अपने पक्ष की अलीकता स्वीकार करनी पड़ी थी।

हुगली का व्याख्यान—स्वामीजी ने वृन्दावनबाबू के उद्यान में ६ अप्रैल सन् १८७३ को एक व्याख्यान दिया, जिसमें हुगली के सभी गण्यमान्य, सम्भ्रान्त और शिक्षित पुरुष उपस्थित हुए। स्वामीजी के विषय-निरूपण की शैली और उनकी श्रुति-सुखकर, मिष्ट और सरल संस्कृत से श्रोतृ-वर्ग मुग्ध हो गये। इस वक्तृता के सम्बन्ध में बाबू अक्षयकुमार घोष ने देवेन्द्रबाबू को लिखा था—"मेरी उपस्थिति में चूचड़ा के मण्डलों के गृह पर पण्डितवर दयानन्द ने एक दिन अपराह्न में एक वक्तृता दी थी। उस समय भट्टपल्ली (भाटपाड़ा) के कई पण्डित उपस्थित थे। दयानन्द की सरल संस्कृत में बोलने की शक्ति को देखकर मैंने उनकी मन-ही-मन सौ बार प्रशंसा की थी। उससे पहले मेरा विश्वास नहीं था कि ऐसी सरल संस्कृत में ऐसे कठिन विषयों की व्याख्या हो सकती है। उनकी प्रचुर भङ्गी से भी अनेक श्रोताओं को उनकी भाषा सहज में ही बोधगम्य हो जाती थी।"

अक्षयबाबू, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजनाथ वसु वे लोग थे जो वर्त्तमान बङ्गसाहित्य के जन्मदाता और निर्माता समझे जाते हैं—ये सब स्वामीजी के व्याख्यानों में आते थे।

पं० ताराचरण शास्त्रार्थ से बचते रहे—बड़े-बड़े नामी पण्डित तो व्याख्यान में आये, परन्तु काशिराज के राजपण्डित ताराचरण तर्करत्न न आये। काशी-शास्त्रार्थ के समय पाठकों का उनसे परिचय हो चुका है, सबसे प्रथम इन्हीं से स्वामीजी ने प्रश्न किये थे और इनके निरुत्तर हो जाने के कारण इन्हें वेदी पर से हटा लिया गया था। पं० ताराचरण सभा में तो न आये, परन्तु घर बैठे ही आस्फालन और अभिमान करते रहे। कलकत्ता में भी वे राजा सौरेन्द्रमोहन से प्रतिज्ञा करने पर भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने नहीं आये।

अन्त को शास्त्रार्थ पर विवश हुए—व्याख्यान से अगले दिन वृन्दावनबाबू ने स्वामीजी से पं० ताराचरण के अभिमान की बात कही तो श्रीमहाराज ने उत्तर दिया कि यदि ताराचरण पण्डित हैं तो सभा में क्यों नहीं आते, अभिमान तो पण्डित का लक्षण नहीं है। उन्होंने तो एक बार भी हमारे सामने आकर पण्डित का अभिमान प्रदर्शित नहीं किया। इसपर वृन्दावनबाबू पं० ताराचरण के पास गये और अनुरोध, अनुनय-विनय और आग्रह करके किसी-न-किसी प्रकार उन्हें स्वामीजी से शास्त्रार्थ पर सहमत किया। मङ्गलवार ८ अप्रैल सन् १८७३ शास्त्रार्थ के लिए नियत हुआ। निर्दिष्ट दिवस और निश्चित समय पर पं० ताराचरण भाटपाड़ा के अनेक पण्डितों को साथ लिये हुए सभास्थल में पधारे। सभास्थल पहले से ही श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। सब लोग शास्त्रार्थ सुनने के लिए उत्सुक और उत्कण्ठित थे तथा शास्त्रार्थ आरम्भ होने की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों-त्यों करके शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। बाबू मुखोपाध्याय मध्यस्थ नियत हुए। शास्त्रार्थ का विषय था वही मूर्त्तिपूजा।

शास्त्रार्थ--

तारा०—हम प्रतिमापूजन के स्थापन का पक्ष लेते हैं।

दया०—आपकी जो इच्छा हो वह पक्ष लीजिए, परन्तु मैं तो प्रतिमापूजन का उसके वेदविरुद्ध होने के कारण सदा खण्डन ही करूँगा।

तारा०—इस शास्त्रार्थ में वाद होना ठीक है या जल्प या वितण्डा ?

दया०—वाद ही होना ठीक है, क्योंकि जल्प और वितण्डा करना पण्डितों को कदापि उचित नहीं है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और वाद भी वही जो गौतममुनि ने लिखा है।

तारा०—अच्छा वाद ही होगा।

उस समय यह भी प्रस्ताव किया गया कि प्रमाण में चार वेद, छह अङ्ग और छह उपाङ्ग ही लिये जाएँगे और किसी ग्रन्थ का प्रामाण न लिया जाएगा। इस प्रस्ताव से दोनों सहमत हो गये।

तारा०—(एक संस्कृतवाक्य बोलकर) यह पतञ्जलि का सूत्र है कि चित्त बिना स्थूल पदार्थ के स्थिर नहीं होता, इसलिए उपासना में स्थूल प्रतिमा का ग्रहण किया जाता है, यह व्यास-वचन है।

दया०—पातञ्जल शास्त्र में ऐसा सूत्र कहीं नहीं है। हाँ, ऐसा अवश्य लिखा है कि मन की स्थित का कोई विषय होता है, वह इस सूत्र के व्याख्यान में व्यासजी ने लिखा है कि नासिका के अग्रभाग में मन को स्थिर करे। आपके अशुद्ध पाठ से ज्ञात होता है कि आपने योगशास्त्र नहीं देखा और आपने जो पहले पतञ्जलि का सूत्र कहकर अन्त में उसे व्यासवचन कहा, यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि व्यासजी ने योगशास्त्र के भाष्य में कहीं ऐसा नहीं लिखा। यदि यह योगसूत्र हो तो व्यासवचन नहीं हो सकता और जो इसे व्यासवचन मानो तो पतञ्जलि का सूत्र नहीं हो सकता। इससे आपकी एक बात दूसरी को काटती है।

तारा०—एक पदार्थ आँखों से देखने से बुद्धि में साक्षात् होता है और यतः आँखों से स्थूल पदार्थ ही देखा जा सकता है, इससे उपासना स्थूल-विषय होने से प्रतिमा का ग्रहण होता है।

दया०—आप पहले मान चुके हैं कि हम शास्त्रार्थ में वेदादि सच्छास्त्रों के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रमाण न देंगे, फिर यह जो आपने वाचस्पति का प्रमाण दिया तो क्यों दिया। देखिए, जब तक जाग्रदवस्था रहती है तब तक दृष्टि में सब पदार्थ स्थूल रहते हैं, स्वप्नावस्था में कोई पदार्थ स्थूल नहीं रहता, अतः आपके ही अनुसार स्वप्न में किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होना चाहिए, परन्तु यह बात नहीं है और आप यह स्वीकार कर चुके हैं कि हम जल्प और वितण्डा नहीं करेंगे फिर जाति-साधन से प्रतिमा-स्थापना कैसी ? देखिए, आपके इस कथन से स्थूल पदार्थों में ही मन स्थिर होता है, परन्तु इसमें दोष है, क्योंकि स्थूल-पदार्थों में सब संसार आ जाता है, क्या गधा, घोड़ा, क्या वृक्ष, क्या ईंट आदि। आप बतलाइए कि आप किसका ध्यान करेंगे ? केवल प्रतिमा ही तो स्थूल पदार्थ नहीं है जो आप उसी को लिये लेते हैं।

तारा०—आपके कहने से भी प्रतिमा की सिद्धि होती है, क्योंकि वह स्थूल ही है। (चतर्भुज विष्णु की मूर्त्ति की उपासना का उल्लेख किया)

दया०—(ताराचरण ने अपने कथन में 'एव' शब्द का तीन बार प्रयोग किया था) आपका एक शब्द का तीन बार प्रयोग व्याकरण के विरुद्ध है। इससे आपकी संस्कृतज्ञता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई और ज्ञात हो गया कि इसी कारण आपको इतना घमण्ड है और लोकान्तरस्थ से जो आप चतुर्भुज विष्णु लेते हैं तो वह तो वैकुण्ठ में सुने जाते हैं, फिर उनकी उपासना अर्थात् उनका अपने समीप बुलाना और उनमें मन लगाना कैसे हो सकता है, कदापि नहीं और पाषाणादि की मूर्त्ति एक शिल्पी के हाथ की बनाई हुई है, वह विष्णु कैसे हो सकती है ? बड़े आश्चर्य की बात है !

तारा०—(एक संस्कृतवाक्य का उद्धरण करके) इस वचन से दूसरे लोक में रहनेवाले की भी उपासना आती है।

दया०—यह वचन इस विषय से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता, क्योंकि उसमें उपासना तनिक भी नहीं आती। इसका तो यह अभिप्राय है कि जिस योगी को अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं वह जिस-जिस लोक में जाने की इच्छा करता है, वहाँ जाकर आनन्द करता है। आप जो यह कहते हैं कि मरकर उस लोक में जाता है वा पाषाण की उपासना इस लोक में करता है, ये दोनों बातें इस वचन से सिद्ध नहीं होती।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तारा०—उपासना को स्थूल विषय कहा था, उसमें प्रतिमा भी आ गई। आप देख लीजिए कि हम वाद ही करेंगे, जल्प वा वितण्डा कभी नहीं करेंगे।

दया०—आप जो बार-बार स्थूलत्वसाधर्म्य से प्रतिमा-पूजन की स्थापना करना चाहते हैं, वह आपकी अपनी इस प्रतिज्ञा का कि हम वाद करेंगे, नाश करता है।

तारा०—प्रथमतः अस्माभिः यत्—

दया०—(पं० ताराचरण ने इतना ही कहा था कि दयानन्द बोले) आपने जो यह संस्कृत-वाक्य बोला है, वह व्याकरण से अशुद्ध है, वह ऐसा होना चाहिए, **'प्रथमतोऽस्माभिर्यत्'** और यहाँ इसका कुछ सम्बन्ध भी नहीं है।

तारा०—जिस बात का दृष्टान्त दिया जाए उस दृष्टान्त में सब बातों का मिलना कुछ आवश्यक नहीं है।

दया०—मैंने कब कहा कि दृष्टान्त सब प्रकार मिलना ही चाहिए। आपने जो यह वचन बोला था उसका तो एक अंश भी आपके पक्ष से सम्बन्ध नहीं रखता था, इसलिए उसका कहना और आपका पक्ष सब व्यर्थ ही है।

तारा०—उपासनामात्रमेव भ्रममूलम् अर्थात् उपासनामात्र ही भ्रममूलक है।

दया०—देखिए, आपका पक्ष जो प्रतिमा-स्थापना का था वह सिद्ध न हो सका तो आप ही उसका खण्डन करने लगे कि प्रतिमा-पूजन ही भ्रममूलक अर्थात् मिथ्या है।§

जिस समय पण्डितजी ने अपने मुँह से यह शब्द कहे उसी समय बाबू भूदेव मुखोपाध्याय, पं० हरिहर तर्कसिद्धान्त, बाबू वृन्दावनचन्द्र यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि पण्डितजी तो यह प्रतिज्ञा करके आये थे कि हम मूर्त्तिपूजा सिद्ध करेंगे और यहाँ लगे उलटा उसका खण्डन करने।

मूर्त्तिपूजन मिथ्या ही है—इसके पश्चात् स्वामीजी ने मुस्करा कर पं० ताराचरण से कहा कि मैं तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता ही हूँ, परन्तु अब तो आपके कहने से ही उसका खण्डन हो गया। इसपर पण्डितजी कुछ न बोले और मकान की दूसरी मंज़िल पर चले गये। स्वामीजी भी उनके पीछे-पीछे चले और ज़ीने पर उन्हें पकड़कर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कोठे पर पहुँच गये। वहाँ स्वामीजी ने वृन्दावनबाबू व अन्य भद्र पुरुषों के सामने पं० ताराचरणजी से कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं। पण्डितजी ने खुले मन से कहा कि मैं तो लोक-भाषा का खण्डन करता हूँ और सत्यशास्त्र पढ़ने-पढ़ाने का भी उपदेश करता हूँ और पाषाणादि मूर्त्तिपूजन को मिथ्या ही जानता हूँ, परन्तु क्या करूँ जो सत्य-सत्य कह दूँ तो मेरी जीविका ही चली जाए, अर्थात् काशिराज मुझे निकालकर बाहर कर दें। इससे मैं सत्य-सत्य नहीं कह सकता, जैसा आप कहते हैं।

एक बङ्गाली युवक की भक्ति—बाबू मन्मथनाथ चौधरी बी०ए० एक बङ्गाली युवक स्वामीजी के उपदेश, उनके चरित्र, उनकी विद्वत्ता, उनकी विद्या पर इतने मुग्ध हुए कि कलकत्ता में प्रायः उनके साथ ही रहने लगे थे और उनके पास ही सोने लगे थे। वह कलकत्ता से हुगली भी उनके साथ ही आये थे। स्वामीजी भी उनसे बड़े प्रसन्न थे।

पण्डित अनुगत—शास्त्रार्थ की रात्रि को भाटपाड़ा के कई पण्डित महाराज के समीप उपस्थित हुए और उनके मन्तव्य की सत्यता को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया। महाराज उनके स्पष्ट भाषण से बहुत प्रसन्न हुए।

---

§ इस शास्त्रार्थ का पूरा वर्णन प्रतिमा-पूजन विचार के अन्तर्गत दिया है। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ५-२० तक। शास्त्रार्थ का आरम्भ पृष्ठ ७ से होता है और पृष्ठ १२ पर समाप्त होता है, उसके आगे प्रतिमापूजन-पर विशेष विचार किया है। —**यु०मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्मथबाबू इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

"रात्रि के समय जब मैं और स्वामीजी एक कमरे में बैठे हुए थे तब कुछ पण्डित लोग जिनके नाम मुझे ज्ञात नहीं हैं, उनके पास आये। उन्होंने स्वामीजी से शास्त्रार्थ-सम्बन्धी विवाद करने के लिए क्षमा-प्रार्थना की और उदारतापूर्वक अपना लघुत्व और अपने पक्ष की निर्बलता स्वीकार की। उन्होंने स्पष्टतया कहा कि हम आपके मन्तव्यों और उपदेश का विरोध केवल अपने कट्टर हिन्दू सहायकों को प्रसन्न करने के लिए करते हैं।"

स्वामीजी उनके इस स्पष्ट भाषण से बहुत प्रसन्न हुए।

मन्मथबाबू ने स्वामीजी के सम्बन्ध में एक पत्र देवेन्द्रबाबू को लिखा था। उसे हम यहाँ इसलिए उद्धृत करना चाहते हैं कि उसमें स्वामीजी के गुणों की, उनकी दिनचर्या का और जो कुछ प्रभाव स्वामीजी के चरित्र का उनपर हुआ उसका अत्यन्त रोचक और विशद वर्णन है। उस पत्र से महाराज के एक विशेष गुण का पता लगता है जो अच्छे-से-अच्छे मनुष्यों में भी कम पाया जाता है, वह यह कि जितना किसी का उनसे घनिष्ट सम्बन्ध होता था, उतना ही अधिक वह उनकी ओर आकृष्ट होता था और उतना ही अधिक वह उन्हें प्यार करता था। महाराज जैसे सभा में थे वैसे ही निज गृह पर भी थे, उनका बाहर-भीतर एक-सा था। वे सर्वथा निष्कपट, सरल सत्यसन्ध थे, वे सर्वथा द्वेषरहित थे। वे पूर्ण योगी थे, हिंसा वा प्रतिहिंसा का भाव उनमें लेशमात्र भी न था। थोड़े शब्दों में यदि किसी को पूर्ण मनुष्य कहा जा सकता है तो वे श्री-महाराज थे।

मन्मथबाबू अपने उक्त पत्र में लिखते हैं—

"मैं वर्द्धमान§ से स्वामीजी से विदा होकर कलकत्ता चला गया, जहाँ मुझे कार्य था और स्वामीजी बिहार चले गये।

वर्द्धमान से अलग होकर मैं जोधपुर (राजपूताना) महाराज के स्कूल का हेडमास्टर होकर चला गया और फिर मैं उनके उन्नायक सहवास का आनन्द लाभ न कर सका।

मन्मथ बाबू की सम्मति—स्वामीजी मुझसे अपने अन्तिम दिनों तक प्रेम करते रहे जैसा मुझे बहुत-से मनुष्यों से ज्ञात हुआ। अब मुझे गहरा शोक है कि मैंने नौकरी करनी क्यों स्वीकार कर ली ? मैं स्वामीजी के साथ सन् १८७३ में रहा था और अब सन् १६०० है। इन २७ वर्षों में मैं भारतवर्ष में बहुत कुछ घूमा हूँ, परन्तु मुझे एक पुरुष भी ऐसा नहीं मिला जो स्वामीजी से लग्गा खाता हो। मेरा जीवन दूसरे ही प्रकार का होता, यदि मैं उनके साथ रहे आता।

चूँकि मैं उनके साथ रहा और सोया हूँ, इसलिए मैं आपको कुछ ऐसी बातें बता सकता हूँ जो कोई अन्य पुरुष नहीं बता सकता। वे पक्के निरामिष-भोजी थे। उनकी दाल-भाजी में विलक्षण प्रकार के मसाले पड़ते थे और उनका विलक्षण स्वाद होता था। अपने पश्चात् के जीवन में मैंने कभी कोई वस्तु उन जैसी नहीं खाई। वह फूँस पर शयन किया करते थे और मैं भी उनके निकट ही सोया करता था। वे नियम से प्रतिदिन प्रातःकाल बहुत देर तक योगाभ्यास किया करते थे। मैंने बनारस में बहुतों को योगाभ्यास करते देखा है, परन्तु उनके समान किसी को नहीं देखा। उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी—

दिनचर्या—वे तीन बजे के लगभग उठा करते थे और प्रातःकाल तक योगाभ्यास करते रहते थे। फिर वे शौचादि से निवृत्त होते थे, तत्पश्चात् स्नान करते थे और देह पर भस्मी रमाते थे। ६ बजे वे दर्शकों से

---

§ स्वामीजी हुगली से वर्द्धमान गये थे और मन्मथबाबू उनके साथ गये थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिलते थे और १२ बजे तक उनसे बात-चीत करते रहते थे। फिर वे भोजन करते थे और एक बजे से रात्रि के ६ बजे तक निरन्तर दर्शकों के साथ विचार करते रहते थे, मुझे आश्चर्य है कि उन्हें गले का कैंसर (Cancer) क्यों नहीं हुआ। मैंने और किसी मनुष्य को नहीं देखा जो प्रतिदिन इतने घण्टे महीनों और वर्षों संस्कृत में बोलता और वाद-विवाद करता रहे। मुझे विश्वास है कि उनका जन्म किसी विशेष उद्देश्य के लिए हुआ था।

वे इतना बोलते थे कि प्रतिदिन उनका गला बैठ जाता था, परन्तु अगले दिन फिर उसी कार्य के लिए प्रस्तुत हो जाते थे। रात्रि में वे सूक्ष्म आहार करते थे और बहुत करके कुछ भी न खाते थे और सब भोजन हम लोगों को खाने के लिए बाँट देते थे।

अब मुझे जो अनुभव हुआ उसका वर्णन करता हूँ। यदि कोई मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र चरित्र लेकर उत्पन्न हुआ हो तो वे स्वामीजी थे। वे यह जानते ही न थे कि 'वपुर्विशेषेष्वतिगौरवक्रिया' के क्या अर्थ हैं। मैंने उनके पास राजाओं, महाराजाओं को बहुधा आते देखा है, जो यह आशा करते कि उनका विशेषरूप से स्वागत किया जाएगा, परन्तु स्वामीजी उनके प्रति लवलेशमात्र भी सम्मान प्रकट न करते थे। हम बहुत बार निःस्वार्थी पुरुषों और देशभक्तों का वर्णन सुनते हैं, परन्तु मेरे ज्ञान में तो यही एक निःस्वार्थी पुरुष और देशभक्त थे। यदि मुझे उनके निरन्तर सहवास का सौभाग्य प्राप्त न हुआ होता तो मुझे यह कभी ज्ञात न हुआ होता कि साम्यवाद क्या होता है, यह कभी ज्ञात न होता कि चरित्र-बल क्या होता है ?

यह भारतवर्ष का दौर्भाग्य है कि उनकी मृत्यु समय से पहले और सम्भवतः अनैसर्गिक (Unnatural) हुई। उनका स्थान लेने के लिए कोई नहीं है। ऐसा विद्वान्, ऐसा भक्तिपूर्ण, संलग्नतापूर्ण और निःस्वार्थपूर्ण कोई नहीं है।

कट्टर पण्डितगण ने चिढ़ाने के लिए उनका नाम नास्तिक रख छोड़ा था, परन्तु यदि वे नास्तिक थे तो मैं नहीं जानता कि आस्तिक कौन है ? मैं स्वामीजी की स्मृति से अत्यन्त प्रेम करता हूँ। मुझे सदा यह पश्चात्ताप रहा है कि मैंने नौकरी के लिए उनका सहवास त्याग दिया।

मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि आप स्वामीजी का जीवन-चरित लिख रहे हैं, क्योंकि मैं उनकी स्मृति की पूजा करता हूँ।"

वर्णभेद—हुगली में स्वामीजी ने एक व्याख्यान में वर्णभेद पर कथन किया था। उन्होंने कहा था कि भारत में आजकल जहाँ-तहाँ ब्राह्मणश्रेणी ही पाचक का कार्य करती दिखाई दे रही है, प्राचीन भारत में ऐसा नहीं था। ब्राह्मण का कार्य रसोई बनाना नहीं है। यदि ऐसा होता तो अज्ञातवास के समय विराट भवन में भीमसेन प्रधान सूपकार कैसे बन सकते थे। यह बात नहीं थी कि पहले समय में वर्ण जन्मगत न हो। जन्मगत तो था, परन्तु निम्नस्थ जाति गुण-कर्म से उच्चतर और उच्चतर कर्मदोष से निम्नतर हो जाती थी। बाबू अक्षयचन्द्र सरकार स्वामीजी के निकटतर बैठे हुए थे। स्वामीजी ने उनकी ओर अंगुली से निर्देश करके कहा कि यदि पहला समय होता तो यह विनीत, शिष्ट, कृतविद्य बाबू अवश्य ही ब्राह्मण हो जाता।

ब्रह्मास्त्र—ब्रह्मास्त्र के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि उस बाण के अग्र भाग में ऐसा रासायनिक पदार्थ रहता था कि वायु में वेग से चलने पर वह जल उठता था और शत्रु सेना में गिरकर महान् अग्निदाह उत्पन्न कर देता था। स्वामीजी हुगली में अधिक दिन नहीं रहे। केवल १०§ दिन के लगभग ठहरकर वर्द्धमान चले गये। मन्मथदास चौधरी भी उनके साथ गये।

---

§ पं० लेखरामकृत दयानन्द जीवन-चरित में लिखा है कि स्वामीजी हुगली पूरे १५ दिन रहे, परन्तु यह ठीक नहीं है। उसमें महाराज के वर्द्धमान जाने का कोई उल्लेख ही नहीं है, परन्तु उनका वर्द्धमान जाना बा० मन्मथदास चौधरी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अप्रैल) **वर्द्धमान** (चैत्र शु०‡ वैशाख कृ०)

वर्द्धमान में स्वामीजी का आतिथ्य राजा वनविहारी कपूर ने किया था। वर्द्धमान में उनका किसी से शास्त्रार्थ नहीं हुआ, परन्तु प्रतिदिन अनेक मनुष्य उनके स्थल पर आकर धर्म-सम्बन्धी शङ्काएँ निवृत्त करते रहे। वर्द्धमान के महाराजा भी उनके उपदेश में प्रतिदिन आया करते थे, परन्तु वे साधारण लोगों के साथ बैठना पसन्द नहीं करते थे, अलग कुर्सी डलवाकर बैठे रहते थे, अतः उनका स्वामीजी से वार्त्तालाप नहीं हुआ और महाराज ने उनके पास जाने की परवाह नहीं की।

वर्द्धमान से मन्मथ बाबू तो कलकत्ता चले गये और स्वामीजी भागलपुर पहुँच गये।

(१७ अप्रैल–१७ मई) **भागलपुर** (वैशाख कृ० ५—ज्येष्ठ कृ० ५)

कलकत्ता से लौटते हुए और वर्द्धमान होते हुए महाराज पुनः भागलपुर उतरे और बाबू पार्वतीचरण के ही बाग़ में ठहरे। वे भागलपुर वैशाख कृष्णा ५ सं० १९३० वि० अर्थात् ता० १७ अप्रैल सन् १८७३ ई० को पहुँचे और वहाँ एक मास तक निवास करके नगर-निवासियों को अपने सदुपदेशों से लाभान्वित किया।

(१८ मई —२५ मई) **पटना** (ज्येष्ठ कृ० ६—ज्येष्ठ कृ० १४)

तारीख १७ मई सन् १८७३ ई० को स्वामीजी ने पटना के लिए प्रस्थान किया। ता० १८ मई सन् १८७३ अर्थात् ज्येष्ठ कृष्णा ६ सं० १९३० को स्वामीजी पटना पहुँचे और गुलाब बाग़ में उतरे।

शास्त्रार्थ का चैलेंज—स्वामीजी ने एक विज्ञापन भी दिया कि जिस किसी को कोई शङ्का हो उसे दूर करले, क्योंकि पहली बार जब महाराज पटना से चले गये थे तो पटना और बांकीपुर के पण्डितों ने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि हमें उनके आगमन की खबर नहीं हुई अथवा हमें अवसर नहीं मिला, अन्यथा हम स्वामीजी से अवश्य शास्त्रार्थ करते, परन्तु विज्ञापन देने पर भी कोई पण्डित शास्त्रार्थ करने के लिए अग्रसर नहीं हुआ।

वेद स्वतःप्रमाण हैं—स्वामीजी के पास जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। नगर के प्रतिष्ठित पुरुष और कॉलेज के विद्यार्थी बहुधा जाया करते थे। एक जिज्ञासु के किसी प्रश्न के उत्तर में अपनी सम्मति की पुष्टि में महाराज ने एक वेदमन्त्र प्रस्तुत किया। जिज्ञासु ने कहा कि वेद का क्या प्रमाण तो इसपर कहा कि वेद स्वतःप्रमाण हैं। जैसे सूर्य का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए उसे दीपक से दिखाने की आवश्यकता नहीं होती, ऐसे ही वेद को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

इस बार स्वामीजी के दो व्याख्यान हुए। पहला मूर्त्तिपूजा, पुराण, श्राद्ध, पिण्डप्रदान के खण्डन पर और दूसरा सृष्टि-उत्पत्ति पर। पण्डित लोग व्याख्यानों में उपस्थित थे, परन्तु किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया।

के पूर्वोद्धृत पत्र से सिद्ध है। वर्द्धमान वे तीन दिन रहे। यदि एक दिन वर्द्धमान जाने का और एक दिन वर्द्धमान से भागलपुर जाने का रक्खा जाए तो हुगली में महाराज की स्थित १० दिन ही रह जाती है। वे हुगली १ अप्रैल को आये थे और भागलपुर १७ अप्रैल को पहुँच गये थे, अतः इन १६ दिन में ही वे हुगली और वर्द्धमान दोनों जगह रहे।

‡ पं० लेखरामकृत दयानन्द-चरित में लिखा है कि मन्मथदास चौधरी भागलपुर में स्वामीजी के साथ थे और वे साल, डेढ़ साल उनके साथ रहे। यह ठीक नहीं है, क्योंकि मन्मथ बाबू के पूर्वोद्धृत पत्र से सिद्ध है कि वे स्वामीजी के साथ केवल वर्द्धमान तक ही गये थे और वहाँ से वे कलकत्ता को और स्वामीजी बिहार को चले गये थे। उन्होंने यह भी लिखा है कि उसके पश्चात् स्वामीजी के शरीर पूरा होने तक उन्हें स्वामीजी के दर्शन नहीं हुए। मन्मथ बाबू का स्वामीजी से संसर्ग कलकत्ता में ही हुआ था, अतः उनका स्वामीजी के साथ साल-डेढ़-साल रहना किसी तरह नहीं बनता। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब लोग ध्यान से सुनते रहे।

स्वामीजी पटना केवल ८ दिन रहे। वहाँ से छपरा (बिहार) के लिए प्रयाण किया।

(२५ मई—१० जून) छपरा (ज्येष्ठ कृ० १४—ज्येष्ठ शु० १५)

शास्त्रार्थ की आयोजना—ज्येष्ठ कष्णा १४ संवत् १९३० अर्थात् २५ मई सन् १८७३ को स्वामीजी छपरा में अवतीर्ण हुए। छपरा के सुप्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त ज़मींदार राय शिवगुलाम साह बहादुर ने उनका बड़े प्रेम और सन्मान के साथ स्वागत किया और एक विशाल और सुसज्जित भवन में उन्हें ठहराया। महाराज के मिष्ट भाषण और प्रेमरससनी वाणी ने रायबहादुर को मुग्ध कर दिया और वे अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम से उनकी सेवा में तत्पर हो गये। इससे पण्डितों, पुरोहितों और पुजारियों में ईर्ष्या और डाह की अग्नि भभक उठी। उधर महाराज के आगमन का शुभ समाचार नगर-वासियों को ज्ञात कराने और मूर्त्तिपूजा आदि अवैदिक पाखण्डों पर उनके समर्थकों को शास्त्रार्थ के लिए आहूत करने के लिए नगर में विज्ञापन वितरण किया गया। पौराणिक बासी कढ़ी में उबाल आया और उन्होंने यह सङ्कल्प किया कि प्रथम तो दयानन्द से शास्त्रार्थ किया जाए और यदि उसमें सफलता न हो तो उन्हें लाठियों से निरुत्तर किया जाए।

मैं नास्तिक का मुख नहीं देखूँगा—छपरा में उन दिनों एक पण्डित रहते थे जिनका नाम जगन्नाथ था और जिनकी विद्वत्ता और पवित्रात्मता का सिक्का सारे नगर पर बैठा हुआ था। छपरा में यदि कोई पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ कर सकता था तो पण्डित जगन्नाथ थे। पौराणिक वर्ग उन्हीं के पास गया और जाकर उनसे प्रार्थना की कि महाराज चलिए और नास्तिक दयानन्द से धर्म की रक्षा कीजिए, परन्तु पण्डितजी शास्त्रार्थ के नाम से कानों पर हाथ धर गये। उन्होंने कहा कि शासत्रार्थ करने में मुझे उस नास्तिक का मुख देखना पड़ेगा जिसका शास्त्र में निषेध है और यदि मैंने ऐसा किया भी तो मुझे कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

मुख न देखो पर्दे के पीछे बैठो—पण्डितजी के ये वचन सुनकर पौराणिक धर्म के पृष्ठपोषकों की आशाओं पर पाला पड़ गया और वो तेजोहीन व हताश होकर वापस चले आये। महाराज ने जब यह सुना तो उन्होंने पण्डित जगन्नाथ को इस उलझन से निकालने का एक विलक्षण, परन्तु सरल उपाय बताया। उन्होंने कहा कि यदि पण्डित महोदय मेरा मुख नहीं देखना चाहते हैं तो मेरे सामने एक पर्दा डाल दिया जाए और वे उसकी ओट में शास्त्रार्थ करलें, परन्तु शास्त्रार्थ करें तो सही।

पर्दा नशीन जगन्नाथ—अब तो पण्डितजी भी निरुपाय हो गये। जो प्रधान आक्षेप उन्हें था वह भी न रहा और उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिए क्षेत्र में आना ही पड़ा। वे अपने दलबलसहित सभास्थल में पधारे। महाराज के मुख के सामने वास्तव में पर्दा डाला गया। एक ओर महाराज बैठे और पर्दे के दूसरी ओर पण्डित जगन्नाथ आसन पर सुशोभित हुए और विचित्र और मनोरञ्जक ढंग से शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ—प्रथम स्वामीजी ने पण्डितजी से कुछ प्रश्न स्मृतियों में से किये जिनका उत्तर पण्डितजी ने दिया तो सही, परन्तु उनकी संस्कृत व्याकरण की अशुद्धियों से भरी हुई थी और उनका उत्तर भी स्मृतियों के कथनानुकूल न था। स्वामीजी ने उनकी अशुद्धियों का भरी सभा में वर्णन किया और उनके उत्तर की पोल खोली।

जगन्नाथ चुप—स्वामीजी के बेरोक-टोक, स्पष्ट, सुगम और ललित संस्कृत-भाषण और पण्डितजी के उत्तर की भाषा और भाव की अशुद्धियों और दोषों के स्पष्टीकरण से पण्डितजी के मुँह पर मुहर लग गई और उन्होंने 'हूँ, हाँ' तक न की। पण्डितजी की इस दशा व दुर्दशा को देखकर जनता को विश्वास हो गया कि पण्डित जगन्नाथ पाण्डित्य में शून्य हैं और उनका पक्ष भी निर्बल और वेद के प्रतिकूल है।

चार घण्टे का व्याख्यान—इसके पश्चात् महाराज ने संस्कृत में बोलना आरम्भ किया और निरन्तर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चार घण्टे तक अपनी वाग्मिता की गङ्गा बहाकर उपस्थित जन को आनन्द में मग्न कर दिया और परम-पुनीत वेदों के उपदेश-जल से उनके हृदयों का मालिन्य धो दिया। पुरोहित-मण्डली को निश्चय हो गया कि उनकी हार हो गई और नाक जाती रही, अतः मूर्खों का अन्तिम हथियार सँभालना ही उन्होंने युक्त समझा और वे गुण्डेपन पर उतर आये। वे एकदम शोर मचाने लगे कि वेदों के अनर्थ हो रहें हैं और स्वामीजी वेदों का अपमान कर रहे हैं। उनमें जो लोग अधिक नीच और दुष्ट थे, उन्होंने कहा कि यदि यह नास्तिक हमें मार्ग में मिल जाए इसे जीता न छोड़ेगे। सभा में इनके हुल्लड़पन से गड़बड़ हो गई और सब लोग उठकर चले गये।

'बिहारदर्पण' के सम्पादक ने मई १८७३ के अङ्क में इस शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में रायबहादुर शिवगुलाम साह के नाम का उल्लेख करके इस प्रकार नोट दिया था—

"एक बार श्री दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने के लिए ब्राह्मणों को इकट्ठा किया, पर दयानन्द के सम्मुख शास्त्रार्थ या युक्ति-प्रत्युक्ति करने में कौन ठहर सकता है ? बड़े-बड़े ईसाई, मुहम्मदी और बौद्धमतवालों का तो कुछ ठिकाना ही नहीं फिर इन साधारण ब्राह्मणों से क्या हो सकता है ? लोग कहते हैं कि ब्राह्मणों ने ताली बजादी थी कि दयानन्द सरस्वती हार गये। राय शिवगुलाम साह बहादुर इस बात को जान गये कि ब्राह्मणों ने व्यर्थ उनके साथ गोलमाल कर दिया। फिर स्वामीजी का शिष्टाचार भली-भाँति से किया और जाने के समय बहुत दूर तक साथ गये।" (बिहारदपर्ण पृष्ठ २५३)

स्वामीजी छपरा से आरा पधारे।

(११ जून–२६ जुलाई) **आरा** (आषाढ़ कृ० १—श्रावण शु० २)

आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा संवत् १९३० वि० अर्थात् ता० ११ जून सन् १८७३ ई० को स्वामीजी ने आरा में पदार्पण किया। इस बार भी वे महाराज डुमराऊँ की कोठी में ही उतरे और उन्हीं लोगों ने उनके आतिथ्य का भार ग्रहण किया, जिन्होंने पहली बार किया था।

मित्र अमित्र हो गया—मुंशी हरवंशलाल किसी कारण से स्वामीजी से विरक्त हो गये थे, अतः उन्होंने स्वामीजी के प्रति विशेष प्रेम-प्रदर्शन नहीं किया प्रत्युत वे उनके विरुद्ध आचरण करने लगे और उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए उन्हीं पण्डित रुद्रदत्त को लिवाकर लाये जिनसे उनका पहली बार शास्त्रार्थ हुआ था।

पं० रुद्रदत्त से शास्त्रार्थ—

प्रतिमा-पूजा के सम्बन्ध में बात चली। स्वामीजी ने पण्डित रुद्रदत्त से पूछा—

दया०—प्रतिमा शब्द की सिद्धि कीजिए।

रुद्र०—प्रथम आप 'शब्द' इस शब्द की सिद्धि कीजिए।

दया०—'शब्द' शब्दने धातु से 'अच्' प्रत्यय करने से सिद्ध होता है।

रुद्र०—इस प्रकार इसकी सिद्धि नहीं होती।

दया०—आप जानते नहीं हैं। उणादि प्रकरण में लिखा हुआ है कि 'शप' धातु से आक्रोश के अर्थ में 'द' प्रत्यय करके निपातन से 'शब्द' सिद्ध होता है। पाणिनि का उणादि देखिए। यदि इस प्रकार 'शब्द' का आक्रोशात्मक अर्थ सिद्ध न करोगे तो आशीर्वाद शब्द किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा।§

इसपर पं० रुद्रदत्त कुछ गोलमाल करना चाहते थे, परन्तु स्वामीजी ने कहा आप पाणिनि ले-आइए,

§ शप आक्रोशे। शाशपिभ्यां ददनौ। शादः शब्दः॥ —उणादि० ४।९७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैं दिखा दूँगा। इसके पश्चात् मु० हरवंशलाल और पं० रुद्रदत्त स्वामीजी के पास से चले गये।

आरा में उमानन्द एक जैन पुरोहित स्वामीजी के पास बहुत आते थे और अनेक विषयों पर तर्क-वितर्क करते थे, परन्तु स्वामीजी उनके तर्कों को चूर्ण-विचूर्ण कर देते थे।

स्वामीजी की यह बड़ी प्रबल इच्छा थी कि देश स्वतन्त्र हो जाए।

हुंकार से घातक पलायित—एक दिन अपने पूर्वपरिचित भक्त बाबू रजनीकान्त से महाराज ने कहा था कि एक दिन हम ध्यानावस्थित थे तो एक विपक्षी तलवार लेकर हमें वध करने आया था, परन्तु जब हमने हुङ्कार किया तो वह डरकर भाग गया।

कानून का ज्ञान—एक दिन किसी प्रसङ्ग में रजनीबाबू के साथ कानून का विषय आ गया। महाराज ने उसपर जो कथनोपकथन किया तो रजनीबाबू को यह देखकर कि वे अंग्रेज़ी कानून के गूढ़ तत्त्वों को भी जानते हैं, बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर महाराज ने उत्तर दिया कि हमने इस विषय को उपयोगी समझकर जान छोड़ा है।§

वस्त्र-धारण—इस बार स्वामीजी में एक परिवर्त्तन था। वे वस्त्र धारण करने लगे थे। वे किनारेदार धोती पहनते थे और उसकी लाँग छिटकाते थे। देह पर चादर और पैरों में जूता पहनते थे।

इस बार भी आरा में स्वामीजी की कई वक्तृताएँ हुई। आरा में महाराज की एक मास से कुछ अधिक अवस्थिति रही। आरा से महाराज डुमराऊँ गये।

(२६ जुलाई ८—अगस्त) डुमराऊँ (श्रावण शु० २—श्रावण शु० १५)

आरा से स्वामीजी २६ जुलाई सन् १८७३ को डुमराऊँ आये और रेलवे स्टेशन के पास महाराज डुमराऊँ की उसी कोठी में ठहरे जिसमें कलकत्ता जाते हुए ठहरे थे। इस बार भी महाराज का आतिथ्य सत्कार राज्य की ओर से ही हुआ। बाबू रजनीकान्त आरा से डुमराऊँ स्वामीजी के साथ आये थे।

स्वामीजी का डुमराऊँ आने का प्रयोजन महाराजा से वैदिक पाठशाला के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करना था। आरा में ही उन्होंने रजनीबाबू से कह दिया था कि यदि महाराज ने कुछ सहायता की तो वहाँ ठहरकर कुछ करेंगे, अन्यथा चले जाएँगे। महाराज ने कुछ सहाय्य प्रदान नहीं किया और इसी कारण से स्वामीजी डुमराऊँ से ८ अगस्त सन् १८७३ को मिर्ज़ापुर चले गये।

(८ अगस्त—अक्तूबर) मिर्ज़ापुर (श्रा० शु० १५—कार्त्तिक कृ०)

डुमराऊँ से स्वामीजी मिर्ज़ापुर पहुँचे और सेठ रामरतन लड्ढा के बाग़ में ठहरे।

पाठशाला तोड़ दी—पाठशाला की बहुत दुरवस्था हो गई थी। पाठशाला में यह नियम था कि विद्यार्थियों को वस्त्र और पुस्तक पाठशाला की ओर से दिये जाते थे। विद्यार्थी यह धूर्त्तता करते थे कि वस्त्र और पुस्तक मिलने के अवसर पर पाठशाला में आकर नाम लिखा लेते थे और पीछे चले जाते ते। पं० ज्वालादत्त पाठशाला का प्रबन्ध न कर सकते थे। उस समय पं० देवदत्त शास्त्री जो पीछे कानपुर में एक पाठशाला के हेड पण्डित हुए उस पाठशाला में पढ़ते थे। एक दिन वे किसी मूर्त्ति पर बैठ गये, उनके एक सहपाठी ने इस बात पर झगड़ा किया, जब वह झगड़ा पं० ज्वालादत्त के पास गया तो उन्होंने पं० देवदत्त

---

§ पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित में लिखा है कि कलकत्ता से लौटते हुए स्वामीजी जब दुबारा आरा गये तो मुंशी हरवंशलाल के यहाँ ठहरे और उन्होंने उनका बड़ा आतिथ्य और सेवा शुश्रूषा की, परन्तु यह ठीक नहीं है। स्वामीजी महाराज डुमराऊँ की कोठी में ठहरे थे, मुंशी हरवंशलाल उनसे कुछ विरक्त हो गये थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के सहपाठी का ही पक्ष लिया। इतने में ही स्वामीजी भी मिर्ज़ापुर आ गये। उन्होंने भी उस झगड़े को सुना और सुनकर पं० ज्वालादत्त के कुप्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर पाठशाला को तोड़ दिया। फिर उन्होंने पं० गजाधर को बीस रुपये मासिक पर नियत करके पाठशाला चलाने को कहा और यह व्यवस्था की कि प्रत्येक विद्यार्थी को पाठशाला की ओर से केवल दो रुपये मासिक दिया जावे, शेष व्यय के लिए प्रत्येक विद्यार्थी भिक्षा द्वारा प्रबन्ध करे, परन्तु पं० गजाधर पाठशाला को न चला सके और अन्त को उसी वर्ष पाठशाला टूट गई।

इस बार स्वामीजी का एक व्याख्यान गवर्नमेंट हाईस्कूल में हुआ था।

काशी की पाठशाला का सूत्रपात—स्वामीजी ने काशी से पं० जवाहरदास उदासी को मिर्ज़ापुर बुलाकर कहा था कि आप एक बार मिर्ज़ापुर रहकर पाठशाला की सुव्यवस्था कर दीजिए, परन्तु वे इसपर राज़ी न हुए तब स्वामीजी ने उनसे कहा कि यदि आप मिर्ज़ापुर नहीं रह सकते तो काशी में ही वैदिक पाठशाला स्थापित करने का उद्योग कीजिए। इसे उन्होंने स्वीकार किया। इसके पश्चात् पण्डित जवाहरदास ने डुमराऊँ, पटना, आरा, छपरा में घूमकर चालीस रुपये मासिक चन्दे का प्रबन्ध कर लिया और दो महीने के अस्सी रुपये एकत्र करके अपने साथ ले भी आये। जब पं० जवाहरदास यह रुपया इकट्ठा करके काशी लौटे तो स्वामीजी फ़र्रुखाबाद थे। पं० जवाहरदास ने अपने उद्योग के परिणाम की सूचना दी तो स्वामीजी ने उनसे अस्सी रुपये अपने पास मँगा लिए, परन्तु फिर सौ रुपये उनके पास भेज दिये और उन्हें पाठशाला स्थापित करने को लिखा और यह आशा दिलाई कि हम और भी आर्थिक सहायता करेंगे।

पाठशाला स्थापना—साधु जवाहरदास ने केदार घाट पर एक गृह पौने चार रुपये मासिक किराये पर लेकर पौष कृष्णा २ संवत् १९३० को पाठशाला स्थापित की। उन्होंने २० ब्राह्मणों को उसके स्थापित होने के उपलक्ष में मिष्टान्न और एक-एक रुपया दक्षिणा दी। पं० शिवकुमार शास्त्री को जो पीछे आकर बनारस के दिग्गज पण्डितों में परिगणित हुए पन्द्रह रुपये मासिक पर अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाने के लिए नियत किया गया। पण्डित शिवकुमार ने साधु जवाहरदास के पास स्वयं आकर पाठशाला में अध्यापक का कार्य करने की इच्छा प्रकट की थी। अन्य पण्डितों ने पण्डितजी को पाठशाला में कार्य करने से रोकना चाहा था, परन्तु वे नहीं माने थे और उन्होंने यह उत्तर दे दिया था कि मैं दयानन्द का मत नहीं मानूँगा, मैं तो केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाऊँगा। अष्टाध्यायी पढ़नेवाले छात्रों को आठ आने और महाभाष्य पढ़नेवाले छात्रों को एक रुपया प्रति मास प्रति छात्र देने की व्यवस्था की गई। अष्टाध्यायी पढ़नेवाले छात्रों की संख्या २५ और महाभाष्य पढ़ने वालों की संख्या ८ हो गई थी। पाठशाला का नाम सत्यशास्त्र-पाठशाला रक्खा गया था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वादश अध्याय

संवत् १९३० का शेष भाग=शेष सन् १८७३ तथा मार्च १८७४ तक

(२० अक्तूबर—६ नवम्बर) **कानपुर** (कार्त्तिक कृ० १४—मार्गशीर्ष कृ०)

मिर्ज़ापुर से महाराज *प्रयाग* आये और अलौपी बाग़ में कुछ दिन ठहरकर २० अक्टूबर सन् १८७३ को कानपुर चले गये। वहाँ आपने टूका घाट पर आसन जमाया। स्वामीजी ने फूलचन्द मक्खनलाल की कोठी में एक वक्तृता दी, जिसमें मृत पितरों के श्राद्ध का खण्डन किया और कहा कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही करना चाहिए, यह भी सिद्ध किया कि पृथिवी चलती है और इसकी पुष्टि में यजुर्वेद का एक मन्त्र भी प्रस्तुत किया।

स्वामीजी ने बाबू दरगाहीलाल से कहा कि घाट पर एक यज्ञकुण्ड बनवा दो, जो उन्होंने स्वीकार किया। उस समय दर्गाहीलाल अपने घाट की मरम्मत करा रहे थे और इसी कारण स्वामीजी वहाँ नहीं ठहरे थे।

महाराज इस समय वस्त्र धारण करने लगे थे। जब लोगों ने इस परिवर्त्तन का कारण पूछा तो कहा कि हमें मेम और साहब लोगों से मिलना पड़ता है, लोग हमें अपने घरों पर आमन्त्रित करते हैं, इसलिए स्त्रियों के सम्मुख होना पड़ता है, सभा-समितियों में व्याख्यान देने पड़ते हैं, पुस्तक-रचनादि के लिए काग़ज, कलम, पुस्तकादि रखनी पड़ती हैं, इसलिए हम वस्त्र धारण करने और अन्य सामग्री रखने लगे हैं। इससे हमारे धर्म की भी हानि नहीं होती, क्योंकि ये बातें धर्म की विरोधी नहीं हैं।

महाराज के पधारने के कुछ दिन पीछे श्रद्धालु भक्तों ने उनसे अनुरोध किया कि आप परेड के मैदान में व्याख्यान दीजिए जो उन्होंने स्वीकार कर लिया।

व्याख्यान में कोतवाल की बाधा—तदनुसार परेड के मैदान में शामियाना खड़ा किया गया और फ़र्श बिछाया गया। व्याख्यान की विज्ञप्ति ढोल पिटवाकर नगर में दी गई। बात करते-करते व्याख्यान-स्थल जनपूर्ण हो गया। व्याख्यान की तैयारी हो ही रही थी कि शहर के कोतवाल सुलतान अहमद आ धमके। उन्होंने लाला नन्नूमल, बाबू काशीनारायण मुंसिफ और बाबू क्षेत्रनाथ घोष सबजज से कहा कि आप लोगों ने मजिस्ट्रेट और म्युन्सिपल बोर्ड की आज्ञा बिना नगर में ढोल क्यों पिटवाया और शामियाना क्यों तनवाया। आप लोग न होते तो मैं इन सब चीजों को उठवाकर फिकवा देता। मैं अभी मजिस्ट्रेट के पास जाता हूँ।

मजिस्ट्रेट से व्याख्यान की आज्ञा—कोतवाल की ये बातें सुनकर लाला नन्नूमल और बाबू क्षेत्रनाथ घोष तुरन्त ही डैनियल साहब मजिस्ट्रेट के पास गये और उनसे सब वृत्तान्त कहा। मजिस्ट्रेट ने बिना किसी आक्षेप वा आपत्ति के कह दिया कि आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें और व्याख्यान करावें। उसी समय कोतवाल साहब भी मजिस्ट्रेट के पास पहुँचे और उनसे कहा कि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं, जिससे हिन्दुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है और झगड़ा होने की आशङ्का बढ़ती है, अतः स्वामीजी का परेड के मैदान में व्याख्यान होना उचित नहीं है, परन्तु साहब ने उसकी बातों पर कर्णपात न किया और उससे कहा कि व्याख्यान में प्रबन्ध करो, जिससे कुछ गोलमाल न होने पावे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोतवाल की धूर्तता—कोतवाल फिट्टे मुँह वापस आ गया, परन्तु अपनी धूर्त्तता से न चूका और ऐसा ज्ञात होता है कि उसने कुछ लोगों को व्याख्यान में विघ्न डालने के लिए उकसा दिया; क्योंकि जब बाबू क्षेत्रनाथ घोष और नवूमल ने मजिस्ट्रेट के पास से वापस आकर व्याख्यान आरम्भ कराया और ज्योंही महाराज ने वेदी पर समासीन होकर श्रीमुख से कुछ वेदमन्त्रों का उच्चारण करके उनकी व्याख्या आरम्भ की, त्योंही एक ओर से एक पण्डित ने और दूसरी ओर से एक मौलवी ने उच्च स्वर से कुछ अण्डबण्ड बकना शुरू कर दिया जिससे महाराज के लिए व्याख्यान देना असम्भव हो गया। महाराज यह देखकर व्याख्यान वेदी से नीचे उतर आये। कोतवाल ने उस विघ्न-कर्त्ता पण्डित और मौलवी से कुछ भी रोक-टोक नहीं की।

गाली प्रदान, ईंट फेंकी—जिस स्थल पर स्वामीजी का व्याख्यान होने को था उससे थोड़ी दूर पर पण्डित प्रयागनारायण की गुप्त मन्त्रणा से एक दूसरा शामियाना खड़ा किया गया था। उसमें एक गोसाईं मोहनगिर स्वामीजी को गालियाँ दे रहा था और कह रहा था कि दयानन्द को अंग्रेज़ो ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए भेजा है। जो लोग उस शामियाने के नीचे बैठे थे उन्हीं में से कुछ दुष्टों ने कई ईंटें भी फेंकी थीं, जिनमें से एक स्वामीजी के पास आकर गिरी थी।

सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस का सौजन्य—तत्पश्चात् लाला नवूमल शामियाना खुलवाने लगे इतने ही में सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस आ पहुँचे और उन्होंने लाला नवूमल से कहा कि आप शामियाना न खुलवाइए, हम व्याख्यान में उपस्थित रहकर शान्ति रक्खेंगे। लाला नवूमल ने उत्तर दिया कि स्वामीजी ऐसे गोलमाल में व्याख्यान नहीं देंगे और अब व्याख्यान सम्भवतः किसी अन्य दिन होगा। ऐसा ज्ञात होता है कि मजिस्ट्रेट को कोतवाल की ओर से सन्देह हो गया था और इसी कारण से उन्होंने सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस को प्रबन्ध के लिए भेज दिया था।

व्याख्यानमाला—इसके अनन्तर महाराज के व्याख्यान का शिवप्रसाद के राजगद्दी-हॉल में प्रबन्ध हुआ और जिस गद्दी पर नवरात्रि के पश्चात् रामचन्द्रजी का राजतिलक हुआ करता है उसी गद्दी पर महाराज का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान में पुलिस के अनेक कर्मचारी प्रबन्धार्थ उपस्थित थे। व्याख्यान का विषय 'ईश्वरसिद्धि' था। दूसरा व्याख्यान इङ्गलिश थियेटर के हॉल में 'आर्यावर्त्त की इदानीन्तन और प्राचीन अवस्था' पर हुआ। इस व्याख्यान में कतिपय अंग्रेज भी उपस्थित हुए थे। इसके पश्चात् १०-१२ व्याख्यान बाबू क्षेत्रनाथ घोष के बँगले पर विविध विषयों पर हुए। तदनन्तर महाराज फ़र्रुखाबाद चले गये।

शाक्त ने मांस-मदिरा छोड़ दिये—मास्टर नवूलाल शाक्तमतावलम्बी थे, परन्तु वे महाराज के सदुपदेश से उस मत की भ्रान्तियों के जाल से मुक्त हो गये थे। उन्होंने मांसाहार और सुरापान आदि दुर्व्यसन छोड़ दिये थे और वैदिक धर्म के अनुष्ठान—सन्ध्या, गायत्री-जप आदि करने लगे थे।

बाबू हेमचन्द्र चक्रवर्ती—बाबू हेमचन्द्र कलकत्ता में स्वामीजी से मिले थे और उन्होंने महाराज से उपनिषद् पढ़नी आरम्भ की थीं, परन्तु महाराज के कलकत्ता से चले आने के कारण वे अपना पठन समाप्त न कर सके थे। महाराज के अध्यापन से वे इतने सन्तुष्ट थे कि उपनिषद् पाठ समाप्त करने के लिए वे उनकी सेवा में कलकत्ता से कानपुर आये और उन्हीं के पास ठहरे। कानपुर में वे स्वामीजी की दिनचर्या का इन शब्दों में वर्णन करते हैं—

दिनचर्या—स्वामीजी टूका घाट पर एक कुटिया में ठहरे हुए थे। जिसमें पियार बिछी हुई थी। स्वामीजी प्रातःकाल ही उठकर प्रातःकृत्य के लिए चले जाते थे और दन्तधावन व कुल्ला करने के पश्चात् हेमचन्द्र बाबू को उपनिषद् पढ़ाते थे। दोपहर को स्नान करते समय गङ्गा में सूर्याभिमुख चित्त तैरते हुए दूर तक चले जाते। एक घण्टे से अधिक में स्नान कर चुकते और फिर व्यायाम करके सूर्य की ओर मुख करके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेट जाते। जब भोजन तैयार हो जाता तो ब्रह्मचारी जो रसोई बनाता था, पहले बलिवैश्वदेवयज्ञ करता और फिर स्वामीजी भोजन करते। भोजन के पश्चात् एक रोटी चील-कव्वों के लिए, एक कुत्तों के लिए फेंकते और एक मछलियों के लिए गङ्गा में डालते और कुछ देर विश्राम करते। एक ईंट खूब गर्म करके एक जलपूर्ण पात्र में डालते और पात्र के मुख पर कपड़ा बाँध देते। लोगों से बात-चीत करते समय जब आवश्यकता होती उस जल को घूँट-घूँट करके पीते। सायङ्काल के पश्चात् आगन्तुकों को विदा कर देते और रात्रि में पावभर गर्म दूध चाय के समान थोड़ा-थोड़ा करके पीते और फिर हेमबाबू से हँसी-खुशी बातें करते। फिर वे अलग जाकर योगासनारूढ़ होकर ध्यान में मग्न हो जाते। हेमबाबू कहते हैं कि रात्रि में जब कभी भी हमारी आँख खुली हमने उन्हें ध्यानावस्थित ही पाया। शीताधिक्य होने पर भी वे कोई वस्त्र न पहनते थे। यदि कभी हमारे उच्च स्वर से बोलने से उनके ध्यान में विघ्न पड़ता तो 'हूँ' शब्द कर देते। बहुत सबेरे उठकर हमें जगाते और कहते कि गायत्री जपो। स्त्रियों का दर्शन न करते थे। यदि कोई उन्हें गर्म कपड़ा दे जाते तो उसे या तो ब्रह्मचारी को दे देते या गरीबों को बाँट देते, इसी प्रकार मिष्टान्न आदि भी लोगों को बाँट दिया करते थे।

इस बार स्वामीजी कानपुर में २० अक्टूबर से ६ नवम्बर सन् १८७३ तक रहे।

(१० नवम्बर—१६ नवम्बर) **लखनऊ** (मार्गशीर्ष कृ० १४)

कानपुर से स्वामीजी वहाँ के रईस ला० गजाधरप्रसाद के अनुरोध से लखनऊ पधारे और उन्हीं के बँगले पर ठहरे। ला० गजाधरप्रसाद से स्वामीजी की ज्योतिर्लिङ्ग के विषय पर बात-चीत हुई थी। स्वामीजी ने लाला से प्रश्न किया कि क्या ज्योतिर्लिङ्ग अन्धकार में भी ज्योति प्रदान कर सकता है, परन्तु इसका वे कुछ उत्तर न दे सके।

गङ्गाधर से शास्त्रार्थ—इस समय पं० गङ्गाधर शास्त्री से स्वामीजी का मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ होने की चर्चा हुई। शास्त्रार्थ का दिवस कृष्णा १३ संवत् १९३० नियत हुआ। सर्वसाधारण को उसकी सूचना देने के लिए विज्ञापन वितरण किया गया।

शास्त्रार्थ में अन्याय—शास्त्रार्थ के दिन सहस्रों मनुष्य सभा-स्थल पर एकत्र हुए। स्वामीजी का पक्ष था कि वेद में मूर्त्तिपूजा की आज्ञा नहीं है, पं० गङ्गाधर शास्त्री का पक्ष था कि है। स्वामीजी ने एक वेदमन्त्र अपने पक्ष के समर्थन में प्रस्तुत करके उसका अर्थ किया। शास्त्रीजी ने उसका दूसरे प्रकार का अर्थ किया और कहा कि वह अर्थ मेरा किया हुआ नहीं है, वरन् देखो (एक पुस्तक दिखाकर) यह वेद का पुस्तक कलकत्ता से आया है। इसमें इसी प्रकार का अर्थ है। स्वामीजी उस अर्थ का खण्डन करना चाहते थे कि तुरन्त ही सभा भङ्ग कर दी गई और स्वामीजी को अपने अर्थों के समर्थन और शास्त्रीजी के अर्थों के खण्डन का समय नहीं दिया गया और हल्ला मचा दिया कि दयानन्द हार गये।

अन्याय का पारितोषिक—दूसरे दिन लाला गजाधरप्रसाद ने अपने स्थान पर एक सभा बुलाई। उसमें अनेक पण्डितों को निमन्त्रित किया और उसमें उन्होंने एक दुशाला, कुछ रुपया नक़द और बैलों सहित एक रथ पं० गङ्गाधर शास्त्री को उपहार में दिया। शास्त्रीजी उसी रथ पर सवार होकर, उस बँगले के सामने से होते हुए जहाँ कि स्वामीजी ठहरे हुए थे, सारे नगर में अपनी विजय घोषणा करते हुए घूमे।

अन्यायकारी रईस के स्थान का परित्याग—इस घटना के पश्चात् स्वामीजी लाला गजाधरप्रसाद के बँगले से राजा ओयल के अनुरोधानुसार उनके बँगले में जो क़ैसर बाग में था, चले गये। शास्त्रार्थ से पहले स्वामीजी के व्याख्यान लाला गजाधरप्रसाद के बंगले पर ही हुआ करते थे। उसके पश्चात् एक व्याख्यान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क़ैसर-बाग़ में भी हुआ था।

रईस अपने किये पर लज्जित—इस शास्त्रार्थ में लाला गजाधरप्रसाद ने भी स्वामीजी के साथ वही चाल खेली और वैसा ही दुर्व्यवहार किया जैसी चाल और जैसा दुर्व्यवहार काशी-शास्त्रार्थ में काशी-नरेश ने किया था। अन्त में लाला गजाधरप्रसाद भी अपने किये पर लज्जित हुए, जैसे काशी नरेश हुए थे। प्रत्युत उनसे भी अधिक लज्जित हुए। हरिद्वार के सं० १९३६ के कुम्भ और अन्य अवसरों पर स्वामीजी से साक्षात्कार की सुविधा होने पर भी वे महाराज के सामने जाने का साहस न कर सके और स्वामीजी के सामने उनकी आँखें न हुई। काशी-नरेश ने तो अपने पाप का प्रायश्चित कर लिया, परन्तु वह पाप की कालिमा अपने मस्तक पर लिये ही परलोक सिधारे।

स्वयं पं० गङ्गाधर का कथन—देवेन्द्रबाबू ने इस शास्त्रार्थ के विषय में स्वयं पं० गङ्गाधर शास्त्री से भी प्रश्न किये तो उन्होंने कहा कि स्वामीजी से हमारा तीन विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ था।

१—परमेश्वर की मूर्त्ति है।

२—तीर्थ की आवश्यकता।

३—श्राद्ध की कर्त्तव्यता।

दयानन्द इन तीनों को ही वेदविरुद्ध प्रतिपादित करना चाहते थे और हम इन्हें वेद-प्रमाणित सिद्ध करते थे। 'नि षु सीद गणपते' आदि ऋग्वेदीय मन्त्र§ को उद्धृत करके हमने यह दिखाया था कि गणपति का विग्रह होता है और उसका आवाहन भी किया गया है। श्राद्ध के पक्ष में ऋग्वेद के सातवें मण्डल का और गृह्यसूत्र के चौथे अध्याय का प्रमाण उपस्थित किया था।

कथन की आलोचना—पं० गङ्गाधर शास्त्री यह तो क्यों स्वीकार करने लगे थे कि दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ में गोलमाल किया था। यही कहते रहे कि हमने दयानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। इतना उन्होंने स्वीकार किया कि वे कई बार गुप्तभाव से दयानन्द से मिले थे। शास्त्रार्थ से पहले लखनऊ में और तत्पशचात् दरबार के समय दिल्ली में भी उन्होंने ऐसा ही किया था।

गङ्गाधर का मिथ्या भाषण—जब दूसरे दिन लोगों ने हमसे पूछा कि आप गुप्त रीति से दयानन्द के पास गये थे तो हमने इन्कार कर दिया था। इस प्रश्न के उत्तर में कि आपने ऐसा क्यों किया था शास्त्री महोदय ने कहा कि जिससे युद्ध करना हो यदि पहले ही उसके पास जाकर इस प्रकार बात-चीत न की जाए तो उसका बल किस प्रकार ज्ञात हो सकता है ?

जिस मनुष्य को झूठ बोलते हुए तनिक भी संकोच न हुआ और जो अपने असद् व्यवहार पर एक प्रकार से गौरव करता है उससे यह कैसे आशा की जा सकती है कि वह शास्त्रार्थ दिवस की घटना का याथातथ्य वर्णन करेगा ? शास्त्रीजी चाहे स्वयं अपना अपराध स्वीकार न करें और मृषा बोलकर अपने पाप पर पर्दा डालें, पर हम उन्हीं के एक शिष्य से उनके असत्य को प्रकट कराते हैं।

गङ्गाधर के शिष्य का सत्य-भाषण—श्री केदारनाथ चट्टोपाध्याय ने अपने एक पत्र में देवेन्द्रबाबू को लिखा था—"यह सन् १८७३ की बात है कि सुप्रसिद्ध स्वामी दयानन्द ने लखनऊ आकर वैदिक धर्म की पुष्टि में जैसाकि उसे वे समझते थे, एक व्याख्यानमाला आरम्भ की। प्रतिदिन सायङ्काल के समय बहुसंख्यक लोग उनकी चित्ताकर्षक वक्तृता सुनने के लिए एकत्र होते थे और बहुत-से लोग उनकी वाग्मिता से मुग्ध होकर यह विश्वास लेकर घर लौटते थे कि दयानन्दकृत वैदिक धर्म की व्याख्या सत्य है। वह व्याख्या इस ढंग से की जाती थी कि उन्हें उसके युक्तियुक्त होने में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती थी। स्वामी दयानन्द की

§ ऋग्वेद, म० १०। सू० ११२। मन्त्र ६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सफलता ने निसर्गतः हिन्दूसमाज के अधिक कट्टर लोगों में एक सच्चा रोष उत्पन्न कर दिया था। उन्होंने एक जनसाधारण की सभा का प्रबन्ध कर डाला ताकि उसमें उन विषयों पर शास्त्रार्थ किया जाए जिनपर स्वामीजी ने अपने और कट्टर हिन्दुओं के मनों में भेद उत्पन्न कर दिया था।

गङ्गाधर का परिचय—कट्टर हिन्दूवर्ग के नेता लाला गजाधरप्रसाद थे और उन्होंने अपनी ओर से बोलने के लिए पं० गङ्गाधर शास्त्री को चुना था जो उस समय कैनिंग कॉलेज लखनऊ में पूर्वीय शिक्षा विभाग के मुख्य पण्डित थे और जिनकी यह प्रसिद्धि थी कि वे वेदों और संस्कृत-साहित्य के अन्य भागों में बहुत व्युत्पन्न हैं।

शास्त्रार्थस्थल का वर्णन—उस सायङ्काल को दो वेदियाँ एक दूसरे के सामने बनाई गई थीं। जो वेदी पं० गङ्गाधर के लिए बनाई गई थी, उसे शोभनीय ढंग से सुनहरे कमख्वाब और अन्य बहुमूल्य वस्त्रों से सजाया गया था। स्वामीजी की वेदी पर केवल एक श्वेत वस्त्र बिछाया गया था। शास्त्रीजी बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए थे, परन्तु दयानन्द वही सादा परिधान धारण किये हुए थे। पं० गङ्गाधर शास्त्री हॉल में अपने बहुत-से अनुयायियों के साथ प्रविष्ट हुए, जिनमें मुझे भी सम्मलित होने का सौभाग्य था, क्योंकि मैं भी उनका शिष्य था। स्वामीजी पहले से ही हॉल में बैठे हुए थे और उनके आस-पास भी कितने ही अनुयायी भी बैठे थे। स्वामीजी के अनुयायिगण अपने नेता की सफलता में विश्वास रक्खे हुए दिखाई देते थे, परन्तु शास्त्रीजी के अनुयायियों के मुखमण्डल पर शास्त्रार्थ के परिणाम के सम्बन्ध में चिन्ता के चिह्न दृष्टि पड़ते थे। हॉल कुछ बहुत बड़ा नहीं था। उसमें दो सौ के लगभग मनुष्य थे जिनमें कुछ पण्डित लोग थे। इसके अतिरिक्त एक जनसमूह हॉल के बाहर था, परन्तु मुझे यह पता नहीं कि उसकी संख्या क्या थी।

शिष्य को गुरु के पराजय की इच्छा—यद्यपि मेरी गणना शास्त्रीजी के पक्षवालों में थी, परन्तु मेरी हार्दिक इच्छा स्वामीजी की सफलता के लिए थी, क्योंकि उनकी वाग्मिता, उनके व्याख्यान की चित्ताकर्षक शैली, उनकी सीधी-सादी युक्तियों ने उनके प्रतिपादित किये हुए सिद्धान्तों के पक्ष में सम्पूर्णतया मेरी सम्मति प्राप्त कर ली थी .....।

शास्त्रार्थ का वर्णन—शास्त्रार्थ का आरम्भ ऐसे हुआ कि शास्त्रीजी ने स्वामीजी से एक प्रश्न किया। इस समय मैं आपको यह नहीं बतला सकता कि शास्त्रार्थ के विषय क्या थे, परन्तु इतना मुझे स्मरण है कि शास्त्रार्थ के विषय वही थे जिनपर बहुत अधिक विवाद था। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ था। स्वामीजी की भाषण-शैली शान्त, सम्बद्ध और युक्तियुक्त थी और शास्त्रीजी की उत्तेजना पूर्ण, उद्धत और ऐसी थी कि मानो वह किसी को आज्ञा दे रहे हैं। शास्त्रार्थ लगभग एक घण्टे तक होता रहा। अन्त में शास्त्रीजी स्वामीजी के प्रश्नों के उत्तर देते-देते एकदम उठ खड़े हुए और हॉल छोड़कर जाने लगे। स्वामीजी ने उनसे ठहरने और उत्तर सुनने की प्रार्थना की, परन्तु वे एक पल भी न रुके। शास्त्रीजी के अनुयायियों ने दयानन्द की हार प्रकट करने के उपलक्ष्य में तालियाँ पीटनी आरम्भ कीं, परन्तु निष्पक्ष दर्शकों के मन पर शास्त्रीजी के व्यवहार का साधारण प्रभाव यह पड़ा कि पराजय शास्त्रीजी का ही हुआ और वह जाने के लिए तभी खड़े हुए जब उन्होंने समझ लिया कि उनकी स्थिति सुरक्षित नहीं है और उसका समर्थन नहीं हो सकता, परन्तु इसपर भी शास्त्रार्थ के प्रमुख आयोजनकर्त्ताओं ने शास्त्रीजी को शाल और अन्य वस्तुएँ उपहार में दीं। शास्त्रार्थ के थोड़े दिन पश्चात् कट्टर हिन्दुओं ने शास्त्रार्थ का जो वृत्तान्त छपवाया उसमें बहुत-से दर्शकों की सम्मति में उस सायङ्काल की घटनाओं का याथातथ्य वर्णन नहीं था। इस प्रकार मैंने, जहाँ तक मेरी स्मृति मेरी सहायता कर सकी उस स्मरणीय सायङ्काल की घटनाओं का संक्षेप में वर्णन कर दिया है। शास्त्रीजी के व्यवहार से परिणाम निकालते हुए आरम्भ से ही मेरा यह विश्वास रहा है कि शास्त्रीजी का ही पराजय हुआ था, परन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चूँकि मैंने शास्त्रार्थ में कोई भाग नहीं लिया था, इसलिए मैं वह कहने को उद्यत नहीं हूँ कि वास्तव में क्या बात थी, जिसने शास्त्रीजी को एकदम शास्त्रार्थ से उठ जाने का प्रलोभन दिया।"

सत्य दबाया नहीं जा सकता—सत्य को झूठे आडम्बरों से छिपाया नहीं जा सकता, न कलह और कोलाहल मचाकर ही उसे दबाया जा सकता है। स्वामीजी का पक्ष इतना सबल और सप्रमाण था, इतना युक्तियुक्त और सारपूर्ण था कि पं० गङ्गाधर शास्त्री तो क्या उनसे कहीं बड़े पण्डित भी उसका खण्डन नहीं कर सकते थे ! नहीं कर सके थे !! और कदापि नहीं कर सकेंगे !!! काशी के पण्डित शास्त्रार्थ के पीछे बार-बार आहूत होने पर भी पुनः शास्त्रार्थ करने पर सन्नद्ध नहीं हुए। यदि वे विजेता थे और उनका पक्ष अजेय था तो वे क्यों मौन साधे पड़े रहे ? पं० गङ्गाधर शास्त्री की काशी के पण्डितों के सामने क्या स्थिति थी, उनमें क्या बूता था जो उस कार्य को सिद्ध करते जिसे काशी के सैकड़ों और सहस्रों पण्डित भी सिद्ध नहीं कर सके थे ? यदि हठधर्मी और हुल्लड़बाजी से ही तर्कयुद्ध जीता जा सकता है तो हम भी कहेंगे कि शास्त्रीजी जीते और काशी के पण्डित भी जीते।

स्वामीजी के इस बार लखनऊ पधारने के विषय में 'Friend of India' समाचार-पत्र ता० १३ नवम्बर सन् १८७३ ई० के अङ्क में निम्नलिखित नोट प्रकाशित हुआ था—

"सुप्रसिद्ध वैदिक सुधारक दयानन्द काशी में वैदिक पाठशाला स्थापित करने के निमित्त धन एकत्र करने का यत्न कर रहे हैं। स्वामीजी ने अनेक विषयों पर वक्तृताएँ दी हैं। जिनमें से एक भारतवर्ष की भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान दशा पर थी।"

(२१ नवम्बर—दिसम्बर) फ़र्रुख़ाबाद (मार्ग० कृ० १—पौष कृ०)

§ता० २० नवम्बर १८७३ ई० सायङ्काल को स्वामीजी और बाबू हेमचन्द्र चक्रवर्ती घोड़ागाड़ी में सवार होकर २१ नवम्बर को प्रातःकाल ८ बजे फ़र्रुखाबाद पहुँचे और पाठशाला में ठहरे।

घातक भी भक्त हो गये—कुछ लोगों की ओर संकेत करके स्वामीजी ने बाबू हेमचन्द्र से कहा था कि ये पहले हमारे विरुद्ध थे और हमें मारने आये थे, परन्तु अब हमारे भक्त हैं।

लाट को गोरक्षा का उपदेश—कहते हैं स्वामीजी कैम्पसन साहब, अध्यक्ष शिक्षा-विभाग और म्योर साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर पश्चिमोत्तर प्रान्त (जो अब संयुक्त-प्रान्त आगरा व अवध कहलाता है) से भी मिले थे। स्वामीजी ने लाट साहब से कहा था कि भारतवर्ष से जाकर आप इण्डिया कौन्सिल के सदस्य होंगे। वहाँ आप गोवध बन्द कराने का यत्न करें। कहते हैं कि म्योर साहब ने यत्न करने का वचन भी दिया था। एक पादरी से भी स्वामीजी की इसी विषय पर बात-चीत हुई थी और उन्होंने पादरी को गोरक्षा के लाभ समझाकर सन्तुष्ट कर दिया था।

विवाह में व्यर्थ व्यय—पं० राधाचरण गोस्वामी एक दिन वृन्दावन-निवासी सेठ निर्भयराम, पं० गङ्गादत्त तथा अन्य लोगों को साथ लेकर स्वामीजी के पास गये और उनके सामने कुछ मिष्टान्न रक्खा। स्वामीजी ने पूछा यह कैसा है तो सेठजी ने उत्तर दिया कि मेरे पुत्र के विवाह में मिष्टान्न बना था, उसी में से आपकी सेवा में लाया हूँ। स्वामीजी ने कहा कि हमने सुना है कि आपने पुत्र के विवाह में बहुत धन व्यय किया है। इस प्रकार आप कंगाल हो जाएँगे और फिर आपको कोई सेठजी नहीं कहेगा। विवाह में इतना धन व्यय करना अनुचित है। अकर्मण्य, भोजनलोलुप ब्राह्मणों को खिलाने से कुछ इष्ट नहीं होता। पुलिसवालों को खिलाने से फल होता है, वे रात्रि में आपके घरों की रक्षा करते हैं।

---

§ लखनऊ से स्वामीजी कानपुर आये और उसी दिन सायङ्काल फ़र्रुखाबाद के लिए चल दिये। —यु०मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतीत होता है कि अन्तिम वाक्य महाराज ने विनोदार्थ कहा था।

जर्मन-शर्मन—इससे अगले दिन महाराज ने पं० गङ्गादत्त से कहा था कि जर्मन शब्द 'शर्मन' शब्द का अपभ्रंश है। जर्मनी के लोग वेदों की आलोचना करते हैं।

अर्धरात्रि में भ्रम-निवारण—पं० विश्वेश्वरदयालु शास्त्री सखरिया को लोगों ने बहका रक्खा था कि दयानन्द विद्वान् तो अच्छे हैं, परन्तु ईसाइयों के वेतनभोगी हैं, अतः उनका दर्शन न करना चाहिए, परन्तु वे स्वामीजी की विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर उनसे भेंट करने के बड़े उत्सुक थे। एक दिन वे एक अन्य पण्डित को साथ लेकर अर्द्धरात्रि के समय श्रीसेवा में पहुँचे। उस समय महाराज ध्यानावस्थित थे। दोनों आगन्तुक चुपचाप बैठ गये। जब महाराज की समाधि टूटी तो उन्होंने आगन्तुकों से ऐसे समय पधारने का कारण पूछा। शास्त्रीजी ने कहा कि कारण तो मैं पीछे बताऊँगा पहले वर्णाश्रम पर श्रुति-स्मृति के प्रणामों से मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए। महाराज का उत्तर ऐसा सन्तोषप्रद था कि शास्त्रीजी उसे सुनकर मुग्ध हो गये। कुछ न्यायशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर पाकर उन्होंने पूछा कि ईसा ईश्वर-पुत्र था वा नहीं। उन्होंने इसका खण्डन किया तब शास्त्रीजी ने हँसते हुए कहा कि हमारे आने का अभिप्राय केवल यही ज्ञात करना था कि आप ईसाई वा ईसाइयों के वेतनधर्मी तो नहीं हैं।

हेमबाबू बीमार होकर कलकत्ते चले गये।

(१० दिसम्बर—दिसम्बर) कासगंज (पौष कृ० ६—पौष कृ०)

छप्पर भी स्वयं बाँधा—फ़र्रुखाबाद से चलकर स्वामीजी पौष कृष्णा ६ सं० १९३० को कासगंज विराजमान हुए। वहाँ लगभग १० दिन रहकर पाठशाला का निरीक्षण और प्रबन्ध किया। स्वामीजी विद्यार्थियों के सुख-दुःख का बहुत ध्यान रखते थे। पाठशाला के जिस कमरे में विद्यार्थी पढ़ते थे उसके द्वार खुले हुए थे। जिनसे वर्षा और वायु से विद्यार्थियों को बहुत कष्ट होता था। महाराज ने दीवार बनाने को कहा, परन्तु मज़दूर न मिले और दीवार न बनी। तब छप्पर डालने को कहा। अध्यापकों ने कहा कि हमें छप्पर बनाना नहीं आता तो स्वयं उसे बनाकर दिखाया, तब उन लोगों ने पूरा छप्पर बना लिया।

शपथ न खाओ—स्वामीजी शपथ खाने के बहुत विरुद्ध थे। एक बार अध्यापकों और विद्यार्थियों ने वेद उठाकर शपथ खाई कि हम आर्षग्रन्थ ही पढ़ें-पढ़ाएँगे। एक विद्यार्थी ने शपथ न खाई तो उसे पाठशाला से निकाल दिया। जब स्वामीजी कासगंज आये तो उसने सब वृत्तान्त उनसे कहा। उन्होंने सबकी भर्त्सना की और उस विद्यार्थी को पुनः पाठशाला में ले-लिया।

मीराँ की जात देने पर जुर्माना—एक विद्यार्थी मीराँ की जात देने को चला गया था। जब स्वामीजी को यह बात ज्ञात हुई तो उसपर २५) रु० जुर्माना किया, फिर १०) रु० छोड़ दिये और १५) पाठशाला में जमा करा दिये और सावधान कर दिया कि भविष्य में ऐसा कभी न करना।

(२०—२६ दिसम्बर) छलेसर (पौष शु० १—पौष शु० ७)

पौष शुक्ला १ संवत् १९३० अर्थात् २० दिसम्बर सन् १८७३ को स्वामीजी कासगंज से छलेसर पधारे। उनके श्रद्धालु भक्तों ने राजघाट रेलवे स्टेशन पर उनका स्वागत किया। छलेसर आकर वे पाठशाला में ठहरे और उसके प्रबन्ध में उचित परिवर्तन किया।

राजा से भेंट—इन्हीं दिनों में एक राजा जयकिशनदास, सी०एस०आई० डिप्टी कलक्टर जो उस समय अलीगढ़ में नियत थे, महाराज के दर्शनों को आये और उनसे यह वचन लेकर कि छलेसर से अलीगढ़ पधारें,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसी दिन अलीगढ़ लौट गये।

छलेसर में तीन-चार दिन तक स्वामीजी के व्याख्यान होते रहे और आस-पास के सहस्रों मनुष्य उपदेश-श्रवणार्थ आते रहे। इस बार उनके आने पर कोई आन्दोलन नहीं हुआ। जो पण्डित उनसे प्रश्न करते भी थे, वे वादविवाद करने के अभिप्राय से नहीं करते थे, प्रत्युत अपनी शङ्काओं के निराकरणार्थ करते थे।

(२६ दिसम्बर ७३—२२ जन ७४) अलीगढ़ (पौष शु० ७—माघ शु० ५)

२६ दिसम्बर सन् १८७३ को हाथी पर सवार होकर स्वामीजी अलीगढ़ के लिए रवाना हुए। साथ में ठाकुर मुकुन्दसिंह तथा २०-२५ क्षत्रिय घोड़ों पर सवार होकर उनके साथ हुए और चार बजे अपराह्न वहाँ पहुँच गये।

तारीख २६ दिसम्बर सन् १८७३ अर्थात् पौष संवत् १९३० को छलेसर से आकर अचल तालाब पर चाऊलाल की आम्रवाटिका में ठहरे और राजा जयकिशनदास के अतिथि हुए।

स्वामीजी के आगमन का समाचार पाते ही अलीगढ़ और आस-पास के ग्रामों के सहस्रों मनुष्य उनके दर्शनार्थ इकट्ठे हो गये और स्वामीजी से प्रश्नोत्तर करते रहे। रात्रि के दस बजे तक भीड़भाड़ रही।

व्याख्यानमाला—२७ दिसम्बर सन् १८७३ को उसी वाटिका में महाराज का प्रथम व्याख्यान हुआ। उस दिन पूर्वाह्न में ८ बजे से १२ बजे तक व्याख्यान हुआ था। इसमें नगर के प्रतिष्ठित पुरुष हिन्दू और मुसलमान, वकील, सेठ साहूकार, उच्च राजकर्मचारी बड़ी संख्या में उपस्थित हुए थे। व्याख्यान के अन्त में कुछ लोगों ने प्रश्न भी किये थे। इसके पश्चात् कई दिन तक लगातार व्याख्यान होते रहे।

पण्डित का शंका-समाधान—पण्डित बुद्धिसागर अलीगढ़ के सुविख्यात विद्वानों में से थे। उनसे स्वामीजी का संस्कृत में वार्त्तालाप होता था। वे बड़ी शिष्टता से शङ्काएँ करते थे और स्वामीजी उनका बड़ी योग्यता से समाधान करते थे। वे स्वामीजी की विद्वत्ता पर मुग्ध हो गये और उनकी प्रशंसा करते रहे।

वकील की डींग—लाला बद्रीप्रसाद अलीगढ़ के प्रसिद्ध वकीलों में थे। उन्होंने एक संस्कृत पाठशाला स्थापित कर रक्खी थी, जिसमें पं० मिहरचन्द अध्यापक थे। वे सदा यह कहा करते थे कि जब दयानन्द अलीगढ़ आएँगे, मैं उनसे शास्त्रार्थ करूँगा और दो मिनट में परास्त कर दूँगा। स्वामीजी ने यह सुनकर उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया, परन्तु वे न आये और यह कहा कि चूँकि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं, अतः मैं उनकी सूरत नहीं देखना चाहता।

पर्दा डाल कर शास्त्रार्थ कर लो—स्वामीजी ने उन्हें कहला भेजा कि सूरत न देखिए, परन्तु शास्त्रार्थ तो कीजिए, बीच में एक पर्दा डाल लीजिए वा छोटी-सी दिवार खड़ी कर लीजिए, परन्तु वे किसी प्रकार शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए।

वृक्ष पर बैठा कौवा पण्डितजी से ऊँचा है—एक दिन एक पण्डित आया और शिवालय के चबूतरे पर बैठकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने लगा। उस समय स्वामीजी चबूतरे से नीचे फ़र्श पर बैठे थे और सौ-डेढ़ सौ मनुष्य उनके पास बैठे थे। लोगों ने बहुतेरा कहा कि यदि आपको शास्त्रार्थ करना है तो नीचे फ़र्श पर आकर बैठिए और सभ्यतापूर्वक शास्त्रार्थ कीजिए, परन्तु वह अपनी जगह से न हिला। स्वामीजी ने कहा कि कुछ चिन्ता नहीं, ऊपर-नीचे बैठने से कोई बड़ा-छोटा नहीं होता, देखो यह कौवा जो वृक्ष पर बैठा है, पण्डितजी से भी ऊँचा है।

भँगेड़ी साधु की गालियाँ—एक दिन एक भँगेड़ी, चरसी साधु आया और असभ्यतापूर्वक पूछने लगा कि दयानन्द कौन है और कहाँ है? उस समय १००-१५० पुरुष स्वामीजी के पास बैठे थे। लोगों ने संकेत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से बताया कि ये हैं। स्वामीजी ने उससे पूछा कि तुमने गले में क्या डाल रखा है। उसने कहा कि रुद्राक्ष है। स्वामीजी बोले तुम रुद्र की आँख निकाल लाये हो। वह निरक्षर भट्टाचार्य क्या समझता कि रुद्राक्ष के क्या अर्थ हैं, क्रोध में भरकर लगा महाराज को गालियाँ देने, परन्तु उन्होंने तनिक भी बुरा नहीं माना, परन्तु जब वह बक-बक करता ही गया तो स्वामीजी उठकर शौच को चले गये।

महाराज बड़े विनोदप्रिय थे और कभी-कभी ऐसे लोगों को जान-बुझकर छेड़ा करते थे।

जाट रईस का वेदभाष्य—ठाकुर गुरुरामप्रसाद जाट बेसवाँ, जिला अलीगढ़ के रईस थे। वे अपने को बड़ा संस्कृतज्ञ और वेदज्ञ समझते थे। उन्होंने पण्डित अङ्गदराम शास्त्री आँवला ज़िला बरेलीवाले की, (जिनसे पाठक परिचित हो चुके हैं) सहायता से यजुर्वेद के महीधर भाष्य का हिन्दी में अनुवाद करके छपवाया था। एक दिन वे स्वामीजी से मिलने आये और स्वामीजी से अपने वेदभाष्य के विषय में सम्मति पूछी। स्वामीजी ने मुँह देखी कहना कभी सीखा ही न था, स्पष्ट कह दिया कि वह नितान्त अशुद्ध और वेदविरुद्ध है। ठाकुर साहब इसे सुनकर मन में तो अप्रसन्न ही हुए, परन्तु प्रकट में यह कहा कि मैं इसे शुद्ध कर दूँगा और यदि आप भी सहायता दें तो बड़ा कृतज्ञ होऊँगा। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वामीजी से बेसवाँ पधारने की भी आग्रहपूर्वक प्रार्थना की और महाराज ने स्वीकार भी कर ली, परन्तु अलीगढ़-निवास के दिनों में ही ठाकुर साहब की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया, इस कारण से वे बेसवाँ न जा सके।

इन्द्रमणि से वार्त्तालाप—एक दिन मुरादाबाद के प्रसिद्ध मुंशी इन्द्रमणि भी अलीगढ़ आये थे और उन्होंने स्वामीजी से धर्म-सम्बन्धी अनेक विषयों पर विशेषतः जीव के अनादित्व पर बातचीत की थी।

स्वदेशी वस्त्र पहनो—एक दिन ठाकुर भूपालसिंह का पुत्र ऊधोसिंह विदेशी वस्त्र पहनकर महाराज की सेवा में आया तो उन्होंने उसे स्वदेशी वस्त्र पहनने का उपदेश दिया।

एक दिन ठाकुर मुकुन्दसिंह की प्रार्थना पर महाराज ने सामगान किया था जिसे सुनकर श्रोता मुग्ध हो गये थे।

सैय्यद अहमदखाँ से वार्त्तालाप—महाराज समय का पालन बड़ी दृढ़ता से करते थे। हर कार्य के लिए समय नियत था। एक दिन वे पत्रों के उत्तर लिख रहे थे कि सर सैय्यद अहमदखाँ मिलने आ गये और उन्हें कार्य व्यापृत देखकर कमरे से बाहर ही ठिठक गये। ऊधोसिंह ने उन्हें देख लिया और महाराज को उनके आने की सूचना दी तो महाराज ने उन्हें अन्दर बुलाकर सत्कारपूर्वक आसन दिया और क्षमा चाहकर पूर्ववत् कार्य में लग गये। जब उससे निवृत्त हुए तब सर सैय्यद से वार्त्तालाप किया। सर सैय्यद ने एक दिन महाराज से कहा कि आपकी अन्य बातें तो युक्तिसङ्गत है, परन्तु यह समझ में नहीं आता कि थोड़े-से हवन से वायु का सुधार कैसे होता है ? महाराज ने कहा कि थोड़े-से बघार से सारी दाल सुवासित हो जाती और दूर तक उसकी सुगन्ध जाती है, ऐसे ही हवन में डाली हुई सामग्री छिन्न-भिन्न होकर वायु में फैलकर उसका सुधार कर देती है। इससे उनका संशय दूर हो गया।

राजा से मित्रता—स्वामीजी जब तक अलीगढ़ रहे राजा जयकिशनदास उनका बड़े प्रेम और श्रद्धा से आतिथ्य-सत्कार करते रहे। वे नित्यप्रति स्वामीजी के व्याख्यानों में आते और घण्टों उनसे बातें करके अपने सन्देहों की निवृत्ति करते रहे। यहाँ ही उनमें और स्वामीजी में मित्रता का सूत्रपात हुआ जो उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया। जिसका फल यह निकला कि राजा साहब ने स्वामीजी के उपदेशों को आर्य-जाति और भारतवर्ष के लिए इतना उपयोगी समझा कि आगे चलकर स्वामीजी से उन्हें लेखबद्ध कराने के लिए अनुरोध किया, केवल अनुरोध ही नहीं, उन्हें लेखबद्ध कराने और पुस्तकाकार छपवाने का समस्त व्यय भी स्वयं वहन करने का वचन दिया। यही उपदेशमाला सन् १८७५ में सत्यार्थप्रकाश के नाम से मुद्रित और प्रकाशित हुई।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलीगढ़ में एक मास से कुछ कम निवास करने के पश्चात् २२ जनवरी सन् १८७४ को स्वामीजी ने हाथरस के लिए प्रयाण किया।

(२२ जनवरी—जनवरी) हाथरस (माघ शु० ५—माघ शु०)

जिला अलीगढ़ में हाथरस एक प्रसिद्ध कस्बा है। यह एक व्यापारिक नगर है। यहाँ के व्यापारी बड़े समृद्ध हैं। साथ ही यह मूर्त्तिपूजा का भी छोटा-सा गढ़ है। इसके अतिरिक्त यह अशिष्टता और उजड्डता और दुराचार के लिए भी बहुत बदनाम है। गुण्डों की संख्या भी यहाँ कुछ कम नहीं है।

राजा की हित-चिन्ता—इसी हाथरस में महाराज ने पदार्पण किया। राजा जयकिशनदास सम्भवतः, अनिष्ट-सम्भावना की आशङ्का से, अथवा महाराज के सत्सङ्ग लाभ की लालसा से, वहाँ पहले से ही पहुँच गये थे और उन्होंने उनके निवास-आहार आदि का प्रबन्ध कर दिया।

हाथरस में महाराज की सेवा में उनके अनन्य भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह व ठाकुर भूपालसिंह भी उपस्थित थे।

हाथरस में प्रथम बार पदार्पण—स्वामीजी एक बार पहले भी हाथरस पधारे थे। उस समय वे दण्डी विरजानन्द के पास अध्ययनार्थ जा रहे थे। तब दयानन्द को कौन जानता था ? उस समय वह शिक्षा पाने जा रहे थे। किसी को न उपदेश देते थे, न किसी मत का खण्डन करते थे, न किसी से शास्त्रार्थ करते थे। उस समय दयानन्द हाथरस आये और चले गये। किसी ने भी न जाना कि कौन आया और कौन गया, कब आया और कब गया।

जगद्गुरु दयानन्द—इस बार दयानन्द जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित होकर आये, शिक्षा पाने नहीं वरन् देने आये थे। अब सब जगह उनके नाम की धूम थी। मूर्त्तिपूजा के वे परम शत्रु थे, उनके उपदेश से लाखों मनुष्यों ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी थी। जिन ब्राह्मणों की जीविका मूर्त्तिपूजा पर ही निर्भर थी, पाठक जानते हैं, उनके दयानन्द के प्रति क्या भाव थे। वे दयानन्द के प्रकट और प्रच्छन्न शत्रु थे। उनकी ओर से दयानन्द के प्राण-हरण की कई बार चेष्टाएँ हो चुकी थीं।

दयानन्द का स्वाङ्ग—अतः जब दयानन्द हाथरस आये और उन्होंने सेठ विष्णुदयाल की वनवाटिका में विश्राम किया तो हाथरस में मानो भूकम्प आ गया। कई दिन तक हाथरस की गुण्डा-टोलियों ने बड़ा कोलाहल मचाया और उपद्रव करने का यत्न किया। इतना ही नहीं उनमें जो अत्यन्त दुष्ट प्रकृति के थे, उन्होंने तो दयानन्द का स्वाङ्ग बनाकर निकालना चाहा, परन्तु कुछ तो राजा जयकिशनदास के भय से और कुछ क्षत्रियगण की उपस्थिति के कारण उपद्रवकर्त्ता अपने अशुभ मनोरथ में सफल न हो सके।

केवल एक ही व्याख्यान—हाथरस में स्वामीजी ने एक ही व्याख्यान दिया। जिसका विषय मृतक-श्राद्ध खण्डन था। उसमें स्वामीजी ने मृतक-श्राद्ध का मिथ्यात्व प्रबल युक्तियों और शास्त्र-प्रमाणों के द्वारा सिद्ध किया। बीच में मूर्त्तिपूजा का भी खण्डन किया।

पण्डित सामने न आये—हाथरस में पण्डित हरजसराय नैयायिक प्रसिद्ध थे और उस समय हाथरस में ही थे, परन्तु वे स्वामीजी के सम्मुख न आये। स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का उनमें सामर्थ्य ही न था। एक बार पहले भी वे प्रयाग के माघ मेले में शास्त्रार्थ करने पर उद्यत नहीं हुए थे, यद्यपि उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिए कई बार आहूत किया गया था।

कन्हैयालाल अलखधारी की सम्मति—हाथरस के व्याख्यान के सम्बन्ध में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने अपने पत्र 'नीतिप्रकाश' में लिखा था—"एक उपदेश दयानन्द सरस्वती ने हाथरस में सर्वसाधारण में किया। वहाँ के बिरहमन डर गये कि वह हमारी रोटियों को खोता और हमारी चिड़ियों को जाल में से निकालता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। शोक है कि स्वार्थी अपने लाभ के कारण जानवर को आदमी नहीं बनने देते हैं, बल्कि आदमी को जानवर बनाया करते हैं। भारतवासी प्रशंसा के योग्य हैं कि उनके माल, मही, महिला के बिरहमन, मुसलमान, ईसाई सब इच्छुक हैं, बल्कि अपना स्वत्व समझते हैं, परन्तु इतना होते हुए भी यह अभी तक मरे नहीं"।

[रिसाला नीतिप्रकाश (उर्दू) पृष्ठ ४१ सन् १८७४]

(जनवरी—२७ फरवरी) **मथुरा** (माघ शु०—फाल्गु० शु० ११)

हाथरस में ५-६ दिन रहकर स्वामीजी ने मथुरा के लिए प्रयाण किया।

ज्ञानपिपासु ज्ञानस्रोत पर पहुँच गया—संवत् १९१७ में एक दाक्षिणात्य संन्यासी मथुरा में आया था, वहाँ वह अज्ञात और अविख्यात था, वह सनाथ न था, कोई उसके साथ न था, कोई उसे पहचानता न था, वह किसी को जानता न था। न जाने वह कई दिन आश्रय और आश्रयदाता की खोज में मथुरा की गलियों और बाज़ारों में फिरा होगा, कई दिन रात्रि को निराहार सोया होगा। वह ज्ञानपिपासु था, उसने सुन रक्खा था कि मथुरा में ज्ञान का स्रोत बहता है। उसी स्रोत पर वह अपनी पिपासा शान्त करने के लिए लम्बी यात्रा का कष्ट-क्लेश सहन करता हुआ मथुरा पहुँचा था। यह ज्ञानपिपासु दयानन्द सरस्वती और वह ज्ञान का स्रोत प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानन्द था।

दयानन्द ने तीन वर्ष मथुरा में रहकर, विरजानन्द के चरणकमलों में बैठकर, ज्ञानोपार्जन किया और गुरु से सत्य वैदिक धर्म के पुनरुद्धार में अपना शेष जीवन व्यय करने की प्रतिज्ञा करके, वह मथुरा से बाहर गया।

ज्ञानपिपासु का मथुरा में पुनः आगमन—आज वही दयानन्द मथुरा में फिर आया है। अब वह अज्ञात और अविख्यात नहीं है, आज उसका नाम सहस्रों की जिह्वा पर है, आज वह शिष्य नहीं गुरु है, आज वह अकेला नहीं है, आज उसके सहस्रों अनुयायी हैं, आज उसके नाम का डङ्का बजता है, उसका नाम सुनकर पौराणिक धर्म्म के दुर्गों की बुनियादें हिलने और गढ़-रक्षकों के कलेजे दहलने लग जाते हैं, वह उन क़िलों की दीवारों पर मूर्त्तिपूजा की खण्डनात्मक वक्तृताओं के गोले बरसाता है, क़िलों की दीवारों में छेद कर देता है, गोले पौराणिक सेना की छावनियों में गिरते हैं और सैकड़ों-सहस्रों सैनिकों और सेनापतियों को हताहत करते हैं, परन्तु क़िलों की तोपें चुप हैं, गोलन्दाज़ यत्न भी करते हैं कि उसकी गोलाबारी का उत्तर दें, परन्तु उनकी तोपें रञ्जक चाटकर रह जाती हैं, गोले मिट्टी के बने सिद्ध होते हैं, सेनापति और क़िलेदार अपनी प्राणरक्षा के लिए इधर-उधर छिपने लगते हैं।

हाँ, आज दयानन्द मथुरा आया है। उसे यह ज्ञात था कि मथुरा-वृन्दावन में उसे निवास के लिए स्थान मिलना भी कठिन होगा, कोई उसकी बात तक भी न पूछेगा, अतः वह राजा जयकिशनदास से मथुरा के डिप्टी कलक्टर पण्डित देवीप्रसाद के नाम एक चिट्ठी लाया है कि वह उसके निवास आदि का प्रबन्ध कर दें।

एक अज्ञात परन्तु प्रभावशाली भक्त—स्वामीजी को सम्भवतः यह ज्ञात न था कि मथुरा में उनका एक भक्त भी है, जो समृद्ध और शक्ति-सम्पन्न है। वह मथुरा के भक्त राजा उदितनारायणसिंह रईस थे। उन्होंने जब सुना तो सवारी लेकर स्टेशन पर पहुँचे और उन्हें अपने घर पर लाये और अति प्रेम और सम्मानपूर्वक उनका आतिथ्य किया।

वृन्दावन के लिए चार पहरेदार—स्वामीजी ने उनसे कहा कि हम वृन्दावन जा रहे हैं, आप वहाँ हमारे स्थान पर पहरा देने के लिए चार मनुष्य नियत कर दीजिए। राजा साहब ने इसका कारण पूछा तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने कहा कि आजकल ब्राह्मोत्सव है और राव कर्णसिंह बरौलीवाला हमसे शत्रुता रखता है और वह रङ्गाचारी का चेला है। वह प्रतिवर्ष उत्सव में आता है। सम्भव है वह कुछ दुष्टता करे और व्याख्यान में विघ्न डाले। यह सुनकर राजा साहब ने चार पहरेदार नियत कर दिये।

ईसाई बख़्शी का सौजन्य—स्वामीजी पण्डित देवीप्रसाद डिप्टी कलक्टर से भी मिले। उन्होंने वृन्दावन की चुङ्गी के बख़्शी महबूब मसीह को स्वामीजी के ठहरने आदि का प्रबन्ध करने के लिए एक पत्र लिख दिया। उक्त कर्मचारी ने स्वामीजी को रङ्गजी के मन्दिर के पीछे मलूकदास के बाग़ में, जिसे राधाबाग़ भी कहते हैं, ठहरा दिया। उनके लिए सब प्रकार की सुविधा कर दी, दो चपरासी उनके डेरे पर नियत कर दिये और दिन में एक बार अवश्य वह स्वामीजी की सेवा में आते थे।

(२७ फरवरी—१४ मार्च) वृन्दावन (फा० शु० १—चैत कृ० ११)

स्वामीजी वृन्दावन में फाल्गुन शुक्ला ११ संवत् १९३० अर्थात् २७ फ़रवरी सन् १८७४ को दिन के १० बजे पहुँचे।

महबूब मसीह यद्यपि ईसाई थे, परन्तु बड़े उदारचरित और सज्जन थे। उन्होंने वृन्दावन में हर प्रकार से स्वामीजी को सुखी रखने का यत्न किया।

वृन्दावन जाने का कारण—स्वामीजी के वृन्दावन पधारने का मुख्य अभिप्राय रङ्गाचार्य से शास्त्रार्थ करना था। स्वामीजी के एक सहाध्यायी थे जिनका नाम था पण्डित गङ्गादत्त। वे मथुरा में निवास करते थे। एक बार उन्हें स्वामीजी ने फ़र्रुखाबाद से एक चिट्ठी और दस रुपये भेजे थे§ और उन्हें लिखा था कि आप फ़र्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़ाने के लिए आ जाइए। वे जाने को उद्यत भी हुए, परन्तु चौबों ने उनसे कहा कि दयानन्द के उपदेश से फ़र्रुखाबाद में बहुत लोगों ने शालिग्राम आदि की मूर्तियाँ गङ्गा में फेंक दी हैं, यदि तुम दयानन्द की नौकरी करोगे तो तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी, अतः उत्तर में उन्होंने यह सब वृत्तान्त स्वामीजी को लिख दिया और यह भी लिखा कि जब तक आप यहाँ आकर मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करेंगे तब तक हम आपके पास कैसे आ सकते हैं ? मथुरा में सोने की मूर्त्तियों के बड़े-बड़े स्तम्भ खड़े हैं और रङ्गाचार्य सब देश में डङ्का बजा और दिन में मशाल जलाकर फिर आये हैं।

ब्राह्मोत्सव—स्वामीजी ने उन्हें वचन दिया था कि हम वृन्दावन अवश्य आएँगे। रथ के मेले का दूसरा नाम ब्राह्मोत्सव है, जिसमें दूर-दूर से सहस्रों नर-नारी, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार तथा अन्य गण्यमान्य पुरुष इकट्ठे होते हैं। धर्मोपदेश के लिए यह अवसर बहुत ही उपयुक्त था। वृन्दावन भारतवर्ष में मूर्तिपूजा का सुदृढ़ दुर्ग है, जहाँ सहस्रों स्त्री-पुरुष घरबार छोड़कर निवास करते हैं, क्योंकि वृन्दावन-वास मुक्ति का साधन समझा जाता है। इस दुर्ग के दुर्गपाल प्रसिद्ध रङ्गाचार्य थे, जिनके सैकड़ों चेलों ने स्वामीजी के उपदेश से मूर्त्तिपूजा छोड़ और कण्ठी तोड़ दी थी। जैसे स्वामीजी के समान मूर्त्तिपूजा का खण्डन करनेवाला अन्य नहीं था, ऐसे ही रङ्गाचार्य के समान मूर्त्तिपूजा का समर्थन करनेवाला भी दूसरा न था।

इन सब कारणों से स्वामीजी की प्रबल इच्छा थी कि एक बार रङ्गाचार्य से शास्त्रार्थ हो जाए।

व्याख्यानों का विज्ञापन—स्वामीजी के आते ही मिस्टर महबूब मसीह की ओर से हिन्दी में नोटिस लिखकर नगर में कई स्थानों पर चिपका दिये गये कि होली के पश्चात् चैत्र कृष्ण २ से स्वामीजी मूर्त्तिपूजा, अवतार, तिलक, छाप आदि के खण्डन में ४ बजे से ६ बजे तक व्याख्यान देना आरम्भ करेंगे।

रङ्गाचार्य से शास्त्रार्थ होगा—एक चिट्ठी रङ्गाचार्यजी के पास भेजी गई जिसका सारांश यह था कि

§ देखो इस विषय में 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पृष्ठ ४।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप कहते हैं कि मूर्त्तिपूजा, कण्ठी, तिलक वेद से सिद्ध हैं, अतः कृपया अब उन्हें सिद्ध करके दिखलाइए। इसका उत्तर रङ्गाचार्यजी ने यह दिया कि शास्त्रार्थ ब्राह्मोत्सव के पश्चात् होगा।

व्याख्यानों की झड़ी—स्वामीजी ने यह चिट्ठी रङ्गजी के मन्दिर के द्वार पर चिपकवा दी। ५ मार्च से स्वामीजी ने व्याख्यानों की झड़ी लगादी। उन्होंने दस व्याख्यान दिये। उनमें प्रबल प्रमाणों और अकाट्य युक्तियों से मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, तिलक, छाप, कण्ठी आदि का खण्डन किया। व्याख्यानों में देसी-परदेसी सैकड़ों मनुष्य आते और स्वामीजी के तर्क और प्रमाणों को सुनकर अवाक् रह जाते। स्वामीजी का पहला व्याख्यान सृष्टि-विषय पर हुआ था।

व्याख्यान आरम्भ करने से पहले भी स्वामीजी ठाली नहीं रहते थे। उनके स्थल पर जिज्ञासुओं की हरदम भीड़ लगी रहती थी और वे बड़े प्रेम से सबके प्रश्नों का उत्तर देते रहते थे। राजा उदितनारायणसिंह नित्यप्रति व्याख्यान श्रवणार्थ आते थे। प्रथम दिन के व्याख्यान में पण्डित देवीप्रसाद डिप्टी कलक्टर मथुरा भी आये थे।

दयानन्द के शत्रु से भेंट—एक दिन राजा उदितनारायणसिंह स्वामीजी के डेरे से अपने घर लौट रहे थे कि उनकी राव कर्णसिंह वरौलीवाले से मार्ग में भेंट हो गई। राजा साहब और राव साहब में मैत्री थी। राव साहब ने पूछा कि आप कहाँ से आरहे हैं। राजा साहब ने उत्तर दिया कि श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराज के पास से आरहा हूँ। राव साहब ने बड़े क्रोध में आकर और स्वामीजी के लिए दुर्वाक्य निकालकर कहा कि आप ऐसे नास्तिक के पास क्यों जाते हैं। उन्हें ये शब्द बहुत बुरे लगे और उन्होंने राव साहब से कहा कि आपको स्वामीजी को गाली देना उचित नहीं है। राव साहब ने कहा कि आप तो उसके चेले हैं। राजा साहब ने प्रत्युत्तर दिया कि यद्यपि मैं स्वामीजी का चेला नहीं हूँ, परन्तु जिनकी सहस्रों मनुष्य प्रशंसा करते हैं, उनके विषय में ऐसे कटुवचन कहना नहीं सजता, मैं यद्यपि रङ्गाचार्यजी का चेला नहीं हूँ, परन्तु यदि मैं उन्हें गाली दूँ तो क्या आप को क्रोध न आएगा।

स्वामीजी जिन युक्ति-प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा आदि का खण्डन करते थे, उन सबकी सूचना रङ्गाचार्यजी के चेले उन्हें दे देते थे। वे उन्हें सुन तो लेते थे, परन्तु उनका उत्तर उन्हें कुछ न सूझता था।

रङ्गाचार्य शास्त्रार्थ से पराङ्मुख—मेला समाप्त हो गया, परन्तु रङ्गाचार्यजी शास्त्रार्थ करने के लिए रङ्गजी के मन्दिर से बाहर न निकले और जान-बूझकर बीमार बन गये। बख्शी महबूब मसीह ने स्वामीजी से कहा कि वास्तव में रङ्गाचार्यजी बीमार नहीं हैं, केवल शास्त्रार्थ के भय से बीमार बन गये हैं। स्वामीजी को निश्चिय हो गया कि रङ्गाचार्यजी किसी प्रकार भी शास्त्रार्थ करने पर सन्नद्ध न होंगे, अतः उन्होंने अपने अन्तिम व्याख्यान में यह घोषणा कर दी कि मूर्त्तिपूजादि वास्तव में वेदविरुद्ध हैं और यही कारण है कि रङ्गाचार्यजी सामने नहीं आये, क्योंकि यदि वे शास्त्रार्थ करते तो अवश्यमेव परास्त होते और वर्षों की कमाई उनके हाथ से जाती रहती।

रङ्गाचार्य वास्तव में रुग्ण थे—ऊपर जो कुछ पं० रङ्गाचार्य के रुग्ण न होने के विषय में लिखा गया है, वह पं० लेखरामकृत दयानन्द-चरित के आधार पर लिखा गया है। देवेन्द्रबाबू के अनुसन्धान के अनुसार पं० रङ्गाचार्य उस समय वास्तव में रुग्ण हो गये थे। केवल दुग्धाहार करके रहते थे और उठ-बैठ नहीं सकते थे। इसकी सत्यता इससे भी प्रकट होती है कि स्वामीजी के वृन्दावन-त्याग के एक मास पश्चात् ही पं० रङ्गाचार्य की मृत्यु हो गई थी।

पं० लेखरामकृत दयानन्द-चरित में भी एक सज्जन के ये वाक्य उद्धृत किये गये हैं—

"यह बात मेरी आँखों देखी है और मैं सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि रङ्गाचार्य कोई ऐसा बीमार न था

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि यदि हिम्मत करता तो शास्त्रार्थ न कर सकता"। इससे भी यह भाव निकलता है कि रङ्गाचार्यजी बीमार तो अवश्य थे, परन्तु इतने बीमार न थे जो शास्त्रार्थ न कर सकते।

हम पेट के कारण सत्य नहीं कह सकते—स्वामीजी के व्याख्यानों में जो पण्डित जाया करते थे वे घर से अनेक प्रश्न सोचकर ले-जाया करते थे, परन्तु जब स्वामीजी व्याख्यान के अन्त में यह घोषणा करते कि यदि किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ ले तो कोई न पूछता, प्रत्युत यही कहते कि महाराज आप तो सब सत्य कहते हैं, परन्तु हम पेट के कारण सत्य नहीं कह सकते।

रङ्गाचार्यजी ने एक सज्जन से यहाँ तक कहा था कि हमें शास्त्रार्थ से क्या लाभ ? यदि दयानन्द हार गया तो उस साधु का क्या बिगड़ेगा, परन्तु यदि हम हार गये तो हमारी सीरी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी।

सहपाठी का परामर्श—एक दिन स्वामीजी के सहपाठी पण्डित उदयप्रकाश ने स्वामीजी से कहा कि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दीजिए। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यदि मूर्त्तिपूजा असत्य है तो आप भी उसका निषेध करें और यदि सत्य है तो मुझसे शास्त्रार्थ कर लें। मैं तो इस अन्धेर को जो वैरागियों, गोसाइयों आदि मत-मतान्तरों के आचार्यों ने मचा रक्खा है, नहीं देख सकता।

पुराने पुजारी ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी—जय गोविन्दगिरि संन्यासी वृन्दावन के गोपेश्वर महादेव तथा अन्नपूर्णा के मन्दिर में रहते थे और बहुत काल तक वे पुजारी भी रहे थे। वे स्वामीजी के व्याख्यानों में आते और उन्हें ध्यानपूर्वक सुनते थे। स्वामीजी के उपदेशों से उनका चित्त मूर्त्तिपूजा से हट गया, विशेषकर रङ्गाचार्यजी के शास्त्रार्थ से मुख मोड़ने पर तो उन्हें उसकी असत्यता का पूर्ण विश्वास हो गया और उन्हें इतनी ग्लानि हुई कि उन्होंने उसे सदा के लिए तिलाञ्जलि दे दी। इसी प्रकार अन्य कई पुरुष मूर्त्तिपूजा छोड़कर निराकार एक ईश्वर के उपासक बन गये।

कई बङ्गाली ब्राह्मसमाजियों ने भी स्वामीजी से बात-चीत की थी।

शास्त्रार्थ चर्चा—श्री राधारमणजी के मन्दिर के आचार्य गोस्वामी सखालालजी थे। वे गौड़ेश्वर-वैष्णव और उच्च-कोटि के वैय्याकरण थे। उनके पास न तो शास्त्रार्थ के लिए कोई सन्देश भेजा गया था और न उन्होंने स्वयं ही इस विषय में स्वामीजी से कोई लिखा-पढ़ी की थी। बीच के लोगों ने ही उनसे शास्त्रार्थ की बात छेड़ी थी। उन्होंने उसपर कहा था कि हम विना मध्यस्थ के शास्त्रार्थ न करेंगे, इधर स्वामीजी ने किसी को मध्यस्थ बनाना स्वीकार न किया। गोस्वामीजी ने यह भी कहा था कि ऐसी लिखा-पढ़ी हो जानी चाहिए कि जो शास्त्रार्थ में हारे वह सदा के लिए अपना पक्ष छोड़ दे। स्वामीजी ऐसी चालों में कब आनेवाले थे और यह झगड़ा बीच-का-बीच में ही रह गया।

अपूर्व सहनशीलता—मुंशी हरदेवगोविन्द एक कट्टर हिन्दू थे। वह उद्धत और झगड़ालू प्रकृति के थे। एक बार वे फ़ौजी गोरों से भी लड़ पड़े थे जो वृन्दावन के जंगल में शिकार खेलने आये थे। एक दिन उन्होंने यह दुष्टता की कि मुट्ठी में धूल भरकर स्वामीजी के ऊपर डाल दी। स्वामीजी की सहनशीलता और सम्मान-अपमान की ओर से उपेक्षा की पराकाष्ठा देखिए कि उन्होंने उसे कुछ भी न कहा।

दूसरे के स्थान पर शास्त्रार्थ करने न जाएँगे—एक दिन महाराजा ग्वालियर के गुरु ब्रह्मचारी गिरिधरदास ने स्वामीजी से कहलाकर भेजा कि ज्ञान-गुदड़ी में आकर हमारे पण्डितों से शास्त्रार्थ कर लीजिए। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हम अपने स्थान को छोड़कर किसी अन्य स्थान पर न जाएँगे। ब्रह्मचारीजी ने शास्त्रार्थ की चर्चा केवल 'हम भी हैं पाँचवें सवारों में' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करने के लिए ही की थी, जिससे वे यह कह सकें कि हमने दयानन्द को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया था, परन्तु उसकी हिम्मत उसे स्वीकार करने की न हुई।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वध करने का षड़यन्त्र—एक वैरागी ने स्वामीजी के प्राण-हरण का भी संकल्प किया था और कुछ गुण्डों को १०००) रुपये का लालच देकर यह कुकर्म कराना चाहा था, परन्तु वे राज़ी न हुए।

हाथी और गन्ने का सामना—एक दिन पण्डित घनश्याम नामक एक नवयुवक कहीं से दो-चार पुराने पत्रे ढूँढ-ढाँढकर स्वामीजी से जा भिड़ा, फिर तो हाथी और गन्ने का सामना हो गया और उसके सारे विचार और युक्तियाँ स्वामीजी के पाण्डित्य के प्रवाह में बह गये।

नवयुवक गोस्वामी की उपदेशों में रुचि—गोस्वामी राधाचरणजी जो पीछे आकर हिन्दी के मार्मिक लेखक बने, उस समय १४-१५ वर्ष की अवस्था के थे। स्वामीजी के उपदेशों में उनकी बड़ी रुचि हो गई थी। वह कहते हैं कि स्वामीजी की वक्तृताओं का प्रभाव वृन्दावनवालों पर कुछ नहीं हुआ, केवल पण्डित छीतरसिंह दीवान पर कुछ रंग चढ़ा था, परन्तु थोड़े दिनों में ही पण्डित छीतरसिंह को तो बिलकुल भूल गया, मैं और मेरे मित्र उनकी शिक्षा के पाबन्द नहीं रहे; मेरे मित्र स्वामीजी के पूरे शत्रु हो गये।

गोस्वामी राधाचरणजी का यह कथन कि स्वामीजी की वक्तृताओं का वृन्दावनवालों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ किसी अंश तक ठीक हो सकता है, परन्तु सर्वांश में ठीक नहीं है, क्योंकि हम देख चुके हैं कि कई लोगों ने मूर्त्तिपूजा से किनारा कर लिया था।

जयपुराधीश छिप कर मिले—गोस्वामी राधाचरणजी कहते हैं कि स्वामीजी ने उनसे एक दिन कहा था कि गत रात्रि में महाराजा जयपुर प्रच्छन्नभाव से आकर बातें कर गये हैं। महाराजा रामसिंह उन दिनों दिल्ली एक सभा में सम्मलित होने के लिए आये थे, जो नहर खोलने के उपलक्ष्य में हुई थी।

सेठ लक्ष्मणदास भी—स्वामीजी ने गोस्वामीजी से यह भी कहा था कि सेठ लक्ष्मणदासजी (मथुरा के प्रसिद्ध सेठ जिन्होंने रंगजी का विशाल मन्दिर कई लाख रुपयों की लागत से बनवाया था) गुप्तरूप से हमारे पास आये थे।

रंगजी के मन्दिर में पाठशाला स्थापित करो—गोस्वामीजी से स्वामीजी ने यह भी कहा था कि हमने सत्यार्थप्रकाश छपने को दे दिया है§। गोस्वामीजी को स्वामीजी ने अपने उद्देश्यों का संक्षिप्त विवरण भी लिखा दिया था और कुछ प्रामाणिक ग्रन्थों के नाम भी लिखवाये थे और यह कहा था कि ये सब ग्रन्थ महाराजा अलवर के पुस्तकालय में हैं जिसके समान संस्कृत ग्रन्थों का पुस्तकालय भारतवर्ष में अन्यत्र नहीं है। उन्होंने यह भी कहा था कि सेठजी के मन्दिर में से रंगजी की मूर्त्ति उठाकर उसकी जगह वैदिक पाठशाला स्थापित करनी चाहिए और मन्दिर की आय‡ भी उसी के प्रयोग में आनी उचित है।

गोस्वामीजी को स्वामीजी ने कुछ ग्रन्थों के नाम लिखा दिये थे और कहा था कि इन्हें हमारे लिये भेज देना। गोस्वामीजी ने उनके लिए वात्स्यायनभाष्य प्रस्तुत भी किया था, परन्तु पीछे वह ग्रन्थ उन्हें अन्यत्र मिल गया, इसी कारण गोस्वामीजी ने उनके पास नहीं भेजा।

गोस्वामीजी से स्वामीजी ने काशी पाठशाला में जाकर पढ़ने का अनुरोध किया था, परन्तु गोस्वामीजी कहते हैं कि हम बचपन से ही काव्य के रसिक थे और वैदिक पाठशाला में काव्य का पठन होता नहीं, इस लिए हम काशी नहीं गये।

दयानन्द-निन्दा-काव्य—मथुरा के एक पौराणिक पण्डित मोहनलाल ने निम्नलिखित श्लोक लिखकर वृन्दावन में कई जगह लगाया था—

---

§ यहाँ किसी भ्रान्ति से अशुद्ध लिखा गया है। इस काल तक तो सत्यार्थप्रकाश की रचना का भी प्रारम्भ नहीं हुआ था। स०प्र० की रचना १२ जून १८७४ से प्रारम्भ हुई थी। देखो इसी ग्रन्थ का पृष्ठ २५८।

‡ रङ्गजी के मन्दिर की आय १०,०००) रुपये मासिक है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्दो मन्दोऽखिल------सन्दोहभरितो ।
निरातङ्को रङ्को भ्रमति भुवि संकोचरहितः ॥
असद्वादोयादोनिधिरिव महादोषपयसा ।
अमन्दाक्षो दाक्ष्योज्झित इव पराभूतिमयिता ॥

एक दूसरी कविता भाषा में भी थी—

सभा मध्य कीनी जिन निन्दा पुराणन की याही के पाप जोधपुर ते निकारो है ।
जयपुर में जाको शिवद्रोही लखि राजा ने ता दिन ते ताको मुख दर्शन विसारो है ॥
ऐसो महा नीच ताही कीनों गुरु लोगन ने ---------- ।
पण्डित श्रीगोपाल धर्म राख्यो फ़रक्काबाद पापी पाखण्डी को कीनो मुख कारो है ॥

रङ्गाचार्यजी के चेले-चाँटों ने कुछ धूर्त्तता करनी चाही थी। इसपर कुछ लोगों ने कहा कि महाराज आप बाहर न जाया करें। स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया कि कल सम्भवतः आप लोग यह कहेंगे कि मैं कोठी के भीतर ही छिप कर बैठा रहूँ।

वृन्दावन जाने से पहले स्वामीजी ने बलदेवसिंह§ को वहाँ स्थान ढूँढने को भेजा था और यह कह दिया था कि ऐसा स्थान निश्चित करना, जहाँ बन्दर और पत्थर न हों।

जब स्वामीजी ने देखा कि उनका वृन्दावन आने का उद्देश्य जो रङ्गाचार्य से शास्त्रार्थ करना था, पूरा नहीं हो सकता तो उन्होंने अधिक दिन वृन्दावन ठहरना अनुपयोगी समझा और वे चैत्र कृष्ण ११ को वृन्दावन से मथुरा चले आये।

(१४—२० मार्च) मथुरा (चैत्र कृ० ११ सं० ३०—चैत्र श० २ सं० ३१)

मथुरा में स्वामीजी गोस्वामी पुरुषोत्तम दास के बलदेवबाग़ में ठहरे थे और प्रशंसित गोस्वामीजी ने ही उनके आहार का प्रबन्ध किया था।

सहपाठी को परामर्श—मथुरा आने से पहले उन्होंने अपने सहपाठी पं० गङ्गादत्त के द्वारा अन्य सहपाठियों से कहला भेजा था कि जहाँ कहीं मैं जाता हूँ वहाँ के पण्डित मुझसे कहते हैं कि हमारे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करो, मेरे स्थान पर नहीं आते और जब मैं उनके स्थान पर नहीं जाता तो कह देते हैं कि दयानन्द हार गया, तुम ऐसा न करना, इसलिए तुम जिस स्थान पर कहो मैं वहाँ ही ठहर जाऊँ। पं० गङ्गादत्त ने लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में ठहरने को कहा, परन्तु वह स्थान संकुचित था, अतः वहाँ न ठहरे। उन्होंने पं० गङ्गादत्त से यह भी कह दिया था कि शास्त्रार्थ करने दण्डीजी के विद्यार्थी पहले न आवें, अतः वे लोग न गये, अन्य पण्डित गये, परन्तु निरुत्तर होकर लौट आये।

उपदेश-दान—स्वामीजी ने मथुरा में भी व्याख्यान दिये पर यह ज्ञात नहीं कि कितने। उसमें स्वामीजी ने मूर्त्तिपूजा आदि का बेधड़क होकर खण्डन किया, परन्तु किसी की उनसे शास्त्रार्थ करने की हिम्मत न पड़ी।

दो दुष्टों की दुर्गति—एक दिन स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे कि कुछ धूर्तों ने एक कलार और एक कसाई को भेजा। उन्होंने जाकर शोर-गुल मचाकर स्वामीजी से कहना आरम्भ किया कि हमारे शराब और

---

§ श्री स्वामीजी महाराज के कहने से राजा जयकृष्णदास के पुत्र ज्वालाप्रसाद ने बलदेवसिंह को बुलाने के लिए एक पत्र लिखा था। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २७। बलदेवसिंह बादनवाड़ा (अजमेर) का निवासी था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मांस के दाम तो दे दीजिए। स्वामीजी ने हँसकर कहा कि बहुत अच्छा ! व्याख्यान के पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी कर दूँगा। व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी ने एक हाथ से एक का और दूसरे से दूसरे का सिर पकड़कर कहा कि बतलाओ तुम्हारे कितने-कितने दाम हैं। जब उन्होंने देखा कि स्वामीजी उनके सिरों को आपस में टकराकर उनका कचूमर निकाल देंगे तो उन्होंने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और कहा कि हमें तो अमुक पुरुषों ने बहकाकर भेजा था। दयालु दयानन्द तो अपने बुरे-से बुरे शत्रु से भी बदला न लेना चाहते थे, उन्हें तुरन्त क्षमा कर दिया।

८० वर्ष का ब्राह्मण मिलने आया—एक दिन पाँडे मदनदत्तजी, जिनकी अवस्था ८० वर्ष की थी, बहुत-से तिलक-छाप लगाकर और रंगबिरंग के टुकड़ों की गुदड़ी पहनकर अपने पोते गरुड़ध्वज और शिष्य बालकृष्ण से साथ स्वामीजी के पास गये। पाँडेजी ४० वर्ष तक दुग्धहार करके रहे थे और अत्यन्त भक्ति-शील सज्जन थे। स्वामीजी ने सत्कारपूर्वक उन्हें आसान दिया और कुशल-प्रश्न के पश्चात् दण्डजी की पाठशाला का वृत्तान्त भी पूछा। फिर उनके पौत्र से पूछा कि क्या पढ़ते हो। उसके यह उत्तर देने पर कि व्याकरण पढ़ता हूँ, स्वामीजी ने उससे अष्टाध्यायी के **'एचोऽयवायावः'** (पा० अ० ६।१।७८) सूत्र के अर्थ पूछे, उससे न बताये गये, परन्तु उनके शिष्य ने बता दिये। इसपर स्वामीजी ने अप्रसन्न होकर पाँडेजी से कहा कि आपने इस लड़के को बिगाड़ दिया है, यदि ऐसा ही रहा तो महामूर्ख होगा। शिष्य से भी पूछा कि तुम क्या पढ़ते हो और जब उसने कौमुदी का नाम लिया तो कहा अष्टायायी पढ़ा करों, कौमुदी बुद्धि को बिगाड़ देती है।

अपूर्व चमत्कार—इसके पश्चात् न जाने पाँडेजी के क्या जी में आई कि सबके सामने मूर्त्तिपूजा और समस्त वेद-विरुद्ध सम्प्रदायों का खण्डन आरम्भ कर दिया जिसे देखकर सबके सब चकित रह गये और कहने लगे कि स्वामीजी के पास जादू है। पाँडेजी मूर्त्तिपूजा का मण्डन करने आये थे और करने लगे खण्डन, उलटी गङ्गा बहाने लगे।

शालिग्राम यमुना में—इस घटना के दूसरे दिन एक ब्रह्मचारी ने भी शालिग्राम की मूर्त्तियों का पर्यङ्क स्वामीजी के उपदेश से यमुना में डाल दिया था। कहते हैं कि गोस्वामी पुरुषोत्तमदासजी ने स्वामीजी के पास एक चिट्ठी भेजी थी कि आप हमारे मत का खण्डन न करें। स्वामीजी ने वह चिट्ठी सभा में सैकड़ों मनुष्यों के सामने सुना दी।

मिट्टी क्यों लगाते हो—एक चौबे ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि जब आप तिलक-छाप का खण्डन करते हैं तो शरीर पर मिट्टी क्यों लगाते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इससे मक्खी नहीं सतातीं, अन्यथा कोई आवश्यकता नहीं है।

चौबों का आक्रमण—जिस दिन स्वामीजी मथुरा से चलने को हुए उस दिन पण्डित देवीप्रसाद डिप्टी कलक्टर ने उनसे कहा कि आज आप ठहर जाइए, आज अवश्य शास्त्रार्थ होगा। स्वामीजी ठहर गये, परन्तु हुआ यह कि चार-पाँच सौ चौबे एकदम लाठियाँ लिये हुए और गालियाँ बकते हुए स्वामीजी के निवास-स्थान पर चढ़ आये। यह हल्ला सुन ठाकुर भूपालसिंह रिसालदार घबरा उठे और उन्होंने बाग़ का फाटक बन्द कर दिया, परन्तु स्वामीजी को कुछ भी घबराहट न हुई। इतने में ही स्वामीजी के अनुयायी कतिपय कर्णवास-निवासी क्षत्रियगण आगये और बाग़ का फाटक खोल दिया, परन्तु किसी उपद्रवी को उसके भीतर जाने का साहस न हुआ। फिर पण्डित देवीप्रसाद भी आ गये और उन्हें देखकर चैबे तितर-बितर हो गये। डिप्टी साहब ने पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया भी, परन्तु उनमें नियम-पूर्वक शास्त्रार्थ का सामर्थ्य कहाँ था, कोई आगे न आया। रहे चौबे, उनके पास लाठी-शास्त्र और गाली-प्रमाण के अतिरिक्त कुछ था ही नहीं। जिन्हें काला अक्षर भैंस बराबर था, वे शास्त्रार्थ क्या करते ?

मथुरा में स्वामीजी पाँच दिन रहकर राजा साहब मुरसान की प्रार्थना पर मुरसान चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोदश अध्याय

संवत् १९३१ आश्विन=अक्टूबर १८७४ तक

(१९ मार्च—मई) मुरसान (चै० शु० २—ज्योष्ठ)

चैत्रशुक्ला २ संवत् १९३१ अर्थात् १९ मार्च सन् १८७४ को स्वामीजी राजा साहब मुरसान की फिटन पर सवार होकर मुरसान पहुँचे। मुरसान के राजा टीकमसिंह स्वामीजी का बड़ा सम्मान करते थे। वे स्वयं सवारी लेकर स्वामीजी को लिवाने के लिए मथुरा गये थे। उन्होंने हाथरस में ही स्वामीजी से मुरसान आने का वचन ले-लिया था। जब स्वामीजी मुरसान पहुँचे तो उन्होंने स्वामीजी की बड़ी शुश्रूषा की।

मुरसान में पूर्व पदार्पण—पहले भी एक बार स्वामीजी मुरसान आये थे। यह संवत् १९१७ की बात है। उस समय स्वामीजी दण्डीजी की सेवा में मथुरा जाते हुए हाथरस ठहरे थे। वहाँ उन्होंने सुना कि दण्डीजी का मुरसान में किसी पण्डित से शास्त्रार्थ हो रहा है, परन्तु जब स्वामीजी मुरसान पहुँचे तो उससे पहले ही दण्डीजी मथुरा चले गये थे।

अपने भाष्य की सत्यता सिद्ध करो—राजा साहब ने ठाकुर गुरुप्रसाद बेसवाँवाले के पास सूचना भेजी कि स्वामीजी मुरसान ठहरे हुए हैं। आप कहा करते हैं कि आपने जो यजुर्वेद का भाष्य किया है वह ठीक है, परन्तु स्वामीजी वेदों का अर्थ नहीं जानते, आप मुरसान आकर उनसे निर्णय कर लें। राजा साहब ने शास्त्रार्थ का दिन भी नियत कर दिया और उसका विज्ञापन दे दिया।

नियत तिथि पर ठाकुर गुरुप्रसाद बड़े आडम्बर और आस्फालन के साथ ५०० या ६०० मनुष्यों की भीड़ साथ लिये हुए मुरसान पहुँचे।

वेदभाष्यकर्त्ता ठाकुर की दुर्गति—जिस बँगले में स्वामीजी ठहरे हुए थे, उस भीड़भाड़ को साथ लिये हुए वे वहाँ उपस्थित हुए। स्वामीजी और राजा साहब बँगले के भीतर बैठे थे, ठाकुर साहब भीतर न गये, बाहर खड़े हुए ही अपनी विद्या की वृथा प्रशंसा के गीत गाते रहे। उन्हें राजा साहब ने बहुतेरा बुलाया, परन्तु वे अन्दर न गये। तब राजा साहब ने उनसे कहा कि आप कहते थे दयानन्द कुछ नहीं जानते, परन्तु वास्तव में आप स्वयं कुछ नहीं जानते, जाइए अपने ग्राम को सिधारिए। तत्पश्चात् वह अपना-सा मुँह लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये।

उन्होंने सोचा था कि मेरे साथ भीड़भाड़ को देखकर और मेरे दुन्द मचाने से स्वामीजी भयभीत हो जाएँगे और शास्त्रार्थ न करेंगे और फिर मैं अपनी विजय की भेरी बजा दूँगा, परन्तु उसे यह ज्ञान न था कि दयानन्द जैसा केसरी उन सरीखे शृगालों की गीदड़-भभकियों से डरनेवाला नहीं था।

इसके पश्चात् राजा साहब ने बड़े सम्मान के साथ स्वामीजी को विदा किया और स्वयं फिटन में सवार कराकर उन्हें हाथरस जंक्शन, रेलवे स्टेशन पर पहुँचा गये जहाँ से स्वामीजी प्रयाग के लिए रेल में सवार हो गये और प्रयाग से काशी चले गये।

(मई—जून) काशी (ज्येष्ठ अधिक—आषाढ़)

मई सन् १८७४ में स्वामीजी काशी पधारे और गोसाईं रामप्रसाद उदासी के बाग़ में ठहरे। इस बार उनके साथ दो-तीन बैगों में पुस्तक और वस्त्र थे तथा एक नौकर भी साथ था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आक्षेप का उत्तर—इस बार स्वामीजी वस्त्र-परिधान करने लगे थे और उन्होंने भाषा बोलने का भी सङ्कल्प कर लिया था। जवाहरदासजी ने महाराज से कहा कि आपके लिए तो प्रथम अवस्था ही अच्छी थी, परन्तु महाराज के उनका समाधान कर दिया। भाषा बोलने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि संस्कृत सर्वधारण समझते नहीं और पण्डित लोग स्वार्थवश हमारे कथन के विपरीत लोगों को समझा देते हैं।

भाषा में प्रथम व्याख्यान—जिस दिन महाराज ने पहला व्याख्यान दिया उस दिन पहले से ही लोगों को सूचना दे दी थी कि व्याख्यान भाषा में होगा। व्याख्यान भाषा में ही हुआ, परन्तु संस्कृत बोलने के अभ्यास और भाषा बोलने के अनभ्यास के कारण व्याख्यान में वाक्य-के-वाक्य संस्कृत में बोल गये। भाषा में व्याख्यान देने का यह परिणाम तो अवश्य हुआ कि सर्वसाधारण अधिक संख्या में व्याख्यान सुनने आने लगे, परन्तु पण्डितों की उपस्थिति कम हो गई।

विद्यार्थियों की परीक्षा व प्रबन्ध परिवर्त्तन—पाठशाला को खुले हुए छह मास हो गये थे। स्वामीजी ने विद्यार्थियों की परीक्षा ली और परीक्षा-फल से सन्तुष्ट हुए, परन्तु विद्यार्थियों को जो मासिकवृत्ति दी जाती थी वह उनके मनोनीत न हुई, अतः उसे बन्द कर दिया। पण्डित शिवकुमार से उन्होंने कहा कि आप वैदिक धर्म का प्रचार कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि यदि आप ५०) मासिक वेतन दें तो कर सकता हूँ। स्वामीजी ने इसे स्वीकार न किया। पं० शिवकुमार वेदज्ञ न थे, अतः उनके स्थान में उन्होंने पं० गणेशश्रोत्रिय को नियत कर दिया जो वैदिक-विषयों के अच्छे पण्डित थे, परन्तु वे वैयाकरण अच्छे न थे।

पाठशाला का स्थान-परिवर्तन—अब तक पाठशाल केदारघाट पर थी। स्वामीजी ने उस स्थान को नापसन्द किया और वहाँ से उठाकर पाठशाला को दशाश्वमेध घाट पर ले-गये। वहाँ एक गृह दो रुपया मासिक किराये पर लेकर पाठशाला को उसमें रक्खा गया। पाठशाला के लिए चन्दा एकत्र करने के लिए स्वामीजी ने पण्डित शिवसहाय गौड़ कानपुर निवासी को कानपुर, लखनऊ, फ़र्रुखाबाद, शकरुल्लापुर की ओर भेजा था। काशी से ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् १९३१ अर्थात् २९ मई सन् १८७४ को एक चिट्ठी स्वामीजी ने पं० शिवसहाय को लिखी थी§ जिसमें उन्हें पाठशाला के स्थान-परिवर्त्तन की सूचना दी थी तथा उनसे रुपया और पुस्तकें मँगाई थीं।

समाचारपत्रों में विज्ञापन—पाठशाला के सम्बन्ध में स्वामीजी ने एक विज्ञापन भी 'कविवचन-सुधा', काशी २० जून सन् १८७४ को छपवाया था, जिसे पीछे आषाढ़ शुक्ला १४ संवत् १९३१ को 'विहारबन्धु' के अङ्क में सम्पादक ने छाप दिया था।

एक समाचार सबको विदित हो कि आपका आर्य-विद्यालय काशी में संवत् १९३० पौष मास तदनुसार दिसम्बर सन् १८७३ में केदारघाट पर जिसका आरम्भ हुआ था, वही अब मित्रपुर मुहल्ला, मिश्र दुर्गाप्रसाद के स्थान में संवत् १९३१ मिति आषाढ़ सुदी ५ शुक्रवार, १९ जून सन् १८७४ प्रातःकाल ७ बजे के उपरान्त आरम्भ होगा। इसका प्रबन्ध अब अच्छे प्रकार होगा। प्रातः सात बजे से पठनं और पाठन होगा दस-ग्यारह तक और फिर एक बजे से पाँच बजे तक। इसमें अध्यापक गणेशश्रोत्रियजी रहेंगे। यहाँ पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य, वेदान्तदर्शन; ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक दश उपनिषद्, मनुस्मृति, कात्यायन और पारस्करगृह्यसूत्र—इन्हें पढ़ाया जाएगा। थोड़े समय के पीछे चार वेद, चार उपवेद तथा ज्योतिष के ग्रन्थ भी पढ़ाये जाएँगे और एक उप-वैयाकरणी रहेगा, वह अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ उणादिगण, शिक्षा और लिङ्गानुशासन और प्रातिपदिक, गणपाठ—ये पाँच पाणिनिमुनिकृत और पतञ्जलिमुनिकृत भाष्य, पिङ्गलमुनिकृत छन्दोग्रन्थ, यास्कमुनिकृत निरुक्त, निघण्टु और

§ यह पत्र ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २२ पर छपा है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्य-अलङ्कार और सूत्रग्रन्थ इन सबको पढ़ना होगा। जिनको पढ़ने की इच्छा होवे वे आकर पढ़ें। जो विद्या और श्रेष्ठाचार की परीक्षा में उत्तम होगा उसे परीक्षा के पीछे पारितोषिक यथायोग्य मिलेगा, सो परीक्षा मास-मास में होगी। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब पढेंगे वेदपर्यन्त और शूद्र मन्त्रभाग को छोड़कर सब शास्त्र पढ़ेंगे। फिर जब-जब इस आर्य-विद्यालय के लिए अधिकाधिक चन्दा होगा तब-तब अध्यापक और विद्यार्थी लोगों को भी बढ़ाया जाएगा। इसकी रक्षा और वृद्धि के लिए एक आर्यसभा स्थापित हुई है और एक 'आर्य-प्रकाश' पत्र भी निकलेगा मास-मास में। इन तीनों बातों की प्रवृत्ति के लिए बहुत-से भद्र लोग प्रवृत्त हुए हैं और बहुत प्रवृत्त होंगे। इससे भी आर्यावर्त्त देश की उन्नति होगी। इस विद्यालय में यथावत् शिक्षा दी जाएगी जिससे कि सब उत्तम व्यवहारयुक्त हों। हस्तलिखित दयानन्द सरस्वती (विहारबन्धु भाग २ अङ्क २१ तारीख ८§ जुलाई सन् १८७४)।

विज्ञापन की समालोचना—अनुमान होता है कि प्रयत्न करने पर भी पाठशाला की दुरवस्था होती गई। आर्य-सभा ने कुछ कार्य नहीं किया, न 'आर्य-प्रकाश' पत्र ही निकाला। इस विज्ञापन से यह भी प्रकट होता है कि उस समय तक स्वामीजी की सम्मति शूद्रों को मन्त्रभाग वेद पढ़ाने की नहीं थी। इस नूतन प्रबन्ध में साधु जवाहरदास का हाथ नहीं था, सब प्रबन्ध मुंशी हरवंशलाल अध्यक्ष लाइटनिंग प्रेस काशी के हाथ में था। २३ जनवरी सन् १८७४ की चिट्ठी में स्वामीजी ने मुंशी हरवंशलाल को लिखा था,—"पाठशाला की व्यवस्था आप लोगों पर है, जैसे चले चलाओ, ।"‡

पाठशाला टूट गई—इससे ज्ञात होता है कि पाठशाला की दशा उस समय बहुत अवनत हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि फ़रवरी सन् १८७५ में पाठशाला टूट गई।

उपदेश लेखबद्ध करने का परामर्श—इस बार मुख्य घटना स्वामीजी की राजा जयकिशनदास सी. एस. आई. डिप्टी कलक्टर से भेंट होना है। राजा साहब स्वामीजी से पहले से ही बहुत प्रसन्न थे और स्वामीजी में उनका बहुत अनुराग था। उन्होंने स्वामीजी के उपदेशों को सुनकर विचार किया कि यदि वे उपदेश लिख लिये जाएँ और पुस्तकाकार में छप जाएँ तो जनता का बड़ा उपकार हो, क्योंकि अब तो उन्हीं लोगों को लाभ पहुँचता है जिन्हें स्वयं श्रीमहाराज के मुख से उन्हें सुनने का अवसर प्राप्त होता है, उनमें से भी सब लोग उपदेश सुन नहीं पाते और सर्वत्र महाराज जा नहीं सकते, अतः वहाँ के लोग इस लाभ से वञ्चित रहते हैं। पुस्तकाकार छप जाने से उपदेश स्थायी हो जाएँगे। यह सब विचार राजा साहब ने महाराज के सम्मुख रक्खे और इसके साथ ही पुस्तक लिखाने और छपाने का भार भी अपने ऊपर लिया। महाराज ने राजा साहब के प्रस्ताव को स्वीकार किया।

सत्यार्थप्रकाश का आरम्भ—राजा साहब ने पुस्तक लिखाने के लिए एक महाराष्ट्रीय पं० चन्द्रशेखर को नियत कर दिया और १२ जून सन् १८७४ से 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना आरम्भ हो गई। स्वामीजी बोलते जाते थे और चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। अन्त को सत्यार्थप्रकाश का पहला संस्करण सन् १८७५ में राजा जयकिशनदास के साहाय्य से मुंशी हरवंशलाल काशी निवासी के लाइट† प्रेस में छपकर प्रकाशित हुआ।

प्रथम संस्करण का महत्त्व—यह पुस्तक अनेक अमूल्य उपदेशों से युक्त थी। इसके कई स्थल तो बड़े ही महत्त्व के हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि स्वामीजी वास्तव में ऋषि अर्थात् द्रष्टा थे, वे अपनी अलौकिक प्रतिभा से भविष्य में होनेवाली घटनाओं का अनुमान कर सकते थे। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण निम्नलिखित है—

---

§ यहाँ २८ जून चाहिए। देखो ऋ० द० के पत्र विज्ञापन पृष्ठ २३। —**यु० मी०**

‡ पूरा पत्र ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २७-२८ पर छपा है।

† यह संस्करण स्टार प्रेस में छपा था, देखो हमारा ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास, परिशिष्ट पृष्ठ २६। —**यु० मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द के ऋषि होने का प्रमाण—श्री महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी ने जब शान्तिमय असहयोग प्रचलित किया तो उन्होंने जिस क़ानून को सबसे पहले तोड़ा वह नमक का क़ानून था। सरकार ने नमक बनाने का अधिकार अपने हाथ में ले-रक्खा था और सर्वसाधारण के लिए उसका बनाना वर्जित था। महात्माजी ने इस क़ानून के विरुद्ध बिना सरकार की आज्ञा के नमक बनाया। महाराज ने सन् १८७५ में ही अर्थात् सन् १९३० से ५५ वर्ष पहले नमक तथा जंगलात के क़ानून की अनीति और अन्याय को अनुभव कर लिया था और इन दोनों क़ानूनों के विरुद्ध सन् १८७५ के सत्यार्थप्रकाश में अपनी सम्मति प्रकट की थी कि इनसे ग़रीब लोगों को बहुत हानि पहुँचती है।§

लेखक की दुष्टता—इस सत्यार्थप्रकाश में श्राद्ध-तर्पण का समर्थन किया गया था और श्राद्ध में मांस के पिण्ड देने लिखे थे। पुस्तक छपने के पश्चात् जब स्वामीजी का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया गया तो उन्हें अत्यन्त दुःख और आश्चर्य हुआ कि उनकी धारणा और उपदेश के विरुद्ध ऐसे लेख को पुस्तक में कैसे स्थान मिला ? स्वामीजी ने तुरन्त ही पुस्तक को वापस ले-लिया।

विरोधियों का दुराग्रह—आर्यसमाज के विरोधी इस बात को लेकर स्वामीजी पर अब तक कटाक्ष करते रहते हैं और यह कहते हुए नहीं थकते कि स्वामीजी वास्तव में श्राद्धतर्पण और मांसाहार के पक्षपाती थे।

हम यह कहने को तो तैयार नहीं कि वे किसी समय भी श्राद्धतर्पण के समर्थक नहीं थे, या वे यज्ञ में पशुबलि को शास्त्र-सम्मत नहीं समझते थे, परन्तु हम यह निश्चय और दृढ़ विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इस सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ होने, अर्थात् जून सन् १८७५ से बहुत पूर्व वे अपनी सम्मति मृत पितरों के श्राद्ध-तर्पण और मांसाहार के विरुद्ध स्थिर कर चुके थे। इसके हमें अनेक प्रमाण मिलते हैं।

विरोधियों को सप्रमाण उत्तर—पण्डित लेखरामकृत जीवन-चरित्र के पृष्ठ ६७ पर लिखा है कि जब स्वामीजी संवत् १९२५ में अनूपशहर में थे तो उन्होंने कहा था कि 'जीवित पितरों का श्राद्ध करना चाहिए'। फिर पृष्ठ १२६ पर लिखा है कि स्वामीजी ने मायाराम जाट लम्बरदार शफीनगर से चासी में भी कहा था कि 'जीवित का श्राद्ध सदैव करते रहो' और ज्वालादत्त को पद्धति बनवाकर दे गये थे। जब स्वामीजी कानपुर में सन् १८६६ में गये थे तब भी मृतक श्राद्ध का खण्डन करते थे। कलकत्ता जाते हुए जब वे भागलपुर में ठहरे थे तो उन्होंने बाबू पार्वतीचरण से, जो भागलपुर के सन्त और पवित्रतम व्यक्ति समझे जाते थे, कहा था कि "जीवित मता-पिता का श्राद्ध-तर्पण करना उचित है"। वे मरे हुओं के श्राद्ध-तर्पण का समर्थन नहीं करते थे।

राजा की साक्षी—इसके अतिरिक्त स्वयं राजा जयकिशनदासजी ने देवेन्द्रबाबू से कहा था—

"सत्यार्थप्रकाश में जो मत स्वामीजी का लिखा गया वा जो कुछ पीछे परिवर्तित हुआ उसके लिए स्वामीजी इतने उत्तरदाता नहीं हैं। स्वामीजी को उस समय प्रूफ़ देखने का अवकाश ही नहीं था। पहले-पहले स्वामीजी सभी लोगों को अच्छा समझकर उनका विश्वास कर लेते थे। हो सकता है कि लेखक वा मुद्रक द्वारा यह सब मत सत्यार्थप्रकाश में छप गया हो और यह भी हो सकता है कि उनका मत पीछे परिवर्तित हो गया हो।"

उपर्युक्त साक्षियों से स्पष्ट है कि मृतक श्राद्ध के विषय में जो कुछ प्रथम बार के सत्यार्थप्रकाश में छपा वह स्वामीजी के मन्तव्य के प्रतिकूल छपा और सब-कुछ उस पौराणिक लेखक की करतूत है।‡ उसे अपनी ओर से पुस्तक में कुछ भी मिला देने की हर प्रकार की सुविधा थी। सम्भवतः स्वामीजी उसके लिखे

---

§ सत्यार्थप्रकाश प्र० सं० पृष्ठ ३८४, ३८५।

‡ इस विषय में अत्यन्त दृढ़ प्रमाण हमने ऋ०द० के ग्रन्थों का इतिहास, पृ० २५ पर दिये हैं। पाठक महानुभाव उसे अवश्य देखें। लेखकों तथा प्रकाशकों ने ऋ०द० के अन्य ग्रन्थों में भी धूर्तता की थी—देखो ऋ०द० के ग्रन्थों का इतिहास पृ० २६, २७ तथा ४५-५१॥ —**यु०मी०**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को दुबारा नहीं देखते थे और देखते भी हों तो भी छापने के लिए उसकी प्रतिलिपि भी तो वही करता था। प्रतिलिपि करते समय यदि उसने कुछ वाक्य अपनी ओर से मिला दिये हों तो उसे रोकनेवाला कोई न था। उसकी मिलावट पकड़ी जानेवाली भी न थी, क्योंकि स्वामीजी प्रूफ़ देखते ही न थे।

मत-परिवर्तन नहीं हुआ—उपर्युक्त स्वतन्त्र साक्षियों को देखते हुए यह किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता कि मृतक श्राद्ध सम्बन्धी सब लेख प्रथम बार के सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी का है। रहा यह कि स्वामीजी का इस विषय में पीछे आकर मत परिवर्तन हो गया तो यह प्रश्न उठता ही नहीं, क्योंकि सत्यार्थप्रकाश की रचना से बहुत पहले स्वामीजी मृतक-श्राद्ध का खण्डन करते रहे थे।§

पादरी हूपर से वार्तालाप—इन्हीं दिनों स्वामीजी का पादरी हूपर से साक्षात् हुआ। स्वामीजी ने बात-चीत में उनसे कहा कि ईसाइयों का परमेश्वर पक्षपाती है, क्योंकि उसने इबराहीम और उसकी सन्तान को इलहाम देने के लिए पसन्द किया। इसके उत्तर में पादरी साहब ने कहा कि परमेश्वर हर एक जाति को उसके सद्गुणों के कारण पसन्द करता है जो अन्य जातियों में नहीं पाये जाते। इसी प्रकार उसने आर्यजाति को भी पसन्द किया था, क्योंकि जो उत्तम गुण आर्यजाति में थे, वे दूसरी जातियों में नहीं थे।

फूल तोड़ने पर आक्षेप—लाला माधोलाल (जिन्हें पीछे सरकार की ओर से राजा की उपाधि मिली) के बाग़ से प्रतिदिन फूलों की टोकरी उनके घर जाया करती थी। एक दिन स्वामीजी ने उनसे पूछा कि ये फूलों की टोकरी कहाँ जाती है। उन्होंने कहा कि ठाकुरों के लिए हमारे घर जाती है। इसे सुनकर स्वामीजी ने कहा कि शोक है आप अभी तक मूर्त्तिपूजा किये जाते हैं। देखो ! ये फूल यदि पौधों पर लगे रहते तो अधिक सुगन्धि देते, इनकी पंखुड़ियाँ गिरकर खाद का काम देतीं और यदि आप इनका गुलदस्ता बनाकर रखते तो भी अच्छा था, परन्तु वहाँ तो ये निष्फल हैं। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि हमारे घर में सब मूर्त्तिपूजक हैं,यदि यहाँ से फूल न जावें तो डेढ़-दो रुपया प्रतिदिन फूलों पर ही व्यय करना पड़े, आप ही बताइए कि हम क्या करें। इसे सुनकर स्वामीजी हँस पड़े और बोले कि ऐसी दशा में तो कठिन है।

सर सैय्यद अहमद खाँ से भेंट—इसी बार सर सैय्यद अहमदखाँ से, जो उन दिनों काशी में सबजज थे, स्वामीजी का परिचय हुआ और उनके बँगले पर स्वामीजी का व्याख्यान भी हुआ। उन्होंने स्वामीजी को काशी के कलक्टर मिस्टर शेक्सपियर से मिलाया और यह भी कहा जाता है कि उन्होंने ही स्वामीजी को महाराजा काशी से मिलने पर उद्यत किया। महाराजा काशी से मिलने का वृत्त इससे पूर्व लिखा जा चुका है।

संग्रहकर्त्ता की सम्मति—स्वामीजी ने साधु जवाहरदास से कहा था कि यहाँ से जाते हुए हम आपके स्थल पर आएँगे। तदनुसार वे रात्रि के समय उनके यहाँ गये और प्रातःकाल नौका पर चढ़कर गङ्गा पार करके मिर्ज़ापुर चले गये, परन्तु हमारी धारणा यह है कि स्वामीजी बङ्गाल की ओर से जब लौटे तो वे प्रथम मिर्ज़ापुर गये। कारण यह कि स्वामीजी अगस्त सन् १८७३ की ८ तारीख को डुमराऊँ से चले, परन्तु वे सीधे काशी नहीं आये अपितु मिर्ज़ापुर गये; क्योंकि जब वहाँ की पाठशाला टूट गई तो साधु जवाहरदास को स्वामीजी ने मिर्ज़ापुर बुलाया था और उन्होंने साधुजी से काशी में ही पाठशाला स्थापित करने का अनुरोध किया और इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। काशी की पाठशाला पौष वदी २ संवत् १९३० को स्थापित हुई और फिर स्वामीजी मई सन् १८७४ के वा ज्येष्ठ संवत् १९३१ के अन्त में काशी पहुँचे।

जिज्ञासुओं के साथ सद्व्यवहार—बाग़ के जिस मकान में महाराज ठहरे हुए थे, वे उसके बरामदे में

---

§ न केवल खण्डन ही करते रहे अपितु सत्यार्थप्रकाश का लिखना प्रारम्भ होने के ३ मास बाद तथा सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशित होने से ६ मास पूर्व पंचमहायज्ञविधि का (सं० १९३१) जो संस्करण बम्बई से छपा था, उसमें जीवित श्राद्ध का विधान है। देखो हमारा ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास, पृष्ठ २०। —गु०मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दर्शकों से बात-चीत किया करते थे। एक कुर्सी पर तो स्वयं विराजमान रहते थे और अन्य कुर्सियों पर दर्शक लोग बैठते थे। अनेक लोग आते और धार्मिक विषयों पर बात-चीत करते तथा अपने सन्देह निवृत्त करते रहते थे। महाराज जिज्ञासु की पूरी बात सुनकर उसका उत्तर देते थे।

मुसलमान नवयुवक की शंका—एक १४-१५ वर्ष का मुसलमान नवयुवक प्रतिदिन महाराज के सत्संग में आता और उसकी समाप्ति पर चला जाता। एक दिन ऐसा हुआ कि जब वह स्वामीजी के पास पहुँचा तो वे अकेले थे। स्वामीजी ने उससे कहा कि तुम रोज हमारे पास क्यों आया करते हो। उसी पर उससे बात-चीत आरम्भ हो गई।

मांस खाना बुरा—उसने महाराज से पूछा कि मांस खाना अच्छा है या बुरा ? तो महाराज ने उत्तर दिया कि **मांस कामरिपु का वर्द्धक है**। इसी से मुसलमान बहुत कामासक्त होते हैं। मांस खाना हानिकारक और अनुचित है।

नास्तिक मुसलमान से वार्तालाप—एक दिन एक और मुसलमान आया जिसने कहा कि मैं नास्तिक हूँ। वह प्रश्न करने लगा। वह अधिक शिक्षित न था, इसीलिए पुनर्जन्म पर स्वामीजी के कथन को समझ नहीं सकता था। महाराज ने उससे कहा कि तुम किसी शिक्षित मुसलमान को साथ लेकर आओ तब इस विषय में बात-चीत होगी। अगले दिन वह मौलवी को साथ लेकर आया। स्वामीजी ने अनेक युक्तियों से पुनर्जन्म सिद्ध किया। न तो मौलवी ही और न वह स्वयं ही महाराज की युक्तियों का उत्तर दे सका। अन्त में वह यह कहकर कि मेरे सन्देह दूर नहीं हुए और मेरा सन्तोष नहीं हुआ, मैं कल फिर आऊँगा चला गया, परन्तु अगले दिन वह न आया।

साधु जवाहरदास की सम्मति—साधु जवाहरदास ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि स्वामीजी की न्यायशास्त्र में प्रगाढ़ व्युत्पत्ति न थी और न यह ज्ञात होता है कि उनकी अन्य शास्त्रों में ही पूर्ण दृष्टि थी। वे नैयायिकों की भाषा को काकभाषा कहा करते थे। वे व्याकरण में व्युत्पन्न थे और अष्टाध्यायी-महाभाष्य पर उनका पूर्ण अधिकार था। खण्डन-मण्डन में उनकी सविशेष दक्षता और बुद्धिचातुर्य्य का परिचय पाया जाता था। जिस समय वे किसी बात का खण्डन करते थे उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि उसका किसी प्रकार भी मण्डन हो नहीं सकता। यह शक्ति उनमें उनके तप और अखण्डित ब्रह्मचर्य्य के प्रभाव से ही थी। उनके ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में उनके परम शत्रु भी दोषारोपण करने में असमर्थ थे।

साधु जवाहरदास की सम्मति की समालोचना—साधु जवाहरदास की यह सम्मति कि स्वामीजी न्याय तथा अन्य दर्शनों में सविशेष व्युत्पन्न न थे, इतने अंश में तो कुछ ठीक हो सकती है कि प्राचीन दर्शनों पर जो नवीन खोल चढ़ा दिया है और जिसने उनके प्रकृत रूप को ही तिरोहित कर दिया है, यहाँ तक कि उनका पठन-पाठन भी कम हो गया है, उसके भीतर वे प्रविष्ट नहीं हुए थे, परन्तु वे समस्त दर्शनों में और उनके आर्षभाष्यों में व्युत्पन्न थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह मानते हुए भी कि साधु जवाहरदास की सम्मति में कुछ तथ्य है, हम तो नहीं देखते कि स्वामीजी को नव्य दर्शनों में व्युत्पन्न न होने के कारण कुछ हानि पहुँची हो। नव्य दर्शन के धुरन्धर पण्डित गर्व में मदमत्त हस्ती की भाँति महाराज से टक्कर लेने आये, परन्तु उन्होंने महाराज को चट्टान के समान पाया और स्वयं भग्नगण्ड होकर ही वापस गये। हमने तो कभी नहीं देखा कि नव्य न्याय वा अन्य नव्य दर्शनों की प्रगल्भता शास्त्रार्थ में किसी के काम आई हो।

यज्ञ की प्रथा उठ जाने से हानि—स्वामीजी कहा करते थे कि भारतवर्ष में यज्ञ की प्रथा उठ जाने के पश्चात् मूर्त्तिपूजा चल पड़ी और लोगों का इस प्रकार का विश्वास हो गया कि अग्नि, वायु आदि की एक-एक अधिष्ठात्री देवता है, परन्तु यह कपोल-कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस बार स्वामीजी का एक व्याख्यान सर सैय्यद अहमदखाँ के बँगले पर वेदों के अपौरुषेयत्व पर हुआ था। पं० लेखरामकृत जीवनचरित्र में लिखा है कि २-३ व्याख्यान हुए थे। स्वामीजी के पास पादरी लोग प्रायः आया करते थे।

स्वामीजी अजेय हैं—पण्डित पन्नालाल जेधपुर निवासी ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि मैं उन दिनों काशी में ही था और स्वामीजी की सेवा में उपस्थित रहता था। मैं जिस किसी भी पण्डित के पास जाता था और स्वामीजी की चर्चा करता था तो वह यही कह दिया करता था कि स्वामीजी को परास्त करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है।

बाबू सुरेशचन्द्र चौधरी माधवबाबू के, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है, मित्र थे। वे ग्वालियर से महाराज के दर्शन के लिए काशी आये थे। उनसे महाराज ने कहा था कि बंगाली संस्कृत अच्छी नहीं जानते और उनका उच्चारण ठीक नहीं है। बाबू केशवचन्द्र के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि उनकी बातों में बड़ा लालित्य है, परन्तु उनके अनुयायियों के रहन-सहन को देखकर सन्देह होता है कि वे ईसाई हो जाएँगे।

स्वामीजी इस बार काशी में एक मास के लगभग रहे। फिर वे काशी से प्रयाग चले गये।

(१ जुलाई–अक्तूबर) **प्रयाग** (अधिक आषाढ ब० २–आश्विन)

आषाढ़ बदी २ संवत् १९३१ वि० अर्थात् १ जुलाई सन् १८७४ ई० को स्वामीजी प्रयाग पधारे और नगर के बाहर अलोपी बाग़ में ठहरे। आते ही उन्होंने नगर में यह विज्ञापन बँटवाया कि जो कोई मुझसे किसी धर्म-सम्बन्धी विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहे, वह नियत समय पर मेरे स्थल पर आकर कर सकता है।

ईसाई नीलकण्ठ शास्त्री से वार्त्तालाप—इस बार एक दिन पण्डित काशीनाथ शास्त्री, म्योर कॉलेज के संस्कृत के प्रोफेसर, कॉलेज के कुछ विद्यार्थी तथा नीलकण्ठ घोरे एक मरहठा ईसाई स्वामीजी के पास आये। नीलकण्ठ से वेदार्थ के विषय में बात-चीत हुई। वह मैक्समूलर के पक्के अनुयायी थे और उनका किया हुआ ऋग्वेदांश का अंग्रेजी अनुवाद भी साथ लाये थे। नीलकण्ठ यह तो स्वीकार करते थे कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है, परन्तु यह कहते थे कि वेद में अग्नि आदि जड़ पदार्थों को देवता मानकर उनकी पूजा का विधान है। स्वामीजी उनकी इस स्थापना को सर्वथा अस्वीकार करते थे। उनका पक्ष था कि वेद एक ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। स्वामीजी ने यह भी कहा था कि मैक्समूलर को ईसाई मत का बहुत पक्षपात है। यदि उसने वेदों का ऐसा अनर्थ किया है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उसका हार्दिक अभिप्राय यह है कि भारतवासी वेदों के ऐसे अर्थों को देखकर भ्रम में पड़ जाएँ और वेदों को छोड़कर बाइबिल को ग्रहण कर लें, अतः उसका अनुवाद प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

बाइबिल की एक कहानी—तौरेत में लिखा है कि एक बार बाबल नगर के लोगों ने एक बहुत ऊँचा बुर्ज बनाकर आसमान पर चढ़ने का विचार किया। तदनुसार वह बुर्ज बनाने लगे। इसे देखकर बाइबिल के परमेश्वर को भय हुआ कि कहीं वे आसमान पर चढ़ न आवें, अतः उसने उनकी भाषा में गड़बड़ डाल दी जिससे वे एक-दूसरे का आशय समझने में असमर्थ हो गये और उन्होंने बुर्ज़ बनाना छोड़ दिया।

ईसाइयों के परमेश्वर की अज्ञता और मूर्खता—स्वामीजी ने इस कहानी की ओर संकेत करके कहा कि इससे बाबल नगरवालों की कितना मूर्खता प्रकट होती है कि वे आसमान को ठोस पदार्थ समझकर उसपर चढ़ने का यत्न करने लगे। ईश्वर को भी यह ज्ञात न हुआ कि आसमान कोई ठोस पदार्थ है ही नहीं तो वे उसपर चढेंगे कैसे, फिर वह डरा ही क्यों और अपने ही उत्पन्न किये हुए जीवों से उसका डर जाना कैसा हास्योत्पादक है। इससे यह भी प्रकट होता है कि ईसाइयों का परमेश्वर सर्वव्यापक नहीं, किन्तु एकदेशी है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दू पण्डित की असभ्यता—इसपर नीलकण्ठ और अन्य उपस्थित मनुष्यों ने तो कुछ उत्तर न दिया, परन्तु पण्डित काशीनाथ शास्त्री ने बड़ी असभ्यता से पूछा कि आपने किस अभिप्राय से सारे देश में कोलाहल मचा रक्खा है ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मुझसे पहले पण्डितों ने बड़ा पाखण्ड फैला रक्खा है, उनकी बुद्धि पत्थरों के पूजने से पत्थर हो गई है, जिस कारण वे सत्य-सिद्धान्तों को समझने में असमर्थ रहे, मैं उनकी जड़पूजा छुड़वाकर उनकी बुद्धि को परिष्कृत करने का उद्योग कर रहा हूँ।

निहेमिया निलकण्ठ से बात-चीत होते-होते सायङ्काल हो गया। उस समय उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण से एक स्थल उद्धृत किया **"अग्निर्देवानाम्"** इत्यादि और कहा कि देखिए इसमें अग्नि को अन्य देवों से छोटा कहा गया है। स्वामीजी इसका उत्तर देने को ही थे कि राजा जयकिशनदास के पुत्र कुँवर ज्वालाप्रसाद ने आकर कहा कि अतिकाल हो गया है, आप सन्ध्या कर लीजिए, अतः नीलकण्ठ के साथ विचार स्थगित करना पड़ा। अगले दिन स्वामीजी ने उसका उत्तर लिखकर निलकण्ठ के पास भेज दिया, परन्तु उन्होंने कोई उत्तर न दिया।

हिन्दू पण्डित की दुराशा—पण्डित काशीनाथ तथा अन्य हिन्दू लोग प्रतीक्षा कर रहे थे और आशा लगाये बैठे थे कि किसी भी प्रकार दयानन्द हार जाएँ तो वे ताली बजाकर और शोर मचाकर अपना आनन्द प्रकट करें। उन्हें एक ईसाई की जीत प्रीतिकर थी, परन्तु दयानन्द का जीतना उन्हें सह्य न था।

विद्यार्थियों से आवागमन पर बातचीत—म्योर कॉलेज के कुछ विद्यार्थियों का आवागमन के सिद्धान्त पर विश्वास न था। मैक्समूलर ने अपने किसी ग्रन्थ में लिखा है कि ऋग्वेद में पुनर्जन्मपरक कोई मन्त्र नहीं है। इसी के आधार पर वे भी इस सिद्धान्त को नहीं मानते थे। उन्होंने यह भी कहा था कि जीव एक बार ही उत्पन्न किया गया है और यही ठीक भी है। वर्त्तमान समय में कोई सभ्य मनुष्य इस सिद्धान्त को नहीं मानता, इसे मानना पुराने हिन्दुओं की भूल थी, अतः उन्होंने स्वामीजी से कहा कि आप भी इसे मानना छोड़ दें।

पुनर्जन्म का वेद से समर्थन—स्वामीजी ने उक्त सिद्धान्त की पुष्टि में बड़ी प्रबल युक्तियाँ दीं जिनमें से एक यह थी कि पशु आदि प्राणियों में स्वाभाविक ज्ञान है जो परमेश्वर ने उन्हें इस जगत् में काम करने के लिए दिया है। इन्होंने ऋग्वेद का एक मन्त्र§ भी प्रस्तुत करके वेद से इस सिद्धान्त को सिद्ध किया था।

म्लेच्छ शब्द का अर्थ—एक विद्यार्थी ने म्लेच्छ शब्द के अर्थ पूछे तो उन्होंने कहा कि जिसका उच्चारण शुद्ध न हो‡ उसे म्लेच्छ कहते हैं।

स्वामीजी ने कुँवर ज्वालाप्रसाद से सन्ध्या की पुस्तक भी कॉलेज के विद्यार्थियों को पढ़वाकर सुनवाई थी। उस पुस्तक की उस समय हस्तलिपि ही थी, तब तक वह छपी न थी।

---

§ ऋ० दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में पुनर्जन्म के लिए ऋग्वेद का **'कस्यनूनं कतमस्यामृतानाम्'** (ऋ० १।२४।१) मन्त्र उद्धृत किया है। सम्भव है यहाँ भी इसी मन्त्र की ओर संकेत हो। **—यु०मी०**

‡ म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे —धातुपाठ

नोट—पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त समस्त घटनाएँ एक ही दिन हुईं, और जब स्वामीजी आवागमन पर कथन कर रहे थे तब कुँवर ज्वालाप्रससाद ने उनसे कहा था कि रात्रि के ८ बज गये हैं और सन्ध्या के लिए देर हो गई है। हमारी सम्मति में निहेमिया नीलकण्ठ से जिस दिन बात-चीत हुई उसी दिन आवागमन आदि पर नहीं हुई। यह सर्वथा सम्भव है कि दोनों दिन बात-चीत करते-करते अतिकाल हो गया हो और कुँवर ज्वालाप्रसाद ने दोनों दिन स्वामीजी को यह कहकर कि सन्ध्या के लिए देर हो गई है बात-चीत को बन्द कराया हो। उक्त पुस्तक में निहेमिया नीलकण्ठ के ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण प्रस्तुत करने और स्वामीजी का ऋग्वेद से आवागमन सिद्ध करने का उल्लेख नहीं है ? परन्तु प्रकरण को दृष्टि में रखते हुए विश्वास होता है कि ये दोनों बातें अवश्य हुई हों। **—संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मौलवी का कपट—मौलवी निज़ामुद्दीन बी०ए० धर्मचर्चा में बड़ी रुचि रखते थे। स्वामीजी ने उनसे पूछा कि मुसलमानों का विश्वास परमेश्वर के विषय में कैसा है तो उन्होंने कुरान आदि से तो कोई वाक्य उद्धृत न किया, अपितु सर डबल्यू० हेमिल्टन की मेटाफिज़िक्स भाग १ से परमेश्वर के चार गुण वर्णन कर दिये और स्वामीजी ने विश्वास कर लिया कि मुसलमानों का वैसा ही विश्वास है।

मुसलमानों में बुतपरस्ती—इसके पश्चात् मौलवी साहब नमाज़ को चले गये। उनके चले जाने पर स्वामीजी ने कहा कि मुसलमानों ने औरों की छोटी-छोटी मूर्त्तियों को तो तोड़ दिया, परन्तु अपनी मूर्त्ति की पूजा न छोड़ी। मुसलमानों की मूर्त्ति कृष्ण-पाषाण (हज़रुल अस्वद) है जो मक्के के मन्दिर में बड़ी सुन्दरता से लगा हुआ है, जहाँ मुसलमानों के झुण्ड-के-झुण्ड पृथिवी के सब भागों से जाते हैं और मुसलमानों में मक्के की यात्रा (हज) मोक्ष का साधन मानी जाती है।

ब्रह्मचारिणी से धर्मालाप—एक दिन एक विद्या-सम्पन्न ब्रह्मचारिणी भी सत्सङ्ग में आई थी। उसने स्वामीजी से कहा था कि आप सदा मूर्त्ति-खण्डन करते हैं, परन्तु आज मैं मूर्त्ति-खण्डन करूँगी और आप उसका मण्डन करेंगे। उसने वेदान्त-विषय पर भी बात-चीत की थी।

दयानन्द के पास जाओगे तो पाप होगा—विपक्षियों ने नगर में एक विज्ञापन बाँटा था कि जो कोई दयानन्द के पास जाएगा महापाप का भागी होगा, परन्तु फिर भी सैकड़ों लोग महाराज के पास आकर सन्देह निवृत्ति करते और उनके धर्मोपदेश से लाभ उठाते रहे।

बङ्गाली के घर पर व्याख्यान—एक दिन सायं समय स्वामीजी ने एक बङ्गाली सज्जन के गृह पर धर्म-विषय पर एक व्याख्यान दिया था। जिसमें एक सहस्र के लगभग श्रोता उपस्थित हुए थे। उसमें उन्होंने धर्म के दस लक्षण वर्णन करके कहा था कि इनका किसी विशेष मत से सम्बन्ध नहीं है, ऐसे धर्म को मनुष्य का प्रबल-से-प्रबल प्रयत्न भी नाश नहीं कर सकता।

पर्दे की निन्दा—उन्होंने प्रचलित पर्दे की प्रथा पर भी खेद प्रकट किया था जिसके कारण महिलाएँ सार्वजनिक व्याख्यानों से लाभ उठाने से वञ्चित रहती हैं और अविद्या को दूर नहीं कर सकतीं। इसी व्याख्यान में उन्होंने यह भी कहा था कि जब महाराजा नल महाराजा ऋतुपर्ण को दमयन्ती के [द्वितीयवार के नकली] स्वयंवर में ले-गये थे तो उन्होंने एक कलायुक्त रथ का प्रयोग किया था§।

गङ्गातट पर भ्रमण का कारण—गङ्गातट पर भ्रमण करने का कारण स्वामीजी यह बताते थे कि गङ्गा का जल-वायु विशुद्ध और उपकारी है, वहाँ साधु-सन्तों का समागम और देश की स्थिति का परिज्ञान होता है।

सत्य को मानो—स्वामीजी कभी किसी से नहीं कहते थे कि जो हम कहते हैं उसे ही मानो। उनका आग्रह यह था कि सब बातों को सुनकर, सोच-समझकर जो सत्य हो उसे ग्रहण करो और तदनुकूल आचरण करो।

शोकपत्रिका—स्वामीजी जन्म-पत्रिका को शोक-पत्रिका कहा करते थे।

गर्दभ-तापिनी उपनिषत्—स्वामीजी ने राम-तापिनी और गोपाल-तापिनी उपनिषदों की भाँति एक गर्दभ-तापिनी उपनिषत् भी बना रक्खी थी, जिसमें से वे कभी-कभी वचन उद्धृत करके सुनाया करते थे। (खेद है कि उसकी कोई प्रतिलिपि नहीं रक्खी गई। यदि वह होती तो अवश्य ही उससे पाठकों का बड़ा मनोरञ्जन होता।)

कल-कारखाने खोलो—स्वामीजी की यह प्रबल इच्छा थी कि कल-कारखानों की उन्नति हो।‡

---

§ महाभारत के अनुसार ऋतुपर्ण एक रात में ही अयोध्या से विदर्भ (सी०पी०) गये थे। इतनी दूर (लगभग एक सहस्र मील) गमन बिना यान्त्रिक रथ के सम्भव नहीं हो सकता। —**यु०मी०**

‡ इस विषय में स्वामीजी महाराज ने जर्मन देश के विशेषज्ञों से पत्र-व्यवहार भी किया था। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पृष्ठ २१६, ३२३, ३३६, ३६२। —**यु०मी०**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुझे गुरु मत मानो—स्वामीजी स्वयं गुरु वा अवतार नहीं बनना चाहते थे। वे लोगों से कहा करते थे कि ऋषि-प्रणाली का अनुसरण करो, मुझे गुरु मानने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?

प्रथम बार के सत्यार्थप्रकाश में कुरान की आलोचना क्यों नहीं की—स्वामीजी ने प्रथम बार के सत्यार्थप्रकाश में मुसलमानी मत का खण्डन नहीं लिखा था। इसके विषय में उन्होंने कहा था कि हमने अभी तक कुरान अच्छी तरह नहीं देखा है यदि कोई मौलवी हमपर आक्षेप करेगा तो हम क्या कहेंगे।§

ब्राह्मण वेद नहीं है—स्वामीजी कहते थे कि तैत्तिरीय ब्राह्मण के भाष्य में सायणाचार्य ने ब्राह्मणों का वेद होना स्वीकार नहीं किया है।

छुआछूत का बखेड़ा—एक व्यक्ति ठाकुरप्रसाद स्वामीजी के बड़े भक्त थे। वे नित्य अपने गृह से स्वामीजी के लिए भोजन लाया करते थे। प्रथम दिन वे नङ्गे पैर भोजन लाये तो महाराज ने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि कच्चा भोजन जूते पहनकर लाना अच्छा नहीं। स्वामीजी ने कहा कि मैं इस छूआछूत को नहीं मानता, आप भी इस बखेड़े में न पड़िए।

दीन विद्यार्थी पर दया—लाला वंशीधर ने रामायण छपवाकर उसे दीन विद्यार्थियों में वितरण करने का प्रबन्ध किया था। यह कार्य उन्होंने एक पण्डित को सौंप दिया था, परन्तु वह अपने परिचितों को ही पुस्तक देता था। एक दिन एक दीन विद्यार्थी महाराज के पास आकर रोने लगा कि मुझे बार-बार माँगने पर भी पुस्तक नहीं मिली। महाराज तुरन्त उठकर दानी के पास गये और पुस्तक दिला दी और दानी को उपदेश किया कि वह कार्य ऐसे मनुष्य को दो जो पुस्तक वितरण करने में पक्षपात न करे।

अपनी नहीं, दूसरों की मुक्ति की चिन्ता—एक दिन एक वृद्ध महात्मा ने जो गङ्गातट पर रहते थे महाराज से कहा कि यदि आप परोपकार के झगड़े में न पड़ते तो इसी जन्म में आपकी मुक्ति हो जाती। महाराज ने उत्तर दिया कि मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं,‡ अपितु उन लाखों मनुष्यों की मुक्ति की चिन्ता है जो दुखी, दीन और दरिद्र हैं।

---

‡ यह लेख सर्वथा अशुद्ध है। ऋ०द० ने प्रथम बार के सत्यार्थप्रकाश में मुसलमान और ईसाई मत का खण्डन किया था, परन्तु वह छप न सका। देखो ऋ०द० के पत्र और विज्ञापन पृ० २४-२५ तथा ऋ०द० के ग्रन्थों का इतिहास, पृ० २१-२३। —**यु०मी०**

† समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़कर वेदभाष्य करने के विषय में देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पृष्ठ २८०।

नोट—दयानन्दप्रकाश में प्रयाग की दो घटनाएँ और लिखी हैं—

(१) म० ठाकुरदास ने एक दिन स्वामीजी को योगाभ्यास करते हुए कमरे के किवाड़ों की दरार में से झाँककर देखा तो उन्हें धीरे-धीरे पृथिवी से ऊपर उठते पाया और थोड़ी देर में ही वह अधर में स्थित हो गये। देवेन्द्रबाबू ने भी इस घटना का उल्लेख किया है, परन्तु वह अवसर दूसरा था और देखनेवाले का नाम भी और था।

(२) एक दिन महाराज ध्यान से निवृत्त होकर हँसते हुए बाहर आये तो पण्डित सुन्दरलाल ने हँसने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि एक मनुष्य मेरी ओर आ रहा है, थोड़ी देर ठहर जाइए, उसके आने पर आपको एक कौतुक दिखाई देगा। थोड़ी देर पश्चात् एक मनुष्य आया और नमो नारायण करके बैठ गया। उसने कुछ मिठाई महाराज के आगे रखकर पाने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि थोड़ी-सी मिठाई तुम भी लो, परन्तु उसने न ली, तब महाराज ने डाँटकर कहा तो भी उसने न ली और वह काँपने लगा। महाराज ने कहा कि यह हमारे लिए विषाक्त मिष्टान्न लाया है। पण्डित सुन्दरलाल ने उसे पकड़ना चाहा, परन्तु महाराज ने उसे उन्हें पकड़ने न दिया और उसे क्षमा कर दिया। फिर उसमें से पण्डित सुन्दरलाल ने थोड़ी-सी मिठाई एक कुत्ते को खिलाई, कुत्ता उसे खाकर मर गया।

देवेन्द्रबाबू के अनुसार यह घटना कुछ परिवर्त्तन के साथ काशी की है—देखो पृ० २०६।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अक्तूबर) **जबलपुर** (आश्विन)

अक्तूबर सन् १८७४ की किसी तारीख को स्वामीजी जबलपुर पधारे और गोकुलदास के उद्यान में ठहरे। वे म० कृष्णराव एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिश्नर की प्रार्थना पर जबलपुर गये थे और म० कृष्णराव ने ही उनका आतिथ्य किया था।

व्याख्यान—एक दिन सरदार मल्हार राव इङ्गलौर के गृह पर राजा बलवन्तराव के सभापतित्व में उनका व्याख्यान हुआ था, जिसमें उन्होंने साधारण विषयों पर कथन किया था और अपने जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाएँ भी सुनाई थीं।

शास्त्री शास्त्रार्थ से पश्चात्पाद—जबलपुर के प्रसिद्ध पण्डित शङ्करशास्त्री से शास्त्रार्थ की बात-चीत हुई थी। स्वामीजी मौखिक शास्त्रार्थ करना चाहते थे और शास्त्रीजी लेखबद्ध पर बल देते थे। अन्त में स्वामीजी लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने पर सहमत हो गये, तब शास्त्रीजी पश्चात्पाद हो गये और शास्त्रार्थ नहीं हुआ। शास्त्रीजी के पक्षवालों ने शास्त्रार्थ के लिए बहुत दलबल बाँधा था और एक झण्डा भी खड़ा किया था, परन्तु शास्त्रीजी के पीठ दिखाने के कारण उनका सब प्रयास विफल हो गया।

स्वामीजी का फोटो—एक दिन म० कृष्णराव स्वामीजी को अपने घर ले-गये और वहाँ उन्होंने स्वामीजी का फोटो खिंचवाया। वह फोटो उस समय तक जब देवेन्द्रबाबू उनसे मिले उनके यहाँ सुरक्षित था। जबलपुर में कुछ दिन निवास करके स्वामीजी नासिक चले गये।

(अक्तूबर) **नासिक** (आश्विन)

नासिक में स्वामीजी वायजाबाई की हवेली में ठहरे थे। बायजाबाई होल्कर राजघराने से सम्बन्ध रखती थीं। जिस समय देवेन्द्रबाबू नासिक गये थे उस समय वह हवेली गिर चुकी थी।

पंचवटी—नासिक के अन्तर्गत ही पञ्चवटी स्थान है, जहाँ श्रीरामचन्द्र वनवास के समय ठहरे थे। इसी कारण नासिक तीर्थस्थान समझा जाता है और वहाँ कई सहस्र पण्डा रहते हैं, जिनका निर्वाह तीर्थ-यात्रा करनेवाले हिन्दुओं के दान से होता है।

दो व्याख्यान—स्वामीजी नासिक केवल चार दिन रहे। इनमें से दो दिन उन्होंने दो व्याख्यान दिये। एक व्याख्यान नासिक के प्रसिद्ध राम-मन्दिर में हुआ और दूसरा ताप्ती नदी के तट पर। राम-मन्दिर नासिक के पञ्चवटी भाग में है। व्याख्यानों में जन-साधारण बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। एक व्याख्यान में स्वामीजी ने कहा था कि पञ्चवटी में श्रीरामचन्द्र वनवास के समय आकर रहे थे तो इससे उसे तीर्थ मानने का क्या कारण है ?

शास्त्रार्थ का आयोजन—उस समय नासिक में रावबहादुर विष्णुमोरेश्वर भिड़े सबजज थे। उनके गृह पर स्वामीजी के साथ पण्डितों के शास्त्रार्थ का प्रबन्ध किया गया था और विशेष-विशेष पण्डितों को निमन्त्रित किया गया था। इस सम्बन्ध में एक लेखक ने बम्बई के समाचार पत्र 'इन्दुप्रकाश' में इस प्रकार लिखा था—

दयानन्द की शास्त्र-दर्शिता—"हमारे शास्त्रियों में न तो जिज्ञासा-भाव ही है और न उन्हें सत्य के अनुसन्धान की ही रुचि है। इस लिए हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं हुआ कि उनकी ओर से शास्त्र-विचार सुस्थिर नहीं रहा। उनके ग्लानिद्योतक मौन और विचारमूढ़तासूचक दृष्टि से केवल यही प्रकट होता था कि वे पण्डित दयानन्द के विश्वास और सुधारपरक विचारों को अच्छा नहीं समझते। स्वामीजी की मानसिक शक्तियाँ दुर्लभ हैं, उनकी वाणी बड़ी प्रभावोत्पादिका है, उनकी स्मृति चूकनेवाली नहीं है। इसके साथ ही वे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने सुधारकार्य में उच्च कोटि के संस्कृत-पाण्डित्य और हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों के गहन परिचय से योग लेते हैं। उनके तत्क्षण व्याख्यानों में वेदों के इतने मन्त्रों के उद्धरण होते हैं, हिन्दुओं के भिन्न-भिन्न दर्शनों के गूढ़ ग्रन्थों के इतने संकेत होते हैं कि हमारी सम्मति में किसी लिखित निबन्ध में भी और अच्छे पुस्तकालय की सहायता से भी इतने वचनों का उद्धृत करना सहज नहीं है। पण्डित दयानन्द में ऐसे वैयक्तिक गुण हैं जो उन्हें दूसरों से अलग करते हैं। उनके हिन्दूधर्मसम्बन्धी विचार बहुत ठीक और उदार हैं। पण्डित दयानन्द उस कपट के सच्चे मन से विद्वेषी हैं, जिसमें पुरोहितश्रेणी की मक्कारी ने हमारे सरलचेता और असन्दिहान जनसाधारण को धर्म के नाम पर फाँस रक्खा है।

सुधार-कार्य की प्रशंसा—पण्डित दयानन्द में प्रकृत और उद्योगोपार्जित गुणों का दुर्लभ सम्मिलन है, इसलिए यह देखकर हम सबको विशुद्ध प्रसन्नता हुई कि उन्होंने अपने जीवन को अपने देशस्थ लोगों के सुधार में लगाने का निश्चय कर लिया है, और मूर्त्तिपूजा के दमन करने का व्रत-धारण कर लिया है, जो सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर होने में रुकावट डालनेवाले और युक्ति-विरुद्ध विचारों का उर्वर उत्पत्ति-स्थल है। पण्डित दयानन्द अपने देशस्थ बन्धुओं से उनके उत्तमभावों के नाम पर, उनकी प्रियतम वस्तुओं के नाम पर, मनुष्य-प्रकृति में जो कुछ भी उत्तम, नीतियुक्त और पुण्यमय है, उसके नाम पर, प्राचीन वेदों के नाम पर, जिनपर उन्हें इतना गर्व है, अपने देश के पतित लोगों को उन रीतियों के पञ्जे से छुड़ाने के लिए अपील करते हैं, जो न केवल वर्त्तमान ताँती के लोगों को लज्जास्पद बनाती हैं, वरन् स्वामीजी की सम्मति में प्रचीन ऋषियों और उनके अत्युत्तम ग्रन्थों को भी लज्जाग्रस्त करती हैं। इसलिए समस्त पुरुषों को जिन्हें हिन्दूसमाज की उन्नति और हिन्दूप्रजा अभ्युत्थान में मनोलग्नता है, उचित है कि पण्डित दयानन्द की, उनकी उपासना के युक्तियुक्त और विशुद्ध रूप को स्थापित करने में, सहायता करें।

दयानन्द की निर्भीकता—नदी के तट पर विचारमूढ़ ब्रह्मणों के बृहत्समूह के सामने पुरोहित दल की बुराइयों और उन लोगों के अविद्याजन्य दोषों को जिन्हें हिन्दुओं की मानसिक शिक्षा सौंपी गई है, निर्भीकता और अटल भाव के साथ स्पष्टाक्षरों में वर्णन करने के कारण इस स्थान के लोग पण्डित दयानन्द से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रोताओं के आह्लाद और साधुवाद के बीच पण्डित दयानन्द को बहुमूल्य वस्त्र उपहार दिये।"

आगे चलकर स्वामीजी के मन्तव्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

मन्तव्य-विवरण—"जिस अर्थ में कि 'जाति' शब्द साधारणतया ग्रहण किया जाता है, वे उसे उस अर्थ में ग्रहण नहीं करते। उनकी सम्मति जिसे वे वेदों पर आश्रित बताते हैं, वर्ण के विषय में यह है कि मनुष्यों को उनकी मानसिक और आत्मिक योग्यता के अनुसार विभक्त करने का नाम वर्ण है। यदि एक शूद्र पर्याप्त ज्ञानसम्पन्न है तो वह ब्राह्मण है और एक पापकर्मा ब्राह्मण शूद्र से भी नीचे वर्ण का है। उनकी सम्मति में वर्ण एक परिस्थिति का नाम है, जिसे मनुष्य स्थिर और असन्दिग्ध नियमों के पूरा न करने पर खो सकता है, और पूरा करने पर प्राप्त कर सकता है। मूर्त्तिपूजा के वे अदम्य शत्रु हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे एक मन्दिर से लौटे, परन्तु उन्होंने मन्दिर की मूर्त्तियों के प्रति इतना ही आदरभाव प्रकट किया, जितना उन्होंने मन्दिर के फ़र्श के पत्थरों के प्रति किया। विदेश-यात्रा और उन देशों की यात्रा के, जो भयावह अटक के पार हैं, वे घोर पक्षपाती हैं और हमें कुछ भी आश्चर्य न होगा, यदि हम एक दिन सुनें कि पण्डित दयानन्द हाइड पार्क वा वैस्ट मिंस्टर गिर्जों में वेदों का प्रचार करने के लिए जहाज पर सवार होकर यूरोप जा रहे हैं। वे पुनर्विवाह के सच्चे और उत्साही समर्थक हैं। मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैं इन विद्वान् पण्डित के मुख से यह सुनकर कि अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने उस समय के अमेरिका के राजा की भगिनी से विवाह किया था, आश्चर्यान्वित हुआ। इन विद्वान् पण्डित को यह शोक है कि गत सहस्र वर्षों में हमने उन जातियों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की जो भारत में एक के पीछे दूसरी राज्य करने आईं, बुराइयों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सीखा, उनकी भलाई एक भी नहीं सीखी। उन्होंने कहा कि विना विवाह स्त्रियाँ रखने की प्रथा तो उन्होंने मुसलमानों से सीख ली, परन्तु जो एक बात उनसे सीखनी चाहिए थी, अर्थात् परमेश्वर की एकता, वह नहीं सीखी। उनकी सम्मति है कि हिन्दू बुराई सीखने की बात जितना शीघ्र छोड़ दें, उतना ही अच्छा है। दान के विषय में उनकी सम्मति बहुत ही ठीक है। वे कहते हैं कि देश के वर्त्तमान क्लेश-कष्ट का सबसे बड़ा कारण यह है कि वे भिन्न प्रकार के नाम और विलक्षण चाल-ढाल के भिखमँगों से आप्लावित है। उनकी इच्छा है कि सारे वैरागी, गोसाईं, बाबाजी और भिक्षुक सीधे-सादे और शान्तिप्रिय-कृषक अथवा काम के श्रमजीवी बन जावें। उनकी सम्मति है और हम समझते हैं कि इससे सब सहमत होंगे कि इन भिखमँगों में सब प्रकार के व्यर्थ इधर-उधर घूमनेवाले, निठल्ले और समाज की नीचतम श्रेणी के लोग सम्मिलित हैं और इनके दमन से जाति को बहुत सुख पहुँचेगा। पण्डित दयानन्द ने सबसे आश्चर्य-जनक जो बात कही, वह यह थी कि भारत में प्रकृत अर्थ में अंग्रेज ही ब्राह्मण हैं। पण्डित हास्य-रस में भी प्रवीण हैं, जिससे सुननेवालों को आनन्द आता है। एक वैष्णव मस्तक पर सीधी-काली रेखा का तिलक लगाकर उनके सामने आया। उन्होंने उससे कहा कि यदि वैष्णव समझते हैं कि एक काली रेखा से उन्हें स्वर्ग का मार्ग शीघ्रता से समाप्त करने में सहायता मिलेगी तो यदि वे अपना सारा मुँह काला कर लें तो उससे उनकी स्वर्ग-यात्रा बहुत ही सुगम हो जाएगी।"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्दश अध्याय

आश्विन सं० १९३१—मार्गशीर्ष सं० १९३१=अक्तूबर—दिसम्बर १८७४

मुम्बई

कार्तिक कृ० १ तारीख, २६ अक्तूबर सन् १८७४ को स्वामीजी मुम्बई पहुँच गये।

मुम्बई में स्थानादि का प्रबन्ध—उत्तर भारत के एक भद्र पुरुष पं० विश्वनाथ प्रभुराम मुम्बई का पत्र उनके पितृव्य जयकृष्ण जीवनराम के नाम लेकर मुम्बई पहुँचे, जिसमें उनसे मुम्बई में स्वामीजी के रहन-सहन तथा उनके व्याख्यानों के लिए स्थानादि का प्रबन्ध करने की प्रार्थना की गई थी। वह पत्र उनके चाचा ने उनके पिता रा. रा. प्रभुराम और उनके पिता के मित्र, रा० रा० लीलाधर ऊधोजी को दिखाया। आपस में परामर्श होने के पश्चात् उन्होंने उक्त भद्र पुरुष को लखमीदास खेमजी के पास भेज दिया और उन्होंने स्वामीजी के निवास के लिए मुम्बई नगर से दो कोस दूर बालकेश्वर पर गोशाला नाम का स्थान निश्चित कर दिया। उस भद्र पुरुष के पास मुम्बई के और भी कई सज्जनों के नाम पत्र थे।

मुम्बई में स्वागत—इसके थोड़े ही दिन पश्चात् स्वामीजी मुम्बई पहुँच गये। रेलवे स्टेशन पर कई सज्जनों ने उनका स्वागत किया और उन्हें गाड़ी पर सवार कराकर बालकेश्वर में उक्त स्थान पर ठहरा दिया गया। दारागंज प्रयाग के निवासी पं० मण्डनराम उनके साथ थे और उनके लेखक का कार्य करते थे, बलदेव-सिंह पाचक का कार्य करते थे। वह भी प्रयाग से ही उनके साथ आया था। स्वामीजी गेरुआ वस्त्र पहनते थे और बाहर जाते हुए चाँदी की मूठ की एक छड़ी हाथ में रखते थे, पैरों में काले चमकदार जूते थे।

धर्मालाप का विज्ञापन—स्वामीजी के आते ही एक विज्ञापन निकाला गया, जिसमें धर्म-जिज्ञासुओं को सूचना दी गई कि जिस किसी को धर्म-सम्बन्धी बात-चीत करनी हो वह स्वामीजी के स्थान पर आकर कर ले।

घोर आन्दोलन—स्वामीजी के मुम्बई पधारने का समाचार प्रचरित होते ही सारे नगर में घोर आन्दोलन उपस्थित हो गया। शतशः लोग उनके दर्शन और सम्भाषण के लिए आने लगे।

विद्वेषियों का दोषारोपण—उनके सम्बन्ध में विद्वेषियों ने उनके चरित्र को दूषित करने और उनके पास लोगों को जाने से रोकने के लिए अनेक प्रकार की मिथ्या बातें फैलानी आरम्भ कर दीं। कोई कहता था कि दयानन्द अंग्रेज़ी सरकार का गुप्तचर है, कोई कहता था कि वह संन्यासी के वेष में कोई यूरोपियन है, जो लोगों को ईसाई बनाने आया है। किसी-किसी द्वेषपरायण दुष्ट ने सरकार को उनके विरुद्ध करने के लिए यहाँ तक कहा कि वह सिपाही-द्रोह में भाग लेनेवाले नाना साहब का भेजा हुआ दूत है।

मुम्बई में निमन्त्रित करनेवालों की इच्छा—स्वामीजी के मुम्बई पधारने के विषय में यह सुना जाता है कि मुम्बई के जयकृष्ण वैद्य अद्वैतवादी और लखमीदास खेमजी वल्लभाचारी के भाई धर्मसी काशी शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे। ये दोनों ही स्वामीजी की विद्या और तपोबल से अभिभूत हो गये थे। वैद्य महोदय की इच्छा थी कि स्वामीजी के समान कोई प्रभावशाली पुरुष मुम्बई जाकर वैष्णवादि मतों का खण्डन करके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनका मार्ग परिष्कृत कर दे। धर्मसी और उनके भाई लखमीदास खेमजी भी यही चाहते थे, परन्तु उनके लिए वैष्णवमत के खण्डन कराने की इच्छा का कारण दूसरा था। वे वल्लभमत के गोसाइयों से महाराजा के मानहानि के मुकद्दमे के कारण बहुत रुष्ट थे। दोनों का यह विश्वास था कि इस कार्य को उत्तम रूप से स्वामीजी ही सिद्ध कर सकेंगे। इसलिए इन दोनों व्यक्तियों ने उसी समय स्वामीजी से मुम्बई जाने के लिए अनुरोध किया था। उस समय स्वामीजी ने यह उत्तर दे दिया था कि हम अपनी सुविधानुसार आएँगे और अपने आने की आप लोगों को सूचना दे देंगे। तदनुसार ही स्वामीजी ने अपने मुम्बई आने की सूचना इन दोनों व्यक्तियों को तार द्वारा दी और पत्र भी भिजवाया।

बल्लभ-सम्प्रदाय के खण्डन का संकल्प—मुम्बई में आकर स्वामीजी को जब वल्लभ-सम्प्रदाय के गोसाइयों की गुप्त लीला का, सम्भवतः इन्हीं व्यक्तियों द्वारा, वृत्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने भी उनके मत के खण्डन का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया।

वेद-धर्म-सभा—स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध फ्रामजी काऊसजी हॉल में किया गया था। उक्त हॉल में व्याख्यान के लिए सत्तरह रुपये देने पड़ते थे। मुम्बई में पहले से एक वेद-धर्म-सभा स्थापित थी, जिसके प्रमुख कार्यकर्ता भ्रातद्वय जयकृष्ण जीवनराम, प्रभुराम जीवनराम, लखमीदास खेमजी तथा लीलाधर ऊधोजी थे। इन्हीं लोगों ने स्वामीजी के व्याख्यानों के व्यय के लिए चन्दा एकत्र किया था।

बल्लभ-सम्प्रदायवाले शत्रु हो गये—वैष्णवमत के विरुद्ध सम्मति प्रकट करने और दैनिक सत्सङ्ग में उसका तीव्र खण्डन करने के कारण वल्लभ-सम्प्रदाय के लोग स्वामीजी के शत्रु हो गये थे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य गोसाईं जीवनजी थे। वैष्णवों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का आयोजन किया और एक व्यक्ति ने लिखकर प-ग-न के नाम से कार्त्तिक शुक्ला ४ संवत् १९३१ को २४ प्रश्न स्वामीजी के पास भिजवाये, जिनका उत्तर स्वामीजी की अनुमति से एक श्री पूर्णानन्द संन्यासी§ ने विज्ञापन द्वारा दिया। यह तो ज्ञात नहीं हुआ कि वे प्रश्न क्या थे, परन्तु उनके जो उत्तर दिये गये, वे ज्ञात हैं और उनसे भली-भाँति अनुमान हो सकता है कि वे प्रश्न क्या थे ? हम नीचे उनके उत्तरों का सारांश देते हैं।

बल्लभियों के २४ प्रश्नों का उत्तर—पूर्णानन्द ने उस विज्ञापन में लिखा था कि स्वामीजी प्रत्यक्षादि प्रमाणों को मानते हैं, चारों वेद संहिताओं का (परिशिष्ट भाग को छोड़कर) प्रामाण्य स्वीकार करते हैं। उनके मन्तव्य वही हैं जो वेदप्रतिपादित हैं। ब्राह्मणग्रन्थ, शिक्षा आदि वेदाङ्ग के ग्रन्थ, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा आदि के, वेद-उपाङ्ग, मनुस्मृति का प्रमाण वहीं तक स्वीकार करते हैं, जहाँ तक वे वेद के अनुकूल हैं। वाल्मीकिकृत रामायण और महाभारत को इतिहासग्रन्थ समझते हैं। पुराण, उपपुराण, तन्त्रग्रन्थ, याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों का प्रामाण्य मानना तो क्या, उनमें कुछ भी श्रद्धा नहीं करते, जगदुत्पत्ति जैसी वेद में लिखी है वैसी ही मानते हैं। जब से सृष्टि का क्रम हुआ है, उस काल की कोई संख्या नहीं है। शाखाओं में जिन कर्मों का करना लिखा है, वे वेदनुकूल हों तो करने चाहिएँ और वेदोक्त विधि ही सबको माननी चाहिए। वैष्णव, स्वामीनारायण आदि सम्प्रदायों का वेदविरुद्ध होने के कारण खण्डन करते हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, अन्तर्यामी, निरवयव, परिपूर्ण और न्यायकारी है उसका जन्म-मरण कभी नहीं होता, जिसका जन्म-मरण होता है, वह ईश्वर हो ही नहीं सकता।‡

प्रश्न क्यों किये गये—इस विज्ञापन के उत्तर में विपक्ष की ओर से कोई विज्ञापन नहीं निकला, न स्वामीजी के पास ही इनका प्रत्युत्तर भेजा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रश्न स्वामीजी से केवल उनका

---

§ इनके विषय में देखों ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ ६५। —यु० मी०।

‡ ये उत्तर हमने पं० लेखरामकृत दयानन्द-चरित के आधार पर लिखे हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्तव्यामन्तव्य जानने के लिए किये गये थे, जिससे शास्त्रार्थ में उनका उपयोग हो सके।

स्वामीजी की इच्छा—इस विज्ञापन के अन्त में स्वामीजी की ओर से लिखा था कि यदि हम आर्यलोग वेदोक्त धर्म के विषय में पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक विचार करें तो सब प्रकार का कल्याण हो, यही मेरी इच्छा है, जिसके लिए सदा प्रतिदिन सभा हो तो श्रेष्ठ समझो। जिस रीति से बहुत प्रकार के मतों का नाश हो जाए वैसा सबको करना चाहिए।

वध के लिए पाचक को लोभ—गोस्वामी जीवनजी तो स्वामी के परम-शत्रु हो गये थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी के पाचक बलदेव को बुलाकर कहा कि यदि तुम स्वामीजी को मार डालो तो हम तुम्हें १०००) देंगे और तुरन्त उसे पाँच रुपये और पाँच सेर मिठाई दे भी दी और १०००) देने की चिट्ठी लिख दी। अभी बलदेव जीवनजी के पास से लौटकर आया भी न था कि किसी ने स्वामीजी को सूचना दे दी कि आपका भृत्य जीवनजी के पास खड़ा है। जब वह लौटकर आया और स्वामीजी ने उससे पूछा तो पाचक ने सब स्वीकार कर लिया—

स्वामीजी—तुम गोकुलियों के मन्दिर में गये थे ?

बलदेव—हाँ, महाराज ! गया था।

स्वामीजी—क्या ठहरा ?

बलदेव—पाँच रुपये नक़द, पाँच सेर मिठाई और यह चिट्ठी दी है कि यदि मार दो तो १०००) लो।

स्वामीजी—मुझे कई बार विष दिया गया है ..... परन्तु मैं मरा नहीं, अब भी नहीं मरूँगा।

बलदेव—महाराज ! मेरे कुल का काम विष देना नहीं है और फिर ऐसे को जिससे सब जगत् को लाभ पहुँच रहा है।

स्वामीजी—(मिठाई फिकवाकर और चिट्ठी फड़वाकर) सावधान ! आगे उनके यहाँ कभी मत जाना।

पीटने की चेष्टा—एक दिन गोकुलिये गोसाइयों के अनुयायी कच्छी बनियों की बीस मनुष्यों की टोली स्वामीजी को पीटने के उद्देश्य से बालकेश्वर गई थी, परन्तु वह अपनी दुष्ट चेष्टा में सफल न हो सकी।

बालकेश्वर में महादेव व अन्य देवताओं की मूर्त्तियाँ थीं। वहाँ मूर्त्ति-पूजक ब्राह्मण रहते थे। वे जब मन्दिर में पूजन करने जाते तो महाराज को नमस्कार करते, परन्तु पीछे उनकी निन्दा किया करते थे।

घातकों की नियुक्ति—कुछ दुष्टों ने स्वामीजी के वध के लिए घातकों को नियुक्त किया था और वह बालकेश्वर में सुयोग की खोज में रहते थे। स्वामीजी बलदेव को साथ लेकर समुद्र तट पर टहलने जाया करते थे। घातक लोग उनका पीछा करते थे। स्वामीजी को यह बात ज्ञात हो गई थी और एक-दो बार स्वामीजी ने उन्हें अपना पीछा करते देख भी लिया था।

घातकों से मुठभेड़—एक दिन स्वामीजी की उनसे मुठभेड़ हो गई। स्वामीजी ने उनसे कहा कि कहो क्या विचार है, तुम हमें मारने के लिए ही आते हो। उत्तर में वे कुछ न बोले और उस दिन के पश्चात् उन्होंने स्वामीजी का पीछा करना छोड़ दिया। स्वामीजी पूर्ववत् उसी सड़क पर टहलने जाते रहे।

डॉक्टर भण्डारकर—पं० विष्णुपरशुराम शास्त्री की संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों में गणना थी। ऐसे ही डॉक्टर आर०जी० भण्डारकर संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् समझे जाते थे। वे सरकार से भी सम्मानित थे और शिक्षा-विभाग के उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। वे सरकार की ओर से संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों के अनुसन्धान और संग्रहकार्य पर नियुक्त हुए थे और मुम्बई में संस्कृत-अध्ययन-विभाग के निरीक्षक और अध्यक्ष रहे थे, उन्हें डॉक्टर की उपाधि प्राप्त हुई थी और अन्त में उन्हें सरकार ने 'सर' की उपाधि देकर सम्मानित किया था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री और डॉक्टर भण्डारकर दोनों ही प्रार्थना-समाज के सभासद् थे, जिस नाम से कि मुम्बई प्रान्त में ब्राह्मसमाज विख्यात है। मुम्बई में ब्राह्मसमाजियों ने उसका ब्राह्मसमाज नाम न रखकर प्रार्थना-समाज नाम रक्खा था। ये दोनों महानुभाव सुधारक दल के नेता थे।

पं० विष्णुपरशुराम शास्त्री—पण्डित विष्णुपरशुराम मूर्त्तिपूजा में विश्वास नहीं रखते थे और विधवा-विवाह के घोर पक्षपाती थे। वे स्वभाव से क्रोधनशील, असहिष्णु और चिड़चिड़े थे। उन्हें और डॉक्टर भण्डारकर को अपनी विद्या का बड़ा अभिमान था। वेदों को वे अपौरुषेय नहीं मानते थे, प्रत्युत अनेक ऋषियों का रचा हुआ स्वीकार करते थे। यह बात उनके प्रार्थना-समाज के सभासद् होने से ही स्पष्ट है। दोनों ही वेदों को बहुदेवतावाद का समर्थक समझते थे।

दोनों का दयानन्द से वार्त्तालाप—एक दिन जिसकी ठीक तारीख ज्ञात नहीं हुई, परन्तु जो १३ नवम्बर सन् १८७४ से कुछ पूर्व थी, पण्डित विष्णुपरशुराम और डॉक्टर भण्डारकर स्वामीजी से मिलने गये। सुधार-कार्य और वेदों के बहुदेवतावाद पर बात-चीत हुई। स्वामीजी ने विधवा-विवाह से असम्मति प्रकट की§। इसपर शास्त्रीजी स्वामीजी से रुष्ट हो गये।

डॉक्टर का पक्ष—डॉक्टर भण्डारकर यह प्रतिपादित करना चाहते थे कि वेदों में बहुदेवतावाद है। इसके प्रमाण में उन्होंने ऐतरेयब्राह्मण से शुनःशेप की कथा का उल्लेख किया था।

डॉक्टर का पत्र—इसके सम्बन्ध में डॉक्टर भण्डारकर ने देवेन्द्रबाबू को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था कि "जब स्वामी दयानन्द मुम्बई में थे तो मैं स्वर्गीय पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री के साथ उनसे मिलने गया था। हमने उनके इस सिद्धानत की आलोचना की थी कि वेदों में अमिश्रित एकेश्वरवाद है। मैंने ऐतरेयब्राह्मण के कां० ७ खं० १५ का उद्धरण किया था, जिसमें कहा गया है कि जब शुनःशेप को यूप से बाँध दिया गया और उसका वरुण के लिए बलिदान होने को हुआ तो उसके विषय में कहा गया है कि उसने अपने-आपको छुड़ाने के लिए एक देवता के पश्चात् दूसरे देवता की आराधना की और प्रत्येक देवता ने उसे दूसरे देवता की आराधना करने के लिए कहा। अन्त में जब उसने उषा की आराधना की तो वह छूट गया। इसपर मैंने कहा कि यहाँ स्पष्टाक्षरों में अनेक देवताओं का वर्णन है, इसके होते हुए यह कहना सम्भव नहीं है कि वेद अमिश्रित एकेश्वरवाद की शिक्षा देते हैं। विष्णुपरशुराम शास्त्री ने भी कुछ प्रश्न किये और विवाद इतना उत्तेजनापूर्ण हो गया कि सबसे पहले स्वामीजी ने कठोर शब्दों का प्रयोग किया। विष्णुशास्त्री ने वैसे ही शब्दों में उत्तर दिया। यह मुझे स्मरण नहीं है कि मुझे स्वामीजी ने क्या उत्तर दिया था। उस समय यह प्रतीत नहीं होता था कि वे ब्रह्मणों को ईश्वरवाक्य नहीं मानते थे।

उक्त उद्धरण में जिन देवताओं का वर्णन है, उन्हें सम्बोधित करके ऋक् संहिता में बहुत-से मन्त्र आये हैं और जिन मन्त्रों का कर्त्ता शुनःशेप को कहा गया है, उनकी ओर संकेत किया गया है।

इसके कुछ समय पीछे स्वामी दयानन्द ने एक व्याख्यान हिन्दी में प्रार्थनासमाज के हॉल में दिया था और उस समय उन्होंने जो प्रभाव हमारे चित्त पर डाला वह अच्छा था।

समालोचना—डॉक्टर भण्डारकर को स्मरण नहीं रहा कि स्वामीजी ने उन्हें क्या उत्तर दिया था। हमें इसका खेद है, परन्तु यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त समस्त वर्णन आलङ्कारिक है। यह बात यूरोपियन विद्वान् भी स्वीकार करते हैं। अन्यथा यह भी स्वीकार करना चाहिए कि यदि वेदों में नहीं तो कम-से-कम ऐतरेयब्राह्मण के समय में नरबलि की प्रथा भारत में अवश्य प्रचलित थी, परन्तु यह किसी को अभिमत नहीं है। बहुदेवतावाद

---

§ हमें यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि स्वामीजी दूजों के लिए विधवा-विवाह को अवैध मानते थे। उनके लिए वे नियोग को ही वेदसम्मत समझते थे। शूद्रों के लिए पुनर्विवाह की आज्ञा देते थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का आक्षेप कोई नया आक्षेप नहीं था। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामीजी ने उसका भली प्रकार निराकरण कर दिया है। डॉक्टर भण्डारकर का यह विचार कि उस समय ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि स्वामीजी ब्रह्मणों को परमेश्वर का वाक्य नहीं मानते थे, ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि स्वामीजी इससे पूर्व प्रकट कर चुके थे कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

मिथ्या दोषारोपण—यह हमें विश्वास नहीं होता कि स्वामीजी ने प्रथम कठोर शब्दों का प्रयोग किया हो। वास्तव में बात यह थी कि विष्णुराम परशुरामशास्त्री अत्यन्त असहिष्णु प्रकृति के पुरुष थे। दूसरे जब डॉक्टर भण्डाकर से बातचीत हुई तो उन ऋषि-मुनियों की निन्दा सुनकर स्वामीजी से न रहा गया और उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ऋषि-मुनियों के विषय में कुछ न जानते हुए और वेदों को अच्छी तरह पढ़े बिना आप सरीखे महानुभावों को ऐसा कहना अनुचित है। दूसरे स्वामीजी ने डॉक्टर महोदय की रचित 'संस्कृत-मार्गोपदेशिका' पुस्तक की कुछ भूलें भी उन्हें दिखाई थीं। डॉक्टर साहब ने उनकी कौमुदी के आधार पर सिद्धि करने का यत्न किया, परन्तु स्वामीजी ने उनके कथन का अष्टाध्यायी और महाभाष्य के आधार पर खण्डन कर दिया, जिसका वे कोई उत्तर न दे सके। डॉक्टर महोदय को अपनी विद्वत्ता का बड़ा अहङ्कार था, पाठक समझ सकते हैं कि जब स्वामीजी ने उसे विचूर्णित करके रख दिया तो उनको कितना रोष आया होगा और उन्होंने क्या कुछ न कहा होगा ? स्वामीजी के इन्हीं उपर्युक्त शब्दों के विषय में डॉक्टर साहब कहते हैं कि स्वामीजी ने कठोर शब्दों का प्रयोग किया।

फल यह हुआ कि दोनों ही महानुभाव स्वामीजी से रुष्ट होकर चले आये।

शास्त्रीजी की शत्रुता—शास्त्रीजी तो स्वामीजी के पूरे शत्रु ही हो गये और जब तक जीवित रहे उनसे चिढ़ते रहे। पहले वे यह मानते थे कि वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है, परन्तु उस दिन के मिलन के पश्चात् कहने लगे कि अब मैं यह भी नहीं मानता कि वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है। यही नहीं उन्होंने 'इन्दुप्रकाश' नामक पत्र में स्वामीजी के विरुद्ध लिखना आरम्भ कर दिया और स्वामीजी को गोली देने और उनपर मिथ्या दोषारोपण करने तक में सङ्कोच नहीं किया। उन्होंने स्वामीजी को उद्धत, कर्कशभाषी, धूर्त्त और असत्यवादी तक लिख डाला। एक बार उन्होंने लिखा कि स्वामीजी **'दूरस्थाः पर्वता रम्याः'** की लोकोक्ति के समान दूर से ही भले लगते हैं और यह कि स्वामीजी अपने को सर्वज्ञ समझकर अभिमान करते हैं। इस सबको देखकर यदि स्वामीजी ने कोई कठोर शब्द शास्त्रीजी के सम्बन्ध में कह भी दिया हो तो आश्चर्य ही क्या है ?

दोषी कौन था ?—अब पाठक स्वयं विचार करें कि कर्कशभाषी, उद्धत, अभिमानी, धूर्त्त, असत्यवादी कौन था, स्वामीजी वा शास्त्रीजी ? धूर्त्त और असत्यवादी शास्त्रीजी थे, जिन्होंने यह कहना आरम्भ कर दिया कि अब मैं यह भी नहीं मानूँगा कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है, जो उनके आत्मा के सर्वथा विरुद्ध था, क्योंकि वे वास्तव में यही मानते थे कि मूर्त्तिपूजा वेदविहित नहीं हैं। स्वामीजी जैसा उनके मन में होता था वैसा ही वाणी से भी कहते थे। अहङ्कार और अभिमान दयानन्द में था वा शास्त्री महोदय में ?

पहला व्याख्यान, मूर्त्तिपूजा का प्रबल खण्डन—स्वामीजी का पहला व्याख्यान फ्रामजी काऊसजी हॉल में २५ नवम्बर सन् १८७४ को हुआ। व्याख्यान मध्याह्नोत्तर में २ बजे से ६ बजे तक हुआ था। उसका विषय मूर्त्तिपूजा था। उसमें महाराज ने अनेक वेदमन्त्र उद्धृत करके और प्रबल युक्तियों से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया था और वैष्णव-मत, विशेषतः वल्लभ-सम्प्रदाय की तीक्ष्ण आलोचना की थी।

वेचरशास्त्री के प्रश्न—उक्त सम्प्रदाय के लोगों ने पूर्व से ही यह निश्चय कर रक्खा था कि उक्त व्याख्यान के अवसर पर ही स्वामीजी से प्रश्नोत्तर किये जाएँ। इसके लिए उन्होंने वेचरशास्त्री को नियत किया था और वे लोग दलबल के सहित व्याख्यान में गये थे। वेचरशास्त्री विनीत स्वभाव और सरल प्रकृति के मनुष्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे, परन्तु उनके साथी ऐसे न थे। प्रतीत होता है कि ये लोग घर से ही व्याख्यान में विघ्न डालने का सङ्कल्प करके गये थे।

हल्ला हो गया—वेचरशास्त्री ने स्वामीजी से कुछ प्रश्न किये, परन्तु नियमपूर्वक शास्त्रार्थ आरम्भ भी न होने पाया था कि वल्लभ सम्प्रदाय के लोगों ने हल्लागुल्ला कर दिया और लाठी चलने लगी। हॉल के मैनेजर ने यह देखकर उसे बन्द करने के लिए गैस बन्द कर दी। अन्धकार हो जाने से हल्लागुल्ला बन्द हो गया और इस भय से कि कहीं दुष्ट लोग महाराज पर हाथ न छोड़ बैठें, उन्हें एक बन्द गाड़ी में सवार कराकर बालकेश्वर भेज दिया गया। वेचरशास्त्री की ओर से तो यह शङ्का हो नहीं सकती कि वे लड़ने के अभिप्राय से व्याख्यान में गये हों, क्योंकि उन्होंने व्याख्यान के पीछे स्वामीजी के विषय में कहा था कि वे एक सुयोग्य वक्ता हैं।

दूसरा व्याख्यान—स्वामीजी का दूसरा व्याख्यान उसी हॉल में २८ नवम्बर सन् १८७४ को पाँच बजे मध्याह्नोत्तर में हुआ। उसमें उन्होंने आर्यों का इतिहास वर्णन किया था—"पाँच या साढ़े पाँच सहस्र वर्ष पूर्व आर्यजाति अत्युन्नत दशा में थी। उसका विज्ञान विस्तृत था और उसमें सत्कर्म्म और धार्मिकता का प्राबल्य था। आर्यजाति की अधोगति का कारण राजगण की मूर्खता हुई जो एक विशेष समय (महाभारतयुद्ध) के पश्चात् क्रमशः प्रगाढ़तर होती गई। उससे पहले राजगण विद्वान् होते थे।

'इन्दुप्रकाश' की आलोचना—वे निस्सन्देह साहस-सम्पन्न वक्ता हैं और उन्हें अपनी विद्या पर अति-विश्वास है। वर्तमान समय के कपटी धर्माचार्यों के विषय में उनकी हास्यमय उक्तियों ने बनियों के बृहत् समुदाय में, जो उनका व्याख्यान सुनने गये थे, बड़ी सनसनी उत्पन्न कर दी है। जो कुछ उन्होंने अन्त में कहा उससे प्रकट होता है कि इस समय वे वेदभाष्य की रचना करने में लगे हुए हैं।

—"इन्दुप्रकाश" ३० नवम्बर सन् १८७४

टिकट से प्रवेश—पहले व्याख्यान में जनसमूह बहुत अधिक हो गया था और इससे शान्ति भङ्ग होने की आशङ्का थी, अतः इस व्याख्यान में हॉल के अन्दर उन्हीं लोगों को जाने दिया गया था जिनके पास टिकट थे। ये टिकट सभास्थल पर व्याख्यान के समय से एक घण्टा पूर्व लोगों को बाँटे गये थे।

इन वक्तृताओं के सम्बन्ध में 'गुजरातमित्र' के १६ दिसम्बर सन् १८७४ के अङ्क में सम्पादक ने इस प्रकार लिखा था—

'गुजरातमित्र' की सम्मति—"हमें बताया गया है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी ने मुम्बई में धार्मिक विषयों पर दो व्याख्यान दिये हैं। सुधार और धर्म-विषय में उनकी सम्मति जानने के लिए लोग सहस्रों की संख्या में उनके पास एकत्र हो गये हैं। कहा जाता है कि वे संस्कृत के गम्भीर विद्वान् हैं और उन्होंने वेदों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। यह भी कहा जाता है कि वे मुख्यतः उन्हीं प्राचीन ग्रन्थों (वेदों) की ओर अपील करते हैं और उनकी सम्मति है कि वेद विधवा-विवाह और अन्य सुधारों का प्रतिपादन करते हैं, जिनका पक्ष यह पत्र और अन्य पत्र लेते हैं। वे उन लाखों साधुओं का क्रोध और घृणा के साथ उल्लेख करते हैं जो धार्मिक पुरुष होने का दम्भ करते हैं और दूसरों के दान पर अपना पेट पालते हैं। उनका विश्वास है कि जैसे पाखण्डी ये लोग हैं, वैसे बुरे पाखण्डी दुनिया में कभी देखने में नहीं आये। वस्तुतः दयानन्द पूर्ण सुधारक हैं, परन्तु वे अपने कथन को प्राचीन परम्परा वा प्राचीन ग्रन्थों पर निर्भर करते हैं। यह स्पष्ट नहीं होता कि वे उन देशी लोगों की क्यों उपेक्षा करते हैं जो हमारे कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। वे स्वयं संस्कृत के विद्वान् हैं, इसलिए देश के हर एक रहनेवाले को उक्त भाषा की शिक्षा प्राप्त करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का परामर्श देना उनके लिए स्वाभाविक ही है। वे कहते हैं कि हमें अंग्रेजी केवल एक घण्टा§ प्रतिदिन पढ़नी चाहिए और शेष समय वेदों के अध्ययन में लगाना चाहिए। हम नहीं कह सकते कि हममें से कितने इस परामर्श को पसन्द करेंगे, परन्तु हमें विश्वास है कि यदि कोई मनुष्य अंग्रेजी साहित्य को एक घण्टा प्रतिदिन से अधिक न पढ़कर उस भाषा पर अधिकार प्राप्त कर सकेगा तो वह एक अलौकिक घटना (Miracle) होगी।"

उक्त सम्मति की आलोचना—स्वामीजी प्रचलित शिक्षाप्रणाली के क्यों विरुद्ध थे ? यह बात सम्पादक 'गुजरातमित्र' की समझ में उस समय न आई जैसेकि अब भी बहुतों की समझ में नहीं आ रही है। इस शिक्षाप्रणाली का यह परिणाम हुआ है कि हम अंग्रेज़ी-साहित्य में तो व्युत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु अपने प्राचीन साहित्य, सभ्यता और गौरव से अनभिज्ञ रहते हैं। हम पश्चिम के मानसिक दास बन जाते हैं। हमारे आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल पश्चमी सभ्यता के साँचे में ढल जाते हैं और हम अपनी जातीयता को सर्वथा खो बैठते हैं। न हमें अपने धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है, न उससे हमें प्यार होता है, हम अपने धर्मानुष्ठानों को निरर्थक और ढकोसला समझने लगते हैं। हमें अपने भूत से प्रेम नहीं रहता, न उसका हमारी दृष्टि में कुछ गौरव रहता है, न उसपर हम कुछ गर्व करते हैं। हम एक केवटरहित नौका की भाँति भविष्य के असीम समुद्र पर जिधर हवा के थपेड़े हमें ले-जाना चाहें उधर बहे हुए चले जाते हैं। **यह एक इतिहाससिद्ध सिद्धान्त है कि जिस जाति को अपने भूत पर गर्व नहीं होता, उसका भविष्य कभी उन्नत और उज्ज्वल नहीं हो सकता और वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।**

स्वामीजी की दिव्य दृष्टि—स्वामीजी की दिव्य दृष्टि ने प्रचलित शिक्षाप्रणाली के दोषों को उस समय देख लिया था, जिस समय वे किसी को दिखाई न देते थे। आज वे सबको दिखाई दे रहे हैं। आज लोग समझने लगे हैं कि पाश्चात्य शिक्षापद्धति हमारी मानसिक दासता का मुख्य हेतु और हमारे चरित्र की चूकों का प्रधान कारण है। दयानन्द ने इन्हीं सब कारणों से वर्तमान शिक्षापद्धति के विरुद्ध अपनी सम्मति प्रकट की थी और इसीलिए वे चाहते थे कि हमारी शिक्षा में मुख्य स्थान संस्कृत साहित्य और इतिहास को और गौण स्थान अंग्रेज़ी को दिया जाए। यदि हम अंग्रेज़ी में अधिक व्युत्पन्न न भी हों तो कोई बड़ी हानि नहीं, परन्तु संस्कृत में व्युत्पन्न न होने से तो हमारे सर्वनाश के दिन निकट आ रहे हैं। यही सब कारण थे जिनसे स्वामीजी प्रचलित गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली का पुनरुद्धार और प्रचार करना चाहते थे, जिसके अनुसार विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन और चरित्र-गठन करता हुआ वेद-वेदाङ्ग तथा अन्य विषयों का ज्ञाता होकर समाज का लाभदायक अङ्ग बन सके। इसी कारण स्वामीजी ब्रह्मचर्य, सत्यनिष्ठा, सदाचार, योग, वेद के पठन-पाठन प्रभृति पर विशेष बल देते थे। वे कहते थे कि बिना ब्रह्मचर्य का पालन किये, बिना वीर्यरक्षा किये ईश्वर-प्राप्ति तो दूर रही, मनुष्य की बुद्धि और ज्ञान भी परिष्कृत और उज्ज्वल नहीं हो सकते। उनका यह अविचलित विश्वास था कि वेद और वैदिक धर्म के प्रचार से ही देश और जाति का कल्याण होगा।

स्वामीजी के मुम्बई पधारने के सम्बन्ध में २१ दिसम्बर सन् १८७४ की 'सुबोध-पत्रिका' में इस प्रकार लिखा गया था—

"वल्लभाचारी सम्प्रदाय के आचार्यों ने और अन्यान्य लोगों ने पहले यह समझा था कि दयानन्द उनके पक्ष का अवलम्बन करेंगे, परन्तु उनके व्याख्यान आदि को सुनकर उनकी धारणा अन्य प्रकार की हो गई। उन्होंने यह बात उपस्थित करके कि वेद में प्रतिमा शब्द है यह घोषणा की कि वेद में भी तो मूर्त्तिपूजा है। जब वे दयानन्द की युक्तियों के खण्डन में असमर्थ हुए तो उन्होंने स्वामीजी की निन्दा और ग्लानि से पूर्ण

§ श्रीस्वामीजी महाराज ने इस विषय में अनेक पत्र लिखे थे। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन की भूमिका का पृष्ठ २३-४६। —यु० मी०।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक विज्ञापन प्रकाशित किया। किसी-किसी ने स्वामीजी के उपदेशों से परिचालित होकर अपनी देवमूर्त्तियों को मुम्बादेवी के तालाब में फेंक दिया है। सेवकलाल कर्शनदास ने अपनी देवमूर्त्तियों को टाउनहॉल के म्यूज़ियम में रख दिया है। मांस-भोजन के विषय में स्वामीजी कहते हैं इसका वेद में उल्लेख नहीं है। स्वामीजी ब्राह्मणभाग को वेद नहीं मानते और उसका खण्डन करते हैं।"

'सुबोध पत्रिका' के सम्पादक की यह सम्मति कि पहले वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्य वा अन्य लोग यह समझते थे कि स्वामीजी उनके पक्ष का समर्थन करेंगे, नितान्त भ्रान्त थी, क्योंकि स्वामीजी के मूर्त्तिपूजा खण्डन करने की बात उस समय तक सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो चुकी थी। सत्य तो यह था कि कुछ लोग वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों (जिन्हें उनके भक्त महाराजा कहते हैं) के दुर्व्यवहार और विशेषकर उस कलङ्कमय मुकद्दमे से महाराजाओं के विरुद्ध हो गये थे। वे यह जानते ही थे कि दयानन्द मूर्त्तिपूजा के घोर विरोधी हैं। वे स्वामीजी से वल्लभकुल के मन्तव्यों का खण्डन कराने के इच्छुक थे, परन्तु इसमें उन लोगों का एक स्वार्थ निहित था। वे यह चाहते थे कि स्वामीजी के मुम्बई से चले जाने के पश्चात् जबकि स्वामीजी के उपदेशों से लोग वैष्णवमत से विरक्त हो जाएँगे तो उन्हें अपने मत के प्रचार का अच्छा अवसर मिलेगा। इन लोगों में प्रमुख जयकृष्ण जीवनराम थे, जिन्होंने स्वामीजी को मुम्बई बुलाया था और उनके निवास तथा व्याख्यानों का प्रबन्ध कराया था। वे घोर अद्वैतवादी थे। जब उन्होंने देखा कि स्वामीजी न केवल वैष्णव मत का ही खण्डन करते हैं, वरन् वे अद्वैतवाद को भी अवैदिक समझते हैं और उसपर तीव्र आक्रमण करते हैं, तो वे स्वामीजी से रुष्ट हो गये और उनके विरुद्ध आचरण करने लगे। उनका पक्ष लेकर भाई शङ्कर नाना भाई समाचारपत्रों में स्वामीजी के विरुद्ध लिखने लगे और स्वामीजी का पक्ष लेकर गिरिधारी लाल दयालदास कोठारी 'बाम्बे गज़ट' और 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' में उनके लेखों का उत्तर देने लगे।

सर टी० माधवराव से वार्त्तालाप—एक दिन बड़ौदा के दीवान सर टी० माधवराव और नायब दीवन मिस्टर जनार्दन कीर्त्तनीय स्वामीजी से मिलने आये थे। दीवान साहब उनसे धर्म-विषय पर बात-चीत कर रहे थे। दीवान साहब के किसी कथन पर स्वामीजी ने उनसे कहा था कि दीवान साहब आप इस विषय में कुछ कम समझते हैं।

दो भिन्न मत रखनेवाले एकत्र—पण्डित कृष्णराम इच्छाराम स्वामीजी की गुणगाथा सुनकर ही मुग्ध हो गये थे और उनके दर्शनों के बड़े उत्सुक थे। जब महाराज मुम्बई पधारे तो वे उनसे भेंट करने आये, पण्डितजी उस समय घोर अद्वैतवादी और स्वामीजी अद्वैतवाद के घोरतर शत्रु थे। यद्यपि वे महाराज के पाण्डित्य और महत्त्व से मुग्ध हो गये थे, परन्तु अद्वैतवाद में उनके विचारों में परिवर्त्तन नहीं हुआ था। वे अपने मन में कहते थे कि क्या दयानन्द शङ्कराचार्य्य और योगवासिष्ठ के कर्त्ता से भी बड़े हैं? स्वामीजी ने उन्हें अपने कार्य की सहायता के लिए नियुक्त किया, परन्तु उन्होंने कहा कि मैं नौकर के भाव से नहीं रहूँगा, प्रत्युत सहकारी भाव से रहूँगा। स्वामीजी ने उनकी इस बात से प्रसन्न होकर उन्हें रख लिया। स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में *'वेदान्तध्वान्त निवारण'* पुस्तक रची और आश्चर्य है कि उसे पण्डितजी से ही लिखवाया। स्वामीजी ने उस पुस्तक को दो ही दिन में समाप्त करा दिया।

वेदभाष्य का नमूना—उसके पश्चात् स्वामीजी ने ऋग्वेद के पहले सूक्त का भाष्य जिसमें गुजराती और मरहठी भाषा में अनुवाद भी था, वेदभाष्य नमूने के तौर पर प्रकाशित किया§ जिसमें ऋग्वेद के पहले मन्त्र *'अग्निमीळे पुरोहितम्'* आदि के दो अर्थ किये थे, एक भौतिक और दूसरा पारमार्थिक। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा था कि मैं सारे वेदों का इसी शैली पर भाष्य करूँगा यदि किसी को इसपर आपत्ति हो तो

§ इस नमूने को स्वामीजी ने मिस्टर ग्राउस, कलक्टर बुलन्दशहर व ग्रिफ़िथ साहब के पास भी सम्मत्यर्थ भेजा था और उन्होंने उसपर विरुद्ध सम्मति दी थी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले से ही सूचित कर दे जिससे मैं उसका खण्डन करके ही भाष्य करूँ।

नमूना विद्वानों के पास भेजा गया—यह नमूना स्वामीजी ने काशी के पण्डित बालशास्त्री, स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती प्रभृति तथा कलकत्ता और अन्य स्थानों के पण्डितों के पास भेजा था, परन्तु किसी ने उसकी समालोचना नहीं की, न उसपर कोई आपत्ति उठाई।

घातक कमरे में घुस आये—वल्लभ-सम्प्रदायवालों ने एक बार और स्वामीजी के वध का यत्न किया था। उन्होंने इस कार्य पर दो गुण्डों को नियत किया था। एक दिन वे सुयोग पाकर रात्रि के समय स्वामीजी के कमरे में घुस आये। सेठ सेवकलाल कर्शनदास उस समय स्वामीजी के पास बैठे थे। उन्होंने घातकों को कमरे में घुसते हुए देख लिया और उन्हें पकड़ लिया। धमकाने पर उन गुण्डों ने स्वीकार किया कि स्वामीजी का बध करने के लिए उन्हें दो सौ रुपये मिले थे।

खाकी बलदेव का उद्धार—बलदेवसिंह पाचक जो प्रयाग से स्वामीजी के साथ आया था, कुछ दिन के पश्चात् स्वामीजी के पास से चला गया था। उन दिनों बालकेश्वर में एक दूसरा बलदेवसिंह रहा करता था जो कान्यकुब्ज ब्रह्मण था और ब्रह्मचारी तथा खाकी बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। उसके सिर पर जटा-जूट थे और देह पर भस्मी रमाये बालकेश्वर में स्वामीजी के मार्ग में पड़ा रहता था। महाराज ने उसे समझाया और उपदेश दिया तो उसने अपने जटा-जूट मँडवा दिये और महाराज की दया और प्रेम की दृष्टि से आकृष्ट होकर उनकी सेवा में रहने लगा। वह शरीर से हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी था।

जीवनजी का शिष्य अनुगत—मथुरापन्थ एक भाटिया थे और गोकुलिये गोसाईं जीवनजी के चेले थे। उन्होंने स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर वल्लभ सम्प्रदाय को त्याग दिया था और कण्ठी तोड़ डाली थी। उसने अपने कितने ही साथी बना लिये थे।

ख्याति समुद्र को पार कर गई—महाराज की अपूर्व विद्वत्ता की ख्याति भारतवर्ष की सीमा को लाँघकर यूरोप में भी पहुँच गई थी। जुलाई सन् १८७५ में एक व्यक्ति ने लेप्ज़िंग से 'लेप्ज़िंग' का एक ब्राह्मण के नाम से कलकत्ता के समाचारपत्र 'नेशनल' पेपर में लिखा था "कि पण्डित दयानन्द सरीखा मनुष्य ही यूरोप के लोगों में यह विचार उत्पन्न कर सकता है कि हमारी भूमि की नैसर्गिक शक्तियाँ बिना किसी यूरोपियन प्रभाव के कैसे विस्तृत, तार्किकि बुद्धि और गम्भीर विद्वत्ता रखनेवाले पुरुषों को उत्पन्न कर सकती है।"

मुम्बई में सेवकलाल कर्शनदास, रामदास छबीलदास प्रभृति स्वामीजी से दर्शनशास्त्र अध्ययन किया करते थे। मिस्टर रामदास छबीलदास ने एक पत्र में स्वर्गीय देवेन्द्रबाबू को लिखा था कि मैं स्वामीजी के प्रति कितनी ही बातों के लिए आभारी हूँ। मैंने उनसे वैशेषिकसूत्र और पूर्वमीमांसा का कुछ भाग पढ़ा था।

महाराज कहा करते थे कि भारत का बहुत-सा धन विलायत जाता है, परन्तु यह बन्दूक की गोली के समान कार्य करेगा, क्योंकि जितना धन जाएगा, अंग्रेज उतने ही आलसी और भोगी (विलासप्रिय) होकर अपदस्थ होंगे।

वे यह भी कहा करते थे कि ब्राह्मण-क्षत्रियों को ही संस्कृत करके सच्चे ब्राह्मण और क्षत्रिय बनाना चाहिए। किसी यूरोपियन को ब्राह्मण, क्षत्रिय बनाने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी ब्राह्मणों की प्रशंसा भी किया करते थे और कहा करते थे कि यदि ब्राह्मण वेदों को कण्ठस्थ करके सुरक्षित न रखते तो वेद कहाँ रहते ?

अनेक अंग्रेज़ राजकर्मचारी स्वामीजी से मिलने और व्याख्यान सुनने आया करते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। स्वामीजी अंग्रेज़ राज्य की बहुत प्रशंसा किया करते थे। इसी कारण बहुत से लोग उन्हें अंग्रेजों का गुप्तचर कह दिया करते थे।

स्वामीजी ने मुम्बई-निवास के दिनों में ही नवम्बर सन् १८७४ में वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के खण्डन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में 'वल्लभाचार्य मत खण्डन' नामक एक ट्रैक्ट रचा था जो पहली बार निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई में छपा था।

पं० गट्टूलाल का परिचय—पण्डित गट्टूलाल एक आँख से काणे थे और दूसरी आँख से भी उन्हें दिखाई देना बन्द हो गया था। उनकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति असाधारण थी। वह चक्षुहीन होते हुए भी केवल अपनी स्मरणशक्ति के बल पर शतरञ्ज खेल सकते थे और विरले ही मनुष्य ऐसे निकलते थे जो उन्हें इस खेल में पराजित कर सकें। वे शतावधानी कहलाते थे। वे सौ वस्तु वा विषयों का अवधानपूर्वक यथाक्रम विचार करने वा उत्तर देने का सामर्थ्य रखते थे। यदि सौ बातें चाहे जिस भाषा में कही जाती थीं तो वे उन्हें यथाक्रम दोहरा देते थे। अनेक बार अनेक स्थानों में उन्होंने अपनी इस असामान्य मेधाशक्ति का प्रमाण दिया था। उनकी अलौकिक प्रतिभा और विद्या पर मोहित होकर काशी के पण्डितों ने उन्हें शतावधानी की उपाधि प्रदान की थी। वे सौ श्लोकों को केवल एक बार सुनकर यथा-क्रम बिना एक भी अशुद्धि के दोहरा सकते ते। यद्यपि वह गोसाईं कुलोत्पन्न न थे, परन्तु उनके उपर्युक्त गुणों के कारण महाराजाओं में उनका बड़ा मान था। वे १०-१२ वर्ष की आयु से ही संस्कृत में कविता करने लगे थे।

स्वामीजी से शास्त्रार्थ न करने का कारण—यह सब-कुछ होते हुए भी वे स्वामीजी के सामने आकर शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते थे और इसका कारण यह बतलाते थे कि उनके पास कोई ऐसा आशुलेखक विद्वान् नहीं था जो उभय पक्ष के कथन को ठीक-ठीक अक्षरशः लिपिबद्ध कर सके।

स्वामीजी की प्रतिज्ञा—स्वामीजी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि कोई यह सिद्ध कर देगा कि मूर्त्तिपूजा वेद-प्रतिपादित है तो मैं संन्यास छोड़कर उनका अनुसरण करूँगा और तिलक, त्रिपुंड्र आदि धारण कर लूँगा, परन्तु उसे भी यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि यदि वह वेद से मूर्त्तिपूजा का समर्थन न कर सकेगा तो देव-मन्दिरों से मूर्त्तियाँ उठा देगा और मन्दिर में वैदिक-पाठशाला स्थापित कर देगा। इस दुर्जेय प्रतिज्ञा को सुनकर लोग स्तम्भित हो गये और उन्होंने जब यह बात पण्डित गट्टूलाल से जाकर कही और स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए उनसे अनुरोध किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि इसमें तो कोई क्षति नहीं है कि मैं दयानन्द से पराजित हो जाऊँ, परन्तु मेरे पराजय के साथ यदि देवमूर्त्तियों को भी मन्दिर-च्युत होना पड़े तो इसका उत्तरदायी कौन होगा ?

गट्टूलाल के आक्षेप पर प्रतिज्ञा में परिवर्तन—जब लोगों ने लौटकर यह बात स्वामीजी से कही तो उन्होंने कहा कि मूर्त्ति-निरसन की प्रतिज्ञा हम छोड़ देते हैं, इसकी कोई चिन्ता नहीं, परन्तु पण्डित गट्टूलाल हमारे पास आकर मूर्त्तिपूजा सिद्ध तो करें। पण्डित गट्टूलाल इसपर भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत नहीं हुए।

दयानन्द-कण्टक को दूर करने के लिए सभा—स्वामीजी से पण्डित गट्टूलाल का शास्त्रार्थ होगा यह जनरव होता ही रहा, यद्यपि पण्डित गट्टूलाल स्वामीजी की उपर्युक्त प्रतिज्ञा के उत्तर में शास्त्रार्थ करने से नकार चुके थे। बात यह थी कि नकार करने पर भी पण्डित गट्टूलाल यह यत्न अवश्य कर रहे थे कि दयानन्द कण्टक को किस प्रकार दूर किया जाए। इसी अभिप्राय से उन्होंने गोसाईं जीवनजी के मन्दिर में एक सभा की। उसमें जीवनजी ने पण्डित गट्टूलाल से कहा कि दयानन्द के व्याख्यानादि से वैष्णवधर्म का बड़ा अनिष्ट हो रहा है, बहुत-से लोगों ने उसे छोड़ दिया है और मथुरापन्थ ने भी अनेक मनुष्यों को उससे विमुख कर दिया है, यदि आत्मरक्षा का उपाय न किया गया तो वैष्णवधर्म संसार से उठ जाएगा। इस सभा में यह निश्चिय हुआ कि लालबाग़ में पण्डित गट्टूलाल का दयानन्द के सिद्धान्तों के खण्डन में एक व्याख्यान कराया जाए और दयानन्द को भी शास्त्रार्थ के लिए उसमें बुलाया जाए।

दूसरी सभा—स्वामीजी से गट्टूलाल का शास्त्रार्थ कराया जाए वा नहीं, यह परामर्श करने के लिए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक प्राइवेट मीटिंग सेठ ब्रजभूषण के गृह पर भी हुई थी, जिसकी सूचना एक लेखक ने नारदमुनि के उपनाम से २ दिसम्बर सन् १८७४ के 'मुम्बई समाचार' में छपवाई थी। उसमें भी यही निर्धारित हुआ था कि स्वामीजी से पण्डित गट्टूलाल का शास्त्रार्थ कराया जाए।

इधर स्वामीजी के पक्षवालों की भी गोशाला में प्राइवेट मीटिंग हुई।

शास्त्रार्थ की शर्तों का विज्ञापन—कार्त्तिक कृष्णा १ संवत् १९३१ को पण्डित गट्टूलालजी के पक्ष की ओर से 'आर्यजनहितेच्छु' के नाम से एक विज्ञापन दिया गया कि यदि कोई सज्जन सभा का प्रबन्ध कर दें और उस सभा में कोई गोलमाल भी न होने पावे और विना पक्षपात के कार्य हो तो पण्डित गट्टूलालजी स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ करके इस बात की मीमांसा कर सकते हैं कि कौन विषय सत्य और धर्म-सङ्गत है।

विज्ञापन का उत्तर—स्वामीजी के पक्ष की ओर से उक्त विज्ञापन के उत्तर में कार्त्तिक-कृष्णा ५ को किशन बाबा के नाम से एक विज्ञापन दिया गया, जिसमें कहा गया था कि जब तक कुछ महाराजा लोग अपने नाम से सभा नहीं बुलाते और प्रकटरूप से यह विश्वास नहीं दिलाते कि उक्त सभा सज्जनों की सभा होगी और उसमें कोई गोलमाल नहीं होगा तथा विज्ञापन में स्पष्टरूप से यह नहीं लिखा जाता कि किस विषय पर विचार होगा तब तक स्वामीजी किसी सभा में जाकर शास्त्रार्थ करने पर उद्यत नहीं होंगे।

किशन बाबा एक सदाशय संन्यासी थे। वे स्वयं कुश्ती लड़ा करते थे और दूसरों को भी कुश्ती लड़ना सिखाते थे। वे साधारणतः सभी सार्वजनिक हित के कार्यों में भाग लेने पर उद्यत रहते थे। जहाँ कोई गोलमाल होता था, वहाँ वे सार्वजनिक हितार्थ कार्य करनेवालों का पक्ष लेने और रक्षा करने के लिए उपस्थित रहते थे। लोग उन्हें दादा कहा करते थे। उन्होंने मूलेश्वर में एक पब्लिक लाइब्रेरी भी स्थापित की थी।

प्रत्युत्तर—इस विज्ञापन के उत्तर में ३ दिसम्बर, कार्त्तिक कृष्णा ७ को गोविन्द बालकृष्ण, लालजी मुरारजी, दमोदर माधवजी, नागरदास, परमानन्द दास, हीरालाल मोहनलाल के नाम से एक विज्ञापन निकाला गया, जो इस प्रकार था—

दयानन्द सरस्वती स्वामी का निमन्त्रण अर्थात् दयानन्द सरस्वती स्वामी प्रति-निमन्त्रण

"आपने संवत् १९३१ कार्त्तिक कृष्णा पञ्चमी को विज्ञापन प्रकाशित किया था कि "आर्यलोग सत्यभाव से प्रेरित होकर बिना पक्षपात के आर्यधर्म की आलोचना करें, यह हमारी इच्छा है।" इस विषय की आलोचना के लिए हम प्रतिदिन सभा का अधिवेशन करने के इच्छुक हैं। बहुत शताब्दियों से आर्यलोग जिस भ्रम-जाल में पड़े हैं, उससे उन्हें निकालने के लिए ही ऐसी सभा करके आर्य-साधारण को उत्तेजित करना हमें वाञ्छनीय है।

"२८ नवम्बर के 'आर्य-मित्र' में आपके २५ नवम्बर के व्याख्यान का सारांश छपा है, जो आपने फ्रामजी काऊसजी हॉल में दिया था। उसे पढ़ने से ज्ञात हुआ कि आपके व्याख्यान की समाप्ति पर एक मारवाड़ी ब्राह्मण ने उसके सम्बन्ध में कुछ कहने का यत्न किया था। उसे देखकर आपने कहा था कि यदि कुछ वाद-प्रतिवाद करने की इच्छा हो तो उसके लिए एक अलग दिन निर्धारित कीजिए, मैं उस दिन निश्चय उपस्थित होऊँगा, इसलिए निम्नलिखित पुरुष जिनके हस्ताक्षर हैं, आपसे शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से एक सभा करने के इच्छुक हैं। इसके अनुसार आगामी कार्त्तिक कृष्णा द्वादशी शनिवार, ५ दिसम्बर सायङ्काल के चार बजे से आठ बजे तक लालबाग़ में सभा का अधिवेशन होगा। इस सभा में आर्यधर्म विषयक वाद-प्रतिवाद होगा। इस सभा में उपस्थित होने के लिए आपको प्रकाश्य भाव से निमन्त्रण दिया जाता है और इसके साथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही आपके पक्ष के आर्यविद्वान् और आर्य-सद्गृहस्थों के साथ सभा में उपस्थित होने के लिए ५० टिकट भेजे जाते हैं। इस सभा में शान्ति रखने के लिए पुलिस का बन्दोबस्त किया गया है। आप विज्ञापनादि द्वारा जिस विषय का प्रचार करते हैं, यदि आप सभा में उपस्थित होकर उस विषय का प्रतिपादन कर सकेंगे तो आपके मत के सत्यासत्य को जनसाधारण समझ लेंगे।"

सभा की तिथि का रहस्य—इस सभा को ५ दिसम्बर को रखने में भी एक रहस्य था। बात यह थी कि स्वामीज ने २८ नवम्बर के व्याख्यान में यह घोषणा करदी थी कि ५ दिसम्बर को फ्रामजी काऊसजी हॉल में हमारा एक और व्याख्यान होगा। विज्ञापनदाताओं को यह बात ज्ञात थी। उन्होंने सोचा था कि उस तारीख को स्वामीजी अपना व्याख्यान छोड़कर हमारी सभा में कदापि न आवेंगे और हम यह बात फैला देंगे कि स्वामीजी के लिए सभा करने और उसमें उन्हें निमन्त्रित करने पर भी वे सभा में नहीं आये और हमारा कार्य सिद्ध हो जाएगा।

स्वामीजी का शास्त्रार्थ के लिए प्रयत्न—स्वामीजी को यह विज्ञापन ३ दिसम्बर को ही मिल गया था। इसे पढ़कर उन्होंने गोवर्धनदास मूलजी के कहा कि मथुरादास लौजी मेरे भी मित्र हैं और पण्डित गट्टूलालजी के भी, अतएव आप उनके पास जाकर शास्त्रार्थ सम्बन्धी ये सब बातें कहिए, फिर आप और वे मिलकर पण्डित गट्टूलालजी के पास जाइए और विनयपूर्वक कहिए कि दयानन्द आपसे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत है। गोवर्धनदास ने ऐसा ही किया। वे, मथुरादास लौजी और पन्नाचन्द आनन्दजी ४ दिसम्बर को प्रातःकाल दस बजे पण्डित गट्टूलालजी के पास गये। पण्डित गट्टूलाल उस समय अपने पिता घनश्यामजी के पास बैठे हुए थे।

स्वामीजी के सन्देशहरों का पं० गट्टूलाल से निवेदन—इन लोगों ने पण्डितजी से कहा कि आप मुम्बई में वल्लभ-सम्प्रदाय में सबसे प्रबल और प्रधान हैं और इस सम्प्रदाय के मुख्य पण्डित कहलाते हैं, इसलिए दयानन्द का आपसे शास्त्रार्थ करना वाञ्छनीय है। आपको यह प्रतिपादित करना होगा कि वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्त शास्त्रसिद्ध हैं और वल्लभाचार्य के वंश के लोग ही गुरुपद के योग्य हैं। दयानन्द का पक्ष यह होगा कि जैसे वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्त शास्त्रसिद्ध नहीं हैं, वैसे ही वल्लभाचार्य के वंशीयगण भी गुरु माने जाने योग्य नहीं हैं। इस विचार्य विषय के नीचे आपके और दयानन्द के हस्ताक्षर होंगे और उसकी एक-एक प्रति उभयपक्ष के पास रहेगी। सभा में षट्शास्त्रवेत्ता पण्डित उपस्थित रहेंगे। ५० शिक्षित भद्र पुरुष आपकी ओर से और ५० दयानन्द की ओर से उपस्थित होंगे। प्रत्येक पक्ष की और से नियत पुरुष सभा के समस्त कार्य-विवरण को लिखते रहेंगे। सभा प्रतिदिन दो घण्टे हुआ करेगी। सभा-विसर्जन होने पर उस दिन के लिखित कार्य-विवरण पर उभयपक्ष के हस्ताक्षर होंगे और सभास्थ—पण्डितों के और मध्यस्थों के भी साक्षीरूप से हस्ताक्षर हुआ करेंगे। जो पक्ष कोई शास्त्र-वचन प्रमाण में प्रस्तुत करेगा उसे तत्क्षण वह वचन शास्त्र में दिखाना होगा और उसका पता लेखकगण लिख लेंगे। जो पक्ष किसी प्रमाण को शास्त्र में न दिखा सकेगा तो ग्राह्य न होगा। जब तक एक पक्ष का वक्तव्य पूरा न होगा तब तक दूसरा पक्ष बोलने न पाएगा। जितने दिन तक शास्त्रार्थ-विषय का विवेचन समाप्त न होगा उतने दिन तक सभा का कार्य चलता रहेगा। जब सभा का कार्य समाप्त हो जाएगा तब कार्य-विवरण पर उभयपक्ष और मध्यस्थों के हस्ताक्षर होगें और उसे छपाकर जन साधारण में बाँट दिया जाएगा। सभा का समस्त कार्य आद्योपान्त शिष्टता और मान-मर्यादा के साथ सम्पन्न करना होगा।

पण्डित गट्टूलाल की शास्त्रार्थ से असम्मति—यह बात सुनकर पण्डित गट्टूलाल तथा उनके पिता ने शास्त्रार्थ करने से असम्मति प्रकट की। पण्डित गट्टूलाल ने कहा कि यदि शास्त्रार्थ में हमारी जय हुई तो अच्छा ही है, परन्तु यदि पराजय हुई तो सारा दायित्व हमारे कन्धों पर आकर पड़ेगा, अतएव महाराजाओं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की सम्मति के बिना हम ऐसे नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ करने पर उद्यत नहीं हैं और महाराजा लोग भी इस प्रकार के शास्त्रार्थ की अनुमति नहीं देंगे।

जब प्रशंसित सज्जनों ने यह संवाद स्वामीजी से कहा तो उन्हें अगत्या पण्डित गट्टूलाल से शास्त्रार्थ करने का सङ्कल्प छोड़ना पड़ा।

पण्डित गट्टूलाल की सभा; स्वामीजी सभा में क्यों नहीं गये ?—५ दिसम्बर को इधर तो लालबाग़ में पण्डित गट्टूलालजी की सभा हुई और उधर फ्रामजी काऊसजी हॉल में स्वामीजी का व्याख्यान हुआ। पण्डित गट्टूलाल की सभा में स्वामीजी जा ही नहीं सकते थे, क्योंकि उसी तारीख को और उसी समय उनका व्याख्यान होना था। उनके वहाँ न जाने का दूसरा कारण यह भी था कि वल्लभाचारियों ने उनको अपमानित करने का सङ्कल्प कर लिया था और यह बात उन्हें ज्ञात हो गई थी। मुम्बई के शिक्षित समुदाय की भी यही सम्मति थी कि उन्हें उक्त सभा में नहीं जाना चाहिए।

"मुम्बई गज़ट" ने अपने तारीख ४ दिसम्बर सन् १८७४ के अङ्क में लिखा था—

"हमें ज्ञात हुआ है कि हिन्दूसमाज के प्रभावशाली सदस्यों ने यह प्रबन्ध किया है कि शनिवार को एक पब्लिक मीटिंग की जाए उसमें स्वामीजी दयानन्द को बुलाया जाए और उनसे अपने सिद्धान्तों पर पण्डित गट्टूलालजी से अथवा अन्य २०० पण्डितों में से किसी एक से, जो उनपर आक्रमण करना चाहे, शास्त्रार्थ करने को कहा जाए। मूर्त्तिपूजा की शास्त्रानुकूलता में जिनका विश्वास है, उनमें से जो अधिक उत्तेजनापूर्ण स्वभाव के हैं, उनका विचार है कि यदि स्वामी दयानन्द अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने के इस पब्लिक चैलेंज को स्वीकार न करेंगे तो वे अवश्य भीरु, पाखण्डी और अनेक भयावह गुणों से सम्पन्न हैं, परन्तु हम नहीं कह सकते कि स्वामीजी ऐसी सभा में जाना स्वीकार करेंगे भी, जहाँ यह अधिक सम्भावना है कि एक पक्ष की ओर से उस मनुष्य के प्रतिकूल जिसने उसके प्राचीनतम और अत्यन्त प्रतिष्ठास्पद परम्परा (मूर्त्तिपूजा) पर आक्रमण करने का साहस किया है, हुल्लड़ मचाया जाएगा। स्वामीजी अपने वैदिक सिद्धान्तों को चुपचाप ढंग से अथवा पुस्तकों द्वारा उतनी ही कृतकार्यता के साथ सिद्ध कर सकते हैं, जितनी कृतकार्यता के साथ ऐसी सभा में जाकर कर सकते हैं, जिसमें पुलिस से आने की प्रार्थना की गई है।

इसलिए ऐसी पब्लिक मीटिङ्ग—जिसमें उनके पक्ष के लोग बहुत ही न्यून होंगे और उनके विरोधी बहुत अधिक, वे विरोधी जिनके प्रियतम परम्परागत विचारों पर उन्होंने प्रहार किया है—उन अत्यावश्यक समस्याओं को सुलझाने का सर्वोत्तम उपाय नहीं है, जो उन्होंने उत्पन्न की हैं।

सभा का विवरण—पण्डित गट्टूलाल सभा में पधारे। सभापति का आसन एक भाटिया सेठ ठाकुर इन्द्रजी नारायणी ने ग्रहण किया। कुछ देर तक स्वामीजी के आने की प्रतीक्षा की गई। जब वे नहीं आये तो हीरालाल मोहनलाल नामक एक व्यक्ति ने खड़े होकर उच्च स्वर से कहा—"स्वामी दयानन्द अब कहाँ है? उन्हीं के लिए यह सभा बुलाई गई है। अब वे आकर अपने पक्ष का समर्थन करें। यतः वे सभास्थल में नहीं आये हैं, अतः उन्हें प्रतारक के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।"

पं० गट्टूलाल का व्याख्यान—स्वामीजी की प्रतीक्षा करने पश्चात् पण्डित गट्टूलाल ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। व्याख्यान में मूर्त्तिपूजा के समर्थन में षड्विंश ब्राह्मण का **"प्रतिमा हसन्ति, रुदन्ति"** इत्यादि प्रमाण दिया, पुष्टिमार्ग के मण्डन में एक भी प्रमाण न दिया। केवल इतना ही कहा कि वेद और शास्त्र सब ही इसका समर्थन करते हैं। यह भी कहा कि पुराण और इतिहास भी प्रामाणिक हैं।

राजकृष्ण महाराज भी कई साथियों को लेकर सभा में गये थे। उनसे पण्डित गट्टूलालजी का कुछ वादविवाद हुआ था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित गट्टूलाल ने व्याख्यान मे यजुर्वेद के आठवें अध्याय का एक मन्त्र उद्धृत करके कहा था कि इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द आया है, इससे स्पष्ट है कि वैदिक समय में मूर्त्तियाँ थीं। उन्होंने यह भी कहा था कि देवता ईश्वर के ही अङ्ग हैं, अतः दयानन्द क यह कथन कि वेद मूर्त्तिपूजा का समर्थन नहीं करते ठीक नहीं है, क्योंकि इस मन्त्र में यह कहा गया है कि हे अग्ने ! तेरी सहस्र प्रतिमाएँ हैं और हम तुझसे प्रार्थना करते हैं, इत्यादि।

प्रतिमा शब्द का अर्थ—जनार्दनगोपाल ने इसपर पण्डित गट्टूलाल से कहा कि प्रतीमा शब्द के अर्थों को देवमूर्त्ति के अर्थ में सीमित करने के लिए क्या युक्ति है, क्योंकि प्रतिमा शब्द के योगिक अर्थ किसी भौतिक पदार्थ की प्रतिकृति वा चित्र के हैं ? इसका पण्डित गट्टूलाल से कोई उत्तर न बन सका और वे चुप हो गये।

पं० गट्टूलाल के शिष्य के प्रश्न, गुरु निरुत्तर—स्वयं पण्डित गट्टूलालजी के शिष्य कालिदास पण्डित ने उनसे प्रश्न किया कि महाराज ! लालजी (माखननिर्मित बाल गोपाल) की मूर्त्ति वेद में कहाँ है ? पण्डित गट्टूलाल इस प्रश्न का उत्तर कहाँ से देते, कहीं वेद में मूर्त्ति का उल्लेख होता तो कुछ कहते। उन्हें निरुत्तर होना पड़ा। उनके साथियों ने पण्डित गट्टूलालजी को साधारण कोटि के विद्वानों के सामने निरुत्तर होता देखकर कोलाहल करना आरम्भ कर दिया और सभा विसर्जित हो गई।

५ दिसम्बर को ही जिस दिन यह सभा हुई, भगवानलाल इन्द्रजीत ने एक विज्ञापन दिया था कि समझ में नहीं आता कि इस सभा का क्या प्रयोजन है, यदि स्वामी दयानन्द सभा में न आवें तो पण्डित गट्टूलाल ही स्वयं उनके पास जाकर शास्त्रार्थ क्यों न करलें।

स्पष्ट है कि वास्तव में इस सभा के करने से सत्यासत्य के निर्णय का उद्देश्य न था। अन्यथा जिन नियमों के अनुसार स्वामीजी शास्त्रार्थ करना चाहते थे और जिनके विषय में उन्हें मथुरादास लौजी और गोवर्धनदास मूलजी ने ४ दिसम्बर को अर्थात् इस सभा के होने से एक दिन पूर्व ही सूचित कर दिया था, उन्हें स्वीकार करके शास्त्रार्थ कर लेते। वहाँ तो उद्देश्य ही कुछ और था। वहाँ तो यह अभीष्ट था कि शास्त्रार्थ भी न करना पड़े और विजयपताका भी फहराने का अवसर मिल जाए, परन्तु दौर्भाग्य से वल्लभाचारियों की अभीष्ट-सिद्धि न हुई। स्वामीजी के उस सभा में न जाने से किसी को भी यह विश्वास न आया कि स्वामीजी पण्डित गट्टूलाल से शास्त्रार्थ नहीं कर सकते थे और इसी भय से वे सभा में न आये थे। यद्यपि स्वामीजी उस सभा में न आये, परन्तु फिर भी पण्डित गट्टूलालजी का पराजय ही हुआ, वह न जनार्दनगोपाल सालिसिटर के प्रश्न का ही उत्तर दे सके और न अपने ही शिष्य कालिदास पण्डित का। इस सभा और पण्डित गट्टूलाल के भाषण का यही प्रभाव हुआ कि लोगों को यह विश्वास हो गया कि वास्तव में मूर्त्तिपूजा वेद-मूलक नहीं है।

इसके पश्चात् स्वामीजी ने सूरत आदि स्थानों में गुजरात, काठियावाड़-निवासियों के सन्मार्ग दशनार्थ भ्रमण करने का विचार किया।

विरोधियों की कुटिलता—जब वे मुम्बई से चलने लगे तो विपक्षियों को फ़िर यह सूझी कि स्वामीजी अब जा ही रहे हैं, रुकेंगे तो हैं नहीं, चलो इतना तो कह दो कि वह शास्त्रार्थ के भय के कारण ही मुम्बई से पलायन कर रहे हैं। उन्होंने ऐसा ही किया भी। ऐसे ही शब्दों का उल्लेख करके उन्होंने एक विज्ञापन वितरण किया। इसके उत्तर में गिरधारीलाल प्रभृति ने दूसरा विज्ञापन दे दिया कि आप लोग मध्यस्थों को नियत करने का पक्का प्रबन्ध करें हम स्वामीजी को वापस बुलाकर शास्त्रार्थ करा देंगे, परन्तु वहाँ ऐसा कौन करता, वह तो एक कथनमात्र था, कार्य करना तो था ही नहीं, मध्यस्थ नियत करने से इन्कार कर दिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चदश अध्याय

मार्गशीर्ष सं० १९३१—माघ सं० १९३१=दिस० १८७४—जन० १८७५

(१ दिस०—दिस०) सूरत (मार्ग० कृ० ८—मार्ग०)

स्वामीजी की इच्छा हुई कि गुजरात के अन्य नगरों तथा काठियावाड़ में भी धर्मप्रचारार्थ यात्रा करें, अतः उन्होंने सूरत जाने का विचार किया। पण्डित कृष्णराम इच्छाराम से उन्होंने कहा कि वहाँ उनके ठहरने का प्रबन्ध करा दें। पण्डितजी ने अपने कविता-गुरु पण्डित नर्मदाशङ्कर को पत्र लिखा, जिसके उत्तर में कविजी ने स्वामीजी के ठहरने का प्रबन्ध करना प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और एक पत्र स्वामीजी को भी लिखा जिसमें अनुनय पुरस्सर उनसे सूरत पधारने की प्रार्थना की। इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने मुम्बई के किसी प्रतिष्ठित पुरुष से भी सूरत के डिप्टी कलक्टर राव बहादुर जगजीवनदास के नाम एक परिचय-पत्र लिया और बलदेवसिंह को अपने जाने से पूर्व ही सूरत भेज दिया कि वहाँ जाकर उनके निवास-स्थान का प्रबन्ध करे। स्वामीजी को सबसे अधिक निवास-स्थान की चिन्ता रहती थी। स्थान का न केवल रमणीय, एकान्त और बस्ती से बाहर होना आवश्यक था, प्रत्युत वह ऐसा भी होना चाहिए था, जहाँ स्त्रियों का आना-जाना न हो।

स्वागत के लिए कोई न आया—स्वामीजी १ दिसम्बर को ही सूरत के लिए प्रस्थित हो गये। जब वे सूरत पहुँचे तो उन्होंने देखा कि रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए कोई भी उपस्थित न था। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् राव बहादुर जगजीवनजी की गाड़ी आई। स्वामीजी और पण्डित कृष्णराम इच्छाराम उसमें सवार होकर राव बहादुर के बाग़ में चले गये। यही स्थान उनके ठहरने के लिए नियत किया गया था। स्वामीजी तो बाग़ में ठहर गये, परन्तु पं० कृष्णराम इच्छाराम पं० नर्मदाशङ्कर के घर चले गये। पण्डितजी ने अपने गुरु को उपालम्भ दिया कि स्टेशन पर एक व्यक्ति भी स्वामीजी के स्वागत के लिए नहीं पहुँचा। उनके गुरुजी ने कहा कि इसमें हमारी भूल हो गई। तत्पश्चात् गुरु और शिष्य दोनों स्वामीजी की सेवा में पहुँचे।

स्थान-परिवर्तन; संस्कारविधि का आरम्भ—स्वामीजी ने उनसे जगजीवनजी के बाग़ में ठहरने की अनिच्छा प्रकट की, क्योंकि वह स्थान नदी के तट पर था और नदी पर स्नानादि के लिए स्त्रियाँ आती थीं, जिनका कोलाहल उनके कानों तक पहुँचता था। इसपर पण्डित कृष्णराम इच्छाराम ने उनके ठहरने का प्रबन्ध सेठ नगीनदास के सौदागर प्रेसवाले बँगले में कर दिया, जो कातार ग्राम के मार्ग पर था। सूरत-वास के शेष दिनों में स्वामीजी इसी बँगले में ठहरे रहे और यहाँ ही उन्होंने पण्डित कृष्णराम इच्छाराम से संस्कारविधि लिखानी आरम्भ की।§

आहारादि का प्रबन्ध न हुआ—सूरत में स्वामीजी के ठहरने का प्रबन्ध तो समुचित रीति से हो गया, परन्तु उनके आहारादि का प्रबन्ध किसी ने न किया। सम्भव है सूरतवालों ने यह सोचा हो कि मुम्बई के बड़े-बड़े सेठ उनके भक्त हैं और राजे-महाराजे तक उनके सेवक हैं, उन्हें कमी किस बात की है? इधर जो

§ यह भयानक भूल है। संस्कारविधि के प्रारम्भिक श्लोकों के अनुसार उसका लेखन कार्त्तिक कृष्णा ३० (उत्तर भारतीय पंचाङ्गानुसार मार्गशीर्ष कृ० ३०) को आरम्भ हुआ था। —यु० मी०।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुपया उनके पास था, वह दो-चार दिन में ही समाप्त हो गया और जो २—४ रुपये पं० कृष्णराम इच्छाराम के पास थे वे भी व्यय हो गये।

खिचड़ी पर ही निर्वाह—वे बज़ार से खिचड़ी लाकर स्वामीजी को खिलाते रहे, परन्तु स्वामीजी ने अपनी किसी भाव-भङ्गी से अर्थ-कष्ट की बात किसी दर्शक पर प्रकट न की, परन्तु जब द्रव्य का सर्वथा अभाव हो गया तो पण्डित कृष्णराम इच्छाराम को पण्डित नर्मदाशङ्कर से वास्तविक अवस्था कहनी ही पड़ी। इसे सुनकर वह अत्यन्त दुःखित और लज्जित हुए और उन्होंने तुरन्त ही रुपया इक्ट्ठा कर दिया।

सूरत का लूथर—सूरत में पं० दुर्गाराम मोता नागर ब्राह्मण बड़े प्रतिष्ठित थे। यद्यपि वे अंग्रेजी नहीं पढ़े थे, परन्तु सुधारकों में अग्रगण्य थे, यहाँ तक कि लोग उन्हें सूरत का लूथर कहा करते थे। वे देशाभिमानी और कुरीतियों के घोर प्रतिवादी थे। वे देशी शिल्प के भी बड़े पक्षपाती थे। वे गवर्नमेंट गुजराती स्कूल के हैडमास्टर थे। उनके और पण्डित नर्मदाशङ्कर के परामर्श से यह निश्चित हुआ कि सूरत में स्वामीजी के चार व्याख्यान कराये जाएँ।

पहला व्याख्यान—स्वामीजी का पहला व्याख्यान २ दिसम्बर १८७४ को एण्ड्रूज़ पब्लिक लाइब्रेरी में हुआ था। सभापति का आसान डिप्टी जगजीवनदासजी ने ग्रहण किया। व्याख्यान का विषय था—*"वल्लभाचार्य, राममोहनराय, स्वामी नारायणमत के प्रवर्त्तक सहजानन्द और रामानुजाचार्य"*। स्वामीजी ने राममोहनराय के विषय में कई प्रशंसासूचक वचन कहे और उनके साथ वर्त्तमान ब्राह्मसमाज का पार्थक्य दिखाया। फिर वल्लभाचार्य का थोड़ा-सा जीवन-चरित्र वर्णन किया और तदनु उनके सिद्धान्तों का खण्डन किया। सभानेता यद्यपि स्वयं वल्लभ सम्प्रदाय के थे, परन्तु वे शान्तभाव से स्वामीजी-कृत आलोचना को सुनते रहे।

विद्वेषी सम्पादक—इसके पश्चात् उन्होंने सहजानन्द के सिद्धान्तों की आलोचना करना आरम्भ किया। स्वामीजी इस विषय पर थोड़ा ही कथन कर पाये थे कि 'गुजरातमित्र' के तत्कालीन सम्पादक का भ्राता गेलाभाई उठकर कहने लगा कि स्वामीजी ने जो कुछ कहा है वह सब मिथ्या है। पाठकों को स्मरण रहे कि उक्त सम्पादक स्वामीजी के अत्यन्त विद्वेषी थे और कोई अवसर उनपर कटाक्ष किये बिना न जाने देते थे। सभापति ने गेलाभाई को तुरन्त रोक दिया और कहा कि आपको जो कुछ कहना हो व्याख्यान की समाप्ति पर कहना।

शास्त्रार्थ का चैलैंज—स्वामीजी ने अपना व्याख्यान समाप्त किया और श्रोतृवर्ग से कहा कि सहजानन्द के मत के विषय में जिस किसी को शास्त्रार्थ करना हो वह सम्मुख आए, परन्तु न तो गेलाभाई ही और न अन्य ही कोई सहजानन्दी आगे आया। इसके पश्चात् निर्भयराम मनसुखराम कण्ट्रैक्टर ने खड़े होकर कहा कि मैं सहजानन्द के सम्प्रदाय में दश वर्ष रह चुका हूँ और उसके सब भेद और रहस्य मुझे ज्ञात हैं। यह कहकर उसने उक्त सम्प्रदाय का विशेषरूप से खण्डन किया।

स्वामीजी की दूसरी वक्तृता ४ दिसम्बर को गवर्नमेंट हाई स्कूल के अहाते में हुई और उसके सभापति प्रिंसिपल साहब थे। वक्तृता का विषय था बुद्धोक्त, जिनोक्त, पुराणोक्त, तन्त्रोक्त धर्म में आर्यधर्म का स्वरूप।

तीसरी वक्तृता सेठ रामचन्द्र की कन्या पाठशाला में हुई।

व्याख्यान मन्दिर बन्द—स्वामीजी की चौथी वक्तृता ७ दिसम्बर को रघुनाथपुरे के सेठ ठाकुरभाई चुन्नीलाल चाकावाले के शिव-मन्दिर से मिले हुए एक मकान में होने को थी, परन्तु जब वक्तृता का समय हुआ और लोग वहाँ पहुँचे तो उन्होंने देखा कि मकान का द्वार भीतर से बन्द है। लोगों ने द्वार को बहुतेरा खटखटाया और आवाजें दीं, परन्तु किसी ने न सुना। सेठ ठाकुरभाई चुन्नीलाल स्वामीजी में बहुत श्रद्धा प्रकट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते थे और उनके पास भी आये थे, परन्तु वहाँ उनका भी पता न था।

व्याख्यान यहाँ ही होगा—श्रोतृवर्ग में से किसी-किसी ने स्वामीजी से यह प्रस्ताव किया कि यदि आपकी अनुमति हो तो व्याख्यान का अन्यत्र प्रबन्ध कर दिया जाए और उनमें से कई ऐसा प्रबन्ध करने पर उद्यत भी हुए, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता, व्याख्यान इसी स्थान पर होगा, क्योंकि यहाँ होने की ही घोषणा की गई है। किसी ने उनके लिए एक कुर्सी ला दी और उसी पर बैठकर स्वामीजी ने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया।

श्रोता धूप में बैठे रहे—श्रोता लोग वहीं धूप में और भूमि पर बैठकर शान्तिपूर्वक व्याख्यान सुनने लगे। व्याख्यान के बीच में ही सूरत के एक मठधारी मोहन बाबा ब्रह्मचारी आये। उन्होंने स्वामीजी को दण्डवत् होकर प्रणाम किया। स्वामीजी ने उन्हें हाथ पकड़कर उठाया और दूसरी कुर्सी मँगाकर अपने बराबर बिठाया। यथासमय स्वामीजी ने अपना वक्तृत्व समाप्त किया और श्रोतागण उपदेश से सुख और शान्ति लाभ करके और स्वामीजी के धैर्य और मर्यादा-पालन की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घरों को गये।

मोहन बाबा—मोहन बाबा बड़ोदा के नृसिंह आचारी के गुरु थे, उनका वयःक्रम अस्सी वर्ष के लगभग था। वे संस्कृतज्ञ नहीं थे, परन्तु गुजराती अच्छी जानते थे। गुजराती में उन्होंने बहुत-से भजनों की रचना की थी। वे मूर्त्तिपूजा के घोर विरोधी थे और उनके भजनों में भी मूर्त्तिपूजा का खण्डन रहता था। वे योगवासिष्ठ की कथा कहा करते थे। सूरत के शिक्षित और सम्भ्रान्त लोगों की उनमें विशेष श्रद्धा थी और वे उनका बहुत सम्मान करते थे। सूरत में स्वामीजी के आगमन से पहले से ही ब्रह्मचारीजी की उनमें गहरी श्रद्धा थी। वे कहा करते थे कि स्वामी दयानन्द एक अवतारी पुरुष हैं, मैं उन्हें सूरत बुलाऊँगा और उनका विशेष सम्मान करूँगा। ब्रह्मचारीजी को स्वामीजी के पद-प्रान्त में दण्डवत् होता देखकर सूरत के लोग अत्यन्त विस्मित हुए।

व्याख्यान की समाप्ति पर ब्रह्मचारीजी ने स्वामीजी से विनीतभाव से प्रार्थना की कि आप मेरे स्थल पर पधारने का अनुग्रह कीजिए। स्वामीजी ने कहा कि इस समय तो हम नहीं जा सकते, यदि आप आवश्यक समझें तो जिस बँगले में हम ठहरे हुए हैं, वहाँ आकर हमसे मिलिए।

मोहन बाबा कैसे पुरुष हैं—बँगले पर पहुँचकर स्वामीजी ने पण्डित कृष्णराम इच्छाराम से पूछा कि ब्रह्मचारीजी कैसे पुरुष हैं और उनकी ओर से किसी कपट-व्यवहार के होने की तो आशङ्का नहीं है। पण्डितजी ने ब्रह्मचारीजी की बहुत प्रशंसा की और हर प्रकार से उनका सन्तोष कर दिया। अगले दिन ब्रह्मचारीजी स्वामीजी के पास आये और अपना निमन्त्रण दोहराया। स्वामीजी ने उसे स्वीकार कर लिया।

पाँचवी वक्तृता पण्डित नर्मदाशङ्कर के घर के निकट एक मैदान में हुई। उसमें सभापति दुर्गाराम मोता थे। वक्तृता का विषय अद्वैतवाद था। पण्डित इच्छाशङ्कर शास्त्री ने उसका प्रतिवाद करना आरम्भ कर दिया। सभापति ने उन्हें रोक दिया और कहा कि आपको जो कुछ कहना हो व्याख्यान के समाप्त हो जाने पर कहिए।

शास्त्री का शास्त्रार्थ—व्याख्यान समाप्त हो जाने पर पण्डित इच्छाशङ्कर और कतिपय अन्य शास्त्री स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से आगे आये, परन्तु स्वामीजी ने दो-चार बातों में ही उन्हें निरुत्तर कर दिया। तब तक सन्ध्या समय हो गया था और अँधेरा होने लगा था कि इतने में सभा में दो-चार ईंटें आकर गिरीं, अतः इस भय से कि अन्धकार से लाभ उठाकर दुष्ट लोग कुछ और उपद्रव न कर बैठें, सभा विसर्जन करनी पड़ी। लोग स्वामीजी को पण्डित नर्मदाशङ्कर के मकान पर ले गये और फिर उन्हें गाड़ी में सवार कराकर बँगले पर पहुँचा आये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपमानित करने का संकल्प—पूर्वोक्त गेलाभाई और कुछ दूसरे दुष्ट प्रकृति के लोगों ने स्वामीजी को अपमानित करने का सङ्कल्प किया था और सम्भवतः उन्हीं लोगों के षड्यन्त्र से सभा में ईंटें आई थीं। ऐसा भी अनुमान है कि यह भी गेलाभाई के ही प्रयत्न का फल था, जो रघुनाथपुरे की वक्तृता के दिन व्याख्यान के लिए पूर्व से निर्धारित मकान अन्दर से बन्द कर दिया गया था। उस मकान के स्वामी सेठ ठाकुरभाई वल्लभ-सम्प्रदाय के थे, सम्भव है कि उनके गुरु गोसाइयों ने ही उन्हें मकान बन्द कर देने पर बाध्य किया हो।

मठधारी की सेवा-शुश्रूषा—सभा समाप्त हो जाने पर ब्रह्मचारी मोहन बाबा के निमन्त्रणानुसार स्वामीजी पण्डित नर्मदाशङ्कर, दुर्गाराम मोता और पण्डित कृष्णराम प्रभृति को साथ लेकर ब्रह्मचारीजी के मठ पर गये। ब्रह्मचारीजी ने उस दिन मठ को खूब सजाया था और मठ के द्वार और प्रवेशपथ पर बहुमूल्य वस्त्र लटकाये थे। ऐसा ज्ञात होता था कि लाट साहब के स्वागत की तैयारी हो रही है। यह सब आयोजन स्वामीजी की अभिरुचि के प्रतिकूल था, अतः स्वामीजी उससे कुछ प्रसन्न नहीं हुए। ब्रह्मचारीजी ने बड़े प्रेम और सम्मान से स्वामीजी का स्वागत किया, उन्हें उच्च आसन पर बिठाया और चन्दन, जयमाल, पुष्पवृष्टि आदि से उनका सत्कार किया और अपनी शिष्य-मण्डलीसहित उनकी जय बोली।

मठधारी की चेलियों को भी दर्शन दिये—ब्रह्मचारीजी ने एक दूसरे कमरे में अपनी शिष्याओं को बिठा रक्खा था। उन्होंने स्वामीजी का वृत्तान्त पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ा था और उनके दर्शनों की अभिलाषिणी थीं। जब ब्रह्मचारीजी ने स्वामीजी से स्त्रियों को दर्शन देने की प्रर्थना की तो उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया, परन्तु पण्डित नर्मदाशङ्कर आदि ने उनसे कहा कि आप जितेन्द्रिय पुरुष हैं और ये स्त्रियाँ आपके दर्शनों की अभिलाषा से यहाँ आई हैं, उन्हें निराश करना उचित नहीं है।

स्त्रियों की ओर न देखा—स्वामीजी को उनके अनुरोध की रक्षा करनी पड़ी और वे स्त्रियों के प्रकोष्ठ में गये, परन्तु स्त्रियों की ओर न देखकर भूमि की ओर टकटकी लगाये बैठे रहे। स्त्रियों ने दूर ही से उनपर पुष्प-वृष्टि की। स्त्रियों ने उनके चरण छूने की नितान्त इच्छा प्रकट की, परन्तु इसपर वे किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुए।

मठधारी का भोजन स्वीकार किया—ब्रह्मचारीजी ने स्वामीजी के लिए अनेक प्रकार के व्यञ्जन प्रस्तुत कर रक्खे थे। जब वे स्त्रियों को दर्शन देकर बाहर आये तो ब्रह्मचारीजी ने उनसे भोजन करने के लिए बहुत आग्रह किया। इसपर वे पण्डित नर्मदाशङ्कर आदि के साथ भोजन करने बैठे और उन्होंने भी गुजराती रीति के अनुसार अन्य वस्त्र उतारकर और केवल मुकटा§ धारण करके भोजन किया। भोजन के पश्चात् ब्रह्मचारीजी के सेवा-सत्कार से सन्तुष्ट होकर स्वामीजी बँगले पर चले आये।

बँगले पर स्वामीजी की रक्षा के लिए डिप्टी जगजीवनदास ने दो पुलिस कॉन्स्टेबिलों को नियत कर दिया था जो हर समय बँगले पर उपस्थित रहते थे।

ग्रामवासियों का निमन्त्रण, पोंक भी खाई—एक दिन कातार ग्राम के कुछ आलोवाला देशवई ब्राह्मण स्वामीजी के पास आये और उनसे ग्राम में पधारने की प्रर्थना की। ये लोग यद्यपि ब्राह्मण हैं, परन्तु भिक्षावृत्ति नहीं करते और कृषि का व्यवसाय करते हैं। स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। ग्राम में पहुँचकर वे आम-कानन में विराजे और ग्रामवासियों को उपदेश से कृतार्थ किया। उसके पश्चात् उन लोगों ने अग्नि में नई ज्वार भूनकर स्वामीजी को खिलाई जो उन्होंने सब लोगों के साथ बड़े प्रेम से खाई। तत्पश्चात् स्वामीजी बँगले को लौट आये। वे इतने वेग से चलते थे कि न तो पण्डित कृष्णराम इच्छाराम ही और न दोनों

§ पूजन अथवा भोजन के समय धारण की जानेवाली धोती। —**जगदीश्वरानन्द**

CC0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कॉन्स्टेबिल ही उनके साथ चल सकते थे, वे आगे निकल जाते थे और ये लोग पीछे रह जाते थे और बार-बार इन लोगों की प्रतीक्षा करने के लिए खड़े हो जाते थे। स्वामीजी कॉन्स्टेबिलों से कहते थे कि तुम लोग सिपाही होकर भी हमारे साथ नहीं चल सकते, देखो ! हम तो कुछ भी बेग से नहीं चल रहे हैं।

भय से मार्ग छोड़ दिया—सूरत में स्वामीनारायण मत के लोग स्वामीजी से इतना भय करने लगे थे कि यदि कभी उन्हें आता हुआ देख लेते थे तो मार्ग से हट जाते थे। कातार ग्राम में स्वामीनारायण मत वालों का एक मन्दिर था, जिसमें उस मत के कुछ संन्यासी रहते थे। उन्हें सूरत जाते हुए उसी बँगले के सामने से आना-जाना पड़ता था, जिसमें स्वामीजी ठहरे हुए थे। जब तक उसमें स्वामीजी की अवस्थित रही तब तक इन संन्यासियों ने बँगले के सामने होकर आना-जाना छोड़ दिया, दूसरे मार्ग से आने-जाने लगे।

औचित्य में भी अनौचित्य—'गुजरात-मित्र' के तत्कालीन सम्पादक स्वामीजी के अत्यन्त विरुद्ध थे। वे उनकी प्रत्येक बात में दोष निकालने पर तत्पर रहते थे। औचित्य में भी उन्हें अनौचित्य दिखाई देता था। स्वामीजी व्याख्यान के बीच में किसी को बोलने की आज्ञा नहीं देते थे। यदि कोई कुछ कहना चाहता था तो कह दिया करते थे कि व्याख्यान के समाप्त होने पर कहना, अथवा हमारे डेरे पर आकर पूछना। ऐसा करना सर्वथा समीचीन ही था। यदि व्याख्यान के बीच में ही लोगों को प्रश्न वा आक्षेप करने की आज्ञा दे दी जाती तो व्याख्यान ही न हो पाता, परन्तु 'गुजरात-मित्र' के सम्पादक को इसमें भी बुराई ही दिखाई पड़ी और उनसे बिना आक्षेप किये न रहा गया। इस बात का उल्लेख करके उन्होंने लिखा कि "स्वामी दयानन्द इस समय सूरत में नगर से दो-तीन मील दूर कातार ग्राम के बँगले में ठहरे हैं, उनसे प्रश्न करने इतनी दूर कौन जाए"। इसमें स्पष्ट व्यंग्य है, मानो प्रश्नोत्तर से बचने के लिए ही वे नगर से इतनी दूर ठहरे थे और इसी लिए वे व्याख्यान के बीच में किसी को प्रश्न करने की आज्ञा नहीं देते थे, परन्तु सम्पादक महोदय ने यह नहीं सोचा कि यदि स्वामीजी का यही भाव होता तो वे व्याख्यान के समाप्त होने पर लोगों को प्रश्न करने की आज्ञा क्यों देते।

सरकार को प्रतिकूल भड़काने का यत्न—सम्पादक महोदय ने केवल इतने पर ही बस नहीं किया, उन्होंने इससे भी कहीं अधिक नीच और घृणित व्यवहार किया। उन्होंने सरकार को स्वामीजी के प्रतिकूल भड़काने में भी इतस्ततः नहीं किया।

'गुजरात-मित्र' के १२ दिसम्बर १८७४ के अङ्क में स्वामीजी के व्याख्यानों की समालोचना करते हुए उन्होंने अपना हृदयोद्‌गार इस प्रकार निकाला—"स्वामीजी ने अपनी समस्त वक्तृताओं में एकमात्र वेद और आर्यधर्म को छोड़कर अन्यान्य सब धर्मों और सब सम्प्रदायों पर तीव्र आक्रमण किया है जिससे यहाँ के लोकसाधारण ऐसे तीव्रभाव से उत्तेजित हो उठे हैं कि यदि सूरत ब्रिटिश राज्य के भीतर न होता तो हम नहीं कह सकते कि क्या हो जाता। उनके सभी व्याख्यान आदि से अन्त तक तीव्र आक्रमण से परिपूर्ण थे। पहले व्याख्यान के सिवाय अन्य व्याख्यानों में स्थानीय लोगों में जो सुशिक्षित, सम्भ्रान्त और भद्र पुरुष हैं, वे नहीं गये।"

लेख के अन्त में सम्पादक महोदय ने लिखा कि "या तो दयानन्द को ऐसी तीव्र आक्रमणपूर्ण वक्तृता नहीं देनी चाहिए, अन्यथा गवर्नमेंट को उन्हें सावधान कर देना चाहिए कि वे ऐसी तीव्र आक्रमणपूर्ण वक्तृता न किया करें।"

इस लेख में सम्पादक महोदय ने यह भी विचार नहीं किया कि जो कुछ वे लिख रहे हैं वह सङ्गत है वा असङ्गत। उनके अनुसार नगर के सुशिक्षित, सम्भ्रान्त और भद्र पुरुषों ने तो स्वामीजी की पहली वक्तृता के पश्चात् अन्य व्याख्यानों में जाना छोड़ ही दिया था, क्योंकि उसमें स्वामीजी ने अन्य समस्त धर्मों और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्प्रदायों पर तीव्र आक्रमण किया था और लोकसाधारण उसे सुनकर उत्तेजित हो गये थे कि यदि सूरत ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत न होता तो न जाने क्या उपद्रव हो जाता, अतः वे भी स्वामीजी के शेष व्याख्यानों में क्यों गये होंगे। स्वामीजी ने फिर व्याख्यान किसे सुनाये होंगे और किसने उन्हें सुना होगा ? यदि सम्पादक महोदय का कहना ठीक होता तो सभापति का आसन गवर्नमेंट हाईस्कूल के प्रिंसिपल और दुर्गाराम मोता जैसे सुशिक्षित और प्रतिष्ठित पुरुष क्यों ग्रहण करते। स्वामीजी के व्याख्यानों को सुनने के लिए लोग कैसे उत्सुक थे, यह को रघुनाथपुरे की घटना से ही स्पष्ट है, कि जब व्याख्यान के लिए मकान का द्वार नहीं खुला तो लोगों ने फर्श-रहित भूमि पर और धूप में बैठकर भी उनके व्याख्यान को सुना। यदि स्वामीजी ऐसे अप्रियवादी थे, जैसाकि उन्हें 'गुजरात-मित्र' के सम्पादक बताते हैं, तो लोग उनके व्याख्यान सुनने के लिए इतना कष्ट क्यों उठाते ?

स्वामीजी ने सूरत में ही स्वामीनारायणमत खण्डन पर एक पुस्तक लिखी।

मैं कथा पर चढ़ावा नहीं चढ़वाता—एक दिन व्याख्यान के अन्त में एक सेठ ने एक बहुमूल्य शाल प्रेमोपहार के रूप में श्रीसेवा में निवेदन करना चाहा, परन्तु महाराज ने उसे यह करकर अस्वीकार कर दिया कि इस समय शाल लेने का अर्थ यह है कि मैं अपनी कथा पर चढ़ावा चढ़वाता हूँ, जैसा पौराणिक कथावाचक करते हैं।

(दिसम्बर) भड़ौंच (मार्गशीर्ष)

डिप्टी जगजीवनदास ने सूरत से भड़ौंच डिप्टी कलक्टर प्राणलाला माहवरदास को लिख दिया था कि स्वामीजी के लिए स्टेशन पर गाड़ी भेज दें। भड़ौंच में स्वामीजी नर्मदा के तट पर भृगुऋषि की धर्मशाला में ठहरे। यह धर्मशाला यद्यपि नगर में थी, परन्तु एकान्त स्थान में थी। स्वामीजी के आहार आदि का प्रबन्ध ठाकुर उमरावसिंह एक धनी वणिक्, मोहनलाल वकील और अचरतलाल वकील ने किया था।

माधवराव से शास्त्रार्थ—स्वामीजी के व्याख्यान उसी धर्मशाला में हुए। पहले व्याख्यान की समाप्ति पर पण्डित माधवराव त्र्यम्बकराव स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए सम्मुख आये। पण्डित माधवराव दक्षिणी ब्राह्मण थे और अनेक सम्भ्रान्त लोग उनके शिष्य थे। वे थे तो गृहस्थी, परन्तु महन्त समझे जाते थे और भड़ौंच के लोग उनका बहुत सम्मान करते थे। वे कट्टर सनातनी और दाम्भीक थे। वे सभा में शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से ही आये थे और अपने अनेक शिष्यों को साथ लाये थे। उनके एक शिष्य ने स्वामीजी से कहा कि पण्डित माधवराव आपसे शास्त्रार्थ करने के इच्छुक हैं। स्वामीजी के यहाँ क्या देर थी। उन्होंने तुरन्त उत्तर दे दिया कि हम उद्यत हैं। इसपर पण्डित माधवराव आगे आये और निम्न प्रकार प्रश्नोत्तर हुए—

दया०—आपने क्या पढ़ा है ?

माधव०—कौमुदी आदि व्याकरण और कुछ काव्य पढ़ा है।

दया०—जब आपने वेदादि आर्षग्रन्थ पढ़े ही नहीं तो आप उनके विषय में शास्त्रार्थ कैसे करेंगे ?

माधव०—मैंने कुछ ऋग्वेद भी पढ़ा है।

दया०—चारों वेदों में से किसी मन्त्र को लेकर उसका पदच्छेदपूर्वक अर्थ करके दिखाइए कि उससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। फिर मैं आर्षग्रन्थों की रीति के अनुकूल उसका अर्थ करूँगा और तत्पश्चात् अपने और आपके अर्थ काशी आदि स्थानों के बड़े-बड़े पण्डितों के पास भेज दिये जाएँगे कि वे किसके अर्थों का अनुमोदन करते हैं।

माधवराव वेदमन्त्र का अर्थ न कर सके—स्वामीजी के इतना कहते ही पण्डित कृष्णराम ने चारों वेदों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के पुस्तक स्वामीजी के सामने लाकर रख दिये। तब स्वामीजी ने कहा कि चारों वेदों में से किसी वेद का कोई मन्त्र निकालकर अर्थ कीजिए। पं० माधवराव ने ऋग्वेद का एक मन्त्र निकाला और वे उसका अर्थ करने लगे। स्वामीजी ने पद-पद पर उनके अर्थों की अशुद्धि दिखानी आरम्भ की। परिणाम यह हुआ कि पण्डित माधवराव थोड़ी ही देर में चुप होकर बैठ गये।

शिष्यों के सामने अपमान—तब स्वामीजी ने उनसे कहा कि अभी आप कुछ और पढ़िए और तब शास्त्रार्थ करने आइए। माधवराव ने समझा कि स्वामीजी मेरा अपमान करते हैं, विशेषकर शिष्यों के सामने इस प्रकार पराजय से वे बहुत क्रोध में आये और उसी दशा में अपने शिष्योंसहित सभा से उठकर चले गये।

शिष्य की असभ्यता—शास्त्रार्थ के बीच में ही माधवराव का एक शिष्य स्वामीजी की ओर हाथ करके उनके लिए कुछ अप-शब्द कह बैठा था।

स्वामीजी की शान्तिप्रियता—इसपर बलदेवसिंह को इतना आवेश आया कि वे खड़े हो गये और कड़ककर बोले कि क्या तुम श्रीमहाराज का अपमान करने आये हो, मेरी उपस्थिति में ऐसा नहीं हो सकता। स्वामीजी माधवराव के शिष्य के असभ्य व्यवहार से तनिक भी धैर्य-च्युत नहीं हुए। वे गम्भीर जलवत् शान्त रहे। उन्होंने बलदेवसिंह को यह कहकर शान्त कर दिया कि क्यों क्रोध करते हो, यह भी तो हमारा भाई ही है।

कल आपका खण्डन करूँगा—सभा से जाते समय माधवराव स्वामीजी से कह गये कि मैं कल एक व्याख्यान दूँगा और उसमें आपका खण्डन करूँगा, आप उसमें अवश्य आवें।

स्वामीजी की अद्भुतशक्ति—जो पण्डित शास्त्राभिमानी होकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आता था, स्वामीजी इसी प्रकार उसके उच्चारण, व्याकरण की अशुद्धियाँ और दोष दिखाकर चुप कर दिया करते थे, फिर उसे शास्त्रार्थ करने का साहस ही नहीं रहता था। मुम्बई प्रान्त में कई स्थानों पर बग़ल में पोथियाँ दबा-दबाकर अनेक पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये, परन्तु स्वामीजी को देखकर ही निष्प्रभ होकर बैठ गये। स्वामीजी में न जाने कौन-सी ऐसी अद्भुत शक्ति थी, जो साधारण पण्डितों को सामने आते ही नीरव कर देती थी।

अप्रासंगिक व्याख्यान—अगले दिन पण्डित माधवराव ने व्याख्यान दिया। स्वामीजी स्वयं तो उसमें नहीं गये, परन्तु पण्डित कृष्णराम को उसका वृत्त जानने के लिए भेज दिया। व्याख्यान में पण्डित माधवराव ने इधर-उधर की अप्रासङ्गिक बातें कहनी आरम्भ कीं, वेद का कभी कोई और कभी कोई मन्त्र लेकर कहते रहे कि इससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। स्वामीजी के लिए भी अपशब्द कहने में उन्होंने संकोच नहीं किया।

माधवराव के खण्डन में व्याख्यान—पण्डित कृष्णराम ने वापस आकर सारा वृत्तान्त स्वामी से कहा। उसे सुनकर वे हँस पड़े। इसके कुछ दिन पश्चात् स्वामीजी ने उसी धर्मशाला में एक वक्तृता दी और उसमें पण्डित माधवराव के कथन का खण्डन किया। उस व्याख्यान में नगर के सैकड़ों लोग उपस्थित थे और पण्डित माधवराव अपनी शिष्य मण्डली सहित व्याख्यान सुनने आये थे। उन दिनों भड़ौंच में सेना की छावनी थी और उत्तरीय भारत के रहनेवाले सिपाहियों की पलटन वहाँ रहती थी। ये लोग स्वामीजी के व्याख्यानों में आया करते थे और उनके भक्त बन गये थे। यतः स्वामीजी हिन्दी भाषा में व्याख्यान देते और बात-चीत करते थे, अतः उन्होंने समझा था कि स्वामीजी उनके ही देश के मनुष्य हैं। उस दिन के व्याख्यान में सिपाही लोग अच्छी संख्या में आये थे।

शिष्य की फिर असभ्यता—व्याख्यान के बीच में ही पण्डित माधवराव के एक शिष्य ने खड़े होकर अण्ड-बण्ड बकना आरम्भ कर दिया और लगा स्वामीजी को अपशब्द कहने। ऐसा जान पड़ता था कि जैसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह मद्य पिये हुए हो और स्वामीजी का अपमान करने का सङ्कल्प करके ही व्याख्यान में आया हो।

सैनिकों का क्रोध—डिप्टी प्राणलाल भी सभा में उपस्थित थे। उन्होंने उस दुष्ट को डाँटा और उसे बिठा दिया। सिपाही लोग भी उसके इस दुष्ट व्यवहार से इतने आवेश में आये कि खड़े हो गये और उसपर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो गये। यदि स्वामीजी उन्हें शान्त न कर देते तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वे उसे बिना पीटे न छोड़ते।

पारसी ईसाई का व्याख्यान—उन दिनों भड़ौंच का स्टेशन-मास्टर एक पारसी था, जो रोमन कैथोलिक ईसाई हो गया था। व्याख्यान में वह भी उपस्थित ता। व्याख्यान की समाप्ति पर उसने खड़े होकर कहा कि मैं मूर्त्तिपूजा के समर्थन में व्याख्यान दूँगा। स्वामीजी उसे सुनने आएँ।

अगले दिन उस ईसाई स्टेशन-मास्टर ने उसी धर्मशाला में मूर्त्तिपूजा के समर्थन में एक व्याख्यान दिया। स्वामीजी भी उसके श्रवणार्थ पधारे और अन्य साधारण श्रोताओं की भाँति सभा में बैठ गये। इसके कुछ दिन पश्चात् स्वामीजी ने भी उसके कथन के खण्डन में एक वक्तृता दी।

शास्त्रार्थ से नकार—पौराणिक लोग स्वामीजी के मूर्त्तिपूजा पर किये हुए आक्रमणों से व्याकुल तो बहुत होते थे और चाहते भी थे कि उनका उत्तर भी दिया जाए, परन्तु बेचारे निरुपाय थे। कोई भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए अग्रसर न होता था। वे जिससे भी शास्त्रार्थ करने का अनुरोध करते थे वही किसी-न-किसी बहाने से शास्त्रार्थ करने से इन्कार कर देता था। उन दिनों भड़ौंच में अद्वैतानन्द संन्यासी रहते थे, जिनकी विद्या की बहुत प्रसिद्धि थी और जिनके बहुत-से चेले-चेलियाँ थीं। लोग उनके पास भी गये कि सम्भव है, वही उनकी कुछ सहायता करें, परन्तु उन्होंने भी यह कहकर कि मैं ऐसे नास्तिक से शास्त्रार्थ नहीं करूँगा, उनकी आशा भङ्ग कर दी।

स्त्रियों को उपदेश—एक दिन ऐसा हुआ कि स्वामीजी का उपदेश श्रवण करने की अभिलाषा से बहुत-से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियाँ धर्मशाला में आईं। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामीजी स्त्रियों से वार्त्तालाप नहीं करना चाहते थे, परन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर उनके और अपने बीच में एक पर्दा डालकर उन्हें उपदेश दिया, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है—

स्वामीजी ने उनसे कहा कि पति-सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है और अपने पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मन्दिर आदि स्थानों में आना-जाना और साधु-संन्यासियों के दर्शनों के लिए इधर-उधर घूमना, स्त्री-जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री-जाति का मुख्य धर्म पतिसेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन पोषण ही है।

मुझे शिष्य बना लो—एक दिन ठाकुर उमरावसिंह ने, जो स्वामीजी के आगमन दिवस से ही उनकी सेवा-शुश्रूषा में तत्पर थे, स्वामीजी से निवेदन किया कि महाराज मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और मुझे मन्त्र दे दीजिए। स्वामीजी ने उत्तर में कहा कि हम किसी को शिष्य नहीं बनाते। जो हमारे सिद्धान्तों को मानता है, वही हमारा सेवक व शिष्य है और जो लोग हमारे कार्य में सहायक होते हैं, वही हमारे भाई हैं।

हम कनफुँकवा गुरु नहीं हैं—हमारे पास मन्त्र देने की कोई फुँकनी नहीं है, जिससे हम किसी के कान में मन्त्र फूँकें और सारे मन्त्र तो वेद में हैं हीं, हम क्या मन्त्र देंगे ?

शंकर का अवतार—एक दिन जेठालाल वकील ने महाराज से कहा कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का मण्डन करने लगें तो हम आपको शङ्कर का अवतार मानने लगें। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं ऐसे प्रलोभनों से सत्य को नहीं दबा सकता। उपर्युक्त महाशय ने एक दिन स्वामीजी से कहा कि आप की संस्कृत बहुत सरल होती है और पण्डितों की बहुत जटिल। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरा उद्देश्य लोगों को समझाना है, न कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपना पाण्डित्य जताना। फिर मुझे इतना अवकाश कहाँ जो भाषा को जटिल बनाने में अपना समय लगाऊँ।

बड़ों की ओर पैर करके सोना मर्यादा का उल्लंघन—स्वामीजी अपने कर्मचारियों को भी विश्राम करने की अनुमति दिया करते थे। एक दिन एक विद्यार्थी उनकी ओर पैर करके सो गया। स्वामीजी ने सब कर्मचारियों को उपदेश दिया कि तुम जिनसे विद्या ग्रहण करते हो वा जो माननीय व्यक्ति हैं, उनके सामने बिना बुलाये बोलना वा उनकी बातों में बीच में बोलना वा उनकी ओर पैर करके सोना, आर्यमर्यादा का उल्लंघन करना है। इसे सुनकर विद्यार्थी बहुत लज्जित हुआ और अपने अपराध पर उसने पश्चात्ताप किया।

एक दिन एक विद्यार्थी से स्वामीजी ने कुएँ से जल लाने को कहा, तो उसने तड़ककर उत्तर दिया कि मैं ब्राह्मण हूँ; मेरा काम पानी ढोना नहीं है। स्वामीजी ने उसे समझाया कि गुरु की सेवा करना धर्म है। मुझे भी एक वार गुरुजी की मार खानी पड़ी थी। मेरे सहपाठी गरुजी की कृपा देखकर मुझसे द्वेष करते थे। उन्होंने एक दिन गुरुजी से झूठी शिकायत कर दी कि दयानन्द आपके सामने तो विनीत बना रहता है, परन्तु पीछे आपकी नकल उतारता है, आँखे बन्द करके लाठी लेकर चलता है और आपकी हँसी उड़ाता है। गुरुजी ने इसपर विश्वास कर लिया और मुझे लाठी से पीटा। देखो ! चोट का चिह्न अब तक मेरी भुजा पर है।

पण्डित कृष्णराम को एक दिन ज्वर आ गया। महाराज स्वयं उनका सिर दबाने लगे। पण्डितजी ने कहा कि महाराज आप क्या करते हैं, मैं आपसे सेवा कैसे करा सकता हूँ ? महाराज बोले, इसमें कोई हानि नहीं, दूसरों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है; यदि बड़े छोटों की सेवा न करेंगे तो छोटों में भी सेवा का भाव नहीं आएगा।

भड़ौंच से स्वामीजी अहमदाबाद चले गये।

(११—२८ दिसम्बर) अहमदाबाद (मार्ग० शु० ३—पौष कृ० ५)

११ दिसम्बर की रात्रि में स्वामीजी अहमदाबाद पहुँचे। रेलवे स्टेशन पर महीपतराम, रूपराम और गोपालराव हरिदेशमुख जज प्रभृति उपस्थित थे, उन्होंने स्वामीजी को माणिकेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहराया।

व्याख्यानमाला—१२ दिसम्बर रविवार को स्वामीजी का पहला व्याख्यान हिमाभाई इंस्टिट्यूट में मूर्त्तिपूजा के खण्डन पर हुआ, दूसरा माणिकेश्वर के मन्दिर में १३ दिसम्बर को वर्णभेद विषय पर और तीसरा १४ दिसम्बर को हुआ।

शास्त्रार्थ का उपक्रम—उन्हीं दिनों प्रार्थना-समाज का वार्षिकोत्सव था, उसके उपलक्ष्य में भी ट्रेनिंग कॉलेज में स्वामीजी की एक वक्तृता हुई। उस सभा में राव बहादुर भोलानाथ साराभाई, रणछोड़दास छोटेलाल ने यह परामर्श किया कि दयानन्द के साथ शास्त्रियों का शास्त्रार्थ होना चाहिए। तदनुसार उपर्युक्त सज्जनों ने अपने हस्ताक्षरों से एक विज्ञापन दिया, जिसका अभिप्राय निम्नलिखित था—

शास्त्रार्थ का निमन्त्रण—महापुरुष स्वामी दयानन्द यहाँ उपस्थित हुए हैं। उनके साथ वेदप्रतिपादित धर्म के सम्बन्ध में विचार करने के लिए निम्नलिखित पण्डितों को आहूत किया जाता है, पण्डित महोदय १६ दिसम्बर को ट्रेनिंग कॉलेज में पधारें। पण्डित सेवकराम, लल्लूभाई, भास्कर, भाईशङ्कर, भट्ट दामोदर प्रभृति ३० पण्डित आहूति किये गये थे।

शास्त्रार्थ की शर्तें—इस विज्ञापन को पण्डित रेवाशङ्कर शास्त्री, हैड मास्टर फ़ीमेल ट्रेनिंग कॉलेज शास्त्रियों के पास लेकर गये। पण्डित बापजी, केशव शास्त्री प्रभृति पण्डितों ने कहा कि चार पुरुष मध्यस्थ होने चाहिएँ और सभा में किसी यवन का प्रवेश न होना चाहिए। ये दोनों बातें स्वीकार कर ली गईं। सभा आरम्भ होने का समय १ बजे का नियत किया गया था। स्वामीजी नियत समय पर सभा-स्थल में उपस्थित हो गये,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु आहूत पण्डितों में से एक भी न आया। एक-दो अन्य ब्राह्मण आये और उन्होंने जो कुछ पूछा उसका स्वामीजी ने उचित उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। जब शास्त्री लोग न आये तो स्वामीजी ने जन्मान्तरवाद पर एक वक्तृता दी और सभा विसर्जित हुई।

स्वामीजी के अहमदाबाद आगमन के सम्बन्ध में ४ जनवरी सन् १८७५ ई० के 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' में इस प्रकार लिखा था—

"स्वामीजी अहमदाबाद में दो सप्ताह से कुछ अधिक रहे। वे एक दिन व्याख्यान देते और उससे अगले दिन माणिकेश्वर मन्दिर में, जहाँ वे ठहरे थे, शङ्का समाधान करते थे। उन्हें न केवल वेदों का विस्तृत ज्ञान है; वरञ्च हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों से भी बहुत बड़ा परिचय है और जैनियों, ईसाइयों और मुसलमानों के धर्म-ग्रन्थों का भी ज्ञान है। उनके व्याख्यान देने की शैली अत्युत्तम है। इसी कारण से लोग उनकी वक्तृताओं में बड़ी संख्या में जाते हैं और उन्हें पसन्द करते हैं। यहाँ के शास्त्रियों ने यह कहकर कि रमते संन्यासी की बातों की क्या प्रतीति है, उनकी ओर से उपेक्षा की है। शास्त्रियों को जब इनसे वार्त्तालाप करने के लिए बुलाया गया तो कोई भी न गया। जो कुछ विना बुलाये गये थे, वे एक घण्टे से अधिक उनसे शास्त्रार्थ-चर्चा न कर सके। शास्त्री लोग कहते हैं कि दयानन्द के विजय का कारण यह है कि सुधारकदल के पुरुष दयानन्द का पक्ष करते हैं और उनसे सहानुभूति रखते हैं"।

नोट—पण्डित लेखारामकृत दयानन्द-चरित्र में लिखा है—

गोपालराव हरिदेशमुख जज अहमदाबाद का पुत्र जोकि बैरिस्टर है, आकर स्वामीजी को अहमदाबाद ले-गया। फिर लिखा है कि लगभग एक मास स्वामीजी अहमदाबाद में रहे। ये दोनों ही बातें अयथार्थ हैं। स्वामीजी मुम्बई से पहले सूरत गये और वहाँ से अहमदाबाद, जहाँ वे दो सप्ताह के लगभग ठहरकर भड़ौंच चले गये। उक्त पुस्तक में सूरत और भड़ौच की यात्रा का कोई उल्लेख नहीं है।

उसी पुस्तक में लिखा है—"अहमदाबाद का एक भाटिया रईस स्वामीजी को स्टेशन पर लेने आया था, जो बहुत बड़ा धनाढ्य था, यहाँ तक कि उसने दो तीन-लाख रुपया लगा कर अपना मन्दिर बनाया था। मार्ग में उसने स्वामीजी से अपने मन्दिर की प्रशंसा करनी आरम्भ की। स्वामीजी ने उसके उत्तर में खेद प्रकट किया और गाड़ी से हाथ मारकर कहा कि तुमने इतना रुपया एक पत्थर पर लगाया, यदि किसी पाठशाला पर लगाते तो वेद के पढ़े हुए ब्राह्मण जगत् को लाभ पहुँचाते। ऐसी ही मूर्खता के कारण हम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है कि वेद जर्मन से आते हैं तब पढ़ने को नसीब होते हैं।

उसने कहा कि मैं प्रतिमा-पूजा सिद्ध करा दूँगा। उसने मल्हारराव राजा से यह बात कही। पण्डित बुलाये गये और एक जज के बाग़ में जहाँ स्वामीजी ठहरे हुए थे, शास्त्रार्थ की ठहरी। दो ढाई सौ पण्डित इकट्ठे हुए। ५, ६ घण्टे तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त को जब वे लोग प्रतिमा-पूजा सिद्ध न कर सके तो उलटे गालियाँ देने लगे। तब गोपालराव हरिदेशमुख जज व भोलानाथ साराभाई ने कहा कि ज्ञात हुआ कि प्रतिमा-पूजा का वर्णन वास्तव में वेद से तो सिद्ध नहीं होता, मानना न मानना अपनी इच्छा रही।"

यह सारा ही वृतान्त ठीक नहीं है, न तो स्वामीजी अहमदाबाद में किसी जज के बाग़ में ठहरे और न उनके स्थान पर २००-२५० पण्डित इक्ट्ठे हुए। यदि ऐसा हुआ होता तो तत्कालीन किसी समाचार-पत्र में ऐसी बड़ी घटना का अवश्य उल्लेख होता। 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' में केवल उसी घटना का उल्लेख है, जिसमें राय बहादुर महीपतराम रूपराम आदि ने ३० शास्त्रियों को विज्ञापन देकर बुलाया था और वे नहीं आये। उस भाटिया रईस का नामोल्लेख भी नहीं है और न यह ज्ञात है कि जब स्वयं राव बहादुर गोपालराव हरिदेशमुख का पुत्र स्वामीजी को मुम्बई से अहमदाबाद लिवाकर लाया था तो वह भाटिया रईस स्टेशन पर कैसे पहुँचा और स्वामीजी गोपालराव की गाड़ी में सवार न होकर उसकी गाड़ी में क्यों सवार हुए? हमें यह सारी ही घटना ठीक नहीं प्रतीत होती। —संपादक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्राद

अहमदाबाद से एक दिन के लिए श्रीमहाराज निम्राद गये थे। निम्राद गुजरात देश में हिन्दूधर्म का एक सुविख्यात तीर्थस्थान है और वहाँ पौराणिकों का बड़ा प्राबल्य है।

पौष कृष्ण ५ संवत् १६३१ अर्थात् १८ दिसम्बर सन् १८७४ ई० को स्वामीजी अहमदाबाद से चलकर निम्राद होते हुए राजकोट पहँच गये।

जब स्वामीजी आहमदाबाद से राजकोट चले गये तब एक लेखक ने ७ जनवरी सन् १८७५ के 'हितेच्छु' में इस प्रकार लिखा था—

अहमदाबाद में स्वामीजी का प्रभाव—"पण्डित दयानन्द ने अपने थोड़े दिन के निवास में ही अहमदाबादवालों को, विशेषकर शिक्षित समुदाय को आश्चर्यान्वित और आह्लादित कर दिया था। आश्चर्यान्वित इसलिए कि उन्होंने अपने देश गुजरात में किसी शास्त्री को हिन्दूधर्म की ऐसी योग्यता और बुद्धिमत्ता से व्याख्या करते देखा वा सुना नहीं था, जैसीकि विद्वान् पण्डित दयानन्द ने की थी और आह्लादित इसलिए कि पवित्र वेदों की दयानन्दकृत व्याख्या उनके उन विचारों के अनुकूल थी, जो उन्होंने स्वयं इस विषय में निर्धारित किये थे। इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित दयानन्द का संस्कृतसाहित्य का ज्ञान अतिविशाल है। मूर्त्तिपूजकों की लोभमय और असद्भावपूर्ण संस्थाओं की जो धर्म के मिष से लोगों को भिक्षुक बना रही हैं, बुराइयों को और बाल-विवाह, जातिभेद आदि के दोषों को खोलकर वर्णन करना उन लोगों के हृदयों पर सदा के लिए अङ्कित रहेगा, जिन्हें उनके व्याख्यानों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। निःसन्देह पण्डित दयानन्द ही ऐसे मनुष्य हैं, जिनकी हिन्दुओं की वर्त्तमान अधःपतित अवस्था के लिए आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि यदि उन सरीखे बहुत-से मनुष्य देश में सर्वत्र घूमकर, सत्य धर्म का प्रचार करते और खान, पान, स्नान, व्रत के सम्बन्ध में मूर्खतायुक्त विचारों का जिन्हें धर्म का अङ्ग माना जाता है, खण्डन करते तो भारतवर्ष वैसा न होता जैसा कि अब है, अर्थात् निर्बल बुद्धिवाले मनुष्यों की जाति न होता।

"मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि इस स्थान के शास्त्रियों ने अपने नगर में स्वागत करने के बदले उनके आगमन को शत्रु का आगमन समझा। उन्हें चाहिए था कि जब पण्डित दयानन्द को बुलाया गया था तो उनके पास जाते और जिन बातों पर मतभेद था, उनपर शास्त्रार्थ करते और यह स्मरण रखते कि इस पृथिवी पर कोई भी निर्भ्रान्त नहीं है और यह सम्भव है कि वे स्वयं वा पण्डित (दयानन्द) ही भ्रमयुक्त हों, परन्तु शास्त्रीगण न केवल स्वयं ही दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने से बचते रहे, उन लोगों को भी दयानन्द के व्याख्यान सुनने जाने से रोकने का यत्न करते रहे, जिनकी उनकी विद्या में कुछ श्रद्धा थी और यह कहते रहे कि दयानन्द क्रिस्तान वा ब्राह्मसमाजी हैं, परन्तु उनकी यह चाल सफल न हुई। जब उन्होंने यह देखा कि जनता उनका ही उपहास और निरादर करती है, तब उन्होंने दयानन्द से शास्त्रार्थ करने का साहस किया, परन्तु उनके हास्यजनक प्रश्नों और युक्तियों से उनकी वह बुरी गति हुई कि मिस्टर रणछोड़भाई के समान जो थोड़े-बहुत उनके प्रशंसक भी थे, यह कहने लगे कि इससे तो यही अच्छा होता कि ये लोग अपने घर बैठे रहते। इस प्रकार शास्त्रियों ने जनता कि दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा खो दी। यदि उनमें अपनी प्रतीति का कुछ भी लवलेश है तो उन्हें पण्डित दयानन्द के सम्मुख होने की तैयारी चाहिए। जब वे राजकोट से फिर वापस आएँ तो दयानन्द के सिद्धान्तों को असत्य सिद्ध करके, अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा वापस करनी चाहिए, परन्तु यदि शास्त्रीगण ऐसा कर सकें तो संसार में यह दसवाँ आश्चर्य होगा।"

"जिन बुराइयों से हमारा वर्त्तमान हिन्दू-समाज हानि उठाता रहा है, उन्हें दूर करने के हेतु पण्डित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द ने आर्यसमाज और वैदिक पाठशाला स्थापित करने का प्रस्ताव किया है। इससे तो इन्कार नहीं हो सकता कि इन दोनों संस्थाओं के बहुत बड़े लाभ हैं, परन्तु मेरे विचार में अहमदाबाद के लोग अभी तक अपने जातिगतपूर्ण संस्कारों को तिलाञ्जलि देने और एक समाज में सम्मलित होने पर उद्यत नहीं हैं।"

अहमदाबाद में स्वामीजी ने स्वामीनारायण मत का खण्डन किया और स्वामीनारायणमत-खण्डन नामक पुस्तक रची।

स्वामीजी का विचार बड़ौदा जाने का था, परन्तु वहाँ ब्रिटिश सरकार ने बड़ौदा के महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ को वहाँ के रेज़िडेंट कर्नल फेयर 'Phayer' को विष देकर मार डालने का यत्न करने के अपराध में जनवरी सन् १८७५ में पकड़कर सिंहासनच्युत कर दिया और वहाँ बहुत गड़बड़ हो रही थी, अतः स्वामीजी ने वहाँ जाने का विचार शिथिल कर दिया और सीधे अहमदाबाद लौट गये।

(३१ दिस० ७४—१० जन० ७५) राजकोट (पौष कृ० ८—पौष शु० १२)

स्वामीजी २८ दिसम्बर को अहमदाबाद से राजकोट जाने के लिए रवाना हुए और ३१ दिसम्बर को वहाँ पहुँचकर कैम्प की धर्मशाला में ठहरे। स्वामीजी राजकोट हरगोविन्ददास द्वारकादास के उद्योग से गये थे और उन्होंने ही उनके आहार व मार्ग-व्यय के लिए चन्दा एकत्र करके सब प्रबन्ध किया था।

आठ व्याख्यान—स्वामीजी के उसी धर्मशाला में ८ व्याख्यान निम्न विषयों पर हुए। पहला, ईश्वर विषय पर; दूसरा, धर्मोदय पर; तीसरा, वेदों के अनादित्व और अपौरुषेयत्व पर; चौथा, पुनर्जन्म पर; पाँचवाँ, विद्या-अविद्या; मुक्ति और बन्ध पर; छठा व सातवाँ आर्यों के इतिहास पर और आठवाँ, कर्त्तव्य पर। एक दिन व्याख्यान होता था और अगला दिन शङ्का-समाधान के लिए रक्खा जाता था ताकि जिस किसी को कोई सन्देह हो उसे निवृत्त करले अथवा किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ ले।

ऐसी वक्तृता कभी नहीं सुनी—व्याख्यानों के विषय स्वामीजी ने स्वयं निश्चित नहीं किये थे। जिस-जिस विषय पर लोगों ने स्वामीजी के मन्तव्य सुनने चाहे, उसी-उसी विषय पर उन्होंने व्याख्यान देना स्वीकार किया था, वेदविषयक व्याख्यान अपूर्व ढंग का था। उसके विषय में हरगोविन्ददास कहते हैं—"उस दिन हमें स्वामीजी की विद्वत्ता, गम्भीर-चिन्तन और सूक्ष्म विचार का परिचय मिला, मैंने ऐसी वक्तृता कभी नहीं सुनी"।

शास्त्रार्थ—महाराज के उपदेशों से लाभ उठाने अनेक लोग उनके पास आते थे। कोई-कोई किसी विषय पर वाद-प्रतिवाद भी करते थे। एक दिन पण्डित महीधर और जीवनराम शास्त्री उनके साथ मूर्त्तिपूजा और अद्वैतवाद पर शास्त्रार्थ करने आये। पण्डित महीधर ने पहले मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने का प्रयास किया, परन्तु स्वामीजी ने शीघ्र ही उन्हें निरुत्तर कर दिया। फिर उन्होंने वेदान्त-विषय पर बात-चीत की। स्वामीजी ने उनसे कहा कि यदि आप ब्रह्म हैं तो अपने शरीर के साढ़े तीन करोड़ लोमों में से एक को उखाड़ कर पुनः वहीं स्थापित कर दीजिए। ब्रह्म सर्वज्ञ और आप अल्पज्ञ हैं, फिर आप ब्रह्म कैसे हो सकते हैं। इसपर पण्डित महीधर कुछ न कह सके और निरुत्तर हो गये।

राजकुमार कॉलेज में व्याख्यान—राजकोट में काठियावाड़ के राजाओं के पुत्रों की शिक्षा के लिए राजकुमार कॉलेज है। उसके छात्र स्वामीजी के व्याख्यानों को बड़ी रुचि से सुनने आया करते थे और उन्हें बहुत पसन्द करते थे। एक दिन कुछ राजकुमारों ने महाराज से कॉलेज में पधारने और व्याख्यान देने की प्रार्थना की। महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार किया।

प्रिंसिपल चकित—कॉलेज में जाकर उन्होंने *'अहिंसा परमो धर्मः'* का उपदेश दिया और मांस-भक्षण के दोष इस ढङ्ग से दिखाये कि कॉलेज के प्रिंसिपल थेकनटेन साहब सुनकर चकित रह गये। उन्हें स्वामीजी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कथन के विरुद्ध कोई युक्ति न सूझ सकी, उन्हें केवल एक बात कहने को मिली।

क्या सब राजकुमार नरक में जाएँगे ?—स्वामीजी ने कहा था कि मांस-भक्षण पाप है। इसपर प्रिंसिपल महोदय ने व्यङ्गपूर्ण स्वर में उनसे कहा कि यदि मांसाहार पाप है तो ये सब राजकुमार मांसाहारी होने के कारण नरक में जाएँगे। किसी भी ईसाई के मस्तिष्क में यह बात सहसा नहीं बैठ सकती कि मांसाहार और प्राणिहिंसा पाप कर्म है। यदि मांस बिना हिंसा के प्राप्त हो सकता और उसमें अन्य दोष न होते तो आर्यशास्त्र उसे हेय न ठहराते। पाप तो हिंसा में है, न कि मांसाहार में और हिंसा भी यदि लोकहित की दृष्टि से अनिवार्य हो तो वह भी उपेक्षणीय हो जाती है।

मृगया क्षत्रियों के लिए विहित—स्वामीजी ने उन्हें उत्तर दिया कि जिस समय आर्यलोग भारतवर्ष के वन=जङ्गलों को काटकर अपनी बस्तियाँ और खेतियाँ बढ़ा रहे थे उस समय सिंह आदि हिंस्र जन्तु उनके पशुओं का और स्वयं उनका प्राण-नाश करते थे और मृगादि जीव उनकी खेतियों को हानि पहुँचाते थे तो आर्य-ऋषियों ने उक्त प्राणियों का शिकार करना क्षत्रियों के लिए विहित कर दिया था, क्योंकि विना इसके उनके प्राण, धन-धान्य और पशुओं की रक्षा नहीं हो सकती थी। जो बात कर्त्तव्य होती है, उसमें पाप नहीं होता। प्रिंसिपल महोदय इस उत्तर को सुनकर निरुत्तर और अवाक् हो गये।

ऋग्वेद का पुस्तक उपहार में—वे स्वामीजी के वार्त्तालाप और व्याख्यान से इतने सन्तुष्ट हुए कि अपनी कृतज्ञता और प्रसन्नता प्रकट करने के निमित्त स्वामीजी के विदा होते समय उन्होंने मैक्समूलर सम्पादित ऋग्वेद उनकी भेंट किया।

उस समय स्वामीजी वेदसंहिता की प्रामाणिकता पर ही बल देते थे और ब्राह्मणग्रन्थों की प्रामाणिकता केवल उसी अंश तक स्वीकार करते थे, जहाँ तक वे वेदानुकूल सिद्ध हों। अपने व्याख्यानों में वे शतपथ-ब्राह्मण के वचन बहुधा उद्धृत किया करते थे।

घोर आन्दोलन—स्वामीजी के राजकोट आने से प्रायः दो वर्ष पहले से राजकोट में प्रार्थना-समाज स्थापित था। वहाँ के अनेक सुशिक्षित सज्जन उसके सदस्य थे, हरगोविन्ददास द्वारकादास उसके मन्त्री थे। स्वामीजी के व्याख्यानों से राजकोट में घोर आन्दोलन उपस्थित हो गया था। प्रार्थना-समाज के सदस्य तथा अन्य शिक्षित पुरुष महाराज के उपदेशों की ओर विलक्षण रूप से आकर्षित हो गये थे।

आर्यसमाज स्थापित करने का प्रस्ताव—स्वामीजी ने यह प्रस्ताव किया कि राजकोट में आर्यसमाज स्थापित किया जाए और प्रार्थना-समाज को ही आर्यसमाज में परिणत कर दिया जाए। प्रार्थना-समाज के सभी लोग इस प्रस्ताव से सहमत हो गये। वेद के निर्भ्रान्त होने पर किसी ने आपत्ति नहीं की। स्वामीजी के दीप्तिमय शरीर और तेजस्विनी वाणी का लोगों पर अयस्कान्त (चुम्बक) जैसा प्रभाव पड़ता था। वह सबको नतमस्तक कर देता था। आर्यसमाज स्थापित हो गया, मणिशङ्कर जटाशङ्कर और उनकी अनुपस्थियों में उत्तमराम निर्भयराम प्रधान का कार्य करने के लिए और हरगोविन्ददास द्वारकादास और नगीनदास ब्रजभूषणदास मन्त्री का कर्त्तव्य पालन करने के लिए नियत हुए।

आर्यसमाज के नियम—स्वमीजी ने आर्यसमाज के नियम बनाये, जो मुद्रित कर लिये गये। इनकी ३०० प्रतियाँ तो स्वामीजी ने अहमदाबाद और मुम्बई में वितरण करने के लिए स्वयं रख लीं और शेष प्रतियाँ राजकोट और अन्य स्थानों में बाँटने के लिए रख ली गईं जो राजकोट में बाँट दी गईं, शेष गुजरात, काठियावाड़ और उत्तरीय भारत के प्रधान नगरों में भेज दी गईं। उस समय स्वामीजी की यह सम्मति थी कि प्रधान आर्यसमाज अहमदाबाद और मुम्बई में रहें। आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन प्रति आदित्यवार को होने निश्चित हुए थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१६ जनवरी सन् १८७५ को हरगोविन्ददास द्वारकादास ने एक पत्र§ रा. रा. गोपालराव हरिदेशमुख को अहमदाबाद भेजा था। उसमें आर्यसमाज के विषय में निम्न प्रकार लिखा था—

भ्रान्त सम्मति—राजकोट में एक समाज स्थापित हो गया है, जिसके अधिवेशन प्रति रविवार को हुआ करेंगे और उसमें स्वामीजी के सिद्धान्तों पर विचार हुआ करेगा, ताकि यथासम्भव शीघ्र आर्यसमाज स्थापित किया जाए। ..... स्वामीजी की नियोग और ब्रह्मचर्य-विषयक सम्मतियों पर इस समय कार्य नहीं हो सकता। इनसे इस समय में सुधारक प्रायः सहमत न होंगे। यदि स्वामीजी-से एक दर्जन पुरुष भी हों तो भारत का अभ्युत्थान बहुत ही निकट आ जाएगा। ..... यदि नियोग आदि विषयों पर लोग सहमत न होंगे तो स्वामीजी उन्हें छोड़ने पर उद्यत हैं .....।

एक लेखक ने २१ जनवरी सन् १८७५ के 'हितेच्छु' नामक समाचार-पत्र में लिखा था—

संवाददाता की सम्मति—"राजकोट के शिक्षित समुदाय के अधिकांशों ने स्वामीजी के सिद्धान्तों को प्रायः स्वीकार कर लिया है। कुछ लोगों ने नियोगप्रथा का अनुमोदन नहीं किया और इस बात को भी पसन्द नहीं किया कि ४८ वर्ष के प्रौढ़ पुरुष के साथ ३० वर्ष की स्त्री का पाणिग्रहण होने से अधिक परिमाण में ब्रह्मचर्य-बल की रक्षा होगी।"

इसी पत्र के उसी लेख में यह भी लिखा है कि "नियम मुद्रित होने के पश्चात् राजकोट के बन्धुओं ने उनपर विचार किया और उन्हें ग्रहण करके वे आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए। सदस्यों की संख्या ३० थी।"

राजकोट का आर्यसमाज ही वास्तव में भारतवर्ष का सबसे पहला आर्यसमाज था।‡

आर्यसमाज का कार्य बन्द हो गया—आर्यसमाज राजकोट का काम ५-६ मास तक चलता रहा, परन्तु फिर एक अप्रत्याशित कारण से उसका कार्य बन्द हो गया। वह विशृङ्खला यह थी कि उस समय बड़ौदा के महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ की राज्यच्युति पर घोर आन्दोलन हो रहा था। धनी, दरिद्र, पण्डित, मूर्ख सभी का चित्त उस समय आलोडित हो रहा था और हर जगह उसी की चर्चा थी।

---

§ जिस समाज का पत्र-लेखक ने उल्लेख किया है, वास्तव में वही आर्यसमाज था और स्वामीजी ने उसके लिए नियम बनाये थे और वैसे ही समाज वे अहमदाबाद और मुम्बई में स्थापित करना चाहते थे। हरगोविन्ददास ने सम्भव है यह समझा हो कि चूँकि कुछ लोग स्वामीजी की नियोगविषयक सम्मति से सहमत नहीं हैं, अतः अन्य समाज के स्थापित करने की आवश्यकता होगी, जिसके सदस्य स्वामीजी की समस्त सम्मतियों को स्वीकार करनेवाले होंगे।

हरगोविन्ददास का यह भी भ्रम था कि स्वामीजी किसी कारण से भी अपने सिद्धान्तों को जिन्हें वे वेदमूलक समझते थे छोड़ने पर उद्यत होंगे। यदि वे ऐसा करने पर उद्यत होते तो वे अपने व्यक्तित्व को खो बैठते, आज एक की और कल दूसरे की सम्मति के अनुसार सिद्धान्त परिवर्तन करते रहते और वायुगति-परिचायक मुर्गे के समान जिस ओर का वायु चलता उसी ओर को देखने लगते। ऐसी ढुलमुल नीति रखते हुए कौन उनका विश्वास करता और उनके अनिश्चित सिद्धान्तों पर किसकी श्रद्धा होती? हम ऐसी सब बातों को, चाहे उनके कहनेवाले कैसे ही उच्चपदस्थ व्यक्ति हों, महाराज के शुभ्रचरित्र पर मिथ्या दोषारोपण समझते हैं। सम्भव हो सकता है कि किन्हीं ने भ्रम में पड़कर यह समझ लिया हो कि स्वामीजी उनके आग्रह पर, उनकी बातों को मानने पर उद्यत हो जाएँगे, परन्तु यदि किन्हीं ने ऐसा समझा भी हो तो उनकी भारी भूल थी और इस बात को तो हम एक क्या, सौ और सहस्र मनुष्यों के कहने पर भी मानने को उद्यत नहीं हो सकते कि स्वामीजी प्राइवेट में कुछ और प्रकट में कुछ कहते हों। दयानन्द का बाहर-भीतर एक-सा था, उनके हृदय-वस्त्र में उलटा-सीधा रुख नहीं था। उनका सारा जीवन निष्कपटता और सत्यपरायणता का जीवन था और ये उनके चरित्र में सर्वोज्ज्वल गुण थे। जो कोई इसके विरुद्ध कहता है वह सूर्य पर धूलि फेंकता है।

‡ यह भूल है। इससे पूर्व 'आरा' में भाद्रपद सं० १९२९ में समाज की स्थापना हो चुकी थी। देखो यही जी०च० पृष्ठ २१२। —यू०मी०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित गट्टूलाल की कविता—स्वामीजी के राजकोट से चले जाने के कुछ दिन पश्चात् पण्डित गट्टूलालजी शतावधानी राजकोट आये। उनकी असाधारण स्मरणशक्ति की परीक्षा करने के लिए एक दिन उन्हें आर्यसमाज में बुलाया गया और उनसे विविध विषयों पर तत्क्षण कविता करने के लिए अनुरोध किया गया। कविता के विषय महाराज मल्हारराव की सिंहासनच्युति भी थी। पण्डित गट्टूलाल ने सभी विषयों पर तुरन्त शुद्ध और सुललित भाषा में कविता करके सबको चकित कर दिया।

सभा का विवरण समाचारपत्र में—आर्यसमाज के मन्त्री नगीनदास ने हरगोविन्ददास की सम्मति से उस सभा का आद्योपान्त सविस्तर विवरण 'मुम्बई गज़ट' और 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में अपने नाम से मुद्रित होने के लिए भेज दिया। उनमें से एक समाचार-पत्र में तो वह प्रकाशित हो गया, परन्तु दूसरे पत्र में उसका प्रकाशन तार भेजकर रोक दिया गया। प्रशंसित दोनों सज्जनों में से नगीनदास वकील और हरगोविन्ददास सरकारी कर्मचारी थे।

पोलिटिकल एजेण्ट का क्रोध, आर्यसमाज के अधिकारी दण्डित और भयभीत—उस समय काठियावाड़ के पोलिटिकल एजेण्ट मिस्टर जेम्स पील (Mr. James Piel) थे। उन्होंने वह मुद्रित लेख पढ़ा। उसे पढ़कर वे इतने रुष्ट हुए कि उन्होंने नगीनदास से कुछ पूछताछ किये बिना ही उन्हें वकालात से पदच्युत कर दिया। पील साहब ने हरगोविन्ददास को बुलाकर समझाया कि यद्यपि तुमने जो कुछ किया वह सद्भाव से प्रेरित होकर किया था, परन्तु तुम्हें ऐसा करना उचित न था। आर्यसमाज के दूसरे मन्त्री निर्भयराम भी सरकारी कर्मचारी थे। पूना सार्वजनिक सभा और 'अमृत बाज़ार पत्रिका' कलकत्ता के सम्पादक ने उक्त लेख लिखने के लिए तार द्वारा उत्साहित किया था।

आर्यसमाज टूट गया—हरगोविन्ददास तो इतने भयभीत हुए कि उन्होंने आर्यसमाज सम्बन्धी कागज़ात किसी दूसरे स्थान पर भेज दिये। आर्यसमाज में योग देना तो अलग रहा वे आर्यसमाज के नाम तक से घबराने लगे। इन्हें इस प्रकार भीत और त्रस्त देखकर अन्य सदस्य अपने आप ही समाज से अलग हो गये और आर्यसमाज का अस्तित्व लुप्त हो गया।

नगीनदास ने बम्बई जाकर अनेक यत्न किये और बड़े-बड़े अंग्रेज़ अफ़सरों से मिले, तब कहीं जाकर वे अपने पद पर पुनः प्रतिष्ठित हुए।

स्वामीजी और दीवान का उत्तर-प्रत्युत्तर—उन दिनों राजकोट में काठियावाड़ के राजगण का एक सम्मेलन हुआ था, उसके सम्बन्ध में जूनागढ़ के दीवान मिस्टर गोकुलजी झाला राजकोट आये थे। वे स्वामीजी से भी मिले थे और उनसे धार्मिक विषयों पर वार्त्तालाप किया था। कहते हैं कि एक दिन स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में किसी उपनिषद्-वाक्य का स्वामी शङ्कराचार्य से भिन्न अर्थ किया था, इसपर दीवान साहब ने आपत्ति की तो स्वामीजी ने विनोद के ढङ्ग पर कहा कि स्वामी शङ्कराचार्य ने भाँग पीकर वैसा अर्थ किया है। दीवान साहब ने भी उसी ढङ्ग से उत्तर दिया कि कौन जानता है कि आप भी भाँग पीकर ऐसा अर्थ नहीं कर रहे ?

स्वामीजी का फ़ोटो लिया गया—राजकोट में स्वामीजी का फ़ोटो लिया गया था और आर्यसमाज के सदस्यों ने बड़े चाव से उसकी प्रतियाँ ली थीं।

प्राचीनकाल में विज्ञान—एक व्याख्यान में स्वामीजी ने यह भी कहा था कि प्राचीन समय में धूम्रयान (भाप से चलनेवाला यान) भारतवर्ष में था। अमेरिका प्राचीन आर्यों को ज्ञात था और अर्जुन ने वहाँ की राजकुमारी से विवाह किया था, अतः यह कहना कि पहले-पहल कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया ठीक नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१८ जनवरी सन् १८७५ को स्वामीजी ने राजकोट से अहमदाबाद के लिए प्रस्थान किया और राजकोट से अहमदाबाद जाते हुए मार्ग में एक दिन बडोयान में लखतर के ठाकुर साहब के उतारे में ठहरे ।§

(२१-२६ जनवरी) **अहमदाबाद** (पौष शु० १५—माघ कृ० ८)

२१ जनवरी सन् १८७५ को स्वामीजी राजकोट से अहमदाबाद आये और एक अति मनोहर वक्तृता दी जिसका सारांश यह है—

वक्तृता का सारांश—आर्यों की आपस की फूट और ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के कारण दूसरे वर्ण के लोगों को वेद नहीं पढ़ाये, परिणामस्वरूप हमारे धर्म के इतने खण्ड हो गये हैं कि अब यह जानना कठिन हो गया है कि उनमें से कौन-सा ठीक है ? लोग कुछ ऐसे भूले कि मूर्त्तियों के आगे, यह समझकर कि ब्राह्मणों ने मन्त्रों के द्वारा उनमें देवताओं का आवेश कर दिया है और उनमें सच्चे ईश्वर का निवास है, मस्तक अवनत करने लगे, परन्तु **वही लोग अपने कार्यों में सफल होते हैं, जिनका एक, अनादि, अजर, अमर, निराकार ईश्वर में विश्वास होता है** । वे अपने धर्म के विस्तार के उपायों को फैलाते हैं, उनके मन एक-दूसरे से मिल जाते हैं, आपस में प्रेम की वृद्धि होती है और धर्म का अभिमान आ जाता है । वे एक-दूसरे की प्रत्येक सम्भव उपाय से सहायता करते हैं । देखो ! अंग्रेज़ भारतवर्ष में और संसार के अन्य भू-भागों में कितने शक्तिशाली हैं । इसका कारण उनके मनों का मिलना और एक धर्म का होना है ।

जब हमारे सब आर्य लोग वेद को सर्वोपरि और प्रामाणिक समझकर चलेंगे और हमारे मन मिल जाएँगे तो हम सारे संसार को वेदमन्त्रों के नाद से निनादित कर देंगे । देखो ! जब सब आर्यों का एक मत था, उस समय सिकन्दर आया था तो एक मनुष्य ने उससे जाकर कहा था कि मुझसे द्वन्द्व युद्ध कर लीजिए। ऐसे ही जब महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था तो एक मनुष्य ने उससे जाकर कहा था कि मैं तुम्हें सोमनाथ का सुगम-से-सुगम और निकट का मार्ग बता सकता हूँ । इस प्रकार वह महमूद और उसकी सेना को सिन्ध की मरुभूमि में ले-गया जहाँ कि महमूद के अनेक सैनिक मर गये और वह स्वयं भी प्यास के मारे अधमरा हो गया ।

दूसरा व्याख्यान—इसके पश्चात् स्वामीजी ने बाल-विवाह पर कथन किया कि लोग १०-१० वर्ष के बालक और बालिकाओं का विवाह कर देते हैं, जो समय कि उनकी शिक्षा का होता है । वे सदा मूर्ख रहते हैं और जन्मभर अपने माता-पिता को कोसते रहते हैं । ऐसे विवाहित बालकों से क्या उपकार हो सकता है।

आर्यसमाज स्थापित करने का उपक्रम—तत्पश्चात् अनेक दृष्टान्त देकर महाराज ने अहमदाबाद में आर्यसमाज स्थापित करने का प्रस्ताव किया और मुद्रित नियम पढ़कर सुनाये, जिन्हें सब लोगों ने पसन्द किया और २७ जनवरी सन् १८७५ का दिन इस अभिप्राय के लिए नियत हुआ कि जिसको कोई सन्देह हो वह उसे निवृत्त कर ले ।

२७ जनवरी को राव बहादुर विट्ठलदास के गृह पर एक सभा हुई जिसका उद्देश्य स्वामीजी की विदासूचक संवर्द्धना करना और आर्यसमाज-स्थापना के विषय में परामर्श करना था ।

सभा में बेचरदास अम्बाईदास, गोपालराव हरिदेशमुख, भोलानाथ साराभाई, अम्बालाल सागरलाल प्रभृति महानुभाव उपस्थित थे । इनके अतिरिक्त शास्त्रीगण भी थे, जिनमें से कुछ के नाम यह हैं—शास्त्री सेवकराम, लल्लूभाई बापूजी, भोलानाथ भगवान् ।

---

§ इसी ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठ ५० से ज्ञात होता है कि राजकोट से अहमदाबाद जाते हुए बड़ोयान से पूर्व "चोटिला" ग्राम में भी ठहरे थे । चोटिला राजकोट से १२-१३ मील दूर है । यहाँ की एक घटना का उल्लेख पृष्ठ ५० पर मिलता है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनके अतिरिक्त कई पादरी भी उपस्थित थे।

शास्त्रार्थ के लिए आह्वान—शास्त्रीगण कहते थे कि मूर्त्तिपूजा हमारे शास्त्रों के अनुकूल है। इसपर बेचरदास अम्बाईदास ने उनसे कहा कि स्वामीजी आपसे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं, आप उनसे शास्त्रार्थ क्यों नहीं कर लेते ? शास्त्री लोग इसपर सहमत नहीं हुए। उनसे शास्त्रार्थ न करने का कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि स्वामीजी ने—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ —यजुः० ३३।४३

इस वेदमन्त्र का अर्थ अशुद्ध किया है। इसपर सब लोगों ने पण्डितों से अपना अर्थ करने का अनुरोध किया और कहा कि यह प्रतिपादित करो कि स्वामीजी ने भूल की है और आपका अर्थ ठीक है। अपने किये हुए अर्थों के नीचे अपने हस्ताक्षर कर दो। इसपर कुछ पण्डित तो सहमत हो गये और उन्होंने अर्थ करके उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिये और कुछ इसपर भी सहमत न हुए। स्वामीजी ने भी उक्त मन्त्र के अर्थ करके उसपर हस्ताक्षर कर दिये।

स्वामीजी के किये अर्थ—

(आकृष्णेन) आकर्षणात्मना **(रजसा)** रजोरूपेण रजतस्वरूपेण वा **(रथेन)** रमणीयेन **(देवः)** द्योतनात्मकः **(सविता)** प्रसवकर्त्ता वृष्ट्यादेः **(मर्त्यम्)** मर्त्यलोकं **(अमृतम्)** ओषध्यादि रसं **(निवेशयन्)** प्रवेशयन् **(भुवनानि पश्यन्)** दर्शयन् **(याति)** रूपादिकं विभक्तं प्रापयतीत्यर्थः **(हिरण्ययेन)** ज्योतिर्मयेन।

(सविता) सर्वस्य जगत उत्पादकः **(देवः)** सर्वस्य प्रकाशकः **(मर्त्यम्)** मर्त्यलोकस्थान् मनुष्यान् **(अमृतम्)** सत्योपदेशरूपं **(निवेशयन)** प्रवेशयन् सर्वाणि **(भुवनानि)** सर्वज्ञतया **(पश्यन्)** सन् **(आकृष्णेन)** सर्वस्याकर्षणस्वरूपेण परमाणूनां धारणेन वा **(रथेन)** रमणीयेनानन्दस्वरूपेण वर्त्तमानः सन् **(याति)** धर्म्मात्मनः स्वान् भक्तान् सकामान् प्रापयतीत्यर्थः।

संवत् १९३१ पौष वदि षष्ठी बुधवार ७ काल, ४० मिनट सही सम्मतिरत्र दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः।

शास्त्रियों का किया अर्थ—

(आकृष्णेन) ईषत्कृष्णेन **(रजसा वर्तमानः)** सहितः **(सविता देवः)** सूर्य्यः **(अमृतं)** स्वर्गं **(मर्त्यं)** भूलोकं **(निवेशयन्)** स्वस्वप्रदेशेषु स्थापयन् **(हिरण्ययेन रथेन)** स्यन्दनेन **(भुवनानि पश्यन् याति)** गच्छति।

सही—लल्लूभाई बापू शास्त्रिणः सम्मतोऽयमर्थः
शास्त्री सेवकरामरामनाथ सम्मतिरत्र भास्करशास्त्रिणः
सम्मतिरत्र अमृतरामशास्त्रिणः

इसके पश्चात् स्वामीजी ने एक वक्तृता दी जिसमें कहा कि सबको वेदों का अनुसरण करना चाहिए।

स्वामीजी का अर्थ ठीक है—गोपालराव हरिदेशमुख, भोलानाथ, अम्बालाल आदि ने दोनों के अर्थों को देख और समझकर कहा कि शास्त्री अविवेकी और दुराग्रही हैं, स्वामीजी का किया अर्थ ही ठीक है।

अकारण द्वेष—इस मन्त्र का जो अर्थ स्वामीजी ने किया था, उसपर निष्कारण वैरी पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री ने बहुत आक्षेप किया और उसे अशुद्ध बताया था।

विष्णुशास्त्री के अर्थों की अशुद्धि—उसके सम्बन्ध में स्वामीजी ने अपने एक पत्र§ में संवत् १९३१

§ यह पूरा पत्र ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ३०, ३१ पर मुद्रित हुआ है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फाल्गुन शुक्ला ६ को गोपालराव हरिदेशमुख को लिखा था कि उस विष्णुशास्त्री के विषय में एक बानगी लिखते हैं कि ऐसी मूर्खता कोई विद्यार्थी भी नहीं करेगा। "ऋ गतिप्रापणयोः", इस धातु से रथ शब्द सिद्ध होता है, "रमु क्रीडायाम्", इस धातु से नहीं, इससे यह अर्थ निर्युक्ति और निर्मूल है। स्वामीजी ने लिखा कि पाणिनिमुनिरचित उणादिगणसूत्र-प्रमाण—

हनि-कुषि-नी-रमि-काशिभ्यः क्थन्'। हयः, कुष्ठः, निथः, रथः, काष्ठम्।

यास्को निरुक्तकारः—**रथो रंहतेर्गतिकर्मणः इत्यत्र रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वेति॥**

इससे 'रम' धातु से ही रथ शब्द सिद्ध होने से "रमणीयो रथो रमतेऽस्मिन्निति वा"।

इन प्रमाणों को देखते हुए कौन कह सकता है कि विष्णुपरशुराम शास्त्री ने स्वामीजी की रथ शब्द की निरुक्ति को अशुद्ध कहकर अपने नाम और विद्वत्ता को कलङ्कित नहीं किया ? उनका ऐसा करना केवल छिद्रान्वेषण करने के अभिप्राय से ही था।

मूर्त्तिपूजा और वर्णाश्रम पर व्याख्यान, शास्त्रियों के विरुद्ध निर्णय—उपर्युक्त प्रकार से वेदार्थविषयक बात-चीत होने के पश्चात् शास्त्रियों का स्वामीजी से मूर्त्तिपूजा और वर्णाश्रम पर भी वार्त्तालाप हुआ था। शास्त्रियों ने भोलानाथ साराभाई और अम्बालाल सागरमल को मध्यस्थ बनाया था। विचार की समाप्ति पर दोनों ही मध्यस्थों ने अपनी सम्मति स्वामीजी के पक्ष में और शास्त्रियों के विरुद्ध दी थी।

उपहार—अन्त में लोगों ने स्वामीजी को धन्यवाद दिया और गोपालराव हरिदेशमुख ने उनके भाषण से सन्तुष्ट होकर उन्हें एक सुन्दर पीताम्बर भेंट किया।

संशयोच्छेदन हो गया—रावबहादुर गोपालराव हरिदेशमुख पहले वेदों के विरोध में लेख और पुस्तक लिखा करते थे। स्वामीजी के बम्बई में दर्शन, सत्सङ्ग और व्याख्यान-श्रवण से उनका संशयोच्छेदन हो गया और वे स्वामीजी के भक्त बन गये। स्वामीजी उन्हीं के निमन्त्रण पर अहमदाबाद गये थे।

स्वामीजी का कथन ठीक है—पहली बार जब स्वामीजी के कई व्याख्यान अहमदाबाद में हो चुके तो एक दिन भोलानाथ साराभाई ने गोपालराव से कहा कि स्वामीजी तो कहते हैं कि वेद निर्भ्रान्त हैं, फिर आप वेदों के विरुद्ध कैसे लिखते हैं ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि मैं भ्रान्त था, वेदों को अच्छी तरह नहीं जानता था। अब मेरी समझ में आ गया है कि जो स्वामीजी कहते हैं वह ठीक है। गोपालराव स्वामीजी के प्रति इतने अनुरक्त हो गये थे कि जब वे थाना में जज थे, तो वहाँ से बम्बई आकर आर्यसमाज के अधिवेशनों में सम्मिलित हुआ करते थे और स्वयं भी वक्तृता दिया करते थे।

एक दिन एक ब्राह्मण ने महाराज से कहा कि हम आपके कहने से अपना धर्म कैसे छोड़ दें ? श्रीकृष्णजी ने गीता में कहा है—**श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः** (अपना धर्म विगुण भी हो तो भी अच्छा है)। महाराज ने उत्तर दिया कि यहाँ धर्म से अभिप्राय वर्णाश्रम धर्म से है, न कि साम्प्रदायिक धर्म से। इसपर वह सन्तुष्ट हो गया।

११ मार्च सन् १८७५ के 'हितेच्छु' में एक लेखक ने स्वामीजी से दूसरी बार अहमदाबाद पधारने के विषय में एक लेख लिखा था, जिसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

अहमदाबाद में आर्यसमाज—"हम अहमदाबाद के लोगों को आर्यसमाज स्थापित करने पर बधाई देते हैं। पण्डित दयानन्द का यह मुख्य उद्देश्य था कि एक ऐसी सभा स्थापित की जाए, जिसमें हिन्दूलोग प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित हो सकें और हम अत्यन्त प्रसन्न हैं कि ईश्वर के अनुग्रह से यह कार्य सम्पादित हो गया। ३० के लगभग सज्जन समाज में सम्मिलित हुए हैं, जिनमें रावबहादुर गोपालराव, रावबहादुर बेचरदास

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और रावसाहब महीपतराम भी हैं। ये सज्जन हरएक कार्य में जो भारत के भले का होता है, योग देने में अग्रसर रहते हैं।"

महीपतराम को छोड़कर अन्य प्रार्थना समाजियों ने आर्यसमाज में अपना नाम नहीं लिखवाया था। उसके विषय में उक्त लेख में लिखा गया था—

प्रार्थना-समाजियों की भूल—ये लोग भूल जाते हैं कि वेद विद्या के बृहत् भण्डार हैं और उनकी भाषा इतनी गम्भीर अर्थवाली और आलङ्कारिक है कि उसके आधार पर वैदिक और पौराणिकों को एक-दूसरे के प्रतिकूल सिद्धान्तों को स्थापित करने का अवसर मिलता है और जब हम देखते हैं कि उसके बहुत-से अर्थ हो सकते हैं, तो हम उसी अर्थ को ग्रहण करने में तत्पर हो जाते हैं, जो हमारी बुद्धि और अनुभव के सबसे अधिक अनुकूल है।

वेदों के अत्यन्त युक्तियुक्त अर्थ—अपने थोड़े-से दिन के निवास में पण्डित दयानन्द ने वेदों के अत्यन्त युक्तियुक्त अर्थ किये हैं और उनका आधार ऋषियों के प्राचीनतम कोशों पर रक्खा है। उन्होंने पुराने ढङ्ग के शास्त्रियों और पौराणिकों को उससे भिन्न अर्थ करने के लिए आहूत किया, परन्तु उनका साम्मुख्य कौन कर सकता था ? ऐसा होते हुए भी और स्वयं संस्कृतभाषा से अनभिज्ञ होते हुए भी उपर्युक्त सज्जन कुछ बङ्गालियों के पदचिह्नों पर चलते हुए आर्यसमाज के सदस्य बनने से पीछे हट गये।

वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार करने में पण्डित दयानन्द ने समाज के लिए बहुत ही युक्तियुक्त कार्य किया है। यह बात हम सभी लोगों को, चाहे युवा हों वा वृद्ध, ब्राह्म और प्रार्थना-समाजों के कथन की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण और समर्थनीय प्रतीत होगी। उक्त समाज के सदस्य हंमसे अलग हो गये हैं और अपनी बुद्धि के अतिरिक्त अन्य किसी की मार्गदर्शकता स्वीकार नहीं करते, परन्तु बुद्धि ऐसी शक्ति है जो विकारयुक्त और क्षीण हो सकती है।

स्वामीजी के विषय में लिखा था—

स्वामीजी असाधारण व्यक्ति हैं—निस्सन्देह वे असाधारण व्यक्ति हैं। उनकी प्रतिभा और योग्यता दुर्लभ है। यदि वह वल्लभ और अन्य साम्प्रदायिक लोगों के सदृश धन के कारण कार्य करनेवाले होते तो उन्हें सहस्रों शिष्य प्राप्त हो जाते और एक नया सम्प्रदाय स्थापित करके धन की बड़ी राशि इकट्ठी कर लेते, परन्तु ऐसे नीचभाव उनकी प्रकृति के प्रतिकूल हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य भारत-पुनरुद्धार ही है। उनकी प्रबल आकाँक्षा यही है कि वे समृद्धि और सभ्यता में अपने देश को फिर एक-बार सब जातियों में शिरःस्थान पर देखें।

§अहमदाबाद से स्वामीजी भड़ौंच होकर सूरत गये।

सूरत—जब महाराज दुबारा सूरत आये तो हाईस्कूल में उन्होंने एक व्याख्यान दिया।

वान बुह्लर से साक्षात्—सूरत में उनका डॉक्टर वान बुह्लर (Van Buhler) से साक्षात् हुआ। उस समय वे शिक्षाविभाग के इन्सपैक्टर थे। वे अच्छे संस्कृतज्ञ थे और प्रोफेसर मैक्समूलर सम्पादित Sacred Books of the East नामक ग्रन्थमाला में उनका मनुस्मृति का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित हुआ था। स्वामीजी से उनका संस्कृत में वार्त्तालाप हुआ था। स्वामीजी उनके संस्कृत-भाषण से इतने प्रसन्न हुए थे कि पण्डित कृष्णराम के पूछने पर स्वामीजी ने उनके विषय में कहा था कि वह पण्डित गट्टूलाल से तो अच्छी ही संस्कृत बोलता है। उनका यह कहना था भी सत्य, क्योंकि पण्डित गट्टूलाल निस्सन्देह काव्य के अच्छे पण्डित थे

---

§ हमारे विचार में यहाँ से आगे का लेख भूल से अस्थान पर जुड़ा है। यह पृष्ठ ३३० पर अगली बार अहमदाबाद जाने के समय होना चाहिए। अगले अध्याय की प्रथम पंक्ति से भी इसकी पुष्टि होती है। —**य०मी०**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और उसमें उनकी विलक्षण गति थी, परन्तु वैदिक साहित्य में उनका प्रवेश कम था और इसी कारण वह वैदिक विषयों पर वार्त्तालाप करते हुए अच्छी संस्कृत नहीं बोल सकते थे।

उपहार स्वीकार करना पड़ा—स्वामीजी जब सूरत से चलने लगे तो उनकी अनिच्छा होने पर भी निर्भयराम, दुर्गाराम मोता प्रभृति ने उनके प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता प्रकाशनार्थ उन्हें एक बहुमूल्य शाल भेंट में दिया था, जो उन्होंने प्रशंसित महानुभावों के आग्रह पर स्वीकार कर लिया था।

सूरत से स्वामीजी ने बालसर जाने की इच्छा प्रकट की और पहले से ही पण्डित कृष्णराम को स्थानादि का प्रबन्ध करने के निमित्त वहाँ भेज दिया।

बालसर; अनीश्वरवादियों का मुँह बन्द—बालसर में स्वामीजी सिद्धनाथ महादेव की धर्मशाला में ठहरे और फिर रतनजी पारसी के बाग़ में चले गये। बालसर में स्वामीजी के चार व्याख्यान हुए। कई अनीश्वरवादी उनके पास आये और यह सिद्ध करना चाहा कि जगत् का कर्त्ता कोई नहीं है, परन्तु स्वामीजी ने थोड़ी ही देर में उनका मुँह बन्द कर दिया।

दयानन्द जो कहते हैं सत्य है; मैं गृहस्थ हूँ, मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं कर सकता—बालसर के पण्डित भवानीशङ्कर गुजरातभर में अपने पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध थे। वे स्वामीजी के व्याख्यान सुनने आया करते थे। लोगों ने उनसे जाकर कहा कि आप दयानन्द से शास्त्रार्थ करके उनके सिद्धान्तों का मिथ्यात्व प्रतिपादित कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि जो कुछ दयानन्द कहते हैं वह शास्त्रविरुद्ध नहीं है, फिर मैं उनसे शास्त्रार्थ किस बात पर करूँ? जब स्वामीजी को यह वृत्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने पण्डित भवानीशङ्कर से कहा कि आप-जैसे विद्वानों को वैदिक सिद्धान्तों को प्रकट करना चाहिए, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि मैं गृहस्थ हूँ, मेरे द्वारा मूर्त्तिपूजा का खण्डन और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार सम्भव नहीं है। उन्हीं दिनों पण्डित भवानीशङ्कर के पुत्र के जामाता की मृत्यु हो गई थी। स्वामीजी ने उसका प्रसङ्ग उठने पर उनसे कहा कि वेदों में नियोग की विधि है और उसकी पुष्टि में एक वेदमन्त्र भी पढ़ा। पण्डित भवानीशङ्कर ने कहा कि मैं इस वृद्धावस्था में इस प्रथा को कैसे चला सकता हूँ।

बालसर से स्वामीजी बसीनरोड गये।

बसीनरोड—बसीनरोड में बड़ौदा के एक वेतनभोगी गोविन्दराव निवास करते थे, जो देशोन्नति और देशीय शिक्षापद्धति आदि विषयों के उपदेशक थे। उन्होंने बड़ौदा में स्वामीजी के दर्शन किये थे और उनसे बसीनरोड पधारने का अनुरोध कर आये थे। बसीनरोड में स्वामीजी चार दिन ठहरे और दो व्याख्यान दिये।

एक नौकर ने स्वामीजी की घड़ी चुरा ली। दूसरे कर्मचारी उसे पकड़कर स्वामीजी के पास ले गये। नौकर ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए रोकर क्षमा माँगी। स्वामीजी ने उसे शिक्षा दी और उसने प्रण किया कि वह आगे को ऐसा न करेगा। स्वामीजी ने कर्मचारियों से कहा हमारा प्रयोजन साँप को मारना है, न कि उसकी बम्बी को कूटना-पीटना और उसे क्षमा कर दिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षोडश अध्याय

माघ सं० १९३१—ज्येष्ठ सं० १९३३=जनवरी १८७५—अप्रैल १८७६

(२९ जनवरी—जून ७५) मुम्बई (माघ कृ० ८ सं० ३१—आ० कृ० ३२)

माघ कृ० ८ तीरीख २८ जनवरी सन् १८७५ को स्वामीजी अहमदाबाद से मुम्बई लौट आये और बालकेश्वर में उसी गोशाला नामक स्थान पर ठहरे जहाँ पहले ठहरे थे।

स्वामीजी का मुम्बई से पण्डरपुर जाने का विचार था, परन्तु किसी कारण वह सङ्कल्प पूरा न हो सका।

४ फ़रवरी सन् १८७५ को स्वामीजी की एक वक्तृता हुई।

वेद-मण्डप—अन्य स्थानों में व्याख्यानों का प्रबन्ध करने में अड़चन पड़ने और कभी-कभी पर्याप्त स्थान न मिलने के कारण श्रोतृवर्ग व्याख्यानों से उचित लाभ न उठा सकता था, अतः महाराज के अनुरक्त भक्तों ने मैदान नामक खुले स्थान में उनके व्याख्यानों के लिए एक मण्डप बना दिया था, जिसका नाम 'वेदमण्डप' रक्खा था। इस मण्डप में उनकी पहली वक्तृता २६ फ़रवरी सन् १८७५ को हुई।

स्वामीजी को व्याकरण में परास्त करने की चेष्टा—किसी कारण से मुम्बई के पण्डितों की यह धारणा हो गई थी कि स्वामीजी व्याकरण में बहुत व्युत्पन्न नहीं हैं, अतः उन्होंने सोचा कि यदि दयानन्द को व्याकरण-विषयक शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया जाएगा तो उनकी ख्याति और प्रभाव मन्द पड़ जाएँगे और फिर धर्म-विषय में भी लोग उनके कथन में श्रद्धा और विश्वास न करेंगे, अतः उन्होंने उक्त विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामीजी को आहूति किया। ज्योंही शास्त्रिगण के ये शब्द महाराज के कर्णगोचर हुए त्योंही उन्होंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ की तिथि १० मार्च सन् १८७५ नियत हो गई।

शास्त्रार्थ-स्थल की चहल-पहल—नियत दिवस और समय पर सभा-मण्डप में अपूर्व चहल-पहल दिखाई देने लगी। बड़े-बड़े सेठ आये, साहूकार आये, बैरिस्टर और सालिसिटर आये, कॉलेजों के महोपाध्याय और स्कूलों के उपाध्याय आये, शिक्षित लोग भी आये और अशिक्षित भी, उष्णीषमण्डित पण्डित आये और दयानन्द को पराजित करने की आशा साथ लाये। दयानन्द भी आये। उनका मुखमण्डल सदा की भाँति प्रसन्न था, उसपर न चिन्ता की रेखा थी, न भय का चिह्न। सभास्थल में एक बड़ा सिंहासन बनाया गया था और उसपर वेदादि की पुस्तकें प्रमाण के लिए रक्खी गई थीं। स्वामीजी आकर सिंहासन पर विराजमान हो गये।

यदि हम उत्तर न दे सकेंगे तो सिंहासन से नीचे उतर जाएँगे—पण्डितों ने इसपर कुछ आपत्ति की तो स्वामीजी ने कहा कि हम संन्यासी होने के कारण बैठे हैं। आप लोग हमसे कुछ प्रश्न करें, यदि हम उत्तर न दे सकेंगे तो सिंहासन से उतर जाएँगे और आप बैठ जाना।

वाक्पटु को चुप होना पड़ा—श्री आत्माराम बापूदल शास्त्रार्थ-सभा के सभापति पद पर प्रतिष्ठित हुए। पण्डितों की ओर से पण्डित खेमजी बालजी जोशी ने भाषण आरम्भ किया। जोशी वाक्पटु समझे जाते थे, अतः श्रोतृवर्ग उनके कथन को उत्कण्ठा और आशा से सुनने लगे, परन्तु जोशी ने प्रकृत विषय पर तो कुछ कहा नहीं, इधर-उधर की बातें कहनी आरम्भ कर दीं। श्रोता उकताने लगे और उनकी ओर से जोशीजी को चुप कराने की चेष्टा होने लगी, परन्तु वे चुप होनेवाले न थे, वे अप्रासङ्गिक बातें कहते ही रहे। अन्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में श्रोतृगण उनकी बातों से सर्वथा विरक्त हो गये और श्रोताओं ने उन्हें अधिक समय नष्ट करने का अवकाश देने से इन्कार कर दिया। इसपर जोशीजी को चुप होना ही पड़ा।

पराजय स्वीकार करना पड़ा—तत्पश्चात् पण्डित इच्छाशङ्कर सुकुल ने स्वामीजी से व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न आरम्भ किये। स्वामीजी उनके उत्तर देते रहे। जब पण्डित इच्छाशङ्कर के प्रश्न समाप्त हो गये और वह स्वामीजी के उत्तरों पर कोई आपत्ति न कर सके तो फिर स्वामीजी ने उनसे प्रश्न करने आरम्भ किये। पण्डितों के उत्तर लिखे गये और स्वामीजी ने महाभाष्यादि ग्रन्थों के प्रमाण द्वारा उनके उत्तरों को भ्रमपूर्ण सिद्ध कर दिया। पण्डितगण स्वामीजी के आक्षेपों का निराकरण न कर सके और विवश होकर उन्हें अपनी भ्रान्ति स्वीकार करनी पड़ी। सब लोगों को प्रतीत हो गया कि पण्डितवर्ग तो स्वामीजी से क्या उनके शिष्यों से भी तर्क करने की योग्यता नहीं रखता।

नियोग पर आक्षेप—तत्पश्चात् पण्डितों ने नियोग पर कुछ आक्षेप किया। जिनका उत्तर स्वामीजी ने इस ढंग से और ऐसी योग्यता और प्रबल युक्तियों से दिया कि पण्डितों को अनन्योपाय होकर मौन ही धारण करना पड़ा। इस बार भी पण्डितों की स्वामीजी को परास्त करने की आशा निराशा में ही परिणत हुई और वे खिन्न तथा विषादपूर्ण हृदयों के साथ घरों को लौट आये।

व्याख्यानों की झड़ी—१६ मार्च सन् १८७५ से तो महाराज ने व्याख्यानों की झड़ी लगादी। एक दिन आप व्याख्यान देते थे और दूसरे दिन लोगों को शङ्का-समाधान करने का अवसर देते थे। जनता ने महाराज के इस अनुपम अनुग्रह से पूरा-पूरा लाभ उठाया। वे मन भर-भरकर महाराज के उपदेशपूर्ण व्याख्यानों का लाभ लूटने लगे, उनकी धर्मपिपासा शान्त होने लगी, उनका हृदयान्धकार दूर होने लगा। महाराज के सदुपदेशों का प्रभाव मुम्बई तक ही सीमित न रहा, उसका प्रवाह मुम्बई प्रान्त सीमा का उल्लंघन करके अन्य प्रान्तों को सिंञ्चित करने लगा।

एक धनी वणिक् की विनय-पत्रिका—जोधपुर के एक धनी वणिक् ने एक विनय-पत्रिका उनकी सेवा में भेजी, जिसमें उनसे प्रार्थना की कि जोधपुर पधारने का अनुग्रह करें और वहाँ धर्म के सम्बन्ध में जो गम्भीर अन्धकार फैला हुआ है उसे वैदिक धर्म के प्रखर प्रकाश से छिन्न-भिन्न करें।

यजुर्वेद पर जैन साधु का आक्षेप—एक दिन एक जैन साधु ने, जिनका नाम चारित्रप्रधान था, यजुर्वेद के एक मन्त्र पर कुछ कटाक्ष करके स्वामीजी के पास भेजा। स्वामीजी ने उसका समीचीन उत्तर लिखकर उनके पास भेज दिया, फिर साधुजी ने उसके प्रत्युत्तर में कुछ न लिखा।

आर्यसमाज का अंकुर—स्वामीजी के सूरत आदि जाने से पहले ही कुछ श्रद्धालु जनों की यह इच्छा हुई थी कि मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की जाए, जिससे कि उनके मुम्बई से चले जाने के पश्चात् भी वैदिक धर्म का उपदेश-कार्य होता रहे। स्वामीजी से भी उन सज्जनों ने यह इच्छा प्रकट की थी और उन्होंने उन लोगों को उत्साहदान भी किया था। उन्होंने आर्यसमाज के संगठन आदि विषयक एक नियमावली की भी रचना कर दी थी और ६० मनुष्यों ने उसका सदस्य होने की स्वीकृति दे दी थी, परन्तु स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् उनका उत्साह मन्द पड़ गया; कुछ पर तो बिरादरी का दबाव पड़ा; कुछ ने सदस्य बनना अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल न समझा और कई लोगों के सम्बन्धी तथा परिवार के लोगों ने विवाद खड़ा कर दिया और यह प्रस्ताव जहाँ-का तहाँ ही रह गया।

अंकुर फिर फूटा—जब स्वामीजी गुजरात-यात्रा से लौटकर मुम्बई आये तो भक्तजनों के मन में आर्यसमाज स्थापित करने की इच्छा पुनः जाग्रत् हुई और स्वामीजी ने भी उनसे यह प्रस्ताव किया। अन्य सज्जनों के अतिरिक्त लछमनदास, खेमजी और राजकृष्ण महाराज इस विषय में अधिक उत्साह दिखाने लगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज स्थापित करने का यत्न फ़रवरी में ही आरम्भ हो गया था और १७ फ़रवरी तक १०० पुरुषों ने उसका सदस्य बनना स्वीकार कर लिया था।

असत्य पर आर्यसमाज को कदापि स्थापित न करूँगा—राजकृष्ण महाराज ने आर्यसमाज के नियम बनाने की इच्छा प्रकट की तो स्वामीजी ने कहा कि नियम हम स्वयं बनाएँगे और एक नियमावली बना दी। राजकृष्ण महाराज ने कहा, "नियमों में जीव-ब्रह्म के एकत्व के सिद्धान्त का समावेश होना चाहिए, पीछे छोड़ देंगे। ऐसा करने से हम अनेक लोगों को आर्यसमाज की ओर आकर्षित कर सकेंगे।"

राजकृष्ण रुष्ट हो गये—स्वामीजी ने इसके उत्तर में जो कुछ कहा वह उनके अनुरूप ही था। उन्होंने कहा, "मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूँगा।" इसपर राजकृष्ण महाराज इतने चिढ़े कि भावी सदस्यों की जो तालिका वे बनाकर लाये थे, उसे लेकर स्वामीजी के पास से चले गये और स्वामीजी का विरोध करने लगे, स्वामीजी के पास आना-जाना तक छोड़ दिया।

नवीन वेदान्ती राजकृष्ण—स्वामीजी जब मुम्बई पधारे थे तो राजकृष्ण महाराज ने अन्य सज्जनों के योग से उनके स्वागत और निवास का प्रबन्ध किया था। राजकृष्ण महाराज नवीनवेदान्त के प्रबल पक्षपाती थे और उसके समर्थन में 'हृदय चक्षु' नाम का एक मासिक पत्र भी निकला करते थे। स्वामीजी के प्रस्ताव पर उसका नाम 'आर्य-धर्म-प्रकाश' रक्खा गया था।

रुष्ट होने का कारण—राजकृष्ण महाराज के इस प्रकार रुष्ट होने का कारण यह था कि वह स्वामीजी द्वारा वैष्णव मत का खण्डन कराके उन्हें उससे विरक्त कर दें और अपनी ओर आकर्षित कर लें। जब आर्यसमाज स्थापित करने का प्रस्ताव हुआ तो वे जीव-ब्रह्म की एकता के सिद्धान्त का नियमों में समवेश भी इसी गुप्त अभिप्राय से चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि स्वामीजी के प्रभाव और उद्योग से आर्यसमाज स्थापित होने पर जब स्वामीजी मुम्बई से चले जाएँगे तो आर्यसमाज को अपने अधिकार में करके उसपर आधिपत्य कर लेंगे।

राजकृष्ण की सहायता की उपेक्षा—राजकृष्ण महाराज रूठकर उठ गये, उन्होंने समझा होगा कि अब स्वामीजी को कोई आर्यसमाज का सदस्य बनने के लिए नहीं मिलेगा, परन्तु थोड़े-से समय पश्चात् उन्हें ज्ञात हो गया कि स्वामीजी उनके सहयोग के बिना और असहयोग के होते हुए भी अपना कार्य सिद्ध कर सकते हैं।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—सेठ मथुरादास लौजी, सेवकलाल, करसनदास, गिरिधारीलाल दयालदास कोठारी बी०ए० एल०-एल०बी० प्रभृति सज्जनों ने आर्यसमाज स्थापित करने का दृढ़-सङ्कल्प कर लिया। इन सत्पुरुषों पर पौराणिकों ने अत्याचार भी किये और सर्वसाधारण में उनकी भरपेट निन्दा भी की, परन्तु वे अपने संङ्कल्प पर दृढ़ रंहे। राजमान् राजेश्वरी पानाचन्द आनन्दजी पारीख को आर्यसमाज के नियमों का ढाँचा बनाने के लिए नियत किया गया। उन्होंने वह तैयार किया और उसे स्वामीजी के सामने प्रस्तुत किया। स्वामीजी ने उसमें उचित संशोधन कर दिया। चैत्र शुक्ला ५ शनिवार संवत् १९३२ एवं १० अप्रेल १८७५ एवं [३ रवीउल् अव्वल सन् १२९२ हिजरी, एवं शाके शालिवाहन १७९५, एवं फ़सली सन् १२८३, एवं खुर्दाद सन् १२८४ पारसी] को गिरगाम रोड में प्रार्थना-समाज के मन्दिर के निकट डॉक्टर माणकजी की बागबाड़ी में सायङ्काल के ५॥ बजे एक सभा की गई§ जिसमें आर्यसमाज स्थापित किया गया और निम्नलिखित नियम स्वीकार किये गये—

---

§ आर्यसमाज की स्थापना की जो तिथि यहाँ दी है, वही ठीक है। सन् १९३९ से आर्य सार्वदेशिक सभा देहली ने आर्यसमाज स्थापना दिवस चैत्र शु० १ नियत किया है, वह अशुद्ध है। चैत्र शु० ६ रविवार सं० १९३२ के पत्र में ऋषि दयानन्द ने भी यही लिखा है देखो ऋ० द० पत्र और विज्ञापन पृ० ३२। सार्वदेशिक सभा ने अपना निर्णय आर्यसमाज मुम्बई में लगे शिलालेख के आधार पर बदला है। शिलालेख सं० १९४० में लगाया गया है, वह अप्रामाणिक है। —**यु. मी.**।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज के नियम—

१—आर्यसमाज का सब मनुष्यों के हितार्थ होना आवश्यक है।

२—इस समाज में मुख्य स्वतःप्रमाण वेदों का ही माना जाएगा। साक्षी के लिए, वेदों के ज्ञान के लिए तथा आर्य इतिहास के लिए शतपथादि ४ ब्राह्मण, ६ वेदाङ्ग, ४ उपवेद, ६ दर्शन, १६२७ वेदों की शाखा, वेद-व्याख्यान, आर्यसनातन-संस्कृतग्रन्थों को भी वेदानुकूल होने से गौण माना जाएगा।

३—इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य समाज शाखा-प्रशाखा होंगे।

४—अन्य सब समाजों की व्यवस्था प्रधानसमाज के अनुकूल रहेगी।

५—प्रधानसमाज में वेदोक्तनुकूल संस्कृत और आर्यभाषा में नाना प्रकार के सदुपदेश की पुस्तक होंगी और एक 'आर्य-प्रकाश' पत्र यथानुकूल आठ-आठ दिन में निकलेगा। यह, सब समाजों में प्रवृत्त किये जाएँगे।

६—हर एक समाज में एक प्रधान-पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री सभासद् होंगे।

७—प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था-पालन करेगा और मन्त्री सबके पत्रों का उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था-लेख करेगा।

८—इस समाज में सत्पुरुष, सत्यनीति, सत्याचारिणी मनुष्यों के हितकारक समाजस्थ किये जाएँगे।

९—जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त हो, सो जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिए करे और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति करे, अन्यथा नहीं।

१०—हर आठवें दिन प्रधान, मन्त्री और सभासद् समाज-स्थान में इकट्ठे हों और सब कामों में इस काम को मुख्य जानें।

११—इकट्ठे होकर सर्वथा स्थिरचित्त हों, परस्पर प्रीति से पक्षपात छोड़कर प्रश्नोत्तर करें, फिर सामवेदादि गान, परमेश्वर, सत्य-धर्म, सत्यनीति तथा सत्योपदेश के सम्बन्ध में, बाजा आदि के साथ हो और इसी विषय पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान, पुनः गान फिर व्याख्यान और फिर गान हो, इत्यादि।

१२—हर एक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उसमें से आर्यसमाज, आर्यविद्यालय और 'आर्य-प्रकाश' पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्यसमाज के धनकोष में एक प्रतिशत प्रीतिपूर्वक देवें, अधिक देने से अधिक धर्मफल। इस धन का इन्हीं विषयों में व्यय होवे और जगह नहीं।

१३—जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिए जितना प्रयत्न करे उसका उत्साह के लिए यथायोग्य सत्कार होना चाहिए।

१४—इस समाज में वेदोक्त प्रकार से हरएक स्तुति, प्रार्थना और उपासना अद्वितीय परमेश्वर की ही करने में आएगी, अर्थात् निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वजगत्पिता, सर्वजगन्माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्द आदि लक्षणयुक्त, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तभाव, अनन्तसुखप्रद, धर्मार्थिकाममोक्षप्रद, इत्यादि विशेषणों से परमात्मा की ही स्तुति, उसका कीर्त्तन, प्रार्थना, उससे सर्वश्रेष्ठ कार्यों में साहाय्य चाहना, उपासना उसके आनन्दस्वरूप में मग्न हो जाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षणवाले की ही भक्ति करनी, उसके सिवाय किसी और की कभी नहीं करनी।

१५—इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टिपर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जाएँगे।

१६—आर्यविद्यालय में वेदादि सनातन आर्षग्रन्थों का पठन-पाठन कराया जाएगा और वेदोक्त रीति

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ही सत्यशिक्षा सब पुरुष और स्त्री के सुधार की होगी।

१७—इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जाएगा, एक परमार्थ दूसरी लोकव्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति की जाएगी।

१८—इस संसार में न्याय वही माना जाएगा जो पक्षपात रहित अर्थात् प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परीक्षित, सत्यधर्म वेदोक्त होगा, इससे विपरीत को यथाशक्ति न माना जाएगा।

१९—इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् सर्वत्र सदुपदेश करने के लिए समयानुकूल भेजे जाएँगे।

२०—स्त्री और पुरुष दोनों के विद्याभ्यास के लिए हर एक स्थान में यथाशक्ति अलग-अलग बनाये जाएँगे। स्त्रियों के लिए पाठशाला में अध्यापन और सेवा-प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जाएगा और पुरुष पाठशाला का पुरुषों द्वारा, इसके विरुद्ध नहीं।

२१—उन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्यसमाज के अनुकूल पालन की जाएगी।

२२—इस समाज में प्रधान आदि सब सभासद् परस्पर प्रीति के लिए अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि सब दुर्गुण छोड़कर उपकार, सुहृदता से सबसे सबका निर्वैर होकर स्वात्मवत् सम्प्रीति करनी होगी।

२३—विचार-समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहित की जो सत्य बात भले प्रकार विचार से ठहरे उसी को सब सभासदों को प्रकट करके मानी जाए, इसके विरुद्ध न मानी जाए। इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

२४—जो पुरुष इन नियमों के अनुकूल आचरण करेवाला, धर्मात्मा, सद्गुणी हो उसको उत्तम समाज में प्रविष्ट करना, उसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना, परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं करना, बल्कि यह दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के ही विचार से की जाएँ, अन्य प्रकार नहीं।

२५—आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, 'आर्य-प्रकाश' पत्र और आर्यसमाज का अर्थ, धन, कोष—इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधानादि सब सभासद् तन, मन और धन से सदा करें।

२६—जब तक नौकरी करने और करानेवाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करे और न किसी और को नौकर रक्खें, वे दोनों स्वामी-सेवक भाव से यथावत् वरतें।

२७—जब विवाह, पुत्र-जन्म, महालाभ वा मरण वा कोई समय दान व धन व्यय करने का हो तब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम और कोई नहीं है, इस निश्चय को जानकर इसको कभी न भूलें।§

२८—इन नियमों में कोई नियम नया लिखा जाएगा वा कोई निकाला जाएगा वा न्यूनाधिक किया जाएगा सो सब श्रेष्ठ सभासदों की विचार रीति से सब श्रेष्ठ सभासदों को विदित करके ही यथायोग्य करना होगा।

सभासदों की संख्या १०० के लगभग थी—इसके पश्चात् आर्यसमाज के पदाधिकारी नियत किये गये और प्रति शनिवार को सायंकाल आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन होने निश्चित हुए, परन्तु पीछे शनिवार

---

§ नियम संख्या २६, २७, का उल्लेख ऋ० द० चैत्र शु० ६ सं० १९३२ के पत्र में भी है। इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि राजकोट में आर्यसमाज की स्थापना पर जो नियम बनाये थे उनमें इन दो को छोड़कर शेष २६ नियम ये ही थे। देखो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृ० ३२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का दिन सभासदों के अनुकूल न पड़ा, अतः आदित्यवार निश्चित किया गया। आर्यसमाज के सभासदों की संख्या १०० के लगभग थी।

स्वामीजी अधिनायक नहीं, केवल सभासद् ही बने—समाज की स्थापना के पश्चात् कतिपय सभासदों ने स्वामीजी को आर्यसमाज का अधिनायक वा सभापति बनाने का प्रस्ताव किया, परन्तु स्वामीजी ने उसे अस्वीकार किया। सदस्यों के विशेष अनुरोध करने पर उन्होंने कहा कि यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो आप मुझे अन्य सभासदों की भाँति एक सदस्य बना सकते हैं। तदनुसार स्वामीजी का नाम भी सभासदों के रजिस्टर में अङ्कित किया गया और वे अन्य सभासदों की भाँति चन्दा देते रहे।

आर्यसमाज स्थापित होने के पश्चात् स्वामीजी के व्याख्यान आर्यसमाज में ही होने लगे। एक व्याख्यान १७ अप्रेल को और दूसरा २४ अप्रेल को हुआ।

स्वामीजी प्रातःकाल सागर-तट पर घूमने जाया करते थे। वहाँ कभी-कभी पादरी एच० एच० विलसन से भी साक्षात् हो जाता था। पादरी विलसन संस्कृतज्ञ थे और उन्होंने वेद का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी किया था। स्वामीजी का उनसे धर्म-विषय पर वार्त्तालाप हो जाया करता था, परन्तु उनसे कोई नियमबद्ध विचार नहीं हुआ था। कभी-कभी स्वामीजी उनके आग्रह पर उनके घर तक भी चले जाते थे। वे स्वामीजी के घोर विरोधी थे।

प्रिंस-ऑफ़-वेल्स का आगमन—जिन दिनों स्वामीजी मुम्बई थे, उन्हीं दिनों में प्रिंस-ऑफ़-वेल्स (युवराज) एडवर्ड, महारानी विक्टोरिया के ज्येष्ठ पुत्र, जो उनके मरने पर राजराजेश्वर एडवर्ड सप्तम हुए, भारतवर्ष में भ्रमण करने के लिए आये थे और भारत के वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक उनके स्वागत के लिए मुम्बई गये थे।

हम संन्यासी हैं, लार्ड नार्थब्रुक के पास नहीं जाएँगे—स्वामीजी के विषय में लार्ड नार्थब्रुक से बाबू केशवचन्द्र सेन की बातचीत हुई थी और उन्होंने स्वामीजी से मिलना चाहा था। इसी कारण से केशवबाबू ने मुम्बई के रा. रा. आत्माराम पाण्डुरङ्ग को इस विषय में पत्र लिखा। उन्होंने वह पत्र रा. रा. गिरिधारी लाल दयालदास कोठारी को दिखाकर लार्ड नार्थब्रुक से स्वामीजी की भेंट कराने का प्रबन्ध करने के लिए कहा। स्वामीजी से जब यह प्रसङ्ग उठाया गया तो उन्होंने कहा कि लार्ड नार्थब्रुक तो हमारे पास आएँगे नहीं और हम भी संयासी हैं, हम भी उनसे मिलने नहीं जाएँगे, एक मध्यस्थ स्थान नियत करो जहाँ दोनों का मिलन हो सके। गिरधारीलाल ने उद्योग भी किया, परन्तु वाइसराय महोदय को अवकाश नहीं मिल सका§।

आर्य-मंन्दिर में हमारा फ़ोटो न रक्खा जाए—हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने स्वामीजी का फ़ोटो लेना चाहा तो उन्होंने उसमें यह आपत्ति की कि भविष्य में यह सम्भावना हो सकती है कि लोग और विशेषकर आर्यसमाजी उनकी प्रतिकृति की पूजा करने लग जाएँ। हरिश्चन्द्र ने उनका फ़ोटो तो ले-लिया, परन्तु उन्होंने विशेषरूप से यह आदेश कर दिया कि आर्यमन्दिर में उनका फ़ोटो न रक्खा जाए। तदनुकूल आर्यसमाज मुम्बई में उनका यह आदेश प्रतिपालित होता है।

एक भ्रान्ति—सुना जाता है कि इंगलैण्ड से एक पत्र उन्हें वहाँ बुलाने के लिए आया था। पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित्र में लिखा है कि प्रोफेसर मैक्समूलर ने जर्मनी से इस आशय का पत्र भेजा था और स्वामीजी ने उसका यह उत्तर दिया था कि मेरी आने की इच्छा अवश्य थी, परन्तु यहाँ के लोग मुझे नास्तिक कहते हैं। जब तक मैं इस देश को अच्छी प्रकार न बतला दूँ कि मैं कैसा नास्तिक हूँ, तब तक

---

§ स्वामीजी की यह एक मौज ही समझिए जो वह वाइसराय से उनके स्थान पर जाकर मिलने पर सम्मत नहीं हुए, अन्यथा यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने वाइसराय के स्थान पर जाना क्यों स्वीकार नहीं किया, क्योंकि इससे पूर्व भी कई अंग्रेज़ राजकर्मचारी और शासकों के स्थान पर जाकर मिल चुके थे और इसके पश्चात् भी मिले। —**संग्रहकर्त्ता.**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं आ सकता। जब मैक्समूलर की चिट्ठी आई थी, तब मुम्बई के भाटियों ने अपने जहाज़ पर ले-जाने का वचन दिया था।

यह सब निराधार प्रतीत होता है। कोई पत्र अब तक ऐसा नहीं मिला। मैक्समूलर जर्मन अवश्य थे, परन्तु जर्मनी में नहीं रहते थे, अतः उनका जर्मनी से पत्र भेजना कैसे सम्भव था ?

अपने जीवन में कभी ऐसा शर्बत नहीं पिया—जीवनदयाल जो पीछे आकर आर्यसमाज मुम्बई के प्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुए, एक दिन ग्रीष्म काल में मध्याह्न में स्वामीजी से मिलने गये। वे अत्यन्त तृषार्त्त थे। महाराज ने उन्हें एक ऐसा शर्बत बनाकर पिलाया कि उनकी तृषा सर्वथा दूर हो गई। वे कहते थे कि हमने अपने जीवन में कभी ऐसा शर्बत नहीं पिया। इससे अनुमान होता है कि महाराज को विलक्षण ओषधियों का ज्ञान था।

जन्मस्थान की ओर अंगुली-निर्देश—ग्वालियर के पण्डित ब्रह्मशङ्कर देवशङ्कर कुछ दिन मुम्बई प्रान्त की यात्रा में स्वामीजी के साथ रहे थे और कभी-कभी उनकी रसोई भी बना दिया करते थे। उनसे स्वामीजी ने कहा था कि हमारा जन्मस्थान अहमदाबाद से चालीस कोस है। स्वामीजी ने उन्हें ट्रेन में जाते हुए अंगुलि-निर्देश से उसे दिखाया भी था।

अपूर्व सहिष्णुता—पण्डित ब्रह्मशङ्कर स्वामीजी के साथ रहते हुए भी द्वादशलिङ्ग की पूजा और दुर्गा-पाठ किया करते थे, परन्तु स्वामीजी में इतनी सहिष्णुता थी कि इस कारण से कभी उनसे अप्रसन्न नहीं होते थे, हाँ कभी-कभी मुस्कराकर कह दिया करते थे कि क्यों कोलाहल करते हो।

वैरागियों के सिवा लड़का कोई नहीं दे सकता—एक दिन स्वामीजी को बहुत-से सेठ साहूकार घेरे बैठे हुए थे कि कई स्त्रियाँ आईं और स्वामीजी से अपने निःसन्तान होने का दुःख प्रकट किया। स्वामीजी ने कहा कि वैरागियों के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं दे सकता। इसे सुनकर सेठ लोग बहुत लज्जित हुए और स्त्रियाँ चली गईं।

मनोरंजक कहानी—एक दिन स्वामीजी का व्याख्यान हो रहा था। श्रोतागण कई सहस्र की संख्या में उपस्थित थे। स्वामीजी ने राजाओं के विनाश का उल्लेख करते हुए कहा कि राजाओं के परामर्शदाता ऐसे लोग होते हैं, जैसे—(१) ज्योतिषी, (२) तेली, (३) ऊँटवाला, (४) हिजड़ा। किसी राजा पर एक शत्रु राजा चढ़ आया और दुर्ग के भीतर घुसने लगा तब राजा को उसके आक्रमण का ज्ञान हुआ। उसने पहले ज्योतिषी से पूछा, ज्योतिषी बोला अभी महाराज को भद्रा है। तेली से पूछा तो उसने कहा कि ऐसी क्या जल्दी है, अभी आप तेल देखिए तेल की धार देखिए। फिर ऊँटवाले से पूछा, उसने कहा महाराज देखिए अन्त में ऊँट किस कर्वट बैठता है। फिर हिजड़े से पूछा, उसने कहा कि आप कनात तान लें, क्या वह पर्दे के अन्दर भी घुस आएगा ? ये बातें होती रहीं और शत्रु-सेना दुर्ग के भीतर घुस आई। यदि हमारे राजाओं की यह दुर्दशा न होती तो हमारी यह दुर्दशा क्यों होती ? देश के नाश का यही कारण है।

शास्त्रार्थ की तैयारी—जिस दिन कोई बड़ा शास्त्रार्थ होने को होता उस दिन वे तीन बजे रात्रि में उठते और ताज़े पानी के साथ ऋतु-अनुसार सौंफ आदिं फाँक कर शौच को जाते और स्नान करके ध्यानावस्थित हो जाते और ६ बजे प्रातःकाल तक ध्यान में मग्न रहते। अन्य दिनों की अपेक्षा उस दिन अधिक समय तक धयान करते थे।

विरोधियों की गालियाँ, ससुराल की गालियाँ हैं—जब लोग खण्डन-मण्डन के कारण महाराज को दुर्वचन कहते तो वे कह दिया करते थे कि जैसे लोग ससुराल में जाते हैं और गालियाँ सुनकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही मैं परमात्मादेव की भक्ति का प्रचार करते हुए विरोधियों की गालियों से प्रसन्न होता हूँ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादक के साथ पत्र की नीति भी बदल गई—यह हम लिख चुके हैं कि राजकृष्ण महाराज के मासिक पत्र 'हृदयचक्षु' का नाम स्वामीजी के परामर्श से 'आर्य-धर्म-प्रकाश' बदल दिया गया था। जब तक वे स्वामीजी के पक्ष में रहे तो 'आर्य-धर्म-प्रकाश' भी स्वामीजी के पक्ष का समर्थन करता रहा, परन्तु जब स्वामीजी ने आर्यसमाज के नियमों में यह समाविष्ट करना कि आर्यसमाज अद्वैतवाद का समर्थक है, अस्वीकृत कर दिया तो राजकृष्ण महाराज स्वामीजी से अप्रसन्न हो गये। तब से ही 'आर्य-धर्म-प्रकाश' ने भी अपनी नीति बदल ली और वह स्वामीजी के विरुद्ध लिखने लगा।

मूर्त्तिपूजा का खण्डन अनावश्यक है—एक बार फाल्गुन कृष्णा १२ संवत् १९३१ के अङ्क में उसके सम्पादक ने लिखा कि मूर्त्तिपूजा आर्यधर्म के विरुद्ध नहीं है, परन्तु पुष्टि-मार्गप्रवर्तित मूर्त्तिपूजा का आकार आर्यधर्म के विरुद्ध है। मूर्त्तिपूजा वेद-प्रतिपादित नहीं है, परन्तु पुराणादि प्रतिपादित (अवश्य) है और अशिक्षित मनुष्यों के लिए मूर्त्तिपूजा प्रयोजनीय है और उसके खण्डन करने की आवश्यकता नहीं है।

आर्यों का आक्षेप—इस सम्मति के प्रकाशित होने पर आर्यसमाजियों में कुछ आन्दोलन हुआ और एक व्यक्ति ने उसके सम्पादक शाराधीश से कहा कि आपने ऐसी सम्मति प्रकाशित करके युक्ति-सङ्गत कार्य नहीं किया, आप इस विषय पर स्वामीजी से शास्त्रार्थ कर लीजिए। वे इसपर सहमत भी हुए, परन्तु पीछे एक घटना ऐसी हो गई कि वे उक्त विषय पर वार्त्तालाप करने के लिए स्वामीजी के पास न आये।

गट्टूलाल और दयानन्द का मुक़द्दमा—इसके पश्चात् 'आर्य-धर्म-प्रकाश' में एक लेख 'गट्टूलाल और दयानन्द के वाद-प्रतिवाद सम्बन्धी अभिमत' प्रकाशित हुआ। उसमें स्वामीजी के मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध वैदिक सिद्धान्तों को मुक़द्दमे की Plaint (वादी की प्रतिज्ञा) के रूप में लिखा गया और उसपर साक्षियों की साक्षी लिखी गई। यह सब इस ढङ्ग से लिखा गया कि जिससे यह हास्यास्पद और भ्रमोत्पादक प्रतीत हों।

मुक़द्दमे का निर्णय—इसपर २१ जून सन् १८७५ को पन्नाचन्द आनन्दजी मन्त्री आर्यसमाज मुम्बई की ओर से एक नोटिस 'आर्य-धर्म-प्रकाश' सञ्चालिका वेद-धर्म-सभा के प्रधान भाई शङ्कर नानाभाई को दिया गया था कि "जो निर्णय उक्त लेख के अन्त में दिया गया है, वह न्याय और वेद के विरुद्ध है, अतः उचित है कि स्वामीजी के साथ मौखिक विचार कर लिया जाए। उसके लिए आप परसों का दिन नियत कर दें। हमारी ओर से स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ करेंगे। आप लिखिए कि आपकी ओर से कौन करेगा। शास्त्रार्थसभा का व्यय उभय पक्ष आधा-आधा देंगे। हमारे पास इसका उत्तर कल तक आ जाना चाहिए, क्योंकि स्वामीजी के पास पूना आदि स्थानों से निमन्त्रण आये हुए हैं।"

इस नोटिस के उत्तर में राजकृष्ण महाराज के पक्षवाले स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने पर सहमत नहीं हुए।

तारीख २३ जून सन् १८७५ को भाई शङ्कर नानाभाई ने पन्नाचन्द आनन्द के उत्तर में एक पत्र लिखा, जिसका सारांश निम्न प्रकार था—

"मेरा 'आर्य-धर्म-प्रकाश' से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु मेरी और मेरे मित्रों की, जिनसे मैंने आपके नोटिस का उल्लेख किया, यह सम्मति है कि मौखिक शास्त्रार्थ से कोई लाभ नहीं, उसमें अशान्ति होने का भय है। जो लाभ होगा वह बहुत थोड़े मनुष्यों को होगा, अतः आपको इस विषय में जो युक्तियाँ देनी हों उन्हें लिखकर भेज दीजिए। वह लेख हमारी टिप्पणियों और युक्तियों के साथ 'आर्य-धर्म-प्रकाश' में प्रकाशित कर दिया जाएगा, जिससे कि इस महत्त्वपूर्ण विषय पर जो कुछ कहा जाएगा वह स्थिररूप से सुरक्षित रहेगा।"

इस पत्र में यह भी लिखा था कि जो कुछ 'आर्य-धर्म-प्रकाश' में लिखा गया है, उससे स्वामीजी का अपमान करना कदापि अभीष्ट न था और न अब है। लेखक ने जो कुछ लिथा था वह पब्लिक कर्त्तव्य से परवश होकर पब्लिक के हित के लिए लिखा था और वह अपनी सम्मति को जहाँ तक उन्होंने शास्त्रादि को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पढ़ा और विचारा है, ठीक और सत्य समझते हैं।

इसपर सेठ लक्ष्मीदास ने उक्त विषय पर विचार करने के लिए स्वामीजी को अपने घर पर बुलाया, परन्तु स्वामीजी ने यह कहकर कि मैं यथासम्भव धनियों के गृह पर नहीं जाया करता हूँ, उक्त निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद स्वामीजी ने अद्वैतवाद और प्रार्थना-समाज से सिद्धान्तों के खण्डन पर एक व्याख्यान दिया। उसमें राजकृष्ण महाराज तो न आये, परन्तु उनके पक्ष के कई लोग आये। भाईशङ्कर नानाभाई भी उपस्थित थे। व्याख्यान के अन्त में वे कुछ बोलना चाहते थे, परन्तु वह रोष में भरे हुए थे, अतः आर्यसमाज के प्रधान ने उन्हें बोलने न दिया।

२६ जून १८७५ को उनका दूसरा पत्र और आया जिसमें लिखा था—"आप अपना लेख शीघ्र भेजिए ताकि वह आषाढ़ मास के अङ्क में प्रकाशित कर दिया जाए। देर होने में आपका लेख श्रावण मास के अङ्क में मुद्रित होगा।"

यह ज्ञात नहीं हुआ कि इस दोनों पत्रों का आर्यसमाज की ओर से क्या उत्तर दिया गया; परन्तु 'आर्य-धर्म-प्रकाश' में आर्यसमाज की ओर से कोई लेख मुद्रित नहीं हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि कोई लेख भेजा गया या नहीं।

पण्डित कमलनयनाचार्य; वैष्णवों की चिन्ता—पण्डित कमलनयनाचार्य वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान् और नेता समझे जाते थे और उन्हें अनेक मारवाड़ी धनपति गुरु करके मानते थे। वैष्णव सम्प्रदाय के वे स्तम्भ थे। जब स्वामीजी ने मुम्बई में मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया तब अनेक मनुष्यों ने मूर्त्तिपूजा छोड़कर वैदिक धर्म ग्रहण किया और उसके प्रचार के निमित्त मुम्बई में आर्यसमाज भी स्थापित हो गया तो वैष्णवों को बड़ी चिन्ता हुई। गोकुलिये गोसाईं अपना पूरा बल लगा चुके थे और दयानन्द के आक्रमणों से अपनी रक्षा में असमर्थ रहे थे। पण्डित गट्टूलाल की सभा और शास्त्रार्थ के आयोजन का चित्र अभी पाठकों की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ होगा। वल्लभ-सम्प्रदाय के इस भगीरथ प्रयत्न के पश्चात् ही आर्यसमाज मुम्बई स्थापित हुआ था जो दयानन्द के विजय-स्तम्भ के समान था। पण्डित गट्टूलाल जब कुछ न कर सके तो पौराणिकों ने फिर अस्त्र-शस्त्र सँभालने का उपक्रम किया और पण्डित कमलनयनाचार्य का स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराने का उद्योग किया।

शास्त्रार्थ का सूत्रपात—इस शास्त्रार्थ का सूत्रपात ऐसे हुआ कि मिस्टर रामदास छबीलदास (जो पीछे से इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आये) के चचा देवीदास ने जिन्हें लोग देवीभक्त के नाम से पुकारते थे, पण्डित कमलनयनाचार्य को मुम्बई बुलाया था। महाशय देवीभक्त का मूर्त्तिपूजा में अटल विश्वास था और वे चाहते थे कि कोई ऐसा विद्वान् मिले जो दयानन्द के सम्मुखीन होकर मूर्त्तिपूजा को वेद विहित सिद्ध करे।

देवीभक्त और दयानन्द—देवीभक्त मूर्त्तिपूजक होते हुए और स्वामीजी से घोर मतभेद रखते हुए भी उनसे कोई द्वेष नहीं रखते थे। उनके भाई और भतीजे आर्यसमाज के सदस्य हो गये थे, परन्तु उन्होंने अपने विश्वासों में कोई परिवर्त्तन नहीं किया था। वे पूर्ववत् कट्टर मूर्त्तिपूजक थे, परन्तु स्वभाव से अति सरल और सच्चे थे। स्वामीजी से उनका सद्भाव था और वे बहुधा उनके पास आया करते थे। स्वामीजी से उनका इतना प्रेम था कि जब कभी वे स्वामीजी से मिलने जाते तो खाली हाथ कभी न जाते। उनके लिए मिष्टान्नादि लेकर जाते। स्वामीजी भी उनसे बड़ा प्रेम करते थे। देवीभक्त स्वामीजी को एक आदर्श, सच्चरित्र संन्यासी समझते थे और स्वामीजी भी उन्हें एक निष्कपट उत्तम प्रकृति का मनुष्य समझते थे। स्वामीजी उनकी भेंट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को सहर्ष स्वीकार कर लेते थे और उसका अधिकांश दर्शकों में बाँट देते थे।

देवीभक्त की भेंट स्वीकार करने पर आक्षेप और उसका उत्तर—एक दिन ऐसा हुआ कि देवीभक्त मिष्टान्न लाये। स्वामीजी ने उसे ग्रहण कर लिया। थोड़ी देर बैठकर वे चले गये। उसके पश्चात् उपस्थित पुरुषों में से एक ने स्वामीजी से कहा कि आपको देवीभक्त की भेंट स्वीकार नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे आपके शत्रुओं के पृष्ठपोषक हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरी दृष्टि में देवीभक्त का किसी-किसी अपने अनुयायी से भी अधिक सम्मान है और मैं धार्मिक मतभेद के कारण उनसे आपस के व्यवहार में प्रभावित नहीं होऊँगा। देवीभक्त सच्चे मन से विश्वास करते थे कि मूर्त्तिपूजा वेदसम्मत है और उसके विरुद्ध दयानन्द की सम्मति आधारशून्य है। उन्होंने पौराणिक पण्डितों को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने की उत्तेजना केवल इसी अभिप्राय से दी थी कि मूर्त्तिपूजा वेदानुमोदित सिद्ध हो जाए न कि किसी अन्य भाव से।

आचार्य का मूर्त्तिपूजा पर व्याख्यान; श्रोताओं का असन्तोष—जब पण्डित कमलनयनाचार्य मुम्बई आ गये तो ३१ मई सन् १८७५ को काँघाबाड़ी के अन्तर्गत नारायणबाड़ी में उनका एक व्याख्यान कराया गया। उसमें पण्डित कमलनयनाचार्य ने रामतापिनी और गोपालतापिनी नामक उपनिषदादि के आधार पर मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने की चेष्टा की, परन्तु श्रोताओं का उससे सन्तोष नहीं हुआ और व्याख्यान स्थल में ही लोग कहने लगे कि इस प्रकार मूर्त्तिपूजा की सिद्धि का यत्न करना व्यर्थ है, चाहिए तो यह कि पण्डित कमलनयनाचार्य फ्रामजी कावसजी हॉल वा अन्यत्र किसी प्रसिद्ध स्थान में दयानन्द के साम्मुखीन होकर मूर्त्तिपूजा को वेदविहित सिद्ध करें। पण्डित कमलनयनाचार्य वा उनके किसी अनुयायी ने इस प्रस्ताव के उत्तर में कुछ भी न कहा।

पण्डित कमलनयनाचार्य स्वामीजी से शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते थे। एक बार अवश्य उन्होंने अनुयायियों के आग्रह पर ऊपर के मन से यह कह दिया था कि मैं शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हूँ, परन्तु पीछे से इन्कार कर दिया था। इसके पश्चात् घटनाचक्र ऐसा चला कि उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिए विवश हो दयानन्द के सम्मुख जाना ही पड़ा।

विवश होने की मनोरञ्जक कथा—इसकी बड़ी मनोरञ्जक कथा है। शिवनारायण बेनीचन्द नाम के एक मारवाड़ी थे, जो पण्डित कमलनयनाचार्य को गुरु करके मानते थे। उनके मित्र ठक्कर जीवनदयाल आर्यसमाजी थे। एक दिन दोनों मित्रों में धार्मिक विषयों पर बातचीत हो रही थी। एक का आग्रह था कि मूर्त्तिपूजा वेदसम्मत है और दूसरे का उससे भी प्रबल आग्रह था कि वह वेदविरुद्ध है। अन्त को दोनों मित्र इस बात पर सहमत हुए कि यदि दयानन्द हार जावें तो जीवनदयाल रामानुजमत ग्रहण करें और यदि पण्डित कमलनयनाचार्य पराजित हो जावें तो शिवनारायण बेनीचन्द दयानन्द का मत अवलम्बन करें। बात यहाँ तक ही नहीं रही, दोनों ने नियमानुसार निम्नलिखित प्रतिज्ञा-पत्र लिखकर उसपर हस्ताक्षर कर दिये। इन्हीं दोनों व्यक्तियों ने शास्त्रार्थ १२ जून सन् १८७५ को फ्रामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट में मध्याह्नोत्तर में ३ बजे होने का निश्चय किया और विज्ञापन द्वारा इसकी सर्वसाधारण को सूचना भी दे दी गई। प्रतिज्ञा-पत्र निम्नलिखित था—

प्रतिज्ञा-पत्र—मुम्बई ५ जून सन् १८७५—हम नीचे सही करनेवाले दोनों आदमियों ने इस लिखित को पढ़कर उसपर प्रसन्नतापूर्वक हस्ताक्षर किये हैं, जिसे अपने सत्य-धर्म से पालन करेंगे।

१—श्री दयानन्द स्वामी और कमलनयनाचार्य स्वामी की सभा, फ्रामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट में अगले शनिचर को की जाए और जो उसका व्यय हो उसे नीचे हस्ताक्षर करनेवाले दोनों व्यक्ति देवें और पुलिस का प्रबन्ध करें।

२—यदि श्री स्वमी दयानन्दजी सरस्वती वाद में जीतें और इसी प्रकार मूर्त्ति-खण्डन में, तो मारवाड़ी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिवनारायण बेनीचन्द जो सदा कमलनयनाचार्य की ओर से, अपने हस्ताक्षर से, विज्ञापन प्रकाशित करता है, वह उनका (दयानन्द का) चेला होवे और जो कमलनयन जीते तो ठक्कर जीवनदयाल कमलनयन का चेला होवे और रामानन्दी टीका लगावे, नहीं तो शिवनारायण अपने तिलक को मिटा देवे।

३—इस सभा में बिना सम्प्रदाय के (अर्थात् कोई भी सम्प्रदाय का पक्ष न करे) बिना पक्षपात के शास्त्री लोग बुलाये जाएँ और वे लोग जो अभिप्राय प्रकट करें, उसे छपाकर प्रकाशित किया जाए और उसके ऊपर इस लिखित के लिखनेवाले हस्ताक्षर करें और उसपर जो कोई कार्य न करे वह धर्म हारे।

हस्ताक्षर—ठक्कर जीवनदयाल हस्ताक्षर—शिवनारायण बेनीचन्द।

आचार्य अप्रसन्न, आचार्य स्वामीजी के जोड़ के न थे—यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि शिवनारायण बेनीचन्द ने यह प्रतिज्ञा-पत्र पण्डित कमलनयनाचार्य की अनुमति और सूचना के बिना ही लिख दिया था, अतः जब उन्हें यह वृत्त ज्ञात हुआ तो वे बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने शास्त्रार्थ करने से स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया, परन्तु वे अपने अनुयायियों के कहने-सुनने पर कि अब जबकि शास्त्रार्थ विज्ञप्ति सर्वत्र हो चुकी हैं, शास्त्रार्थ से पीछे हटना बड़ी अप्रतिष्ठा का कारण होगा और सब लोग यह विश्वास करने लगेंगे कि वास्तव में दयानन्द का पक्ष सत्य है और मूर्त्तिपूजा का कोई आधार वेद में नहीं है और इससे वैष्णवधर्म को बहुत धक्का पहुँचेगा, पण्डित कमलनयनाचार्य ने शास्त्रार्थ करने की स्वीकृत दे दी। स्वीकृति तो उन्होंने दे दी परन्तु वह वास्तव में अपने को स्वामीजी के जोड़ का नहीं समझते थे और वेद में मूर्त्तिपूजा के पक्ष में वेद के प्रमाण कहाँ से लाते ? उन्हें शास्त्रार्थ में अपना पराजय स्पष्ट दिखाई दे रहा था, इसी कारण वे शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते थे, अतः स्वीकृति देने के पश्चात् भी वे शास्त्रार्थ से पराङ्मुख होने लगे।

दयानन्द के अनुयायी की कमलनयनाचार्य से बातचीत—६ जून सन् १८७५ को सेठ मथुरादास लौजी को यह किसी भाँति पता लग गया होगा कि पण्डित कमलनयनाचार्य शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते, अतः वे स्वामीजी की अनुमति लेकर पण्डित कमलनयनाचार्य के पास गये और उनसे कहा कि स्वामी दयानन्द की यह इच्छा है कि आपका और उनका किसी स्थान में जहाँ आपकी इच्छा हो मूर्त्तिपूजा के विषय में संवाद हो जावे। इसपर जो बातें उनकी पं० कमलनयनाचार्य से हुई उनका सारांश यह है। सेठ मथुरादास लौजी ने कहा कि स्वामी दयानन्द स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मूर्त्तिपूजा के लिए वेद में कोई आधार नहीं है और जिन मन्त्रों का मूर्त्ति की प्राणप्रतिष्ठा, आवाहन, पूजन और विसर्जन में विनियोग किया जाता है, उनका कोई सम्बन्ध इन बातों से नहीं है, आप वैष्णवधर्म के आचार्य हैं, आपका कर्त्तव्य है कि आप दयानन्द की स्थापनाओं का खण्डन करें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो वैष्णवधर्म को बहुत क्षति पहुँचेगी और लोगों का यह दृढ़ विश्वास हो जाएगा कि वास्तव में दयानन्द का कहना ही सत्य है। हम ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि उभय पक्ष का कथन अक्षरशः लिपिबद्ध कर लिया जाए और प्रत्येक दिन के उभय पक्ष के कथन पर आपके और दयानन्द के हस्ताक्षर हो जाएँ और जब शास्त्रार्थ समाप्त हो जाए तो उसे मुद्रित कराकर भारतवर्ष के सब भागों में जहाँ वैष्णव धर्मवलम्बी निवास करते हैं, बाँट दिया जाए। जो मन्त्र भी कोई पक्ष प्रस्तुत करेगा उसे उसका पूरा पता तथा यह कि भाष्यकारों ने उसका क्या अर्थ किया है, लिखा देना होगा। इसपर कमलनयनाचार्य ने कहा कि चार दिशा के चार वेद-वेदाङ्गवित् पण्डित मध्यस्थ होने चाहिएँ, जिनकी मैं पहले से परीक्षा ले-लूँगा। मथुरादास लौज़ी ने कहा, ऐसे पण्डित तो मिलने कठिन हैं, तो कमलनयनाचार्य ने नदिया के पण्डित रङ्गजित् तोताद्रि का नाम लिया। मथुरादास लौजी ने कहा कि नदिया में तो हम किसी को जानते नहीं, परन्तु यदि आप काशी के किसी पण्डित का नाम बतावें तो उसके विषय में पूछताछ करें। कमलनयनाचार्य ने कहा कि हम नाम तो किसी का न बतलावेंगे। ५ जून के विज्ञापन में जो कुछ लिखा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया है यदि उसके अनुसार पण्डित लोग होंगे तभी हम शास्त्रार्थ करेंगे। इसपर मथुरादास लौजी ने कहा कि उस विज्ञापन के पश्चात् तो आपके शिष्य ने प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया। कमलनयनाचार्य ने कहा कि इसका हमें कोई ज्ञान नहीं है और न वह हमें स्वीकार है। मथुरादास लौजी निराश होकर लौट आये और चलते समय कमलनयनाचार्य से कह आये कि वास्तव में आपमें मूर्त्तिपूजा को वेद-प्रतिपादित सिद्ध करने की शक्ति नहीं है और दयानन्द जो कहते हैं वही सत्य है।

शास्त्रार्थ की चर्चा सर्वत्र फैल गई—शास्त्रार्थ की चर्चा सर्वसाधारण में फैलते ही लोग उसके दिन की बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करने लगे। अन्त को वह दिन आया। शास्त्रार्थ का समय मध्याह्नोत्तर का तीन बजे नियत हुआ था, परन्तु सभास्थल ढाई बजे से ही जनस्रोत से भरने लगा और बात करते-करते सारा हॉल खचाखच भर गया। मञ्च पर एक मेज़ रक्खी गई और उसपर वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्रग्रन्थ, निरुक्त, निघण्टु प्रभृति ग्रन्थ जो संख्या में १५० थे, सजाकर रक्खे गये। मेज़ के दोनों और दो कुर्सियाँ रक्खी गईं। मेज़ की दाँईं ओर की कुर्सी पण्डित कमलनयनाचार्य के और बाँईं ओर की स्वामीजी के लिए निश्चित की गई, इस विचार से कि कहीं आचार्य महाशय स्वामीजी के बाँईं ओर बैठने में अपना अपमान समझें और इसी पर बात बिगड़ जाए, स्वामीजी तो वीतराग और निरभिमान थे, उनसे इस प्रकार की कोई आशङ्का हो ही नहीं सकती थी। मेज़ के सामने शास्त्रार्थ के वृत्त लेखकों के लिए ८ कुर्सियाँ रक्खी गईं। सभा में रायबहादुर बेचरदास अम्बईदास, लक्ष्मीदास, खेमजी, भाडोवर पालूराम, रावबहादुर दादूभाई पाण्डुरङ्ग, भाई शङ्कर नानाभाई, गङ्गदास किशोरदास, हरगोविन्ददास नाना, मनसुखराम सूरजराम, रणछोड़भाई उदयराम, पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री प्रभृति गण्यमान्य और विद्वान् पुरुष उपस्थित थे।

हिन्दू के अतिरिक्त सभा में कोई न रहे—पण्डित कमलनयनाचार्य के पक्ष के लोगों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ मूर्त्तिपूजा पर है इसलिए सभा में हिन्दुओं से भिन्न अन्य किसी को आने की आज्ञा न होनी चाहिए। सबने इस बात को स्वीकार किया। एक पारसी किसी प्रकार भीतर चला आया था, उसे कमलनयनाचार्य के पक्षवालों ने सभा से बाहर कर दिया।

स्वामीजी नियत समय पर सभास्थल पर आ गये। प्रबन्धकर्त्ताओं ने उन्हें मेज़ के बाँईं ओर की कुरसी पर बिठाया, वे सहर्ष उसपर बैठ गये, उनके मस्तिष्क में यह विचार ही नहीं आया कि उन्हें बाँईं ओर की कुरसी पर क्यों बिठाया जाता है।

आचार्य के आने की प्रतीक्षा—विलम्ब होने लगा, लोग कमलनयनाचार्य के आने की प्रतीक्षा करने लगे। कोई-कोई कहने लगे कि कमलनयनाचार्य नहीं आएँगे और कोई-न-कोई आपत्ति खड़ी कर देंगे कि सभास्थल एक यवन का गृह है, हम वहाँ न जाएँगे इत्यादि, अथवा उनके शिष्यवर्ग मध्यस्थ का पचड़ा लगाकर अपने आचार्य को वापस ले-जाएँगे, जिससे हारजीत का अवसर ही प्राप्त न हो और उनकी अप्रतिष्ठा न हो सके।

आचार्य धमकी में आ गये—पण्डित कमलनयनाचार्य वास्तव में सभास्थल में आना स्वीकार नहीं कर रहे थे, उन्होंने लोगों के अनुनय-विनय पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया था। वे सभास्थल में नहीं आते यदि एक आर्यसमाजी ने उनसे जाकर यह न कहा होता कि आप एक बार शास्त्रार्थ करना स्वाकार कर चुके हैं अब यदि आप सभा में न जाएँगे तो आर्यसमाजी आप पर अभियोग चलाएँगे।

अन्त को आचार्य सभा-स्थल में आये—साढ़े तीन बजे पण्डित कमलनयनाचार्य सभा में पधारे। उनके साथ सम्प्रदाय के कुछ ब्राह्मण और कई भाटिये, मकाटे, मारवाड़ी थे, जो संख्या में २५-३० होंगे। सभा के प्रबन्धकों ने उन्हें आता देखकर सीढ़ियों पर जाकर उनका स्वागत किया और सम्मानपूर्वक उन्हें मेज़ के दाँईं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओर की कुर्सी पर बिठाया, उनके साथी उनके ही आस-पास मञ्च पर बैठ गये। सभापति का आसन रावबहादुर बेचरदास अम्बाईदास को दिया गया।

कार्य आरम्भ हुआ—सभा-कार्य आरम्भ हुआ। सभापति ने अपनी प्रारम्भिक वक्तृता में कहा कि भाईयो! हम सब मूर्त्तिपूजक हैं और में भी मूर्त्तिपूजक हूँ, अतः जब स्वामी दयानन्द सरस्वती यह प्रतिपादित करें कि मूर्त्तिपूजा वेदसिद्धि नहीं है तब आप क्रोध न करें, अपितु धैर्य और सन्तोष से सुनें, इससे हमें अमूल्य लाभ होगा, और धर्म के पहचानने का मार्ग ज्ञात होगा, जिससे देश का कल्याण होगा और हमें अत्यन्त सुख और सन्तोष होगा और जब पण्डित कमलनयनाचार्य मूर्त्तिपूजा को वेदसिद्ध प्रतिपादित करें उसे भी हमें सुनना चाहिए, जिससे हमें सत्य सारांश ज्ञात हो जाएगा। मुझे इस सभा के संगठित करने का विशेष अभिप्राय अभी ज्ञात हुआ है। दो गृहस्थियों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र आपस में लिखा है। उसी के कारण यह सभा संगठित हुई है। अब उस प्रतिज्ञा-पत्र को भाई शङ्कर नानाभाई आपको पढ़कर सुनावेंगे।

भाई शङ्कर नानाभाई ने पूर्वोल्लिखित प्रतिज्ञा-पत्र पढ़कर सुनाया और कहा कि प्रतिज्ञा-पत्र ठक्कर जीवनदयाल और शिवनारायण बेनीचन्द ने अपनी निजू स्थिति में लिखा है और इसी कारण यह सभा बुलाई गई है। पहले पण्डित कमलनयनाचार्य को यह सिद्ध करना होगा कि मूर्त्तिपूजा वेद प्रतिपादित है।

प्रतिज्ञा-पत्र लिखनेवाले का आक्षेप—इसपर शिवनारायण बेनीचन्द ने खड़े होकर कहा कि हमने प्रतिज्ञा-पत्र में यह लिखा था कि मूर्त्तिपूजा को श्रुति-स्मृति से सिद्ध करना होगा, परन्तु उसमें केवल श्रुति का शब्द पढ़ा गया है, स्मृति का क्यों नहीं पढ़ा गया ? भाई शङ्कर नानाभाई ने पुनः प्रतिज्ञा-पत्र को पढ़कर कहा कि इसमें स्मृति का शब्द नहीं है। फिर शिवनारायण बेनीचन्द ने कहा कि साक्षी के लिए ८ पण्डितों की आवश्यकता होगी यह बात भी लिखनी ठहरी थी, वह भी प्रतिज्ञा-पत्र में से पढ़कर नहीं सुनाई गई। भाई शङ्कर नानाभाई ने कहा कि इसमें ऐसी भी शर्त नहीं लिखी है। तब शिवनारायण बेनीचन्द ने प्रतिज्ञा-पत्र को देखना चाहा जो उन्हें दे दिया गया। उन्होंने और उनके एक मित्र ने उसे पढ़ा और पढ़कर चुप हो गये।

आचार्य की आपत्ति—पण्डित कमलनयनाचार्य ने कहा कि श्रोतागण शास्त्रार्थ के परिणाम के विषय में निश्चय करने की योग्यता नहीं रखते। भारतवर्ष के विभिन्न भागों से पण्डित-मण्डली का उपस्थित होना आवश्यक है, जो शास्त्रार्थ को देखकर उसके विषय में अपना निश्चय प्रकट कर सके। इतना कहकर उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि क्या आप अपनी ओर से ऐसे पण्डित साथ लाये हो और यह भी कहा कि हमारी ओर के पण्डित हमारे साथ उपस्थित हैं।

विरोधी सहायक—विष्णुपरशुराम शास्त्री अब तक स्वामीजी के विरोध में समाचार पत्रों में उनके किये वेदार्थ की अत्यन्त तीव्र आलोचना करते रहे थे। उन्होंने स्वामीजी से कहा यदि आप मेरी सेवा स्वीकार करें तो मैं आपकी ओर से पण्डित का कार्य करने पर उद्यत हूँ। स्वामीजी ने सरल चित्तता से यह विश्वास करके कि शास्त्रीजी यह बात हृदय से कह रहे हैं, उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। शास्त्रीजी वेदी पर अपने पुराने विपक्षी दयानन्द के बराबर जा बैठे।

आचार्य की दूसरी आपत्ति—पण्डित कमलनयनाचार्य ने पूछा कि जो पण्डित लोग बैठे हैं, वे किस सम्प्रदाय के हैं ? वह किसी सम्प्रदाय के न होने चाहिएँ§। इसपर सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि कोई पण्डित भी ऐसा नहीं हो सकता था जो किसी सम्प्रदाय का न हो। सभी किसी-न-किसी सम्प्रदाय के

§ दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि पं० कमलनयनाचार्य ने यह पूछा था कि पण्डित लोग बताएँ कि वे किस-किस सम्प्रदाय के हैं। यह ठीक है, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि पण्डित लोग किसी सम्प्रदाय के न होने चाहिएँ। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे। इससे लोग समझने लगे कि पण्डित कमलनयनाचार्य व्यर्थ ही समय खोना चाहते हैं।

पण्डितों से शपथ ले-ली गई—एक पण्डित ने कहा कि मैं वैष्णव सम्प्रदाय का हूँ। उसे आचार्य महोदय ने वेदी पर अपने पास बिठा लिया और फिर दूसरे पण्डितों से कहा कि आप शालिग्राम और गीता को हाथ में लेकर शपथ लो कि हम सत्य-सत्य अभिप्राय प्रकट करेंगे। पण्डितों की ओर से कालिदास गोविन्दजी शास्त्री ने उत्तर दिया कि जो कुछ हमें सत्य प्रतीत होगा, हम उसे ही सर्वांश में प्रकट करेंगे। इसके पश्चात् उन्होंने विष्णुपरशुराम शास्त्री से भी यही प्रश्न पूछा और उन्होंने भी वही उत्तर दिया कि जो कुछ हमें सत्य प्रतीत होगा, हम वही कहेंगे और आप उभय पक्षवाले जो कुछ कहेंगे उसे हम अक्षरशः लिख लेंगे और उसपर अपनी योग्य सम्मति भी देंगे। फिर—

आचार्य और शास्त्री की बातें—पण्डित कमलनयनाचार्य और विष्णुपरशुराम शास्त्री में इस प्रकार बात-चीत हुई—

विष्णु०—हमने छहों शास्त्र पढ़े हैं। इससे पहले कि आप स्वामीजी से शास्त्रार्थ करें, मेरी इच्छा है कि आप जिस शास्त्र पर भी चाहें मुझसे बात-चीत करें। मैंने सुना है कि आप नैयायिक हैं, आप प्रसन्नतापूर्वक न्यायशास्त्र में मुझसे जो प्रश्न पूछना चाहें पूछें और जब मेरी योग्यता के विषय में आपको सन्तोष हो जाए तो फिर मैं न्याय में आपकी परीक्षा लूँ और आप भी तो बताइए कि आपने कौन-सा शास्त्र पढ़ा है।

कमल०—बताते हैं।

पण्डित कमलनयनाचार्य इतना ही कहकर चुप हो गये।

विष्णु०—इस प्रकार अप्रासङ्गिक बातों में समय नष्ट करना आपके लिए शोभा नहीं देता। आपका कर्त्तव्य है कि मूर्त्तिपूजा को वेदानुमोदित सिद्ध करें।

स्वामीजी की आचार्य से प्रार्थना—तत्पश्चात् स्वामीजी ने भी विनयपूर्वक पण्डित कमलनयनाचार्य से कहा कि आज का दिवस आनन्द-दिवस है। आपके साथ हमारा सम्मिलन होना निस्सन्देह ही सुख का विषय है। मैं यह प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूँ कि मूर्त्तिपूजा वेदप्रतिपादित नहीं है और ऐसा सिद्ध करने को प्रस्तुत हूँ। इसी उद्देश्य से भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमकर व्याख्यान, उपदेशादि देता हूँ। कृपा करके आप आज की सभा में दिखाएँ कि मूर्त्ति का आवाहन, प्राण-प्रतिष्ठा, पूजन और विसर्जन किस वेद के, किस स्थल में लिखे हैं और भाष्यकारों ने उस स्थल का क्या अर्थ किया है, ब्राह्मणों में उस स्थल की किस प्रकार व्याख्या की गई है। इस बात के सिद्ध होने पर जनता को भी सन्तोष होगा और हमारा भी परस्पर लाभ होगा।

वेद ही मध्यस्थ हैं—इसके लिए मैं मध्यस्थ की कोई आवश्यकता नहीं देखता और यदि मध्यस्थ का होना आवश्यक ही हो तो वेदादि ग्रन्थों से अधिक निष्पक्ष तथा उत्तम मध्यस्थ और कौन होगा ? वे सब ग्रन्थ आपके सम्मुख मेज़ पर रक्खे हुए हैं। यह दिखाइए कि आपके मत के प्रतिपादक वचन वेद के किस स्थल में है और उनका क्या अर्थ है। ऐसा होने से ही सत्यासत्य का निर्णय हो सकेगा। आपके और मेरे सब प्रश्नोत्तर लिखे जाएँगे और उनपर दोनों के हस्ताक्षर होकर उन्हें छपवाकर प्रकाशित कर दिया जाएगा ताकि अनेक स्थानों के पण्डित उनपर सम्मति प्रकट कर सकें। ऐसा करने से आर्यों का विशेष उपकार होगा।

एक अन्य सज्जन की प्रार्थना—पण्डित कमलनयनाचार्य ने स्वामीजी के इन विनय-वाक्यों पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया, तब मथुरादास लौजी ने उस बात-चीत का सविस्तर वर्णन किया जो उनसे पण्डित कमलनयनाचार्य की ६ जून को हुई थी और कमलनयनाचार्य से कहा कि आप आचार्य लोग ऐसा कहते हैं कि वेद में मूर्त्तिपूजा है और अपने पाण्डित्य की स्पर्द्धा करते हैं। अब आप स्वामी दयानन्द के सामने मूर्त्तिपूजा को वेदप्रतिपादित सिद्ध करने में प्रवृत्त होइए और समय नष्ट न कीजिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित कमलनयनाचार्य इस पर भी कुछ न बोले।

मैं मूर्त्तिपूजा को वेद-विरुद्ध सिद्ध करता हूँ—जब स्वामीजी ने देखा कि आचार्य महाशय किसी प्रकार शास्त्रार्थ में प्रवृत्त नहीं होते तो उन्होंने पुनः पण्डित कमलनयनाचार्य से कहा कि मूर्त्तिपूजा का वेद-सिद्ध होना आपका प्रतिपाद्य पक्ष था, अच्छा होता यदि आप उसे सिद्ध कर देते, परन्तु आप ऐसा नहीं करते, अतः मैं विवश होकर उसका वेदानुमोदित न होना सिद्ध करता हूँ। आप उसे सुनने की कृपा करें।

आचार्य एकदम सभा से चले गये—यह हो कैसे सकता था कि वह व्यक्ति जो शास्त्रार्थ करने आया था, अपने मत का खण्डन चुपचाप सुने जाए और इस अपमान को सहन करता रहे, अतः पण्डित कमलनयनाचार्य यह कहते हुए कि वेदमन्त्रों का ऐसी सभा में पढ़ा जाना जिसमें शूद्र भी उपस्थित हैं, शास्त्र में वर्जित है, एकदम सभा से चले गये। लोगों ने उन्हें बहुत रोकना चाहा, परन्तु वे न रुके। उस समय कुछ लोगों ने उनके लिये कुछ उपहाससूचक शब्द भी कहे।

शास्त्री को स्वामीजी का धन्यवाद—जब आचार्य महोदय सभा-स्थल से चले गये तो स्वामीजी ने पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री को धन्यवाद दिया कि आपने स्थिति को बिगड़ने से बचाया और श्रोतृवर्ग से कहा कि मुझे शास्त्रीजी सरीखे महान् और विद्वान् पुरुष की मित्रता का गर्व है और मेरी अभिलाषा है कि भारतवर्ष में उनकी विद्या, सद्भाव और सदाशय के बहुत पुरुष हों।

सत्ययुग में मूर्त्तिपूजा न थी—सेठ गोविन्ददास नानाभाई ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि मूर्त्तिपूजा सत्ययुग में थी या नहीं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि नहीं थी। इसे तो इसी कलियुग में बौद्ध और जैन लोगों ने चलाया है।

स्वामीजी का व्याख्यान—तत्पश्चात् स्वामीजी ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। पहले तो खेद प्रकट किया कि इतने ग्रन्थ जिस शुभ कार्य के लिए एकत्र किये गये थे, वह कार्य न हुआ और इन ग्रन्थों का एक पन्ना भी नहीं पलटा गया; फिर मूर्त्तिपूजा का अनेक वेदमन्त्र उद्धृत करके खण्डन किया और प्राण-प्रतिष्ठा आदि में विनियुक्त मन्त्रों के अर्थ करके दिखलाया कि उनका उक्त विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

व्याख्यान को सुनकर श्रोतृवर्ग तृप्त और सन्तुष्ट हुआ और सबपर यह भली-भाँति प्रकट हो गया कि पण्डित कमलनयनाचार्य में मूर्त्तिपूजा को वेदप्रतिपादित सिद्ध करने की शक्ति बिल्कुल नहीं है। अनेक लोगों की मूर्त्तिपूजा से श्रद्धा उठ गई।

अन्त में सभापति महोदय ने स्वामीजी के गले में पुष्प-माला डालकर उनका सम्मान-सत्कार किया और सभा विसर्जित हुई।

एक महिला को उपदेश—हरियाणा की एक महिला माई भगवती तरुणावस्था में ही वैराग्यवती हो गई थी। उसके विचार नवीनवेदान्त के थे, परन्तु 'सत्यार्थ-प्रकाश' पढ़कर उसके विचारों में परिवर्तन हो गया था। वह स्वामीजी के दर्शनार्थ मुम्बई गई और उनसे उपदेश लेकर कृतार्थ हुई। स्वामीजी ने उसे स्त्रीजाति में धर्मप्रचार करने का उपदेश दिया और वह यह कार्य मरणपर्यन्त करती रही।

दिन-चर्या—मुम्बई में स्वामीजी की दिनचर्या इस प्रकार थी कि रात्रि में तीन बजे उठकर कुल्ला करके कुछ जल पीते और शौच, स्नान करके समाधिस्थ हो जाते फिर सूर्योदय से पहले ही घूमने चले जाते और एकान्त में एक घण्टा ध्यानावस्थित रहते। ८ बजे आसन पर लौट आते और २० मिनट तक विश्राम करते, फिर दूध पीते और ११ बजे तक लिखने-लिखाने का कार्य करते फिर स्नान करके भोजन करते और थोड़ी देर लेटकर ४ बजे तक कार्य करते। ४ बजे से १० बजे तक आगन्तुकों से मिलते और सत्सङ्ग में उपदेश करते। रात्रि को केवल दूध पीते थे, भोजन नहीं करते थे। ठीक दस बजे सो जाते। निद्रा उनके इतनी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वश में थी कि पलङ्ग पर लेटते ही गहरी नींद सो जाते थे।

स्वामीजी को इसका बहुत ध्यान था कि रसोई में जो पदार्थ बनें वे सब कर्मचारियों को मिल जाएँ, अतः भोजन के समय वे स्वयं पाकशाला में चले जाया करते थे।

रसोई में सब वस्तुएँ तौल कर दी जाती थीं ताकि आवश्यकता से अधिक भोजन न बने। एक दिन एक कर्मचारी ने उनसे कहा कि लोग आपको कृपण समझेंगे। उन्होंने कहा कि मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मिताहार और मितव्यय दुर्गुण नहीं, सद्गुण हैं।

(जून—सितम्बर) पूना (अषाढ़ कृ०—आश्विन)

पूना में स्वामीजी को महादेव गोविन्द राणडे और महादेव मोरेश्वर कुण्टे आदि सुधारक दल के नेताओं ने बुलाया था। राणडे महोदय उन दिनों पूना में जज थे और पीछे चलकर मुम्बई हाईकोर्ट के जज हो गये थे। वे स्वामीजी की शिक्षा और उपदेश को ग्रहण करते थे और उन्हें गुरुभाव से मानते थे। स्वामीजी पूना में विठ्ठल पेंठ में पल्व हौस के पास शङ्कर सेठ के मकान में ठहरे।

विज्ञापन—स्वामीजी ने पूना पहुँचकर यह विज्ञापन दिया कि हम अमुक-अमुक ग्रन्थ को प्रामाणिक और अमुक-अमुक को अप्रामाणिक मानते हैं।

विज्ञापन का अभिप्राय—इस विज्ञापन का अभिप्राय यह था कि यदि कोई उनसे शास्त्रार्थ करने की इच्छा करे तो इस बात का ध्यान रक्खे और इस विषय में वादविवाद करके समय नष्ट करने का किसी को अवसर न मिले।

५४ व्याख्यान—पूना में स्वामीजी के व्याख्यान बुधवारपेठ के भिडे के बाड़े में और कैम्प में ईस्ट स्ट्रीट में मराठी स्कूल में हुआ करते थे। पूना-निवास के दिनों में स्वामीजी के पूना नगर और कैम्प में ५४ व्याख्यान हुए, वे सब लिपिबद्ध किये गये थे और मुद्रित हो गये थे। उनका सम्पादन महादेव गोविन्द राणडे ने किया था जिनमें से १५ व्याख्यानों का जो नगर में हुए थे§ आर्य भाषानुवाद भी मुद्रित हो गया था, जो अब 'व्याख्यान मंजरी' के नाम से मिलता है।

यहाँ भी व्याख्यानों का प्रायः वही क्रम रहा जो अन्यत्र रहता था, अर्थात् एक दिन व्याख्यान होता था और दूसरा दिन प्रश्नोत्तर और शङ्कासमाधान के लिए रहता था। व्याख्यानों में लोग सहस्त्रों की संख्या में आते थे और महाराज की वाग्मिता और विद्या पर मुग्ध हो जाते थे।

स्वामीजी संस्कृतज्ञ न होने से भाषा में बोलते हैं—पूना में कुछ लोग कहने लगे थे कि स्वामीजी संस्कृत अच्छी नहीं जानते, इसी से हिन्दी में बोलते हैं। इसकी भनक स्वामीजी के भी कानों में पड़ गई, अतः १७ जुलाई को जब उन्होंने पुनर्जन्म पर अपना व्याख्यान आरम्भ किया तो संस्कृत में किया। उन्होंने सुललित और सुमिष्ट संस्कृत की नदी बहा दी जिसे सुनकर श्रोता मुग्ध और विस्मित हो गये। लोग बहुधा संस्कृत नहीं जानते थे, अतः श्रोताओं ने उनसे हिन्दी में ही बोलने की प्रार्थना की। तब उन्होंने शेष व्याख्यान हिन्दी में ही दिया। उनकी वक्तृताओं का इतना प्रभाव पड़ा कि एक महाराष्ट्र ब्राह्मण ने अपने मन्दिर से गणपति की मूर्त्ति उठाकर फेंक दी।

स्वामीजी व्याख्यान बड़े धीर और गम्भीर भाव से देते थे। जब श्रोतागण सुनते-सुनते शान्त और अवसन्न हो जाते थे तो स्वमीजी कोई गप्प वा मनोहर आख्यायिका सुनाकर उन्हें पुनर्वार आकृष्टचित्त कर देते थे।

---

§ 'दयानन्द-प्रकाश' में लिखा है कि स्वामीजी के पूना में १५ व्याख्यान हुए। व्याख्यान १५ नहीं, ५४ हुए थे, १५ नगर में शेष कैम्प में। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितों ने नाक रखने का प्रयत्न किया---स्वामीजी के व्याख्यानों ने पूना की पौराणिक मण्डली के हृदयों को विलोडित कर डाला, परन्तु किसी पण्डित का शास्त्रार्थी होकर उनके सामने आने का साहस न हुआ। जब स्वामीजी के बहुत-से व्याख्यान हो चुके तो पण्डितों ने अपनी नाक रखने के लिए १५ अगस्त सन् १८७५ को विष्णु के मन्दिर में स्वामीजी के विरुद्ध एक सभा की और उसमें कई पण्डितों ने उनके मन्तव्यों के खण्डन में वक्तृताएँ दीं। पण्डित रामदीक्षित आप्टे (वेदशास्त्रज्ञ) और पण्डित नारायण शास्त्री गोडबोले ने एक विज्ञापन भी दिया कि हम दयानन्द से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं।

पण्डित वेदज्ञ नहीं हैं—इसके विषय में 'इन्दु-प्रकाश' के सम्पादक ने १६.८.१८७५ के अङ्क में लिखा था—"दयानन्द ने पूना आकर यह विज्ञापन दे दिया था कि वे किस-किस ग्रन्थ को प्रामाणिक और किस-किस को अप्रामाणिक मानते हैं, परन्तु आज तक कोई भी पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करने को अग्रसर नहीं हुआ। इसका कारण यही है कि पण्डितगण वेदज्ञ नहीं हैं और जिन ग्रन्थों को दयानन्द प्रामाणिक मानते हैं, उनके समझने की पण्डितों में अधिक शक्ति भी नहीं हैं। पण्डितों ने केवल यह समझकर कि यदि वे चुप रहते हैं, तो लोकसाधारण उन्हें मूर्ख समझेंगे और इससे उनकी जीविका के मार्ग में बाधा पड़ेगी, दयानन्द से शास्त्रार्थ करने का केवल विज्ञापन दे दिया है और उसमें ऐसे नियम और प्रतिबन्ध निर्दिष्ट कर दिये हैं कि जिन्हें दयानन्द कभी स्वीकार न करेंगे। इसलिए इस प्रकार के विज्ञापन को सिवाय छल के और क्या कहा जा सकता है।"

'हितेच्छु' ने भी १८.८.१८७५ को इस विषय पर निम्न प्रकार लिखा था—"इस समय पूना-समाज के पुरातन पूजक अंश में दयानन्द के कार्यों के कारण उतना ही आनन्दोलन मचा हुआ है, जितना ७ वर्ष पहले मचा था, जब शङ्केश्वर के शङ्कराचार्य के सभापतित्व में विधवा-विवाह के शास्त्रविहित होने के प्रश्न पर विचार करने के लिए सभा हुई थी। पूना के पत्र दयानन्द और पण्डितों की सभाओं के वर्णन से भरे हुए हैं। पण्डित लोग दयानन्द की सभाओं के उत्तर में यह बात निर्धारित करने के लिए समता करते हैं कि मूर्त्तिपूजा के इस महान् शत्रु का किस प्रकार सामुख्य किया जाए। शास्त्रियों ने नोटिस के रूप में एक पत्र स्वामीजी को भेजा है, जिसमें वे नियम लिखे हैं, जिनके अनुसार वे शास्त्रार्थ कर सकते हैं। यह पत्र स्वामीजी के पास एक असभ्य ढंग से भेजा गया था, अतः उन्होंने उसपर ध्यान नहीं दिया, परन्तु उन्होंने शास्त्रियों को सूचना दे दी है कि शास्त्रार्थ के जो नियम भी वह प्रस्तुत करें उनकी महादेव गोविन्द राणडे और महादेव मोरेश्वर कुण्टे से स्वीकारी लेनी होगी। इसकी सम्भावना प्रतीत नहीं होती कि पूना के शास्त्री स्वमीजी के साथ खुले मैदान में शास्त्रयुद्ध करने का साहस करेंगे और यह प्रतीत होता है कि वह ओछी चालें ही चलते रहेंगे, जिससे उनका शास्त्रार्थ न करने का मनोरथ पूर्ण हो।

पौराणिकदल उपद्रव करने पर उतारू हो गया—जहाँ एक ओर वे लोग जिनकी ज्ञानचक्षु कुछ उन्मीलित हो गई थीं, महाराज के व्याख्यानों को श्रद्धा और आदर से सुनते थे, वहाँ दूसरी ओर पौराणिकदल उनके व्याख्यानों से अत्यन्त विरक्त और उत्तेजित हो उठा था। उनके वर्णभेद को जन्म पर निर्भर न करने, सबको समानरूप से वेद का अधिकार बतलाने, मूर्त्तिपूजा को वेदविरुद्ध कहने आदि से वह इतना रुष्ट और क्षुब्ध हो गया था कि उपद्रव करने और षड़यन्त्र रचने पर उतारू हो गया था।

स्वामीजी के व्याख्यानों का खण्डन—पौराणिकदल के नेता नारायण भीकाजी जोगलेकर अवकाश प्राप्त असिस्टेण्ट कमिश्नर थे। उन्होंने स्वामीजी के व्याख्यानों के खण्डन का प्रबन्ध किया था और वह उनके प्रतिवाद में रामशास्त्री और वसुदेवाचार्य के व्याख्यान कराया करते थे।

मिथ्या दोषारोपण—२२ अगस्त की रात्रि में किसी ने क़स्बे के गणपति और अहल्या की मूर्त्तियाँ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उठाकर नाली में फेंक दीं। इसपर पूना में घोर आन्दोलन मच गया। कोई-कोई कहने लगे कि दयानन्द की मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध वक्तृताओं को सुनकर ही किसी ने यह कर्म किया है। विशेषतः यह कहा गया कि किसी ब्राह्मण ने छद्मवेशी होकर इन देवमूर्त्तियों को उठाकर रात्रि मे बलवन्तराव के मन्दिर के समाने नाली में फेंक दिया है। स्वामीजी से जो अधिक द्वेष रखते थे उन्होंने तो यहाँ तक कहने में सङ्कोच नहीं किया कि दयानन्द पण्ढरपुर जाकर निबठोबा की मूर्त्ति तोड़ आये हैं और उन्होंने ही उपर्युक्त मूर्त्तियाँ नाली में फेंकी हैं। स्वामीजी पण्ढरपुर तो गये भी न थे, परन्तु विद्वेषियों ने ऐसी ऊटपटाँग और मिथ्या बात कहने में त्रुटि नहीं की।

लज्जाजनक अपवाद—केवल इतना ही नहीं, स्वामीजी पर अनेक प्रकार के मिथ्या दोषारोपण करके सर्वसाधारण को उनके विरुद्ध भड़काने का यत्न किया गया। एक यह जनरव फैलाया गया कि दयानन्द ने अपने एक व्याख्यान में श्री रामचन्द्रजी को भड़वा कहा था और यह कि रावण को प्रसन्न करने के लिए ही रामचन्द्र ने सीताजी को स्वयं उसके पास भेजा था। महाराज के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सम्बन्ध में ऐसे परम निन्दासूचक वाक्य कहना सर्वथा असम्भव था। अपने पूर्वजों के प्रति उनके हृदय में परमप्रतिष्ठा के भाव थे, परन्तु शत्रुओं को सत्यासत्य से क्या लेना था, उन्हें तो यथातथा जनता को महाराज के विरुद्ध उभारने से प्रयोजन था।

लोक-साधारण को स्वामीजी के विरुद्ध भड़काया गया—पौराणिक पक्ष के स्थानीय समाचार-पत्रों ने भी लोक-साधारण को महाराज के विरुद्ध उकसाने में कमी नहीं की। उन्होंने तो यहाँ तक लिख मारा कि हिन्दू-धर्म पर इस प्रकार के आक्रमणों से सिपाही-विद्रोह के समान दूसरे विद्रोह के होने की सम्भावना है। ऐसा लिखने से उनका स्पष्ट अभिप्राय सरकार को स्वामीजी के विरुद्ध करने का था।

उपद्रव का सुयोग—विपक्षीदल जब विद्या और युक्तिबल से स्वामीजी को परास्त न कर सका तो उसने निर्मल कीर्त्तिचन्द्र पर मिथ्या आक्षेपों और मृषा आरोपों की धूलि फेंककर उसकी ज्योत्स्ना को तिरोहित करना चाहा और वह उत्पात और उपद्रव उठाने का सु-अवसर जोहने लगा और दैवगति से ऐसा अवसर शीघ्र ही प्राप्त हो गया।

सम्मान-प्रदर्शन का निश्चय—बात यह हुई कि पूना में अपना कार्य समाप्त करने के पश्चात् महाराज ने सतारा जाने की इच्छा प्रकट की तो उनके श्रद्धालु भक्तों ने आपस में परामर्श करके यह स्थिर किया कि उनके प्रति अपने उपकार को प्रकट करने के लिए उन्हें समारोहपूर्वक शहर और कैम्प में ले-जाया जाए। इसके लिए ५ सितम्बर रविवार का दिन निश्चित कर दिया गया और तदर्थ शहर और कैम्प में तैयारियाँ होने लगीं। स्वामीजी की समारोह-यात्रा के लिए तीन सौ रुपये एकत्र किये गये। यह निश्चय हुआ कि ५ सितम्बर १८७५ को पहले कैम्प में स्वामीजी का एक व्याख्यान कराया जाए और तत्पश्चात् कैम्प से समारोह-यात्रा नगर में ले-जाई जाए।

शोभा-यात्रा की तैयारी—सभा के लिए निमन्त्रण-पत्र भेजे गये और सभागृह को फूल-पत्ती आदि से सजाया गया। शोभा-यात्रा के लिए देशी और अंग्रेज़ी बाजे मँगवाये गये। कैम्प मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर महाराज की सवारी के लिए हौदे समेत हाथी मँगवाया गया। यतः वातावरण पहले से ही दूषित हो रहा था और विपक्षीयों की ओर से उपद्रव की आशङ्का थी, अतः पुलिस का भी प्रबन्ध किया गया।

संवर्धना सभा—संवर्द्धना सभा सङ्गठित हुई। उसमें पूना नगर के लगभग १०० लोग सम्मिलित हुए थे, श्रोताओं में हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान, पारसी और यहूदी भी थे। स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में **'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः'** इत्यादि वेदमन्त्र की व्याख्या की। व्याख्यान की समाप्ति पर गङ्गाराम भाऊ भस्के ने एक उत्तम वक्तृता दी, जिसमें महाराज के उपकारों का उल्लेख करके उनके प्रति पूना-निवासियों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की ओर से कृतज्ञता प्रगट करके अन्त में कहा—"स्वामीजी की व्याख्यानमाला से हमें जो लाभ हुआ है उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करने के चिह्नस्वरूप में हमें कोई उत्तम परिच्छद उनकी भेंट करना चाहिए और मैं आशा करता हूँ कि स्वामीजी उसे ग्रहण करने की कृपा करेंगे।" महाराज ने कहा कि यद्यपि मैं कोई परिच्छद लेने के लिए उद्यत नहीं हूँ, परन्तु न लेने से आप लोग असन्तुष्ट होंगे, अतः मैं उसे स्वीकार करने पर बाध्य हूँ। इसके अनन्तर गङ्गाराम भाऊ भस्के और कई अन्य सज्जनों ने एक जोड़ा शाल, एक पगड़ी, एक रेशमी पीताम्बर और एक रेशमी चादर प्रफुल्लहृदय और श्रद्धा के साथ महाराज की भेंट किये। श्रोतृवर्ग ने उनपर पुष्प-वर्षा की और उपस्थित लोगों में पान-सुपारी वितरण किया गया, फिर समारोह-यात्रा आरम्भ हुई।

स्वामीजी हाथी पर सवार न हुए—महाराज ने हाथी पर सवार होना स्वीकार नहीं किया।§ अन्य मनुष्यों के साथ पैदल चले।

शोभायात्रा का क्रम—समारोह यात्रा का क्रम यह था कि सबसे आगे हाथी था, उसके पीछे कोतल घोड़े, फिर पुलिस के सिपाही और उनके पीछे बाजेवाले फिर महाराज और उनके भक्तजन और अन्त में अन्य लोग।

समारोह-यात्रा में आरम्भ में ३००-४०० मनुष्य थे, परन्तु नगर तक पहुँचते-पहुँचते उनकी संख्या ३-४ सहस्र हो गई थी।

विपक्षियों की लीला, गर्दभ-शोभा-यात्रा—स्वामीजी का इस प्रकार सम्मान होता देखकर विद्वेषियों के हृदय ईर्ष्या की अग्नि से दग्ध हो गये, उनके कलेजों पर बरछियाँ चल गईं। मानो स्वामीजी के सम्मान से उनका घोर अपमान होता था। उन्होंने दयानन्द समारोह-यात्रा के उपहासार्थ एक गर्दभसमारोह-यात्रा निकालने का प्रबन्ध किया। एक गर्दभ को सजाया, उसपर गेरुए रङ्ग की, अर्थात् स्वामीजी जिस रङ्ग के वस्त्र पहनते थे, उस रङ्ग की झूल डाली। उसपर 'गर्दभानन्द सरस्वती' लिखा और उसके आगे बाजा बजाते और 'गर्दभानन्द की जय, दयानन्द गदहे की जय' बोलते हुए नगर के बाज़ारों में घूमने लगे। विपक्षियों का एक बड़ा दल इस गर्दभ-यात्रा के साथ हुआ, नगर के लुच्चे, लुङ्गाड़े, गुण्डे और लफङ्गे उपद्रव की तैयारी करने लगे और इस यत्न में रहे कि किसी-न-किसी प्रकार स्वामीजी की समारोह-यात्रा से मुठभेड़ करें। गर्दभदल के नेता वही नारायणजी भीकाजी जोगलेकर थे। उन्होंने-ही वह निन्दनीय रचना रची थी। गर्दभ हाँकनेवाले प्रायः २५ मनुष्य थे, जो भाडारिया जाति के थे।

दोनों यात्राओं की मुठभेड़—स्वामीजी की समारोह यात्रा सायङ्काल के ५ बजे कैम्प से चली थी। जब वह भवानीपेठ, गणेशपेठ, आदित्यवारपेठ, बुधवारपेठ में से होती हुई भिड़े के बाड़े की ओर जहाँ स्वामीजी का व्याख्यान होना था, जाने लगी तब ७-३० बज गये थे और मशालें जला ली गई थीं। उसके वहाँ पहुँचते ही दूसरी ओर से गर्दभदल भी आ पहुँचा और उसने 'स्वामी गदहे की जय,' 'दयानन्द गदहे की जय' बोलना आरम्भ किया। इस ओर से उस दुष्टता पर आक्षेप किया गया और गदहे को पकड़वाकर पुलिस के हवाले कर दिया। उस दिन वर्षा हो चुकी थी बल्कि समारोह-यात्रा के समय भी वर्षा होने लगी थी, परन्तु लोगों के हृदय इतने उत्साहयुक्त और उत्फुल्ल थो कि उन्होंने उसकी कुछ भी परवाह नहीं की। वर्षा के कारण मार्ग में कीचड़ हो गया था।

स्वामीजी की शोभा-यात्रा पर आक्रमण—गर्दभ को पुलिस के हवाले करने पर गर्दभदल के लोगों ने मशालें बुझा दीं और स्वामीजी के पक्षवालों पर ईंट, पत्थर, गोबर, कीचड़ फेंकना आरम्भ कर दिया। गली

---

§ दयानन्द प्रकाश में लिखा है कि स्वामीजी हाथी पर सवार हुए। यह ठीक नहीं है। उन्होंने हाथी पर बैठना स्वीकार नहीं किया था। वे सबके साथ पैदल ही थे। —**संपादकवर्ग**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के सब ओर से और मकानों की छतों और खिड़कियों से ईंटें बरसने लगीं और कई लोगों को चोटें आईं। यह उपद्रव रात्रि के १० बजे तक इसी प्रकार चलता रहा।

पुलिस तमाशा देखती रही—जो पुलिसवाले स्वामीजी की समारोह-यात्रा के साथ थे, वे खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे, उन्होंने उपद्रव को शान्त करने का कोई यत्न नहीं किया। किसी ने पुलिस सुपरिण्टेंडेंट पोर्टमैन और पुलिस इंस्पेक्टर ट्रेने को भी सूचना दे दी और वे १०० कॉन्स्टेबिल (कोई-कोई २०० कहते हैं) साथ लेकर उपद्रवस्थल पर आ गये। उन्होंने बड़ी कठिनता से उपद्रव को शान्त किया। गर्दभदल के लोगों ने पुलिस पर भी ईंट, पत्थर फेंके और उनके भी चोटें आईं। स्वयं इन्स्पेक्टर ट्रेने भी आहत हुए। एक ब्राह्मण के तो इतनी चोट आई कि उसे अस्पताल पहुँचना पड़ा।§ पुलिस की इतनी भीड़ होते हुए और इतना भयङ्कर उपद्रव होते हुए भी पुलिस ने केवल एक मनुष्य को पकड़ा जो अति निम्न श्रेणी का था। उपद्रव शान्त होने पर भी गर्दभदल के लगभग १००० मनुष्य बुधवारपेठ में खड़े रहे।

स्वामीजी उपद्रव आरम्भ होते ही उस मकान में चले गये थे, जिसमें इनका व्याख्यान होना था।

उपद्रव शान्त होने पर स्वामीजी ने व्याख्यान दिया—शान्ति स्थापित होने पर स्वामीजी ने अपना व्याख्यान दिया, परन्तु उसमें उन्होंने इस उपद्रव का उल्लेख तक नहीं किया। उनकी चित्त की शान्ति एक क्षण के लिए भी भङ्ग न हुई, वे सदा की भाँति प्रफुल्लवदन थे, उनके मुखमण्डल पर चिन्ता का चिह्न तक न था। उनका स्वर सदा की भाँति गम्भीर, मधुर और विस्पष्ट था, उसमें कोई कातरता न थी, कोई प्रकम्प न था। श्रोतृवर्ग व्याख्यान सुनने के लिए इतना लालायित था कि दुर्घटना के होने पर भी व्याख्यान-गृह उससे परिपूर्ण था।

स्वामीजी का समादर—स्वमीजी ने अपना व्याख्यान शान्त और गम्भीरभाव से समाप्त किया, व्याख्यान की समाप्ति पर श्रीयुत महादेव मोरेश्वर कुण्टे ने उनकी प्रशंसा में छोटी-सी वक्तृता दी। कुण्टे महोदय ने कहा कि "श्री स्वामीजी महाराज बहु गुणसम्पन्न व्यक्ति हैं, उनका समादर करना हमारा कर्त्तव्य है, इत्यादि"। फिर श्रीयुत रघुनाथ शास्त्री ने कहा कि "व्याख्यानदाता का नाम दयानन्द सार्थक हुआ है, अतः उनका आदर-सम्मान विधेय है।"

वेदभाष्य की सहायता—तत्पश्चात् श्रीयुत महादेव गोविन्द राणडे ने कहा कि स्वामीजी महाराज ने पूना पधारकर व्याख्यानादि द्वारा स्थानीय पण्डित मण्डली के हृदय में वेदोक्त धर्म के विषय में विचार और जिज्ञासा का उदय कर दिया है। शास्त्रियों को पक्षपात-शून्य होकर विचार करना उचित है, स्वामीजी ने अनेक बातें ऐसी कही हैं जो ग्रहण करने योग्य हैं, अतः उनका समादर करना हमारा कर्त्तव्य है। उन्हें परिच्छद भेंट करना उपयुक्त है, परन्तु वे संन्यासी हैं, उसे ग्रहण न करेंगे इसलिए उसके बदले उन्हें वेदादि ग्रन्थों के भाष्य और प्रकाशन के लिए अर्थ सहाय्य करना अच्छा होगा, अतः मैं प्रस्ताव करता हूँ कि २५०) रु० भेंट किये जाएँ। यह प्रस्ताव सबने एक मत होकर स्वीकार किया और स्वामीजी ने यह साहाय्य सादर ग्रहण किया। तत्पश्चात् सभास्थ पुरुषों ने स्वामीजी पर पुष्प-वर्षा की और सभा समाप्त हुई।

स्वामीजी की निर्भीकता—जिस समय सभा विसर्जन हुई, उस समय १२ बज गये थे। इन्स्पेक्टर ट्रेने बराबर सभास्थल में उपस्थित रहे। व्याख्यान की समाप्ति पर उन्होंने स्वामीजी के कहा कि "आज की रात्रि आप भिड़े के बाड़े में ही शयन करें, क्योंकि बाहर जाने से आपपर आक्रमण होने का भय है।" स्वामीजी

---

§ कोई-कोई कहते हैं कि गर्दभदल गधे को व्याख्यानगृह के भीतर ले-गया, जहाँ स्वामीजी पहले ही चले गये थे और उनसे गधे की ओर संकेत करके कहा कि 'लो यह तुम्हारा अनुयायी है।' स्वामीजी के साथियो ने गधे को मकान के भीतर से बाहर कर दिया, तब गर्दभदल ने उनपर आक्रमण किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने कहा आप का कार्य रक्षा करना है, आप अपना कार्य करें, हम तो निवास-स्थान पर ही जाकर सोएँगे। इसपर पुलिस विवश होकर स्वामीजी के साथ गई और उन्हें उनके निवास-स्थान पर पहुँचा आई। उस समय भी विपक्षी दल ने, जो बराबर डटा खड़ा था, स्वामीजी और पुलिस पर ईंटें फेंकी।

स्वामीजी चट्टान-सदृश अचल थे—इस घटना से ज्ञात होता हे कि स्वामीजी कैसे असीम साहस, विपुल वीर्य, सुदृढ़ सङ्कल्प, निश्चल निर्भीकता के स्वामी थे। वे एक चट्टान के सदृश अटल थे, जिससे टकराकर विरोध की लहरें छिन्न-भिन्न हो जाती थीं। उन्नतकाय और उन्नतहृदय दयानन्द में दीनता के भाव आना और उनके मुख से दीनता के वचन निकलना असम्भवप्रायः थे। वे परमेश्वर से नित्यप्रति **'अदीनाः स्याम'** की सच्चे मनोयोग से प्रार्थना करते थे और परमेश्वर के आशीर्वाद से अदीन हो गये थे। **क्या दयानन्द के अनुयायियों ने उनके इस गुण को धारण किया है, क्या वे भी वैसे ही मनोयोग से सन्ध्या में बैठकर अदीन होने की प्रार्थना करते हैं, यदि नहीं तो ये दीन अदीन दयानन्द का काम कैसे पूरा करेंगे ?**

दो अभियुक्त—इस हङ्गामे में केवल एक को पकड़ा गया और तीन को पीछे से पहचाना गया। इनमें से दो पर अभियोग चलाया गया। एक का नाम था गुन्नू बिनपण्डू और दूसरे का गुन्नू बिनबिट्ठू। दोनों ही निम्न कोटि के मनुष्य थे। पुलिस की कृपा से उच्च कोटि के मनुष्य जिन्होंने यह उपद्रव खड़ा किया था, पकड़े नहीं गये थे, उनपर मुक़दमा चलता ही कैसे ? पुलिस ने इन्हीं दो पर अभियोग चलाया और इन्हीं दोनों को १७ सितम्बर सन् १८७५ को मिस्टर डब्ल्यू०आर० हैमिल्टन, सिटी मैजिस्ट्रेट के यहाँ से भारत दण्ड संहिता की धारा १५३ में ६,६ मास का सपरिश्रम कारावास और धारा १४७ में ३,३ मास का सपरिश्रम कारावास का दण्ड हुआ। उनके सहायकों ने अभियुक्तों की ओर से खूब डटकर पैरवी की और पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

मैजिस्ट्रेट के निर्णय-पत्र का कुछ भाग हम यहाँ उद्धृत करते है—

मैजिस्ट्रेट के निर्णयपत्र का उद्धरण—"यह विचित्र बात है और प्रशंसनीय होने से बहुत दूर है कि यद्यपि यह उपद्रव नगर में सैंट्रल पुलिस स्टेशन के सामने दो घण्टे तक होता रहा, परन्तु केवल एक निरुपद्रवी पटेवाले को पकड़ा गया और तीन को पीछे से पहचाना गया। किसी पक्ष की ओर से यह शिकायत नहीं है कि पुलिस ने उपद्रव को शान्त करने में अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया, इस कारण मेरे लिए पुलिस पर अधिक गिरफ़्तारियाँ न करने से उपद्रवकारियों का पक्ष करने का अभियोग लगाना उदारता के विरुद्ध होगा, परन्तु फिर भी यह विश्वास करना असम्भव है कि यदि इस उपद्रव का उद्भाव धर्मसम्बन्धी न होता तो अधिक गिरफ़्तारियाँ होतीं। यह सर्वथा मखौल और न्याय की खिल्ली उड़ाना है कि ५००० मनुष्यों की भीड़ में से केवल एक दीन-हीन पटेवाले और एक दरिद्र ब्राह्मण का उपद्रव करने के अभियोग में चालान किया जाए और इन दोनों को भी बाजेवालों ने बताया था, पुलिस ने उन्हें नहीं पकड़ा था। यह बात चाहे सुनने में कठोर लगे, मेरा विश्वास है कि सारी पुलिस ब्राह्मणों के प्रभाव में थी और इसी कारण से उसने अधिक लोगों को नहीं पकड़ा। एक फुर्तीला पुलिस अफसर डण्डे के थोड़े-से ही प्रयोग से इन दुरवस्थापन्न उपद्रवकारियों की सेना को तितर-बितर कर देता और उनमें रेवड़-का-रेवड़ पकड़ सकता था। मैं पुलिस पर भीरुता का दोष नहीं लगाता, परन्तु मैं यह कहता हूँ कि उसने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया और उसके ऐसा न करने के कारण स्पष्ट हैं। मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझूँगा कि उसके व्यवहार को जिला मैजिस्ट्रेट के नोटिस में लाऊँ।

आगे चलकर वे लिखते हैं कि "वह अभियुक्त दरिद्र जीव हैं, उनसे ऊँची स्थितिवालों ने अर्थात् कतिपय धर्मान्ध ब्राह्मणों ने अपना काम निकाला है, जिनके ऊपर मुख्यतः इस लज्जाजनक उपद्रव का दोष है, मुझे बताया गया है कि उक्त लोगों ने स्वामीजी से क्षमा की प्रार्थना की, जिसे उन्हेंने स्वीकार कर लिया है और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस कारण मानहानि और आघात पहुँचाने का अभियोग जो उनपर चलनेवाला था, हटा लिया गया। इसलिए पुलिस को मेरे सामने इन दो अकिञ्चनकर व्यक्तियों पर अभियोग चलाना पड़ा।"

फिर वे लिखते हैं कि "यह दयनीय है कि जिन्होंने इस मूर्खतामय स्वांग की अपने मस्तिष्क से सृष्टि की वे बच जाएँ और उनके पिट्ठू दण्ड पा जाएँ, परन्तु यह आशा की जाती है कि जो जुर्माना किया गया है, उसे वही देंगे, जो उन्हीं की मूर्खता का परिणाम है।"

सिटी मैजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध अभियुक्तों की ओर से बैरन डी०एच० लार्पेंट साहब सेशन जज की अदालत में अपील हुई, जिसमें अभियुक्तों की ओर से मुम्बई के प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर ब्रैन्सन ने पैरवी की। प्रशंसित जज ने २१ सितम्बर सन् १८७५ को धारा १५३ के अपराध से तो अभियुक्तों को मुक्त कर दिया, परन्तु धारा १४७ का दण्ड ज्यों-का-त्यों रक्खा।

इसके पश्चात् जज साहब के निर्णय की हाईकोर्ट में निगरानी की गई और उन्हीं मिस्टर ब्रैन्सन ने पैरवी की, परन्तु निगरानी ८ दिसम्बर सन् १८७५ को अस्वीकृत हो गई।

दयानन्द की दयालुता—दयानन्द की दयालुता का एक और उदाहरण देखिए। जिन लोगों ने इस प्रकार उनका घोर अपमान करने की चेष्टा की थी, जब उन्होंने क्षमा माँगी तो उन्होंने बिना किसी संकोच के उन्हें क्षमा कर दिया। वे किसी से भी द्वेष रखनेवाले नहीं थे। यदि पुलिस मुक़द्दमा न चलाती तो वे इन दो व्यक्तियों को दण्ड दिलाने का विचार तक न करते। उनका तो कथन यही था कि जब बुरे अपनी बुराई नहीं छोड़ते तो भले अपनी भलाई क्यों छोड़ें और वे सदा इसी के अनुकूल आचरण भी करते थे। जिन दुष्टों ने उनके प्राणघात की चेष्टा की उन तक को उन्होंने दण्ड दिलाना न चाहा, इन अभियुक्तों का तो ऐसा अपराध भी क्या था, वे तो दूसरों के हाथ की कठपुतली थे।

पौराणिक दल की ओर से अभियुक्तों का सम्मान—दोनों अपराधी सरकारी नौकर थे, उनमें से एक चपरासी और एक दफ्तरी था, पौराणिक दल ने अभियोग में उनकी पूरी-पूरी सहायता की थी। मुक़द्दमे के व्यय के लिए चन्दा किया, पूना में जो सबसे योग्य बैरिस्टर था, उसे जजी और हाईकोट में पैरवी के लिए नियत किया। कारावास के समय उन्हें नियमित रूप से मासिक सहायता दी गई। जब दोनों अपराधी कारावास से मुक्त हुए तो उन्हें पालकी में बिठाकर सारे नगर में समारोह-यात्रा निकाली और उनमें से प्रत्येक को एक-एक सौ रुपया पुरस्कार में दिया, मानो उन्होंने कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था वा सर्वसाधारण की कोई बड़ी सेवा की थी। इसके अतिरिक्त प्रयत्न करके उनकी नौकरी उन्हें दिला दी गई।

सरकार ने उपर्युक्त जोगलेकर से इस उपद्रव के कारण का उत्तर माँगा।

उपद्रव के कर्त्ता का कथन—देवेन्द्रबाबू जोगलेकर महाशय से मिले थे और इस उपद्रव के सम्बन्ध में उनसे पूछ-ताछ की थी तो उन्होंने कहा था—'इस दुर्घटना का कारण यह था कि दयानन्द पूना-सुधारक-दल के बुलाये हुए आये थे और उसकी प्रेरणा से ही उन्होंने हिन्दुओं के देव, देवी प्रभृति पर आक्रमण किया था। यदि वह सुधारक दल के बुलाये हुए न आये होते और हिन्दूधर्म पर आक्रमण न करते और केवल वैदिक सिद्धान्तों का ही प्रचार करते तो अनेक लोग उनके अनुयायी बन जाते'।

उक्त कथन की असत्यता—जोगलेकर महाशय का यह कहना कि स्वामीजी ने सुधारक-दल की प्रेरणा से हिन्दुओं के देव, देवी प्रभृति का खण्डन किया था सर्वथा आधारशून्य है। यह जगद्विख्यात है कि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा के अदम्य विरोधी थे। मूर्त्तिपूजा आदि के खण्डन के लिए उन्हें किसी की प्रेरणा की आवश्यकता न थी।

पूना में आर्यसमाज—स्वामीजी ने पूना में आर्यसमाज भी स्थापित किया था, परन्तु वह थोड़े ही दिन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चलकर समाप्त हो गया।

पण्डित लेखरामकृत उर्दू 'दयानन्द-चरित्र' में लिखा है कि पूना में पण्डित विष्णुपरशुराम शास्त्री और डॉक्टर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर से शास्त्रार्थ हुआ था। यह तो सत्य है कि इन दोनों से शास्त्रीय विचार हुआ था, परन्तु वह पूना में नहीं प्रत्युत मुम्बई में नवम्बर सन् १८७४ में हुआ था।

पूना से स्वामीजी सितम्बर सन् १८७५ की किसी तारीख को सतारा चले गये।§

(सितम्बर—अक्टूबर) **सतारा** (आश्विन—कार्तिक)

पूना से स्वामीजी के कुछ भक्तों ने रा० रा० कल्याणराम सीताराम चित्रे को जो उस समय सतारा के कलक्टर के नेटिव ऐजेण्ट थे तथा मिस्टर धामनारकर को जो उस समय कलक्टरी में हैडक्लर्क थे और पीछे चलकर बड़ौदा के दीवान के पद पर प्रतिष्ठित हुए तथा मिस्टर राजे हैड-अकाउण्टेंट को स्वामीजी के निवास तथा आहार आदि का प्रबन्ध करने के लिए पत्र लिख दिये थे, तदनुसार जब स्वामीजी सतारा पहुँचे तो इन्हीं महानुभावों ने उनका स्वागत किया और उनके ठहरने आदि का सब प्रबन्ध कर दिया।

सतारा में स्वामीजी का कोई व्याख्यान न हुआ, परन्तु जो लोग उनके पास आते थे, उनसे ही शास्त्रीय विषयों में बातचीत होती थी।

शास्त्रार्थ के लिए सभा—सतारा के शास्त्रिगण स्वामीजी के मन्तव्यों पर बहुत कटाक्ष करते थे, अतः कुछ लोगों ने शास्त्रियों का स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराने का आयोजन किया। एक दिन एक सभा बुलाई गई और उसमें सतारा के गण्यमान्य शास्त्रियों को निमन्त्रित किया गया। यह सभा दीवान बाड़े में हुई और उसमें नगर के प्रतिष्ठत और प्रसिद्ध शास्त्री और अन्य सज्जन उपस्थित हुए। सभा में सतारा के निम्नलिखित दिग्गज पण्डित उपस्थित हुए—

वेदमूर्त्ति अनन्ताचार्य, वेदशास्त्र-सम्पन्न राजेन्द्रगोरकर, रामशास्त्री गाडबोले, भाऊजी दीक्षित चिपलूणकर, अनन्तशास्त्री चिपलूणकर।

शास्त्रार्थ का आह्वान—बहुत वादविवाद के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि स्वामीजी को शास्त्रार्थ का आह्वान दिया जाए कि उनकी सम्मतियाँ परम्परा, विद्वानों के मन्तव्य तथा शास्त्रों के विरुद्ध हैं, अतः वे उन्हें प्रतिपादित करें। इस शास्त्रार्थ का विज्ञापन एक स्थानीय पत्र में छपवाया गया और उसकी एक प्रति स्वामीजी के पास भेजी गई। विज्ञापन में शास्त्रार्थ में मध्यस्थ का नियत करना अनिवार्य ठहराया गया था। स्वामीजी पौराणिकों की इस चाल को पहले से ही भली-भाँति जानते थे। इससे पौराणिकों का अभिप्राय शास्त्रार्थ को टालना ही हुआ करता था, क्योंकि वे जानते थे कि ऐसा मध्यस्थ तो सारे भारतवर्ष में भी नहीं निकलेगा जो मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध अपना निर्णय दे सके और यदि कोई ऐसा निकल भी आया तो उसे स्वीकार नहीं करेंगे, अतः स्वामीजी ने विज्ञापन के उत्तर में कह दिया कि हम शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत हैं, परन्तु मध्यस्थ का पचड़ा नहीं चाहते। इसे पौराणिक पण्डित मान ही नहीं सकते थे, अतः शास्त्रार्थ की इतनी ही बात-चीत होकर रह गई।

फलित ज्योतिष असत्य है—एक दिन एक जिज्ञासु ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि फलित ज्योतिष सत्य है या नहीं, तो उन्होंने कहा कि वह प्रतारणामात्र है।

वर्णभेद पर बात-चीत—एक दिन स्वामीजी यह उपदेश दे रहे थे कि वर्णभेद गुणों पर निर्भर है, न

§ पण्डित लेखरामकृत उर्दू जीवन-चरित और स्वामी सत्यानन्दजी के 'दयानन्द प्रकाश' में स्वामीजी के सतारा जाने का उल्लेख नहीं है। —**संग्रहकर्त्ता.**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि जन्म पर और अपने कथन की पुष्टि में मनुस्मृति के कुछ श्लोक पढ़ रहे थे। इसपर एक मनुष्य ने कहा कि मनुस्मृति में अन्य श्लोक इसके विरुद्ध भी हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि वे प्रक्षिप्त हैं। इसके उत्तर में उसने कहा कि सौ वर्ष हुए सर विलियम जोन्स ने मनुस्मृति का अंग्रेजी में अनुवाद किया था जो कुल्लूक के अर्थों के अनकूल था। कुल्लूक को मरे हुए ३०० वर्ष हुए। उससे भी पहले की गोविन्दराज और मेधातिथि की टीकाएँ उपस्थित हैं, उस समय भी ये श्लोक मनुस्मृति में ज्यों-के-त्यों थे। यदि यह कहा जाए कि उस समय से पहले ही ये श्लोक मनुस्मृति में मिला दिये गये थे, तो इसका कुछ प्रमाण होना चाहिए। स्वामीजी ने इसका उत्तर दिया, परन्तु वह क्या था, यह ज्ञात न हो सका। जिन महाशय से ये प्रश्नोत्तर हुए थे, स्वयं उन्हें भी स्मरण नहीं रहा।

स्वामीजी सतारा से २३ अक्टूबर सन् १८७५ को पूना लौट आये।

(अक्टूबर—दिसम्बर) मुम्बई (कार्तिक—पौष)

पूना से स्वामीजी मुम्बई चले गये। मुम्बई रेलवे स्टेशन पर श्रद्धालु जनों ने बड़े प्रेम और सम्मान के साथ स्वागत किया। स्टेशन पर ५०० मनुष्यों के लगभग स्वागत करने के लिए गये थे। मुम्बई में ३० अक्टूबर सन् १८७५ को 'आर्यों के नये वर्ष का प्रथम दिवस'§ विषय पर एक व्याख्यान हुआ।

इसके पश्चात् वे कुछ काल मुम्बई में रहे और फिर बड़ौदा आदि स्थानों में धर्मोपदेश करने चले गये।

(दिस० ७५—फर० ७६) बड़ौदा (पौष—फाल्गुन)

आतिथ्य-सत्कार—बड़ौदा में सर टी० माधवराव ने स्वामीजी के ठहरने का प्रबन्ध गोविन्दराम रोडिया की धर्मशाला में किया। यह धर्मशाला रेलवे स्टेशन के सामने ही है। स्वामीजी के लिए सब प्रकार का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया गया था। पत्रादि ले-जाने के लिए दो सन्तरी थे, जो हर समय धर्मशाला में ही उपस्थित रहते थे। उनके सोने-बैठने के लिए उत्तम गद्दी-तकिये भेज दिये गये थे, परन्तु स्वामीजी उन्हें उपयोग में नहीं लाते थे। यद्यपि उन दिनों शीताधिक्य था, परन्तु वे केवल एक दरी बिछाकर और केवल एक चादर ओढ़कर सो जाते थे। स्वामीजी के लिए दो सिपाही भी नियत थे। स्वामीजी के आतिथ्य-सत्कार के विषय में रावबहादुर गोपालराव हरिदेशमुख जज के पुत्र रावबहादुर रामचन्द्र गोपालदेशमुख भी बहुत उद्यमशील रहते थे, जो उन दिनों बड़ौदा में सिटी-जज थे।

स्वामीजी के व्याख्यानों का भी उसी धर्मशाला में ही प्रबन्ध कर दिया गया था। उस धर्मशाला के तीन भाग थे। बीच के भाग में स्वामीजी रहते थे और तीसरे भाग में उनके व्याख्यान होते थे।

बड़ौदा के सम्भ्रान्त, शिक्षित पुरुष, जागीरदार और उच्च राजकर्मचारी व्याख्यानों में आते थे, विशेषकर मणिभाई, रावबहादुर गजानन विट्ठल, पुलिस कमिश्नर पेलाभाई, रावबहादुर रामचन्द्र गोपालदेशमुख श्रीसेवा में अधिक उपस्थित रहते थे।

व्याख्यानमाला, गायक नव्वाब—स्वामीजी का पहला व्याख्यान देशोन्नति पर और दूसरा वेदाधिकार पर हुआ। दूसरे व्याख्यान में श्रोता बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए थे। शास्त्री लोग भी अच्छी संख्या में आये थे। एक लाख पेंशन पानेवाले और सुप्रसिद्ध गायक बड़ौदा के नव्वाब मौलाबख्श भी उपस्थित थे।

शास्त्रियों ने कानों में अंगुलियाँ दे लीं—स्वामीजी **'यथेमां वाचं कल्याणीम्'** इत्यादि वेद-मन्त्र पढ़कर

---

§ मुम्बई तथा गुजरात में नये वर्ष का प्रारम्भ चैत्र शु० १ के स्थान में कार्तिक शु० १ को मानते हैं, अतः इस अवसर पर ऋ० द० ने 'नये वर्ष का प्रथम दिवस' विषय पर व्याख्यान दिया। —गु० सी०।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्यान आरम्भ करना ही चाहते थे कि शास्त्रियों ने कानों में अंगुलियाँ दे लीं और खड़े होकर कोलाहल करने लगे। कारण यह था कि उन लोगों की धारणा के अनुसार वेद-मन्त्रों का उच्चारण शूद्रों और यवनों के सामने करना निषिद्ध था। किसी-किसी शास्त्री ने तो यहाँ तक कह डाला कि स्वामीजी ब्राह्मण नहीं हैं, अन्यथा ऐसा न करते।

या तो बैठ जाओ या चले जाओ—शास्त्रियों की इस प्रकार की धृष्टता देखकर मणिभाई यशभाई, रावबहादुर गजानन प्रभृति ने शास्त्रियों से कहा कि या तो आप लोग बैठ जाएँ, नहीं तो सभा से चले जाए, परन्तु कोलाहल करके व्याख्यान में विघ्न न डालें। उस समय तो शास्त्री लोग चुप हो गये, परन्तु थोड़ी देर पश्चात् फिर उपद्रव करने लगे कि शास्त्रार्थ कर लो। स्वामीजी ने कहा कि व्याख्यान तो समाप्त होने दीजिए, व्याख्यान की समाप्ति पर शास्त्रार्थ भी हो जाएगा, परन्तु शास्त्री लोग कोलाहल करने से न रुके। तब रावबहादुर गजानन के यह सोचा कि शास्त्री लोग शान्ति से व्याख्यान समाप्त न होने देंगे और श्रोता लोग भी शास्त्रार्थ के लिए बहुत उत्सुक हैं, अतः उन्होंने स्वामीजी से व्याख्यान बन्द करने की प्रार्थना की। उन्होंने व्याख्यान बन्द कर दिया और पण्डित कृष्णराम को काग़ज पैंसिल देकर कहा कि जो पण्डित शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं, उनके नाम लिख लो, उन्होंने पण्डितों के नाम लिख लिये।

कितने समय का शास्त्रार्थ करना चाहते हो—अब स्वामीजी ने पण्डितों से कहा कि आप वर्षभर का शास्त्रार्थ करना चाहते हैं वा छह मास का अथवा दो घण्टे का। हम सब प्रकार के शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हैं, परन्तु शास्त्रियों की ओर से इसका कोई उत्तर न मिला।

संस्कृत में ही शास्त्रार्थ कीजिए—स्वामीजी ने ये बातें हिन्दी में ही कही थीं। शास्त्रियों में आपस में यह चर्चा होने लगी कि दयानन्द संस्कृत पढ़े तो अवश्य हैं, परन्तु विषेशरूप से नहीं, यदि ऐसा होता तो वे संस्कृत में ही बोलते। पण्डितों की कानाफूँसी स्वामीजी तथा मणिभाई यशभाई ने भी सुन ली। मणिभाई ने स्वामीजी से संस्कृत में ही शास्त्रार्थ करने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने कहा कि हमें संस्कृत में शास्त्रार्थ करने में तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु जब ये लोग संस्कृत बोलने में अशुद्धियाँ करेंगे तो उसका उत्तरदाता कौन होगा ? मणिभाई ने कहा कि यदि ऐसा होगा तो सभास्थ लोग इनकी संस्कृतविद्या की गति जान लेंगे। इसपर स्वामीजी ने संस्कृत में ही शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया।

एक पण्डित परास्त हो गया—प्रथम यज्ञेश्वर शास्त्री से व्याकरण पर विचार आरम्भ हुआ। स्वामीजी ने पहले ही कह दिया कि मैं शेखर, मनोरमा आदि जाली व्याकरणों को नहीं मानता हूँ। मैं जिस व्याकरण को मानता हूँ, उसी के अनुसार शास्त्रार्थ करूँगा। तत्पश्चात् स्वामीजी ने पण्डित यज्ञेश्वर से कहा कि इस विषय में आप जो पूछना चाहें, पूछिए। पण्डित यज्ञेश्वर ने कहा कि आप ही पूछिए। तब स्वामीजी ने उनसे प्रश्न किया कि 'भू' धातु के लिङ् लकारों का प्रयोग कैसे होता है ? अभी प्रश्नोत्तर होते हुए आधा घण्टा भी न हुआ था कि पण्डितजी परास्त हो गये।

दूसरा पण्डित भी परास्त—तत्पश्चात् पण्डित अप्पय शास्त्री से न्याय-विषय पर विचार आरम्भ हुआ। स्वामीजी ने उनसे पूछा आपने गदाधरी पढ़ी हैं। उन्होंने कहा कि हमने मूल सूत्र पढ़े हैं। इसके पश्चात् विचार होता रहा, परन्तु अप्पय शास्त्री भी थोड़ी देर में परास्त हो गये। बीच-बीच में स्वामीजी शास्त्रार्थ कर्त्ताओं की संस्कृत की अशुद्धियाँ भी दिखाते रहे।

उस दिन शास्त्री लोग सभा में अत्यन्त हीनप्रभ होकर गये। उसके पश्चात् एक पण्डित भी सामने आकर शास्त्रार्थ करने का साहस न कर सका, परन्तु स्वामीजी की पीठ पीछे जो मन चाहा कहते और आक्षेप व आक्रमण करते रहे।

वर्षाशन, वर्षाशन बन्द होने का भय—बड़ौदा में प्रतिवर्ष श्रावण मास में पूना, नासिक, सूरत प्रभृति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थानों से ब्राह्मण लोग वर्षाशन पाने के लिए जाया करते हैं। वहाँ की चतुष्पथी के अध्यापक उनकी परीक्षा लेते हैं और उनकी सम्मति के अनुसार राज्यकोष से परीक्षोत्तीर्ण लोगों का वर्षाशन नियत हो जाता है, किसी का ४०) रु० किसी का ५०) रु० किसी-किसी का १००) वार्षिक तक। जब स्वामीजी बड़ौदा गये और इन लोगों को उनके वहाँ जाने का समाचार विदित हुआ तो उन्हें यह भय हुआ कि स्वामीजी पौराणिक धर्म का खण्डन करके उनका वर्षाशन बन्द करा देंगे, अतः ये लोग बड़ौदा में आकर इकट्ठे हो गये और स्वामीजी को परास्त करके आत्म-रक्षा करने के उपाय सोचने लगे। शास्त्रियों में प्रमुख दो थे। पण्डित यज्ञेश्वर सूरत निवासी, इनकी व्याकरण में बहुत प्रसिद्ध थी और बड़ौदा के अप्पय शास्त्री। ये नैयायिक प्रसिद्ध थे। दोनों ही राज्य के वेतन भोगी थे। यही कारण था कि उस दिन की सभा में शास्त्री लोग शास्त्रार्थ के लिए इतने उत्सुक थे। उन्होंने समझा था कि दयानन्द को संस्कृत का विशेष ज्ञान नहीं है और उन्हें परास्त करना कुछ अधिक कठिन नहीं होगा, परन्तु उनका यह भ्रम शीघ्र ही टूट गया। वे स्वामीजी के एक ही और हलके से ही आक्रमण से अपने गर्वगिरि से ऐसे फिसले कि नीचे ही आकर रुके और आये भी सिर के बल जिससे उनका सारा मुख ही धूलिधूसरित हो गया और जैसे-तैसे लज्जावनत होकर अपने घरों को वापस गये और फिर उन्होंने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का नाम न लिया।

राजमहिषी को भी दर्शन न दिये—राजमहिषी यमुनाबाई ने स्वामीजी के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की, परन्तु स्वामीजी उन्हें सामने आने देने पर सहमत न हुए और उनके प्राईवेट सेक्रेटरी से, जो उनका सन्देश लेकर आये थे, कहला भेजा कि स्त्रियों से मिलने का हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, परन्तु फिर भी यमुनाबाई की यह अभिलाषा बनी रही।

शास्त्रियों के पेट में चूहे—जब पण्डितों को यह सूचना मिली कि यमुनाबाई स्वामीजी के दर्शनों की अभिलाषिणी हैं तो उन्हें भय हुआ कि कहीं यमुनाबाई स्वामीजी के कार्य में सहायता प्रदान न करें, अतः वे यमुनाबाई के पास गये और उनसे निवेदन किया कि दयानन्द नास्तिक और पाखण्डी है, उसका मुख देखना उचित नहीं है। रावबहादुर गजानन उस समय बड़ौदा में बड़े प्रतिष्ठित राजपुरुष थे। पण्डित लोग उनके पास भी पहुँचे और उनसे कहा कि आप राजपुरुषों में अग्रणी हैं, आपको दयानन्द जैसे नास्तिक और पाखण्डी के पास आना-जाना और उनके कार्य में सहायता करना उचित नहीं है, किन्तु गजानन ने उनसे कह दिया कि अब तो आप लोग आये-सो आये, परन्तु आगे को ऐसा अनुरोध लेकर हमारे पास न आना, दयानन्द आप लोगों से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं, आप उन्हें शास्त्रार्थ करके परास्त करो।

तीसरा व्याख्यान—स्वामीजी का तीसरा व्याख्यान केदारेश्वर के मन्दिर में राजधर्म विषय पर हुआ। रावबहादुर रामचन्द्र गोपालदेशमुख ने इस व्याख्यान को सफल बनाने का विशेष उद्योग किया था और उच्च राजपुरुषों, वकीलों और प्रतिष्ठित मनुष्यों के पास उन्होंने निमन्त्रण-पत्र भेजे थे, अतः इस व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या अन्य व्याख्यानों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। इसमें बड़े-बड़े राजकर्मचारी पधारे थे। राज्य के दीवान सर टी० माधवराव स्वयं आये थे। मिस्टर आर०एम० केलकर, जो उन दिनों पेटलाद ताल्लुके का जमाबन्दी बन्दोबस्त कर रहे थे, वे भी उपस्थित हुए थे और बहुत-से पटेल जो बन्दोबस्त के सम्बन्ध में बड़ौदा आये हुए थे वे भी व्याख्यान श्रवणार्थ आये थे। रेज़िडेन्सी के क्लर्क आदि भी थे।

व्याख्यान का सार—स्वामीजी ने इस व्याख्यान में राजा के गुण और कर्त्तव्य तथा अमात्यवर्ग को कैसा होना चाहिए आदि बातें बतलाई थी। ब्रह्मचर्य पर विशेष बल दिया था और कहा था कि राजाओं के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नितान्त आवश्यक है, राजाओं को चाहिए कि क़ानून बनाकर लोगों को ब्रह्मचर्य पालन पर बाध्य करें और बालविवाह को रोकें, मनुष्यों को सदाचारी और वैदिक धर्मानुयायी होना चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्त में स्वामीजी ने कहा था कि यदि भारतवासी योग्य बन जाएँगें तो विदेशी लोग स्वयं ही उनसे कह देंगे कि अब तुम योग्य हो गये हो, तुम अपना शासन-प्रबन्ध स्वयं करो। ब्रह्मचर्य पर कथन करते हुए स्वामीजी ने यह भी कहा था कि किसी भी तीस वर्ष के मांस-मदिराभोजी युवा पुरुष को हमारे साथ चलने दो, तब आप लोग देखेंगे कि ब्रह्मचर्य का बल कैसा होता है ? हमें किसी भी तीस वर्ष के युवा पुरुष का हाथ पकड़ लेने दो तब आप देखेंगे कि ब्रह्मचर्य की शक्ति कैसी होती है ? **यदि एक मनुष्य केवल चने चबाकर रहे और ब्रह्मचर्य का पालन करे तो वह मांसाहारियों से कहीं अधिक बलिष्ठ हो सकता है।**

दीवान का श्रद्धापूर्वक प्रणाम—जिस समय सर० टी० माधवराव सभा में आये थे तो वे स्वामीजी को साधारण रीति से प्रणाम करके बैठ गये थे, परन्तु जब व्याख्यान समाप्त हो गया और वे सभास्थल से जाने लगे तो उन्होंने स्वामीजी को डण्डवत् होकर प्रणाम किया और कहा—"महाराज ! आप राजनीति में हमसे भी सौ गुने निपुण हैं"।

रीछ सबसे बड़ा त्यागी—एक दिन स्वामीजी क्षौर करा रहे थे। एक पण्डित ने आकर कहा कि संन्यासियों का धर्म तो त्याग है, आप देह-विभूषा में क्यों लगे हैं ? स्वामीजी ने हँसते हुए उत्तर दिया कि यदि बाल बढ़ाने में ही त्याग है तो रीछ सबसे बड़ा त्यागी है। यह कहकर उसे उपदेश दिया कि देह की रक्षा के लिए उसे सँवारना पाप नहीं है। जो पुरुष परोपकारी हैं, उन्हें अपने देह की रक्षा करना आवश्यक है, जिससे वे उपकार कार्य अच्छी प्रकार कर सकें।

एक दिन एक अन्य पण्डित ने स्वामीजी से कहा कि सुना है आप धन ले-लेते हैं और शास्त्र में यह लिखा है कि यतियों को सुवर्ण न देवें। स्वामीजी ने उत्तर में कहा कि सुवर्ण न देवे तो क्या आपकी सम्मति में रत्न आदि देने चाहिएँ, फिर उसे समझाया कि यतियों के लिए संग्रह करने का निषेध है, परोपकार में व्यय करने के लिए धन लेना पाप नहीं है। हम भी जब केवल एक कौपीन लगाकर गङ्गातट पर घूमते थे तो किसी से कुछ न लेते थे, परन्तु जबसे हमने परोपकार के कार्यों में भाग लेना आरम्भ किया है, हमें उन कार्यों के लिए धन लेना पड़ता है। जैसे कुएँ की मिट्टी कुएँ को ही लग जाती है, ऐसे ही हम भी जो धन लोगों से लेते हैं, वह उन्हीं के हितकर कार्यों में लगा देते हैं।

सहस्र रुपयों का उपहार वापस—एक दिन सर टी० माधवराव श्री महाराज को निमन्त्रित करके अपने घर ले-गये। कथा-वार्त्ता करने के पश्चात् जब महाराज विदा होने लगे तो उन्होंने एक थाल में एक सहस्र मुद्रा रखकर उन्हें भेंट की। महाराज ने उनसे कहा कि "हम वल्लभाचारियों के समान दुकानदार नहीं हैं" और भेंट स्वीकार नहीं की।

इज़ारेदार पर अभियोग—गोविन्दराम लिछाभाई देसाई नवसारी प्रान्त के इज़ारेदार थे। उनपर राज्य का कुछ रुपया दातव्य था। मल्हारराव की राज्यच्युति के पश्चात् इज़ारे की प्रथा उठा दी गई थी। गोविन्दराम पर राज्य की ओर से दो लाख रुपये का दावा किया गया था। उसमें नवसारी के सूबा रावबहादुर लक्ष्मण जगन्नाथ ने गोविन्दराम को साहूकारी जेल में भेज दिया था। वहाँ पड़े हुए उन्हें बहुत दिन हो गये थे, परन्तु उनके मुक़द्दमे का फैसला नहीं होता था।

वेदभाष्य के लिए बीस सहस्र का लोभ—जनार्दन कीर्त्तनीय नायब दीवान के पास गोविन्दराम के जामाता इस अभिप्राय से आये थे कि उनके मुक़द्दमे का फैसला शीघ्र करा दिया जाए। वे पण्डित कृष्णराम से परिचित थे। उन्होंने यह देखकर कि सर टी० माधवराव पर स्वामीजी का विशेष प्रभाव है, पण्डित कृष्णराम ने कहा कि कि यदि स्वामीजी दीवान साहब से कहकर मेरे श्वशुर के मुक़द्दमे का फ़ैसला करा देंगे तो मैं वेदभाष्य की सहायता में बीस सहस्र रुपये दूँगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित कृष्णराम पर फटकार—पण्डित कृष्णराम ने अवसर पाकर यह बात महाराज से कह दी। स्वामीजी को इस बात को सुनकर बहुत क्रोध आया और उन्होंने पण्डित कृष्णराम को फटकारा और कहा कि रुपये का प्रलोभन दिखाकर ऐसा प्रस्ताव हमसे फिर कभी न करना। हम वह बात तो करने को उद्यत हैं जिससे हमारा कोई देशी भाई अपने न्याय को पहुँच जावे, परन्तु क्या हम रुपये के भूखे हैं ?

अभियुक्त जेल से मुक्त—जिस दिन स्वामीजी दीवान साहब के घर पर गये तो उन्होंने बातों-बातों में यह घटना भी दीवन साहब से वर्णन कर दी और इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिन पीछे गोविन्दराम के मुक़द्दमे की निर्णय हो गया और उनसे बीस सहस्र रुपये लेकर उन्हें जेल से मुक्त कर दिया।

भविष्यवक्ता दयानन्द—दयानन्द भविष्यद्रष्टा और भविष्यवक्ता थे। वे कई ऐसी बातों का उल्लेख कर गये हैं जिनकी भवितव्यता उस समय किसी के ध्यान में भी न थी। कोई कह सकता है कि यह बात किसी के मस्तिष्क में भी आई थी कि राज्य की ओर से अनिवार्य शिक्षा कानून होना चाहिए और यदि माता-पिता अपने बालक को शिक्षार्थ गुरुकुल में न भेजे तो उसे दण्ड दिया जाए। उस समय तो हम समझते हैं कि यूरोप में भी कहीं ऐसा क़ानून न था, सत्यार्थप्रकाश में यह अङ्कित है और आज भारत में कई प्रान्तों में यह क़ानून जारी है।

इसी प्रकार यह बात कि क़ानून बनाकर बाल-विवाह की कुप्रथा को रोकना चाहिए किसी ने सोची भी न थी, परन्तु दयानन्द के विचार में यह बात थी, जैसाकि उन्होंने अपने उपर्युक्त व्याख्यान में कहा था। आज कई राज्यों में यह क़ानून बना हुआ है कि नियत आयु से कम के वर-कन्या का विवाह न होना चाहिए और अब तो भारत सरकार ने भी इस अभिप्राय से शारदा एक्ट पास कर दिया है, जिसके अनुसार १४ वर्ष‡ से कम आयु की कन्या और १८ वर्ष से कम वयः के वर का विवाह निन्दनीय ठहराया गया है और उसके करने पर माता-पिता, पुरोहितादि दण्डनीय हैं। यह भी परम सन्तोष का विषय है कि इस क़ानून के बनवाने का सेहरा दयानन्द के एक अनुयायी दीवान बहादुर श्री हरविलास शारदा के सिर पर है। उन्होंने यह क़ानून बनवाकर आर्यजाति का जो उपकार किया है, उसके लिए वे सदैव धन्यवाद के पात्र रहेंगे।

असामान्य निःस्पृहत्व और न्यायप्रियता—गोविन्दराम सम्बन्धी घटना से स्वामीजी का असामान्य निःस्पृहत्व प्रकट होता है। वेदभाष्य की सहायता के लिए २०,०००) रु० की बड़ी रक़म की ओर उन्होंने भ्रूक्षेप तक नहीं किया और पण्डित कृष्णराम को, जिन्होंने इस प्रकार का प्रस्ताव उनके सामने रखने का साहस किया था, बुरी तरह फटकार दिया, परन्तु इसका फल यह नहीं हुआ कि गोविन्दराम के जेल-मुक्त होने के विषय में वे उद्योगी न हुए हों। उन्हें विश्वास हो गया था कि उनके साथ अन्याय हो रहा है और केवल इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने उसे जेल-मुक्त कराने का यत्न किया था। यह उनकी न्यायप्रियता और न्यायपरायणता का ज्वलन्त उदाहरण है। साधारण जन तो दूर रहे उन लोगों में भी जो अपने आपको समाज का मौलि-मुकुट समझते हैं, आज कितने हैं जो इसी भाव से कार्य करने में अग्रसर हों जिस भाव से कि महाराज ने कार्य किया।

वेद का अंग्रेजी अनुवाद—बड़ौदा में पण्डित शङ्कर ने अपना अँग्रेज़ी वेदानुवाद स्वामीजी को दिखाया था। वह सायणभाष्य और मैक्समूलर के अनुवाद के अनुकुल ही किया गया था। स्वामीजी ने उसे सुनकर कहा था कि इस प्रकार वेदार्थ करना उचित नहीं है।

संस्कारविधि का लिखना बड़ौदा में ही समाप्त हुआ था।

बड़ौदा से रावबहादुर गोपलराव हरिदेशमुख से मिलने के लिए स्वामीजी अहमदाबाद गये और वहाँ

‡ अब यह वयः १८ और २२ कर दी गई है। —जगदीश्वरानन्द

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से मुम्बई चले गये§ ।

बड़ौदा आदि स्थानों में वैदिक धर्म का प्रचार करके स्वामीजी मुम्बई लौट आये । उनके आगमन की ठीक तिथि ज्ञात नहीं, परन्तु यह निश्चित है कि वे मार्च सन् १८७६ के आरम्भ में मुम्बई में थे ।

(मार्च—अप्रैल) मुम्बई (फाल्गुन—वैशाख ३३)

५ मार्च सन् १८७६ को स्वामीजी का वेदों की श्रेष्ठता और पवित्रता पर आर्यसमाज की ओर से पैलनरोड पर मि० गोविन्दविष्णु के प्राइवेट इंगलिश स्कूल के हॉल में एक अत्यन्त मनोहर व्याख्यान हुआ, जिसमें मुम्बई के अनेक सुशिक्षित और प्रतिष्ठित हिन्दू उपस्थित थे ।

प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स—इस व्याख्यान में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर मोनियर विलियम्स और मुम्बई के कलक्टर मि० शेफ़र्ड भी उपस्थित थे, जिन्हें विशेषरूप से निमन्त्रित किया गया था । व्याख्यान यद्यपि हिन्दी में था तथापि संस्कृत शब्दों की प्रचुरता के कारण उसका बहुत-सा भाग प्रोफेसर महोदय के बोधगम्य था । दोनों ही महानुभाव उसे ध्यानपूर्वक सुनते रहे और स्वामीजी की भाषण-प्रणाली और व्यवहार से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए प्रतीत होते थे । व्याख्यान की समाप्ति पर रावबहादुर गोपालराव हरिदेशमुख जज खफ़ीफ़ा अहमदाबाद और नगीनदास तुलसीदास मारफटिया एल एल बी० ने आर्यसमाज के कार्य और विद्वान् सुधारक के उद्देश्यों और अभिप्रायों से सच्चा सन्तोष प्रकट किया और कहा कि हमारी सम्मति में सब लोगों को जो भारतवर्ष के आर्यों के नाम और कीर्त्ति पर गर्व करते हैं, स्वामीजी के मन्तव्यों को स्वीकार करना चाहिए ।

मोनियर विलियम्स से सम्भाषण—तदनन्तर प्रोफेसर मोनियर विलियम्स ने स्वामीजी से बहुत देर तक संस्कृत में बातचीत की और विदा होते समय न केवल सन्तोष ही प्रकट किया प्रत्युत स्वामीजी की विविध विद्या और व्याख्यान देने की शैली की बहुत-बहुत प्रशंसा की । वे स्वामीजी से वार्त्तालाप करने में बहुत मनोविनोद प्राप्त करते प्रतीत होते थे । उन्हें आर्यसमाज के नियम और तद्द्वारा प्रकाशित पुस्तकें भेंट में दी गईं, जिन्हें उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया ।

दो और व्याख्यान—१६ और १७ मार्च सन् १८७६ को भाई हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के हॉल में ईश्वर के अस्तित्व, गुण और यज्ञों पर स्वामीजी ने व्याख्यान दिये, जिनमें रावबहादुर नानामोरोजी मैजिस्ट्रेट, मि० छबीलदास लल्लूभाई, मि० भाई जीवनजी, मि० शामराव विट्ठल (जो पीछे चलकर मुम्बई हाईकोर्ट के जज हुए) डॉ० पाण्डुरंग गोपाल और मि० आत्माराम पायादालव्ये प्रभृति सम्भ्रान्त और सुप्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे।

संन्यासी शाल लेकर क्या करेगा ?—मि० नानामोरोजी ने स्वामीजी को शाल-जोड़ा देना चाहा । महाराज ने उनसे कहा कि आप न्याय-विचारक हैं, आप शाल देने के क्यों इच्छुक हैं । यदि बहुत शीत हो तो एक शाल की आवश्यकता हो सकती है, संन्यासी इतने शाल लेकर क्या करेगा ?

चौथा व्याख्यान—२१ मार्च सन् १८७६ को महाराज का एक व्याख्यान टाउन हॉल में मि० नानामोरोजी रावबहादुर के सभापतित्व में आर्यों के इतिहास और हिन्दुओं की नवयुवक-सन्तति के कर्त्तव्यों पर हुआ ।

पौराणिकों की मानसिक दशा—स्वामीजी के आक्रमणों से पौराणिक दल की अवस्था ऐसी हो गई थी, जैसी एक डूबते मनुष्य की होती है । जैसे वह तिनके का सहारा तकने लगता है वैसे ही पौराणिक दल भी जहाँ कहीं भी उसे आशा की रेखा दीख पड़ती थी उसी ओर अति उत्सुकता और उत्कण्ठा के साथ दौड़

---

§ पृष्ठ ३०१ का सूरत जाने का वर्णन इस प्रसङ्ग में होना चाहिए । —**यु० मी०** ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ता था। यदि कोई पण्डित झूठ-मूठ भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का दम भरता तो उक्त दल उसके पीछे लग जाता कि सम्भव है यही हमारा परित्राता सिद्ध हो और यही पौराणिक मत की मृगी को वैदिक धर्म के सिंह के मुख से बचा सके।

पण्डित रामलाल ज्योतिषी शास्त्रार्थ के लिए सन्नद्ध किये गये—शान्तिपुर नदिया के एक ज्योतिषी पण्डित रामलाल नामक मुम्बई के मारवाड़ियों के वर्षफलादि बनाने और उनसे दान-दक्षिणा लेने के लिए प्रतिवर्ष मुम्बई आया करते थे। अन्य वर्षों की भाँति वे मार्च सन् १८७६ में भी मुम्बई आये थे। मारबाड़ी समाज में वे उच्च कोटि के विद्वान् समझे जाते थे। उनके श्रद्धालु भक्तों ने उनसे प्रार्थना की कि दयानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित करके धर्मयश कमाइए। पण्डित रामलाल अपने अन्तस्थल में भली-भाँति जानते थे कि उनका विद्याबल कितना है और वे दयानन्द जैसे वेद-पारङ्गत विद्वान् से शास्त्रार्थ करने का कभी भी साहस नहीं कर सकते थे, परन्तु एक तो यह बात कि वह नदिया प्रान्त के निवासी हैं, जहाँ की विद्या का सारा भारतवर्ष लोहा मानता है, यह न कहने देती थी कि हम शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हैं। दूसरे, उन्हें यह भी भय था कि यदि हम शास्त्रार्थ करना स्वीकार न करेंगे तो हमारे शिष्यवर्ग में हमारा अपमान और अप्रतिष्ठा होगी, इसलिए उन्हें अगत्या यही कहना पड़ा कि हम दयानन्द से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं। उनका इतना कहना था कि पौराणिक दल की मुरझाई आशा-लता लहलहाने लगी और शास्त्रार्थ की तैयारियाँ होने लगीं, पण्डित गट्टूलाल के घर पर मुम्बई के पण्डित इकट्ठे होकर पण्डित रामलाल की सहायता के लिए शास्त्रानुसन्धान करने लगे। उन्होंने पण्डित रामलाल को उत्साहित और उनकी पृष्ठपोषकता करने में कोई न्यूनता न की।

स्वामीजी हँस पड़े—स्वामीजी के भी किसी अनुरागी ने इस बात की सूचना पाकर उनसे यह संवाद कह दिया कि अब की बार पण्डित लोग शास्त्रार्थ की असाधारण तैयारी कर रहे हैं। स्वामीजी इसे सुनकर हँस पड़े और कहने लगे कि कुछ चिन्ता नहीं है। वास्तव में उन्हें चिन्ता भी क्यों होती ? जिन्होंने पौराणिक मत के दृढ़तम गढ़ काशी के दिग्गज पण्डितों से, जिनकी विद्या की धाक दिग्दगान्तर में बैठी हुई थी, भय न खाया था, वे मुम्बई के पण्डितों से कब डरनेवाले थे ? अस्तु, जब मुम्बई के शास्त्रिगण सब प्रकार से तैयारी कर चुके तो स्वामीजी को शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया गया। उन्होंने तत्क्षण शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ का विषय वही पुराना विषय था कि मूर्त्तिपूजा वेदविहित है या नहीं। शास्त्रार्थ की तिथि २७ मार्च सन् १८७६ और स्थान भाई जीवनजी का हॉल नियत हुआ।

शास्त्रार्थ सभा—नियत तिथि पर शास्त्रार्थ सभा संगठित हुई। दर्शकों से हाल इतना खचाखच भर गया था कि खड़े होने तक को जगह न रही थी और बहुत-से लोगों को घर लौट जाना पड़ा। स्वामीजी यथासमय बिना किसी आडम्बर के सभा में उपस्थित हो गये। पण्डित रामलाल भी पधारे और बड़े दलबल और घोर गर्ज के साथ पधारे। उनके साथ अनेक स्थानीय शास्त्री और उनके शिष्य तथा श्रद्धालुजन थे। शास्त्रार्थ-सभा में मध्यस्थ का आसन श्री भूझाऊजी शास्त्री ने ग्रहण किया। शास्त्रार्थ उचित भावानुकूल और ऐसे ढंग से हुआ कि उसमें भाग लेनेवालों के लिए वह प्रशंसनीय था।

पण्डित गट्टूलाल सभा-स्थल में न आये—पण्डित गट्टूलालजी ने भी शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया था, परन्तु वे सभास्थल में नहीं पधारे। उन्हें लाने के लिए गाड़ी भी भेजी गई, परन्तु उन्होंने कहला भेजा कि हमें वमन हो गया है, हम नहीं आ सकते, हमारी ओर से पण्डित रामलाल ही शास्त्रार्थ करेंगे।

पण्डित रामलाल असमंजस में—स्वामीजी ने प्रथम ही पण्डित रामलाल से यह स्वीकार करा लिया कि आर्यों का मौलिक धर्मग्रन्थ वेद है और फिर उनसे वेद का कोई मन्त्र वा पंक्ति दिखाने को कहा जिसमें

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूर्त्तिपूजा की ओर संकेत हो। पण्डित रामलाल ने पुराण और स्मृतियों के प्रमाण उपस्थित किये। स्वामीजी ने कहा कि ये ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं, यदि कोई वेदमन्त्र स्मरण हो तो कहिए। इसपर पण्डित रामलाल ने फिर मनुस्मृति के प्रमाण प्रस्तुत किये। स्वामीजी ने कहा कि इन प्रमाणों में आये हुए 'प्रतिमा' और 'देव' शब्दों से मूर्त्तिपूजा का कोई सम्बन्ध नहीं है और उनके यथार्थ अर्थ करके दिखाये§ और यह भी कहा कि पण्डितजी के बताये हुए ग्रन्थों में पण्डितों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के निमित्त बहुत-से असत्य भाग प्रक्षिप्त कर दिये हैं, अतः वे उन ग्रन्थों का प्रमाण उक्त असत्य भागों को छोड़कर ही स्वीकार करते हैं। मौलिक धर्मग्रन्थ वेद में एक शब्द भी नहीं है, जिससे मूर्त्तिपूजा का प्रतिपादन होता हो, अन्य ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं हो सकते।

मध्यस्थ की सम्मति—तदनन्तर पण्डित रामलाल ने फिर भी स्मृतियों और पुराणों के प्रमाण उपस्थित किये। इसपर मध्यस्थ ने कहा कि पण्डितजी ! स्वामीजी प्रश्न कुछ और करते हैं, आप उत्तर कुछ और ही देते हैं। यह सभा और पण्डितों का नियम नहीं है। जैसे किसी ने किसी से द्वारिका का मार्ग पूछा और उसने कलकत्ते का मार्ग बतलाया, ऐसा ही आपका यह शास्त्रार्थ है। अन्त में पण्डित रामलाल ने कहा कि हम मूर्त्तिपूजा को वेद से सिद्ध नहीं कर सकते, परन्तु मनुस्मृति, ब्राह्मणग्रन्थों और पुराणों के प्रमाणों से सिद्ध कर सकते हैं। इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

श्रोताओं पर प्रभाव—शास्त्रार्थ-सभा रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे विसर्जित हुई। शास्त्रार्थ के अन्त में अनेक लोगों ने भाई जीवनजी को धन्यवाद दिया कि जिनके उद्योग से ऐसा चमत्कारिक परिणाम प्राप्त हुआ। सब लोग यह विश्वास लेकर घरों को लौटे कि आर्यों के मौलिक धर्मग्रन्थ वेद में मूर्त्तिपूजा की कोई आज्ञा नहीं है।

४ अप्रेल सन् १८७६ को जीवनदयाल नेरकादयाल ने एक विज्ञापन दिया था जिसमें लिखा था कि १८ मास से पण्डित दयानन्द सरस्वती मुम्बई पधारे हैं और वे बराबर मूर्त्तिपूजा का खण्डन कर रहे हैं, पण्डित गट्टूमल, पण्डित कमलनयनाचार्य, पण्डित रामलाल कोई भी मूर्त्तिपूजा को वेदविहित सिद्ध नहीं कर सका, अतः मैं यह निश्चिय करके कि मूर्त्तिपूजा वेदानुमोदित नहीं है, आर्यसमाज का सभासद् हुआ हूँ, फिर भी यदि कोई पण्डित कोई वेदमन्त्र पते और सत्य अर्थसहित जिससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती हो, मेरे पास भेज देगा तो मैं उसे १२५) रु० दक्षिणा दूँगा।

एक लेखक ने मुम्बई आदि में स्वामीजी के कार्य की आलोचना करते हुए कलकत्ता के 'वङ्ग-दर्शन' पत्र में इस प्रकार लिखा था—

एक लेखक की साक्षी—"मुम्बई और पूना प्रभृति स्थानों में कितने ही लोग आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये हैं। मुम्बई प्रदेश में भ्रमण करते हुए मैंने देखा कि वहाँ दयानन्द ने महा-आन्दोलन उपस्थित कर रक्खा है। अनेक उत्साही भद्र पुरुष उनके दल में सम्मलित हो गये हैं। जहाँ-तहाँ दयानन्द की ही चर्चा होती है।

दयानन्द की वक्तृताशक्ति, दयानन्द का सामाजिक मत, दयानन्द की नवीन प्रकार की वेदव्याख्या पर सर्वत्र आलोचना होती है .....दयानन्द सबल और दीर्घकाय हैं। उनके साथ वार्त्तालाप करने और विशेष परिचय प्राप्त करने से यह विश्वास होता है कि वे यथार्थ ही एक असाधारण पुरुष हैं; उनकी वाग्मिता और तर्कशक्ति असाधारण है। स्वदेश के मङ्गल के लिए उनका उत्साह और प्रयत्न भी असाधारण है। .....दयानन्द ने एक बार मुझसे कहा था कि इस समय उनका कार्य दो प्रकार का है, एक तो स्थान-स्थान पर आर्यसमाज

§ पण्डित रामलाल ने मनुस्मृति के श्लोकों का जिनमें देवायतन और देवपरिक्रमण शब्द आये हैं, प्रमाण दिया था। स्वामीजी ने देव शब्द के विद्वान् अर्थ किये थे और देवायतन का अर्थ विद्वानों का निवास-स्थान और देवपरिक्रमण का अर्थ विद्वानों के शरीर की परिक्रमा अर्थ किया था। इसका पण्डित रामलाल कोई उत्तर न दे सके थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थापित करना और दूसरा वेद का एक नूतन भाष्य लिखना। ....मैं मुम्बई के आर्यसमाज को देखने गया था। वहाँ अनेक भद्र लोग एकत्र होकर धार्मिक और सामाजिक विषयों पर वक्तृता और तर्क-वितर्क कर रहे थे। मैंने देखा कि अनेक लोग दयानन्द के शिष्य हो गये हैं। उनमें सुशिक्षित मनुष्य से लेकर अशिक्षित मनुष्य पर्यन्त देखने में आये। एक दिन दयानन्द के पूना से आने का संवाद था। मैंने देखा कि मुम्बई के बाज़ार का एक सामान्य दुकानदार अपनी दुकान बन्द करके दयानन्द का स्वागत करने के लिए रेलवे स्टेशन को चल दिया ...मैंने सुना कि रेलवे स्टेशन से प्रायः ५०० मनुष्य दयानन्द को लिवाकर लाये थे।

....दयानन्द मूर्त्तिपूजा के विरोधी हैं, एकेश्वरवादी हैं और वेद को आप्तवाक्य मानते हैं, अतः जन्मान्तर में भी विश्वास करते हैं। सामाजिक विषयों पर उनके मन्तव्य अति विशुद्ध और उन्नत हैं।....''

एक हिन्दू पण्डित प्राचीनतम हिन्दूधर्म के भ्रम-प्रमाद का प्रदर्शन करते हैं, एक हिन्दू संन्यासी पौराणिक उपासना के असारत्व की घोषणा करते हैं। एक प्रसिद्ध वेदज्ञ व्यक्ति वेद को सनातनशास्त्र स्वीकार करके उसमें से उन्नीसवीं शताब्दी के उच्चतम विचारों का प्रतिपादन करते हैं। यदि इससे भी हिन्दू-समाज का चित्त आकृष्ट न होगा तो किससे होगा ?

दयानन्द अंग्रेजी का बिन्दु-विसर्ग तक भी नहीं जानते। यह बात उनके पक्ष में अच्छी ही हुई है। यदि वे अंग्रेज़ी जानते होते तो लोग कहते कि दयानन्द वेदज्ञ संन्यासी हैं, परन्तु अंग्रेज़ी पढ़ने से उनकी मति विकृत हो गई है, वे भ्रष्ट हो गये हैं। यह सत्य है कि अंग्रेजी-शिक्षित नव्य समुदाय का कोई मनुष्य यदि अंग्रेज़ी प्रणाली के अनुसार वक्तृता आदि करे तो वह अपने ही समुदाय में आन्दोलन उपस्थित कर सकता है, वह आन्दोलन प्राचीन समुदाय में प्रवेश नहीं कर सकता। दयानन्द जो कुछ भी कहते हैं वह सभी देश-भाव का अनुसारी होता है। वे स्वयं अंग्रेजी से अनभिज्ञ वेदज्ञ पण्डित हैं। उनकी सभी वक्तृताओं में हिन्दुओं के चिरपूज्य वेदादि शास्त्रों की व्याख्या होती है। यदि किसी मत का समर्थन करना होता है तो वे किसी भी निरपेक्ष व्यक्ति का अवलम्बन नहीं करते, वे सदा ही शास्त्रीय प्रमाणों का प्रयोग करते हैं। इसलिए प्राचीन समुदाय में आन्दोलन उपस्थित हो गया है।

महान् प्रलोभन—एक दिन मुम्बई के प्रसिद्ध सेठ गोकुलदास तेजपाल, जो वल्लभसम्प्रदाय के अनुयायी थे, महाराज के पास आये और कहा कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन छोड़ दें तो मैं सब भाटियों को आपका अनुयायी बनवा दूँ। महाराज को तो कोई भी प्रलोभन विचलित न कर सकता था, उन्होंने तुरन्त उत्तर दे दिया कि ऐसा कभी नहीं हो सकता।

प्रलोभन देने का कारण—सेठजी के इस प्रस्ताव का एक कारण था। वे निम्नलिखित घटना के कारण वल्लभाचारी गोसाइयों से विरक्त हो गये थे और वल्लभसम्प्रदाय के आचार्यों के फन्दे से निकलना चाहते थे।

गोसाईंजी ने ५००० की माला ले-ली—सेठजी की एक विधवा पुत्री थी। एक दिन वह एक रत्नजटित माला पहनकर मन्दिर में गई। माला का मूल्य ५०००) था। गोसाईंजी ने वह माला उससे ले-ली। उसने यह बात अपने पिता से न कही। एक दिन सेठजी जब मन्दिर गये तो उन्होंने गोसाईंजी को वही माला पहने हुए देखा। गोसाईंजी से तो उन्होंने कुछ न कहा, परन्तु घर पर आकर पुत्री को बहुत धमकाया और कहा कि गोसाईंजी पर मैं चोरी का अभियोग चलाऊँगा कि उन्होंने मेरी माला चुरा ली है। लड़की ने गोसाईंजी को बचाने के लिए यह बात बना दी कि गोसाईंजी ने वह माला मुझसे देखने के लिए ले-ली थी। फिर गोसाईंजी ने भी ऐसा ही कहा कि हमें ऐसी दूसरी माला बनवानी थी, इसलिए हमने देखने के लिए यह माला ले-ली थी और यह कहकर माला वापस कर दी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अप्रैल—३० अप्रैल) इन्दौर (वैशाख—वैशाख शु० ७)

अप्रैल सन् १८७६ की किसी तारीख को स्वामीजी मुम्बई से इन्दौर चले गये।

इन्दौर—अप्रैल की किसी तारीख को महाराज इन्दौर पहुँचकर तालबाग़ में ठहरे। उनके ठहरने आदि का प्रबन्ध डॉक्टर गणपतिसिंह ने किया था§।

महाराज के सम्भ्रान्त और प्रधान कर्मचारी स्वामीजी से मिलने और उनके व्याख्यान सुनने जाया करते थे। एक व्याख्यान में महाराज तुकोजीराव भी पधारे थे। स्वामीजी का एक व्याख्यान हाईस्कूल में भी हुआ था। उसमें पण्डित गणेशशास्त्री और रामानुजशास्त्री ने कुछ विरुद्ध बोलने की चेष्टा की थी, परन्तु उन्हें बोलने नहीं दिया गया था। महाराज तुकोजीराव स्वामीजी से प्रायः मिलने आया करते थे।

महाराज को उपदेश—यद्यपि महाराज स्वयं घोर शिवभक्त थे, परन्तु स्वामीजी के आदर-सत्कार में कोई त्रुटि नहीं करते थे। स्वामीजी ने महाराज को राजनीति के कुछ सिद्धान्त लिखकर दिये थे। स्वामीजी की हिन्दी उस समय शुद्ध नहीं थी, इसलिए उन्होंने अपना लेख राजवी वासुदेव टुल्लो, अध्यक्ष शिक्षा विभाग इन्दौर राज्य को शुद्ध कराने के लिए दे दिया था और उन्होंने उसे मास्टर शम्भुदयाल से शुद्ध कराया था।

एक दिन व्याख्यान के समय पण्डित बालशास्त्री (हाथी-शास्त्री) से शास्त्रार्थ का उपक्रम हुआ था, परन्तु शास्त्रार्थ हुआ नहीं।

महाराज ने शाल दिया—विदा के समय महाराज तुकोजीराव ने यथेष्ट सम्मानपूर्वक महाराज को दुशाला आदि भेंट किया था और भेंट करते समय कहा था कि महाराज! क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं हो रही है?

मैं ऐसी मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं करता—इसके उत्तर में महाराज ने कहा कि मैं इस प्रकार की मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं करता हूँ, मृत व्यक्तियों के उद्देश्य से जो पूजा होती है, उसी का खण्डन करता हूँ।

स्वामीजी ने शाल लेने में आपत्ति की थी और कहा था कि शाल उन्हें दीजिए जो शीत से कातर हों, मैं शाल लेकर क्या करूँगा? यदि प्रत्येक राजा मुझे शाल देगा तो शालों का बोझा हो जाएगा और फिर मैं गृहस्थों की भाँति हो जाऊँगा। स्वतन्त्रता से कहाँ घूम सकूँगा। महाराजा ने इन्दौर सो काशी तक का रेल भाड़ा भी दिया था और वेदभाष्य की ५० प्रतियाँ क्रय करने का भी वचन दिया था। ३ मई सन् १८७६ के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' मुम्बई के दैनिक में इन्दौर के एक संवाददाता का ३० एप्रिल का लिखा हुआ एक पत्र छपा था कि "स्वामी दयानन्द आज सायङ्काल बनारस जानेवाले हैं। यहाँ उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं हुई, परन्तु लोग उनके आगमन से विचार करने लगे हैं।" उसी पत्र में महाराजा के स्वामीजी को मार्गव्यय देने और वेदभाष्य की ५० प्रतियाँ क्रय करने के वचन देने का उल्लेख है।

स्वामीजी के विषय में सम्मति—इन्दौर के एक व्यक्ति विष्णुपन्त ने स्वामीजी के विषय में देवेन्द्रबाबू को लिखा था—"स्वामीजी उत्कृष्ट वक्ता थे। उनका स्वर उच्च, गम्भीर और मधुर था। उनकी बोलने की रीति तेजःपूर्ण और उनका आक्रमण तीव्र होता था, उनकी वाणी एकदम लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती थी; इसलिए वे विरुद्ध पक्ष के लोगों को असह्य हो जाती थी और वे बीच में से ही उठकर चले जाते थे।"

स्वामीजी इन्दौर से चलकर ६ मई सन् १८७६ को फ़र्रुखाबाद पहुँच गये।

---

§ स्वामीजी के इन्दौर जाने का उल्लेख न पं० लेखरामकृत जीवन-चरित्र में है और न स्वामी सत्यानन्दजी के दयानन्दप्रकाश में ही है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तदश अध्याय

ज्येष्ठ सं० १९३३—चैत्र १९३४=मई १८७६—मार्च १८७७

(९ मई—२४ मई ७६) फ़र्रुख़ाबाद (ज्ये० कृ० १—ज्ये० शु० १)

ज्येष्ठ कृष्णा १ संवत् १९३३ विक्रम अर्थात् ९ मई सन् १८७६ ई० को स्वामीजी फ़र्रुखाबाद पहुँचे और लाला जगन्नाथ के विश्रान्त घाट पर उतरे।

व्याख्यान—इस बार लाला जगन्नाथ के गृह पर महाराज के धर्म का वास्तविक स्वरूप, ईसाई मत, मूर्त्तिपूजा और अवतारवाद पर चार व्याख्यान हुए।

पाठशाला तोड़ दी—पाठशाला की अवस्था ठीक नहीं थी। विद्यार्थी पुराने विचारों को नहीं छोड़ते थे और अध्यापक भी ऐसा ही करते थे, अतः पाठशाला तोड़ दी गई। जो धन पाठशाला के नाम से जमा था, वह दानियों और संचालकों की अनुमति से वेदभाष्य की सहायतार्थ दे दिया गया।

स्वामीजी के गुरु-भाई पण्डित उदयप्रकाश, हम अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए अन्य विद्वानों के विपरीत करते हैं—इससे पूर्व की घटना है कि स्वामीजी ने इस पाठशाला का प्रधान-अध्यापक अपने गुरु-भाई पण्डित उदयप्रकाश को नियत किया था। वे पौराणिक विचारों के थे। स्वामीजी जब उन्हें नियत करके फ़र्रुखाबाद से चले गये तो उन्होंने शैवमत का मण्डन करना आरम्भ कर दिया, जिसका स्वामीजी खण्डन करते थे। जब स्वामीजी को यह बात ज्ञात हुई तो स्वामीजी फ़र्रुखाबाद आये और पण्डित उदयप्रकाश को शैवमत का मण्डन करने से निषेध किया तो उन्होंने कहा कि हम मण्डन करना न छोड़ेंगे, क्योंकि यह तो हमारा स्वभाव ही है कि यदि कोई किसी बात का खण्डन करता है तो हम उसका मण्डन करते हैं और यदि कोई किसी बात का मण्डन करता है तो हम उसका खण्डन करते हैं, ऐसा हम अपनी विद्या दिखाने के लिए किया करते हैं, अतः स्वामीजी ने उन्हें मुख्याध्यापक के पद से अलग कर दिया था।

अंग्रेज पादरी से वार्त्तालाप—२३ मई सन् १८७६ को एक अंग्रेज पादरी दो देशी ईसाइयों के साथ स्वामीजी से धर्म-विषय पर वार्त्तालाप करने आया। जब वह निरुत्तर हो गया तो चला गया। चलते समय उसने कहा कि मुझे विश्वास है कि आप बहुत शीघ्र हमारे अनुयायी हो जाएँगे। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह तो परम असम्भव है, परन्तु थोड़े दिनों मे आप देखोगे कि बहुत-से ईसाई वैदिक मत की प्रशंसा करते हुए उसे स्वीकार करेंगे।

विदा होते समय स्वामीजी अपने भक्तों से कह गये कि यदि यहाँ आर्यसमाज स्थापित हुआ तो फिर मिलेंगे, नहीं तो हम कदापि नहीं आएँगे।

ज्येष्ठ संवत् १९३३ में स्वामीजी जब फ़र्रुखाबाद पधारे, उस समय पण्डित ज्वालादत्त पाठशाला में पढ़ाते थे। उन्होंने स्वामीजी की स्तुति में एक कविता लिखकर उन्हें सुनाई थी। उसे सुनकर उन्होंने कहा था कि मैं मनुष्य हूँ, मेरी इस प्रकार की स्तुति करना कदापि उचित नहीं है। तुम्हारी कविता कठिन और जटिल है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक दिन वृन्दावन निवासी राधाचरण गोस्वामी और पण्डित बलदेवप्रसाद स्वामीजी से मिलने गये तो उन्होंने पण्डित बलदेवप्रसाद से पूछा कि मैक्समूलर भारतवर्ष कब आवेंगे। इससे ज्ञात होता है कि उन दिनों मैक्समूलर के भारतवर्ष आने की चर्चा थी।

इससे अगले दिन निर्जला एकादशी थी। पण्डित राधाचरण गङ्गा-स्नान करने गये थे, स्नान करके घर लौटते समय वे स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए तो उन्होंनें देखा कि स्वामीजी से दो पादरियों की धर्म-विषय पर बात-चीत हो रही है। उनमें से एक पादरी का नाम लूकस था। दूसरा देशी ईसाई था।

लूकस—आपके मत में मोक्ष का क्या उपाय है ?

दया०—हमसे पादरी विल्सन ने भी यही प्रश्न किया था। उन्होंने कहा था कि मोक्ष का साधारण मनुष्यों के लिए एक प्रकार का उपाय है, अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति और ईसाईयों के लिए अन्य प्रकार का अर्थात् ईसा पर विश्वास लाना। हमने इसपर उनसे कहा था कि पहला उपाय ही ठीक है।

लूकस—मनुष्य ईसा पर विश्वास करने से ही मुक्ति पा सकता है, क्योंकि वह ईश्वर का पुत्र और मनुष्यों का परित्राता था और इसीलिए ईश्वर ने उसे भेजा था। इसका प्रमाण यह है कि ईसा ने बहुत-से मृत-पुरुषों को जिलाया था।

दया०—सत्य वेदोक्त धर्म में ईश्वर के अवलम्बन से ही मोक्ष होती है। महाभारत में लिखा है कि शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से मृत-पुरुषों को जिलाया था। अब हम शुक्राचार्य को ईश्वर का अवतार मानें वा उन्हें ईश्वर का भेजा हुआ मानें। यदि उत्तम उपदेश देने से ही ईसा को परित्राता कहते हो तो बायबिल की अपेक्षा भगवद्गीता में अधिक उत्तम उपदेश हैं, इसलिए भगवद्गीता के वक्ता श्रीकृष्ण भी परित्राता हैं। यदि तुम कहो कि ईसा इसलिए परित्राता थे कि उन्होंने उत्तम कर्म किये थे, तो शङ्कराचार्य अपेक्षाकृत उत्तमोत्तम कर्म कर गये हैं, इसलिए शङ्कराचार्य भी परित्राता हैं।

पादरी साहब इन बातों का कुछ उत्तर न दे सके।

स्वामीजी ने पादरी साहब से यह भी कहा था कि तुम्हारे देशों में धन बहुत है, इसलिए तुम्हारी परिश्रम में अनास्था हो गई है, अतएव तुम्हारी मध्यस्थ अवस्था नहीं रही है और तुम क्रमशः अवनति की ओर जा रहे हो।

इसके पश्चात् स्वामीजी ने शर्बतादि से सत्कार करके पादरी साहब को विदा किया।

पादरी जे०जे० लूकस से देवेन्द्रबाबू ने उनके स्वामीजी के संसर्ग में आने का वृत्त पूछा था। उसके उत्तर में जो पत्र उन्होंने लिखा उसमें उस बात-चीत का भी कुछ उल्लेख किया था जो उनकी स्वामीजी से धर्म-विषय पर हुई थी और अन्य बातें भी लिखी थीं। हम उनके पत्र को उपयोगी समझकर यहाँ उद्धृत करते हैं। इसमें स्वामीजी के आकार, प्रकार और एक व्याख्यान का मनोरंजक वर्णन है। अन्त में उन्होंने कुछ अपने विचार भी आर्यसमाज और ख्रीस्त धर्म के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकट किये हैं।

"जब मैं सन् १८७७ ई० के निकट फ़र्रुखाबाद में रहता था तब मैंने स्वामी दयानन्दजी को एक बृहत् समुदाय के सामने, जिसमें प्रायः हिन्दू ही थे, व्याख्यान देते हुए सुना था। मैं पण्डित मोहनलाल के साथ, जो कनौजिया ब्राह्मण थे और कुछ वर्ष पूर्व ईसाई हो चुके थे, उनसे मिलने भी गया था।

पहली बात, जिससे मैं प्रभावित हुआ, वह उनका बल था जो उनके समस्त शरीर और आकृति पर बृहदक्षरों में अङ्कित था। उनकी आकृति तपस्वियों-जैसी नहीं थी। उससे पूर्व उन्होंने चाहे जो तपस्या की हो, परन्तु जब मैंने उन्हें देखा था उस समय उनका जीवन एक तपस्वी वा संन्यासी का नहीं था। यह सच है कि उनके वस्त्र बहुत पुष्कल नहीं थे। जब मैंने उन्हें देखा था, वे केवल एक वा दो वस्त्र पहने हुए थे,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु वे किसी सुन्दर श्वेत वस्तु के बने हुए थे। उनके देह के ऊपर का भाग प्रायः नग्न था। उन्होंने मेरा और पण्डित मोहनलाल का हृदय से स्वागत किया था और वे हमसे बात-चीत करने और अपने मन्तव्यों को स्पष्टतया वर्णन करने पर सर्वथा उद्यत थे। वे मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध इतने बल और इतने स्पष्ट विश्वास के साथ बोलते थे कि मुझे फ़र्रुखाबाद की जनता की ओर से उनका हार्दिक स्वागत किये जाने पर आश्चर्य हुआ। मुझे उनका यह कथन स्मरण है कि जब मैंने उनसे कहा कि यदि आपको तोप के मुँह पर रखकर आपसे कहा जाए कि यदि तुम मूर्त्ति को मस्तक नहीं नवाओगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जाएगा, तो आप क्या कहेंगे। स्वामीजी ने उत्तर दिया था कि "मैं कहूँगा कि उड़ा दो"। मैं उस समय उनसे मिलकर यह भाव लेकर आया कि स्वामी दयानन्द एक बलवान् पुरुष हैं और मूर्त्तिपूजा से उन्हें प्रबल और सच्ची घृणा है।

हिन्दुओं की बड़ी संख्या उनका व्याख्यान सुनने को आई थी और इसमें सन्देह नहीं कि उस सायंकाल को उनकी वाग्मिता और सत्यमनस्कता ने उनके लिए बहुत-से अनुयायी प्राप्त किये होंगे।

आगे चलकर पादरी साहब कहते हैं, "हिन्दुओं में मूर्त्तिपूजा के प्रति अश्रद्धा ईसाइयों के स्कूलों और बाज़ार के व्याख्यानों और ईसाइयों की लाखों पुस्तकों के प्रचार से उत्पन्न हो गई थी, जिनमें मूर्त्तिपूजा की मूर्खता, उसके पाप और लज्जा का स्पष्टरूप से वर्णन किया गया था और इस प्रकार उन्होंने सारे भारतवर्ष में लोगों को मूर्त्तिपूजा का परित्याग करने पर उद्यत कर दिया और जब दयानन्द ने वेदों के बल पर मूर्त्तिपूजा का प्रत्याख्यान किया तो उन्होंने लोगों को मूर्त्तिपूजा के परित्याग पर उद्यत पाया और लोगों ने उनकी शिक्षा को इसलिए ग्रहण किया कि उन्होंने समझा कि दे मूर्त्तिपूजा को छोड़कर भी वेदों को रख सकते हैं। मेरी सम्मति की सत्यता इससे भी प्रकट होती है कि आर्यसमाज के लोग सदा उस अभियोग से अपनी रक्षा करते चले आये हैं जो हिन्दू उनपर लगाते रहे हैं, अर्थात् यह कि वास्तव में आर्यसमाजी हिन्दू-मन्दिरों के विनाश के लिए ईसाइयों से मिल गये हैं और यही कारण है, जो आर्यसमाजी इतनी तीव्र भाषा ईसाइयों के लिए प्रयुक्त करते हैं। आर्यसमाजी समझते हैं कि ईसाइयों के विरुद्ध रहने से ही हिन्दू उन्हें उस अभियोग से मुक्त कर सकते हैं।"

अन्त में पादरी साहब ने लिखा था कि "इसमें कोई हानि नहीं है, यदि आर्यसमाजी यह स्वीकार कर लें कि ईसाइयों ने मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध प्रचार करके उनका मार्ग सुगम कर दिया है।"

हमें पादरी साहब की बातों पर हँसी आती है। यह किसी अंश में भी सत्य नहीं है कि लोग ईसाई पादरियों के खण्डन करने के कारण मूर्त्तिपूजा से विरक्त हो गये थे। बंगाल, मद्रास आदि जिन-जिन प्रान्तों में ईसाइयों का प्रचार बहुत समय से और बड़े बल के साथ होता रहा है, उन-उन प्रान्तों में मूर्तिपूजा का सबसे अधिक प्राबल्य है और वही वे प्रान्त हैं जिनमें आर्यसमाज का बहुत कम प्रचार है। इससे स्पष्ट है कि ईसाइयों के प्रचार ने लोगों को मूर्त्तिपूजा के त्यागने पर उद्यत नहीं किया।

यह सत्य है कि कहीं-कहीं सनातनधर्मियों ने स्वामीजी के विषय में यह किंवदन्ती फैलाई थी कि उन्हें अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए नियत किया है, परन्तु न किसी ने उस समय इसे सत्य समझा और न स्वामीजी के देहावसान के पीछे ही किसी ने आर्यसमाजियों पर यह अभियोग लगाया और यदि किसी ने लगाया भी हो तो न कभी आर्यसमाजियों ने उसकी परवाह की और न जनसाधारण ने उसे सत्य समझा। यह कहना कि आर्यसमाजी केवल इस दोषारोपण से मुक्त होने के अभिप्राय से ईसाई मत की तीव्र आलोचना करते हैं, सर्वथा मिथ्या है। प्रथम बात तो यह है कि ईसाई जैसी तीव्र भाषा हिन्दुओं और आर्यों के लिए प्रयुक्त करते हैं, आर्यसमाजी ईसाइयों के लिए वैसी भाषा प्रयुक्त नहीं करते, दूसरे-आर्यसमाज जिस भाव से पौराणिक आदि वेद-विरुद्ध मतों का खण्डन करता है, उसी भाव से ईसाई मत का भी करता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हाँ, यह अवश्य किसी अंश तक ठीक है कि अंग्रेज़ी शिक्षाप्राप्त समुदाय में मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध कुछ भाव उत्पन्न हो गया है, परन्तु यह ईसाई मत के प्रचार का नहीं, प्रत्युत पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रसार का प्रभाव है।

(२७ मई—१४ अगस्त) काशी (ज्ये० शु० ४—भा० कृ० १०)

स्वामीजी २४ मई सन् १८७६ ई० को फ़र्रुखाबाद से चलकर ज्येष्ठ शुक्ला ४ संवत् १९३३ वि० अर्थात् २७ मई सन् १८७६ ई० को काशी पहुँचे और उत्तमगिरि गोसाईं के बाग़ में ठहरे।§

वेदभाष्य-भूमिका—इस समय स्वामीजी का अधिक समय वेदभाष्य का चिन्तन और उसके मुद्रित कराने के प्रबन्ध करने में व्यय होता था। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लाज़रस कम्पनी के छापेखाने में छपवाने का उन्होंने प्रबन्ध किया और वेदभाष्य के सम्बन्ध में विज्ञापन छपवाये।

वेदभाष्य के लिए ग्रन्थ-संग्रह—स्वामीजी ने वेदभाष्य के कार्य में योग देने के लिए फ़र्रुखाबाद से पण्डित भीमसेन को अपने पास काशी बुलाया। एक मास तक ग्रन्थ-संग्रह का प्रबन्ध होता रहा और फिर वेदभाष्य की रचना आरम्भ हुई।

शिष्य-गुरु-सम्मिलन—पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती, जो कुछ दिन तक स्वामीजी के साथ रह चुके थे, नेपाल जा रहे थे। वे स्वामीजी के दर्शन करने आये। स्वामीजी ने उन्हें योगदर्शन का व्यासभाष्य तथा महाभाष्य प्रदान किया।

स्वामीजी भाद्रपद कृष्ण १० संवत् १९३३ वि०, अर्थात् १४ अगस्त सन् १८७६ ई० तक काशी में रहे।

(१५ अगस्त—१९ अगस्त) जौनपुर (भा० कृ० ११—भा० कृ० १४)

स्वामीजी काशी से चलकर भाद्र कृष्णा ११ संवत् १९३३ अर्थात् १५ अगस्त सन् १८७६ ई० को जौनपुर पहुँचे। यहाँ उनके साथ पं० भीमसेन और एक रसोइया था। यहाँ कोई व्याख्यान नहीं हुआ। जो लोग उनके पास आते रहे, उन्हें ही उपदेश देते रहे। यहाँ स्वामीजी केवल तीन दिन रहे और यहाँ से चलकर अयोध्या पहुँच गये।

(१९ अगस्त—२७ सित०) अयोध्या (भा० कृ० १४—आ० शुक्ल० ६)

भाद्रपद कृष्णा १४ संवत् १९३३ वि० अर्थात् १९ अगस्त सन् १८७६ ई० को स्वामीजी अयोध्या पहुँचकर सरयूबाग़ में चौधरी गुरुचरणलाल के मन्दिर में उतरे। अयोध्या में भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा संवत् १९३३ वि० अर्थात् २० अगस्त सन् १८७६ ई० को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लिखना प्रारम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ के लिए विज्ञापन—स्वामीजी ने विज्ञापन छपवाकर नगर में बटवाया और उसमें पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए चैलैञ्ज दिया। विज्ञापन देते ही पौराणिक-दल में खलबली मच गई। मन्दिरों, ठाकुरद्वारों तथा अन्य स्थानों में सभाएँ होने लगीं।

राजा को पण्डितों का परामर्श—पण्डित और वैरागी सबके सब मिलकर अयोध्या के रईस राजा त्रिलोकीलाल के पास गये और उनसे दयानन्द के विज्ञापन देने का समाचार कहा। उन्होंने कहा—तो फिर

---

§ देवेन्द्रबाबू ने इस बाग़ के स्वामी का नाम शिवदत्तगिरि लिखा है। —संग्रहकर्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द से नियमानुसार शास्त्रार्थ क्यों नहीं कर लिया जाता ? तब पण्डितों ने शास्त्रार्थ का आयोजन किया और स्वामीजी को एक पत्र लिखा जिसमें यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि स्वामीजी अयोध्या नगर में आकर शास्त्रार्थ करें।

पण्डितों की कूटनीति—इस प्रतिबन्ध के लगाने में पण्डितों का विशेष अभिप्राय था। वैरागियों का अयोध्या में बहुत ज़ोर है और वे झगड़ा-बखेड़ा करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। पण्डितों ने सोच लिया था कि यदि हम शास्त्रार्थ में न जीते तो शस्त्रार्थ करेंगे, हुल्लड़बाजी और धींगामुश्ती से जीतेंगे, दयानन्द अकेला है, वह कर ही क्या सकेगा, हम जीत का ढोल पीट ही देंगे।

शास्त्रार्थ सरयूबाग़ में ही होगा—परन्तु दयानन्द भी कच्ची गोलियों का खेला हुआ न था, वह इनकी चाल जान गया। उसने पत्रोत्तर में कहला भेजा कि यदि शास्त्रार्थ करना है तो सरयूबाग़ में ही करना होगा। पण्डित लोग इसे क्यों मानने लगे, उन्हें तो शास्त्रार्थ से बचने के लिए कोई बहाना चाहिए था और वह उन्हें अनायास ही मिल गया।

इसमें कोई सन्देह ही नहीं था कि यदि स्वामीजी अयोध्या में शास्त्रार्थ करने जाते तो वैरागी उनपर आक्रमण किये और टण्टा-बखेड़ा उठाये बिना कभी न रहते।

एक पण्डितम्मन्य—अयोध्या में उन दिनों एक पण्डितम्मन्य श्रीहर्षजी निवास करते थे। देवेन्द्रबाबू को तो यह धुन थी कि जिस व्यक्ति का भी उन्हें पता लगता था कि उसका स्वामीजी से संसर्ग रहा था, चट उसी के पास पहुँच जाते थे। इसी प्रकार वे श्रीहर्ष के भी पास पहुँचे और उनसे पूछा कि महाराज स्वामीजी के विषय में यदि कोई घटना याद हो तो कृपया बताइए।

हमने दयानन्द को हराया था—श्रीहर्ष हर्षित और पुलकित होकर बोले, "अजी ! याद क्यों नहीं है, हमने तो उन्हें शास्त्रार्थ में हराया ही था, यह बात कैसे याद न रहती"। देवेन्द्रबाबू ने उनसे पूछा कि आपमें और दयानन्द में क्या प्रश्नोत्तर हुए थे ? तो गर्व से उद्ग्रीव होकर निम्नलिखित प्रश्नोत्तर उन्होंने वर्णन किये।

पण्डितम्मन्य की मनघड़न्त—

श्रीर्ष—शिष्टाचार प्रमाण है वा नहीं ?

दया०—है।

श्रीहर्ष—तो फिर तीर्थभ्रमण आदि जो शिष्ट-परम्परा से चला आता है, क्यों मान्य नहीं है ?

दया०—चुप

श्रीहर्ष—यदि व्यास, वसिष्ठ सभी के शास्त्र असत्य हैं तो यह कैसे माना जाए कि आज आपने इतने दिनों बाद सत्यार्थ का प्रकाश किया है ?

दया०—चुप।

श्रीहर्ष—विधवा-विवाह विहित है वा नहीं ?

दया०—विहित है।

श्रीहर्ष—परन्तु भारतवर्ष में द्रौपदी के स्वयंवर-प्रसंग में टीकाकार नीलकण्ठ ने वेद का एक मन्त्र उद्धृत करके विधवा-विवाह का अनौचित्य दिखाया है ?

दया०—चुप।

पाठकों ने देखा कि पण्डित श्रीहर्ष के प्रश्न कैसे दुरूह और गूढ़ हैं। स्वामीजी इस बुद्धि के हिमालय के प्रश्नों के उत्तर में चुप न होते तो क्या करते ? हमें श्रीहर्षजी की सरलता पर हँसी आती है, वे सबको

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या तो मूर्ख समझते थे जो उनके कथन को ब्राह्मणवचन प्रमाण कहकर मान लें या स्वयं उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि जो बात वे कह रहे है उसपर कोई बुद्धिमान् विश्वास भी कर सकता है वा नहीं। वास्तव में बात यह है कि यह प्रश्नोत्तर स्वयं श्रीहर्षजी के मस्तिष्क की उपज हैं। उनका कोई शास्त्रार्थ स्वामीजी से हुआ ही नहीं।

अयोध्या में एक मास और नौ दिन ठहरकर महाराज लखनऊ चले गये।

(२७ सित०—१ नव०) लखनऊ (आ०शु० ६—का०शु० १५)

स्वामीजी २७ सितम्बर सन् १८७६ ईस्वी, अर्थात् आश्विन शुक्ला ६ संवत् १९३३ को लखनऊ पहुँचे और हुसैनाबाद में सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया की कोठी में ठहरे। अधिकतर वे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के रचने में व्यापृत रहते थे।

स्वामीजी इंग्लैंड जाना चाहते थे—स्वामीजी का विचार इंग्लैंड जाकर प्रचार करने का भी था और इसी उद्देश्य से उन्होंने बनमाली बाबू एक बंगाली से, जिसे उन्होंने मिर्ज़ापुर में नियत करके साथ रक्खा था, अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया था। १८ अक्टूबर सन् १८७६ ई० के 'बिहारबन्धु' पटना ने लिखा था कि "पण्डित दयानन्द सरस्वती विलायत जाना चाहते हैं। इसलिए आजकल लखनऊ में, अंग्रेज़ी पढ़ रहे हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उक्त महाशय के विलायत जाने से वहाँ के विद्वानों को बड़ा आनन्द होगा"।

पहला व्याख्यान—३० सितम्बर सन् १८७६ को स्वामीजी ने छोटे लाल रोटीवाले के बाग़ में 'ईश्वर की एकता' के विषय में व्याख्यान दिया, जिसमें श्रोता अत्यधिक संख्या में उपस्थित हुए और व्याख्यान का अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। व्याख्यान में स्वामीजी ने ब्राह्मसमाज और उसके नेता की प्रशंसा की थी कि ब्राह्म लोग जो प्रयत्न एकेश्वर पूजा के फैलाने में कर रहे हैं, वह श्लाघनीय है।

इस बार स्वामीजी के लाला व्रजलाल रईस लखनऊ के साथ धर्म-विषय में प्रश्नोत्तर हुए थे। हम स्वामीजी के दिये हुए उत्तरों को यहाँ उद्धृत करते हैं। उनसे ही प्रश्नों का पता लग जाएगा कि वे क्या थे?

प्रश्नों के उत्तर—वर्ण कर्मों के अनुसार ठीक हैं, (वर्तमान) लोक-व्यवहार के अनुसार ठीक नहीं हैं। ब्रह्मविद्या का ज्ञाता ब्राह्मण, युद्ध करनेवाला क्षत्रिय, लेन-देन आदि करनेवाला वैश्य, सेवा करनेवाला शूद्र है। यदि ब्राह्मण वा क्षत्रिय शूद्र का काम करने लगे तो वह ब्राह्मण आदि नहीं। वर्ण कर्म से होता है, कुल से नहीं। वर्तमान चारों वर्ण§ १२०० वर्ष के लगभग बने हैं ----। जैसे शरीर में मुख श्रेष्ठ है वैसे ही सब वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, इसलिए ऐसा कहा गया है कि ब्राह्मण मुख से हुआ। यज्ञोपवीत केवल विद्या का चिह्न है। उत्तम कर्म सत्य बोलना, परोपकारादि हैं, उन्हें ही करना चाहिए। वाणी से सत्य बोलना अर्थात् जो मन में हो वही जिह्वा से कहना वा ऐसा विचारकर कहना जो कभी झूठा न हो सत्य कहाता है। मूर्त्तिपूजना बुरा है, कदापि नहीं पूजनी चाहिए, इसी मूर्त्तिपूजा के कारण संसार में अन्धकार फैल गया है। जैसे सुख-दुःख का ध्यान मन में होता है, वैसे ही परमेश्वर का ध्यान मन से होना चाहिए, मूर्त्ति की कोई आवश्यकता नहीं। सन्ध्या केवल दो समय सायं व प्रातः करनी चाहिए, तीन काल नहीं। सत्य बोलना और परोपकार के उत्तम कर्म करने चाहिएँ। **बिना समझे बार-बार मन्त्र जपना वा लाख दो लाख मन्त्र जपकर पुरश्चरण करना अनावश्यक है, मनन करना चाहिए।** परमेश्वर का कोई रंग व रूप नहीं है, वह अरूप है। जो कुछ इस संसार में दिखाई देता है, वही उसका रूप है। परमेश्वर एक है और वही सबको बनाने और उत्पन्न करनेवाला है। यदि ईश्वर दिखाई देता तो कदाचित् सब कोई अपनी-अपनी मनोवाञ्छा पूरी करने की

§ यहाँ चारों वर्णों से अभिप्राय आजकल की जन्मगत अनेक बिरादरियों से है।—संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रार्थना करता और उसे हैरान करता। दूसरे, जिन तत्त्वों से मनुष्य का यह शरीर बना है उनसे उसको देखना असम्भव है। तीसरे, जिसने जिसे उत्पन्न किया उसे वह क्योंकर देख सकता है, परन्तु परमेश्वर दिखाई भी देता है। ये मनुष्य, पशु-वृक्ष आदि सब पदार्थ जो इस संसार में दिखाई देते हैं, इनका कोई एक बनानेवाला जान पड़ता है, यही उसका दीखना है और जैसे सुख-दुःख से आत्मा पहचाना जाता है, वैसे ही परमेश्वर को पहचानो। ब्रह्म सबमें है और हममें भी है और जैसे सुख-दुःख की प्रतीति मन में होती है, वैसे ही उसकी भी हो सकती है। ब्रह्म सब जगह एक-सा है, परन्तु उस चेतन का जितना जिसके आत्मा में प्रकाश है, अर्थात् जितना जिसे ज्ञान है उतना ही उसे ब्रह्म का अनुभव होता है। जो मनुष्य विद्वान्, बुद्धिमान् और पण्डित हो उसे 'देव' कहते हैं। **रामलीला देखने में दोष है, सहस्र हत्या के बराबर दोष है और इसी प्रकार मूर्त्तिपूजा सहस्र हत्या के बराबर पाप है,** क्योंकि बिना आकार के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जब परमेश्वर का आकार नहीं तो उसकी मूर्त्ति झूठी। यदि किसी का फ़ाटो—ठीक-ठीक प्रतिकृति उतारकर स्मरण करने और देखने के लिए सामने रक्खी जाए तो ठीक है, परन्तु ब्रह्म की मूर्त्ति और अनुकृति बनाना और नकल करना कुछ-का-कुछ कर देना है और सर्वथा मिथ्या और अवैध है। संस्कृत-भाषा सदा से है और अत्यन्त शुद्ध और परिष्कृत है। यदि फ़ारसी और अंग्रेज़ी में 'ब' बोलना चाहें तो स्पष्टतया प्रकट नहीं हो सकता फ़ारसी में 'बे' और अंग्रेज़ी में 'बी' कहेंगे, परन्तु किसी अक्षर को बिना दूसरे अक्षर की मिलावट के प्रकट करने का गुण केवल संस्कृत में ही है। जैसे माता-पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता-पिता और गुरु की सेवा करो, उनका कहा मानो, ऐसे ही भगवान् ने स्तुति सिखाने के लिए वेद में अपनी स्तुति लिखी है। भगवान् का मुख तो नहीं है उसने अग्नि, वायु आदित्य, अङ्गिरा चार ऋषियों के हृदय में वेद का प्रकाश किया, परन्तु वेद उन ऋषियों के बनाये हुए नहीं हैं, वे भगवान् के बनाये और कहे हुए हैं। वे चारों ऋषि कुछ न पढ़े थे और न कुछ जानते थे, भगवान् ने उनके द्वारा वेद कहे हैं। जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्निपात में विवश होकर बोलने लगते हैं, वैसे ही भगवान् ने उन चारों के घट में और वाणी में वेदों का प्रकाश किया और उन्होंने इसके बल से विवश होकर कहा, अतः स्पष्ट है कि वेद भगवान् ने ही कहे हैं। जीव अपनी जाति=प्रकृति वा स्वरूप में एक हैं और संख्या में अनेक हैं। जैसे एक मनुष्य-जाति है और दूसरी पशुजाति है, इत्यादि। जैसे जल में जो रंग मिला दोगे जल वैसा ही हो जाएगा, वैसे ही जिस देह में यह जीव जाएगा वैसा ही उसका रंग-रूप और छोटा-बड़ा देह होगा, परन्तु जीव सबका एक-सा है, जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का।

अशुद्धियों को सरलता से मान लो—स्वामीजी ने एक पुस्तक [संस्कृत वाक्यप्रबोध] प्रकाशित की थी। वह छपी तो उनके ही नाम से थी, परन्तु उसके लिखनेवाले, उनके साथ काम करनेवाले पण्डित थे। उसमें संस्कृत की कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं। काशी के पण्डितों ने उसपर आक्षेप किया तो पण्डितवर्ग उन अशुद्धियों को शुद्ध सिद्ध करने लगे। स्वामीजी ने उनसे कहा कि जो अशुद्धियाँ हैं उन्हें सरलता से मान लेना चाहिए और अगले संस्करण में उन्हें शुद्ध कर देना चाहिए।§

पूर्व-मीमांसा के भ्रान्त अर्थ—प्रसंग उठने पर एक दिन स्वामीजी ने कहा कि जो लोग पूर्वमीमांसा के सूत्रों का यज्ञ में पशुवधपरक अर्थ करते हैं, वे भारी भूल करते हैं। बात यह है कि सूत्रों में 'आलम्भन' शब्द आया है, जिसके दो अर्थ हैं, वध करना और स्पर्श करना। सूत्रों में उसका अर्थ स्पर्श करना ही है।

एक दिन स्वामीजी ने यह भी कहा था कि **मैंने वेदों के एक-एक मन्त्र पर पूर्ण विचार किया है, उनमें कोई भी युक्ति-विरुद्ध बात नहीं है।**

---

§ देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पत्रसंख्या १७४ (पृष्ठ २२३,२२४) तथा ३४६ (पृष्ठ ४०६)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उलटे अर्थ को उलटता हूँ—एक दिन एक व्यक्ति ने महाराज से कहा कि आप ग्रन्थों के अर्थ उलट देते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो अर्थ नहीं उलटता, अर्थ उलटनेवाले तो और ही होंगे। हाँ, मैं उनके उलटे अर्थों को अवश्य उलटता हूँ।

(१ नव०—६ नव०) शाहजहाँपुर (का० शु० १५—मार्ग० कृ० ५)

१ नवम्बर सन् १८७६ ई० को स्वामीजी लखनऊ से शाहजहाँपुर पधारे और एक बाग़ में ठहरे जिसमें एक मन्दिर भी था, परन्तु पौराणिकों ने उन्हें वहाँ न रहने दिया, अतः वे एक दूसरे बाग़ में चले गये। ५ दिन ठहरकर बरेली चले गये। शाहजहाँपुर में व्याख्यान का प्रबन्ध नहीं हुआ। स्वामीजी का अधिक समय ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के बनाने में व्यय होता था।

(६ नव०—§ नव०) बरेली (मार्ग कृ० ५—मार्ग० शु०)

शाहजाँपुर से चलकर स्वामीजी मार्गशीर्ष कृष्णा ५, अर्थात् ६ नवम्बर को बरेली पधारे। लाला लक्ष्मीनारायण खज़ानची को उनके आगमन की पहले से सूचना थी। उन्होंने अपने एक प्रतिष्ठित कर्मचारी को स्वामीजी के स्वागत के लिए रेलवे स्टेशन पर भेज दिया था। खज़ानची साहब ने स्वामीजी को सत्कारपूर्वक अपनी कोठी बेगम-बाग़ में ठहराया। उसी कोठी में स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। मूर्खजन चिढ़ते और बुद्धिमान् प्रसन्न होते थे। नगर के सब महात्मा, महाजन, सेठ, साहूकार, कॉलेज के विद्यार्थी व्याख्यान सुनने जाते थे।

पौराणिक दल में हाहाकार—स्वामीजी के मूर्त्तिपूजादि के खण्डन से पौराणिक दल में व्याकुलता फैल गई थी। स्वामीजी के ३-४ व्याख्यान होने पाये थे कि पण्डितों, महन्तों और मूर्त्तिपूजकों ने हाहाकार मचा दिया और दल-के-दल सेठ लक्ष्मीनारायण के पास जाकर स्वामीजी के व्याख्यान बन्द करने के लिए कहने लगे। उन्होंने इन हुल्लड़ करनेवालों की तो कुछ परवाह न की, परन्तु जब पण्डितों, पुरोहितों और पुजारियों ने उनके घर के लोगों और स्त्रियों को बहकाया और धर्मनाश की दुहाई देकर भड़काया और परिवार के पुरुषों और स्त्रियों ने आग्रह किया तो उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की कि महाराज ऐसी दशा में यदि आप व्याख्यान देना बन्द कर दें तो बड़ी कृपा होगी। स्वामीजी ने उनकी विवशता पर विचार करके व्याख्यान देने बन्द कर दिये, परन्तु ठहरे उसी कोठी में रहे और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का प्रणयन करते रहे।

अङ्गद शास्त्री को बुलाया गया—पौराणिकों ने पण्डित अङ्गदराम शास्त्री को पीलीभीत से स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया। उसने आकर बहुत हल्ला-गुल्ला किया, शास्त्रार्थ के लिए उत्सुकता प्रकट की। स्वामीजी शास्त्रार्थ से कब हटनेवाले थे, उन्होंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ के नियम भी निश्चित हो गये और प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रार्थ का दिवस और समय भी नियत हो गया। उक्त दिवस और समय पर शास्त्रीजी ५००० पुरुषों की भीड़ लेकर जिनमें प्रायः सभी उजड्ड, उपद्रवी लोग थे, आवाजें कसते और शोर मचाते स्वामीजी के निवासस्थान पर पहुँचे। सेठ लक्ष्मीनारायण ने जो उस हुड़दङ्गा समुदाय को देखा तो उन्हें निश्चय हो गया कि शास्त्री का अभिप्राय शास्त्रार्थ करना नहीं, प्रत्युत दङ्गा-बखेड़ा करना ही है, अतः उन्होंने उस भीड़ को कोठी के अहाते में घुसने से रोक दिया। इसपर शास्त्री ने कहना आरम्भ कर दिया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ से हट गये और जिस ठाठ से आये थे उसी ठाठ से वापस चले गये। बुद्धिमान् तो समझ ही गये कि शास्त्रीजी ने शास्त्रार्थ से बचने का एक ढङ्ग निकाला था, मूर्ख-मण्डली अवश्य यह कहती रही कि

§ १८ नवम्बर को स्वामीजी बरेली में थे। देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पृष्ठ ३७।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिए शास्त्रीजी के सम्मुख नहीं आये।

लक्ष्मण शास्त्री परास्त—सेठ लक्ष्मीनारायण ने २०० रुपये वेदभाष्य की सहायतार्थ स्वामीजी को भेंट किये। गवर्नमेंट हाईस्कूल के पण्डित लक्ष्मण शास्त्री भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये थे, परन्तु वे संस्कृत शुद्ध न बोल सकते थे। स्वामीजी ने उनकी अशुद्धियाँ पकड़कर ही उन्हें चुप कर दिया था।

पाठकों को स्मरण होगा कि स्वामीजी ने मिर्ज़ापुर में एक बङ्गाली को अंग्रेजी सीखने के लिए रक्खा था। वह कुछ समय उनके साथ रहा, परन्तु फिर वह चला गया था। बरेली आकर उन्होंने बनमाली बाबू एक दूसरे बंगाली को रक्खा, परन्तु उससे उन्होंने अंग्रजी नहीं पढ़ी। उन्हें उपदेश, वार्त्तालाप, व्याख्यान और ग्रन्थ रचने से इतना समय ही नहीं मिलता था, जो वे अंग्रेजी पढ़ सकते। बनमाली बाबू से तो उन्होंने यही काम लिया कि वे उससे मैक्समूलर के वेदमन्त्रों के अंग्रेजी अनुवाद का भाषानुवाद सुन लिया करते थे।

एक सदाशय विद्वान्—पण्डित गङ्गाराम बरेली के प्रसिद्ध रईस दीवान हेतराम के कर्मचारी थे, उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। वे आरम्भ से ही स्वामीजी के उपदेशों को शास्त्रसम्मत और युक्तिसङ्गत समझकर मानने लगे थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी की प्रशंसा में कतिपय श्लोक रचकर सभा में सुनाये थे।

कहते हैं कि स्वामीजी इन दिनों विशेष खण्डन-मण्डन नहीं करते थे, वे अधिकतर लोगों के हृदयों पर वेदों का महत्त्व अङ्कित करने में अपना समय व्यय करते थे और कहते थे कि वेदों में तड़ित् (बिजली) आदि विद्याएँ हैं।

(नवम्बर) मुरादाबाद (मार्ग० शुक्ल)

व्याख्यान होने लगे—स्वामीजी बरेली से चलकर मुरादाबाद पधारे और राजा जयकिशनदास की कोठी में ठहरे।

स्वामीजी ने उक्त कोठी में ५-६ व्याख्यान दिये। व्याख्यान सायङ्काल को हुआ करते थे। व्याख्यानों के पश्चात् शङ्का-समाधान के लिए समय दिया जाता था। लोग रात्रि के १०-११ बजे तक अपने सन्देहों की निवृत्ति करते रहते थे। पण्डितों ने शास्त्रार्थ के लिए कोलाहल तो बहुत मचाया, परन्तु सामने कोई न आया।

ब्राह्मण के कटु वचन—एक दिन व्याख्यान हो रहा था कि एक ब्राह्मण ने महाराज को कटु वचन कहने आरम्भ किये कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, इसका मुँह नहीं देखना चाहिए, परन्तु महाराज ने अपनी नैसर्गिक सहिष्णुता से उसकी असभ्योक्तियों पर कुछ ध्यान नहीं दिया और शान्तिपूर्वक व्याख्यान देते रहे।

यज्ञोपवीत दिये—इस बार स्वामीजी ने कई पुरुषों को यज्ञोपवीत भी दिया था और किसी के शङ्का करने पर कहा था कि संन्यासी से यज्ञोपवीत लेना शास्त्रोक्त है।

पादरी से शास्त्रार्थ—इस बार की सबसे अधिक उल्लेख्य घटना स्वामीजी और पादरी डब्ल्यु० पार्कर का शास्त्रार्थ है। पादरी साहब के साथ उनके सहयोगी मिस्टर बेली और रामचन्द्र बोस और थे। यह शास्त्रार्थ १५ दिन तक प्रतिदिन २-३ घण्टे तक होता था और दोनों पक्षों के प्रश्नोत्तर लिखे जाते थे। दुःख है कि शास्त्रार्थ की रिपोर्ट सुरक्षित नहीं रक्खी गई। स्वामीजी ने शास्त्रार्थ में पादरी साहब को निरुत्तर कर दिया था। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि किसी मनुष्य के द्वारा§ ईश्वर और मुक्ति की प्राप्ति मानना मूर्त्तिपूजा से भी बुरा है। एक दिन शास्त्रार्थ का विषय सृष्टि-उत्पत्ति था।

---

§ अर्थात् ईसामसीह के द्वारा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादरी का असमंजस—पादरी साहब को अपने पक्ष के समर्थन में कि सृष्टि को उत्पन्न हुए ५ सहस्र‡ वर्ष हुए, जब असफलता हुई तो उन्होंने पक्ष लिया कि मनुष्य की सृष्टि को ५००० वर्ष हुए† भौतिक सृष्टि उसके पहले से थी, परन्तु स्वामीजी ने इसपर भी आक्षेप किया कि सृष्टि की उत्पत्ति का प्रश्न है जिसमें मनुष्य भी आ गया। इसपर पादरी साहब निरुत्तर हो गये।

मुसलमान डिप्टी कलक्टर का रोष—शास्त्रार्थ में स्वामीजी आदम व हव्वा (ईसाई व मुसलमानों के अनुसार मनुष्यजाति के प्रथम पिता-माता) का नाम आने पर आदमजी और हव्वाजी कहते थे, परन्तु पादरी साहब आदम को पापी बताते थे। इसपर डिप्टी कलक्टर इमदाद अली बिगड़ बैठे। उन्होंने कहा कि स्वामीजी तो उनका नाम सम्मान के साथ लेते हैं और आप इस अपमान के साथ। पादरी साहब ने उत्तर दिया कि मेरा कार्य आदम को पापी कहे बिना नहीं चलता, आप शान्त रहें, यहाँ डिप्टीपन का काम नहीं है।

मुं० इन्द्रमणि का परिचय—मु० इन्द्रमणि का नामोल्लेख पहले हो चुका है। जब स्वामीजी छलेसर से अलीगढ़ गये थे तो वे स्वामीजी से मिलने गये थे। वे मुरादाबाद निवासी वैश्य-कुलोत्पन्न एक व्यक्ति थे। फ़ारसी, अरबी के तो वे पण्डित थे ही, परन्तु संस्कृत में भी प्रवेश रखते थे। अबैदुल्ला नामक, क़स्बा दनत ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर के रहनेवाले, एक खत्री थे जो मुसलमान हो गये थे। मुसलमान होने के पश्चात् उनकी मुसलमानों में बड़ी प्रतिष्ठा हुई और उन्हें मौलवी की पदवी प्राप्त हुई। कहावत है कि नया मुसलमान अल्ला-ही-अल्लाह पुकारता है। मुसलमान हो जाने पर उन्होंने हिन्दू-धर्म पर अत्यन्त कठोर भाषा में आक्षेप करने आरम्भ किये और कई पुस्तकें हिन्दूधर्म के विरुद्ध लिखीं, उनका उत्तर मुंशी इन्द्रमणि ने दिया और वैसी ही तीव्र भाषा में दिया। इससे उनकी ख्याति पश्चिमोत्तर प्रान्त (वर्तमान संयुक्तप्रान्त) में सर्वत्र फैल गई और वे अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। स्वामीजी के संसर्ग में आकर ये उनके अनुयायी हो गये। स्वामीजी भी उनका बहुत मान करते थे। उनके शिष्य थे जगन्नाथदास। गुरु की देखा-देखी वे भी स्वामीजी के विचारों से सहमत हो गये। पीछे आकर मुंशी इन्द्रमणि लोभवश स्वामीजी के विरुद्ध हो गये थे। वे क्यों विरुद्ध हुए थे, इसका वर्णन अपने स्थान पर आएगा। जब गुरु विरुद्ध हुए तो शिष्य भी विरुद्ध हो गये और जब तक जगन्नाथदास जीवित रहे तब तक स्वामीजी और आर्यसमाज के विरुद्ध विष ही उगलते रहे और इसी में अपनी गुरुभक्ति का परिचय देते रहे।

इन्द्रमणि के शिष्य का बेतुकापन—जब देवेन्द्रबाबू ने उनसे स्वामीजी के सम्बन्ध की घटनाओं के विषय में प्रश्न किये तो उन्होंने एक दो अत्यन्त ऊटपटांग बातें इस विषय में उनसे कह डालीं। पहली बेतुकी बात जो उन्होंने कही यह थी कि जब स्वामीजी मुरादाबाद आये तो वह जीव को सृष्ट मानते थे और मुंशी इन्द्रमणि अनादि मानते थे और एक व्याख्यान में स्वामीजी ने उसे सृष्ट ही वर्णन किया था। किसी ने मुंशी इन्द्रमणि से भी कह दिया कि स्वामीजी का जीव के विषय में ऐसा मन्तव्य है। इसपर मुं० इन्द्रमणि स्वामीजी के पास गये और कहा कि मैं जीव के अनादित्व पर सौ प्रमाण दे सकता हूँ। स्वामीजी बोले इस विषय पर

---

‡ पादरी साहब ने ५ नहीं ६ सहस्र वर्ष कहा होगा, क्योंकि बाइबिल के अनुसार गणना करने से ६ सहस्र वर्ष होते हैं। —**संग्रहकर्त्ता**

† पण्डित लेखरामकृत जीवन-चरित में लिखा है कि उसी कोठी में जिसमें शास्त्रार्थ होता था ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन के भी अधिवेशन हुआ करते थे। जब पादरी साहब ने यह पक्ष लिया कि सृष्टि को ५००० वर्ष हुए हैं तो स्वामीजी एसोशिएशन के कमरे से एक बिल्लौर का पत्थर उठा लाये और पूछा कि आप लोग साइंस जानते हैं, यह पत्थर इस रूप में कितने वर्षों में आया होगा तो उत्तर मिला कि कई लाख वर्ष में। इसपर पादरी साहब ने कहा कि मेरा अभिप्राय यह है कि मनुष्य-सृष्टि को ५००० वर्ष हुए हैं। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारी बातचीत फिर होगी। दूसरे दिन जो स्वामीजी ने व्याख्यान दिया तो जीव का अनादित्व प्रतिपादित किया और कहा कि जीव को सृष्ट मानना मुसलमानों का मत है।

जगन्नाथ के बेतुकेपन की समालोचना—ला० जगन्नाथदास को यह सब मिथ्या और युक्तिशून्य बातें कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं हुआ। स्वामीजी के लिए जो आवागमन में विश्वास करते थे, जीव को सृष्ट मानना सम्भव हो ही नहीं सकता और आज उसे सृष्ट बताकर और मुं० इन्द्रमणि के इस कथन से भयभीत होकर कि मैं जीव के अनादित्व के सौ प्रमाण दे सकता हूँ, अगले दिन से ही उसे अनादि बताना स्वामीजी जैसे तार्किक और दार्शनिक व्यक्ति के लिए कभी बन ही नहीं सकता। ऐसा मनुष्य जो आज कुछ कहे और कल कुछ, जनसाधारण पर क्या प्रभाव डाल सकता है ? इन सब बातों के अतिरिक्त इस बात को मुरादाबाद का कोई भी व्यक्ति जिसे स्वामीजी के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, नहीं कहता। फिर सबसे बड़ी बात यह है कि कलकत्ता और प्रयाग में स्वामीजी ने जीव का अनादित्व मुरादाबाद आने से बहुत पहले प्रतिपादित किया था, इसकी हमें असन्दिग्ध साक्षी मिलती है, जैसाकि पाठक देख चुके हैं। इन सब बातों के होते हुए यही कहना पड़ता है कि जगन्नाथदास ने यह बात स्वामीजी के सम्बन्ध में द्वेष से परिचालित होकर ही कही थी।

दुराचारी रईस का निमन्त्रण अस्वीकृत—एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, स्वामीजी से प्राथना की कि महाराज आज आप मेरे गृह पर पधारकर भोजन कीजिए, स्वामीजी ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया, परन्तु उसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने ऐसी ही प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू श्यामसुन्दरदास ने स्वामीजी को उपालम्भ दिया तो उस समय तो उन्होंने कुछ न कहा, परन्तु व्याख्यान में इस घटना का उल्लेक करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा कि जबतक तू कुकर्म न छोड़ेगा हम तेरे घर जाकर भोजन न करेंगे।

ब्राह्मण का गाली प्रदान—एक दिन मुरादाबाद का टीका सुपरिण्टेण्डेण्ट जो ब्राह्मण था व्याख्यान में आया और मूर्त्तिपूजा का खण्डन सुनकर इतना आवेश में आया कि स्वामीजी को गालियाँ देने लगा और यह कहकर कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है इसका मुख न देखना चाहिए चला गया। स्वामीजी ने उसकी गालियों पर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया।

चक्राङ्कित की धूर्त्तता—एक दिन एक चक्राङ्कित व्याख्यान के बीच में ही **'आकृष्णेन रजसा०'** आदि मन्त्र पढ़कर कहने लगा कि दयानन्द ! इसका अर्थ बता। लोगों ने उसे बहुतेरा समझाया कि व्याख्यान के पश्चात् जो चाहो वह पूछ लेना, व्याख्यान में विघ्न मत डालो, परन्तु वह न माना। अन्त को स्वामीजी ने दुर्जनतोष-न्याय के अनुसार मन्त्र का अर्थ भी कर दिया, फिर भी वह बक-बक करता ही रहा। जब देखा कि यह किसी प्रकार चुप ही नहीं होता तो महाराज ने उससे कहा कि यदि मेरा अर्थ ठीक नहीं हैं तो तुम ही अर्थ बताओ। इसपर उसके दीपक ठण्डे हो गये, क्योंकि वह वास्तव में निरक्षर भट्टाचार्य था। वहाँ अर्थ कौन करता ?

सुरापायी का सुरा-त्याग—महाशय रामदयालसिंह रईस कुन्दरकी, जिला मुरादाबाद को सुरापान का व्यसन था। महाराज ने एक दिन व्याख्यान में सुरापान के दोष ऐसे मर्मभेदी शब्दों में दर्शाये कि उन्होंने उसके त्याग का प्रण कर लिया और अत्यन्त शारीरिक कष्ट सहने पर भी उसे मरणपर्यन्त निबाहा। वह अपने अन्तिम श्वास तक आर्य-धर्म के सेवक रहे।

साधना का उपदेश—महाशय बख्शीराम के आग्रहपूर्वक योग के साधन पूछने पर महाराज ने उन्हें यह अभ्यास बताया था, जिसके विषय में उन्होंने कहा था कि मैंने भी किया है—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओम् भूः ओम् भुवः ओम् स्वः ओम् महः ओम् जनः ओम् तपः ओम् सत्यम् ।
तत्सवितुर्वेरण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।
ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ।

इसका अभ्यास करके बख्शीरामजी ने परम शान्ति लाभ की ।

मुरादाबाद से स्वामीजी बरेली गये और वहाँ से कर्णवास गये ।

(दिसम्बर) छलेसर (पौषकृष्ण)

कर्णवास से दिसम्बर सन् १८७६ में स्वामीजी छलेसर पधारे । अतरौली रेलवे स्टेशन पर उतरे । वहाँ पहले से ही ठाकुर मुकुन्दसिंह आदि उनके स्वागत को पंहुँच गये थे ।

पाठशाला का वृत्तान्त—पण्डित कुमारसेन पाठशाला से संवत् १९३१ में चले गये थे और उसके स्थान पर पण्डित दिनेशराम अध्यापक नियत हो गये थे । वे संवत् १९३४ तक पाठशाला में अध्यापन का कार्य करते रहे । पाठशाला से अधिक लाभ न हुआ । विद्यार्थी वैदिक ग्रन्थों को पढ़कर भी लोभवश पाखण्ड में फँस गये, अतः स्वामीजी ने स्वयं ही पाठशाला तोड़ दी । यह पाठशाला ७ वर्ष तक चली और इसका समस्त व्यय-भार ठाकुर मुकुन्दसिंह ने ही वहन किया ।

१ जनवरी सन् १८७७ से दिल्ली में लार्ड लिटन का दरबार होनेवाला था । उसमें भारतवर्ष के समस्त राजगण उपस्थित होने को थे । महाराज ने भी वहाँ वेदोपदेश का सुयोग समझा, अतः वहाँ जाने की इच्छा प्रकट की, अतः ठाकुर मुकुन्दसिंह ने दिल्ली में गाड़ी, घोड़े, डेरे आदि भेज दिये और दिल्ली से दक्षिण की ओर अवध नरेशों के कैम्प के पास एक वनवाटिका में उनके निवास का प्रबन्ध कर दिया ।

स्वामीजी छलेसर ७ दिन के लगभग रहे । छलेसर से अलीगढ़ आये और वहाँ से दिल्ली चले गये ।§

(१७ दिसम्बर ७६—१६ जन० ७७) दिल्ली (पौष सु० २—माघ सु० २)

दिल्ली दरबार—जनवरी सन् १८७७ से दिल्ली में लार्ड लिटन गवर्नर जनरल व वायसराय ने एक बहुत बड़ा दरबार किया था, जिसमें भारतवर्ष के सब राजा, महाराजा, नवाब, गवर्नर, लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर आदि सम्मलित हुए थे । वह दरबार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के बल और वैभव की प्रदर्शिनी था । स्वामीजी भी उस अवसर पर इस अभिप्राय से पधारे थे कि वह अवसर भारत के राजा-महाराजाओं से मिलकर धर्मप्रचार के कार्य को अग्रसर करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होगा । यह भी कहा जाता है कि दिल्ली दरबार के अवसर पर महाराजा इन्दौर ने उन्हें निमन्त्रित किया था । ठाकुर मुकुन्दसिंह व कर्णवास के रईस ठाकुर गोपालसिंह, भूपालसिंह, किशनसिंह आदि श्रीमहाराज की सेवा के लिए उनके साथ दिल्ली गये थे । महाराज के निवास के लिए अजमेरी दरवाज़े से पश्चिम-दक्षिण की ओर कुतुब की सड़क पर शेरमल का अनारबाग़ स्थिर किया गया था । दिल्ली पहुँचकर महाराज उसी बाग़ में ठहरे । इसी बाग़ के आस-पास अवध के ताल्लुक़ेदारों तथा महाराजा काश्मीर के भी कैम्प थे । स्वामीजी के साथ पं० भीमसेन थे और मुरादाबाद निवासी मुं० इन्द्रमणि भी आये थे । दरबार में ब्राह्मसमाज नव्यविधान के प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्रसेन तथा राजा जयकृष्णदास सी०एस०आई०, अलीगढ़ के मुसलिम नेता और सुधारक सर सैयद अहमदखाँ, मुंशी

---

§ ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पत्रसंख्या १४ (पृष्ठ ४७) से ज्ञात होता है कि वे पौष सुदी २ रविवार सं० १९३३ तदनुसार १७ दिसम्बर १९७६ को देहली पधारे थे ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कन्हैयालाल अलखधारी प्रभृति गये थे।

विज्ञापन-वितरण—स्वामीजी के निवास-स्थान के द्वार पर एक बोर्ड लगा दिया गया था, जिसपर ये शब्द लिखे हुए थे, "स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास-स्थान"। स्वामीजी ने दरबार के सब कैम्पों के दरवाज़ों पर नोटिस लगवा दिये थे और राजा-महाराजाओं के पास भी पहुँचवा दिये थे कि अपने पण्डितों को एकत्र करके सत्यासत्य के निर्णय करने का यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर है। यह नोटिस दिल्ली नगर और दरबार शिविर में सर्वसाधारण में भी बँटवाये गये थे। महाराज के पधारने की सारे दरबार में धूम मच गई थी और नित्यप्रति १०-१२ पण्डित स्वामीजी के पास आते और धर्म-चर्चा करते रहते थे।

यह मिट्टी श्रीकृष्णजी ने खाई थी—एक दिन मथुरा का एक चौबा महाराज के पास आया और 'जय जय राधाकृष्ण' कहकर बैठ गया। फिर उसने थोड़ी-सी मिट्टी उन्हें देनी चाही। उन्होंने पूछा यह कैसी मिट्टी है तो उसने कहा कि यह मिट्टी श्रीकृष्णजी ने खाई थी। महाराज ने कहा कि खाई होगी, बच्चे मिट्टी खाया ही करते हैं, परन्तु बड़े आयु के मनुष्यों को तो मिट्टी खाना योग्य नहीं।

चौबे का क्रोध—फिर स्वामीजी ने उससे कहा कि तुम्हारी स्त्री सुरूपा और चतुर है। इसपर वह क्रोध करने लगा तो स्वामीजी ने उससे कहा कि तुम छोटी स्थिति के मनुष्य हो, तुमने इस बात पर-कितना बुरा माना। यदि तुम श्रीकृष्ण से कहते कि आप पर-स्त्रीगमन करते हैं और आपकी गोपियाँ कैसी सुन्दर हैं, तो वे तुम्हारे साथ क्या बर्त्ताव करते। यह सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और उठकर चला गया।

ईरानी मौलवी निरुत्तर—एक दिन एक ईरानी मौलवी स्वामीजी के पास आया जो केवल फ़ारसी बोलता था। एक दिन एक अन्य मौलवी आया जिसके साथ अरब के भी चार मुसलमान थे, जो केवल अरबी बोलते थे। इन सबसे धर्मविषय में स्वामीजी की बातचीत हुई थी। स्वामीजी ने उनके प्रश्नों के ऐसे युक्तियुक्त उत्तर दिये कि वे निरुत्तर हो गये।

अवध के कतिपय ताल्लुक़ेदार स्वामीजी के पास आया करते थे और शंका निवारण करके चले जाया करते थे।

महाराजा इन्दौर से साक्षात्—महाराजाओं में से केवल महाराजा तुकोजीराव होल्कर से स्वामीजी का साक्षात् हुआ, अन्य कोई महाराजा उनके पास नहीं आया। स्वामीजी यदि स्वयं महाराजाओं के पास जाते तो सबसे मिल सकते थे, परन्तु वे ऐसा करनेवाले न थे।

महाराजा को पण्डितों ने नहीं मिलने दिया—काश्मीर-नरेश महाराजा रणवीरसिंह स्वयं स्वामीजी से मिलने के इच्छुक थे और इसी अभिप्राय से उन्होंने अपने मन्त्री नीलाम्बरबाबू और दीवान अनन्तराम को स्वामीजी की सेवा में भेजा भी था। इन दोनों महानुभावों ने स्वामीजी से मिलना स्वीकार कर लिया, परन्तु पण्डितों के सिखाने-बहकाने से वे स्वामीजी से न मिले। पं० गणेशशास्त्री ने जो जम्मू में धर्मशास्त्र के जज थे, पं० लेखराम से फ़रवरी सन् १८८७ में यह स्वीकार किया था कि महाराजा रणवीरसिंह की स्वामीजी से मिलने की इच्छा थी, परन्तु हम लोगों ने नहीं मिलने दिया था। जब स्वामीजी लाहौर गये तो उस समय भी महाराजा ने स्वामीजी को श्रीनगर बुलाने का विचार प्रकट किया था, परन्तु तब भी इन्हीं शास्त्री महोदय ने यह कहकर कि यदि आप दयानन्द को बुलाना चाहते हैं तो पहिले देव-मन्दिरों को गिरवा दीजिए, उन्होंने स्वामीजी को निमन्त्रित करने से रोक दिया, परन्तु ईश्वर-गति देखिए कि सन् १८९२ में जब काश्मीर में आर्यसमाज का पौराणिकों से बहुत बड़ा शास्त्रार्थ हुआ था तो इन्हीं गणेशशास्त्री ने महाराजा प्रतापसिंह से जम्मू में स्पष्ट कह दिया कि महाराज ! वेद में तो मूर्त्तिपूजा है नहीं।

स्वामीजी की इच्छा पूरी न हो सकी—स्वामीजी की यह प्रबल इच्छा थी कि एक बार सब राजे-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराजे एकत्र होकर हमारा व्याख्यान सुन लें और महाराजा तुकोजीराव ने सबको एक सभा में एकत्र करने का वचन भी दिया था, परन्तु उन्होंने प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया वा वह नहीं कर सके और स्वामीजी की यह इच्छा पूरी न हो सकी। इस प्रकार उनका दिल्ली दरबार में जाना एक अर्थ में असफल ही रहा, क्योंकि यही उनके दरबार में जाने का मुख्य अभिप्राय था।

सुधारकों की सभा—स्वामीजी ने यह भी प्रयत्न किया था कि उस समय के सब सुधारकगण आपस में मिलकर कार्य करें, जिससे सुधार के कार्य में अधिक सफलता हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने एक दिन अपने निवास-स्थान पर एक कान्फ्रेंस की। जिसमें मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बा० नवीनचन्द्र राय, बाबू केशवचन्द्रसेन, मुंशी इन्द्रमणि, सर सैयद अहमदखाँ, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि सम्मिलित हुए। स्वामीजी ने उसमें कहा कि यदि हम सब लोग एकमत हो जाएँ और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि देश शीघ्र सुधर सकता है। स्वामीजी यह चाहते थे कि सब लोग वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार कर लें और वेदों के अनुकूल ही धर्म-प्रचार का कार्य करें, परन्तु इसपर सब सहमत न हुए।

वेदों में मांसभक्षण नहीं है—ठाकुर गोपालसिंह आदि से स्वामीजी ने कहा था कि हमने चारों वेद देख लिये हैं, परन्तु उनमें कहीं भी मद्य-मांस-भक्षण का विधान नहीं है, अतः ये दोनों वस्तुएँ त्याज्य हैं।

दो और विज्ञापन—दिल्ली से स्वामीजी ने दो विज्ञापन, जिनमें से एक वेदभाष्य के विषय में था§ और दूसरे में आर्यसमाज के नियम थे 'इंडियन मिरर' कलकत्ता व 'हिन्दू-बाँधव' लाहौर तथा अन्य समाचार-पत्रों को भेजे थे। पहले विज्ञापन में यह सूचना थी कि वेदभाष्य अमुक रीति से किया जाएगा, और वह मासिक अङ्कों के रूप में प्रकाशित किया जाएगा, जिनका वार्षिक मूल्य ४॥) होगा और वह काशी की लाज़रस कम्पनी को व स्वामीजी को लिखने से प्राप्त हो सकेगा। उसमें यह भी उल्लेख था कि जब लोग इस वेदभाष्य को पढ़ेंगे तब लोगों को वेद का सत्यार्थ ज्ञात होगा और उनपर प्रकट हो जाएगा कि वेदों में केवल एक, अद्वितीय, निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक सर्वज्ञ, अजन्मा, अजर, अमर सच्चिदानन्द आदि गुणविशिष्ट परमेश्वर की ही पूजा-उपासना का विधान है, भौतिक पदार्थों वा अनेक देवी-देवताओं की उपासना वा मूर्त्तिपूजा, अवतार आदि का लवलेश भी नहीं है। यह विज्ञापन दिल्ली नगर व दरबार में आये हुए लोगों में भी बाँटे गये थे। इन विज्ञापनों को लाज़रस कम्पनी काशी के छापेखाने में छपवाने के लिए स्वामीजी ने बरेली से ही बनमाली बाबू को काशी भेज दिया था और उन्हीं को वेदभाष्य के अङ्कों को शुद्ध कराके छपवाने का काम सौंप दिया था। स्वामीजी हिन्दी भले प्रकार नहीं जानते थे और हिन्दी का अंश पण्डितों का किया हुआ था, अतः बनमाली बाबू को उसे शुद्ध कराने के लिए काशी में किसी-किसी पण्डित के पास जाना पड़ता था, इसी से विज्ञापनों के छपाने में विलम्ब हो गया था। स्वामीजी की यह आज्ञा थी कि वेदभाष्य के १००० अंक और १००० विज्ञापन साथ-साथ दिल्ली भेजे जावें। बिना वेदभाष्य के अङ्कों के विज्ञापनों को भेजना व्यर्थ होता। जब ये दोनों वस्तुएँ न आईं तो स्वामीजी ने दिल्ली से उनके शीघ्र भेजने के लिए पत्र लिखा।‡

एक दिन स्वामीजी के डेरे पर एक बाज़ीगर ने अपने करतब दिखलाये। स्वामीजी ने पण्डित भीमसेन से कहा कि इससे कोई वस्तु मँगाओ। पण्डित ने उससे आम मँगाने को कहा, परन्तु वह न मँगा सका, परन्तु एक स्लेट पर स्वामीजी तथा अन्य कई लोगों के हस्ताक्षर कराकर उस स्लेट को तोड़कर फिर जोड़ दिया, ऐसे ही एक अँगूठी को तोड़कर जोड़ दिया।

---

§ यह विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ ३९-४७ तक छपा है। इसमें कई वैदिक कथाओं का वास्तविक स्वरूप दर्शाया गया है।

‡ देखो ऋषि का पत्रव्यवहार, पत्रसंख्या १४ पृष्ठ ४७।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मरा हुआ जल-मानस—मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी को स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश, वेदविरुद्धमत-खण्डन, पञ्चमहायज्ञविधि, नित्यकर्मव्यवहार और आर्याभिविनय की प्रतियाँ दी थीं। मुंशीजी की उपस्थिति में ही एक मनुष्य एक मरा हुआ जल-मानस दिखाने लाया था जिसका नीचे का आधा शरीर मछली और ऊपर का आधा शरीर, मुख और हाथ मनुष्य के आकार के थे।

पंजाब पधारने का निमन्त्रण—सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया व पं० मनफूल कोहेनूर प्रेस के स्वामी, मुंशी हरसुखराय तथा मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी स्वामीजी के पास बहुत आया करते थे। इन सज्जनों ने स्वामीजी से पंजाब में पधारने की प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। महाराजा डुमराऊँ भी एक से अधिक बार स्वामीजी के पास आये और शङ्कानिवृत्ति करके चले गये।

(१६ जन० ७७—१५ फर०) मेरठ (माघ सु० २—फा० सु० २)

१६ जनवरी सन् १८७७ को स्वामीजी दिल्ली से मेरठ पधारे और सूर्यकुण्ड के पास डिप्टी महताबसिंहवाली कोठी में ठहरे। इसे बब्बूवाली कोठी भी कहते थे। यह कोठी मेरठ के एक कलक्टर प्लौडन साहब की स्मृति में यूरोपियन लोगों के ठहरने के लिए बनाई गई थी, अतः उसमें कभी-कभी गोरे आकर दिक़ (तंग) करते थे। स्वामीजी उसमें १० दिन के लगभग ठहरे और फिर लेखराज के बाग़ में चले गये।

मुंशी इन्द्रमणि का आगमन—स्वामीजी के मेरठ पधारने से पहले मुंशी इन्द्रमणि और उनके शिष्य जगन्नाथदास मुरादाबाद जाते हुए मेरठ आये थे और इस जीवन-चरित्र के सम्पादक के गृह पर ठहरे थे, कारण यह था कि जगन्नाथदास सम्पादक के पिताजी के दूर के सम्बन्धी थे। प्रशंसित मुंशीजी से ही यह ज्ञात हुआ था कि स्वामीजी मेरठ पधारनेवाले हैं। स्वामीजी के साथ उस समय एक रसोइया और एक काला कुत्ता था।

पण्डित की डींग—इस बार स्वामीजी का कोई व्याख्यान नहीं हुआ, परन्तु डेरे पर जो कोई आता था उससे धर्मालाप करते थे। बहुत-से लोग उनकी सेवा में जाते थे। एक दिन इस ग्रन्थ के सम्पादक के दूसरे मुहल्ले के निद्धी नामक पण्डित जो अधिक विद्वान् तो न थे, परन्तु अपने बराबर दूसरे को विद्वान् नहीं समझते थे, कई मनुष्यों को साथ लेकर और पुस्तकों की एक गठरी बाँधकर यह डींग मारकर कि आज मैं उस नास्तिक को शास्त्रार्थ में परास्त करके आऊँगा, स्वामीजी के पास गये। स्वामीजी उस समय बैठे हुए थे। कई लोग उनके पास उपस्थित थे और उपदेश-श्रवण में मग्न थे। निद्धी पण्डित की टोली भी पहुँची, जिसके आगे पण्डितजी और पीछे उनके अनुयायी थे। सम्पादक के पिताजी, पण्डित गंगाप्रसाद एम०ए० आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् और अंग्रेज़ी की प्रसिद्ध पुस्तक Fountain head of Religions आदि के रचयिता के पितामह स्वर्गीय लाला फ़क़ीरचन्द तथा एक अन्य सज्जन स्वर्गीय लाला शिवलालजी भी उपस्थित थे।

विचित्र मुस्कान, पण्डित की घिग्घी बँध गई—स्वामीजी में यह अद्भुत शक्ति थी कि वे मनुष्य की भाव-भंगी, चाल-ढाल से जान जाते थे कि वह किस योग्यता का है। स्वामीजी निद्धी पण्डित को देखते ही ताड़ गये कि वह कितने पानी में हैं और उनके आने का क्या अभिप्राय है। निद्धी पण्डित के कमरे में प्रविष्ट होते ही स्वामीजी ने विचित्र ढंग से मुस्कराते हुए पूछा कि कहिए पण्डितजी कैसे आना हुआ ? इसके उत्तर में जो कुछ पण्डितजी ने कहा वह किसी की भी समझ में न आया, पण्डितजी की घिग्घी-सी बँध गई और एक अक्षर भी उनके मुख से स्पष्ट न निकला। यह दृश्य देखकर सब लोग हँस पड़े और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितजी लज्जित होकर फिट्टे मुँह वापस चले गये।

(१५ फर०—११ मार्च) सहारनपुर (फा० सु० २—चै० कृ० १२)

१५ फ़रवरी सन् १८७७ को स्वामीजी मेरठ से सहारनपुर पधारे और पनचक्की के पास लाला कन्हैयालाल के शिवालय के एक मकान में ठहरे।

मुंशी चण्डीप्रसाद अम्बहटा निवासी ने स्वामीजी से कुछ प्रश्न किये, उनके जो उत्तर स्वामीजी ने दिये उनका सारांश नीचे लिखा जाता है—

"वेदशास्त्र के अनुसार केवल परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए। विद्या प्राप्त करके मन की शुद्धि करनी चाहिए और सत्यव्यवहारपूर्वक जीविका करनी चाहिए। भूत, प्रेत, जिन्न, परी आदि का कोई अस्तित्व नहीं है, यह केवल लोगों का भ्रम है। मरने के पश्चात् जीव वायु में रहता है। पुनर्जन्म अवश्य होता है और स्वर्ग, नरक सब जगह हैं। सृष्टि उत्पन्न करना परमेश्वर का स्वभाव है। जैसे आँख का काम देखना और कान का सुनना है, ऐसे ही परमेश्वर का काम सृष्टि उत्पन्न करना है। पुरुष का विवाह २४ वर्ष की आयु में और स्त्री का १६ वर्ष की आयु में होना चाहिए और स्त्री को अपनी इच्छा के अनुसार विवाह करना चाहिए, क्योंकि स्त्री-पुरुष को सारी आयु साथ-साथ बितानी होती है। जब स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे के रंग-रूप, चाल-चलन आदि को देखकर विवाह करेंगे तो उनमें कभी अप्रीति न होगी। विधवा का पुनर्विवाह होना चाहिए और पुरुष को एक स्त्री के जीवित होते हुए दूसरा विवाह न करना चाहिए। विधुर पुरुष को अधिकार है कि दूसरा विवाह करे या न करे, ऐसे ही विधवा को भी पुनर्विवाह करने का अधिकार है। मनुष्य के गुरु माता-पिता आदि हैं, आजीवन उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी योग्य है। यदि कोई ब्राह्मण, वैश्य आदि धर्म से पतित होकर ईसाई, मुसलमान हो जाए और फिर पश्चात्ताप करके वैदिक धर्म में वापस आना चाहे तो उसे अवश्य वापस ले-लेना चाहिए। परमेश्वर सर्वव्यापक है, जो ज्ञानी अपने हृदय के मल को दूर कर देते हैं, उन्हें वह दिखाई देता है, परन्तु अज्ञानियों की दृष्टि से वह अवश्य दूर रहता है। ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे, प्रत्युत चारों वेद उनके मुख में थे। यदि उनके चार मुख होते तो वह सो भी न सकते। चारों वेद उनको कण्ठस्थ थे, मूर्खों ने उनके चार मुख गढ़ लिये। वर्ण गुण-कर्म के अनुसार होना चाहिए। यदि कोई चमार, भंगी, कसाई विद्या प्राप्त कर ले तो वह उच्च वर्ण का हो सकता है, परन्तु इस कारण से कि उसका बहुत दिनों तक अशुद्धाहार-व्यवहार करनेवाले में भरण-पोषण हुआ है उसके शरीर की शुद्धि नहीं होती, ब्राह्मण को उसका विवाह अपनी पुत्री से नहीं करना चाहिए। द्विरागमन (मुकलावा वा गौना) की रीति सर्वथा व्यर्थ है। दीपावली, होली आदि के उत्सव युक्तिसंगत ढंग से मनाने चाहिएँ। स्त्रियों को भी विद्या पढ़नी चाहिए, क्योंकि बिना विद्या के मनुष्य पशु के समान रहता है। जन्मपत्र नहीं वह शोकपत्र है, ज्योतिषी खोटी दशा बताकर कुछ-न-कुछ रुपया ऐंठ लेता है, बुद्धिमान् लोगों को ऐसी बातों को नहीं मानना चाहिए। स्त्रियों को पर्दे में रखना अनुचित है, यह नहीं है कि बिना पर्दे के स्त्रियाँ सदाचारिणी नहीं रह सकतीं, पर्दे में भी पाप होते हैं। बिना विद्या-प्राप्ति के सदाचारी नहीं हो सकता। पर्दा मुसलमान राजाओं के समय में प्रचरित हुआ, क्योंकि वे जिस किसी की बहू-बेटी को रूपवती देखते थे उसे छीनकर बलात् लौंडी बना लेते थे। इस अत्याचार के कारण हिन्दुओं ने अपनी बहू-बेटियों को पर्दे में रखना आरम्भ कर दिया। अँग्रेजों की स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं और हिन्दुओं की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती, विदुषी, साहस और उच्चाशयवाली होती हैं।"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तिल धरने की जगह न थी, व्याख्यान के कारण आरती बन्द—सहारनपुर में स्वामीजी का पहला व्याख्यान चित्रगुप्त के मन्दिर में हुआ। व्याख्यान का विषय था 'आर्य कौन है और कहाँ है', दूसरा और तीसरा व्याख्यान भी उसी स्थान पर हुआ। दूसरे व्याख्यान का विषय 'सत्य' और तीसरे का 'सृष्ट्युत्पत्ति' था। श्रोताओं की वह भीड़ होती थी कि मन्दिर में तिल धरने को जगह न रहती थी। छत और कमरे के दरवाज़े तक श्रोताओं से भर जाते थे। तीन-तीन चार-चार घण्टों तक व्याख्यान होते थे। नगर के गण्यमान्य व्यक्ति व्याख्यान सुनने जाते थे। मूर्त्ति की पूजा और आरती तक न हो पाती थी। मन्दिर का पुजारी बहुतेरा कहता कि पूजा का समय हो गया है व्याख्यान बन्द होना चाहिए, परन्तु उस बेचारे की कोई न सुनता। हर एक श्रोता के मुख से वाह-वाह निकलती थी, लोगों को स्वामीजी की विद्या, बुद्धि और वाग्मिता पर आश्चर्य होता था।

दुखी-सुखी का दृष्टान्त—एक व्याख्यान में 'सुखी कौन है और दुखी कौन है', इसकी व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने यह दृष्टान्त दिया था कि एक धनाढ्य महाजन था। उसका एक मुक़द्दमा अदालत में चल रहा था। मुक़द्दमें की पेशी की तारीख से कई दिन पहले से उसे इस चिन्ता ने आ घेरा कि देखें उस दिन क्या हो। इस चिन्ता के कारण उसे नींद तक न आती थी उसके नौकर-चाकर अपना-अपना काम करके चले जाते और निश्चिन्त होकर सुख की नींद सोते, परन्तु वह सारी रात पलँग पर करवटें बदलता रहता। पेशी के दिन वह पालकी में बैठकर अदालत में गया, कहार तो पालकी रखकर चिलम पीने लगे, उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी, परन्तु महाजन चिन्तित और उदास ही रहा। इससे सिद्ध होता है कि धन में सुख नहीं है।

एक व्याख्यान में स्वामीजी ने यह कहा कि कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसे कोई बन्धन न हो। यह विचार मूर्खों का है कि हम किसी बन्धन में नहीं हैं। धर्म का बन्धन अन्य बन्धनों की अपेक्षा अच्छा है।

पुजारी की मानरक्षा—इसके पश्चात् यह देखकर कि मन्दिर में व्याख्यान होने से पूजा नहीं होने पाती, यह निश्चय हुआ कि महाराज के व्याख्यान उनके निवास-स्थान पर ही हुआ करें। फिर वहाँ ही कई व्याख्यान हुए। वहाँ भी पुजारियों और ब्राह्मणों ने मन्दिर के स्वामी से शिकायत की। उसने स्वामीजी से अत्यन्त सभ्यता और नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं और यह मन्दिर है, यदि आप किसी अन्य स्थान पर चले जाएँ तो बड़ा अनुग्रह हो। इसपर स्वामीजी पास के ही रामबाग़ में चले गये और वहाँ उनके व्याख्यान होते रहे। स्वामीजी के पास अनेक लोग शङ्कानिवृत्ति के निमित्त आया करते थे। वे उनकी शङ्काओं का समाधान ऐसी उत्तम रीति से करते थे कि उन्हें पूरा सन्तोष हो जाता था। मन्दिर में अवस्थिति के दिनों में धूर्त्त लोग उन्हें दिक़ करने के अभिप्राय से बहुत ज़ोर से घण्टे-घड़ियाल बजाते और कोलाहल मचाते, परन्तु वे कुछ परवाह न करते।

दो पण्डित परास्त—एक दिन सहारनपुर के प्रसिद्ध भागवती पण्डित बलदेव व्यास शास्त्रार्थ करने आये, परन्तु थोड़ी ही देर में निरुत्तर हो गये। तब कई ब्राह्मण, साधुओं ने दीवानदास के पास जिनकी विद्या की बहुत प्रसिद्धि थी, जाकर कहा कि एक क्रिस्तान ऐसा आया है जो किसी को बोलने नहीं देता, आप उससे शास्त्रार्थ कीजिए। पहले तो वह शास्त्रार्थ करने पर सहमत न हुए, परन्तु जब ब्राह्मणों ने बहुत आग्रह किया तो वह स्वामीजी के पास गये। उनकी भी वही गति हुई जो बलदेव व्यास की हुई थी।

११ मार्च को स्वामीजी नौकरों और पण्डित भीमसेन को सहारनपुर छोड़कर केवल बङ्गालीबाबू को साथ लेकर शाहजहाँपुर चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(१३ मार्च—१५ मार्च) शाहजहाँपुर (चै० कृ० १४—च० कृ० ३०)

चाँदापुर का मेला—शाहजहाँपुर जाने का कारण यह था कि चाँदापुर ज़िला शाहजहाँपुर के ज़मींदार मुंशी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद कायस्थ थे। ये दोनों सहोदर थे। इनके पिता कबीरपन्थी थे और दोनों भी उसी मत के अनुयायी थे, परन्तु ज्येष्ठ भ्राता मुंशी मुक्ताप्रसाद के विचार स्वामीजी के सिद्धान्तों की ओर झुक गये थे, अतः दोनों भाइयों में धर्म के विषय में मतभेद हो चला था और आपस में वाद-विवाद रहने लगा था। दोनों में यह परामर्श हुआ कि एक मेला किया जावे, जिसमें सब धर्मों के प्रसिद्ध नेताओं को एकत्र किया जाए और वे अपने-अपने पक्ष को सिद्ध करें, जिससे यह ज्ञात हो सके कि सत्य ईश्वरीय धर्म कौन-सा है। मेला करना निश्चित हो गया। मुसलमानी मत के प्रतिनिधि की स्थिति से देवबन्द ज़िला सहारनपुर के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मद क़ासिम को और ईसाई मत के प्रतिनिधि की स्थिति से बरेली के प्रसिद्ध पादरी जे०टी० स्काट को और आर्यधर्म के प्रतिनिधि की स्थिति से स्वामीजी को निमन्त्रित किया गया। पहले तो स्वामीजी मेले में जाने पर सहमत न हुए और उन्होंने लिख भेजा कि यदि शास्त्रार्थ कम-से-कम दो सप्ताह तक हो तो हम आ सकते हैं। इनके उत्तर में मेला-संस्थापकों ने लिखा कि हम दो सप्ताह का तो नहीं एक सप्ताह का प्रबन्ध कर सकते हैं, आप अवश्य पधारें और ५०) रु० मार्गव्यय स्वामीजी के पास भेज दिया। लोगों के आग्रह करने पर स्वामीजी ने मेले में जाना स्वीकार कर लिया, परन्तु मार्ग-व्यय लौटा दिया और उत्तर लिख दिया कि हम १५ मार्च को चाँदापुर पहुँच जाएँगे और आप मुरादाबाद से मुंशी इन्द्रमणि को अवश्य बुला लें§। १५ मार्च सन् १८७७ को वे चाँदापुर चले गये।

(१५ मार्च—२२ मार्च) चाँदापुर (चै० कृ० ३०—चै० शु० ८ सं० ३४)

शास्त्रार्थ चाँदापुर—इस मेले का नाम 'मेला ब्रह्म-विचार' रक्खा गया था और १६ मार्च से २३ मार्च तक उसका समय नियत किया गया था। मेला-भूमि में डेरे तम्बू आदि लगा दिये गये थे। आगन्तुकों के सुभीते के लिए खाद्य पदार्थों की दुकानों आदि का भी प्रबन्ध था। मेला संस्थापकों ने मेले के विज्ञापन नगर-नगर में भेज दिये थे और आर्यधर्म, ईसाई और मुसलमानी मत के मुख्य उपदेशकों को भी निमन्त्रित किया था तथा उनके ठहरने, आहार-पानादि का भी हर एक प्रकार से सुप्रबन्ध कर दिया था।

---

§ दयानन्दप्रकाश में इस मेले के विषय में ऐसा लिखा है कि पादरी लोग चाँदापुर में ईसाई धर्म का प्रचार करने जाया करते थे। उनका कबीरपन्थियों से वाद-विवाद हुआ करता था। एक बार मुंशी प्यारेलाल ने पादरियों के परामर्श से धार्मिक विषयों पर विचार करने के लिए चाँदापुर में 'ब्रह्म-मेला' लगाया। उसमें पादरियों, मौलवियों और कबीरपन्थियों में ईश्वर के विषय में वाद-विवाद होता रहा। एक वर्ष मेले की समाप्ति पर यह प्रसिद्ध हो गया कि विचार में कबीरपन्थियों की हार और मुसलमानों की जीत रही। इसके पश्चात् मुंशी प्यारेलाल के भाई मुंशी मुक्ताप्रसाद जब कभी चादाँपुर के आस-पास के गांवों में कार्यवश जाते तो मुसलमान उन्हें छेड़ते और कहते कि अब तो इस्लाम की सचाई सिद्ध हो गई, अब आप इस्लाम क्यों स्वीकार नहीं करते ? इसपर दोनों भाइयों ने यह परामर्श किया कि मेले में हिन्दू, ईसाई और मुसलमानी धर्म के प्रतिनिधियों को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया जाए। तदनुसार उन्होंने हिन्दू-धर्म के प्रतिनिधि की स्थिति से मुंशी इन्द्रमणि को बुलाया। मुंशी ने कहा कि मैं तो आ जाऊँगा, परन्तु आप स्वामी दयानन्द सरस्वती को और बुला लें। इसी पर उन्होंने स्वामीजी को मेले में पधारने का निमन्त्रण दिया था। मुंशीजी स्वामीजी के साथ सहारनपुर से चाँदापुर गये थे।

यह वर्णन ठीक प्रतीत नहीं होता। मुंशी इन्द्रमणि स्वामीजी के साथ चाँदापुर नहीं गये थे, बल्कि स्वामीजी के पहुँचने के पश्चात् चाँदापुर पहुँचे थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कबीरपन्थ के सिद्धान्त—१८ मार्च की रात्रि में मुंशी प्यारेलाल-संस्थापक तथा बाबू लेखराज स्कूल-मास्टर सहारनपुर, स्वामीजी के डेरे पर आये और बाबू लेखराज ने कबीरपन्थ के सिद्धान्तों का वर्णन किया कि काया में जो वीर अर्थात् आत्मा है वही कबीर है, आत्मा ही परमात्मा है, कबीर परमेश्वर का ही नाम है। जैसे अन्य भाषाओं में परमेश्वर के नाम हैं, वैसे ही कबीर हिन्दी भाषा में उसका नाम है। बाबू लेखराज ने यह दोहा पढ़ा—

कक्का केवल ब्रह्म है बब्बा विशन शरीर ।
रा रा सबमें रम रहा ता का नाम कबीर ॥

ब्रह्म शब्दरूप है। कबीर साहब की पोथी विवेकसार ईश्वरीय पुस्तक है। उपासना की विधि सुरत शब्द में ध्यान लगाना है, परन्तु उसमें अन्तःकरण की भावना होनी चाहिए।

उक्त सिद्धान्तों का खण्डन—इसपर स्वामीजी ने बाबू लेखराज के उद्धृत दोहे के सम्बन्ध में कहा कि इस प्रकार किसी भी शब्द के एक-एक अक्षर के अर्थ कल्पित किये जा सकते हैं। बाबू लेखराज ने कहा कि कबीर शब्द से हम ईश्वर का ग्रहण इसलिए करते हैं कि उसके अर्थ 'बड़े' के हैं§। तब स्वामीजी ने मुंशी इन्द्रमणि से पूछा कि और कोई शब्द ऐसा है जिसके अर्थ इससे भी अधिक बड़े के हों ? तो उन्होंने कहा कि अकबर शब्द है, जिसके अर्थ सबसे बड़े के हैं।

फिर स्वामीजी ने उनके कथन का खण्डन किया और कहा कि यह आवश्यक है कि ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य को मानव सृष्टि के आरम्भ में ही दिया जाए, अन्यथा उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता और वह पशुवत् रहता। जैसेकि यदि किसी बालक को जन्मकाल से ही मनुष्यों से सर्वथा अलग किसी जंगल में रक्खा जाए तो वह पशु के समान रहेगा, अतः वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है, जो सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को दिया गया। वेद से ही सब विद्याओं और ज्ञान का प्रकाश और विस्तार हुआ। परमेश्वर ने जब अनेक पदार्थ मनुष्य के सुख के लिए रचे तो सब सुखों का प्रकाश करनेवाली वेद-विद्या को कि जिसमें सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं है, ईश्वर क्यों प्रकट न करता ? अतः वेदों को ही ईश्वर-रचित मानने में कल्याण है। फिर स्वामीजी ने कहा कि कबीरपन्थियों की पुस्तक 'बीजकसार' आदि में यदि जीव को परमेश्वर माना गया है तो वह नवीन वेदान्तियों का सिद्धान्त है। फिर नवीन वेदान्तियों के जो चार महावाक्य **'अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म'** हैं—ये सब ब्राह्मण, उपनिषद्-वाक्य हैं, परन्तु नवीन वेदान्तियों ने उन्हें प्रकरण से अलग करके इनका अनर्थ कर दिया है। प्रकरण में इनका अर्थ परमेश्वर के सर्वव्यापक आदि गुणों का तथा उसके स्वरूप का वर्णन है, इत्यादि बातें कहकर स्वामीजी ने नवीन वेदान्त के सिद्धान्तों का खण्डन किया।

स्वामीजी का उपदेश—एक महाशय ने एक अंग्रेज़ी की पुस्तक पढ़ी और कहा कि यदि ध्यान करते समय चन्दन का एक चिह्न बना लिया जाए और उसपर दृष्टि जमाई जाए तो ध्यान बहुत अच्छी तरह लगता है। स्वामीजी ने इसका भी खण्डन किया और कहा कि परमेश्वर मेरे आत्मा में और मेरे शब्द में भी व्यापक है, अतः सबको अपने आत्मा में ही सच्चे मन से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। चन्दन का चिह्न बनाया जाएगा तो उससे भी ध्यान में विघ्न पड़ेगा। इसी प्रकार **माला फेरने में भी गिनती में ध्यान रहेगा**। फिर कहा कि परमेश्वर के अनेक नाम—परमेश्वर, ईश्वर, महादेव, शिव, देवी, शेष, कश्यप आदि हैं। परमेश्वर का नाम कबीर होने में कोई प्रमाण नहीं है। संसार में अन्धकार फैल रहा है, अनेक प्रकार से जनता को धोखा दिया जा रहा है, लोग महन्त बन-बनकर मनुष्यों को ठगते और उनका धन हरण करते हैं, कोई कहता है

§ बाबू लेखराज यह भूल गये कि 'कबीर' को वह हिन्दी का शब्द बताते थे, परन्तु 'कबीर' जिसके अर्थ बड़े के हैं, अरबी का शब्द है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कान बन्द करके अनहद§ शब्द सुनो, उसमें सब प्रकार के बाजों के शब्द सुनाई देते हैं। कोई कहता है कि **'सोऽहम्'** आदि स्वर से जपो, फिर जब जीव मरेगा उसी शब्द में समा जाएगा और उसका आवागमन न होगा, कोई कहता है श्वास साधो और एक नथने से श्वास लेकर दूसरे से निकालो, कोई कहता है श्वास को देखो इसमें ही पाँचों तत्त्व प्रकट हो जाएँगे। कोई कहता है यह महन्तजी अन्तर्यामी हैं, सबके मनकी बात जान लेते हैं, जो माँगोगे वही हो जाएगा। इसी प्रकार कोई अपने को ईश्वर का अवतार कहते हैं और सैकड़ों मनुष्य उनके चेले हो जाते हैं। **सबको उचित है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें, आपस में प्रीतिपूर्वक रहें, परोपकार करें, धनकी वृद्धि करें, परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना करें और बुरे कर्मों से बचें, तब संसार में आनन्द-ही-आनन्द हो जाए।**

स्वामीजी का सत्परामर्श—१६ मार्च को प्रातःकाल कुछ लोग स्वामीजी के डेरे पर गये और यह प्रस्ताव किया कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर ईसाइयों का खण्डन करें, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि हम, मौलवी और पादरी लोग सब मिलकर सत्य का निर्णय करें, किसी का पक्षपात न करें और न किसी का विरोध करें।

विषय-निर्धारिणी सभा—तत्पश्चात् एक सभा शास्त्रार्थ के नियम निर्धारण करने के लिए बनाई गई। सभा में यह निश्चय हुआ कि प्रत्येक धर्म का प्रतिनिधि पहले आधा-आधा घण्टा विचारणीय प्रश्नों पर बोले और जिन्हें कोई आक्षेप करना और उत्तर देना हो वह दस-दस मिनट बोलें। बीच में कोई दूसरा न बोले। निम्नलिखित पाँच विषयों पर विचार होना निश्चित हुआ—

१—परमेश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस उद्देश्य से रचा ?

२—ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं ?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है ?

५—मुक्ति क्या पदार्थ है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

मेले की अवधि पर वाद-विवाद—विज्ञापन तो यह दिया गया था कि मेला दो दिन १६-२० मार्च सन् १८७७ को होगा, परन्तु स्वामीजी ने जब सहारनपुर से मेले में जाना अस्वीकार कर दिया था और कहा था कि हम तब आ सकते हैं जब मेला दो सप्ताह तक रहे, तो उनसे कहा गया था कि मेला पाँच दिन अवश्य रहेगा। जब उक्त सभा में यह विषय प्रस्तुत हुआ तो स्वामीजी ने कहा कि मेला पाँच दिन रहना चाहिए। इसपर पादरी लोगों ने आपत्ति की और कहा कि विज्ञापन में मेले की अवधि दो ही दिन रक्खी गई थी और हम दो ही दिन रहने का प्रबन्ध करके आये हैं इससे अधिक हम नहीं ठहर सकते। इसपर स्वामीजी ने पुनः आपत्ति की कि हमसे तो कहा गया था कि मेले की अवधि सात दिन होगी अब दो दिन की कैसे रक्खी जाती है ? मुंशी इन्द्रमणि ने कहा कि स्वामीजी आप चिन्ता न करें, एक ही दिन में ज्ञात हो जाएगा कि सत्य धर्म कौन-सा है तो स्वामीजी चुप हो गये।

सभा की कार्यवाही ६ बजे समाप्त हुई, तत्पश्चात् सब लोग भोजन करने को चले गये। एक बजे फिर सब लोग इकट्ठे हुए।

मेला संस्थापक का आरम्भिक कथन—सबसे पूर्व मुंशी प्यारेलाल ने खड़े होकर परमेश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने हमें ऐसे सम्राट् के राज्य में रक्खा है जिसमें सब लोग स्वतन्त्रतापूर्वक धर्म-विचार कर सकते

---

§ यह शब्द वास्तव में 'अनाहत' है, अर्थात् जो बिना किसी टकोर वा आघात के उत्पन्न हो और कान बन्द करने से चिड़ियों की-सी चहकार सुनाई देती है, उसका नाम है। 'अनहद' इसी का अपभ्रंश है। **—संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं और जिला मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया कि उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मेले की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों का मेले में पधारने के लिए धन्यवाद किया और आशा प्रकट की कि जो विद्वान् लोग इकट्ठे हुए है, वे अपने-अपने धर्म के गुण अत्यन्त नर्मी और मधुरता के साथ वर्णन करेंगे।

शास्त्रार्थकर्त्ता कौन-कौन-से हों—तत्पश्चात् यह प्रश्न उठा कि कौन-कौन, किस-किस धर्म की ओर से बोलेगा। इसपर बहुत वाद-विवाद हुआ। अन्त में पाँच व्यक्ति ईसाईयों और मुसलमानों की ओर से नियत हुए। हिन्दुओं की ओर से भी पाँच व्यक्ति नियत करने के लिए कहा गया, परन्तु स्वामीजी और मुंशी इन्द्रमणि ने कहा कि हम दो ही पर्याप्त हैं। इसपर मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मीदत्त शास्त्री का नाम, जो शाहजहाँपुर हाई-स्कूल के हैड पण्डित थे, लिखवाना चाहा। इसपर स्वामीजी ने उनसे कहा कि आपको अपने धर्म का प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है, आर्यों के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है और पण्डित लक्ष्मीदत्त से भी कहा कि ये लोग हममें आपस में विरोध कराकर तमाशा देखना चाहते हैं। इतना होने पर भी एक मौलवी ने पण्डित लक्ष्मीदत्त का हाथ पकड़कर कहा कि इनके कहने से क्या होता है, तुम अपना नाम लिखा दो। इसपर स्वामीजी ने कहा कि जैसे आप सुन्नत जमाअत के हैं आपको शीयाओं की ओर से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं है, जैसे प्रोटेस्टेण्टों को रोमन-कैथलिकों की ओर से वक्ता निर्वाचित करने का अधिकार नहीं है, ऐसे ही आपको यह कहने का अधिकार नहीं है कि आर्यों की ओर से कौन नियत किया जाए और पण्डित लक्ष्मीदत्त को भी समझाया कि ये लोग घर में फूट डलवाना चाहते हैं, आप इनकी चाल में न आएँ।

पादरी व मौलवी में झपट—इसके बाद मौलवी मुहम्मद क़ासिम और पादरी नेविल में यह विवाद छिड़ा कि पहले किस प्रश्न पर विचार हो; अन्त को यह निश्चय हुआ कि प्रश्नों पर यथाक्रम ही विचार किया जाए और पहले मौलवी मुहम्मद क़ासिम अपने सिद्धान्तों का वर्णन करें और उनपर जो आक्षेप करना चाहें करें और मौलवी उत्तर देवें। तदनुसार मौलवी ने कहा कि मुहम्मद खुदा के आखिरी पैग़म्बर हैं और क़ुरान ने पहली सारी आसमानी किताबों को मनसूख कर दिया। इसपर पादरी नेविल ने कहा कि मुहम्मद साहब के पैग़म्बर और क़ुरान के ईश्वर-वाणी होने में सन्देह है, ईसामसीह पर विश्वास लाने से मोक्ष हो सकता है। क़ुरान में जो बात हैं, वे सब बाइबिल की हैं। मौलवी ने कहा बाइबिल में बहुत अदल-बदल हो गई है, इसलिए वह मानने योग्य नहीं है और एक आयत दिखाकर कहा कि स्वयं पादरियों ने ही लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता। पादरियों ने कहा कि इसमें क्या दोष है, यह तो सत्य को ग्रहण करना है। मौलवी ने कहा कि ईसा खुदा नहीं हो सकता, यदि था तो वह अपने आपको सलीब से क्यों न बचा सका, इत्यादि।

इसी प्रकार की बातों में सन्ध्या हो गई।

पहले प्रश्न पर विचार—अगले दिन २० मार्च सन् १८७७ को प्रातःकाल ७॥ बजे शास्त्रार्थ-सभा संगठित हुई और पहले प्रश्न पर विचार आरम्भ हुआ। पादरी स्काट—हम ठीक-ठीक नहीं जानते ईश्वर ने इस संसार को किस वस्तु से बनाया, कब बनाया और क्यों बनाया ? हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि ईश्वर हमारे सुख के लिए अपने हुक्म से सृष्टि को अभाव से भाव में लाया है।

मौलवी मुहम्मद क़ासिम—खुदा ने दुनिया को अपने वजूदे-खास से प्रकट किया। सब वस्तुएँ मनुष्य के लिए बनाई हैं और मनुष्य को अपनी इबादत (आराधना) के लिए बनाया है।

स्वामीजी ने पहले तो सबको उपदेश दिया जिसका भाव था कि यह शास्त्रार्थ सत्य-असत्य के निर्णय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए है नकि हार-जीत के लिए, अतः सब लोगों को मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। कटु शब्दों का व्यवहार करना वा एक-दूसरे की बात को मिथ्या बताना आदि उचित नहीं है, विचार प्रेमपूर्वक होना चाहिए और ऐसा ही अभिप्राय इस मेले को आरम्भ करनेवालों का है, अतः सब प्रकार पक्षपात को छोड़कर सत्य भाषण करना उचित है।

इसके पश्चात् प्रथम प्रश्न पर अपना मन्तव्य प्रकट किया, जिसका आशय यह था कि परमेश्वर ने जगत् को उसके उपादानकारण प्रकृति से बनाया है, जिसे अव्यक्त, अव्याकृत और परमाणु भी कहते हैं। वह अनादि है और उसका अन्त भी नहीं। यह जगत् उसी कारण का कार्यरूप है। जब ईश्वर प्रलय करता है तो स्थूल जगत् सूक्ष्म होकर परमाणुरूप हो जाता है। अभाव से भाव कभी नहीं हो सकता। यह कहना कि पहले किसी वस्तु का अत्यन्ताभाव था और फिर यह कहना कि उसका भाव हो गया 'वदतो व्याघात' अर्थात् अपने कहे को स्वयं काटना है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। कारण तीन प्रकार के होते हैं, प्रथम उपादानकारण जिसमें विकार उत्पन्न करके किसी वस्तु को बनाया जाए। जैसे घड़े का उपादानकारण मिट्टी है, क्योंकि मिट्टी का ही दूसरा रूप घड़ा है। दूसरा निमित्तकारण अर्थात् उपादानकारण को कार्यरूप में लानेवाला, जैसे घड़े का निमित्तकारण कुम्हार है जो मिट्टी से घड़ा बनाता है। तीसरा साधारणकारण—दिशा, काल, उपकरण जैसे घड़े का साधारणकारण चाक, दिशा, काल आदि हैं, ऐसे ही जगत् का उपादानकारण प्रकृति, निमित्तकारण परमेश्वर, साधारणकारण दिशा, काल आदि हैं। प्रकृति जड़ है वह स्वयं अपने-आप नहीं बना सकती। यदि यह कहा जाए कि ईश्वर ही स्वयं सब-कुछ बन गया तो ईश्वर चोर, जार, कुत्ता, बिल्ली, रोग आदि हो जाएगा। जब ईश्वर के सिवाय कुछ भी न था तो अभाव से भाव मानना पड़ेगा जो किसी प्रकार भी युक्तिसङ्गत नहीं है। जीव भी अनादि हैं और यह सृष्टि प्रवाहरूप से अनादि है, अर्थात् सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि। यह चक्र योंही चलता रहता है, इसका कभी अन्त नहीं होता।

अब रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने जगत् को कब बनाया, तो इसका उत्तर वे धर्म तो क्या दे सकते हैं, जिन्हें प्रचलित हुए १८०० वा १३०० वर्ष हुए हैं, इसका उत्तर तो सत्य सनातन वैदिक धर्म ही दे सकता है जो सृष्टि के आदि से है। वैदिक धर्म के अनुसार सृष्टि को बने हुए १९६०८५२९७६ वर्ष हुए और अभी २३३३२२७०२४ वर्ष सृष्टि और रहेगी। ज्योतिश्शास्त्र में यह संख्या लिखी है और दान आदि शुभ कर्मों के अवसर पर जो सङ्कल्प पढ़ा जाता है उसमें यह संख्या पढ़ी जाती है यथा—

ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमें कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुक तिथावित्यादि।

यह इतिहास सिद्ध है और इसकी पुष्टि भूगर्भ विद्या से भी होती है।

ईश्वर ने सृष्टि किसलिए बनाई इसका उत्तर यह है कि यतः सृष्टि प्रवाहरूप से अनादि है, अतः जब प्रलय होता है तो जीवों के कर्म बिना फल भोगे हुए रह जाते हैं जिनका फल भोगना उनके लिए अनिवार्य है और फल बिना जगत् के अन्यत्र भोगे नहीं जा सकते, इसलिए ईश्वर पुनः सृष्टि रचता है। दूसरे वह अपनी अनन्त विद्या, ज्ञान, बल का प्रकाश सृष्टि रचकर सफल करता है तथा सृष्टि-रचना से यह अभिप्राय भी सिद्ध होता है कि प्राणी सुख पाते हैं और उन्हें मोक्ष के साधन प्राप्त होते हैं।

स्वामीजी के कथन पर पादरी स्काट ने यह आक्षेप किया कि जगत् समीवान् है और समीवान् पदार्थ अनादि नहीं हो सकता, कोई वस्तु अपने-आपको नहीं बना सकती। परमेश्वर ने अपनी क़ुदरत से जगत् को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनाया है। जिस वस्तु से उसने जगत् को बनाया है, वह हमें ज्ञात नहीं और पण्डितजी ने भी उसे नहीं बताया। मौलाना मुहम्मद क़ासिम ने यह आक्षेप किया कि जब सब चीज़ें अनादि हैं तो परमेश्वर को मानना व्यर्थ है और सृष्टि की रचना के समय को कोई नहीं बता सकता।

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि पादरी साहब मेरे कथन को नहीं समझे। मैंने कहा था कि ईश्वर ने जगत् को प्रकृति से बनाया, कार्यजगत् तो अनादि नहीं, परन्तु प्रकृति अनादि है, उसके एक अणु को भी नष्ट करने की शक्ति किसी में नहीं है। मैंने यह कभी नहीं कहा कि कोई वस्तु स्वयं अपने को बना सकती है। यदि ईश्वर ने अपनी क़ुदरत से जगत् को रचा तो मैं पूछता हूँ कि क़ुदरत कोई वस्तु है वा नहीं। यदि है तो अनादि हुई, यदि नहीं है तो उससे कोई वस्तु बन नहीं सकती। मैंने तो बता दिया था कि ईश्वर ने प्रकृति से जगत् को रचा। पादरी साहब का यह कहना कि मैंने जगत् के उपादानकारण को नहीं बताया ठीक नहीं है।

मौलवी साहब का कथन भी ठीक नहीं है। प्रकृति जड़ है, उसमें स्वयं कार्यरूप होकर जगत् के बनाने का सामर्थ्य नहीं है, उसे कार्यरूप चेतन आत्मा परमेश्वर ही कर सकता है। जगत् में बुद्धि का कैसा अद्भुत चमत्कार है, जिसे देखकर मनुष्य चकित रह जाता है। परमेश्वर के अतरिक्त और कौन ऐसा आश्चर्योत्पादक कार्य कर सकता है, अतः प्रकृति के अनादि होते हुए भी परमेश्वर का मानना आवश्यक है।

इतने में एक ईसाई महाशय बोल उठे कि जब दो वस्तुएँ हैं एक कार्य दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते, अतः ईश्वर ने सृष्टि अपनी क़ुदरत से नास्ति से बनाई।

मौलवी साहब ने कहा कि गुण दो प्रकार के होते हैं—एक भीतर के (स्वाभाविक) दूसरे बाहर के (नैमित्तिक)। स्वाभाविक गुण गुणी में होते हैं और नैमित्तिक गुण दूसरे से गुणी में आते हैं। स्वाभाविक गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं, परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है, जैसे जिस बर्तन में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह वैसा ही हो जाता है, परन्तु सूर्य नहीं बन जाता, अतः हमें ईश्वर ने अपनी इच्छा से बनाया है।

स्वामीजी ने ईसाई महाशय को तो यह उत्तर दिया कि जगत् का उपादानकारण प्रकृति (परमाणु) और जीव अनादि हैं। नास्ति से अस्ति नहीं हो सकती। यदि क़ुदरत कोई वस्तु है तो उसे भी अनादि मानना पड़ेगा, क्योंकि ईश्वर के गुण-कर्म सब अनादि हैं और मौलवी साहब से यह कहा कि यदि कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी ठीक न होगा, क्यों ? गुण द्रव्य से अलग रह नहीं सकता और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। दूसरे ऐसा मानने से तो जगत् ही ईश्वर हो जाएगा। बाहर के गुणों से बना हुआ मानने में ईश्वर के सिवाय और गुण-द्रव्य भी मानने पड़ेंगे और वह भी अनादि होंगे। इच्छा या तो कोई वस्तु है वा गुण। यदि वस्तु है तो अनादि होगी और गुण मानोगे तो उससे सृष्टि न बन सकेगी, जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता।

इसके पश्चात् पादरी साहब ने तो यह कहकर पीछा छुड़ाया कि यह तो ईश्वर ही जानता है कि उसने किस चीज़ से जगत् को बनाया, हम नहीं जान सकते, परन्तु मौलवी साहब कहने लगे कि ईश्वर ने जगत् अपने नूर से बनाया है। इसपर स्वामीजी ने कहा कि नूर प्रकाश तो केवल मूर्त्तिमान् पदार्थ को प्रत्यक्ष दिखा सकता है और प्रकाश करनेवाले पदार्थ से पृथक् नहीं रह सकता, अतः प्रकाश से सृष्ट्युत्पत्ति असम्भव है।

फिर एक ईसाई बोल उठे कि यदि संसार ईश्वर की जात (प्रकृति) में सनातन से था तो परमेश्वर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने अपनी जात से संसार को बनाया और यतः वह उसकी जात में अनादि था तो ईश्वर सीमित हो जाएगा।

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जगत्=प्रकृति अनादि थी और रचे जाने से वही सीमाबद्ध हुई, नकि ईश्वर।

तत्पश्चात् ईसाइयों ने कहा पण्डितजी इस बात का सहस्र प्रकार से उत्तर दे सकते हैं और हम सहस्रों मिलकर भी उन्हें निरुत्तर नहीं कर सकते। अब इस विषय पर शास्त्रार्थ करना व्यर्थ है।

इसपर सब लोग अपने-अपने डेरों को चले गये और जनता में स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

दोपहर के पश्चात् सभा फिर जुटी।

पाँचवे प्रश्न पर विचार—पहले तो सबने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि समय थोड़ा है, अतः इस प्रश्न पर ही विचार होना चाहिए कि मुक्ति क्या है ? और किस प्रकार मिल सकती है। फिर कुछ वाद-विवाद इस विषय में हुआ कि पहले कौन कथन करे, अन्त को यही स्थिर हुआ कि स्वामीजी ही पहले कथन करें।

स्वामीजी ने कहा कि मुक्ति छूट जाने को कहते हैं, अर्थात् सब दुःखों से छूटकर एक सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना और जन्म-मरण आदि दुःखसागर में न गिरना।

मुक्ति-प्राप्ति का पहला साधन सत्य का आचरण है, सत्य वह है जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी हो। वह साक्षी यह है कि सत्य के बोलने में उत्साह, आनन्द और निर्भयता प्राप्त होती है, और असत्य के आचरण में भय, शङ्का, लज्जा, उत्पन्न होती है। यजुर्वेद अ० ४० के तीसरे मन्त्र में कहा है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

परमेश्वर की आज्ञा भङ्ग करनेवाले, अर्थात् आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध कहने, करने और माननेवाले का ही नाम असुर, राक्षस, दुष्ट और पापी है।

दूसरा साधन—सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेद-विद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का यथावत् पालन करना।

तीसरा साधन—सत्पुरुष, ज्ञानियों का सङ्ग करना।

चौथा साधन—योगाभ्यास से मन, इन्द्रिय और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना।

पाँचवाँ साधन—ईश्वर-स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना।

छठा साधन—ईश्वर-प्रार्थना अर्थात् ईश्वर से असत्य, अज्ञान, अधर्म से पृथक् रहने, सत्य, त्याग, धर्म में स्थिर रहने और जन्म-मरण के दुःखों से छूटकर मुक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना करना।

जब मनुष्य अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को भजता है तो करुणामय परमेश्वर उसे अपने आनन्द में स्थिर कर देता है। मुक्ति, धर्म, अर्थ, काम और सत्य पुरुषार्थ से प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। ईश्वराज्ञा का पालन धर्म और उसका उल्लंघन अधर्म है। धर्म से ही अर्थ और काम को सिद्ध करना चाहिए, अर्थात् अपने सुख-साधन के लिए कोई काम पक्षपात, अन्याय, असत्य और अधर्म से न करना चाहिए।

पादरी साहब—दुःखों से छूटने का नहीं बल्कि पापों से बचने और स्वर्ग में पहुँचने का नाम मुक्ति है। ईश्वर ने आदम को पवित्र बनाया था, परन्तु उसने शैतान के बहकाने से पाप किया, जिससे उसकी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब औलाद पापी हो गई। मनुष्य अपनी इच्छा से पाप करता है, जैसे घड़ी अपने-आप चलती है, अतः वह अपने सामर्थ्य से पापों से नहीं बच सकता और मुक्ति नहीं पा सकता। प्रभु ईसा मसीह पर विश्वास करने से ही उसे मुक्ति मिल सकती है। हिन्दू कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों से पाप कराता है, परन्तु ईसा मसीह पर विश्वास लाने से वह भी पाप से बच सकते और मुक्ति पा सकते हैं।

जहाँ-जहाँ ईसा मसीह की शिक्षा फैलती जाती है वहाँ-वहाँ लोग पाप से बचते जाते हैं। इंग्लैंड में एक मनुष्य आप जैसा बलवान् था, परन्तु था बड़ा कुकर्मी। जब उसने ईसा मसीह पर विश्वास किया तो वह पाप से बच गया। मैं भी ईसा मसीह पर विश्वास करने से पापों से बच गया और मैंने मुक्ति को पा लिया।

मौलवी साहब—ईश्वर की इच्छा है जिसको चाहे मुक्ति दे जिसको चाहे न दे। यदि हाकिम किसी अपराधी से प्रसन्न हो जाता है तो उसे छोड़ देता है और जिससे अप्रसन्न होता है उसे दण्ड देता है। ईश्वर जो चाहता है वह करता है, उसपर हमारा कोई अधिकार नहीं, परन्तु समय के हाकिम पर विश्वास करना चाहिए। इस समय का हाकिम हमारा पैग़म्बर है, उसपर विश्वास लाने से मुक्ति हो सकती है। विद्या से अवश्य अच्छे काम हो सकते हैं, परन्तु मुक्ति तो उसी के हाथ में है।

स्वामीजी—पादरी साहब ने जो यह कहा है कि मुक्ति दुःख से छूटने का नहीं प्रत्युत पापों से बचने का नाम है, यह उन्होंने मेरे आशय को समझे बिना ही कह दिया है, क्योंकि मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मुमुक्षु को पाप का आचरण नहीं करना चाहिए। पाप का परिणाम भी दुःख ही होता है जो पाप से बचेगा वह दुःख से भी छूटेगा।

ईसाई भी परमेश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते हैं, परन्तु यह मानने से कि शैतान ने आदम को बहकाकर उससे पाप कराया वह सर्वशक्तिमान् नहीं रहता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो आदम को जिसे उसने पवित्र बनाया था बहकाने की शक्ति शैतान में न होती। परमेश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता। यह बात तो कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता कि पाप तो किया आदम ने और पापी हो गई उसकी सब सन्तान। जो पाप करता है वही दुःख भोगता है, दूसरा नहीं। केवल आदम और हव्वा से मनुष्य-जाति की उत्पत्ति मानने में बड़ा दोष यह आता है कि इससे सगे बहिन-भाई का विवाह होना मानना पड़ता है। यह मानना चाहिए कि सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने बहुत-से स्त्री-पुरुष रचे थे।

यदि शैतान सबको बहकाता है तो मैं पूछता हूँ कि शैतान को किसने बहकाया ? यदि कहो कि किसी ने नहीं तो जैसे शैतान अपने-आप बहक गया वैसे ही आदम भी अपने आप बहक गया होगा, फिर शैतान के मानने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कहो कि किसी ने शैतान को भी बहकाया होगा तो उसका बहकानेवाला सिवाय ईश्वर के दूसरा हो नहीं सकता। ऐसी दशा में जब स्वयं ईश्वर ही बहकानेवाला और पाप करनेवाला है तो वह पापों से बच कैसे सकता है ? इसके अतिरिक्त ऐसा मानना ईश्वर के स्वभाव के भी विरुद्ध है, क्योंकि वह न्यायकारी और सत्यकर्मों का ही कर्त्ता है।

शैतान परमेश्वर की सृष्टि में इतनी गड़बड़ डालता है, परन्तु वह उसे न दण्ड देता है, न मारता है, न क़ैद करता है। इससे सिद्ध होता है कि परमेश्वर में ऐसा करने की शक्ति ही नहीं है। शैतान के माननेवाले पाप से कभी नहीं बच सकते, क्योंकि वे समझते हैं कि पाप शैतान कराता है हम तो पापी ही नहीं और फिर जब सबके पापों के बदले ईश्वर का इकलौता पुत्र सूली पर चढ़ गया तो हमें अब क्या डर है।

पादरी साहब ने घड़ी का दृष्टान्त भी ठीक नहीं दिया। घड़ी तो वही चाल चलती है जो उसके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनानेवाले ने उसमें रक्खी है, उसमें उसे बदलने की स्वतन्त्रता नहीं है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कर्म करने की है, बुरे कर्म करने की नहीं।

आपने जो यह कहा है कि मुक्ति स्वर्ग में पहुँचने का नाम है और कि शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में पाप से बचने की शक्ति नहीं है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि शैतान कोई मनुष्य नहीं और मनुष्य स्वतन्त्र हैं, तो वह आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु आप स्वर्ग में भी कैसे रह सकेंगे ? वहाँ आदम ने शैतान के बहकाने से गेहूँ खाया था। क्या आप उसे न खाएँगे और स्वर्ग से न निकाले जाएँगे ?

आप लोगों ने तो ईश्वर को मनुष्य के समान मान रक्खा है। मनुष्य अल्पज्ञ है उसे सब बातें ज्ञात नहीं होती, अतः उसे किसी जानकार की सिफ़ारिश की आवश्यकता होती है, परन्तु परमेश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, उसे किसी पैग़म्बर की सहायता और सिफ़ारिश की आवश्यकता नहीं हो सकती और यदि होती है तो उसमें और मनुष्य में भेद ही क्या रहा ? वह न्यायकारी भी नहीं रहता, क्योंकि यदि किसी पापी को वह किसी की सिफ़ारिश से क्षमा करता है तो न्याय नहीं करता। परमेश्वर के दरबार में फ़रिश्तों का मानना तो और भी आपत्तिजनक है। यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह शरीरवाला नहीं हो सकता, यदि सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य शरीरवाला होगा और सीमित हो जाएगा और उसका जन्म-मरण भी अवश्य होगा।

पादरी साहब ने जो कलियुग के विषय में कहा है वह भी ठीक नहीं है। आर्य लोग युगों की व्यवस्था उस प्रकार मानते हैं जिस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण पञ्चिका ७ कण्डिका १५ में लिखी है—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठँस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

जो सर्वथा अधर्म करता है उसका नाम कलि, जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसका नाम द्वापर, जो एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसका नाम त्रेता और जो सर्वथा धर्म करता है उसका नाम सत्ययुग है।

बुरे कर्म करनेवाला दुःख से नहीं बच सकता, अच्छे कर्म करनेवाला ही बच सकता है।

क्या ईश्वर ईसा मसीह के बिना अपने भक्तों को बचाने में समर्थ नहीं है ? वह अवश्य बचा सकता है, उसे किसी पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं हैं। यह बात अवश्य है कि जब किसी देश में उत्तम पुरुष होते हैं, उनके उपदेश से लोगों का सुधार हो जाता है, जहाँ ऐसे उपदेष्टा नहीं होते, वहाँ बिगाड़ होता है। प्राचीन आर्यावर्त्त में ऐसे उपदेष्टा थे जिनसे लोग सुधरे हुए थे अब ऐसे उपदेशकों का अभाव है, अतः लोग बिगड़े हुए हैं। इससे आर्यों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आता। ईसाई और मुसलमानों के मत १८०० और १३०० वर्ष से हैं, परन्तु उनमें आपस के विरोध से फ़िरके हो गये हैं। आर्यधर्म १९६०८५२९७६ वर्ष से है, फिर भी उसमें बिगाड़ बहुत कम हुआ है। ईसाइयों में जो सुधार है वह ईसाई मत के कारण नहीं है प्रत्युत पार्लियामेंट आदि के उत्तम प्रबन्ध के कारण है। पादरी साहब ने जो इंग्लिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिलाकर दिया, यह उन्हें उचित न था।

मौलवी साहब का कहना कि ईश्वर जो चाहे सो करे, ठीक नहीं है, इससे ईश्वर न्यायकारी नहीं रहता। वह मुक्ति उसी को देता है जो मुक्ति के काम करता है, बिना पाप-पुण्य के दुःख-सुख नहीं देता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमेश्वर ही सब समय का हाकिम है, दूसरा कोई नहीं।

दूसरे पर विश्वास करने से मुक्ति कभी नहीं मिल सकती। यदि ईश्वर दूसरे के कहने से मुक्ति देता है तो वह मुक्ति देने में पराधीन हो जाएगा और पराधीन ईश्वर हो नहीं सकता। परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, वह अपने कामों में किसी की सहायता नहीं लेता। बड़ा आश्चर्य है कि मुसलमान परमेश्वर को लाशरीक भी मानते हैं और फिर पैग़म्बरों को मुक्ति देने में उसके साथ मिला देते हैं।

स्वामीजी अपना वक्तव्य समाप्त न कर पाये थे कि चार बज गये। मौलवियों ने कहा कि हमारी नमाज़ का समय हो गया है, पादरी स्काट ने कहा कि मैं आपसे एकान्त में कुछ बात करना चाहता हूँ, अतः मौलवी लोग नमाज़ को और स्वामीजी और पादरी साहब एक ओर को चले गये। पीछे एक मौलवी ने जूता पहने मेज़ पर खड़े होकर अपने मत का व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। इसी प्रकार एक ईसाई भी अपने धर्म का उपदेश देने लगा। इस प्रकार गड़बड़ होने पर किसी ने यह उड़ा दिया कि मेला समाप्त हो गया।§

मेला समाप्त हो गया—स्वामीजी ने जब यह हल्लागुल्ला सुना तो पूछा कि यह क्या गड़बड़ है, मौलवी लोग नमाज़ से आये वा नहीं ? तो लोगों ने कहा कि मेला समाप्त हो गया। स्वामीजी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया, न किसी की सम्मति ली गई, न किसी से कुछ पूछा गया, अब आगे कुछ बात-चीत होगी वा नहीं ? परन्तु कुछ उत्तर न मिला। तब लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप भी चलिए। स्वामीजी ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि मेला कम-से-कम पाँच दिन रहता। पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते। तब स्वामीजी अपने डेरे पर चले गये। वहाँ भी जिज्ञासुओं से धर्म-संवाद होता रहा।

पादरियों से बात-चीत—रात्रि में पादरी स्काट और दो अन्य पादरियों के साथ स्वामीजी के डेरे पर आये। पादरी स्काट ने पूछा कि आवागमन सत्य है वा असत्य और इसका क्या प्रमाण है ?

स्वामीजी—आवागमन सत्य है। जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है; अच्छे कर्म करने से मनुष्य का और बुरे कर्म करने से पक्षी आदि का। बहुत उत्तम कर्म करने से मनुष्य देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। बालक उत्पन्न होते ही अपनी माता का दूध पीने लगता हा, क्योंकि उसे पहले जन्म का अभ्यास बना रहता है। संसार में लोगों को धनाढ्य, कंगाल, सुखी, दुखी, अनेक प्रकार के ऊँच-नीच देखने से विदित होता है कि यह सब पूर्व जन्म के कर्मों के कारण हैं। जीव अनादि है। यदि जीव का एक ही जन्म हो तो जगत् में सुख-दुःख की व्यवस्था नहीं रहती, फिर यह भी है कि मरने के पश्चात् क़यामत के दिन तक न्याय की प्रतीक्षा में जीव को हवालात में रहना होगा।

आप आर्य नहीं हैं—एक पादरी ने स्वामीजी से कहा कि महाराज हम भी तो आर्य हैं। स्वामीजी ने कहा कि आप सभ्य अवश्य हैं, परन्तु आर्य नहीं, क्योंकि आर्य कहते है श्रेष्ठ, धर्मात्मा को और आपकी धर्मपुस्तक आपको ऐसा नहीं बताती। महात्मा ईसा से उनके कुछ शिष्यों ने पूछा था कि आप अन्धों और कोढ़ियों को चंगा कर देते हैं, परन्तु हम नहीं कर सकते। इसका क्या कारण है ? महात्मा ईसा ने उत्तर दिया कि तुममें राई बराबर भी विश्वास नहीं है। जब महात्मा ईसा के शिष्यों में ही विश्वास न था तो आप लोगों में कैसे हो सकता है ? बाइबिल कहीं भी नहीं कहती कि ईसा ईश्वर थे। इसके पश्चात् पादरी साहब चले गये।

---

§ मेला चाँदापुर की विस्तृत कार्यवाही "सत्यधर्म विचार, मेला चाँदापुर" में छपी हुई है, पाठक उसे अवश्य देखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मौलवियों ने शाहजहाँपुर पहुँचकर मुंशी इन्द्रमणि को लिखा कि आप यदि यहाँ आएँ तो हम आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, परन्तु जब स्वामीजी और मुंशीजी वहाँ पहुँचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम भी न लिया।

विनोद-वार्त्ता—चाँदापुर अवस्थिति के दिनों में ही एक दिन महाराज ने मुंशी प्यारेलाल से भुने हुए चने मँगाये तो मुंशी इन्द्रमणि ने विनोद में कहा कि चनों में घुन हुआ करता है, चनों के साथ घुन भी पिस गया होगा। महाराज ने भी उन्हें वैसा ही उत्तर देकर निरुत्तर कर दिया कि गेहूँ में भी तो घुन हो जाता है और गेहूँ के साथ पिस जाता है तो क्या आप आटे को फेंक दिया करते हैं।

स्वामीजी पूर्ण योगी थे—मुंशी प्यारेलाल का विचार था कि स्वामीजी केवल सभाजित् पण्डित ही हैं, योग में उनकी गति नहीं है। उन्होंने अनाहत शब्द, अजपाजाप आदि के विषय में स्वामीजी से प्रश्न किये। स्वामीजी ने उनके ऐसे उत्तम उत्तर दिये कि मुंशी प्यारेलाल को स्वामीजी के पूर्ण योगी होने का विश्वास हो गया।

दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि चाँदापुर में ही स्वामीजी ने आप-बीती निम्न लिखित कथा म० बख्शीराम और मुंशी इन्द्रमणि को सुनाई थी—

आप-बीती कथा—जिन दिनों में मैं एकाकी घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। जब कई दिन के निवास के अनन्तर, मैं वहाँ से चलने लगा तो उन लोगों ने अत्याग्रह से मुझे ठहरा लिया, मैं समझता रहा कि ये भक्ति-भाव से मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त, देवी के मन्दिर में एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन, उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिर में महोत्सव है, आप वहाँ अवश्य चलिए। मैंने बहुत समझाया कि देवी के दर्शन में मेरा विश्वास नहीं, परन्तु वे एक न सुनते थे। पाँव पकड़कर वे कहने लगे कि यदि आज पर्व के दिन आप मन्दिर में न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जाएगा। आप मूर्त्ति को नमस्कार आदि कुछ भी न करना, परन्तु हमारे लिए चले तो चलिए।

वह मन्दिर नगर से बाहर एक उजाड़ स्थान में था। उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा। उस समय वहाँ आँगन में होम हो रहा था और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वे दुर्गा की मूर्त्ति दिखलाने के बहाने भीतर ले-गये। मैं सहज स्वभाव से दुर्गा की प्रतिमा के सम्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्त्ति के पास एक बलिष्ठ व्यक्ति नंगी तलवार लिये खड़ा था।

स्वामीजी के बलिदान की तैयारी—वहाँ वे लोग कहने लगे 'महात्माजी ! माता के आगे झुककर नमस्कार अवश्य कीजिए'। मैंने उन्हें स्पष्ट शब्द में कहा कि मुझसे ऐसी आशा करना दुराशामात्र है। मेरे वचनों से पुजारी चिढ़ गया और पास आकर मेरी ग्रीवा को पकड़कर मेरे सिर को नीचा करने लगा। इसके इस बर्त्ताव से मैं चकित हो गया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूँ कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी ग्रीवा पर खड्ग बरसाना ही चाहता है।

स्वामीजी बलिदान से कैसे बचे—"इस दृश्य को देखकर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपटकर उसके हाथ से तलवार छीन ली। पुजारी तो मेरे बायें हाथ के एक ही धक्के से मन्दिर की दीवार से जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिर के आँगन में आ गया। उस समय आँगन के सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझपर टूट पड़े। द्वार की ओर देखा, तो उसके ताला लगा हुआ था। अपने-आपको

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलिदान से बचाने के लिए, मैं उछलकर दीवार पर चढ़ गया और परले पार कूदकर भाग निकला। दिनभर तो मैं वहीं छिपा बैठा रहा, परन्तु जब रात का राज्य विस्तृत हो गया तो रातों-रात ग्रामान्तर में जा पहुँचा। उस दिन से मैंने शाक्त लोगों का कभी भी विश्वास नहीं किया।"

दयानन्दप्रकाश मे यह भी लिखा है कि एक बार स्वामीजी गवर्नर जनरल से मिले थे। उन्होंने स्वामीजी की बातों पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की थी और उनकी विपत्तियों को सुनकर खेद और आश्चर्य प्रकट किया था। चलते समय स्वामीजी और गवर्नर जनरल की निम्नलिखित बातचीत हुई थी—

गवर्नर जनरल—यदि आप चाहें तो आपकी रक्षा के निमित्त कुछ सैनिक नियत किये जाएँ और भ्रमण में कष्ट न हो, इसलिए रेल के प्रथम दर्जे का आपको पास मिल जाए।

स्वामीजी—(धन्यवाद देते हुए) मैं आपकी इस सहायता को स्वीकार नहीं कर सकता। इसे स्वीकार करने पर लोग मुझे राजनौकर अथवा ईसाई धर्म का नौकर समझने लग जाएँगे।

गवर्नर जनरल—क्या आप राजनौकरी को बुरा समझते हैं ?

स्वामीजी—मैं संन्यासी हूँ, और सच्ची सरकार परमेश्वर का नौकर हो गया हूँ। उसी पर भरोसा रखता हूँ। इसलिए किसी मनुष्य की नौकरी करना मैं अपने लिए अच्छा नहीं समझता।

गवर्नर जनरल—क्या आप वर्तमान सरकार को सच्चा नहीं मानते।

स्वामीजी—सच्ची से मेरा तात्पर्य न परिवर्तन होनेवाली से है, ऐसा एक ईश्वर ही है। उसका नियम अटल और निर्भ्रान्त है। मनुष्यों के नियम और न्याय तो समयानुसार बदलते ही रहते हैं।§

---

§ सम्भव है कि शाक्तों का स्वामीजी को देवी पर बलि चढ़ाने का यत्न करना और उनका मन्दिर की दीवार पर से कूदकर उनके घेरे से निकल भागना सत्य हो, परन्तु स्वामीजी का गवर्नर जनरल से मिलना और उनका स्वामीजी की विपद्वार्त्ता सुनकर स्वामीजी की रक्षार्थ सैनिक नियत करने और रेल के प्रथम दर्जे का पास देने को कहना हमारे विश्वास की सीमा का उल्लंघन कर जाता है। यह गवर्नर जनरल कौन थे, वह स्वामीजी से कब और कहाँ मिले थे, स्वामीजी को उनसे मिलने का अवसर कैसे मिला था आदि प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। स्वामीजी ने अन्य किसी को भी यह घटना नहीं सुनाई। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टादश अध्याय

वैशाख संवत् १९३४=आषाढ़ संवत् १९३४

(मार्च १९७७—जुलाई १९७७)

लुधियाना—चाँदापुर से महाराज २२ मार्च सन् १८७७ को प्रस्थित हुए और [एक दिन शाहजहाँपुर ठहर कर] सहारनपुर लौट आये। वहाँ कुछ दिन विश्राम करके वैशाख कृष्णा ५ संवत् १९३४ अर्थात् ३१ मार्च सन् १८७७ को लुधियाना पहुँचे। लुधियाना में महाराज का मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने अत्यन्त सम्मान और प्रेम से स्वागत किया। उन्होंने ही महाराज के ठहरने आदि का प्रबन्ध किया और महाराज को लाला वंशीधर वैश्य के बाग़ में ठहराया।

व्याख्यान-माला—महाराज के व्याख्यान जटमल खजाञ्ची के घर पर होते थे जिनमें श्रोता सहस्रों की संख्या में उपस्थित होते थे। आपके व्याख्यानों से नगर में घोर आन्दोलन उपस्थित हो गया था। महाराज ने पूर्व ही घोषित कर दिया था कि मैं सात दिन तक प्रतिदिन व्याख्यान दूँगा। उनके बीच में कोई सज्जन न बोलें। आठवाँ दिन मैं शङ्का-समाधानार्थ रक्खूँगा। उस दिन जिस किसी के मन में कोई शङ्का मेरे व्याख्यानों को सुनकर उत्पन्न हुई हो मुझसे निवृत्त कर ले।

पादरी और उच्च राजकर्मचारी दर्शन करने आये—महाराज ने ऐसा ही किया, परन्तु शङ्का-समाधान के दिन किसी ने कोई विशेष प्रश्न नहीं किया। पादरी वेरी साहब स्वामीजी के उपदेश सुनने बहुधा आया करते थे और निजी तौर पर भी मिलने आते थे तथा धार्मिक विषयों पर प्रश्न करते थे। पादरी साहब ने इञ्जील की एक प्रति भी महाराज को भेंट की थी। एक दिन पादरी वेरी साहब, मिस्टर कारस्टीफ़न जुडिशियल असिस्टैण्ट कमिश्नर और पञ्जाब के इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस भी महाराज से मिलने आये थे। स्टीफ़न साहब ने आक्षेप किया कि कृष्णजी ने जब ऐसे-ऐसे बुरे कर्म किये तो उन्हें महात्मा कहना बुद्धि-सम्मत प्रतीत नहीं होता। महाराज ने उत्तर दिया कि श्रीकृष्णचन्द्र पर तो ये झूठे दोष लगाये जाते हैं, उन्होंने कभी ऐसे दुष्कर्म नहीं किये और बुद्धि-सम्मत होने के सम्बन्ध में तो क्या कहूँ ?

परमेश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में—जब बुद्धि इस बात को मान लेती है कि परमेश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में एक मनुष्य पर उतरी तो कृष्णजीवाली बात को मानने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसे सुनकर साहब बहादुर चुप हो गये।

स्वामीजी असिस्टैण्ट जुडिशियल कमिश्नर के बंगले पर—एक दिन महाराज मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के साथ कारस्टीफ़न साहब से मिलने उनके बंगले पर भी गये थे और उनसे अनेक विषयों पर वार्त्तालाप हुआ था। स्टीफ़न साहब वार्त्तालाप से बहुत प्रसन्न हुए, वेदभाष्य के ग्राहक बने और चलते समय कुछ रुपये भी महाराज को भेंट किये।

मेरा मुख न देखो मेरी बात सुनो—महाराज का दूसरा व्याख्यान हुआ, उसे एक ब्राह्मण भी सुनने आया था। उसने अपने एक साथी से कहा कि यह दुष्ट है, इसका मुख देखना भी धर्मविरुद्ध है, चलो ! यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बात महाराज ने भी सुन ली। महाराज ने उससे कहा कि मेरे मुख में तो कोई विशेष बात नहीं है, जिसे तुम देखो, यदि उसके देखने में तुम्हें ग्लानि है तो मेरे पीछे खड़े हो जाओ, केवल मेरी बात सुन लो।

चिड़िया हाथ से निकल गई—बनत, ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर का रहनेवाला रामशरण गौड़ब्राह्मण एक बार अलवर से दिल्ली जा रहा था। मार्ग में उसके वस्त्र चोरी चले गये। केवल एक धोती उसके पास रह गई। वह इसी दशा में दिल्ली पहुँचा। घण्टाघर पर एक अंग्रेज पादरी अपने मत का प्रचार कर रहा था। उसने दुर्गापाठ का एक श्लोक अशुद्ध पढ़ा तो रामशरण ने उसकी अशुद्धि पकड़ ली। इसपर पादरी ने उससे कहा कि यदि तुम नौकरी करना चाहो तो हम तुम्हें नौकर रख सकते हैं। रामशरण ने यह स्वीकार कर लिया। पादरी ने ईसाई कन्याओं को पढ़ाने के लिए पाँच रुपये मासिक पर नौकर रख लिया और वह उसे अपने साथ लुधियाना ले-आया। यहाँ वह ६ मास तक नौकर रहा। इस बीच में वह पादरी, बेरी साहब और अन्य दो पादरी उसे ईसाई मत ग्रहण करने का उपदेश देते रहे। उसका मन भी उक्त मत की ओर फिर गया। यहाँ तक कि एक दिन उसने गिरजा में ईसाई मत के मण्डन में एक वक्तृता भी दी। पादरी लोगों ने उसके बपतिस्मा लेने का दिन भी नियत कर दिया और वे किसी कार्यवश लाहौर चले गये। लाहौर से वे चार-पाँच दिन में लौटकर आनेवाले थे। उनके आने पर उसका बपतिस्मा होनेवाला था। इतने में ही महाराज लुधियाना पहुँच गये। लोगों ने महाराज से निवेदन किया कि किसी प्रकार रामशरण को ईसाई होने से बचाइए। महाराज ने उसे उपदेश दिया और वह ईसाई न हुआ। उससे ईसाइयों की नौकरी भी महाराज ने छुड़वा दी। पादरी लोग जब लुधियाना वापस आये तो देखा कि चिड़िया उनके हाथ से निकल गई। और कुछ तो वह न कर सके, परन्तु जलकर उन्होंने रामशरण की तीन रुपये मूल्य की पुस्तकें उसे न दीं।

पुनर्जन्म की विचित्र सिद्धि—एक दिन एक इसाई ने पुनर्जन्म पर शङ्का की। स्वामीजी ने उससे कहा कि खाना, पीना, सोना आदि देहधारी जीव के लिए सम्भव है वा देहरहित जीव के। उसे कहना पड़ा कि देहधारी के लिए ही सम्भव है। फिर उससे कहा कि तुम यह मानते ही हो कि जीव का एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। उसने कहा कि ठीक है तब महाराज ने कहा कि जो आत्माएँ स्वर्ग में जाकर अनेक भोग भोगेंगी वे बिना देह धारण किये कैसे भोगेंगी और जब देह धारण करेंगी तो क्या वह उनका पुनर्जन्म न होगा ? इसपर ईसाई को कोई उत्तर न आया।

संस्कृत बोल चुके अब भाषा बोलो—एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजी के पास आया और संस्कृत में बात-चीत करने लगा। स्वामीजी भी उससे संस्कृत ही बोलते रहे। जब अधिक देर हो गई तो स्वामीजी ने उससे कहा कि अब तो आप जान गये होंगे कि मैं संस्कृत जानता हूँ। अब आप भाषा में बात-चीत करें जिसे पास बैठे हुए सज्जन भी समझ सकें।

भूत के खण्डन में तमाशा—एक दिन महाराज ने भूत के खण्डन पर एक तमाशा दिखाया। जिस कमरे में महाराज ठहरे हुए थे उसके तीन दर थे और उसमें आमने-सामने दो ताक़ (आले) थे। महाराज ने दोनों ताक़ों में दीपक जलाकर रखवाये। दोनों ताक़ों में १०-१२ गज़ का अन्तर था। महाराज ने पहले एक ताक़ का दीपक बुझा दिया। फिर दूसरे ताक़ का भी बुझा दिया। दूसरे ताक़ का दीपक बुझा देने पर पहले ताक़ का दीपक स्वयमेव जल उठा और जब उसे फिर बुझाया तो पहले ताक़ का जल उठा। कई बार ऐसा किया, तब महाराज ने कहा कि यह विद्या की बात है, भूत वा जादू कोई वस्तु नहीं है। एक पुरुष की स्त्री को भूत का आवेश कहा जाता था तो महाराज ने कहा था कि उसे कोई रोग है अथवा वह फैल भरती है।

(१६ अप्रैल—५ जुलाई) लाहौर (वै० शु० ६—आषा० कृ० ६)

स्वामीजी को लाहौर बुलानेवालों का गुप्त अभिप्राय—वैशाख शुक्ला ६ संवत् १६३४ अर्थात् १६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एप्रिल सन् १८७६ को महाराज लुधियाना§ से लहौर पधारे। रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए पण्डित मनफूल, भूतपूर्व मीरमुंशी गवर्नमेण्ट पञ्जाब, मुंशी हरसुखराय, अध्यक्ष 'कोहेनूर' समाचार पत्र तथा ब्राह्मसमाज के और सत्सभा के कतिपय सभासद् उपस्थित थे। इन्हीं लोगों ने महाराज से लाहौर पधारने की प्रार्थना की थी। ब्राह्मसमाज के सदस्यों का उनके बुलाने में यह अभिप्राय था कि यदि महाराज ब्राह्मसमाज के सभासद् बन जाएँगे तो उक्त समाज का बल बहुत बढ़ जाएगा और फिर वे लोग भी उसमें सम्मिलित हो जाएँगे जो इस कारण से सम्मिलित नहीं होते कि ब्राह्म लोगों के सुधार के कार्य ने विजातीय रूप धारण कर लिया है। पण्डित मनफूल का भी एक अभिप्राय था। उनका एक पुत्र इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी की परीक्षा पास करके आया था। उसकी विवाहिता स्त्री का देहान्त हो गया था और वह एक मेम से विवाह करना चाहता था। पण्डित मनफूल इसका निषेध करते थे, परन्तु उनका सुपुत्र उनके कथन पर कान न देता था। उन्होंने समझा था कि सम्भव है कि महाराज के समझाने से वह मान जाए। कहते हैं कि महाराज ने उसे समझाया भी, परन्तु वह न माना और यह कहा कि जब आप गान्धार आदि देशों की स्त्रियों से विवाह करने का समर्थन करते हैं तो इस विवाह का क्यों निषेध करते हैं। स्टेशन पर चार घोड़ा-गाड़ियाँ महाराज को लाने के लिए गई थीं। एक में महाराज, पण्डित मनफूल और मुंशी हरसुखराय सवार हुए, एक में उनके साथ के मुनष्य और भृत्य बैठे और एक में उनका सामान और पुस्तकें रक्खी गईं।

ब्राह्म-समाजियों का अशिष्टाचार—महाराज को दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले के बाग़ में ठहराया गया। महाराज के भोजन व्यय का भार ब्राह्म लोगों ने अपने ऊपर लिया था और इसके लिए उन्होंने चन्दा एकत्र किया था। दो सप्ताह तक वही सब व्ययभार वहन करते रहे, परन्तु जब उन्होंने देखा कि उनका रङ्ग महाराज पर नहीं चढ़ता और वे ब्राह्मसमाज की शिक्षा का भी खण्डन करते हैं तो वे चिढ़ गये और उन्होंने व्यय देना बन्द कर दिया। इतना ही नहीं बल्कि दो सप्ताह में जो २५) रुपयो व्यय हुए थे वे भी महाराज से वसूल कर लिये। महाराज का तो इससे कुछ बिगड़ा नहीं, उल्टा ब्राह्मसमाजियों का ही इसमें अपयश हुआ।

वेद पर व्याख्यान—लाहौर में महाराज का प्रथम व्याख्यान वेद और वेदोक्त धर्म पर २५ एप्रिल सन् १८७७ को हुआ। श्रोताओं की संख्या ५०० के लगभग थी। २८ एप्रिल के 'कोहेनूर' में इस व्याख्यान का सारांश छपा था। उसमें महाराज ने कहा था कि चारों वेद अनादि हैं, जब-जब सृष्टि होती है तब-तब वेद प्रकट होते हैं और प्रलय होने पर अन्तर्हित हो जाते हैं। वर्तमान सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने वेदों को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा—चार ऋषियों के हृदय में प्रकट किया। वेदों में सब विद्याओं के मूलतत्त्व निहित हैं। वेद की ११२७ शाखाएँ हैं, जिनमें अनेक प्रकार की विद्याएँ हैं। वेद के तीन विषय हैं, ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड। देवता कोई विशेष योनि नहीं है, प्रत्युत विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्यों को ही 'देव' कहते हैं। विश्वकर्मा कोई विग्रहवान् देव (अ-मानुष) नहीं था। वह एक अत्यन्त निपुण कला-कौशलाभिज्ञ था। अग्नि में हवन करने का प्रयोजन केवल वायु और वृष्टि जल की शुद्धि है। पहले सब मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र करते थे। अमावास्या और पूर्णिमा को विशेष यज्ञ होते थे और दीपावली, होली आदि पर बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे, तब वायु और जल शुद्ध रहते थे और मनुष्य तथा पशुओं के मल-मूत्र की दुर्गन्ध से जो वायु गन्दी होती है हवन से उसकी शुद्धि होती रहती थी और जैसे रोग और मरी आजकल होते हैं उनका नाम तक न था। वेदों के पढ़ने का मनुष्यमात्र को अधिकार है। यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के दूसरे मन्त्र में परमेश्वर ने कहा है कि जिस प्रकार मैंने इस कल्याणकारिणी वाणी का सब मनुष्यों के लिए उपदेश किया है, ऐसा ही

---

§ अगले जालन्धर के वर्णन में लिखा है कि लुधियाना से लाहौर जाते हुए स्वामीजी एक रात जालन्धर ठहरे थे। (देखो पृष्ठ ३६०) तदनुसार स्वामीजी लुधियाना से १८ अप्रैल को मध्याह्नोत्तर चले होंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और अतिशूद्र को उसका उपदेश करते रहो। महाराज ने अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए कहा कि स्वार्थ फैल रहा है और वेदों के असत्य अर्थ करके जनता को ठगा जा रहा है।

वैदिक अलङ्कार—वेद में जो अलङ्कार आये हैं पुराणों में उनकी कहानियाँ गढ़ ली गई हैं और वे सत्य घटनाओं के रूप में लोगों के सामने रक्खी जाती हैं, जैसे इन्द्र का गोतम ऋषि की स्त्री से व्यभिचार करना, ब्रह्मा का अपनी पुत्री के पीछे कामातुर होकर भागना, इत्यादि। [इन्द्र नाम सूर्य का, गोतम चन्द्रमा का और अहल्या रात्रि का है। रात्रि का पति चन्द्रमा है, जब सूर्य निकलता है तो रात्रि शोभाहीन हो जाती है। यही उसके साथ जारकर्म करना है। उषा सूर्य की पुत्री है, क्योंकि सूर्य के प्रकाश से ही उसकी उत्पत्ति होती है, उषा सूर्योदय से पहले दिखाई देती है, उसके पीछे सूर्योदय होता है यही ब्रह्मा का अपनी पुत्री के पीछे भागना है।]§

पुनः उसी विषय पर व्याख्यान—दूसरा व्याख्यान भी महाराज ने बावली साहब में वेद और वेदोक्तधर्म पर ही दिया, क्योंकि पहले व्याख्यान में विषय समाप्त नहीं हुआ था। इस व्याख्यान में आपने वर्णन किया कि वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार है, जन्म पर निर्भर नहीं है। ब्राह्मण शूद्र हो सकता है। धर्म खाने-पीने में नहीं है, एक वर्ण दूसरे वर्ण के हाथ का छुआ वा पकाया हुआ भोजन न खावे, ऐसा प्रतिबन्ध वेदों में कहीं नहीं है। बालविवाह शास्त्र-विरुद्ध और अत्यन्त हानिकारक है। विधवाओं का पुनर्विवाह शूद्रों में और नियोग द्विजातियों में शास्त्रसम्मत है। मूर्त्तिपूजा सर्वांश में वेद-विरुद्ध है।

स्वामीजी के विरुद्ध अपवाद—पौराणिकों में महाराज के व्याख्यानों से खलबली मच गई, उन्हें अपने जन्मसिद्ध अधिकारों के जाते रहने और जीविका छिन जाने का भय हुआ। वे महाराज के तीव्र आक्रमणों का उत्तर न दे सकते थे, साथ ही उन्हें सह भी न सकते थे। उनकी दशा उस सर्प की-सी थी जिसे कोई मनुष्य सता रहा हो, परन्तु वह उसे डस न सकता हो और रोष में भरकर बार-बार भूमि पर अपना फन पटक रहा हो। जब उनसे कुछ न बन पड़ा तो वे महाराज के विरुद्ध अलीक और द्वेषपूर्ण जनरव फैलाने लगे। कभी उन्हें ईसाइयों का गुप्तचर बताते, कभी उन्हें नास्तिक और देव-निन्दक ठहराते। लहौर के प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित भानुदत्त और हरप्रसाद ने तथा फिल्लोर के प्रसिद्ध पं० श्रद्धाराम ने भाई नन्दगोपाल की धर्मशाला में महाराज के आक्षेपों के उत्तर देने का प्रयत्न भी किया और मूर्त्तिपूजा के मण्डन पर व्याख्यान भी दिये, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। जनता की रुचि और श्रद्धा महाराज के उपदेशों में बढ़ती ही गई। जब वे सब प्रकार से हतोत्साह, हतोद्यम और हताश हो गये तो और भी ओछे हथियारों पर उतर आये। वे दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले के पुत्र दीवान भगवान्दास के पास गये, जिनके बाग़ में महाराज ठहरे हुए थे और उनसे कहा कि दयानन्द को ईसाइयों ने उत्कोच देकर सब मनुष्यों को ईसाई बनाने के लिए नियत किया है, ऐसे नास्तिक को अपने बाग़ में ठहराने से आपको घोर पातक लगेगा। दीवान साहब उनकी बातों में आ गये और उन्होंने महाराज से अन्य स्थान में जाकर ठहरने के लिए कहा। यहाँ क्या था, महाराज तुरन्त उनके बाग़ से निकल खड़े हुए। उन्हें आश्रय न मिलता तो वे खुले मैदान में रहकर उपदेश करते और मन पर तनिक मैल न लाते। कोई पौराणिक हिन्दू तो उन्हें क्यों आश्रय देनेवाला था, ब्राह्म लोगों ने भी उन्हें आश्रय न दिया, कारण यह कि महाराज के दो व्याख्यान ब्राह्म-मन्दिर में हो चुके थे जिनमें आपने ब्राह्म लोगों की आशा और सिद्धान्तों के प्रतिकूल वेदों का ईश्वरोक्त होना और आवागमन का सत्य होना सिद्ध किया था। इससे ब्राह्म लोगों के दो मुख्य सिद्धान्तों का खण्डन होता था जो उन्हें बहुत ही अखरा और वे भी महाराज से द्वेष करने लगे।

§ इन तथा अन्य वैदिक अलङ्कारों के लिए देखो महाराजकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा वेदभाष्य। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक मुसलमान की शिष्टता—इस अवसर पर जिसने महाराज को आश्रय दिया वह खानबहादुर डॉक्टर रहीमखाँ थे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी कोठी महाराज के लिए दे दी। इस उदारता के लिए आर्यसमाज उनका सदा के लिए ऋणी रहेगा।

मैं पाषाण के शिव की प्रतिष्ठा नहीं करता—एक दिन एक पुरुष ने महाराज से कहा कि आप संन्यासी होकर संन्यासधर्म के विरुद्ध कार्य करते हैं। महाराज ने पूछा, कैसे ? उसने उत्तर दिया कि आप शिवजी की निन्दा करते हैं। महाराज ने कहा कि मैं उस कल्याणस्वरूप शिव का इतना सम्मान करता हूँ जितना और कोई कर सकता है, हाँ आपके पाषाण के शिव की प्रतिष्ठा नहीं करता और न वह प्रतिष्ठा के योग्य है।

पुष्प तोड़ा, बुरा किया—एक दिन पं० शिवनारायण अग्निहोत्री महाराज के अर्पण करने के लिए एक पुष्प लाये। महाराज ने उनसे कहा कि आपने यह बुरा किया, क्योंकि प्रकृति ने उसे जितने दिन तक सुगन्धि फैलाने के लिए उत्पन्न किया था उससे पूर्व ही आपने तोड़ डाला। अब यह शीघ्र सड़ जाएगा और दुर्गन्ध फैलाएगा। यदि यह वृक्ष पर रहता तो बहुत-से मनुष्यों को लाभ पहुँचाता और यदि स्वयं सूखकर गिरता तो खाद का काम देता।

डॉक्टर रहीमखाँ की कोठी में जाने से पूर्व एक दिन पं० मनफूल ने महाराज से कहा कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो हिन्दू भी आपसे अप्रसन्न न होंगे और महाराजा जम्मूँ व काश्मीर भी आपसे प्रसन्न होंगे।

मैं महाराज काश्मीर को प्रसन्न करूँ वा ईश्वर को—पं० मनफूल को यह बात कहते हुए यह ध्यान नहीं रहा कि वे ऐसे महात्मा से बातें कर रहे हैं जिनकी दृष्टि में संसार के बड़े-बड़े प्रलेभन तुच्छ और हेय हैं, जो बड़े-से-बड़े मनुष्य की प्रसन्नता के लिए वेदोक्त पथ से तिलभर भी विचलित नहीं हो सकते और जो उसकी अप्रसन्नता की अणुमात्र भी चिन्ता नहीं करते। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं महाराजा जम्मूँ व काश्मीर को प्रसन्न करूँ, अथवा ईश्वर की आज्ञा का पालन करूँ, जो वेदों में अंकित है।

पादरी हूपर से वार्त्तालाप—एक दिन डॉक्टर हूपर जो एक संस्कृतज्ञ पादरी थे, महाराज के पास आये। वह दिन शंका-समाधान के लिए नियत था। डॉक्टर रहीमखाँ की कोठी में आने के पश्चात् महाराज ने यह नियम कर दिया था कि एक दिन व्याख्यान देते थे और एक दिन शंका-समाधान करते थे। पादरी साहब से प्रश्नोत्तर संस्कृत में हुए थे जो निम्न प्रकार थे—

पादरी साहब—वेदों में अश्वमेध, गोमेध आदि का वर्णन है, उस समय लोग घोड़े, गौ आदि की बलि देते थे। इस विषय में आप क्या कहते हैं ?

स्वामीजी—वेदों में अश्वमेध, गोमेध का अर्थ घोड़े, गौ आदि की बलि नहीं है। उनके अर्थ इस प्रकार हैं—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। —श० १३।१।६।२

अन्नं हि गौः। —श० १३।४।३१।२२

घोड़े, गौ आदि पशु तथा मनुष्य को मार कर होम करना कहीं नहीं लिखा है। केवल वाममार्गियों ने अपने ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ किया है। यह बात वाममार्गियों ने चलाई और जहाँ-जहाँ ऐसा लेख है वहाँ-वहाँ उन्हीं लोगों ने प्रक्षिप्त किया है।

राजा न्याय से प्रजा का पालन करे यही अश्वमेध है। अन्न, इन्द्रियों, अन्तःकरण और पृथिवी आदि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को पवित्र करने का नाम गोमेध है। जब मनुष्य मर जाए तब उसके शव को विधिपूर्वक जलाने का नाम नरमेघ है। व्याकरण और निरुक्त के प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है।

पादरी साहब—वेदों के अनुसार जातिभेद किस प्रकार है ?

स्वामीजी—वेदों में जाति गुण-कर्मानुसार है।

पादरी साहब—यदि मेरे गुण-कर्म अच्छे हों तो क्या मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूँ ?

स्वामीजी—निस्सन्देह। यदि आपके गुण-कर्म ब्राह्मण होने के योग्य हों तो आप भी ब्राह्मण कहला सकते हैं। देवेन्द्रबाबू ने पादरी हूपर को इस प्रश्नोत्तर के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा था। उसके उत्तर में पादरी साहब ने लिखा था कि मैंने स्वामी दयानन्द का एक व्याख्यान सुना था। व्याख्यान में उन्होंने कहा था कि जिस किसी को कोई प्रश्न पूछना हो वह व्याख्यान के पश्चात् पूछ सकता है। तदनुसार मैंने गोमांस-भक्षण के विषय में उनकी सम्मति पूछी थी। उन्होंने यदि मुझे ठीक स्मरण है तो यह उत्तर दिया था, यद्यपि मैं उसे पाप कहकर उसका निषेध नहीं कर सकता तथापि उसका खाना वाञ्छनीय नहीं है।

[हमारी सम्मति में स्वामीजी के लिए गोमांस-भक्षण को पाप न कहना ऐसा ही है जैसे दिन को रात कहना। क्या दयानन्द, जिसने गोरक्षा के लिए इतना अतुल प्रयत्न किया, जो गौ को देशोन्नति का बड़ा भारी साधन समझता था, जो अहिंसा-धर्म का पालन करनेवाला था, गोमांस-भक्षण को पाप न बतलाता ? समस्त शास्त्र, वैदिक और पौराणिक, प्राचीन और अर्वाचीन, एक स्वर से जिस गौ के वध को महापातक कहते चले आये हैं दयानन्द-सा शास्त्रज्ञ और शास्त्रनिष्ठ उसी गौ के मांस को जो बिना उसके वध के प्राप्त नहीं हो सकता, भक्षण करने में पाप न बताये ! ऐसा हो नहीं सकता, यह अचिन्तनीय है, यह असम्भव है। —**संग्रहकर्त्ता**]

लाट साहब के मन्त्री तथा शिक्षाध्यक्ष से मिलन—एक दिन महाराज पञ्जाब के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर के सेक्रेटरी जे० ग्रिफ़िथ साहब से मिले थे और एक दिन पञ्जाब के डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन से भी मिले थे। सेक्रेटरी ने लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर से मिलने के लिए एक दिन नियत कर दिया। इसी सम्बन्ध में महाराज ने १४ मई सन् १८७७ को एक पत्र लाट महोदय को लिखा कि मैं आपसे मिलने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जैसाकि आपके सेक्रेटरी ने स्थिर कर दिया है। स्वामीजी १४ मई १८७७ सोमवार को लगभग १० बजे उनसे भेंट करने गये§। लाट साहब महोदय से महाराज ने यह प्रस्ताव किया कि मेरे वेदभाष्य की सरकार सहायता करे और उसे सरकारी कॉलेजों में पढ़ाया जाए। महाराज ने प्रचलित संस्कृत-पाठविधि के दोष भी लाट महोदय को दिखाये थे और उन्होंने महाराज से एक पाठविधि बनाकर भेजने का अनुरोध किया था जिसके अनुसार महाराज ने एक पाठविधि‡ बनाकर भेज दी, परन्तु उसका कुछ परिणाम न निकला।

१४ मई सन् १८७७ को ही महाराज ने एक दूसरा पत्र पंजाब गवर्नमेंट को भेजा था जिसमें सरकार से अनुरोध किया था कि सरकार वेदभाष्य की धन से सहायता करे और वह सरकारी कॉलेजों में पढ़ाया जाए। लाट महोदय ने उस पत्र को पाकर दो प्रति वेदभाष्य के क्रय करने की आज्ञा दी और वेदभाष्य के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय करने का भार पञ्जाब विश्वविद्यालय की सेनेट और डाइरेक्टर पब्लिक इंस्ट्रक्शन पर अर्पित कर दिया।

सरकार वेदभाष्य की सहायता नहीं कर सकती—१४ नवम्बर १८७७ के पत्र संख्या ४३१८ द्वारा

---

§ देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पृष्ठ ६३ का नोट।

‡ दुःख है कि महाराज ने जो पाठविधि बनाकर पञ्जाब सरकार को भेजी थी, उसकी प्रतिलिपि भी नहीं रक्खी गई। यदि वह होती तो बड़ी उपयोगी होती। उससे प्रकट होता कि गुरुकुलों के अतिरिक्त आधुनिक सरकारी विद्यालयों में संस्कृत किस ढङ्ग से पढ़ानी चाहिए और प्रचलित पाठविधि में क्या-क्या दोष हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराज को सूचना दी गई कि लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर ने आपके मनोरञ्जक वेदभाष्य पर पूरा विचार कर लिया है, परन्तु शोक है कि वह ऐसा नहीं है जो प्रकाशन में सरकारी सहायता पाने का अधिकारी हो।

सरकारी समालोचकों को उत्तर—महाराज को उन विद्वानों की सम्मति किसी प्रकार ज्ञात हो गई जिनके पास पंजाब सरकार ने उनका वेदभाष्य सम्मति के लिए भेजा था। उन्होंने समालोचकों की सम्मतियों का उत्तर लिखकर आर्यसमाज लाहौर के पास भेज दिया कि इसका अंग्रेजी में अनुवाद करके सरकार के पास भेज दिया जाए। महाराज का उत्तर निम्न प्रकार था—

मिस्टर ग्रिफ़िथ, प्रिंसिपल संस्कृत कॉलेज बनारस के आक्षेपों का उत्तर§—

मुझे इस बात के कहने की आज्ञा हो कि उसकी सम्मति की कोई-कोई बात उपेक्षा करने योग्य है। ५००० वर्ष से वेदों का अभ्यास नहीं रहा। महाभारत से पहले सब कार्य वैदिक रीति के अनुसार होते थे। इसलिए वे सदा पढ़े जाते थे और जो शब्द उनमें आये हैं उनके ठीक अर्थ लिये जाते थे, अतः जो भाष्य उस समय किये गये थे उन्हें पक्का मार्ग-दर्शक समझना चाहिए। सायण का भाष्य जो बहुत देर पीछे हुआ ऐसा नहीं हो सकता। पुराने भाष्य कण्ठस्थ किये जाते थे। कोई विद्यालय भी ऐसा न था जहाँ वेदों की व्याख्या न की जाती हो। पुराने भाष्यों के बिना वेदों की व्याख्या असम्भव है। मेरा भाष्य सर्वथा उन-पर आश्रित है। जो मन्त्र अब तक छप चुके हैं उनपर मैंने उनके प्रमाण दिये हैं और जो कुछ मैंने लिखा है वह उन प्रमाणों के अनुकूल है। मुझे विश्वास है कि यदि मिस्टर ग्रिफ़िथ के पास वे पुराने भाष्य या वे प्रमाण होते जो मैंने दिये हैं तो वे उस सम्मति के सर्वथा विरुद्ध सम्मति देते जो अब उन्होंने दी है। सायण, महीधर और उवट के भाष्य पूर्व समय के भाष्यों से सर्वथा भिन्न हैं और यही वे भाष्य हैं जिनका अब तक मैक्समूलर और विलसन ने अनुवाद किया है, इसलिए वे प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते और इन्हीं पुस्तकों से मि० ग्रिफ़िथ और अन्य समालोचक भ्रम में पड़े हैं। मुझपर यह अभियोग लगाया गया है कि मैंने शब्दों के वे अर्थ लिये हैं जिनसे मेरा प्रयोजन सिद्ध होता है, परन्तु यह अभियोग ठीक नहीं है, क्योंकि मैंने स्थल-स्थल पर ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त और पाणिनीय व्याकरण के प्रमाण दिये हैं। मैं ऐसा विचार करने से नहीं रुक सकता कि मिस्टर ग्रिफ़िथ ने मेरी पूरी पुस्तक पढ़े बिना सम्मति दे दी है अन्यथा मैं नहीं जानता कि वे मेरे परिश्रम को व्यर्थ क्यों समझता है। मैंने वेदभाष्य के १००० से अधिक ग्राहक बना लिये हैं और मेरे वेदभाष्य के लिए प्रतिदिन बहुतायत से निवेदन-पत्र आ रहे हैं। मैं यह बात कह दूँ कि मेरे भाष्य के ग्राहकों में संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के विद्वानों के नाम अङ्कित हैं। अन्त में मिस्टर ग्रिफ़िथ कहते हैं कि जिन मन्त्रों में प्रत्यक्ष में बहुत-से देवताओं का वर्णन है उनका विद्वान् और अविद्वान् के लिए सन्तोषजनक उत्तर नहीं हो सकता। मैं चाहता था कि वे ऐसे कुछ मन्त्र उद्धृत कर देते और फिर देखते कि सन्तोषजनक उत्तर दिया जाता है वा नहीं। उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि में कोलब्रुक की पुस्तक 'दि वेदाज़', चार्ल्स कौलमैन की 'हिन्दू आफ़ एंशेण्ट संस्कृत लिटरेचर' से निम्न उद्धरण दिये जाते हैं—

१—साधारण रीति से देखने से ज्ञात हो जाता है कि वेद के देवता उतने ही थे जितनों को प्रार्थनाओं के रचयिताओं ने आहूत किया है, परन्तु भारत की पवित्र पुस्तक के अति प्राचीन भाष्यों के अनुसार वे अनगिनत मनुष्यों और पदार्थों के नाम तीन देवताओं में घट जाते हैं और अन्ततः एक ईश्वर में। निघण्टु या वैदिक शब्द-तालिका देवताओं की तीन सूचियों में समाप्त हो जाती है, पहले वे जो आग के समानार्थक

§ यह उत्तर ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार ग्रन्थ में पृष्ठ ७०—७४ तक छपा है, वहाँ कुछ विस्तार से है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, दूसरे वे जो वायु के तीसरे वे जो सूर्य के। निरुक्त के अन्तिम भाग में जिसमें देवताओं का ही वर्णन है ये दोनों वर्णन आये हैं कि सब तीन देवता हैं और ये एक ईश्वर को ही प्रकट करते हैं, और यह वेदों के कई मन्त्रों से सिद्ध होता है, और यह स्पष्ट और खुले रूप से वेद के इंडेक्स में निरुक्त और वेद के प्रमाण से प्रकट किया है इससे प्रकट होता है (-------) कि भारत का पुराना धर्म जोकि भारत की पवित्र पुस्तक पर अवलम्बित है, केवल एक ही ईश्वर को मानता है।

२—हिन्दुओं के पूर्वपुरुषों का धर्म जो वेद प्रकट किया गया है वह महान् और केवल एक ईश्वर में विश्वास और उसकी उपासना है जो सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, जिसके गुण वेद आतङ्कोत्पादक शब्दों में प्रकट करता है। यह गुण वह कहता है कि आलङ्कारिक हैं जो केवल अलङ्कार के रूप में उसकी तीन प्रकार की शक्तियों—सर्जन, धारण, संहरण—को प्रकट करते हैं।

३—यह उच्च बातें हमें विश्वास दिलाने से नहीं रोक सकतीं कि वेद केवल एक ईश्वर को मानता है जो कि सर्वशक्तिमान्, अनन्त, अनादि, स्वयम्भू और सब सृष्टि का स्वामी है। मैं एक और सूक्त उद्धृत करता हूँ कि जिसमें ईश्वर के एकत्व को बल के साथ और खुले तौर पर वर्णन किया गया है कि जो आर्यजाति के स्वाभाविक एकेश्वरवादी न कहने से पहले हमें संकोच में डाल देता है।

४—इसी सूक्त में एक और मन्त्र है कि जो खुले तौर पर एक ईश्वर के अस्तित्व को प्रकट करता है। "वह ईश्वर कई नामों से पुकारा जाता है। मेधावी पुरुष उसे इन्द्र, मित्र, वरुण कहते हैं, फिर वह अच्छे पंखोंवाला (सुपर्ण), दिव्य, गरुत्मान् है। उस एक को मेधावी पुरुष कई प्रकार से कहते हैं—अग्नि, यम, मातरिश्वा§"।

मिस्टर टानी प्रिंसिपल प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता—मिस्टर टानी ऋग्वेद के पहले मन्त्र में अग्नि शब्द का अनुवाद 'आग' करते हैं, परन्तु उन्हें उनकी पूर्व स्थिरीकृत सम्मति भ्रम में डालती है कि आग भी उपासना की वस्तु है। अग्नितत्त्व की उपासना कभी किसी ऋषि ने नहीं की। अग्नि शब्द प्राकृतिक अग्नि के अर्थों में केवल उन्हीं मन्त्रों में आता है जिनमें सांसारिक व्यवहार का वर्णन है, परन्तु अन्य मन्त्रों में जिनमें प्रार्थना, उपासना का वर्णन है यह ईश्वर का एक नाम है और यह मेरी गढ़न्त वा कल्पना नहीं है, प्रत्युत इसके दोनों अर्थ ब्राह्मणों और निरुक्त में स्पष्टतया प्रकट हैं। अन्त में मिस्टर टानी ने यह सम्मति दी है कि मेरा वेदभाष्य सायण और अंग्रेज़ी के भाष्यों का खण्डन करता है। इसके कारण मुझपर कोई दोष नहीं आ सकता। यदि सायण ने भूल की है और अंग्रेज़ी अनुवादकर्त्ताओं ने उसे अपना मार्गदर्शक बनाना अच्छा समझा है तो यह भ्रान्ति अधिक समय तक नहीं रह सकती, केवल सचाई ही ठहर सकती है और झूठ उन्नतिशील सभ्यता की कसौटी पर अवश्य गिरेगा।

पण्डित गुरुप्रसाद, हैड पण्डित ओरियण्टल कॉलेज, लाहौर—

पण्डितजी कहते हैं कि छापनेवाले ने वही छाप दिया जो उसे दिया गया। यह लिखना ऐसा ही है कि छापेवाले की भूल भी मेरी ही भूल है।

मुझपर यह दोष लगाया है कि मैं अपना एक मत गढ़ता हूँ। मुझे शोक है कि इस बात से उनकी वेदों से अनभिज्ञता प्रकट होती है। यदि उन्होंने प्राचीन भाष्य पढ़े होते तो वे उन उक्तियों के होते हुए जो पहले दी गई हैं, ऐसा कभी न कहते।

---

§ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
—ऋ० १।१६४।४६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुझपर यह दोष लगाया जाता है कि मैंने, वृत्र, इन्द्र, त्वष्टा के अपने अर्थ लगाये हैं। इस आक्षेप के उत्तर में मैं उनका ध्यान वेदभाष्य के विज्ञापन§ की ओर दिलाता हूँ जिसमें इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या की गई है, और जिसकी एक प्रति साथ में नत्थी है यह केवल उनकी प्राचीन संस्कृत की अनभिज्ञता का परिणाम है।

वे मेरी व्याकरण की अशुद्धि निकालते हैं। मुझपर परस्मैपद के स्थान में आत्मनेपद के प्रयोग का दोष लगाते हैं। इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि वह व्याकरण की बातों में अत्यन्त भूल में हैं मैंने कैयट, नागेश, रामाश्रय आचार्य, अनुभूतिस्वरूपाचार्य के चार वाक्य-खण्ड दिये हैं जो मेरे 'वेदमधीमहि' के प्रयोग का ठीक होना प्रकट करते हैं। 'वदामहे' के प्रयोग के लिए पाणिनि की अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के तीसरे पाद के ४७वें सूत्र‡ का प्रमाण दिया है।

जो लक्षण छन्दों का मैंने लिखा है इसपर भी आक्षेप है। उनके ये सब आक्षेप हास्यजनक हैं। यदि मैं अपने कथन के लिए प्रमाण दूँ तो यह छोटा-सा खर्रा भर जाएगा। मैं पिङ्गल के सूत्रों से केवल एक उपयुक्त प्रमाण देने पर ही सन्तोष करूँगा और उसके भाष्यकर्त्ता भट्ट हलायुध से एक उदाहरण दूँगा। ------

पं० हृषीकेश, सेकण्ड टीचर ओरिएण्टल कॉलेज लाहौर—

ऐसा ज्ञात होता है कि पं० हृषीकेश ने पं० गुरुप्रसाद का पदानुसरण किया है। जिनके आक्षेपों का उत्तर दे दिया गया है। वे 'उपचक्रे' शब्द पर आक्षेप करते हैं। मैं इस बात को प्रकट करने के लिए कि मेरा प्रयोग ठीक है, केवल पाणिनि अ० १। पा० ३। सू० ३२† का प्रमाण देता हूँ।

पं० भगवान्दास, प्रोफेसर संस्कृत कॉलेज लाहौर—

पं० भगवान्दास किसी नई बात का उल्लेख नहीं करते और इसलिए जो कुछ मैं पहले कह चुका हूँ उसी की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ।

अन्त में मुझे यह कहने की आज्ञा हो कि इन सारे आक्षेपों का बल मेरे वेदभाष्य के विद्यालयों में प्रचरित होने के विरुद्ध लगाया गया है, परन्तु मेरे न्याय-विधाता बड़ी भूल करते हैं। मेरा वेदभाष्य महाभारत से पहले के भाष्यों के प्रमाणों द्वारा यूरोपीय विद्वानों के भाष्यों के विरुद्ध अन्वेषण की प्रबल सामग्री उपस्थित करेगा जो सत्य को प्रकट करेगा और विद्यालयों के चरित्रसम्बन्धी स्वर को उन्नत करेगा। यतः यह ऐसा करेगा, इसलिए यह सरकार की पृष्ठ-पोषकता का अधिकारी है।

पञ्जाब सरकार ने स्वामीजी के निवेदन-पत्र को पश्चिमोत्तर प्रदेश, बंगाल, काशी और मद्रास में सम्मत्यर्थ भेज दिया, परन्तु इन सबने भाष्य के विरुद्ध सम्मति दी जैसाकि उपरि-लिखित से प्रकट होता है। यतः उन्हें सायण, महीधर के भाष्यों के पक्ष में दुराग्रह था, सफलता न हुई।

आर्यसमाज की ओर से पत्र—२५ अगस्त सन् १८७७ को आर्यसमाज लाहौर के कपितय सभासदों ने भी एक आवेदन-पत्र पञ्जाब सरकार की सेवा में भेजा था¶ जिसमें यह दिखाते हुए कि किस प्रकार वेद के अभ्यास में महाभारत के पश्चात् बौद्धधर्म के प्रचार और पौराणिक शिक्षा के विस्तार तथा मुसलमानों के अत्याचार के कारण उत्तरोत्तर न्यूनता आती गई थी और कि सायण आदि के भाष्य इसी काल की प्रसूति होने के कारण पौराणिक विचारों से पूर्ण हैं, निम्नलिखित कारण दयानन्द वेदभाष्य की सहायता करने के लिए

---

§ यह विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार ग्रन्थ पृष्ठ ३६—४७ तक छपा है।

‡ **भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः॥** —अ० १।३।४७

† **गन्धनावक्षेपण --------- कथनोपयोगेषु कृञः।** —अ० १।३।३२

¶ यह आवेदन-पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार ग्रन्थ पृष्ठ ६३-६६ तक छपा है। पाठक उसे अवश्य देखें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दर्शाये थे—

१—यदि भारत वाङ्मय नैसर्गिक रीति पर चले तो अवश्यमेव वेदों से आरम्भ होगा और इसलिए वेदों का प्रचार अत्यन्तावश्यक है।

२—इस वेदभाष्य के प्रकाशित होने से जो खोज का भाव उत्पन्न होगा उसकी उन्नति में सहायता होगी।

३—वेदविद्या का प्रसार हिन्दू मस्तिष्क को मिथ्या विश्वास और अविद्वानोचित हठ से मुक्त करेगा।

४—स्वामी दयानन्द का भाष्य बड़े प्रबल प्रमाणों की भित्ति पर है, जिन प्रमाणों को यूरोपीय विद्वान् भी स्वीकार करते हैं, यद्यपि वे उन्हें अभी तक काम में नहीं लाते।

५—यतः स्वार्थपर ब्राह्मणों और भ्रान्तिपूर्ण अभिज्ञता रखनेवाले यूरोपीय विद्वानों से सम्प्रति निष्पक्ष सम्मति मिलने की आशा नहीं है, इसलिए इस दशा में उक्त भाष्य को परीक्षा का अवसर मिलना चाहिए।

इस पत्र में उन्होंने यूरोपीय विद्वानों के अधूरे वैदिक ज्ञान को प्रकट करने के लिए यह भी दिखाया था—

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः॥
उत नः सुभगा अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥ —ऋ० १।४।५,६

इन मन्त्रों के छह विद्वानों ने छह प्रकार से भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं, ऐसी अवस्था में किसे ठीक माना जाए। मैक्समूलर ने अपने अनुवाद के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है कि मेरा अनुवाद कई जगह शुद्ध करने योग्य है। इसके विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने अपने अर्थों को वेदों, ब्राह्मणों, निरुक्त, निघण्टु, अष्टाध्यायी आदि के प्रमाणों और प्रबल युक्तियों से सिद्ध किया है§।

परन्तु सरकार में कुछ सुनवाई न हुई और ऋषिभाष्य की सहायता में एक झंझी न मिली। क्या यूरोप के और क्या भारत के सभी विद्वान् सायण, महीधरादि के क्रीतदास हैं। वे अपने और अपने गुरुओं के विरुद्ध दयानन्द की बातें कैसे सुनते और सरकार को सुनने देते? फिर भारत के विद्वानों की बपौती कैसे रहती जो सायणादि अपने असत् भाष्यों द्वारा स्थापित कर गये हैं! और यूरोपीय विद्वानों की तो बिल्कुल ही किरकिरी हो जाती, जन्म-जन्म का परिश्रम मिट्टी में मिल जाता। फिर उन्हें संसार को वेदों के विषय में मिथ्या बातें कहने और प्रचार करने का अवसर कैसे प्राप्त रहता और यह भ्रम कैसे फैलाते कि प्राचीन आर्य आग, पानी, वायु, सूर्य, चन्द्र की उपासना करते थे, आदि।

विद्वानों ने दयानन्द के भाष्य को तिरस्कारा सही, परन्तु समय आ चुका है कि जब स्वयं उनमें से ही ऐसे लोग उत्पन्न होंगे जो दयानन्द के चरणों में बैठने में अपना गौरव समझेंगे और ऋषिभाष्य के आगे नवीन कालीन सभी भाष्यों को हेय समझेंगे।

तुम विवाह न करना—लाहौर की स्थिति के समय कॉलेज के कुछ विद्यार्थी महाराज के पास संस्कृत पढ़ने आया करते थे, उनमें एक नवयुवक गणपतिराय भी था। उससे महाराज ने कहा था कि तुम विवाह न करना, क्योंकि तुम्हारी आयु ३० वर्ष के भीतर है। उसने यह सुनकर विवाह का विचार त्याग दिया, परन्तु फिर पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के आग्रह पर उसे विवाह करने पर विवश होना पड़ा, किन्तु वह २८ वर्ष की आयु में ही मृत्यु का ग्रास हो गया। उसने मरण समय कहा कि स्वामीजी ने पहले ही कह दिया था कि मेरी आयु अल्प है, इसी से मैं विवाह नहीं करना चाहता था। यह घटना स्वयं उसके भाई ताराचन्द

§ दयानन्द-प्रकाश में स्वामीजी का पञ्जाब के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर से वेदभाष्य की सहायता के लिए मिलना और प्रार्थना करना, सन् १८७८ की घटना बताई गई है। यह सत्य नहीं है। —संग्रहकर्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने पण्डित लेखराम से वर्णन की थी जो मुज़फ़्फ़रपुर में पुलिस विभाग में क्लर्क थे।

सनातनधर्मरक्षिणी सभा—मूर्त्तिपूजक ब्राह्मणों के नेता पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी थे। उन्होंने महाराज के आक्रमणों से मूर्त्तिपूजा आदि की रक्षा करने के लिए सनातनधर्मरक्षिणी सभा स्थापित की थी जिसमें उनके सहायक पण्डित भानुदत्त थे। इन भानुदत्तजी की कथा मनोरञ्जक है और उससे पता लगता है कि स्वार्थ में फँसकर मनुष्य कहाँ तक गिर सकता है।

पण्डित भानुदत्त की कलाबाज़ी—उनके विषय में ब्राह्मसमाज लहौर के समाचारपत्र 'बिरादरे हिन्द' भाग ३ के अङ्क ६ के पृष्ठ १८२—१८६ में निम्न प्रकार लिखा गया था—

"---पण्डित भानुदत्त एक ऐसी सभा (सत्सभा) के आचार्य थे, जिसका उद्देश्य प्रकट में लोगों में निराकार ईश्वर की उपासना का प्रचार करना था और वे स्वयं भी यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों में इस विचार के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे कि वे मूर्त्तिपूजा के मार्ग को अच्छा नहीं जानते हैं और आरम्भ में जब स्वामी दयानन्द यहाँ पधारे तो ये उनके यहाँ भी आते-जाते थे। सभा के समस्त पण्डितों ने एक मुख होकर उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि जान पड़ता है कि आप भी पण्डित दयानन्द सरस्वती का मत रखते हो। पण्डितों का यह कहना था कि पण्डितजी घबराये और बोले कि मेरा मत उनके अनुकूल क्यों होने लगा, मेरा मत वही है जो आप लोगों का है, अतः आप यदि उनके प्रतिकूल कुछ कहलाना चाहें तो मैं हृदय से आपकी सहायता के लिए उपस्थित हूँ। इस बात को सुनकर सब उपस्थितगण प्रसन्न हो गये और पण्डितजी सभा के मन्त्री नियत किये गये हैं।"

"जब पण्डितजी के उस सभा में, जिसका उद्देश्य मूर्त्तिपूजा को स्थिर रखना और वेदों से उसे विहित सिद्ध करना है, सम्मिलित होने की सूचना लोगों को मिली तो उनके सुशिक्षित मित्रों को, जो उनके विचारों को भली प्रकार जानते थे, अत्यन्त आश्चर्य हुआ। विशेषतः हमें आश्चर्य के अतिरिक्त दुःख भी हुआ, क्योंकि पण्डितजी हमारे बड़े कृपालु मित्र थे और जब कभी हमारा उनसे इस विषय में वार्त्तालाप होता था तो वे मूर्त्तिपूजा का समर्थन न करते थे, यहाँ तक कि कुछ दिन हुए उन्होंने हमसे यह भी कहा था कि पण्डित दयान्द सरस्वती चाहते हैं कि मैं उनके साथ रहूँ और प्रचारक के रूप में उनके साथ-साथ लोगों को उपदेश देने के इस जातीय कार्य में उनका समर्थक और सहायक बनूँ, परन्तु मैं पारिवारिक मोह में कुछ ऐसा फँसा हुआ हूँ कि यद्यपि वे मेरे और मेरे परिवार के निर्वाह का पर्याप्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं और मेरा हृदय भी इस कार्य को बहुत चाहता है तथापि मुझमें इतना साहस उत्पन्न नहीं हुआ कि मैं इस उत्तम कार्य में उनका सहायक बन सकूँ।"

अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ—एक दिन पण्डित मथुरादास वेदान्ती से महाराज का वेदान्त के महावाक्यों पर वार्त्तालाप हुआ। महाराज ने कहा कि 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्य वेदों में नहीं आया है, प्रत्युत उपनिषद् में आया है और वहाँ भी यदि उसे अगले शब्दों से मिलाकर पढ़ा जाए तो यह आशय नहीं निकलता कि जीव ब्रह्म है, जिससे पण्डितजी का सन्तोष हो गया।

शिवनारायण अग्निहोत्री का असद् व्यवहार—एक दिन महाराज भाई दत्तसिंह वेदान्ती से वार्त्तालाप कर रहे थे, पं० शिवनारायण अग्निहोत्री भी वहाँ उपस्थित थे। एक अवसर पर पण्डितजी बोल उठे कि स्वामीजी उत्तर न दे सके और हार गये। महाराज ने कहा कि बताइए हमने क्या कहा था ?

पण्डितजी ने कुछ कहा।

स्वामीजी—(भाई दत्तसिंह को सम्बोधन करके) क्या हमने यही कहा था ?

भाई—आपने यह नहीं कहा, पण्डितजी ने कुछ नहीं सुना।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी—भला बताइए तो सही भाई दत्तसिंहजी ने क्या कहा था ?

पण्डितजी फिर कुछ बोले।

भाई—मैंने यह नहीं कहा।

स्वामीजी—पण्डितजी ! आप बिना सोचे-समझे सम्मति दे देते हैं।

इसपर पण्डित शिवनारायण अप्रसन्न हो गये।

स्वामीजी का विस्तृत साहित्य-ज्ञान—महाराज का संस्कृत के धार्मिक साहित्य का ज्ञान कितना विस्तृत§ था और उन्हें कितने ग्रन्थ उपस्थित थे, इसका प्रमाण निम्नलिखित घटनाओं से मिलता है—

सामवेद में उल्लू की कहानी—एक दिन पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री ने आक्षेप किया कि सामवेद में उल्लू की कहानी है। महाराज ने कहा कि नहीं है और उन्हें सामवेद की पुस्तक देकर कहा कि यदि है तो इसमें दिखा दो। कुछ देर तक पुस्तक देखकर बोले कि इसमें तो नहीं मिलती। इसपर महाराज तो चुप रहे, परन्तु अन्य लोगों ने पण्डितजी को बहुत लज्जित किया।

मनुस्मृति में मूर्त्तिपूजा—ऐसे ही एक बार मूर्त्तिपूजा पर बातचीत करते हुए एक पण्डित ने मूर्त्तिपूजा के समर्थन में एक श्लोक पढ़कर कहा कि मनुस्मृति में मूर्त्तिपूजा का विधान है। महाराज ने कहा कि यदि मनुस्मृति में यह श्लोक न निकला तो क्या आप मूर्त्तिपूजा छोड़ देंगे और मनुस्मृति की पुस्तक देकर उन्हें कहा कि इसमें से उक्त श्लोक निकालकर दिखाइए। पण्डितजी ने कहा कि हम आपकी पुस्तक का प्रमाण नहीं करते अपनी पुस्तक में देखेंगे। तीसरे दिन पण्डितजी फिर महाराज के पास आये। महाराज ने उनसे प्रश्न किया कि आपकी पुस्तक में वह श्लोक निकला वा नहीं तो पण्डितजी को मानना पड़ा कि वह मनुस्मृति का नहीं था।

योगवासिष्ठ में मूर्त्तिपूजा—इसी प्रकार एक बार एक पण्डित ने एक श्लोक पढ़कर महाराज से कहा कि देखिए योगवासिष्ठ में मूर्त्तिपूजा की आज्ञा है। महाराज ने कहा कि यद्यपि हम योगवासिष्ठ को प्रामाणिक नहीं मानते, परन्तु आपके श्लोक में आधा योगवासिष्ठ का है और आधा अन्य किसी का रचित है। योगवासिष्ठ को देखा गया तो ऐसा ही पाया गया।

मृतकश्राद्ध पर वेदमन्त्र—एक दिन एक पण्डित ने वेद का **'आ यान्तु नः पितरः सोम्यासः'** आदि मन्त्र पढ़कर मृतकश्राद्ध को वैदिक सिद्ध करने की चेष्टा की। महाराज ने उसके अर्थ करके बतलाया कि इसका मृतकश्राद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसपर पण्डितजी को और कोई उत्तर तो बन न आया, केवल इतना कहा कि आपके अनुयायियों में से एक भी ऐसा नहीं है जो एक मन्त्र भी शुद्ध पढ़ सके। इसे सुनकर पं० बिहारीलाल शास्त्री ने पण्डितजी का उद्धृत मन्त्र शुद्ध पढ़कर सुना दिया और स्वयं पण्डितजी के उच्चारण की अशुद्धियाँ प्रकट कर दीं।

स्त्रियों को उपदेश—एक दिन दोपहर के समय कुछ स्त्रियाँ महाराज के दर्शन करने आईं और पूछा कि ज्ञान और शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। महाराज ने उत्तर दिया कि **तुम्हारे पति ही तुम्हारे गुरु हैं। उन्हीं की सेवा किया करो, किसी साधु को गुरु मत बनाओ, विद्या पढ़ो।** अपने पतियों को हमारे पास भेजा करो और उनके द्वार हमारे उपदेश से लाभ उठाया करो।

---

§ ऋषि दयानन्द ने भ्रान्ति-निवारण में लिखा है—"मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ।"

जिस व्यक्ति ने तीन हज़ार ग्रन्थ प्रामाणिक चुने हों उसने कितने हज़ार ग्रन्थ पढ़े होंगे यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मचरित वर्णन—महाराज ने कई दिन तक डॉक्टर रहीमखाँ की कोठी में अपने जीवन की घटनाएँ वर्णन की थीं, जिनमें से निम्नलिखित तीन घटनाएँ दयानन्द-प्रकाश में लिखी हैं—

सिंह मुझे देखकर मुँह फेर कर चला गया—एक बार गङ्गा तट पर विचरते हुए स्वामीजी एक सघन वन में जा निकले। वहाँ उन्हें सामने से एक सिंह आता हुआ दिखाई दिया। वे सीधे चलते रहे जब वह उस सिंह के निकट पहुँचे तो उसने उनकी ओर देखकर मुँह फेर लिया और जंगल में घुस गया।

पर्णकुटी में आग लगा दी—एक बार महाराज एक पर्णकुटी में निवास करते थे। समीप ही कुछ साधुओं का भी डेरा था। वे साधु उनसे अकारण वैर रखते थे। एक दिन रात्रि के समय जब घोर अन्धकार छाया हुआ था, वे पर्णकुटी के पास गये और स्वामीजी का वध करने का परामर्श करने लगे। स्वामीजी ने भी उनकी बातें सुन लीं। उन लोगों ने थोड़ी देर पीछे कुटी में आग लगा दी। जब वह जलने लगी तो स्वामीजी छप्पर को उठाकर बाहर निकल आये।

पान में विष—एक दिन महाराज काशी में व्याख्यान दे रहे थे कि एक ब्राह्मण ने उन्हें पान लाकर दिया। उन्होंने सरल स्वभाव से लेकर खा लिया। खाते ही उन्हें ज्ञात हो गया कि उसमें विष था। तब उन्होंने वमन द्वारा विष को शरीर से निकाला।

आर्यसमाजियों की कर्त्तव्यच्युति—दुःख है कि किसी को उस समय इतनी बुद्धि न हुई जो उन घटनाओं को लिख लेता। सम्भव है उनमें उपर्युक्त घटनाओं के समान बहुत-सी घटनाएँ ऐसी हों जिनका उल्लेख महाराज के स्वलिखित आत्मचरित में न आया हो। आर्यसमाजियों की ओर से इस विषय में जो कर्तव्यच्युति हुई है वह कदापि क्षन्तव्य नहीं है। यदि पूना के सज्जनों ने वहाँ वर्णित किये हुए महाराज के चरित को लिपिबद्ध न किया होता और कर्नल आल्काट के अनुरोध पर महाराज ने आत्मचरित न लिखा होता तो आज संसार उनके उपदेश-युग के पूर्व के वृत्तान्त के ज्ञान से सर्वथा वञ्चित रह जाता, अतः पूना के सज्जन और कर्नल आल्काट सदैव के लिए आर्य-जनता के धन्यवाद के पात्र रहेंगे।

उपदेश का प्रभाव—लाहौर में भी महाराज के मूर्त्तिपूजा के खण्डन का वही प्रभाव और परिणाम हुआ जो अन्य स्थानों में हुआ था। अनेक लोगों का विश्वास मूर्त्तिपूजा पर से उठ गया, अनेक लोगों ने अपनी देव-मूर्त्तियों को फेंक दिया, कितनों ने रावी नदी में डाल दिया। इन्हीं लोगों में एक जन लाला बालकराम खत्री थे, जिन्होंने अपने ठाकुरों की चौकी बाज़ार में पटक दी थी।

आर्यसमाज लाहौर की स्थापना—जब महाराज के दो मास के उपदेशों से श्रोताओं की शङ्काएँ निर्मूल हो गईं तो वैदिक धर्म में उनकी श्रद्धा बढ़ी और उनकी रुचि आर्यसमाज स्थापित करने की हुई। महाराज ने भी यह अनुरोध किया कि वैदिक धर्म की उन्नति के लिए आर्यसमाज का नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में स्थापित होना आवश्यक है। श्रद्धालु जनों ने इस प्रस्ताव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् १९३४ वि० तदनुसार तारीख २४ जून सन् १९७७ को आर्यसमाज लहौर की स्थापना हो गई। इसकी स्थापना डॉक्टर रहीमखाँ की कोठी में हुई। पहले महाराज ने ईश्वरोपासना की और फिर हवन हुआ। तत्पश्चात् नियमपूर्वक आर्यसमाज की नींव रक्खी गई। लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि आर्यसमाज के जो नियम मुम्बई में बने थे वे संख्या और विस्तार में अधिक थे और उनमें कितनी ही बातें ऐसी थीं जो उपनियमों में जानी चाहिएँ थीं, क्योंकि वे आर्यसमाज के उद्देश्य और मन्तव्य से नहीं प्रत्युत आर्यसमाज के संगठन और सदस्यों के परस्पर व्यवहार से सम्बन्ध रखती थीं, अतः महाराज ने उनका संशोधन करना उचित समझा और उनके स्थान में निम्नलिखित दस नियम प्रचरित किये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज के नियम—

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

कई लोग कहते हैं कि महाराज ने इन नियमों का निर्माण अन्य सज्जनों की सहायता और मन्त्रणा से किया था, परन्तु उनकी यह धारणा असत्य है।§

आज यही नियम सब आर्यसमाजों में प्रचलित हैं और दयानन्दप्रवर्तित आर्यसमाज वही है, जो इन नियमों को स्वीकार करता हो।

सत्सभावाले रुष्ट हो गये—आर्यसमाज लहौर का दूसरा अधिवेशन १ जुलाई सन् १८७७ को सत्सभा के स्थान पर हुआ। उसमें महाराज ने पुराणों का बड़ी प्रबल युक्तियों से खण्डन किया और उनकी वेद-विरुद्ध बातों को दर्शाकर उनकी समीक्षा की। इसपर सत्सभावाले रुष्ट हो गये और ३ जुलाई सन् १८७७ ई० को आर्यसमाज लाहौर की अन्तरंग सभा के सदस्यों को एक पत्र लिखा कि "स्वामीजी ने गत रविवार को अपने व्याख्यान में शास्त्रों और पुराणों को मानना अविहित बताया है और यह बात सत्सभा के सिद्धान्तों के विरुद्ध है, बल्कि इसी कारण से कई लोगों में झगड़ा खड़ा हो गया है और साधारण दुकानदार लोग जो सत्सभा के सिद्धान्तों पर अपना विश्वास रखने लगे थे, इस बात को सुनने और देखने से फिरे हुए दिखाई देते हैं और जो सत्सभा स्थापित हुई है सर्वथा जनसाधारण की भलाई के उद्देश्य से है, अतः आर्यसमाज की अन्तरंग सभा से निवेदन है कि अगले रविवार को उस समाजवालों की जो उपासना इस

§ दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि ब्राह्मसमाज के सभासदों ने महाराज से कहा था कि यद आप तीसरा नियम न रक्खें तो हम भी आर्यसमाज में सम्मलित हो सकते हैं। महाराज ने उनके कथन को स्वीकार नहीं किया।

राय मूलराज ने महाराज को सम्मति दी कि तीसरे नियम में जो यह वाक्य लिखा है कि वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, इसमें से यदि सत्य शब्द निकाल दिया जाए तो नियम बहुत व्यापक हो जाएगा और किसी को आर्यसमाज में प्रवेश करने में संकोच न होगा, परन्तु स्वामीजी ने उनकी बात नहीं मानी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मकान में एकत्र होकर नियत की गई है, किसी अन्य मकान में की जावे..... ।"

आर्यसमाज की उन्नति—जब सत्सभा ने आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों के लिए अपना स्थान देने से निषेध कर दिया तो अनारकली मुहल्ले में एक मकान बीस रुपये मासिक किराये पर लिया गया और उसमें अधिवेशन होते रहे । आर्यसमाज के सभासदों की संख्या अल्प समय में ही १०० तक पहुँच गई और जुलाई के अन्त से पहले-पहले ३०० के लगभग हो गई ।

मैं आर्यसमाज का संरक्षक नहीं बन सकता—महाराज अपने स्थितिकाल में आर्यसमाज में बहुधा व्याख्यान देते रहे । एक दिन बा० शारदाप्रसाद भट्टाचार्य ने अन्य सभासदों की अनुमति से आर्यसमाज के अधिवेशन में यह प्रस्ताव किया कि महाराज को आर्यसमाज लाहौर के संरक्षक वा अधिनायक की पदवी दी जाए, अन्य सभासद् भी सहमत हो गये, परन्तु महाराज ने उसे अस्वीकार किया और कहा कि इसमें गुरुपन की गन्ध आती है और मेरा उद्देश्य ही गुरुपन को तोड़ने का है, न कि स्वयं गुरु बनकर एक नया पन्थ स्थापित करने का । यदि कल को इस पदवी से मेरा ही मस्तिष्क फिर जाए अथवा ऐसा न हो और मेरा स्थानापन्न घमण्ड में आकर कोई अन्यथा कार्य करने लगे तो तुम लोगों को बड़ी कठिनता होगी और वही दोष उत्पन्न हो जाएँगे जो दूसरे नवीन पन्थों में हो गये हैं ।

परम सहायक की पदवी भी अस्वीकृत—इसके पश्चात् यह प्रस्ताव हुआ कि महाराज को आर्यसमाज लहौर के परम सहायक की पदवी दी जाए । इसे भी महाराज ने अस्वीकार किया और कहा कि यदि मुझे परम सहायक मनोगे तो उस जगदीश, जगद्गुरु, सर्वशक्तिमान् को क्या मनोगे ? अन्त में सभासदों के आग्रह पर आपने साधारण सहायक (सभासद्) बनना स्वीकार किया और अन्य सभासदों की भाँति आपका शुभ नाम भी सभासदों की सूची में अङ्कित किया गया ।

उपासना धर्म का निरादर न करो—एक दिन महाराज आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में पधारे। उस समय ईश्वरोपासना हो रही थी । महाराज को आता देखकर सब लोग सम्मान प्रदर्शनार्थ खड़े हो गये। उपासना की समाप्ति पर महाराज ने उपदेश दिया कि उपासनाकाल में उपासक ईश्वर के सत्सङ्ग में मग्न होते हैं । ऐसे समय में कोई कितना ही बड़ा मनुष्य आये उपासकों को खड़ा न होना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है, ऐसा करने से [उपासना के समय खड़ा होने से] उपासनाधर्म का निरादर होता है ।

दयानन्द का वास्तविक स्वरूप—संसार में कितने लोगों ने अपने को ईश्वर का सन्देशहर कहकर अपने नाम से पन्थ चलाये और आज उनके लाखों-करोड़ों अनुयायी दृष्टिगोचर होते हैं । कितनों ने गुरु बनकर अपने चेले-चेलियों की बुद्धि की आँखों पर पट्टी बाँधी और उनका तन, मन और धन हड़प किया। कोई-कोई तो इतने बढ़े कि स्वयं परमेश्वर बन बैठे और लाखों मनुष्यों को अज्ञान के घोर अन्धकार में धकेल दिया । एक ओर ये लोग हैं और एक ओर दयानन्द है, लोग उसे गुरु बनाना चाहते हैं और वह इन्कार करता है और उन्हीं के समान धर्म का साधारण सेवक कहलाने में ही सन्तुष्टि लाभ करता है । हम देखते हैं कि योग की अति साधारण क्रियाओं के द्वारा कई लोग गुरु बने बैठे हैं और शिष्य-मण्डली के हृदय और मस्तिष्क के स्वामी बने हुए हैं, परन्तु एक दयानन्द है जो पूर्ण योगी, पूर्ण विद्वान् होता हुआ भी गुरु बनने से भागता है । निःस्पृहता, निरभिमानता की पराकाष्ठा है । यह है दयानन्द का वास्तविक स्वरूप। दयानन्द जो कुछ था वह औरों के लिए अपने लिए कुछ नहीं । फिर हम श्रद्धा-भक्ति से नमस्कार क्यों न करें, क्यों उसके चरण-रज को मस्तक पर लगाकर अपने को गौरवान्वित न समझें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द की निर्लेपता—दयानन्द की वेशभूषा के विषय में हम कलकत्ता के 'ब्राह्मपत्र' धर्मतत्त्व १ आग्रहायण शाके १७९९ के अङ्क से एक उद्धरण देते हैं, जिसमें लेखक ने दयानन्द के वेष आदि के सम्बन्ध में कुछ शङ्का की थी—

"पण्डित दयानन्द सरस्वती के बाह्य वेष और आचार-व्यवहार में बुहत परिवर्तन हो गया है। इस समय वे अन्य हिन्दू-संन्यासियों के समान नहीं हैं। भद्रलोक के समान खान-पान और भद्र परिच्छद व्यवहार करते हैं। स्वामीजी का इस प्रकार का घोर परिवर्तन कहाँ तक मङ्गलप्रद होगा यह भविष्यत् के गर्भ में छिपा हुआ है।"

जो लोग दयानन्द के चरित्र से पूर्णतया अभिज्ञ न थे वे ही उनके रहन-सहन में इस प्रकार के परिवर्तन से यह शङ्का करने लगे थे कि स्वामी दयानन्द सांसारिक बन्धनों में फँसकर वैराग्य-पथ से विचलित हो जाएँगे। उनकी यह शङ्का सर्वथा निर्मूल थी। दयानन्द जैसा दिगम्बर अवस्था में था वैसा ही वस्त्र धारण करने की अवस्था में था। वह पूर्ण ज्ञानी और योगी था। उसके हृदय को संसार का वैभव विडोलित नहीं कर सकता था। जब उसे उसके भक्त दिव्य व्यञ्जन खिलाते थे वह तब भी खिचड़ी खाकर अक्षुण्ण भाव से रह सकता था। बड़ौदा में नर्म तकियों, गदेलों और पर्यङ्कों के होते हुए भी वह केवल दरी पर भूमि में शयन कर सकता था। उसे संसार की कौन-सी सम्पत्ति विचलित कर सकती थी? भर्तृहरि के अनुसार वह मनस्वी था, कार्यार्थी था। जो न दुःख को गिनता था न सुख को, वह चिथड़े भी पहन सकता था और दिव्य वस्त्र भी धारण कर सकता था और पर्यङ्क पर भी सो सकता था§। दयानन्द तो पद्मपत्र के समान था। वह संसार के भोगों और प्रलोभनों के क्लेद को प्राप्त न होता था।

दयानन्द के कार्य की आलोचना—लाहौर में श्रीमहाराज के प्रचारकार्य तथा उसके फल के सम्बन्ध में तत्कालीन समाचारपत्रों में जो सम्मतियाँ प्रकट हुई उनमें से कुछ के अंश को हम नीचे उद्धृत करते हैं—

१ जुलाई सन् १८७७ ई० के 'बिरादरे हिन्द' तथा 'ब्राह्म समाचारपत्र' ने लिखा था—

"उनके विचार अधिकांश में विस्तृत हैं और उनका अधिक भाग इस समय के विद्यासङ्गत विचारों के अनुकूल है। उनका मस्तिष्क अत्यन्त उन्नतिशील प्रतीत होता है और यद्यपि उन्होंने संस्कृतसाहित्य के अतिरिक्त अन्य भाषा का साहित्य नहीं पढ़ा है तथापि उन्होंने इस एक ही साहित्य के द्वारा और शिक्षित प्रशस्तबुद्धि लोगों की संगति से अपने विचारों को इतना परिमार्जित और विस्तृत बना लिया है कि वे न केवल अपने सब समकालीन पण्डितों के दुराग्रहयुक्त और संकुचित विचारों के पद का अतिक्रमण करके एक सच्चे विद्वान् और प्रशस्त-प्रभ पण्डित का आदर्श बन गये है, प्रत्युत हमारे देश के अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए सर्वसाधारण के विचारों से भी किसी अंश में उत्तम विचार रखते हैं। प्रकट रूप में इस व्यक्ति के हृदय में जातीय-संवेदना और जातीय-सुधार का बहुत बड़ा उत्साह भासित होता है, यद्यपि इस समय यह कहना बहुत कठिन है कि वह उत्साह कहाँ तक स्वार्थरहित और स्वार्थ के मेल से शून्य है, क्योंकि इसका प्रमाण अनुभव पर अवलम्बित है और उसका दिखलानेवाला केवल समय है, तथापि जहाँ तक हम अनुमान कर सकते हैं उनके व्यक्तित्व से देश में बहुत-कुछ उन्नति और सुधार की आशा है। धार्मिक सुधार के सम्बन्ध में यह पुरुष मूर्तिपूजा को समूल नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं, यदि इस पुरुष को इस समय का सबसे बड़ा मूर्त्तिखण्डक कहा जाए

---

§ **क्वचिद्भूमौ शायी क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः, क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।**
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः, मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥ — भर्तृहरिः

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो अनुचित न होगा। ब्राह्मसमाज के उस धर्मसुधार सम्बन्धी शाखा का तो, जिसका सिद्धान्त हर प्रकार की मूर्त्तिपूजा को दूर करना और संसार में एक परमेश्वर की उपासना का फैलाना है, यह पुरुष एक ऐसा दिव्य दूत है कि इसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। यह पुरुष संसार में केवल धार्मिक सुधार का ही इच्छुक नहीं है, वरन् जाति की बालविवाह आदि सब बुराइयों के सुधार पर जो देश में फैल रही हैं इसकी दृष्टि है। वह स्त्रियों की शिक्षा और स्वतन्त्रता का विशेषकर इच्छुक है। उसकी यह सम्मति है कि जबतक उनमें शिक्षा का प्रसार न होगा और उन्हें ज़नाने के बन्दीगृह से मुक्ति न मिलेगी तब तक इस देश में किसी दृष्टि से आकर्षक उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। सारांश यह है कि जाति से अविद्या, हठ और दुराग्रह को दूर करना, विद्या का प्रचार करना, जाति में एकता उत्पन्न करना और उसे साधारण सभ्यता के रूप में लाकर एक अच्छा आदर्श बनाने में प्रयत्न करना, इस पुरुष का साधारण और विशेष अन्तिम ध्येय है।"

एक लेखक ने कलकत्ता के अंग्रेज़ी दैनिक 'इण्डियन मिरर' के २२ जून सन् १८७७ के अङ्क में लिखा था—

"नगर में स्वामीजी के विरोध में सभाएँ होने पर भी जिनके संयोजक और संचालक प्रायः पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी हैं, आर्यसमाज§ के सभासदों की संख्या १०० हो गई है और थोड़े-से ही दिनों में २०० हो जाएगी। पण्डित दयानन्द सरस्वती अपने व्याख्यान डॉक्टर रहीमखाँ के बँगले पर देते हैं। उनके श्रोता १०० से अधिक शिक्षित पुरुष होते हैं जिनमें से अधिकांश को स्वामीजी का पक्षसमर्थक कहा जा सकता है। उनकी शिक्षा के परिणाम के विषय में कहा जाता है कि एक भद्र पुरुष ने अपने कुल के देवी-देवताओं को उनके सिंहासन से च्युत कर दिया है। विश्वस्त सूत्र से यह भी ज्ञात हुआ है कि नगर के पण्डित, पुरोहित महिलागण को उकसा रहे हैं कि वे अपने सम्बन्धी पुरुषों को स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों में जाने से रोकें। स्वार्थपर मनुष्य स्वामीजी के विरुद्ध सब प्रकार से जनरव फैला रहे हैं, परन्तु वे यह देखकर दुखी होते हैं कि पण्डित दयानन्द श्रोताओं के मनों को वैदिक सचाइयों के ग्रहण करने के लिए तैयार कर रहे हैं। मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध उनके प्रबल और सशक्त कटाक्षों ने उनके बहुत-से शत्रु बना दिये हैं। वे कहते हैं कि ब्राह्मण भारत के अधःपतन के मुख्य कारण हैं और वे सब दोष उन्हीं पर लगाते हैं। .....परन्तु वे दो बातों के लिए ब्राह्मणों की प्रशंसा भी करते हैं अर्थात् मुसलमानों से शास्त्रों की रक्षा करने के लिए और लोगों को दूसरा धर्म ग्रहण करने से रोकने के लिए। वे ब्राह्मणों को पोप-कुटुम्ब कहते हैं, अर्थात् पोप के सम्बन्धी। यह एक नवीन शब्द है और इससे ब्रह्मणों के प्रति उनके विचार प्रकट होते हैं, जिन्होंने बदला लेने के अभिप्राय से उनपर ऐसे विचार आरोपित किये हैं जो न सच्चे ही है और न प्रशंसनीय ही। कोई-कोई कहते हैं कि वे ईसाई पादरियों के वेतन भोगी हैं और उन्होंने स्वामीजी को मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध प्रचार करने को भेजा है और कोई तो इतने गिर गये हैं कि उन्हें नास्तिक तक कहते हैं।"

फिर २३ जून सन् १८७७ ई० के उक्त दैनिक में एक लेखक ने लिखा था—

"यद्यपि शिक्षित पुरुष इस प्रशंसनीय कार्य में योग देते हैं, परन्तु नगर के ब्राह्मणों के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता जो प्रत्येक सामाजिक और धार्मिक सुधार के खुले हुए शत्रु पण्डित श्रद्धाराम के नेतृत्व में इस अल्पवयस्क समाज को जन्मते ही नष्ट करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं। उन्होंने केवल एक सभा

§ इससे ज्ञात होता है कि नियमपूर्वक आर्यसमाज के स्थापित होने से पहले ही भावी सभासदों की सूची तैयार की जा रही थी। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सनातनधर्मरक्षिणी के नाम से स्थापित की है, जिसके उद्देश्य आर्यसमाज के उद्देश्यों से सर्वथा प्रतिकूल हैं, वे पण्डित दयानन्द सरस्वती के चरित्र और उद्देश्य के सम्बन्ध में भी सब प्रकार की झूठी बातें फैला रहे हैं।"

एक लेखक ने उर्दू पत्र 'कोहेनूर' लहौर के २८ जुलाई सन् १८७७ के भाग ६ अङ्क ३३ के पृष्ठ ६४० पर लिखा था—

"पहले २-३ मासों में स्वामी दयानन्द सरस्वती जो उपदेश करते रहे हैं उसके सुनने से लोगों के हृदय में जातीय सहानुभूति का इतना उत्साह उत्पन्न हुआ कि उन्होंने २४ जून सन् १८७७ को आर्यसमाज स्थापित किया। अब इस समाज के लगभग ३०० सभासद् हैं और दिन प्रतिदिन उन्नति होती जाती है। इस समाज का वास्तविक उद्देश्य आर्यधर्म, संस्कृत और वैदिक विद्या की उन्नति और प्रचार करना है। इसी उद्देश्य से अब एक संस्कृत पाठशाला वेदों की शिक्षा के लिए खोली गई है, जिसमें सम्प्रति १०० मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। यह समाज केवल स्वामीजी के पधारने का परिणाम है। इतिहास के देखने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस २५०० वर्ष के समय में स्वामी शङ्कराचार्यजी के काल से कोई श्रेष्ठ नेता और ऋषीश्वर उत्पन्न नहीं हुआ, जो सन्मार्ग बताता।"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकोनविंश अध्याय

आषाढ़ सं० १९३४—आश्विन १९३४=जुलाई १८७७—२६ अक्तूबर १८७७

(§५ जुलाई—१७ अगस्त) **अमृतसर** (आषा० कृ० ९—श्रा० शु० ९)

जब महाराज ने लाहौर से अमृतसर जाने की इच्छा प्रकट की तो लाहौर के प्रसिद्ध रईस दयालसिंह मजीठिया अंग्रेज़ी दैनिक 'ट्रब्यून' के संस्थापक ने उनके निवास के लिए मियाँ मुहम्मदजान रईस की कोठी चालीस रुपये मासिक किराये पर ले दी। महाराज §§ जुलाई सन् १८७७ को अमृतसर जाकर उसी कोठी में उतरे। महाराज के आगमन का समाचार नगर में फैलते ही, क्या धनपति क्या निर्धन, क्या विद्वान् क्या अविद्वान्, क्या उच्चपदस्थ क्या निम्नश्रेणी के लोग सैकड़ों की संख्या में उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे। कुछ तो उनकी दिव्य और भव्य ज्योतिःस्नात मूर्त्ति के दर्शन से ही अपने को कृतकृत्य समझकर चले जाते, अधिकतर उनके उपदेशामृतपान के लिए ठहर जाते। महाराज ने उसी कोठी में व्याख्यानों का तार बाँध दिया जिनमें श्रोताओं की संख्या शतशः और सहस्रशः होती थी। विरोधीजन के हृदयों पर आरे से चलते थे, परन्तु कुछ कर नहीं सकते थे। अलीक जनरव फैलाकर मन के फफोले फोड़ते थे, परन्तु उनका यह अस्त्र भी कुण्ठित हो जाता था। जो एक बार महाराज का एक उपदेश भी सुन लेता था, उसका उद्धार हो जाता था, वर्षों की शङ्काएँ एक क्षण में इसी प्रकार उड़ जाती थीं, जैसे वायु के सामने तूल का टुकड़ा, धर्म-पिपासा जाग्रत् हो उठती थी और धर्म के तत्त्व हृदयङ्गम हो जाते थे। व्याख्यान में महाराज एक कुर्सी अपने सामने डलवा दिया करते थे ताकि व्याख्यान समाप्ति पर जिसे कोई शङ्का करनी हो वह उसपर बैठकर कर ले। एक दिन एक पण्डित आया, उससे कुर्सी पर बैठने को कहा तो वह न बैठा और स्वामीजी को सम्बोधन करके कहने लगा कि आपने मुझे नीचा आसन दिया है, मुझे भी आपके समान ही कुर्सी मिलनी चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो व्याख्यान देता हूँ, इसलिए ऊँचे आसन पर बैठा हूँ, आप यदि कुर्सी पर बैठने में अपमान समझते हैं तो कुर्सी को मेज पर रखकर बैठ जाइए। आश्चर्य है कि आप विद्वान् होकर भी बैठने में आसन के ऊँचे-नीचे होने का विचार करते हैं। क्या किसी चक्रवर्ती के मुकुट पर बैठने से मक्खी-मच्छर बड़े हो सकते हैं ?

हम ऐसी सभा में क्यों आएँ—एक दिन एक ब्राह्मण ने आकर कहा कि हम ऐसी सभा में क्यों आएँ जिसमें ऐसे विरुद्ध और अनर्थ वचन कहे जाते हैं, जैसे इस देश के ब्रह्मणों को गोदान लेने का अधिकार नहीं है, न इन्हें कोई श्लोक याद है। यदि हम दान न लें तो क्या खाक खाएँ। महाराज ने कहा कि हमने ऐसी बात नहीं कही। हमने तो यह कहा कि यतः तुम विद्वान् नहीं हो और न तुम्हें वेदमन्त्र याद हैं, अतः तुम्हें दान लेने का अधिकार नहीं है, तुम दान लेते हो और उसकी विष्ठा बना डालते हो, तुम खाक न खाओ,

§ ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार के पृष्ठ ६१ पर छपे अंग्रेज़ी के पत्र (संख्या २४) में लिखा है कि "मैं १२ जुलाई को यहाँ पहुँचा हूँ"। इसके आधार पर पं० श्री भगवद्दत्तजी ने टिप्पणी में लिखा है ५ जुलाई को अमृतसर पहुँचना ठीक नहीं है, परन्तु हमारा विचार है कि स्वामीजी ५ जुलाई को अमृतसर आकर १२ जुलाई को व्याख्यान देने के लिए लाहौर गये थे और उसी दिन वापस लौट आये थे (देखो अगला पृष्ठ) पत्र में सम्भवतः इसी अमृतसर आगमन का निर्देश है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घास खाओ। राजा दयाल साहब ने कहा कि महाराज घास तो गधे खाते हैं। महाराज ने कहा कि आपकी इनसे चुहल होगी, हमने तो साधारण रीति से कहा है। फिर वह ब्राह्मण कुछ न बोला और चला गया।

महाराज के व्याख्यानों को सुनकर लोग चकित हो उठे। सबकी जिह्वा से यही शब्द निकलते थे कि यह तो कोई अवतार आया है जो साक्षात् ईश्वरपूजा का उपदेश करता है।

१२ जुलाई सन् १८७७ रविवार को महाराज लाहौर गये और सन्ध्या समय अनारकली में आर्यसमाज में 'धर्म की आवश्यकता' और 'आर्यसमाज से लाभ' पर व्याख्यान देकर अमृतसर लौट आये।

ठाकुर-पूजा पर व्याख्यान—कुछ व्याख्यान महाराज के घण्टाघर पर भी हुए थे। उनमें से पहले में उन्होंने ठाकुरव्रत के विषय में कहा था कि यह तो भीख माँगने के लिए एक लीला रची गई है। लोग पत्थर को ठाकुर कहते हैं और अजन्मा परमेश्वर का जन्म बताते हैं। इन बातों का वेदशास्त्र में पता तक नहीं है। उस दिन श्रोताओं की भीड़ बहुत अधिक थी। महाराज ने मूर्त्तिपूजा का ऐसी सुन्दरता के खण्डन किया और इतनी अकाट्य युक्ति और प्रमाण उसके विरुद्ध दिये कि अनेक लोगों की मूर्त्तिपूजा पर से श्रद्धा उठ गई।

आर्यसमाज अमृतसर की स्थापना—११ अगस्त सन् १८७७ तक महाराज के सदुपदेशों का प्रवाह बहता रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि १२ अगस्त को आर्यसमाज अमृतसर की स्थापना हो गई। आर्यसमाज उसी कोठी में स्थापित हुआ जिसमें महाराज ठहरे हुए थे।

स्वामीजी द्वारा हवन—स्वयं महाराज ने हवन कराया, और ईश्वरोपासना करने के पश्चात् सदुपदेश दिया। ५० सज्जन आर्यसमाज के सदस्य हुए, अधिकारियों का निर्वाचन होकर आर्यसमाज का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। लहौर से बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य और लाला श्रीराम एम०ए० समाज के स्थापनोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पधारे थे और महाराज के उपदेश के पश्चात् बाबू शारदाप्रसाद का व्याख्यान भी हुआ था।

इसके कुछ दिन पश्चात् आर्यसमाज के लिए मलवई बुङ्गे के मोहल्ले में एक मकान ले-लिया गया और प्रथम अधिवेशन के दिन महाराज ने ही हवन कराया।

मनसुखराय को गुरुमन्त्र—एक जन मनसुखराय था। उसका पिता चाहता था कि वह किसी को गुरु बनाले, क्योंकि उसके विचार के अनुसार निगुरे मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता था। पुत्र किसी को गुरु न बनाता था, परन्तु महाराज के उपदेशों को सुनकर उसके सब संशयों का उच्छेद हो गया और श्रीमहाराज के चरणों में उसकी श्रद्धा इतनी बढ़ी कि एक दिन उसने मिश्री का थाल भरकर महाराज को भेंट में दिया और आर्यसमाज का सदस्य बन गया। महाराज से उसने गुरुमन्त्र देने की प्रार्थना की तो बोले कि गायत्री-मन्त्र ही गुरुमन्त्र है।

मिश्री और दो रुपये की भेंट—एक दिन महाराज बग्घी पर सवार होकर मलवई बुङ्गे व्याख्यान देने जा रहे थे कि एक जन पण्डित तुलसीराम ने बड़े प्रेम और नम्रता से उन्हें नमस्कार किया और अपनी बैठक में पधारने की प्रार्थना की। महाराज ने कृपापूर्वक उसे स्वीकार किया और उसकी बैठक में पधारे। उसने महाराज की स्तुति करने के पश्चात् मिश्री के कुछ कूज़े और दो रुपये नक़द भेंट किये जो महाराज ने स्वीकार कर लिये। कैसी अद्भुत बात है कि जिस दयानन्द ने सर टी० माधवराय रियासत बड़ौदा जैसे गण्यमान्य पुरुष की १०००) रुपये की भेंट को स्वीकार नहीं किया, आज वही दयानन्द एक साधारण मनुष्य की दो रुपये और मिश्री के कूज़ों की तुच्छ भेंट को निःसंकोच भाव से स्वीकार कर लेता है। प्रेम, श्रद्धा, भक्ति में शक्ति ही ऐसी है! महाराज श्रीकृष्णचन्द्र ने भी तो इसी कारण सुदामा के तण्डुल स्वीकार किये थे। धन्य हो कृष्ण और धन्य हो दयानन्द!

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवमूर्त्तियाँ फेंक दीं—अमृतसर में भी दो-चार व्यक्तियों ने ठाकुर आदि की मूर्त्तियाँ फेंक दी थीं और मूर्त्तिपूजा से विश्वास तो सैकड़ों मनुष्यों का उठ गया था।

विद्वान् ब्राह्मण घर छोड़कर चला गया—अमृतसर में उन दिनों एक पण्डित रामदत्तजी निवास करते थे, जो उच्च कोटि के विद्वान् थे। जब मूर्त्तिपूजकों ने देखा कि दिन प्रतिदिन मूर्त्तिपूजा को अनेक लोग तिलाञ्जलि देते चले जा रहे हैं तो वे बहुत घबराये और जाकर पण्डित रामदत्तजी से प्रार्थना की कि आप स्वामी दयानन्द से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करें। उन्होंने कहा कि मैं वेद नहीं जानता, शास्त्रार्थ कैसे करूँ, परन्तु लोग न माने और आग्रह करते रहे। अन्त में जब उन्हें बहुत दिक़ किया गया तो एक दिन चुपके से हरिद्वार चले गये। अनेक पण्डित ऐसे थे जो हृदय से महाराज के उपदेशों को स्वीकार करते थे, परन्तु लोकापवाद के कारण इस नीति पर कार्य करते थे कि—

यद्यपि सिद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्।

अर्थात् ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो यद्यपि शास्त्र से सिद्ध हो, परन्तु लोकविरुद्ध हो।

मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करो—एक दिन पण्डित बिहारीलाल ऐक्सट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर ने महाराज से कहा कि महाराज आपके अन्य सब विचार उत्तम हैं और हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं, यदि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो सब लोग आपके अनुकूल हो जाएँ और आपकी आज्ञा को स्वीकार कर लें। इसके उत्तर में महाराज ने वही कहा जो वे सदा ऐसे प्रस्तावों के उत्तर में कहा करते थे कि मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता।

स्थूलकाय सरदार—एक दिन सरदार हरचरणदास महाराज से मिलने आये। वे इतने स्थूलकाय थे कि चल-फिर भी कठिनता से सकते थे। महाराज ने उन्हें देखकर कहा कि ये हमारे देश के हतहृदय लोग हैं जिनमें चलने-फिरने की भी शक्ति नहीं रही। ऐसे मनुष्य देश का क्या उपकार कर सकते हैं ?

कमिश्नर से बात-चीत—महाराज के उपदेशों की चर्चा सुनकर परकिंस साहब कमिश्नर ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की और एक दिन, लाला गुरुमुखराय वकील के साथ, जो कमिश्नर साहब का यह सन्देश उनके पास लाये थे, कमिश्नर साहब से मिलने गये। अन्य बात-चीत होने के उपरान्त दोनों में धर्म विषय पर निम्न कथनोपकथन हुआ—

परकिंस—हिन्दू-धर्म सूत के धागे की भाँति कच्चा है।

स्वामीजी—यह धर्म सूत के धागे की भाँति कच्चा नहीं, बल्कि लोहे से भी अधिक पक्का है, लोहा टूट जाए तो टूट जाए, परन्तु यह कभी टूटने में नहीं आता।

परकिंस—आप कोई उदाहरण दें तो हमें विश्वास आए।

स्वामीजी—हिन्दू-धर्म समुद्र के समान है; जैसे समुद्र में असंख्य लहरें उठती हैं, यही दशा इसकी है। देखिए, इसमें ऐसे लोग भी हैं जो पानी को छानकर पीते हैं ताकि कोई अदृश्य जीव उनके उदर में न चला जाए; ऐसे लोग भी हैं, जो दुग्धाहारी हैं, केवल दूध ही पीते हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं खाते-पीते और ऐसे लोग भी इसी में हैं जो वाममार्गी कहलाते हैं जो पवित्र-अपवित्र और योग्य-अयोग्य का विचार किये बिना जो कुछ पाते हैं, खाजाते हैं। इसमें ऐसे लोग भी हैं जो आयुभर यति रहते हैं, न तो किसी स्त्री से विवाह करते हैं और न किसी को बुरी दृष्टि से देखते हैं और ऐसे लोग भी इसी में हैं जो पराई स्त्रियों से मुँह काला करते हैं। एक वे हैं जो केवल निराकार परमात्मा की ही उपासना करते हैं और उसी का ध्यान करते हैं और एक वे हैं जो अवतारों को पूजते हैं। एक वे हैं जो केवल ज्ञानी हैं और एक वे हैं जो केवल ध्यानी हैं। इसमें वे लोग भी हैं जो छूतछात का इतना बचाव करते हैं कि अन्य धर्मी तो एक ओर शूद्रों के हाथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से न पानी पीते हैं न उनके हाथ का भोजन करते हैं और वे लोग भी इसमें ही हैं जो शूद्रों के हाथ से पानी भी पीते हैं और उनसे भोजन बनवाकर भी खाते हैं। इन सब बातों के होते हुए भी ये सबके सब हिन्दू कहलाते हैं और वास्तव में हैं भी हिन्दू ही और कोई इनका हिन्दू-धर्म से बहिष्कार नहीं करता, अतः समझना चाहिए कि हिन्दू-धर्म बहुत पक्का है, कच्चा नहीं।

परकिंस—आप किस प्रकार के धर्म का प्रचार करना चाहते हैं।

स्वामीजी—हम केवल यह चाहते हैं कि लोग वेदों की आज्ञाओं का पालन करें और केवल निराकार, अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें, शुभ गुणों को ग्रहण करें और अवगुणों को त्याग दें।

मौलवी से शास्त्रार्थ का आयोजन—१३ अगस्त सन् १८७७ को अमृतसर में एक मौलवी साहब से करामात विषय पर शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। महाराज ने कहा कि शास्त्रार्थ-सभा में एक अरबी भाषा जाननेवाले का होना आवश्यक है, क्योंकि मौलवी साहब अरबी शब्दों और प्रमाणों का प्रयोग करेंगे और हम अरबी जानते नहीं हैं, अतः लहौर आर्यसमाज के मन्त्री को पत्र भेजा गया कि वहाँ से पादरी इमामुद्दीन को भेजदें, परन्तु पादरी साहब समय पर न मिले और जब मिले तो उन्होंने अमृतसर जाना स्वीकार न किया, अतः यह शास्त्रार्थ न हो सका।

१५ अगस्त सन् १८७७ अर्थात् श्रावण शुक्ला ७ संवत् १९३४ को महाराज ने अमृतसर में **'आर्योद्देश्य-रत्नमाला'** की रचना की।§

(१८ अगस्त—२६ अगस्त) गुरुदासपुर (श्रा० शु० ९—भाद्र कृ० २)

व्याख्यान आरम्भ हो गये—श्रावण शुक्ला ९ संवत् १९३४ अर्थात् १८ अगस्त सन् १८७७ को

---

§ दयानन्दप्रकाश में निम्न घटना का भी उल्लेख है—

एक बाल-पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों के कहा कि आज कथा में चलेंगे, तुम अपनी-अपनी झोलियों में ईंट-रोड़े और कंकर भरकर मेरे साथ चलना और जब में संकेत करूँ तो कथा कहनेवाले पर ईंट-रोड़े और कंकर फेंक देना, मैं तुम्हे लड्डू दूँगा।

अबोध बालकों ने अपनी झोलियाँ ईंट-रोड़े और कंकरों से भर लीं और दुष्ट अध्यापक के साथ स्वामीजी के व्याख्यान में पहुँचे। व्याख्यान रात्रि के ८ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ-कुछ अँधेरा हो गया तो अध्यापक का संकेत पाकर बालक महाराज पर ईंट-रोड़े और कंकर फेंकने लगे। सभा में हलचल मच गई, परन्तु महाराज ने सबको शान्त कर दिया। पुलिस कुछ बालकों को पकड़कर उनके सामने लाई तो बालक फूट-फूटकर रोने लगे। महाराज ने उन्हें ढाढस बँधाकर उनसे ऐसा कार्य करने का कारण पूछा तो उन्होंने सारा वृत्त सच-सच कह दिया, तब महाराज ने बाज़ार से लड्डू मँगाकर बालकों को दिये और कहा कि तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे, इसलिए मैं ही दिये देता हूँ।

दयानन्द-प्रकाश में इस घटना के अतिरिक्त निम्नलिखित तीन घटनाएँ और लिखी हैं—

एक दिन स्वामीजी अपने कमरे में बैठे हुए पण्डितों को वेदभाष्य लिखाते-लिखाते सहसा कमरे से बाहर आ गये और कर्मचारियों से कहा कि झटपट कमरे की सब चीजें बाहर ले-आओ। कर्मचारियों ने आज्ञा का पालन तो किया, परन्तु वे न समझ सके कि स्वामीजी ने ऐसी आज्ञा क्यों दी। जब सब वस्तुएँ कमरे में से हटाली गईं तो कमरे की छत धड़ाम से गिर पड़ी।

एक दिन महाराज का उपदेश हो रहा था कि एक प्रचण्ड आँधी उठी और धूलि से भूतलाकाश एक करने लगी। श्रोतागण विचलित हो गये और उससे बचने के लिए इधर-उधर झाँकने लगे। महाराज ने मेज़ पर हाथ मारकर उच्च स्वर से कहा कि घबराइए नहीं, आँधी यहाँ न आएगी और ऐसा ही हुआ भी।

एक साधारण स्थिति का मनुष्य महाराज के सत्संग में आया करता था। एक दिन उसने महाराज से निवेदन किया कि महाराज धनी लोग तो परोपकार और दान-पुण्य करके संसार-सागर से पार हो सकते हैं, परन्तु मुझ-जैसे निर्धन का निस्तार कैसे होगा ? महाराज ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम अपने हृदय से पर-उपकार और अनिष्ट-चिन्तन के भावों को निकाल दो। ऐसा करना भी संसार का उपकार है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराज शिकरम में सवार होकर सायङ्काल के ५ बजे गुरुदासपुर पहुँचे। महाराज के आगमन के लिए नगर के लोग पहले से ही उत्सुक हो रहे थे, क्योंकि यह समाचार कि महाराज १८ अगस्त को गुरुदासपुर पधारेंगे डॉक्टर बिहारीलाल द्वारा, जिन्होंने अपने भाई वल्लभदास को उन्हें अमृतसर से लाने के लिए भेजा था नागरिकों को ज्ञात हो चुका था। नगर के अनेक सज्जन और सरकारी कर्मचारी बड़ी संख्या में नगर से एक मील दूर उनके स्वागत के लिए पहुँच गये थे। जब उस स्थान पर जहाँ ये सब लोग एकत्र थे महाराज की शिकरम पहुँची तो महाराज उतर पड़े। सबने बड़े प्रेम से महाराज को 'नमस्ते' की और उन्हें गाड़ी पर बिठाकर डॉक्टर साहब के गृह पर, जिसे उन्होंने खूब सजा रक्खा था, ठहराया गया। १५-२० मिनिट विश्राम के पश्चात् महाराज ने स्नान किया और फिर एक व्याख्यान मूर्त्तिपूजा पर दिया। फिर तो महाराज के कई व्याख्यान अवतार, ईश्वर, गोरक्षा, आवागमन, श्राद्ध, आर्यावर्त्त की पुरानी दशा, आर्यों के कर्त्तव्य आदि विषयों पर हुए। श्रोताओं की संख्या दो-दो सहस्र तक पहुँच जाती थी। व्याख्यान-समय के अतिरिक्त अन्य समय भी नगर के सुप्रतिष्ठित सज्जन और उच्च राजकर्मचारी तथा जनसाधारण महाराज से धर्म-विषय पर बातचीत करने तथा शङ्का-निवारणार्थ महाराज के पास आते रहते थे और महाराज सबकी जिज्ञासाओं का यथायोग्य उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट और शान्त कर दिया करते थे।

दो मूर्त्तिपूजक रईसों की घबराहट, विरक्त साधु से शास्त्रार्थ की प्रार्थना—महाराज के आगमन के तीसरे दिन मियाँ हरिसिंह और शेरसिंह नगर के दो प्रतिष्ठत रईस जो मूर्त्तिपूजक थे और जिन्हें महाराज के मूर्त्तिपूजा के खण्डन से बहुत आघात पहुँचा था, स्वामी गणेशगिरिजी के पास पहुँचे। ये एक विद्वान् और विरक्त पुरुष थे जो नगर से बाहर एकान्त स्थान में निहालशाह के तालाब पर रहा करते थे। दोनों मियाँ महोदयों ने उनसे प्रार्थना की कि आप स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि हम नगर में जाते भी नहीं हैं और शास्त्रार्थ करने का हमारा नियम भी नहीं है, हम विरक्त साधु हैं, यदि आपको शास्त्रार्थ कराना है तो किसी पण्डित को बुलवाइए। इसपर दोनों महोदयों ने कहा कि यदि आप नगर में वा स्वामी दयानन्द के स्थान पर जाने में अपना अपमान समझते हैं तो महन्तों के बाग़ वा अन्य किसी स्थान में जहाँ आप चाहें हम शास्त्रार्थ मण्डप बना दे आप वहाँ चलकर शास्त्रार्थ करें। इसपर गिरिजी ने कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, झगड़ा होता है और विरोध बढ़ता है, यदि आप तंग करेंगे तो हम अन्यत्र चले जाएँगे।

शास्त्रार्थ के लिए दो पण्डितों का आगमन—अन्त में उक्त रईसों ने दीनानगर से दो पण्डितों, पं० लक्ष्मीधर और पं० दौलतराम को शास्त्रार्थ के निमित्त बुलाया। ये साधारण कोटि के पण्डित थे और इनमें स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य न था।

रईसों की असभ्यता—जिस दिन दोनों पण्डित गुरुदासपुर में अवतीर्ण हुए उस दिन महाराज का शिवपुराण के खण्डन पर व्याख्यान था। जब ये पण्डित और उनके पृष्ठपोषक सभास्थल में पहुँचे तो महाराज यह कहानी सुना रहे थे कि शिवजी का लिंग बढ़ा और ब्रह्मा सूकर का और विष्णु हंस का रूप धारण करके उसको नापने के लिए एक पाताल की ओर और दूसरा आकाश की ओर चला इत्यादि। इसपर उपरोक्त चारों जन कहने लगे कि झूठ बकता है। तब डॉक्टर बिहारीलाल ने उनसे निवेदन किया कि सभा का यह नियम नहीं है। पहले सब सुन लीजिए पीछे जो आक्षेप करना हो कीजिए, परन्तु वे न माने और ऊल-जलूल बकते और शोर करते रहे। यह देखकर महाराज ने व्याख्यान देना स्थगित कर दिया और कहा जिसे आक्षेप करना हो करे। श्रोताओं को भी शास्त्रार्थ सुनने का बहुत चाव था। महाराज के सामने एक कुर्सी डाल दी गई और डॉक्टर बिहारीलाल ने कहा कि पण्डितों में जो शास्त्रार्थ करना चाहे कुर्सी पर आकर विराज जावें,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु दूसरे पक्ष की यह इच्छा थी कि सब मिलकर प्रश्नोत्तर करें। इसपर महाराज ने कहा कि जो पण्डित प्रश्न करना चाहे वह सामने आ जाए। इसपर मियाँ साहबों ने कहा कि कोई पण्डित आपसे अकेला शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, दो वा अधिक मिलकर करेंगे। महाराज ने कहा कि जिसकी जैसी इच्छा हो यहाँ आकर शास्त्रार्थकर्त्ता को बारी-बारी से बतलाता रहे। इसपर मियाँ हरिसिंह ने कहा कि यह बन्दरकला कौन खेल सकता है। तत्पश्चात् डॉक्टर साहब ने आग्रह किया कि शास्त्रार्थ की रीति यह है कि दोनों पक्ष आमने-सामने बैठकर विचार करें, अतः पण्डितजी को महाराज के सन्मुख बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहिए। इसपर मियाँ हरिसिंह ने कहा कि यह क्या कञ्जरियों का नाच है जो बीच में आने की आवश्यकता हो ? उनकी सभी असभ्य और नियम-विरुद्ध बातों को सहन किया गया और जैसे वे चाहते थे वैसे ही बातचीत आरम्भ हुई।

शास्त्रार्थ का आरम्भ, महीधरभाष्य की अश्लीलता—प्रथम मूर्त्तिपूजा पर बात चली तो विपक्ष की ओर से **"गणानां त्वा"** आदि मन्त्र प्रस्तुत करके कहा कि इससे गणेशजी की मूर्त्ति सिद्ध होती है। स्वामीजी ने उक्त मन्त्र का भाष्य माँगा तो पण्डितों ने कहा कि इसपर महीधर का भाष्य है। महाराज ने झट महीधर का भाष्य मँगवाकर आगे रख दिया और महीधर के अश्लील अर्थ श्रोताओं को सुनाकर कहा कि न तो इससे मूर्त्तिपूजा की सिद्ध होती है और न गणेशपूजा ही, यह तो अत्यन्त अश्लील अनुवाद है और फिर उक्त मन्त्र के सत्य अर्थ भी करके सुनाये।

अंग्रेज़ी राज्य न होता तो सिर काट डालता—यह बात मियाँ साहबों को बहुत अखरी और वे कहने लगे कि अंग्रेज़ी राज्य है, यदि कोई देशी राज्य होता तो कोई आपका सिर काट डालता, परन्तु महाराज पर इन बातों का क्या प्रभाव पड़ना था, वे पूर्ववत् खण्डन करते रहे। तब मियाँ साहब और तो कुछ कर न सके, यह कहने लगे कि यहाँ मजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों उपस्थित हैं, इसका भी ध्यान रखना। डॉक्टर बिहारीलाल से सहन न हो सका और उन्होंने मियाँ साहबों को मुँह तोड़ उत्तर दिया जिसपर आपस में तेजी से बात-चीत होने लगी और इस गड़बड़ में सभा विसर्जन हो गई। दो मास के पश्चात् मियाँ साहबों को अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ और एक मुसलमान सज्जन बीच में पड़े और मियाँ साहबों ने डॉक्टर साहब से क्षमा-याचना की।

अंग्रेज़ इञ्जीनियर चिढ़ गया—एक दिन व्याख्यान में महाराज ने कहा कि यद्यपि अंग्रेज़ों को इस देश में आये इतना समय हो गया, परन्तु उनका उच्चारण अब तक शुद्ध नहीं हुआ; वह तकार की जगह टकार, तुम की जगह टुम ही बोले जाते हैं। मिस्टर काक इञ्जीनियर भी खड़े हुए सुन रहे थे, उन्हें यह सच्ची बात भी बुरी लगी और वे यह कहते हुए चले गये कि यदि तुम पश्चिम में पेशावर की ओर जाओ तो तुम्हारी खबर ली जाए।

मौलवी बाक़रअली से महाराज की आवागमन पर बात-चीत हुई थी।

पितरों को तिल और जौ अपने को खीर और लड्डू—एक दिन श्राद्ध पर व्याख्यान देते हुए महाराज ने कहा था कि ब्राह्मण पितरों को तो तिल और जौ देते हैं और स्वयं खीर और लड्डू उड़ाते है। एक अनपढ़ ब्राह्मण की कहानी भी सुनाई थी कि वह तिथि का ज्ञान न रखता था। प्रतिपदा के दिन से हर तिथि को कोने में एक-एक लाठी रखता जाता था और इस प्रकार वह लोगों को तिथि बतलाया करता था।

मुसलमानों की मूर्त्तिपूजा—एक दिन यह भी कहा था कि हिन्दू तो छोटी-सी चुहिया की ही पूजा करते हैं, परन्तु मुसलमान तो बिल्ली को पूजते हैं, अर्थात् हिन्दू तो छोटे-से शालिग्राम को ही पूजते और मुसलमानों का काबा तो बहुत बड़ा बुतखाना है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज स्थापित हो गया—महाराज के उपदेशों का यह परिणाम निकला कि २४ अगस्त को गुरुदासपुर में आर्यसमाज स्थापित हो गया और महाराज एक दिन और ठहरकर बटाला होते हुए अमृतसर जा विराजे।

(२६ अगस्त—१३ सितम्बर) अमृतसर (भाद्र कृ० ५—भाद्र० शु० ६)

गुरुदासपुर से २६ अगस्त सन् १८७७ को महाराज अमृतसर लौट आये और २७ अगस्त से १३ सितम्बर तक वहाँ ही विराजे रहे और वेदभाष्य की रचना और सत्य सनातन वैदिकधर्म के उपदेश में व्यापृत रहे। आर्योद्देश्यरत्नमाला भी छपकर तैयार हो गई। पञ्जाब सरकार की ओर से नियत जिन विद्वानों ने उनके वेदभाष्य के सम्बन्ध में विरुद्ध सम्मति प्रकट की थी उनका उत्तर छपवाकर मुम्बई भेजने तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित कराने का उपक्रम किया।

गुरुमन्त्र की दीक्षा—एक दिन व्याख्यान के पश्चात् महाराज डेरे को जा रहे थे। मार्ग में लाला मुरलीधर ने जो पीछे आकर आर्यसमाज होशियारपुर के मन्त्री हुए एकान्त पाकर महाराज से निवेदन किया कि मुझे गुरुमन्त्र दीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि सदा सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करो और इसी को गुरुमन्त्र जानो।

स्वामीजी के ईसाइयों का वेतन-भोगी होने का प्रमाण—एक दिन पादरी फ़ोरमैन महाराज से मिलने आये और उसी समय म० कन्हैयालाल वकील भी आ गये। यह समझकर कि महाराज का व्यय बहुत है और आय कुछ है नहीं वह दो सौ रुपये उनकी भेंट करने के लिए लाये थे। वह दो सौ रुपये के नोट महाराज के सम्मुख रखकर चले गये। पादरी साहब बैठे हुए महाराज से वार्त्तालाप करते रहे। इतने में एक वणिक् भी महाराज के दर्शनों को आ गया। उसने देखा कि एक ओर महाराज बैठे हैं और दूसरी ओर पादरी साहब और बीच में कुछ नोट रक्खे हैं। थोड़ी देर बैठकर वह चला गया। उसने नगर में जाकर यह जनरव फैला दिया कि स्वामी दयानन्द ईसाई हो गये हैं और पादरियों से रुपया लेते हैं। जब यह जनरव नगर में फैला तो एक अनुरागी ने महाराज से आकर कहा कि नगर में ऐसी किंवदन्ती हो रही है। महाराज इसे सुनकर कुछ भी विचलित न हुए और उन्होंने यह कहा कि जो व्यक्ति अपने को किसी अवलम्बित कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं समझते और अपने को किसी कार्य वा कर्त्तव्य में न लगाकर संसार में व्यर्थ घूमते हैं, उनकी बात ध्यान देने योग्य नहीं है।

(१३ सित०—१७ अक्तू०) जालन्धर (भाद्र शु० ६—आश्वि० शु० ६)

§१३ सितम्बर सन् १८७७ को ६-३० बजे की गाड़ी से स्वामीजी अमृतसर से जालन्धर के लिए प्रस्थित हो गये और २ बजे वहाँ पहुँच गये।

जालन्धर में स्वामीजी सरदार सुचेतसिंहजी की कोठी में ठहरे।‡

सरदार विक्रमसिंह व सुचेतसिंह से परिचय—जिस समय सन् १८७४ के अन्त से सन् १८७५ के आरम्भ के समय में श्रीमहाराज मुम्बई में थे तो सरदार विक्रमसिंह और सरदार सुचेतसिंह उनसे मिले थे

---

§ ऋषि दयानन्द के पत्रव्यव्हार पृष्ठ ७८ के पत्र सं० ३० में १२ सितम्बर का निर्देश है। वह अशुद्ध है। पत्रव्यवहार पृष्ठ ७५ में १३ ता० का ही निर्देश है तथा शास्त्रार्थ जालन्धर में भी १३ सितम्बर पहुँचना लिखा है। यह शास्त्रार्थ पं० लेखरामजी रचित जीवन-चरित्र में अक्षरशः छपा है।

‡ दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि जालन्धर में स्वामीजी सरदार विक्रमसिंह की कोठी में ठहरे थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और फिर १८७७ में दिल्ली दरबार में भी उन्होंने महाराज के दर्शन किये थे। जब महाराज ने पञ्जाब में पदार्पण किया तो लुधियाना से लाहौर जाते हुए एक रात के लिए जालन्धर ठहरे थे और सरदार सुचेतसिंह का आतिथ्य ग्रहण किया था।

प्रथम व्याख्यान—जालन्धर पधारने के दूसरे दिन महाराज का प्रथम व्याख्यान सरदार सुचेतसिंह के गृह पर सृष्ट्युत्पत्ति पर हुआ। उसमें महाराज ने कहा था कि आदि में मनुष्य युवा उत्पन्न हुए थे, यदि बालक वा वृद्ध उत्पन्न होते तो वे कुछ कार्य न कर सकते थे।

दूसरा व्याख्यान सरदार विक्रमसिंह के गृह पर हुआ। भीड़ इतनी थी कि छत और आँगन सब खचाखच भर गये थे।

३५ व्याख्यान, वेश्यागामी कंजर है—जालन्धर में महाराज के ३४ वा ३५ व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान में महाराज ने कहा कि जो राजा होकर कंजरी (वेश्या) रखता है वर कंजर है। सरदार साहब ने जिनमें यह अवगुण था व्याख्यान की समाप्ति पर कहा कि आज तो आप हमपर भी बरस पड़े। उत्तर में महाराज ने कहा कि हम तो सबको ही कहते हैं, किसी का पक्ष नहीं करते।

ब्रह्मचर्य का बलप्रदर्शन—एक दिन सरदार विक्रमसिंह ने महाराज से कहा कि सुनते हैं ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। महाराज ने कहा कि यह सत्य है और शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है। सरदार साहब ने कहा कि शास्त्र के कथन का सत्य सिद्ध होना कठिन है। आप भी तो ब्रह्मचारी हैं, परन्तु आपमें इतना बल प्रतीत नहीं होता। महाराज उस समय तो चुप हो रहे, परन्तु जब सरदार साहब अपनी दो घोड़ो की गाड़ी पर सवार हुए तो महाराज ने चुपके से जाकर उनकी गाड़ी का पिछला पहिया पकड़ लिया। कोचवान ने घोड़ों को बढ़ाना चाहा, परन्तु वे न बढ़े। उसने फिर उनके चाबुक रसीद किये। घोड़ों ने बहुतेरा बल लगाया, परन्तु वे टस-से-मस न हो सके। कोचवान और सरदार साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो महाराज को गाड़ी का पहिया पकड़े हुए पाया। महाराज ने ईषत् स्मित होकर कहा कि मैंने ब्रह्मचर्य के बल का प्रमाण दे दिया है।§

स्वामीजी की विनोद-प्रियता—महाराज बड़े विनोदप्रिय थे। उनमें यह शक्ति थी कि श्रोताओं को जब चाहें हँसा दें और जब चाहें रुला दें। जब वे देखते थे कि श्रोता गम्भीर विषयों को सुनते-सुनते कुछ अन्यमनस्क हो गये हैं तो कोई कथानक वा चुटुकला ऐसा सुना देते थे कि श्रोता खिलखिलाकर हँस पड़ते थे और फिर गम्भीर विषयों की ओर आकृष्ट हो जाते थे। जालन्धर में उन्होंने कई ऐसी कथाएँ सुनाई जिनका पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में उल्लेख है। हम केवल एक ही कथा यहाँ पाठकों के विनोदार्थ उद्धृत करते हैं।

आजकल के देशी राजाओं के चरित का वर्णन करते हुए एक दिन आपने निम्नलिखित कथा सुनाई—

मूर्ख राजा की कथा—एक बार एक राजा दिल्ली गये। वहाँ एक धूर्त ने उनसे कहा कि मुझे ऐसे वस्त्र बनाने आते हैं कि वे किसी को दिखाई नहीं देते, परन्तु उस मनुष्य को दिखाई देते हैं जो जारज हो। राजा थे बुद्धि के सागर; उसके झाँसे में आ गये। वस्त्रों का मूल्य १०,००० रुपये ठहरा, जिनमें ५००० उसने अग्रिम ले-लिया। जब कई महीने हो गये और वह न आया तो राजा ने उसे बुलाया। राजा ने कहा

---

§ दयानन्द-प्रकाश में इस घटना का उल्लेख रावलपिण्डी के वर्णन में किया है। पण्डित लेखरामकृत जावन-चरित में इस घटना का उल्लेख रावलपिण्डी के वर्णन में एक नोट में है, परन्तु उसमें यह कहीं नहीं लिखा है कि यह घटना रावलपिण्डी की है। इसका भी कहीं प्रमाण नहीं मिलता कि उस समय सरदार विक्रमसिंह रावलपिण्डी में थे। यह घटना जालन्धर की ही है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि वस्त्र लाये ? उसने कहा कि लाया हूँ। राजा बोले हमें तो दिखाई नहीं देते। वह धूर्त्त बोला कि यदि दिखाई देते तो बात ही क्या होती। आप अन्दर चलिए मैं आपको पहना दूँ। राजा साहब उसके साथ एक कमरे में चले गये। वहाँ जाकर उसने राजा के सब वस्त्र उतरवाकर नंगा कर दिया और फिर झूठमूठ राजा के शरीर पर हाथ फेर कर कहता रहा कि यह कुर्त्ता पहनाता हूँ। यह पगड़ी इत्यादि। राजा कपड़े पहनना स्वीकार करते रहे और उसी नग्नावस्था में कचहरी में चले आये। मन्त्री बुद्धिमान् था, वह समझ गया कि राजा ठगे गये। उसने राजा से कहा कि सब वस्त्र तो आपने दिल्ली के पहने हैं केवल एक लंगोटी देशी पहन लीजिए ताकि नग्नता बुरी न लगे। राजा ने कहा तो क्या हम नंगे हैं। मन्त्री ने कहा कि अवश्य। राजा को भी चेत हुआ और कहा कि उस धूर्त्त ने हमें ठग लिया।

श्राद्ध पर व्याख्यान, जीवित पितरों के श्राद्ध की सिद्धि—एक दिन महाराज ने मृतकश्राद्ध के खण्डन पर व्याख्यान दिया। दूसरे दिन पण्डित रामदत्त आनरेरी मजिस्ट्रेट ने मृतक-श्राद्ध-मण्डन पर उसी स्थान पर व्याख्यान दिया, परन्तु वेदों का कोई प्रमाण न दिया, केवल गुरुड़पुराण आदि के प्रमाण देते रहे। अगले दिन महाराज ने वेदों व मनुस्मृति के प्रमाण से सिद्ध किया कि जीवित पिता आदि का ही नाम पितर है मृतक का नहीं। अग्निष्वात्त, अनग्निष्वात्त आदि के सत्य अर्थ किये। मनुस्मृति के प्रमाण से सिद्ध किया कि जो २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य रक्खे उसका नाम 'पिता' जो ३६ वर्ष रक्खे उसकी संज्ञा 'पितामह' और जो ४८ वर्ष का ब्रह्मचर्य रक्खे उसकी संज्ञा 'प्रपितामह' है।

मन्त्र से मक्खी नहीं डरती, भूत-प्रेत क्या डरेंगे ?—पौराणिक लोग पिण्ड की वेदी बनाते समय वेद का यह मन्त्र **(ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना०)** पढ़कर कहते हैं कि इससे भूत-प्रेत निकट नहीं आते। महाराज ने कहा कि इससे मक्खी तक तो उड़ नहीं सकती, भूत-प्रेत कैसे दूर हो सकते हैं ? डेरे पर पहुँचकर पण्डित शिवराम ने स्वीकार किया कि व्याकरण के अनुसार रक्षा और पालन करनेवाले को 'पिता' कह सकते हैं। यह कार्य जीवित ही कर सकते हैं, मृत नहीं।

तिलकाकार बीट से यम के दूत डर गये—एक दिन पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी भी तिलक और कण्ठी धारण किये हुए सभामण्डप में उपस्थित थे। महाराज ने कहा कि एक यात्री एक पेड़ के नीचे सो रहा था कि एक कौए की बीट उसके मस्तक पर गिरकर तिलकाकार हो गई। घटनावशात् वह यात्री उसी अवस्था में मर गया, तब इधर तो यम के और उधर विष्णु के दूत उसे ले-जाने को आये। दोनों में युद्ध हुआ। अन्त को विष्णु के दूत उसे वैकुण्ठ को ले-गये। महाराज ने कहा तिलक से पुलिस का सिपाही तक तो डरता नहीं, यम क्या डरते। अगले दिन पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने लाहौरियों के ठाकुरद्वारे में व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने कहा कि जैसे कोई ठग बच्चों को लड्डू देकर उनके आभूषण उतार लेता है, ऐसे ही दयानन्द ऐसी-ऐसी बातें सुनाकर लोगों को ठगता है।

काशी माहात्म्य आदि का खण्डन—एक दिन काशी माहात्म्य का खण्डन करते हुए महाराज ने कहा कि पाप किसी मन्दिर में जाने वा वहाँ 'नमः शिवाय' कहने से दूर नहीं होते, पाप तो शुद्ध सङ्कल्प, तप करने और फल भोगने से दूर होते हैं। उसी दिन गङ्गा-स्नान से पाप-निवृत्त होने का भी खण्डन किया और यह भी कहा कि हमने अमृतसर की बड़ी महिमा सुनी थी कि उसमें अमृत है, परन्तु हमने जाकर जो देखा तो उसमें स्नान करना तो दूर रहा पैर डालने को भी जी नहीं चाहता, क्योंकि दीपमालिका को सिक्ख लोग केश भी उसी में डाल देते हैं। इसपर सरदार विक्रमसिंह ने कहा कि महाराज आज हमपर भी बरसे। महाराज ने उत्तर दिया कि हम तो सत्य कहते हैं।

स्त्रियों को बुलाने का बिगुल—एक दिन महाराज व्याख्यान दे रहे थे कि सन्ध्या समय हो गया और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक मन्दिर से शङ्ख-घड़ियाल बजने की आवाज़ आई। इसपर महाराज ने कहा कि देखो यह स्त्रियों के बुलाने का बिगुल है। साधु, पुजारी बच्चों को प्रसाद की चाट डाल देते हैं। जब शङ्ख-घड़ियाल बजते हैं तो लड़का माता से कहता है, चलो माँ आरती देखें। उसे क्या ज्ञान है कि वहाँ माँ की क्या दुर्दशा होगी।

अथर्ववेद स्त्रियों का गीत है—महाराज के आगमन के समय पञ्जाब में वेदों के विषय में भारी अज्ञान था। पुरोहितगण अथर्ववेद को स्त्रियों का गीत बताया करते थे। महाराज के उपदेशों से ही घोर अज्ञानान्धकार दूर हुआ।

मौलवी से शास्त्रार्थ—जालन्धर में महाराज का एक व्यक्ति मौलवी अहमदहसन से २४ सितम्बर १८७७ ई० को आदागमन और विभूति (करामात) पर शास्त्रार्थ हुआ था जो छप गया था और पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित के साथ परिशिष्ट के रूप में लगाया हुआ है।

शास्त्रार्थ का सार—महाराज ने मौलवी साहब से प्रश्न किया कि आप 'करामात' किसे कहते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य के स्वभाव वा शक्ति से बाहर काम को जो परमेश्वर अपने कृपापात्र मनुष्यों से कराता है। ऐसे कामों में कर्त्ता ईश्वर होता है मनुष्य तो उसके हाथ में कठपुतली के समान होता है। परमेश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध काम नहीं करता, परन्तु मनुष्य से उसके स्वभाव के विरुद्ध काम करा सकता है, सृष्टि-नियम (प्राणिमात्र के स्वभाव) के विरुद्ध भी वह काम हो सकता है। महाराज के प्रश्न करने पर मौलवी साहब ने कहा कि हज़रत मुहम्मद और हज़रत ईसा ने ऐसी करामात दिखाई थीं जिनका प्रमाण उन लोगों के वचन हैं जिन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था, परन्तु इस आक्षेप पर कि उनके सच्चे होने का क्या प्रमाण है, सम्भव है उन्होंने झूठ ही लिखा हो, अब भी बहुत-से ढोंगिये हैं जो लोगों को ठगते फिरते हैं, इस समय कोई करामात दिखानेवाला बताइए और जब अब नहीं तो पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं होगा। मौलवी साहब ने कहा कि यदि हर बात का समाचार झूठा हो तो लन्दन, कलकत्ता आदि के अस्तित्व और वेद के ईश्वरकृत होने को न मानना चाहिए। महाराज ने इसका उत्तर दिया कि यदि कोई लन्दन, कलकत्ते के अस्तित्व को न माने तो उसे वहाँ लेजाकर दिखाया जा सकता है, ऐसे ही करामात को दिखाना चाहिए। वेद का ईश्वरकृत होना असम्भव नहीं, क्योंकि परमेश्वर अन्तर्यामी, पूर्ण विद्वान्, दयालु, न्यायकारी है वह जीवात्मा में अन्तर्यामिरूप से अपना प्रकाश कर सकता है। ईश्वर के कामों की भी सीमा है, जैसे वह मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, अतः करामात किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती। मौलवी साहब को कोई उत्तर न आया और अन्त में यही कहा कि मक्के और शाम देश में चालीस मनुष्य करामात दिखानेवाले हैं यदि किसी को सन्देह हो तो वहाँ जाकर देख ले और भी दो-चार अप्रासङ्गिक बातें कहकर अपना कथन समाप्त किया, परन्तु यह न बताया कि उन करामात दिखानेवालों का नाम और पता क्या है और वे क्या करामात दिखाते हैं।

इसके पश्चात् आवागमन पर बात-चीत हुई। मौलवी साहब ने कहा कि किसी पदार्थ का अस्तित्व बिना उसके वर्त्तमान रूप के सम्भव नहीं, अतः जब रूप ही सादि है तो प्रकृति भी अवश्य सादि होनी चाहिए, अतः संसार भी अनादि नहीं हो सकता जैसाकि आवागमन माननेवाले मानते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि रूप दो प्रकार का होता है, एक इन्द्रियग्राह्य, दूसरा अतीन्द्रिय—कार्यरूप प्रकृति में वह इन्द्रियग्राह्य और कारणरूप में अतीन्द्रिय होता है। यदि कारण में रूप न हो तो कार्य में भी नहीं हो सकता, क्योंकि कार्य में कारण के ही गुण आते हैं। रूप बिना वस्तु के अलग नहीं रह सकता, इससे सिद्ध है कि कारण नित्य है। इसपर मौलवी साहब का यह उत्तर था कि प्रकृति का इन्द्रिय-गोचर होना किसी अन्य वस्तु के संयोग से हो सकता है, अतः वह वस्तु प्रकृति से पहले होगी। किसी विशेष रूप और आकृतिवाले पदार्थ के वे रूप और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकृति उससे पहले नहीं हो सकते, अतः उस रूप और आकृति के प्राग्भाव को ही नित्य कहा जाएगा। महाराज ने उत्तर में कहा कि किसी पदार्थ के स्वाभाविक गुण उससे पीछे नहीं हो सकते, वे साथ रहते हैं, केवल निमित्तकारण के संयोग पर वे इन्द्रियग्राह्य हो जाते हैं। कार्य-जगत् प्रवाहरूप से अनादि है, स्वरूप से नहीं। मौलवी साहब ने कहा कि गुणी का गुणों से प्राग्भाव होता है, जैसे प्रकृति का अपने गुणरूप से, दूसरा प्राग्भाव समय के सम्बन्ध से होता है सो यह प्रकृति में है नहीं। इससे मौलवी साहब ने यह सिद्ध करना चाहा कि जब रूप आदि के व्यक्त होने से ही प्रकृति का अस्तित्व हुआ तो प्रकृति का प्राग्भाव था। महाराज ने उत्तर दिया कि द्रव्य उसे कहते हैं कि जिसमें गुण, क्रिया, संयोग, वियोग होने का स्वभाव हो, परन्तु ये परिच्छिन्न द्रव्य में रहते हैं। जो द्रव्य विभु वा व्यापक हैं उनमें से किसी में केवल गुण और किसी में गुण और क्रिया दोनों होते हैं, परन्तु संयोग-वियोग से पृथक् रहते हैं, जैसे दिशा, काल, आकाश में केवल गुण है, क्रिया नहीं और परमेश्वर में गुण और क्रिया दोनों हैं। मौलवी साहब ने महाराज के कथन का उत्तर तो दिया नहीं केवल यह कहा कि मानो ज़ैद का शरीर है, वह उसके उत्पन्न होने से पहले नहीं था, उसका स्वभाव अनादि था, परमेश्वर के ज्ञान में भी वह नहीं था। रूप का ज्ञान बाह्य वस्तुओं से इन्द्रिय द्वारा होता है और जब आर्य मानते हैं कि प्रकृति कारणरूप में इन्द्रियग्राह्य नहीं थी तो इसके अर्थ हैं कि प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं था, अतः आवागमन फिर कहाँ रहता है। कर्म आवागमन के कारण नहीं हो सकते, क्योंकि कर्म गतिजन्य होते हैं और गति काल में होती है और काल का आदि, मध्य और अन्त इकट्ठा नहीं रह सकता, अतः कर्म नष्ट हो गये। दूसरे, आवागमन से बहुत-सी हानियाँ होंगी, क्योंकि एक शरीर में जो योग्यता प्राप्त की थी वह नीची योनि में जाने से नष्ट हो जाएगी। महाराज ने उत्तर दिया कि यह कहना ठीक नहीं है कि सब ज्ञान इन्द्रियजन्य ही हैं। जीवात्मा है, परन्तु इन्द्रियग्राह्य नहीं है। परमेश्वर, जीवात्मा और जगत् का कारण अनादि हैं और अभाव से भाव नहीं हो सकता। सुषुप्ति में जाग्रदवस्था की प्राप्त की हुई योग्यता नहीं रहती, अतः मौलवी साहब को सोना कभी न चाहिए।

इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। मौलवी साहब का तर्क कितना दूषित था यह पाठक स्वयं देख सकते हैं। उनकी युक्ति स्वयं उनके ही पक्ष का खण्डन करती थी। शास्त्रार्थ की समाप्ति पर मौलवी साहब ने नासिरुद्दीन के खानक़ाह के द्वार पर जाकर अपनी जीत की बहुत डींग मारी और मूर्खमण्डली ने उन्हें घोड़े पर चढ़ाकर नगर में घुमाया। इसे समझदार मुसलमानों ने भी पसन्द नहीं किया, क्योंकि यह पहले ही निश्चित हो गया था कि शास्त्रार्थ की समाप्ति पर कोई किसी की हार-जीत न समझे। जब वह मुद्रित हो जाएगा तो बुद्धिमान् लोग स्वयं ही परिणाम निकाल लेंगे।

जालन्धर में महाराज ने एक ईसाई को शुद्ध किया था।

(१७ अक्तू०—२६ अक्तू०) लाहौर (अश्वि० शु० ११—का० कृ० ४)

जालन्धर§ से महाराज १७ अक्तूबर सन् १८७७ ई० को लहौर पधारे, और नवाब रज़ाअली के उद्यान में ठहरे।

धन की अधिकता अवनति का कारण होती है—इस समय कई लोगों ने महाराज से प्रणायाम और उपासना की विधि सीखी। एक दिन एक पादरी और एक मिश्नरी महिला महाराज से मिलने आये। उनसे महाराज ने कहा कि धन की अधिकता जाति की अवनति का कारण हुआ करती, जैसीकि वह आर्य-जाति

§ ऋषि दयानन्द के ११ अक्टूबर १८७७ के पत्र में स्वामीजी के १५ अक्टूबर को जालन्धर से प्रातः ७॥ बजे की गाड़ी से चलकर १०॥ बजे अमृतसर पहुँचने और १६ अक्टूबर को लहौर जाने का उल्लेख है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के अधःपतन का कारण हुई और उदाहरणरूप से कहा कि इसी कारण से अंग्रेज़ों की दिनचर्या बिगड़ती जाती है। पहले हम जब सूर्योदय से पूर्व भ्रमण करने जाया करते थे तो बहुत-से अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को हवाखोरी करते देखते थे, परन्तु अब वे बहुत दिन चढ़े उठते हैं।

वेद में ऋषियों के नाम नहीं हैं—एक दिन एक पण्डित ने महाराज से प्रश्न किया कि सामवेद में भारद्वाज आदि ऋषियों के नाम आये हैं, इससे सन्देह होता है कि वेद ऋषि-कृत हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि उन मन्त्रों में ये नाम ऋषियों के नहीं हैं, प्रत्युत उनके विशेष अर्थ हैं। पीछे से ऋषियों के नाम भी वेद के इन शब्दों से रख लिये गये हैं और कई एक मन्त्रों का जिनमें उक्त शब्द आये थे अर्थ करके सुनाया।

ऋषियों को ईश्वर का ज्ञान न था—इक दिन एक विशप (लाट पादरी) महाराज से भेंट करने आये और वार्त्तालाप में यह प्रसंग उठाया कि वेद के ऋषियों को ईश्वर के विषय में कुछ ज्ञात न था और हिरण्यगर्भ सूक्त की ओर संकेत किया कि उसमें यह आता है कि हम किसी देव की उपसना करें (**कस्मै देवाय हविषा विधेम**)। राय मूलराज ने उक्त सूक्त का अंग्रेजी अनुवाद महाराज को सुनाया तो उन्होंने बिशप साहब से कहा कि आपको अशुद्ध अनुवाद के कारण भ्रम हुआ है। इसके ये अर्थ नहीं हैं कि हम किस देव की उपासना करें, प्रत्युत यह है कि हम सर्वव्यापक, सुखस्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं। फिर विशप साहब बोले कि देखो ! बाइबिल का प्रताप कि वह संसार में इतने विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है कि उसमें सूर्य अस्त नहीं होता। महाराज ने कहा कि यह भी वेद का ही प्रताप है। हम लोग वैदिक धर्म को छोड़कर बैठे हैं और आप लोगों में वेदोपदिष्ट गुण हैं, यथा ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, इकपत्नीव्रत, दूरदेश यात्रा, स्वदेशप्रीति आदि, इसी से आपकी इतनी उन्नति हो रही है, बाइबिल के कारण से नहीं।

ब्राह्मसमाज का उत्सव—२१ अक्तूबर १८७७ को ब्राह्मसमाज लाहौर का चौदहवाँ वार्षिक उत्सव था। महाराज उसमें ३००, ४०० मनुष्यों के साथ पधारे। उस समय ब्राह्मसमाज के उपदेशक बाबू अघोरनाथ गुप्त उपासना कर रहे थे। उपासना के अन्त में महाराज उनसे कौलम-कौली होकर मिले। उनका मन प्रफुल्ल और चित्त प्रसन्न था। उनके पधारने से उत्सव-क्षेत्र ने आर्य-ऋषियों के धर्मक्षेत्र नैमिषारण्य के समान श्री धारण कर ली थी।

नियमों के प्रतिकूल कोई कथन न करे—जिन दिनों महाराज अमृतसर में उपदेश दे रहे थे उन्हीं दिनों में आर्यसमाज लाहौर के एक साप्ताहिक सत्सङ्ग में बाबू शारदाप्रसाद ने अपने व्याख्यान में यह कह दिया कि वेद, कुरान, बाइबिल एक-से ईश्वरीय आदेश हैं। यह कथन सभासदों को बुरा लगा और जब इस बार स्वामीजी लाहौर पधारे तो उन्होंने उनसे व्यवस्था माँगी। उन्होंने शारदाबाबू के कथन को आर्यसमाज के नियमों के प्रतिकूल बताया और कहा कि किसी को नियमों के प्रतिकूल कहने का अधिकार नहीं है और यदि कोई ऐसा करे तो प्रत्येक सभासद् को उसे रोकने का अधिकार है।

२६ अक्तूबर सन् १८७७ को महाराज ने फ़ीरोज़पुर के लिए प्रस्थान किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विंश अध्याय

कार्त्तिक सं० १९३४—आषाढ़ १९३५=२६ अक्तूबर—जुलाई १८७७

(२६ अक्तू०—४ नव०) फ़ीरोज़पुर (का० कृ० ४—का० कृ० १४)

फ़ीरोज़पुर में महाराज का आगमन २६ अक्टूबर सन् १८७७ को हुआ। उनके पधारने से पहले ही वहाँ एक हिन्दू-सभा स्थापित थी। जब उसके सदस्यों ने महाराज के उपदेशों की चर्चा सुनी तो उन्हें उनके दर्शनों की लालसा हुई और उनकी यह भी इच्छा हुई कि उक्त सभा का कार्य श्रीमहाराज के सिद्धान्तों के अनुसार ही होना चाहिए। महाराज के आगमन के लिए उक्त सभा के प्रधान म० मथुरादास इतने उत्सुक हुए कि उन्होंने एक सज्जन को महाराज को फ़ीरोज़पुर लाने के लिए भेजा और वह उन्हें लिवाकर लाया। ला० मथुरादास ने उनके निवास के लिए एक गृह सुसज्जित कराया जो एकान्त स्थान में था, परन्तु महाराज ने उसके नगर के भीतर होने के कारण उसमें ठहरना न चाहा, तब उन्हें नगर के बाहर एक कोठी में ठहराया गया।

बेतुका शास्त्री—यहाँ महाराज के आठ व्याख्यान हुए। पहले व्याख्यान के आरम्भ होते ही एक व्यक्ति गोपाल शास्त्री ने कुछ कहना चाहा। महाराज ने कहा कि व्याख्यान की समाप्ति पर जो पूछना चाहो पूछ लेना। उसने कहा कि मुझे आपके कथन पर बहुत-से आक्षेप करने हैं, महाराज ने कहा कि लिखते जाओ अन्त में सब आक्षेप कर लेना। वह बोला मैं इतना नहीं लिख सकता। इसपर लोगों ने और महाराज ने भी उससे कहा कि शान्तिपूर्वक सुने जाओ, परन्तु वह महाराज के तेज से ऐसा अभिभूत हुआ कि तुतलाने लगा और विक्षिप्त-सा हो गया और यह बड़बड़ाता हुआ कि 'यह गप्पाष्टक है, जो कोई अपने माता-पिता से उत्पन्न हिन्दू हो वह इसकी बात न सुने' सभा से चला गया। उसके साथ दस-बारह मनुष्य और उठकर चले गये शेष शान्तिपूर्वक सुनते रहे।

राजा का धूर्त कोठारी—एक दिन महाराज ने एक कथा सुनाई कि एक राजा था, जिसका कोठरी बहुत अधिकार-सम्पन्न था। जब कोई ब्राह्मण उसके पास आता और उससे कहता कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ आप मेरी सहायता कीजिए तो वह उससे अपना भाग ठहरा लेता और कह देता कि पढ़े-लिखे होने की आवश्यकता नहीं है, मुख से चाहे जो कहते रहो केवल हाथ में माला और गोमुखी होनी चाहिए! एक बार एक मूर्ख ब्राह्मण आया और कोठारी ने अपना भाग ठहराकर उसे नदी के घाट पर भेज दिया। वह घाट पर जाकर जप करने लगा, 'मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का जप करूँ'। फिर एक दूसरा ब्राह्मण आया और वह भी कोठारी का भाग ठहराकर उसी स्थान पर जप करने लगा **'जो तू करे सो मैं करूँ, जो तू करे सो मैं करूँ'**। फिर तीसरा आया, वह विद्वान् था। वह भी घाट पर गया तो उपर्युक्त दृश्य देखकर चकित हुआ और उसने यह कहना आरम्भ किया **'यह निभेगी कब तक, यह निभेगी कब तक'**। इसी प्रकार चौथा पहुँचा वह यह जपने लगा **'जब तक निभेगी तब तक, जब तक निभेगी तब तक'**।§

§ यह दृष्टान्त ऋषि दयानन्द ने अपने 'व्यवहारभानु'' ग्रन्थ में भी दिया हैं। देखो, पृष्ट ४२-४४। —संग्रहकर्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह दृष्टान्त देकर महाराज ने कहा कि आजकल के ब्राह्मणों की यही दशा है, जानते हुए भी अविद्या में धकेले जा रहे हैं।

एक क्लर्क से प्रश्नोत्तर—एक दिन पण्डित कृपाराम क्लर्क मैगेज़ीन, फ़ीरोज़पुर सभा में आये और महाराज से प्रश्नोत्तर करने चाहे, परन्तु महाराज से कहा आप तो कुर्सी पर बैठे हैं, मैं आपसे कैसे प्रश्नोत्तर करूँ। महाराज ने उसके लिए भी कुर्सी लाने को कहा। उसमें कुछ देर हुई तो महाराज ने उनसे कहा कि यदि आपको यह अखरता हो कि में कुर्सी पर क्यों बैठा हूँ तो मैं भी नीचे बैठ जाता हूँ, आप प्रश्न कीजिए, परन्तु इतने में कुर्सी आ गई। उन्होंने पूछा परमेश्वर महदूद है वा ग़ैरमहदूद। महाराज ने कहा कि मैं अरबी नहीं समझता, परन्तु आपका अभिप्राय सर्वव्यापक व एकदेशी से है तो परमेश्वर सर्वव्यापक है। इसपर पण्डित कृपाराम ने अपनी जेब से घड़ी निकाल कर मेज़ पर रखदी और महाराज से कहा कि बताओ इसमें परमेश्वर कहाँ है। महाराज ने उत्तर दिया कि आकाश सब जगह समाया है। सब वस्तुएँ आकाश के भीतर हैं और अपना सोटा खड़ा करके कहा कि जैसे यह मेरा सोटा आकाश से बाहर नहीं हो सकता वैसे ही आपकी घड़ी भी परमेश्वर के व्यापकत्व से पृथक् नहीं हो सकती।

विरोधी अनुकूल हो गया—उस समय तो पण्डित कृपाराम यह कहकर चले गये कि आपको गपोड़े हाँकने आते हैं, परन्तु पीछे महाराज के कथन की सत्यता के सामने उन्होंने सिर झुकाया और वे आर्यसमाज के सभासद् बने।

पञ्जाबी तुक का अर्थ—एक दिन एक दफ्तरी ने पञ्जाबी भाषा की एक तुक महाराज को सुनाई कि—**"ज्ञान कर ज्ञान कर, ज्ञान का खण्डन कर खेल चौगान मैदान मांही।"** वह दूसरी तुक पढ़ने को ही था कि महाराज ने उससे कहा कि पहले इसी तुक का अर्थ करो। वह न कर सका तो उन्होंने स्वयं उसका अर्थ किया कि कुछ पढ़ और भले प्रकार पढ़, फिर पढ़ा-लिखा सब भूल जा और गिल्ली डण्डा खेल।

एक दिन नगर के पण्डितों ने कुछ प्रश्न बनाकर भेजे, जिनका महाराज ने तत्काल समुचित उत्तर दे दिया।

पूजा का शत्रु पुजारी—एक मन्दिर का पुजारी महाराज के पास आया और कुछ पूछना चाहा। महाराज ने उससे पूछा कि कुछ पढ़े हो कि नहीं। उसने कुछ ग्रन्थों के नाम बताये। फिर उससे पुजारी शब्द के अर्थ करने को कहा। वह न कर सका, तब महाराज ने कहा कि इसके अर्थ हैं पूजा का अरि (शत्रु)। उसी पुजारी के यह कहने पर कि सब शास्त्र वेद के सहारे ही बने हैं, महाराज ने इसकी सत्यता स्वीकार करते हुए कहा कि जैसे थैली के रुपयों में खरा-खोटा देखना सर्राफ़ का काम है, ऐसे ही विद्वानों का काम सत्यासत्य के निर्णय करने का है।

भक्त से योग-चर्चा—फ़ीरोज़पुर में एक सज्जन थे जिनका नाम स्वरूपसिंह था। उनकी जप-पाठ में बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने बहुत देर तक महाराज से योग-चर्चा की और महाराज ने परम दयालुता से योग के कई बहुमूल्य रहस्य बताये।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—महाराज ४ नवम्बर की रात्रि को फ़ीरोज़पुर से प्रस्थित हुए और ५ नवम्बर को लाहौर पहुँच गये। महाराज के चले जाने के पश्चात् फ़ीरोज़पुर में नियम-पूर्वक आर्यसमाज स्थापित हो गया।

(५ नव०—७ नव०) लाहौर (का० कृ० ३०—का० शु० २)

५ नवम्बर सन् १८७७ को महाराज प्रातःकाल फ़ीरोज़पुर से लाहौर पहुँच गये। उसी दिन सांयकाल को आर्यसमाज में व्याख्यान दिया। ६ नवम्बर को आर्यसमाज में व्याख्यान दिया। ६ नवम्बर को आर्यसमाज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के उपनियम स्वीकार होने थे। तदर्थ अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन हुआ। महाराज उसमें विराजमान थे।

मुझे सम्मति देने का अधिकार नहीं है—अन्तरङ्ग सभासदों ने महाराज से सम्मति देने की प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया और कहा कि मैं आपकी सभा का सदस्य नहीं हूँ। मुझे सम्मति देने का कोई अधिकार नहीं है। तब उन्हें सभासद् बनाया गया और फिर उन्होंने अपनी सम्मति दी। इससे स्पष्ट है कि महाराज नियमों का कितना आदर करते थे।

७ नवम्बर सन् १८७७ को महाराज ने रावलपिण्डी के लिए प्रस्थान किया।

(८ नव०—२६ दिस०) रावलपिण्डी (का० शु० ३—पौ० कृ० ७)

श्रीमहाराज की ख्याति पञ्जाब के नगर-नगर में फैल गई थी। रावलपिण्डी में भी उनके उपदेशों की चर्चा होने लगी थी। वहाँ दो खत्री जवाहर व प्रभुदयाल थे जो घी-तेल की दुकान करते थे और कुछ संस्कृत भी पढ़े थे। एक दिन रावलपिण्डी के रईस सरदार सुजानसिंह ने उनसे कहा कि स्वामीजी तीर्थ, मूर्त्तिपूजा, मृतकश्राद्ध आदि का खण्डन करते हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि स्वामीजी की बातें अयुक्त हैं, आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं, इसलिए आपको उनकी विद्या अधिक जान पड़ती है। इसपर सरदार साहब ने कहा कि आप प्रमाण संग्रह करके दो हम उन्हें स्वामीजी के पास उत्तरार्थ भेज देंगे। इसपर उन्होंने कुछ प्रमाण लिखकर दिये जो सरदार साहब ने महाराज के पास भेज दिये। महाराज ने उत्तर में लिख दिया कि आप संस्कृतज्ञ नहीं है, इससे उत्तर नहीं भेजते। हम स्वयं रावलपिण्डी आकर उत्तर देंगे। इसके कुछ दिन पश्चात् महाराज रावलपिण्डी में आकर विराजमान हो गये। बाबू निराशचन्द्र वन्द्योपाध्याय हैडक्लर्क, डिप्टी कमिश्नर, सदस्य ब्राह्मसमाज उन्हें लाहौर से लिवाकर लाये थे। रावलपिण्डी में वे पारसी सौदागर जामास्पजी की कोठी में, जो नदी के तट पर थी, ठहरे। उसी कोठी में उनके व्याख्यान होते रहे। ये व्याख्यान मूर्त्तिपूजा आदि विषयों पर ही थे। पहले ही दिन के व्याख्यान में मूर्त्तिपूजा का ऐसा भयानक खण्डन किया कि रावलपिण्डी के जनसाधारण और विशेषकर ब्राह्मणगण विक्षिप्तप्राय हो गये। उसके पश्चात् अनेक लोगों ने उनके व्याख्यानों में जाना बन्द कर दिया।

हिन्दू दूसरे मतों की पुस्तकें नहीं देखते—एक दिन व्याख्यान के पश्चात् महाराज लोगों से बात-चीत कर रहे थे। प्रसङ्गवश वे हिन्दुओं की दशा पर खेद प्रकट कर रहे थे कि वे दूसरे मतों की पुस्तकें नहीं देखते और जब ईसाई वा मुसलमान मेलों में यह कहते हैं कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से जार कर्म किया तो निरुत्तर हो जाते हैं। यह कथा किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं है, परन्तु बाइबिल में यह लिखा है कि पैग़म्बर लूत ने अपनी पुत्रियों से जार कर्म किया। यदि हिन्दू पादरियों और मौलवियों को ऐसी-ऐसी बातें बतलावें तो वे कदापि सम्मुख न ठहर सकें। एक पादरी और मिशन स्कूल के मौलवी भी उस समय उपस्थित थे, उन्होंने आपस में मन्त्रणा की कि स्वामीजी ने यह बात झूठ कही है। कल पुस्तकें लाकर इनपर आक्षेप करना चाहिए, अतः अगले दिन वे पुस्तकें लेकर आये और महाराज से कहा कि कल जो आपने लूत की बात कही थी, वह झूठ है। महाराज ने कहा पहले आपको चाहिए था कि घर में दिया जलाकर अपनी चारपाई की दशा जान लेते तो भरी सभा में आपको लज्जित न होना पड़ता, परन्तु वे आग्रह करते रहे कि आपका कथन असत्य है तो महाराज ने अपनी बाइबिल की पुस्तक मँगाकर उन्हें दिखाई जिसपर वे बहुत लज्जित हुए और कहने लगे कि उसने मद्य की मत्तता में ऐसा किया। इसपर एक सज्जन ने कहा कि वह जानता था कि मेरी स्त्री का देहान्त हो चुका है और वह मेरी पुत्री है, उसका पाप से छुटकारा नहीं हो सकता। इसपर वे लज्जित होकर चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारी कोठी में न रहिए—जामास्पजी महाराज को अपनी कोठी में रखना नहीं चाहते थे, क्योंकि विपक्षी लोगों ने उन्हें महाराज के विरुद्ध भड़काना आरम्भ कर दिया था। जामास्पजी ने स्वयं तो यह बात महाराज से न कही, वरन् अन्य लोगों से कहलवाई। इसपर महाराज के भक्तों ने सरदार सुजानसिंह से महाराज को अपनी कोठी में निवासस्थान देने की प्रार्थना की जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार की। शेष जितने दिन महाराज रावलपिण्डी में रहे उनकी ही कोठी में रहे। जामास्पजी की कोठी में वे केवल ८-१० दिन ही रहे थे।

भीड़ को आने दो—एक दिन नगर के लगभग ५०० मनुष्य पण्डित ब्रजलाल के बाग़ में गये§। भाई अतरसिंह ने महाराज से निवेदन किया कि नगर के लोगों की भीड़ आ रही है, महाराज ने कहा आने दो, देखो क्या होता है।

आपकी बातों का कैसे विश्वास हो—सरदार कृपालसिंह ने कहा कि मूर्त्तिपूजा को सनातन से लोग स्थापित करते चले आते हैं और आप उसका खण्डन करते हैं तो लोगों को कैसे विश्वास हो। महाराज ने कहा यदि कोई शास्त्र-द्रष्टा हो तो हम पत्र लिखते हैं, उसका उत्तर हमें दे, चाहे स्वामी सम्पद्गिरि से (जो कनखल की एक गद्दी के महन्त थे और उन दिनों रावलपिण्डी में ठहरे हुए थे और विद्वान् थे) सहायता ले-लें अथवा काशी की विद्वन्मण्डली से, परन्तु इसपर कोई सन्नद्ध न हुआ। पण्डित ब्रजलाल ने एक श्लोक पढ़ा, परन्तु वह इतना अशुद्ध था कि महाराज को कुछ आवेश आ गया और वे कड़ककर बोले कि यह बालकों की शाला नहीं है कि अशुद्ध बोलकर हमारा समय नष्ट करो। वह श्लोक का कुछ भी पता न बता सका और पण्डित ब्रजलाल को उसकी अशुद्धियाँ स्वीकार करनी पड़ी।

जीवन की घटनाओं का वर्णन—निज स्थान पर महाराज ने अपने जीवन की घटनाएँ कई दिन तक वर्णन कीं, परन्तु अपना पितृदत्त नाम नहीं बतलाया।

महाराजा काश्मीर का निमन्त्रण अस्वीकृत, मारवाड़ का एक मूर्त्तिपूजक राजा—महाराजा जम्मू व काश्मीर की एक पत्रिका आई थी। उसपर महाराज ने काश्मीर जाने में अनिच्छा प्रकट की कि महाराजा ने सैकड़ों मन्दिर बनवाये हैं और हम उनका खण्डन करेंगे इससे उपद्रव होने का भय है। इसी प्रसंग में उन्होंने यह भी कहा था कि मारवाड़ का एक राजा १५ सेर रुद्राक्ष धारण किया करता और ५ सेर मिट्टी के शिवलिंग प्रतिदिन बनाया करता था। उन्हें एक ब्राह्मण जल छोड़कर बहाता जाया करता था। महाराज ने उसे उपदेश दिया। ब्राह्मण ने कहा कि रुद्राक्ष गौरीशंकर हैं। महाराज ने कहा यह तो एक वृक्ष के बीज हैं। महाराज ने कहा कि वह राजा जब फिर हमें मिला तो उसने केवल एक रुद्राक्ष धरण कर रक्खा था। उसने प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकट की और कहा आपके उपदेश से मेरी अविद्या दूर हुई।

सम्पद्गिरि का वृथा प्रयास—एक दिन स्वामी सम्पद्गिरि ने ऋग्वेद की ऋचा **'इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति'** आदि लिखकर पण्डित लक्ष्मीराम द्वारा, जिनकी विद्वत्ता की रावलपिण्डी में बड़ी ख्याति थी, महाराज के पास भेजी कि इसमें तीर्थों का प्रतिपादन है, फिर आप तीर्थों का खण्डन कैसे करते हैं? उत्तर में महाराज ने लिख भेजा कि उक्त मन्त्र में गङ्गा-यमुना आदि नदियों के नाम नहीं है, प्रत्युत शरीर की नाड़ी-विशेष के नाम हैं और साथ में ही स्वामी सम्पद्गिरि की संस्कृत की अशुद्धियाँ भी लिखकर भेज दीं। स्वामी सम्पद्गिरि को फिर प्रत्युत्तर देने का साहस न हुआ।

---

§ दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि लोग ज्यों-त्यों करके सम्पद्गिरि को साथ लाये थे, परन्तु अन्त समय में वह किनारा कर गये और इसलिए पण्डित ब्रजलाल को ही 'गले पड़ा ढोल' बजाना पड़ा। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पद्गिरि से साक्षात्, हम ऐसा उपदेश नहीं कर सकते—पण्डित लेखारामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि एक दिन महाराज भ्रमणार्थ जा रहे थे कि मार्ग में स्वामीजी सम्पद्गिरि मिल गये। प्रणाम और कुशल-प्रश्न के पश्चात् महाराज ने उनसे पूछा कि कुछ सदुपदेश भी करते हो वा नहीं। फिर दोनों संस्कृत में भाषण करने लगे। गृह पर जाकर लोगों ने महाराज का वृत्तान्त पूछा तो उन्होंने कहा कि वह ब्राह्मण है और बड़ा विद्वान् है, वे और हम साथ पढ़ते रहे हैं§। फिर लोगों ने कहा कि आप उनसे शास्त्रार्थ करें, तो उन्होंने उत्तर दिया कि तुम साधुओं का युद्ध देखना चाहते हो, हम ऐसा न करेंगे। इसपर लोगों ने कहा कि आप वैसा उपदेश क्यों नहीं करते तो वे बोले कि हमसे नहीं हो सकता, वह निःशङ्क है।

उसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि पं० लक्ष्मीराम और महाराज में आमने-सामने बात-चीत नहीं हुई। पं० लक्ष्मीराम‡ ने महाराज के शास्त्रार्थ के चैलैंज के उत्तर में लिखा कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ, परन्तु उस पत्र में अशुद्धियों पर जगह-जगह हरताल लगा रक्खी थी। महाराज ने उत्तर दिया कि वह लिखना ही नहीं जानता, इतने छोटे पत्र में इतनी जगह हरताल लगा रक्खी है। उससे कहो कि शुद्ध लिखकर भेजे, परन्तु फिर पण्डित लक्ष्मीराम सामने न आये।

आर्यसमाज की स्थापना—महाराज के सामने ही रावलपिण्डी में आर्यसमाज स्थापित हो गया। भक्त किशनचन्द समाज के मन्त्री नियत हुए थे। उनके और लाला गोपीचन्द के प्रस्ताव पर ही महाराज ने वेदाङ्ग-प्रकाश प्रकाशित करना स्वीकार किया था।

२६ दिसम्बर सन् १८७७ को महाराज ने गुजरात जाने के विचार से प्रस्थान किया।

(२७ दिस० ७७—१३ जन० ७८) जेहलम (पौ० कृ० ८—पौ० शु० ६)

२६ दिसम्बर सन् १८७७ को महाराज रावलपिण्डी से गुजरात जाने के विचार से शिकरम पर सवार होकर २६ दिसम्बर को जेहलम रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। साथ के लोगों को स्टेशन पर छोड़कर आप पेरेड के मैदान की ओर भ्रमणार्थ चले गये, वहाँ उनकी भेंट मास्टर लछमनप्रसाद से हुई। मास्टरजी ने उन्हें देखते ही पहचान लिया, क्योंकि वे पहले लखनऊ में महाराज के दर्शन कर चुके थे। उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि कुछ दिन जेहलम रहकर नगर-निवासियों को उपदेश से कृतार्थ करें। इसपर महाराज ने कहा कि यहाँ प्रबन्ध करनेवाला कोई नहीं है, तब मास्टरजी ने प्रबन्ध का समस्त भार अपने ऊपर लेकर उन्हें नदी के निकट एक बँगले में ठहरा दिया।

पादरी शास्त्रार्थ का साहस न कर सके—महाराज का पहला व्याख्यान सराय मङ्गलसैन के निकट मैदान में हुआ, दूसरा निवास-स्थान पर। उस दिन गवर्नमेंट हाईस्कूल के हैडमास्टर शिवचरण घोष, जो ईसाई थे, अन्य कई पादरियों के साथ शास्त्रार्थ के लिए आये, परन्तु अतिकाल हो जाने के कारण उस दिन कुछ परिणाम न निकला, तब पादरी लोगों की इच्छा पर महाराज के व्याख्यानों का प्रबन्ध गवर्नमेंट स्कूल के हॉल में हुआ और अन्त तक वहीं व्याख्यान होते रहे। दो-तीन दिन तक तो पादरी लोग बड़े उत्साह से शास्त्रार्थ के लिए आते रहे, परन्तु महाराज की अकाट्य युक्तियों से वे इतने घबराये कि रोग के मिष से शास्त्रार्थ से जी चुराने

---

§ स्वामीजी और सम्पद्गिरि के सहपाठी होने का कोई प्रमाण नहीं मिला। —**संग्रहकर्त्ता**

‡ ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ ८१ पर पं० लक्ष्मीराम का लिखा हुआ पत्र और उसका ऋषि दयानन्दकृत संशोधन छपा है। उससे विदित होता है कि स्वामीजी ने स्वामी समपद्गिरि को मध्यस्थ मानकर पं० लक्ष्मीराम से शास्त्रार्थ करना अङ्गीकार नहीं किया था। स्वामीजी महाराज ने उस पत्र पर नोट दिया है—"सम्पद्गिरिजी का मध्यस्थ होना असम्भव है, विद्या कम होने से।"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लगे। हैडमास्टर साहब तो महाराज के उत्तरों और कटाक्षों से, जो बाइबिल के प्रमाणों पर अवलम्बित होते थे, ऐसे चुप हुए कि फिर उन्होंने महाराज के कथन पर आक्षेप करने का साहस न किया। एक दिन एक ईसाई कुछ आक्षेप लिखकर लाया, परन्तु उसका शरीर थर-थर काँपने लगा और वह अपने आक्षेपों को पढ़ भी न सका। अन्त को लज्जित होकर सभास्थल से चला गया।

महाराज के व्याख्यान सन्ध्या समय हुआ करते थे। आरम्भ में वे खड़े होकर उच्च और मधुर स्वर से वेद-मन्त्रों द्वारा ईश्वर-प्रार्थना करते और फिर व्याख्यान देते। महाराज की वक्तृता अत्यन्त सरल, सुबोध और विनोदपूर्ण होती थी।

महाराज उन दिनों मध्याह्नोत्तर में ४ बजे एक ही समय भोजन किया करते थे। दो-तीन पण्डित वेदभाष्य लिखने के लिए और एक अंग्रेज़ी जाननेवाला बाबू पत्रव्यवहार के लिए साथ था।

आर्यसमाज की स्थापना, आर्यसमाजी से ब्राह्मसमाजी, ब्रह्मसमाजी होकर मिथ्याभाषण—महाराज की उपस्थिति में जेहलम में आर्य-समाज स्थापित हो गया और उपर्युक्त मास्टर लछमनप्रसाद जो ब्राह्म-समाजी थे, वैदिक मतानुयायी होकर आर्यसमाज के प्रधान निर्वाचित हुए। कहते हैं कि कुछ काल के पश्चात् वे फिर ब्राह्मसमाजी बन गये और कहने लगे कि मैंने स्वामीजी के समान वेदों को ईश्वरकृत नहीं माना था और स्वामीजी भी उन्हें ईश्वरकृत नहीं मानते थे। महाराज के विषय में तो ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है, जिसे कोई भी बुद्धिमान् नहीं मान सकता, स्वयं मास्टरजी के विषय में भी मिथ्या है, क्योंकि उन्होंने अनेक बार अपने व्याख्यानों और लेखों में वेदों का ईश्वरकृत होना स्वीकार किया था। यहाँ हम केवल एक लेख में से जो 'आर्यदर्पण' मासिक-पत्र शाहजहाँपुर के जनवरी सन् १८८० के अङ्क में मुद्रित हुआ था एक उद्धरण देते हैं जिससे मास्टरजी के कथन की असत्यता विस्पष्ट रूप में प्रकट होती है। उस लेख में उन्होंने लिखा था—

"जो ईश्वरोक्त सत् विद्याओं से युक्त ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, चार पुस्तक हैं और जिनसे मनुष्य को सत्य-सत्य ज्ञान होता है, उनको वेद कहते हैं।"

वृद्ध महात्मा—उस समय एक वृद्ध महात्मा नदी के तट पर रहते थे और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। उनसे महाराज का संस्कृत में प्रेमालाप हुआ करता था। दोनों ही संस्कृत ऐसी सरलता से बोलते थे कि जैसे लोग अपनी मातृ-भाषा बोलते हैं। पण्डित गुरुदत्त इन महात्मा को योगी कहा करते थे। आर्यसमाज में बड़े-बड़े योग्य और विद्वान् पुरुष सम्मिलित हुए। गान विद्या-विशारद मेहता अमींचन्द महाराज की बहुत प्रशंसा किया करते थे और चार-पाँच वर्ष पश्चात् आर्यसमाज के सभासद् बन गये थे।

आर्यसमाज के प्रचार पर हर्ष—महाराज के जेहलम-त्याग से एक दिन पूर्व लाला गङ्गाराम धम ने एक सज्जन से आर्यसमाज की सभासदी का आवेदन पत्र लिखाया, वह उनकी जेब में पड़ा हुआ था। अगले दिन जब वह और अन्य लोग महाराज को स्टेशन पर पहुँचाने गये तो उन्होंने वह पत्र आर्यसमाज के मन्त्री को दिया। महाराज ने पूछा कि कैसा काग़ज़ है, तो उन्होंने बतलाया कि एक सज्जन का सभासदी के लिए आवेदनपत्र है, महाराज गाड़ी में बैठ चुके थे, परन्तु इन शब्दों को सुनकर इतने हर्षित हुए कि गाड़ी से बाहर आ गये और प्रेम से लाला गङ्गाराम को गले लगा लिया।

१३ जनवरी सन् १८७८ को महाराज गुजरात पहुँचे गये।

(१३ जन०—२ फरवरी) गुजरात (पौ० शु० ६—माघ कृ० ३०)

जेहलम से महाराज १३ जनवरी सन् १८७८ को गुजरात पधारे और फ़तहसर नामी उद्यान में, जो जलालपुर जट्टाँ की सड़क पर है, ठहरे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वत्र स्वामीजी की ही चर्चा थी—उनके पदार्पण करने के पहले से ही गुजरात में महाराज का नाम प्रत्येक मनुष्य की जिह्वा पर था। बाज़ारों और गलीकूचों में उन्हीं की चर्चा थी। विपक्षियों ने यह गप्प उड़ा रक्खी थी कि जब अंग्रेज़ों को हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सफलता नहीं हुई तो उन्होंने इस कार्य के लिए एक विद्वान् साधु को नियत किया है।

ईसाईयों का प्रचार-कार्य—गुजरात में पादरियों का प्रचारकार्य बड़े वेग से हो रहा था। उनका एक हाईस्कूल भी था। वे नगर की बड़ी मण्डी में एक दुकान पर नित्यप्रति ईसाई मत का प्रचार किया करते थे और साथ ही हिन्दू-धर्म पर मनमाने आक्षेप किया करते थे। श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण के चरित्र पर तीव्र-से-तीव्र कटाक्ष करते थे और उनपर अनेक मिथ्या दोषारोपण करते थे। वे कहते थे कि वेदों में अनेक प्रकार की मिथ्या कथाएँ भरी पड़ी हैं। हिन्दू चुपचाप ये सब बातें सुनते थे। वे मन में अवश्य दुःखित होते थे, परन्तु अपने में उन आक्षेपा के उत्तर देने की शक्ति नहीं पाते थे। ईसाइयों के प्रचार का यह फल हुआ था कि गुजरात के कई निवासी ईसाई हो गये थे।

हिन्दूसभा—ईसाईयों के आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए गुजरात-निवासियों ने एक हिन्दूसभा स्थापित की थी जिसमें पण्डित नन्दलाल, मुख्य संस्कृताध्यापक, गवर्नमेंट हाईस्कूल मनुस्मृति के श्लोकों की व्याख्या किया करते थे। पण्डित नन्दलाल संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे।

पहला व्याख्यान, श्रोता का कर्त्तव्य—जिस मकान में अब गवर्नमेंट हाईस्कूल का बोर्डिङ्ग हाउस है, जो तहसील के निकट और पुराने क़िले के भीतर है, महाराज का पहला व्याख्यान उसी मकान में गवर्नमेंट हाई-स्कूल के हैडमास्टर मिस्टर बुचानन की आज्ञा लेकर हुआ था। उसमें उन्होंने कहा था कि जब कोई श्रोता किसी वक्ता का व्याख्यान सुने तो उसे उसपर खूब मनन करके यह जानने का यत्न करना चाहिए कि उसके कथन में कितना सत्य है और कितना असत्य, यह जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिए।

मेरी बात यदि सत्य हो तो मानो—उन्होंने कहा कि मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं यह नहीं चाहता कि जो कुछ मैं कहूँ आप उसपर आँखें मीचकर चलने लगें। आप उसपर विचार करें, उसे जाँचें और परखें, यदि वह आपको सत्य जान पड़े तो उसपर चलें और यदि वह असत्य जान पड़े तो उसपर कोई ध्यान न दें। अन्धविश्वास ही हमारे नाश का मूल है। संस्कृत पुस्तकों में ज्ञान का बृहत् कोष भरा हुआ है, उन्हें पढ़ो और देखो कि उनमें क्या है। ऐसा मत कहो कि कोई बात केवल इसलिए माननीय वा त्याज्य है क्योंकि दयानन्द सरस्वती ऐसा कहता है।

राजा और बैंगन की कथा—इसपर उन्होंने यह दृष्टान्त दिया था कि एक दिन एक राजा बैंगन खाकर सभा में आये, उस दिन उन्हें बैंगन बहुत स्वादिष्ट लगे थे। सभा में आकर उन्होंने कहा कि बैंगन बड़े स्वादिष्ट होते हैं, तो दरबारी कहने लगे कि महाराज बैंगन तो शाकों का राजा है, देखिए इसका वर्ण श्रीकृष्ण के वर्ण के समान है और इसके शिर पर मुकुट है। राजा ने बैंगन अधिक खा लिये थे, रात्रि में उन्होंने विकार किया, अतः अगले दिन सभा में आकर राजा ने बैंगन की बुराई की तो चाटुकार दरबारी झट कहने लगे कि महाराज इन्हीं अवगुणों के कारण तो इसका वर्ण काला हो गया है और इसे यह दण्ड मिला है कि शाखा के नीचे लटकता रहे।§

यह दृष्टान्त देकर महाराज ने श्रोताओं से कहा कि आप इन दरबारियों के समान न बनिए कि जो कुछ मैं कहूँ उसे बिना विचारे ही स्वीकार वा अस्वीकार करने लगें।

---

§ स्वामीजी ने 'व्यवहारभानु' ग्रन्थ में 'अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा' के दृष्टान्त में यह बात लिखी है। देखो पृष्ठ ५०-५२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी की विशाल मूर्त्ति देखकर स्तम्भित—मेहता ज्ञानचन्द जो पीछे आकर आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्तियों में परिगणित हुए, उन दिनों गवर्नमेंट हाईस्कूल में पढ़ते थे। जिस दिन महाराज का पहला व्याख्यान होने को था उसी दिन वे अपने कई सहपाठियों के साथ महाराज के दर्शनार्थ गये। वे कहते हैं कि हम स्वामीजी की विशाल और विराट् मूर्त्ति को देखकर स्तम्भित हो गये। उस समय महाराज भगवाँ वस्त्र पहने हुए थे, शरीर पर पश्मीने का लाँग कोट और सिर पर रेशमी पगड़ी थी।

मनघढ़न्त श्रुतियाँ—पहले व्याख्यान में ही एक पण्डित होशनाकराय ने कुछ प्रश्न करने चाहे, परन्तु उन्हें रोक दिया गया कि व्याख्यान की समाप्ति पर करना। महाराज ने यह कहा था कि पौराणिकों ने बहुत सी मनगढ़न्त श्रुतियाँ बना ली हैं जैसेकि **'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'**। इसपर गोस्वामी शब्ददास ने कहा कि यह श्रुति है और हम इसे वेद में दिखा देंगे। महाराज ने कहा ये चार वेद उपस्थित हैं, इनमें दिखाइए, तो वह बोले हम अपने वेदों में से कल दिखा देंगे।

पण्डित होशनाकराय ने कहा कि मनुस्मृति में मूर्त्तिपूजा का विधान है। महाराज ने मनुस्मृति उनके सामने रखकर कहा कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कीजिए तो पण्डितजी ने एक श्लोक पढ़कर कहा कि इससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। स्वामीजी ने कहा कि आप झूठ कहते हैं, यह श्लोक मनुस्मृति का नहीं, यह तो विष्णुपुराण का है। इसपर पण्डितजी लज्जा के मारे पानी-पानी हो गये और एक शब्द भी न कह सके।

दूसरा व्याख्यान—अगले दिन मूर्त्तिपूजा-खण्डन पर व्याख्यान था। इसमें महमूदग़ज़नवी के आक्रमणों से देश के धन की हानि का वर्णन किया था और स्त्रियों के मन्दिरों में जाने और वहाँ उनकी दुर्दशा होने का भी वर्णन था। व्याख्यान में ही किसी व्यक्ति ने जो एक छत पर बैठा था प्रश्न किया कि आपने कहा है कि स्त्री पतिव्रता रहे, परन्तु किसी स्त्री का पति वेश्यागामी हो तो वह क्या करे। इसका उत्तर पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि वह भी कोई मज़बूत-सा आदमी रख ले। हमें विश्वास नहीं होता कि महाराज जो स्वयं अखण्ड ब्रह्मचर्यधारी थे किसी दशा में भी किसी को व्यभिचार की आज्ञा देते। महाराज विनोदप्रिय अवश्य थे और कहा जा सकता है कि उन्होंने विनोद में ऐसा कह दिया होगा; परन्तु उनका विनोद भी कभी सीमा का उल्लंघन नहीं करता था और वह विनोद में भी ऐसा नहीं कह सकते थे।

वेद में मनगढ़न्त श्रुति न दिखा सके—गोस्वामी शब्ददास अगले दिन आये। महाराज ने कहा, वेद लाये हो उन्होंने कहा कि वह श्रुति हमारे वेद में है। महाराज ने कहा कि हमारे वेद पुस्तक में दिखाओ। गोस्वामी ने कहा कि हमें क्या ज्ञात है आपके वेदों में गालियाँ ही लिखी हों। महाराज ने कहा, अपने ही वेदों में दिखाइए, परन्तु जो ग्रन्थ वह लाये थे, वे वेद न थे, अतः वे न दिखा सके।

न्याय पर प्रश्नोत्तर—पण्डित होशनाकराय ने कहा, मैं आपसे न्याय में प्रश्न करूँगा। पण्डित नन्दलाल मध्यस्थ बने। व्याप्तिवाद पर प्रश्न हुआ। महाराज ने महाभाष्य के अनुसार व्याप्ति के लक्षण किये और कहा कि हम आर्षग्रन्थों को मानते हैं, आपके लक्षण नहीं मानते। आप हमारे किये हुए लक्षण में अशुद्धि बताइए, परन्तु वह न बता सके और पण्डित नन्दलाल को भी कहना पड़ा कि स्वामीजी ठीक कहते हैं।

जीवन-चरित वर्णन—एक व्याख्यान में महाराज ने अपना जीवन-वृत्तान्त सुनाया था। पण्डित नन्दलाल से उनका कई बार वार्त्तालाप हुआ। एक बार उन्होंने महाराज के यह कहने पर कि **'पादस्य तले यो देशः स पातालः'** आक्षेप किया कि आपकी यह व्युत्पत्ति ठीक नहीं है, परन्तु महाराज ने उसे सिद्ध कर दिया। उन्हीं से **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** इत्यादि मन्त्र पर विचार हुआ तो महाराज ने यह अर्थ किये थे कि वह पुरुष सहस्र सिरवाला नहीं है, प्रत्युत उसमें सहस्रों अर्थात् असंख्यात सिर हैं। चतुरानन शब्द को भी उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि इसके अर्थ चार मुखवाला नहीं, वरन् चार वेद जिसके मुख में हों अर्थात् चतुर्वेदवक्ता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिस्टर बुचानन की डींग—पूर्वोक्त मिस्टर बुचानन संस्कृतज्ञ होने की बहुत डींग मारा करते थे। स्कूल में भी स्वामीजी की ही चर्चा रहती थी। वे विद्यार्थियों से कहा करते थे कि स्वामीजी के वेदमन्त्रों के अर्थ अशुद्ध हैं। विद्यार्थियों ने एक दिन उनसे कहा कि यदि ऐसा है तो आप उनसे शास्त्रार्थ कर लें। उन्होंने स्वीकार कर लिया। सारे दिन वह मोनियर विलियम्स की 'इंडियन विज़डम', नामक पुस्तक देखते रहे और उसमें से एक मन्त्र निकालकर पण्डित नन्दलाल से कहा कि जब पढ़ने की बारी आये तो आप पढ़ देना और झगड़े के समय मैं खड़ा हो जाऊँगा। विद्यार्थियों ने जाकर महाराज से कहा कि हमारे हैडमास्टर आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। उन्होंने स्वीकार कर लिया।

अगले दिन मिस्टर बुचानन और पण्डित नन्दलाल व्याख्यान में गये। उसमें महाराज ने जयपुर के पण्डितों का वृत्तान्त सुनाया कि मैंने व्याकरण में उनसे कई प्रश्न किये जिनमें से मुझे इस समय एक याद है, वह यह था **'कल्म च किं भवति'**। पण्डितों ने रातभर अनेक पुस्तक देखे, परन्तु वे उत्तर न दे सके।

मि० बुचानन कैसे थे—मिस्टर बुचानन किसी बात में भी सद्भावयुक्त न रहते थे, वे सदा हँसी-ठट्ठा किया करते और अश्लील शब्दों के प्रयोग में भी उन्हें कोई सङ्कोच न होता था।

मि० बुचानन से प्रश्नोत्तर—व्याख्यान की समाप्ति पर मिस्टर बुचानन खड़े हुए और कहने लगे कि ओ बाबा ! तू इन लोगों की जीविका छीनता है, उसके बदले में उन्हें क्या देता है। महाराज ने उत्तर दिया कि **मैं इन्हें वेद देता हूँ और योगाभ्यास**। फिर मिस्टर बुचानन ने कहा कि मेरे आपपर कुछ प्रश्न हैं। महाराज ने कहा कि कीजिए। मि० बुचानन ने कहा कि बाबाजी ! आप कहते हैं कि शव को जलाना चाहिए और ऐसा करना विज्ञान के अनुकूल है और वेद भी यही आज्ञा देते हैं, परन्तु देखो यह मन्त्र क्या कहता है। यह कहकर उन्होंने एक मन्त्र का कुछ भाग पढ़ा। महाराज ने कहा पूरा मन्त्र पढ़िए। इसपर मि० बुचानन ने पण्डित नन्दलाल से जो उनके समीप ही बैठे थे मन्त्र पढ़ने को कहा। पण्डितजी ने मन्त्र पढ़ा। मि० बुचानन बोले—देखो बाबा ! इस मन्त्र का अनुवाद इस प्रकार है कि हे भूमि ! तू अपनी भुजाएँ पसार और इसे अपने भीतर ले। इससे स्पष्ट है कि शव को गाड़ना चाहिए।

महाराज उत्तर देने को ही थे कि मिस्टर बुचानन ने दूसरा प्रश्न कर दिया कि बाबाजी ! आप यह बताइए कि शिशु अपने मुँह में अपनी अंगुलियों और अँगूठों को ही क्यों देता है, अपनी उपस्थेन्द्रिय को क्यों नहीं देता ?

इससे महाराज समझ गये कि साहब बहादुर केवल ठिठोल करने आये हैं। उन्होंने उत्तर दे दिया कि उसका मुख वहाँ तक पहुँच नहीं सकता नहीं तो वह उसे भी मुख में देने में संकोच नहीं करता।

अतिकाल हो जाने के कारण शास्त्रार्थ यहीं समाप्त हो गया। अगले दिन महाराज ने एक अन्य मन्त्र उद्धृत करके उक्त मन्त्र का अर्थ कर दिया कि शव को भूमि खोदकर जलाना चाहिए। उस गर्त्त के दोनों किनारों को उसकी भुजाएँ कहा गया है। इसका अर्थ शव को गाड़ने का कदापि नहीं है। बुचानन साहब निरुत्तर हो गये और आगे कुछ कहने का साहस न हुआ।

हिन्दू-छात्र विधर्मियों से तर्क करने में समर्थ हो गये—स्वामीजी के व्याख्यानों को सुनने से पहले छात्रगण ईसाइयों और मुसलमानों के आक्षेपों का जो वे हिन्दूधर्म पर करते थे कोई उत्तर नहीं दे सकते थे, परन्तु स्वामीजी के केवल चार व्याख्यानों को सुनने से ही सारा दृश्य बदल गया। वे इतने सशक्त और समर्थ हो गये कि किसी भी ईसाई वा मुसलमान से धर्म-विषय पर तर्क करने को उद्यत होने लगे।

तीन महत्त्वपूर्ण व्याख्यान—महाराज के व्याख्यानों में तीन व्याख्यान बड़े महत्त्वपूर्ण थे और ऐसे थे कि जिनको सुनते समय प्रत्येक श्रोता चाहे वह किसी जाति वा मत का हो यह अनुभव करता था कि वह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृदय में आर्य है।

वेद का महत्त्व—इसमें से पहला व्याख्यान वेदों के महत्त्व और उनके सत्य-विद्या के पुस्तक होने के विषय पर था। इसमें सब धर्मों की तुलना करके वैदिक धर्म का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया था।

ब्रह्मचर्य का महत्त्व—दूसरा व्याख्यान ब्रह्मचर्य पर था। इसे सुनकर स्कूल के छात्र बड़ी उलझन में पड़ गये थे। उनमें से जो विवाहित थे वे सोचने लगे कि यदि हम २५ वर्ष तक स्त्री-सम्भोग न करेंगे तो हमारी स्त्रियों का चरित्र दूषित हो जाएगा। उन्होंने डरते-डरते यह शङ्का महाराज से निवेदन की तो उन्होंने उत्तर दिया कि यदि तुम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन न करोगे तो तुम और तुम्हारी स्त्रियाँ दोनों ही खराब होओगे और तुम्हारी जो सन्तति होगी वह ह्रस्वकाय होगी।

सन्ध्या, मैं नमाज़ नहीं पढ़ूँगा, सन्ध्या किया करूँगा—तीसरा व्याख्यान सन्ध्या पर था। उसमें महाराज ने कहा कि यदि मैं केवल 'ओ३म्' शब्द की व्याख्या करने लगूँ तो उसे कई दिन और कई घण्टे चाहिएँ, अतः उन्होंने ओ३म् की संक्षिप्त व्याख्या करके सन्ध्या की विधि बतलाई और गायत्री मन्त्र की ऐसी सुन्दर व्याख्या की कि गवर्नमेण्ट स्कूल के फ़ारसी के अध्यापक मौलवी मुहम्मददीन इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भरी सभा में खड़े होकर सबके सामने कहा कि यदि गायत्री के यही अर्थ हैं जो स्वामीजी ने किये हैं तो मैं आगे से नमाज़ पढ़ने के स्थान में सन्ध्या ही किया करूँगा।

गायत्री मन्त्र सबके सामने पढ़ा—महाराज ने यह पहले ही जान लिया था कि वेदमन्त्रों और विशेषकर गायत्री मन्त्र को सबके सामने पढ़ने से ब्राह्मण लोग बहुत खिजेंगे और इस लिए उन्होंने उनके भावी आक्षेपों का उत्तर अपने व्याख्यान में ही दे दिया था। उन्होंने कहा था कि यद्यपि हमारे पास एक रत्न है जिसे संसारभर को दिखाना चाहिए, परन्तु स्वार्थी लोग स्वार्थ के कारण उसे छिपाते हैं। इन मूर्खों को यह ज्ञात नहीं कि यह रत्न चुराया नहीं जा सकता। मैं इसे संसारभर को दिखाऊँगा और फिर देखूँगा कि संसार में कौन है जो इसे बनावटी कहे।

स्वामीजी छद्मवेशी ईसाई हैं—महाराज को जो आशङ्का थी, वह पूरी हुई। नगर के ब्राह्मण सहस्रजिह्व होकर महाराज को कोसने लगे कि यह संन्यासी के वेश में छिपा हुआ ईसाई है। म्लेच्छ और शूद्रों के सम्मुख गायत्री और वेदमन्त्रों का पाठ ! हरे राम ! हरे राम !! ब्राह्मणगण बड़े असमंजस में पड़ गये, परन्तु उनसे कुछ करते-धरते न बन पड़ा। वे येन केन प्रकारेण महाराज को परास्त करना चाहते थे। अन्त में उन्होंने एक गुप्त सभा की और उसमें महाराज से शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया। शास्त्रार्थ करने के लिए उन्होंने अपनी ओर से एक प्रसिद्ध पण्डित को नियत किया जो थोड़े दिन पहले ही जम्मू से आया वा बुलाया गया था।

जम्मू का पण्डित—व्याख्यान के अन्त में महाराज आधा घण्टा शङ्का-समाधान के लिए रक्खा करते थे। एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर जम्मू के पण्डित खड़े हुए और महाराज से एक प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि पण्डितों से शास्त्रार्थ करने का मैं स्वयं बहुत इच्छुक हूँ, परन्तु यह अच्छा होगा कि शास्त्रार्थ के समय उभय पक्ष के पास वे सब ग्रन्थ हों जिनसे प्रमाण दिये जाएँगे। इसपर शास्त्रार्थ अगले दिन सायङ्काल के लिए रक्खा गया।

जम्मू के पण्डित से शास्त्रार्थ—शास्त्रार्थ के समय की लोग बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे और नियत समय पर लोग दलबद्ध होकर शास्त्रार्थ स्थल की ओर जाने लगे और वह थोड़ी देर में मनुष्यों से भर गया। शास्त्रार्थ बोर्डिङ्ग हाउस में ही होनेवाला था, जहाँ पहले से महाराज के व्याख्यान हुआ करते थे। उसके पूर्व की ओर के बरामदे में एक कुर्सी पर महाराज विराजमान थे और सामने मेज़ पर बहुत-सी पुस्तकें रक्खी हुई थीं। मेज़ के दूसरे सिरे पर शास्त्रार्थकर्त्ता अपनी काँख में एक पुस्तक दबाये हुए समासीन थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक ही पुस्तक में सब-कुछ है, पुस्तक कोरी थी—महाराज ने आरम्भ में ही पण्डितजी से पूछा कि आप अपने ग्रन्थ लाये हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'हाँ'। इसपर महाराज ने कहा कि दिखलाइए आपके ग्रन्थ कहाँ हैं ? पण्डित बोले कि सब-कुछ इसी एक पुस्तक में विद्यमान है। इसपर महाराज ने वह पुस्तक पण्डितजी से लेकर खोली तो देखा कि केवल पहले पृष्ठ पर कुछ मन्त्र लिखे हुए हैं और शेष पृष्ठ कोरे हैं।

पण्डितजी पंसारी भी हैं और पण्डित भी—महाराज ने पण्डितजी से प्रश्न किया कि आर्यों की सम्पत्ति केवल ५-७ मन्त्र ही हैं ? पण्डितजी ने उत्तर दिया कि यह मन्त्र वेद और शास्त्रों के सारभूत हैं। महाराज ने इसपर कहा कि पण्डितजी बहुत ही बड़े मनुष्य होंगे। वे पंसारी भी हैं और पण्डित भी। पण्डितजी के उत्तर की प्रतीक्षा न करके उन्होंने एक लम्बा श्वास खींचकर कहा कि आह ! गुजरात का सारा नगर वेदों की एक पुस्तक भी उपस्थित नहीं कर सकता ! ईसाइयों को देखो, वे इंजील का सारी भाषाओं में अनुवाद करते हैं और इंजील की पुस्तक दो-दो आने में मिल सकती है।

हे ब्रह्मणो ! मैं आपका शत्रु नहीं हूँ मैं तो केवल अनपढ़ ब्राह्मणों का शत्रु हूँ।

पण्डितजी कुछ न बोले—पण्डितजी बराबर मौन धारण किये हुए बैठे रहे। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला और शास्त्रार्थ जिसके लिए इतना आयोजन किया गया था समाप्त हो गया, परन्तु पौराणिकदल ने फिर भी यही बात प्रसिद्ध की कि दयानन्द जम्मू के पण्डित से परास्त हो गया।

एक दिन एक सिक्ख साधु लोई ओढ़े हुए स्वामीजी के पास आया। प्रारब्ध और पुरुषार्थ पर वार्त्तालाप करने लगा। महाराज ने कहा कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों ही ठीक हैं। प्रारब्ध पूर्वकर्मों के भोग का नाम है। पुरुषार्थ इस जीवन में शास्त्रीय कर्म करने का नाम है, पुरुषार्थ करना ही चाहिए, परन्तु साधु हठ ही करता रहा और यही कहता रहा कि पुरुषार्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। तब महाराज ने एक सेवक को आज्ञा दी कि इसकी लोई उतारकर सड़क पर फेंक दो, देखें वह बिना पुरुषार्थ के इसके पास कैसे चली आएगी ? सेवक ज्यों ही उसकी लोई उतारने लगा तो उसने लोई को इस ज़ोर से लपेट लिया कि बल लगाने पर भी सेवक लोई न उतार सका।

स्वामीजी के प्राणहरण का षड्यन्त्र—स्वार्थपर ब्राह्मणों का महाराज के प्रति द्वेष सीमा को पार कर गया था। जब वे किसी उत्तम और निर्दोष उपाय से महाराज की उपदेश-गङ्गा के प्रवाह को न रोक सके तो उन्होंने उनके प्राण-हरण के लिए षड्यन्त्र रचा।

अन्ही का पुत्तर, स्वामीजी को गालियाँ—नगर में एक प्रसिद्ध बदमाश था, जिसे लोग 'अन्ही दा पुत्तर' (अन्धी का पुत्र) कहते थे। उससे हर कोई भय खाता था। वह बाज़ार में खुल्लमखुल्ला कहता फिरने लगा कि मैं या तो दयानन्द को मार डालूँगा या उसकी नाक काट लूँगा। मेरे लिए छह मास वा एक वर्ष का कारागार कोई बड़ी बात नहीं है, परन्तु इससे हिन्दुओं की तो रक्षा हो जाएगी। देखो ! यह दुष्ट स्वामी हिन्दू देवी-देवताओं का कितना अपमान करता है। वह ब्रह्मणों को पोप कहता है, स्वयं हस्तक्रिया करता है और दूसरों को ब्रह्मचर्य का उपदेश करता है और रातभर फ़तहसर में नाच देखता है। गुलामहुसैन सौदागर ने छह बोतल शराब की उसके पास भेजी थीं जो वह पी गया। उस रात को नगर की सारी रण्डियाँ उसके पास गई थीं।

वह इसी प्रकार महाराज के प्रति गालियाँ निकालता फिरने लगा। पुलिस ने यही नहीं कि उसे डाँटा-डपटा नहीं, महाराज की रक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं किया। आग बढ़ गई और लोग उसकी गालियों को सुन-सुनकर प्रसन्न होने लगे।

मुझपर कोई आक्रमण नहीं कर सकता—मेहता ज्ञानचन्द और उनके साथियों को यह भय हुआ कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह दुष्ट जो कुछ कहता है कर गुज़रेगा, अतः वे एक दिन महाराज के पास गये और उन्हें सब इतिवृत्त सुनाया और उनसे प्रार्थना की कि आज आप अपने स्थान से बाहर न जावें। महाराज ऐसी बातों से कहाँ डरनेवाले थे। उन्होंने बिना किसी सङ्कोच के कहा कि मैं व्याख्यान देने आज अवश्य आऊँगा। यह सब वृथा वाद है, मुझे कुछ भय नहीं है। तुम मेरा सोटा देखते हो, मुझपर कोई आक्रमण नहीं कर सकता। मैं अकेला ही दस-बारह मनुष्यों पर भारी हूँ। यदि मैं ऐसे डर जाया करता तो देश में वेदों का उपदेश कैसे कर सकता था? मैं अवश्यमेव जाऊँगा। महाराज का उत्तर सुनकर मेहता ज्ञानचन्द आदि आश्चर्य से स्तम्भित हो गये।

मार्ग में और व्याख्यान में ईंटों की वर्षा—ला० परमानन्द डेंटिस्ट (दाँतों के डॉक्टर) लाहौरवाले महाराज के साथ रहा करते थे। उस दिन भी वे उनके साथ व्याख्यान-स्थल को गये। कुछ भय न करते हुए बोर्डिङ्ग हाउस पहुँच गये और नियत समय पर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। व्याख्यान के बीच में उनकी मेज़ पर ईंटें आकर गिरीं, परन्तु उन्होंने उनकी तनिक भी चिन्ता न की और न भय का ही कोई चिह्न प्रकट किया, अपितु सदा की भाँति प्रशान्तचित्त होकर व्याख्यान देते रहे और व्याख्यान की समाप्ति पर अकुतोभयता के साथ निज स्थान को लौट आये।

ईंट मारनेवाले को क्षमादान—एक दिन एक मनुष्य ने महाराज के ईंट मारी, परन्तु वह उनके लगी नहीं। जेल के क्लर्क एक बंगाली सज्जन ने पुलिसमैन को उसके पीछे भेजा, वह उसे पकड़ लाया। उसने ईंट फेंकने से नकार किया और महाराज ने उसे क्षमा कर दिया। ऐसे अवसरों को हमराज हँसकर टाल देते थे और जो लोग ऐसे दुष्टों को धमकाना चाहते थे, उनसे कह दिया करते थे कि हमारे साथ यह कोई नई बात नहीं है। आप विज्ञ हैं, ऐसे पागलों को क्षमा करके उन्हें जाने दो। इनकी चिकित्सा यही है कि इन्हें सदुपदेश दिया जाए।

संन्यासी मण्डली—जिन दिनों महाराज गुजरात में विराजमान थे, उन्हीं दिनों एक संन्यासी-मण्डलीवाला भी वहाँ बड़ी तड़क-भड़क के साथ आया था। एक दिन उसने अपने शिष्यों को महाराज के व्याख्यान में भेजकर यह प्रश्न कराया कि गङ्गा मानने के योग्य है वा नहीं? महाराज ने उत्तर दे दिया कि वह भी और पानियों के समान पानी है। लोगों ने दूध के समुद्र और नदियों की व्यर्थ कल्पना कर रक्खी है, वास्तव में न कहीं दूध का समुद्र है और न कोई दूध की नदी। हाँ, यदि किसी नदी में श्वेत मृत्तिका घुलकर आती हो और उसे लोगों ने दूध की नदी मान लिया हो तो आश्चर्य नहीं।

आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी—एक दिन कुछ हिन्दुओं ने आपस में मन्त्रणा करके महाराज से यह प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी? इससे उनका अभिप्राय यह था कि यदि वे ज्ञानी कहेंगे तो हम कहेंगे कि आप अहङ्कार करते हैं, सन्तों को अहङ्कार नहीं करना चाहिए और यदि वे अज्ञानी कहेंगे तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो हमें आप क्या सिखाएँगे। महाराज ने उनके प्रश्न का ऐसा उत्तर दिया कि वे देखते रह गये और लज्जित होकर चले गये। महाराज ने कहा कि मैं कई बातों में ज्ञानी और कई बातों में अज्ञानी हूँ। संस्कृत और धर्म-विषय में ज्ञानी और फ़ारसी, दुकानदारी विषयों में अज्ञानी हूँ।

हमें चेला बना लीजिए—एक दिन कुछ छात्र महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे प्रार्थना की कि महाराज! आप हमें अपना चेला बना लीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं गुरुआई की प्रथा को अच्छा नहीं समझता, परन्तु यदि तुम मेरे चेले बनना ही चाहते हो तो संस्कृत पढ़ो और जब प्राप्त-वयस्क हो जाओ तो वैदिक सचाइयों का प्रचार करो। सम्प्रति तुम्हारा कर्तव्य यह है कि विद्या प्राप्त करो और २५ वर्ष की आयु तक स्त्री-संग से अलग रहो।

एक स्त्री को उपदेश—महाराज स्त्रियों को दर्शनार्थ नहीं आने दिया करते थे। फ़तहसर के द्वार पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक पहरेदार बैठा रहता था। एक दिन उसने आकर कहा कि महाराज एक स्त्री आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषिणी है। महाराज ने बहुत संकोच किया, परन्तु उसे अन्दर आने की आज्ञा दे दी। वह जाट जाति की स्त्री थी और साधारण वस्त्र पहने हुए थी। उसने आकर निवेदन किया कि महाराज मुझे मारफ़त (ब्रह्मज्ञान) की राह बता दीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि वेद पढ़ो यह सुनकर वह चुप हो गई। फिर महाराज ने उससे पूछा कि और कुछ पूछना है, परन्तु फिर वह कुछ न बोली और उठकर चली गई।

विरोधी पण्डित अनुकूल—पण्डित नन्दलाल से उनके छात्र पूछा करते थे कि क्या स्वामीजी वास्तव में बड़े विद्वान् हैं तो वह यह स्वीकार कर लिया करते थे कि स्वामीजी विद्वान् हैं। वह महाराज की बुराई तो कभी नहीं करते थे, परन्तु इतना कह दिया करते थे कि यद्यपि इस समय तुम लोग श्रद्धालु हिन्दू हो परन्तु ज्योंही तुम स्वामीजी के व्याख्यान सुनोगे त्योंही तुम मूर्त्तियों को पूजना छोड़ दोगे। वास्तव में पण्डित नन्दलाल महाराज के विरोधी थे और कई वर्ष तक उनका और आर्यसमाज का विरोध करते रहे, परन्तु अन्त को उन्हें महाराज के उपदेशों की सत्यता स्वीकार करनी पड़ी और वे आर्यसमाज के सहायक हो गये और कई वर्ष तक आर्यसमाज गुजरात में अध्यापक हुए।

यही गति पण्डित होशनाकराय की भी हुई, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। वे भी आर्यसमाज गुजरात में अध्यापक हुए।

स्वामीजी को वेद कण्ठस्थ थे—महाराज वेदभाष्य की रचना के कार्य में व्यापृत रहते थे। वे पण्डितों को वेदभाष्य लिखाया करते थे। उनके हाथ में कोई पुस्तक नहीं रहती थी फिर भी वे इतनी शीघ्रता से भाष्य लिखाते थे कि लेखकों को लिखने से अवकाश नहीं मिलता था, उन्हें वेद कण्ठस्थ थे।

एक दिन दो उच्च राजकर्मचारी स्वामीजी से मिले और कहने लगे कि महाराज खण्डन में क्या धरा है, इससे लोग उत्तेजित होते हैं। हम तो उसी कर्म को अच्छा समझते हैं कि जिसमें अपना भला हो। परहित-चिन्तन और परोपकार तो ढकोसला है। महाराज ने उत्तर दिया कि **अपनी भलाई का काम तो गधे और अन्य पशु-पक्षी भी करते हैं। मनुष्य की मनुष्यता तो इसी में है कि वह दूसरों का उपकार करे।**

गुज़रात से २ फ़रवरी सन् १८७८ को महाराज ने वज़ीराबाद के लिए प्रस्थान किया और रेल में सवार होकर उसी दिन बज़ीराबाद पहुँच गये।

(२ फर०—७ फर०) वज़ीराबाद (माघ कृ० ३०—माघ शु० ५)

महाराज २ फ़रवरी सन् १८७८ को वज़ीराबाद पहुँच गये। स्टेशन पर आर्यसमाज वज़ीराबाद के सभासद् व अन्य सज्जनों ने उनका स्वागत किया और राजा फ़क़ीरुल्ला के उद्यान-गृह में ठहराया। अगले दिन से उनके व्याख्यान आरम्भ हुए। जनता का बड़ा जमाव था। व्याख्यान के मध्य में ही एक मनुष्य ने चिल्लाकर कहा कि जो इनका व्याख्यान सुने वह हिन्दू का वीर्य नहीं। इसपर कुछ लोग उठकर चले गये फिर भी श्रोता पर्याप्त संख्या में उपस्थित रहे और व्याख्यान शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।

मुख्य पण्डित नगर छोड़कर चले गये—नगर के मुख्य पण्डित महाराज के आगमन का समाचार सुनकर पहले ही नगर छोड़कर चले गये थे, क्योंकि उनमें महाराज से शास्त्रार्थ करने की शक्ति न थी।

दक्षिणा-लोलुप पण्डित से विचार—दूसरे दिन भी महाराज का व्याख्यान हुआ। उसमें हिन्दू लोग वासुदेव नामक एक ब्राह्मण को १००) दक्षिणा देकर महाराज से शास्त्रार्थ के लिए ले-गये और उसे महाराज के सामने एक कुर्सी पर बैठा दिया। उक्त पण्डित ने एक मन्त्र प्रस्तुत करके महाराज से उसके अर्थ करने को कहा। महाराज ने उसका अर्थ कर दिया जिसपर पण्डितजी ने सन्तोष प्रकट किया कि कल वह एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्त्र शालिग्राम और तुलसी की पूजा की पुष्टि में प्रस्तुत करेगा, अतः उस दिन शास्त्रार्थ स्थगित रहा।

शास्त्रार्थ—अगले दिन पण्डित वासुदेव फिर आये और महाराज के सम्मुख कुर्सी पर बैठ गये। उनके साथ नगर-निवासियों की बड़ी भीड़ थी। शास्त्रार्थ के लिए यह नियम स्थिर किया गया कि दोनों शास्त्रार्थी संस्कृत में भाषण करें और उनके कथोपकथन का हिन्दी अनुवाद जनता को सुना दिया जावे।

यह वाक्य वेद का नहीं है—पण्डितजी ने एक मन्त्र प्रस्तुत किया कि इससे शालिग्राम और तुलसी की पूजा सिद्ध होती है। महाराज ने कहा कि यह वेद का मन्त्र नहीं हैं, यह किसी वाक्य की टीका है, अतः उस मन्त्र को प्रस्तुत करना चाहिए जिसकी यह टीका है।

उपद्रव की आशंका—इतने में भीड़ बहुत बढ़ गई और महाराज को उपद्रव की शङ्का हुई। उन्होंने पण्डित शहजादानन्दजी लाहौर-निवासी से, जो वज़ीराबाद में महाराज के पधारने के समय से ही उनकी सेवा में रहते थे, कई बार पुलिस का प्रबन्ध कराने को कहा, परन्तु इन्होंने उसे अनावश्यक समझा, क्योंकि पण्डित रामचन्द्र आनरेरी मैजिस्ट्रेट व्याख्यान में उपस्थित थे, किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् ये महानुभाव उठकर चले गये। उनसे बहुतेरा कहा गया कि आप ठहरें, परन्तु यह कहकर कि उन्हें एक आवश्यक कार्य है, वे चले गये।

पण्डित मन्त्र प्रस्तुत नहीं कर सका—महाराज ने बार-बार पण्डित महोदय से मन्त्र प्रस्तुत करने को कहा, परन्तु उन्होंने न किया। इतने में ही एक लड़के ने कुछ शोर करना आरम्भ कर दिया। महाराज ने कहा कि इस लड़के को चुप करा दो। इसपर ला० लब्धाराम साहनी अप्रेंटिस इञ्जीनियर ने उसके एक-दो छड़ी मार दीं।

उपद्रव आरम्भ हो गया—पौराणिकों का पक्ष गिर रहा था, वे खिजे बैठे थे और उपद्रव करने पर तुले हुए थे। उन्हें उपद्रव का यह बहाना मिल गया और उन्होंने महाराज और ला० लब्धाराम पर आक्रमण कर दिया। आर्यसमाज वज़ीराबाद तथा आर्यसमाज जेहलम के सभासदों ने जो वहाँ उपस्थित थे उनकी रक्षा की और ला०लब्धाराम और महाराज को निवास-स्थान पर पहुँचा दिया और उसके द्वार बन्द कर दिये गये, परन्तु भीड़ डटी खड़ी रही और शोर मचाती रही।

महाराज के हिन्दुस्तानी क्लर्क को खूब पीटा गया—महाराज के हिन्दुस्तानी क्लर्क को जो आवेश आया तो वह लाठी लेकर भीड़ में चला गया। सैकड़ों मनुष्यों के सामने अकेले मनुष्य की पार ही क्या बसाती। लोगों ने उसे खूब पीटा।

स्वामीजी के गर्जन से भीड़ भाग गई—जब यह वृत्त महाराज को ज्ञात हुआ तो वह स्वयं लाठी लेकर बाहर निकले और इस जोर से गर्जन किया कि सब लोग भयभीत हो गये और भाग गये।

इसके पश्चात् भी महाराज कुछ दिन वज़ीराबाद में रहे और व्याख्यान भी देते रहे, परन्तु व्याख्यानों में श्रोताओं की संख्या कम होने लगी, अतः उन्होनें वहाँ अधिक ठहरना हितकर न समझा और ७ फ़रवरी को गुजरानवाला चले गये।

(७ फर०—२ मार्च) गुजरानवाला (माघ शु० ५—फा०कृ० १४)

ला० लब्धाराम वज़ीराबाद से उनके साथ थे। उन्होनें अपने कई प्रतिष्ठित मित्रों को पहले से पत्र लिख दिये थे और वे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए आ गये थे। गुजरानवाला में उन्हें सरदार महासिंह की समाधि के विशाल भवन में ठहराया गया।

पहले दो दिन तो महाराज का कोई व्याख्यान न हुआ। तीसरे दिन से व्याख्यान आरम्भ हुए। वे प्रतिदिन आर्योद्देश्य-रत्नमाला में से एक उद्देश्य ले-लेते थे और उसी पर व्याख्यान देते थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पादरियों का हिन्दुओं को स्वामीजी के विरुद्ध उत्तेजित करना—चार-पाँच दिन बीत जाने पर कुछ पादरियों ने महाराज से उनके धार्मिक मन्तव्य पूछे तो उन्होंने आर्योद्देश्य-रत्नमाला की एक प्रति उन्हें दे दी। इसके पश्चात् उन्होंने नगर के पण्डितों को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए उकसाया और अन्य लोगों ने भी उनसे यही आग्रह किया। नगर के कुछ पण्डित तो पहले से ही नगर छोड़कर चले गये थे।

पण्डित विद्याधर की बुद्धिमत्ता—एक पण्डित विद्याधरजी, जो उच्च कोटि के विद्वान् थे, वहाँ विद्यमान थे। जब लोगों ने उनसे शास्त्रार्थ का अनुरोध किया तो उन्होंने कह दिया कि स्वामी दयानन्द से जो हमारा मतभेद है, वह हमारे घर का मामला है, जिसपर हम उनसे इच्छानुसार वार्तालाप कर सकते हैं। इस समय पादरियों के उकसाने पर घर में झगड़ा खड़ा करना ठीक नहीं हैं। पण्डित विद्याधर के संकेत से पादरियों को यही उत्तर दे दिया गया। पण्डित विद्याधरजी एक दिन महाराज से स्वयं मिलने आये और देर तक प्रेमालाप करके चले गये।

शास्त्रार्थ की छेड़छाड़—अन्त को पादरियों ने ही शास्त्रार्थ की छेड़छाड़ आरम्भ की और यह निश्चय हुआ कि शास्त्रार्थ प्रतिदिन मध्याह्नोत्तर में ४ बजे से हुआ करे और स्थान भी ईसाइयों का गिरजाघर ही नियत हुआ। अन्य समय दिन में महाराज वेदभाष्य के कार्य में संलग्न रहते थे, अतः उपर्युक्त समय ही शास्त्रार्थ के लिए नियत किया गया था।

शास्त्रार्थ-विवरण—१६ फ़रवरी सन् १८७८ को यह शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। ईसाइयों की ओर से कई अंग्रेज और देशी पादरी थे, उनमें से पादरी सोलफीट उपनाम लाशादेसी पादरी शास्त्रार्थ करने के लिए निर्वाचित हुए। शास्त्रार्थ में उच्च राजकर्मचारी और नगर के प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त पुरुष उपस्थित थे। प्रवेश के लिए टिकट लगाया गया था, परन्तु जनता शास्त्रार्थ देखने की इतनी उत्सुक थी कि एक सहस्र के ऊपर लोग शास्त्रार्थ-स्थल में उपस्थित हुए थे और वह मनुष्यों से खचाखच भर गया था।

स्वामीजी का सद्व्यवहार—जब स्वामीजी शास्त्रार्थ-स्थल में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वज़ीराबाद के कुछ लोग जिनमें अधिकांश वहाँ के उपद्रवी ही थे, आँगन में टहल रहे हैं। स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आप लोग यहाँ क्यों घूम रहे हैं भीतर क्यों नहीं जाते, तो उन्होंने कहा कि ईसाइयों ने हमें टिकट नहीं दिया। तब उन्हें स्वामीजी अपने साथ अन्दर ले-गये। वे स्वामीजी के इस सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए।

मध्यस्थ की सम्मति—डिप्टी गोपालदास ऐक्स्ट्रा असिटैण्ट कमिश्नर मध्यस्थ बनाये गये। पहले पादरी साहब ने प्रश्न किया कि यदि जीव भी अनादि हैं तो उसमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता। दो दिन तक इसी विषय पर प्रश्नोत्तर होते रहे और महाराज ने प्रबल युक्तियों से सिद्ध कर दिया कि केवल अनादि होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं हो सकते। परमेश्वर के साथ जीव का सेव्य-सेवक का सम्बन्ध है। श्रोताओं पर भी प्रकट हो गया कि महाराज ने अपना पक्ष सिद्ध कर दिया और मध्यस्थ महोदय ने भी पादरी लोगों से कह दिया कि स्वमीजी आपके प्रश्न का पर्याप्त उत्तर दे चुके हैं, यह आपका हठ है जो नहीं मानते हैं। दोनों दिन शास्त्रार्थ ४ बजे से ८ बजे तक हुआ। दूसरे दिन के शास्त्रार्थ की समाप्ति पर यह देखकर कि गिरजाघर का स्थान बहुत संकुचित था और सैकड़ों लोगों को निराश होकर लौट जाना पड़ता था और इस विचार से कि अधिक लोग भीतर न आवें गिरजाघर के द्वार बन्द कर दिये जाते थे, जिससे लोगों का दम घुटने लगता था।

पादरियों का मिथ्या व्यवहार—महाराज ने पादरियों से कहा कि अन्य कोई खुला हुआ स्थान नियत कीजिए। उस समय तो पादरियों ने कुछ उत्तर न दिया, परन्तु अगले दिन १२ बजे दिन के कुछ ईसाई सज्जन आये और महाराज से कहा कि शास्त्रार्थ के लिए गिरजाघर में पधारिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराज पादरी लोगों की इस उच्छृङ्खल कार्यवाही पर विस्मित हुए। वे कहने लगे कि आप लोग जानते हैं मैं वेदभाष्य के कार्य में व्यापृत रहता हूँ। समय के परिवर्तन की न मुझे सूचना है, न जनता को, मैंने कहा था कि गिरजाघर के बदले कोई अधिक विस्तृत स्थान नियत कीजिए वह तो न किया न सही, समय कैसे बदल दिया ? मैं वेदभाष्य के कार्य को छोड़कर इस समय कदापि नहीं आ सकता। शास्त्रार्थ नियत समय पर ही होगा। मध्यस्थ महोदय ने भी यही उत्तर दे दिया कि इस समय मैं नहीं आ सकता।

पादरियों ने कुछ ईसाइयों और लड़कों को गिरजाघर में इकट्ठा करके यह घोषणा कर दी कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिए नहीं आये, अतः वे परास्त समझे जावें।

पादरियों की धूर्त्तता से सब रुष्ट हो गये—महाराज पादरियों की इस अयुक्तियुक्त कार्यवाही से बहुत विरक्त हुए और नगर के प्रतिष्ठित पुरुष भी पादरियों की इस मूर्खता पर बहुत हँसे।

स्वामीजी का ईसाई मत खण्डन पर व्याख्यान, ईसाई मत की पोल खुल गई—महाराज के अनुरोध पर गिरजाघर के समीप ही महाराज के व्याख्यान का प्रबन्ध कर दिया गया, जहाँ श्रोता सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में उपस्थित हो गये। पादरियों को बहुत बुलाया गया, परन्तु वे घर से बाहर न निकले। महाराज ने पौन घण्टा प्रतीक्षा करके ईसाई मत पर ही व्याख्यान दिया और ऐसे मनोरंजक और युक्तियुक्त ढंग से उसके सिद्धान्तों का खण्डन किया कि श्रोताओं के हृदयों पर ईसाई मत की असारता भली-भाँति अङ्कित हो गई। पादरियों के शास्त्रार्थ से जी चुराने का न केवल यह कारण था कि वे प्रकृत विषय पर निरुत्तर हो गये थे, प्रत्युत यह कारण भी था कि शास्त्रार्थ के बीच में ही महाराज ने ईसा मसीह के ईश्वर होने और बाइबिल के अन्य मन्तव्यों पर ऐसे प्रबल कटाक्ष कर दिये थे कि उनका पादरी कुछ भी समाधान न कर सके थे।

यह शास्त्रार्थ लिपिबद्ध हुआ था, परन्तु वह असावधानी से खोया गया।

वज़ीराबादी मनुष्यों की अनुरक्ति, पण्डित वासुदेव की क्षमा-प्रार्थना—वज़ीराबाद के लोग स्वामीजी के सद्-व्यवहार से पहले ही उनके प्रति अनुरक्त हो गये थे, परन्तु जब उन्होंने स्वधर्म-रक्षा में उनकी अकाट्य युक्तियाँ सुनीं तब तो उनको पूर्णतया विश्वास हो गया कि हिन्दूधर्म का स्वामीजी जैसा कोई रक्षक नहीं है और उन्होंने स्वामीजी को भूल से ही हिन्दूधर्म का विरोधी समझा था। इसपर वे मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे। उनमें वासुदेव पण्डित भी थे जो दक्षिणा के लोभ से वज़ीराबाद में उनसे शास्त्रार्थ करने उनके सम्मुखीन हुआ था। उसे तो उसकी आत्मा ने इतना धिक्कारा कि वह स्वयं स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होकर क्षमाप्रार्थी हुआ। स्वामीजी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि तुमने उस समय जो कुछ किया अपने पक्ष के समर्थन के लिए किया। हमने तो तुम्हारे कार्य से उस समय ही बुरा नहीं माना था और अब तो कोई बात ही नहीं है जिसे मैं क्षमा करूँ, तुम शान्त हो जाओ। संन्यासियों का हृदय ऐसी बातों से कलुषित नहीं होता।

मैं द्वेष-बुद्धि से खण्डन नहीं करता—एक दिन भ्रमण में पादरी मैकी महाराज को मिल गये तो पादरी साहब ने उनसे कहा कि आप ईसाई मत का बड़ा कड़ा खण्डन करते हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो जो कुछ कहता हूँ आपकी पुस्तकों का पाठमात्र होता है। ऐसा खण्डन आप भी करते हैं। मैं द्वेष-बुद्धि से कुछ नहीं कहता और न अनुचित समालोचना करता हूँ।

स्वामीजी ज्ञान और विद्या के अथाह समुद्र—एक दिन एक अंग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त बङ्गाली दार्शनिक से महाराज का वार्त्तालाप हुआ। वह महाराज की दर्शन-विदग्धता पर परम सन्तुष्ट हुआ। उसने लोगों के पूछने पर स्पष्ट कह दिया कि स्वामीजी तो ज्ञान की अगाध गङ्गा और विद्या के अथाह समुद्र हैं, मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं जानता।

इसके पश्चात् ४ मार्च तक महाराज गुज़रानवाला में रहे, परन्तु किसी ईसाई का शास्त्रार्थ करने का तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्या शास्त्रार्थ का नाम लेने का भी साहस न हुआ।

स्वामीजी का प्रभाव, विरोधी अनुगामी—महाराज का लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ता था इसके दो बड़े उत्तम उदाहरण हमें गुजरानवाला में मिलते हैं। एक जन मुंशी नारायणकृष्ण अपने सम्बन्ध में लिखते हैं कि "मैं भी इस नगर में स्वामीजी का अद्वितीय और प्रसिद्ध विरोधी था, धार्मिक शास्त्रार्थों में मेरी बहुत मनोलग्नता थी और आरम्भ से ही स्वामीजी को अपशब्दों से सम्बोधित किया करता था, परन्तु जिस समय से उस पूर्ण-ऋषि और महान् विद्वान् के सदुपदेशों को सुना और उनकी पुस्तकों को पढ़ा तब से उस **'यथा नाम तथा गुणः'** के नाम और उसके पवित्र काम पर बलिदान होना अर्थात् उसके सदुपदेशों पर चलना सच्चे हृदय से मनुष्यजीवन का फल मानता हूँ और उसके आविर्भाव को परमात्मा का एक बड़ा अनुग्रह मानता हूँ।"

पुजारी अनुयायी, उसकी स्वामीजी को भेंट—गुजरानवाला के एक बड़े मन्दिर के पुजारी पण्डित भगवद्दत्त को महाराज के उपदेश सुनने का इतना चाव बढ़ गया था कि वह मूर्त्तियों की समय से पहले ही आरती करके व्याख्यान सुनने चले जाया करते थे। जब महाराज गुजरानवाला से चलने लगे और रेल में बैठ गये तो पुजारीजी ने छिपकर मिठाई की टोकरी महाराज की भेंट की। दो वर्ष तक तो वे पुजारी का काम करते रहे, परन्तु फिर उन्हें मूर्त्तिपूजा में इतनी अश्रद्धा हुई कि उन्होंने मन्दिर की नौकरी छोड़ दी और आर्यसमाज के सभासद् हो गये।

ब्रह्मचर्य की महिमा—एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में कहा था कि हरिसिंह नलवा बड़ा शूरवीर था। उसका कारण सम्भवतः यही था कि वह २५-२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि मेरी अवस्था इस समय ५१ वर्ष की है और मेरा ब्रह्मचर्य अखण्डित है। मैं दृढ़ता-पूर्वक कहता हूँ कि जिस किसी को अपने बल का घमण्ड हो मैं उसका हाथ पकड़े लेता हूँ, छुड़ा लेवे अथवा मैं अपना हाथ खड़ा करता हूँ उसे झुका देवे। उस समय लगभग ५०० की उपस्थिति होगी जिनमें कई कश्मीरी पहलवान भी थे, परन्तु किसी को महाराज के आह्वान को स्वीकार करने का साहस न हुआ।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—फाल्गुन कृष्णा १४ संवत् १९३४ अर्थात् ४ मार्च सन् १८७८ को गुजरानवाला से प्रस्थान करके महाराज ने लाहौर में पदार्पण किया। गुजरानवाला से प्रस्थान करने से एक दिन पहले वहाँ आर्यसमाज स्थापित हो गया था।

(२ मार्च—१२ मार्च) लाहौर (फा० कृ० १४—फा० शु० ८)

लाहौर में महाराज नवाब रज़ाअलीखाँ के ही बगीचे में ठहरे और वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे।

लाहौर, इसलाम पर व्याख्यान, ऐसा न हो नवाब अप्रसन्न हो जाएँ—११ मार्च सन् १८७८ को उन्होंने मुसलमानी मत की आलोचना में व्याख्यान दिया। बग़ीचे के मालिक नवाब नवाज़िशअलीखाँ पास ही टहल रहे थे और उनका व्याख्यान सुन रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर किसी ने उनसे कहा कि महाराज आपको न कोई हिन्दु ठहरने को स्थान देता है, न ईसाई, न मुसलमान, नवाब साहब ने कृपा करके आपको यह स्थान दिया था, परन्तु यहाँ भी आपने इस्लाम का खण्डन किया, ऐसा न हो कि नवाब साहब आपसे अप्रसन्न हो जाएँ।

मुझे परमात्मा से भिन्न किसी का भय नहीं है—महाराज ने उत्तर दिया कि मैं यहाँ इस्लाम वा किसी अन्य मत की प्रशंसा करने नहीं आया हूँ। मैं तो केवल वैदिक धर्म को ही सच्चा मानता हूँ और उसी का उपदेश करता हूँ। मैंने देख लिया था कि नवाब साहब सुन रहे हैं। मैं जान-बूझकर उन्हें वैदिक धर्म के गुण सुना रहा था। मुझे परमात्मा से भिन्न अन्य किसी का भय नहीं है। १२ मार्च सन् १८७८ को महाराज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाहौर से मुलतान चले गये।

(१२ मार्च—१६ अप्रैल) मुलतान (फा० शु० ८ सं० ३५—चैत्र शु० १४ सं० ३६)

स्वामीजी के मुलतान पधारने के लिए आयोजन—अन्य नगरों की भाँति महाराज की ख्याति मुलतान में भी पहुँच गई थी। कुछ ब्राह्मसमाजी सज्जनों और अन्य महानुभावों ने, जिनके मन मूर्त्तिपूजा से हट चुके थे, आपस में मन्त्रणा की कि स्वामीजी को मुलतान बुलाना चाहिए और उनके व्यय आदि के लिए १३८ रुपये चन्दा एकत्र करके उनकी सेवा में तार भेजा। महाराज ने उत्तर दिया कि अभी कुछ दिन लाहौर और ठहरेंगे तत्पश्चात् मुलतान आएँगे। तदनन्तर यह सम्मति हुई कि महाराज को मुलतान लाने के लिए ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द को भेजा जाए। तदनुसार वे लाहौर गये। वहाँ उन्होंने जाकर देखा कि महाराज के उस दिन के व्याख्यान से तुमुल आन्दोलन हो रहा था। कई लोगों ने ठाकुरों के सिंहासन रावी नदी में फेंक दिये थे। दूसरे दिन ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द महाराज को साथ लेकर सायंकाल के ६॥ बजे मुलतान पहुँचे। छावनी के स्टेशन पर ३० के लगभग सज्जन उनके स्वागत के लिए उपस्थित थे। स्टेशन से महाराज को ब्राह्मसमाज के मन्दिर में ले-गये। वहाँ कुछ देर ठहरकर और जलपान करके नगर में गये और बेगी बाग़ में उन्हें ठहराया गया।

पहला व्याख्यान, गोकुलिये गोसाईं चिढ़ गये—उसी दिन महाराज का व्याख्यान बेगी बाग़ में हुआ जिसकी सूचना डौंडी पिटवाकर जनता को दी गई। व्याख्यान सृष्ट्युत्पत्ति पर था। दो तीन दिन वहाँ ही व्याख्यान होते रहे। यह होलियों का समय था, होलिकाष्टक १२ मार्च से १८ मार्च सन् १८७८ तक था। १८ मार्च की होली थी। एक दिन महाराज ने गोकुलिये गोसाइयों के मत पर व्याख्यान दिया और उनकी लीलाओं का खूब खण्डन किया।

गोपलदास गोसाईं की धूर्त्तता—उन दिनों वहाँ गोपालदास गोसाईं बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते थे। उन्हें महाराज के इस व्याख्यान से बड़ा आवेश आया जिसका कारण अनुमानतः यह था कि मुलतान में गोकुलिये गोसाइयों के मत के अनुयायी बहुत थे और गोपालदास को भय हुआ कि महाराज के उपदेश से चिड़ियाँ उसके जाल से निकल जाएँगी। वह शङ्ख-घड़ियाल बजवाता हुआ, घोड़े पर सवार होकर सभास्थल में पहुँचा। प्रबन्धार्थ और उपद्रव की रोकथाम के लिए पुलिस के चार कॉंस्टेबिल व्याख्यान के समय उपस्थित रहते थे। महाराज ने उनसे कहकर गोपालदास को शोर करने से रुकवा दिया और स्वयं पूर्ववत् प्रशान्त भाव से व्याख्यान देते रहे।

धूर्त्तता की पुनरावृत्ति—दूसरे दिन गोपालदास अपने सेवक साथियों को लेकर, जिनके हाथ में लाठियाँ और छुरियाँ थीं, फिर व्याख्यान स्थल में पहुँचा तो महाराज ने व्याख्यान बन्द कर दिया और वे लोग थोड़ी देर हायहुल्ला करके चले गये।

छावनी में व्याख्यान—इस प्रकार नगर में केवल चार व्याख्यान हुए। फिर लोगों की सम्मति हुई कि होलियों के हुल्लड़ के कारण नगर में व्याख्यान करना श्रेयस्कर नहीं है, अतः हरमुजजी पेंशनर कोतवाल मुलतान छावनी तथा दिनशाजी बहरामजी सौदागर ने महाराज से छावनी में व्याख्यान देने की अभ्यर्थना की और उसके पश्चात् तीन व्याख्यान छावनी में हुए। पहला व्याख्यान यज्ञोपवीत पर, दूसरा यूरोप के बसने पर और तीसरा प्राचीन काल में विवाह की रीति पर था। उसी में महाराज ने बालक-बालिकाओं की पाठशालाओं, छात्रों के अध्ययन और रहन-सहन का विस्तृत वर्णन किया था।

पारसी सज्जनों की भेंट—तीसरे व्याख्यान के अन्त में पारसी सज्जनों ने एक थाल किशमिशों का और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१००) रुपये महाराज को भेंट किये, जिसे पारसी और अन्य सज्जनों के आग्रह पर उन्होंने स्वीकार किया। रुपया वेदभाष्य फण्ड में जमा करा दिया गया।

वैदिक अलङ्कारों का स्पष्टीकरण—एक व्याख्यान में गोतम अहल्या और इन्द्र की अश्लील पौराणिक कथा का मिथ्यात्व सिद्ध करके महाराज ने कहा था कि यह एक वैदिक अलङ्कार है। गोतम चन्द्रमा का, अहल्या रात्रि का और इन्द्र सूर्य का नाम है। लोगों ने सत्य अर्थ न समझकर यह गपोड़ा रच लिया है। इसपर एक महाब्राह्मण को बहुत क्रोध आया। वह भङ्ग भी पिये हुए था। उसने अण्ड-बण्ड बकना आरम्भ किया तो महाराज ने पुलिसमैन से कहकर उसे हटवा दिया।

इस अलङ्कार का स्पष्टीकरण महाराजकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में है। पाठक वहाँ देख सकते हैं।

होली दीपावली का स्वरूप—महाराज ने होली के विषय में ऐसा कहा था कि प्राचीन काल में ज्ञानी आर्य लोग होली की तिथि को परस्पर आलिङ्गन करके पर्वतों को जाया करते थे, उसके उपलक्ष्य में यह उत्सव हुआ करता था और दीपावली को वे पर्वतों से लौटकर मैदानों में आते थे तो लोग उनके पथ-प्रदर्शन के लिए दीपक जलाया करते थे, तब से ही दीपदान की प्रथा चली आती है।

हमें उपर्युक्त कथन सन्देहयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि गोपथब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि होलिकोत्सव नवसस्येष्टि यज्ञ था। यथा—

अथातश्चातुर्मास्यानां प्रयोगः फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां चातुर्मास्यानि प्रयुञ्जीत। मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी, मुखमुत्तरे फाल्गुन्यौ, पुच्छं पूर्वे तद्यथा प्रवृत्तस्यान्तौ समेतौ स्याताम्, एवमेवैतत्संवत्सरस्यान्तौ समेतौ भवतः। तद्यत्फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां यच्चातुर्मास्यैर्यजते, मुखत एवैतत्संवत्सरं प्रयुङ्क्ते। अथो भैषज्ञयज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते॥

—गोपथ उत्तर० प्रपा० १। कं० १६

अर्थ—अब चातुर्मास्यों का प्रयोग—फाल्गुनी पूर्णिमासी में चातुर्मास्यों का प्रयोग करे। फाल्गुनी पूर्णमासी वर्ष का मुख है, उत्तराफाल्गुनी मुख और पूर्वाफाल्गुनी पुच्छ है, जैसे वृत्त के दोनों अन्त मिल जाते हैं ऐसे ही वर्ष के दोनों अन्त मिल जाते हैं। जो फाल्गुनी पौर्णमासी में चातुर्मास्यों से यज्ञ किया जाता है तो मुख से ही वर्ष का प्रयोग किया जाता है। अथवा चातुर्मास्य भैषज्य यज्ञ हैं, इसीलिए ऋतु की सन्धियों में इनका प्रयोग किया जाता है। ऋतु की सन्धियों में ही रोग उत्पन्न होते हैं। —गोपथ उत्तर० प्रपा० १। कं० १६

अतः हमें विश्वास नहीं होता कि महाराज ने होलिका तथा दीपावली का उद्गम ऐसा बताया हो जैसा ऊपर लिखा गया है। होलिका शब्द के अर्थ ही अधभुने अन्न के हैं, जिससे महाराज अपरिचित नहीं हो सकते और अब तक होली की अग्नि में यव की बालों के भूनने की प्रथा प्रचलित है।

स्वास्थ्य रक्षा पर व्याख्यान, साथ भोजन करने के दोष—एक व्याख्यान महाराज नें स्वास्थ्य-रक्षा पर दिया था। इसपर हरमुजजी परसी ने महाराज से प्रश्न किया कि जब आप कहते हैं कि आर्य और पारसी एक ही पूर्वजों की सन्तति हैं तो आप हमारे साथ खानपान का व्यवहार क्यों नहीं करते ? इसका उत्तर महाराज ने यह दिया कि आप मुसलमान आदि के साथ ऐसा व्यवहार रखते हैं, इसी से हिन्दू आपके साथ नहीं खाते-पीते। यदि आप कुछ काल तक आर्यों से मिलते रहें तो यह प्रतिबन्ध दूर हो जाएगा। फिर महाराज ने उनसे प्रश्न किया कि एक साथ (एक थाली में) भोजन करने में क्या लाभ और न करने में क्या हानि है तो उन्होंने उत्तर दिया कि इससे प्रीति बढ़ती है। महाराज ने प्रत्युत्तर में कहा कि **एक-दूसरे का**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जूठा खाने में बहुत दोष हैं, कितने ही रोग ऐसे हैं जो जूठा भोजन करने, जूठा पानी पीने, साथ हुक्का पीने तथा संसर्गमात्र से एक मनुष्य से दूसरे को लग जाते हैं। डॉ० जसवन्तराय असिस्टेंट सर्जन ने महाराज के कथन की पुष्टि की और कई छूत से लग जानेवाले रोगों को गिनाया। फिर महाराज ने कहा कि यह भी ठीक नहीं है कि जूठा खाने से प्रीति बढ़ती है; यदि ऐसा होता तो मुसलमानों में जो एक-दूसरे का उच्छिष्ट खाते हैं, बड़ा प्रेम होता, परन्तु उनमें आपस में कितने झगड़े हैं और एक-दूसरे की जान के ग्राहक बने हुए हैं तथा यदि ऐसा होता तो रूस-रूम युद्ध में अमीर काबुल रूम की सहायता करने से इन्कार न करता।

'अमीर काबुल रूस के विरुद्ध रूस-रूम युद्ध में रूम की सहायता करने पर उद्यत न हुआ था', इस विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। सम्भवतः ऐसी किंवदन्ती उस समय फैली हुई होगी और उसी को सत्य मानकर महाराज ने उपर्युक्त बात कही होगी।

शिखा कब रक्खी जाए कब नहीं—शिखा के सम्बन्ध में महाराज ने कहा था कि हिमालय आदि शीतप्रधान देशों में सारे सिर पर केश रखने चाहिएँ, पञ्जाब में केवल शिखा पर्याप्त है, उष्ण देशों में यदि सिर के बाल मुँडवा दिये जाएँ तो कुछ भी हानि नहीं है।

ईसाइयों से शास्त्रार्थ की शर्तें—दो ईसाई व्याख्यान सुनने आया करते थे। उन्होंने महाराज से कहा कि मिशन स्कूल में पादरियों से शास्त्रार्थ कीजिए। महाराज ने गुजरानवाले का दृष्टान्त दिया कि वहाँ गिरजाघर में शास्त्रार्थ हुआ करता था, परन्तु ईसाई अपने मनुष्यों को भीतर जाने के टिकट दे दिया करते थे और हमारे सहायकों को नहीं देते थे, अतः शास्त्रार्थ करना हो तो व्याख्यान-स्थल पर ही होगा। इसपर वे ईसाई चुप हो गये।

ब्राह्मसमाजी आर्यसमाजी होने से रुक गये—महाराज ने बा० केशवचन्द्र सेन से अपने मिलने का उल्लेख करते हुए कहा था कि उनसे हमारी बात-चीत वेदों के ईश्वरोक्त होने और षड्दर्शन पर हुई थी। महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर मुलतान के कुछ ब्राह्मसमाजियों ने आर्यसमाज में प्रवेश करने का विचार किया, परन्तु उनके अन्य साथियों ने उन्हें यह समझाकर कि यदि कोई अपनी युक्तियों से निरुत्तर करदे तो भी अपने धर्म को त्यागना ठीक नहीं है। भविष्य में यदि कोई अन्य अधिक प्रबल युक्ति देनेवाला आएगा तो फिर हमें उसका धर्म स्वीकार करना होगा।

काबुल के ब्राह्मण का उजड्डपन—एक दिन एक काबुल-निवासी ब्राह्मण आया और उसने वेद का पुस्तक उठाकर एक मन्त्र पढ़ा, परन्तु उसका अर्थ न कर सका। फिर इसपर बात-चीत हुई कि आर्यावर्त्त की सीमाएँ कौन-सी हैं, परन्तु वह बड़ा क्रोधी और उजड्ड था, महाराज उसकी अनर्गल बातों पर हँस देते थे।

वेदान्तियों के चार महावाक्य—एक दिन एक व्यक्ति ने नवीन वेदान्तियों के चार महावाक्यों पर बात-चीत की महाराज ने कहा ये वाक्य अधूरे हैं और पूरे वाक्य पढ़कर उनके अर्थ किये और कहा पूरे वाक्य वेद के विरुद्ध नहीं हैं और उसी दिन नवीनवेदान्त के खण्डन और सनातन वेदान्त के मण्डन पर व्याख्यान दिया।

सन्त मत की आलोचना—एक व्याख्यान में महाराज ने सन्त मत की और दूसरे में सिक्ख मत की आलोचना की थी।

प्राचीनकाल की प्राकृतिक उन्नति—एक व्याख्यान में प्राचीनकाल की प्राकृतिक उन्नति का वर्णन किया था, जिसमें कहा था कि पृथिवी गोल है और सूर्य के चारों ओर घूमती है। ग्रहों, उपग्रहों और नक्षत्रों का भी उल्लेख किया था और यह भी कहा था कि शीघ्रगामी रथ (रेल) के सिद्धान्त भी प्राचीनों को ज्ञात थे। त्रिपुरारिं के विषय में कहा था कि वह अपनी कलाभिज्ञता के कारण एक ही समय में तीन स्थानों में युद्ध करता था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुसलमान परास्त—कई मुसलमान भी महाराज के पास आये और धर्म-चर्चा में परास्त होकर चले गये। एक दिन उनका सबसे बड़ा मौलवी भी आया था और उसकी भी वही गति हुई जो अन्यों की हुई थी।

नास्तिक की शेखी किरकिरी—सागरचन्द इञ्जीनियर, जो बड़ा पक्का नास्तिक था और यह डींग मारा करता था कि मैं १४०० पुस्तकें पढ़कर नास्तिक हुआ हूँ, जब महाराज के सम्मुख आया तो महाराज की युक्तियों के आगे उसकी कुछ न चल सकी। तीन दिन तक उससे वार्त्तालाप हुआ और अन्त को उसे ईश्वर की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

महाराज के महामना होने का प्रमाण—महाराज के हृदय में ईश्वर पर कितना अटल विश्वास था, स्वदेश से कितना दृढ़ प्रेम था, पारस्परिक व्यवहार में वह भ्रातृभाव के कितने इच्छुक थे और सर्वहितकारी कार्यों के लिए उनमें कितनी महदाकाँक्षा थी इसके उदाहरणार्थ हम उनके एक पत्र का जो उन्होंने मुलतान से दानापुर की हिन्दू सत्सभा के मन्त्री बाबू माधोलाल को आर्यसमाज के नियम और उप-नियमों की पुस्तक भेजते हुए १ अप्रेल सन् १८७८ को लिखा था, कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

"इन नियमों को ठीक-ठीक समझकर वेद की आज्ञा के अनुसार सबके हित में प्रवृत्त होना चाहिए, विशेषकर के अपने आर्यावर्त्त देश के सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति, सबके परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मेटने में सत्य व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ अपने ही शरीर के सुख-दुःख के समान जानकर सर्वदा यत्न और उपाय करना चाहिए। **सबके साथ हित करने ही का नाम परम धर्म है।** इसी प्रकार वेद में बराबर आज्ञा पाई जाती है।"

हमारा नाम आर्य है—इसी पत्र में बाबू माधोलाल को महाराज ने यह भी आदेश किया था कि हिन्दू सत्सभा का नाम आर्यसमाज रखना चाहिए, क्योंकि हमारा नाम आर्य और हमारे देश का नाम आर्यावर्त्त सनातन वेदोक्त है। आर्य के अर्थ श्रेष्ठ, विद्वान्, धर्मात्मा के तथा हिन्दू शब्द यवन आदि ईर्ष्यक लोगों का बिगाड़ा और बदला हुआ है, जिसके अर्थ ग़ुलाम, क़ाफ़िर, काला आदमी आदि हैं।.....और सब सभासदों को नमस्ते कहना चाहिए, सलाम और बन्दगी नहीं।§

यह महात्मा होनहार है—एक वृद्ध पण्डित की महाराज पर बड़ी श्रद्धा थी। वह प्रतिदिन उनके पास जाया करते थे और बहुधा कहा करते थे कि यह महात्मा होनहार हैं, इनका सम्प्रदाय खूब चलेगा।

महाराज ने प्रसंग चलने पर कहा था कि प्रातःकाल मलोत्सर्ग से पूर्व अढ़ाई आचमन जल पीना गर्मी और खुशकी की निवृति के लिए बहुत लाभदायक है।

मुक्ति पर बातचीत—एक दिन मुक्ति पर बातचीत होने पर महाराज ने पण्डित बरातीलाल डेराग़ाजीखाँ निवासी से कहा था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है, पण्डितजी का मत इसके विरुद्ध था।

ब्राह्मणों की वर्त्तमान अवस्था का दृष्टान्त—एक व्याख्यान में महाराज ने ब्राह्मणों की इस समय की दशा का वर्णन करते हुए निम्नलिखित दृष्टान्त दिया था—

एक बार यात्रा में एक पठान और एक हिन्दू साहूकार का साथ हो गया। साहूकार के साथ उनका एक भृत्य भी था जो ब्राह्मण था। जब प्रातःकाल होता तो साहूकार उस भृत्य से कहता, महाराज पाँव लागूँ, जब आवश्यकता होती तो भृत्य उसके पीने, हाथ धुलाने और स्नान कराने के लिए जल लता, उसकी रसोई बनाता और यात्रा में उसका बोझ उठाकर चलता। एक दिन पठान आगे निकल गया और साहूकार पीछे रह गया। पठान उसे साथ लेने के लिए ठहर गया। थोड़ी देर के पश्चात् साहूकार तो आ गया, परन्तु उसका

§ देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पृष्ठ ६६।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भृत्य उसके साथ न था। यह देखकर पठान ने कहा कि कहाँ है तुम्हारा नर, पीर, बावरची, भिश्ती (सक्का, जलवाहक), खर।

रेशमी छाता किसी नटवे को देना—एक दिन एक ब्राह्मण महाराज के लिए एक रेशमी छाता लाया और उनके पास रख दिया, उन्होंने कहा कि यह कैसे रक्खा है ? उसने कहा कि आपके लिए लाया हूँ। महाराज ने कहा कि सुनो भाई ! हम साधु हैं, यह हमारे काम का नहीं। यदि हम सरदी में जावें तो सरदी नहीं सताती और गरमी में जावें तो धूप नहीं सताती। यह तो तुम किसी नटवे को दो जो लाहौरी जोड़ा पहनकर गलियों में खूब घूमा करे, हमें ऐसी वस्तु नहीं चाहिए।

गोमेध, अश्वमेध के सत्य अर्थ, मांस-भक्षण-निषेध—महाराज ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि गोमेध में गौ और अश्वमेद में अश्व के वध करने का शास्त्र में कहीं विधान नहीं है और उनके सत्य अर्थ बतलाये थे। मदिरा-पान व मांस-भक्षण का भी बड़े प्रबल शब्दों में निषेध किया था। जिस प्रकार पिंजरे में पक्षी को बन्द करके उसके नीचे अग्नि जलाने से उसे कष्ट होगा उसी प्रकार उस प्राणी को कष्ट होता है जिसे खाने के लिए मारा जाता है। मांस में स्वयं कुछ बलवर्धक गुण नहीं है। वह अपना उदाहरण देकर कह देते थे कि देखो मैं मांस नहीं खाता, परन्तु कोई मांसाहारी, जिसका जी चाहे, मेरे सामने आ जाए। मांस में स्वयं स्वाद भी नहीं है, जो कुछ स्वाद है वह घृत और मसाले का है। कन्याओं पर रुपये लेकर उनका विवाह करने की भी निन्दा करते थे और कहते थे कि यह ऐसा है जैसा कोई रुपया लेकर किसी वेश्या का प्रसंग किसी से करावे।

बिना पूछे प्रश्नों का उत्तर—पण्डित कृष्णनारायण अपने अन्य कई मुसलमान, ईसाई मित्रों के साथ एक दिन महाराज का व्याख्यान सुनने गये और सब लोग कुछ प्रश्न उनसे पूछने के लिए ले-गये, परन्तु उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब महाराज ने उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ कर दिया। अन्त में किसी का कोई आक्षेप भी बिना उत्तर दिये शेष न रहा। उन लोगों को विश्वास हो गया कि महाराज सच्चे योगी हैं।

मांस-भक्षण पर प्रश्नोत्तर पण्डित कृष्णनारायण का अनुभव—पण्डित कृष्णनारायण ने एक दिन महाराज से मांस-भक्षण के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर किये तो महाराज ने कहा कि मांस-भक्षण वेद विरुद्ध है। पण्डितजी ने कहा कि मांस-भक्षण से कोई हानि होती हुई प्रतीत नहीं होती। इसपर महाराज ने कहा कि ईश्वर की आज्ञाएँ हमें लाभदायक हैं और उनका उल्लंघन हानिकारक। मांस-भक्षण शरीर के लिए हानिकारक यदि न भी हो, परन्तु आत्मिकोन्नति के लिए अवश्य हानिकारक है। **मांसाहारी को योगविद्या नहीं आती और उसे सिद्धि अर्थात् परमेश्वर का साक्षात् प्राप्त नहीं होता।** महाराज ने पण्डित कृष्णनारायण से कहा कि यदि आपको विश्वास न हो तो मैं आपको एक विधि बताता हूँ। निरामिष भोजन कीजिए और ४० दिन तक उनके कहे अनुसार कार्य कीजिए। पण्डित कृष्णनारायण कहते हैं कि मैंने ३० दिन तक उस विधि को किया तो मेरे शरीर में बल और स्वास्थ्य बढ़ गया जिसके आनन्द को मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता और मेरा मस्तिष्क इतना प्रकाशयुक्त हो गया जैसे सूर्योदय से सब संसार हो जाता है और मुझमें भविष्य के जान लेने के चिह्न प्रकट होने लगे। परन्तु ३१वें दिन मैंने मांस खा लिया जिससे तुरन्त ही मेरा मस्तिष्क अन्धकार-मय हो गया और जो कुछ मैंने प्राप्त किया था, वह जाता रहा।

मैक्समूलर वेद-विद्या में लड़का है—मैक्समूलर के वेदों के ज्ञान के सम्बन्ध में महाराज कहा करते थे कि वैदिक विद्या में वह एक लड़के के समान है, जब तक कोई गुरु उसे शिक्षा न देगा वह सायण और महीधर का अनुकरण न छोड़ेगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गायत्री का महत्त्व—महाराज कहते थे कि गायत्री-मन्त्र एक ही है और उसका श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया करते थे। वे कहते थे कि आर्य ऋषि-मुनि सदा से इसी मन्त्र का जाप करते चले आये हैं, अब लोगों ने अनेक प्रकार की पूजाएँ और अनेक प्रकार के मन्त्र बना लिये हैं। मद्य-मांस का प्रचार हो गया, लोग सत्यधर्म से पतित हो गये और इसी कारण अन्य लोग आकर यहाँ राज्य करने लगे।

महाराज ने यह भी कहा था कि राजा को चाहिए कि वह ऐसा प्रबन्ध करे कि ग्राम के चारों ओर क्षेत्र हों और एक ओर गोचारण भूमि। उसी से देश की उन्नति होगी।

३५ व्याख्यान दिये—महाराज मुलतान १२ मार्च से १६ एप्रिल सन् १८७८ तक ३६ दिन रहे और ३५ व्याख्यान दिये, केवल एक दिन रुग्ण हो जाने के कारण व्याख्यान नहीं हो सका। व्याख्यानों में प्रायः सभी धार्मिक और लौकिक विषय आ गये थे। लोग चाहे किसी मत वा सम्प्रदाय के हों उनकी विद्या और बुद्धि के वैभव को देखकर स्तम्भित रह जाते थे।

एक मुसलमान की सम्मति—एक मुसलमान सज्जन की सम्मति थी कि स्वामीजी की विद्या, योग्यता और युक्तियुक्त कथन के कारण उनसे शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा किसी का उनसे किसी बात के पूछने का भी साहस नहीं होता था।

महाराज ने विज्ञापन द्वारा नगर के पण्डितों का शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया, परन्तु कोई सम्मुख न आया।

आर्यसमाज स्थापित हो गया, मुहम्मद साहब की तो एक स्त्री ही सहायक थी, हमारे सहायक तो सात पुरुष हैं—४ एप्रिल सन् १८७८ को मुलतान में आर्यसमाज स्थापित हुआ और उसके केवल ७ सभासद् बने। इसपर ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द ने हँसकर कहा कि केवल ७ ही सभासद् हैं, तो महाराज ने हँसकर ही उत्तर दिया कि मुसलमानों के पैग़म्बर की तो केवल एक स्त्री ही सहायक थी, परन्तु उसने इतनी उन्नति की और हमारे धर्म के तो सात सहायक हैं।

मुझे काशी में विष दिया गया था—मुलतान में महाराज ने कलकत्ता-निवासी एक बङ्गाली सज्जन बाबू शरच्चन्द्र चौधरी से कहा था कि एक बार हमें काशी में पान में विष दिया गया था। हमें ज्ञात हो गया तो हमने बार-बार जल पीकर वमन करके, कुछ देर अविश्रान्त रूप से टहलकर और प्राणायामादि करके विष की शक्ति को नष्ट कर दिया था।

१६ अप्रैल सन् १८७८ को महाराज मुलतान से चले और १७ अप्रैल को लाहौर पहुँच गये।

(१७ अप्रैल—१५ मई) लाहौर (चै० शु० १५—वै० शु० १४)

१४ मई सन् १८७८ तक स्वामीजी लाहौर में ही विराजे रहे और सत्य उपदेश करते रहे।

स्वामीजी की नियमबद्धता—८ मई सन् १८७८ को आर्यसमाज लाहौर की अन्तरङ्ग सभा का अधिवेशन था। एक सदस्य ने यह प्रस्ताव किया कि महाराज को उस अधिवेशन का प्रधान नियत किया जाए, परन्तु उन्होंने यह कहकर कि 'सभा के प्रधान उपस्थित हैं, उनकी उपस्थिति में मैं प्रधान नहीं बन सकता' उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

आप लोगों के हितचिन्तन ने दुबला कर दिया—एक बार महाराज ने अपने भक्तों से बातचीत करते हुए कहा था कि आप लोग मुझे बहुत हृष्ट-पुष्ट समझते हैं, परन्तु जब मैं गंगा तट पर विचरण करता था उस समय की अपेक्षा अब कृश हो गया हूँ। आप लोगों की हितचिन्ता ने मुझे दुबला कर दिया है।

चिड़चिड़ा क्लर्क—महाराज का बंगाली क्लर्क बड़े चिड़चिड़े स्वभाव का था, परन्तु वे उसके चिड़चिड़ेपन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को सहन करते थे। जब वह नौकरी छोड़कर जाने लगा तो महाराज ने उसके वेतन का रुपया करंसी नोटों में दिया। उसने बिगड़कर कहा आपको अपने हस्ताक्षर भी तो करने थे। महाराज ने अपना नाम लिख दिया। फिर उसने कहा कि मेरा नाम तो लिखा ही नहीं। उन्होंने उसका नाम वंकुविहारी भी लिख दिया। इसपर वह और बिगड़ा और बोला कि मेरा नाम वंकुविहारी ठठेरा तो लिखा ही नहीं। महाराज ने कहा कि कुपित मत होओ यदि आप को ठठेरा ही बनना है तो यह भी और लिखे देता हूँ।

धर्मोपदेश में श्रोता क्यों सो जाते हैं—एक दिन किसी ने महाराज से शङ्का की कि इसका क्या कारण है कि लोग नाच-रंग तो सारी-सारी रात जागकर देखते रहते हैं, परन्तु धर्मोपदेश में सो जाते हैं। महाराज ने कहा कि उसमें उत्तेजना होती है, अतः नींद नहीं आती और इसमें शान्ति, फिर वह न सोवे तो क्या करे?

हम एक जगह बाध्य होकर नहीं रह सकते—जब महाराज ने लाहौर से अन्य प्रान्तों में जाने का विचार किया तो लाहौर के आर्यभाइयों ने उनसे उत्कट इच्छा की कि लहौर में कुछ काल और विराजे रहें, परन्तु उन्होंने कहा जैसा आप लोग हमारे यहाँ रहने की आवश्यकता समझते हैं, ऐसे ही अन्य स्थानों में भी हमारे जाने की आवश्यकता है। हम किसी एक स्थान पर बाध्य होकर नहीं रह सकते। जहाँ तक हमसे हो सकेगा सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे।

(१५ मई—१५ जुलाई) **अमृतसर** (वै० शु० १४—श्राव० कृ० १)

१५ मई सन् १८७८ को महाराज लाहौर से अमृतसर जा विराजे, सरदार भगवानसिंह का उद्यान उनके निवास के लिए स्थिर हुआ।

इस बार भी उनके व्याख्यान मलवईबुङ्गे में ही हुए, जहाँ पहली बार के आगमन काल में होते थे।

विद्याभिमानी पण्डित—एक दिन एक ब्राह्मण ने यह लीला की कि व्याख्यान के मध्य में उच्च स्वर से संस्कृत बोलना आरम्भ किया। महाराज ने उससे नम्र शब्दों में कहा कि आप शान्त रहिए, मैं व्याख्यान समाप्त कर लूँ तब आपसे वार्त्तालाप करूँगा, परन्तु वह चुप न हुआ। इसपर लोगों ने चुप कराकर उसे एक ओर को बिठा दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर महाराज ने आसन पर बैठकर कहा कि उन महाराज को बुलाओ। वे पास ही बैठे थे, बोले कि मैं उपस्थित हूँ। महाराज ने उनसे पूछा आप कहाँ से पधारे हैं, तो कहा कि मैं कुरुक्षेत्र से केवल शास्त्रार्थ करने के लिए ही आया हूँ। फिर उनमें निम्न प्रश्नोत्तर हुए—

प्रश्न—आपने वेद पढ़े हैं ? **उत्तर**—हाँ।
प्रश्न—कौन-कौन से वेद पढ़े हैं ? **उत्तर**—सारे वेद।
प्रश्न—व्याकरण भी देखा है ? **उत्तर**—हाँ।
प्रश्न—महाभाष्य भी पढ़ा है ? **उत्तर**—हाँ।

पोल खुल गई—इसपर महाराज ने उनसे एक प्रश्न व्याकरण में किया तो उन्होंने एक संस्कृतवाक्य पढ़ा और यह पूछने पर कि यह क्या है, उन्होंने कहा कि सूत्र है, महाराज ने उन्हें काग़ज पेंसिल देकर कहा कि इस वाक्य को भी लिख दो और यह भी लिख दो कि यह सूत्र है। इसपर वह महात्मा घबरा गये और फिर बात-चीत करने से कतराने लगे और अन्त को चले गये।

पौराणिकों की लीला—पहली बार जब महाराज अमृतसर पधारे थे तो किसी पण्डित ने शास्त्रार्थ की चर्चा न की। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज अमृतसर से जानेवाले हैं तो कहने लगे हम शास्त्रार्थ करेंगे। इसपर आर्यसमाज की ओर से उत्तर भेज दिया गया कि यदि शास्त्रार्थ करना है तो आर्यसमाज में आकर समय और नियमादि निश्चित कर लें, परन्तु कोई भी न आया बल्कि अपनी ओर से ही बिना महाराज वा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज की अनुमति के एक विज्ञापन छपाकर नगर में वितरित कर दिया कि १४, १५ जून, सन् १८७८ को घण्टाघर और तेजासिंह के शिवालय में वसन्तगिरि साधु की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ होगा। इसका उत्तर मन्त्री आर्यसमाज ने दे दिया कि उक्त स्थानों पर ही शास्त्रार्थ करना स्वीकार है, परन्तु यदि कोई उपद्रव हुआ तो उत्तरदायित्व पौराणिकों पर होगा। मध्यस्थ यदि वेदविरुद्ध निर्णय करेगा तो वह माननीय न होगा। इसपर दूसरी ओर से अन्य स्थानों के नाम बताये गये, परन्तु मलवईबुङ्गे में, जहाँ पर आर्यसमाज हर प्रकार का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने के लिए उद्यत था, शास्त्रार्थ करने पर सहमत न हुए।

इसपर उत्तर दे दिया गया कि शास्त्रार्थ की तारीख १८ जून १८७८, समय ६॥ बजे सायंकाल और स्थान सरदार भगवानसिंह का तबेला नियत किया जाता है। सभापति निर्वाचित होगा, मध्यस्थ कोई न होगा और शास्त्रार्थ लिखा जाएगा। इस पत्र को पाँच आर्य सज्जन पण्डित चन्द्रभानु के पास, जिनका नाम विज्ञापन देनेवालों में था, लेकर पहुँचे तो उन्होंने पत्र लेने और हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया और कहा कि मैंने विज्ञापन पर हस्ताक्षर नहीं किये और चिट्ठी पर भी मेरे हस्ताक्षर बलात् कराये गये हैं। उधर वसन्तगिरि ने भी कहला भेजा कि मेरा नाम मध्यस्थ के लिए बिना मेरी अनुमति के लिख दिया है, मुझमें स्वामीजी के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनने का सामर्थ्य नहीं है।

शास्त्रार्थ के लिए कोई न आया—आर्यों ने अपने विज्ञापन के अनुसार १८ जून को शास्त्रार्थ का सब प्रबन्ध सरदार भगवानसिंह के तबेले में कर लिया। नियत समय पर महाराज वहाँ पहुँच गये। एक कुर्सी उनके लिए डाली गई और एक मेज पर पुस्तकें सजाकर रक्खी गईं और एक कुर्सी और एक मेज़ विपक्ष के पण्डित के लिए। जनता शास्त्रार्थ देखने की इतनी उत्सुक थी कि छतें तक मनुष्यों से भरी हुई थीं। दर्शकों की संख्या ५, ६ सहस्र से कम न थी। जब कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिए न आया तो महाराज ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया।

अन्ततः पण्डित लोग आये—अभी व्याख्यान को आरम्भ हुए थोड़ा ही समय हुआ था कि बाबू मोहनलाल वकील आये और कहा कि मैं पण्डितों की ओर से वकील होकर आया हूँ, वे सभा में आना चाहते हैं, उन्हें बुलवा लिया जाए। इसपर दो तीन प्रतिष्ठित सज्जन गये और उन्हें लिवा लाये। उनके साथ बहुत शोर होता आया और जयकारे बुलते आये और चार पण्डित कुर्सियों पर आकर बैठ गये। तब शास्त्रार्थ के नियम उन्हें दिये गये। उन्हें पढ़कर पण्डितजी बोले, इनका उत्तर इस समय नहीं दिया जा सकता, हम भी अपने नियम भेजेंगे और आर्यसमाज के मँगाएँगे।

हल्ला-गुल्ला और ईंटों की वर्षा—इतने में ही चिल्ल-पौं मचने लगी और ईंट-रोड़े सभास्थल में आकर गिरने लगे। एक रोड़ा महाराज के भी मारा गया, परन्तु उनके चारों ओर मनुष्य खड़े थे, अतः वे तो बच गये, परन्तु अन्य लोगों के ऊपर रोड़े गिरे और उनके चोटें आई, कई एक के शरीर से रुधिर भी बह निकला। पुलिस खड़ी देखती रही, उसने न किसी को रोका, न किसी को पकड़ा। बड़ी कठिनता से उपद्रव शान्त हुआ।

पण्डितों ने कोई उत्तर न दिया—दूसरे दिन बाबू मोहनलाल वकील को पत्र लिखा गया कि पण्डितों का उत्तर भेज दीजिए। उन्होंने कह दिया कि मैं तो उसी समय का वकील था, पण्डितों ने कोई उत्तर मेरे पास नहीं भेजा, वे लोग आपस में ही झगड़ रहे हैं, उत्तर कौन दे, इनका कोई विचार शास्त्रार्थ का नहीं जान पड़ता। इधर शास्त्रार्थ का सब प्रबन्ध कर लिया गया था, प्रवेशपत्र भी छपवा लिये गये थे, परन्तु कोई परिणाम न निकला। २० जून तक प्रतीक्षा करके पब्लिक को विज्ञापन द्वारा सब घटनाओं से सूचित कर दिया गया और इस प्रकार शास्त्रार्थ का यह तमाशा समाप्त हुआ।

निर्धन होने की चिन्ता न करो—एक दिन महाराज ने व्याख्यान में कहा था कि लोग कहते हैं कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अंग्रेज़ लोग धनी और देशी निर्धन होते जाते हैं। इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अंग्रेज जितने अधिक धनी होते जाएँगे उतने ही इन्द्रयाराम होते जाएँगे। इससे वे आलसी होंगे और आलस्य से निर्बल। देशी लोग जितने ही निर्धन होंगे उतने ही परिश्रमी बनेंगे और परिश्रम से बलवान् बनेंगे, इससे देशी लोग लाभ में रहेंगे।

मुझे सत्य कहने में कोई भय नहीं है—इसपर पण्डित बिहारीलाल ऐक्सट्रा असिस्टेंट कमिश्नर ने महाराज को यह सन्देश भेजा कि ऐसे पब्लिक अवसर पर इस प्रकार का कथन उचित न था। महाराज ने उत्तर दे दिया कि सत्य बात के प्रकट करने में मुझे कुछ भय न था।

भँगेड़ी ब्राह्मण ने सोटा मारना चाहा—एक दिन चरस-भाँग पीनेवाले एक ब्राह्मण ने महाराज के उपदेशों से चिढ़कर उनके सोटा मारना चाहा, लोगों ने उसे पकड़ लिया, परन्तु महाराज ने उसे छुड़वा दिया।

केवल साथ भोजन करने से प्रीति नहीं बढ़ती—पादरी क्लर्क साहब और महाराज में एक दिन खान-पान के विषय में बात-चीत हुई थी। पादरी साहब ने महाराज से कहा कि हम और आप एक मेज़ पर भोजन करें। महाराज ने कहा इससे क्या लाभ होगा ? पादरी साहब ने महाराज से कहा कि इससे मित्रता बढ़ेगी। महाराज ने उत्तर दिया कि सुन्नी और शीया एक बर्तन में खा लेते हैं और रूसी और अंग्रेज़ तथा आप और रौमनकैथोलिक लोग एक मेज़ पर खा लेते हैं, फिर भी आपस में एक-दूसरे के शत्रु हैं, इसपर पादरी निरुत्तर हो गये।

स्वामीजी के वध के लिए सिक्ख निहंगों का षड्यन्त्र, देखें कोई निहंग हमारा क्या करेगा ?—एक दिन महाराज ने हर की पौड़ी और अमृतसर के गौण नामों का खण्डन किया। इससे सिक्खों का निहंग दल बहुत रुष्ट हुआ और कुछ निहंगों ने यहाँ तक कहा कि स्वामीजी के पास रात्रि को मनुष्य रहते हैं, कभी हम उन्हें अकेला पाएँगे तो अवश्य मार डालेंगे। यह बात महाराज के किसी हितेच्छु ने महाराज से जाकर कह दी। महाराज का परमेश्वर पर अटल विश्वास था। उन्होंने उस रात्रि को अपने पास किसी को न रहने का आदेश कर दिया और कहा जिस परमेश्वर ने हमें जगत् का उपकार करने की प्रेरणा की है हम सदा उसी के आश्रय रहते हैं, किसी मनुष्य के आश्रय नहीं। देखें ! कोई निहंग हमारा क्या कर सकता है, परन्तु कोई निहंग उनके पास तक न फटका।

पौराणिक भी सबके सामने वेदमन्त्र पढ़ने लगे—महाराज के आगमन से पहले कोई ब्राह्मण भरी सभा में वेदमन्त्र नहीं पढ़ा करता था, परन्तु महाराज के सामने अपनी विद्वत्ता प्रकट करने के लिए शूद्रों और यवनों तक के सामने पण्डितगण वेदमन्त्र पढ़ने लगे।

चालीस हिन्दू युवक ईसाई होने से बचे—अमृतसर में लगभग चालीस हिन्दू नवयुवकों के विचार मिशन स्कूल में ईसाई मत की शिक्षा पाने और इसाइयों के संसर्ग से ईसाई मत की ओर झुक गये थे। वे नाममात्र के हिन्दू रह गये थे और हृदय से ईसाई हो गये थे, यहाँ तक कि वे अपने को बपतिस्मा न पाये हुए ईसाई (Unbaptised Christian) कहने लगे थे और उन्होंने अपनी एक अलग सभा बना ली थी जिसका नाम Prayer Meeting (उपासना-सभा) रख छोड़ा था और प्रति रविवार को उसका अधिवेशन हुआ करता था। जब उन्होंने महाराज के उपदेश सुने और वैदिक धर्म की सचाइयाँ और ईसाई मत के भ्रममूलक सिद्धान्त उनपर प्रकट हुए, तब वे ईसाई होने से बचे।§

विचित्र परिवर्त्तन—एक व्यक्ति पण्डित खड्गसिंह पादरी बेरिङ्ग के उपदेश से ईसाई हुए थे और उन्हें ईसाई हुए बारह वर्ष हो चुके थे। वे ईसाई धर्म के एक स्तम्भ समझे जाते थे। पादरी साहब ने उन्हें महाराज

§ दयानन्द-प्रकाश में इस घटना का उल्लेख महाराज के पहली बार अमृतसर पधारने के वर्णन में है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से शास्त्रार्थ करने के लिए उनके ग्राम से अमृतसर बुलाया और जब वे आ गये तो पादरी साहब ने कहा कि पण्डित साहब आ गये हैं, अब अच्छी तरह शास्त्रार्थ होगा।

पादरी साहब इधर स्वप्न देख रहे थे कि उनके दिग्गज पण्डित अजेय दयानन्द को परास्त करके ईसाइयों का सिर ऊँचा करेंगे, उधर परमेश्वर की कुछ और ही लीला हो रही थी।

पण्डित खड्गसिंह बाबू सिंही के गृह पर बाबू ज्ञानसिंह से मिले और उनसे कहा कि आप जानते हैं वह कौन है जिससे शास्त्रार्थ करने के लिए मुझे बुलाया गया है। बाबू ज्ञानसिंह ने कहा कि उनका नाम दयानन्द सरस्वती है और वह सरदार भगवान्सिंह के बाग़ में ठहरे हुए हैं, आप अवश्य चलिए। एक दिन मध्याह्नोत्तर चार बजे बाबू ज्ञानसिंह पण्डित खड्गसिंह को महाराज के निवास-स्थान पर ले-गये। पण्डित खड्गसिंह प्रणाम करके महाराज के समीप बैठ गये। इसके पश्चात् जो दृश्य बाबू ज्ञानसिंह ने देखा, वह अदृष्टपूर्व था उसे देखकर वह आश्चर्य-सागर में मग्न हो गये। हुआ यह कि महाराज से एक ब्राह्मण धर्म-विषय पर बात-चीत कर रहा था। स्वामीजी उसके प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे, अब पण्डित खड्गसिंह उसे उत्तर देने लगे। ब्राह्मण ने कहा मैं तो स्वामीजी से बातें कर रहा हूँ, आप बीच में क्यों बोलते हैं ? तो पण्डितजी ने कहा कि यदि मेरे उत्तर से आपका सन्तोष न होगा तो स्वामीजी से पूछ लेना। पण्डित खड्गसिंह उसी क्षण से ईसाई नहीं रहे थे, वे महाराज के पक्के अनुयायी बन गये थे। बाबू ज्ञानसिंह उन्हें अपने घर ले-गये और उनका आतिथ्य-सत्कार किया। इसके पश्चात् उन्होंने वैदिक धर्म का उपदेश देना आरम्भ कर दिया। उनकी दो कन्याएँ थीं। उनका विवाह भी उन्होंने आर्यों में किया।

पादरी बहुत घबराए—पादरी बेरिङ्ग साहब और अन्य पादरी इस घटना से बहुत घबराये और उन्होंने कलकत्ते के प्रसिद्ध पादरी के०एन० बनरजी को शास्त्रार्थ के लिए तार द्वारा बुलाया, उनका उत्तर आया कि मैं आता हूँ। महाराज अमृतसर छोड़नेवाले थे, परन्तु उनसे प्रार्थना की गई कि के०एन० बनरजी कलकत्ते से आ रहे हैं, आप अभी न जाइए। इसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया, परन्तु जब फिर के०एन० बनरजी को तार दिया गया कि आप शीघ्र आवें तो उनका उत्तर आया कि मेरी पुत्री रोगग्रस्त है, मैं नहीं आ सकता।

कई ईसाई वैदिक धर्मी बन गये—पादरी से बहुत कुछ कहा गया कि एक लड़की मर जावे तो क्या हानि है, वह मर कर मसीह की गोद में जाती है, इसमें क्या भय है। यहाँ अनेक आत्माओं (रूहों) का कल्याण है, परन्तु पादरी साहब न आये। इसका यह परिणाम हुआ कि कई लोगों के विचार ईसाई-मत से फिर गये और वे आर्यसमाज के सभासद् बन गये।

विश्वास पर नौकरी का बलिदान—इसके पश्चात् एक दिन मिशन स्कूल में आवागमन पर वाद-प्रतिवाद हुआ। महाराज के उपदेशों से बाबू ज्ञानसिंह का आवागमन पर दृढ़ विश्वास हो गया था। उन्होंने आवागमन का पक्ष लिया और बड़े बल के साथ उसका समर्थन किया। परिणाम यह हुआ कि उन्हें स्कूल की नौकरी से पृथक् कर दिया गया। बाबू सिंही ने उन्हें पहले ही कह दिया था कि यदि आप एक जन्मवाद का समर्थन करेंगे तभी अपने पद पर रह सकेंगे; बहुजन्मवाद पक्ष लेकर स्कूल में नौकर न रह सकोगे, परन्तु उन्होंने इसकी कुछ परवाह न की।

बाबू सिंही के द्वारा कई हिन्दुओं को ईसाई बनाया गया था।

सरदार साहब रूठ गये—सरदार दयालसिंह मजीठिया प्रसिद्ध रईस लाहौर से महाराज की वेद-विषय पर बात-चीत हुई थी। वे ब्राह्मसमाजी थे और वेद को ईश्वरोक्त नहीं मानते थे। इस वार्त्तालाप के लिए एक विशेष दिन नियत किया गया था। सरदार साहब प्रसङ्ग से अलग हो जाते थे और इधर-उधर की बातों में अधिक समय नष्ट करते थे, अतः महाराज को उनसे कहना पड़ा कि यह स्थिर हो जाना चाहिए कि इतनी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देर मैं बोलूँ और इतनी देर आप, परन्तु यह नियम हो जाने पर भी उन्होंने उसका व्यक्तिक्रम किया। महाराज ने उन्हें रोका। वे रईस थे, यह उनसे सहन न हो सका और रुष्ट होकर चले गये। महाराज ने उनसे कहा था कि आप अभी लड़के हैं। बाबू केशवचन्द्र सेन जिनके आप शिष्य हैं, अभी जीवित हैं। आप उन्हें कलकत्ते से यहाँ बुला लीजिए अथवा मुझे वहाँ ले-चलिए और इस विषय में मेरी उनसे बात-चीत करा दीजिए, तब आपको सन्तोष हो जाएगा कि कौन सच्चा है ?

निराश क्यों होते हो—पण्डित पोलहोराम स्वामीजी के एक अनन्य भक्त थे। एक दिन उन्होंने नैराश्यभाव में स्वामीजी से कहा कि आर्यसमाजियों की संख्या बहुत न्यून है, इतने थोड़े-से मनुष्यों से क्या हो सकेगा। स्वामीजी ने उन्हें ढाढस बँधाते हुए कहा कि आप तो बहुत हैं, सहस्रों को अपना साथी बना सकते हैं। मैंने जब कार्य प्रारम्भ किया था, तो मैं अकेला ही था ! आज परमेश्वर की कृपा से मेरे सहस्रों साथी हैं। यदि बालशास्त्री और विशुद्धानन्द मेरा साथ देते तो हम तीनों संसार को जीत लेते, परन्तु शोक है कि वे मेरे भावों को जाने बिना ही मुझसे विरोध करने लगे।

भक्त की भावना—एक दिन पण्डित पोहलोराम को किसी दाता मे एक नई कुर्ती दान दी। वह उसे लेकर महाराज की सेवा में पहुँचे और भक्ति-भरित शब्दों में निवेदन किया कि यहा कुर्ती आज ही मुझे दान में प्राप्त हुई है, मेरी हार्दिक इच्छा है कि इससे श्रीचरणों को पोंछकर आपके किसी सेवक को दे दूँ। महाराज ऐसी बातों को व्यर्थ जानते थे। उन्होंने इसे स्वीकार न किया, परन्तु पण्डित पोहलोराम ने उनके चरण पकड़कर कुर्ती से उन्हें झाड़ ही डाला और फिर कुर्ती स्वामीजी के एक भृत्य को दे दी।

भक्त को उपदेश—पण्डित पोहलोराम को स्वामीजी ने प्रतिदिन गायत्रीमन्त्र जपने का आदेश किया था और उनसे यह भी कहा था कि रात्रि को शय्या पर जाकर प्रणव का जप किया करो और जप करते-करते ही सो जाओ। स्वामीजी ने उन्हें प्राणायाम की विधि भी बतलाई थी।

§ ११ जुलाई तक महाराज का निवास अमृतसर में रहा, तत्पश्चात् उन्होंने संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध को, जो उस समय पश्चिमोत्तर प्रान्त के नाम से प्रसिद्ध था, अपने चरणों से पवित्र करने का सङ्कल्प किया। अमृतसर से महाराज जालन्धर पधारे और वहाँ केवल एक दिन ठहर कर १३ जुलाई सन् १८७८ को लुधियाना पहुँचकर लाला वंशीधर के बाग़ में ३-४ दिन ठहरे। इस बार कोई व्याख्यान नहीं दिया। लुधियाना से अम्बाला ठहरते हुए रुड़की चले गये।

---

§ ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पत्रसंख्या ५३ पृष्ठ १०४ से विदित होता है कि वे १५ जुलाई तक अमृतसर में ही थे। यदि उसी दिन उनका अमृतसर से चलना मान लिया जावे तो वे १६ जुलाई को लुधियाना पहुँचे होंगे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकविंशति अध्याय

आषाढ़ सं० १९३५ कार्त्तिक १९३५=जुलाई १८७८—नवम्बर १८७८

(§२५ जुलाई—२१ अगस्त) **रुड़की** (श्रा०कृ० ११—भाद्र०कृ० ८)

महाराज की कीर्त्ति-चन्द्रिका की किरणें चारों ओर फैल रही थीं। रुड़की में जब उनकी छटा पहुँची तो लोगों को उनके दर्शन की अभिलाषा हुई और पण्डित उमरावसिंह अध्यापक ताम्पसन इञ्जीनियरिंग कॉलेज रुड़की और कतिपय रईसों और राजकर्मचारियों ने एक निवेदनपत्र महाराज की सेवा में रुड़की पधारने के लिए भेजा। महाराज ने उसका उत्तर दिया कि अभी तो हमारा विचार अन्यत्र जाने का है, अतः हम नहीं कह सकते कि रुड़की कब आना होगा, जब सम्भव होगा हम सूचना देंगे। इसके थोड़े दिन पीछे ही महाराज का पत्र आया कि हमने पूर्वोक्त स्थान पर जाने का विचार शिथिल कर दिया है, यदि हमारा इस समय रुड़की आना अनुचित हो ते सूचित कीजिए, अन्यथा हम समझेंगे कि आप लोगों को हमारे आने में विरोध नहीं है। इस पत्र के आते ही लोगों के हृदय-कमल विकसित हो गये और उन्होंने महाराज के निवास का लाला शम्भूनाथ दिल्लीवाले के बँगले में प्रबन्ध कर दिया।

स्वामीजी का सत्सङ्ग—महाराज के पधारते ही दर्शकों का आगमन आरम्भ हो गया। उनमें अधिक संख्या ताम्पसन कालेज के अध्यापकों और छात्रों की थी, कुछ मुसलमान भी थे। महाराज से वार्त्तालाप करके सभी उनकी विद्या, बुद्धि को देखकर चकित रह जाते थे और अपने प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर पाकर शान्ति-लाभ करते थे।

निज स्थान पर उपदेश—पहले ही दिन पण्डित उमरावसिंह के निवेदन पर निज स्थान पर महाराज ने ईश्वरोक्त ज्ञान के सिद्धान्त पर एक अत्यन्त हृदय-ग्राही वक्तृता दी, जिसे सुनकर सबने और विशेषकर मुसलमानों ने उनकी योग्यता की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की।

अमेरिका की चिट्ठी और उसका उत्तर—उसी दिन अमेरिका से कर्नल आल्काट की चिट्ठी महाराज के पास आई थी, जिसका उत्तर उस समय तक नहीं दिया गया था। वह चिट्ठी भी उपस्थित सज्जनों को सुनाई गई और फिर पण्डित उमरावसिंह ने उसका भाषानुवाद करके सुनाया। उसके उत्तर की पाण्डुलिपि भी पण्डित उमरावसिंह ने महाराज के आदेशानुसार तैयार की‡ जिसमें महाराज के मन्तव्यामन्तव्य का विशद विवरण था। उसे सुनकर सब लोगों को महाराज के सिद्धान्तों से अभिज्ञता प्राप्त हो गई। महाराज ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि अन्य धर्म और अन्य देशवालों को तो हमारे धर्म के जानने का उत्साह हो और हम इस भूमि के रहनेवाले और अपने को आर्य पूर्वजों की सन्तान कहानेवाले उसकी उपेक्षा करें!

---

§ ऋषि दयानन्द ने रुड़की पहुँचकर २५ जुलाई को एक पत्र बाबू माधोलालजी को लिखा था। (देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पृष्ठ १०५) इससे विदित होता है कि वे २५ जुलाई या उससे पूर्व रुड़की पहुँचे थे।

‡ कर्नल आल्काट की चिट्ठी का जो उत्तर दिया गया वह पत्र संस्कृत में है और वह निश्चय ही स्वामीजी का अपना तैयार किया हुआ है, अतः उपर्युक्तलेख भ्रममूलक है। वह पत्र ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार में पृष्ट १०५-११४ तक छपा है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी का अछूतों से प्रेम—सफ़रमैना की पल्टन का एक मज़हबी सिक्ख भी श्रोताओं के समुदाय में था और एक ओर को बैठा हुआ बड़े चाव से महाराज की बातें सुन रहा था। वह श्वेत वस्त्र धारण किये हुए था। इतने में छावनी का पोस्टमैन महाराज की डाक लेकर आया। वह मुसलमान था और उस सिक्ख को पहचानता था। उसे वहाँ बैठा देखकर वह आग-बबूला हो गया और उससे बोला, 'रे मनहूस नापाक! तू ऐसे बड़े बुजुर्ग और मशहूरज़माना शख्स की खिद्मत में इस बे-अदबी से आ बैठा और अपनी जात से उन्हें इत्तिला न दी।' यह सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और अलग जा बैठा। पोस्टमैन ने उसे वहाँ से भी निकालना चाहा, परन्तु अछूतोद्धारक दयानन्द को यह कब सह्य हो सकता था। महाराज ने अत्यन्त कोमल शब्दों में उस पोस्टमैन से कहा, 'निस्सन्देह इस मनुष्य से थोड़ी-सी भूल हो गई थी, जिसका उसे पर्याप्त दण्ड मिल गया, अब उसके अलग बैठकर सुनने में कोई हानि नहीं है, उससे कुछ न कहना चाहिए।' उस मनुष्य ने आँखों में अश्रु भरकर और हाथ जोड़कर कहा कि मैंने किसी की कुछ हानि नहीं की, मैं सबसे पीछे जूतियों की जगह अलग बैठा हूँ। महाराज ने उस पोस्टमैन से कहा तुम्हें ऐसा कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिए और समझाया कि परमेश्वर की सृष्टि में सब समान हैं और उस मनुष्य से कहा कि तुम प्रतिदिन उपदेश सुनने आया करो। मुसलमानों के निकट तुम चाहे कैसे ही हो, परन्तु यहाँ तुम्हें कोई घृणा की दृष्टि से नहीं देखता। महाराज के इस सान्त्वना-वाक्य से वह बहुत प्रसन्न हुआ और फिर प्रतिदिन उपदेश सुनने आता रहा।

व्याख्यानों का प्रबन्ध हो गया—दूसरे दिन प्रातःकाल से ही महाराज के पास जिज्ञासुओं की भीड़ लग गई। उस दिन यह निश्चय हुआ कि महाराज के व्याख्यान नगर में कराये जाएँ, अतः कैम्प मजिस्ट्रेट से आज्ञा प्राप्त करके आरमन स्कूल के समीप के मैदान में उनके व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया।

समय का मूल्य—पहले दिन व्याख्यान का समय ५ बजे अपराह्न था। महाराज को व्याख्यान स्थल पर भेजने के लिए बग्घी ४॥ बजे ही आ गई। उन्होंने घड़ी देखकर कहा मार्ग १५ मिनट का है। आधा घण्टा पहले जाने से क्या लाभ। मैं समय से ५ मिनट पहले वहाँ पहुँचना चाहता हूँ, अतः उन्होंने ऐसा ही किया और ठीक ५ बजे व्याख्यान आरम्भ कर दिया। व्याख्यान का विषय सत्यधर्म और वेद था।

मैंने ऐसी प्रबल युक्तियाँ नहीं सुनी थीं—दूसरा व्याख्यान मूर्त्तिपूजा के खण्डन और आवागमन पर हुआ। उसे सुनकर रुड़की के असिस्टेंट सर्जन बाबू सुरेशचन्द्र ने कहा कि मैंने अपनी सारी आयु में आवागमन के समर्थन में ऐसी प्रबल युक्तियाँ कभी नहीं सुनी थीं। मेरा आवागमन पर विश्वास न था, परन्तु अब मुझे ज्ञात हो गया कि मैं भूला हुआ था।

स्वामीजी बड़ा वाचाल है, मैं उससे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता—रुड़की में उस समय एक विद्वान् ब्राह्मण पण्डित त्रिलोकचन्द निवास करते थे जो आरमन स्कूल में संस्कृताध्यापक थे। उनसे लोगों ने जाकर कहा कि स्वामीजी के सम्मुख अपनी विद्या का परिचय दीजिए और मूर्त्तिपूजा को सिद्ध कर दीजिए, तो उन्होंने उत्तर दिया कि मूर्त्तिपूजा तो वेदप्रतिपादित है और सनातन से चली आती है उसके मण्डन की क्या आवश्यकता है और आप लोगों को उसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। दयानन्द बड़ा वाचाल है, उसके सामने कोई नहीं बोल सकता, अतः उससे शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ, परन्तु मैं अपने घर पर व्याख्यान दे दूँगा, अतः जिस दिन महाराज का तीसरा व्याख्यान था, एक हिन्दू सज्जन के गृह पर लोग एकत्र हुए और थाम्पसन कॉलेज के पुस्तकालय से जर्मनी का छपा हुआ ऋग्वेद मँगाकर पण्डितजी ने सब लोगों को बार-बार दिखाया और कहा कि यह ऋग्वेद है, मेरा छपाया हुआ नहीं है, विलायत में मुद्रित हुआ है, इसपर ऋषियों का भाष्य है, मेरा अनुवाद किया हुआ नहीं है, इसे मानो, दयानन्द जो कहता है उसे मत मानो। तब एक व्यक्ति ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा कि यह तो बता दीजिए कि इसमें क्या लिखा है। इसपर पण्डितजी ने कहा कि देख लो, यहाँ कोई यवन तो नहीं बैठा है। वहाँ एक यवन चपरासी बैठा था, लोगों ने उसे हटा दिया तब उन्होंने **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर सुनाया और कहा कि इससे मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है। तब किसी ने पण्डितजी को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए कहा तो पण्डितजी ने कहा कि मैं उसके दर्शन नहीं कर सकता। इसपर एक उपस्थित सज्जन ने कहा कि काशी में तो काशी के सब पण्डित और राजा साहब स्वामीजी के सामने मोर्चे में बैठे थे, आपने यह ढकोसला कहाँ से निकला, ज्ञात होता है कि आप शास्त्रार्थ नहीं कर सकते। इसके पश्चात् शंख-घड़ियाल बजे और जय बोलकर सभा विसर्जित हुई। इन्हीं पण्डितजी ने मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए हकीम थानसिंह से कहा था कि यदि मेरे पिता जीवित न होते तो मैं निस्सन्देह आर्य-धर्म स्वीकार कर लेता।

मुसलमान उत्तेजित, मुसलमानों की ओर से विघ्न—तीसरे दिन महाराज का व्याख्यान इंजील और कुरान की शिक्षा पर था। मुसलमान पहले से ही उत्तेजित हो रहे थे, कारण कि रुड़की में महाराज के आगमन से पहले ही एक मौलवी बाजार में खड़ा होकर हिन्दुओं और ईसाइयों के विरुद्ध प्रचार किया करता था। वह कटु-भाषी और असभ्य था। हिन्दू तो उसके सामने बोलते न थे, परन्तु ईसाई उससे बातचीत करने को उद्यत हो जाते थे। वह उनसे भी कठोर भाषा का प्रयोग किया करता था और इसी कारण एक बार उसका पादरी हापनर से झगड़ा हो गया था। महाराज के विषय में मुसलमानों की धारणा हो गई थी कि उन्हें हिन्दुओं ने मुसलमानों से शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया है। मुसलमानों ने आरम्भ से ही महाराज के व्याख्यान में विघ्न डालने की ठान ली और वे हल्ला-गुल्ला करते रहे। पुलिस व्याख्यान में उपस्थित थी, परन्तु वह भी अधिकतर मुसलमान थी, राजकर्मचारियों की भी अधिक संख्या मुसलमान थी। उनमें से किसी ने भी विघ्नकारियों से कुछ न कहा।

इस्लाम का खण्डन न कीजिए, इस्लाम पर प्रबल आक्षेप—यह दशा देखकर किसी ने एक पर्चा महाराज के पास भेजा कि दुष्ट लोगों की ओर से उपद्रव का भय है, अतः इस्लाम पर अधिक न कहें, महाराज ने उसे देखकर सङ्केत कर दिया कि उन्होंने उसे देख लिया है। वह इन बातों से डरनेवाले न थे। सिंह गीदड़-भबकियों से कहीं भयभीत हो सकता है! उन्होंने उसकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए अपने विषय को जारी रक्खा और वह प्रबल आक्षेप इस्लाम पर किया कि लोग देखते रह गये, इस्लाम का फ़ोटो खींचकर रख दिया। मुसलमान महाराज के आक्षेपों को सुनते रहे और जी में कटते रहे, परन्तु कुछ कह न सके, क्योंकि महाराज जो कुछ कहते थे, पते की कहते थे। उधर प्रबन्धकर्त्ता भी सावधान थे, उनके सुप्रबन्ध के कारण कोई उत्पात न हुआ।

चौथे व्याख्यान में उपद्रव की आशङ्का से सरकारी सहायता का प्रबन्ध कर लिया गया था। उस व्याख्यान में महाराज ने पाश्चात्यदर्शन, डारविन के सिद्धान्त, इस्लाम और ईसाई मत के दार्शनिक सिद्धान्त तथा पुराणों की बुद्धि-विरुद्ध गाथाओं पर प्रकाश डाला था। डारविन की कल्पना के विरुद्ध उन्होंने यह युक्ति दी थी कि जिस समय वानर से नर उत्पन्न हुआ, कोई बन्धन इस प्रकार का नहीं लगाया गया था कि आगे को वानर उसी प्रकार का कर्म करके नर को उत्पन्न नहीं करेगा फिर क्या कारण है कि उस काल के पश्चात् अब तक वानर से एक भी नर उत्पन्न नहीं हुआ, जबकि वे सब नर-पशु और नारी-पशु, जिनके संयोग से नर हुआ था, पृथिवी पर उपस्थित रहे। दूसरे यह कहा जाता है कि दो भिन्न जातियों के नर और नारी के मेल से एक नई जाति के पशु उत्पन्न हुए और फिर उनके अन्य जातियों के पशुओं से समागम करने से एक नई जाति उत्पन्न हुई और इस प्रकार होते-होते मनुष्य का पृथिवी पर आविर्भाव हुआ। इसपर महाराज ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा कि दो भिन्न जातियों के पशुओं के मेल से सन्तान ही नहीं होती और जब अब नहीं तो पहले भी नहीं हो सकी होगी।

शिक्षित समुदाय आश्चर्यान्वित—इन युक्तियों को सुनकर अंग्रेज़ी समुदाय बहुत आश्चर्यान्वित हुआ। अनेक शिक्षित लोगों ने ऐसे विषयों पर महाराज से प्रश्न किये जिनके आविष्कारकर्त्ता यूरोपीय विद्वान् ही माने जाते हैं। जैसेकि सूर्य का न घूमना, पृथिवी का परिभ्रमण, अमेरिका का वर्णन, मेघ आदि का वर्णन, भूकम्प आदि, परन्तु महाराज ने संस्कृतग्रन्थों के प्रमाणों से सबके समीचीन उत्तर दिये जो सर्वांश में आधुनिक विज्ञान के अनुकूल थे। आकर्षण के सिद्धान्त का आविष्कर्त्ता न्यूटन को समझा जाता है, परन्तु महाराज ने वेदमन्त्रों तथा अन्य ग्रन्थों के प्रमाण से उसका प्राचीनत्व सिद्ध करके उपस्थित जन को आश्चर्य से अवाक् कर दिया था।

मनोरंजक प्रश्नोत्तर—लाला कन्हैयालाल (विद्यार्थी, इञ्जीनियरिंग क्लास) ने प्रश्न किया कि नशे की दशा में ध्यान खूब जमता है और मनुष्य उसी में मग्न हो जाता है, अतः जैसा अच्छा ध्यान परमेश्वर का नशे की दशा में हो सकता है, वैसा अन्य दशा में नहीं हो सकता। महाराज ने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है कि नशे की अवस्था में जिस वस्तु का ध्यान आता है मनुष्य उसमें मग्न हो जाता है, परन्तु उसे उस वस्तु का तात्त्विक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ऐसा ज्ञान एक वस्तु का दूसरी वस्तुओं के साथ यथार्थ सम्बन्ध स्थिर करने से होता है और यह नशे की दशा में होना असम्भव है। उसमें गुणी का गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसी दशा में ईश्वर का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इस उत्तर को सुनकर वे बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए।

कर्नल और कप्तान से वार्त्तालाप—एक दिन कर्नल मानसल कमांडिङ्ग ऑफ़ीसर रुड़की और कप्तान स्टुआर्ट, कार्टर मास्टर महाराज के व्याख्यान में आये। महाराज उस समय इञ्जील के विषय में कथन कर रहे थे। महाराज के आक्षेपों को सुनकर वे उत्तेजित होते थे, परन्तु कुछ कहते न थे। व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने महाराज से वाद-प्रतिवाद किया। जब वे महाराज की युक्तियों का उत्तर न दे सकते थे तो कुछ भड़क उठते थे। अन्त को वे सर्वथा निरुत्तर हो गये और यह कहकर चले गये कि इसका उत्तर हम कल देंगे, परन्तु अगले दिन वे न आये।

मजिस्ट्रेट ने व्याख्यान बन्द कर दिये—महाराज के चार ही व्याख्यान हुए। उसके पश्चात् हरिद्वार के पण्डों ने मजिस्ट्रेट से शिकायत की कि स्वामी दयानन्द तीर्थों के माहात्म्य का खण्डन करते हैं जिससे हमारी हानि होती है। इसपर मजिस्ट्रेट ने महाराज को धर्म-सम्बन्धी व्याख्यान देने से निषेध कर दिया, परन्तु वह निज स्थान पर बराबर उपदेश करते रहे।

मुसलमानों से शास्त्रार्थ का आयोजन—यह हम पहले ही कह चुके हैं कि मुसलमानों में महाराज के विरुद्ध उत्तेजना हो गई थी। उन्होंने महाराज से शास्त्रार्थ करने का आयोजन किया और मौलवी अहमदअली और हाफ़िज रहीमुल्ला शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हुए, परन्तु मौलवी साहब तो कटु-भाषी प्रसिद्ध थे और हाफ़िज़जी अरबी से अनिभिज्ञ थे, अतः महाराज ने उनसे शास्त्रार्थ करना उचित न समझा। महाराज ने कहा कि यदि मुसलमानों के सबसे बड़े इस्लाम के विद्वान् मौलवी मुहम्मदक़ासिम देवबन्दवाले आवें तो हम उनसे शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हैं।

८ अगस्त सन् १८७८ को मौलवी मुहम्मदक़ासिम को मुसलमानों ने बुलाया और उन्होंने आते ही एक विज्ञापन छपवाकर वितरित किया और एक पत्र भी रजिस्ट्री कराकर महाराज के पास भेजा जिसपर उनके हस्ताक्षर कराये गये। उक्त पत्र में अप्रासंगिक बातें लिखकर यह लिखा था कि कोई ऐसी तिथि नियत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की जाए जिसपर निकट और दूर के स्थानों के लोग आ सकें और साथ ही यह भी कि तिथि दूर की न हो, अन्यथा हमें ठहरना कठिन होगा। दूसरे मौलवी साहब का यह आग्रह था कि महाराज उर्दू में बोलें और तीसरे यह कि जब तक एक विषय पर बात-चीत समाप्त न हो जाए दूसरे विषय पर बातचीत न की जाए।

१० अगस्त को ही महाराज के पक्ष की ओर से मौलवी साहब के विज्ञापन के उत्तर में विज्ञापन दिया गया जिसमें मौलवी साहब के विज्ञापन की सब विरुद्ध बातों का उत्तर दिया गया। मौलवी साहब ने लिखा था कि हमने अपने मित्रों द्वारा बहुत चाहा कि शास्त्रार्थ की तिथि नियत हो जाए..... परन्तु पण्डितजी किसी प्रकार तिथि नियत करने पर सम्मत न हुए, यह बात सर्वथा मिथ्या थी। मौलवी साहब का कोई मित्र महाराज के पास नहीं आया था। केवल एक मनुष्य आया था और उससे सब-कुछ स्थिर हो गया था, केवल एक बात निर्णय के लिए रह गई थी जिसके विषय में उसने कहा था कि मौलवी साहब की सम्मति लेकर उत्तर दूँगा। उसके पश्चात् न कोई आया, न गया।

साथ ही महाराज ने एक पत्र ११ अगस्त को रजिस्ट्री कराकर मौलवी साहब के पास भेजा जिसमें उनकी सब बातों का यथावत् उत्तर था। उसमें यह भी लिखा था कि शास्त्रार्थ की तिथि और समय निश्चित हो ही गया अन्य जो नियम आप चाहें लिख भेजने की कृपा करें। मैं भी जो नियम उचित समझूँगा लिख भेजूँगा। इसके उत्तर में मौलवी साहब ने रहीमुल्ला को भेजा कि उन्हें मेरी ओर से नियम निश्चय करने का अधिकार है, परन्तु महाराज ने आग्रह किया कि नियम स्वीकार करने के लिए मौलवी साहब को स्वयं आना चाहिए।

इसपर महाराज और मौलवी साहब तथा ३०, ४० अन्य सज्जन तथा कर्नल मानसल और कप्तान स्टुआर्ट एक स्थान पर एकत्र हुए और सबके सामने दोनों शास्त्रार्थ-कर्त्ताओं की स्वीकृति और सहमति से निम्नलिखित नियम निश्चित हुए—

१—शास्त्रार्थ उसी कोठी में होगा जिसमें स्वामीजी उतरे हुए हैं। मौलवी साहब ने इसपर आपत्ति की तो कप्तान स्टुआर्ट ने कहा कि यदि आपत्ति है तो शास्त्रार्थ हमारे बंगले पर हो जाए, परन्तु मनुष्यों की संख्या २४ से अधिक न हो, क्योंकि वहाँ अधिक स्थान नहीं है, तब मौलवी साहब ने स्वामीजी के स्थान को ही स्वीकार कर लिया।

२—उभय पक्ष के मनुष्य ४०० से अधिक न होंगे।

३—शास्त्रार्थ-स्थल में जाने के लिए चतुर और बुद्धिमान् मनुष्यों को टिकट बाँट दिये जाएँगे।

४—शास्त्रार्थ लिपि-बद्ध होगा अर्थात् जो कुछ कोई बोलेगा उसे लिखाता जाएगा ताकि नकार करने का स्थान न रहे और मुद्रित होने के काम आवे।

५—शास्त्रार्थ ६ बजे सायङ्काल से रात्रि के ६ बजे तक रहेगा।

६—दोनों ओर से शास्त्रार्थ में बात-चीत सभ्यतापूर्वक दार्शनिक लोगों के ढंग पर होगी। कोई किसी के मान्य व्यक्तियों और नेताओं के सम्बन्ध में कठोर शब्दों का प्रयोग न करेगा।

७—शास्त्रार्थ के समय स्वामी दयानन्द और मौलवी मुहम्मदक़ासिम के अतिरिक्त अन्य कोई शास्त्रार्थ सम्बन्धी बात-चीत न करेगा।

८—स्वामीजी वेद का पक्ष लेंगे और केवल क़ुरान पर आक्षेप करेंगे और मौलवी साहब क़ुरान का पक्ष लेंगे और केवल वेद पर आक्षेप करेंगे।

९—१८ अगस्त सन् १८७८ से नियत समय पर उपर्युक्त नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ आरम्भ किया जाएगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके पश्चात् सब लोग अपने-अपने स्थानों को चले गये।

जब मौलवी साहब अपने डेरे पर पहुँचे तो उन्हें चिन्ता हुई कि इन नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ होगा तो बड़ी आपत्ति आएगी। शास्त्रार्थ लिखा गया तो अमिट हो जाएंगा, हम यह कैसे कह सकेंगे कि हमने यह नहीं कहा था। यदि हमारी ओर से केवल दो सौ ही मनुष्य हुए तो हुल्लड़बाज़ी का अवसर ही न मिल सकेगा और न शास्त्रार्थ में विघ्न डालकर अपनी जीत का शोर मचा सकेंगे, अतः उन्होंने उचित-अनुचित का विचार छोड़कर १२ अगस्त को महाराज को एक पत्र लिखा कि मैंने जो नियम स्वीकार किये वे आपके आग्रह पर और इस कारण से कि नमाज़ को देर होती थी। शास्त्रार्थ के लिखे जाने की आवश्यकता नहीं हैं, न ऐसी परिपाटी है। यहाँ सब लोग इस बात को नापसन्द करते हैं कि केवल २०० मनुष्य ही शास्त्रार्थ देखने का सौभाग्य क्यों प्राप्त करें और शेष उससे क्यों वञ्चित रहें। मौलवी साहब ने यह भी धमकी दी कि अँधेरी रात होगी, मुसलमान तो क्या हिन्दू भी आपसे फिरे हुए हैं, यदि आपके साथ कोई अनुचित व्यवहार हुआ तो सबसे पहले मैं पकड़ा जाऊँगा। समय के विषय में भी आपत्ति उठाई और स्पष्ट लिख दिया कि सब लोगों को खुली आज्ञा दीजिए और समय भी बदल दीजिए अन्यथा इन्कार कीजिए।

इसका उत्तर महाराज ने १३ अगस्त को यह दिया कि दर्शकों की संख्या, शास्त्रार्थ का स्थान, शास्त्रार्थ का समय और उसका लिखा जाना कर्नल मानसल और कप्तान स्टुआर्ट के सामने निश्चित हो गये थे, अब आप इनसे असहमति प्रकट करते हैं। किसी बात का निर्णय करके उससे फिरना बुद्धिमानों का काम नहीं है। मैं निर्णीत विषय से नहीं हट सकता।

मौलवी साहब ने दो लम्बे चौड़े पत्र एक १३ और एक १४ अगस्त को लिखे, जिसमें पहली ही बातों को दोहराया और इसी बात पर आग्रह किया कि शास्त्रार्थ खुले मैदान में हो, सबको आने की आज्ञा हो, लिखा न जाए।

फिर मौलवी साहब ने यह चाल चली कि एक प्रार्थना-पत्र कुछ मुसलमानों की ओर से साहब मजिस्ट्रेट छावनी रुड़की के यहाँ दिलवाया कि हमें छावनी में सर्वसाधारण की सभा में शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दी जावे। इसपर उन्होंने आज्ञा दी कि हम न रुड़की, न छावनी और न सिविल स्टेशन में कहीं भी ऐसे शास्त्रार्थ की आज्ञा नहीं देते। इसके अतिरिक्त १७ अगस्त को एक प्रार्थना-पत्र कर्नल मानसल को दिलवाया कि स्वामी दयानन्द ने हमसे कह-कहकर देवबन्द से मौलवी मुहम्मदक़ासिम को बुलवाया तो हम लोगों ने कैम्प मजिस्ट्रेट से शास्त्रार्थ के लिए एक विस्तृत मैदान की प्रार्थना की थी, परन्तु उन्होंने आज्ञा दी कि हम शास्त्रार्थ को रुड़की में (छावनी में अथवा सिविल स्टेशन में) अनुमति नहीं दे सकते, अब यतः पण्डित दयानन्द सरस्वती बार-बार आग्रह करते हैं कि मेरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करो और वह स्थान आपके इलाक़े में है, अतः प्रार्थना है कि आप हमें पण्डित साहब के स्थान पर आमतौर से जाने की अनुमति दें ताकि मौलवी साहब भी उन्हीं के स्थान पर जाकर शास्त्रार्थ करें।

इसपर कर्नल साहब ने आज्ञा दी कि शास्त्रार्थ का हमारे इलाके से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यदि शास्त्रार्थ करना है तो कहीं और करो। रुड़की वा छावनी में हम इसकी किसी प्रकार आज्ञा नहीं देते। मजिस्ट्रेट साहब के इलाक़े से कुछ दूर पर करना स्वीकार हो तो करो। हमारा और मजिस्ट्रेट का इलाका बहुत दूर तक नहीं है। हम इस शास्त्रार्थ का निषेध नहीं कर सकते।

इसपर उसी दिन मौलवी साहब ने महाराज को लिखा कि मजिस्ट्रेट ने भी और कर्नल साहब ने भी रुड़की में शास्त्रार्थ करने की आज्ञा नहीं दी, अतः शास्त्रार्थ ईदगाह के मैदान में कर लीजिए। हम सब प्रबन्ध कर देंगे। मौलवी साहब ने महाराज को उसी दिन एक और पत्र लिखा कि यदि शास्त्रार्थ लिखा गया तो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेरी वाणी का प्रवाह रुकेगा। आपसे लिखा जाए तो लिख लीजिए और न हो सके तो आप जानें।.....सहस्रों शास्त्रार्थ हुए किसी ने यह शर्त न की, आपको यह शर्त सूझी, इसका कारण इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कि आप बचना चाहते हैं।

उत्तर में महाराज ने मौलवी साहब को दो पत्र लिखे, जिनमें शास्त्रार्थ के लिखे जाने की युक्तियुक्तता पर बल दिया। यह भी लिखा कि आप यदि इस उचित नियम को नहीं मानते तो आपका शास्त्रार्थ न करने का अभिप्राय ज्ञात होता है।

पण्डित उमरावसिंह ने कप्तान स्टुआर्ट को १७ अगस्त को ही एक पत्र लिखा जिसमें प्रार्थना की कि स्वामीजी के स्थान पर शास्त्रार्थ करने की अनुमति दी जावे। इसका उत्तर कप्तान साहब ने यह दिया कि कर्नल मानसल पहले ही कह चुके हैं कि यदि थोड़े से मनुष्य इकट्ठे होकर दार्शनिकों की भाँति शान्ति और नियमपूर्वक विचार करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

मैं समझता हूँ कि सब सम्बन्धित मनुष्यों, मुसलमानों और आर्यों को उनकी अनुमति मान लेनी चाहिए और इस समय जैसे स्वामी के स्थान पर एकत्र होते हैं वैसे ही एकत्र हों।

मैं अपना गृह प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूँ, परन्तु उसमें २४ मनुष्यों से अधिक के उपस्थित होने का स्थान नहीं है।

उपर्युक्त आज्ञा और निवेदन-पत्र की प्रतिलिपि मौलवी साहब के पास भेजकर लिखा कि ईदगाह पर कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता और आप भी अपने अतिरिक्त दूसरों की अनियमता का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले सकते, अतः मेरा अथवा कप्तान साहब का मकान ही उचित प्रतीत होता है।

इसका उत्तर जो आना था वही आया कि कप्तान साहब को क्या अधिकार है ? अधिकार कर्नल साहब को है और वे पहले ही निषेध कर चुके हैं। मजिस्ट्रेट और कर्नल साहब की आज्ञा के पश्चात् हमें पकड़े जाने का भय है। आपके मकान में २०, २५ से अधिक नहीं आ सकते। हमारे हिस्से में तो सम्भवतः ५ ही मनुष्य आवें शेष छावनी और नगर के होंगे। मौखिक और लेखबद्ध शास्त्रार्थ में भेद ही क्या रहा यदि मौखिक का एक-एक वाक्य लिखा गया। इससे तो लेखबद्ध शास्त्रार्थ होना ही अच्छा है।

इस प्रकार मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया।

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान्—जिन दिनों मौलवी साहब से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ हो रही थी उन्हीं दिनों एक पण्डितजी आये जिनके संस्कृत के विद्वान् होने की बड़ी ख्याति थी। वे महाराज से मिलने गये तो महाराज ने उन्हें सत्कारपूर्वक बिठाया। पण्डितजी ने एक व्याकरण का ग्रन्थ बनाया था जिसे वे अपने विचार में अपूर्व समझते थे। उन्होंने वह ग्रन्थ महाराज को दिखाया, महाराज ने ५, ७ मिनट देखकर वापस कर दिया और कहा कि आपका संस्कृत का ज्ञान अच्छा है। पण्डितजी उन दिनों बेकार थे, महाराज ने उन्हें अपने पास रखना भी चाहा, परन्तु वे राज़ी न हुए। महाराज ने कहा कि यदि आप अपना समय किसी आर्ष-ग्रन्थ के अनुवाद में लगाते तो अच्छा होता। पण्डितजी बोले, तो क्या मेरा ग्रन्थ किसी अर्थ का नहीं? महाराज ने कहा, जैसा है वैसा ही है। पण्डितज़ी ने कहा कि मेरे व्याकरण में सब नियम आ गये हैं। पण्डितजी के हठ करने पर महाराज ने कहा कि आप अपने ग्रन्थ का कोई नियम निकालिए। उन्होंने एक नियम निकाला तो महाराज ने १७, १८ वेदमन्त्र पढ़कर कहा आप अपने नियम को इन मन्त्रों पर घटाइए, परन्तु वह न घटा तो पण्डितजी ने कहा कि वेद का व्याकरण अलग हो सकता है, इसपर महाराज ने कहा कि इससे क्या लाभ कि वेद के लिए एक ग्रन्थ पढ़ा जाए और लौकिक संस्कृत के लिए दूसरा। फिर महराज ने ३२, ३३ लौकिक संस्कृत के श्लोक पढ़े। उनपर भी पण्डितजी का नियम न घटा। इसपर पण्डितजी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत चकित हुए और महाराज के पग पकड़ लिये और कहा कि आप समुद्र हैं। मैंने यह ग्रन्थ काशी के पण्डितों को भी दिखाया था, सबने इसकी प्रशंसा की। फिर महाराज ने पाणिनीय का एक सूत्र पढ़कर सबपर घटा दिया और पण्डितजी को मन्त्रणा दी कि आप आर्ष-ग्रन्थों की टीका और व्याख्या लिखने का यत्न करें जिससे संस्कृतविद्या की उन्नति हो। पण्डितजी का गर्व चूर्ण हो गया और वे निष्प्रभ, परन्तु अधिक बुद्धिमान् होकर विदा हो गये।

मैं दयानन्द का मुख नहीं देख सकता—हरिद्वार के प्रसिद्ध सतुआ स्वामी से भी लोगों ने कहा था कि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिए। पहले तो उन्होंने हाँ करली, परन्तु फिर कहा कि मैं दयानन्द का मुख नहीं देख सकता। लोगों ने यह बात महाराज से कही तो उन्होंने कहा कि बीच में पर्दा डालकर शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु सतुआ स्वामी इसपर भी उद्यत न हुए।

बंगाली सज्जन से प्रश्नोत्तर—एक दिन एक बंगाली सज्जन मेघनाथ भट्टाचार्य महाराज के दर्शनार्थ गये और धर्म-विषय पर उनसे निम्नलिखित वार्त्तालाप हुआ—

मेघनाथ—जीवात्मा शारीरिक धर्म का एक अंश है कि नहीं ?

स्वामीजी—नहीं, जीवात्मा स्वतन्त्र है।

मेघनाथ—यदि ऐसा है तो शारीरिक व्यतिक्रम अर्थात् अस्वस्थता से आत्मा का व्यतिक्रम क्यों होता है ?

स्वामीजी—जैसे जल में तरंग उठने पर जल पर डाले हुए तैल में भी तरंग देखी जाती है, वैसे ही जीवात्मा के स्वतन्त्र वस्तु होते हुए भी शरीर के व्यतिक्रम से जीवात्मा को व्यतिक्रम अनुभूत होता है।

मेघनाथ—परलोक है कि नहीं ?

स्वामीजी—है, जीवात्मा इस देह को त्यागकर तत्क्षण दूसरा देह धारण कर लेता है और पूर्वानुष्ठित कर्मों का फल भोगता है।

मेघनाथ—यदि ऐसा है तो पुत्र-पौत्रादि द्वारा किये हुए श्राद्ध-तर्पणादि से जो परलोकगत पूर्वपुरुषों की कल्याण-कामना की जाती है, वह संगत नहीं रहती।

स्वामीजी—जीव अपने ही किये हुए कर्मों का फल भोग सकता है, इसलिए पुत्र-पौत्रादि का किया हुआ श्राद्ध-तर्पणादि परलोकगत जीव के लिए वृथा है। इससे यदि हो सकता है तो अनुष्ठानकर्त्ता पुत्रादि का ही कल्याण हो सकता है।

मेघनाथ—यदि ऐसा है तो पुत्र की श्रद्धाभक्ति-समर्पण द्वारा पिता के प्रति कर्तव्य-पालन करने वा पितृऋण चुकाने के पहले ही पिता का परलोग हो जाए तो पिता के सम्बन्ध में पुत्र का कर्तव्य असम्पूर्ण वा अपालित रहेगा और ऐसी दशा में पुत्र के पितृऋण-परिशोध का क्या उपाय होगा ?

स्वामीजी—पुत्र आत्मतुष्टि के लिए ही परलोकगत पिता की स्मृति रक्षा कर सकता है, परन्तु वह परलोक के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकता। पितृ-ऋण चुकाने के विषय में पुत्र अन्य जीवित गुरुजनों की सेवा द्वारा पितृभक्ति की बहुत कुछ सार्थकता कर सकता है। दूसरी बात यह है कि जब प्रत्येक जीव अलग-अलग है तो एक के श्राद्ध द्वारा दूसरे व्यक्ति की तृप्ति वा मंगल-साधन कैसे सम्भव हो सकता है ?

मेघनाथ—तो क्या हमारा श्राद्धादि-अनुष्ठान सर्वथा ही मिथ्या है ?

स्वामीजी—हाँ, ऐसा ही है। ब्राह्मणों ने अपनी जीविका-पथ की सुगमता और सुविधा करने के लिए ही ऐसी व्यवस्था कर दी है।

मेघनाथ—हमारी जातिभेद की प्रथा ईश्वरसृष्ट है वा नहीं ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी—नहीं। श्रेष्ठ कर्मों के करने से ही ब्राह्मणों का श्रेष्ठत्व है।

मेघनाथ—तो फिर यज्ञोपवीत पहनने का क्या ग्रयोजन है ?

स्वामीजी—यह केवल लौकिक व्यवहार और उच्चवंश (वर्ण) का चिह्न है।

मेघनाथ—आपकी केशवबाबू के मत के साथ कैसी सहानुभूति है ?

स्वामीजी—मैं उनके अनेक मन्तव्यों का अनुमोदन करता हूँ। मेरा उनसे यही मतभेद है कि मैं केवल वेद का ही प्राधान्य स्वीकार करता हूँ, वे नहीं करते। वे सब शास्त्रों का सार ग्रहण करना चाहते हैं। केशव बाबू के मन्तव्यों की इस देश में प्रचरित होने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि वह समाज का संशोधन न करके उसे जड़ से ही बदलना चाहते हैं।

मेघनाथ—तीर्थादि की प्रयोजनीयता क्या है ?

स्वामीजी—तीर्थों की जो वर्त्तमान दशा है उसकी प्रयोजनीयता मैं कुछ नहीं देखता हूँ। यह तो केवल जीविकोपार्जन के निमित्त पण्डों ने एक ठाठ खड़ा कर रक्खा है।

मांस-भोजन के विषय में महाराज ने उसकी अवैधता स्वीकार की थी और कहा था कि शरीर के बल-सम्पादन के लिए मांसाहार की कुछ आवश्यकता नहीं है। दाल, रोटी, शाक और दुग्ध आदि से शरीर में बल और बुद्धि दोनों का ही प्राचुर्य हो सकता है।

बंगाल के पण्डितों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि उन्होंने न्यायशास्त्र द्वारा केवल बुद्धि की तीक्ष्णता प्राप्त कर ली है, परन्तु हमने प्रकृत ज्ञान-शास्त्र की चर्चा उनमें कुछ भी नहीं देखी।

महाराज ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि पहले आर्यगण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके विद्योपार्जन करते थे, इसलिए वे बलिष्ठ और दीर्घायु होते थे। अबके मनुष्य इन्द्रिय-दोष और पान-दोष में आसक्त होकर शारीरिक और मानसिक तेज से हीन हो गये हैं और अल्पायु भी। तुम मुझे देखो मेरी आयु ५० वर्ष से अधिक है, परन्तु में आध सेर घृत पचा सकता हूँ और तुम लोग युवा होते भी मेरे हाथ को नहीं मोड़ सकते।

तुम ब्रह्म हो तो मरी मक्खी को जिला दो—एक दिन भोटूसिंह नामक एक नवीनवेदान्ती आया और महाराज से कहने लगा कि आप पराविद्या नहीं जानते, यदि जानते होते तो द्वैत मत का प्रचार न करते। महाराज ने पूछा कि क्या आप वास्तव में ब्रह्म हैं ? भोटूसिंह ने उत्तर दिया कि मैं निःसन्देह ब्रह्म हूँ। महाराज ने इधर-उधर देखा तो एक मक्खी मरी हुई पड़ी थी। उसे उठाकर उन्होंने भोटूसिंह से कहा कि यदि तुम ब्रह्म हो तो इस मक्खी में जान तो डाल दो। तब तो भोटूसिंह चकराये और बुद्धू बने हुए रह गये, मुँह से एक शब्द भी न निकला।

स्वामीजी समय का व्यतिक्रम न करते थे—स्वामीजी नियत समय पर कार्य करने के सिद्धान्त का बड़ी कड़ाई के साथ पालन करते थे। एक दिन जब आप व्याख्यान-स्थल पर पहुँचे तो वहाँ दो ही श्रोता थे। अन्य श्रोताओं की प्रतीक्षा न करते हुए आपने व्याख्यान आरम्भ कर दिया।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—२० अगस्त को रुड़की में आर्यसमाज स्थापित हो गया और २१ अगस्त को महाराज ने रुड़की से विदा ले-ली।

मै सम्मति नहीं दे सकता—दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि जिस कोठी में महाराज ठहरे हुए थे उसी के एक कमरे में आर्यसमाज की अन्तरंग सभा हो रही थी। सभासद् अभी कार्य-सञ्चालन में प्रवीण न थे, अतः उन्होंने महाराज से सम्मति देने की प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने कहा मैं अन्तरंग सभा का सदस्य नहीं हूँ, अतः सम्मति नहीं दे सकता। तब उन्हें प्रतिष्ठित सभासद् बनाया गया। महाराज ने सदस्यों को बहुमूल्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपदेश भी दिया कि सभा में बैठकर हठ और दुराग्राह नहीं करना चाहिए। बहुमतानुसार जो निश्चित हो उसके अनुसार चलना चाहिए और सभा की बातों को गुप्त रखना चाहिए।

(२२ अगस्त—२६ अगस्त) अलीगढ़ (भाद्र कृ० ६—भाद्र कृ० १३)

२१ अगस्त १८७८ को महाराज ने रुड़की से प्रस्थान किया और २२ अगस्त को अलीगढ़ पहुँचकर पण्डित आफ़्ताबराय के बाग़ में ठहरे। उसी बाग़ में ठाकुर मुकन्दसिंह आदि रईस छलेसर, पहले से ठहरे हुए थे। इन सज्जनों ने महाराज की खूब सेवा-शुश्रूषा की।

मुम्बई से मूलसी ठाकुरसी, हरिश्चन्द्र चिंतामणि और श्यामजी कृष्णवर्मा महाराज से मिलने के लिए आये।

सर सय्यद के घर भोजन करने न गये—२३ अगस्त १८७८ को सर सय्यद अहमदखाँ ने महाराज तथा मुम्बई के सज्जनों को सन्ध्या-समय अपने गृह पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया। उन्होंने समझा था कि महाराज जाति-भेद नहीं मानते हैं और कहते हैं कि सबके ही हाथ का पकाया हुआ भोजन खाया जा सकता है, अतः उन्हें हमारे घर पर भोजन करने में कोई आपत्ति न होगी, परन्तु महाराज भोजन करने न गये और कहा कि यद्यपि मुसलमानों के भोजन में सम्मलित होने और भोजन करने में कोई दोष नहीं है, परन्तु ऐसा करने से हमारे देशवासियों में हमारे प्रति अश्रद्धा का उदय होगा और हमारे उद्देश्यों की सिद्धि में बाधा पड़ेगी, परन्तु श्यामजी कृष्णवर्मा आदि भोज में सम्मिलित हुए।

न बुराई न भलाई—अन्य जाति व धर्मवालों के हाथ का पका वा छुआ हुआ खाने में वैदिक धर्मियों की कुछ हानि वा भलाई-बुराई है वा नहीं ? यह प्रश्न कुँवर ज्वालाप्रसाद ने महाराज से किया था, तो उन्होंने उत्तर में कहा था कि न कुछ बुराई है, न कुछ भलाई।

मुसलमान सबजज ने प्रशंसा की—इस बार महाराज कुछ अस्वस्थ थे, अतः उनके व्याख्यान कम हुए। एक व्याख्यान हुआ, जिसमें सहस्रों की संख्या में लोग उपस्थित हुए। व्याख्यान सुनकर सभी लोग प्रसन्न हुए, व्याख्यान के अन्त में मौ० फ़रीदुद्दीन सबजज ने खड़े होकर महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की। निजस्थान पर जो लोग आते थे उनका शङ्कासमाधान और उन्हें धर्मोपदेश तो प्रतिदिन ही होता रहता था।

२६ अगस्त १८७८ को महाराज अलीगढ़ से मेरठ चले गये।

(२६ अगस्त—३ अक्तूबर) मेरठ (भाद्र०कृ० १३—आश्वि०शु० ८)

मेरठ में महाराज बाबू दामोदरदास की कोठी में उतरे। महाराज के आगमन की चर्चा सारे शहर व छावनी में फैल गई। एक सप्ताह तक तो महाराज उसी कोठी के बरामदे में बैठकर आगन्तुकों को उपदेश और उनका शङ्कासमाधान करते रहे। इसके पश्चात् राय गनेशीलाल अध्यक्ष 'जलवएतूर' प्रेस की कोठी में महाराज के व्याख्यान होने आरम्भ हुए, जिनका विज्ञापन पहले से दे दिया गया था।

व्याख्यान माला—पहला व्याख्यान १ सितम्बर सन् १८७८ को प्रारम्भिक विषय पर हुआ जिसमें सभा में आने-जाने, प्रश्नोत्तर आदि करने के विषय में कथन किया गया और यह सूचना भी दे दी गई कि जिस किसी को कुछ प्रष्टव्य हो वह व्याख्यान समाप्त होने पर पूछे। सबके उत्तर अन्तिम दिन के व्याख्यान में दिये जाएँगे। दूसरा व्याख्यान धर्माधर्म के लक्षणों पर और तीसरा ईश्वर की प्रार्थना, स्तुति और उपासना विषय पर हुआ। चौथा दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया था, परन्तु जब किसी ने कोई प्रश्न न किया तो महराज ने सृष्टि-उत्पत्ति विषय पर कथन किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक मुसलमान का पत्र—और तो किसी ने कोई प्रश्न न किया एक मुसलमान ने एक पत्र दिया जिसमें लिखा था कि मुसलमान प्रश्नोत्तर करने पर उद्यत हैं, यदि स्वामीजी किसी हिन्दू रईस के उत्तरदायित्व पर स्टाम्प पर एक इक़रार-नामा शास्त्रार्थ करने और मेरठ में ठहरे रहने का लिख दें। यह पत्र, यह कहकर, वापस कर दिया गया कि वह किसी मुसलमान रईस के हस्ताक्षरों से आना चाहिए।

प्रश्नों के उत्तर—५ सितम्बर से नौ दिन तक लाला रामशरनदास के घर पर शहर में व्याख्यान हुए, अर्थात् ६ दिन तक तो विविध विषयों पर व्याख्यान हुए और तीन दिन तक उन सब प्रश्नों के उत्तर दिये गये जो उन दिनों में लोगों ने किये थे।

सनातन धर्मरक्षिणी सभा के प्रश्न और उनके उत्तर—उनमें से जो प्रश्न सनातनधर्मरक्षिणी सभा मेरठ की ओर से आये थे वे बड़े ही मनोरंजक हैं और उनसे प्रश्नकर्त्ता की योग्यता का पूर्णतया पता चलता है, अतः हम उन्हें नीचे लिखते हैं—

१—जोकि चारधाम और सप्तपुरी आदि नगर और ग्रामों में उन्नत शिखर और मन्दिर और उनमें देवताओं की मूर्त्तियों का स्थापन हो रहा है और परम्परा से पूजा होती आती है। अब इसमें आपको भ्रम और सन्देह हुआ, सुना है। जो अवश्य सन्देह है तो श्रुति-स्मृति के प्रमाण इसमें दीजिएगा और जो सन्देह नहीं है तो यह व्यक्त कीजिएगा।

२—गङ्गाजी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय है। इसमें भी प्रमाण दीजिए और जो कुछ सन्देह हो तो प्रकाशित करें।

३—जो अवतार हुए ये कौन हैं और इनका बनानेवाला कौन है और इनको पराक्रम किसने दिया अथवा ये समर्थ हैं। अवतरों के सामर्थ्य किसी राजा में अथवा और मनुष्य में नहीं सुने। प्रमाण श्रुति-स्मृति से हो तो लिखिएगा।

इनके जो उत्तर महाराज ने दिये उनका सारांश हम पाठकों की भेंट करते हैं।

उत्तर प्र० १—मुझे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन के विषय में सन्देह वा भ्रम कदापि नहीं है, प्रत्युत पूर्णतया निश्चय है कि वह वेदविरुद्ध है। उसके करने का आदेश न किसी ऋषि-मुनि के वाक्य से और न किसी शास्त्र के प्रमाण से सिद्ध है। किसी पुस्तक में देव के अर्थ पाषाणादि की मूर्त्ति के नहीं हैं, प्रत्युत केवल परमेश्वर, विद्वान्, वेदमन्त्र आदि के हैं, जो दिव्य गुणों से युक्त हैं।

यजुर्वेद अ० ३२ के मन्त्र ३ में स्पष्ट कहा गया है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः॥

अर्थ—परमेश्वर की कोई प्रतिमा, प्रतिकृति, प्रतिबिम्ब, मूर्त्ति नहीं है जिसका नाम महान् यशवाला है। उसका वर्णन इन ऋचाओं में आया है जिनके आदि में हिरण्यगर्भ, मा मा हिꣳसि, यस्मान्नजात—इत्यादि हैं।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—ऋ० अ० ८। अ० ७। व० ३। मं० १

अर्थ—जिसके गर्भ में सूर्यादि प्रकाशितलोक हैं वही सारी सृष्टि से पूर्व वर्त्तमान था और वह एक ही सब उत्पन्न सृष्टि का पति है, इस पथिवी और द्युलोक को उसी ने धारण किया है। उसी सुखस्वरूप परमेश्वर की उपासना करनी योग्य है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्या ँ रताः ॥—यजुः० अ० ४०। मं० ६

अर्थ—जो लोग कारणरूप प्रकृति की उपासना करते हैं वे अन्धकार में गिरते हैं और उनसे भी अधिक अन्धकार में वे गिरते हैं जो कार्यरूप प्रकृतिजन्य पदार्थों की उपासना करते हैं ।

इन वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि पाषाणादि मूर्त्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए केवल पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए ।

युक्ति से भी मूर्त्तिपूजा ठीक सिद्ध नहीं होती ।

यदि कहा जाए कि मूर्त्ति में देव की भावना की जाती है । अब वह भावना या तो सच्ची होगी या झूठी । यदि सच्ची है तो सुख की भावना करने से सुख-ही-सुख होना चाहिए, दुःख न होना चाहिए, परन्तु हम देखते हैं कि दुःख होता है । क्या कभी जल में दुग्ध की, मिट्टी में मिश्री की भावना सच्ची हो सकती है? यदि भवना झूठी है तो मूर्त्तिपूजा झूठी हो ही गई ।

यदि कहो कि परमेश्वर सर्वव्यापक है, अतः मूर्त्ति में भी है, तो वह पुष्प, चन्दन आदि में भी व्यापक हुआ । फिर ये वस्तुएँ मूर्त्ति पर क्यों चढ़ाते हो ? वह तो मूर्त्तिपूजकों के शरीर में भी व्यापक है तो अपने में ही व्यापक को क्यों नहीं मानते ?

यदि कहो कि मूर्त्तिपूजा अज्ञानियों के लिए ब्रह्म के जानने का साधन है तो गुण उपयुक्त साधन द्वारा प्राप्त होता है, निराकार और चेतन ब्रह्म का ज्ञान साकार और जड़ पदार्थ के द्वारा कैसे हो सकता है ?

यदि कहो कि प्राण-प्रतिष्ठा करने से मूर्त्ति सजीव हो जाती है तो यह बात भी मिथ्या है । किसी भी मूर्त्ति में जीव के लक्षण नहीं देखे जाते । शरीर में तो प्राण के आने-जाने के लिए छिद्र भी हैं, मूर्त्ति में वे भी नहीं ।

यह कहना कि मूर्त्तिपूजा परम्परा से चली आती है सर्वथा मिथ्या है । वेद अनादि हैं, जब उन्हीं में मूर्त्तिपूजा नहीं तो कैसे कहा जा सकता है कि वह परम्परा से चली आती है ।

उत्तर प्र० २—इस प्रश्न से प्रकट है कि या तो आप गङ्गाजी को श्रेष्ठ और पूजनीय नहीं मानते और यदि मानते हैं तो उसका प्रमाण नहीं दे सकते अन्यथा मुझसे उसका प्रमाण माँगना सर्वथा व्यर्थ है । मुझे गङ्गा के जल के श्रेष्ठ होने और उसके मुक्तिदायक और पापमोचक न होने में कुछ भी सन्देह नहीं है । यदि गङ्गा-स्नान से ही मुक्ति मिल सकती और पाप छूट सकते हैं तो फिर सत्यधर्म और शुभ कर्मों का अनुष्ठान और ईश्वराज्ञा का पालन सब व्यर्थ है । जो पाप-पुण्य किया जाता है वह रत्तीभर भी घट-बढ़ नहीं सकता। किसी वेद और धर्म-शास्त्र में गङ्गा का मुक्तिदायक होना नहीं लिखा है । मनुस्मृति अ० ५ के श्लोक १०९ में स्पष्ट लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

अर्थात् जल से शरीर, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ।

यदि कहा जाए कि गङ्गा तीर्थ है और तीर्थ शब्द वेदों और शास्त्रों में आया है तो वहाँ तीर्थ शब्द के अर्थ वेदाध्ययन, धर्मानुष्ठान, सत्यग्रहण और असत्य-त्याग के हैं, नदी आदि के नहीं । छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—**अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः ॥**

अर्थात् मन से वैरभाव छोड़कर किसी प्राणी को दुःख न देना ही तीर्थ है, अन्य तीर्थ नहीं है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर प्र० ३—जिन पुरुषों को अवतार माना जाता है वे महा उत्तम पुरुष थे, सत्य, धर्म और ईश्वाराज्ञा का पालन करते थे। उन्हें अवतार मानना भ्रान्ति है। परमेश्वर अजर-अमर है, वह जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आ सकता। जब परमेश्वर सब वस्तुओं में व्यापक है तो यह कैसे हो सकता है कि वह अवतार धारण करके एक ही शरीर में सीमित हो जाए ? परमेश्वर को जन्म लेने की आवश्यकता ही क्या है ? यदि कहो कि रावण और कंस जैसे अत्याचारियों के वध के लिए वह अवतार धारण करता है, तो यह सर्वथा अयुक्त है। जो परमेश्वर बिना शरीर धारण किये इस महान् संसार को बना, बिगाड़ और धारण कर सकता है, क्या वह ऐसे क्षुद्र जीवों को बिना शरीर धारण किये नहीं मार सकता ? जिन्हें आप अवतार मानते हो उनको बनाने और पराक्रम देनेवाला परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं हैं। जिसमें जितने गुण होते हैं उतना ही उसमें सामर्थ्य होता है। आजकल भी बहुत-से ऐसे विद्वान् और ऐसे सामर्थ्य और पराक्रमवाले हैं कि सहस्रों में कोई उनके पल्ले का नहीं, परन्तु क्या उन्हें अवतार कहना उचित है ? बड़े शोक का स्थान है कि एक ओर तो आप श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण को परमेश्वर का अवतार मानते हो और दूसरी ओर उनकी लीला और स्वांग बनाकार उनका अपमान करते हो। ठाकुरजी के सम्बन्ध में पुजारी लोग कहते हैं कि शीतकाल आ गया उनके पास वस्त्र नहीं हैं, भोग के लिए सामग्री नहीं रही, वे भूखे हैं। श्रीकृष्ण को सहस्रों गोपियों से भोग करनेवाला, सहस्रों रानियाँ रखनेवाला, दूध-माखन चुरानेवाला बताकर उनपर मिथ्या दोषारोपण करते हो और फिर अपने-आपको उनका भक्त कहते हो। देखो वेद क्या कहता है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजुः० अ० ४०। मं० ८।

अर्थ—वह परमेश्वर सब ओर परिपूर्ण, महा बलधारी, शरीर, फोड़े-फुंसी, स्नायु, रग, पट्ठे आदि के बन्धन से रहित, शुद्ध, पाप से रहित, सबका द्रष्टा, मनस्वी, सर्वव्यापक, सदा से वर्तमान है। उसने अपनी अनादि प्रजा को सत्य-सत्य बातों का उपदेश किया है। और भी—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

—यजुः० अ० ३१। मं० १

अर्थ—वह सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् का रचनेवाला है और इस जगत् से महान् और भिन्न है। असंख्य प्राणियों के शिर, आँखें और पैर उसी में हैं।

अतः सब प्रकार से सिद्ध है कि परमेश्वर अवतार कभी नहीं लेता।

कुछ अन्य लोगों के भी प्रश्न थे, परन्तु वे इस योग्य न थे कि उनका उल्लेख यहाँ किया जाए। कई तो उनमें असभ्यतापूर्ण और निरर्थक ही थे, जिनसे प्रश्नकर्त्ताओं की मूर्खता ही प्रकट होती थी। दिग्दर्शनार्थ केवल एक प्रश्न हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

प्रश्न—ऐ स्वामीजी महाराज यह किस वेद में लिखा है कि स्वामीजी गुलाबजामन और बालूशाही और मिठाई खावें और टसर भी पहनें और आप कहते हैं कि आर्यों का नाम चार अक्षरों तक का होना चाहिए फिर आपका नाम इतना बड़ा क्यों है और यह किस वेद में लिखा है कि स्वामीजी लोटे से पानी पीवें।

मौलवी का पत्र—७ सितम्बर सन् १८७८ को एक व्यक्ति अब्दुल्ला ने एक पत्र महाराज की सेवा में केवल इस अभिप्राय से भेजा कि हमने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती को शास्त्रार्थ का चैलैंज दिया था जिसमें उन्होंने निम्नलिखित नियम लिखे थे—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१—मध्यस्थ का होना आवश्यक है।

२—जबतक शास्त्रार्थ रहे आपको कहीं जाना न होगा।

३—बात-चीत मेरी और आपकी ही होगी और कोई बोलने न पावेगा।

४—परमेश्वर को साक्षी करके और हठ और अहमहमिका को दूर करके जो परास्त हो वह सत्य को स्वीकार करे ।

५—किसी रईस का प्रबन्ध होना चाहिए।

इसके पश्चात् मौलवी साहब ने उपर्युक्त आशय का दूसरा पत्र भेजा। उसे महाराज ने यह समझकर कि मौलवी साहब अपनी हठ न छोड़ेगे सभा में पढ़कर सुना दिया और कह दिया कि मुझे अन्य सब बातें स्वींकार हैं, परन्तु शास्त्रार्थ लिखा अवश्य जाएगा। यह मौलवी साहब क्यों मानते, उत्तर पाकर चुप हो रहे।

सनातनधर्म-रक्षिणी सभा की शास्त्रार्थ के लिए छेड़-छाड़—तत्पश्चात् सनातनधर्म-रक्षिणी सभा मेरठ ने शास्त्रार्थ के लिए छेड़-छाड़ आरम्भ की, जिसका विवरण अत्यन्त मनोरञ्जक है। सदर बाज़ार मेरठ में बिल्वेश्वर महादेव का एक पुराना मन्दिर है। ६ सितम्बर सन् १८७८ को उसमें कुछ पण्डित और हिन्दू रईस इकट्ठे हुए और शास्त्रार्थ के विषय में परामर्श हुआ। फलस्वरूप एक चिट्ठी महाराज के पास भेजी गई कि १३ सितम्बर सन् १८७८ को बिल्वेश्वर महादेव में एक सभा होगी, आप भी उसमें आवें। इस चिट्ठी पर नाम तो कई पण्डितों और रईसों के थे, परन्तु हस्ताक्षर किसी के न थे। महाराज ने कह दिया कि जब तक कोई लिखित ला० किशनसहाय रईस के हस्ताक्षरयुक्त न आएगी मैं उसपर कोई कार्य न करूँगा और इसीलिए इस चिट्ठी का कोई उत्तर न दिया।

१२ सितम्बर को ला० किशनसहाय के सुपुत्र ला० मुन्नालाल ने आकर महाराज से कहा कि पिताजी यह कहते हैं कि यदि आप शास्त्रार्थ में परास्त हो गये तो आपको मूर्त्तिपूजा का खण्डन छोड़ना पड़ेगा। इसे महाराज ने तुरन्त स्वीकार कर लिया और सायङ्काल को सभा में भी यह घोषणा कर दी और कह दिया कि यदि ला० किशनसहाय शास्त्रार्थ के अभिलाषी हैं तो उन्हें चार दिन के भीतर अपने हस्ताक्षरयुक्त लिखित भेजकर मुझसे शास्त्रार्थ के नियमों को स्थिर कर लें, परन्तु उन्होंने अपने हस्ताक्षरों से कोई पत्र न भेजा।

फिर एक रईस के गृह पर एक सभा हुई और फिर बिना हस्ताक्षरों के एक चिट्ठी महाराज के पास आई कि पण्डित श्रीगोपाल यहाँ उपस्थित हैं, आप उनसे शास्त्रार्थ करलें। यह चिट्ठी सभा में पढ़ी गई तो महाराज ने स्पष्ट कह दिया कि श्रीगोपाल से दो-तीन बार मेरी बात-चीत हो चुकी है, वे अत्यन्त क्रोधी हैं। वे मुझसे कटु भाषण कर चुके हैं और गालियाँ तक दे चुके हैं। उनसे शास्त्रार्थ करने से कोई परिणाम न निकलेगा। यही दशा दूसरे पण्डित भागीरथ की है। उन्होंने भी कई वर्ष हुए, जब मैं लेखराज के बाग़ में आकर ठहरा था, मुझे दुर्वचन कहे थे और तालियाँ पीटी थीं, परन्तु मैं अन्य पण्डितों से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत हूँ।

महाराज की स्पष्टवादिता के ये अर्थ लगाये गये कि वे शास्त्रार्थ से पराङ्मुख हो गये। कुछ आर्यसज्जनों ने यह बात महाराज से कही और साथ में यह भी कहा कि आप श्रीगोपाल से ही शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लीजिए, ऐसा प्रबन्ध कर दिया जाएगा जिससे वह असभ्यता का व्यवहार न कर सके तो उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी, बल्कि यहाँ तक कह दिया कि मैं श्रीगोपाल से क्या यदि सनातनधर्म सभावाले किसी तुच्छ विद्यार्थी को भी भेजेंगे तो उस तक से शास्त्रार्थ कर लूँगा। यह बात लाला किशनसहाय के कानों तक पहुँचा दी गई, परन्तु उन्होंने कोई कार्य न किया।

१३ सितम्बर को लाला रामशरनदास के भवन पर तो व्याख्यान देने बन्द कर दिये गये और १४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सितम्बर से बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट की कोठी पर व्याख्यान होने लगे और २२ सितम्बर तक निरन्तर होते रहे।

१५ सितम्बर को सनातनधर्मियों की फिर एक सभा हुई और १६ सितम्बर को एक विज्ञापन दिया गया कि लाला शिब्बनलाल रईस के दीवान-खाने में सभा होगी और उसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती शास्त्रार्थ के लिए बुलाये गये हैं और एक चिट्ठी भी महाराज के पास आई कि आप आकर शास्त्रार्थ करें। इसपर भी किसी के हस्ताक्षर न थे, अतः महाराज को फिर कहना पड़ा कि जब तक लाला किशनसहाय के हस्ताक्षरों से पत्र न आएगा और शास्त्रार्थ के नियम स्थिर न होंगे तब तक शास्त्रार्थ सम्भव नहीं है।

उसी दिन अर्थात् १५ सितम्बर को ही कुछ सज्जन बाबू छेदीलाल के बँगले पर आये और महाराज से लाला किशनसहाय व अन्य पुरुषों के पत्रों के उत्तर न भेजने का कारण पूछा तो महाराज ने कहा कि मैंने पहले ही कह दिया था कि जब तक मेरे पास प्रशंसित लाला साहब के हस्ताक्षरों से पत्र न आएगा तब तक मैं उत्तर नहीं दूँगा। उसपर आगन्तुकों में से एक ने कहा कि हमें स्वयं लाला किशनसहाय ने ही भेजा है तो महाराज ने उत्तर दिया कि आप सब भद्र पुरुष हैं और मैं आपको अविश्वसनीय नहीं समझता हूँ तो भी जब एक बार उक्त लाला साहब के लेखपर ही यह विषय अवलम्बित रक्खा गया है तब आप उनके हस्ताक्षरों से पत्र भिजवा दीजिए। इसपर वे वचन देकर कि हम कल उनके हस्ताक्षरों से पत्र भिजवा देंगे, चले गये, परन्तु अगले दिन भी ऐसा कोई पत्र न आया।

इसके दूसरे दिन १६ सितम्बर को रजिस्ट्री डाक द्वारा लाला किशनसहाय आदि का एक पत्र महाराज के पास आया,परन्तु उसपर भी हस्ताक्षर न थे।

तदनन्तर महाराज ने एक पत्र लाला किशनसहाय के पत्रों के उत्तर में लाला शिब्बनलाल के घर पर, जहाँ सनातनधर्मियों की सभा हो रही थी, भेजा, परन्तु पत्र के पहुँचने से और नियत समय से पहले ही सभा विसर्जित हो गई थी।

१७ सितम्बर को सनातनधर्मियों की फिर एक सभा मण्डी में हुई और उसमें भी वह पत्र भेजा गया। सभा समाप्त होने को थी कि पत्र-वाहकों ने लाला किशनसहाय से कहा कि आपके पत्रों के उत्तर में हम स्वामीजी का पत्र लाये हैं, इसे सभामें सुनवा दीजिए। उस पत्र पर महाराज के हस्ताक्षर न थे, अतः उन्होंने पत्र सुनवाने से निषेध कर दिया कि कल लाला बख्तावरसिंह के गृह पर आकर सब बातों का निर्णय कर लिया जाए, अतः १८ सितम्बर को महाराज की ओर से पाँच सज्जन उनके प्रस्तावित नियम तथा उनका हस्ताक्षरित पत्र लेकर लाला बख्तावरसिंह के गृह पर पहुँचे तो वे उन सज्जनों को साथ लेकर लाला किशनसहाय के गृह पर गये। उक्त लाला साहब ने नियमों की प्रतिलिपि कराकर पत्र-वाहकों से कह दिया कि उनका उत्तर परामर्श के पश्चात् कल प्रातःकाल तक दे दिया जाएगा।

महाराज के प्रस्तावित नियम ये थे—

१—उभय पक्ष से निम्नलिखत १२ सज्जन सभा के प्रबन्धक नियत किये जाएँ, यदि वे स्वीकार करें। यहाँ १२ सज्जनों के नाम थे।

२—इनमें से एक सज्जन और यदि सम्भव हो तो मातहत जज साहब प्रबन्धक सभा के सभापति नियत किये जाएँ।

३—प्रबन्धकों के अतिरिक्त उपस्थित जनों की संख्या हर एक ओर से पचास-पचास से अधिक न हो तो अच्छा है।

४—उपस्थित होनेवालों की जो संख्या नियत की जाए उतने ही टिकट छपवाकर आधे-आधे हरेक पक्ष

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को दिये जाएँ।

५—प्रत्येक पक्ष अपनी ओर के उपस्थित मनुष्यों को नियम में रक्खे और सब प्रकार से उनका उत्तरदाता रहे।

६—प्रत्येक पक्ष की ओर के योग्य पण्डितों की संख्या दस-दस से अधिक न हो, कम का अधिकार है।

७—उभय-पक्ष में से केवल एक ही पण्डित सभा में भाषण करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और दूसरी ओर से पण्डित श्रीगोपाल।

८—इस सभा में हर विषय का खण्डन-मण्डन वेदों के प्रमाण से ही किया जाए।

९—वेदमन्त्रों के अर्थों के निश्चय के लिए ब्रह्माजी से जैमिनिजी तक के ग्रन्थों की, जिन्हें दोनों पक्ष मानते हैं, साक्षी देनी होगी जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु, छन्द, ज्योतिष, पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, आयुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थवेद आदि।

१०—विदित रहे कि ऐतरेय से लेकर अर्थवेदादि उपर्युक्त ग्रन्थ ही साक्षी और प्रमाण होंगे, परन्तु यदि इनमें भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध होगा तो दोनों पक्ष उसे न मानेंगे।

११—उभय पक्ष को वेदों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों, सृष्टि-क्रम और सत्य धर्म से युक्त भाषण करना तथा मानना होगा।

१२—इस सभा में जो व्यक्ति किसी पक्ष का पक्षपात और राग प्रदर्शन करे, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा।

१३—यतः बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाणादि मूर्त्तिपूजन ही है, इसलिए इस सभा में मूर्त्तिपूजन का खण्डन और मण्डन होगा और यदि वेदों की रीति से पण्डितजी पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का मण्डन कर देवें तो पण्डितजी की सब बातें भी सच्ची समझी जाएँगी और स्वामीजी मूर्त्तिपूजन स्वीकार कर लेंगे और जो स्वामीजी वेदों के प्रमाण से पाषाणादि मूर्त्तिपूजन खण्डन कर देवें तो स्वामीजी की और बातें भी सच्ची समझी जाएँगी और पण्डितजी उसी समय से मूर्त्तिपूजन छोड़कर मूर्त्तिपूजन का खण्डन स्वीकार कर लेवें। ऐसा ही उभय पक्ष को स्वीकार करना होगा।

१४—उभयपक्ष के प्रश्नोत्तर लिखित होने चाहिएँ, अर्थात् हरएक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्क्षण लिखा दिया जाए, प्रत्युत जहाँ तक सम्भव हो वक्ता का एक-एक शब्द लिखा जावे।

हरएक प्रश्न के लिये पाँच मिनट और हरएक उत्तर के लिए पन्द्रह मिनट नियत हों और नियत समय की कमी का अधिकार हैं, परन्तु अधिक समय का नहीं।

१५—सभा में स्वामीजी, पण्डितजी तथा अन्य पुरुषों की ओर से आपस में कोई कठोर भाषण न हो, प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और नम्रता से सत्यासत्य का निश्चय करें।

१६—सभा का समय ६ बजे सायंकाल से नौ बजे रात्रि तक रहे तो उत्तम है।

१७—प्रश्नोत्तर के लिखने के लिए तीन लेखक नियत होने चाहिएँ और प्रत्येक लेख मिलान करने के पश्चात् प्रतिदिन दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होकर एक-एक प्रति प्रत्येक को दी जाए और एक प्रति बक्स में बन्द करके उसपर उभयपक्ष और सभापति का ताला लगाकर सभापति के पास रहे ताकि लेखों में कुछ न्यूनाधिक न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८—सभास्थल सब प्रबन्धकों की सम्मति के अनुसार नियत होगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१६—जम्मू और काशी आदि स्थानों के पण्डितों की सम्मति के ऊपर इस सभा के निर्णय का निर्भर न होना चाहिए, क्योंकि ये स्थान मूर्त्तिपूजा के घर हैं और वहाँ इस विषय में पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हो चुका है। इसलिए उपर्युक्त वेदशास्त्रादि जिनमें प्रत्येक विषय की विशद व्याख्या की गई है मध्यस्थ और साक्षी के लिए पर्याप्त हैं। हाँ, यह अधिकार है कि यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह व संशय हो तो आज १७ तारीख सितम्बर सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों वा अन्य जगह से उस पण्डित से जो उसकी सम्मति में उत्तम और श्रेष्ठ हो आने-जाने के विषय में तार द्वारा बात-चीत करके स्थिर करले वा प्रबन्ध करले और आज से छह दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर रविवार के दिन तक उसे यहाँ बुला लेवे। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अन्तर में उचित प्रबन्ध न हो वा विरुद्ध कार्यवाही हो तो उस पक्ष की सब बातें कच्ची और आधार-शून्य समझी जाएँगी और यदि स्वामीजी इस अन्तर में कहीं चले जावें वा इस लेख से बद्ध न रहें तो उनकी बात भी कच्ची और आधार-शून्य समझी जाएगी।

२०—दोनों पक्षों को सभा में वे सब पुस्तकें, जिनका वे प्रमाण दें, सभा के समय अपने साथ लानी चाहिएँ। उभयपक्ष की बिना असली पुस्तकों के मौखिक साक्षी स्वीकार न होगी।

अन्तिम नियम लाला किशनसहाय को नहीं लिखाया गया था, परन्तु आगे को कोई कठिनता न हो, इस बात को दृष्टि में रखकर यह नियम भी सम्मिलित किया गया।

—लिखा हुआ १७ सितम्बर सन् १८७८ का।

१८ सितम्बर को भी लाला किशनसहाय ने कोई उत्तर न भेजा, परन्तु पण्डित श्रीगोपाल की ओर से कुछ नियम इन नियमों के परिवर्तन में महाराज के पास आये।

पं० श्रीगोपाल ने स्वामीजी के प्रस्तावित नियमों में निम्नलिखित परिवर्तन करके भेजे थे—

(१) प्रबन्धकों में ८ नाम और बढ़ाए जावें और उन्हें प्रबन्धक सभा और निश्चयकर्त्ता सनातनधर्म लिखना चाहिए।

(२) मध्यस्थ अवश्य होना चाहिए और साहब कलक्टर ज़िला बुलन्दशहर जो, संस्कृतज्ञ हैं, मध्यस्थ हों।

(३) उपस्थित होनेवाले मनुष्यों की संख्या सीमित करने और टिकट देने की कोई आवश्यकता नहीं।

(४) झूठ-सच को बिना पक्षपात प्रकट करने के लिए मध्यस्थ होना आवश्यक है जबकि आप कहते हैं कि यदि ग्रन्थों में वेदविरुद्ध वाक्य होगा तो उसका प्रमाण न माना जाएगा।

(५) समय चार बजे से सात बजे तक रहेगा। ५ मिनट प्रश्न और १५ मिनट उत्तर लिखने के लिए अपर्याप्त हैं, समय की कोई सीमा न होनी चाहिए।

(६) दो दिन में बाहर के पण्डितों का आना असम्भव है, अतः उन्हें लाने के लिए मनुष्य भेजना पड़ेगा और जब तक वे न आवें आपको यहाँ ही ठहरना होगा। यदि इसे स्वीकार न करें तो किसी वेद और उभयपक्ष स्वीकृत ग्रन्थों के जाननेवाले विद्वान् को मध्यस्थ बनावें। बिना मध्यस्थ के सभा का पूरा-पूरा प्रबन्ध नहीं हो सकता।

१८ सितम्बर को महाराज ने अपने हस्ताक्षरों से एक पत्र लाला किशनसहाय के पास भेजा कि यदि आप हृदय से कुछ निर्णय कराना चाहते हैं तो आप नियमों के अनुसार कार्य कीजिए, हम उनसे बद्ध हैं। इसके उत्तर में एक पत्र विना हस्ताक्षरों के लाला किशनसहाय के नाम से आया जिसमें लिखा था कि पण्डितों की बातों से ज्ञात हुआ कि आप वेदविरुद्ध उपदेश करते हैं और कुछ अनुचित शब्द महाराज के विषय में लिखे थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके उत्तर में महाराज ने लिखा कि आपको वेदों से अनभिज्ञ पण्डितों के कहने से ऐसा लिखना उचित न था। उत्तम हो यदि आप उचित समझें तो मैं अपने दो विद्यार्थियों को आपके यहाँ सभा में भेज दूँ और वे यदि आप अनुमति दें तो आपके पण्डितों से वेद-विषय में कुछ प्रश्न करें, तब आपको पण्डितों की व्यवस्था ज्ञात हो जाएगी। यदि आपको यह स्वीकार न हो तो आप कृपापूर्वक मेरे निवास-स्थान पर अर्थात् बाबू छेदीलाल के गृह पर पधारें और सब शङ्काओं को निवृत्त कर लेवें। इसका उत्तर तो आया, परन्तु उसपर प्रेषकों के हस्ताक्षर न थे। उसका सार यह था कि आप वेद बिल्कुल नहीं जानते और आप मार्ग भूले हुए हैं और हमारे पण्डित विद्वान् हैं। हमें हमारे पण्डित यथा—पण्डित श्रीधर यह कहते और लिखते हैं कि जब तक आप अपना वर्ण और आश्रम सिद्ध न कर देंगे तब तक हमें आपके पास नहीं आना चाहिए और न पण्डितों को आपसे सम्भाषण करना चाहिए।

अब तो शास्त्रार्थ का स्पष्ट रूप से नकार हो गया और सारा भाँडा फूट गया। सनातनधर्म-रक्षिणी सभा ने जो शास्त्रार्थ के लिए इतना आडम्बर रचा वह दिखानेमात्र को था। भला इसके भी कोई अर्थ थे कि महाराज तो बार-बार कहें कि लाला किशनसहाय के हस्ताक्षरों का पत्र लाओ, परन्तु लाला साहब हैं कि अपने नाम से पत्र तो भिजवाते हैं, परन्तु उनपर हस्ताक्षर नहीं करते और अन्त तक किसी पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर किये ही नहीं।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—महाराज के उपदेशों का यह फल हुआ कि २६ सितम्बर सन् १८७८ को मेरठ में आर्यसमाज स्थापित हो गया, जिसके ८१ सभासद् हुए। सभासदों में नगर के लाला रामशरनदास जैसे प्रतिष्ठित रईस, उच्च शिक्षा प्राप्त सज्जन, सेठ-साहूकार, व्यापारी, राजकर्मचारी थे। सबसे हर्ष और आश्चर्य इस बात का है कि स्वयं लाला किशनसहाय के, जो पौराणिक धर्म के स्तम्भ और पण्डितों के पृष्ठ-पोषक थे और जो नगर के प्रसिद्ध प्रतिष्ठत पत्थरवालों के रईस घराने के प्रधान पुरुष थे, पुत्र श्री लाला मुन्नालाल साहू आर्यसमाज के सभासद् बने और पीछे आकर उसके कोषाध्यक्ष हुए और फिर आजन्म उस पद पर सुशोभित रहे।

दयानन्द-प्रकाश से संगृहीत—

शारीरिक बल की परीक्षा—एक दिन रात्रि के नौ बजे बेनीप्रसाद और उनके कुछ मित्रों ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि हम आपके पैर दबाना चाहते हैं। महाराज जान गये कि इस मिष से वे लोग उनके बल की परीक्षा करना चाहते हैं, अतः उन्होंने कहा कि पैर तो पीछे दबाना, पहले हमारे पैर को उठाओ। यह कहकर उन्होंने अपने पैर फैला दिये। युवकों ने बहुतेरा बल लगाया, परन्तु पैर को उठा न सके।

आक्रमण का आयोजन—मेरठ छावनी का एक सेठ महाराज का इतना विरोधी हो गया था कि उसने उन्हें पीटने के लिए कुछ गूजरों को तैयार कर लिया था। महाराज के भक्तों को भी इसका पता चल गया। उन्होंने महाराज से निवेदन किया कि आपको सावधान रहना चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि आप मेरी चिन्ता न करें, हमारा रक्षक परमेश्वर है।

गुण्डे कुछ न कर सके—महाराज के श्राद्धखण्डन के व्याख्यान से ब्राह्मण और महाब्राह्मण बहुत चिढ़ गये थे। उन दिनों महाराज के व्याख्यान शहर में लाला रामशरनदास के मकान पर हुआ करते थे। उक्त मकान से आने-जाने में एक गली पड़ती थी। व्याख्यान समाप्त होते-होते रात्रि हो जाती थी। एक दिन कुछ गुण्डे उस गली में लट्ठ लेकर बैठ गये कि जब महाराज व्याख्यान देकर डेरे पर जाएँ तो उनपर आक्रमण करें। आर्यजनों को यह बात ज्ञात हो गई। उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि महाराज को बन्द गाड़ी में बिठाकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डेरे में पहुँचाया जाए। महाराज के सामने जब यह प्रस्ताव रक्खा गया तो उन्होंने उसे तत्काल तिरस्कार पूर्वक अस्वीकार कर दिया और कहा कि आप लोग क्यों डरते हैं, मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता और अकुतोभयता के साथ उसी गली में होकर चले गये। दुष्ट लोग लाठियाँ लिये हुए बैठे-के-बैठे रह गये और किसी का भी उनपर आक्रमण करने का साहस न हुआ।§

आपने अच्छा न किया—मेरठ में उन दिनों जो सब-जज थे उनका नाम बख्तावरसिंह था। एक दिन वे अपने एक षोडशवर्षीय बन्धु को साथ लेकर महाराज के दर्शनार्थ गये। महाराज ने उनसे कहा कि आपने अच्छा नहीं किया जो ऐसी छोटी अवस्था में इसका विवाह कर दिया। अब जो हुआ सो हुआ, परन्तु पच्चीस वर्ष की आयु से पहले द्विरागमन न करना।

परोक्ष का ज्ञान—मुंशी सेवाराम उन दिनों मेरठ में नहर के ज़िलेदार थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि यदि मैं नगर का डिप्टी मजिस्ट्रेट हो गया तो पहले मास का वेतन वेदभाष्य की सहायता में दूँगा। इसके कुछ काल पश्चात् उन्हें वह पद प्राप्त हो गया। अभी उन्होंने यह शुभ समाचार किसी से न कहा था कि महाराज का एक पत्र उनके पास आया जिसमें उहें बधाई दी गई थी और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई गई थी।

ज्योतिषीजी को कुछ न मिला—पण्डित गौरीशंकर ज्योतिषी एक दिन स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए और कुछ वार्त्तालाप करना चाहा। उन्होंने कहा कि अभी तो मैं २५ मिनट के लिए निद्रा लूँगा तत्पश्चात् आपसे बातें करूँगा। यह कहकर स्वामीजी तुरन्त सो गये। थोड़ी देर पीछे एक तहसीलदार मिलने आये। उनसे पण्डित गौरीशंकर ने कहा कि स्वामीजी सो रहे हैं, दस मिनट पश्चात् जगेंगे। इतनी देर आप प्रतीक्षा करें। ठीक दस मिनट में उनकी निद्रा भंग हुई।

पण्डित गौरीशंकर से महाराज ने आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं ज्योतिषी हूँ, कुछ प्राप्ति की लालसा से आया हूँ। महाराज ने उनसे कहा कि यदि आपके ज्योतिष ने आपको यह बतलाया है कि आपको प्राप्ति होगी तो वह मिथ्या है, क्योंकि मैं आपको कुछ न दूँगा और यदि यह बतलाया है कि प्राप्ति न होगी तो आपने यहाँ आने का व्यर्थ परिश्रम किया।‡

मानस खेद—एक दिन कुछ तिलकधारी ब्राह्मण महाराज के पास बैठे थे। तभी एक सज्जन आये और नमस्ते कहकर कुशल पूछा। महाराज ने कहा कि हमें कुशल कहाँ ? उक्त सज्जन ने पूछा कि क्या कोई मानस खेद है। महाराज ने उत्तर दिया कि इससे अधिक खेद क्या होगा कि ये ब्राह्मण अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते। आडम्बर से अधिक प्यार करते हैं, धर्म के प्रचार का इन्हें ध्यान तक नहीं।

(३ अक्तूबर—६ नव०) दिल्ली (आश्वि० शु० ८—का० शु० १२)

मेरठ में वैदिक धर्म की विजय-दुन्दुभि बजाकर और गर्वीले, हठीले पौराणिक पण्डितम्मन्यों का मान भंग करके महाराज ३ अक्तूबर को दिल्ली चले गये।

महाराज दिल्ली आकर सब्ज़ीमण्डी में लाला बालमुकन्द व केसरीचन्द के बाग़ में विराजमान हुए।

---

§ दयानन्द-प्रकाश में इस घटना का जो उल्लेख है उसमें यह नहीं लिखा है कि उस दिन व्याख्यान लाला रामशरनदास के गृह पर हुआ था। न यह लिखा है कि महाराज को बन्द गाड़ी में ले-जाने का प्रस्ताव किया गया था।

‡ पण्डित गौरीशंकर फलित ज्योतिष का व्यवसाय करते थे, परन्तु अपने मित्रों से स्पष्ट कह दिया करते थे कि वह मिथ्या है। संग्रहकर्त्ता से भी उन्होंने कई बार ऐसा कहा था। वे आर्यसमाजी थे, परन्तु उनका यह कार्य आर्योचित न था। उन्होंने इस व्यवसाय से पुष्कल धन इकट्ठा कर लिया था। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाँच दिन तो वहाँ ही आगन्तुकों को उपदेशामृत पान कराते रहे। तदनन्तर विज्ञापन देकर १३ अक्टूबर सन् १८७८ से मोहल्ला शाहजी के छत्ते में व्याख्यान देने आरम्भ किये।

जयपुर से निमन्त्रण—ठाकुर रणजीतसिंह जागीदार अचरौल राज्य जयपुर की महाराज के चरणों में अटल श्रद्धा थी, जिसका वर्णन पहले आ चुका है। पूर्वावसर पर जब महाराज जयपुर पधारे थे तो ठाकुर साहब ने महाराज की अध्यक्षता में एक बृहद् यज्ञ करने का संकल्प किया था तो महाराज ने कहा था कि आप गयत्री का पुरश्चरण हमारे सामने करावें, हम ब्राह्मणों की परीक्षा करके यज्ञ में बिठाएँगे। उस समय वह यज्ञ किसी कारणवश न हो सका था, परन्तु जब श्रावण सं० १९३५ में मेरठ से महाराज का पत्र उन्हें प्राप्त हुआ तो उस यज्ञ का उन्हें स्मरण हुआ और उन्होंने अपने कर्मचारी जोषी रूपराम को महाराज को जयपुर लिवा लाने के लिए भेजा। वह घटनावश दिल्ली उतरा तो उसे ज्ञात हुआ कि महाराज वहाँ ही विराजमान हैं, तब वह दिल्ली दो दिन ठहरा और महाराज के दो व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त करके उनसे ठाकुर साहब के पत्र का उत्तर लेकर जयपुर लौट गया। स्वामीजी ने पुरश्चरण की सब विधि जोषीजी को लिखा दी और पत्र में लिख दिया कि हम कार्तिक में जयपुर आएँगे।

दानापुर से निमन्त्रण—दानापुर बिहार प्रान्त के धर्मप्रेमी सज्जन महाराज के दर्शन और उपदेश के लिए अत्यन्त लालायित हो रहे थे। जब उन्होंने सुना कि महाराज दिल्ली हैं, तो उन्होंने दो व्यक्तियों को वहाँ भेजा कि महराज से दानापुर पधारने का अनुरोध करें। उन्होंने महाराज को दानापुर आर्यसमाज की स्थिति से अभिज्ञ किया, जिससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और धर्म-सभा का भी वर्णन किया तो महाराज ने कहा कि वह बहुत दिन तक नहीं रहेगी। इन लोगों ने जब दानापुर पधारने की प्रार्थना की और कहा कि कार्त्तिक में हरिहर क्षेत्र का बहुत बड़ा मेला होता है, तो महाराज ने कहा कि हम जयपुर तथा अजमेर जाने का वचन दे चुके हैं, फिर हम कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार जाएँगे और पुष्कर के मेले पर भी, जहाँ प्रति वर्ष लाखों मनुष्य एकत्र होते हैं, अतः इस समय हमारा दानापुर जाना सम्भव नहीं है। महाराज ने उन्हें विदा करते समय कुछ प्रतियाँ पञ्चमहायज्ञविधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला की दीं कि इन्हें आर्यसमाज द्वारा बेच देना और एक प्रति सत्यार्थप्रकाश की भी दी।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—महाराज के निरन्तर उपदेशों से कितने ही लोगों के हृदय में वैदिक धर्म का बीज अंकुरित हुआ और ३ नवम्बर सन् १८७८ के प्रथम सप्ताह में दिल्ली में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

जयपुर—जोषी रूपराम के लौटने से पहले ही ठाकुर साहब रुग्ण हो गये थे। जब जोषीजी वापस आये तो ठाकुर साहब ने रुग्ण होते हुए भी यज्ञ की सामग्री एकत्रित करने की आज्ञा दी। जोषीजी ने कहा कि कार्त्तिक शुक्ला ८ का मुहूर्त्त ठीक नहीं है। वह अन्य शुभ मुहूर्त्त की टटोल में रहे, इतने में ही ठाकुर साहब का रोग बढ़ने लगा और कार्त्तिक शुक्ला दशमी संवत् १९३५ अर्थात् ३ नवम्बर को ठाकुर साहब का देहपात हो गया।

जब ६ नवम्बर १८७८ को महाराज जयपुर रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि जोषी रूपराम तथा अन्य सेवकों के शिर मुण्डित हैं। कारण पूछने पर उन लोगों ने ठाकुर साहब के देहपात का वृत्त सुनाया जिसे सुनकर उन्होंने शोक प्रकट किया और उनसे कह दिया कि इस समय तो हम नहीं ठहरेंगे, हाँ अजमेर से लौटती वार आएँगे और उसी समय टिकट मँगाकर अजमेर चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वाविंशति अध्याय

कार्त्तिक सं० १९३५—माघ सं० १९३५=नवम्बर १८७८—जनवरी १८७९

(७ नवम्बर) अजमेर (कार्तिक शु० १३)

अजमेर में महाराज के स्वागत के लिए स्टेशन पर कई भद्र-पुरुष उपस्थित थे। मुंशी समर्थदान चारण और एक अन्य सज्जन तो एक स्टेशन आगे उनके स्वागत के लिए पहुँच गये थे।

महाराज के अजमेर पधारने के सम्बन्ध में एक विचित्र लीला हुई थी।

एक विद्वेषी की लीला—कुछ धर्म-जिज्ञासुओं की यह उत्कट अभिलाषा थी कि महाराज अजमेर पधारें। इसलिए मुंशी समर्थदान ने उन्हें अजमेर पधारने के लिए दिल्ली पत्र लिखा था। उसके उत्तर में महाराज ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उन्हें लिख दिया था कि आप निवास-स्थान आदि का प्रबन्ध कर लें हम दिल्ली के कार्य से निवृत्त होकर अजमेर आएँगे और आने से पूर्व पत्र द्वारा सूचना देंगे और रेल पर सवार होते समय तार देंगे। महाराज का पत्र आते ही भक्तजन के मुख-कमल हर्ष से विकसित हो गये और उन्होंने सोत्साह चन्दा एकत्र किया और निवास-स्थानादि का प्रबन्ध करके महाराज की सेवा में पत्र द्वारा निवेदन किया कि यहाँ सब तैयारी हो गई है, आप पधारें। महाराज के आगमन का समाचार विदित होते ही पौराणिक वृन्द में ऐसी खलबली मची जैसे सिंह के आगमन से मृगों के झुण्ड में, अतः उनमें से एक ने महाराज को अजमेर आने से रोकने और इस आनेवाली आपत्ति को टालने के लिए एक लीला रची। उसने जुगलबिहारी शर्मा के कल्पित नाम से महाराज को एक पत्र भेजा जो १७-१०-१८७८ का लिखा हुआ था। उसमें लिखा था कि समर्थदानजी ने प्रयत्न किया और चन्दा लिखा भी गया, परन्तु उसके प्राप्त होने की आशा नहीं है। हाँ, फाल्गुन तक आवश्यक प्रबन्ध हो जाएगा। समर्थदान आपको यह सूचना देना नहीं चाहते, परन्तु वे यत्न कर रहे हैं। सब लोग समर्थदान से अप्रसन्न हो गये हैं और बुरा-भला कहते हैं। अब समर्थदान पछताते हैं कि आपको पहले लिख दिया, अतः अब आप प्रतीक्षा न करें, फाल्गुन में सब काम पक्का रक्खेंगे तब आप अनुग्रह करके हमारी अभिलाषा को तृप्त करना। यहाँ आर्यसमाज जारी करने का विचार है।

पत्र बड़ी चालाकी से लिखा गया था जिससे महाराज को विश्वास हो जाए कि वह वास्तव में किसी वैदिक धर्म के प्रेमी ने लिखा है और वास्तविक स्थिति को प्रकट करता है। हुआ भी ऐसा ही। महाराज ने सरलचित्तता से उसका विश्वास कर लिया, अजमेर जाने का संकल्प स्थगित कर दिया और २१ अक्टूबर को मुंशी समर्थदान को पत्र लिख दिया कि आज जुगलबिहारी शर्मा की चिट्ठी आई है, जिससे जाना गया कि वहाँ चन्दे का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ है सो तुम कुछ चिन्ता मत करो अब मिलना न हो तो फिर कभी मिलेंगे।

स्वामीजी का पत्र पाते ही लोगों ने जान लिया कि यह सब किसी द्वेषाग्नि से दग्ध-हृदय की लीला है और तुरन्त ही उन्होंने महाराज को लिख दिया कि यहाँ सब तैयारी हो गई है, यह पत्र किसी ने जुगलबिहारी के नाम से झूठा भेज दिया है, आप अवश्य पधारें। इसके उत्तर में २८ अक्टूबर को महाराज ने लिख दिया कि हम अवश्य आवेंगे और हमने समझ लिया कि जुगलबिहारी शर्मा के नाम से किसी ब्राह्मण ने लीला की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, परन्तु क्या होता है, ऐसे धूर्त बहुत होते हैं। दिल्ली से रेल में सवार होते समय तार दिया कि हम आते हैं।

जब महाराज अजमेर पहुँचे तो मुंशी समर्थदान ने वह पत्र देखा और उसके अक्षरों और लेखन-शैली को देखकर पहचान लिया कि वह नगर के एक प्रतिष्ठित पुरुष का लिखा हुआ है, परन्तु उन्हें अपकीर्त्ति से बचाने के लिए उनका नाम प्रकट नहीं किया।

महाराज को अजमेर बुलाने में पण्डित शालिग्राम शास्त्री हैडपण्डित गवर्नमेण्ट कॉलेज ने भी विशेष उद्योग किया था। पण्डित शालिग्राम काशी के प्रधान विद्वान् पण्डित राजाराम शास्त्री के शिष्य और पण्डित बालशास्त्री के सहाध्यायी थे।

अजमेर में थोड़ा-सा विश्राम करके स्वामीजी पुष्कर के कार्त्तिकी के मेले में धर्म-प्रचारार्थ चले गये।

(७ नव०—१४ नव०) पुष्कर (का० शु० १३—मार्ग० कृ० ४)

विज्ञापन—पुष्कर में महाराज ने महाराजा जोधपुर के घाट पर नवनाथजी के दलीचे में निवास किया और दूसरे दिन मेले में एक विज्ञापन वितरण कराया कि जिस किसी को सनातन वेदोक्त धर्म के विषय में कुछ कहना-सुनना हो वह आकर सभ्यता और प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप करे।

दर्शकों की भीड़—इस शुभ-समाचार के प्रचरित होते ही महाराज के स्थान पर दर्शकों और जिज्ञासुओं का ताँता लग गया और लोग अपने प्रश्नों के पूर्ण उत्तर पाकर और श्रीमहाराज के मुखारविन्द से वैदिक धर्म के अश्रुतपूर्व रहस्य जानकर शान्ति लाभ करने लगे। श्री राव बहादुरसिंहजी मसूदाधिपति को, जो पीछे आकर महाराज के अनन्य भक्त बने, महाराज के प्रथम बार यहाँ ही दर्शन हुए थे।

वाममार्गी साधु, तुम्हारे गुरु को ही मन्त्रसिद्धि दिखाएँगे—पुष्कर में कुछ वाममार्गी साधु रहते थे जिनके विषय में प्रसिद्ध था कि उन्हें मन्त्र सिद्ध हैं और मन्त्र-शक्ति द्वारा वे अलौकिक कार्य कर सकते हैं, यहाँ तक कि मनुष्य का प्राण-हरण भी कर सकते हैं। अजमेर के पास के एक ग्राम के कुछ नवयुवक अजमेर के गवर्नमेंट कालेज में पढ़ते थे। एक बार उन्होंने इन साधुओं के पास जाकर कहा कि तुम्हारी मन्त्रसिद्धि सब मिथ्या है। साधुओं ने कहा कि हम मन्त्रशक्ति दिखा सकते हैं। छात्रगण ने कहा कि दिखाओ। साधुओं ने पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है ? उन्होंने कहा स्वामी दयानन्द सरस्वती। इसपर साधु बोले कि हम उसी को दिखाएँगे। जब वह आवे उसे हमसे मिलाना।

साधुओं को हमारे पास ले-आओ; जाओ, जाओ, यहाँ मन्त्र कहाँ रक्खे हैं—उनमें से कुछ छात्र, एक ठाकुर, एक साधु और मुंशी समर्थदान ने एक दिन महाराज से निवेदन किया कि यहाँ कुछ साधु रहते हैं, जो कहते हैं कि हम मन्त्र-शक्ति से मनुष्य को मार सकते हैं, यदि आज्ञा हो तो उन्हें परीक्षार्थ आपके पास लावें। महाराज ने कहा कि ले-आओ, हम तो आप लोगों को निश्चय कराने के लिए ऐसी बातों में उत्साहपूर्वक तत्पर रहा करते हैं। फिर लोगों ने पूछा कि आप उन साधुओं की किस प्रकार परीक्षा लेंगे तो महाराज ने कहा कि हम एक मक्खी को एक शीशे में, जिसमें वायु के आने-जाने का मार्ग हो, बन्द करके उनसे कहेंगे कि मक्खी को मारो और जो वह मन्त्र को मनुष्य पर ही चलाना चाहेंगे तो हम कहेंगे कि मुझपर मन्त्र चलाओ। इसके पश्चात् वे लोग साधुओं के पास गये और कहा कि तुम कहा करते थे कि हम अपनी मन्त्र-शक्ति स्वामी दयानन्द सरस्वती को दिखाएँगे, अतः अब स्वामीजी यहाँ आये हुए हैं, उन्हें अपनी मन्त्र-शक्ति दिखलाओ। साधु लोग यह सुनकर आगबगूला हो गये और कहा कि जाओ, जाओ यहाँ मन्त्र कहाँ रक्खे हैं, मन्त्र क्या ऐसे दिखाये जाते हैं ? उन लोगों ने महाराज से सब वृत्तान्त कहा तो उन्होंने कहा कि साधुओं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने आप लोगों को बहकाने के लिए यह प्रपञ्च रच रक्खा है, परन्तु हमारा आना हो गया और उनकी क़लई खुल गई अन्यथा आप लोग धोखा खा जाते। हम तो ऐसे बहुत लोगों से मिल चुके हैं, जहाँ जाते हैं ऐसे ही जाल बिछे हुए देखते हैं।

दिनचर्या—पुष्कर में महाराज सवेरे भ्रमण करने चले जाते थे। वापस आकर दुग्ध और ब्राह्मी का स्वरस पान करते थे और वेदभाष्य लिखाने बैठ जाते थे। ग्यारह बजे तक वेदभाष्य लिखाते थे और फिर स्नान और दण्ड-मुगदर का व्यायाम करके भोजन पाते थे। रात्रि में चित्रक की छाल के साथ दुग्ध-पान करते थे।

बूँदी का राज-पण्डित—एक दिन बूँदी के राज-पण्डित शास्त्र-चर्चा के लिए महाराज के पास आये और पद्मपुराण का एक श्लोक पढ़कर मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने का यत्न किया। महाराज ने तत्क्षण एक श्लोक रचकर मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया। बूँदी के पण्डित ने पूछा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है तो कहा कि पहले आप बताइए कि तुम्हारा श्लोक किस ग्रन्थ का है। पण्डित ने कहा कि पद्मपुराण का। महाराज ने कहा कि हमारा श्लोक दयानन्द-पुराण का है। पण्डित ने पूछा वह पुराण कैसा है। महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पुराण का कर्त्ता तो अब जीवित नहीं है और दयानन्द-पुराण का कर्त्ता तुम्हारे सम्मुख ही विद्यमान है और हमारे श्लोक के अनुकूल वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण हैं, तुम्हारे श्लोक के अनुकूल वेदादि का कोई प्रमाण नहीं है, अतः पद्मपुराण की अपेक्षा दयानन्द-पुराण ही अधिक प्रामाणिक है। यह सुनकर पण्डितजी अप्रतिभ होकर चुप हो गये।

एक और पण्डित—एक दिन एक और पण्डित ने पूछा कि गायत्री किसे कहते हैं ?

महाराज ने उत्तर दिया कि गायत्री वेद के एक छन्द का नाम है, जैसे अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् आदि छन्द हैं, वैसे ही गायत्री भी एक छन्द है और उसमें वेद के अनेक मन्त्र हैं, परन्तु जिस गायत्री का ब्राह्मण जप करते हैं, वह एक ही है। पण्डित ने कहा कि गायत्री २४ प्रकार की है। जैसे राम-गायत्री, कृष्ण-गायत्री इत्यादि। राम-गायत्री इस प्रकार है—**दशरथाय विद्महि सीतापतये धीमहि, तन्नो रामः प्रचोदयात्।** महाराज ने हास्य भाव धारण करके कहा कि गायत्री २४००० प्रकार की है, जैसे—

शीतलावाहनाय विद्महि लम्बकर्णाय धीमहि, तन्नो गर्दभः प्रचोदयात्।

इसी प्रकार जूता, छत्री आदि की गायत्री पढ़कर सुनाई। पण्डित ने पूछा आपकी गायत्रियाँ कहाँ हैं। महाराज ने पण्डित से कहा तुम्हारी गायत्रियाँ कहाँ हैं। पण्डित ने कहा शास्त्रों में। महाराज ने कहा कि हमारी गायत्रियाँ भी शास्त्रों में हैं। पण्डितजी फिर कुछ न बोले।

ज्ञात होता है कि महाराज ने पण्डितजी को अल्पविद्य देखकर ही इस प्रकार की रंगभंगी की अवतारणा करके उन्हें परास्त करने की चेष्टा की थी।

फिर एक और पण्डित—एक और पण्डित एक दिन महाराज के पास आये। महाराज ने उनसे पूछा कि आपने क्या-क्या ग्रन्थ पढ़े हैं ? पण्डित ने कहा कि भागवत। फिर निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए—

स्वामीजी—पृथिवी का आधार क्या है ?

पण्डित—वासुकि।

स्वामीजी—वासुकि के पिता कौन थे ?

पण्डित—कश्यप।

स्वामीजी—कश्यप के पिता कौन थे ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित—मरीचि ।

स्वामीजी—मरीचि के पिता कौन थे ?

पण्डित—ब्रह्मा ।

स्वामीजी—इन तीनों के समय में पृथिवी का आधार क्या था ?

पण्डितजी इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सके । तब महाराज ने कहा कि "शेषाधारा भूः" प्रलय के पश्चात् परमेश्वर ही शेष रहता है, अतः उसका नाम शेष है और परमेश्वर ही पृथिवी का आधार है ।

(१४ नव०—२ दिस०) अजमेर (मार्ग० कृ० ४—मार्ग० शु० ८)

पुष्कर से महाराज १४ नवम्बर सन् १८७८ को अजमेर लौट आये और रामप्रसाद के बाग़ में ठहरे। उसी दिन से उन्होंने व्याख्यान देने आरम्भ कर दिये । पहला व्याख्यान ईश्वर के एकत्व पर, दूसरा उसी विषय पर तथा वेदों के ईश्वरोक्त होने पर, तीसरा वेदों में भिन्न-भिन्न विद्याओं के होने पर, चौथा इञ्जील और कुरान की समालोचना पर हुआ । इञ्जील पर जो आक्षेप हुए उन्हें सुनकर पादरी ग्रे ने कहा कि यदि ये प्रश्न हमारे पास लिखकर भेज दिये जाएँ तो हम उनका उत्तर देवें । इसपर महाराज ने कहा कि मैं इञ्जील के वाक्य-वाक्य भेज दूँगा और उनपर आपसे प्रश्न करूँगा । पाँचवाँ व्याख्यान सती आदि की कुप्रथाओं और आर्यों के देशान्तर में जाने के विषय पर, छठा जन्म-मरण पर, सातवाँ आर्यों की उन्नति और अवनति पर हुआ । अवनति के कारण ये बतलाये कि आर्यों के पास असंख्य धन हो गया था जिससे वे भोग-विलास में पड़कर अन्याय करने लगे, अन्याय से ही राज्य में अवनति हुई और§ महाभारत का युद्ध हुआ जिससे सब-कुछ नष्ट हो गया ।

पादरी से शास्त्रार्थ—२८ नवम्बर को पादरी ग्रे से शास्त्रार्थ हुआ । उनके साथ पादरी डाक्टर हज़्बैण्ड भी थे । पादरी साहब के पास महाराज ने इञ्जील के ६४ वाक्य लिखकर भेजे थे, जिनपर महाराज को प्रश्न करने थे ।

शास्त्रार्थ की सूचना सर्वसाधारण को विज्ञापन द्वारा दी गई थी और नियत दिवस पर शास्त्रार्थ देखने के लिए लोग बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए थे । दर्शकों में हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, प्रतिष्ठित पुरुष, उच्च राजकर्मचारी सभी धर्मावलम्बी और सभी श्रेणियों के लोग थे ।

नियत समय पर महाराज, पादरी ग्रे और डाक्टर हज़्बैण्ड शास्त्रार्थ-स्थल पर पहुँच गये । शास्त्रार्थ को लिखने के लिए दो हिन्दू और एक मुसलमान नियत हुए । शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । महाराज ने प्रश्न किया कि इञ्जील उत्पत्ति की पुस्तक पर्व १ आयत २ में लिखा है कि पृथिवी बेडौल थी । परमेश्वर सर्वज्ञ और सब विद्याओं में पूर्ण है, उसके रचे पदार्थ में बेडौलपन नहीं हो सकता । पादरी साहब ने उत्तर दिया कि बेडौल का यहाँ आशय उजाड़ से है । महाराज ने फिर कहा कि यह अर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि बेडौल से अगला शब्द सूनी है जिसके अर्थ उजाड़ के हैं । दो समानार्थक शब्दों का एक साथ प्रयोग नहीं हो सकता । पादरी साहब ने कहा कि ऐसा होता है, इबरानी भाषा का एक उदाहरण दिया और एक फ़ारसी के बूदोबाश शब्द का । उक्त शब्दों के स्थान में वीरान और सुनसान शब्द रखकर पादरी साहब ने कहा कि देखिए उर्दू में अर्थ ठीक हो जाता है । महाराज ने फिर प्रश्न करना चाहा तो पादरी साहब ने रोक दिया कि वाक्य

§ महाभारत ग्रन्थ का नाम है । कौरव-पाण्डवों में जो युद्ध हुआ था उसका वास्तविक नाम "भारतयुद्ध" है । देखो अष्टाध्यायी ४ । २ । ५६ तथा इसपर काशिकावृत्ति । महाभारत ग्रन्थ में उसका वर्णन होने से जनसाधारण में वह युद्ध महाभात के नाम से व्यवहृत होता है ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत-से हैं एक वाक्य पर दो प्रश्न और दो ही उत्तर होने चाहिएँ। महाराज ने कहा कि कम-से-कम दस प्रश्न तो हों, परन्तु यह स्वीकार न हुआ। महाराज ने कहा कि अच्छा तीन प्रश्न तो कर लेने दीजिए, परन्तु पादरी साहब ने मना कर दिया तो महाराज को उनकी हठ माननी पड़ी। दूसरा प्रश्न उत्पत्ति कि पुस्तक पर्व १ आयत २ के ही ऊपर था कि पहली आयत में कहा गया है कि परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा और इस आयत में कहा है कि परमेश्वर का आत्मा जल पर डोलता था, जब जल उत्पन्न नहीं हुआ था तो उसपर परमेश्वर का आत्मा कैसे डोलने लगा और पूछा कि परमेश्वर आत्मरूप है वा शरीरधारी। यदि शरीरधारी है तो वह आकाश और पृथवी को बना नहीं सकता और न वह व्यापक रह सकता है और जब उसका आत्मा जल पर डोलता था तो उसका शरीर कहाँ था। पादरी साहब ने उत्तर दिया—पृथिवी की सृष्टि के अन्तर्गत जल की सृष्टि भी आ गई और परमेश्वर आत्मरूप है। महाराज ने कहा कि इञ्जील में लिखा है कि परमेश्वर ने अदन की बाड़ी को बनाया, वहाँ आया, फिर ऊपर चढ़ गया, वह सनाई पर्वत पर गया, उसने मूसा और इबराहीम की स्त्री सारह से बातें कीं, वह डेरे के भीतर गया, उसने याकूब से मल्लयुद्ध किया—इन सब बातों से तो परमेश्वर शरीरधारी प्रतीत होता है। पादरी साहब ने उत्तर दिया कि उपर्युक्त आयत से इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है और यहूदी, ईसाई, मुसलमान सब परमेश्वर को आत्मरूप ही मानते हैं। फिर महाराज ने प्रश्न किया कि उसी पर्व की २६ वीं आयत में परमेश्वर का आदम को अपने स्वरूप में, अपने समान बनाना लिखा है इससे स्पष्ट है कि परमेश्वर का स्वरूप भी आदम के स्वरूप-जैसा ही होगा। पादरी साहब ने कहा यहाँ शरीर का कुछ कथन नहीं है। परमेश्वर ने आदम को पवित्र, ज्ञानवान् और आनन्दित रचा, जब आदम ने पाप किया तब वह पतित हो गया और विश्वासी लोग बदलकर फिर ईश्वर के स्वरूप में अर्थात् पवित्र, ज्ञानी और आनन्दमय बन जाते हैं। महाराज ने फिर प्रश्न किया कि परमेश्वर के सदृश आदम के बनने से परमेश्वर का देहधारी होना सिद्ध होता हैं। यदि आदम पवित्र था तो उसने परमेश्वर की आज्ञा क्यों भंग की। वह ज्ञानवान् भी नहीं था, क्योंकि उसे ज्ञान तब हुआ जब उसने ज्ञान के पेड़ का फल खाया। यदि आदम आनन्दित होता तो उसे दुःख क्यों होता, विश्वासी भी वैसे ही पतित हो सकते हैं, जैसे आदम हुआ। पादरी साहब ने कहा कि आदम पहले पवित्र था, आज्ञा भंग करने से पापी हुआ। यह बात नहीं है कि उसे ज्ञान पीछे से हुआ अपितु यह है कि फल खाने के पश्चात् पाप करने के कारण उसे लज्जा आने लगी। आदम परमेश्वर के समान बनाया गया था न कि तुल्य, परमेश्वर का रूप शरीर-जैसा नहीं है। फिर महाराज ने उत्पत्ति पर्व २ आयत ३ को प्रस्तुत करके कहा कि इसमें लिखा है कि परमेश्वर ने ६ दिन में जगत् को रचकर सातवें दिन विश्राम किया। जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और सच्चिदानन्द स्वरूप है तो उसे जगत् के रचने में परिश्रम ही क्या हो सकता है और उसे विश्राम करने की क्या आवश्यकता है ?

पादरी साहब ने इसका कोई उत्तर न दिया और कहा कि समय हो गया है, हम अधिक नहीं ठहर सकते। बोलते समय लिखा जाता है इसमें बहुत देर लगती है, यदि ऐसा न किया जाए तो आगे हम शास्त्रार्थ कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। यदि स्वामीजी को प्रश्नोत्तर लिखित ही अभिलषित हैं तो वे हमारे पास प्रश्न लिखकर भेज दें हम उत्तर लिखकर भेज देंगे। यह बात महाराज के मनोनीत न हुई, क्योंकि उसमें समय बहुत लगता और बहुत-से लोग उन्हें सुन भी नहीं सकते, लिखे जाने में यह लाभ है कि कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने अमुक बात नहीं कही और न कोई यथार्थ बात छिपा सकता है।

पादरी साहब ने कहा कि प्रस्तुत रीति में लोगों के सुनने का लाभ दिखाया है सो उपस्थित मनुष्यों में से थोड़े ही हमारी बात समझे होंगे। इसपर मुसलमान लेखक तथा अन्य मुसलमान कह उठे कि हम कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं समझे। पादरी साहब झट बोल उठे कि जब लिखनेवाला ही नहीं समझा तो और कौन समझ सकता है ? इसपर महाराज ने दूसरे दोनों लेखकों से पूछा तो उन्होंने कहा कि हम सब-कुछ समझ गये। महाराज ने कहा कि दो तो समझ गये, एक ने नहीं समझा तो क्या !

फिर महाराज ने कहा कि शास्त्रार्थ के तीन परत लिखे गये हैं, आप इनपर हस्ताक्षर कर दीजिए, परन्तु उन्होंने न किये और एक परत अपने साथ लेकर चले गये, शेष दो परतों पर महाराज ने अपने और सरदारबहादुर अमीचन्द जज और पण्डित भागराम इञ्जीनियर के हस्ताक्षर कराकर उन्हें अपने पास रख लिया।

२६ नवम्बर को पादरी साहब ने महाराज को लिखा कि यदि प्रश्नोत्तर न लिखे जाएँ तो हम आज शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हैं, परन्तु महाराज ने इसे स्वीकार न किया और शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

यह शास्त्रार्थ 'थियासोफ़िस्ट' के जनवरी सन् १८८० के अङ्क (भाग १ अङ्क २) के पृष्ठ ६८—१०० पर छपा था।

इस शास्त्रार्थ के विषय में कर्नल आल्काट सम्पादक 'थियासोफ़िस्ट' ने अपनी सम्मति देते हुए जो कुछ लिखा था, उसका भाव यह था कि पादरी लोग भारतवर्ष में सर्वसाधारण की सभाओं में भारतीय विद्वानों से शास्त्रार्थ करने से बचा करते हैं और अपना प्रचार नीच और अशिक्षित लोगों में ही करते हैं। स्कूलों और कॉलेजों में यदि कोई बुद्धिमान् विद्यार्थी कोई प्रश्न करता है तो कह दिया करते हैं कि हमारे घर पर आना हम निज में समझा देंगे। यूरोप और अमेरिका के धनी लोग इन्हें धन देकर अपना धन वृथा नष्ट करते हैं।

पादरी ग्रे ने भी उक्त मासिक पत्र में लिखा था कि यदि स्वामीजी अपने आक्षेपों के उत्तर उक्त मासिक द्वारा सुनना चाहें तो मैं उत्तर देने को प्रस्तुत हूँ। इसका उत्तर महाराज ने दे दिया कि जब पादरी साहब ने अजमेर में दूसरे दिन शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया तो अब मैं उनसे शास्त्रार्थ करना नहीं चाहता। हाँ, यदि कोई विशेष साहब 'थियासोफ़िस्ट' के द्वारा शास्त्रार्थ करना चाहें तो हम उद्यत हैं।

रा० ब० श्यामसुन्दरलाल ने, जो राज्य किशनगढ़ के दीवान पद पर प्रतिष्ठित हुए, देवेन्द्रबाबू से कहा था कि उस शास्त्रार्थ में ग्रे साहब सुनिश्चितरूप से परास्त हुए थे।

डॉ० पादरी हज़्बैण्ड ने, जो इस शास्त्रार्थ में पादरी ग्रे के साथ थे, इण्डियन मिरर कलकत्ता के 'सण्डे एडीशन' ३१ अगस्त सन् १८७६ के अङ्क में लिखा था—

"प्रत्येक सायंकाल को लोगों के बृहत्समूह पण्डितजी की वेद-व्याख्या सुनने के लिए एकत्र होते थे। व्याख्यान सुनकर हिन्दू स्तंभित हुए और मुसलमान शीघ्र ही क्रूरभाव-सम्पन्न हो गये तथापि सबने यह अनुभव किया कि वे एक ऐसे मनुष्य के सम्मुख हैं, जिसकी मानसिक शक्तियाँ दुर्लभ हैं, जिसकी बुद्धि परिष्कृत, तर्क-शक्ति सूक्ष्म और प्रभावोत्पादक है। उनके व्याख्यानों ने बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया और देशी लोग धार्मिक विषयों में ऐसे उत्तेजित हुए जैसा मैंने अपने अजमेर से सम्बन्ध रखने के समय से पहले कभी नहीं देखा था।

मुहम्मद मुराद अली सम्पादक 'राजपूताना गज़ट' पाँच बार महाराज से मिले थे। उन्होंने निम्नलिखित प्रश्न उनसे किये थे—

प्रश्न नं० १—आत्मा क्या है ?

प्रश्न नं० २—बहुत-से धर्म यह मानते हैं कि शुभ कर्म करने से, शरीर के नष्ट होने के पश्चात् मनुष्य की मोक्ष हो जाती है, मोक्ष किस वस्तु का नाम है ?

प्रश्न नं० ३—बार-बार जन्म लेने का क्या कारण है ? यदि यह बात मानी जाए कि मनुष्य को पाप करने के कारण बार-बार जन्म लेना पड़ता है, तो ऐसे विचार में मनुष्य का स्वाभाविक गुण ही यह है कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जब तक ज्ञान प्राप्त न हो अवश्य पाप करता रहे। ऐसी दशा में पाया जाता है कि स्वयं परमेश्वर ही की इच्छा से मनुष्य बार-बार जन्म लेने के लिए बाध्य ठहरता है। यदि परमेश्वर की इच्छा न हो तो मनुष्य माँ के पेट ही से ऐसा उत्पन्न हो और पवित्रता प्राप्त करके आये ताकि पाप का कर्त्ता भी न हो।

प्रश्न नं० ४—बुराई चाहे शैतान से चाहे स्वयं परमेश्वर से उत्पन्न हुई है तो ज्ञात हुआ कि परमेश्वर के आतिरिक्त भी कोई वस्तु बुराई वा भलाई की ऐसी ही है जो स्वयं ही उत्पन्न होने की शक्ति रखती है और परमेश्वर के बस की नहीं है और जो परमेश्वर ही ने इस बुराई को उत्पन्न किया है तो बुराई का आरम्भ करनेवाला भी परमेश्वर है और यतः उसकी बनाई हुई कोई वस्तु उत्तमता से शून्य नहीं है और न निरर्थक तो इसका अवश्य भावी परिणाम यह होगा कि स्वयं परमेश्वर ने मनुष्य के लिए बुराई उत्पन्न की तो फिर बुराई का दण्ड क्यों है ?

मौलवी साहब कहते हैं कि स्वामीजी ने मेरे प्रश्नों का कई प्रकार से उत्तर दिया। प्रश्न नं० १ व ४ के उत्तर इतने युक्ति-संगत थे कि मेरा सन्तोष हो गया और प्रश्न नं० २ व ३ के उत्तर देने का फिर वचन दिया।

उसी दिन सायङ्काल को महाराज का व्याख्यान था। व्याख्यान में वे दो-दो चार वाक्यों के पश्चात् गिलास में से पानी के घूँट लेते थे। पीछे प्रशंसित मौलवी साहब ने इसका कारण पूछा तो महाराज ने कहा—इसमें एक रहस्य है। कहते-कहते मन में आवेश आ जाता है, वह पानी के घूँट लेने से दब जाता है।

मौलवी साहब गो-रक्षा के समर्थक थे। इसे ज्ञात करके महाराज उनसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपना एक फ़ोटो दिया।

रा०ब० श्यामसुन्दरलाल आदि ने उन्हीं दिनों अजमेर में एक सभा प्रार्थना-समाज के नाम से स्थापित की थी जिसके अधिवेशन रविवार को हुआ करते थे। महाराज ने कहा कि प्रार्थना-समाज नाम ही अशुद्ध है, क्योंकि समाज के अर्थ सभा के हैं फिर प्रार्थना की सभा के क्या अर्थ हो सकते हैं। रा०ब० ने इसका यह उत्तर दिया कि प्रार्थना-समाज को षष्ठीतत्पुरुष समास न लेकर चतुर्थीतत्पुरुष समास लेने से अर्थ ठीक हो सकते हैं। महाराज ने यह भी कहा था कि गीत-वाद्य करके ईश्वर की ध्यान-धारणा वा स्तुति-प्रार्थना करना आर्यभाव नहीं है, यूरोपीय भाव का अनुकरणमात्र है। आर्य लोग ईश्वर की ध्यान-धारणा एकान्त में करते थे।

वेद में विज्ञान के सारे तत्त्व निहित हैं, इस विषय पर बातचीत होने पर रा०ब० ने यह आक्षेप किया था कि यूरोपीय विज्ञान के सिद्धान्त स्थिर नहीं हैं। जो सिद्धान्त आज स्थिर किया जाता है वह दश वर्ष पीछे असत्य कहकर त्याग दिया जाता है। तब ऐसे सिद्धान्तों को वेद में बतलाना उन्हें निर्भ्रान्त कहना है जिन्हें यूरोप के वैज्ञानिक स्वयं निर्भ्रान्त नहीं मानते। यदि आज एक सिद्धान्त को आप वेद में बतलाते हैं तो उसे निर्भ्रान्त मानना पड़ेगा। फिर यदि कल को वह त्याज्य सिद्ध हो तो उसकी निर्भ्रान्तता और साथ में वेदों की निर्भ्रान्तता भी जाती रहेगी। इसके उत्तर में महाराज ने कहा कि जो वैज्ञानिक तत्त्व हमें मन्त्रों में दृष्टि पड़ते हैं, उन्हें हम अपने भाष्य में क्यों न लिखें ?

इसपर हमें यह कहना है कि वैज्ञानिकों की सम्मति अन्तिम नहीं कही जा सकती, क्योंकि हम देखते हैं कि जहाँ, ऐसे भी सिद्धान्त हैं जो पहले सत्य समझे जाते थे और फिर असत्य समझे जाने लगे, वहाँ हम यह भी पाते हैं कि असत्य कहकर त्यागे हुए सिद्धान्त पुनः सत्य माने जाने लगे।

रा० ब० और अन्य भी कई लोगों का विश्वास है कि स्वामीजी ने अंग्रजी शिक्षा प्राप्त मनुष्यों से विज्ञान की दो-चार बातें सुन-सुनाकर उन्हें वेदों में से निकालने का यत्न किया है, परन्तु उनका यह विश्वास

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वथा निराधार है। वेद में सब विद्याओं का बीज है, यह मन्तव्य केवल स्वामी दयानन्द का ही नहीं है, अपितु यह विश्वास सारे ही ऋषि-मुनियों का रहा है। स्वामीजी के परलोकवास को आज इतने वर्ष हो गये, परन्तु वैज्ञानिक संसार ने किसी सिद्धान्त को भी जो स्वामीजी लिख गये हैं विज्ञान-विरुद्ध वा त्याज्य सिद्ध नहीं किया है। स्वामीजी जो कुछ कहते थे अपने आत्मा के अनुकूल कहते थे। यदि उन्हें यही करना होता कि विज्ञान के तत्त्वों को बलात् वेद के मन्त्रों में से निकालें तो वे किसी वैज्ञानिक से पूछ-ताछ करके ऐसे अनेक सूक्ष्म तत्त्वों को अपने वेदभाष्य में समाविष्ट कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। केवल दो-चार बातें ही दिग्दर्शन के लिए लिखी हैं और कहीं-कहीं ऐसी बातों का भी उल्लेख किया है जिनका उस समय तक वैज्ञानिकों को भी पता न था। ऐसी बातों के विषय में आक्षेप्ता लोग क्या कहेंगे ? वे स्वामीजी के मस्तिष्क में कहाँ से आईं जबकि वे वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में भी नहीं आई थीं। ऐसी बातें वैज्ञानिकों को स्वामीजी के वेदभाष्य रचने से वर्षों पीछे ज्ञात हुईं।

इससे स्पष्ट है कि महाराज पर यह दोष लगाना कि उन्होंने अपने वेदभाष्य में विज्ञान की बातें इधर-उधर से सुन-सुनाकर लिख दी हैं कितना निर्मूल है। यह बात कि वेद में वैज्ञानिक तत्त्व निहित हैं, वेद के कई स्थलों से ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि उसके विषय में कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। डॉक्टर लोगों का यह सिद्धान्त है कि यक्ष्मा के कीटाणु गौ के दूध से मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं और इस कारण यूरोप में अत्यन्त सावधानी की जाती है कि किसी ऐसी गौ का दूध मनुष्यों के पीने के काम में न लाया जाए जिसके शरीर में यक्ष्मा के कीटाणु हों। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही ऐसी गौओं के लिए प्रार्थना की गई है जो अयक्ष्मा हों, जिन्हें यक्ष्मा का रोग न हो। अब क्या कहा जाएगा कि यह सिद्धान्त भी यूरोप के वैज्ञानिकों से ही उधार लिया गया है ? यूरोपीय विज्ञान का एक सिद्धान्त यह है कि वनस्पति सूर्य-शक्ति को सुरक्षित रखती है (Plants conserve solar energy) हमारे समालोचक क्या कहेंगे जब हम उन्हें यह बताएँगे कि शतपथब्राह्मण में ओषधि शब्द की निरुक्ति यह की गई है कि ओषधि को ओषधि इसलिए कहते हैं कि वह ओष (गर्मी वा सूर्यशक्ति) को धारण करती है। क्या ऐसे-ऐसे स्पष्ट उदाहरणों के होते हुए भी यह कहा जाएगा कि वेदों में वैज्ञानिक तत्त्वों को दयानन्द ने बलात् ठूँसने का यत्न किया है ?

एक बार रा० बहादुर श्यामसुन्दरलाल ने महाराज से कहा कि आप मूर्तिपूजा पर इतना तीव्र आक्रमण क्यों करते हैं, उसे थोड़ा-सा नम्र कर देने से भी तो कार्य चल सकता है ? महाराज ने उत्तर दिया कि हम भी जानते हैं कि मूर्त्तिपूजा पर आक्रमण का वेग कुछ कम करने से अनेक लोग हमारे पक्ष में आ सकते हैं और हमारे प्रति निन्दा और अत्याचार भी कुछ कम हो जाएगा, किन्तु इससे हमारे व्रत का उद्देश्य शीघ्र ही शिथिल हो जाएगा और हमारे कार्य की स्वतन्त्रता शीघ्र ही विलुप्त हो जाएगी। मूर्त्तिपूजा पर मृदु आक्रमण करने वा उससे किसी प्रकार की सन्धि करने से हमारे सिद्धान्तों की भी वही दशा होगी, जो अन्य सिद्धान्तों की हुई है और समयान्तर में आर्यसमाज पौराणिक होकर हिन्दुओं में मिल जाएगा।

महाराज ने अपने एक व्याख्यान में विभिन्न धर्म-ग्रन्थों की भ्रान्तियाँ दिखाई थीं। इस प्रकरण पर कथन करते हुए उन्होंने कहा था कि बाइबिल के अनुसार सूर्य की सृष्टि चौथे दिन हुई फिर तीन दिन किस प्रकार हुए, क्योंकि सूर्य के बिना दिन का ज्ञान व नाम कुछ भी नहीं हो सकता। इसे सुनकर एक मुसलमान मिर्ज़ा साहब बोले कि हमारा क़ुरान तो स्वर्ग से उतरा है, देखिए वह कैसा शुद्ध है। क्या आप क़ुरान में भी कोई भ्रान्ति दिखा सकते हैं ? महाराज ने कहा कि आपके क़ुरान में लिखा है कि जो पुरुष पाँच बार नमाज़ पढ़ता है वह स्वर्ग में जाएगा और उसे ७० हूरें भोग के लिए मिलेंगी। जो स्त्री ५ बार नमाज पढ़ती हो वह भी स्वर्ग में जाएगी, तो क्या उसे भी ७० पुरुष मिलेंगे ? जिस पुस्तक में ऐसी-ऐसी बातें हों वह ईश्वरकृत नहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो सकती। यह सुनकर मिर्ज़ा साहब चुप हो गये। इसी समय महाराज का नौगज़ेवाले पीरजी से भी शास्त्रालाप हुआ था।

महाराज के आगमन से अजमेर में घोर आन्दोलन उपस्थित हो गया था। व्याख्यानों में सहस्रों मनुष्य आते थे। अजमेर के कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, यूरोपीयन पादरी, प्रतिष्ठित मुसलमान प्रभृति भी आते थे। गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल ने छात्रों को व्याख्यान सुनने जाने के लिए अनुमति दे दी थी। कुएँ की पनिहारियों तक में यही चर्चा रहती थी कि एक ऐसा पण्डित आया है जो सब मतों का खण्डन करता है। मुसलमान स्त्रियाँ कहती थीं कि ए खुदा मुसलमानों को बचा।

मसूदाधिपति राव बहादुरसिंह महाराज के बड़े अनुरक्त भक्त थे। उनके अनुरोध पर महाराज मसूदा चले गये।

(२ दिस०—१० दिस०) मसूदा (मार्ग० शु० ८—पौष कृ० १)

माघ शु० ८ सं० १९३५, अर्थात् २ दिसम्बर सन् १८७८ को अपने भक्त राव बहादुरसिंह से निमन्त्रित होकर महाराज मसूदा पधारे और रामबाग़ में उतरे।

डेरे पर तो नित्यप्रति महाराज आगन्तुकों को उपदेश देते ही थे, व्याख्यान द्वारा भी सर्वसाधारण की धर्म-पिपासा मिटाने की उन्होंने कृपा की। एक दिन महाराज दुर्ग के भीतर भी गये थे। राव बहादुरसिंह के प्रेम की यह दशा थी कि वे लगभग सारे दिन ही महाराज की सेवा में उपस्थित रहते थे और धर्मालाप करते रहते थे।

एक दिन रामबाग़ के हनुमान् के मन्दिर में रियासत की अश्वशाला का अध्यक्ष शिवराम आया। उसने हनुमान् की मूर्ति के आगे दण्डवत् की और हनुमान् की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़े। उसने महाराज को प्रणाम न किया। महाराज ने उससे कहा कि तूने हनुमान् के आगे हाथ जोड़े, दण्डवत् की और श्लोक भी पढ़े, परन्तु वह तुझसे बोला तक नहीं। देख हम तुझे ब्राह्मण समझकर बिना बुलाये ही तुझसे बोलते हैं और हनुमान् तेरे बुलाने पर भी नहीं बोलता। वह बोला कि हनुमान्जी का बोलना हम समझते हैं और लोग नहीं समझते। महाराज ने कहा कि तेरे हनुमान् हमसे डरते हैं जो तुझसे गुप्त बोलते हैं। इसके पश्चात् उसने कुछ न कहा।

१० दिसम्बर सन् १८७८ को महाराज बग्घी पर सवार होकर नसीराबाद छावनी चले गये। विदा करते समय रावसाहब ने २००) महाराज की भेंट किये।

(१० दिस०—१४ दि०) नसीराबाद (पौष कृ० १—पौष कृ० ५)

नार्मल स्कूल-छावनी नसीराबाद के अध्यापक पं० सुखदेवप्रसाद ने जब सुना कि श्रीमहाराज मसूदा में विराजमान हैं, तो उन्होंने महाराज की सेवा में पत्र द्वारा नसीराबाद पधारने की प्रार्थना की। महाराज ने उसे स्वीकार किया। १० दिसम्बर सन् १८७८ को महाराज राव साहब मसूदा की बग्घी में नसीराबाद पधारे। दो सवार उनकी अरदली में थे। पण्डित सुखदेवप्रसाद ने उन्हें बस्ती से एक मील दूर भूताखेड़ी के बाग़ीचे में ठहरा दिया और उनके विश्रामादि का प्रबन्ध करके स्वयं उनके व्याख्यान के प्रबन्ध में लग गये।

प्रबन्ध में विघ्न—दूसरे दिन उन्होंने व्याख्यान के स्थानादि का निश्चय करके एक विज्ञापन लिखा और उसकी कई प्रतिलिपि तैयार कराकर नगर में चिपका दीं और विशेष-विशेष व्यक्तियों को भी दे दीं। व्याख्यान के लिए शोभाराम का मन्दिर निश्चित किया था। पण्डित सुखदेवप्रसाद ने अपने स्कूल के दो अध्यापकों से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्यान के प्रबन्ध में सहायक होने की अभ्यर्थना की तो उन्होंने सहायता करनी स्वीकार करली। व्याख्यान का समय ७ बजे सायंकाल घोषित किया गया था। पण्डित सुखदेवप्रसाद ५ बजे के पश्चात् महाराज को लिवा लाने के लिए बग्घी लेकर उनके डेरे पर गये। उन पण्डितजी के दोनों सहायकों ने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि आपके लौटने तक हम प्रकाश और फ़र्श का सब प्रबन्ध कर रक्खेंगे, परन्तु जब वे महाराज को यथासमय लिवाकर लाये तो देखा कि न वे दोनों अध्यापक ही व्याख्यान स्थल में हैं, न प्रकाशादि का ही कुछ प्रबन्ध है। मन्दिर के एक पुजारी के कहने से उन्हें पता लगा कि उनके सहायकों ने धूर्त्तता की और कुछ भी प्रबन्ध न किया। महाराज ने कुछ विरक्त होकर उनसे कहा कि तुमने कैसा कच्चा प्रबन्ध किया है, तब उन्होंने सारा वृत्तान्त महाराज को सुनाया और महाराज को बाज़ार में लिवा ले-गये और कुछ मित्रों की सहायता से दस मिनट की दौड़-धूप के पश्चात् वह व्याख्यान के लिए एक स्थान प्राप्त करने में सफल हो गये।

जैनियों से प्रश्नोत्तर और तीन व्याख्यान—व्याख्यान होने ही वाला था कि दो जैनियों ने महाराज से कुछ प्रश्न करने आरम्भ कर दिये, परन्तु १५-२० मिनट में ही अपने प्रश्नों के उत्तर पाकर शान्त हो गये। उसके पश्चात् व्याख्यान हुआ। उस दिन श्रोताओं की संख्या ६०, ७० ही थी। व्याख्यान का विषय कर्त्तव्याकर्त्तव्य था। दूसरे और तीसरे दिन भी व्याख्यान उसी विषय पर हुआ। दूसरे व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या १५० और तीसरे में २०० हो गई। व्याख्यानों की सबने प्रशंसा की। यद्यपि व्याख्यान तीन ही हुए परन्तु उनसे ही नगर में जागृति हो गई।

पण्डित सुखदेवप्रसाद पहले मिशन स्कूल में नौकर थे। ईसाइयों के संसर्ग से उनके विचार ईसाई मत की ओर झुक गये थे और वे ईसाई होने को उद्यत हो गये थे कि सौभाग्य से उन्हें अजमेर में महाराज के व्याख्यानों के सुनने का अवसर प्राप्त हुआ, तब उनके विचारों में एकदम परिवर्तन हो गया और वे ईसाई न हुए। पादरियों ने चिढ़कर उन्हें स्कूल से अलग कर दिया। उसके पश्चात् वे कम वेतन पर नार्मल स्कूल में अध्यापक हो गये, वे आर्यमसाजी हो गये और वैदिक धर्म का उपदेश और ईसाई और इस्लाम मतों का खण्डन करनें लगे।

नसीराबाद से महाराज जयपुर रवाना हो गये।

(१५ दिस०—२४ दिस०) **जयपुर** (पौष कृ० ६—पौष शु० १)

जयपुर में महाराज १५ दिसम्बर सन् १८७८ को पहुँचे और सदासुख ढढ्ढे के बाग़ में साँगानेर दरवाज़े के बाहर उतरे। ठाकुर रघुनाथसिंह, कनिष्ठ पुत्र ठाकुर रणजीतसिंह ने उनसे अपने बाग़ में चलने के लिए प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने कहा कि यही स्थान अच्छा है।

प्रश्नोत्तर और व्याख्यान—कुछ दिन तक तो पण्डित लोग तथा अन्य जिज्ञासु महाराज के डेरे पर आकर प्रश्नोत्तर करते रहे, फिर ठाकुर लछमणसिंहजी की प्रार्थना पर उन्हों ने तीन व्याख्यान उनकी हवेली पर दिये। महाराज के पास राज्य के दीवान और अन्य उच्च कर्मचारी तथा सरदार, जागीरदार आकर धर्मोपदेश सुनते रहे।

विद्वेषियों की धूर्त्तता—एक दिन ब्राह्मणों ने कुछ लड़कों को बहकाकर और उन्हें कुछ प्रश्न लिखाकर महाराज के पास भेजा। महाराज उनकी इस धूर्त्तता को जान गये और उन लड़कों से कह दिया कि यदि ये प्रश्न तुम्हारे बनाये हुए हैं तो हमारे शिष्यों से करो और यदि तुम्हें उनसे उत्तर न मिले तो हमारे पास आना और यदि ये प्रश्न तुम्हारे गुरुओं के हैं तो उन्हें हमारे पास ले-आओ, हम उत्तर देंगे।

उपदेश पहले से भिन्न क्यों है—कुछ लोगों ने महाराज से प्रश्न किया कि इस समय आपका उपदेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले से भिन्न क्यों है तो महाराज ने अति सरलचित्तता से कहा कि उस समय हम अज्ञ थे।

बन्दी होने की किंवदन्ती—मेरठ के एक गुजराती ब्राह्मण ने रुड़की जाकर यह किंवदन्ती फैला दी कि महाराज जयपुर ने स्वामीजी को बन्दीगृह में डाल दिया है। उसने कहा कि मेरठ में दो-चार दिन हुए एक ब्राह्मण जयपुर से आया था, वह कहता था कि यह दुर्घटना मेरी आँखों देखी है और कारण यह बतलाता था कि महाराज के भाई का अभी थोड़े दिन हुए देहान्त हो गया था और स्वामीजी श्राद्धादि का खण्डन करते थे, इससे महाराजा बहुत दुःखित हुए।

भक्तों की चिन्ता—यह सुनकर महाराज के भक्तों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने तुरन्त एक तार अजमेर को दिया। ५, ६ घण्टे तक कोई उत्तर न आया इससे चिन्ता और बढ़ी, फिर दूसरा जवाबी तार दिया, उसका उत्तर आया कि महाराज जयपुर गये हैं। चिन्ता द्विगुणित हो गई। १६ दिसम्बर को स्वयं महाराज को तार दिया। उसका उत्तर आया कि हम सकुशल हैं, तब कहीं जाकर भक्तजन के जी-में-जी आया।

श्रीप्रसाद जयपुर में एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे; श्रीप्रसाद ने स्वामीजी की बहुत सेवा-शुश्रूषा की। वे महाराजा के मन्त्री ठाकुर फ़तेहसिंहजी के मित्र थे। उन्होंने मन्त्री महोदय से कहा कि स्वामीजी से महाराजा का वार्त्तालाप कराओ। उन्होंने महाराजा से निवेदन किया कि एक बड़े विद्वान् संन्यासी जयपुर आये हुए हैं, यदि इच्छा हो तो उनसे साक्षात् कीजिए।

इससे पूर्व ही श्राद्ध, मूर्त्तिपूजा-खण्डन और ब्राह्मणों के बहकाने के कारण महाराज रुष्ट हो गये थे। महाराजा ने कहा कि क्या तुम्हारा आशय दयानन्द से है ? यदि मुझमें शक्ति है तो मैं उसे कुत्तों से फड़वा दूँगा। मन्त्री महोदय ने ये बातें श्रीप्रसाद से कहीं और उन्होंने स्वामीजी की सेवा में आकर प्रार्थना की कि महाराज ! ऐसी अवस्था में आपका जयपुर रहना उचित नहीं है, परन्तु महाराज ने निर्भीकभाव से कहा कि तुम राजा के नौकर हो तुम उसकी आज्ञा मानो हम उसके नौकर नहीं हैं। इसके पश्चात् वे§ ६ दिन जयपुर और ठहरे और यथापूर्व निर्भय होकर सत्संगियों को सत्यधर्म का उपदेश करते रहे।

श्रीप्रसाद के शत्रुओं ने महाराजा से जाकर कहना आरम्भ किया कि श्रीप्रसाद दयानन्द के पास रात्रि को जाता है और उसी ने आपकी इच्छा के विरुद्ध दयानन्द को जयपुर से नहीं जाने दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि महाराजा ने किसी मिष से श्रीप्रसाद को कारागार में डलवा दिया।

२४ दिसम्बर को महाराज ने प्रस्थान किया और उसी दिन रिवाड़ी जा विराजे।

(२४ दिस० ७८—६ जन० ७६) रिवाड़ी (पौष शु० २—माघ कृ० १)

जब महाराज दिल्ली के दरबार में पधारे थे तो वहाँ रिवाड़ी के प्रमुख ज़मींदार राव युधिष्ठिरसिंहजी भी गये थे। राव महोदय बहुधा महाराज की सेवा में जाया करते थे और उनके उपदेशों को सुनकर आह्लादित होते थे। वे महाराज के प्रति इतने अनुरक्त हो गये थे कि उन्होंने महाराज से रिवाड़ी पधार कर उन्हें सदुपदेश देने की विनयपुरस्सर प्रार्थना की। महाराज ने भी परम दयालुता से यह वचन दिया कि यदि हम वैदिक धर्म में आपकी निष्ठा देखेंगे तो रिवाड़ी आवेंगे। इसके पश्चात् रावसाहब महाराज से पत्र द्वारा रिवाड़ी पधारने के लिए अनुरोध करते रहे। महाराज ने वैदिक धर्म में उनकी श्रद्धा देखकर जयपुर से लौटते हुए रिवाड़ी पधारने की कृपा की।

---

§ इस बार स्वामीजी केवल ६ दिन जयपुर रहे थे। यहाँ के लेख से यह प्रतीत होता है उपर्युक्त घटना जयपुर में कई दिन रहने के पश्चात् घटी है। इस जीवन-चरित्र के अनुसार भी स्वामीजी १५ से २४ दिसम्बर तक रहे थे, अतः सम्भव है यह घटना किसी अन्य बार जयपुर आने की होगी। —**संग्रहकर्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रावसाहब का आतिथ्य, ११ व्याख्यान—रावसाहब ने महाराज का अत्यन्त सम्मान, प्रेम और श्रद्धा से स्वागत किया और नगर से बाहर लाला की बारहदरी नामक अपने उद्यानगृह में ठहराया। महाराज ने रिवाड़ी में ११ व्याख्यान मूर्तिपूजा व मृतक पितृश्राद्ध खण्डन, वैदिक मुक्ति, वेदों का और गायत्री का सबको अधिकार है, नियोग, पुनर्विवाह आदि विषयों पर दिये, जिनमें सैकडों मनुष्य उपस्थित होते थे। रावसाहब ने अपने बन्धुवर्गों और जाति के लोगों को दूर-दूर से महाराज के उपदेशश्रवणार्थ बुलाया था।

रावसाहब की वैदिक-धर्म में निष्ठा—रावसाहब ने एक दिन महाराज को अपने गृह पर भी निमन्त्रित किया था और वे तथा उनके भ्राता सच्चे हृदय से वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये थे। यहाँ तक कि जब उनकी माता का देहान्त हुआ तो उन्होंने उसका अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीत्यनुसार कराया और अपने अन्त्येष्टि संस्कार के विषय में भी मरते समय यह वसीयत की कि वैदिक-रीत्यनुसार किया जाए। उनका देहान्त सन् १८८६ में हुआ, परन्तु उनके उत्तराधिकारियों ने उनकी वसीयत के अनुकूल कार्य नहीं किया।

गायत्री के जाप से पाप होता है, पाप हमारा और पुण्य तुम्हारा—एक व्यक्ति ने महाराज से गायत्री मन्त्र सीखा था और महाराज ने स्वयं उसका उच्चारण शुद्ध कराया था। ब्राह्मणों ने कहा कि यह ब्रह्मगायत्री नहीं है और ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरे को गायत्रीमन्त्र के जाप से पाप होता है। उसने यह बात महाराज से कही तो आपने कहा कि जो हमारी दी हुई गायत्री को ब्रह्मगायत्री नहीं बताते उन्हें हमारे सामने लाओ और गायत्री जाप से यदि तुम्हें पाप होगा वह हमारा और जो पुण्य होगा वह तुम्हारा।

वेदान्ती साधु निरुत्तर—एक दिन एक नवीनवेदान्ती साधु महाराज के पास आया और कहने लगा कि मैं ब्रह्म हूँ। महाराज पहले तो चुप रहे फिर उससे कहा कि परमेश्वर ने सूर्य, चन्द्र, पृथिव्यादि को बनाया है, यदि तू ब्रह्म है तो एक हाथभर भूमि आकाश में अधर रचकर दिखादे तो हम तुझे ब्रह्म मान लेंगे। इसे सुनकर जो लोग महाराज के पास बैठे थे, हँस पड़े और साधु निरुत्तर होकर चला गया।

चार प्रकार के मनुष्य—महाराज ने एक व्याख्यान में कहा था कि जगत् में चार प्रकार के मनुष्य हैं। श्रोताओं में से एक मनुष्य पण्डित लेखराम से मिला था तो उसे चार में दो प्रकार का ही स्मरण था। एक प्रकार के मनुष्य बकरी के समान हैं जो जल पीती हैं, परन्तु उसे गन्दा नहीं करती, दूसरे भैंस के समान हैं, जो उसी जल में मूतती हैं, जिसे पीती है और उसे गन्दा और गदला करती है।

अभी जाकर पढ़ो—एक पण्डित को, जो मेरठ में महाराज से वार्त्तालाप कर चुका था, देखकर महाराज ने कहा कि तुम भी पण्डितों में पैर अड़ाने के लिए आये हो ताकि लोगों को यह ज्ञात हो जाए कि तुम हमसे संस्कृत बोलने आये हो, तुम अभी जाकर पढ़ो।

शास्त्रार्थ करने कोई न आया—रिवाड़ी के पण्डितों ने महाराज को पत्र लिखा कि आप हनुमान् के मन्दिर में आकर शास्त्रार्थ कर लें, महाराज ने उत्तर दिया कि हमारे निवास-स्थान पर ही आकर बात-चीत करलो, परन्तु कोई न आया। किसी पौराणिक पण्डित को उनके सामने आकर शास्त्रार्थ करने का साहस न हुआ। महाराज ने ६-१-१८७६ को रिवाड़ी से प्रस्थान किया और उसी दिन दिल्ली पहुँच गये।

(६ जन०—१६ जन०) दिल्ली (माघ कृ० १—माघ कृ० ६)

दिल्ली में महाराज काबुली दरवाजे सब्ज़ीमण्डी के पास बालमुकन्द किशोरचन्द के बाग़ में ठहरे। इस बार आपके दो वा तीन ही व्याख्यान हुए और आप केवल ६ दिन ही दिल्ली ठहरे। दिल्ली से १६ जनवरी को मेरठ चले गये। मेरठ से महाराज संवत् १९३६ के कुम्भ पर प्रचार करने के उद्देश्य से हरिद्वार चले गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोविंशति अध्याय

माघ सं० १९३५ वैशाख सं० १९३६=जनवरी १८७९ से अप्रैल १८७९

हरिद्वार—सं० १९३६ वि० के कुम्भ पर प्रचार करने का महाराज ने पहले से ही प्रबन्ध कर लिया था। माघ बदी ३० संवत् १९३५ अर्थात् २२ जनवरी सन् १८७९ को ही उन्होंने कई सहस्र प्रति एक विज्ञापन की मेरठ में छपवा ली थीं और हरिद्वार में अपने ठहरने का स्थान पहले से ही निश्चत कर दिया था। सब प्रकार का प्रबन्ध करके महाराज ने हरिद्वार के लिए प्रयाण किया। पहले सहारनपुर पहुँचे और कन्हैयालाल के शिवालय में उतरे। वे सहारनपुर केवल दो ही दिन ठहरे और दो व्याख्यान देकर और जो लोग आये उनसे धर्मालाप करके रुड़की गये। वहाँ एक ही§ दिन रहकर फाल्गुन कृष्णा १४ अर्थात् २० फरवरी सन् १८७९ को ज्वालापुर पहुँचे और मूला मिस्तरी के उद्यान-गृह में आसन लगाया।

(२० फर०—२७ फर०) ज्वालापुर (फा० कृ० १४—फा० शु० ६)

गोभक्षक से गोरक्षक—महाराज का वहाँ पहुँचना था कि लोग दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए आने लगे। एक मुसलमान रईस राव एवज़खाँ उनसे कई बार मिले और दो प्रश्न उनसे किये। उनका युक्तिसंगत उत्तर पाकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए। एक दिन राव एवज़खाँ से महाराज की गोरक्षा पर बात-चीत हुई। महाराज ने उसकी उपयोगिता ऐसी अच्छी युक्तियों से प्रतिपादित की कि राव महोदय ने उसे निःसंकोच भाव से स्वीकार कर लिया और मांसाहार का परित्यगा करके मुसलमानों में गोरक्षा के प्रचार की प्रतिज्ञा की।

नित्य स्नान करना स्वास्थ्यप्रद है—एवज़खाँ ने एक दिन यह आपत्ति उठाई कि हिन्दुओं ने नित्यप्रति स्नान का नियम क्यों कर रक्खा है ? महाराज ने इसका उत्तर दिया कि ऐसा करना स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकर है। एवज़खाँ हकीम भी थे, वे महाराज की बात को मान गये।

(२७ फर०—१४ अप्रैल) हरिद्वार (फा० शु० ६ सं० ३५—वै० कृ० ८ सं० ३६)

ज्वालापुर में महाराज की २७ फरवरी अर्थात् फाल्गुन शुक्ला ६ तक स्थिति रही। उसी दिन वे मूला मिस्तरी के खेत में जो हरिद्वार में श्रवणनाथ के बाग़ के और निर्मलों की छावनी के सामने बुचानाले के पार है, डेरे लगाकर और आगन्तुकों के विश्राम के लिए छप्परों का कैम्प डालकर रहने लगे। वहीं पास ही साहब कलक्टर सहारनपुर का भी डेरा था।

विज्ञापन—हरिद्वार में पहुँचते ही उन्होंने अपने आगमन की सूचना देने के लिए जो विज्ञापन वे मेरठ

---

§ यहाँ जो "सहारनपुर में दो दिन और रुड़की में एक दिन ठहरे" लिखा है, वह अशुद्ध है। माघ शुक्ला १०=२ फरवरी के सहारपुर से लिखे गये पत्र में ऋषि ने लिखा है—"यहाँ सहारनपुर से ता० ६ फरवरी को रुड़की को जाके वहाँ ८ वा १५ दिन रहकर हरिद्वार जाके .....। पत्रव्यवहार पृष्ठ १४३। यद्यपि पत्र से सहारनपुर पहुँचने की तिथि का ज्ञान नहीं होता तथापि इतना स्पष्ट है कि वे वहाँ ५, ६ दिन ठहरे थे। जीवन-चरित्र में २० फरवरी को ज्वालापुर पहुँचने का उल्लेख है, अतः स्वामीजी ७—२० फरवरी तक रुड़की रहे थे, यह निश्चित है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से छपाकर लाये थे मार्गों, मन्दिरों, घाटों और पुलों पर लगवा दिये। विज्ञापन में लिखा था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उपर्युक्त स्थान पर ठहरे हैं, जो महाशय उनके सम्भाषण से लाभ उठाना चाहें वे उक्त स्थान पर उपस्थित होकर सभ्यता से और प्रीति-पूर्वक वार्त्तालाप करें। इसके आगे विज्ञापन में निम्नलिखित उपदेश था।

सब मनुष्यों के लिए वेदोक्त उपदेश—

ऐसा कौन मनुष्य होगा जो अपना, अपने बन्धुओं का हित और परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना न चाहे। क्या कोई ऐसा भी मनुष्य है, जो परस्पर मित्रता, सदुपदेश, प्रीति, धर्मानुष्ठान, विद्या की वृद्धि, दुष्टकर्म्म और आलस्य के त्याग, श्रेष्ठ कामों के सेवन, परोपकार और पुरुषार्थ के बिना सर्वहित कर सके और ईश्वर-प्रतिपादित वेदों के अनुसार आचरण किये बिना सुख को प्राप्त हो सेक। इसलिए आर्य्यों के इस महा समुदाय में वेदमन्त्रों के द्वारा सब सज्जन मनुष्यों के हित के लिए ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश संक्षेप से किया जाता है जिसको सब मनुष्य देख, सुन और विचारकर ग्रहण करें और इस मेले में तन, मन और धन से आने के सत्य सुखरूप फलों को प्राप्त हों और अपने मनुष्यदेहरूप वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार फलों को पाकर जन्म सफल करें और अपने सहचारी लोगों को भी उक्त फलों की प्राप्ति करावें। इस विषय में नीचे लिखे वेदमन्त्रों का प्रमाण देख लीजिए—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

—ऋ० मं० ५। अ० ६। सू० ८२। मं० ५

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति मायया॒ष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥५॥
यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति॥
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥६॥
सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन समासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय॥१०॥
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥२॥

—ऋ० मं० १०। अ० ६। सू० ७१। मं० ५, ६, १०, २

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

—तैत्तिरीयारण्यक प्र० ६। अनु० १

इसके पश्चात् उक्त मन्त्रों के अर्थ हैं, जिन्हें हम संक्षिप्त रूप में यहाँ देते हैं।

हे सर्वसुखदाता, जगत् के स्रष्टा और धारण करनेवाले परमेश्वर! आप हमारे सब दुष्ट कर्मों और दुःखों को दूर कीजिए और शुभ कर्म और नित्य सुख को हमें प्राप्त कराइए॥१॥

जिस मनुष्य को विद्वान् लोग अज्ञानी कहते हैं वह साधन-रूप पुष्पों और अर्थ, काम, मोक्षरूप फलों से रहित तथा सुशिक्षा, शब्द-अर्थ और सम्बन्ध के बोध से रहित वाणी को सुनकर और छल-कपट आदि दुष्कर्मों से युक्त होकर चलता है। उसे विद्वान् लोग दृढ़ विद्यायुक्त और श्रेष्ठ कर्मयुक्त करके बढ़ाते और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मित्रता के लिए प्राप्त करते हैं ॥२॥

जो मनुष्य सबसे प्रेम करके सुख देनेवाले मित्रों को छोड़ देता है उसका सुशिक्षित विद्या की वाणी में कोई भाग नहीं होता, जो कुछ वह सुनता है, वह अर्थ-प्रयोजनरहित सुनता है, वह धर्म के मार्ग को नहीं जानता ॥३॥

जो मनुष्य विद्यादि की प्राप्ति करने-कराने के लिए पाप वा स्वार्थ करता है वह सुख नहीं पाता और जो अत्यन्त हितकारी, कीर्त्तिमान, सभा का भार उठानेवाले और उसकी उन्नति करनेवाले, सबसे प्राप्त होने योग्य मित्रों से मित्रता करते हैं, वे सब सुखी होते हैं ॥४॥

जैसे सत्तू को चलनी से छानकर साफ़ करते हैं, ऐसे ही धार्मिक विद्वान् विज्ञान से वाणी को सुशिक्षित और विद्या-युक्त करनेवाले, सुहृद्भाव से युक्त होकर, मित्रों के कर्मों और भावों को जाननेवाले जिस देश, समुदाय वा सभा में होते हैं, उनकी ही वाणी में कल्याण और सुख करनेवाली विद्या, शोभा, चक्रवर्त्ती राज्य की श्री सदा स्थित रहती है ॥५॥

इसलिए हमें चाहिए कि हम एक-दूसरे की रक्षा करते, एक-दूसरे के साथ आनन्द भोगते, एक-दूसरे के बल-पराक्रम को बढ़ाते रहें, हममें विद्या का पठन-पाठन अत्यन्त प्रकाशयुक्त हो और हम लोग आपस में वैर-विरोध कभी न करें ॥६॥

इसके आगे यह बतलाया था कि प्राचीन काल में आर्यावर्त्त की उन्नति का कारण वेदोक्त धर्म पर चलना था और इस समय की अवनति का कारण वेदोक्त धर्म का त्याग है। जिसका फल दुःख हो वह कभी धर्म और जिसका फल सुख हो वह कभी अधर्म नहीं हो सकता। अब भी यदि उन्नति हो सकती है तो उन्हीं कामों से हो सकती है, जिन्हें आर्यसमाज के सभासद् करना-कराना चाहते हैं, अर्थात् संस्कृतविद्या के जाननेवाले, स्वदेशियों की बढ़ती के अभिलाषी, परोपकारक, निष्कपट होके सत्यविद्या देने की इच्छायुक्त, धार्मिक विद्वानों की उपदेशक मण्डली बना और वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ाने के लिए पाठशाला स्थापित करना। आशा है कि इस बात को सुनकर सब भद्र लोग स्वीकार करके आर्योन्नति करने में तन, मन, धन से प्रवृत्त होंगे।§

मेले में महाराज के आगमन की धूम मच गई—इस विज्ञापन के प्रचारित होते ही सारे मेले में महाराज के के आगमन की धूम मच गई और शतशः-सहस्रशः लोग महाराज के स्थान पर धर्मोपदेश सुनने के लिए और शङ्का-समाधान के लिए आने लगे। कोई प्रेमभाव से आते तो कोई द्वेषभाव से, कोई केवल दर्शन करने के लिए ही आते कि देखें दयानन्द, जो मूर्त्तिपूजादि परम्परागत बातों का खण्डन करता है, रंग-ढंग में, डील-डौल में, बोल-चाल में कैसा है ? कोई-कोई ऐसे भी महानुभाव थे जो दयानन्द को नास्तिक कहकर उसका मुख देखना भी पाप समझते थे या कम-से-कम अपने को परम धार्मिक प्रसिद्ध करने के अभिप्राय से ऐसा प्रसिद्ध करते थे। पौराणिक पण्डितों को तो शास्त्रार्थ से बचने का यह सुलभ उपाय हाथ आगया था। ऐसे लोग न स्वयं आते और न दूसरों को आने का परामर्श देते। इसमें यह रहस्य भी था कि कहीं ऐसा न हो कि उनका कोई शिष्य दयानन्द का उपदेश सुनकर उनके जाल से निकल जावे।

व्याख्यानों में भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था—महाराज प्रातःकृत्य से निवृत्त होकर प्रातःकाल के सात बजे सभामञ्च पर विराजमान हो जाते थे और साधु, संन्यासी और गृहस्थ सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होकर विविध विषयों पर प्रश्न करके और उत्तर पाकर सन्तुष्ट होकर चले जाते थे। यह प्रश्नोत्तर ग्यारह

---

§ यह पूरा विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ १३८—१४२ तक छपा है। पं० लेखराम कृत जीवनचरित में पृष्ठ ६१६—६१८ तक देवनागरी अक्षरों में छपा है। पत्रव्यवहार में अन्तिम श्लोक में 'माघमासि सिते दले' पाठ छपा है वह अशुद्ध है वहाँ "माघमासासितेदले" पाठ चाहिए। ऐसा ही लेखरामकृत जीवन-चरित में छपा है। —संग्रहकर्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और कभी-कभी १२ बजे तक होते रहते थे। उसके पश्चात् महाराज स्नान करते और भोजन पाते थे और थोड़ी देर विश्राम करके १ बजे फिर मञ्च पर आ विराजते और व्याख्यान देना आरम्भ कर देते थे। इस समय भीड़ का कुछ ठिकाना न रहता था, सभास्थल में तिल धरने की जगह न रहती थी। व्याख्यान इतने मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होते थे कि लोग अन्त तक डटे रहते और दत्तचित होकर सुनते रहते थे। व्याख्यान की समाप्ति पर यदि कोई कुछ शङ्का करता तो महाराज उसका समाधान करते थे। ५ बजे सभा विसर्जित हो जाती थी। केवल दो घण्टे का अवकाश लेकर ७ बजे महाराज फिर उपदेश कार्य में लग जाते। इस समय बहुधा आर्यसामाजिक पुरुष ही एकत्र होते थे। कभी-कभी आपस में ही किसी विषय पर शास्त्रार्थ छिड़ जाता था। लोग पक्ष-विपक्ष में बँट जाते थे और महाराज मध्यस्थ का आसन ग्रहण कर लेते थे। ६ बजे तक शास्त्रार्थ और धर्मालाप होता रहता था, फिर सब लोग विश्राम के लिए अपने-अपने डेरे पर चले जाते थे। रात्रि में महाराज बहुत थोड़ी देर के लिए सोया करते थे। शेष समय योगाभ्यास और भगवद्भजन में ही व्यय करते थे। मेले के अन्त तक उपदेश का यही क्रम रहा।

निरन्तर परिश्रम का फल—इस निरन्तर परिश्रम का यह परिणाम हुआ कि मेले की समाप्ति से पहले ही महाराज को दस्तों के रोग ने आ दबाया, परन्तु उन्होंने उपदेश कार्य में कोई विघ्न न पड़ने दिया। इस रोग ने महाराज को मार्च के तीसरे सप्ताह से ही कष्ट देना आरम्भ कर दिया था और प्रतिदिन १०-१२ दस्त आते थे जिससे महाराज का शरीर बहुत निर्बल हो गया था।

कर्नल और मैडम का भारत में आगमन—अमेरिका से कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की १५ फ़रवरी को ही मुम्बई पहुँच गये थे और महाराज के दर्शनों के लिए उत्सुक थे। महाराज भी उनसे शीघ्र मिलना चाहते थे, परन्तु मेले की समाप्ति से पूर्व उपदेश कार्य को न छोड़ सकते थे और रुग्ण हो जाने के कारण मुम्बई जाकर उनसे मिल भी न सकते थे, अतः वे स्वयं कर्नल और मैडम को भी हरिद्वार से लिखते रहते थे और सान्त्वना देते रहते थे और अन्य पुरुषों को भी लिखते रहते थे कि उन्हें विश्वास दिला दें कि शरीर की दशा अच्छी होने पर हम मुम्बई जाकर उनसे अवश्य मिलेंगे।

मेले में जन-संख्या कम थी, देहरादून जाने का संकल्प—इस बार कुम्भ पर पूर्व कुम्भों की अपेक्षा जन-संघट कम था। २७ मार्च के एक पत्र§ में महाराज ने दो लाख का अनुमान किया था, उसमें भी साधु, संन्यासी, वैरागी आदि अधिक थे, गृहस्थ कम थे। महाराज ने हरिद्वार से ही देहरादून जाने का संकल्प कर लिया था। उन्हें आशा थी कि वहाँ के जलवायु से उनसे स्वास्थ्य को लाभ होगा। इसके अतिरिक्त वे पण्डित कृपाराम से देहरादून पधारने का वचन भी दे चुके थे।‡

विशेष घटनाएँ—अब हम कुछ विशेष घटनाओं का उल्लेख करते हैं जो हरिद्वार में हुईं। इन घटनाओं में पाठक पूर्वापर सम्बन्ध की आशा न रक्खें, क्योंकि उस समय उनका कोई लिखित विवरण नहीं रक्खा गया था। जो कुछ घटनाएँ लोगों से सुनकर ज्ञात हुई, वे ही यहाँ अङ्कित की जाती हैं।

मुसलमान बड़े बुत्परस्त—एक दिन उमैदखाँ नामी मुसलमान ने मूला मिस्तरी के पुत्र दुर्गादत्त से कहा कि तुम बड़े बुत्परस्त हो। इसपर महाराज ने उससे कहा कि यह छोटा बुत्परस्त है, परन्तु तुम बड़े बुत्परस्त हो जो तूर के पहाड़—आदम के चरणवाले पहाड़ को पूजते, संगे अस्वद को चूमते, ताज़िये को मानते और क़ब्रों से मुरादें (मनोरथ) माँगते हो।

मुसलमान को आर्य बनाना—एक दिन इसी उमैदखाँ और एक अन्य मुसलमान ने महाराज से प्रश्न

---

§ देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार, पृष्ठ १०८।

‡ देखो ऋषि का पत्रव्यवहार पत्र-संख्या ६६, पृष्ठ १४३। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया कि हमने सुना है कि आप मुसलमानों को भी आर्य बना लेते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वास्तव में हम आर्य बना लेते हैं। आर्य के अर्थ श्रेष्ठ और सत्य मार्ग पर चलनेवाले के हैं, अतः जब आप सत्यधर्म को ग्रहण करेंगे तो आर्य हो जाएँगे।

जूठा खाना निषिद्ध है—उमैदखाँ बोले कि फिर आप हमारे साथ मिलकर खाएँगे वा नहीं तो महाराज ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ जूठा खाने का निषेध है, हम एक-दूसरे के साथ एक जगह नहीं खा सकते। यवन प्रश्नकर्त्ताओं ने कहा कि साथ खाने से प्रेम बढ़ता है। महाराज ने कहा कि कुत्ते भी तो एक जगह मिलकर खाते हैं, परन्तु खाते-खाते ही आपस में लड़ने लगते हैं। इसपर वे चुप हो गये।

एक जाट की कहानी—महाराज ने एक दिन यह कहानी सुनाई थी। एक जाट ने एक गुरु कर लिया। उसकी स्त्री ने कहा कि तूने बहुत बुरा किया, दो धड़ी अन्न का व्यर्थ व्यय बढ़ा लिया। जाट ने उत्तर दिया कि मुझे तू भी प्यारी है और लड़के भी प्यारे हैं और परिवार के लोग भी प्यारे हैं, इसलिए मैं उनमें से तो किसी की सौगन्ध खा नहीं सकता। मैंने तो सौगन्ध खाने के लिए गुरु किया है, तू दो-चार धड़ी अन्न की चिन्ता मत कर। [एक धड़ी=पाँच सेर, लगभग पौने पाँच किलो। —जगदीश्वरानन्द]

शास्त्रार्थ से पराङ्मुख—सतुवा स्वामी की विद्वत्ता की बड़ी प्रसिद्धि थी। वह केवल सत्तू खाया करते थे, इसी से उन्हें लोग सतुवा स्वामी कहा करते थे। महाराज ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया तो उन्होंने कहा कि दयानन्द नास्तिक है मैं उसके दर्शन करना नहीं चाहता। महाराज ने इसके उत्तर में कहला भेजा के यदि वे मेरे दर्शन नहीं करना चाहते तो बीच में पर्दा डालकर शास्त्रार्थ कर लें, परन्तु वे राज़ी न हुए। एक बार पहले भी जब महाराज सन् १८७८ में रुड़की में थे, लोगों ने इन्हीं सतुवा स्वामी को महाराज से शास्त्रार्थ करने को कहा था तब भी उन्होंने ऐसा ही कहा था और महाराज ने यही प्रस्ताव किया था, तब भी वह शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न हुए थे।

तुम लक्कड़-पन्थी हो—एक दिन कुछ निर्मले साधु झण्डा लिए हुए और उसको चँवर करते हुए आये। महाराज ने उनसे कहा कि तुम लोग लक्कड़-पन्थी हो। यदि तुममें कोई वृद्ध पुरुष हो तो उसकी सेवा करो, इस प्रकार अविद्या के जाल में मत फँसो।

अंग्रेज़ भारत में पहले आते तो क्या देखते ?—एक दिन कुछ अंग्रेज़ भी महाराज के पास आये। महाराज ने उनसे कहा कि आप लोग भारत की अवनति और फूट के समय में यहाँ आये हैं, यदि उसकी उन्नति के समय में यहाँ आते तो देखते कि यहाँ कैसे-कैसे शूरवीर और योद्धा विद्यमान थे और आप उनकी विद्या और बल की प्रशंसा करते।

शरीर पर मिट्टी क्यों लगाते हो—किसी ने महाराज से प्रश्न किया कि आप शरीर पर मुलतानी मिट्टी क्यों लगाते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि जो मक्खी हमें काटे उसके मुँह में मिट्टी जाए।

बूढ़े ब्राह्मण का क्रोध—एक दिन महाराज का व्याख्यान सुनते-सुनते ज्वालापुर-निवासी एक बूढ़े ब्राह्मण को इतना क्रोध आया कि वह खड़ा हो गया और कहने लगा—स्वामी ! जी में आता है कि तेरा गला काट डालूँ और फिर अपना भी काट लूँ, तूने हमें बहुत हानि पहुँचाई है, हमारी जीविका मार दी है। महाराज ने कहा कि कोई है जो इसे हटा दे। इसपर पहरेदार ने उसे हटा दिया और लोग भी उसकी ओर दौड़े, परन्तु महाराजज ने कहा कि इतने प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं है, वह मुझसे बलवान् नहीं है, जो मुझे उससे कुछ भय हो। केवल इतनी बात है कि वह व्याख्यान में विघ्न न डाले।

दो दण्डधारी साधु—एक दिन दो दण्डधारी साधु आये। उनमें से एक से महाराज परिचित थे। उससे महाराज ने कहा कि अरे आत्मानन्द ! तूने यह दण्ड-पाखण्ड अभी तक नहीं छोड़ा। मैं तो इसे बहुत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन तक लिये फिरता रहा, परन्तु कुछ लाभ न हुआ।

उदासी साधु की बकवाद—एक दिन कुछ निर्मले साधु एक प्रसिद्ध उदासी साधु को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए लाये। वह बहुत देर तक बकता-झकता रहा। अन्त में उसने कहा मेरा तो परमेश्वर में विश्वास ही हट गया है, मुझे तो कोई बात माननी ही नहीं। इस प्रकार बकवाद करके वह चला गया।

विधवाओं और गौओं की हाय से देश नष्ट हो गया—एक दिन महाराज बैठे हुए थे कि सहसा लेट गये। लोगों को इसपर बहुत आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर पश्चात् महाराज उठे और दीर्घ श्वास खींचकर कहा कि विधवाओं और गौओं की हाय से यह देश नष्ट हो गया।

जटाधारी नागा—एक दिन एक जटाधारी नागा साधु आया और महाराज से बोला कि मैं आपसे पढ़ूँगा। महाराज ने कहा कि हमें तुम्हारे पढ़ाने का अवकाश नहीं है, परन्तु वह वहीं बैठ गया और वहीं रहा।

बहिष्कृत आर्यसमाजी—एक दिन एक २० वर्ष का नवयुवक महाराज के पास आया और श्रीचरणों की वन्दना कर कहने लगा कि मुझे आर्यसमाज अमृतसर से निकाल दिया है। कारण पूछने पर उसने कहा कि मुझपर पुस्तकें चुराने का दोष आरोपित किया गया था। महाराज ने पूछा वह सत्य था वा मिथ्या। उसने स्पष्ट कह दिया कि दोष तो सत्य था, परन्तु मुझे हार्दिक पश्चात्ताप है और मैं चाहता हूँ कि मुझे फिर आर्यसमाज में ले-लिया जाए। महाराज ने यह देखकर कि वह हृदय से अपने किये पर लज्जित है, उसका अपराध क्षमा कर दिया और लाला रामशरणदास रईस मेरठ से कह दिया कि आर्यसमाज अमृतसर को लिख दो कि इसका अपराध हमने क्षमा कर दिया है, इसे पुनः आर्यसमाज में प्रविष्ट कर लें।

प्रारब्ध कैसे पूरा होगा—कहते हैं कि इस प्रश्न के उत्तर में यदि कोई मनुष्य किसी को उस आयु के पूरा होने से ही पहले जो प्रारब्ध से नियत है, मार डाले तो वह प्रारब्ध कहाँ रहा, महाराज ने कहा था कि वह फिर देह धारण करके शेष आयु भोगेगा।

उपर्युक्त की आलोचना—हमें सन्देह है कि महाराज ने ऐसा कहा हो। महाराज के ग्रन्थों से यह पता नहीं चलता कि वह यह मानते थे कि प्रत्येक मनुष्य की आयु नियत होती है जो घट-बढ़ नहीं सकती। वे यह मानते थे कि ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के नियमों के पालन और योगाभ्यास से आयु बढ़ सकती है और तद्विपरीत कार्यों से घट सकती है। वेद में मनुष्य की आयु साधारणतः १०० वर्ष की कही गई है, परन्तु उक्त नियमों के पालन से १०० से भी अधिक हो सकती है जैसेकि सन्ध्या के **'तच्चक्षुर्देवहितम्'** आदि मन्त्र से स्पष्ट है। हमें इस घटना के वर्णन करनेवाले का स्मृति-विभ्रम प्रतीत होता है।

अचारज के पुत्र के प्रश्न—एक दिन कुछ ब्राह्मणों ने एक अचारज के पुत्र को, जो अभी लड़का ही था, धर्मचर्चा करने के लिए महाराज के पास भेजा, उसने जाकर धर्म-विषय में कुछ पूछा। महाराज ने कहा अरे लड़के! तू क्यों पूछता है? जो वृद्ध हैं वे आकर पूछें। उसने कहा कि सब पण्डितों की मेरे लिए यही आज्ञा है। तब महाराज ने कहा कि अच्छा भाई! पूछ, क्या पूछता है? उसने कहा धर्म किसे कहते हैं? महाराज ने कहा कि वेदविहित कर्त्तव्य को धर्म कहते हैं। इसपर उसने **"सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्"** तथा दो और वाक्य बोले। उन्हें सुनकर महाराज हँस पड़े और पूछा कि यह किस वेद के वाक्य हैं तो उस युवक ने कहा कि अथर्ववेद के। महाराज ने अथर्ववेद मँगाकर उसे देना चाहा कि इसमें से वह वाक्य निकाले, परन्तु उसने कहा कि मैं आपके पुस्तक को स्पर्श नहीं कर सकता। इसपर महाराज ने समय नष्ट करना उचित न समझकर उसे फटकार दिया। वह और उसके साथी वहाँ से चले आये। वास्तव में उसने अथर्ववेद के दर्शन तक नहीं किये थे। यह बात उसने पं० लेखराम से स्वीकार की थी कि मैंने अथर्ववेद देखा तक नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो नागे—एक दिन निरञ्जनी अखाड़े के दो नागे महाराज के पास आकर कहने लगे कि हम आपके पास रहकर पढ़ना चाहते हैं। महाराज ने कहा कि हमारे साथ रहकर तुम्हारा पढ़ना नहीं हो सकता। स्वामी शंकराचार्य के साथ दो जैनी उनके शिष्य बनकर रहते थे। उन्होंने स्वामी शंकराचार्य को भोजन में विष देकर मार डाला था। इन्हीं नागों से महाराज ने कढ़ी बनाने की विधि भी पूछी थी। महाराज पाक क्रिया में स्वयं भी सिद्धहस्त थे। उन्हें विचित्र जड़ी-बूटी और मसाले ज्ञात थे, जो दाल-शाकादि को अत्यन्त स्वादिष्ट बना देते थे। महाराज ने वह विधि उनसे लिख भी ली थी। नागों की कढ़ी प्रसिद्ध है, कहते हैं कि वह कई-कई मास रक्खी रहने पर भी नहीं बिगड़ती।

दो और नागे—एक दिन उसी अखाड़े के दो और नागे आये और बड़ी असभ्यता के साथ बातें करने लगे, परन्तु महाराज की त्यौरी पर बल तक न आया। वे हँस-हँसकर उनकी बेतुकी बातों का सभ्यतापूर्वक उत्तर देते रहे। नागों ने देखा कि किसी प्रकार भी महाराज की शान्ति भंग नहीं होती। इसका उनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि कुछ देर के पश्चात् उनकी आत्मा ने उन्हें धिक्कारा और वे लज्जित होकर श्रीचरणों में नत-मस्तक होकर अपने अपराध की क्षमा चाहने लगे। वहाँ क्या था, दया का स्रोत हर समय प्रवाहित रहता था, महाराज ने उन्हें क्षमादान देने में पलभर भी देर नहीं की।

तत्काल नागा बाना छोड़ दिया—नागे साधुओं ने तत्काल ही अपना नागा बाना—पीतल के कड़े, माला, कफ़नी और जटा गंगा में फेंक दिया और अपने सन्देह निवृत्त करके और महाराज की शिक्षा ग्रहण करके, नमस्ते कहकर विदा हो गये।

निर्मले साधु को वेदों के दर्शन—एक दिन ईश्वरसिंह निर्मला साधु महाराज के पास आया और प्रार्थना की कि मैंने आज तक वेदों के दर्शन नहीं किये हैं। आप उन्हें दिखाकर मेरी इच्छा पूर्ण कीजिए। उन्होंने तुरन्त चारों वेदों की पुस्तकें मँगाकर उसे दिखा दिये। फिर उससे महाराज ने कहा कि महीधर और सायण आदि ने वेदों के अर्थों का महान् अनर्थ किया है और उनके भाष्यों की भूलों का दिग्दर्शन कराया। तत्पश्चात् ईश्वरसिंह और महाराज में इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए—

ईश्वरसिंह—पहले तो आप जीव-ब्रह्म की एकता मानते थे।

स्वामी—उस समय हमने सारे वेद नहीं देखे थे। जब सब वेदों को पढ़ा और उनपर मनन किया तो हमें पूर्ण विश्वास हो गया कि जीव-ब्रह्म की एकता मानना वेद-विरुद्ध है।

ईश्वरसिंह—जीव-ब्रह्म की एकता पर तो स्वामी शङ्कराचार्य की साक्षी है, आपके मत पर किसकी साक्षी है।

स्वामी—वेदपुरुष अर्थात् परमात्मा की।

ईश्वरसिंह—कोई-कोई श्रुति अभेद को भी कहती है, इसका क्या उत्तर है।

स्वामी—अभेद की प्रतिपादक श्रुतियाँ भी ठीक हैं और भेद की प्रतिपादक भी। जैसे आकाश से हमारी पर्णकुटी पृथक् नहीं है, इस प्रकार अभेद ठीक है, परन्तु हमारी पर्णकुटी आकाश नहीं, इस प्रकार भेद ठीक है।

देश की धार्मिक दशा पर खेद—एक दिन ईश्वरसिंह और एक अन्य साधु महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने देखा कि बहुत-से साधु एक ओर को जा रहे हैं। महाराज ने उस साधु से पूछा कि साधु लोग कहाँ जा रहे हैं ? उसने कहा कि एक प्रसिद्ध उदासी साधु आये हैं, उन्हीं से मिलने जा रहे हैं। महाराज ने इसपर खेद प्रकट करते हुए कहा कि देखो ! भारतवर्ष में सनातन वेद-विरुद्ध कितने मत-मतान्तर चल गये हैं, कोई उदासी है तो कोई निर्मला, कोई वैरागी है तो कोई अन्य सम्प्रदाय का, मूल-धर्म सबने छोड़ दिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईश्वरसिंह ने कहा कि महाराज एक धर्म होना तो कठिन है। महाराज ने कहा कि पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए, इससे बहुत-कुछ मेल और एकता हो सकती है।

तीर्थयात्रा की व्यर्थता—एक दिन मूला मिस्तरी ने महाराज से बद्रीनाथ, केदारनाथ के तीर्थों के विषय में पूछा। महाराज ने कहा कि ये तीर्थ मैंने भी देखे हैं और तुम भी देख आये हो, जो कुछ वास्तविकता तुमने देखी हो उसे बिना लोकापवाद के भय के कह दो। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैंने व्यर्थ यात्रा की और मुझे खेद है कि मैंने इतना परिश्रम किया।

आपका पक्ष सत्य है—एक दिन एक मारवाड़ी पण्डित ने आकर अपनी योग्यता दर्शाने के लिए संस्कृत में बोलना आरम्भ किया। वह दो घण्टे तक बोलता रहा। महाराज उसकी बातों का उत्तर देते रहे। अन्त में उसे ज्ञात हो गया कि महाराज का पक्ष सत्य और उसका मिथ्या है। पण्डित था सत्यग्राही। इस निश्चय के होते ही वह महाराज से क्षमा माँगने लगा कि यह मेरा बड़ा अपराध था कि वाद में आपका विरोध किया।

आश्रम में स्त्रियाँ नहीं ठहर सकतीं—एक दिन काठियावाड़ गुजरात की दो स्त्रियाँ अपने पुरुषों के साथ महाराज के लिए मिष्टान्न लाई और एक ओर को बैठ गईं। ४ बजे महाराज ने कहला दिया कि हमारे यहाँ स्त्रियों के ठहरने के लिए स्थान नहीं है। तब वे चली गईं और फिर कई दिन तक वे स्त्री-पुरुष आते रहें, परन्तु ४ बजे के पश्चात् चले जाते थे।

सत्यग्राही मुसलमान तहसीलदार—नजफ़अली तहसीलदार रुड़की भी कभी-कभी महाराज की सेवा में आया करते थे। उनके मन में हठ न थी और युक्तियुक्त बात को स्वीकार कर लिया करते थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि हमारे पैग़म्बर साहब ने मनुष्य को चार स्त्रियों तक से विवाह करने की आज्ञा दी है। जैसे एक राजा को कई मन्त्रियों की आवश्यकता होती है ऐसे ही एक मनुष्य को एक से अधिक स्त्रियों की आवश्यकता है। महाराज ने कहा कि एक पुरुष के लिए एक ही स्त्री होनी चाहिए। अनुभव और युक्ति से भी यही बात ठीक सिद्ध होती है। देखिए ! एक वेश्या सैकड़ों पुरुषों को बिगाड़ती है। जब एक घर में कई स्त्रियाँ हों तो उनके लिए एक पुरुष कभी पर्याप्त नहीं हो सकता। इसीलिए वेदों के अनुसार एक पुरुष का एक ही स्त्री से विवाह होना चाहिए। तहसीलदार साहब की समझ में यह बात आ गई और उन्होंने उसकी युक्तियुक्तता स्वीकार कर ली।

स्वामीजी वली हैं—एक दिन तहसीलदार साहब विकारअलीबेग डिपुटी कलक्टर को साथ लेकर आये और व्याख्यान सुनने लगे। व्याख्यान सुनकर कहा कि अब तक तो कुछ सन्देह भी था, परन्तु आज पूरा निश्चय हो गया कि ब्रह्मविद्या जितनी संस्कृतभाषा में है इतनी किसी भाषा में नहीं है और डिपुटी साहब ने कहा कि स्वामीजी वली लोग (ऋषि) हैं, मैं भी इनका सेवक हूँ।

हर की नहीं हाड़ की पैड़ी है—डिपुटी साहब ने पूछा कि यह हरिद्वार और हरकी पैड़ी क्या है ? महाराज ने कहा कि हर की नहीं हाड़ की पैड़ी है, क्योंकि सहस्रों मन हड्डियाँ यहाँ पड़ती हैं। फिर उन्होंने पूछा कि यदि गङ्गास्नान का ही माहात्म्य है तो यह क्यों आवश्यक है कि हर की पैड़ी पर ही नहाया जाए। महाराज ने कहा कि यह तो पण्डों की लीला है, यदि लोग हर जगह गङ्गा में स्नान करने लगें तो पण्डाजी दक्षिणा कहाँ से लें। आपके यहाँ अजमेर में भी यही बात है। मुजावर कहते हैं कि न इधर चढ़ाओ और न उधर बल्कि इन ईंटों पर चढ़ाओ, मानो ख्वाजा साहब उन्हीं ईंटों में घुसे हैं। फिर उन्होंने कोई प्रश्न न किया।

तीन जिज्ञासु विद्वान्—एक दिन नदिया (बंगाल) की ओर से तीन पण्डित आये, जो विद्वान् थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने वेदार्थ-विषय पर महाराज से विचार-विनिमय किया। उनका व्यवहार सर्वथा सभ्य और शिष्टोचित था। ऐसा प्रतीत होता था कि वे वास्तव में जिज्ञासु थे, कोरे वितण्डावादी न थे। महाराज भी बड़ी प्रसन्नता से उनसे विचार करने लगे। यह विचार चार दिन तक प्रातःकाल ६ बजे से ११ बजे तक होता रहा, अन्त में तीनों पण्डितों की ज्ञानपिपासा शान्त हो गई, उनके संशयों का उच्छेद हो गया। उन्होंने महाराज के अगाध वैदिक पाण्डित्य और असाधारण तर्कशक्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और कहा हम बहुत-से मन्त्रों के अर्थ नहीं समझे थे, अब उन्हें स्वामीजी की कृपा से समझ गये हैं, निःसन्देह उनके अर्थ ठीक हैं। फिर भी वह आठ दस दिन तक आते रहे, परन्तु फिर उन्होंने महाराज के साथ शास्त्रार्थ नहीं किया। हाँ, जब कभी उन्हें कोई शङ्का होती थी, उसे निवृत्त कर लिया करते थे।

अलीक किंवदन्ती, महाराजा काश्मीर का पत्र—महाराजा काश्मीर से किसी ने जा कहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहान्त हो गया। उन्होंने इसपर विश्वास तो न किया, परन्तु संशय में अवश्य पड़ गये। उन्होंने अपने किसी कर्मचारी को पत्र देकर भेजा और उससे कह दिया कि यदि स्वामीजी जीवित होंगे तो कुम्भ पर अवश्य आवेंगे। यदि वे मिल जाएँ तो उन्हें यह पत्र दे देना और उत्तर ले-आना। उस पत्र में महाराजा ने स्वामीजी से यह प्रार्थना की थी कि आप एक ऐसा ग्रन्थ बना दें जिससे बिना पक्षपात और खींचातानी के यह सिद्ध हो जाए कि जो लोग वैदिक धर्म त्यागकर अन्य धर्मावलम्बी हो गये हैं वे यदि वैदिक धर्म में वापस आना चाहें तो आ सकते हैं और उसमें यह भी सिद्ध किया जावे कि अन्य धर्मी ईसाई, मुसलमान भी वैदिक-धर्मी हो सकते हैं और उनके साथ खान-पानादि का व्यवहार वैदिक धर्मियों के समान किया जा सकता है। महाराज ने उस समय तो उस पुरुष से केवल इतना ही कह दिया कि ऐसा ग्रन्थ शास्त्रप्रमाण-पुष्ट सहज में ही बन सकता है और यह कहा कि जब आप जाएँ तब मुझसे मिलके जाएँ, मैं महाराजा के लिए पत्र दूँगा। फिर ज्ञात न हुआ कि वह मनुष्य जाते समय महाराज से मिला वा नहीं और यदि मिला तो महाराज ने उसे पत्र दिया वा नहीं।

कटुभाषी साधु अनुगत—एक दिन एक बजे एक निर्मला साधु, जिसका नाम जोतसिंह था, आया और महाराज से बातें करने लगा। उसके शब्द व्यंग्य और कटाक्ष से पूर्ण थे। हकीम थानसिंह रुड़की-निवासी भी बैठे हुए थे। साधु के शब्द उन्हें बुरे लगे। उन्होंने साधु से कहा कि चुप रह, अन्यथा मुँह ठीक कर दिया जाएगा। महाराज ने उन्हें रोक दिया और कहा कि यह बातें मुझसे कर रहे हैं, तुम बीच में हस्तक्षेप मत करो। अन्त में साधु रुष्ट होकर चला गया, परन्तु अगले दिन फिर आया और बातें करके चला गया। तीसरे दिन फिर आया। उस समय महाराज व्याख्यान दे रहे थे। जब व्याख्यान से उठे तो साधु की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। उसने महाराज के चरण पकड़ लिये और कहने लगा कि मैंने जो कुछ कटूक्ति की है उसे क्षमा कीजिए और अपनी शरण में लेकर कृतार्थ कीजिए। महाराज ने अपने पैरों पर से उसे उठाया और उसे सान्त्वना देकर अपने पास बिठाया और उसके अनुतप्त हृदय को उपदेशामृत से सींचकर शान्त किया। रात्रि को भी वह महाराज के डेरे पर ही रहा और पूर्णरूप से उनका अनुगामी बन गया।

तुम्हारी बातों से अभ्यास में विघ्न पड़ता है—एक रात्रि को हकीम थानसिंह अपने दो साथियों के साथ एक बजे से पाँच बजे तक बातें करते रहे। प्रातःकाल जब महाराज डेरे के बाहर आये तो हकीमजी ने उन्हें पानी का लोटा दिया। जब महाराज शौच से निवृत्त होकर वापस आये तो उन्होंने हकीमजी से कहा कि हम रात्रि को अपने डेरे के समीप किसी को बातें नहीं करने देते हैं, परन्तु आज तुमने रात्रिभर बातें कीं जिससे मेरे कार्य में बहुत विघ्न हुआ। महाराज रात्रि में योगाभ्यास किया करते थे।

वृद्ध संन्यासी का आदर, नवीन वेदान्त पर वार्त्तालाप—एक दिन प्रातःकाल ही आनन्दवन नामी एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृद्ध संन्यासी अपने दस-बारह शिष्योंसहित आये। महाराज ने उन्हें दूर से ही देख लिया और डेरे के द्वार पर जाकर मुस्कराते हुए उनका स्वागत किया तथा सम्मानपूर्वक उन्हें आसन दिया। संन्यासी महाशय की वयः ८० वर्ष के लगभग थी, परन्तु शरीर से स्वस्थ और फुर्तीले थे। जब वे और महाराज आसन ग्रहण कर चुके तो आपस में संस्कृत में वार्त्तालाप आरम्भ हुआ। वार्त्तालाप का विषय था नवीनवेदान्त। ११ बजे तक विचार होता रहा। ११ बजे महाराज को सूचना दी गई कि भोजन तैयार है। महाराज ने आगन्तुक और उनके शिष्यों को विनयभाव से भोजन के लिए कहा, परन्तु उसने कहा कि जब तक मीमांस्य विषय का निर्णय न हो जाएगा हम भोजन नहीं करेंगे। उसके पश्चात् महाराज ने चारों वेद और ६०-६५ अन्य ग्रन्थों में से स्वामी आनन्दवन को अपने कथन की पुष्टि में प्रमाण दिखाने आरम्भ किये। विचारधारा दो बजे तक प्रवाहित होती रही।

मैंने दयानन्द का मत स्वीकार कर लिया—अन्त में स्वामी आनन्दवन को सन्तोष हो गया कि दयानन्द जो कहते हैं वह ठीक है। तब उन्होंने खड़े होकर अपने शिष्यों को सम्बोधित करके कहा कि मैंने दयानन्द के मत को स्वीकार कर लिया। तुम भी ऐसा ही मानो। इसके पश्चात् स्वामी आनन्दवन बिना भोजन किये ही चले गये। उसके पश्चात् भी वे कभी-कभी सभा-मण्डप में आते रहे, परन्तु कभी बैठे नहीं, मुस्कराकर थोड़ी देर खड़े होकर चले जाया करते थे। पहले दिन लोगों के पूछने पर महाराज ने कहा था कि यह बड़े विद्वान् संन्यासी हैं। अब तक वह जीव-ब्रह्म को एक मानते थे, परन्तु अब हमारे समान पृथक् मानने लगे हैं।

कुरूप और कर्कश पण्डित—एक दिन एक पण्डित आया, वह रावलपिण्डी का रहनेवाला और महाराज का पूर्व परिचित था। उसकी आकृति विचित्र थी। जिसे देखकर न हँसता हो तो हँसने लगे। वह एक आँख का स्वामी था, हाथों से लुंजा था, उसके मुख पर शीतला ने अपने आगमन के चिह्न अङ्कित कर दिये थे, वर्ण कृष्ण था। मूँछें कटी हुई और दाढ़ी मुँडी हुई थी। खोपड़ी ने बालों से पूर्ण विरोध कर रक्खा था। उसपर एक बड़ा साफ़ा शोभा दे रहा था। साथ में दो विद्यार्थी भी थे। हकीम थानसिंह द्वार पर नियत थे। उसने आते ही हकीमजी से कर्कश स्वर में पूछा कि दयानन्द कहाँ है ? हकीमजी ने पूछा कौन दयानन्द ! उसने कहा वही साधु जो दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध है। हकीमजी ने कहा कि सभ्यता से बोलो, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती मुख से कहो तब मैं तुम्हें बता सकता हूँ। यह बातें कहीं महाराज ने भी सुन लीं और उसकी बोली पहचान ली। तब उन्होंने हकीमजी को आज्ञा दी कि आने दो। डेरे के भीतर जाते ही उसने कहा कि तुमने जो अशुद्धियाँ मेरी चिट्ठी में बतलाई हैं, उन्हें दिखाओ। यही कहता रहा और क्रोध में भर गया और चिल्लाने लगा। उसका कण्ठ शुष्क हो गया और कहने लगा पानी लाओ।

थ्वाडे घर दा पानी कौन पिये—हकीमजी उसके लिए जल ले-गये, परन्तु उसने कहा कि मैं यह पानी नहीं पीऊँगा, गङ्गाजी से लाओ। हकीमजी ने कहा कि मैं तो प्रातःकाल गङ्गा के ठण्डे पानी में हाथ नहीं डालता तुम्हें पीना है तो पिओ नहीं तो तुम्हारी इच्छा। महाराज ने हकीमजी से कहा कि गङ्गाजी से ही ला दो, परन्तु जब वह ले-आये तो वह यह बकता हुआ चला गया, थ्वाडे घर दा पानी कौन पिए ! थ्वाडे घर दा पानी कौन पिए !!

मुर्दे को आश्रम के पास मत गाड़ो—एक रात्रि को कुछ कांस्टेबिल मशाल लिये हुए एक मुर्दे को लाये और उसे महाराज के डेरे के सामने सड़क पर गाड़ने लगे। कुछ शोर सुनकर महाराज ने हकीम थानसिंह को भेजा कि देखो शोर क्यों हो रहा है। उन्होंने जाकर देखा और लौटकर महाराज से सारा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृत्तान्त कहा। महाराज ने आज्ञा दी कि मुर्दे को हमारे बाड़े में मत गाड़ने दो। हकीमजी ने कांस्टेबिलों से जाकर कहा कि इसे यहाँ मत गाड़ो, परन्तु वे न माने। इतने में एक गोरा सार्जेण्ट चक्कर लगाता हुआ वहाँ से निकला उसने हकीमजी से कहा कि तुम मुर्दे को क्यों नहीं गाड़ने देते ? हकीमजी ने कहा कि यह स्वामी दयानन्द सरस्वती का बाड़ा है और उनकी आज्ञा है कि हमारे बाड़े में मत गाड़ने दो। उसने कहा कि क्या वही दयानन्द है जो सबको खुदा की तरफ बुलाता है। हकीमजी ने कहा कि 'हाँ'। इसपर उसने कांस्टेबिलों को आज्ञा दी कि यहाँ मत गाड़ो। तब वे लोग उस मुर्दे को दूसरी जगह ले-गये।

कमिश्नर साहब आदि सन्तुष्ट होकर गये—एक दिन प्रातःकाल के समय जंगलात के कंज़रवेटर, मेरठ के कमिश्नर, सहारनपुर के कलक्टर और डिपुटी विकारअलीबेग कई अन्य लोगों के साथ आये और व्याख्यान के डेरे के नीचे खड़े हो गये और पूछा कि स्वामीजी कहाँ हैं ? हकीम थानसिंह ने कहा कि ईश्वरोपासना कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि क्या तुम उनके पास जाकर कह सकते हो कि मेरठ के कमिश्नर साहब आये हैं। हकीमजी ने कहा कि मैं जा तो सकता हूँ पर कुछ कह नहीं सकता। इतने में बा० श्यामलाल ने कहा कि यदि आप थोड़ी देर ठहरें तो आप स्वामीजी से मिल सकते हैं। वे ठहरने पर सम्मत हो गये। उनके लिए कुर्सियाँ डलवा दी गईं और वे बैठ गये। थोड़ी देर में महाराज भी वहाँ आ गये। उपर्युक्त चारों महोदय खड़े हो गये और फिर प्रसन्नवदन होकर ईश्वर-विषय पर बात-चीत करने लगे। वे महाराज के विचारों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और यह कहकर चले गये कि यदि आपको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो सूचना देने पर वह भेज दी जाएगी। उसी दिन महाराज की रक्षा के लिए उन्होंने उनके डेरे पर पुलिस का पहरा लगवा दिया।

तीन पौराणिक विद्वानों को पत्र—जितने भी पौराणिक साधु कुम्भ पर आये थे उनमें से स्वामी विशुद्धानन्द, स्वामी जीवनगिरि और स्वामी सुखदेवगिरि को महाराज विद्यावैभव-सम्पन्न समझते थे। उनके विषय में वे कहा करते थे कि इन तीनों को मैं विद्वान् जानता हूँ और इन्होंने ग्रन्थ भी गूढ़ विचार से पढ़े हैं, शेष तो सब लड्डू-पूरी उड़ानेवाले हैं। एक दिन महाराज ने इन तीनों विद्वानों के लिए इस आशय का पत्र लिखा कि मैं जो बात कर रहा हूँ उसे आप सब लोग जानते हैं कि वह सर्वथा ठीक है, परन्तु विद्वान् होते हुए भी आप उसे प्रसिद्ध क्यों नहीं करते। महाराज ने वह पत्र स्वामी रत्नगिरि को दिया कि उसे प्रशंसित महानुभावों के पास ले-जाओ। वे उसे प्रथम ही स्वामी सुखदेवगिरि के पास ले-गये। पत्र को देखते ही उनकी त्यौरी चढ़ गई और रत्नगिरिजी से कहने लगे कि सारी दुनिया दयानन्द के विरुद्ध है, तुम दोनों जगह जाते हो, तुम्हें यह उचित नहीं है कि यहाँ की बात वहाँ कहो और वहाँ की यहाँ, अब आगे को दयानन्द का पत्र हमारे पास न लाना।

यह पता न चल सका कि रत्नगिरिजी अन्य दो विद्वानों के पास भी उक्त पत्र ले-गये वा नहीं और यदि ले-गये तो उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

यूरोपियन डॉक्टर से वार्त्तालाप—एक दिन नैनीताल के एक यूरोपियन डॉक्टर महाराज के पास आये। उनसे हवन पर बात-चीत हुई। महाराज ने उनसे पूछा कि विषूचिका के रोकने का तुमने क्या प्रबन्ध किया है। उन्होंने उत्तर दिया कि हम विष्ठा को कुछ तो गङ्गा में बहा देते हैं, कुछ को भूमि में दबा देते हैं और शेष को जलवा देते हैं। स्वामीजी ने कहा कि विष्ठा के भूमि में दबाने से विषूचिका अवश्य फैलेगी। डॉक्टर ने कहा कि कदापि नहीं फैल सकती, सरकार ने बहुत प्रबन्ध कर दिया है। महाराज ने पूछा कि विष्ठा कितने दिनों से दबाया जाता है। डॉक्टर ने उत्तर दिया कि १२ दिन से। महाराज यह सुनकर थोड़ी देर तो चुप रहे, फिर बोले कि आज से तीसरे वा चौथे दिन विषूचिका फैलेगी। उनके साथ रुड़की की सेना के डॉक्टर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे। महाराज की बात सुनकर वह मुस्करा दिये और चले गये। तीसरे दिन उक्त रोग से कई मनुष्य मर गये।§

डॉक्टरों को परामर्श—कहते हैं कि दोनों डॉक्टर सायंकाल के ७ बजे घबराये हुए महाराज के पास आये और कहा कि विषूचिका के बन्द होने का उपाय बतलाइए। उन्होंने कहा कि घी और कपूर जलवाइए, विष्ठा को दूर ले-जाकर ऐसे स्थान पर जलवाइए जिधर से हरिद्वार की ओर वायु न आती हो और मेले को कम करने का भी उपाय कीजिए। कहते हैं कि उसके पश्चात् विष्ठा दूर ले-जाकर जलाया जाने लगा।

मैं तो ईश्वरोक्त वेद को ही मानता हूँ—एक दिन दो प्रतिष्ठित पञ्जाबी सज्जनों ने अञ्जलिबद्ध होकर महाराज से पूछा कि आप ग्रन्थसाहब को मानते हैं वा नहीं तो महाराज ने उत्तर दिया कि ग्रन्थसाहब मनुष्यकृत है, मैं तो ईश्वरोक्त वेदों को ही मानता हूँ।

आत्मा की न्यूनताएँ—एक दिन एक वेदान्ती साधु रामसिंह ने महाराज से कहा कि आप ज्ञानी होकर भी भिक्षुओं के समान ईश्वर से भिक्षा माँगते हैं। ऐसे कर्म तो अज्ञानियों के लिए हैं, आपके लिए नहीं। महाराज ने उत्तर दिया कि यह सत्य नहीं कि ज्ञानीजन प्रार्थना नहीं करते, आप तो अपने को पूर्ण वेदान्ती मानते हैं, फिर भी महावाक्य रटते रहते हैं। भूख-प्यास आदि शारीरिक न्यूनताएँ जैसे अन्न-जल से पूरी होती हैं वैसे ही आत्मा की न्यूनताएँ बिना ईश्वराराधना के पूरी नहीं हो सकतीं।

स्वामीजी अपने ग्रन्थों का अनुवाद कराना नहीं चाहते थे—एक दिन एक पुरुष ने महाराज से कहा कि यदि आप अपने ग्रन्थों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद करा दें तो जो लोग आर्यभाषा नहीं जानते उन्हें वैदिक धर्म के जानने में बहुत सुविधा हो। महाराज ने उत्तर दिया कि भारतवासियों को आर्यभाषा का सीख लेना कुछ कठिन नहीं है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा के सीखने का परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है। महाराज का विचार था कि सारे भारत की एक राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए और वे आर्यभाषा को ही राष्ट्रीयभाषा बनने के योग्य समझते थे और इसी कारण वे उसके प्रचार में इतने उद्योगी थे।

तर्कशस्त्र छोड़ने पड़े—पण्डित हरिसिंह एक निर्मला साधु था, जिसकी विद्वत्ता की पञ्जाब में बड़ी धाक थी। उसने भी वेदान्त-विषय पर महाराज से शास्त्रार्थ किया था, परन्तु अन्त में उसे भी तर्कशस्त्र छोड़ देने पड़े थे।

विचित्र वार्त्तालाप—५ एप्रिल को महाराज की जंघा में एक छाला पड़ गया था जिससे उन्हें बहुत पीड़ा थी और दस्तों के कारण वे निर्बल भी बहुत थे। उस दिन महाराज ने अपना व्याख्यान भी स्थगित कर दिया था। यह एक ऐसी बात थी जो अब तक न हुई थी, महाराज के रुग्ण होने की मेलेभर में खबर फैल गई। कुछ साधुओं ने इससे अनुचित लाभ उठाना चाहा। उन्होंने समझा कि आज बहुत अच्छा अवसर है। दयानन्द आज रोगी होने के कारण शास्त्रार्थ नहीं कर सकेगा। आज चलकर उससे शास्त्रार्थ करने के लिए कहना चाहिए। वह शास्त्रार्थ से नकार करेगा, तब हम प्रसिद्ध कर देंगे कि दयानन्द शास्त्रार्थ से हट गया, परन्तु इन बुद्धिमानों ने यह न समझा कि सिंह कैसी ही दीन दशा को प्राप्त हो, शृगालों को परास्त करना उसके लिए तनिक भी कठिन नहीं। साधुओं का एक झुण्ड महाराज के पास पहुँचा। महाराज उस

---

§ पं० लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि इस वार्त्तालाप के तीसरे दिन स्वामी आनन्दगिरि के गृह में ६ मनुष्य विषूचिका से मर गये और सायंकाल तक ३० मनुष्य मर गये, परन्तु महाराज के २७ मार्च के एक पत्र में, जो उक्त पुस्तक में ही उद्धृत किया गया है, लिखा है कि तीन दिन में ५ मनुष्य विषूचिका से मरे हैं, अतः हमें यह घटना सन्दिग्ध-सी प्रतीत होती है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समय शय्या पर लेटे हुए थे। जब महाराज ने उस झुण्ड को आते देखा तो उठकर बैठ गये और साधुओं को आदर से बिठाकर आने का कारण पूछा तो एक साधु ने आगे बढ़कर कहा कि आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं। महाराज ने कहा, 'बहुत अच्छा'। इस शब्द के सुनते ही साधुओं का मुँह तनिक-सा रह गया। जिस आशा को लेकर वे आये थे उसपर तुषार पड़ गया। महाराज ने फिर पूछा कि किस विषय पर। साधु ने कहा कि हम वेदान्त-विषय पर चर्चा करेंगे। महाराज को विद्वान्-अविद्वान् की अद्भुत पहचान थी। वे मनुष्य की भावभंगी, आकार, चेष्टा आदि को देखकर तुरन्त जान जाते थे कि वह कितने पानी में है और फिर उसी ढंग से उससे बातें करते थे। महाराज ने समझ लिया कि प्रतिवादी कोई उच्च कोटि का विद्वान् नहीं है, अतः महाराज ने ऐसे ढंग से प्रश्न किये जिससे ५-७ मिनट में ही वह निरुत्तर हो गया।

स्वामीजी—पहले आप मुझे समझा दें कि वेदान्त से आपका क्या अभिप्राय है।

साधु—यही कि जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य है।

स्वामीजी—जगत् से क्या अभिप्राय है, उसके भीतर क्या-क्या पदार्थ हैं और मिथ्या से क्या अभिप्राय है ?

साधु—परमाणु से लेकर सूर्य पर्यन्त जो कुछ है उसे जगत् कहते हैं और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठ है।

स्वामीजी—आपका शरीर, बोलना, चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी उसके भीतर हैं वा नहीं।

साधु—हाँ, यह सब उसी के भीतर हैं।

स्वामीजी—और आपका मत भी उसी के भीतर है वा बाहर ?

साधु—हाँ, वह भी जगत् के भीतर है।

स्वामीजी—जब आप स्वयं ही कहते हैं कि हम, हमारा गुरु, हमारा मत, हमारी पुस्तक, हमारा बोलना और उपदेश यह सब मिथ्या-ही-मिथ्या है तो हम आपसे क्या कहें। जब स्वयं वादी के कथन से ही उसका दावा खारिज होता हो तो साक्षी आदि की आवश्यकता ही क्या है।

साधु हक्का-बक्का-सा रह गया और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपनी मण्डली के साथ वहाँ से चला आया।

गुरुजी के आदेश से ही मैंने प्रचार-कार्य आरम्भ किया है—मुंशी मूलचन्द मुदर्रिस कनखल निवासी ने महाराज का मूर्त्ति-खण्डनविषयक व्याख्यान सुनकर मूर्त्तिपूजा त्याग दी थी। एक दिन मूला मिस्तरी के प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा था कि प्रथम तो मुझे ही विचार हुआ था कि मूर्त्तिपूजन केवल अविद्या-अन्धकार है, परन्तु गुरुवर्य्य स्वामी विरजानन्दजी भी उसका खण्डन किया करते थे और कहा करते थे कि कोई हमारा शिष्य ऐसा हो जो इस अन्धकार को देश से दूर करे, उनके आदेश से मैंने वैदिक धर्मप्रचार का कार्य अपने ऊपर लिया है।

दयानन्द हमारे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करे नहीं तो पराजित समझा जाए—लाला भोलानाथ वैश्य सहारनपुर निवासी पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी के बड़े भक्त थे। उन्होंने ही पण्डितजी को पञ्जाब से कुम्भ पर महाराज से शास्त्रार्थ करने को बुलाया था। एक विज्ञापन पण्डितजी की ओर से छपवाकर मेले में बाँटा था कि हम स्वामी दयानन्द के विरुद्ध सनातन धर्मसभा का उपदेश करते हैं जिसे सुनना हो वह जूना अखाड़े में आ जावे। पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज भी कुम्भ पर पहुँच गये थे और अन्य बहुसंख्यक पौराणिक भी वहाँ उपस्थित थे। एक दिन सनातनियों में आपस में यह गोष्ठी हुई कि चलो दयानन्द से शास्त्रार्थ करें, परन्तु पण्डित श्रीधर डासना जिला मेरठ निवासी ने कहा कि दयानन्द परदेशी है और वेदज्ञ, चतुर और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाग्मी है और उसने वेद का भाष्य भी किया है। आप लोग केवल वैयाकरण हैं, आप यदि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने जाओगे तो नीचा देखोगे। इसपर कोई न गया, परन्तु एक दिन सनातन धर्मसभा में पण्डित चतुर्भुज ने एक उर्दू-लेख पढ़ा जिसका सारांश यह था कि भाइयो ! इस समय यहाँ पर चारों वेद और वेदाङ्ग तथा पण्डित भी उपस्थित हैं, दयानन्द को, जो सबसे विरुद्ध उपदेश करता है, चाहिए कि वह हमसे यहाँ आकर शास्त्रार्थ करे ताकि सत्यासत्य का निर्णय हो जाए, यदि दयानन्द यहाँ न आवे तो सबको स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिए कि वह हमसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता है। तदनुसार तीस पण्डितों के हस्ताक्षरों से निम्नलिखित पत्र वैसाख बदी १ को महाराज के पास भेजने के लिए लिखा गया।

सनातनियों का पत्र—श्री गणेशाय नमः। श्री दयानन्द सरस्वतीजी के प्रति निवेदन। निम्नलिखित साधुवर्ग, पण्डितजन तथा सभासद् लोगों की इच्छा है कि तीन-चार दिन से यहाँ नित्य ४ से ६ बजे पर्यन्त धर्मविषयक सत्यासत्य विचार होता है और यह भी ज्ञात भया कि जब से जूना अखाड़ा मायादेवी के पास अलीगढ़ सत्य धर्मावलम्बी सभा का प्रारम्भ भया तब से इस सभा से आपके पास पत्र भेजे गये। अब यह पत्र भेजते हैं यदि इस सभा में आकर आप भी कुछ वक्तृता करें तो इसमें दो फल हमको दीखते हैं, एक यह कि एकान्त में बैठकर जो वेद-शास्त्र द्वारा व्याख्यान देते रहते हो विद्वानों के सम्मुख वक्तृता करने में सबको यह ठीक निश्चित हो जाएगा कि आपका कथन वेद व शास्त्र के अनुसार है वा नहीं, दूसरा यह कि यदि आपका कहना वेद व शास्त्र के अनुसार निकला तो हम सब आपके मत-प्रतिपादन में उद्यत हो जाएँगे और इस ऐक्यभाव से आर्यावर्त्त को बड़ा भारी लाभ होगा। आप कृपा करके सभा में अवश्य पधारें यदि किसी हेतु से आना न हो तो हेतु लिखिएगा।

दयानन्द यहाँ आवे तो सिर फोड़ दो—हस्ताक्षर करनेवाले पण्डितों में से ही एक पण्डित इस पत्र को लेकर स्वामीजी के पास चले। उनके चलते समय कुछ साधुओं ने कहा कि यदि वह यहाँ आवे तो ..... को एक पत्थर मारो, सिर फूट जावे, कुछ परवाह नहीं एक को फाँसी हो जावेगी। महाराज ने यह पत्र पाकर इसका उत्तर भेज दिया जिसका भावार्थ यह था कि शास्त्रार्थ के लिए मैं हर समय उद्यत हूँ, परन्तु उसका प्रबन्धकर्त्ता कोई राजपुरुष हो, शास्त्रार्थ में पण्डितों के अतिरिक्त कोई अपठित मनुष्य न आने पावे। शास्त्रार्थ की जगह न मेरी हो न आपकी। जूना अखाड़े में आने से मुझे शारीरिक हानि पहुँचने का भय है। शरीर-पात की तो मुझे चिन्ता नहीं, परन्तु जो उपकार-कार्य मैं कर रहा हूँ वह अधूरा रह जावेगा। महाराज जानते थे कि पत्र लेखकों का अभिप्राय उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और इसीलिए वे चाहते थे कि सरकारी प्रबन्ध हो। इसके पश्चात् कई पत्र आये-गये, परन्तु महाराज पूर्वोल्लिखित बातों पर ही जमे रहे।

तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते, स्वामी विशुद्धानन्द का पत्र—सनातनियों के अन्तिम पत्र में महाराज ने उन्हें लिखा था कि यदि स्वामी विशुद्धानन्दजी कह दें कि आप लोग मेरी अपेक्षा वेदों को अधिक समझते हैं, तो मैं शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ और मैं उन्हीं को मध्यस्थ नियत करता हूँ। जब स्वामीजी की इस चिट्ठी को लेकर सनातनियों के कुछ मनुष्य स्वामी विशुद्धानन्दजी के पास गये तो उन्होंने पण्डित चुतर्भुज और श्रद्धाराम को इतनी और ऐसी अश्लील गालियाँ दीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता और कहा कि तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते हो, मैं तुम्हारे शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नहीं हो सकता और स्वामीजी को एक चिट्ठी लिख दी कि बहुत-से मूर्ख और अविद्वान् उपद्रव करने के अभिप्राय से इकट्ठे हुए हैं, आप कदापि ऐसे लोगों की बात पर ध्यान न दें और मैं ऐसे लोगों के कहने से उस सभा का मध्यस्थ नहीं हो सकता जिसमें आप जैसे विद्वान् शास्त्रार्थ करें। यह चिट्ठी ३ बजे महाराज के पास आई। उस समय सहस्रों मनुष्य सभा में उपस्थित थे। यह चिट्ठी महाराज की आज्ञा से पण्डित भीमसेन ने उच्च

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वर में सभा में पढ़कर सुना दी जिससे सनातनियों के षड्यन्त्र का भाँडा फूट गया। इसके पश्चात् पक्षाघात के रोगी के समान सनातनी दल निष्क्रिय और निस्तब्ध हो गया और फिर उसकी ओर से कोई चिट्ठी न आई।

पण्डित श्रद्धाराम की धूर्त्तता—पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने कुछ साधुओं को बहकाया कि तुम लोग सभा में आकर यह कहो कि हम दयानन्द के उपदेश सुनकर अपने धर्म से पतित हो गये थे, अब हमारा प्रायश्चित्त कराकर हमारी पाप-निवृत्ति की जावे। इसपर यह लीला रची गई कि उनको गङ्गाजी पर ले-जाकर स्नानादि कराया गया और सारे मेले में उन्हें बाजे-गाजे के साथ घुमाया गया और यह कि उन लोगों ने दयानन्द के कथन को मिथ्या जानकर पुनः सनातनधर्म की शरण ली है, अच्छे प्रकार मेले में प्रचरित किया गया। ये साधु कभी महाराज के व्याख्यानों में जाकर फटके भी न थे। पण्डित श्रद्धाराम ने इस बनावटी घटना को खूब रंग देकर और उसपर झूठ की वार्निश करके १६ एप्रिल सन् १८७६ के 'कोहेनूर लाहौर' नामक समाचारपत्र के अङ्क में छपवाया और अपने लेख में यहाँ तक लिख दिया कि हमारी सभा के होते ही दयानन्द सरस्वती मेले को छोड़ गये।

पं० श्रद्धाराम से घृणा—पण्डित श्रद्धाराम के इस अलीक व्यवहार और घृणित कार्य को देखकर उनके साथी तक उनसे अलग हो गये। जो पत्र ३० पण्डितों के हस्ताक्षरों से शास्त्रार्थ के लिए महाराज के पास भेजा गया था उसपर हस्ताक्षर करनेवालों में एक पण्डित गोपालशास्त्री, जम्मू-निवासी भी थे।

मुझे बड़ी लज्जा आई और भय लगा—उन्होंने पण्डित लेखरामजी से शपथ खाकर कहा था कि मुझे हरिद्वार में बड़ी लज्जा और परमेश्वर का भय लगा जब मैं पण्डित श्रद्धाराम के साथ मिलकर अनुचित कार्य करता था। उनमें से एक बड़ा भारी जालसाजी का कार्य पण्डित श्रद्धाराम ने यह किया कि कुछ साधुओं को सिखलाया कि तुम सभा में जाकर कहो कि हम स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनकर बिगड़ गये थे, आप कृपा करके हमारा प्रायश्चित्त कराइए। तदनुसार साधुओं ने सभा में आकर यह बात सब लोगों के सामने प्रकट की और फिर सारे मेले में इस बात को प्रसिद्ध कर दिया। जब यह सब कार्य हो चुका तो मैं अपने मन में बहुत पछताया और कहने लगा कि तू बड़ा अयोग्य है जो ऐसे पाखण्डियों के साथ मिल रहा है, फिर मैंने प्रायश्चित्त किया और उनसे अलग हो गया।

श्रद्धाराम का शिष्य अनुगत—इसी प्रकार लाला भोलानाथ जो पण्डित श्रद्धाराम के मुख्य शिष्य थे और जिनका नामोल्लेख पहले हो चुका है, पूर्व दिन महाराज के व्याख्यान में गये और उसकी शोभा को देख और महाराज के पुनीत दर्शनों से आनन्द में प्रफुल्लित हो गये। उस समय व्याख्यान समाप्ति पर था। महाराज लोगों को यह चेतावनी दे रहे थे कि मेले में विषूचिका फैलनेवाली है, सब लोगों को शीघ्र ही अपने-अपने घरों को चले जाना चाहिए। जब भोलानाथ व्याख्यान सुनकर लौट रहे थे तो इन्होंने देखा कि एक मनुष्य को मार्ग में चलते-चलते हैज़ा हो गया। उन्हें महाराज के कथन पर पूरा विश्वास हो गया और वह तुरन्त ही सहारनपुर अपने निवास-स्थान को चले गये।

पं० श्रद्धाराम का वास्तविक स्वरूप—पण्डित श्रद्धाराम पञ्जाब में सनातनधर्म के बड़े भारी समर्थक और स्तम्भ समझे जाते थे। उनकी विद्या की बड़ी धाक थी, सुवक्ता और सभाचतुर थे। कई ग्रन्थ भी उन्होंने लिखे थे। सब लोगों पर उनका आतङ्क छाया हुआ था, सैकड़ों नर-नारियों के वे गुरु थे, परन्तु जैसा उन्होंने अपने-आपको प्रकट कर रक्खा था वास्तव में वैसे न थे। सब-कुछ उनका ढोंग और पाखण्ड था। उनका कोई धर्म न था।

ईसाइयों से दक्षिणा लेकर ईसा का गुणगान—एक बार ईसाइयों से दक्षिणा लेकर उन्होंने ईसाई मत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के समर्थन में पञ्जाबी भाषा में एक पुस्तक भी लिखी थी।

पण्डित श्रद्धाराम नास्तिक थे—वे कोरे नास्तिक थे, वेदादि शास्त्र और ईश्वर में उन्हें विश्वास न था। सारे जीवनभर वे लोगों को धोखा देते रहे। अन्त में स्वयं उन्होंने ही अपने पाखण्ड का भाँडा फोड़ा और अपने प्रकृत स्वरूप को प्रगट किया। मरने से पहले उन्होंने सत्यामृत-प्रवाह नाम की एक पुस्तक लिखी जिसमें नास्तिकता का बड़े बल के साथ समर्थन किया और यह भी लिखा कि अब मेरी मृत्यु का समय निकट है, अतः उचित है कि उस सत्य (नास्तिक विचार) को न छिपाऊँ जो चिरकाल से मेरे मन में भरा हुआ है।

लोगों को चेतावनी—पर्व-दिवस से कई दिन पहले से महाराज ने लोगों से कहना आरम्भ कर दिया था कि मेले में विषूचिका के फैलने का भय है, उन्हें शीघ्र अपने-अपने घरों को चले जाना चाहिए। पर्व-दिवस से चार दिन पहले जो व्याख्यान उन्होंने दिया उसमें भी यही बात उन्होंने कही थी। उस व्याख्यान में दो पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट भी थे जो कई दिन से व्याख्यान सुनने आया करते थे। महाराज ने उन्हें सम्बोधन करके कि आपके डॉक्टरों ने जो धारा ३४ (पुलिस एक्ट की) बनवा दी है इससे प्रजा की बहुत हानि है। आपने मलत्याग के लिए जो टट्टियाँ बनवाई हैं, वे बहुत दूर हैं। अब यदि किसी को मलत्याग की हाजत हो और उसके लिए उसे डेढ़ मील उसके वेग को रोककर जाना पड़ा तो उसके मस्तिष्क को उसकी गर्मी चढ़ जाएगी और उसके शरीर के भीतर की दशा बिगड़ जाएगी और उसपर बाहर की दूषित वायु का बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ेगा और इस प्रकार सैकड़ों जानें आपके क़ानून की भेंट हो जाती हैं। महाराज ने उनसे कहा कि अपने डॉक्टरों से कहिए कि वे सड़क से कुछ अन्तर पर झण्डियाँ लगवा दें। इन झण्डियों के पास ही सब लोग मलत्याग करें और गङ्गा के मैदान में भट्टे बनाकर उसमें विष्ठा जलाकर वायु को अशुद्ध न करें इससे मरी फैल जाएगी।

पर्व के दिन भी महाराज ने लोकहित-चिन्ता से प्रेरित होकर अपने व्याख्यान में लोगों को फिर आदेश किया कि वे शीघ्र ही अपने घरों को चले जाएँ। वे स्वयं भी दूसरे दिन हरिद्वार से देहरादून चले गये।

(१४ एप्रिल—३० एप्रिल) देहरादून (वै० कृ० ८—वै० शु० ६)

हरिद्वार में कुम्भ-प्रचार का कार्य समाप्त करके पण्डित कृपाराम के आग्रह पर महाराज देहरादून पधारे। कुम्भ में रात-दिन परिश्रम करने के कारण महाराज को दस्त आने लगे थे, अतः वे कुछ विश्राम भी करना चाहते थे। पर्व के दूसरे दिन ही महाराज ने हरिद्वार से प्रस्थान कर दिया। देहरादून पहुँचने की सूचना पण्डित कृपाराम को पूर्व से ही दे दी गई थी, अतः उन्होंने उनके निवास के लिए एक बंगला किराये पर ले-लिया था।

१४ एप्रिल सन् १८७६ को १० बजे दिन में महाराज देहरादून पहुँचे। पण्डित कृपाराम तो छुट्टी न मिलने के कारण स्वागत के लिए न जा सके, परन्तु उन्होंने अपने दो भतीजों को भेज दिया। महाराज बंगले में उतर गये। फिर पण्डित कृपाराम भी आ गये तो देखा कि वहाँ कतिपय बंगाली ब्राह्मसमाजी उपस्थित हैं।

महाराज की शारीरिक दशा—महाराज के आने का समाचार बात-की-बात में सारे नगर में फैल गया और लोग महाराज के दर्शन और उपदेश सुनने के लिए उनके पास आने लगे। महाराज रोग से इतने आक्रान्त थे कि वार्त्तालाप करते हुए उन्हें कई-कई बार मलोत्सर्ग के लिए जाना पड़ता था। उनसे बहुतेरा कहा गया कि डॉक्टर को बुला लिया जाए, परन्तु वे डॉक्टर की ओषधि खाने पर सहमत न हुए। दो-तीन दिन के पश्चात् रोग कुछ शान्त हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्मसमाजियों पर भरोसा न करना चाहिए—जब और लोग चले गये और पण्डित कृपाराम उनसे मिले तो उन्होंने पण्डित कृपाराम से पूछा कि आपने हमारे व्ययार्थ चन्दा किन-किन लोगों से एकत्र किया है। पण्डितजी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्राह्मसमाजी बंगाली थे। महाराज यह ज्ञात करके कुछ क्षुण्ण हुए और कहा कि आप लोगों को इनपर भरोसा नहीं करना चाहिए। ये लोग आज आपके मित्र हैं और कल शत्रु हो जाएँगे। आपने भूल की जो ब्राह्मसमाजियों का विश्वास किया। पण्डितजी ने कहा कि आप कुछ चिन्ता न करें यदि ये लोग सहायता न करेंगे तो मैं अकेला ही आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ। महाराज ने कहा कि मैं किसी अकेले व्यक्ति को कष्ट देना नहीं चाहता।

व्याख्यानों का आरम्भ, पादरी साहब का कोप-ज्वालामुखी फट गया—जब रोग का वेग कुछ कम हुआ तो डेरे पर ही व्याख्यानों की व्यवस्था की गई। पहला व्याख्यान ईश्वर-विषय पर हुआ। दूसरा, वेद के ईश्वरकृत होने पर। व्याख्यान में अंग्रेज़ उपस्थित थे, जिनमें से एक पादरी मारिसन थे। महाराज ने बड़ी प्रबल युक्तियों से बाइबिल और कुरान का खण्डन किया जिसे सुनकर पादरी साहब को बहुत आवेश आया, परन्तु व्याख्यान के अन्त तक वे चुप रहे। उसके समाप्त होते ही एकदम उबल पड़े कि पण्डित साहब ने केवल धूल उड़ाई और अपने वेदमत को उस धूल में छिपा लिया। यह भी कहा कि हमने आज तक किसी पण्डित को वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते नहीं सुना, क्या यही जानकार हैं और सब हिन्दू अनजान हैं? फिर बाइबिल के जिन मन्तव्यों का महाराज ने खण्डन किया था उनका मण्डन करने लगे। महाराज ने उनके क्रोध में कहे हुए अनुचित शब्दों की सर्वथा उपेक्षा करते हुए शान्ति से उनको उत्तर दिया, परन्तु पादरी साहब के क्रोध का पारा इतना बढ़ा हुआ था कि महाराज के कथन को सुनते भी नहीं थे और क्रोधवश बीच-बीच में चिल्ला उठते थे।

पादरी अपने साथी से भी नाराज़—उनके साथी एक अंग्रेज़ सज्जन ने अंग्रेज़ी में उनसे कहा भी कि जिस सुन्दरता और विनय के साथ व्याख्यानदाता अपने पक्ष को सिद्ध करता है उसे आप अयुक्त और रोषभरे शब्दों से रोकना चाहते हैं। मेरी सम्मति में यह अच्छा नहीं। आपको चाहिए कि जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ वह अपने पक्ष के प्रामाणित होने में और आपके पक्ष के खण्डन में युक्ति देता है वैसे ही आप भी दें। पादरी साहब इस सत्य परामर्श को कैसे सुन सकते थे, चटककर बोले कि मैं बहुत उचित उत्तर दे रहा हूँ, यदि आपको उचित प्रतीत नहीं होते तो आप भी इनसे मिल जाएँ और यह कहकर सभा से उठकर चले गये, शेष अंग्रेज़ बैठे रहे। चलते-चलते भी महाराज ने पादरी साहब से पूछा कि कल भी पधारिएगा, परन्तु वह कुछ बड़बड़ाते हुए चले गये, जिसे कोई न समझ सका।

आपस में ही एक-दूसरे का खण्डन करने लगे—इसके पश्चात् एक और विचित्र घटना हुई। दो अंग्रेज़ सज्जनों ने, जिनमें से एक का नाम पारमर था, जिन्होंने सत्परामर्श दिया था और दूसरे का नाम गार्टलेन, महाराज से बातचीत करनी चाही। महाराज ने स्वीकार की, परन्तु बीच में मिशन स्कूल के हैडमास्टर विपिनमोहन बोस ने टाङ्ग अड़ा दी और महाराज के सामने बाइबिल का मण्डन करने लगे। इधर तो महाराज उनका उत्तर दे ही रहे थे उधर मि० गार्टलेन ने भी उनका खण्डन करना आरम्भ कर दिया। लोगों का इस अद्भुत दृश्य को देखकर मनोरञ्जन भी हुआ और उन्हें आश्चर्य भी हुआ। ८ बजे से रात्रि के १० बजे तक यही दृश्य रहा।

ब्राह्मसमाजी विरुद्ध हो गये—इस व्याख्यान में बाइबिल और कुरान का खण्डन तो था ही, ब्राह्मसमाज भी लपेट में आ गया था। इधर ईसाई रुष्ट, उधर मुसलमान रुष्ट और तीसरी ओर ब्राह्मसमाजी भी रुष्ट। ब्राह्मसमाजियों ने तो आगे को सहायता देने से ही इन्कार कर दिया और सर्वथा विरुद्ध हो गये तथा महाराज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का वचन पूरा हुआ। इस दिन १२ बजे रात्रि तक बातचीत होती रही।

अगले दिन लगभग १५० मुसलमानों की भीड़ महाराज के बँगले पर पहुँची और कहा कि कल जो आपने हमारे धर्म पर दोषारोपण किये हैं, आप शास्त्रार्थ कीजिए। महाराज ने कहा कि मैं आपमें से प्रत्येक के साथ तो शास्त्रार्थ नहीं कर सकता; प्रथम शास्त्रार्थ के नियम बना लीजिए फिर जो आप लोगों में सबसे अधिक विद्वान् हो वह मुझसे शास्त्रार्थ कर सकता है। यह सुनकर उन्होंने कहा कि हम नियम बनाकर लाएँगे और चले गये।

भक्त की चिन्ता—मुसलमानों की भीड़ को जो महाराज के बँगले पर देखा तो पण्डित कृपाराम का भतीजा दौड़ा-दौड़ा उनके पास दफ्तर पहुँचा। वे उसकी बातें सुनकर एकदम घबरा उठे और तत्क्षण अपने अफ़सर से छुट्टी लेकर महाराज के बँगले पर पहुँचे, परन्तु उस समय वहाँ कोई नहीं था। महाराज ने उन्हें सब घटना सुनाई और वह शान्त होकर अपने कार्य पर चले गये।

मुसलमान नियम बनाकर लाये—दूसरे दिन व्याख्यान धर्म-विषय पर था। मुसलमान अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कुछ नियम बनाकर लाये और अपनी ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता का नाम मौलाना अहमदहसन बतलाया। महाराज ने मौलाना की योग्यता के विषय में पूछा और जब उन्हें बतलाया गया कि वे एक विद्वान् व्यक्ति हैं तो वे उनसे शास्त्रार्थ करने पर सहमत हो गये। मुसलमानों के बनाये हुए नियम सभा में पढ़कर सुनाये गये और महाराज ने उममें परिवर्त्तन करके मुसलमानों को वापस दे दिया।

चौथा व्याख्यान पुराणों पर हुआ। पाँचवें से नवें तक आर्यावर्त्त के प्राचीन इतिहास पर हुए।

बंगला खाली कर दो—जिस बँगले में महाराज उतरे थे वह एक मेम का था, जिसका नाम मिस डिक था। न जाने उसे किसी ने बहकाया वा स्वयं ही उसकी ऐसी इच्छा हुई, उसने कहा कि मेरा बंगला शीघ्र खाली कर दो। तब दूसरे बँगले का प्रबन्ध किया गया, परन्तु इतने ही में सहारनपुर से कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की का महाराज को बुलाने के लिए तार आ गया और वे वहाँ जाने के लिए तैयार हो गये।

भंगन का पकाया—देहरादून में एक उल्लेखनीय घटना और भी हुई। बाबू कालीमोहन घोष ब्राह्मसमाजी थे। उनके यहाँ भोजन बनाने पर एक भंगन नियत थी, एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि आप कल भोजन मेरे यहाँ कीजिए। महाराज ने कहा कि मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु मैंने सुना है कि आप लोग अन्त्यजों के हाथ का पका हुआ भोजन खा लेते हैं। उन्होंने इसे स्वीकार किया, परन्तु कहा कि मैं यहाँ ऐसा नहीं करता हूँ। महाराज ने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। जब यह बात पण्डित कृपाराम को ज्ञात हुई तो उन्होंने भोजन का एक थाल महाराज के बँगले पर पहुँचा दिया और स्वयं भी वहाँ पहुँच गये। बाबू कालीमोहन के गृह से भी भोजन बनकर महाराज के पास आ गया था, परन्तु उन्होंने खाया न था। पण्डित कृपाराम ने सब बातें महाराज को बतलाकर बाबू कालीमोहन का भोजन वापस कर दिया। इसपर उन्होंने आकर महाराज से कहा कि यह क्या बात है कि कल तो आपने हमारे यहाँ का भोजन करना स्वीकार कर लिया और आज उसे वापस कर दिया। महाराज ने कहा कि आपने यह कहा था कि यद्यपि हम अन्त्यज के हाथ का पकाया हुआ भोजन कर लेते हैं, परन्तु हम यहाँ ऐसा नहीं करते। अब हमें ज्ञात हुआ है कि आपके यहाँ भंगन भोजन बनाती है।

एक और उल्लेखनीय घटना इस प्रकार है—

रईस के पुत्र ईसाई होने से बच गये—देहरादून के एक रईस के दो पुत्र थे, जो अंग्रेज़ी पढ़े हुए थे। उनपर ईसाइयों ने अपना रंग जमा रक्खा था और वे ईसाई होने को तैयार थे। हिन्दुओं को तो वे तर्क में चुटकियों में परास्त कर देते थे। विवश होकर उनके पिता ने उनसे कहा कि तुम छह मास तक का विज्ञापन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो कि यदि कोई इस अन्तर में ईसाईमत को असत्य सिद्ध न कर सकेगा तो वे ईसाई हो जाएँगे। किसी हिन्दू धर्माभिमानी का यह साहस न हुआ कि ईसाईमत का निकृष्टत्व और हिन्दूधर्म का श्रेष्ठत्व सिद्ध करके हिन्दूधर्म की इन लतिकाओं की रक्षा करता। जब महाराज देहरादून पधारे तो छह मास की अवधि में केवल दो-चार दिन ही शेष रह गये थे। महाराज को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने उन दोनों भाईयों को अपने पास बुलाया। ईसाईमत पर बात-चीत होने लगी। उन दोनों ने देखा कि जो तर्क शिला के समान दीख पड़ते थे और विपक्षियों के उठाये न उठते थे, वे महाराज के तर्क-वज्र से छिन्न-भिन्न हुए जाते हैं। अन्त में उन्हें ईसाईमत का असारत्व स्वीकार करना पड़ा और उन्होंने ईसाई होने का विचार छोड़ दिया। महाराज ने उनसे बहुतेरा कहा कि पादरियों को हमारे पास लाओ, परन्तु पादरी किसी प्रकार भी महाराज के सामने आने पर सम्मत न हुए। पादरियों ने फिर उन लड़कों को कई प्रकार की धमकियाँ भी दीं कि यदि तुम ईसाई न होओगे तो साहब कलक्टर तुमसे रुष्ट हो जाएँगे, परन्तु वे इन धमकियों में न आये। उनके पिता ने महाराज के इस उपकार के बदले में कुछ धन महाराज की भेंट करना चाहा, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया और कह दिया कि इस धन से संस्कृत की पाठशाला बना दो।

देहरादून से चलते समय पण्डित कृपाराम ने महाराज को चालीस रुपये भेंट किये, परन्तु बहुत कुछ आग्रह करने पर तीस रुपये ही लिये।

३० एप्रिल सन् १८७६ को महाराज सहारनपुर के लिए रवाना हो गये। सहारनपुर में महाराज केवल दो दिन ठहरे और फिर कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवैट्स्की के साथ मेरठ चले गये।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—२६ एप्रिल सन् १८७६ को देहरादून में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

जन्म के मुसलमान की शुद्धि—महाराज ने यहाँ एक जन्म के मुसलमान मुहम्मद उमर को शुद्ध करके उसका नाम अलखधारी रक्खा था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्विंश अध्याय

ज्येष्ठ सं० १९३६ — माघ सं० १९३६=मई १८७९ — फरवरी १८८०

(१ मई—३ मई) सहारनपुर (वै० शु० ९—वै० शु० १२)

कर्नल और मैडम—कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की स्वामीजी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। वे इसी अभिप्राय से सहारनपुर आ गये थे। मुम्बई से ही उन्होंने स्वामीजी को लिखा था कि हम हरिद्वार आपसे मिलने आएँ, परन्तु स्वामीजी ने यह समझकर कि उन्हें मेले में बहुत कष्ट होगा और उपदेश कार्य के कारण उन्हें पूरा समय भी न दे सकेंगे, हरिद्वार आने से निषेध कर दिया था। जब कर्नल और मैडम सहारनपुर पहुँचे तो स्वामीजी देहरादून में थे। उक्त महानुभावों ने स्वामीजी को सूचना दी कि हम देहरादून आते हैं, परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप न आएँ हम स्वयं ही सहारनपुर आते हैं, अतः १ मई सन् १८७९ को महाराज सहारनपुर आ गये। सहारनपुर के आर्यबन्धुओं ने कर्नल और मैडम का हृदय से स्वागत किया और उनकी सेवा-सत्कार में कोई बात उठा न रक्खी। स्वामीजी दो दिन सहारनपुर रहे और कर्नल और मैडम से मिले। दो दिन के पश्चात् स्वामीजी दोनों व्यक्तियों को साथ लेकर ३ मई को मेरठ पहुँचे।

(३ मई—१३ मई) मेरठ (वै० शु० १२—ज्येष्ठ शु० २)

जब स्वामीजी कर्नल और मैडम को लेकर मेरठ रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो मेरठ के आर्यपुरुषों ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया और कर्नल तथा मैडम को एक कोठी में और स्वामीजी को दूसरी कोठी में ठहराया।

कर्नल और मैडम का बाह्य व्यवहार—६ मई तक कर्नल और मैडम स्वामीजी से मिलते और अधिकतर योगविषय पर बातचीत करते रहे। इस सम्मिलन में उन्होंने अपने किसी आचार-विचार से यह प्रकट नहीं किया कि वे ईश्वर और वेद में श्रद्धा और विश्वास नहीं रखते, अपितु क्या वचन से और क्या कर्म से उन्होंने अपने आपको वैदिक धर्मी और आर्य ही प्रकट किया। वे आर्यों के समान खान-पान और व्यवहार करते रहे और क्या निज में और क्या पब्लिक में अपने को आर्य कहते रहे। कर्नल और मैडम के व्याख्यान भी हुए, उनमें भी उन्होंने वैदिक धर्म के महत्त्व का वर्णन किया और इसाई मत का खण्डन किया। महाराज ने इन लोगों का आचार-व्यवहार देखकर इनपर विश्वास कर लिया। इनके अमेरिका से भेजे हुए पत्रों से जो विश्वास उत्पन्न हुआ था वह दृढ़तर हो गया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने ता० ६-५-७८ के पत्र में बाबू माधोलालजी को उनके विषय में ये शब्द लिखे—"अमरीकन साहबों ने सब लोगों के चित्त पर यह निश्चय करा दिया कि जितनी भलाई और विद्या हैं, वे सब वेद से निकली हैं और जितने वेदविरुद्ध मत हैं वे सब पाखण्डरूप हैं"।§

---

§ देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पृष्ठ १९९। संपादक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

७ मई को कर्नल और मैडम मुम्बई चले गये।

मुहम्मदक़ासिम से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़—देवबन्द के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मदक़ासिम मेरठ आये और उन्होंने स्वामीजी से शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया, परन्तु जो लोग मौलवी साहब का शास्त्रार्थ करने का सन्देश लेकर आये थे, उनसे स्पष्ट कह दिया कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और दर्शकों की संख्या नियत होगी। उस समय किसी ने इसपर आक्षेप नहीं किया। १० मई को शास्त्रार्थ के नियम निर्धारणार्थ सभा हुई, परन्तु उसमें बहुत भीड़ हो गई थी, अतः यह निश्चय हुआ कि उभयपक्ष की ओर से दस-दस सज्जन एक कमरे में बैठकर नियम बना लें। ऐसा ही हुआ भी। मिस्टर कैस्पियन, हैडमास्टर गवर्नमेण्ट हाईस्कूल को भी इस उपसभा में सम्मिलित किया गया। मुसलमान पहले से ही निम्न-लिखित नियम बनाकर अपने साथ लाये थे, वे सभा में पढ़े गये।

मुसलमानों के प्रस्तावित नियम —

१. शास्त्रार्थ की तिथि में कम-से-कम आठ दिन का अन्तर होना चाहिए ताकि शास्त्रार्थ देखने के इच्छुक दूरदेशस्थ लोग भी उससे लाभ उठा सकें और यदि पण्डितजी को जाने की शीघ्रता हो तो इससे कम अन्तर सही।

२. जैसे पण्डितजी के व्याख्यान देते समय जो धर्मों पर आक्षेप करने का समय होता है और उपस्थित होनेवालों की कोई संख्या नियत नहीं होती, ऐसे ही शास्त्रार्थ के समय जो औरों की ओर से उत्तर देने का समय होता है और उपस्थित होनेवालों की संख्या नियत न होनी चाहिए।

३. वक्तृता के समय कोई ऐसी बात न रक्खी जाए जो वक्ता की वक्तृता में बाधक हो। जैसे यह न हो कि वक्ता एक वाक्य कहकर चुपका हो रहे, जब लिखनेवाला लिख चुके तो फिर उसे कहने की आज्ञा हो, अन्यथा फिर लेखबद्ध और मौखिक शास्त्रार्थ में क्या भेद होगा ?

४. शास्त्रार्थ का समय प्रातःकाल के ७ बजे से ११ बजे तक होना चाहिए ताकि मुसलमानों को नमाज़ आदि धार्मिक आवश्यकताओं के लिए बेचैन होने की आवश्यकता न हो।

५. वक्तृता के लिए कोई समय नियत न किया जाए, क्योंकि कौन अपनी वक्तृता को समय पर नाप-तौलकर लाता है और यदि बिना कारण असम्बद्ध कथन के भय के कारण लिखना ही अभीष्ट हो और हम वक्तृता के अपूर्ण रह जाने से असफल मनोरथ रह जाने की आशंका पर दृष्टि न भी डालें तो भी अपने धर्म के महत्त्व को वर्णन करनेवाले के लिए घण्टा और उत्तरदाता के आक्षेप के लिए आधे घण्टे से कम न होना चाहिए।

६. मुसलमानों को तो अपने धर्म के सत्य समझाने के लिए अन्य धर्मों के नेताओं को बुरा कहने की आवश्यकता नहीं, परन्तु अन्य धर्मवालों से यह आशंका है। इसलिए यह निवेदन करना आवश्यक है कि श्रीमान् इसलाम के पैग़म्बर, जिनपर हो दुरूद और सलाम और उनके महान् अनुयायियों का अपमान न होने पावे।

७. उभयपक्ष उर्दू भाषा में बात-चीत करें और यथाशक्ति ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचें जो औरों की समझ में न आवें।

८. शास्त्रार्थ का स्थान न वह स्थान हो जहाँ पण्डितजी उतरे हैं, न वह जगह हो जहाँ मौलवी मुहम्मदक़ासिम साहब ठहरे हैं। यदि हो तो वह जगह हो जो शहर, लाल कुर्ती, रजवन व सदर के बीच के लगभग हो ताकि किसी को अन्तर के न्यूनाधिक होने का आक्षेप न हो।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६. शास्त्रार्थ-गृह विस्तृत हो ताकि उपस्थित होनेवालों को कष्ट न हो।

१०. यदि एक प्रश्न वा आक्षेप पण्डितजी की ओर से हो तो एक प्रश्न वा आक्षेप हमारी ओर से होना चाहिए।

उक्त नियमों पर स्वामीजी की समालोचना —

इन नियमों के सम्बन्ध में स्वामीजी ने अपना वक्तव्य इस प्रकार प्रकट किया।

१. मैं शास्त्रार्थ की प्रतीक्षा में नहीं रह सकता। आज से तीसरे दिन बुधवार को शास्त्रार्थ आरम्भ हो जाना चाहिए। (इसे मौलवी साहब ने स्वीकार कर लिया)।

२. व ३. मौखिक शास्त्रार्थ कदापि मेरे मनोनीत नहीं हो सकता। मैंने शास्त्रार्थ के सन्देशहरों से पहले ही यह बात स्वीकार करा ली थी कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और दर्शक चुने हुए होंगे और तभी मैंने आप लोगों को कष्ट दिया था। मौखिक शास्त्रार्थ में उभयपक्षवालों को यह कहने का अवसर मिल जाता है कि हमने अमुक बात नहीं कही थी वा अमुक बात कही थी और प्रत्येक अपनी जीत और दूसरे की हार बतलाने लगता है। लिखी बात को कोई बदल नहीं सकता। लिखी बात के आगे किसी को यह कहने का साहस नहीं हो सकता कि मैं जीता और विपक्षी हारा। लेखबद्ध शास्त्रार्थ को पढ़कर सहस्रों मनुष्य जो शास्त्रार्थ में उपस्थित न हों उससे उतना ही लाभ उठा सकते हैं, जितना उपस्थित लोग। शास्त्रार्थ शिक्षित और बुद्धिमान् मनुष्यों के लिए होता है न कि मूर्ख, अशिक्षित और उजड्ड लोगों के लिए। दर्शकों की संख्या नियत न होने से ऐसे ही लोगों का बाहुल्य होगा और उपद्रव का भय रहेगा। इसके अतिरिक्त आप जो कहते हैं कि सब लोगों को शास्त्रार्थ के देखने का अवसर मिलना चाहिए। न जाने सबसे आपका क्या अभिप्राय है ? सारे भारतवर्ष के लोग तो क्या मेरठ के भी सब लोग एकत्र नहीं हो सकते, क्योंकि कोई स्थान इतना बड़ा नहीं हो सकता जिसमें सब नगर-निवासी समा सकें और यदि दस-बीस सहस्र आ भी गये तो सब लोग वक्तृताओं को सुन नहीं सकते। मौलवी साहब ने कहा कि लिपिबद्ध होने की दशा में वक्तृता का प्रवाह रुक जाता है और बुद्धि कुंठित हो जाती है (इसपर केस्पियन साहब ने कहा कि जिस वक्ता की यह दशा हो, उसका परमेश्वर ही रक्षक है)। घर बैठे लिखकर शास्त्रार्थ करने से वर्षों में भी कोई परिणाम नहीं निकलता। आमने-सामने बैठकर शास्त्रार्थ करने में परिणाम शीघ्र निकल आता है, क्योंकि एक पक्ष को दूसरे पक्ष के आक्षेपों का उत्तर तुरन्त देना पड़ता है और जो उत्तर नहीं दे सकता उसका पक्ष गिरा हुआ समझा जाता है। व्याख्यान और शास्त्रार्थ में भेद है। व्याख्यान से व्याख्याता अपनी सम्मति प्रकट करता है और किसी को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। शास्त्रार्थ में एक आक्षेप करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है।

४. प्रातःकाल राजकर्मचारी और न्यायालय से सम्बन्ध रखनेवाले उपस्थित नहीं हो सकते। रात्रि का समय ही ठीक है। मुसलमान नमाज़ पढ़ने जा सकते हैं, उसमें बाधा नहीं पड़ेगी।

५. यदि समय नियत न किया जाएगा तो एक ही मनुष्य सारा समय ले-लेगा। शास्त्रार्थ में अपने धर्म के गुणगान का कोई अवसर ही नहीं, वहाँ तो प्रश्न करना और उत्तर लेना है। प्रश्नकर्त्ता के लिए अधिक समय की आवश्यकता नहीं है, प्रश्न तो थोड़ी ही देर में किया जा सकता है, हाँ उत्तर देने में अधिक समय लगता है, अतः प्रश्नकर्त्ता के लिए ५ और उत्तरदाता के लिए १५ मिनट होने चाहिएँ।

६. किसी धर्म के नेता के लिए कोई असभ्य वाक्य न कहा जाना चाहिए, परन्तु उसके वचन और कर्म पर अवश्य आक्षेप किया जाएगा, क्योंकि बिना ऐसा किये शास्त्रार्थ असम्भव है। यदि मौलवी साहब का यहाँ भी वही अभिप्राय है जो चाँदपुर में था, अर्थात् यह कि यदि कोई मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह बध्य होगा तो शास्त्रार्थ हो लिया, क्योंकि जब विपक्षी का वध ही कर दिया गया तो शास्त्रार्थ कौन करेगा?

७. मैं जितनी भाषा जानता हूँ स्पष्ट-स्पष्ट कहूँगा यदि किसी पक्ष का कोई शब्द दूसरे पक्ष की समझ में न आवे तो उपस्थित जन में से कोई जो दोनों भाषा जानते हों समझा दिया करें।

८. व ९. (इस उप-सभा में) उपस्थित सज्जनों को अधिकार है कि चाहे कोई भी स्थान नियत करें।

१०. मैं अनुमति देता हूँ कि पहले आप ही वेद पर आक्षेप करें और मैं उत्तर दूँ और फिर मैं कुरान पर आक्षेप करूँ और आप उत्तर दें।

जब कोई बात निश्चित न हो सकी तो यह ठहरा कि पाँच पञ्च नियत किये जाएँ और वे निर्णय कर दें, परन्तु ये पाँचों इकट्ठे न हो सके और मौलवी साहब ने स्वामीजजी की बात न मानी जो सर्वथा न्याय और युक्ति के अनुकूल थी, वे अपनी ही अड़ पर जमे रहे और यहीं शास्त्रार्थ की बात-चीत समाप्त हो गई। वास्तव में मौलवी साहब को शास्त्रार्थ करना अभीष्ट न था। वे तो उपद्रव का अवसर ढूँढना चाहते थे। उन्होंने यहाँ भी वही किया जो रुड़की में किया था।

अलीगढ़-छलेसर

ज्येष्ठ शुक्ला २ संवत् १९३६ अर्थात् २२ मई सन् १८७९ को महाराज मेरठ से अलीगढ़ चले गये और वहाँ जाते ही रुग्ण हो गये। वहाँ से २८ मई को छलेसर गये जहाँ उनकी सम्यक् रूप से चिकित्सा की गई। जब कुछ रोगमुक्त हो गये तो ३ जुलाई को मुरादाबाद चले गये।

(३ जुलाई—३१ जुलाई) मुरादाबाद (आषा० शु० १५—श्रावण शु० १३)

३ जुलाई सन् १८७९ को स्वामीजी मुरादाबाद पधारे और राजा जयकिशनदास की उसी कोठी में ठहरे जिसमें पहले ठहरे थे। महाराज का शरीर रुग्ण था, अतः इस बार उनके केवल तीन ही व्याख्यान हुए। उनमें से एक व्याख्यान मुरादाबाद छावनी की पीली कोठी में हुआ था। यह व्याख्यान मुरादाबाद के तत्कालीन जोइण्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर स्पीडिंग की इच्छा और अनुरोध से हुआ था और इसका प्रबन्ध भी उन्होंने ही किया था।

राजनीति पर व्याख्यान—श्रोताओं के लिए टिकिट रक्खे गये थे जो स्वामीजी के अनुयायियों और राजकर्मचारियों, वकीलों तथा प्रतिष्ठित और सुशिक्षित लोगों को ही दिये गये थे, अतः श्रोताओं की संख्या केवल तीन सौ के लगभग थी। व्याख्यान का विषय राजनीति था।

मन्त्रोच्चारण से ही लोग मुग्ध हो गये—प्रथम महाराज ने **'शन्नो मित्रः शं वरुणः'** इत्यादि मन्त्र का ऐसे मधुर और गम्भीर स्वर में उच्चारण किया कि लोग सुनकर मुग्ध हो गये और सभा-स्थल में अपूर्व शान्ति छा गई। स्वामीजजी ने राजा और प्रजा के धर्म और दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध का ऐसी विशद और युक्ति-संगत रीति से वर्णन किया कि लोग सुनकर चकित रह गये। एक संन्यासी से जो केवल संस्कृत जानता था राजनीति के गूढ़ तत्त्वों का ऐसा उत्तम विवेचन सुनना उनके लिए सर्वथा नूतन और अप्रत्याशित अनुभव था। ऐसा विवेचन तो उन्होंने किसी अंग्रेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति से भी न सुना था और कॉलेज के ग्रेजुएटों ने अंग्रेज़ी पुस्तकों में भी न पढ़ा था। व्याख्यान कई घण्टे तक होता रहा और लोग उन्हें एकमन होकर सुनते रहे।

ज्वाइंट मजिस्ट्रेट के द्वारा प्रशंसा—व्याख्यान के अन्त में स्पीडिंग साहब ने उठकर महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि यदि राजा और प्रजा का एक-दूसरे के प्रति ऐसा ही व्यवहार हुआ होता जैसाकि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्वान् व्याख्याता ने वर्णन किया है तो सिपाही-विद्रोह का हत्या-काण्ड ही न होता और राजा और प्रजा को वह विपत्तियाँ न सहनी पड़तीं जो उन्हें सहनी पड़ीं। तत्पश्चात् उन्होंने स्वामीजी को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित की।

सभा में बैठकर कैसी भाषा बोलनी चाहिए—अभी कुछ लोग सभा में बैठे हुए थे कि बाबू कालीप्रसन्न वकील किसी से अंग्रेज़ी में बातचीत करने लगे। इसपर स्वामीजी ने उन्हें उपदेश दिया कि सभा में बैठकर ऐसी भाषा में बातचीत करना जिसे अन्य सभासद् न समझ सकें अनुचित और चोरी की बात है। उनसे स्वामीजी ने यह भी कहा कि आप क्या कह रहे हैं, यह मुझे तो दूसरे अंग्रेज़ी जाननेवाले बतला देंगे, परन्तु यदि मैं संस्कृत में बोलने लगूँ तो आपको कौन बताएगा ?

पीपलपत्ते का संस्कृत-भाषण—एक दिन एक पण्डित जिसका नाम नारायणदास और उपनाम पीपलपत्ता था, महाराज से संस्कृत में बातचीत कर रहा था। कहीं महाराज के मुख से कोई शब्द अशुद्ध निकल गया। उसने महाराज को टोका, उन्होंने सरलतापूर्वक उसे स्वीकार कर लिया, परन्तु नारायणदास को मानो बन्दर को सोंठ की गाँठ हाथ आ गई, उसने समझा कि मेरे बराबर पंसारी ही नहीं है।

भूल स्वीकार कर ली—वह बात-बात में स्वामीजी से कहने लगा कि आपकी भूल मैंने पकड़ ली और अपने पाण्डित्य पर घमण्ड करने लगा, तब तो स्वामीजी ने उसे फटकारा कि अरे छोकरे मुझसे यदि भूल हो गई थी तो मैंने स्वीकार कर ली, परन्तु तू उसी पर आग्रह किये जाता है, यदि मैं भी हठ और दुराग्रह करने लगूँ तो उस शब्द को ठीक सिद्ध कर सकता हूँ, परन्तु मैं तो ऐसा करना अधर्म समझता हूँ। यदि तुझमें कुछ विद्या है तो विद्या की बात कर। साहू श्यामसुन्दर के लघु भ्राता साहू ब्रजरत्न भी बैठे हुए थे। तब तक वे स्वामीजी के अनुगत नहीं हुए थे। उन्होंने भी नारायणदास से कहा कि यदि आप वेद से मूर्त्तिपूजा सिद्ध कर सकें तो कोई मन्त्र प्रस्तुत कीजिए, परन्तु वह कोई मन्त्र न बता सका और उठकर चला गया।

डॉक्टर ने फ़ीस नहीं ली—स्वामीजी को उन दिनों संग्रहणी रोग ने कष्ट दे रक्खा था। पहले एक वैद्य से चिकित्सा कराई गई, जब उससे कुछ लाभ न हुआ तो मुरादाबाद के सिविल सर्जन डॉक्टर डीन से चिकित्सा कराई। स्वामीजी के भक्तों ने उन्हें दो सौ रुपये फ़ीस के देने चाहे, परन्तु उन्होंने यह कहकर फ़ीस लेने से इन्कार कर दिया कि स्वामीजी जगदुपकारी पुरुष हैं, मैं इनकी चिकित्सा की फ़ीस नहीं लेना चाहता। तब मुरादाबाद की बनी हुई कुछ वस्तुएँ उन्हें भेंट में दी गईं जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लीं और कहा कि इन्हें हम विलायत के म्यूज़ियम में रक्खेंगे।

अभिवादन पर शब्दविचार—मुंशी इन्द्रमणि से स्वामीजी की इस बात पर कि आर्यों में अभिवादन का क्या शब्द होना चाहिए कुछ विवाद हुआ। स्वामीजी उससे पहले से ही 'नमस्ते' शब्द निर्धारित कर चुके थे और उसी का प्रचार करते आते थे। मुंशी इन्द्रमणि चाहते थे कि जब दो आर्य परस्पर मिलें तो एक कहे 'परमात्मा जयते' और दूसरा उत्तर दे 'जयते परमात्मा'। बात यह थी कि मुंशीजी ने यह अभिवादन-विधि मुसलमानों के अनुकरण में निर्धारित की थी। एक मुसलमान जब दूसरे से मिलता है तो कहता है 'अस्सलामो अलैकुम' (शान्ति हो तुमपर) दूसरा उत्तर में कहता है 'व अलैकुमस्सलाम' (और तुमपर हो शान्ति)। इसपर स्वामीजी और मुंशीजी में निम्न प्रकार वाद-प्रतिवाद हुआ—

मुंशीजी—हमने पहले 'जय गोपाल' शब्द प्रचलित करना चाहा था, फिर 'परमात्मा जयते' प्रचलित किया। उसपर लोगों ने बहुत दुन्द मचाया और उपहास किया, परन्तु अब विवाद ठण्डा पड़ गया है, यदि अब 'नमस्ते' शब्द प्रचलित किया जाएगा तो फिर दुन्द मचेगा। इसके अतिरिक्त अभिवादन में परमेश्वर का नाम आना चाहिए। नमस्ते करने में यह बुराई भी है जो राजा से 'नमस्ते' कहा जाए तो राजा भी उसके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्तर में 'नमस्ते' कहे, चाहे वह मनुष्य बहुत क्षुद्र, कोली वा चमार ही हो।

स्वामीजी—मुंशीजी ! बड़ा किसे कहते हैं ? जिस मनुष्य ने यह अभिमान किया कि मैं बड़ा हूँ, अर्थात् राजा वा विद्वान् वा शूरवीर हूँ, तो उसकी बड़ाई में दोष आ गया। देखिए, जितने महाराजाधिराज, शूरवीर और विद्वान् हुए हैं उन्होंने अपने मुख से अपने-आपको बड़ा कभी नहीं कहा। नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार के हैं। इससे राजा और प्रजा दोनों को आपस में नमस्ते कहना ठीक है। अब हम आपसे यह पूछते हैं कि आप अपने अन्तःकरण से सत्य-सत्य कह दीजिए कि जब कोई मनुष्य आपके गृह पर आता है वा आपसे मिलता है तो आपके मन में क्या विचार आता है ? मुंशीजी चुप रहे।

तब स्वामीजी ने कहा कि कौन नहीं जानता कि प्रतिष्ठित को देखकर उसका सम्मान और छोटे को देख कर उसके साथ सद्व्यवहार का विचार उस समय उत्पन्न होता है, फिर बतलाइए ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है ? मनुष्यों को चाहिए कि जो उसके मन में हो वही मुख से कहे और यह आपका दोष है कि आपने पहले 'जय गोपाल' और फिर 'परमात्मा जयते' प्रचलित किया। विचार करके ऐसा शब्द क्यों न प्रचलित किया जाए जो पहले एतद्देशवासियों में प्रचलित था, अतः सर्व आर्यसामाजिकों को 'नमस्ते' कहना ठीक है जैसाकि सदा से महर्षि लोगों में प्रचार था और 'नमस्ते' शब्द वेदों में भी आया है। हम यजुर्वेद से प्रमाण दे सकते हैं, आप 'परमात्मा जयते' का किसी ग्रन्थ से प्रमाण नहीं दे सकते।

इसके पश्चात् उसी दिन मध्याह्नोत्तर में बहुत-से प्रमाण वेदों और आर्षग्रन्थों से निकालकर दिखलाए, मुंशीजी उत्तर तो कुछ न दे सके, परन्तु हठ से स्वामीजी की बात को स्वीकार भी न कर सके।

इस विषय पर भी लाला जगन्नाथदास ने जो कुछ देवेन्द्रबाबू से कहा वह भी इसी उद्देश्य से कहा जिससे स्वामीजी का लघुत्व और मुंशी इन्द्रमणि का महत्त्व प्रकट हो। उनका कथन है कि मुंशीजी ने कहा कि नमस्ते शब्द अशुद्ध है, इसपर स्वामीजी ने कहा कि अब तो यह प्रचलित हो गया, अब तो इसे ही चलने दो। इसके यह अर्थ हैं कि मानो स्वामीजी ने नमस्ते शब्द का अशुद्ध होना स्वीकार कर लिया। नमस्ते शब्द अशुद्ध है ही नहीं तो स्वामीजी उसकी अशुद्धता स्वीकार कैसे कर लेते, जबकि हम देखते हैं कि स्वामीजी की युक्ति-युक्ति और प्रमाणपुष्ट बातों का मुंशीजी कुछ भी उत्तर नहीं दे सके थे।

लाला जगन्नाथदास ने जो कुछ भी उपर्युक्त विषय वा जीव के अनादित्व के विषय में कहा वह द्वेष से परिचालित होकर स्वामीजी के ऊपर दोषारोपण करने के अभिप्राय से कहा और अयथार्थ कहा, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है।

नमः के अर्थ—स्वामीजी की मुरादाबाद के पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र से, जिन्होंने यजुर्वेद का भाषार्थ छपवाया था, यजुर्वेद के 'नमो नमः' वाले अध्याय के सम्बन्ध में बातें हुई थीं। उस अध्याय में कुक्कुरादि के प्रति भी 'नमो नमः' का प्रयोग किया गया है। इसपर स्वामीजी ने कहा था कि नमः के अर्थ—अन्न और वज्र के हैं।

शास्त्रार्थी पण्डित काँपने लगे—एक दिन तीन पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के विचार से उनके पास आये, परन्तु शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा स्वामीजी को देखकर ही काँपने लगे और उनके मुँह से बात तक निकलना कठिन हो गया। स्वामीजी ने उनकी यह दशा देखकर दयापूर्ण भाव से कहा कि आप लोग घबराएँ नहीं, सावधान होकर मुझसे कहो कि क्या पूछते हो। इसपर पण्डितों में कुछ साहस आया और उन्होंने कहा कि महाराज ! आपके सम्मुख बातचीत करने का हमारा क्या सामर्थ्य है और इसके अतिरिक्त हम अकेले हैं, आपके सब शिष्य यहाँ बैठे हैं, हमारी कौन मानेगा ? स्वामीजी ने कहा कि आपको अधर्म की बात कहते हुए लज्जा नहीं आती। देखो ! आपके सामने हमारा शिष्य जगन्नाथदास (उपर्युक्त जगन्नाथदास)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे कहनेमात्र से किसी बात को नहीं मानता और हमसे कह रहा है कि महाराज ! जब तक आप प्रमाणसहित मुझे न बतलाएँगे मैं कभी न मानूँगा, ये लोग हमारी हाँ-में-हाँ मिलानेवाले नहीं हैं। पण्डितों ने ढंग की कोई बात न कही और व्यर्थ समय खोकर चले गये।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—उन्हीं दिनों मुरादाबाद में आर्यसमाज स्थापित करने का आयोजन हुआ। २० जुलाई १८७६ को राजा जयकिशनदास की कोठी पर बाग़ की एक रविश में हवनकुण्ड खोदा गया और पुष्कल सामग्री तथा घृत प्रस्तुत किया गया, मोहनभोग भी बनाया गया, परन्तु वर्षा के कारण उस जगह हवन न हो सका। बहुत देर तक वर्षा के बन्द होने की प्रतीक्षा की गई, परन्तु वह बन्द न हुई। तब स्वामीजी ने आज्ञा दी कि बहुत देर हो गई है और वर्षा बन्द नहीं होती, उपस्थित लोगों में कई धनाढ्य पुरुष भी हैं जो इस समय तक अपने-अपने घरों पर भोजन कर चुके होते, अतः कमरे के भीतर ही थोड़ा-सा हवन कर लिया जाए और उपस्थित लोगों को मोहनभोग बाँट दिया जाए। स्वामीजी की आज्ञानुसार ऐसा ही किया गया और आर्यसमाज स्थापित हो गया, जिसके प्रधान मुंशी इन्द्रमणि निर्वाचित हुए।

स्वामीजी ने मोहनभोग में थूक दिया है—जब मोहनभोग बाँटा गया तो धूर्त्त-मण्डली ने नगर में यह प्रसिद्ध कर दिया कि जो मोहनभोग लोगों ने खाया है उसमें पहले दयानन्द ने थूक दिया था। किसी ने उसी समय नगर से आकर यह बात स्वामीजी से कह दी, तो वे बहुत हँसे और कहने लगे मूर्खों में ऐसी ही बातें हुआ करती हैं, परन्तु ये कोरी बातें ही होकर न रहीं, बिरादरियों में पञ्चायतें होने लगीं और आर्यसमाज के सभासदों को, जिन लोगों ने मोहनभोग खाया था, जातिच्युत करने की धमकी दी जाने लगी। इसपर जो भीरु थे वे तो आर्यसमाज से अलग हो बैठे, परन्तु जो दृढ़ विचार के थे वे इन गीदड़ भबकियों में न आये और आर्यसमाज के सदस्य बने रहे।

अब मैं तुम्हारे घर भोजन करूँगा—स्वामीजी को यह ज्ञात होगया था कि साहू श्यामसुन्दर ने सब दुराचार छोड़ दिये हैं, अतः उन्होंने साहू साहब से कहा कि अब हम तुम्हारे यहाँ भोजन करेंगे। तुम अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव किया करो। उस दिन वे साहू साहब के घर पर भोजन करने पधारे और उनकी माता से कहा कि जिस दिन तुम्हारा पुत्र बलिवैश्वदेव न करे उसे कदापि भोजन न देना।

स्वामीजी ३१ जुलाई को मुरादाबाद से बदायूँ के लिए प्रस्थित हुए।

(१ अगस्त—१४ अगस्त) बदायूँ (श्रा० शु० १४—भाद्र कृ० १२)

मुरादाबाद से प्रस्थान करके स्वामीजी ३१ जुलाई सन् १८७६ की रात्रि के तीन बजे बदायूँ पहुँचे। मुरादाबाद से ही बदायूँ आर्यसमाज के सभासद् उनके साथ आये थे। समाज के अन्य सभासद् भी रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए पहुँच गये थे। उनके निवास के लिए साहू गङ्गाराम के बाग़ में प्रबन्ध किया गया था।

बदायूँ में आर्यसमाज स्वामी के आगमन से पूर्व मई सन् १८७६ में स्थापित हो गया था। स्वामीजी के आते ही धर्मजिज्ञासु सज्जन उनके पास आकर प्रश्नोत्तर करने लगे और उस धर्मरत्नाकर में से बहुमूल्य धर्म-रत्न हृदय की जेबों में भर-भरकर ले-जाने लगे।

श्रावणी का त्यौहार—२ अगस्त १८७६ को श्रावणी का त्यौहार था। उस दिन प्रचलित रीति के अनुसार हिन्दू हाथों में एक डोरी, जो अनेक प्रकार की होती है, बाँधते हैं जिसका नाम रक्षा है। रक्षा बाँधने की रीति को रक्षा-बन्धन कहते हैं और इसी कारण से इस त्यौहार का नाम रक्षा-बन्धन पड़ गया है। प्राचीन काल में इस दिन उपाकर्म होता था, अर्थात् गुरुकुल विश्वविद्यालयों के अधिवेशन हुआ करते थे, जैसे अब

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यूनिवर्सिटियों के हुआ करते हैं, जिनमें वर्षा के आरम्भ में स्थगित किया हुआ वेदाध्ययन फिर से आरम्भ किया जाता था, इसका नाम श्रावणी वा ऋषितर्पणी था। उस दिन युवा-वृद्ध जो भी स्वामीजी के पास आये अपने हाथों में 'रक्षा' बाँधे हुए थे। स्वामीजी उन्हें देखकर हँसे और कहा कि आप लोगों ने 'रक्षा' क्यों बाँधी हैं, आप अपने देश की रीति भूल गये। आज के दिन राजा की ओर से बृहद्यज्ञ होता था और जितने विद्यार्थी शालाओं में पढ़ते थे उनके हाथ में राजा की ओर से 'रक्षा' बाँधी जाती थी, जिससे प्रजा और राज-पुरुष उनकी रक्षा करें और कोई उन्हें कष्ट न दे।

शास्त्रार्थ—४ अगस्त को कुछ पण्डितों की ओर से एक पत्र स्वामीजी के पास आया जिसमें शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की गई थी, स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करना सहर्ष स्वीकार किया। यह शास्त्रार्थ दो दिन तक होता रहा। इसका संक्षिप्त विवरण पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में इस प्रकार दिया हुआ है:—

पं० रामप्रसाद—ईश्वर साकार है और इसमें यजुर्वेद अध्याय ३१ का पहला मन्त्र **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** इत्यादि प्रमाण है, यदि ईश्वर साकार नहीं तो उसे 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि क्यों लिखा है।

स्वामीजी—सहस्र कहते हैं सम्पूर्ण जगत् और असंख्य को, जिसमें असंख्य शिर, आँख और पैर ठहरे हुए हैं, उसे सहस्रशीर्षा आदि कहते हैं, यह नहीं कि उसेक सहस्र शिर आदि हैं।

पण्डित रामप्रसाद ने अमरकोष का प्रमाण दिया।

स्वामीजी—वेदों (वेदार्थ) में प्रमाण अमरकोष नहीं बल्कि निरुक्त और निघण्टु आदि हैं।

रामप्रसाद—हमने तो वे पढ़े ही नहीं। विष्णु की स्त्री लक्ष्मी है और वह साकार है, लक्ष्मी-सूक्त इसमें प्रमाण है—

अश्वपूर्णा रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिताम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्यादेवी जुगुप्यताम्॥

इसमें जो विशेषण दिये गये हैं उनसे उसका साकार होना प्रमाणित होता है।

स्वामीजी—यह संहिता का वाक्य नहीं है और जो तुम उसे विष्णु की स्त्री समझकर बुलाते हो तो विष्णु तुम्हें अपनी स्त्री नहीं देगा और उसके माँगने से तुम पाप के भागी होओगे और वह भी व्यभिचारिणी ठहरेगी। लक्ष्मी के अर्थ राजलक्ष्मी और लक्ष्मी, राज्य की सामग्री और शोभा के हैं और इसी कारण इस श्लोक में हाथी, रथ और घोड़ों का उल्लेख है।

रामप्रसाद—आप कहते हैं वेदों के पढ़ने का सबको अधिकार है, यह अनुचित है; वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को है और उनमें भी मुख्यतः ब्राह्मणों को।

स्वामीजी—**यथेमां वाचं कल्याणीम्** इत्यादि इस मन्त्र से स्पष्टरूप से सिद्ध है कि वेद पढ़ने का अधिकर सबको है।

रामप्रसाद—जो रामचन्द्र और कृष्णादि हुए हैं वे साक्षात् परमेश्वर के अवतार हैं।

स्वामीजी—ऐसा समझना वेदविरुद्ध है, परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता।

रामप्रसाद—**'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।'** यजुर्वेद के इस मन्त्र से विष्णु का वामनावतार सिद्ध होता है।

स्वामीजी—इससे वामनावतार सिद्ध नहीं होता। इसके अर्थ यह हैं कि परमेश्वर सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापित करके धारण कर रहा है, यह नहीं कि परमेश्वर ने तीन प्रकार से पैर रक्खा जैसाकि तुम कहते हो। यहाँ पण्डित रामप्रसाद तो चुप हो गये, परन्तु पण्डित वृन्दावन बोले—

वृन्दावन—इससे कैसे ज्ञात हुआ कि विष्णु साकार नहीं है ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी—विष्णु (शब्द) के अर्थ तो करो कि वह किस धातु से बना है।

वृन्दावन—'विष्लृ व्याप्तौ' से विष्णु शब्द बनता है, अर्थात् जो सर्वव्यापक हो, वह विष्णु है।

स्वामीजी—फिर जो व्यापक है, वह साकार कैसे हो सकता है ?

रामप्रसाद—मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः—यजुर्वेद के इस मन्त्र में जो कुचर शब्द आया है इससे मत्स्य आदि अवतार सिद्ध होते हैं, क्योंकि कुचर का अर्थ है—पृथिवी पर चलनेवाला।

स्वामीजी—कुचर (शब्द) से मत्स्य आदि अवतार सिद्ध नहीं होते। 'कु' के अर्थ वेद में कभी पृथिवी के नहीं लिये जाते।

रामप्रसाद—महीधर की टीका में तो ऐसा ही लिखा है।

स्वामीजी—महीधर की टीका बहुधा अशुद्ध है, निरुक्त और निघण्टु आदि के बिना वेद का शुद्ध अर्थ नहीं हो सकता।

रामप्रसाद—फिर आपने महीधर की टीका क्यों रक्खी हुइ है।

स्वामीजी—खण्डन के वास्ते। और देखो **'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे'** इत्यादि आठ-दस मन्त्रों पर इसका कैसा अशुद्ध अर्थ है कि यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे आदि, क्या ऐसे अर्थ प्रमाण के योग्य हैं? वेदों पर जो ऋषियों की टीकाएँ हैं वे ही प्रमाण के योग्य हैं, और अवतार का न होना यजुर्वेद के **'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्'** इत्यादि मन्त्र से सिद्ध है कि सर्वव्यापक परमेश्वर कल्याणस्वरूप है, काया (शरीर), नस-नाड़ी के बन्धन से रहित है, वह शुद्धस्वरूप और पापों से न्यारा है, उसने आदि-जगत् में अपनी अनादि प्रजा—जीवों के लिए वेदविद्या का प्रकाश किया है।

ज्ञात होता है कि इन पण्डितों में कोई दुराग्रही नहीं था, क्योंकि जिस बात का वे उत्तर नहीं दे सके उसपर उन्होंने व्यर्थ वितण्डा नहीं किया।

इसमें भूत का आवेश है—श्रावणी के दिन जो लोग स्वामीजी से मिलने आये थे, उनमें एक वैद्य भी थे, वे अपने साथ एक नवयुवक को भी लाये थे। उसके विषय में वैद्यजी ने कहा कि इसमें भूत का आवेश है, बहुत चिकित्सा की, परन्तु आराम नहीं होता। स्वामीजी ने कहा कि आप वैद्य होकर ऐसे अज्ञानी हो रहे हैं और ऐसी असत्य बात को मानते हैं। भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन काल हैं, भूतयोनि कोई नहीं है। वैद्यकग्रन्थों में ऐसे कई रोगों का वर्णन है जिसके होने से मनुष्य उलटी चेष्टा करने लगते और अण्डबण्ड बकने लगते हैं, इसने कोई मादक वस्तु खा ली है। अन्त को यह बात सत्य निकली, उसने भाँग बहुत पी ली थी और उसी का सब विकार था। स्वामीजी ने उसके लिए एक ओषधि भी बताई थी।

केवल दो ही व्याख्यान हुए—स्वामीजी के बदायूँ में दो व्याख्यान हुए, पहला २ अगस्त को सन्ध्या समय लाला गङ्गाप्रसाद के दीवानखाने में 'ईश्वर-विषय' पर और दूसरा कोठी चुङ्गी पर ३ अगस्त को 'धर्म-विषय' पर हुआ। श्रोता सहस्रों की संख्या में उपस्थित हुए। शेष व्याख्यान स्वामीजी के स्थल पर ही होते रहे।

शास्त्रार्थी मुसलमान—एक दिन बदायूँ के एक मुसलमान रईस कई लोगों के साथ स्वामीजी के पास आये और शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की तो स्वामीजी ने कहा कि शास्त्रार्थ करने के लिए आप एक व्यक्ति को नियत कर लें और नियम स्थिर कर लें। इसपर उक्त रईस ने कहा कि हमने मौलवी मुहम्मदक़ासिम को तार दिया है, वे चार-पाँच दिन में आ जाएँगे। स्वामीजी ने कहा कि मुझे स्वीकार है, मेरा उनसे चाँदापुर में साक्षात् हो चुका है। इसके पश्चात् स्वामीजी कई दिन ठहरे रहे, परन्तु न मौलवी मुहम्मदक़ासिम आये और न फिर मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थ की कोई चर्चा ही हुई।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अंग्रेज़ पादरी—एक दिन शाहजहाँपुर के एक अंग्रेज़ पादरी भी आये थे। वे अत्यन्त विनीतभाव से प्रश्नोत्तर करके चले गये थे।

श्रद्धालु भक्त—दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि एक व्यक्ति रामलाल क़ायमगंज से मुरादाबाद स्वामीजी से यज्ञोपवीत लेने आये। स्वामीजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके उसे यज्ञोपवीत दिया और गायत्री का उपदेश किया। वह १० दिन मुरादाबाद ठहरा और महाराज के सत्सङ्ग से लाभ उठाता रहा। एक दिन उसने महाराज से प्रश्न किया कि क्या आपके स्वास्थ्य पर कोई आघात पहुँचा है ? उत्तर में महाराज ने कहा कि मुझे कई बार विष दिया गया है। यद्यपि मैंने उसे वमन और वस्ति-कर्म आदि से निकाल दिया फिर भी उसका कुछ-न-कुछ अंश रक्त में रह ही गया। इसी से मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया, अन्यथा मेरी आयु १०० वर्ष से अधिक होती, परन्तु अब इस शरीर के अधिक रहने की आशा नहीं है। इसपर रामलाल ने कहा कि फिर आप योग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते। महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने पहले वैदिक पाठशालाएँ स्थापित कीं ताकि उनमें से जो लोग विद्वान् होकर निकलें वे वैदिक धर्म का प्रचार करें, परन्तु वे लोग पाठशाला में पढ़कर भी पौराणिक ही बने रहे। योग्य शिष्य न मिलने का यह भी कारण है कि मैंने माता-पिता की सेवा नहीं की फिर मुझे योग्य शिष्य कैसे मिलें ? परन्तु आर्यसमाज में ऐसे लोग अवश्य उत्पन्न होंगे जो मेरे उद्देश्य का पालन करेंगे।

स्वामीजी १४ अगस्त को बदायूँ से बरेली चले गये।

(१४ अगस्त—४ सित०) बरेली (भाद्र० कृ० १२—आश्विन कृ०)

बरेली में स्वामीजी लाला लक्ष्मीनारायण खज़ानची की बेगमबाग़ नामक कोठी में ठहरे।

पादरी स्काट से ३ दिन तक शास्त्रार्थ—कई दिन तक महाराज अपने मनोहर उपदेशों से श्रोताओं को कृतार्थ करते रहे जिनमें कलक्टर साहब तथा अन्य अंग्रेज व पादरी लोग व नगर के धनी-मानी पुरुष उपस्थित होकर लाभ उठाते रहे। एक दिन किसी ने यह प्रस्ताव किया कि श्रीमहाराज का पादरी टी० जी० स्काट से शास्त्रार्थ हो जाए तो अच्छा है। इस प्रस्ताव को दोनों महानुभावों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ का स्थान 'पुस्तकालय§' और तिथियाँ २५, २६ और २७ अगस्त नियत हो गईं। शास्त्रार्थ-सभा के सभापति लाला लक्ष्मीनारायण खजानची नियत हुए। एक-एक दिन एक-दिन विषय पर शास्त्रार्थ हो, दोनों पक्षों के प्रश्नोत्तर लिख लिये जाएँ जिन्हें तीन लेखक एक स्वामीजी के, दूसरा पादरी साहब के और तीसरा सभापति के पास बैठकर लिखे और जब एक पक्ष अपना वक्तव्य समाप्त कर चुके तो वह सभा में सुना दिया जावे और तीनों पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जाएँ।

शास्त्रार्थ के विषय निम्नलिखित निश्चय हुए—

पहले दिन—आवागमन—स्वामीजी समर्थक, पादरी साहब समीक्षक।

दूसरे दिन—ईश्वर देह धारण करता है—पादरी साहब समर्थक, स्वामीजी समीक्षक।

तीसरे दिन—ईश्वर पापों को क्षमा करता है—पादरी साहब समर्थक, स्वामीजी समीक्षक।

तीनों दिन शास्त्रार्थ अत्यन्त शान्तिपूर्वक और नियमानुकूल हुआ। पीछे वह छप गया। यह शास्त्रार्थ पण्डित लेखरामकृत जीवन-चरित में ज्यों-का-त्यों दिया है। हम उसका सार नीचे देते हैं—

शास्त्रार्थ का पहला दिन—विषय आवागमन—तारीख २५-८-१८७६।

---

§ पुस्तकालय वह स्थान है जहाँ आजकल म्युनीसिपल बोर्ड बरेली का दफ्तर है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम स्वामीजी ने अपने पक्ष के समर्थन में कहा कि जीव और जीव के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जीव के कर्मों का, जो प्रवाहरूप से अनादि चले आते हैं, ठीक-ठीक फल देना ईश्वर का काम है और कर्मफल जीव बिना शरीर धारण किये पा नहीं सकता, अतः आवागमन सिद्ध है। जीव के हर जन्म में सञ्चित और क्रियमाण कर्म होते हैं। एक जन्म का क्रियमाण कर्म ही दूसरे जन्म का सञ्चित कर्म बनता है। जो जीव की उत्पत्ति मानी जाए तो उसका नाश भी मानना पड़ेगा, क्योंकि उत्पत्ति और विनाश दोनों का ही कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। विना कारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

पादरी साहब के मुख्य आक्षेप ये थे कि यद्यपि पुनर्जन्म का सिद्धान्त पुराना है, परन्तु सभ्य और शिक्षित जातियाँ उसे छोड़ती चली जाती हैं, हिन्दू भी ज्यों-ज्यों शिक्षित होते जाते हैं इसे छोड़ते जाते हैं। यदि कर्म के अनादि होने से पुनर्जन्म होता है तो परमेश्वर का भी पुनर्जन्म होना चाहिए। जब जीव और परमेश्वर दोनों अनादि हैं तो एक प्रकार से दो परमेश्वर हुए। यदि पुनर्जन्म केवल पापों का फल भोगने के लिए है तो हमें याद क्यों नहीं रहता कि अमुक पाप का हमें अमुक दण्ड मिला। परमेश्वर सदैव सगुण रहता है वा कभी निर्गुण भी होता है। जन्म लेना परमेश्वर के किसी विशेष सामर्थ्य से हरदम होता रहता है या किसी सृष्टि-नियम से होता है। मनुष्य को शान्ति एकजन्मवाद में ही मिलती है न कि पुनर्जन्मवाद में, क्योंकि एकजन्मवाद में मनुष्य अच्छा बनने का यत्न करते हैं ताकि एक बार कष्टों से छूटकर सदा सुख में रहें, पुनर्जन्मवाद में तो कभी दुःखों से छुटकारा ही नहीं हो सकता और सदा कर्म के चक्कर में रहना पड़ता है। पुनर्जन्मवाद से पाप भी बढ़ता है, क्योंकि मनुष्य यह समझ लेता है कि कभी-न-कभी तो अच्छा जन्म मिलेगा ही। यह विश्वास इञ्जील के विरुद्ध है, जो वेद से पुरानी पुस्तक है।

स्वामीजी ने पादरी साहब के आक्षेपों और प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया—यह कोई युक्ति नहीं है कि सभ्य जातियाँ पुनर्जन्म के विश्वास को छोड़ती जाती हैं। न पुरानी सब बातें सच्ची हैं और न नई सब झूठी। यदि पुरानी सब झूठी हैं तो बाइबिल भी पुरानी है, अतः वह भी झूठी है। रही शिक्षित हिन्दुओं के इस सिद्धान्त को छोड़ने की बात तो बहुत-से ईसाई भी बाइबिल को तिलाञ्जलि देते जाते हैं। परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता, वह सर्वव्यापक, निराकार और नित्य मुक्त है। केवल अनादि होने से जीव ईश्वर नहीं हो सकता जब तक उसमें सब गुण एक-से न हों। पुनर्जन्म पूर्वकृत पापों और पुण्यों का बुरा और अच्छा फल भोगने के लिए होता है। हमें इसी जन्म की बचपन की बातें याद नहीं रहतीं और सुषुप्ति अवस्था में कोई बात याद नहीं रहती। इससे बचपन की घटनाएँ असत्य सिद्ध नहीं हो सकतीं। जैसे रोगी और चिकित्सक दोनों ही जानते हैं कि रोग किसी कुपथ्य आदि का फल है चाहे उस कुपथ्य का रोगी को स्मरण भी न हो, ऐसे ही संसार में दुःख-सुख देखकर पूर्वजन्म के कर्मों का अनुमान होता है। एक जन्म में विश्वास रखने से कभी शान्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि दुखी मनुष्य सदैव बेचैन रहता है कि उसे दुःख क्यों दिया गया जबकि उसका कोई अपराध नहीं था। पुनर्जन्म का विश्वासी जानता है कि सुख-दुःख उसके पूर्व कर्मों के फल हैं। आगे के लिए उसका दुखी-सुखी होना उसके अपने कर्मों पर निर्भर है। पाप तो इस विश्वास से बढ़ता है कि हम किसी की सिफ़ारिश से पापों के दण्ड से मुक्त हो जाएँगे। संसार में दुःख-सुख, ऊँच-नीच की व्यवस्था यदि परमेश्वर ने बिना किसी कारण के कर दी तो वह न्यायकारी नहीं ठहरता है। पुनर्जन्मवाद यदि इञ्जील के विरुद्ध है तो उससे वह असत्य सिद्ध नहीं होता। इञ्जील में बहुत-सी भ्रममूलक बातें हैं। वेद में कोई भी ऐसी बात नहीं है, वही ईश्वरोक्त है। जीव कर्म के बन्धन से कभी सर्वथा मुक्त नहीं होता। कर्म करना जीव का और उसे कर्मों का फल देना ईश्वर का स्वाभाविक गुण है। स्वाभाविक गुण सदा एक-से रहते हैं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यूनता-अधिकता केवल नैमित्तिक गुणों में हुआ करती है। संसार में वेद ही सबसे पुरानी पुस्तक है। इसे यूरोप के भी सब विद्वान् मानते हैं। पादरी साहब इसका कोई उत्तर नहीं दे सकते कि जीव कहाँ से आये और कहाँ रहेंगे। वे कहते हैं कि हम सर्वज्ञ नहीं हैं, तो फिर वे कैसे कहते हैं कि पुनर्जन्म नहीं है।

दूसरे दिन के शास्त्रार्थ का विषय 'ईश्वर देह धारण करता है वा नहीं'—ता० २६-८-१८७६।

पादरी साहब ने कहा कि परमेश्वर के विषय में हमें अत्यन्त नम्रतापूर्वक विचार करना चाहिए। यह कहना कि हम परमेश्वर का सब हाल जानते हैं, मूर्खता है। हम उसके विषय में बहुत कम जानते हैं। आज दो प्रश्न हैं, एक तो यह कि परमेश्वर का देह धारण करना सम्भव है या नहीं, दूसरा यह कि ऐसा कभी हुआ या नहीं। ईश्वर की पुस्तक (बाइबिल) में लिखा है कि परमेश्वर ने मनुष्य को अपनी (शारीरिक नहीं आत्मिक) आकृति पर बनाया। जीवात्मा और परमात्मा के बहुत-से गुण आपस में मिलते हैं, दोनों में मेल हो सकता है, इसलिए यदि परमेश्वर की इच्छा हो कि वह देह में प्रकट हो तो क्या यह असम्भव है ?

स्वामीजी ने कहा कि प्रश्न यह नहीं है कि परमेश्वर का देह धारण करना सम्भव है या नहीं, अपितु यह है कि वह देह धारण करता है वा नहीं। मेरे इसपर ये प्रश्न हैं कि परमेश्वर को देह धारण करने की क्या आवश्यकता है ? उसकी इच्छा में कोई प्रतिबन्ध है ही नहीं। देह धारण करने से वह साकार और एकदेशी हो जाएगा और उसका सृष्टि-कर्त्ता होना असम्भव हो जाएगा, उसे सारी सृष्टि का ज्ञान भी न रहेगा। परमेश्वर सर्वथा देह में आ जाता है वा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जीव और ईश्वर के गुण ठीक-ठीक मिलते हैं वा नहीं, यदि मिलते हैं तो दो ईश्वर हुए।

इसके उत्तर में पादरी साहब ने केवल इतना ही कहा कि ईश्वर सर्वव्यापक तो है, परन्तु हमें इसके अर्थ पूर्णतया ज्ञात नहीं। परमेश्वर सारे शरीर में आ जाता है और बाहर भी रहता है, देह धारण करने के अर्थ देह में प्रकट होने के हैं। वह अपनी इच्छा से मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाने के लिए देह में आता है, क्योंकि मनुष्य, जब तक उसके सामने कोई आदर्श पुरुष न हो, पाप से नहीं बच सकता। परमेश्वर ने मनुष्य को अपनी आकृति पर बनाया, बन्दर आदि को नहीं। उन्हें परमेश्वर ने जैसा चाहा वैसा बनाया। परमेश्वर के देह धारण करने से उसकी महत्ता कम नहीं होती। जीव सान्त, ईश्वर अनन्त है, अतः दो परमेश्वर नहीं हो सकते।

स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर पहले से ही सर्वव्यापक होने से देह में था। वह सर्वशक्तिमान् है, मनुष्य का पंथप्रदर्शन बिना देह धारण किये भी कर सकता है, यदि नहीं कर सकता तो वह अशक्त और असमर्थ हुआ। ईश्वर का देह धारण करना सर्वथा असम्भव है मेरे कई प्रश्नों के पादरी साहब ने उत्तर नहीं दिये।

तीसरे दिन के शास्त्रार्थ का विषय 'ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है'—ता० २७-८-१८७६।

पादरी साहब ने कहा कि ईश्वर का और हमारा, राजा-प्रजा, पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। वह पापों के लिए दण्ड अवश्य देता है, परन्तु क्षमा भी करता है। लोक में भी पिता पुत्र को दण्ड देता है और क्षमा भी करता है। दण्ड अपराधी के सुधार और अन्यों की शिक्षा के लिए होता है, परन्तु हम यह भी कहते हैं कि दण्ड शीघ्र छूट जाना चाहिए।

स्वामीजी ने कहा कि दण्ड देना और क्षमा करना दो परस्पर विरुद्ध बातें हैं। इससे परमेश्वर न्यायकारी नहीं रहता, क्योंकि न्याय के अर्थ हैं कि जो जितना और जैसा कर्म करे उसे उतना और वैसा ही फल देना। पापी को क्षमा करने से पाप बढ़ता है। पापी को पाप करने का साहस होता है। परमेश्वर का न्याय करना स्वाभाविक गुण है, वह उससे उलटा काम नहीं कर सकता, यदि क्षमा करेगा तो न्याय के विरुद्ध होगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फिर परमेश्वर कौन-कौन से पाप क्षमा करता है और कौन-कौन से नहीं ?

पादरी साहब ने कहा कि यह तो हम नहीं कह सकते कि परमेश्वर कहाँ तक दण्ड देता है और कहाँ तक क्षमा करता है, यह उसी का काम है। वेद में भी लिखा है कि अदिति पापों को क्षमा करती है जिसका उल्लेख म्योर साहब ने किया है। यदि केवल क्षमा, क्षमा हो और दण्ड बिलकुल न हो तो अवश्य पाप बढ़ेगा, परन्तु कई दशा में क्षमा नहीं करनी चाहिए। न्याय और दया एक ही हैं। क्षमा के विषय में इञ्जील का प्रमाण है, युक्ति भी है। क्षमा से कभी-कभी बड़े अच्छे परिणाम निकलते हैं, योहन्ना रसूल ने एक डाकू को क्षमा कर दिया था और फिर वह सुधर गया। इसके पक्ष में अनुभव भी है, बहुत-से लोग हैं जिनका 'तौबह' करने से पाप छूट गया और उन्हें शान्ति प्राप्त हो गई। यदि क्षमा न होनी चाहिए तो यह शब्द ही भाषा में न रहना चाहिए। परमेश्वर ने ईसामसीह द्वारा संसार में क्षमा का प्रबन्ध कर दिया है।

स्वामीजी ने कहा कि परमेश्वर जो जानता हो वह जानता हो, परन्तु जिस अंश में आप पापों का क्षमा होना मानते हैं उस अंश तक भी जानते हैं वा नहीं। यदि किसी की सिफ़ारिश से परमेश्वर पाप क्षमा करता है तो वह खुशामदी हुआ, न्यायकारी न हुआ। अदिति के अर्थ पृथिवी, अन्तरिक्ष माता, पिता, ईश्वरादि हैं। वेदों में पापों का क्षमा होना कहीं भी नहीं लिखा। आश्चर्य्य है कि अंग्रेज़ी जाननेवाले वेदार्थ का निर्णय करें। सांसारिक माता-पिता का दृष्टान्त भी ठीक नहीं। पिता पुत्र के पाप करने से अप्रसन्न ही होता है। कोई क्षमा करता है कोई नहीं। यदि सब पिता क्षमा करते तो दृष्टान्त ठीक होता। यदि क्षमा पापी के पवित्र होने के लिए है तो ठीक नहीं, क्योंकि क्षमा से पाप की निवृत्ति संसार में देखने में नहीं आती। यदि क्षमा अपवित्र होने के लिए है तो क्षमा व्यर्थ हुई।

नास्तिक मुंशीराम—इन दिनों बरेली में स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द (पूर्व महात्मा मुंशीराम) के पिता शहर कोतवाल थे। मुंशीराम काशी में कालेज में पढ़ते थे। विषूचिका फैल जाने के कारण कॉलेज में छुट्टी हो गई थीं, अतः वे अपने पिता के पास चले आये थे। इन दिनों वे घोर नास्तिक थे और उन्हें संस्कृतभाषा में अत्यन्त अश्रद्धा थी। वे समझते थे कि उसमें कोई बुद्धिमत्ता की बात हो ही नहीं सकती। वेद का तो उन्होंने नाम भी न सुना था। उनके पिता कट्टर मूर्त्तिपूजक थे जो प्रतिदिन एक घण्टे तक पूजा किया करते थे। महाराज के व्याख्यानों में वे प्रबन्ध-रक्षार्थ जाया करते थे। उन्हें अपने पुत्र के नास्तिक होने का पता था। पहला व्याख्यान सुनकर जब वे घर आये तो उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि मुंशीराम ! एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बड़े विद्वान् और योगी हैं। तुम्हारे संशय उनकी वक्तृता सुनकर दूर हो जाएँगे।

अगले दिन महाराज का व्याख्यान ईश्वर के निज नाम 'ओम्' पर था। पिता-पुत्र दोनों व्याख्यान में गये। पुत्र के मन में अश्रद्धा थी, अविश्वास था। वह समझता था कि एक कोरा संस्कृतज्ञ साधु कोई बुद्धि-संगत बात क्या कहेगा ? व्याख्यान-स्थल में जाकर महाराज की भव्य और विशाल मूर्त्ति को देखनेमात्र से ही मुंशीराम की अश्रद्धा घटने और श्रद्धा बढ़ने लगी और जब उन्होंने देखा कि पादरी स्काट और अन्य दो तीन अंग्रज़ व्याख्यान सुनने के लिए बड़े उत्सुक हैं तो श्रद्धा और भी वृद्धिङ्गत हुई। अभी व्याख्यान आरम्भ हुए १० मिनट हुए होंगे कि मुंशीराम महाराज के कथन को सुनकर चकित हो गये और मन-ही-मन कहने लगे कि यह विचित्र पुरुष है जो केवल संस्कृतज्ञ होकर ऐसी युक्ति-युक्त बातें कहता है, जिन्हें सुनकर विद्वान् लोग भी दङ्ग रह जाएँ। इसके पश्चात् मुंशीराम किसी व्याख्यान में अनुपस्थित नहीं रहे, यहाँ तक कि पादरी स्काट से जो महाराज का तीन दिन तक शास्त्रार्थ हुआ उसमें दो दिन तक उन्होंने महाराज के पक्ष में कार्य किया था तीसरे दिन तीव्र ज्वर आजाने के कारण वे जा ही न सके।

तीन दिन तक मुंशीराम ने अपने में उपस्थित होकर 'ईश्वर-विषय' में प्रश्नोत्तर किये, परन्तु ५ मिनट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में ही महाराज ने उन्हें निरुत्तर कर दिया, अन्त में प्रतिदिन वे यही कहकर चले आते रहे कि महाराज! आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, आपने मुझे निरुत्तर तो कर दिया, परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर है। अन्तिम दिन जब मुंशीराम ने यही वाक्य फिर कहा तो महाराज हँस पड़े और बोले कि देखो ! तुमने प्रश्न किये मैंने उत्तर दिये। यह युक्ति की बात थी। मैंने तुमसे कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास करा दूँगा ? तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब ईश्वर तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास कराएगा। उस समय तो मुंशीराम नास्तिक ही रहे, परन्तु पीछे एक समय आया जब उन्हें स्वयमेव ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो गया और तब उन्हें महाराज का कथन याद आया और उन्होंने कहा कि दयानन्द सच्चा ऋषि था।

दोष बच्चों-के-बच्चों का है—एक दिन व्यख्यान की समाप्ति पर कुछ लोगों ने महाराज से प्रार्थना की कि कल आदित्यवार है, यदि व्याख्यान एक घण्टा पूर्व आरम्भ कर दिया जाए तो उत्तम है। महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली, परन्तु कहा कि मैं तो एक घण्टा पूर्व आजाऊँगा, परन्तु गाड़ी भी एक घण्टा पूर्व पहुँच जानी चाहिए, क्योंकि मैं व्याख्यान स्थल में आने के लिए ठीक उस समय तैयार होता हूँ जब व्याख्यान के आरम्भ होने में १५ मिनट रह जाते हैं। लाला लक्ष्मीनारायण ने कहा कि गाड़ी नियत समय से एक घण्टा पहले पहुँच जाएगी। अगले दिन अन्य दिनों की अपेक्षा एक घण्टा पहले से ही श्रोता इकट्ठे हो गये। नियत समय बीत गया, परन्तु स्वामीजी न आये। पूरा पौन घण्टा पीछे स्वामीजी पधारे और आते ही कहा कि मैं तो नियत समय पर आने को तैयार था, परन्तु गाड़ी नहीं पहुँची। तब मैं प्रतीक्षा करके पैदल ही चल पड़ा। मार्ग में गाड़ी मिली। यही देर का कारण है। सभ्य जनो ! इसमें मेरा दोष नहीं है, दोष बच्चों-के-बच्चों का है, जो प्रतिज्ञा-पालन करना नहीं जानते। लाला लक्ष्मीनारायण बहुत लज्जित हुए और गर्दन झुकाये सुनते रहे।

इनकी लीला देखी अब उनकी देखो—एक दिन व्याख्यान में बरेली के कलक्टर, कमिश्नर, पादरी स्काट और कतिपय अन्य अंग्रेज़ उपस्थित थे। महाराज पुराणों के दोषों का वर्णन कर रहे थे। वर्णन ऐसा विनोदमय था कि उसे सुनकर क्या अंग्रेज़ और क्या भारतीय पुरुष सभी हँस रहे थे। पौराणिकों के इस विश्वास का कि द्रौपदी, तारा, मन्दोदरी आदि कुमारी हैं, महाराज ने खण्डन करते हुए पौराणिकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया कि ये लोग द्रौपदी के पाँच पति बतलाते हैं और फिर भी उसे कुमारी कहते हैं। महाराज ने जब देखा कि अंग्रेज लोगों की हँसी बड़ी अवज्ञा और ग्लानि-सूचक है तो इस विषय को समाप्त कर दिया और बोले कि यह तो हुई पुराणियों की लीला अब किरानियों की सुनो। ये कुमारी के पेट से पुत्र उत्पन्न होना बतलाते हैं और दोष सर्वज्ञ, शुद्धस्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं और ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते। फिर क्या था अंग्रेज़ों की हँसी क्रोध में परिवर्त्तित हो गई। कलक्टर और कमिश्नर के चेहरे क्रोध से तमतमा उठे। महाराज ने इसकी तनिक भी परवाह न की और ईसाई मत की तीव्र आलोचना में कुछ भी कमी न की।

कमिश्नर अप्रसन्न—कमिश्नर ने अगले दिन प्रातःकाल ही लक्ष्मीनारायण को अपने बँगले पर बुलाकर उनसे कहा कि अपने पण्डित से कह दो कि बहुत सख्ती से काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं, हम वाद-विवाद में सख्ती से नहीं घबराते, परन्तु यदि अशिक्षित हिन्दू और मुसलमान उत्तेजित हो गये तो तुम्हारे पण्डित के व्याख्यान बन्द हो जाएँगे।

कमिश्नर का सन्देश कौन दे, सन्देशहर की दुर्दशा—लाला लक्ष्मीनारायण साहब कमिश्नर को यह वचन देकर कि मैं आपकी आज्ञा स्वामीजी तक पहुँचा दूँगा, वापस आ गये। अब वे बड़े असमञ्जस में पड़े।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वचन देने को तो दे आये, परन्तु स्वामीजी से कहें कैसे ? उनमें इतना साहस कहाँ से आता ? उन्होंने अपने अन्य मित्रों से भी स्वामीजी तक कमिश्नर का सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना की, परन्तु सब कानों पर हाथ रख गये, अन्त को ज्यों-त्यों करके एक नास्तिक को पक्का किया। वह और लाला लक्ष्मीनारायण स्वामीजी के पास गये। नास्तिक महोदय भी लड़खड़ा गये और उन्होंने महाराज से केवल इतना ही कहा कि ख़ज़ांची साहब आपसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं, इन्हें कमिश्नर साहब ने बुलाया था, अब तो सारी विपत्ति ख़ज़ांची साहब के सिर ही आ पड़ी। ख़ज़ांची साहब की दशा देखते ही बनती थी, कभी सिर खुजलाते थे, कभी खखारते थे, परन्तु मुँह से एक शब्द भी न निकलता था। जब इस प्रकार कई मिनट हो गये तो महाराज ने कहा कि तुम्हारा तो कोई काम करने का समय नहीं है, इसलिए तुम समय का कुछ मूल्य ही नहीं समझते, मेरा समय अमूल्य है, जो कुछ कहना है कह दो।

यह अवतार है—तब ख़ज़ांची साहब ने अटक-अटककर बड़ी कठिनता से कहा कि महाराज यदि सख्ती न की जाए तो क्या हानि हो, इससे प्रभाव भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेज़ों को अप्रसन्न करना भी अच्छा नहीं है, इत्यादि। यह सुनकर महाराज हँस पड़े और बोले कि अरे बात क्या थी, जिसके लिए इतना गिड़गिड़ाया और हमारा इतना समय नष्ट किया। साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित सख्त बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जाएँगे, यह होगा, वह होगा। अरे भाई ! मैं कोई हव्वा तो नहीं कि तुझे खा लूँगा। उसने तुझसे कहा तू मुझसे सीधा कह देता, व्यर्थ इतना समय क्यों गँवाया। एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू भी वहाँ बैठा था। यह सब सुनकर वह बोला कि देखो ! यह तो कोई अवतार हैं, मन की बात जान लेते हैं।

कोई अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे—उस दिन व्याख्यान 'आत्मा के स्वरूप' पर था। प्रसंगवश महाराज ने सत्य के बल पर कथन करना आरम्भ कर दिया। पादरी स्काट को छोड़कर पिछले दिनवाले सब अंग्रेज़ उपस्थित थे। सब लोग चुपचाप और तन्मय होकर व्याख्यान सुन रहे थे। महाराज ने कुछ देर सत्य का महत्त्व वर्णन करके कहा कि लोग कहते हैं सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे ! चक्रवर्त्ती राजा क्यों न हो हम तो सत्य ही कहेंगे। इतना कहकर महाराज ने एक उपनिषद्वाक्य पढ़ा, जिसमें कहा गया था कि आत्मा को कोई हथियार छेदन नहीं कर सकता, न उसे आग ही जला सकती है, इत्यादि और फिर गरजकर बोले कि यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है, इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट करदे और चारों ओर अपने नेत्रों की ज्योति डालकर, सिंहनाद करते हुए कहा, परन्तु मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, तब तक मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँगा या नहीं। महाराज के यह शब्द सुनकर सारे हॉल में सन्नाटा छा गया।

भक्त स्काट नहीं आये—पादरी स्काट स्वामीजी के भक्त बन गये थे। सिवाय उपर्युक्त व्याख्यान के वे अन्य किसी व्याख्यान नें अनुपस्थित न हुए थे। महाराज इसी कारण से उन्हें भक्त स्काट के नाम से अभिहित किया करते थे। व्याख्यान की समाप्ति पर महाराज ने कहा कि आज भक्त स्काट नहीं आये। इसपर किसी ने बतलाया कि आज आदित्यवार हैं, वे पास के गिरजे में उपदेश किया करते हैं। तब महाराज ने कहा चलो आज भक्त स्काट का गिरजा देख आवें। उस समय अनेक श्रोता चले गये थे फिर भी ३००, ४०० उपस्थित थे। सब-के-सब महाराज के साथ हो लिये। जब स्वामीजी गिरजे में पहुँचे तो पादरी साहब का उपदेश समाप्त ही हुआ था। १०० के लगभग श्रोता थे। पादरी साहब स्वामीजी को आता देखकर वेदी से नीचे उतर आये और महाराज से कुछ उपदेश करने की प्रार्थना की। महाराज ने खड़े-खड़े ही २० मिनट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक मनुष्यपूजा का खण्डन किया जिसे सब लोग चुपचाप सुनते रहे।

खत्री के वीर्य से वेश्या-पुत्र को क्या कहेंगे—लाला लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या रक्खी हुई थी। महाराज ने एक दिन उनसे पूछा कि आपका वर्ण क्या है? उन्होंने कहा कि आप तो वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्मानुसार मानते हैं, मैं क्या उत्तर दूँ? महाराज बोले कि यों तो सभी वर्णसङ्कर हैं, किन्तु लोक के अनुसार तुम अपने को क्या कहते हो। उत्तर में उन्होंने कहा कि मैं खत्री हूँ। महाराज बोले कि यदि खत्री के वीर्य से वेश्या के पुत्र उत्पन्न हो ते उसे क्या कहोगे। खज़ांची ने यह सुनकर लज्जा से सिर नीचा कर लिया, तब महाराज ने कहा कि सुनो भाई! हम किसी का पक्षपात नहीं करते, हम तो सत्य ही कहेंगे। खज़ांची साहब ने उसी रात को उस वेश्या को निकाल दिया।

तार्किक का तर्क कुण्ठित—बाबू विष्णुलाल एम०ए० वकील बरेली को अपने दार्शनिक ज्ञान पर बड़ा घमण्ड था। वह पूर्वीय दर्शन को तुच्छ दृष्टि से देखते थे। एक दिन वे कुछ मित्रों के साथ स्वामीजी के पास गये और पूर्वीय-पश्चिमीय दर्शन पर वार्त्तालाप करने लगे। उन्होंने अपने विचार में पूर्वीय दर्शन का ऐसा खण्डन किया कि वे समझने लगे कि स्वामीजी उनके आक्षेपों का निराकरण न कर सकेंगे, परन्तु जब स्वामीजी ने उनके तर्कजाल को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया तो वे देखते-के-देखते रह गये और उन्हें स्वयं अपनी सम्मति भ्रमयुक्त प्रतीत होने लगी। उन्होंने अपने मित्रों से कहा कि स्वामीजी पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों दर्शनों को जानते हैं। इनका तात्त्विक ज्ञान हम लोगों से बहुत बढ़ा-चढ़ा है।§

'दयानन्द-प्रकाश' में महात्मा मुंशीराम के सम्बन्ध में इतना और लिखा है—

ध्यानावस्थित देखने की धुन—"अब महात्मा मुंशीराम को यह धुन समाई कि महाराज की जीवनचर्या देखनी चाहिए। इस लग्न में मग्न वे पहली बार तो रात के ढाई बजे ही गाड़ी में बैठकर उस उद्यान के निकट जा पहुँचे जहाँ महाराज का निवास था। कौपीनमात्र धारण किये महामुनि उद्यान से बाहर भ्रमणार्थ जाने लगे तो वे भी पीछे-पीछे हो लिये। महाराज की गति का वेग इतना तीव्र था कि महात्माजी थोड़ी देर ही पीछे चलकर हाँफने लगे और गाड़ी में बैठकर घर चले आये, परन्तु अगले दिन उनकी लग्न की मात्रा इतनी बढ़ गई कि वे रात के बारह बजे उठ बैठे और उद्यान के समीप जा खड़े हुए। इस बार वे बहुत दूर तक उनके पीछे गये। वे महाराज को कुछ काल तक ध्यानावस्थित भी अवलोकन कर सके।‡

---

§ बरेली में एक पण्डित विष्णुलाल एम०ए० वकील और भी थे जो सब-जज हो गये थे। उन्हें पक्षाघात रोग के कारण बहुत थोड़े काल सेवा करने के पश्चात् पेंशन लेनी पड़ी। वह दृढ़ आर्यसमाजी और स्वामीजी के अनन्य भक्त थे। उपर्युक्त बाबू विष्णुलाल अग्रवाल थे और थियोसोफ़िस्ट हो गये थे। वे कुछ सनकी-से थे। एक बार वे लाहौर गये और एक व्याख्यान दिया जिसमें कहा, मुझे सिद्धियाँ प्राप्त हैं। कोई व्यक्ति मेरी अंगुली नहीं काट सकता, यदि काट भी देवे तो वह शीघ्र ही ठीक हो जाएगी और अपना हाथ आगे बढ़ाकर उपस्थित लोगों से कहा कि कोई आकर मेरी अंगुली काट डाले। उस समय तो किसी ने यह क्रूर कार्य करने की निर्दयता न की, परन्तु रात्रि में कुछ लोग उनके पास गये और कहा कि हम अंगुली काटने को तैयार हैं, परन्तु लिख दीजिए कि आप हमपर दावा नहीं करेंगे। वकील साहब ने ऐसा ही लिख दिया और यह भी लिख दिया कि यदि अंगुली कट गई तो मैं कहता हूँ कि थियोसोफ़िकल सोसाइटी में कोई महात्मा नहीं। इसके पश्चात् ठाकुरसिंह नामक गवर्नमेंट कालेज के एक विद्यार्थी ने वास्तव में उनकी अंगुली काट डाली और उनकी तथा सोसाइटी की सब कलई खुल गई। यह घटना लेखरामकृत दयानन्द-चरित के पृष्ठ ८४६ पर अङ्कित है।

‡ महात्मा मुंशीराम ने बरेली की स्वामीजी-सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित की भूमिका में किया है, परन्तु उसमें उपर्युक्त घटना का वर्णन नहीं है। सम्भव है उन्होंने इसका वर्णन कहीं अन्यत्र किया हो वा मौखिक रूप से दयानन्द-प्रकाश के रचयिता से किया हो। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्व-लिखित जीवन-चरित—बरेली से ही महाराज ने स्व-लिखित जीवन-चरित† का कुछ भाग थियासोफ़िस्ट पत्र में छपने के लिए भिजवाया था, शेष पीछे किसी अन्य स्थान से भिजवाया होगा। उसका अंग्रेज़ी अनुवाद थियोसोफ़िस्ट में क्रमागत रूप से प्रकाशित हुआ। जो स्व-लिखित जीवन-चरित आजकल आर्यभाषा और उर्दू में मिलता है वह उसी अंग्रेज़ी अनुवाद का अनुवाद है। देवेन्द्रबाबू ने भी उसका बङ्गला अनुवाद प्रकाशित किया था। मूल लेख का कुछ पता नहीं लगा। ज्ञात नहीं वह थियोसोफ़िस्ट के कार्यालय में रहा वा अनुवादक के पास, दुःख है कि उसकी प्रतिलिपि रखने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

(४ सित०—१७ सित०) शाहजहाँपुर (आश्विन कृ० ४—आश्विन शु० २)

४ सितम्बर सन् १८७६ को स्वामीजी शाहजहाँपुर पहुँचे। वहाँ आर्यसमाज स्थापित हो चुका था, अतः सभासदों ने उनके निवास आदि का प्रबन्ध कर रक्खा था। जब स्वामीजी शाहजहाँपुर पहुँचे तो आर्यपुरुषों ने अत्यन्त प्रेम और श्रद्धापूर्वक उनका स्वागत किया और ख़ज़ांची साहब के बङ्गले में उन्हें ठहराया।

आगमन की विज्ञप्ति—स्वामीजी के पधारते ही मन्त्री आर्यसमाज की ओर से एक विज्ञापन छपवाकर सर्वसाधारण में बाँटा गया और नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों और पण्डितों के पास भेजा गया।

जिज्ञासुओं को निमन्त्रण—विज्ञापन में जनसाधारण को स्वामीजी के पधारने और ख़ज़ांची साहब के बङ्गले में ठहरने की सूचना देने के पश्चात् लिखा गया था कि जिन पुरुषों को स्वामीजी के दर्शन और उनसे वार्त्तालाप करने की इच्छा हो वे उक्त स्थान पर जाकर कर सकते हैं। स्वामीजी का व्याख्यान गवर्नमेण्ट हाईस्कूल में ६, ७, ६, ११, १३ और १४ तारीख को सायङ्काल के ५ से ७ बजे तक होगा। व्याख्यान के बीच में किसी को बोलने की आज्ञा न होगी, परन्तु व्याख्यान की समाप्ति पर जिसे जो कुछ पूछना हो पूछ सकेगा। यदि किसी को उनसे शास्त्रार्थ करना हो तो आर्यसमाज को सूचित करे, परन्तु शास्त्रार्थ लिखित होगा। मौखिक कदापि न होगा। शास्त्रार्थ के अन्य नियम शास्त्रार्थ करने की इच्छा की सूचना आने पर दोनों पक्षों की सम्मति से निर्धारित हो जाएँगे। चौदहवीं तारीख तक यदि कोई सूचना भेजेगा तो शास्त्रार्थ होगा, उसके पीछे किसी को यह कहने का अधिकार न होगा कि स्वामीजी चले गये, अन्यथा हम उनसे शास्त्रार्थ करते।

वेद शङ्खासुर ले-गया—पण्डित लक्ष्मणशास्त्री नामक एक पण्डित विज्ञापन को देखकर महाराज से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आये। महाराज ने उनसे कहा कि मूर्त्तिपूजा के समर्थन में वेद का कोई प्रमाण दीजिए। शास्त्री महोदय बोले कि वेद का प्रमाण कहाँ से दूँ, वेद को तो शङ्खासुर ले-गया। महाराज ने उनके आगे वेद के पुस्तक रखकर कहा कि हमने आपके आलस्य और प्रमाद रूपी शङ्खासुर का वध करके वेद जर्मनी से मँगाये हैं, इनमें से खोजकर कोई प्रमाण दीजिए।

पण्डितजी को मौन रहने के अतिरिक्त कोई उपाय न सूझा और सारी सभा हँस पड़ी।

पौराणिक दल विकल और विह्वल, शास्त्रार्थ के लिए पण्डित अङ्गदराम बुलाये गये—पौराणिक दल लक्ष्मणशास्त्री की यह दशा देखकर विकल और विह्वल हो गया और स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का आयोजन करने लगा। शाहजहाँपुर में तो कोई ऐसा पण्डित था नहीं, जो स्वामीजी से मोरचा लेता, अतः उन्होंने पीलीभीत से पण्डित अङ्गदराम शास्त्री को बुलाया जो संसारभर में किसी को अपने समान विद्वान् न समझते थे। बरेली में भी वह स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये थे और कोलाहल मचाकर चले गये थे। एक बार जब स्वामीजी कर्णवास में विराजमान थे तो इन्हीं शास्त्रीजी ने स्वामीजी के पास एक पत्र संस्कृत में भेजा

† जो इस विषय में तथा ऋषिकृत अन्य ग्रन्थों के विषय में अधिक जानना चाहें वे मेरा लिखा "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" पुस्तक देखें। —युधिष्ठिर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, जिसका उत्तर उन्होंने विस्तारपूर्वक दे दिया था और उत्तर में इनके पाण्डित्य की भी खूब कलई खोली थी। आज यही पण्डित अङ्गदराम शास्त्री फिर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का दम भरते हैं। परिणाम जो होना है उसका पाठक पहले से ही अनुमान कर सकते हैं।

पण्डित अङ्गदराम का पत्र—पण्डित अङ्गदराम शास्त्री आये और १० सितम्बर सन् १८७६ को उन्होंने स्वामीजी को एक पत्र लिखा जिसका सारांश नीचे दिया जाता है।

मैं शास्त्रार्थ चिकीर्षु बहुत दिनों से जहाँ-तहाँ प्रथम स्थान कर्णवास श्रीगङ्गाजी के तट पर, फिर अलीगढ़ गया, परन्तु आप किनारा करके चल दिये। संवत् १६३३ में बरेली में गया, आपने मुझसे शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया, परन्तु नियत समय पर जब ५००० के लगभग मनुष्य एकत्र हुए तो आपने शास्त्रार्थ करने से इन्कार कर दिया। फिर आप बरेली आये, परन्तु इतने में मैंने वहाँ जाने का अवकाश किया तो आप शाहजहाँपुर चले आये। मैं भी स्वामी प्रज्ञाचक्षुजी का ज्येष्ठ शिष्य विद्यारूपी वंश में आपके समय से पहले का हूँ, कृपया निम्नलिखित नियमों को स्वीकार करके अपनी चिट्ठी भेज दीजिए। यदि आपकी सम्मति अन्य नियमों की हो तो उचित समझकर स्वीकार करूँगा।

शास्त्रार्थ के नियम—

(१) प्रथम तो यहाँ कोई मध्यस्त ज्ञात नहीं होता, इसलिए फ़ारसी, अरबी, अंग्रेज़ी पढ़े हुए दस तथा बीस बुद्धिमान् बिठा लिये जाएँ। प्रथम शास्त्रार्थ के विषय को मैं संस्कृत में कहूँ, फिर आप उसका भाषा में अनुवाद करके जब मैं उसे ठीक होना प्रमाणित कर दूँ, आप सुना दें। इसी प्रकार मैं आपके संस्कृत-कथन का भाषानुवाद करके सुना दूँ। जिस विषय को उक्त पुरुष समझने में असमर्थ हों वह विषय लिखकर दोनों उसपर हस्ताक्षर कर दें। वह जिस पण्डित को श्रेष्ठ समझें उसे दिखाकर जय-पराजय का निश्चय करा लें।

(२) शास्त्रार्थ में किसी पक्ष को क्रोध करने, अश्लील वा कटु वाक्य कहने का अधिकार नहीं होगा, यदि कोई ऐसा करेगा तो उसका पराजय समझा जाए।

(३) दस मिनट मैं विषय का उपपादन करूँ तो दस ही मिनट आप करें।

(४) मेरा यहाँ कोई मकान नहीं है, अतः खज़ांची ब्रजकिशोर का मकान तज़वीज़ किया है, आप कृपया एक दिन निश्चित कर दीजिए।

(५) इसके उत्तर से सूचित कीजिए।

यह पत्र स्वामीजी को ११ सितम्बर को बाबू हरगोविन्द बनरजी द्वारा दिन के ११-३० बजे मिला। बाबू हरगोविन्द पहले आर्यसमाज के प्रधान थे, परन्तु धर्मविरुद्ध आचरण करने के कारण अपदस्थ कर दिये गये थे। स्वामीजी के उत्तर का साराँश§ निम्न प्रकार है—

स्वामीजी का उत्तर—यदि आपको शास्त्रार्थ करने की इच्छा होती तो सभ्यता और विनयपूर्वक शास्त्रार्थ करते, मैंने कभी ऐसे शास्त्रार्थ करने का निषेध नहीं किया और न अब करता हूँ। हाँ ! जहाँ मूर्ख और असभ्य पुरुषों का हल्ला-गुल्ला होता है वहाँ मैं खड़ा भी नहीं होता। यह बात आपकी अत्यन्त झूठ है कि जहाँ-जहाँ आप जाते हैं मैं वहाँ-वहाँ से आपसे किनारा करके चला जाता हूँ। आपसे मुझे किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है, क्योंकि आपमें ऐसे गुण ही नहीं हैं जो भयप्रद हों। बरेली में भी आपके दङ्गा-बखेड़ा करनेवाले मनुष्यों को साथ लाने के कारण खज़ांची लक्ष्मीनारायण ने आपको अपने बङ्गले में आने से रोक दिया था। बरेली और शाहजहाँपुर के अतिरिक्त मैंने कभी आपका आना सुना भी नहीं। आपमें शास्त्रार्थ करने का

§ यह पूरा पत्र ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ १७१-१७३ तक छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जितना बल हो उतना कर लीजिए। आप मथुरा में श्री दण्डीजी की पाठशाला में पढ़े होंगे, परन्तु आप यदि उनके शिष्य होते तो उनके उपदेश के विरुद्ध आचरण न करते और ज्येष्ठ, कनिष्ठ, उत्तम व नीच गुण-कर्म से होते हैं।

इस शास्त्रार्थ में निम्नलिखित नियम उभयपक्ष को मानने होंगे—

शास्त्रार्थ के नियम —

(१) इस शास्त्रार्थ में चारों वेद मध्यस्थ होंगे, अर्थात् वेदविरुद्ध झूठा और वेदानुकूल सच्चा माना जाएगा।

(२) यदि किसी वेदमन्त्र के पद के अर्थ में विप्रतिपत्ति होगी तो उसका वही अर्थ सत्य समझा जाएगा जिसकी साक्षी में ब्रह्मा से लेकर जैमिनि-मुनि पर्यन्त के सनातन माननीय ग्रन्थों का प्रमाण मिलेगा अन्य का प्रमाण न माना जाएगा। जो वेदानुकूल, सृष्टि-क्रमानुसार, प्रत्यक्षादि प्रमाण-लक्षणलक्षित, आप्तानुचरण के अविरुद्ध और अपने आत्मा की विद्या और पवित्रता के अनुकूल—इन पाँच कसौटियों से परीक्षित होगा वही सच्चा माना जाएगा अन्यथा नहीं।

(३) एक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थ में पचास-पचास चतुर विद्वान् पुरुष सभासद् होने चाहिएँ।

(४) उक्त १०० पुरुषों को सभा में प्रवेश करने के लिए टिकट मिल जाएँगे, इनके अतिरिक्त अन्य कोई सभा में न आ सकेगा।

(५) हरएक अपने पक्ष को सप्रमाण लिखाकर सुना तथा समझा दिया करेगा अथवा दूसरे के द्वारा सुनवा तथा समझवा दिया करेगा।

(६) उभयपक्षवालों को अपने-अपने समय में प्रश्नोत्तर का एक-एक अक्षर लिखवा कर आगे चलना होगा।

(७) जो-जो उभयपक्षवाले कहेंगे उसे तीन लेखक लिखते जाएँगे, प्रत्येक प्रति पर दोनों के हस्ताक्षर होंगे, एक प्रति मेरे पास, एक आपके पास रहेगी और एक सरकार में रहेगी जिससे कभी कोई घटा-बढ़ा न सके।

(८) आपने जो दस-दस मिनट प्रत्येक पक्ष के लिखे हैं, उसमें प्रश्न के लिए दो मिनट और उत्तर के लिए दस मिनट होने चाहिएँ।

(९) शास्त्रार्थ में बोलने का अधिकार केवल मुझे और आपको होगा, अन्य को नहीं।

(१०) खज़ांचीजी का बङ्गला ही जहाँ मैं ठहरा हूँ शास्त्रार्थ के लिए निश्चित रहना चाहिए, क्योंकि यह न मेरा स्थान है न आपका।

(११) मेरा विषय वेदादि सनातन शास्त्रों की रीति से पाषाण आदि मूर्त्तिपूजा और पुराण आदि के पक्षों का खण्डन होगा और आपका विषय उनका मण्डन होगा।

(१२) उभयपक्षवालों को कुवचन, हठ, दुराग्रह, पक्षपात, भय, शङ्का, लज्जा आदि को छोड़कर सत्य का ग्रहण करना और झूठ को छोड़ना आवश्यक है, क्योंकि आप्तों का यही सिद्धान्त है।

(१३) जब तक किसी विषय का खण्डन वा मण्डन पूरा न होगा तब तक शास्त्रार्थ बन्द न होगा, किन्तु प्रतिदिन होता ही रहेगा, क्योंकि आरब्ध कर्मों को बीच में निष्फल न छोड़कर सिद्धान्तपर्यन्त पहुँचा देना विद्वानों का मुख्य सिद्धान्त है। इसी रीति से बहुत दिनों वा महीनों तक शास्त्रार्थ होने से आपकी शास्त्रार्थ करने की उत्सुकता भी परिपूर्ण हो जाएगी।

(१४) उभयपक्षवालों को सरकार से पुलिस आदि का अवश्य प्रबन्ध करना होगा, जिससे कोई असभ्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्य शास्त्रार्थ में विघ्न न डाल सके।

(१५) शास्त्रार्थ प्रतिदिन सन्ध्या समय ५ बजे से ८ बजे तक होगा।

(१६) एक दिन पहले मैं बोलूँगा तो दूसरे दिन आप बोलेंगे और जिस दिन जो पहले बोलेगा उस दिन वही अन्त में बोलेगा।

पण्डित अङ्गदराम का प्रत्युत्तर—इस पत्र का जो उत्तर शास्त्रीजी ने दिया उसका सारांश निम्न प्रकार है—

मैंने १० सितम्बर को आपकी सभा के मन्त्री द्वारा पत्र भेजा था उसका उत्तर आज १२ तारीख को पाँच बजे मिला। यह आपके अन्तःकरण को ही विदित होगा कि आपने शास्त्रार्थ करने से निषेध किया, मेरी इच्छा शास्त्रार्थ करने की न होती तो मैं तन, मन, धन लगाकर और विदेश-यात्रा का श्रम सहन कर अन्यत्र क्यों जाता ? यहाँ मेरा आपके पास बङ्गले में न ठहरना शास्त्रार्थ करने की इच्छा का प्रतिबन्धक नहीं हो सकता। मैंने जो लिखा था वह आप जहाँ-तहाँ से शास्त्रार्थ से बचकर चले आये, उसे आप झूठ कहते हैं आपका यह कहना झूठ है। मुझमें ऐसे भयङ्कर गुण नहीं हैं जो आपको भयप्रद हों। बरेली में जो बात शास्त्रार्थ की निश्चित हुई थी वह किसकी ओर से टूटी, वह अन्य सज्जनों के अतिरिक्त बरेली के पुलिस इन्स्पेक्टर मौलवी अब्दुलहई और शाहजहाँपुर के ज़िला स्कूल के थर्ड मास्टर को भी विदित है। लाला लक्ष्मीनारायण के बाग़ीचे में शास्त्रार्थ को रुकवा देना आपका ही कर्म था। मेरे प्रज्ञाचक्षुजी के शिष्य होने का वृत्त मथुरावासी सब श्रेष्ठ पुरुषों को विदित है, इस विषय में आपका सन्देह करना मिथ्या है। मैंने जो अपने को दण्डीजी का ज्येष्ठ शिष्य लिखा था सो वंश विषयक था। दण्डीजी नियमपूर्वक प्रतिदिन (दुर्गा) सप्तशती स्तोत्र का पाठ किया करते थे और कभी-कभी नीलकण्ठ महादेव तथा रङ्गनाथ महादेव के श्रद्धापूर्वक दर्शन तथा तीर्थ-परिक्रमा और दान आदिक सब कर्म करते थे। कृष्णशास्त्री से कौमुदी के अजा में षष्ठी वा सप्तमी समास है, इस विषय पर शास्त्रार्थ होने के पीछे वह भट्टोजी दीक्षित व कैयट, कौमुदी प्रभृति ग्रन्थों का खण्डन करने लगे थे और एतदर्थ उन्होंने वाक्यमीमांसा वा धूर्त्तनिराकृत व्याकरण ग्रन्थ बनाये थे। यदि ये बातें मिथ्या हों तो मैं भी उसी मत को ग्रहण कर लूँ, प्रज्ञाचक्षुजी का जो आचरण हो उसे ही सत्य मानकर ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रार्थ का स्थान यदि खज़ांची (ब्रजकिशोर) का गृह अग्राह्य हो तो विश्रान्त वा अमुक-अमुक बाग़ स्वीकार कीजिए। रविवार को २ बजे से ६ बजे तक शास्त्रार्थ होना चाहिए, रात्रि में शास्त्रार्थ का कौन अवसर है। वेदार्थ के विषय में जैमिनिपर्यन्त कोई ग्रन्थ वेदार्थ प्रतिपादक है ही नहीं, सूत्रादि पद-क्रम के ग्रन्थ हैं, अतः उनमें कोई अर्थ प्रतिपादक सायण, महीधर प्रभृति के सदृश नहीं हैं। यदि कोई ग्रन्थ आपके पास हो तो दिखलाइए। प्रश्न के लिए दो और उत्तर के लिए दस मिनट रखना कैसे हो सकता है क्योंकि कभी १५ और २० मिनट भी अपेक्षित होंगे, हम अपने नियम को कि दस मिनट एक पक्ष और दस मिनट ही दूसरा पक्ष अपने विषय का प्रतिपादन करे कभी न त्यागेंगे। शास्त्रार्थ में उभय पक्ष के पचास-पचास मनुष्य ही हों यह नियम विलक्षण है, किसी के आने-जाने का प्रतिबन्ध न होना चाहिए। शास्त्रार्थ दिन-प्रतिदिन महीनों तक हो इस नियम से आपका आशय मेरी छुट्टी के दिनों को व्यर्थ खोना है, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो पीलीभीत चलिए, वहाँ शास्त्रार्थ करूँगा।

दण्डीजी पर मिथ्या दोषारोपण—शास्त्रीजी ने दण्डी विरजानन्दजी के विषय में जो यह लिखा है कि वे शिवालयों में जाकर मूर्त्तिदर्शन और परिक्रमा आदि करते थे यह सर्वथा मिथ्या है, उनके विषय में केवल शास्त्रीजी ही हैं जो ऐसा अपवाद करते हैं, अन्य कोई भी मनुष्य ऐसा कहता हुआ नहीं सुना गया, दुर्गा सप्तशती का वे अवश्य पाठ किया करते थे, परन्तु कहा जाता है कि वह सप्तशती दूसरे ही प्रकार की थी।

पण्डित अङ्गदराम का दुराग्रह—शास्त्रीजी का स्वामीजी के निवास-स्थान पर शास्त्रार्थ करने पर सहमत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न होना और अन्य स्थानों पर ही जो स्वयं उन्होंने निश्चित किये थे शास्त्रार्थ करने पर आग्रह करना, केवल एक ही दिन शास्त्रार्थ करने पर अड़ना, रात्रि के समय जबकि सब गण्यमान्य, राजकर्मचारी, शिक्षितवर्ग आदि सभ्यजन उपस्थित हो सकते थे, शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न होना, शास्त्रार्थ-स्थल में हर किसी को बेरोक-टोक आने देने पर हठ करना, केवल शास्त्रार्थ से बचने के उपाय थे। यदि दूसरे स्थानों पर शास्त्रार्थ होना निश्चित होता और श्रोताओं की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाता तो शास्त्रीजी और उनके साथी उद्दण्ड, अशिक्षित लोगों को हुल्लड़ करने का बड़ा उत्तम अवसर मिलता और फिर सहज में ही उनका शास्त्रार्थ से छुटकारा हो जाता और अपनी विजय-दुन्दुभि बजाने का अवसर हाथ लग जाता। एक बार बरेली में शास्त्रीजी ऐसा कर चुके थे। इस बार स्वामीजी उन्हें यह अवसर देना नहीं चाहते थे। शास्त्रीजी का यह लिखना भी मृषा था कि उन्होंने आर्यसमाज के मन्त्री के द्वारा स्वामीजी के पास १० सितम्बर को पत्र भेजा था। हम कह चुके हैं कि यह पत्र उन्होंने बाबू हरगोविन्द बनरजी के द्वारा भेजा था।

पण्डित अङ्गदराम का साक्षी उनके विरुद्ध—बरेली की घटना के विषय में शास्त्रीजी ने साक्षी के तौर पर ज़िला स्कूल शाहजहाँपुर के थर्ड मास्टर का नाम लिया था। उनका नाम मौलवी नियाज़ अहमद था। आर्यसमाज के मन्त्री ने उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा, हम मन्त्री के पत्र और मौलवी नियाज़अहमद के उत्तर की, जो उर्दू में थे, ज्यों-की-त्यों प्रतिलिपि नीचे देते हैं—

जनाबे मन बाद तसलीम आँ कि बाज़ शख्स इस बात की ख्वाहिश करते हैं कि आपसे हाल शास्त्रार्थ यानी मुबाहिसे बरेली का जो दरमियान स्वामी दयानन्द सरस्वती व पण्डित अङ्गदशास्त्री होनेवाला था दरियाफ़्त करें। लिहाज़ा बराये मेहरबानी यह लिख दीजिए कि वह मुबाहिसा किस वजह से न हो सका, किसकी तरफ़ से ढील हुई और वजह ढील क्या थी ? जवाब इसकी पुश्त पर लिख दीजिए ताकि उनको दिखला दिया जावे।

यक़ीन है कि आप अच्छी तरह से कैफ़ियत जानते होंगे। ज़ियादा वस्सलाम।

आपका नियाज़मन्द बख्तावरसिंह

मौलवी नियाज़अहमद का उत्तर

मुंशी साहब ! मुद्दआ परदाज़ हूँ, मुबाहिसा इस वजह से न हुआ कि अङ्गदशास्त्री के रुफ़क़ा दरपै तौहीन पण्डित दयानन्द सुरसुती के थे। अलल अमूम सुकान (?) बरेली हैं, जब उनसे कह दिया कि यह साहब धर्म में नई-नई बातें निकालते हैं और बुतपरस्ती को मना करते हैं, वे लोग मुश्तइल (उत्तेजित) हो गये और चाहते थे कि एक जम्मे ग़फ़ीर (बहुत भीड़-भाड़) के साथ शहर से बाहर हो। इस अमर को पण्डित दयानन्द सुरसुती ने पसन्द न किया और उनका मनशा (अभिप्राय) था कि खास लोगों के रूबरू किसी रईस के यहाँ जहाँ अहले इल्म (विद्वान्) हों अमूर मुतनाज़आ फीह (विवादास्पद विषयों) का तसफ़िया (निर्णय) हो जाए।

अर्राकिम नियाज़अमहद फ़ारूक़ी।

मौलवी नियाज़अहमद के उत्तर के पश्चात् तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं रहता कि बरेली में शास्त्रार्थ केवल इस कारण न हुआ कि शास्त्रीजी का अभिप्राय स्वामीजी को अपमानित करना और दंगा-बखेड़ा करना था अन्यथा कुछ चुने हुए सभ्य पुरुषों के सामने शास्त्रार्थ करने में कौन-सी रुकावट थी। शाहजहाँपुर में भी वे इसी कारण से १०० शिक्षित और सभ्य पुरुषों की उपस्थिति में शास्त्रार्थ करने से कतराते और जी चुराते थे। यदि दर्शकों की संख्या नियत हो जाती और कोई असभ्य और उजड्ड मनुष्य शास्त्रार्थ में न आने पाता तो शास्त्री महोदय को ताली पीटने, ढेले फेंकने और शोर मचाने के लिए कौन मिलता ? स्वामीजी का यह प्रतिबन्ध लगाना भी युक्तियुक्त ही था कि जब तक विषय का पूरी तरह निर्णय न हो जाए शास्त्रार्थ प्रतिदिन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता रहे चाहे इसमें कितने ही दिन वा मास ही क्यों न लग जाएँ। शास्त्रीजी पीलीभीत में गवर्नमेण्ट स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे और छुट्टी लेकर शाहजहाँपुर आये थे। यह उनका काम था कि यदि शास्त्रार्थ उनकी छुट्टी की अवधि के भीतर समाप्त न होता तो और छुट्टी ले-लेते, अतः स्वामीजी पर उनका यह दोषारोपण करना कि स्वामीजी व्यर्थ बहाना करके उनकी छुट्टी के दिन बिताना चाहते हैं अयुक्तियुक्त और मिथ्या था। वास्तव में वे स्वयं किसी-न-किसी मिष से शास्त्रार्थ से बचना चाहते थे। स्वामीजी ने उनके प्रत्युत्तर के उत्तर में उन्हें निम्नलिखित पत्र भेजा—

स्वामीजी का पत्र—"श्रीयुत् अङ्गदशास्त्र्यादि पण्डितान् प्रतीदं प्रख्यापनम्। संवत् १६३६ आश्विन कृष्णा १२ शनिवार का लिखा तुम्हारा पत्र आश्विन कृष्णा १३ रविवार को दिन के ११-३० बजे मेरे पास पहुँचा। पत्रस्थ लिखा अभिप्राय सबपर प्रकट हुआ। मुझे अति निश्चय है कि तुम लोग शास्त्रों का विचार करना-कराना तो तब जानोगे जब तुम्हारे अनेक जन्मों के पुण्य उदित होंगे, परन्तु जो मैं तुम्हारे निश्चय किये हुए स्थानों में बात-चीत करने को आऊँ तो तुमको हल्ला-गुल्ला करने को अच्छा अवसर मिल जाए। अब जो तुमको पूर्वोक्त ५० धार्मिक बुद्धिमान् रईसों के साथ यहाँ आकर कुछ कहना-सुनना हो तो मैं आने से नहीं रोकता आगे तुम्हारी प्रसन्नता। संवत् १६३६ आश्विन कृष्णा १३ रविवार।§

शास्त्रीजी की यह चाल भी देखने योग्य है कि वह रविवार को शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और शनैश्चर को पत्र लिखते हैं, परन्तु प्रबन्ध ऐसा करते हैं कि उनका पत्र रविवार को ११-३० बजे दिन में स्वामीजी को मिलता है।

स्वामीजी के पत्र का उत्तर शास्त्रीजी ने निम्नलिखित दिया—

अङ्गदराम का पत्र—"श्रीयुत् दयानन्द सरस्वती समीपेषु मत्कुशलपूर्वकमिदं विज्ञापनम्। आपका पत्र ३-३० बजे मेरे पास पहुँचा। पत्रस्थ लेखाशय प्रकट हुआ। आपको ऐसा नहीं लिखना चाहिए। कभी कुछ और कभी कुछ। या तो स्वामी प्रज्ञाचक्षु के मंत पर होना चाहिए जिसे आप अपने पूर्व पत्र में स्वीकार कर चुके हैं, जिस परम्परा से शास्त्रार्थ होते हैं उस विधि से कीजिए, हम तैयार हैं, तीन स्थान तो निर्णीत हैं उनमें से किसी पर आ जाओ।

समालोचना—शास्त्रीजी ने यह न बताया कि स्वामीजी के पत्रों में कौन-सी परस्पर विरुद्ध बात थी। शास्त्रार्थ का विषय यह तो न था कि प्रज्ञाचक्षुजी का किस समय क्या मत था। स्वामीजी तो उनका वह मत समझते थे जो स्वामीजी के अध्ययनकाल में था और जिसके प्रचार के लिए उन्हें दण्डीजी ने आदेश दिया था। उससे पहले दण्डीजी के क्या विचार थे इस प्रश्न की मीमांसा की कोई आवश्यकता न थी। शास्त्रार्थ का विषय तो यह था कि मूर्त्तिपूजा आदि वेदानुमोदित है कि नहीं। शास्त्रीजी अपने ही निश्चित स्थानों पर शास्त्रार्थ करने के जिस अभिप्राय से इच्छुक थे वह स्वामीजी ने अपने पत्र में स्पष्ट कर दिया था। शास्त्रीजी ने अन्त तक यह न कहकर दिया कि स्वामीजी के निर्दिष्ट स्थान में शास्त्रार्थ करने में कौन-सा कारण बाधक था और उनके स्थानों में कौन-सा हेतु शास्त्रार्थ का साधक था। न ही शास्त्रीजी ने यह बताया कि शास्त्रार्थ की परम्परागत कौन-सी विधि थी। हम समझते हैं वही थी जिसका अवलम्बन काशी के पण्डितों ने काशी शास्त्रार्थ के समय और अन्य स्थानों में अन्य पौराणिकों ने किया था और जिसका अवलम्बन वह स्वयं बरेली में कर चुके थे और शाहजहाँपुर में भी करना चाहते थे।

इस प्रकार शास्त्रार्थ का यह आयोजन समाप्त हुआ।

सत्यधर्म की कसौटी—एक व्याख्यान में महाराज ने सत्यधर्म की कसौटी यह बताई थी कि जिस-जिस

§ यह पत्र ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ १७३ पर छपा है। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बात पर सब मत-मतान्तरवाले सहमत हों जैसे सत्य बोलना आदि वही सत्यधर्म है और जिन-जिन बातों में उनमें मतभेद है वही असत्य हैं।

किराये की गाड़ी क्यों लाये—एक दिन वे सज्जन जो महाराज के लिए अपनी गाड़ी लाया करते थे, किराये की गाड़ी लेकर आये। महाराज ने कहा कि आप किराये की गाड़ी क्यों लाये ? मैं गाड़ी में बैठने का व्यसनी नहीं हूँ। मुझे तो पैदल चलने में ही आनन्द आता है। गाड़ी में इसलिए बैठता हूँ कि समय की बचत हो।

मितव्ययिता—एक दिन पण्डित भीमसेन बाज़ार से कुछ खाद्य पदार्थ मोल लाये। स्वामीजी ने उनसे कहा कि ज्ञात होता है आपने भाव की पूछ-ताछ नहीं की और पदार्थ भी अच्छे नहीं हैं। रुपया बड़ी सावधानी से खर्च करना चाहिए। कभी-कभी एक कौड़ी की कमी से करोड़ों की हानि हो जाती है।

समय का मूल्य—एक दिन कर्मचारी नियत समय से आध घण्टा पीछे काम पर आये। महाराज ने उन्हें उपदेश दिया कि हमारे देश के निवासी समय का मूल्य नहीं जानते, उसे व्यर्थ खोते हैं यही उनकी दुरवस्था का कारण है। **समय का मूल्य उस समय ज्ञात होता है जब एक मरणासन्न रोगी को देखकर वैद्य कहता है यदि मुझे पाँच मिनट पहले बुलाते तो यह न मरता। अब सहस्र रुपये भी व्यय करके नहीं बच सकता।**

(१८ सित०—२४ सित०) लखनऊ (आश्विन शु० २—आश्विन शु० ६)

शाहजहाँपुर से स्वामीजी १७ सितम्बर सन् १८७६ को लखनऊ के लिए रवाना हो गये। १८ सितम्बर को स्वामीजी लखनऊ उपस्थित हुए। इस बार महाराज लखनऊ केवल छह दिन टिके। लखनऊ से २४ सितम्बर को वे कानपुर गये और वहाँ केवल एक दिन ठहरकर फ़र्रुखाबाद चले गये।

(२५ सित०—८ अक्तू०) फ़र्रुख़ाबाद (आश्विन शु० १०—अधिमास आश्विन कृ० ८)

श्रीमहाराज का २५ सितम्बर सन् १८७६ को फ़र्रुखाबाद में पुनः आगमन हुआ। उस दिन आश्विन का दशहरा था। आपके आगमन से पूर्व ही फ़र्रुखाबाद में आर्यसमाज लाला मदनमोहनलाल के मकान पर श्रावण कृष्णा ६ सं० १९३६ को स्थापित हो चुका था। इस बार आपको ला० मिट्ठनलाल प्रभृति ने व्याख्यान देने के लिए बुलाया था। आप इस बार फ़र्रुखाबाद ८ अक्टूबर सन् १८७६ तक रहे और प्रतिदिन व्याख्यान देते रहे।§ व्याख्यान सन्ध्या समय ५ बजे से ७ बजे तक होते थे। जेनियल साहब ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट और पादरी टी०जे० स्काट साहब व्याख्यान श्रवण करने के लिए बहुधा आया करते थे। अन्य अफ़सर और नगर के प्रतिष्ठित पुरुष भी आते थे। पहले आपके व्याख्यान लाला गौरीलाल के बङ्गले पर और फिर लाला मिट्ठनलाल की कोठी पर हुए। एक दिन व्याख्यान के समय तक पादरी स्काट साहब न आये। आपने व्याख्यान आरम्भ कर दिया। कुछ लोगों ने कहा कि पादरी साहब की प्रतीक्षा कर लीजिए, परन्तु आपने स्वीकार न किया।

रोग की चिकित्सा—इन दिनों महाराज संग्रहणी रोग से आक्रान्त थे। उनकी चिकित्सा बाबू दुर्गाप्रसादजी ने अपने एक विश्वस्त मुसलमान हकीम से कराई थी। पहले तो महाराज उससे चिकित्सा कराने पर सहमत न हुए, परन्तु बाबू दुर्गाप्रसाद के विश्वास दिलाने पर सहमत हो गये।

---

§ आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद की ओर से जो फ़र्रुखाबाद का इतिहास प्रकाशित हुआ है उसमें इस बार फ़र्रुखाबाद में केवल तीन व्याख्यान होने का उल्लेख है। पहला 'गोरक्षा', दूसरा 'दान का महत्व' और तीसरा 'धर्म' पर हुआ। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूजकों ने मूर्त्तिपूजा छोड़ दी—इस बार महाराज का निवास ला० कालीचरण के बाग़ में हुआ था। उस बाग़ में दो देवमूर्तियाँ थीं। महाराज के व्याख्यानों का ऐसा प्रभाव हुआ कि लोगों ने देवमूर्तियों की पूजा करनी छोड़ दी।

गोरक्षा पर व्याख्यान, गोवध से हानि—महाराज का एक व्याख्यान गोरक्षा विषय पर हुआ था जिसमें आपने कहा था कि यदि एक मोटी-ताज़ी गौ को मारा जाए तो उसके खाने से केवल २० मनुष्यों का पेट भर सकता है वह भी तब जब कि उसके मांस में १० सेर अन्न भी मिलाया जाए। यदि उस की रक्षा की जाए तो वह दस बार जनेगी और यदि वह ५ सेर दूध प्रतिदिन एक वर्ष तक दे तो १८००० सेर दूध देगी जिसमें यदि प्रति मन ५ सेर चावल डालकर खीर बनाई जावे और एक मनुष्य एक सेर खावे तो एक समय में २०२५० मनुष्यों का पेट भर सकता है। इसके अतिरिक्त उसकी जो बछियाएँ होंगी वे गाय बनेंगी और उनसे उत्तरोत्तर अधिक लाभ पहुँचेगा। उसके बछड़े बैल बनकर भूमि जोतकर सहस्रों मनुष्यों का अन्न से पेट भरेंगे। देश में सहस्रों गौएँ प्रतिदिन मारी जाती हैं जिससे देश की अत्यन्त हानि हो रही है, इसी कारण यह देश दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है। कितने शोक की बात है कि इतनी भारी क्षति को देखते हुए भी हमारे देश के शासक इस ओर ध्यान नहीं देते, परन्तु इसमें केवल शासकों का ही अपराध नहीं है, हमारा भी अपराध है। हममें एकता नहीं है और इसी कारण यह क्षति होती चली जा रही है। सब मिलकर सरकार से निवेदन केरें तो क्या गोवध बन्द नहीं हो सकता ?

विद्वेषियों का अपवाद—इस व्याख्यान के सम्बन्ध में नगर के पौराणिक पण्डितों ने श्रीमहाराज की बहुत निन्दा की कि स्वामीजी गौ को पशु बताते हैं और उसके वध करने में भी कुछ दोष नहीं मानते, परन्तु ऐसी ऊट-पटाँग बातों पर किसी ने कुछ ध्यान न दिया, प्रत्युत उलटा उन्हीं लोगों को लज्जित होना पड़ा। गौ को स्वामीजी यदि पशु न कहते तो क्या उन्हें मनुष्यों की कोटि में रखते ?

२ अक्तूबर सन् १८७९ को महाराज का व्याख्यान लाला जगन्नाथ के गृह पर और ५ अक्तूबर को आर्यसमाज में ला० मदनमोहनलाल के गृह पर और ८ अक्तूबर को फ़तहगढ़ में मुं० गौरीलाल के बँगले पर हुआ।

कुत्ते की दौड़ की उपमा—५ अक्तूबर को महाराज घोड़ागाड़ी पर सवार होकर आर्यसमाज मन्दिर में व्याख्यान देने जा रहे थे। एक कुत्ता भौंकता हुआ बड़े वेग से गाड़ी के पीछे दौड़ा, परन्तु थोड़ी दूर दौड़कर रह गया। एक सज्जन गाड़ी में उनके साथ बैठे थे उनसे महाराज ने कहा कि कुत्ते में इतनी ही सामर्थ्य थी, घोड़े के बराबर कैसे दौड़ सकता था ? यही दशा कपोलकल्पित ग्रन्थों के माननेवालों की है, वे भी प्राचीन वेदोक्त धर्म के माननेवालों के सम्मुख शास्त्रार्थ करने में असमर्थ रहते हैं।

न्यायकर्त्ता का कर्त्तव्य—जब महाराज आर्यसमाज मन्दिर में पहुँचे तो वहाँ बाबू दुर्गाप्रसाद बैठे हुए थे। वे आनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। महाराज ने उनसे कहा कि न्यायकर्त्ता को लेशमात्र भी पक्षपात न करना चाहिए और अन्याय कभी न करना चाहिए। बाबू साहब ने निवेदन किया कि जहाँ तक हो सकता है मैं खूब अनुसन्धान कर लेता हूँ, परन्तु किसी के अन्तःकरण की बात कैसे जान सकता हूँ ? महाराज ने कहा कि जब तक पूर्ण विद्या और विज्ञान न हो न्याय करना उचित नहीं है, तो फिर तुम न्याय क्यों करते हो ? इसपर बाबू साहब चुप हो गये। तदनन्तर महाराज ने व्याख्यान भी न्यायाधीश और साक्षियों के कर्त्तव्य पर ही दिया। महाराज ने यह भी कहा कि म्यून्सिपलटियाँ कूड़े का ढेर लगवा देती हैं, यह बहुत हानिकारक है, इससे बहुत रोग उत्पन्न होते हैं।

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या—फ़तहगढ़ में जो व्याख्यान हुआ था उसमें आर्यसमाज के दस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नियमों की अति सुन्दर और मनोहर व्याख्या करने के पश्चात् कहा कि इनमें एक नियम भी व्यर्थ नहीं है और न कोई उनका व्यर्थ होना सिद्ध कर सकता है, फिर ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों का बड़ी प्रबल युक्तियों से खण्डन किया।

आर्यसमाज का फण्ड—३ व ४ अक्तूबर को कतिपय प्रतिष्ठित और धनाढ्य आर्यसामाजिक पुरुष महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि आर्यसमाज को फ़र्रुखाबाद में दृढ़ भित्ति पर स्थापित करने के लिए एक धन-राशि का होना आवश्यक है। महाराज के अनुमति प्रकट करने पर उन सज्जनों ने २०० से लेकर १००० रुपये तक चन्दा लिखाया और १००० रुपये वेदभाष्य की सहायतार्थ दिया कि उस रुपये से मुद्रणालय स्थापित किया जाए।

पौराणिकों की ईर्ष्या और कूटनीति—जब इस प्रकार से आर्यसमाज और वेदभाष्य की आर्य-रईसों ने पुष्कल धन से सहायता की तो पौराणिकों को बड़ी ईर्ष्या हुई और उन्होंने आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक को पराभूत और अप्रतिष्ठित करने की यह चाल सोची कि स्वामीजी फ़र्रुखाबाद से शीघ्र ही चले जानेवाले हैं, अतः कुछ प्रश्न उनके पास भेज दिये जाएँ ताकि वे जाने से पहले उनका उत्तर न दे सकें और फिर प्रसिद्ध कर दिया जाए कि स्वामीजी से उनके उत्तर न बन पड़े, अतः उन्होने ६ अक्तूबर को सन्ध्या समय २५ प्रश्न लिखकर बाबू बलदेवप्रसाद बी० ए०, हैडमास्टर गवर्नमेंट स्कूल के नाम से स्वामीजी की सेवा में भेजे और साथ ही एक विज्ञापन भी छापकर वितरण किया जिसपर १४ मनुष्यों के हस्ताक्षर थे। विज्ञापन में लिखा था कि यदि इन प्रश्नों का उत्तर प्रमाणसहित पत्र द्वारा न दिया जाएगा तो यह समझ लिया जाएगा कि आपने अपना मत आधुनिक मान लिया और इन प्रश्नों को आपके मतानुयायियों और अमेरिका के सज्जनों के पास भेजा जाएगा और भाषा और अंग्रेजी के पत्रों में मुद्रित कराया जाएगा। उन्हें उत्तर देने में क्या देर थी। उन्होंने उसी समय कहा कि उत्तर लिख लो, परन्तु लोग लिख न सके। ७ अक्तूबर को वे उत्तर लिखे गये और यह विचार हुआ कि उन्हें जब तक सब आर्यसज्जन न सुन लें तब तक बाबू बलदेवप्रसाद के पास न भेजा जाए, अतः वे पहले आर्यसमाज के अधिवेशन में पढ़कर सुनाये गये और तत्पश्चात् १२ अक्तूबर को बाबू बलदेवप्रसाद के पास भेज गये।

प्रश्नोत्तर निम्न प्रकार थे—

प्रश्न १—आप्तग्रन्थानुसार परिव्राजकों के धर्म क्या हैं ? उनको यानादि पर चढ़ना अथवा धूम्रपानादि अन्य व्यसन करना योग्य है वा अयोग्य ?

उत्तर—वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेद और वेदानुकूल आप्तशास्त्रोक्त रीति, पक्षपात, लोकैषणा, पुत्रैषणा, अविद्या, हठ, दुराग्रह, स्वार्थ-साधनतत्परता, निन्दा, स्तुति, मानापमान, परद्रोहादि दोषों से रहित हो, सुपरीक्षापूर्वक सत्यासत्य का निश्चय करके सर्वत्र भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्य-ग्रहण, असत्य-परित्याग से सब मनुष्यों को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के साधन, सत्यविद्या, सनातनधर्म सुपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से सह वर्तमान करके दुष्टाचारों से पृथक् कर देना परिव्राजकों का धर्म है। लाभ में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित होके यानों पर बैठना तथा रोगादि निवारणार्थ ओषधियों का धूम्रपान करके परोपकार करने में यतियों को कुछ भी दोष नहीं, यह सब शास्त्रों में विधान हैं, परन्तु तुम्हें वर्त्तमान वेदादि सत्य शास्त्रों से विरोध होने के कारण भ्रम है, सो आप्तग्रन्थों से ऐसी विमुखता न होनी चाहिए।

प्रश्न २—यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्तग्रन्थों में प्रायश्चित्तों का क्या फल है ? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है, उससे क्या प्रयोजन है? यदि उससे आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो उसे क्षमा नहीं कहते और जब मनुष्य स्वतन्त्र

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने से आगन्तुक पापों से बचा रहे तो उसमें परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आ सकती है ?

उत्तर—हमारा वेदप्रतिपादित मत के सिवाय कोई कपोलकल्पित मत नहीं है और वेदों में कहीं कृत पापों की क्षमा नहीं लिखी और न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने (किये पापों की क्षमा) सिद्ध कर सकता है। क्या प्रायश्चित्त तुमने सुखभोग का नाम समझा है ? जिस प्रकार जेलखानादि में चोरी आदि के पापों के फल का भोग होता है वैसे ही प्रायश्चित भी समझो। यहाँ क्षमा की कुछ भी कथा नहीं, क्या प्रायश्चित्त वहाँ पापों के दुःखरूप फल का भोग है ? कदापि नहीं, परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत-से मूढ़ मनुष्य वास्तविकता से परमात्मा का अपमान और खण्डन करते और पुत्रादि के न होने या अकाल में मरने, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, पीड़ा और दारिद्र्य के होने पर ईश्वर को गाली प्रदान भी करते हैं, तथापि परब्रह्म सहन कर कृपालुता से रहित नहीं होता; यही उसके दयालु स्वभाव का प्रयोजन है। क्या कोई न्यायाधीश कृत पापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ानेवाला नहीं होता ? क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है ? हाँ ! जैसे न्यायाध्यक्ष राजदण्ड और अप्रतिष्ठादि करके तथा विद्या और सुशिक्षा देकर पापियों को पाप से पृथक् कर शुद्ध और सुखी कर देता है, उसी भाँति परमेश्वर को भी जानों।

प्रश्न ३—यदि आपके मत में तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं, उनसे सांसारिक स्थूल और अनित्य पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए ?

उत्तर ३—जो परम अवधि सूक्ष्मता की है, अर्थात् जिसके आगे स्थूल से सूक्ष्मता कभी नहीं हो सकती उसे परमाणु कहते हैं, जिसके प्रकृति, अव्याकृति, अव्यक्त, कारण आदि नाम भी हैं और वह अनादि होने से नित्य हैं। हाय ! लोगों की उलटी समझ पर। जो कारण के गुण समवाय-सम्बन्ध से कारण में हैं वे नित्य हैं। क्या जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं वे कार्यावस्था में भी नित्य हैं। क्या जो गुण कारणावस्था में हैं वे कार्यावस्था में वर्त्तमान होकर फिर जब कारणावस्था होती है तब भी (कारण के गुण) नित्य नहीं होते ? और जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं वा पृथक्-पृथक् होकर कारणरूप होते हैं तब भी उनके विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य नित्य होने से अनित्य नहीं होते। वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उनमें नित्य है, क्योंकि यह बात गुणगुणी-समवाय सम्बन्ध से है।

प्रश्न ४—मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है ? विद्या, ज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है वा नहीं ? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है ? और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के अधीन है वा नहीं ? यदि है तो क्यों ?

उत्तर ४—मनुष्य और ईश्वर का राजा प्रजा, स्वामी सेवक आदि का सम्बन्ध है। अल्प ज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता। जीव व परमात्मा में व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी है। जीवात्मा सदा परमात्मा के अधीन रहता है, परन्तु कर्म करने में कभी नहीं, किन्तु पाप कर्मों के फलभोग में वह अनन्त सामर्थ्ययुक्त ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है और जीव अल्प सामर्थ्यवाला है, इसलिए उसका परमेश्वर के अधीन होना आवश्यक है।

प्रश्न ५—आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं ? जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में मनुष्य एक अथवा बहुत मनुष्य उत्पन्न हुए। जब उनमें कर्म आदि की कोई विभिन्नता न थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों ही को वेदोपदेश क्यों किया ? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है ?

उत्तर ५—संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं। सृष्टिप्रवाह से अनादि है, सादि नहीं, क्योंकि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव अनादि और अव्याहत (बे रोकटोक) हैं। जो ऐसा नहीं मानते उनसे पूछना चाहिए कि क्या प्रथम ईश्वर निकम्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी निकम्मे थे। जैसे परमेश्वर अनादि वैसे जगत् का कारण अनादि और जीव भी अनादि हैं, क्योंकि बिना किसी वस्तु के उससे किसी कार्य का होना सम्भव नहीं; जैसे इस कल्प की सृष्टि के आदि में बहुत स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे, वैसे ही पूर्वकल्पान्त सृष्टि में उत्पन्न हुए और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे, कर्मादिक भी जीवों के अनादि हैं। चार मनुष्यों के आत्मा में वेदोपदेश करने में यह हेतु है कि उनके सदृश वा अधिक पुणयात्मा जीव कोई भी नहीं थे। इसलिए परमेश्वर में पक्षपात कुछ भी नहीं आ सकता।

प्रश्न ६—आपके मत में कर्मानुसार न्यूनाधिक फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे है ? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उसको भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान का ज्ञान है, अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि अमुक पुरुष अमुक समय में अमुक काम करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता, क्योंकि वह सत्य ज्ञान है, अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसाकि परमेश्वर को ज्ञान है तो कर्म उसके लिए नियत हो चुका तो जीव स्वतन्त्र कैसे है ?

उत्तर ६—कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते, क्योंकि जिसने जैसा और जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है। अधिक-न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है। ईश्वर के ज्ञान में भूत, भविष्यत् काल का सम्बन्ध नहीं होता। क्या ईश्वर का ज्ञान होकर न हो और न होके होनेवाला है ? जैसे ईश्वर को हमारे आगामी कर्मों के होने का ज्ञान है, वैसे ही मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण-कर्म साधनों के नित्य होने से सदा स्वतन्त्र है, परन्तु अनिच्छित दुःखरूप पापों का फल भोगने के लिए ईश्वर की व्यवस्था में (जीव) परतन्त्र होते हैं। जैसेकि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं, वेसे ही उन पाप-पुण्य के दुःख-सुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं है। क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्मों से उलटा है ? जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने-अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र हैं ?

प्रश्न ७—मोक्ष क्या पदार्थ है ?

उत्तर ७—सब दुष्ट कर्मों से छूटकर सब शुभ कर्म करना जीवन्मुक्ति और सब दुःखों से छूटके आनन्द से परमेश्वर में रहना विदेह-मुक्ति कहाती है।

प्रश्न ८—धन बढ़ाना अथवा शिल्पविद्या, वैदिक विद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा ओषधि निकालना जिससे मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोगग्रस्त हो उसको ओषधि आदि से नीरोग करना धर्म है वा अधर्म ?

उत्तर ८—न्याय से धन बढ़ाने, शिल्पविद्या प्राप्त करने और परोपकारिणी बुद्धि से यन्त्र वा ओषधि सिद्ध करने से धर्म और अन्याय द्वारा करने से अधर्म होता है। धर्म में प्रवृत्ति करने के लिए यत्न करना तथा ओषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म है, इससे विपरीत करने से अधर्म होता है।

प्रश्न ९—आमिष भोजन में पाप है या नहीं। यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में पशुहिंसा करना यज्ञादिकों में विहित है और भक्षणार्थ हिंसा करना क्यों लिखा है ?

उत्तर ९—मांस-भक्षण में सदा दोष है। जैसे डाकू आदि दुष्ट मनुष्यों को राजा लोग मारते हैं, बन्धन वा छेदन करते हैं, क्या वैसे हानिकारक पशुओं को न मारेंगे ? वेद और आप्तों ने यज्ञ के लिए पशु-हनन कहीं नहीं लिखा। भक्षणार्थ भी प्राणियों की हिंसा करना वेद व आप्तों ने कहीं नहीं लिखा। हाँ, वाममार्गादि पन्थियों ने आप्तों के लेख में भी अपना झूठ लेख कर दिया है। जैसे **'संवत्सरं तु गव्येन'** गाय के मांस के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिण्ड प्रदान करने से पितरों की तृप्ति वर्ष भर तक होती है। इसी प्रकार भैंसा आदि के पिण्ड भी लिखे हैं। क्या कोई भद्र पुरुष ऐसे दुष्ट वचनों को अंगीकार करेगा ?

प्रश्न १०—जीव का क्या लक्षण है ?

उत्तर १०—**"इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्"**। यह जीव का न्यायशास्त्रोक्त लक्षण है।

प्रश्न ११—सूक्ष्म यन्त्रों से ज्ञात होता है कि जल में अनन्त जीव हैं तो जल का पीना उचित है वा नहीं ?

उत्तर ११—क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता को अपने वचनों से प्रसिद्ध नहीं करा देते ? न जाने यह भूल दुनिया में कब तक रहेगी। जल-पात्र और पात्रस्थ जल अन्तवाले हों तो उनमें अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे ? छानकर वा आँख से देखकर जल का पीना सबको उचित है। जिसको शङ्का हो जल पीना छोड़ दे।

प्रश्न १२—मनुष्य के लिए बहुत स्त्री करने का कहाँ निषेध है ? यदि निषेध है तो धर्मशास्त्र में जो यह लिखा है कि यदि एक पुरुष के बहुत स्त्री हों उनमें एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं, यह क्यों लिखा?

उत्तर १२—मनुष्य को अनेक स्त्रियों के करने का निषेध वेद में लिखा है। संसार में हर कोई अच्छा नहीं होता। जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होके अपने विषय-सुख के लिए बहुत-सी स्त्रियाँ करलें तो उनमें सपत्नीभाव होने से अवश्य विरोध हो जाता है। जब एक के पुत्र होता है दूसरी विरोध के कारण विष-प्रयोग आदि से उसको न मार डाले, इसलिए सबका पुत्रवती होना लिखा है।

प्रश्न १३—आप ज्योतिष्-शास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं ? और भृगु-संहिता आप्त ग्रन्थ है वा नहीं, और उक्त शास्त्र द्वारा मनुष्यों के दुःख और सुख का ज्ञान होता है या नहीं ?

उत्तर १३—हम ज्योतिष-शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं, फलित भाग को नहीं, क्योंकि जितने ज्योतिष के सिद्धान्तग्रन्थ हैं, उनमें फलित का लेश भी नहीं है। जो भृगु सिद्धान्त कि जिसमें केवल गणित विद्या है उसको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं, इतर को नहीं। ज्योतिष्-शास्त्र में भूत, भविष्यत् कालस्थ सुख वा दुःख विदित होना कहीं नहीं लिखा, सिवाय अनाप्तोक्त ग्रन्थों के।

प्रश्न १४—और ज्योतिष्-शास्त्र में आप किस सिद्धान्त-ग्रन्थ को आप्तग्रन्थ समझते हैं।

उत्तर १४—ज्योतिष-शास्त्र में जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उन सबको हम आप्तग्रन्थ मानते हैं, अन्य (को) नहीं।

प्रश्न १५—आप पृथिवी पर सुख, दुःख, विद्या, धर्म और मनुष्य-संख्या की न्यूनता और अधिकता मानते हैं या नहीं, यदि मानते हैं तो पहले इनकी वृद्धि थी, अब है या होगी ?

उत्तर १५—हम पृथिवी में सुख आदिकों की वृद्धि-क्षय की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं। मध्यावस्था में बराबर जानो।

प्रश्न १६—धर्म के क्या लक्षण हैं और धर्म सनातन है, परमेश्वरकृत वा मनुष्यकृत है ?

उत्तर १६—जो पक्षपातरहित न्याय कि जिसमें सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो वह धर्म का लक्षण कहाता है तथा जो सनातन और ईश्वरोक्त वेदप्रतिपादित है, मनुष्यकल्पित कोई धर्म नहीं।

प्रश्न १७—यदि मुहम्मदी अथवा ख्रीष्ट मतानुयायी कोई आपके धर्मानुसार चले और आपके मत में दृढ़ विश्वासी हो तो आप और आपके मतानुयायी उसको ग्रहण कर सकते हैं या नहीं और उसका पाक किया

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुआ भोजन आप और आपके मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं ?

उत्तर १७—बिना वेदों के हमारा कपोलकल्पित कोई भी मत नहीं है, क्या तुमने अँधेरे में गिरकर खाना, पीना, मल-मूत्र करना, जूती, धोती, अंगरखा धारण करना, सोना, उठना, चलना धर्म मान रक्खा होगा? हाय ! उन कुमति पुरुषों पर कि जिनकी बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हो जोकि जूता पहनना या न पहनना धर्म मानते हैं। सुनो भाइयो और आँख खोलकर देखो ! ये सब अपने-अपने देश के रीति-व्यवहार हैं।

प्रश्न १८—आपके मत से बिना ज्ञान मुक्ति होती है या नहीं ? यदि कोई मनुष्य आपके मतानुसार धर्म पर आरुढ़ हो और ज्ञानहीन हो तो उसकी मुक्ति हो सकती है या नहीं ?

उत्तर १८—बिना परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञान के मुक्ति किसी की नहीं होती, सुनो भाइयो ! जो धर्म पर आरुढ़ होगा क्या उसको ज्ञान का अभाव हो सकता है वा ज्ञान के बिना धर्म पर पूरी स्थिति मनुष्य कर सकता है ?

प्रश्न १९—श्राद्धादिक अर्थात् पिण्डदानादिक जिसमें पितृतृप्ति के अर्थ ब्राह्मण भोजनादि कराते हैं, शास्त्रीय हैं या अशास्त्रीय। यदि अशास्त्रीय हैं तो पितृकर्म का क्या अर्थ है और मन्वादिक ग्रन्थों में इनका लेख है या नहीं ?

उत्तर १९—जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा करना पुरुषार्थ है, उत्तम पदार्थों से उनकी तृप्ति करना श्राद्ध और तर्पण कहाता है। वह (वेदादि) शास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भराना श्राद्ध वा तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं, किन्तु पोपों का अनर्थकारक आडम्बर है। जो मनु आदि ग्रन्थों का लेख है, वह वेदानुकूल मान्य है, अन्य कोई नहीं।

प्रश्न २०—कोई मनुष्य यह समझकर कि मैं पापों से विमुक्त नहीं हो सकता, आत्मघात करे तो उसको कोई पाप है वा नहीं ?

उत्तर २०—आत्मघात करने से पाप ही होता है। पापाचरण का फल भोगे बिना कोई बचता नहीं। पापों से मुक्ति नहीं हो सकती।

प्रश्न २१—जीवात्मा संख्यात हैं या असंख्यात। कर्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्षादि योनि में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उत्तर २१—ईश्वर के ज्ञान में जीव संख्यात और जीव के अल्पज्ञान में असंख्यात हैं। पापादिक करने से जीव पशु-वृक्षादिक योनियों में उत्पन्न होता है।

प्रश्न २२—विवाह करना अनुचित है वा नहीं और सन्तानोत्पत्ति करने से किसी पुरुष को पाप होता है या नहीं, यदि है तो क्यों ?

उत्तर २२—जो पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सबको उचित है। वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में दोष नहीं। व्यभिचारादि से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है, क्योंकि अन्यायाचरणों में दोष हुए बिना कभी नहीं रह सकता।

प्रश्न २३—अपने सगोत्र में सम्बन्ध करना दूषित है या नहीं ? यदि है तो क्यों है।

उत्तर २३—अपने सगोत्र में विवाह करने में दोष यों है कि इससे शरीर और आत्मा में प्रेम व बलादि की उन्नति यथावत् नहीं होती। इसलिए भिन्न गोत्रों में ही विवाह-सम्बन्ध करना उचित है। सृष्टि के आदि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में गोत्र नहीं थे फिर वृथा क्यों परिश्रम किया। हाँ, पोपलीला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप एक ही व्यक्ति से सब सन्तान मानने से पशु-व्यवहार सिद्ध होता है। इसको जो माने सो मानता रहे।

प्रश्न २४—गायत्री जाप से कोई फल है या नहीं और है तो क्यों ?

उत्तर २४—गायत्री का जप जो वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है, क्योंकि गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है। पोपलीला के जप के अनर्थरूप फल होने की क्या ही कथा कहना है। कोई अच्छा वा बुरा किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता।

प्रश्न २५—धर्माधर्म मनुष्य के अन्तरीय भाव से होता है या कर्म के परिणाम से ? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाए तो उसे आत्मघात का पाप होगा या पुणय ?

उत्तर २५—मनुष्यों के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं, जिनका नाम कर्म और कुकर्म भी है। जो किसी को बचाने के लिए परिश्रम करेगा और परोपकार के लिए जिसका शरीर विमुक्त हो जाएगा उसको बिना पाप पुण्य ही होगा।§

सत्य का चमत्कार—सत्य का चमत्कार देखिए कि यही बाबू बलदेवप्रसाद जिन्होंने सनातन धर्मसभा की ओर से उपर्युक्त प्रश्न भेजे थे, अन्त को वैदिक धर्म की सत्यता स्वीकार करने पर बाधित हुए और आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद के सभासद् बन गये।

भीमा नहीं भूराज—एक दिन महाराज लाला कालीचरण के बाग़ में छत पर बैठे हुए थे कि कुछ स्त्रियों के आने की आहट प्रतीत हुई तो आपने तुरन्त ही अपने शरीर को बग़ल से पैरों तक वस्त्र से ढक लिया। स्त्रियाँ आकर प्रणाम करके बैठ गईं। उनमें से एक के साथ एक लड़का और दो लड़कियाँ थीं। आपने उससे लड़के का नाम पूछा, उसने भीमा बताया। आपने कहा कि इसका नाम भूराज अर्थात् पृथिवी में प्रकाशवान् रक्खो और कहा कि लड़कियों को विद्या पढ़ाना, जब पढ़ जाएँ तब विवाह करना, अभी यह छोटी हैं, विवाह की जल्दी नहीं है।

वैदिक रीत्यनुसार अन्त्येष्टि संस्कार—महाराज के फ़र्रुखाबाद रहते हुए बाबू मदनमोहनलाल के परिवार में एक मृत्यु हो गई थी। उन्होंने शव का अन्त्येष्टि संस्कार महाराज की प्रदर्शित रीति के अनुसार किया था। प्रचलित प्रथा के अनुसार क्रियाकर्म नहीं किया था। इसपर उनकी बिरादरी के लोगों ने बहुत विरोध किया, परन्तु वे विचलित नहीं हुए।

अपने नहीं सब के मोक्ष की इच्छा है—एक दिन प्रातःकाल श्री महाराज लेटे हुए थे और लाला मोहनलाल, सभापति गोरक्षिणी सभा, पैर दबा रहे थे। लाला मोहनलाल ने अत्यन्त नम्र भाव से महाराज से कहा कि महाराज ! जो कुछ मैंने शास्त्रों में देखा और सुना है उससे मुझे ज्ञात होता है कि आप मोक्ष के पूर्ण अधिकारी हैं। क्या आपको इस शरीर से मोक्ष पाने की इच्छा नहीं है ? इसपर महाराज ने उत्तर में कहा कि मैं अकेला मोक्ष पाकर क्या करूँगा, मेरी तो यह इच्छा है कि बहुत-से मनुष्यों को मोक्ष मिले।

---

§ ये प्रश्नोत्तर 'फ़र्रुखाबाद का इतिहास' नामक पुस्तक से ज्यों-के-त्यों उद्धृत किये गये हैं। यह इतिहास आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद की ओर से हाल में ही प्रकाशित हुआ है। पण्डित लेखरामकृत उर्दू जीवन-चरित में ये ही प्रश्नोत्तर दिये हुए हैं, परन्तु उनकी भाषा में अनेक जगह भेद है और उत्तर संख्या ६ के भाव में भी। दयानन्द-प्रकाश में भी ये प्रश्नोत्तर पण्डित लेखराम की पुस्तक से ही लिये गये हैं। ये प्रश्नोत्तर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' पत्र में भी छपे थे जो आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद की ओर से प्रकाशित होता था। फ़र्रुखाबाद के इतिहास में भी उक्त पत्र से ही लिये गये हैं, अतः उनका उपर्युक्त रूप ही ग्राह्य है। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देशप्रेम—इससे स्पष्ट झलकता है कि महाराज के हृदय में आर्यावर्त्त के लिए असीम दया भरी हुई थी। उन्होंने ब्रह्मानन्द जैसे अलभ्य आनन्द को आर्यावर्त्त के उपकारार्थ छोड़कर सांसारिक कष्ट-क्लेश में पड़ना स्वीकार किया। आर्यावर्त्त के प्रति उनका हृदय करुणा से इतना कोमल हो गया था कि वे उसके सम्पूर्ण दुःखों को दूर करना चाहते थे। जब कभी देश की दुर्दशा सूचक कोई घटना उनके सम्मुख आ जाती थी तो उन्हें मर्मान्त दुःख होता था।

शवदाह के लिए ईंधन न मिला—एक दिन ऐसा हुआ कि एक ग्रामवासिनी बुढ़िया अपने युवा पुत्र के शव को गङ्गा तट पर लाई। वह इतनी दरिद्र थी कि मृतक के दाह के लिए ईंधन तक भी उपस्थित न कर सकी और उसने शव को दाह किये बिना ही गंगा में बहा दिया।

महाराज को जब यह वृत्त ज्ञात हुआ तो वे गद्गदकण्ठ होकर करुणस्वर में बोले "हाय! हमारा देश इतना निर्धन हो गया है कि मृतक शरीरों को काष्ठ तक भी नहीं मिल सकता।" लाला मोहनलाल कहते थे कि मैंने महाराज को किसी विषय पर शोक प्रकट करते नहीं देखा था, परन्तु इस घटना से उनपर इतना प्रभाव पड़ा था कि उनके नेत्रों में अश्रु भर आये थे।

स्वराज्य—एक दिन महाराज ने कहा कि कुछ काल से परदेशी राजाओं ने हमारे देश से इतना धन हरण कर लिया है कि अब वह सर्वथा धनहीन हो गया है, परन्तु इस देश की वसुन्धरा इतनी उपजाऊ है कि अधिकार (स्वराज्य) पाने के थोड़े ही काल पश्चात् इस देश को पुनः धनधान्य से पूरित कर देगी।

सच्चा आनन्द—एक दिन सेठ निर्भयराम श्रीसेवा में उपस्थित हुए। महाराज ने उनसे पूछा कि सेठजी आनन्दित हो? सेठजी ने उत्तर दिया कि हाँ महाराज! आपकी दया से पुत्र, पौत्र, धन, धान्य सब-कुछ हैं। महाराज ने कहा कि धर्म-कर्म और आत्मा-परमात्मा से भिन्न अन्य वस्तुओं में आनन्द समझना अविद्या का लक्षण है।

मायिक दयानन्द—एक दिन महाराज ने प्रसंगवश कहा कि इस देश में अनेक दयानन्द उत्पन्न होंगे। ऐसे मायिक पुरुषों से वैदिक धर्म की रक्षा करना बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ता का काम होगा।

कर्म-फल—इन दिनों मिस्टर स्काट फ़र्रुखाबाद के मैजिस्ट्रेट थे। वे स्वामीजी के व्याख्यान सुनने आया करते थे और उन्हें बहुत पसन्द करते थे। वे एक पैर से कुछ लँगड़े थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि कर्मफल का पता नहीं लगता। स्वामीजी ने उनसे प्रश्न किया कि आपके पैर में लँगड़ापन क्यों है? स्काट साहब ने कहा कि ईश्वर की इच्छा। स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर की इच्छा नहीं, यह कर्मफल है। सुख-दुःख-भोग का नाम ही कर्मफल है। जिस भोग का कोई कारण दिखाई न दे वह पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

मेरा काम मन्दिर को तोड़ना नहीं है—उन दिनों बाज़ार की नाप हो रही थी। बीच में एक मढ़िया थी, जहाँ लोग धूप-दीप दिया करते थे। बाबू मदनमोहनलाल ने स्वामीजी से कहा कि स्काट साहब आपको बहुत मानते हैं, उनसे कहकर मढ़िया को हटवा दीजिए। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरा काम लोगों के मनोमन्दिरों से मूर्त्तियाँ निकलवाना है, ईंट-पत्थर के मन्दिरों को तोड़ना-फोड़ना नहीं है। ८ अक्तूबर सन् १८७६ को महाराज कानपुर चले गये। १२ अक्टूबर को प्रश्नों के उत्तर आर्यसमाज में सुनाये गये और प्रश्नकर्त्ता के पास भेज दिये गये और विज्ञापन का उत्तर भी यथोचित दे दिया गया।

(८—१६ अक्तूबर) **कानपुर** (आश्वि० (२) कृ० ८—आ० (२) शु० २)

कानपुर में महाराज १६-१०-१८७६ तक रहे। इन दिनों में आपने वेदभाष्य-रचना के अतिरिक्त अन्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई कार्य नहीं किया। कानपुर में ठाकुर मुकुन्दसिंह व मुन्नासिंह छलेसरवालों को मुक़द्दमों की पैरवी के लिए-मुख्तारआम और मुंशी समर्थदान आदि कतिपय व्यक्तियों को पुस्तक बेचने और मूल्य उगाहने के लिए एजेण्ट नियत किया।§

'इण्डियन मिरर' कलकत्ता २८-१२-१८७६ के अंक में महाराज के इस बार कानपुर पधारने के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"इण्डियन चर्च गज़ट" का संवाददाता कहता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द सरस्वती के अनुयायी शीघ्रता से बढ़ रहे हैं। उनके बाणों का लक्ष्य मूर्त्तिपूजा, मिथ्याविश्वास और जातिभेद की सारी व्यवस्थाएँ हैं। उनके पिछली बार के आगमन ने जिसे लगभग एक मास हुआ बहुत हलचल और सनसनी उत्पन्न करदी है और उनके आगमन का परिणाम कानपुर में वैदिक (आर्य) समाज की स्थापना हुई है।

(१७—२३ अक्तूबर) **प्रयाग** (आश्वि० (२) शु० २—६)

१७ अक्तूबर सन् १८७६ को कानपुर से महाराज प्रयाग आये और ला० दुर्गाप्रसाद के बाग़ में उतरे। इस बार प्रयाग में महाराज की केवल ६ दिन स्थिति रही। महाराज के तीन व्याख्यान हुए—एक सृष्ट्युत्पत्ति और दूसरा पुनर्जन्म तथा मृतकश्राद्ध और तीसरा नवीनवेदान्त पर। कालेज के कुछ छात्रों ने कुछ प्रश्न किये थे जिनका महाराज ने सन्तोषप्रद उत्तर दिया था। उन दिनों महाराज को ज्वर था और संग्रहणी रोग से भी पूर्णतया मुक्त नहीं हुए थे तो भी वे उषाकाल में उठकर स्नान करते थे और शरीर पर मृत्तिकालेपन करते थे। एक व्यक्ति भगवान्दास को महाराज की योगक्रिया देखने की बड़ी इच्छा थी। एक दिन उसने छिपकर देखा जब वह उषाकाल में ध्यानवस्थित थे। उसने देखा कि महाराज भूमि से छह इञ्च ऊपर शून्य में स्थित थे।‡ स्वामीजी का अधिक समय वेदभाष्य की रचना में व्यय होता था।

(२३—२६ अक्तूबर) **मिर्ज़ापुर** (आश्वि० (२) शु० ६—१५)

२३ अक्तूबर सन् १८७६ को महाराज प्रयाग से मिर्ज़ापुर पधारे और सेठ रामरतन के बाग़, में ठहरे। आप यद्यपि रुग्ण थे, परन्तु परोपकार के कार्यों से आपको उपरति न थी। मिर्ज़ापुर में इस अवस्था में भी आपने तीन व्याख्यान दिये जिनमें श्रोताओं की संख्या सहस्रों की होती थी।

गाड़ी नहीं आई तो पैदल ही सही—गोसाईं टोले में एक व्याख्यान सेठ रामरतन की कोठी में हुआ था। सेठजी ने आपको व्याख्यान-स्थल में पहुँचाने के लिए गाड़ी भेजने का वचन दिया था, परन्तु किसी कारणवश वे गाड़ी न भेज सके। महाराज कभी नियत समय का अतिक्रमण न करते थे। जब गाड़ी न आई तो पैदल ही चल खड़े हुए और इस रुग्ण अवस्था में जो शारीरिक कष्ट आपको हुआ उसकी लेशमात्र भी चिन्ता न की।

विद्या-विषय पर व्याख्यान—नियत समय पर सभास्थल में पहुँचकर 'विद्या-विषय' पर एक अत्यन्त ओजःपूर्ण वक्तृता दी, जिसे सुनकर श्रोतावर्ग चकित और मुग्ध हो गया। व्याख्यान में आपने कहा कि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके विद्या का व्यवहार नहीं करता उसके आचार्य-ऋण का परिशोध नहीं होता। आपने

---

§ ऋषि के पत्रव्यवहार के अनुसार ऋषि ने मुकुन्दसिंह व मुन्नासिंह को उक्त अधिकार छलेसर रहने के समय २३ जून १८७६ या उससे पूर्व लिखकर दिया था। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ १५८। —**संग्रहकर्त्ता**

‡ दयानन्दप्रकाश में इस घटना का काल संवत् १६३१ और स्वामीजी की योगक्रिया देखनेवाले का नाम ठाकुरप्रसाद दिया है। देखो पृष्ठ २३३। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज़ प्रभृति सब जातियों के पण्डितों के पाण्डित्य को धिक्कारा था कि ये लोग विद्या का अपमान करते हैं।

हमें भ्रान्ति के कूप में क्यों डाले रक्खा—महाराज की वक्तृता-शक्ति ऐसी अद्भुत थी कि आपकी वक्तृता को सुनकर श्रोता उसे सत्य मानने पर बाधित हो जाते थे। श्रोताओं में एक मारवाड़ी और उसके पुरोहित भी थे। वक्तृता समाप्त होने पर मारवाड़ी ने पुरोहितजी से पूछा कि महाराज ! वक्तृता कैसी हुई ? पुरोहितजी ने कहा कि अच्छी हुई। उसपर मारवाड़ी ने कहा—'तो फिर आपने हमें भ्रान्ति के कुँए में क्यों डाले रक्खा ?'

वक्तृता सुनकर कोई यह नहीं कह सकता था कि महाराज रुग्ण हैं। आपका स्वर सदा की भाँति उच्च और स्पष्ट था। आपका गर्जन सदा की भाँति सिंह के समान था।

गद्दी पर बैठने में क्या दोष है ?—मिर्ज़ापुर के एक ब्राह्मण ने महाराज पर आक्षेप किया था कि पहले आप पत्थर का तकिया लगाया करते थे और अब आप गद्दी पर बैठते और पलंग पर सोते हैं। आपने इसके उत्तर में कहा था कि इसमें क्या दोष है, ब्राह्मण आगे कुछ न कह सका।

काशी नहीं दानापुर जाएँगे—बाबू जनकधारीलाल आदि दानापुर निवासी प्रतिष्ठित सज्जनों ने मक्खनलाल आदि कतिपय सज्जनों को अक्तूबर सन् १८७६ में महाराज को दानापुर लिवा लाने के लिए दिल्ली भेजा था तो महाराज ने उनसे कह दिया था कि जब हम काशी की ओर जावें तब हमें संवाद देना। कानपुर पहुँचकर महाराज का काशी जाने का विचार बदल गया और १२ अक्तूबर सन् १८७६ को आपने दानापुर आर्यसमाज के मन्त्री बाबू माधवलाल को पत्र लिखा कि अब हम काशी न जाएँगे। पहले प्रयाग जाएँगे फिर मिर्ज़ापुर और मिर्ज़ापुर से सीधे दानापुर जाएँगे§। इस पत्र में दानापुर के सज्जनों को वेदभाष्य की सहायतार्थ चन्दा एकत्र करने का भी आदेश था और निवास-स्थान के सम्बन्ध में लिखा था कि वह बस्ती से एक मील के अन्तर से हो, जहाँ का जलवायु अच्छा हो और व्याख्यानस्थल नगर में हो। इस पत्र में हरिहर क्षेत्र के मेले पर भी जो कार्तिक पूर्णिमा को होता है, जाने का विचार प्रकट किया गया था और वहाँ के लिए डेरे-तम्बू आदि का प्रबन्ध करने को भी लिखा था। इसके पश्चात् मिर्ज़ापुर से महाराज ने दूसरा पत्र २३-१०-७६ को दानापुर भेजा कि यदि हमें दानापुर बुलाना अभीष्ट हो तो ६ दिन के भीतर किसी को हमारे लिवाने के लिए भेज देना। तदनुसार दानापुर से पूर्वोक्त बाबू मक्खनलाल वा एक जन श्यामलाल महाराज को लिवाने के लिए मिर्ज़ापुर पहुँच गये। मिर्ज़ापुर पहुँचकर इन लोगों ने महाराज के आदेशानुसार दानापुर को पत्र भेज दिया कि महाराज ३० अक्तूबर को मध्याह्नोत्तर दानापुर में पहुँचेंगे, उनके साथ तीन पण्डित (पं० भीमसेन, पं० देवदत्त तथा एक अन्य पण्डित) एक साधु और एक भृत्य है। उनके भोजन, निवास-स्थान आदि का सुप्रबन्ध कर दिया जाए और व्याख्यान-स्थल का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया जाए और कैम्प-मैजिस्ट्रेट से व्याख्यान के लिए आज्ञा ले-ली जाए।

जब महाराज मिर्ज़ापुर से दानापुर गये तो किनारीदार धोती, किनारीदार दुपट्टा धारण करके और रेशमी कोट पहनकर घड़ी और चेन लगाकर गये थे।

---

§ यह पत्र ऋषि के पत्रव्यवहार पृष्ठ १।७४ पर छपा है। —संपादकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चविंश अध्याय

कार्त्तिक सं० १९३६—ज्येष्ठ सं० १९३७=अक्तूबर १८७९—जुलाई १८८०

(२९ अक्तू०—१९ नव०) दानापुर (आश्विन शु० १५—कार्त्तिक शु० ६)

'हिन्दू सत्यसभा'—बा० जनकधारीलाल, माधवलाल आदि कतिपय दानापुर निवासी सज्जनों की सन् १८६४ से ही मूर्त्तिपूजा में अरुचि हो गई थी और वे आपस में धर्मविषयों पर वार्त्तालाप किया करते थे। उन्होंने एक सभा भी स्थापित कर ली थी और अपने को वे 'विचारपन्थी' कहा करते थे। इसके वर्ष दो वर्ष पश्चात् मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकें पढ़कर उन्होंने अपनी सभा का नाम 'हिन्दू सत्यसभा' रक्खा। इसके पश्चात् बाबू जनकधारीलाल काशी में प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के कुछ रद्दी प्रूफ़ों को पढ़कर स्वामीजी के उपदेशों की ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने उन प्रूफ़ों को दानापुर में अपने मित्रों को सुनाया, जिन्होंने स्वामीजी की शिक्षाओं को बहुत पसन्द किया।

सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव, सत्यसभा की जगह आर्यसमाज—इसके पश्चात् उक्त सभा के एक सभासद् सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति मोल ले-आये, जिसे पढ़कर सभासद्गण स्वामीजी के अनुयायी हो गये और जनवरी सन् १८७८ में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़कर वे पूर्णतया वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर आरूढ़ हो गये।श्रीमहाराज से पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया। आपके आदेशानुसार एप्रिल सन् १८७८ में हिन्दू सत्यसभा का नाम भी 'आर्यसमाज' रख दिया गया।

स्वागत का समारोह—महाराज २९ अक्तूबर सन् १८७९ को सायंकाल के ६ बजे दानापुर पहुँचे। आर्यसमाज के सभासदों के अतिरिक्त सैकड़ों मनुष्य रेलवे स्टेशन पर आपके स्वागत को पहुँच गये थे। एक प्रकार का मेला-सा लग गया था। बाज़ार में जब महाराज की सवारी पहुँची तो सहस्रों मनुष्य आपके पुनीत दर्शनों से अपने नेत्रों को पवित्र और तृप्त करने के लिए उपस्थित थे। आपने बाबू माधवलाल के गृह पर विश्राम किया। वहाँ चाय पी और कुछ देर आगन्तुकों से बात-चीत की।

हमारे वचन सुई के समान अन्दर चुभ जाएँगे—आगन्तुओं में बाबू उमाप्रसाद मुखर्जी हैडक्लर्क दफ्तर कैम्प-मैजिस्ट्रेट भी थे। उन्होंने आपसे प्रश्न किया कि यद्यपि आपका कहना ठीक है, परन्तु यदि लोग हठ से न मानेंगे तो आप क्या करेंगे ? इसके उत्तर में आपने कहा कि हमारा काम इतना ही है कि हमारे कथन को लोग कानों में जगह दें और जब वे पूरे तौर पर सुन लेंगे तो वह सुई की भाँति अन्दर चुभ जाएगा और निकालने से भी न निकलेगा। यदि उनका मित्र या प्यारा एकान्त में पूछेगा तो स्पष्ट कह देंगे कि ठीक है, हठ या लोभ-लालच से न कहें तो न कहें।

श्रीमहाराज ने तत्पश्चात् भोजन किया और फिर जोन्स साहब सौदागर के बँगले पर, जो दीघालॉज कहलाता है, चले गये, क्योंकि उक्त स्थान ही आपके निवास के लिए नियत किया गया था।

कैम्प मैजिस्ट्रेट की आज्ञा—दानापुर कैण्टूनमेंट (छावनी) था, अतः महाराज के व्याख्यानों के लिए कैम्प-मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लेनी आवश्यक थी। ३१ अक्टूबर को उक्त अफ़सर ने निम्न शब्दों में आज्ञा दी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"इन व्याख्यानों के होने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु लेक्चरार और उनके मतावलम्बी दूसरों का, जो उनसे भिन्न मति रखते हैं, चित्त न दुखावें और मिस्टर गिलबर्ट इंस्पेक्टर पुलिस को सूचना दी जाए कि वे हल्ला-गुल्ला रोकने के लिए आवश्य प्रबन्ध करें।"

आगमन की सूचना—२ नवम्बर सन् १८७६ को एक विज्ञापन भी नगर में वितरित किया गया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती दानापुर में मिस्टर जोन्स के दीघालॉज में ठहरे हैं, जिस किसी को उनसे मिलने की इच्छा हो वह प्रातःकाल आठ बजे से साढ़े नौ बजे तक और जिस दिन व्याख्यान न हो उस दिन सन्ध्या समय पाँच बजे से दस बजे तक भी उपस्थित होकर सत्य-असत्य का निश्चय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें। विज्ञापन में यह भी सूचना दी गई थी कि स्वामीजी के व्याख्यान प्रतिदिन नये कटरे में बाबू महावीर प्रसाद की दूकान के सामने हुआ करेंगे।

व्याख्यानमाला—तदनुसार महाराज के व्याख्यान २ नवम्बर सन् १८७६ से १६ नवम्बर तक केवल १३ नवम्बर को छोड़कर हुए, जिनके विषय सृष्ट्युत्पत्ति, देशोन्नति, वैदिक धर्म, पौराणिक, ईसाई, मुसलमानी मत खण्डन, धर्म में एकता की आवश्यकता, ईश्वर की वाणी, शिक्षा का प्रकार, मूर्त्ति-पूजन-निषेध आदि पर हुए। प्रसंग आने पर नवीनवेदान्त और ब्राह्मसमाज के मन्तव्यों की समीक्षा भी हुई।

पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज—पण्डित चतुर्भुज पौराणिकराज भी उन्हीं दिनों दानापुर पहुँच गये थे और पौराणिकों में बैठकर बहुत ही डींग मारा करते थे कि मैं स्वामीजी को कई बार शास्त्रार्थ में परास्त कर चुका हूँ। उसकी इस प्रकार की बातें महाराज के कानों तक भी पहुँची तो आपने सूबेदारसिंह, सौदागरसिंह व जयराजसिंह को पण्डित चतुर्भुज के पास भेजा कि वह बताएँ कि किस विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु पण्डितजी यही कहते रहे कि मैंने दयानन्द को अमुक-अमुक स्थान पर हराया है और कोई ३२ स्थानों के नाम गिना दिये। तब नन्दलाल व रामलाल ने, जो भाई-भाई थे और जिनके गृह पर पण्डितजी ठहरे हुए थे, उसने कहा कि ऐसी व्यर्थ बातों से क्या लाभ ? यदि आपने स्वामीजी को इतनी बार हराया तो एक बार और हरा दो, परन्तु वे यही रट लगाते रहे कि मैंने दयानन्द को अमुक-अमुक स्थान पर हराया है और शास्त्रार्थ के विषय में कोई उत्तर नहीं दिया।

पौराणिकराज को निकाल दिया—नन्दलाल रामलाल पण्डित के व्यर्थ आलाप से इतने विरक्त हुए कि उन्हें अपने गृह से निकाल दिया और तब वह थाने के पास ठाकुरबाड़े में ठहरे।

महाराज ने चतुर्भुज के उक्त व्यवहार को सुनकर कहा कि वह कभी हमारे सामने नहीं आएगा, दूर से ही शोर मचाता रहता है।

पौराणिकराज की नीचता, स्वामीजी को पीटने का षड्यन्त्र—चतुर्भुज ने महाराज को क्षति पहुँचाने के लिए मुसलमानों से मेल कर लिया था और उन्हें महाराज का विरोध करने के लिए उकसाया था। चतुर्भुज के पक्ष के हिन्दू और मुसलमानों ने यह षड्यन्त्र रचा कि महाराज को शास्त्रार्थ के नियम निर्धारित करने के मिष से किसी स्थान पर बुलाकर पीटा जाए। तदनुसार एक दिन जब व्याख्यान समाप्त हो गया तो कुछ लोगों ने महाराज से कहा कि आप झारीसाह के गृह पर चलें, जहाँ पण्डित चतुर्भुज भी आएँगे, और वहाँ शास्त्रार्थ के नियम निश्चित कर लें। महाराज उनका विश्वास करके उस स्थान पर चले गये। आपके साथ कई पुरुष और भी गये जिनमें पूर्वोक्त तीनों व्यक्ति सूबेदारसिंह आदि भी थे। इनमें से कुछ लोग तो बाहर रह गये और कुछ महाराज के साथ उस गृह के अन्दर चले गये। महाराज ने वहाँ पहुँचकर कहा कि पण्डित चतुर्भुजजी कहाँ हैं, सामने आवें और बातें करें। वहाँ बहुत-से मनुष्य—हिन्दू और मुसलमान उपद्रव करने के उद्देश्य से बैठे हुए थे। महाराज की बात को सुनकर गोविन्दशरण मन्त्री धर्मसभा ने उठकर कहा कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डितजी तो यहाँ नहीं हैं, उन्हें इस समय आँखों से कम सूझता है, आप मुझसे बातें कीजिए। महाराज ने उत्तर दिया कि यदि उन्हें आँखों से नहीं सूझता है तो मौखिक प्रश्नोत्तर कर लें। गोविन्दशरण ने कहा कि वे आपके सामने नहीं आएँगे, क्योंकि वे कहते हैं कि हमें स्वामीजी के दर्शनों से प्रायश्चित्त लगता है। महाराज बोले कि वे कपड़े की आड़ से बात-चीत कर लें। गोविन्दशरण ने कहा कि वे आपके सामने नहीं आवेंगे, आप मुझसे बात-चीत कर लें। महाराज ने उत्तर दिया कि आप कौन हैं जो हम आपसे बात-चीत करें। इतना सुनकर गोविन्दशरण ने दीपक बुझा दिया और सब लोग ताली बजाने लगे। यह दृश्य देखकर सूबेदारसिंह आदि ने ललकार कर कहा कि दुष्टो, हम तुम सबको मार डालेंगे। महाराज के साथियों में एक के पास लालटैन थी वह लालटैन लेकर आगे हुआ और महाराज उसके पीछे और गृह से बाहर निकल आये। बाहर आकर महाराज को गाड़ी में बिठाकर दीघालॉज पहुँचा दिया। सूबेदारसिंह आदि पर पौराणिकों के दुर्व्यवहार का इतना प्रभाव पड़ा कि वे पौराणिक मत को छोड़कर वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये और आर्य-समाज के सदस्य हो गये। फिर इन लोगों ने महाराज की रक्षार्थ यह नियम कर लिया कि व्याख्यान के आदि से अन्त तक आठ-दस व्यक्ति पहरा देते रहें, जिससे किसी दुष्ट को कोई कुचेष्टा करने का साहस न हो।

कैम्प-मैजिस्ट्रेट की आज्ञा—इस घटना के पश्चात् सब-इंस्पैक्टर पुलिस ने कैम्प मैजिस्ट्रेट को रिपोर्ट कर दी कि शास्त्रार्थ से उपद्रव होने का भय है, तो उन्होंने बाबू दुर्गाप्रसाद, माधवलाल, महावीरप्रसाद और जनक-धारीलाल के नाम १० नवम्बर १८७६ को एक आज्ञापत्र भेजा कि इस समय नगर में दो पण्डित आये हुए हैं जिनके धर्म भिन्न-भिन्न हैं और बहुत-से लोग दोनों के सहायक हैं। दोनों के बीच में शास्त्रार्थ की बात-चीत हो रही है। शास्त्रार्थ में उपद्रव का भय है, यदि किसी प्रकार का झगड़ा-बखेड़ा हुआ तो उसका उत्तरदायित्व आप लोगों पर होगा।

सब-इंस्पैक्टर का पक्षपात—आर्यसमाज की ओर से किसी प्रकार भी शान्तिभंग की आशंका नहीं हो सकती थी। आशंका हो सकती थी तो पौराणिकों की ओर से हो सकती थी और वे उपद्रव करने का यत्न भी कर रहे थे, परन्तु सब-इंस्पैक्टर ने विपक्षियों के सिखाने-पढ़ाने से ही ऐसा किया होगा।

मौलवी का व्याख्यान—एक दिन पौराणिक दल के सहयोग से मुसलमानों ने व्याख्यान-स्थल के बहुत ही निकट एक मौलवी को व्याख्यान देने खड़ा कर दिया। उसने इस ज़ोर से बेहूदा बकना आरम्भ किया कि महाराज के व्याख्यान में विघ्न होने लगा। तब बाबू जनकधारीलाल ने इंस्पैक्टर गिलबर्ट से शिकायत की। उसने आकर मौलवी का व्याख्यान बन्द करा दिया और स्वयं कुर्सी डालकर बैठ गया। वह व्याख्यान सुनकर इतना प्रसन्न हुआ कि इसके पश्चात् वह रोज़ व्याख्यान सुनने आता रहा और एक दिन एक पादरी और अपने कई अंग्रेज़ मित्रों को भी लाया।

इस्लाम के विरुद्ध न कहो—एक दिन एक सज्जन ने महाराज से कहा कि आप इस्लाम के विरुद्ध न कहा करें। इस समय महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु सायङ्काल को जो व्याख्यान दिया वह आदि से अन्त तक इस्लाम के सिद्धान्तों के विषय में ही दिया जिसमें उनकी तीव्र समालोचना की। व्याख्यान का आरम्भ ही इन शब्दों से किया कि कुछ छोकरों के छोकरे मुझसे कहते हैं कि मुसलमानी मत का खण्डन मत करो, परन्तु मैं सत्य को नहीं छिपा सकता। जब मुसलमानों की चलती थी तब वे हम लोगों का तलवार से खण्डन करते थे। अब यह अन्धेर देखो कि मुझे उनका जिह्वामात्र से खण्डन करने से निषेध करते हैं। मैं ऐसा अच्छा राज्य पाकर भला किसी की पोल खोलने से कभी रुक सकता हूँ?

अंग्रेज़ी राज्य की बड़ाई—डेरे पर आकर कहा कि यह समय ऐसा है कि कोई किसी को दूसरे मतों की पोल खोलने और अपने मत की श्रेष्ठता दिखाने से नहीं रोक सकता, अंग्रेज़ों के राज्य में यही बात

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बड़ाई की है।

जंगी लाट के सामने इसाईमत का खण्डन—देखिए, एक बार पञ्जाब के एक नगर में मैंने एक दिन ईसाईमत के खण्डन पर व्याख्यान दिया और इसका विज्ञापन पहले दे दिया था कि आज अमुक विषय पर व्याख्यान होगा। इस बात को जानकर कई देशी और विलायती पादरी व्याख्यान सुनने आये और मैंने अपनी शक्ति के अनुसार प्रबल युक्तियों से ईसाईमत का खण्डन किया और बाइबिल के परस्पर विरोध दिखाए। घटना-चक्र से जनरल राबर्ट्स भी व्याख्यानस्थल पर पहुँच गये थे। व्याख्यान की समाप्ति पर उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और कहा कि **निःसन्देह आप बहुत निर्भीक हैं। जब आपने हमारे सामने हमारे मत का खण्डन निःसंकोच भाव से किया तो अन्य किसी का आप क्यों भय करते होंगे ?**

भूतों का भय कैसे जाए—एक दिन ठाकुरदास सुनार ने महाराज से पूछा कि महाराज मेरी सन्तानें जीवित नहीं रहतीं और मेरा विश्वास है कि उनकी मृत्यु भूतों के कारण होती है, आप कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे कि मैं भूतों के भय से रक्षित रहूँ। महाराज ने उससे कहा कि तू नित्यप्रति दोनों समय सन्ध्या-हवन किया कर और हवन करते समय अपनी स्त्री को भी पास बिठा लिया कर। फिर जो सन्तान होगी वह जीवित रहेगी। कहते हैं कि उसने ऐसा ही किया। ईश्वर की ऐसी कृपा हुई कि उसके पश्चात् उसके सन्तान हुई और जीवित भी रही।

एक विवाह और कर लो—इसी ठाकुरदास ने कुछ दिन पहले ही पहली स्त्री के जीते जी दूसरा विवाह किया था। महाराज को यह ज्ञात न था। एक दिन उसने महाराज से निवेदन किया कि मुझे योगाभ्यास की विधि बताइए। महाराज ने उत्तर दिया कि एक विवाह और कर लो, तुम्हारा योग पूरा हो जाएगा। यह सुनकर वह अवाक् रह गया।

नियमविरुद्ध कार्य के हम पक्षपाती नहीं—यही ठाकुरदास कुछ दिन के लिए आर्यसमाज दानापुर का सदस्य भी हो गया था, परन्तु एक सभासद् को दुर्वचन कहने पर इसे सदस्यता से अलग कर दिया था। महाराज के आगमन पर उसने महाराज से पुनः सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की और जब महाराज ने आर्यसमाज के अधिकारीवर्ग से उसके विषय में कहा तो उन लोगों ने कहा कि यदि आप उसे नियमों के विरुद्ध सभासद् बनाने की आज्ञा दें तो हम उसे पालन करने पर उद्यत हैं, नहीं तो उसे अपने पूर्व अपराध की क्षमा माँगनी चाहिए और पुनः प्रविष्ट होने के लिए आवेदन पत्र देना चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि आप लोग ठीक कहते हैं, नियमविरुद्ध कार्य करने के हम पक्षपाती नहीं हैं।

सोमलता—महाराज ने प्रसंग उठने पर ठाकुरदास से कहा था कि अलखनन्दा के उस पार सोमलता मिलती है और वह ११ प्रकार की है।

चित्त भाँग पीने से एकाग्र होगा—एक दिन एक व्यक्ति जो भाँग बहुत पिया करता था महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रश्न किया कि चित्त किस प्रकार एकाग्र हो सकता है। महाराज ने ईषत्-स्मित भंगी धारण करके उत्तर दिया कि भाँग पीने से। वह इसे सुनकर विस्मित भी हुआ और लज्जित भी। महाराज को उसके दुर्व्यसन का ज्ञान न था।

फूल तोड़ा अच्छा न किया—एक दिन एक व्यक्ति ने बाग़ में से एक गुलाब का फूल तोड़ लिया। महाराज ने उसे देखकर कहा कि तुमने अच्छा नहीं किया। यदि यह वृक्ष पर लगा रहता तो कितनी वायु को सुगन्धित करता। जब महाराज अन्दर जाकर बैठे तो वह चँवरी से मक्खी उड़ाने लगे। इसपर उस व्यक्ति ने आक्षेप किया कि फूल तोड़ने से तो आप निषेध करते हैं क्या आपकी चँवरी से मक्खियों को कष्ट नहीं होता ? महाराज ने उत्तर दिया कि दुःखदायक प्राणियों के खेलने में तुम जैसे मनुष्यों ने विघ्न डाला है

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिससे भारत गारत हो गया। तुम जैसे निर्बल और कायर मनुष्यों से रण-भूमि में क्या हो सकता है ?

तीन वर्ष का दर्द एक क्षण में दूर—दानापुर में एक व्यक्ति ठाकुरदास घड़ीसाज था, वह निवाजदास के पन्थ का था। निवाजदास एक साधु हुआ है जिसकी समाधि लखनऊ के जिले में बथरियागूलर नामक एक ग्राम में है। ये लोग उसके बनाये हुए ग्रन्थों को मानते हैं और प्रणव का जाप और प्राणायाम करते हैं। ठाकुरदास को प्राणायाम करते हुए एक रोग हो गया था, उसके नाभिकमल की वायु बिगड़ गई थी जिससे उसके नाभिस्थान में दर्द रहा करता था, भूख कम हो गई थी और वह निर्बल हो गया था। उसे तीन वर्ष से यह कष्ट था। उसने महाराज से अपनी दशा कही तो महाराज ने उसे चित्त लिटाया और उसके घुटने खड़े कराकर और पैर जुड़वाकर अपने पैर उसके पैरों पर रक्खे और उसके सिर को दूसरे मनुष्य के हाथ का सहारा दिलाकर इस प्रकार उठाया कि उसके पैर धरती से न उठने पाये। ऐसा करने से उसका दर्द जाता रहा और फिर कभी न हुआ। महाराज ने उससे घड़ी का खोलना और उनके पुर्ज़ों का यथास्थान लगाना सीखा था और उसने आपको एक चिमटी और पेचकस दिया था। महाराज ने उसे उसका मूल्य देना चाहा, परन्तु उसने न लिया।

ईश्वर ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष होता है—उसने महाराज से यह प्रश्न भी किया था जि जब ईश्वर का नाम है तो उसका कुछ रूप भी होगा। उसके रूप को किस प्रकार देखा जा सकता है। महाराज ने उत्तर दिया कि ईश्वर सर्वव्यापक है और अरूप है, उसका साक्षात् ध्यान से होता है, जिस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म कण आकाश में उड़ते फिरते हैं और दिखाई नहीं देते, परन्तु जब किसी कमरे में सूर्य की किरणें किसी झरोखे में होकर आती हैं तो वे कण दिखाई देने लगते हैं, इसी प्रकार ईश्वर भी हर जगह है, परन्तु वह ध्यान द्वारा ही प्रत्यक्ष होता है।

हम पण्डित चतुर्भुज को पाँच सौ रुपये देंगे—इसी ठाकुरदास को महाराज ने एक दिन पण्डित चतुर्भुजजी के पास यह कहलाकर भेजा कि यदि पण्डितजी हमारे सामने आकर मूर्त्तिपूजा को सिद्ध कर दें तो हम उन्हें पाँच सौ रुपये भेंट करेंगे, परन्तु पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया कि हम उनके सामने नहीं जाएँगे।

हमें दिक न कर, अन्यथा अङ्ग-भङ्ग हो जाएगा—एक हलवाई पण्डित चतुर्भुज के बहकाने-सिखाने से महाराज के पास आकर मूर्त्तिपूजा पर व्यर्थ वितण्डावाद किया करता था और अण्ड-बण्ड बका करता था। एक दिन महाराज ने उससे कहा तू रोज़ आकर हमें दिक़ करता है और हमारा समय नष्ट करता है, ऐसा न किया कर, अन्यथा तेरा अङ्ग-भङ्ग हो जाएगा, क्योंकि वेद में मूर्त्तिपूजा कदापि नहीं है, ऐसा करना महापाप है। इसपर उसने क्रोध में आकर महाराज के लिए कुछ अनुचित शब्द कहे। कहते हैं कि इस घटना के दस-बारह दिन पश्चात् ही उसे गलित कुष्ठ हो गया और वह मर गया।

स्वामीजी का शिष्टाचार—एक दिन जोन्स साहब सौदागर जिनके बङ्गले दीघालॉज में महाराज ठहरे हुए थे, मिस्टर शरबियर ओवरसियर कई पादरी और मेमों को साथ लेकर महाराज से मिलने आये, महाराज ने उठकर उनसे हाथ मिलाया और उन्हें कुर्सियों पर बिठाया। इससे अंग्रेज़ लोग बहुत आश्चर्यान्वित हुए।

यूरोपियन लोगों से वार्त्तालाप—जोन्स साहब ने महाराज से कहा कि आप कुछ कहें। महाराज ने उत्तर दिया कि हम तो प्रतिदिन ही व्याख्यान देते हैं, आज हम आप लोगों से ही कुछ सुनना चाहते हैं, परन्तु उन्होंने यही आग्रह किया कि महाराज ही कुछ कथन करें। इसपर महाराज ने निम्न प्रकार कथन किया—

स्वामीजी—देखिए, ईश्वर की बनाई हुई जितनी वस्तुएँ, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मेघ, वायु आदि हैं वे सब मनुष्यों के लिए समान हैं, ऐसे ही ईश्वरीय धर्म भी सबके लिए समान होना चाहिए वा नहीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगन्तुक सज्जन—अवश्य, सबके लिए समान होना चाहिए।

स्वामीजी—कल्पना कीजिए कि सब धर्मों का, जो संख्या में एक सहस्र हैं, एक मेला लगा हुआ है जिसमें प्रत्येक धर्म का उपदेष्टा अपने-अपने धर्म को सच्चा और मुक्ति दिलानेवाला बताता है और दूसरे नौ सौ निन्यानवे धर्मों को झूठा कहता है। अब आप बताएँ कि कौन-सा धर्म सच्चा है ?

आगन्तुक सज्जन—न्याय के अनुसार तो सभी झूठे हैं।

स्वामीजी—परन्तु सब सर्वथा झूठे नहीं हो सकते। प्रत्येक में कुछ-न-कुछ सच्चाई अवश्य है। अब कल्पना कीजिए कि एक जिज्ञासु उस मेले में आता है और वह प्रत्येक सम्प्रदाय के उपदेशक के पास जाकर प्रश्न करता है कि सत्य बोलना, चोरी न करना, दया करना अच्छा है वा झूठ बोलना, चोरी करना, अत्याचार करना, तो सब एक मत होकर कहते हैं कि सत्य बोलना आदि अच्छे हैं और झूठ बोलना आदि बुरे हैं, अतः वह जिज्ञासु इसी प्रकार उन सब बातों को, जिनमें सबका एकमत है, एकत्र कर लेता है और उन्हीं बातों को वह सत्य धर्म मानता है तो वही धर्म ईश्वरीय धर्म है। इस धर्म में कहीं ऐसा नहीं है कि मुहम्मद का आश्रय लिये बिना वा ईसा पर विश्वास किये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। अब आपको यदि इसमें कुछ कहना हो तो कहिए।

जोन्स साहब—आप इस प्रकार से कथन करते हैं कि उसके विरुद्ध कुछ कहना अखरता है, परन्तु जब आपके ऐसे विचार हैं तो आप छूतछात क्यों मानते हैं ? हमारे साथ खाने में आपको क्या आपत्ति है?

स्वामीजी—किसी के साथ खाने न खाने में हम धर्म-अधर्म नहीं मानते। इन बातों का सम्बन्ध देश और जाति की रीति से है न कि धर्म से। मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप अपनी पुत्री का विवाह किसी देशी ईसाई से करना चाहेंगे ?

जोन्स साहब—नहीं।

स्वामीजी—धर्माधर्म के विचार से वा अपनी जाति की रीति और आचार के विचार से ?

जोन्स साहब—जाति की रीति और आचार के विचार से।

स्वामीजी—इसी प्रकार हम भी देशाचार के विचार से आप लोगों के साथ खानपान नहीं करते, अन्यथा हम इसे धर्म के विरुद्ध नहीं मानते।

जोन्स साहब ने महाराज से पूछा कि आप रामचन्द्रजी को परमेश्वर मानते हैं या नहीं, तो आपने उत्तर दिया कि नहीं। तब जोन्स ने कहा कि हिन्दू मूर्त्ति क्यों पूजते हैं ? महाराज ने उत्तर दिया कि अविद्या के कारण, जैसे ईसाइयों में भी बहुत-से लोग ईसा और मरियम की मूर्त्ति पूजते हैं। मूर्त्तिपूजा हिन्दुओं का धर्म नहीं है, क्योंकि वेदादि सच्छास्त्रों में मूर्त्तिपूजा की कहीं आज्ञा नहीं है। बात यह है कि श्रद्धालु लोगों ने महापुरुषों की स्मृति में उनकी मूर्त्तियाँ बनाईं, पीछे लोग उनकी पूजा करने लगे। यह बात हिन्दुओं और ईसाइयों में एक-जैसी है।

इसपर आगन्तुक निरुत्तर हो गये और महाराज के वार्त्तालाप से प्रसन्न होकर चले गये।

एक पादरी से बात-चीत—एक दिन जोन्स साहब फिर एक पादरी को साथ लेकर महाराज से मिलने आये। उस दिन महाराज ने उनसे पूछा कि आप पुण्य किसे समझते हैं। जोन्स साहब ने कहा कि आप ही बताइए। तब महाराज ने कहा कि जिस कार्य से बहुत-से लोगों का उपकार हो वही पुण्य है। इसे जोन्स साहब ने स्वीकार किया।

गोरक्षा, साहब की प्रतिज्ञा—फिर महाराज ने उन्हें समझाया कि एक गौ की रक्षा करने से सहस्रों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्यों का उपकार होता है, अतः उसका वध करना पाप है वा नहीं। इसपर साहब ने कहा कि हाँ सिद्ध तो ऐसा ही होता है। फिर महाराज बोले कि जो सिद्ध हो जाए उसके अनुसार चलना भी चाहिए, अतः आप गोमांस खाना छोड़ दें। साहब ने प्रतिज्ञा की कि आगे को हम गोमांस नहीं खाएँगे, परन्तु बकरे आदि का खाएँगे। महाराज ने कहा कि हम आपको बकरे आदि का मांस खाने की आज्ञा नहीं देते, परन्तु गोमांस खाने का अवश्य निषेध करते हैं।

दानापुर में बाबू माधवलाल आदि कई सज्जनों ने महाराज से यज्ञोपवीत लिये थे।

दिनचर्या—दानापुर में महाराज की दिनचर्या इस प्रकार थी कि प्रातःकाल वे बहुत सवेरे उठते थे, परन्तु किस समय उठते थे यह कोई नहीं जानता। उठकर और शौचादि से निवृत्त होकर भ्रमण के पश्चात् चाय पीते थे और फिर ११ बजे तक वेदभाष्य और वेदाङ्गप्रकाश लिखाते थे। तदनन्तर स्नान करके भोजन करते थे। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् दर्शकों से बातचीत करते रहते थे और फिर व्याख्यान देने चले जाते थे। रात्रि के दस बजे के पश्चात् किसी को अपने पास न रहने देते थे। महाराज बहुत दिनों से संग्रहणी रोग से आक्रान्त थे, उसके उपशमनार्थ वे सरस्वती चूर्ण बनाकर खाया करते थे। दानापुर में उनके मसूड़ों और गले में सूजन हो गया था। महाराज व्याख्यान नियत समय पर आरम्भ कर देते थे, श्रोताओं के आने की प्रतीक्षा न करते थे।

महाराज का विचार दानापुर से हरिहर क्षेत्र के मेले पर भी जाने का था, परन्तु वहाँ आपके ठहरने आदि का समुचित प्रबन्ध न हो सका, अतः आप वहाँ नहीं गये।

श्रीमुख से उपदेश सुनने की इच्छा, अपने चरण मेरे मस्तक पर लगा दो—दुर्गा अवस्थी नामक एक व्यक्ति कान्यकुब्ज ब्राह्मण की इच्छा थी कि वह महाराज के व्याख्यान सुनें, परन्तु अपनी जाति के मनुष्यों के भय से वह व्याख्यान में प्रकटरूप से नहीं जा सकता था, यदि जाता भी तो चोर के समान बाहर ही खड़ा रहता। उसकी महाराज के मुखारविन्द से कुछ श्रवण करने की इच्छा इतनी बलवती हो उठी कि यह ज्ञात करके कि महाराज रात्रि में ही तीन-चार बजे भ्रमणार्थ निकल जाते हैं, वह पहले से ही उनके मार्ग में जा बैठा और जब महाराज वहाँ पहुँचे तो वह उनके पीछे-पीछे हो लिया। महाराज ने उससे पूछा कि तू कौन है तो उसने अपना नाम-धाम बताकर कहा कि मेरी आपके मुख से कुछ उपदेश सुनने की उत्कण्ठा है, परन्तु मैं अपनी बिरादरी के भय से आपके व्याख्यानों में नहीं आ सकता। बातें करता-करता वह महाराज के बङ्गले तक पहुँच गया तो महाराज ने उससे कहा कि निजस्थान पर आकर जो पूछना चाहो पूछ लेना। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि मैं अवश्य सेवा में उपस्थित होऊँगा, परन्तु इस समय मेरी यही श्रद्धा है कि आप अपने चरण मेरे मस्तक पर लगा दें। महाराज ने कहा कि इसका क्या फल होगा ? यदि और कोई बात पूछनी हो तो कहो अन्यथा हम जाते हैं। उसने फिर अपनी प्रार्थना को दुहराया तब महाराज ने यह कहकर कि इसका फल तो कुछ होता नहीं, परन्तु यदि तेरी यही इच्छा है तो ले, अपने पैर का अँगूठा उसके मस्तक से लगा दिया और वह अपने को धन्य समझता हुआ अपने घर चला गया।

देवमूर्त्ति पर पदाघात—'इण्डियन मिरर' कलकत्ते के अंग्रेज़ी दैनिक के सम्पादक को दानापुर से किसी विद्वेषी ने लिख भेजा कि स्वामी दयानन्द ने एक दिन एक देवमूर्त्ति पर पदाघात किया और इस कारण बहुत-से लोग उनसे विरक्त हो गये और उनके व्याख्यानों में जाना बन्द कर दिया। सम्पादक ने भी बिना अनुसन्धान किये ही इस समाचार को सम्पादकीय-नोट के रूप में अपने पत्र में स्थान दे दिया। यह समाचार सर्वथा मिथ्या था। किसी व्यक्ति ने भी महाराज के व्याख्यानों से असन्तुष्ट होकर जाना नहीं छोड़ा, प्रत्युत अनेक मनुष्यों ने मूर्त्तिपूजा छोड़कर वैदिक धर्म स्वीकार किया और कई तो आर्यसमाज के सदस्य भी बन गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दलितों की चिन्ता ने विकल कर दिया—एक रात्रि को महाराज सहसा उठकर इधर-उधर टहलने लगे। उनके पाँव की आहट सुनकर एक कर्मचारी की भी आँख खुल गई। उसने पूछा कि महाराज कोई कष्ट है। उन्होंने एक लम्बी साँस खींची और बोले कि ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दुओं के धर्म-नेता हैं जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं। यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है।

मैं साधारण विद्वान् भी न गिना जाता—एक दिन एक सज्जन ने महाराज से कहा कि आप तो ऋषि हैं। महाराज ने कहा कि ऋषियों के अभाव में आप मुझे चाहे जो कह लें, परन्तु यदि मैं कणादादि के समय में हुआ होता तो मेरी गणना साधारण विद्वानों में भी कठिनता से होती।

दानापुर से महाराज ने १६ नवम्बर सन् १८७६ को काशी के लिए प्रस्थान किया।

(२०§ नव० ७६—५ मई ८०) काशी (का०शु० ७§ सं० ३६—वै०कृ० ११ सं० ३७)

काशी पहुँचकर महाराज विजयनगर महाराजा के आनन्दबाग़ में ठहरे। इन दिनों महाराज का शरीर संग्रहणी रोग के कारण दुर्बल हो रहा था। महाराज ने मार्गशीर्ष कृष्णा ३ अर्थात् १ दिसम्बर को एक विज्ञापन छपवाकर नगर के हाट, बाज़ार, घाट, राजपथों पर लगवा दिया। वह विज्ञापन संस्कृत और आर्यभाषा दोनों में था। हम उसके आर्यभाषा के भाग को नीचे उद्धृत करते हैं—

विज्ञापन-पत्र

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराजे विजयनगर के अधिपति के आनन्दबाग़ में जो महमूदरङ्ग के समीप है, निवास करते हैं। वे वेदमत का ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते, किन्तु जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोक्त १. सृष्टिक्रम, २. प्रत्यक्षादि प्रमाण, ३. आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा ४. आत्मा की पवित्रता और विज्ञान से विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्त्तिपूजा, जल और स्थल-विशेष में पाप-निवारण करने की शक्ति, व्यासमुनि आदि के नाम से छल से प्रसिद्ध किये नवीन, व्यर्थ पुराण नामक ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थ, परमेश्वर के अवतार व ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा कर मुक्ति देनेहारे का मानना, उपदेश के लिए अपने मित्र पैग़म्बर को पृथिवी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्ड करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी वस्तु न मानना, जीव-ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी, तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सबका खण्डन करते हैं। इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े, जो अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में समर्थ हो, वह स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों का स्थापन करे। इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सकता। इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे। वेदार्थ निश्चय के लिए जो ब्रह्मा से लेके जैमिनि-मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं, वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होने

---

§ भ्रमोच्छेदन में ऋषि दयानन्द ने "कार्त्तिक सुदी १४ गुरुवार सं० १६३६" को काशी पहुँचना लिखा है यह ठीक नहीं है, क्योंकि ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ १७६ पर २० नवम्बर का काशी से लिखा पत्र छपा है। पृष्ठ १८० पर कार्त्तिक सुदी ८ शुक्रवार २१ नवम्बर का दूसरा पत्र छपा है। प्रतीत होता है उस लेख में भूल से ७ के स्थान में १४ लिखा गया है। कार्त्तिक शुदी ७ को गुरुवार था। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कारण माने जाएँगे और जो इस सभा में सभासद् हों वे भी पक्षपातरहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक-ठीक जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखनेवाले हों, इनके विपरीत नहीं। दोनों पक्षवाले जो कुछ कहें उसको शीघ्र लिखनेवाले तीन लेखक लिखते जाएँ। वादी और प्रतिवादी अपने-अपने लेख के अन्त में अपने-अपने लेख पर हस्ताक्षर करें। उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दिया जाए और तीसरा सब सभा की सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जाए कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न कराएँगे तो उनके लिए अत्यन्त लज्जा की बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है कि सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जानके सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना और औरों को आनन्द में रखना।

—पण्डित भीमसेन शर्मा

इसी विज्ञापन में यह भी सूचना थी कि ६ कर्मचारियों की आवश्यकता है§ और यह भी कि सन्ध्या के चार बजे से लेके रात्रि के दस बजे पर्यन्त स्वामीजी को सबसे मिलने और बात-चीत करने का अवकाश प्रतिदिन रहता है।

काशी की दशा—इस विज्ञापन के वितरण होने के पश्चात् नगर की दशा का वर्णन काशी के समाचार-पत्र 'आर्यमित्र' ने इन शब्दों में किया था "जब से स्वामीजी ने आकर विज्ञापन दिया है तब से सारे नगर में भूकम्प-सा हो रहा है। कोई स्थान उनकी चर्चा से खाली नहीं दीख पड़ता। क्षुद्र लोगों ने भी स्वामीजी के ऊपर निरे असत्य विज्ञापन बनाकर जहाँ-तहाँ लगा दिये हैं। कोई लिखता है मैंने उसे अमुक नगर में हरा दिया था, परन्तु उसका निर्दोष पत्र नहीं छापा कि जिससे उसका लेख विश्वास-योग्य होवे। कोई कहता है कि मैं अब उनको हराकर पार्थिव-पूजा कराऊँगा। एक पण्डित ने लिखा है कि "पुरानी व कुरानी व किरानी आदि के विरुद्धवादी स्वामी को हम हराएँगे।" .....कुछ समाचार-पत्रों ने भी पक्षपात पकड़ा है और जो जी में आया बिना विचारे लिख मारा है। 'कवि वचन-सुधा' ने तो स्वामीजी को नास्तिकाचार्य, धूर्त्तशिरोमणि तक कह डाला। ८ दिसम्बर सन् १८७६ के 'कवि वचन-सुधा' ने लिखा कि बाबू प्रमदादास के सम्मुख स्वामीजी हिचक-हिचककर बातें करते थे। इसपर 'आर्य-मित्र' ने लिखा कि यह सर्वथा निर्मूल है, बल्कि उक्त बाबूजी स्वयं अपने अभिप्राय का प्रतिपादन यथावत् नहीं कर सके। हाय ! न जाने ऐसी असत्य बातों को बेधड़क प्रचार करने से लोगों को क्या लाभ होता है ?

कर्नल और मैडम—१५ दिसम्बर अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ल २ को कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की मुम्बई से महाराज से मिलने आये, मिस्टर सिनेट 'पायोनियर' के सम्पादक भी उनके साथ थे और आनन्द बाग़ में ही दूसरे मकान में ठहरे। कर्नल और मैडम से महाराज की बात-चीत दामोदर नामक दुभाषिये के द्वारा होती थी।

राजा शिवप्रसाद—१६ दिसम्बर को राजा शिवप्रसाद सी०एस०आई० कर्नल और मैडम से मिलने आये और महाराज से कहा कि मैं उसने मिलना चाहता हूँ। महाराज ने एक मनुष्य को भेजकर राजा साहब के आने की सूचना उनके पास भेज दी। जब तक वे कर्नल और मैडम के पास न गये तब तक वे महाराज से बातें करते रहे। यही राजा साहब का महाराज से अन्तिम मिलन था।

किसी को शास्त्रार्थ का साहस न हुआ—स्वामीजी ने सब पण्डितों को शास्त्रार्थ का खुला चैलेंज दे रक्खा था, परन्तु काशी के किसी पण्डित ने भी उसे स्वीकार करके महाराज के सामने आने का साहस नहीं

§ यह विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापनग्रन्थ में पृष्ठ १८७, १८८ पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया। तब महाराज ने व्याख्यान देने का सङ्कल्प किया और विज्ञापन द्वारा जनसाधारण को सूचना दे दी गई कि महाराज २० दिसम्बर को बङ्गाली टोला के स्कूल में वक्तृता देंगे। इसी विज्ञापन में यह सूचना भी थी कि कर्नल आल्काट का भी उसी दिन उसी समय व्याख्यान होगा।

मैजिस्ट्रेट के कान भरे गये, व्याख्यान बन्द—उस सूचना को पाकर पौराणिक दल में खलबली मच गई। वे यह कब सह सकते थे कि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा के गढ़ में ही खुले बन्दों उसका खण्डन करें, अतः कुछ सम्भ्रान्त और प्रभावान्वित हिन्दुओं ने काशी के मैजिस्ट्रेट मिस्टर बाल से जाकर कहा कि यदि स्वामी दयानन्द का व्याख्यान होगा तो उपद्रव हो जाएगा। उन्हीं दिनों मुसलमानों का मुहर्रम का त्योहार भी था। मैजिस्ट्रेट ने बिना कोई अनुसन्धान किये यह आज्ञा निकाल दी कि स्वामी दयानन्द काशी में किसी धार्मिक विषय पर व्याख्यान न दें। इस आज्ञा की भी सूचना पहले से स्वामीजी को नहीं दी गई। जब स्वामीजी व्याख्यान-स्थल में पहुँचे और व्याख्यान देने खड़े हुए तो पुलिस के एक कर्मचारी ने मैजिस्ट्रेट का आज्ञापत्र उन्हें दिया। महाराज व्याख्यान देने से रुक गये, परन्तु कर्नल का व्याख्यान हुआ।

मैजिस्ट्रेट को पत्र—२१ दिसम्बर को स्वामीजी ने निम्नलिखित पत्र मैजिस्ट्रेट को लिखा—

श्रीमन् !

क्या आप मुझे बताने की कृपा करेंगे कि आपकी कल की आज्ञा कि मैं सम्प्रति व्याख्यान न दूँ, किन आधारों पर निहित थी। आपकी सूचनार्थ उस आज्ञा की प्रतिलिपि इस पत्र के साथ भेजी जाती है। मैं आपका उपकृत हूँगा यदि आप मुझे यह भी बताएँगे कि यह प्रतिबन्ध कितने समय तक रहेगा। आपकी सुविधानुसार आपके उत्तर का प्रतीक्षक।

आपका प्रतिष्ठाभाव-सम्पन्न
दयानन्द सरस्वती स्वामी§

लाटसाहब को पत्र—इस पत्र का कोई उत्तर प्राप्त न होने पर महाराज ने एक निवेदन-पत्र लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर व चीफ़ कमिश्नर को भेजा जिसके उत्तर में सर्कार के जूनियर सेक्रेटरी पी० स्मीटन साहब की सं० ४६१ तारीख २४ फ़रवरी सन् १८८० की सूचना स्वामीजी के पास आई। वह इस प्रकार थी—

लाटसाहब का निर्णय—दयानन्द सरस्वती स्वामी का निवेदन-पत्र पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने बनारस के मैजिस्ट्रेट की आज्ञा की कि वे बनारस में धार्मिक विषयों पर व्याख्यान न दें शिकायत की है। आज्ञा हुई कि निवेदक को सूचना दी जाए कि लेफ्टिनेण्ट गवर्नर व चीफ़ कमिश्नर की सम्मति में उक्त अवसर पर मैजिस्ट्रेट ने ठीक कार्य किया था और निवेदन अस्वीकार किया जाता है।

समाचार पत्रों में आन्दोलन—मैजिस्ट्रेट की आज्ञा के विरुद्ध 'स्टार' समाचार पत्र काशी 'पायोनियर' के सम्पादक मिस्टर सिनेट ने १ जनवरी सन् १८८० के अङ्क में लिखा था—

पायोनियर का लेख—"यह आशा की जाती है कि स्थानिक सर्कार बनारस के कलक्टर मिस्टर बाल से पूछेगी कि जो वक्तृता पिछले दिनों दयानन्द सरस्वती वेदान्तधर्म के विषय पर देना चाहते थे उसे बन्द कराने का बुद्धि के प्रतिकूल असाधारण कार्य क्यों किया ? इस घटना का उल्लेख एक पत्र में मङ्गल के 'पायोनियर' में हो चुका है। शुद्ध धार्मिक चिन्तन के प्रश्न पर वक्तृता की स्वतन्त्रता को दबाना ब्रिटिश राज्य की सहिष्णुता के प्राथमिक नियमों पर निस्सन्देह उद्दण्डतापूर्ण आक्रमण है। मिस्टर बाल यह कठिनता के साथ कह सकेंगे कि उनका प्रान्त उनके हाथ से इतना निकल गया है कि किसी उपद्रव के कारण, जिसे वह ज़िला

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

§ यह पत्र रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" ग्रन्थ में नहीं छपा है। —संग्रहकर्त्ता

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैजिस्ट्रेट होकर दबाने में अशक्त थे, एक हिन्दू दार्शनिक को आर्यों के प्राचीन दर्शनशास्त्र की अपनी सम्मति के अनुकूल आलोचना करने की आज्ञा नहीं दे सकते थे। ऐसा विचार तक करना लड़कपन है और भारतवासियों में भ्रमयुक्त विचारों की उत्पत्ति को, जो बहुत ही शोकजनक होगी, रोकने के निमित्त स्थानिक सर्कार को तुरन्त देखना चाहिए कि बनारस पर ऐसे प्रतिबन्धों के स्थिर रखने का लाञ्छन न रहे जो ब्रिटिश राज्य की विस्तृत उदारता के अनुपयुक्त है।"

थियोसोफ़िस्ट का लेख—फरवरी सन् १८८० के थियोसोफ़िस्ट में लिखा गया था, 'स्वामी ने अपने सबसे पिछले पत्र में हमें यह लिखा है कि मैजिस्ट्रेट मिस्टर बाल ने मेरे उस पत्र का जो मैंने उनकी आज्ञा के प्रतिवाद के रूप में भेजा था और जिसमें कुछ बातें भी पूछीं थी, नोटिस तक नहीं लिया।'

यदि उत्तर-पश्चिमी सर्कार की यह इच्छा न हो कि यह समझ लिया जाए कि सिवाय उन लोगों के जो वेदों के एक विशेष प्रकार के अर्थ करते हैं अन्य सब लोगों को वक्तृता की स्वतन्त्रता नहीं है, तो युक्तियुक्तता के साथ हम यह आशा करते हैं कि इस विषय का अति अधिकारारूढ़ता के ढंग में बहुत शीघ्र निबटारा कर दिया जाएगा। यह हम इसलिए कहते हैं कि इसमें राजनीति का कोई प्रश्न नहीं है, प्रत्युत केवल वाणी की स्वतन्त्रता का है।

एप्रिल सन् १८८० के थियोसोफ़िस्ट में फिर लिखा है—

प्रतिबन्ध हटा लिया गया—"बनारस के मैजिस्ट्रेट मिस्टर बाल ने जो मूर्खतामय प्रतिबन्ध स्वामी दयानन्द सरस्वती पर लगाया था वह अन्त में हटा लिया गया है और प्रशंसित विद्वान् और वाग्मी पण्डित २१ मार्च के सायङ्काल से अपनी व्याख्यानमाला फिर से आरम्भ करनेवाले थे। इस (प्रतिबन्ध हटाने) की आज्ञा देने से पहले, जिसकी प्राप्ति के लिए स्वामी को कभी बाध्य नहीं करना चाहिए था, मिस्टर बाल ने स्वामीजी से लगभग एक घण्टे तक बातें कीं। लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर ने इस प्रतिबन्ध का यह कारण बताया है कि मुहर्रम की छुट्टियों में व्याख्यान देना स्वामी के लिए निरापद न होता। व्याख्यानमाला के आरम्भिक व्याख्यान का विषय 'सृष्टि' था।"

आत्म-चरित—जो पत्र महाराज ने थियोसोफ़िस्ट को प्रतिबन्ध हटाने की सूचना देने के लिए भेजा था उसमें ही यह भी लिखा था कि 'यद्यपि मैं उत्सुक हूँ कि मेरा स्वलिखित आत्म-चरित, जिसे आप प्रकाशित कर रहे हैं, पूरा हो जाए, परन्तु मैं उसे अपेक्षित समय अब तक नहीं दे सका हूँ। मैं यथासम्भव उसका विवरण शीघ्र ही आपको भेजूँगा।'

प्रमदादास की अशिष्टता—कर्नल आल्काट की एक वक्तृता टाउन-हाल में हुई थी। उसके सभापति बाबू प्रमदादास मित्र थे। प्रमदादास ने वक्तृता के आरम्भ होने से पहले संस्कृत में कुछ कहा। उसमें यह भी कहा कि कर्नल और मैडम अन्य देश के रहनेवाले हैं। वे इस देश के समाचार भली-भाँति नहीं जानते हैं। उन्होंने स्वामी दयानन्द को अपना गुरु बनाया है और वे इस देश में धर्म-शिक्षार्थ आये हैं। दयानन्द ने शास्त्रार्थ के गौरव का नाश किया है। दयानन्द की अपेक्षा अनेक सुविज्ञ पण्डित इस देश में विद्यमान हैं।

कर्नल द्वारा स्वामीजी की प्रशंसा—इसके पश्चात् कर्नल ने काशी की बनी हुई पीतलादि की अनेक वस्तुएँ अपने सामने मेज़ पर रखकर अपनी वक्तृता दी। उन्होंने वक्तृता में स्वामीजी की विशेष प्रशंसा की। इसे सुनकर अनेक लोग स्वामीजी के विरुद्ध उत्तेजित हो उठे और स्वामीजी को कष्ट पहुँचाने की चेष्टा करने लगे। इसे कर्नल समझ गये और स्वामीजी का हाथ अपने हाथ में लेकर गाड़ी में बैठ गये। स्वामीजी ने बाबू प्रमदादास के कथन का प्रतिवाद करना चाहा था, परन्तु लोगों ने यह कहकर कि आज केवल कर्नल के व्याख्यान की ही व्यवस्था थी, स्वामीजी को बोलने नहीं दिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रेस मैनेजर की चिन्ता—महाराज के ग्रन्थ लाज़रस कम्पनी के छापेखाने में छपा करते थे, परन्तु इसमें असुविधा होती थी, अतः महाराज अपना छापाखाना स्थापित करना चाहते थे। यह बात जब उक्त कम्पनी के मैनेजर को ज्ञात हुई तो वह महाराज के पास आया और उनसे प्रेस न खोलने का अनुरोध किया। उसे महाराज के प्रेस का खुलना अभिप्रेत न था, क्योंकि वह इसमें कम्पनी की हानि समझता था।

वैदिक यन्त्रालय की स्थापना—माघ शुक्ला २ संवत् १९३६ अर्थात् १२ फ़रवरी सन् १८८० को लक्ष्मी कुण्ड पर वैदिक यन्त्रालय की स्थापना हुई। इसकी स्थापना का प्रस्ताव सबसे प्रथम आर्यसमाज मुरादाबाद ने किया था। फिर आर्यसमाज मेरठ ने अपने 'आर्यसमाचार' मासिक पत्र द्वारा उसका समर्थन किया और ४२८ रुपये सहायतार्थ दिये। राजा जयकिशनदास ने भी उसकी धन से सहायता की थी। आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद ने १८०० रु० एक बार और १३५० रु० दूसरी बार दिये थे।

आज हम गृहस्थ हो गये—जब वैदिक यन्त्रालय खुला तो महाराज ने मुंशी बख्तावरसिंह को शाहजहाँपुर से बुलाकर ३० रुपये मासिक पर उसका प्रबन्धकर्त्ता नियत किया। **उस समय महाराज ने खेद प्रकाशित करते हुए कहा कि आज हम पतित हो गये, आज हम गृहस्थ हो गये।**

व्याख्यानमाला, आर्यसमाज की स्थापना—महाराज के व्याख्यान वैदिक यन्त्रालय के मकान की छत पर ६ बजे सायङ्काल से ८ बजे तक हुआ करते थे। फाल्गुन शुक्ला १० अर्थात् २१ मार्च से चैत्र शु० ११ अर्थात् ५ एप्रिल तक महाराज के १४ व्याख्यान हुए। ५ व्याख्यान होली से पहले और ९ पीछे हुए। अन्तिम दिवस लोगों ने महाराज को उनकी कृपा के लिए अनेक धन्यवाद दिये और प्रार्थना की कि कुछ व्याख्यान देने का और अनुग्रह करें। इसपर महाराज ने ६ व्याख्यान और दिये। अन्तिम व्याख्यान चैत्र शुक्ला ६ संवत् १९३७ अर्थात् १५ अप्रैल सन् १८८० को हुआ। उसी दिन काशी में आर्यसमाज स्थापित हुआ। **एक व्याख्यान में महाराज ने यह सिद्ध किया था कि प्राचीनकाल में रेल और स्टीमर भारत में प्रचलित थे। रेल का नाम श्यामकर्ण अश्व था।**

कहते हैं कि तीसरे व्याख्यान के अन्त में एक पुरुष ने जिसका वयः क्रम ४०-४५ वर्ष होगा खड़े होकर व्याख्यान में कही हुई बातों की आद्योपान्त पुष्टि की थी और कहा था कि स्वामीजी मेरे चचेरे भाई हैं। स्वामीजी जैसे महापुरुष के आविर्भाव से मेरा वंश पवित्र हो गया है। यह बात नहीं है कि विवाह करके सन्तान उत्पन्न करने से ही माता-पिता का उद्धार होता है। स्वामीजी-जैसी सन्तान जिन माता-पिता की हो उससे न केवल उनका ही प्रत्युत सारे कुल का ही उद्धार हो जाता है। स्वामीजी उसकी सब बातें सुनते रहे, परन्तु उन्होंने उसका प्रतिवाद नहीं किया।§

ब्रह्म-भोज में सम्मिलित—इन्हीं दिनों बङ्गाल के एक रईस विजयनगर के आनन्दबाग़ में ठहरे हुए थे। उन्होंने डेरे लगा रक्खे थे। एक दिन उन्होंने एक ब्रह्मभोज दिया था। उसमें अनेक पण्डित निमन्त्रित होकर आये थे जिनमें पण्डित ताराचरण भी थे। स्वामीजी भी उसमें निमन्त्रित होकर गये थे और पण्डित ताराचरण के साथ उनका वार्त्तालाप हुआ था।

मिस्टर सिनेट का पत्र—प्रयाग से मिस्टर सिनेट सम्पादक 'पायोनियर' का पत्र महाराज के पास आया था, जिसमें उन्होंने महाराज से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। पत्र में साक्षात् करने का उद्देश्य यह लिखा था कि यदि आप मुझे योग की वह आश्चर्यजनक शक्तियाँ दिखा सकें जो हिन्दूशास्त्रों में वर्णित हैं तो मैं

---

§ हमारी सम्मति में यह घटना अत्यन्त सन्दिग्ध है। यदि ठीक होती तो उक्त पुरुष स्वामीजी से विशेषरूप से मिलता, प्रत्युत उनके ही पास ठहरता। लोग उससे स्वामीजी के पिता तथा जन्मस्थान आदि के विषय में बहुत-सी बातें पूछते। आर्यसमाजी लोग ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देते। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनके विषय में सभ्यजगत् में तुमुल आन्दोलन उत्थापित करूँगा। सिनेट साहब ने सम्भवतः महाराज के योगाचार्य होने की बात कर्नल और मैडम से सुनी थी। पत्र आने पर महाराज ने एक मिनट सोचा और फिर यह उत्तर लिखाया कि आप काशी आने का कष्ट न उठाएँ। मैं स्वयं ही प्रयाग आकर आपसे मिलूँगा। महाराज ने कहा था कि सिनेट साहब हमारे पास केवल योग की अद्भुत शक्ति देखने के लिए ही आना चाहते हैं, अतः जब वह आकर उन्हें न देखेंगे तो हताश होकर लौट जाएँगे और मेरे प्रति भी क्षुण्ण होंगे।

प्रयाग में सिनेट साहब से साक्षात्कार—इस उत्तर के देने के कुछ दिन पश्चात् एक दिन स्वामीजी प्रयाग जाकर सिनेट साहब से मिलकर काशी लौट आये, वापस आकर सिनेट साहब से वार्त्तालाप करने का जो वृत्तान्त उन्होंने वर्णन किया उससे प्रकट होता था कि सिनेट साहब उनसे मिलकर सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि जिन शक्तियों को वे देखना चाहते थे, उन्हें स्वामीजी नहीं दिखा सके। स्वामीजी और सिनेट साहब की बात-चीत में रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल ने दुभाषिये का काम किया था।

बाबू सीताराम की सम्मति—एक दिन डिपुटी कलेक्टर और प्रसिद्ध साहित्यसेवी बाबू सीताराम महाराज से मिलने आये थे। उन्होंने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि भारत में स्वामी दयानन्द के समान कोई संस्कारक उत्पन्न नहीं हुआ। वेदप्रतिष्ठा और गोरक्षा दो ही ऐसे विषय हैं जिनपर सारे हिन्दू एकमत हो सकते हैं और स्वामीजी ने विशेषतः इन्हीं दो विषयों का अवलम्बन किया था।

यह जल स्वामीजी के पीने योग्य नहीं है—आनन्दबाग़ में कमरे में महाराज कुर्सी पर और आगन्तुक लोग फ़र्श पर बैठा करते थे। एक दिन आगन्तुकों में एक मुसलमान भी था। महाराज ने कहार से पीने का जल माँगा। वह एक पात्र में जल ले-आया। तब एक मनुष्य ने कहार को डाँटकर कहा कि यह जल महाराज के पीने योग्य नहीं है। कहार दुबारा पात्र को माँज-धोकर जल ले-आया। महाराज उक्त मनुष्य का अभिप्राय समझ गये थे। संयुक्त प्रान्त के पूर्वी ज़िलों में उस कमरे में जिसमें कोई मुसलमान बैठा हो खाने-पीने की वस्तु नहीं खाते-पीते, अतः कहार के कमरे में आने से पहले ही महाराज कमरे से बाहर चले गये और वहाँ ही जल पिया। कमरे में आकर महाराज ने कहा कि आपने जल को इसी कारण अपेय बताया था कि कमरे में एक मुसलमान बैठा हुआ है। यह ठीक नहीं था, इससे जल में कोई दोष नहीं आया था।

वह स्त्री दुष्टा थी—एक दिन एक स्त्री आकर महाराज से बातें करने लगी। महाराज नीची गर्दन किये हुए बातें करते रहे। थोड़ी देर के पश्चात् उसकी ओर से मुख फेरकर बैठ गये। कुछ क्षण पश्चात् वह चली गई तब महाराज ने कहा कि वह स्त्री दुष्टा थी, काशी में अनेक स्त्रियाँ हैं जो साधु-संन्यासियों के दर्शन की अभिलाषिणी होकर धर्मनिष्ठ होने की ख्याति लाभ करना चाहती हैं। महाराज इस लोकोक्ति को बहुधा दोहराया करते थे **'राँड साँड सीढ़ी संन्यासी, इनसे बचे सो सेवे काशी'**। महाराज कभी स्त्रियों के मुख की ओर देखकर बातें नहीं करते थे।

तिरस्कार के पश्चात् प्रीति—एक दिन शिवराम वैद्य को जो कभी-कभी महाराज की रसोई बनाया करता था, उन्होंने एक वस्त्राभूषणालंकृत स्त्री से बातें करते देख लिया। इसपर महाराज ने शिवराम का तिरस्कार किया, उसने कहा कि वह एक ६० वर्ष की वृद्धा थी, परन्तु महाराज को विश्वास न आया। थोड़ी देर पश्चात् वही स्त्री महाराज के सामने से होकर गई तब उन्होंने उसे देखा और तब उन्हें शिवराम की बात का विश्वास आया और तब शिवराम के प्रति विशेष प्रीति प्रकट की।

हमें बाबाजी न कहो—महाराज की प्रकृति में विनोदप्रियता भी बहुत थी। वह बाबाजी शब्द के अर्थ किया करते थे 'वा (विकल्पे) वाजी-अश्व वा अश्वतर'। एक बुढ़िया स्त्री उनके बर्तन माँजने आया करती थी। वह जब अपने कार्य से निबटकर जाया करती थी तो यह कहकर जाया करती थी कि बाबाजी मैं जाती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हूँ। एक दिन महाराज ने उससे कहा कि तू मुझे बाबाजी मत कहा कर। उसने कहा कि और क्या कहूँ। महाराज ने कहा कि स्वामीजी कहा कर। बुढ़िया बोली यह बात मुझे याद कैसे रहेगी, बाबाजी कहने में क्या बुराई है तो महाराज ने कहा कि इस शब्द के अर्थ हैं घोड़ा नहीं तो खच्चर।

आप भी तो बच्चे-के-बच्चे हैं—इस देश के निवासियों को बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित होने के कारण बल-वीर्य हीन देखकर महाराज बच्चों-के-बच्चे कहा करते थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने उनसे कहा कि यदि सभी ऐसे हैं तो आप भी तो बच्चों-के-बच्चे हुए। महाराज ने कहा नहीं जिस कन्या से हमारे पिता के विवाह की बात-चीत हुई थी वह मर गई थी तब दूसरी कन्या से उनका विवाह हुआ था। जिस समय हमारा जन्म हुआ तो हमारे पिता की आयु ३०-३५ वर्ष की थी और हमारी माता भी बालिका न थी। ब्राह्मण ने व्यंग्य से कहा कि महाराज इस बात के तो आप ही साक्षी हैं। उस समय पण्डित भीमसेन भी उपस्थित थे।

स्वयं आटा माँड़ा—महाराज का रसोइया चला गया था तो शिवराम ही उनका भोजन बनाया करता था, परन्तु उसका बनाया हुआ भोजन अच्छा न बनता था, क्योंकि वह आटा अच्छी तरह नहीं माँडता था। एक दिन महाराज ने स्वयं आटा माँडा और दो-चार रोटियाँ बनाई। शिवराम ने महाराज के कहार को लक्ष्य करके कहा कि यह अच्छी रसोई बनाता है, आप इसी से बनवाया कीजिए। इसके हाथ का बना हुआ भोजन खाने में क्या आपत्ति है ? महाराज ने कहा कि हमें तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु तुम हमारे पास ने चले जाओगे और सब कहीं हमारी निन्दा करते फिरोगे कि स्वामीजी कृष्टान हैं। एक दिन महाराज ने दाल की बटलोई में जंगल से एक घास लाकर भर दी। शिवराम को इसपर बहुत आश्चर्य हुआ, परन्तु जब दाल तैयार होने पर उसे निकालकर फेंक दिया तो दाल बहुत स्वादिष्ट सिद्ध हुई।

आपका छुआ भोजन न खाएँगे—एक दिन महाराज कलेऊ कर रहे थे कि कई अंग्रेज़ उनसे मिलने आये। उनमें से एक ने कहा कि यदि हम आपके भोजन को छू दें तो आप खा लेंगे वा नहीं। महाराज ने कहा कि नहीं खाएँगे। यद्यपि उसके खाने में कोई दोष वा पाप नहीं है, परन्तु हमारे नौकर और विद्यार्थी भाग जाएँगे और लोक में अपवाद होगा कि स्वामीजी कृष्टान हो गये।

पण्डितों का गुप्तरूप से व्याख्यान श्रवण—महाराज के व्याख्यानों में काशी के अनेक पण्डित गुप्तरूप से व्याख्यान सुनने आया करते थे। स्वामी विशुद्धानन्द, पण्डित बालशास्त्री, पण्डित बापूदेव शास्त्री प्रमुख पण्डित नहीं आते थे। महाराज को पण्डितों के इस प्रकार आने की बात ज्ञात थी। महाराज पण्डितों को लक्ष्य करके कहा करते थे कि जो पहलवान युद्ध के लिए आहूत होने पर भी युद्ध करने के लिए सम्मुखीन नहीं होता, वह कैसा पहलवान है ?

कथक्कड़ व्यासों की आलोचना—एक दिन महाराज ने कथा कहनेवाले व्यासों पर तीव्र आक्रमण किया और कहा कि कथक लोग माला पहनकर और चन्दनादि लेपन करके युवतियों पर कटाक्ष-पात करते हैं, रसात्मक वाक्यों का प्रयोग करते हैं और काम से उत्तेजित होते हैं। यहाँ तक कि यदि उनका वस्त्र उठाकर देखा जाए तो वह रेतःपात से चिह्नित पाया जाएगा। बाद में ऐसा अश्लील बोलने पर महाराज ने बहुत पश्चात्ताप किया।

कार्य व्यस्तता—मिर्ज़ापुर की पाठशाला में महाराज उस विद्यार्थी को न पढ़ने देते थे जो सन्ध्या न करता था, परन्तु बाद में वे पुस्तक-निर्माण, पत्र-व्यवहार और खण्डन-मण्डन में इतने व्यस्त हो गये थे कि उन्हें इस बात का ध्यान भी न आता था कि उनका कोई साथी वा कर्मचारी सन्ध्या करता है वा नहीं।

कहते हैं कि एक बार महाराज कौपीनमात्र लगाये हुए रेल में आ रहे थे। उसी डब्बे में एक यूरोपियन दम्पती भी थे। महाराज को नग्न देखकर साहब को बहुत रोष आया, उसने रोष और व्यंग्यपूर्ण स्वर में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराज से कहा कि क्या नङ्गा रहने से परमेश्वर प्रसन्न होता है ? महाराज ने उत्तर दिया कि बाइबिल के अमुक स्थल में लिखा है कि परमेश्वर नग्न मनुष्यों से प्रसन्न होता है। साहब बहादुर नग्न संन्यासी के इस उत्तर से बहुत विस्मित हुए और आगे कुछ न बोले।

स्वास्थ्य-चिन्ता—महाराज की स्वास्थ्य पर विशेष दृष्टि रहती थी। वे जल, भोंजन, मिष्टान्न विचारपूर्वक ग्रहण करते थे। वे अपने खाने का घृत ताले में बन्द करके रक्खा करते थे। महाराज शरीर पर मुलतानी मिट्टी को चन्दन में मिलाकर लगाया करते थे और शिवराम से आग्रह के साथ कहा करते थे कि बाजार से मुलतानी मिट्टी बहुत सावधानी के साथ क्रय करके लाया करो, क्योंकि बाज़ार के लोग उसमें चूना आदि मिला देते हैं। महाराज जब बाहर जाते थे तो दर्पण में मुख देखकर जाया करते थे। वे पलङ्ग पर सोते थे और शाल तथा रेशमी परिच्छद धारण करते थे।

यज्ञोपवीत प्रदान—महाराज ने मुंशी बख्तावरसिंह, मुंशी समर्थदान तथा लाला शादीराम मेरठ निवासी का, जो पीछे आकर वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता भी हो गये थे, अनुष्ठानपूर्वक यज्ञोपवीत कराया था। उसमें ब्रह्मभोज भी हुआ था। बख्तावरसिंह पहले यज्ञोपवीत लेने पर सम्मत नहीं थे, परन्तु एक व्याख्यान में महाराज ने यज्ञोपवीत की आवश्यकता ऐसे अच्छे प्रकार से सिद्ध की कि उसे सुनकर यज्ञोपवीत के विषय में उनके सब संशय निवृत्त हो गये और उन्होंने महाराज से यज्ञोपवीत लेने की प्रार्थना की।

स्वामीजी महापुरुष थे—महाराज में महापुरुषों के सब लक्षण थे। उनकी वाणी में वह मनो-मोहिनी शक्ति थी कि उसे सुनकर प्रत्येक मनुष्य उनका वशवर्त्ती हो जाता था।

योगाभ्यास—रात्रि में महाराज योगाभ्यास किया करते थे और इसी कारण वे अपने सोने के कमरे के पास रात्रि को किसी को नहीं सोने देते थे जिससे उनके कृत्य में विघ्न न पड़े, परन्तु एक भृत्य महाराज के शयनागार के पास सो जाता था। एक दिन महाराज ने उसे पुकारा तो उसने उत्तर में कहा कि आते हैं। इसपर महाराज ने पास बैठे हुए लोगों से कहा कि देखिए, अपने लिए बहुवचन के सिवाय कभी एक वचन का प्रयोग नहीं करता। जब वह आया तो महाराज ने उससे कहा कि तू हमारे कमरे के पास न सोया कर, रात्रि में तेरी खाँसी से हमारी उपासना में व्याघात होता है।

हम ऐसे गन्दे अर्थों को नहीं मानते—एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में महीधर के वेददूषक अत्यन्त अश्लील अर्थों का खण्डन किया। उसे सुनकर व्याख्यान में आये हुए कई एक काशी के रईसों ने कहा कि हम महीधर अथवा दयानन्द को तो समझते नहीं, परन्तु हम ऐसे गन्दे अर्थों को नहीं मानते, उनका करनेवाला चाहे महीधर हो वा दयानन्द वा अन्य कोई।

गीता के श्लोक के अर्थ—एक दिन एक नवीनवेदान्ती पण्डित का महाराज से वार्त्तालाप हो रहा था। उसने गीता का श्लोक **'भ्रामयन् सर्वभूतानि'** आदि पढ़कर कहा कि देखो जो कुछ करता है ईश्वर ही करता है, जीव कुछ नहीं करता। महाराज ने कहा कि इसका यह अर्थ है कि ईश्वर पृथिवी आदि सब भूतों को घुमा रहा है। तुम व्यर्थ ही सब दोष ईश्वर के मत्थे मढ़ना चाहते हो। यह सुनकर वह पण्डित तथा अन्य पण्डित जो उस समय वहाँ उपस्थित थे चकित हो गये और सबने महाराज के अर्थों की सत्यता स्वीकार की।

मूर्त्तिपूजा का खण्डन मैं नहीं तुम करते हो—महाराज मूर्त्तिपूजकों से कहा करते थे कि मूर्त्तिपूजा का खण्डन मैं नहीं करता, वरन् तुम करते हो। तुम देवता को घण्टा आदि दिखाकर नैवेद्य आदि स्वयं चट कर जाते हो इस कारण तुम वास्तव में पूजारी (पूजा के अरि अर्थात् शत्रु) हो। तुम देवता से कहते हो **'इमां घण्टां त्वं गृहाण भोजनमहं गृह्णामि'** अर्थात् तू तो यह घण्टा ले, भोजन मैं लेता हूँ।

हम दयानन्द का सिर काट लेंगे—शिवराम के श्वसुर और चाचा प्रभृति को यह भय था कि कहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिवराम स्वामीजी की संगत में रहकर संन्यासी न हो जाए, अतः उन्होंने एक बार शिवराम को पत्र लिखा कि तुम घर लौट आओ और यदि दयानन्द तुम्हें छुट्टी न देगा तो हम उसका सिर काट डालेंगे। शिवराम ने वह पत्र महाराज को दिखाया। महाराज ने उसे देखकर कहा कि सिर कटने का मुझे भय नहीं है तुम्हारी इच्छा हो तो चले जाओ। उस समय महाराज के पास और कोई पण्डित नहीं था।

जन्मगत वर्णव्यवस्था का खण्डन—एक दिन एक मनुष्य ने वर्णव्यवस्था को जन्मगत सिद्ध करने के उद्देश्य से महाभाष्य का यह श्लोक प्रस्तुत किया—

विद्या तपश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मण्यकारकम्।
विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥ —४।१।४८

महाराज ने इसके खण्डन में मनु का यह श्लोक प्रस्तुत किया—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥ —मनु० अ० २। श्लोक० १५७

क्या आपको गद्दी पर बैठकर अभिमान नहीं होता—एक दिन एक मनुष्य ने महाराज से पूछा कि क्या आपको गद्दी पर बैठकर अभिमान नहीं होता? महाराज ने कहा कि फिर तो छपकली को हमसे भी अधिक अभिमान होना चाहिए।

मैडम की ऐन्द्रजालिक क्रियाएँ—जिन दिनों कर्नल और मैडम महाराज के पास ठहरे हुए थे उन दिनों में एक साधु जवाहरदास महाराज से मिलने आये। उस समय कर्नल और मैडम और महाराज एक बन्द कमरे में बैठे हुए थे। साधु जवाहरदास से किसी ने कहा कि कर्नल और मैडम स्वामीजी को कोई अलौकिक चमत्कार दिखा रहे हैं। साधुजी ने उस कमरे के भीतर जाना चाहा, परन्तु किसी ने उन्हें जाने न दिया। जब महाराज थोड़ी देर के बाद कमरे से बाहर आये और साधुजी से मिले तो उन्होंने कहा कि कुछ ऐन्द्रजालिक क्रियाएँ दिखाई थीं, वह योग की विभूतियाँ न थीं। महाराज ने साधुजी से कहा कि किसी बाजीगर को ले-आओ तो कुछ खेल साहब और मेम को दिखाए जाएँ, परन्तु वह बाजीगर को बुलाकर नहीं लाये।

महाराज कहा करते थे कि देहान्त से पूर्व हम अपने माता-पितादि का नाम और पूर्व-वृत्त प्रकट कर देंगे, यदि इस समय ऐसा करेंगे तो गोलमाल होगा। खेद है कि वे ऐसा न कर पाये।

भूल स्वीकार—कहते हैं कि इन्हीं दिनों डाक्टर थीबो भी काशी गये थे। एक दिन कुंवर ज्वालाप्रसाद महाराज को साथ लेकर थीबो साहब से मिलने गये थे। थीबो साहब उस समय वेद की एक शाखा का एक प्रूफ़ पढ़ रहे थे जो सम्भवतः एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित हो रही थी और थीबो साहब उसका सम्पादन कर रहे थे। उसके विषय में महाराज की थीबो साहब से बात-चीत हुई थी। थीबो साहब ने महाराज से पूछा कि यह किस वेद की शाखा है तो उन्होंने कहा कि अथर्ववेद की। इसपर थीबो साहब ने कहा कि अथर्ववेद की नहीं बल्कि ऋग्वेद की। अपने स्थल पर आकर महाराज ने अपनी भूल स्वीकार की और कहा कि वह वास्तव में ऋग्वेद की ही शाखा है।

मुक्ति से पुनरावृत्ति—पण्डित कृष्णराम इच्छाराम भी महाराज के आनन्दबाग़ के निवास-समय काशी पहुँच गये थे। वे कहते हैं कि जब वे स्वामीजी से पहली बार मुम्बई में मिले थे तो स्वामीजी मुक्ति को अनन्त मानते थे, परन्तु काशी में मिलने पर ज्ञात हुआ कि सान्त मानते हैं। कारण पूछने पर महाराज ने कहा कि इस विषय पर हमने बहुत विचार किया है और सांख्यशास्त्र के प्रमाणानुसार§ हमें मुक्ति सान्त ही माननी पड़ी। जब जीव का ज्ञान परिमित है तो मुक्ति, जो उस ज्ञान का फल है, अपरिमित वा अनन्त कैसे हो सकती है?

§ **इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः॥** —सांख्य १।१५८

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित बालशास्त्री और पण्डित बापूदेवशास्त्री की सत्यप्रियता, स्वामी विशुद्धानन्द का द्रोह—पण्डित कृष्णराम इच्छाराम पण्डित बालशास्त्री, पण्डित बापूदेव शास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द के दर्शनों को भी गये थे और जाकर इस प्रकार बात-चीत की कि मानो वह कुछ जानते ही नहीं हैं। उन्होंने जब पण्डित बालशास्त्री से स्वामीजी की चर्चा की तो उन्होंने कहा कि दयानन्द विद्वान् हैं, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु मूर्त्तिपूजा का खण्डन उसके लिए सम्भव है, हमारे लिए नहीं है। इसी प्रकार स्वामीजी का प्रसङ्ग उठाने पर पण्डित बापूदेवशास्त्री ने भी उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा की, परन्तु स्वामी विशुद्धानन्द के आगे स्वामी दयानन्द का प्रसंग उठाया तो वह थोड़ी देर में ही जान गये कि पण्डितजी आर्यसमाजी हैं। पण्डितजी ने उनसे कहा कि यदि दयानन्द का पक्ष मिथ्या है तो कई वर्ष पहले जब उन्होंने अपने वेदभाष्य का नमूना आपके पास भेजा था तो आपने उसका प्रतिवाद क्यों नहीं किया ?§ और अब उन्होंने काशी में मार्ग के दोनों ओर विज्ञापन लगाये हैं और आपको शास्त्रार्थ के लिए बुलाते हैं और कहते हैं कि अब दस वर्ष के पश्चात् तो काशी के पण्डितों में कोई-न-कोई तैयार हो गया होगा, परन्तु आपमें से फिर भी कोई शास्त्रार्थ के लिए उनके सम्मुखीन नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि आप दयानन्द के समान विद्वान् नहीं हैं। इसपर स्वामी विशुद्धानन्द ने पण्डितजी से पूछा, क्या तुम आर्यसमाजी हो ? पण्डितजी ने कहा कि आर्यसमाजी न होता हुआ भी मैं स्वामी दयानन्द का मान करता हूँ। स्वामी विशुद्धानन्द ने फिर पूछा कि तुम कुछ पढ़े हो। पण्डितजी ने उत्तर दिया कि कुछ विशेष पढ़ा हुआ न होता हुआ भी मैं पढ़े हुओं की परीक्षा ले-सकता हूँ। यह कहकर पण्डितजी ने **'अग्निमिळे पुरोहितम्'** इत्यादि मन्त्र पढ़ा और कहा कि जिस प्रकार स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र का पदच्छेद करके प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण से अर्थ किया है आप भी वैसे ही पदच्छेद करके और उन्हीं ग्रन्थों के प्रमाण से दिखावें कि स्वामी दयानन्द का किया हुआ अर्थ भ्रमयुक्त है। इसपर स्वामी विशुद्धानन्द 'अग्नि' शब्द पर न्याय की रीति से बहुत कुछ उलट-फेर करने लगे। तब पण्डितजी ने कहा कि जिन प्रमाणों से स्वामी दयानन्द ने अर्थ किया है उन्हीं के अनुसार स्वामी दयानन्द के अर्थों का खण्डन कीजिए। इसपर स्वामी विशुद्धानन्द ने और भी क्रुद्ध होकर कहा कि राम ! राम !! भाई हम मूर्ख हैं, हम मूर्ख हैं, तुम्हारा दयानन्द विद्वान् है, तुम हमारे पास से चले जाओ और सिपाहियों को कहा कि पण्डितजी को नीचे ले-जाओ।

वेद ही ईश्वर की वाणी है—एक दिन वेंकटगिरि के महाराजा दो तैलिंगी ब्राह्मणों के साथ महाराज से मिलने आये। उन्होंने महाराज से कहा कि क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वर की वाणी हैं और बाइबिल तथा कुरान नहीं हैं। महाराज ने कहा कि कुरानादि में अनेक कथाएँ सृष्टिक्रम और ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध हैं। कुरान में काफ़िरों के विनाश, स्वर्ग में सुरा, हूर आदि के रहने की बातें हैं, इसलिए वह ईश्वर की वाणी नहीं हो सकती।

मैं दूकानदार नहीं हूँ—इसके पश्चात् मूर्त्तिपूजा पर बात चली। स्वामीजी ने कहा कि आप महाराजा होकर किस प्रकार मूर्त्तिपूजा का पोषण करते हैं ? यदि आप उसका पोषण न करें तो आपके लिए तो ऐसा नहीं है कि दरिद्र ब्राह्मण के समान आपका उदर-पोषण न हो सके। महाराजा ने कहा कि आपकी बात कई अंश में ठीक है, परन्तु यदि आप अन्य बातों का प्रचार करें और मूर्त्तिपूजा की बात सबसे पीछे के लिए

---

§ पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि स्वामी विशुद्धानन्द ने बाबू पृथिवीसिंह कम्प्यूटर से कहा था कि स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य विद्वत्तापूर्ण और सत्य है और विश्वनीय है, परन्तु यदि मैं सबके सामने यह बात प्रकट करूँ तो सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाए और नशे-पानी में जो आन्तराय पड़े वह इससे अलग रहा।

बाबू पृथिवीसिंह पेंशन लेकर मेरठ ही रहते हैं। उन्होंने स्वयं हमसे कई बार कहा है कि यह बात उनसे स्वामी विशुद्धानन्द ने नहीं कही थी बल्कि एक अन्य संन्यासी ने कही थी, जिसका नाम परमानन्दगिरि था। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रक्खें तो आपके वेदभाष्य के लिए जितने धन की सहायता आवश्यक होगी हम देंगे। महाराज ने यह सुनकर कुछ आवेश के साथ कहा कि आप इन बातों को नहीं समझते। मैं क्या कोई दुकानदार हूँ जो रुपये के कारण अपने कर्त्तव्य को आगे-पीछे करूँ।

विभु के अर्थ पत्थर के महादेव के नहीं हैं—एक दिन एक ब्राह्मण के साथ महाराज का रामायण के **'अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः'** इत्यादि श्लोक पर शास्त्रार्थ हुआ था। महाराज ने कहा कि 'विभुः' के अर्थ व्यापक महादेव के हैं, पत्थर के महादेव के नहीं हैं। ब्राह्मण ने बहुतेरा यत्न किया, परन्तु महाराज ने उसे किसी प्रकार भी प्रस्तरनिर्मित महादेव सिद्ध नहीं करने दिया।

अद्भुत स्मृति, वैद्यजी को नाड़ी दिखाई—एक दिन पण्डित भगवान्वल्लभ वैद्य अनूपशहर ज़िला बुलन्दशहरवाले, जो महाराज से कई वर्ष पूर्व मिले थे, महाराज से मिलने आये। उस समय महाराज के पास कई मनुष्य बैठे थे। वैद्यजी मन-ही-मन कहते जाते थे कि स्वामीजी हमें न पहचानेंगे, परन्तु जब वे महाराज के सामने पहुँचे तो महाराज ने उन्हें तुरन्त पहचान लिया और सहास्यमुख उनसे बातें करने लगे। फिर दूसरे लोगों को विदा कर महाराज ने प्रेम से उन्हें अपने पास आसन पर बिठा लिया। महाराज की धारणा शक्ति विलक्षण थी। वे यदि एक बार किसी मनुष्य को देख लेते थे तो बरसों बाद मिलने पर भी उसे तुरन्त पहचान लेते थे। अनेक कथनोपकथन के पश्चात् महाराज ने वैद्यजी से पूछा कि काशी के पण्डित मेरे विषय में क्या कहते हैं ? विश्वनाथ के दर्शनों को जानेवाले यात्री दिन प्रतिदिन कम हो रहे हैं वा बढ़ रहे हैं ? परन्तु वैद्यजी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके। महाराज ने अपनी नाड़ी भी वैद्यजी को दिखाई थी। उन्होंने ग्रहणी सञ्चार बतलाया था। उस समय भी महाराज इस रोग से कष्ट पा रहे थे। महाराज ने कहा था कि मुझे कई बार विष दिया गया है और यह रोग उसी का परिणाम है। वैद्यजी ने कहा कि सुश्रुत में ऐसा ही निर्देश भी किया गया है।

वर्ण जन्मगत नहीं हैं—एक दिन एक मनुष्य ने महाराज से जातिभेद का प्रसंग उठाया। महाराज ने कहा कि ब्राह्मणादि वर्ण जन्मगत नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो तो एक ब्राह्मण के दो पुत्रों में से एक ईसाई और एक मुसलमान हो जाए तो क्या फिर भी वे ब्राह्मण ही माने जाएँगे ? यदि नहीं माने जाएँगे तो फिर जन्म से ब्राह्मणत्व कहाँ रहा ?

स्वामीजी के लेखक—स्वामीजी की सरलता से अनेक दुष्टों ने अनुचित लाभ उठाया। ऐसे लोगों ने भी जिन्हें उन्होंने पढ़ा-लिखाकर पशु से मनुष्य बनाया, उन्हें ठगने में इतस्ततः नहीं किया। ऐसे ही लोगों में एक पण्डित दिनेशराम था। इसका नाम दुलाराम था। स्वामीजी ने उसका दिनेशराम नाम रक्खा था। यह फर्रुखाबाद की पाठशाला में सुबोध हो गया था और उन्होंने उसे कासगञ्ज की पाठशाला में अध्यापक नियुक्त कर दिया था, बाद में वह लेखक के कार्य पर नियत कर दिया गया था। यह था बड़ा कपटी, **'विषकुम्भं पयोमुखम्'**। स्वामीजी के सामने उनकी भलाई और पीछे बुराई करता। वह कहा करता था कि मैं स्वामीजी के ग्रन्थों में इस प्रकार से वाक्य मिला दूँगा कि उन्हें उनका प्रलय तक भी पता न लगेगा। यह नहीं कह सकते कि उसे इस पापकर्म में कोई सफलता हुई या नहीं। स्वामीजी ने उसकी दुष्टता ताड़ ली और उसे अलग कर दिया।

कर्मचारियों की भर्त्सना—कर्मचारी कभी भी उनके मन्तव्यों के विरुद्ध कर देते थे और विद्यार्थी बार-बार समझाने पर भी उनकी बात न मानते थे। एक दिन उन्होंने सबको इकट्ठा करके भर्त्सना की और कहा कि तुम मेरे कहने पर विश्वास नहीं करते इसका कारण है कि तुममें सचाई के लिए आदर नहीं, तुम मिथ्या कथाओं से प्राप्त हुए अन्न से पले हो, मृतकों का आदर और जीवितों का निरादर करते हो।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बेर क्यों तोड़ा—एक दिन एक कर्मचारी ने बाग़ में से एक बेर तोड़ लिया तो स्वामीजी ने उसे डाँटा और कहा कि बाग़ के स्वामी की आज्ञा के बिना कोई फल नहीं तोड़ना चाहिए।

कोतवाल की भक्ति—काशी के कोतवाल महाराज के भक्त बन गये। उन्होंने महाराज के पाचक से कह दिया था कि जिस वस्तु की आवश्यकता हो दुकान से ले-आया करो और हमारे पास लिखा दिया करो। उन्होंने महाराज के बैठने के लिए एक गद्दी भी बनवाकर उनकी भेंट की थी। एक दिन उन्होंने महाराज से बुढ़वा-मङ्गल का मेला देखने की प्रार्थना की तो महाराज ने कहा कि जिस मेले में वेश्याओं का नृत्य हो वह बुढ़वा-मङ्गल नहीं भड़वा-मङ्गल है।

मैं हित के लिए खण्डन करता हूँ—एक दिन पण्डित हरिश्चन्द्र ने श्रीसेवा में निवेदन किया कि आपके खण्डन से वैर-विरोध बढ़ता है तो महाराज ने उन्हें समझाया कि मेरा उद्देश्य सबको आपस में ऐसे मिलाना है जैसे जुड़े हुए हाथ। मैं कोल से ब्राह्मण तक में जातीयता की ज्योति जगाना चाहता हूँ। मेरा खण्डन हित और सुधार के लिए है।

उपदेश—एक सज्जन ने प्रश्न किया कि जहाँ आर्यसमाज नहीं है, वहाँ अपने धार्मिक जीवन को परिपुष्ट बनाये रखने के लिए आर्यजन क्या उपाय करें तो महाराज ने उत्तर दिया कि यदि कोई आर्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, दो हों तो आपस में प्रश्नोत्तर और संवाद करें और तीन वा अधिक हों तो परस्पर सत्सङ्ग और किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें।

काशीत्याग से पूर्व ही महाराज ने एक विज्ञापन द्वारा जनता को सूचित कर दिया था कि हम वैशाख कृष्णा ११ संवत् १९३७ को काशी से चले जाएँगे, यदि किसी को अपना कोई संशय मिटाना हो तो हमारे स्थान पर आकर मिटा सकता है। इतने मास तक स्वामीजी काशी में रहे, चलने से पूर्व भी अपने प्रस्थान की तिथि घोषित कर दी, इतने व्याख्यान दिये, विज्ञापन द्वारा पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया, परन्तु किसी ने कोई प्रश्न न पूछा, कोई शङ्का प्रस्तुत न की, परन्तु जब प्रस्थान की तिथि और रेल पर जाने का समय आ गया तो राजा शिवप्रसाद सी०एस०आई० इंस्पेक्टर शिक्षा-विभाग ने एक छपी हुई प्रश्नावली श्रीसेवा में भेजी और उनके उत्तर माँगे। न जाने अब तक राजा साहब किस नींद में सो रहे थे। महाराज रेल पर जाने को तैयार थे परन्तु फिर भी रेल के समय में जितना शेष था वे रुके रहे और राजा साहब से कहला भेजा कि मैं रेल पर जाने को तैयार बैठा हूँ, समय अत्यल्प है कृपा कर शीघ्र पधारिये और अपनी शङ्काओं का समाधान सुन जाइए, परन्तु राजा साहब ने सूरत न दिखाई। समय हो जाने पर विवश होकर महाराज रेलवे स्टेशन पर चले गये। इस प्रश्नावली पर स्वामी विशुद्धानन्द की सही थी। वास्तव में वह प्रश्नावली उक्त स्वामीजी की रची हुई थी। राजा साहब का तो केवल नाम-ही-नाम था। उनमें ऐसे प्रश्न करने की योग्यता ही न थी। बाद में महाराज ने उस प्रश्नावली के उत्तर में 'भ्रमोच्छेदन' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की।

(५ मई—१८ मई) लखनऊ (वै० कृ० ५—वै० शु० ९)

काशी से विदा होकर महाराज ५ मई सन् १८८० को लखनऊ में आ विराजमान हुए और मोतीमहल में ठहरे।

'अतसतनू' का अर्थ—एक दिन पण्डित यज्ञदत्त शास्त्री से, जो उन दिनों लखनऊ में पाठकों के पूर्वपरिचित पण्डित गंगाधर शास्त्री के पास विद्याध्ययन करते थे, एक रामानुज मतानुयायी का 'अतसतनू' वाक्य के अर्थों पर विवाद हो गया। यह वाक्य ऋग्वेद के मण्डल ९ सूक्त ८३ मन्त्र १ में आया है। पण्डित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञदत्त उस वैष्णव को स्वामीजी के पास ले-गये। उस समय वे भोजन पा रहे थे। भोजन के पश्चात् महाराज थोड़ी देर तक टहले और कहा कि **'भोजनं कृत्वा शतपदं गच्छेत्'** अर्थात् भोजन करके सौ कदम चले। थोड़ी देर पलंग पर लेटे और फिर नौकर से वेद का पुस्तक मँगवाकर उक्त मन्त्रों का अर्थ करके बतलाया कि 'तप्ततनू' से अभिप्राय जप, तप, यम, नियम आदि से इन्द्रयों को वश में करना है, शरीर का जलाना नहीं है, सायणाचार्य भी यही अर्थ करते हैं।

तुमसे बकरी की टेव नहीं जाती—फिर स्वामीजी ने तरबूज काटकर सबको बाँटा। उस रामानुजी ने कहा कि तुलसी दल हो तो हम खावें। स्वामीजी ने कहा कि तुमसे बकरी की टेव नहीं जाती। उसने कहा कि यह तो अच्छा है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि रोग के लिए हितकर है न कि हर समय के लिए। ऐसा करना तो स्पष्ट पशुपन है, इसके खाने में कुछ माहात्म्य नहीं है।

स्वामीजी ने एक बार सत्यप्रकाश पाठशाला भी स्थापित की थी, परन्तु वह १८७६ से पहले ही बन्द हो गई थी।

आर्यसमाज की स्थापना—६ मई को आर्यसमाज लखनऊ स्थापित किया जिसमें उस समय ६ सभासद हुए, उनमें एक मुसलमान था। [यह एक हिन्दू रईस के वीर्य से एक वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।—संग्रहकर्त्ता] स्वामीजी का एक व्याख्यान अमीनुद्दौला की कोठी (पुराने नार्मल स्कूल) में गोरक्षा पर और दूसरा सद्धर्म-समर्थन पर हुआ था। दूसरे व्याख्यान में उन्होंने पण्डित गंगाधर शास्त्री के किये हुए वेदमन्त्रों के अर्थ की समालोचना भी की थी। एक व्याख्यान सआदतगंज में ला० कन्हईलाल के ठाकुरद्वारे में हुआ था और एक व्याख्यान यहयागंज में लाला रुग्घनलाल जैन की कोठी में। उसमें स्वामीजी ने जैनमत का भी खण्डन किया था।

भक्त को ढाढ़स—एक दिन पण्डित रामाधार ने स्वामीजी से कहा कि क्या अच्छा होता यदि आर्यसमाज का मन्दिर भी मोती-महल के समान विशाल होता। महाराज ने कहा कि यदि आप इसके स्वामी को आर्य बना लें तो सम्भव हो यही भवन आर्यसमाज को मिल जाए। पण्डित रामाधारजी ने निराशा भरे शब्दों में स्वामीजी से कहा कि आप इतना पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु लोग पौराणिक लीलाएँ नहीं छोड़ते। स्वामीजी ने कहा कि मैं ब्राह्मसमाजियों की भाँति समाज के जातीय जीवन से अलग होना नहीं चाहता, समाज में रहकर ही उसका संशोधन करना श्रेयस्कर है।

देश-दशा पर खेद—एक दिन स्वामीजी व्याख्यान देकर अपने आसन को जा रहे थे। कई आर्यसज्जन उनके साथ थे। मार्ग में एक अत्यन्त जराजर्जरित बुढ़िया उन्हें मिली। उसने कातर स्वर में महाराज से कहा कि बाबाजी मैं भूखी हूँ, आज का अन्न दिला दें। महाराज ने उसे कुछ पैसे दिला दिये। उसे देख महाराज की आँखों में आँसू डब-डबा आये और अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में उन्होंने कहा कि इस स्वर्णमय भूमि की कितनी हीन दशा हो गई है कि आज इस क्षुधार्त्त बुढ़िया को यह भी विवेक नहीं रहा कि वह जिससे अन्न माँगती है वह स्वयं माँगकर खाता है।

महाराज इस समय भी रुग्ण थे। पण्डित गंगाधर उन्हें मठा पिलाया करते थे।

(१६—२० मई) कानपुर (वै० शु० १०—११)

महाराज लखनऊ से चलकर १६ मई को कानपुर पहुँचे। वहाँ से अगले दिन फ़र्रुखाबाद के लिए रवाना हो गये। अब की बार महाराज का कानपुर में कोई व्याख्यान नहीं हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२० मई—३० जून) फ़र्रुख़ाबाद (वै० शु० ११—आषा० कृ० ८)

कानपुर से चलकर महाराज २० मई सन् १८८० को फ़र्रुखाबाद पधारे और लाला कालीचरण रामचरण रईस के बाग़ में ठहरे। २३ मई को स्वामीजी के व्याख्यानों का विज्ञापन नगर में प्रसिद्ध किया गया और २४ मई से २८ मई तक स्वामीजी के पाँच व्याख्यान सेठ माधोलालजी के बाड़े में हुए। व्याख्यानों में श्रोताओं की इतनी भीड़ होती थी कि कुछ लोगों को स्थानाभाव के कारण वापस जाना पड़ता था।

मैं किसी मत को नहीं मानता—मुंशी गौरीलाल वकील फ़तहगढ़ यह कहा करते थे कि मैं किसी मत को नहीं मानता। इसपर स्वामीजी और उनमें निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए—

स्वामीजी—आपका यह कहना ही कि मैं किसी मत को नहीं मानता यह अर्थ रखता है कि यही आपका मत है। आप किसी भी मत को क्यों नहीं मानते ?

मुंशीजी—सारे मत अक्सर नामाकूल बातों से भरे हैं।

स्वामीजी—यदि कोई मत आपको माकूल जान पड़े तो उसके मानने में आपको द्विधा न होनी चाहिए।

मुंशीजी—माकूल होने पर मैं उसे मानने को तैयार हूँ।

इसके पश्चात् कुछ देर तक स्वामीजी ने वैदिक धर्म का महत्त्व ऐसे ढंग से समझाया कि उन्हें स्वीकार करते ही बना।

यह घटना उस समय की है जब स्वामीजी संवत् १९३६ में फ़र्रुखाबाद पधारे थे।

आर्यसमाज की स्थापना—२९ मई सन् १८८० को महाराज ने एक व्याख्यान उपर्युक्त मुंशीजी के स्थान पर दिया। इसका प्रभाव इतना हुआ कि उसी दिन और उसी स्थान पर आर्यसमाज स्थापित हो गया। आश्चर्य की बात यह कि वही मुंशी गौरीलाल जो कभी सारे धर्मों को नामाकूल बातों से भरा हुआ कहा करते थे आर्यसमाज के मन्त्री निर्वाचित हुए।

योग पर व्याख्यान—पाँच जून को महाराज का व्याख्यान योगशास्त्र पर बड़ा प्रभावशाली हुआ जिसे सुनकर क्या हिन्दू क्या मुसलमान चकित हो गये उस व्याख्यान में महाराज ने योग की सिद्धियों का भी सविस्तर वर्णन किया था। मिस्टर स्काट साहब, मैजिस्ट्रेट ज़िला और मिस्टर डानिसटन ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट भी व्याख्यान में उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर मिस्टर डानिसटन ने स्वामीजी से पूछा कि यदि हम लोग योगसाधन करें तो हम उसके लाभ प्राप्त कर सकते हैं वा नहीं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप मद्य-मांस का सेवन करते हुए योगाभ्यास का सेवन नहीं कर सकते। यदि आप इन वस्तुओं का त्याग कर दें और नियम पालन करते हुए योगाभ्यास करें तो सफल हो सकते हैं।

स्काट साहब की तो संवत् १९३६ से ही महाराज में श्रद्धा थी और उनके व्याख्यानों में उपस्थित हुआ करते थे, इस बार भी वे स्वामीजी के व्याख्यानों में आते रहे।

जून मास में स्वामीजी के कितने ही व्याख्यान हुए। १३ जून को इस विषय पर व्याख्यान हुआ कि 'वेद-प्रतिपादित सृष्टिक्रम ग्राह्य और तद्-विरुद्ध अग्राह्य है'। उसमें स्वामीजी ने पार्वती के हिमालय पर्वत की कन्या होने, गणेशजी की पार्वतीजी के मैल से उत्पत्ति होने और शिवजी के उनके मारने और फिर हाथी का सिर रखकर उन्हें जिलाने के पौराणिक गपोड़ों की बड़ी मनोरञ्जक आलोचना की।

बिना सूँड का गणेश—श्रोताओं में पण्डित गणेशप्रसाद शर्मा, सम्पादक 'भारत सुदशा-प्रवर्तक' भी थे। स्वामीजी ने उन्हें खड़ा होने के लिए कहा और जब वे खड़े हो गये तो उनकी ओर संकेत करके महाराज बोले कि देखो यह पुरुष जो आपके सामने खड़ा है इसका नाम गणेश है, परन्तु इसके सूँड नहीं है और न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह ईश्वर है और न अजन्मा। इसे सुनकर सब लोग हँस पड़े। इसी प्रकार लोक में मनुष्यों के नाम होते हैं, हिमाचल, पार्वती, गणेश आदि मनुष्यों के नाम होंगे।

वेद का अपौरुषेयत्व—२७ जून सन् १८८० को स्वामीजी का अन्तिम व्याख्यान 'वेदविद्या विषय' पर हुआ; उसमें महाराज ने स्वयं वेद के प्रमाणों से तथा शतपथब्राह्मण, षड्दर्शन की साक्षी से वेदों का ईश्वरोक्त होना और उनका सम्पूर्ण विद्याओं के भण्डार होना सिद्ध किया था और यह भी कहा था कि वेदों का शुद्ध भाष्य शीघ्र होना चाहिए, क्योंकि महीधरादि ने अशुद्ध अर्थ करके देश में भ्रान्ति फैला रक्खी है।

वेदभाष्य की सहायता, धर्मार्थ कोष—इसके पश्चात् मुंशी हरनारायण मित्र व बाबू दुर्गाप्रसाद रईस ने प्रस्ताव किया कि स्वामीजी के अतिरिक्त अन्य कोई विद्वान् वेदों का शुद्ध भाष्य करने की योग्यता नहीं रखता। स्वामीजी की अवस्था अब ५६ वर्ष की है और शरीर अनित्य है, अतः स्वामीजी को वेदभाष्य के कार्य में पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। इस प्रस्ताव को सबने स्वीकार किया और उसी समय २७०, रुपये वार्षिक के हिसाब से पाँच वर्ष के लिये १३५० रुपये का चन्दा हो गया और ११ वेदभाष्य के ग्राहक बने। इसके पश्चात् बाबू दुर्गाप्रसादजी के प्रस्ताव पर एक धर्मार्थ कोष स्थापित हुआ जिसमें ५०० रुपये बाबू दुर्गाप्रसादजी ने दिये और अन्य लोगों ने भी सहायता दी।

एक आर्यसमाजी के पीटनेवाले को दण्ड—फ़र्रुखाबाद में पुत्तूलाल शुक्ल पहलवान और नारायण दुबे आर्यसमाजियों से बहुत चिढ़ते थे। जब स्वामीजी संवत् १९३६ में आये थे तो उनके चले जाने के पश्चात् कुछ दिन तक पौराणिक उत्तेजित रहे। एक दिन उपर्युक्त शुक्ल और दुबे को चौबे तोताराम, जो आर्यसामाजिक थे, मार्ग में मिल गये। दोनों व्यक्तियों ने उन्हें चिढ़ाना आरम्भ किया। उन्होंने ईंट का उत्तर पत्थर दिया तो दोनों ने मिलकर उन्हें पीटा। उन्होंने दोनों पर स्काट साहब के इजलास में अभियोग चलाया, जिसका यह परिणाम हुआ कि शुक्लजी पर २० रुपये अर्थ दण्ड और दुबेजी को तीन मास का कारावास हुआ और दोनों को दो-दो सौ रुपयों के मुचलके और ज़मानत दो साल तक नेकचलन रहने की देनी पड़ी।

स्वामीजी की अप्रसन्नता—जब स्वामीजी इस बार आये तो स्काट साहब ने उनसे कहा कि आपके एक सेवक को पीटने पर दो लोगों को पर्याप्त दण्ड मिल गया है। महाराज ने स्काट साहब की बात पर प्रसन्नता प्रकट न की, जिसकी उन्हें आशा थी और उनसे यह कहा कि संन्यासी तो अपने घातक को पीड़ा पहुँचती देखकर प्रसन्न नहीं होते और आर्यसमाजियों से असन्तोष प्रकट करते हुए कहा कि यदि तुम लोग इस प्रकार मुक़द्दमेबाज़ी करोगे तो धर्म और देश का क्या सुधार कर सकोगे ? जिन्हें सन्मार्ग पर लाना है, उन्हें कैद में पहुँचाना सुधार की शैली से बाहर है। घूँसे का बदला घूँसा नहीं है। यदि पौराणिक भाई तुमपर कोई अत्याचार करें तो उचित सीमा तक उसे सहना चाहिए, जब ज्ञान होगा तब वे स्वयं पश्चात्ताप करेंगे और तुमसे प्रेम प्रकट करेंगे।

धर्म-विषय पर प्रश्नोत्तर—२५ मई सन् १८८० को मुंशी नारायणदास मुख्तार ने स्वामीजी से धर्म-विषयक कुछ प्रश्न किये थे जो उत्तरसहित नीचे दिये जाते हैं।

प्रश्न—मनुष्य पाप क्यों करता है ?

उत्तर—लोभादि के वशवर्त्ती होकर, बुद्धि के वैचाल्य से, मादक द्रव्य के सेवन से, दुष्ट पुरुषों के संग से और मिथ्या ज्ञान से पाप में प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न—सत्पुरुषों की कसौटी क्या है ? और उनसे मिलना कैसे हो सकता है ?

उत्तर—न्यायप्रियता, स्वार्थत्याग, पराये हित में योग देना आदि उत्तम गुण सत्पुरुषों की कसौटी है। ऐसे पुरुष अपने उत्तम गुण और स्वभाव से पहचाने जाते हैं। वे सत्यभाषण, परोपकार, उदारता, न्यायकर्तृत्व,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईश्वर-भक्ति और दयालुता आदि गुणों से युक्त होते हैं। **तलाश करनेवाले को सब-कुछ मिल जाता है। जो ढूँढता है सो पाता है। विद्या व सत्संग से प्रत्येक मनुष्य सत्पुरुष बन सकता है।**

प्रश्न—स्वार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्मपूर्वक उपायों से अपनी उन्नति अर्थात् सुख की वृद्धि करना स्वार्थ कहलाता है, परन्तु इस समय के लोग येन केन प्रकारेण धर्माधर्म व विवेकरहित उपायों से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और परहानि व परदुःख का कुछ भी विचार नहीं करते, इस प्रकार स्वार्थान्ध हैं। परार्थ वा परोपकार वह है जिसके आचरण से मनुष्यों के दुःख की निवृत्ति हो।

महाराज का आतिथ्य—श्रीमहाराज आतिथ्य-धर्म का दृढ़ता से पालन करते थे। एक दिन पण्डित गणेशप्रसाद, सम्पादक 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' को श्रीमहाराज के पास सामाजिक कार्य करते हुए रात्रि के ९ बज गये थे। श्रीमहाराज ने यह जानकर कुछ फल और मिष्टान्न खाने को प्रस्तुत किये। पण्डितजी ने आपत्ति की कि हम गृहस्थों को आप-जैसे महात्माओं की सेवा करनी चाहिए, न कि आपकी खाद्य-सामग्री को ग्रहण करना। इसपर श्रीमहाराज ने कहा कि यह सामग्री गृहस्थ लोगों के घर से आई है और मेरी आवश्कता से अधिक है। श्रीरामचन्द्र तक ने वनस्थ मुनियों के कन्द-मूल, फलादि ग्रहण किये थे, अतः आपको संकोच न होना चाहिए और आग्रहपूर्वक पण्डितजी को फल और मिष्टान्न खिलाये।

एक दिन मेरठ से एक सज्जन ठीक उस समय स्वामीजी के पास उपस्थित हुए जब कि वे भोजन करने जा रहे थे। महाराज ने उन्हें देखकर पहले उन्हें भोजन कराया और फिर आपने भोजन किया। स्वामीजी अतिथियों को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन न करते थे।

स्वामीजी सोंठ का एक अत्यन्त स्वादिष्ट जल बनाया करते थे।

एक सदाशय विद्वान् से धर्मालाप—गोस्वामी नारायणदास एक सरलचेता, सदाशय विद्वान् थे। वे पौराणिकों के अपवाद के कारण श्रीमहाराज के पास जाते हुए घबराते थे। एक दिन लाला जगन्नाथप्रसाद आग्रह से उन्हें रात्रि के समय महाराज के पास ले-गये। उन्होंने यज्ञ में मांस-विधान का पक्ष लेकर महाराज से वार्त्तालाप किया। महाराज ने उनका प्रबल युक्ति और प्रमाणों से खण्डन करके उन्हें सन्तुष्ट कर दिया कि यज्ञ में मांस-विधान वेदविरुद्ध है, यज्ञ का नाम ही अध्वर—हिंसारहित कर्म है। अन्त में गोस्वामीजी ने स्वीकार कर लिया कि मांस-विधान मेरा पक्ष नहीं मैं तो शास्त्र के वचनों को देखकर उनका समर्थन करता था।

वार्त्तालाप का प्रभाव—फिर इस विषय पर बात चली कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं या नहीं, परन्तु समाप्त न हो सकी, अतः अगले दिन इस विषय पर पुनः विचार हुआ। पण्डितजी अपने पक्ष की पुष्टि में कात्यायन के सिवाय और कोई प्रमाण प्रस्तुत न कर सके। स्वामीजी ने कहा कि अन्य कोई ऋषि-मुनि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानता, अतः कात्यायन का वचन अग्राह्य है।§ और अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि संहितामात्र का नाम ही वेद है। गोस्वामीजी सन्तुष्ट होकर घर चले आये और उसके पश्चात् आर्यसमाज का उन्होंने कभी विरोध नहीं किया, प्रत्युत वे सदा समाज के कार्यों में सहायता करते रहे।

---

§ ऋषि दयानन्द ने इस विषय का प्रतिपादन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विस्तार से किया है। —संग्रहकर्ता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षड्विंश अध्याय

आषाढ़ सं० १९३७—मार्गशीर्ष सं० १९३८=जुलाई ८०—दिसम्बर ८१

(१ जुलाई—६ जुलाई) **मैनपुरी** (आ० कृ० ६—आ० कृ० १४)

स्वामीजी ३० जून सन् १८८० को फ़र्रुखाबाद से चले और १ जुलाई सन् १८८० को प्रातःकाल मैनपुरी पहुँचे। वहाँ वे करमल दरवाज़े के बाहर थानसिंह सोहिया के बाग़ में ठहरे।

ऋषि-मुनियों के समागम का आनन्द आ गया—महाराज के शुभागमन का समाचार नगर में फैलते ही शतशः लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे और यह दशा हुई कि कोई समय ऐसा न होता था जबकि सौ, सवा सौ मनुष्य उन्हें घेरे न बैठे रहते हों। प्रातःकाल से रात्रि के १०-११ बजे तक लोकप्रवाह अनवरत रूप से प्रवाहित रहता था। जो जिसके मन में आता अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार प्रश्न करता और स्वामीजी प्रेमपूर्वक उसका उत्तर देकर उसे सन्तुष्ट कर देते। जो उनके दर्शन करके लौटता वह यही कहता हुआ आता कि ऋषि-मुनियों के समागम का जैसा आनन्द हम पहले से सुनते आते थे वह आज हमने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया, इस अपूर्व मूर्त्ति को धन्य है। दो दिन तक महाराज इसी प्रकार लोगों को उपदेशामृत चखाते रहे।

अपूर्व व्याख्यान—३ जुलाई को आकटगंज की विस्तृत भूमि में कनात और शामियाने लगाकर उनके व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया। उस दिन आकाश मेघाच्छादित था तो भी एक सहस्र मनुष्य व्याख्यान श्रवणार्थ उपस्थित हुए। नगर के सभी प्रतिष्ठित और शिक्षित लोग व्याख्यान में आये। उस व्याख्यान में महाराज ने धर्म के स्वरूप और उसके गूढ़ तत्त्वों का ऐसी सुन्दरता से वर्णन किया कि लोग सुनकर दंग रह गये। ४ जुलाई को फिर एक व्याख्यान उसी स्थान पर ईश्वर-विषय पर हुआ, ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन, उसके गुणों का कीर्त्तन कुछ ऐसे ढङ्ग से किया गया था कि बड़े-बड़े नास्तिकों के मस्तक झुक गये। तीसरे दिन ५ जुलाई को महाराज ने लोगों को सन्देह-निवृत्ति का अवसर दिया।

घोर नास्तिकों से प्रश्नोत्तर—एक अंग्रेज डॉक्टर ने घोर नास्तिकों का पक्ष लेकर, जो आत्मा-परमात्मा किसी वस्तु को नहीं मानते थे, कुछ प्रश्न किये जिनके उत्तर पाकर वह निरुत्तर हो गया। साहब कलक्टर और साहब जज तीनों दिन व्याख्यानों में आरम्भ से समाप्ति तक उपस्थित रहे और ध्यानपूर्वक सुनते रहे।

निष्पक्ष मुसलमान—व्याख्यानों की समाप्ति पर मिर्ज़ा अहमदअली बेग ने अनेकशः धन्यवाद दिये और कहा कि जब इस देश में महाराज जैसे विद्वान् हुए होंगे तब अवश्य ही दूर देशों से लोग यहाँ विद्योपार्जन के लिए आया करते होंगे जैसाकि महाराज ने कहा है।

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" इत्यादि मन्त्र में तीन प्रकार के पद रखने का अभिप्राय स्वामीजी ने यह बतलाया था कि पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में परमेश्वर परिपूर्ण है। इस प्रश्न के उत्तर में कि कोई पवित्र भूमि है वा नहीं स्वामीजी ने कहा था कि यदि कोई हिमालय पर भी पाप करेगा तो उसका फल भोगेगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोगों ने बहुत-कुछ आग्रह किया कि महाराज कुछ दिन मैनपुरी और विराजमान रहकर उनकी धर्मपिपासा शान्त करें, परन्तु अवकाशाभाव के कारण वे अधिक न ठहर सके। ६ जुलाई को घोड़ागाड़ी में सवार होकर भारौल गये और एक दिन वहाँ ठहरकर ८ जुलाई को मेरठ पहुँच गये।

आर्यसमाज स्थापित हो गया—उनके चले जाने के पश्चात् ११ जुलाई सन् १८८० को मैनपुरी में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

(८ जुलाई—१५ सित०) मेरठ (आषाढ़ शु० १—भाद्र शु० १२)

श्रीमहाराज ८ जुलाई सन् १८८० को आर्यसमाज मेरठ के निमन्त्रण पर मैनपुरी से मेरठ पधारे और लाला रामशरणदास की कोठी मेरठ छावनी में ठहरे। निज स्थान पर वे जिज्ञासुओं के सन्देह-निवारण करते रहे और सप्ताह में दो व्याख्यान विविध विषयों पर देकर भ्रमजाल को छिन्नभिन्न करते और वैदिक धर्म के सत्य सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे।

पण्डिता रमाबाई—आर्यसमाज मेरठ की कन्या-पाठशाला के लिए एक सुयोग्य अध्यापिका की आवश्यकता थी। रमाबाई एक सुशिक्षित संस्कृतज्ञ महाराष्ट्र महिला का उन्हें पता लगा। वह उस समय कलकत्ता में थी। महाराज ने उसे पत्र लिखा। उभयपक्ष के कई पत्र आये गये और रमाबाई मेरठ आने पर सहमत हो गई। वह पत्रव्यवहार संस्कृत में था।

पण्डिता रमाबाई का आगमन—महाराज ने पण्डित देवदत्त शास्त्री को रमाबाई को मेरठ लिवा लाने के लिए कलकत्ता भेजा, परन्तु वह शास्त्रीजी को वहाँ नहीं मिलीं। वे मेरठ लौट आये। रमाबाई उनके आने से पहले ही दो भृत्यों के साथ, जिनमें एक स्त्री और एक पुरुष था, मेरठ पहुँच गई थी। उन्हें बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट के बँगले पर ठहराया जहाँ कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की पहले से ठहरे हुए थे। रमाबाई के आने के पश्चात् उनका एक बंगाली मित्र भी मेरठ आ गया और उन्हीं के साथ ठहर गया। उनका नाम बाबू विपिनबिहारी एम० ए०, बी० एल० था। रमाबाई के चार या पाँच व्याख्यान स्त्री-शिक्षा आदि विषयों पर हुए। पहला व्याख्यान बाबू छेदीलाल की कोठी पर और शेष आर्यसमाज में हुए। महाराज रमाबाई के व्याख्यानों में नहीं जाते थे। पण्डित ज्वालादत्त को भेज दिया करते थे कि उनका सार लिख लावे और उन्हें सुना दिया करे। रमाबाई सायङ्काल को महाराज से वैशेषिक दर्शन पढ़ा करती थी। उस समय महाराज की विशेष आज्ञा से पण्डित भीमसेन, पण्डित ज्वालादत्त तथा आर्यसमाज मेरठ के सभासद् पण्डित पालीराम और बाबू ज्योतिःस्वरूप उपस्थित रहते थे। महाराज यह चाहते थे कि रमाबाई ब्रह्मचारिणी रहकर स्त्रीजाति में शिक्षा और वैदिक धर्म का प्रचार करे, परन्तु उसने ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उसका महाराज के पास आने का मुख्य प्रयोजन यह था कि महाराज उसके उस बंगाली युवक के साथ विवाह को शास्त्रसम्मत स्वीकार कर लें। रमाबाई महाराष्ट्र ब्राह्मण-ललना और विपिनबिहारी बँगाली कायस्थ थे। रमाबाई जानती थी कि ऐसे विवाह को केवल स्वामीजी ही शास्त्रसम्मत बता सकते हैं, क्योंकि वे यह मानते थे कि प्राचीन भारत में वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव पर निर्भर थी।

रमाबाई का प्रचार-कार्य करने से नकार—महाराज ने उसके विवाह की अनुमति नहीं दी और रमाबाई से कहा कि तुम अपना जीवन स्त्रियों की शिक्षा और उद्धार में लगाओ। रमाबाई ने यह बात स्वीकार नहीं की। इसपर महाराज बहुत हताश हुए और उन्होंने कहा कि यदि हम जानते कि रमाबाई स्वदेश के पुनरुद्धार के लिए कार्य करना स्वीकार नहीं करेगी तो हम कदापि अपने नियम के विरुद्ध उसे अपने सामने बिठाने और शास्त्र पढ़ाने पर उद्यत न होते। रमाबाई ने महाराज से प्रार्थना की मुझे साथ रहने की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आज्ञा दी जाए और मुझे अन्य शास्त्र भी पढ़ाइए, परन्तु महाराज ने उससे कह दिया कि आज से मेरा तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका उद्देश्य केवल इतना ही था कि रमाबाई प्राचीन ऋषिकाओं की भाँति भारतवर्ष में अपनी बहिनों की भलाई के लिए कार्य करे और जब उन्होंने वह उद्देश्य पूरा होता न देखा तो उन्हें रमाबाई से उपरति हो गई। महाराज को उसके चरित्र के सम्बन्ध में भी सन्देह हो गया था और इस कारण उन्होंने आर्यसमाज मेरठ के कार्यकर्ताओं से कह दिया था कि उसके चरित्र पर दृष्टि रक्खें। उन लोगों ने भी उसके विषय में अच्छी सम्मति प्रकट नहीं की थी। रमाबाई ने यह भी कहा था कि वह अध्यापन और उपदेश कार्य तब कर सकती है जब उसके पिता का ऋण चुका दिया जाए जिसकी मात्रा उसने साठ-सत्तर हज़ार रुपये बताई थी।

रमाबाई को विदा कर दिया गया—इसके पश्चात् रमाबाई का मेरठ ठहरना व्यर्थ था, अतः उसे विदा करने का निश्चय किया गया। महाराज ने आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं से कह दिया कि जिस सम्मान के साथ रमाबाई को लाया गया है उसी सम्मान के साथ उसे विदा किया जाए, अतः रमाबाई को विदा करने के उपलक्ष्य में एक सभा की गई।

सम्मान-प्रदर्शन—उस सभा में पण्डित पालीराम ने कहा कि पण्डिता रमाबाई को अपनी दृष्टि और उद्देश्य उच्च रखने चाहिएँ और स्वामी दयानन्द की भाँति स्त्रीजाति का उपदेश द्वारा उपकार करना चाहिए। विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना उनके लिए उचित नहीं है। रमाबाई ने इसके उत्तर में स्वामीजी की बहुत प्रशंसा की। उन्हें बृहस्पति से उपमा दी और कहा कि वह प्रस्तावित कार्य करने में अक्षम है, ऐसे कार्य तो स्वामीजी सरीखे उत्तम कोटि के मनुष्य ही कर सकते हैं। स्त्री होने के कारण उसके लिए सर्वत्र घूमना असम्भव है। विदा करते समय आर्यसमाज मेरठ की ओर से १२५ रुपये और एक थान १० रुपये का रमाबाई को दिया गया और महाराज ने उसे संस्कारविधि, सत्यार्थप्रकाश, पञ्चमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थ दिये।

रमाबाई ईसाई—रमाबाई पीछे आकर ईसाई हो गई। उसने पूना में शारदासदन के नाम से एक विधवा-आश्रम स्थापित किया और सैकड़ों हिन्दू विधवाओं को विधर्मी बनाया।

रमाबाई की स्वामीजी के विषय में सम्मति—देवेन्द्रबाबू ने रमाबाई को एक पत्र लिखा था जिसमें रमाबाई से स्वामीजी के विषय में उसकी सम्मति और भाव पूछे थे। उस पत्र का उत्तर रमाबाई ने १३ नवम्बर सन् १९०३ को दिया था। उसमें रमाबाई ने लिखा था कि—"मैं मेरठ में आर्यसमाज के एक सभासद् के गृह पर ठहरी थी। मैं उस समय स्वामीजी की विशेष शिक्षाओं से सर्वथा अनभिज्ञ थी। मैं मेरठ में तीन सप्ताह से अधिक रही और इस कारण मुझे आर्यसमाज के मुख्य मन्तव्यों को स्वयं उसके प्रवर्त्तक से सीखने का अवसर मिला। स्वामीजी के सम्बन्ध में मेरे हृदय में जो भाव अङ्कित हैं वे वास्तव में बहुत उत्तम हैं। वे सर्वभावेन दयास्वरूप थे। उनका मेरे साथ वर्त्ताव कृपापूर्ण और पितृतुल्य था। वे प्रभावोत्पादक स्वर में शुद्ध भाषा बोलते थे। वे कभी हिन्दी और कभी संस्कृत में बातें किया करते थे, परन्तु संस्कृत उनकी प्यारी भाषा थी। हिन्दुओं के छहों दर्शनों में से वे वैशषिक दर्शन को सबसे अधिक पसन्द करते थे। उनकी शिक्षा अद्वैत वेदान्त से भिन्न थी और उस समय मैं केवल एक इसी बात में उनसे सहमत थी। उन्होंने मुझसे यह कहा था कि मैं चाहता हूँ कि तुम आर्यसमाज में सम्मिलित हो जाओ, मैं तुम्हें शिक्षा दूँगा और तुम्हें आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए तैयार करूँगा। मैं धार्मिक विषयों में अव्यवस्थित थी, अतः मैंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।"

स्त्रियों को वेदाधिकार—उसी पत्र में एक जगह रमाबाई लिखती हैं कि स्वामी दयानन्द स्त्रियों के लिए धर्म की आवश्यकता स्वीकार करते थे। वे कहते थे कि स्त्रियाँ वेद पढ़ सकती हैं जिसकी कि हिन्दूधर्म आज्ञा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं देता था। इस कारण से कि हिन्दूधर्म स्त्रियों और शूद्रों से द्वेष करता था, मेरी आत्मा उसकी विद्रोही बन गई थी। जहाँ तक उनकी शिक्षा का स्त्रियों को वेद, दर्शन और धर्मशास्त्रों के पढ़ने का अधिकार देने से सम्बन्ध था, वहाँ तक मैं उससे प्रसन्न थी।

कर्नल और मैडम का रंग बदला—कर्नल और मैडम शिमला जाते हुए मेरठ में महाराज से मिलने के लिए ठहर गये थे। उनके विषय में उस समय तक महाराज का यही विश्वास था कि वे आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानते हैं और इसी कारण वे थियोसोफ़िकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा बनाने पर सम्मत हो गये थे। इस बार जो कर्नल और मैडम मेरठ आये तो उन्होंने और ही रंग दिखाया अर्थात् उनकी बात-चीत से यह पता लगा कि उनका न वेदों में विश्वास है और न ईश्वर में। इस विषय में रमाबाई ने अपने उसी पत्र में इस प्रकार लिखा है—"मैडम ब्लैवेट्स्की और कर्नल आल्काट वाइसराय लार्ड रिपन से मिलने शिमला जा रहे थे। मैंने लोगों को यह कहते सुना था कि वे गवर्नर जनरल के निमन्त्रण पर उन्हें अपनी गुप्त विद्या-शक्ति दिखाने और उनके सामने यह सिद्ध करने के लिए जा रहे हैं कि अदृष्ट आत्माएँ उनसे बातचीत करती हैं और मैडम ब्लैवेट्स्की परलोकगत आत्माओं के लोक से वाइसराय के लिए कुछ वस्तुएँ मँगाकर अलौकिक घटना (miracle) का प्रदर्शन करेंगी।

मैडम के विचार—"मैं बाबू छेदीलाल के गृह पर ठहरी हुई थी, जहाँ कर्नल और मैडम अतिथि थे। मैडम मुझसे दुभाषिये के द्वारा बातें किया करती थी, क्योंकि मैं उस समय अंग्रेजी नहीं जानती थी। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं किसी वैयक्तिक (Personal) ईश्वर में विश्वास नहीं करती, किन्तु सत्त्व, रजस्, तमस् की सम्मिलित एक महान् शक्ति में विश्वास करती हूँ। वह अपनी अंगुली में एक अँगूठी पहनती थीं जिसमें तीन रत्न जड़े हुए थे। उन्होंने वह मुझे दिखाई और कहा कि ये तीनों रत्न उन तीनों शक्तियों के प्रतिनिधिस्वरूप हैं, जो इस महान् विश्व में कार्य और उसका शासन कर रही हैं। एक दिन सायङ्काल को स्वामी दयानन्द थियोसोफ़ी के इन नेताओं से मिलने आये। उन्होंने स्वामीजी को थियोसोफ़िकल सोसाइटी का मुख्य सभासद् बनाना चाहा, परन्तु स्वामी दयानन्द सोसाइटी का सभासद् बनने की स्वीकारी देने से पहले थियोसोफ़ी के सिद्धान्तों को समझना चाहते थे। इसपर उन्होंने एक दुभाषिये के द्वारा स्वामीजी के साथ अपने विशेष सिद्धान्तों पर विचार किया। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो मैडम ब्लैवेट्स्की और कर्नल आल्काट दोनों को यह कहते सुना था कि उनका विश्वास उपर्युक्त तीनों शक्तियों में है और वे वैयक्तिक ईश्वर और वेदों के अपौरुषेयत्व में विश्वास नहीं रखते।

अविश्वासियों से सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे—यह आर्यसमाज के जीवनमूल सिद्धान्तों के विरुद्ध था और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रकट कर दिया था कि वे उन लोगों से जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते, कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे, वह थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सभासद् नहीं बनेंगे और न थियोसोफ़िस्टों को अपने समाज का सभासद् बनाएँगे। इसपर बात समाप्त हो गई। मैं नहीं जानती कि पीछे क्या हुआ, परन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है स्वामी दयानन्द उस समय थियोसोफ़िस्ट नहीं हुए।"

कर्नल और मैडम सायङ्काल को महाराज से बाबू छेदीलाल के बँगले पर मिला करते और उनसे वार्त्तालाप किया करते थे। इस वार्त्तालाप का अंश 'थियोसोफ़िस्ट' समाचार-पत्र में छप चुका है, परन्तु नीचे लिखी बात उसमें नहीं छपी।

योग की शक्ति—एक दिन कर्नल ने स्वामीजी से कहा कि उन्हें और मैडम को इस बात में शङ्का है कि स्वामी शङ्कराचार्य ने अपने आत्मा को एक राजा के शरीर में, जो उसी दिन मरा था, प्रविष्ट कर दिया था। स्वामीजी ने कहा कि यह बिल्कुल बात है कि मैडम के समान योगप्रवीण व्यक्ति को इस विषय में सन्देह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो। फिर उन्होंने कहा कि मैं प्रथम कोटि का योगी नहीं हूँ, केवल मध्यम कोटि का हूँ, परन्तु मैं अपनी चेतना-शक्ति को शरीर के किसी भाग में केन्द्रित कर सकता हूँ, अर्थात् उस भाग को छोड़कर मेरे शरीर के अन्य सब भाग मृतवत् हो जाएँगे। यदि आप यह दृश्य देखना चाहें तो मैं आपको दिखा सकता हूँ। जब मैं मध्यम कोटि का योगी इतना कर सकता हूँ तो यह सम्भव है कि एक उच्च कोटि का योगी इससे एक पद आगे बढ़कर अपने आत्मा को दूसरे शरीर में प्रविष्ट कर सके।

सन्ध्या कैसी ? उपासना किस की ? मैं ईश्वर को नहीं मानती—एक दिन बाबू ज्योतिःस्वरूप और कुछ अन्य सज्जन कर्नल और मैडम से मिलने गये थे। समय सायङ्काल का था। जब सन्ध्या का अन्धकार छाने लगा तो पण्डित पालीराम ने उनसे विदा माँगी कि सन्ध्या करने का समय निकट है। इसपर मैडम ने मुस्करा कर कहा कि क्या आप सचमुच उपासना करते हैं और करते हैं तो किसकी ? पण्डित पालीराम ने कहा कि आप भी तो सन्ध्या और परमेश्वर की उपासना करती हैं तो मैडम ने कहा कि मैं सन्ध्या के केवल उस भाग में विश्वास करती हूँ जहाँ तक वह योगाभ्यास का अङ्ग है, परन्तु जहाँ तक ईश्वरोपासना का सम्बन्ध है मेरा उसमें विश्वास नहीं है। मैं किसी ईश्वर में विश्वास नहीं रखती, क्योंकि ईश्वर है ही नहीं और अधिक प्रश्न करने पर मैडम ने कहा हम लोग बौद्ध हैं।

ईश्वर-विषय पर विचार—पण्डित पालीराम आदि ने यह बात महाराज से कही और जब उन्होंने कर्नल और मैडम से पूछा कि क्या यह सत्य है कि आपके विश्वास में ईश्वर का अस्तित्व नहीं है ? तो उन्होंने कहा कि यह सत्य है। इसपर महाराज ने कहा कि इस विषय पर विचार हो जाना चाहिए। कर्नल ने कहा कि गुरु-शिष्य में कोई विवाद नहीं हो सकता है। महाराज ने कहा कि आस्तिक और नास्तिक में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध नहीं हो सकता। कर्नल विचार करने से नकार और महाराज उसपर आग्रह करते रहे। महाराज ने कहा कि दो विद्वान् पुरुष जिन्हें सत्य की खोज हो, विचार करके अवश्य ही किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच सकते हैं। यदि आपका पक्ष प्रबल रहे तो मैं ईश्वर में विश्वास रखना छोड़ दूँगा नहीं तो आपको ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करना होगा। अन्यथा मैं आपसे सब सम्बन्ध तोड़ दूँगा। इसपर कर्नल ज्यों-त्यों करके राज़ी हुए। यह विचार तीन दिन तक सन्ध्या समय से रात्रि के १०-११ बजे तक होता रहा।

विचार का आरम्भ—पहले दो दिन पण्डित बलदेवप्रसाद हैडमास्टर नार्मल स्कूल मेरठ ने दुभाषिये का काम किया, तीसरे दिन बाबू ज्वालाप्रसाद अनुवादक अदालत जजी मेरठ ने। चौथे दिन कर्नल ने महाराज से कहलाकर भेजा कि विचार समाप्त हो जाना चाहिए नहीं तो वे अमृतसर चले जाएँगे। महाराज ने उत्तर में कहला भेजा कि अन्तिम निर्णय कुछ दूर नहीं है। हममें से एक को पराजय स्वीकार करना होगा, यदि आप विचार समाप्त किये विना चले जाएँगे तो मेरा और आपका सम्बन्ध समाप्त हो जाएगा।

सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा—कर्नल और मैडम उसी दिन मेरठ से चले गये और महाराज ने उसी दिन एक साधारण सभा में, जो लाला रामशरणदास के गृह पर हुई थी, यह घोषणा करदी कि मेरा और थियोसोफ़िकल सोसाइटी का कोई सम्बन्ध नहीं रहा है।

पालिसी से घृणा—महाराज धर्मप्रचार के विषय में पालिसी से काम लेने के अत्यन्त विरुद्ध थे। एक दिन उन्होंने अत्यन्त शोक प्रकट करते हुए कहा था कि सत्यार्थप्रकाश में मृत पितरों का श्राद्ध और यज्ञ में मांस-विधान राजा जयकिशनदास ने लिखवा दिया, क्योंकि उन्होंने ही उसे अपने व्यय से छपवाया था।

पहले सत्यार्थप्रकाश का प्रामाण्य अस्वीकार—हम समझते हैं कि यह बात स्वामीजी ने कभी न कही होगी। यदि उनका ऐसा विश्वास होता तो जिस विज्ञापन में उन्होंने यह घोषित किया कि ये बातें सत्यार्थप्रकाश में लेखकों के दोष से सन्निविष्ट हुई हैं उसमें वे स्पष्ट लिख देते कि वह राजा जयकिशनदास की अनुमति से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्निविष्ट हुईं हैं। स्वयं राजा जयकिशनदास की यह सम्मति थी कि उन बातों को लेखकों ने लिख दिया। ठाकुर महावीरसिंह की भी यह निश्चित सम्मति थी कि उक्त बातों के लिए लेखक ही दोषी हैं। 'जहाँ-जहाँ श्राद्ध नहीं करना चाहिए' ऐसा होना चाहिए था वहाँ-वहाँ लेखकों ने ऐसा लिख दिया कि 'होना चाहिए'। ज्यों ही स्वामीजी को यह ज्ञात हुआ कि सत्यार्थप्रकाश में ऐसा छप गया है त्यों ही उन्होंने निम्नलिखित विज्ञापन निकाल दिया और सत्यार्थप्रकाश का प्रामाण्य अस्वीकार कर दिया। यह विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य के प्रकट अङ्क के टाइटिल पेज पर संवत् १९३५ में छपा था।

विज्ञापनम्

"सबको विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं, उन्हें मैं मानता हूँ, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र व मनुस्मृति पुस्तकों के वचन बहुत-से लिखे हैं वह उन-उन ग्रन्थों के मतों के जानने के लिए लेखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो-जो बात वेदार्थ से निकलती हैं, उन सबका प्रमाण करता हूँ, क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से मुझे सर्वथा मान्य हैं और जो-जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनि-पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थ-अनुकूल ग्रन्थ हैं उन्हें मैं भी साक्षी के समान मानता हूँ और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २६-२७ पंक्ति में 'पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे' और 'जितने मर गये हों उनका तो अवश्य करे' तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में 'मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है' इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में छापा गया है सो लिखने और शोधनेवालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिए कि 'जीवतों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है' और 'जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना', क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये हुए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य का नहीं। इस विषय में वेदमन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २२१ से लेकर १२ अङ्क के २६७ पृष्ठ तक छपा है, वहाँ देख लेना।"

पालिसी से हानि—धर्म सम्बन्धी विषयों में पालिसी से काम लेने की हानि का एक दृष्टान्त महाराज ने यह दिया था कि हमने जयपुर में वैष्णव-मत के विरुद्ध शैव-मत के पक्ष का अवलम्बन करके पण्डित हरिश्चन्द्र की सहायता की थी जिससे हमारा अभिप्राय यह था कि महाराज वैष्णव धर्म को त्यागकर शैव को स्वीकार कर लेंगे। तत्पश्चात् उन्हें वैदिक सिद्धान्तों की ओर झुकाना सहज होगा। महाराजा ने शैव मत को स्वीकार कर लिया, परन्तु हमारा उद्देश्य पूरा न हुआ। हम जब कभी जयपुर गये लोगों ने हमारे उपदेश को न सुना और कहा कि क्या यह वही रुद्राक्ष नहीं हैं जिनके पहनने से आपने हमें मोक्ष के मिलने का विश्वास दिलाया था ? अब हम कैसे मानें कि पहला उपदेश असत्य था और आपका अब का उपदेश सत्य है। महाराज इसपर कहते थे कि लोगों के इस कहने में कुछ युक्तियुक्तता अवश्य थी।

पहला स्वीकार-पत्र—महाराज ने अपना स्वीकार-पत्र १६ अगस्त सन् १८८० को मेरठ में लिखा था और १८ अगस्त सन् १८८० को उसकी रजिस्ट्री हुई थी। उसके द्वारा जो परोपकारिणी सभा स्थापित की गई थी उसका प्रधान राय मूलराज एम० ए० को बनाया था और रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल, कर्नल आल्काट, मैडम ब्लैवेट्स्की आदि १४ सभासद् नियत किये गये थे।§

---

§ यह स्वीकार पत्र "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" ग्रन्थ में पृष्ठ ५२८ से ५३२ तक छपा है। उसमें १४ के स्थान पर १८ सदस्यों के नाम लिखे हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(१५ सित०—२ अक्तू०) मुजफ़्फ़रनगर (भाद्र शु० १२—आश्विन कृ० १३)

१६§ सितम्बर सन् १८८० अर्थात् भाद्रपद शुक्ला १३ संवत् १९३७ को महाराज मुज़फ़्फ़रनगर पधारे और वहाँ के प्रसिद्ध रईस रायबहादुर लाला निहालचन्द के बँगले में ठहरे। उन दिनों पितृपक्ष का आरम्भ होनेवाला था। नगर के कुछ पण्डित लाला निहालचन्द के पास गये और उनसे कहा कि स्वामीजी से हमारा शास्त्रार्थ करा दीजिए, परन्तु पण्डितगण लाला निहालचन्द के ही प्रश्नों का उत्तर न दे सके, अतः वे पण्डितों के प्रस्ताव से सहमत न हुए।

मृतक श्राद्ध पर बात-चीत—लाला निहालचन्द ने महाराज से मृतक-श्राद्ध के विषय में स्वयं ही जिज्ञासा की तो उन्होंने कहा कि मृतक-श्राद्ध निष्फल है, क्योंकि मृतक को अपने ही कर्मों का फल मिलता है, दूसरे के कर्मों का नहीं और श्राद्ध उसका कर्म नहीं है और यदि श्राद्ध का पुण्य मिलता है तो पुत्र के पाप कर्म का, जो वह उसके नाम से करे वा जो अपव्यय उसके उपार्जित धन से करे उसका फल भी उसे मिलना चाहिए। इसपर लाला साहब ने कहा कि मृतक के पापों की दण्डव्यवस्था तो एक बार ही हो जाती है, उसमें घटत-बढ़त नहीं हो सकती, जैसा हम लोक में भी देखते हैं कि अपराधी को उसके अपराध का दण्ड एक ही बार मिलता है फिर वह न्यूनाधिक नहीं हो सकता; परन्तु श्राद्ध एक पुण्य कर्म है, उसका फल उसे अवश्य मिलना चाहिए। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह ठीक है कि दण्ड न्यूनाधिक नहीं हो सकता, तब पुत्र के किये हुए श्राद्ध से उसका दण्ड तो कम होगा नहीं तो मृतक को उससे क्या लाभ होगा ? यदि यह माना जाए कि मृतक को दूसरे के पुण्य कर्म का फल मिलता है तो यह भी मानना पड़ेगा कि दूसरे के पाप कर्म का फल भी उसे मिलता है। फिर यह भी है कि जो लोग धन एकत्र करके मर जाते हैं उनकी सन्तान बहुधा दुश्चरित्र हो जाती है, इसका फल भी उन्हें मिलना चाहिए, अतः यह सिद्धान्त बहुत बुरा प्रभाव उत्पन्न करनेवाला है।

लाला निहालचन्द को कार्यवश जाना था, अतः आगे बात-चीत न हो सकी। महाराज न्याय की मूर्त्ति थे। उन्होंने लाला साहब से स्वयं कह दिया कि अभी इस बात का पूरा निर्णय नहीं हुआ है। इससे उनके चित्त में महाराज के लिए प्रेम द्विगुणित हो गया।

स्त्री-शिक्षा पर आक्षेप—एक और सज्जन के आक्षेप पर महाराज ने कहा कि स्त्रियाँ लिखने-पढ़ने के कारण से कुटिला नहीं होंगी ! यह तो प्रकृति और संगति पर निर्भर है। कितने लिखे-पढ़े मनुष्य भी चरित्रहीन होते हैं।

सुख-दुःख की मीमांसा—एक और जिज्ञासु के प्रश्नों का उत्तर देते हुए महाराज ने कहा कि सुख दो प्रकार का होता है एक अविद्याजन्य, दूसरा विद्याजन्य। विद्याजन्य सुख को ही सुख कहते हैं; अविद्याजन्य सुख ऐसा होता है जैसा पशु आदि को। अज्ञान की निवृत्ति बिना ज्ञान के नहीं होती। जीव अल्पज्ञ है, अतः किन्हीं विषयों में उसे ज्ञान होता है और किन्हीं में अज्ञान। व्यापक वस्तु व्याप्य से भिन्न होती हैं, जैसे आकाश सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों में व्यापक हैं, परन्तु न वह द्रव्य आकाश हैं और न आकाश मूर्त्तिमान् द्रव्य है। जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक और जो स्थूल होता है वह व्याप्य होता है। परमात्मा सबसे सूक्ष्म है, अतः सबमें व्यापक है। त्रसरेणु का साठवाँ भाग परमाणु है, परमात्मा उससे भी सूक्ष्म है, इसलिए वह परमाणुओं का

---

§ ऋषि दयानन्द ने भाद्र सुदी १२ संवत् १९३७ (१५ सितम्बर १८८०) के पत्र में लिखा है—"हम कल ४ बजे की रेल में बैठककर मुज़फ़्फ़रनगर जाएँगे।" ऋषि का पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २३८। पं० श्री महेशप्रसादजी ने भी 'ऋषि दयानन्द कब और कहाँ' ग्रन्थ में १५ सितम्बर सन् १८८० अर्थात् भाद्रपद शुक्ला १२ संवत् १९३७ तिथि लिखी है, वह ठीक नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संयोग-वियोग कर सकता है।

ढेले आये—एक दिन महाराज श्राद्ध-खण्डन पर व्याख्यान दे रहे थे कि कुछ दुष्टों ने उनपर ढेले फेंके, परन्तु महाराज तनिक भी विचलित न हुए और व्याख्यान देते रहे।

मुसलमान नवयुवक की अशिष्टता—एक दिन एक मुसलमान नवयुवक ने आकर एक प्रश्न किया और साथ ही वह अण्ड-बण्ड बकने लगा। महाराज ने उसके प्रश्न का शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, परन्तु वह बकता ही रहा। महाराज को तनिक भी क्रोध न आया।

साँप मरवा दिया—जिस गृह में महाराज ठहरे हुए थे, उसमें एक दिन एक सर्प निकल आया, उन्होंने उसे विद्यार्थियों से मरवा डाला।

स्वामीजी पर कृष्ण सर्प फेंका गया—मैडम ब्लैवेट्स्की ने अपनी पुस्तक 'फ्राम दि केव्ज़ एण्ड जंगल्स आफ़ हिन्दुस्तान' में लिखा है कि एक समय महाराज बँगाल के एक छोटे-से ग्राम में बलपूर्वक खण्डन कर रहे थे कि एक मतान्ध शैव ने एक कृष्ण सर्प उनकी विवस्त्र टांगों पर फेंक कर कहा कि अब वासुकी देवता स्वयं ही प्रकट कर देगा कि हममें से कौन सच्चाई पर है। सर्प उनकी टांग से लिपट गया था। उन्होंने एक झटके से ही उसे अलग फेंककर अपनी एड़ी से उसके शिर को कुचल डाला और बड़ी शान्ति से उस शैव को उत्तर दिया कि अच्छा इसे ही निर्णय करने दो। तुम्हारा देवता तो बहुत शिथिल रहा, मैंने ही इस विवाद का निर्णय कर दिया और श्रोताओं को सम्बोधित करके कहा कि अब जाओ और सबसे कह दो कि कैसी आसानी से झूठे देवता नष्ट हो जाते हैं।

इस घटना में कितना तथ्य है, हम नहीं कह सकते। इसमें असम्भव बात तो कोई प्रतीत नहीं होती। यदि यह सत्य हो तो यह उस समय की हो सकती है जब महाराज ने गङ्गोत्री से गङ्गासङ्गम तक विचरण किया था, परन्तु उन दिनों तो वे खण्डन-मण्डन करते सुने नहीं गये।

मुज़फ़्फ़रनगर में महाराज के लगभग दस व्याख्यान हुए।

(२ अक्तू०—६§ अक्तू०) मेरठ (आश्विन कृ० १३—आश्विन शु० ३)

मुज़फ़्फ़रनगर से महाराज मेरठ आये और आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव‡ को सुशोभित किया। उत्सव के दोनों दिन आपने अपने मनोहर व्याख्यानों से श्रोतृवर्ग को अलभ्य लाभ पहुँचाया।

सम्बन्ध-विच्छेद का सूत्रपात—स्वामीजी ने अपने एक व्याख्यान में आर्यसमाज और थियासोफ़िकल सोसाइटी के सम्बन्ध में भी कथन किया और कर्नल और मैडम के असद् व्यवहार की निन्दा की। उन्होंने आर्यपुरुषों को सावधान किया कि उक्त सोसाइटी के सभासद् न बनें। चलते समय कर्नल और मैडम ने यह वचन दिया था कि वे आगे को किसी आर्यसमाज के सभासद् को सोसाइटी का सदस्य बनने के लिए नहीं कहेंगे, परन्तु इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। स्वामीजी ने जो कुछ सोसाइटी के विषय में कहा उससे कर्नल और मैडम स्वामीजी से अप्रसन्न हो गये। इधर स्वामीजी भी उनसे असन्तुष्ट हो गये और इस प्रकार आर्यसमाज और थियासोफ़िकल सोसाइटी के सम्बन्ध-विच्छेद का सूत्रपात हो गया।

जीवन की कुछ घटनाएँ—मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की

---

§ स्वामीजी महाराज ७ अक्तूबर को देहरादून पहुँचे थे। अगले वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि वे सहारनपुर रेलवे स्टेशन पर कुछ समय ठहरे थे, अतः वे मेरठ से ६ अक्तूबर तदनुसार आश्विन शु० ३ को रवाना हुए होंगे।

‡ मेरठ आर्यसमाज का उत्सव ३ अक्तूबर से था देखो ऋषि दयानन्द का पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २४२। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ घटनाएँ भी सुनाई थीं। उन्होंने कहा कि एक स्थान पर मेरा व्याख्यान सुनकर कलक्टर ने कहा था कि यदि सब लोग आपके कथन के अनुसार चलने लगें तो हमें भारत छोड़ना पड़ेगा। इसका उत्तर मैंने यह दिया कि आप मेरा अभिप्राय नहीं समझे। मेरा तात्पर्य यह है कि मूर्ख और विद्वान् का मेल नहीं हो सकता। जब तक भारत के मनुष्य आपके समान सुशिक्षादि गुणों से अलंकृत न हो जाएँ तब तक परस्पर के मेल से सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

आप इस समय आश्चर्य करते हैं कि मैं इतनी दूर तक वायु-सेवन के लिए जाता हूँ, परन्तु अवधूत दशा में चालीस-चालीस मील चलाना मेरे लिए कोई बात न थी। मैं एक बार गङ्गोत्री से चल कर गङ्गा-सागर तक और एक बार गङ्गोत्री से रामेश्वर तक गया था। बद्रीनाथ में रहकर मैंने गायत्री का जपानुष्ठान किया था। रात्रि में जब तेल न रहता था तो मैं बाज़ार के दीपकों के प्रकाश में पढ़ा करता था। मैं लगातार कई दिन तक मध्याह्न में तप्त-रेणु में पड़ा रहा हूँ और हिमाच्छादित पर्वतों में और गङ्गा तट पर नग्न और निराहार सोया हूँ।

क्या तुमने सर्प देखा—शिवलाल रस्तोगी स्वामीजी के बड़े भक्त थे। एक दिन वे उनके पास जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक सर्प मिला। जब वे श्रीसेवा में पहुँचे तो पहला प्रश्न स्वामीजी ने उनसे यह किया कि क्या मार्ग में सर्प देखा था ?

छाता ले लिया होता—जब वे चलने लगे तो महाराज ने कहा छाता ले-लिया होता तो वर्षा होने पर भीगने से तो बच जाते। उस समय शिवलाल को वर्षा के कोई चिह्न दिखाई न देते थे, परन्तु मार्ग में इतनी वर्षा हुई कि घर पहुँचते-पहुँचते वे खूब भीग गये।§

(६ अक्तूबर) सहारनपुर (आश्विन शु० ३)

मेरठ से देहरादून जाते हुए महाराज कुछ काल के लिए सहारनपुर के स्टेशन पर ठहरे। जब उनके आगमन का समाचार भक्तजनों को ज्ञात हुआ तो वे स्टेशन पर ही श्रीसेवा में उपस्थित हुए।

फलित ज्योतिष ढकोसला है—उनमें ही एक ज्योतिषी भी थे। वे महाराज से बोले कि मैं फलित ज्योतिष के अनुसार प्रश्नों के उत्तर देता हूँ और वे ठीक होते हैं। महाराज ने कहा कि आपके कुछ उत्तर दैवयोग से ठीक हो जाते होंगे, यदि गणना से सच्चे होते तो उनमें कभी भूल नहीं होती, क्योंकि गणित के नियम सब सत्य हैं।

बालक-जन्म पर सूतक—एक सज्जन ने प्रश्न किया कि जन्म के समय दस दिन का जो सूतक माना जाता है वह शास्त्रानुकूल है वा नहीं ? महाराज ने उत्तर दिया कि केवल बालक की माता को एक रात का सूतक होता है। सूतक का बखेड़ा वैसे ही खड़ा कर लिया है। लोग उसमें सन्ध्या-हवन आदि तक छोड़ देते हैं, परन्तु असत्य-भाषण आदि अशुभ कर्म कोई नहीं छोड़ता।

(७ अक्तू०—२० नव०) देहरादून (आश्वि० शु० ४—मार्ग० कृ० ३)

स्वामीजी ७ अक्तूबर सन् १८८० को देहरादून पहुँचे। पण्डित कृपाराम ने उनकी सेवा-शुश्रूषा में कोई बात उठा न रक्खी। स्वामीजी के आते ही एक विज्ञापन द्वारा जनसाधरण को सूचना दे दी गई कि स्वामीजी

---

§ यह घटना दयानन्द-प्रकाश में लिखी है। लाला शिवलाल हमारे मोहल्ले के रहनेवाले थे और हम उनसे खूब परिचित थे, परन्तु उन्होंने इस घटना का हमसे कभी उल्लेख नहीं किया। सम्भव है स्वामी सत्यानन्दजी ने उनसे ही वा अन्य किसी से सुनकर यह बात लिखी हो। —संग्रहकर्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल वैदिक धर्म को मानते हैं और अन्य धर्मों में जो त्रुटियाँ हैं, उन्हें युक्तिपूर्वक सबको दर्शाते हैं। किसी अन्य धर्मावलम्बी को उनसे शास्त्रार्थ करना अभीष्ट हो तो वे लिपिबद्ध शास्त्रार्थ कर लें, साथ ही शास्त्रर्थ के नियम भी विज्ञापन में लिख दिये गये।

पौराणिकों की छेड़-छाड़—शास्त्रार्थ के लिए प्रथम पौराणिकों ने छेड़-छाड़ की और यह प्रसिद्ध कर दिया कि आज दो बजे पण्डित लोग मिशन स्कूल में स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत हैं। इसका उत्तर स्वामीजी ने उनके पास भेज दिया कि मैं अभ्यागत हूँ, आपको मेरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए। मैं इस बात का उत्तरदायित्व लेता हूँ कि कोई उपद्रव आदि न होगा और आप मुझे ही अपने स्थान पर बुलाना चाहते हैं तो साहब मैजिस्ट्रेट की ओर से प्रबन्ध होना चाहिए, क्योंकि जहाँ कहीं भी मैं पौराणिकों के स्थान पर गया हूँ, वहाँ उपद्रव हुए बिना नहीं रहा। पौराणिकों की ओर से इसका उत्तर नहीं आया।

मुसलमान भी आये—इसके पश्चात् मुसलमानों की ओर से एक पत्र आया जिसमें लिखा था कि हम वेद पर आक्षेप करेंगे और जब तक आपके उत्तरों से हमारा सन्तोष न हो जाएगा तब तक हम किसी की न सुनेंगे। महाराज ने इसके उत्तर में कहा कि आप वेद पर अवश्य आक्षेप करें, मैं उत्तर दूँगा, फिर मैं क़ुरान पर आक्षेप करूँगा आप उत्तर दें। इसपर मुसलमान भी चुप हो गये।

पादरी भी राज़ी नहीं हुए—एक दिन एक पादरी, जिनका नाम गिलबर्ट और उपनाम मेकमासर था, कई ईसाइयों के साथ आये और बोले कि आपके पास वेद के ईश्वरोक्त होने में क्या युक्ति है ? स्वामीजी उनके ढंग से जान गये कि वास्तव में वे शास्त्रार्थी नहीं हैं केवल दिखावे के लिए प्रश्न करते हैं, अतः उन्होंने पादरी साहब से यह प्रश्न कर दिया कि आपके पास बाइबिल के ईश्वरोक्त होने में क्या युक्ति है ? इसपर पादरी साहब बोले कि प्रथम प्रश्न तो मेरा है। स्वामीजी ने कहा कि मुझे भी तो प्रथम उत्तर लेने का अधिकार है। पादरी साहब उठकर चलने लगे तो स्वामीजी ने कहा—आप भागते क्यों हैं, पहले आप ही वेद पर एक, दो, तीन आक्षेप कर लीजिए मैं उत्तर दूँगा, फिर मैं बाइबिल पर आक्षेप करूँगा जिनके उत्तर आपको देने होंगे, परन्तु पादरी साहब फिर चलने को हुए तो स्वामीजी ने कहा कि आप वेद पर दस तक आक्षेप कर लीजिए, परन्तु मुझे भी तो बाइबिल पर आक्षेप करने की आज्ञा दीजिए, परन्तु पादरी साहब बोले कि जब तक आप हमारे प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न देंगे और हमसे अपने उत्तरों की सत्यता स्वीकार न करा लेंगे हम आपको बाइबिल पर आक्षेप न करने देंगे और इतना कहकर वे सभास्थल से चले गये।

महात्मा अलखधारी पूर्व मुहम्मद उमर—मुंशी मुहम्मद उमर को महाराज ने पहले आगमन के अवसर पर शुद्ध करके उनका नाम अलखधारी रक्खा था। एक दिन मुसलमान दलबद्ध होकर उनके पास पहुँचे और उनसे कहा कि तेरी मुक्ति असम्भव है और तू कठोर यातना के योग्य है। महात्मा अलखधारी ने कहा कि आपका खुदा मुसलमानों का पालन करता है वा मनुष्यमात्र का। यदि पहली बात ठीक है तो आपको मेरे उद्धार की विशेष चिन्ता करनी व्यर्थ है और यदि दूसरी ठीक है तो फिर मुझमें और आप में कोई भेद नहीं। उत्तम तो यही है कि आप भी पवित्र वेदों के विश्वासी बनें और सत्य धर्म को ही सत्य जानें अन्यथा छुटकारा कठिन है। ऐसा युक्तियुक्त उत्तर पाकर इस्लामी दल वापस चला गया।

देहरादून में महाराज २० नवम्बर सन् १८८० तक रहे और धर्मपिपासुओं की पिपासा शान्त करते रहे। देहरादून से वे मेरठ चले गये। देहरादून में महाराज का मोहे भी लिया गया था।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२१ नव०—२६ नव०) **मेरठ** (मार्ग० कृ० ५—मार्ग० कृ० ६)

मेरठ में उनकी स्थिति केवल पाँच दिन रही। कोई व्याख्यान नहीं हुआ।

(२७ नव० ८०—१० मार्च ८१) **आगरा** (मार्ग० कृ० १०—फाल्गुन शु० १०)

स्वामीजी को आगरा के पण्डित लक्ष्मणप्रसाद महोपाध्याय और अन्य कतिपय सज्जनों ने निमन्त्रित किया था और उन्होंने महाराज के निवास के लिए नगर से बाहर एक स्थान भी निश्चित कर दिया था, परन्तु ये लोग किसी कारण से रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए न पहुँच सके। मुंशी गिरधरलाल भार्गव आगरे के सुप्रसिद्ध वकील को महाराज के आगमन की किसी प्रकार सूचना मिल गई थी। वे स्टेशन पर चले गये, अतः वे महाराज को अपने गृह पर लिवा लाये। प्रातःकाल पण्डित लक्ष्मणप्रसाद आदि श्रीसेवा में उपस्थित हुए और स्वागतार्थ रेल पर न पहुँचने के लिए क्षमा-प्रार्थना की और उनसे पूर्व निश्चित स्थान पर पधारने के लिए निवेदन किया, परन्तु उन्होंने मुंशी गिरधरलाल से कहा कि आपका मकान हमें रुचिकर है, यदि आपको कुछ कष्ट न हो तो हम यहाँ रहना अधिक पसन्द करते हैं। मुंशी गिरधरलाल ने अपना सौभाग्य समझा जो महाराज ने उनके गृह को अपने चरण-कमलों से सुशोभित करने की इच्छा प्रकट की, साथ ही महाराज से आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना की, ऐसी ही प्रार्थना सेठ सूनीलालजी ने भी की, परन्तु महाराज ने कहा कि पाचक और कहार हमारे साथ हैं, भोजन सामग्री का भी प्रबन्ध है और हमें अधिक दिन ठहरना है, अतः हम किसी एक व्यक्ति पर भार डालना नहीं चाहते, यदि किसी वस्तु की आवश्कता होगी तो कह दिया जाएगा। स्वामीजी के व्याख्यानों का मुफ़ीद-ए-आम-स्कूल, पीपल मण्डी में प्रबन्ध किया गया।

पहली व्याख्यानमाला—२७ नवम्बर से व्याख्यान होने आरम्भ हुए और लगातार २५ व्याख्यान हुए।

हम नहीं कह सकते इन व्याख्यानों में किन-किन अपूर्व रहस्यों का उद्घाटन किया गया होगा और क्या-क्या अमूल्य उपदेश दिये गये होंगे। यदि इनका विवरण उसी समय कोई लिख लेता जैसाकि पूना के व्याख्यानों का लिख लिया गया था तो उससे कितना लाभ होता ?

दस दिन में शङ्का मिटा लो—व्याख्यानों की समाप्ति पर महाराज ने घोषित कर दिया कि जिस किसी को मुझसे शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो वा मेरे कथन में कोई शङ्का हो वा किसी को मुझसे कुछ प्रष्टव्य हो वह दस दिनों के भीतर पूछ सकता है। शास्त्रार्थ करने की डींग तो कई पण्डित मारते रहे, परन्तु शास्त्रार्थ करने कोई न आया, घर बैठे ही दून की लेते रहे। हाँ, शङ्का-समाधान करने बहुत-से लोग आये, कुछ तो सच्चे जिज्ञासु-भाव से और कुछ यों ही अपना और महाराज का समय नष्ट करने के लिए, परन्तु स्वामीजी ने उत्तर सबके प्रश्नों के दिये और अनेक लोगों का संशयोच्छेदन किया।

आर्यसमाज की स्थापना—इन सारगर्भित उपदेशों का फल यह हुआ कि पौष कृष्णा ६ संवत् १९३७ अर्थात् २६ दिसम्बर सन् १८८० रविवार को आगरा नगर में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

६ दिसम्बर को महाराज ने वज़ीरपुरे के ठाकुर श्यामलालसिंह के गृह पर पधार कर उनके तीन पुत्रों का विधिवत् उपनयन-संस्कार कराया। इस संस्कार को देखने एक यूरोपियन महिला भी आई थीं जो सम्भवतः रोमनकैथोलिक मिशनरी थीं।

गिरजा-दर्शन और बिशप से वार्त्तालाप—आगरे में रोमनकैथोलिक ईसाइयों का बड़ा भारी गिरजा है जिसका नाम सेण्टपीटर्स चर्च है। वह भारतवर्ष के गिरजाओं में दर्शनीय समझा जाता है, और वहाँ बिशप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(लाट पादरी) भी रहता है। बिशप साहब ने स्वामीजी के पास एक मनुष्य भेजकर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो महाराज १२ दिसम्बर को कतिपय सुप्रतिष्ठित सज्जनों के साथ उनसे मिलने गये। बिशप साहब महाराज से प्रेम और सम्मान-प्रदर्शनपूर्वक मिले और बहुत देर तक धर्मविषय पर बात-चीत करते रहे। बिशप महोदय से महाराज ने कहा कि यदि हम और आप तथा अन्य धर्मों के बुद्धिमान् नेता केवल उन बातों का प्रचार करें जिन्हें सब मानते हैं तो एकता स्थापित हो सकती है और फिर मुक़ाबिले पर नास्तिक ही रह जाएँगे। बिशप साहब ने कहा कि यह दुष्कर है, मुसलमान और ईसाई मांस खाना कभी न छोड़ेंगे, फिर कहा कि जिस प्रकार राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया बिना अपने प्रतिनिधि वायसराय के भारतवर्ष का शासन नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार परमेश्वर भी बिना प्रभु ईसामसीह के मनुष्यों के धार्मिक शासन और मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि जो उदाहरण आपने दिया है वह ठीक नहीं है, महाराणी विक्टोरिया एकदेशी और अल्पज्ञ है, उनकी ईश्वर से क्या तुलना हो सकती है ? परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्व-शक्तिमान् सत्ता है। वह किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रखता। यदि यह भी माना जाए कि ईसा एक महात्मा पुरुष थे तो भी यह नहीं हो सकता कि परमेश्वर उनकी सिफ़ारिश से अन्याय करे और पापी को पाप का फल न दे, वह न्यायकारी है, अतः जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा फल अवश्य देगा।

बिशप साहब के प्रश्न करने पर महाराज ने कहा कि परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में अपने अनन्त ज्ञान से चार ऋषियों द्वारा वेदों के रूप में अपना ज्ञान दिया। बिशप साहब ने पूछा उनके प्रतिनिधि अब कौन हैं ? महाराज ने कहा कि ब्राह्मण, उपनिषद्, षड्दर्शन के कर्त्ता तथा लाखों ऋषि-मुनि उनके प्रतिनिधि हैं, परन्तु आप तो बतलाइए कि ईसा मसीह का प्रतिनिधि कौन है, तब बिशप साहब ने कहा कि पोप पृथिवी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि है, जो भूल वा अपराध हम लोगों से होते हैं, वे उनका संशोधन कर देते हैं। इसपर स्वामीजी ने कहा कि जो भूल वा अपराध पोप से होता है उसका संशोधन कौन करता है? बिशप महोदय इसका कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दे सके। बिशप साहब ने वेदों के विषय में भी कुछ पूछा था जिसका युक्तयुक्त उत्तर महाराज ने दे दिया था।

गिरजा बिना देखे वापस—बिशप महोदय से अनुमति लेकर स्वामीजी गिरजा देखने गये। वहाँ जो मनुष्य नियत था उसने कहा कि गिरजा के भीतर आप पगड़ी उतार कर जा सकते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हमारी रीति के अनुसार पगड़ी पहनना प्रतिष्ठा-सूचक है, तुम कहो तो हम जूता उतार सकते हैं। उस मनुष्य ने कहा कि आपको पगड़ी और जूता दोनों उतारने चाहिएँ। इसे स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया और वे बरामदे में से ही गिरजा के भीतर रक्खी हुई मूर्त्तियों को देखकर चले आये।

मुसलमान कोतवाल से धर्मालाप—एक दिन मौलवी तुफ़ैल अहमद ने, जो नगर के कोतवाल थे, पुनर्जन्म पर यह आक्षेप किया कि इस सिद्धान्त से ईश्वर पर कई दोष आते हैं। परमेश्वर अन्याकारी नहीं है कि जो जीवों को बार-बार जन्म धारण कराकर उनसे ऐसे पाप करावे कि एक जन्म में जो एक मनुष्य की पुत्री है वही दूसरे जन्म में उसकी स्त्री बने। इसका उत्तर महाराज ने यह दिया कि पिता और पुत्री का सम्बन्ध देह का है, जीव का नहीं, जीवों का आपस में कोई सम्बन्ध (नातेदारी) नहीं है। इसपर मौलवी साहब कुछ न बोल सके।

अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर—एक दिन एक पादरी स्वामीजी के पास आये और बातों-बातों में यह कहा कि आपने अपने वेद-भाष्य में अग्नि का अर्थ परमेश्वर किया है, वह नहीं बन सकता। स्वामीजी ने अग्नि शब्द का व्याकरण से अर्थ करके उसे समझा दिया कि अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति से जिन-जिन गुणों का

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह वाचक है, वे गुण परमेश्वर में हैं, अतः अग्नि परमेश्वर का वाचक है ।§ इसपर पादरी ने कोई आपत्ति न की । उन्होंने स्वामीजी से विदा होते समय कहा कि यदि आप कभी पहाड़ पर आवें तो मैं आपसे बहुत-सी बातें पूछना चाहता हूँ । महाराज ने उत्तर दिया कि मैं पहाड़ पर विश्राम के लिए तो नहीं, प्रत्युत धार्मिक कार्य के लिए ही जा सकता हूँ । पादरी सम्भवतः मसूरी वा नैनीताल का रहनेवाला था ।

दूसरी व्याख्यानमाला—२३ जनवरी सन् १८८१ से स्वामीजी के व्याख्यानों का दूसरा प्रवाह चला और २६ जनवरी तक चलता रहा । इसमें उनके सात व्याख्यान हुए । इसके पश्चात् उनके प्रति रविवार को आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में व्याख्यान होते रहे । एक व्याख्यान २७ फ़रवरी को और एक ६ मार्च को हुआ था ।

होली के दिनों में होली के हुल्लड़ के कारण एक वा दो व्याख्यान मुंशी गिरधरलाल के गृह पर भी हुए थे ।

मुंशी इन्द्रमणि से बात-चीत—इन्हीं दिनों पाठकों के पूर्वपरिचित मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबादी आगरा आकर स्वामीजी से मिले और जीव के मुक्ति से वापस आने पर आपत्ति की । स्वामीजी ने उसके समाधान में कहा कि मुक्ति का नित्य होना असम्भव है और जीव का परमेश्वर में मिल जाना भी असम्भव है; जीव अल्पज्ञ है और परमेश्वर सर्वज्ञ । दोनों के गुण पृथक् हैं, अतः दोनों एक-दूसरे में मिलकर एक नहीं हो सकते ।

दो काल सन्ध्या—सेण्ट जॉन्स कॉलेज के पण्डित कालिदासजी और उनके मित्र पण्डित छेतूजी भी स्वामीजी से मिलने आया करते थे । ये महाराज के पूर्वपरिचित थे । जब स्वामीजी शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् आगरा में सेठ गुल्लामल के बाग़ में ठहरे थे तो ये उनसे मिलने जाया करते थे । एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि सन्ध्या तो तीन काल की है, आप दो काल की कैसे बताते हैं ? महाराज ने उत्तर दिया कि प्रथम तो किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में त्रिकाल सन्ध्या का विधान नहीं पाया जाता; दूसरे, सन्ध्या के अर्थों से भी सिद्ध होता है कि दो ही काल सन्ध्या करनी चाहिए । यदि मध्याह्न की सन्ध्या मानी जाए तो फिर अर्द्ध रात्रि की चौथी भी माननी चाहिए और फिर प्रहर-प्रहर, घड़ी-घड़ी की भी माननी उचित हैं; इस प्रकार तो कोई समय रहता ही नहीं, हर समय सन्ध्या ही करते रहना चाहिए । सन्ध्या दो ही समय की है और यही ऋषि-मुनियों का सिद्धान्त है ।

एक दिन पण्डित कालिदास ने स्वामीजी से वेदान्तविषय पर भी बात-चीत की थी । स्वामीजी ने उन्हें एक प्रति संस्कारविधि की उपहार में दी थी ।

राधास्वामी साधु—एक दिन राधा-स्वामी मत के कुछ अनपढ़ साधु (स्त्री और पुरुष) जो पंजाब के रहनेवाले थे स्वामीजी के पास आये और कहा कि गुरु की सहायता और उपदेश के बिना कोई मनुष्य संसार-सागर से पार नहीं हो सकता । स्वामीजी ने उत्तर दिया कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है, परन्तु जब तक शिष्य अपना आचरण ठीक न करे तब तक कुछ नहीं हो सकता । साधुओं ने प्रश्न किया कि ईश्वर के दर्शन किस प्रकार हो सकते हैं ? महाराज ने उत्तर दिया कि इस प्रकार नहीं हो सकते जिस प्रकार तुम लोग मूर्खता से करना चाहते हो । साधु फिर बोले कि ईश्वर तो भक्त के अधीन है । स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ईश्वर किसी के अधीन नहीं । उसकी भक्ति तो अवश्य करनी चाहिए, परन्तु पहले यह तो समझ लो कि भक्ति है क्या वस्तु ? जिस प्रकार से तुम लोग भक्ति करना चाहते हो, वह तो साम्प्रदायिक है, ऐसे-ऐसे तो बहुत-से सम्प्रदाय लोगों को बिगाड़नेवाले हुए हैं, इनसे इस लोक वा परलोक का कोई लाभ नहीं है । बिना पुरुषार्थ किये कोई वस्तु अपने-आप प्राप्त नहीं हो सकती । मूर्त्तिपूजा का उल्लेख करके साधुओं ने कहा हम और

§ श्री स्वामी शङ्कराचार्य ने भी वेदान्तभाष्य १।२।२६ में निरुक्त के प्रमाण से अग्निशब्द का अर्थ परमात्मा किया है—"अग्निशब्दोऽप्यग्रणीत्वादियोगाश्रयेण परमात्मा विषय एव भविष्यति"। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दूओं से अच्छे हैं। महाराज ने कहा कि नहीं, हिन्दू तो राम और कृष्ण को ही ईश्वर का अवतार मानते हैं, तुम तो गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हो।§ साधुओं ने कहा कि वेद के पढ़ने में बहुत समय नष्ट होता है, परन्तु उससे भक्ति की उपलब्धि नहीं होती। महाराज ने कहा कि जो कुछ भी पुरुषार्थ नहीं करते और भिक्षा माँगकर पेट पालना चाहता है, उसके लिए वेद का पढ़ना कठिन है, फिर उसे भक्ति प्राप्त ही कैसे हो सकती है ?

मकान से निकाल देने का जनरव—एक दिन स्वामीजी से किसी ने आकर कह दिया कि नगर में ऐसी चर्चा है कि यतः आप सब मतों का खण्डन करते हैं, अतः मैजिस्ट्रेट ज़िला ने आपको मुंशी गिरधरलाल के मकान से निकल जाने की आज्ञा दे दी है। स्वामीजी ने यह बात सुनकर मुंशी गिरधरलाल से कहा कि यदि आपको कुछ भय हो तो हम अन्यत्र रहने का प्रबन्ध कर लें। मुंशीजी ने कहा कि प्रथम तो मै किसी का नौकर नहीं, दूसरे आप कोई बात क़ानून वा सरकार के विरुद्ध नहीं कहते, अतः मुझे कोई भय नहीं है। यह जनरव सर्वथा निराधार था और ऐसा अनुमान है कि सेठ लोगों वा पादरियों ने फैलाया होगा, क्योंकि इसके थोड़े ही दिन पश्चात् सेठ लछमनदास मथुरावाले के गुमाश्ते नारायणदास ने आकर मुंशी गिरधरलाल से कहा कि आपने दयानन्द को अपने मकान पर ठहरा रक्खा है और ये हमारे मत की निन्दा करते हैं आप इन्हें अपने मकान से निकाल दीजिए। नारायणदास को इस बात के कहने का साहस इसलिए हुआ कि सेठ लछमनदास मुंशीजी के मुवक्किल थे। नारायणदास ने समझा था कि मुंशीजी इस भय से कि कहीं सेठजी रुष्ट होकर अपने मुकद्दमों में उन्हें अपना वकील करना छोड़ दें और उन्हें आर्थिक क्षति पहुँचे स्वामीजी को अपने मकान में न रहने देंगे, परन्तु नारायणदास की यह दुराशा पूरी न हुई। उन्होंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि यदि किसी भले मानस के यहाँ कोई निम्न कोटि का मनुष्य भी ठहरा हुआ हो तो वह उससे ऐसा अशिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता और स्वामीजी तो एक महात्मा हैं, मैं ऐसा नीच कर्म कभी नहीं कर सकता।

स्वामीजी मथुरा चलकर शास्त्रार्थ करें—नारायणदास ने इस घटना के पश्चात् मुंशी गिरधरलाल से यह भी कहा था कि स्वामीजी को मथुरा चलकर शास्त्रार्थ करना चाहिए। इसपर मुंशीजी ने उत्तर दे दिया था कि वहाँ मध्यस्थ कौन होगा और प्रबन्ध कौन करेगा ? अच्छा तो यह है कि जो कोई शास्त्रार्थ करना चाहे वह अपना वक्तव्य लिखकर स्वामीजी के पास भेज दे और स्वामीजी अपना लिखित उत्तर उसके पास भेज दें और इसी प्रकार लिखित उत्तर-प्रत्युत्तर होते रहें। अन्त में सब शास्त्रार्थ मुद्रित करा दिया जाए जिससे पण्डित लोग स्वयं निर्णय कर लें कि किसका कथन सत्य और किसका असत्य है।

कलकत्ता की सभा—इसके पश्चात् नारायणदास ने कलकत्ता जाकर एक सभा एकत्र की जिसमें बहुत-से पौराणिक पण्डित इकट्ठे हुए और उन्होंने एकतरफ़ा व्यवस्था दे दी कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं, वह वेदानुमोदित नहीं है। इस सभा का वृत्त निम्न प्रकार है—

कलकत्ता की सभा

मथुरा के सेठ नारायणदास ने विशेष उद्योग करके कलकत्ता के सेनेट हाल में २२-१-१८८१ को 'आर्य-सन्मार्ग-दर्शिनी' सभा के नाम से एक सभा बुलाई थी जिसमें भाटपाड़ा. नवद्वीप, काशी प्रभृति के पण्डितों को निमन्त्रित किया था। कहते हैं कि उसमें उन्होंने १०,००० रुपया व्यय किया था और समागत पण्डितों को विदायगी भी दी थी। सेठ लछमनदास इसपर उनसे कुछ अप्रसन्न भी हुए थे कि इतना रुपया व्यर्थ में

---

§ यह वास्तव में ठीक है, जो लोग गुरुडम के गर्त्त में पतित हो जाते हैं, उनकी विवेक-शक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है। राधास्वामी मत के अनुयायी एक एम० ए०, एल-एल० बी० उपाधिधारी को हमने अपने कानों से यह कहते सुना है कि हमारा गुरु हमारा परमेश्वर है (Our guru is our God.) —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यय किया। इससे दोनों के मनों में कुछ अन्तर पड़ गया था और नारायणदास ने रङ्गजी के मन्दिर से अपना सम्बन्ध त्याग दिया था।

इस सभा के बुलाने का कारण सम्भवतः यह था कि जब स्वामीजी आगरा में थे तो कुम्भकोणम् निवासी पण्डित रामसूबा शास्त्री उन्हीं दिनों वृन्दावन ठहरे हुए थे और स्वामीजी के विरुद्ध व्याख्यान दे रहे थे। नारायणदास ने आगरा जाकर स्वामीजी से कहा था कि वृन्दावन चलकर रामसूबा शास्त्री से शास्त्रार्थ कीजिए। स्वामीजी ने वृन्दावन जाकर शास्त्रार्थ करने में असम्मति प्रकट की। नारायणदास ने इसी बात से असन्तुष्ट होकर उक्त सभा द्वारा स्वामीजी के पक्ष को असिद्ध करना चाहा था।

पण्डित रामसूबा ने एक पुस्तक **"दयानन्दकण्टकोद्धारक"** नाम की स्वामीजी के विरुद्ध लिखी थी। उस समय वह पाण्डुलिपि के रूप में थी, मुद्रित नहीं हुई थी। उक्त सभा में वही पुस्तक सबको पढ़कर सुनाई गई थी और सब पण्डितों ने, जिनकी संख्या ३०० बताई जाती है, एक मुख होकर उसे स्वीकार किया था।

इस सभा का वृत्तान्त २७-१-१८८१ के 'इंडियन मिरर' कलकत्ता में प्रकाशित हुआ था।

इस सभा के नेता पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न थे, जो कलकत्ता संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल और बङ्गाल के प्रमुख पण्डितों में थे। सभा में जिन प्रश्नों का उत्तर माँगा गया था और उनके जो उत्तर दिये गये थे वह निम्न प्रकार थे—

प्रश्न १—ब्राह्मणभाग और संहिताभाग एक-जैसे प्रामाणिक हैं वा नहीं ?

उत्तर—एक-जैसे प्रामाणिक हैं।

प्रश्न २—विष्णु, शिव, दुर्गा आदि की मूर्त्ति की पूजा, श्राद्ध, तीर्थयात्रा और जात-कर्म आदि संस्कार शास्त्रोक्त हैं वा नहीं ?

उत्तर—हैं।

प्रश्न ३—**'अग्निमीळे पुरोहितम्'** आदि वेद-मन्त्रों में 'अग्नि' शब्द ईश्वर के लिए है अथवा आग के लिए ?

उत्तर—आग के लिए

प्रश्न ४—यज्ञ जल-वायु की शुद्धि के लिए किये जाते हैं अथवा स्वर्ग-प्राप्ति के लिए।

उत्तर—स्वर्ग-प्राप्ति के लिए।

आर्यसमाज की ओर से इन सब प्रश्नों का उत्तर युक्ति और प्रमाण द्वारा दिया गया था जो पण्डित लेखरामकृत जीवन-चरित्र में सविस्तर छपा है।

गोकरुणानिधि की रचना—स्वामीजी ने आगरा में 'गोकरुणानिधि' नामक एक पुस्तक रची थी। वह छपकर आगरा में ही स्वामीजी के पास आ गई थी, रामरतन नामक एक पुजारी ने उद्योग करके उसकी ६७ रुपये की प्रतियाँ बेची थीं।

एक बार स्वामीजी से प्रार्थना की गई कि एक व्याख्यान स्त्रियों में देने की कृपा कीजिए। पहले तो उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, परन्तु पीछे कुछ सोचकर उन्होंने कहा कि हम स्त्रियों में व्याख्यान देना पसन्द नहीं करते। उनके पति आदि हमारा व्याख्यान सुन जाएँ और उन्हें जाकर बतला देवें।

मन्दिर के ट्रस्टी क्यों नहीं बन जाते—एक मन्दिर के स्वामी ने मुंशी गिरधरलाल को उसकी सम्पत्ति का जो उसने मन्दिर को पुण्य करके दी थी, ट्रस्टी बनाना चाहा, परन्तु उन्होंने अस्वीकार किया। जब स्वामीजी से इसका ज़िक्र हुआ तो उन्होंने मुंशीजी से कहा कि आपने बुरा किया, यदि आप ट्रस्टी बन जाते तो उस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पत्ति से बहुत कुछ धर्मकार्य हो सकता था। मन्दिराध्यक्ष ने मुंशीजी की अस्वीकृति होते हुए भी उन्हें ट्रस्टी बना ही दिया।

भविष्यवाणी पूरी हुई—जब पण्डित लेखरामजी स्वामीजी की जीवनी सम्बन्धी घटनाओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते हुए मुंशी गिरधरलाल के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा था कि स्वामीजी का यह कथन सत्य ही सिद्ध हुआ, क्योंकि ट्रस्टियों ने मन्दिर की सम्पत्ति की आय से एक स्कूल स्थापित कर दिया, यदि वे ट्रस्टी न होते तो सब आय पण्डे-पुजारियों के ही उदर में जाती।

गो-रक्षिणी-सभा—एक दिन महाराज का व्याख्यान मुंशी गिरधरलाल के गृह पर गोरक्षा पर हुआ था। व्याख्यान के अन्त में गो-कृष्णादि-रक्षिणी सभा भी स्थापित हुई थी, जिसके मन्त्री मुंशी गिरधरलाल वकील निर्वाचित हुए थे। उसी समय ११०० रु० उक्त सभा के लिए चन्दा एकत्र हो गया था। चन्दा देनेवालों में कई मुसलमान भी थे। इस व्याख्यान में महाराज ने गो-वध की हानियाँ दर्शाई थीं। स्वामीजी के मुख से गो-वध शब्द सुनकर एक ब्राह्मण बहुत बिगड़ा और कुवचन कहने लगा। जब उससे पूछा गया कि इतना क्यों बिगड़ते हो तो उसने कहा कि आपने गो-वध शब्द क्यों बोला, महाराज ने कहा ताकि लोग गोहत्या की हानियाँ जानकर गो-रक्षा करने लेगें और गोहत्या छोड़ दें। वह फिर भी बकता ही रहा और सभा से चला गया।

दयानन्द शास्त्रार्थ में हार गया—एक दिन महाराज तकिये के सहारे बैठे हुए दर्शकों से सम्भाषण कर रहे थे कि इतने में अछनेरा निवासी पण्डित रघुनाथ आये और स्वामीजी से अड़कर बैठ गये। महाराज के दोनों ओर सामने दर्शक बैठे हुए थे। लोगों को पण्डित रघुनाथ का यह अशिष्ट व्यवहार बुरा लगा और उन्होंने उसका प्रतिवाद किया तो श्रीमान् महोदय ने अपने मुखारविन्द से यों पुष्पवृष्टि की कि क्या हम स्वामीजी की अपेक्षा कम विद्वान् हैं ? लोगों ने इनके इस प्रकार के वचन सुनकर समझ लिया कि ये उन्मत्तप्राय और उद्धत व्यक्ति हैं, उनके मुँह न लगना चाहिए, अतः वे चुप हो रहे। थोड़ी देर के पश्चात् पण्डितजी ने श्री महाराज से कहा कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करने आया हूँ।

अपनी स्त्री से कह दो दयानन्द हार गया—महाराज विनोदप्रिय तो थे ही, उन्होंने हँसते-हँसते उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ करके क्या कीजिएगा, अपनी स्त्री से जाकर कह दीजिए कि मैं दयानन्द को परास्त करके आया हूँ। इतनी बात सुनकर रघुनाथप्रसाद वहाँ से उठकर चले गये और एक वैश्य से उनकी घोड़ा-गाड़ी माँगी और गले में फूलों की माला डाली और गाड़ी पर सवार होकर नगरभर के बाज़ारों में कहते फिरे कि मैं दयानन्द को परास्त करके आया हूँ।

तुम नास्तिक से बातचीत कर रहे हो—एक दिन चन्द्रग्रहण पड़ रहा था, स्वामीजी चन्द्र-ग्रहण क्या है और कैसे पड़ता है, इस विषय पर पीपल मण्डी में व्याख्यान दे रहे थे कि यही पण्डित रघुनाथजी व्याख्यान में पधारे और गुल मचाकर श्रोताओं से कहने लगे कि देखो ग्रहण पड़ रहा है और तुम लोग इस नास्तिक की बातें सुन रहे हो, यह महापाप है, परन्तु श्रोताओं ने कुछ परवाह न की और दत्तचित्त होकर व्याख्यान सुनते रहे। थोड़ी देर बक-झककर पण्डित रघुनाथप्रसाद महोदय अपना-सा मुँह लेकर चले गये।

चतुर्भुज पौराणिकराज—स्वामीजी आगरा में ही थे कि काशी-निवासी पण्डित चतुर्भुज, जो अपने को पण्डितराज पौराणिक लिखा करते थे, आगरा आये। इन्होंने स्वामीजी के विरुद्ध बोलना एक प्रकार से अपना व्यवसाय बना रक्खा था। आर्यसमाज और दयानन्द को गाली देने से मूर्ख-मण्डली बहुत प्रसन्न होती थी और पण्डितजी की खूब भेंट-पूजा करती थी।

पण्डित चतुर्भुज ने पहला व्याख्यान ३० दिसम्बर सन् १८८० को बेलनगञ्ज में और दूसरा १ जनवरी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन् १८८१ को विक्टोरिया स्कूल में दिया, उनका अन्तिम व्याख्यान १५ जनवरी को हुआ। व्याख्यान की शैली वही हाथ नचा-नचाकर कथा बाँचने की थी। व्याख्यान क्या होते थे दुर्गन्ध की नाली होते थे, जिसमें स्वामीजी और आर्यसमाजियों के प्रति गालियों और अश्लील वाक्यों का प्रवाह बहता था, जिससे सज्जन तो नाक पर रूमाल रखने पर विवश होते थे और दुर्जन मोरी के कीड़ों के समान प्रसन्न होते थे। पण्डितजी व्याख्यान के आरम्भ में ही उच्च स्वर से कह दिया करते थे कि यदि कोई आर्यसमाज का सभासद् उपस्थित हो तो वह चला जाए, क्योंकि न हम उसे अपना व्याख्यान सुनाना चाहते हैं और न अपनी सूरत उसे दिखानी और न उसकी सूरत देखना चाहते हैं। इसमें भी एक रहस्य था, क्योंकि यदि कोई आर्यसमाजी वहाँ हुआ तो वह पण्डितजी की अण्ड-बण्ड बातों पर टोके बिना न रहेगा और उनका अभिप्राय, जो अज्ञ लोगों को झूठी-सच्ची बातें बनाकर अपने जाल में फँसाने का था, सिद्ध न हो सकेगा, अतः वह कब चाह सकते थे कि कोई आर्यसमाजी उनके व्याख्यान में उपस्थित रहे। उनके व्याख्यानों का सारांश यही होता था कि दयानन्द ने अवतारों, देवताओं और पुराणों की निन्दा और मूर्त्तिपूजा का खण्डन करके ब्राह्मणों को बहुत हानि पहुँचाई है, जो इस प्रकार पुराणादि की निन्दा करता है वह साधु नहीं हो सकता और जो बस्ती में ठहरता है वह संन्यासी नहीं हो सकता, गोकुलिये गोसाइयों को सम्बोधित करके वे कहते थे कि यदि तुम लोग अपने को दयानन्द के आक्रमणों से बचाने का कुछ उपाय न करोगे तो तुम्हारी जीविका ही जाती रहेगी, अतः आप लोगों को दयानन्द पर न्यायालय में अभियोग चलाना चाहिए और अन्त में पण्डितजी के व्याख्यानों की तान इसपर टूटती थी कि हम सनातनधर्म की रक्षा के निमित्त घर छोड़कर आये हैं और इतना व्यय और कष्ट सहन कर रहे हैं, अतः आप लोगों को हमारी धन से सहायता करनी चाहिए।

चतुर्भुज की दो लीलाएँ—आगरा में पण्डितजी ने दो लीलाएँ रचीं। पहली तो यह कि एक कायस्थ था जिसने स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर अपनी कण्ठी तोड़ डाली थी। उसे कोई पट्टन दे-दिलाकर इस बात पर उद्यत किया कि वह यह घोषणा कर दे कि मैं दयानन्द की बातों में आकर धर्म से पतित हो गया था, अब मैंने पण्डितराज के उपदेश से प्रायश्चित्त कर लिया है। एक दिन उस कायस्थ को बाजे-गाजे के साथ नगर में घुमवाया और उससे घोषणा कराई कि मैंने प्रायश्चित्त कर लिया है। दूसरी लीला यह थी कि एक ब्राह्मण था जो एक आर्यसमाजी के यहाँ बच्चों को देवनागरी पढ़ाने पर ६, ७ रुपये पर नौकर था। उससे एक विज्ञापन दिलवाया कि मैं आर्यसमाज आगरा का पण्डित हूँ और आर्यसमाज आगरा के अमुक-अमुक सभासदों को पढ़ाता हूँ। अब तक मैं आर्यसमाज और दयानन्द के उपदेशों को बहुत अच्छा समझता था, परन्तु अब मुझे पण्डितराजजी के सदुपदेशों से ज्ञात हुआ है कि मैं धोखे में था और अधर्म करता था, अब मैं आर्यसमाज से अलग होता हूँ और आर्यसमाजियों से प्रार्थना करता हूँ कि वे होश में आएँ और आर्यसमाज के जाल से अपने को बचाएँ, इत्यादि।

बहुत-से लोग इस ब्राह्मण को जानते थे, क्योंकि वह जीविकार्थ बाज़ारों में फटे हालों फिरा करता था। वह न आर्यसमाज का सभासद् था और न उपदेशक। उपदेशक बनने की तो उसमें योग्यता ही न थी। लोगों पर पण्डितराज की इस लीला का उलटा ही प्रभाव पड़ा और अनेक लोग उनकी चाल को जानकर उनसे ग्लानि करने लगे। वह ब्राह्मण भी अपनी करतूत पर बहुत लज्जित हुआ और अन्त में आगरा छोड़कर चला गया।

पण्डित युगलकिशोर आगरे के एक सुबोध पण्डित थे। वे स्वामीजी के व्याख्यानों से इतने आकृष्ट हुए थे कि उनके पास बहुधा आया करते थे और सत्सङ्ग में उपस्थित रहते थे। एक दिन वह भी पण्डितराज का व्याख्यान सुनने चले गये। जिस समय वे व्याख्यान-स्थल पर पहुँचे पण्डितराज ने गृह्यसूत्र का यह वाक्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि **'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्'** (ब्राह्मण के बालक का आठ वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार करो) पढ़ा, परन्तु इसके आगे का वाक्य **'अथ सर्वेषां गायत्री'** उन्होंने न पढ़ा। इसपर पण्डित युगलकिशोर ने आक्षेप किया तो एक ब्राह्मण ने पण्डितराज से कहा कि महाराज यह बेलनगञ्ज में सबको गायत्री मन्त्र देते हैं। पण्डित युगलकिशोर ने कहा कि हम शास्त्रानुकूल देते हैं, यदि शास्त्र-विरुद्ध देते हों तो बतलाओ। इसपर कई लोग उनसे कहने लगे कि तुम चतुर्भुजजी से बोलते हो। उन्होंने कहा तुम्हें चतुर्भुज दिखाई देते होंगे, हमें तो द्विभुज दीखते हैं और दो भुजाओं में से अब तो एक ही भुजा दीख रही है जिसे वे उछाल रहे हैं। इसपर पण्डितराज बोले कि मैं दयानन्दी से बात नहीं करता। पण्डित युगलकिशोर ने कहा कि मैं दयानन्दी नहीं, सत्यावलम्बी हूँ। पण्डितराज बोले यदि शास्त्रार्थ करना हो तो घर पर आओ। पण्डित युगलकिशोर एक मित्र को साथ लेकर उनके घर पर पहुँचे तो पण्डितराज ने उन्हें और उनके मित्र को आध-आध सेर पेड़े और एक-एक रुपया देकर कहा कि कृपा करके आप अपने घर जाएँ, मेरा माथा धमकता है। इस प्रकार पण्डितराज ने शास्त्रार्थ से जान बचाई।

जनसंख्या सम्बन्धी आदेश—महाराज को आर्यों की उन्नति और हित का सर्वदा ध्यान रहता था। स्वामीजी यह चाहते थे कि लोग अपने को हिन्दू न कहकर आर्य और वैदिक धर्मी कहें, क्योंकि उनकी दृष्टि में हिन्दू नाम विदेशियों का दिया हुआ और कलंकसूचक था। फ़ारसी में हिन्दू शब्द के अर्थ चोर, डाकू, काला आदि हैं, अतः जब सन् १८८१ की जनसंख्या होने का उपक्रम हुआ तो उन्होंने ३१ दिसम्बर सन् १८८० को मास्टर दयाराम वर्मा, मन्त्री आर्यसमाज मुल्तान को नीचे लिखा पत्र भेजा था—

"मास्टर दयारामजी ! आनन्दित रहो,

विदित हो कि आपका पत्र आया, हाल मालूम हुआ, आपने जो नक़्शा मर्दुमशुमारी का लिखा सो उसकी खानापूरी इस प्रकार करो—

मज़हब—फ़िरके-मज़हबी	वैदिक
असल क़ौम	आर्य
जात या फ़िरका	ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य
गोत्र या शाख	जो अपना गोत्र हो

और जिसको अपना गोत्र याद न हो वह अपना गोत्र काश्यप या पाराशर लिखा दे और यह सब समाजों को तथा पञ्जाबभर में इसी प्रकार से लिख भेजें और यहाँ सब प्रकार से आनन्द में हैं"।§

स्वामीजी व्याख्यान तख्त पर बैठकर दिया करते थे। व्याख्यान समाप्ति पर तख्त से उतरकर नीचे बैठ जाते थे कि यदि किसी अन्य व्यक्ति को कुछ कहना हो तो वह तख्त पर बैठकर कह सके।

दिनचर्या—स्वामीजी प्रातःकाल ३, ४ बजे के बीच में नगर से बाहर घूमने चले जाते थे और प्रातःकृत्य से निवृत्त होकर जब वापस आते थे तो दुग्ध-पान करके वेद-भाष्य लिखाने बैठ जाते थे। फिर ११, १२ के बीच भोजन करते थे और तत्पश्चात् सायङ्काल तक दर्शकों से बात-चीत करते रहते थे।

मुंशी बख्तावरसिंह की वैदिक-यन्त्रालय के हिसाब में गड़बड़—मुंशी बख्तावरसिंह वैदिक-यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता थे। उन्होंने यन्त्रालय के हिसाब में बहुत गड़बड़ की थी। उन्हें वैदिक-यन्त्रालय से सन् १८८० में अलग कर दिया था, यन्त्रालय के हिसाब के काग़ज़ देखने से स्वामीजी को इसका पता लगा तो उन्होंने लाला कालीचरण रईस फ़र्रुखाबाद को १० जनवरी सन् १८८१ के पत्र में आगरा से लिखा कि "हमने अब

---

§ यह पत्र "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" ग्रन्थ में पृष्ठ २३४ पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहाँ सब असल काग़ज़ और रजिस्टर बख्तावरसिंह के दस्तखती काशी से मँगाकर देखे, उनमें बहुत कुछ फ़र्क है, यही भली प्रकार से साबित होता है, इसलिए आपको लिखते हैं कि यहाँ आकर आप भी देखें और बख्तावरसिंह के पास भेज दो कि इस चिट्ठी के देखते ही आगरा में स्वामीजी के पास आकर हिसाब समझा दो और हम भी वहीं होंगे ।§

स्वामीजी न्यायालय में जाना न चाहते थे—स्वामीजी की हार्दिक इच्छा थी कि मामला आपस में निपट जाएं, इसलिए उन्होंने २२ फरवरी सन् १८८१ के पत्र में सेठ निर्भयराम रईस फ़र्रुखाबाद को लिखा कि "प्रथम तो पञ्चायत में निमट जावे तो बहुत ही अच्छा है, दूसरे नहीं तो उसपर हिसाब-फ़हमी की नालिश और जो तब भी न माने तो फ़ौजदारी वा दीवानी में दावा किया जावे और जो तुम इसका कुछ प्रबन्ध न करोगे तो ऐसी लूट-मार से हमारे पास के पुस्तकादि भी कोई लूट लेगा फिर तो हम अपने समीप कुछ न रख सकेंगे और वेद-भाष्य आदि सब काम छोड़ देंगे केवल एक लङ्गोटी लगा आनन्द में विचरेंगे" ।‡

मैं चुप नहीं रह सकता—२५ फ़रवरी सन् १८८१ को मुंशी बख्तावरसिंह स्वामीजी के पास आगरा गये । स्वामीजी ने उनसे कहा कि मेरा निजी सम्बन्ध होता तो मैं चुप हो जाता, परन्तु यह दूसरों की परोपकारार्थ दी हुई सम्पत्ति का मामला है, मैं चुप नहीं रह सकता । मुंशीजी आपस में निबटारा करने का वचन देकर शाहजहाँपुर लौट गये ।

पञ्चायत में टालमटोल और फिरजाना—शाहजहाँपुर जाकर वे पञ्चायत में इकरारनामा लिखने से टालमटोल करते रहे । अन्त में बहुत कहने-सुनने से वह मामला पञ्चायत के सुपुर्द करने पर राज़ी हुए, परन्तु पञ्चायत में इक़रारनामा लिखकर उससे भी फिरगया ।

दावा दायर किया गया, परन्तु ख़ारिज हो गया—तब सब-जज शाहजहाँपुर की अदालत में दावा दायर किया गया कि मुंशी बख्तावरसिंह को हुक्म दिया जाए कि वह पञ्चों से फ़ैसला करावें । मुंशी बख्तावरसिंह ने जवाबदेही की । ६ फ़रवरी सन् १८८१ को सब-जज ने स्वामीजी का दावा खारिज कर दिया । उसके पश्चात् हाईकोर्ट में निगरानी दायर करने की सम्मति हुई, परन्तु किन्हीं कारणों से निगरानी दायर नहीं की गई और न नम्बरी नालिश ही दायर की गई और इस प्रकार मुंशी बख्तावरसिंह वैदिक-यन्त्रालय का बहुत-सा रुपया हज़्म करके बैठ गये ।

स्वामीजी न्यायालय क्यों गये ?—समय की विचित्र गति है कि स्वामीजी न्यायालय में जाने के अत्यन्त विरुद्ध थे, परन्तु अनन्योपाय होकर उन्हें अदालत में जाना ही पड़ा । इसका एकमात्र कारण यह था कि वे यन्त्रालय के धन को अपना नहीं, बल्कि जनता का समझते थे और उन्हें यह सह्य न हुआ कि कोई जनता का रुपया इस प्रकार खाकर बैठ जाए ।

स्वामीजी की द्रुतगति—स्वामीजी बहुत जल्दी चलते थे । वे जब प्रथम बार आगरा में आकर सेठ गुल्लामल के बाग़ में ठहरे थे तो एक से अधिक बार आगरा से मथुरा १८ कोस तीन घण्टे में पहुँच गये थे ।

बङ्गाली नास्तिक—एक दिन एक बङ्गाली, जो नास्तिक था, बड़े गर्व के साथ महाराज से ईश्वरवाद पर प्रश्नोत्तर करने आया । उसे अपनी तर्कना-शक्ति पर बड़ा घमण्ड था, वह उन्हें अकाट्य समझता था । लोग भी उसे बड़ा तार्किक मानते थे । जब वह महाराज से वाग्युद्ध में प्रवृत्त हुआ तो लोगों ने मन में कहा कि स्वामीजी के लिए उसे परास्त करना टेढ़ी खीर है, परन्तु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब तर्काभिमानी

§ इसका मूल पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में पृष्ठ २६८ पर छपा है ।

‡ यह पूरा पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' में पृष्ठ २८३-२८४ पर छपा है । —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बङ्गाली दो-चार उत्तरों के पश्चात् ही सब सिट्टी-पट्टी भूल गये, मुख में झाग आ गये और मुँह से शब्दों का निकलना कठिन हो गया।

मैं शास्त्रार्थ नहीं करूँगा—पण्डित कालिदास को पण्डितों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिए बहुतेरा उकसाया, परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मुझमें स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि मैं भी दण्डी विरजानन्द से कुछ दिन पढ़ा हूँ। उन्हीं दिनों दयानन्द भी दण्डीजी से पढ़ा करते थे। वह कभी-कभी ऐसे तर्क उपस्थित करते थे कि दण्डीजी भी तत्क्षण उनका उत्तर न दे सकते थे और कह दिया करते थे कि उनका उत्तर कल देंगे। ऐसे तार्किक के साथ मैं शास्त्रार्थ कैसे कर सकता हूँ?

स्वामीजी १० मार्च सन् १८८१ को आगरा से भरतपुर जाने के लिए रेल पर सवार हो गये। विदा के समय आर्यसमाज आगरा ने उनकी सेवा में अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया जो उन्होंने हर्षपूर्वक ग्रहण किया।

(१० मार्च—२० मार्च) भरतपुर (फा० शु० १०—चैत्र कृ० ५)

आगरा से प्रस्थान करके महाराज फाल्गुन शुक्ला १० संवत् १९३७ अर्थात् १० मार्च सन् १८८१ को भरतपुर पधारे और रेलवे स्टेशन के समीप एक रईस के बाग़ में ठहरे। यहाँ कोई व्याख्यान नहीं हुआ।§ जो लोग महाराज के दर्शनों को आते रहे उन्हें सदुपदेश करते रहे। भरतपुर में महाराज १० दिन टिके रहे। चैत्र कृष्णा ५ संवत् १९३७ अर्थात् २० मार्च १८८१ को जयपुर चले गये।

(२० मार्च—४ मई) जयपुर (चैत्र कृ० ५ सं० ३७—वै० शु० ६ सं० ३८)

चैत्र कृष्णा ५ संवत् १९३७ अर्थात् २० मार्च सन् १८८१ को महाराज ने भरतपुर से जयपुर आकर गङ्गापोल के बाहर मदनपुरे में अचरौल के ठाकुर के उद्यान में डेरा किया।

केवल एक व्याख्यान—इस बार महाराज का केवल एक ही व्याख्यान अचरौल के ठाकुर की हवेली में हुआ। उसके अन्त में ठाकुर रघुनाथसिंह ने अद्वैतविषय पर एक प्रश्न किया जिसके उत्तर में महाराज ने दो घड़ी रात गये तक नवीनवेदान्त की विशद समालोचना करके प्रश्नकर्त्ता की सन्तुष्टि की। जिज्ञासु जन डेरे पर आते और अपनी जिज्ञासाओं का पूर्ण उत्तर पाकर लाभ उठाते रहे।

आर्यसमाज का अंकुर—इसी समय जयपुर में आर्यसमाज का बीज आरोपित हुआ। अंकुरित होने पर उसका नामकरण 'वैदिक धर्म-सभा' किया गया जो पीछे आकर आर्यसमाज नाम से विभूषित किया गया।

(५ मई—२३ जून) अजमेर (वै० शु० ७—आषाढ़ १२)

आगमन की सूचना, २६ व्याख्यान—अजमेर में महाराज के आगमन से पहले ही १३ फ़रवरी सन् १८८१ को आर्यसमाज स्थापित हो गया था। ५ मई सन् १८८१ को महाराज जयपुर से अजमेर पधारे। उन्हें सेठ फ़तहमल के उद्यान-गृह में ठहराया गया। महाराज के आगमन से आर्यों के हृदय-कमल विकसित हो गये। वैसे तो उनके आते ही नगर में उनके आने की धूम मच गई थी, परन्तु लोगों ने यह उचित समझा कि महाराज के व्याख्यान-स्थल और समय की सूचना विज्ञापन द्वारा नगर-वासियों को दी जाए, अतः ७ मई को ही विज्ञापन वितरित कर दिया कि महाराज के व्याख्यान ८ मई से सन्ध्या के ७ बजे से ९ बजे तक सेठ गजमल की हवेली में हुआ करेंगे। यह ज्ञात होते ही सैकड़ों मनुष्य बड़े चाव से जैसे प्यासा कुएँ की ओर दौड़ता है, व्याख्यान सुनने जाने लगे। महाराज के व्याख्यान इतने सरस होते थे कि श्रोता उनमें तन्मय

---

§ 'दयानन्द-प्रकाश' में लिखा है कि भरतपुर में स्वामीजी के दस व्याख्यान हुए। यह घटना के विरुद्ध है। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो जाते थे। उन्हें समय की गति का भी ज्ञान नहीं रहता था। ६ बजते ही महाराज व्याख्यान समाप्त कर देते थे, परन्तु लोगों की यही इच्छा बनी रहती थी कि व्याख्यान अभी कुछ देर और होता तो अच्छा था। उक्त स्थान पर ३० मई तक महाराज के २२ व्याख्यान हुए और चार रविवारों को चार व्याख्यान आर्यसमाज में हुए (अर्थात् अजमेर में कुल २६ व्याख्यान हुए)।

पण्डित लेखराम का आगमन—वैदिक धर्म पर बलिदान होनेवाले, अनेक ग्रन्थों के रचयिता और महाराज के जीवन-चरित के आदि लेखक पण्डित लेखराम आर्यमुसाफिर उन दिनों पेशावर में थे। उन्हें महाराज के दर्शनों की बड़ी लालसा थी जो अब तक पूरी न हो सकी थी। दूरस्थ पेशावर से वे ११ मई को केवल महाराज के दर्शनों के लिए चले और पाँच दिन के पश्चात् १६ मई को रात्रि में अजमेर पहुँचे। रात तो उन्होंने ज्यों-त्यों करके सराय में काटी। प्रातः होते ही वे महाराज की सेवा में पहुँचे और उनके मुखचन्द्र के दर्शन से अपने चक्षु-चकोरों को तृप्त किया।

शंका समाधान—जयपुर में एक बङ्गाली ने उसने प्रश्न किया था कि जब आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है तो दो व्यापक इकट्ठे कैसे रह सकते हैं ? इसका पण्डितजी से उत्तर न बन आया था, अतः महाराज के सम्मुख पहला प्रश्न उन्होंने यही रक्खा। महाराज ने अनायास ही सूक्ष्म और स्थूल वस्तुओं के उदाहरण देकर समझा दिया कि जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो सकती है। परमेश्वर आकाश से सूक्ष्म है, अतः उसमें व्यापक है। फिर महाराज ने उनसे कहा कि जो शङ्काएँ तुम्हारे मन में हों उन्हें निवृत्त कर लो। पण्डितजी ने बहुत सोचकर दस प्रश्न किये। जीवन-चरित लिखते समय और तो उन्हें भूल गये थे, निम्नलिखित प्रश्नोत्तर स्मरण रह गये थे।

पण्डित—जीव ब्रह्म के पृथक्त्व में वेद का कोई प्रमाण दीजिए।

स्वामीजी—यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय-का-अध्याय पृथक्त्व का प्रतिपादक है।

पण्डित—अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं।

स्वामीजी—अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

पण्डित—विद्युत् क्या पदार्थ है और कैसे उत्पन्न होती है ?

स्वामीजी—विद्युत् हर जगह है और रगड़ से प्रकट होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से प्रकट होती है। फिर महाराज ने पण्डितजी को आदेश किया कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना।

अपना कोई चिह्न दीजिए—२४ मई को पण्डितजी ने वापस जाने का विचार किया। वे महाराज की सेवा में गये और प्रार्थना की कि मुझे अपना कोई चिह्न प्रदान करने की कृपा कीजिए तो महाराज ने अष्टाध्यायी की एक प्रति प्रदान की और वह महाराज के चरणस्पर्श करके पेशावर के लिए प्रस्थित हुए।

हिन्दू युवक ईसाई न हुआ—एक हिन्दू नवयुवक ईसाई मत की ओर झुका हुआ था, परन्तु उसके सौभाग्य से महाराज अजमेर पहुँच गये। उसे भी धर्म की जिज्ञासा थी। जो-जो सन्देह हिन्दूधर्म के विषय में ईसाइयों ने उसके मन में उत्पन्न कर दिये थे उनकी निवृत्ति के लिए वह महाराज के पास आने लगा। कई दिन के निरन्तर शङ्का-समाधान के पश्चात् उसकी शान्ति हो गई और वह वैदिक धर्म का अनुयायी बन गया।

चतुर्भुज पौराणिकराज—अजमेर का तो कोई व्यक्ति किसी मत वा सम्प्रदाय का, धर्मचर्चा करने के लिए महाराज के सम्मुखीन हुआ नहीं, हाँ पण्डित चतुर्भुज पौराणिक ने, जिनसे पाठक आगरे में परिचय प्राप्त कर चुके हैं, किसी सेठ के गुमाश्ते को काशी से लिखा कि मुझे अजमेर बुलाओ, मैं स्वामीजी से शास्त्रार्थ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करके उन्हें परास्त करूँगा। पण्डित भागमल जज महाराज के बड़े भक्त थे, वही उनके व्याख्यानों में प्रबन्ध स्थिर रखते थे और आदि से अन्त तक व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे, अतः पौराणिक पण्डित चतुर्भुज का पत्र लेकर पण्डित भागमल के पास गये और उनके पास जाकर साभिमान कहा कि हम स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को पण्डित चतुर्भुज को बुलाते हैं आप स्वामीजी को सूचित कर दीजिए। पण्डित भागमल ने वह पत्र मन्त्री आर्यसमाज को दे दिया कि इसे महाराज को दिखा दीजिए। महाराज ने उसे देखकर कहा कि मैं तो सत्याऽसत्य का निर्णय करने को फिरता ही हूँ। पण्डित चतुर्भुज यदि यहाँ आवे तो उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ, परन्तु शास्त्रार्थ प्रबन्ध और नियमों के साथ होना चाहिए। इसपर पण्डित भागमल ने पौराणिक पण्डितों को बुलाकर कह दिया कि तुम पण्डित चतुर्भुज को अवश्य बुला लो, परन्तु शास्त्रार्थ के नियम निम्नलिखित रहेंगे—

१. सभा का स्थान मेरी सम्मति के अनुसार होगा।

२. इस सभा में मैं प्रधान की रीति से सम्पूर्ण अधिकार रक्खूँगा, जिससे दोनों पक्षवालों के न्याय-अन्याय पर ध्यान रहे।

३. शास्त्रार्थ लेख-बद्ध होगा।

४. शास्त्रीजी को प्रश्नोत्तर स्वामीजी के सम्मुख बैठकर करने होंगे।

५. यदि कोई पुरुष मूर्खता वा किसी प्रकार से असभ्य भाषण करेगा तो वह तुरन्त सभा से निकाल दिया जाएगा।

नियम सुनकर सब गर्व जाता रहा—जब पण्डित भागमल ने ये नियम पौराणिक पण्डित को सुनाये तो उनका सारा अभिमान उड़ गया और वे बिना कोई शब्द कहे वापस चले गये। वास्तव में उनका अभिप्राय तो यह था कि सभा में धींगा-धाँगी करके और हल्ला-गुल्ला मचाकर प्रसिद्ध कर देंगे कि स्वामीजी हार गये, परन्तु जब उन्होंने देखा कि शास्त्रार्थ का सब प्रबन्ध जज साहब के हाथ में रहेगा तो उनके असत्प्रयोजन के फलीभूत होने की कोई आशा न रही और उन्हें चुप होकर ही बैठना पड़ा।

स्वामीजी की मितव्ययता—महाराज मितव्ययता की ओर भी बहुत ध्यान रखते थे। अजमेर में मच्छर बहुत थे। उनके कष्ट से बचने के लिए एक दर्जी से महाराज ने मच्छरदानी सिलवाई थी। जब दर्ज़ी उसे सीकर लाया तो महाराज ने उसकी सिलाई पूछी। दर्ज़ी ने छह आना माँगे। महाराज ने कहा यह नहीं हो सकता कि तुम्हारी मज़दूरी तो हो छह आना रोज़ और हमारे पण्डितों की हो आठ आना रोज़। तुम्हारी मज़दूरी अधिक-से-अधिक दो या तीन आना हो सकती है, परन्तु दर्ज़ी तीन आना लेने पर और स्वामीजी छह आना देने पर राज़ी न हुए। अन्त में दर्ज़ी की मज़दूरी के निर्णय करने का भार पण्डित भागमल जज पर रक्खा गया, परन्तु यह ज्ञात न हो सका कि जज ने क्या निर्णय किया।

पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता निरुत्तर—एक दिन पश्चिमी विज्ञान के एक पण्डित ने योग की सिद्धियों की सत्यता में शङ्का की। महाराज ने पहले तो युक्ति-प्रमाण द्वारा उनकी सत्यता निरूपित की और अन्त में यह कहा कि क्या आप समझते हैं कि हम इतना बड़ा कार्य योगसिद्धि के बिना ही कर रहे हैं। इसपर वह शान्त हो गया।

सिर कटाने के लिए गर्दन झुका दी—एक बार महाराज ने मौलवी इमदादहुसैन से कहा था कि एक दिन मैं शौच करने बैठा हुआ था कि एक मनुष्य नङ्गी तलवार लिये मेरे पीछे आ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूँ तब मेरा सिर काट डालना। इसपर वह राज़ी हो गया। जब मैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवृत्त हो चुका तब मैंने अपनी गर्दन उसके आगे झुका दी। इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे ही मुझे छोड़कर चला गया।

मसूदा के रईस ठाकुर बहादुरसिंह महाराज के अनन्य भक्त थे। उन्होंने जब सुना कि महाराज अजमेर में विराजमान हैं तो उनके दर्शनों की अभिलाषा उनके हृदय में जाग्रत् हो गई और उन्होंने अपने एक कर्मचारी को निमन्त्रण-पत्र देकर महाराज की सेवा में भेजा। महाराज ने अपने भक्त के अनुरोध की रक्षा की और अजमेर के कार्य से निवृत्त होने के पश्चात् मसूदा आने का वचन दिया।

(२३ जून—१८ अगस्त) **मसूदा** (आषाढ़ कृ० १२—भाद्र कृ० ६)

आषाढ़ कृष्णा १२ संवत् १९३८ को महाराज ने अजमेर से प्रयाण किया। नसीराबाद तक रेल में गये। वहाँ से ठाकुर साहब के रथ पर सवार होकर रात्रि के ६ बजे मसूदा जा पहुँचे। रावसाहब ने उनके निवास के लिए रामबाग़ की बारहदरी को पहले से ही सुसज्जित कर रक्खा था और छोलदारी लगाकर चौकी-पहरे का प्रबन्ध कर दिया था, अतः महाराज ने वहीं निवास किया।

अगले ही दिन से महलों में व्याख्यान होने आरम्भ हो गये और नगर के गण्यमान्य पुरुष महाराज की सेवा में प्रतिदिन उपस्थित होकर धर्मोपदेश सुनते रहे।

पादरी शूलब्रेड ने शास्त्रार्थ न किया—रावसाहब ने ब्यावर उपनाम नयानगर से पादरी शूलब्रेड को महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया। वह २८ जून सन् १८८१ को आये और एक देशी ईसाई बिहारीलाल को अपने साथ लाये।§ महाराज ने उनसे ईसाई मत पर प्रश्न करने चाहे, परन्तु पादरी साहब ने कहा कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आया प्रत्युत आपके व्याख्यान सुनने की अभिलाषा से आया हूँ। इसपर महाराज ने थोड़ी देर राजनीति-विषय पर कुछ कथन किया। व्याख्यान को संक्षिप्त इसलिए किया कि पादरी साहब ने कहा था कि मैं २० मिनट से अधिक नहीं ठहर सकता।

पाप क्यों होता है—तत्पश्चात् पादरी साहब ने स्वामीजी से पूछा कि पाप क्यों अधिक होता है? महाराज ने उत्तर दिया कि काम-क्रोधादि के प्राबल्य से। पादरी साहब ने कहा कि मैं यह नहीं पूछता, मैं तो यह पूछता हूँ कि पाप कौन लोग अधिक करते हैं। महाराज ने कहा कि क़िरानी, कुरानी, पुराणी और जैनी, क्योंकि किरानियों के अनुसार रात्रि के पाप प्रातःकाल की प्रार्थना से और दिन के पाप सायङ्काल की प्रार्थना से दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार कुरानियों के अनुसार छोटे-छोटे पाप 'तौबह-तौबह' कहने से और बड़े पाप 'बिस्मिल्ला हिर्रहमानुर्रहीम' कहने से नष्ट हो जाते हैं। पुराणियों के अनुसार—

"अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति। काश्यामेव कृतं पापं पंचक्रोश्यां विनश्यति।"

अर्थात् अन्य स्थानों में किया हुआ पाप काशी में और काशी में किया हुआ पाप पञ्चकोशी में नष्ट हो जाता है और जैनियों के अनुसार तो **'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'**‡ आदि मन्त्र से पाप नष्ट हो जाते हैं।

यह सुनकर पादरी साहब थोड़ी देर चुप रहे, फिर उन्होंने पूछा कि आप इन चारों में से कौन हैं तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैं इनमें से कोई भी नहीं, मैं तो वैदिक धर्मानुयायी हूँ और वेदानुकूल ग्रन्थों को

---

§ दयानन्द-प्रकाश में लिखा है कि जब पादरी साहब आये तो उनके बैठने को कुर्सी लाई गई और उसे फ़र्श पर रक्खा जाने लगा। इसपर स्वामीजी ने कहा कि फ़र्श उलट कर कुर्सी रक्खो। यह असभ्यता की बात है कि जिस फ़र्श पर अन्य लोग बैठे हैं उसी पर कोई जूता पहने कुर्सी पर बैठे। तब ऐसा ही किया गया। —**संग्रहकर्त्ता**

‡ यह मन्तव्य जैनियों का नहीं है, चार्वाकों का है। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानता हूँ। फिर पादरी साहब के पूछने पर कि वेदों में गोमेध और अश्वमेध (गौ वा अश्व को मारकर यज्ञ करना) है वा नहीं, तो महाराज ने उत्तर दिया कि नहीं है और चारों वेद उनके सम्मुख रखकर कहा कि यदि है तो इनमें दिखा दीजिए, परन्तु पादरी साहब बोले कि मेरी पुस्तकें नयानगर में हैं। महाराज ने कहा कि किसी को भेजकर मँगवा लीजिए, परन्तु पादरी साहब ने कहा कि हमें अवकाश नहीं है।

बिहारीलाल ईसाई—बिहारीलाल देसी ईसाई ने महाराज से कहा कि आप राजाओं को ही उपदेश करते हैं, साधारण मनुष्यों को नहीं करते, यह कहाँ लिखा है ? महाराज ने उत्तर दिया कि प्रथम तो मेरे व्याख्यानों में आने का किसी को निषेध नहीं है, फिर मैं तो हर जगह घूमता हूँ, सब आकर सुन सकते हैं। मैं यथाशक्ति राजा, प्रजा सभी को उपदेश करता हूँ।

इसके पश्चात् दोनों पादरी चले गये।

जैनियों से शास्त्रार्थ का प्रस्ताव—५ जुलाई सन् १८८१ को रावसाहब ने नगर के प्रतिष्ठित जैनियों को बुलाकर कहा कि आप अपने किसी विद्वान् पण्डित को बुलाइए ताकि उनका स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराया जाए। इसपर जैनियों ने उत्तर दिया कि साधु सिद्धकरणजी अच्छे विद्वान् हैं और व्याकरण पठित हैं, वे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेंगे। वे आजकल सरवाड़ राज्य कृष्णगढ़ में हैं। रावसाहब ने कहा कि सवारी ले-जाओ और उन्हें लिवा लाओ। जैनियों ने उत्तर दिया कि वह सवारी पर नहीं चढ़ते। उनका चातुर्मास्य यहाँ ही होगा और आशा है वे कल यहाँ आ जाएँगे। अगले दिन साधु सिद्धकरणजी आ गये तो राव साहब ने महाराज से कहा कि साधु सिद्धकरणजी से धर्मचर्चा करनी चाहिए।

धर्मचर्चा के लिए उद्यत हूँ—महाराज ने इसे स्वीकार करते हुए कहा कि साधुजी से स्थान और समय नियत करा दीजिए। रावसाहब ने कहा कि हम अपने कर्मचारियों को उनके पास भेजकर स्थान और समय का निर्णय करा देंगे, परन्तु उस दिन वर्षा होने लगी और महाराज का स्थान जिस वाटिका में था उसके पास का सरोवर जल से भर गया और लोगों को महाराज के दर्शनों को आने-जाने में कष्ट होने लगा, अतः यह स्थिर हुआ कि वाटिका के दक्षिण में सोहननगरी पहाड़ी पर, जहाँ रावसाहब ने एक बङ्गला बनवाया था, महाराज निवास करें। तदनुसार महाराज वहाँ चले गये।

स्वामीजी और जैन साधु की भेंट—६ जुलाई को महाराज तो प्रातःकाल भ्रमण को जा रहे थे और साधु सिद्धकरणजी शौच से निवृत्त होकर नगर को आ रहे थे। मार्ग में महाराज से उनकी भेंट हो गई और आपस में इस प्रकार बात-चीत होने लगी।

साधु—आपका क्या नाम है और कहाँ से पधारना हुआ है ?

स्वामीजी—मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है और अजमेर से आया हूँ। आपका क्या नाम है और कहाँ से आना हुआ ?

साधु—मेरा नाम सिद्धकरण है और सरवाड़ राज्य किशनगढ़ से आया हूँ और चार मास यहीं रहूँगा।

स्वामीजी—आप यहाँ कहाँ ठहरे हैं ?

साधु—एक उपासरे में।

स्वामीजी—क्या आप ही को जैनियों ने बुलाया है ?

साधु—हाँ ! मुझे ही बुलाया है। आपका पेट तो बहुत मोटा है। क्या इसमें ज्ञान भरा है। आप लोग तवा बाँध लीजिए, नहीं तो फट जाएगा। आपको ज्ञान-अजीर्ण हो रहा है।

मैं धर्म-चर्चा पर उद्यत हूँ—महाराज ने इन असभ्य शब्दों का कोई उत्तर न देकर साधुजी से पूछा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि क्या आंप धर्म-चर्चा करने पर सन्नद्ध हैं, तो साधुजी ने उत्तर दिया कि हाँ उद्यत हूँ, यदि आप मेरे स्थान पर आएँ। स्वामीजी ने कहा कि क्या साधुओं का भी स्थान होता है तो साधुजी ने कहा कि मेरा स्थान तो नहीं है, परन्तु नगर के जैनियों ने साधुओं के लिए बना रक्खा है।

रावसाहब भी आ पहुँचे—रावसाहब अपने महल की छत पर दूरवीक्षण यन्त्र (Opera Glasses) से देखा करतें थे कि महाराज भ्रमणार्थ कहाँ जाया करते हैं। उन्होंने देखा कि कोई मनुष्य महाराज से बातें कर रहा है। वे चट घोड़े पर सवार होकर साधुजी और महाराज के निकट जा पहुँचे।

मुख पर पट्टी क्यों बाँधते हो ?—स्वामीजी ने साधुजी से यह प्रश्न किया था कि आप मुख पर पट्टी क्यों बाँधते हो और गर्म जल क्यों पीते हो ? साधुजी ने उत्तर में कहा था कि यदि आप भी मुख पर पट्टी बाँध लें तो मैं इसका उत्तर दूँ। इसपर वाद-प्रतिवाद हो रहा था कि रावसाहब आ पहुँचे। रावसाहब को देखकर साधुजी चलने लगे। रावसाहब ने साधुजी से कहा कि प्रश्नोत्तर कीजिए, क्यों जाते हैं ? परन्तु साधुजी नहीं रुके और चले ही गये।

जैन साधु को शास्त्रार्थ का आह्वान—तत्पश्चात् राव साहब ने नगर के पाँच प्रतिष्ठित जैनियों, राजमन्त्री, ज्योतिषी, कोठारी को साधुजी के पास भेजा और पूछा कि यदि आपकी इच्छा धर्म-चर्चा की हो तो स्थान और समय नियत कर दीजिए। साधुजी ने उत्तर दिया कि यदि स्वामीजी अपने मुख पर पट्टी बाँधकर प्रश्नोत्तर करेंगे तो मैं धर्म-चर्चा के लिए उद्यत हूँ। जब यह वृत्तान्त स्वामीजी से कहा गया तो उन्होंने कोठारी चाँदमल को पुनः साधुजी के पास भेजकर कहलाया कि शास्त्रार्थ में जो पराजित होगा उसे विजेता का धर्म स्वीकार करना होगा, अर्थात् यदि स्वामीजी पराजित हो जाएँगे तो वे अवश्य मुख पर पट्टी बाँध लेंगे और यदि साधुजी परास्त होंगे तो उन्हें अपने मुख की पट्टी तोड़नी पड़ेगी। साधुजी को धर्म-चर्चा अवश्य करनी चाहिए ताकि सत्याऽसत्य का निर्णय हो जाए। उन्हें ऐसी हठ न करनी चाहिए, परन्तु साधुजी ने अपनी हठ न छोड़ी और यही उत्तर दिया कि मुख पर पट्टी बाँधे बिना हमारे सूत्रों में प्रश्नोत्तर करना नहीं लिखा है।

पट्टी—जब यह बात कोठारी चाँदमल ने महाराज से आकर कही तो उन्होंने कोठारीजी को फिर साधुजी के पास भेजा कि उनसे पूछकर आओ कि मुख पर पट्टी बाँधे बिना प्रश्नोत्तर करना उनके किस सूत्र में लिखा है, परन्तु साधुजी ने इसका कोई उत्तर न दिया।

तीन प्रश्न—१३ जुलाई सन् १८८१ अर्थात् श्रावण कृष्णा २ सं० १९३८ को महाराज ने निम्नलिखित तीन प्रश्न साधुजी के पास भेजे कि उनका उत्तर दें, क्योंकि जब वह मौखिक शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते तो लिखित ही कर लें। स्वामीजी के लेख का सारांश नीचे दिया जाता है।

प्रश्न नं० १—मुख पर पट्टी क्यों बाँधते हो ?

प्रश्न नं० २—उष्ण जल क्यों पीते हो ?

प्रश्न नं० ३—जल की एक बूँद में, जिसका अन्त है, अनन्त जीव कैसे बतलाते हो ?

प्रश्नों के साथ ही उनके क्या उत्तर साधुजी देंगे उन्हें उठाकर उनका भी निराकरण किया गया था।

अपनी ही ओर से उत्तर-प्रत्युत्तर—प्रश्न १ के उत्तर में यदि यह कहा जाए कि (१) पट्टी बाँधने से जीव कम मरेंगे तो यह ठीक नहीं, क्योंकि जीव अमर है। (२) यदि कहो कि ऐसा करने से जीवों को कष्ट कम होगा तो यह भी नहीं बनता, क्योंकि मुख पर पट्टी बाँधने से मुख के भीतर का वायु अधिक उष्ण होकर उन्हें अधिक कष्ट पहुँचाएगा। जैसे गृहद्वार बन्द करने से अन्दर का वायु अधिक गर्म हो जाता है। (३) मुख का उष्ण वायु रुककर नासिका द्वारा अधिक वेग से बाहर निकलेगा और इससे जीवों को अधिक पीड़ा होगी। नलकी द्वारा फूँक लगाने से वायु अधिक वेग से बाहर निकलता है। (४) उच्चारण में भी दोष आता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है, निरनुनासिक अक्षर सानुनासिक हो जाते हैं। (५) अन्दर का वायु अधिक दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। मुख पर पट्टी बाँधने और मुख-प्रक्षालन न करने, दन्तधावन और स्नान कम करने से दुर्गन्ध अधिक बढ़ती है और इससे रोग की उत्पत्ति होती है जिससे बुद्धि और पुरुषार्थ नष्ट होते हैं, अतः दुर्गन्ध बढ़ानेवाला अधिक पापी होता है।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में—ठण्डे जल को गर्म करने में जीव रँधकर जल में घुल जाते हैं, अतः गर्म जल से जीव अधिक कष्ट पाते हैं। यदि तुम कहो कि हम जल स्वयं गर्म नहीं करते, दूसरे गर्म करते हैं, अतः हम पापी नहीं, यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यदि आप गर्म जल न पीएँ तो वे जल क्यों गर्म करें ? फिर जल गर्म करने के लिए अग्नि जलाने और उससे भाप उड़ने में जीव मरते हैं।

तीसरे प्रश्न के सम्बन्ध में—बूँद चाहे पैसा बराबर बड़ा हो वा अधिक, उसका अन्त होता है, फिर उसमें अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं ? यह सर्वथा बुद्धि के विरुद्ध है।

साधु प्रश्न-पत्र पाकर अन्दर चले गये—जब यह प्रश्न लेकर महाराज की ओर के पुरुष साधुजी की सेवा में पहुँचे तो वे स्त्री-पुरुषों को उपदेश कर रहे थे। उपदेश की समाप्ति पर प्रश्न पढ़कर सबको सुना दिये गये, साधुजी से उनका उत्तर माँगा। साधुजी ने फिर वही बात कही कि यदि आप लोग मुख पर पट्टी बाँधें तो मैं उत्तर दूँ। उन पुरुषों ने कहा हम ऐसा करने को पाप समझते हैं, यदि आप पट्टी बाँधना सिद्ध कर देंगे तो हम मुख पर पट्टी बाँध लेंगे। साधुजी ने कहा कि मैं उत्तर नहीं दे सकता और उठकर अन्दर चले गये।

साधु के उत्तर—१६ जुलाई को साधुजी ने महाराज के प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार दिया—

प्रश्न—मुँह बाँधने में क्या धर्म है, हमें तो पाप जान पड़ता है इत्यादि।

उत्तर—(सारांश) यदि किसी घर में अग्नि जलाई जावे तो जो शीतल वायु बाहर से भीतर जाएगी उसके जीव अन्दर की उष्ण वायु के संयोग से मर जाएँगे, परन्तु यदि द्वार बन्द कर दिया जाए वा हाथ वा कपड़े की ओट कर दी जाए तो अग्नि का तेज मन्द हो जाएगा और उष्णता के कारण जीव न मरेंगे। जीव अजर-अमर है, परन्तु वायु जीव का शरीर है, बिना शरीर के जीव नहीं रह सकता। खुले मुख रहने में बोलते समय थूक उड़ता है और मुँह की दुर्गन्ध भी दूसरे तक पहुँचती है, अतः बड़े मनुष्यों से बातें करते समय लोग मुँह के पल्ला लगा लेते हैं। आप भी जब खुले मुँह वेद को बाँचते होंगे तो क्या आपका थूक उसपर न गिरता होगा और आपके श्वास की दुर्गन्ध उस तक न पहुँचती होगी।

प्रत्युत्तर—महाराज ने इसका तुरन्त ही प्रत्युत्तर भेज दिया जिसका सारांश यह है—

बाहर का वायु ही सब प्राणियों का जीवन-हेतु है और बिना उसके अग्नि भी जल नहीं सकती। ओट करने से यह दूसरे मार्ग से अति वेग से निकलकर प्राणियों से संयुक्त होगा और प्राणी कष्ट पाएँगे और ओट करने से तो उष्णता बढ़ेगी, घटेगी नहीं। यदि चारों ओर से खुला होगा तो शीघ्र ठण्डी हो जाएगी। यदि किसी बरतन में जल गर्म किया जाए और उसे बिल्कुल बन्द कर दिया जाए तो भाप बड़े ज़ोर से निकलकर बरतन को तोड़ डालेगी। ऐसे ही उसे आधा वा चौथाई बन्द करने से गर्मी अधिक बढ़ती है। यदि अग्नि से ही जीव मरते हैं तो विद्युद्रूप अग्नि से जो सर्वत्र फैली हुई है जीव क्यों नहीं मर जाते ? आप जीवों को अजर-अमर भी मानते हैं और फिर उनका मरना भी मानते हैं। बड़े मनुष्यों से बातें करते समय मुँह पर पल्ला लगाने का यह प्रयोजन नहीं जो आप लिखते हैं। उसका प्रयोजन यह है कि बहुधा उनसे ऐसी बातें करनी होती हैं जिन्हें गुप्त रखना अभीष्ट होता है, अतः मुख पर पल्ला इसलिए लगाते हैं कि शब्द फैले नहीं और उसे दूसरे न सुन सकें तथा यह भी कि खुले मुख बातें करने से शब्द फैलकर ठीक-ठीक सुनाई भी न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देगा। यदि आपका हेतु ठीक है तो फिर केवल बड़े मनुष्यों से बातें करते समय ही आपको मुख पर पल्ला लगाना चाहिए, छोटे मनुष्यों के सन्मुख मुँह पर पट्टी क्यों बाँधे रहते हो तथा अपने शिष्यों के सन्मुख भी ऐसा क्यों करते हो ? फिर बड़े मनुष्य भी क्यों पल्ला लगाकर बातें नहीं करते ? क्या उनका थूक छोटे मनुष्यों पर पड़ना वा उन तक श्वास की दुर्गन्धि पहुँचना अच्छा समझते हो ? क्या बड़े मनुष्यों के मुँह में कस्तूरी घुली होती है ? हम काग़ज़ स्याही को वेद नहीं समझते। वे तो जड़ वस्तु हैं जिन्हें सुगन्ध-दुर्गन्ध, आर्द्र-शुष्क का कुछ ज्ञान नहीं। हम तो शब्दार्थ-सम्बन्ध को वेद समझते हैं। क्या जैनियों के धर्मपुस्तक बनानेवालों ने उन्हें मुख पर पट्टी बाँधकर लिखा था ? हम तो वेदों का खुले मुख से उच्चारण करना उत्तम समझते हैं, क्योंकि इससे उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध होता है और मुख पर पट्टी बाँधने से अस्पष्ट और अशुद्ध, जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं। जब आपसे नगर के बाहर भेंट हुई थी तब तो आपने हमसे निःसंकोच बातें की थीं, यद्यपि हम मुँह पर पट्टी वा पल्ला नहीं लगाये हुए थे। फिर शास्त्रार्थ करने में आपने यह अड़चन क्यों लगाई कि जब तक हम मुख पर पट्टी न बाँधेंगे तब तक आप हमसे शास्त्र-विचार न करेंगे।

पाठकों ने यह देख लिया होगा कि साधुजी ने महाराज के केवल पहले प्रश्न का कि मुख पर पट्टी क्यों बाँधी जाती है उत्तर देने का यत्न किया था, शेष दो प्रश्नों के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा था, अतः महाराज ने अपने प्रत्युत्तर में उन प्रश्नों का उल्लेख नहीं किया।

हमसे उत्तर नहीं बन आता—जब महाराज के प्रत्युत्तर को लेकर कुछ सज्जन साधुजी के पास गये तो उसे सुनकर वे बहुत घबराये और जब लोगों ने साधुजी से उत्तर देने पर आग्रह किया तो पहले तो वे चुप रहे, परन्तु अन्त में उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हमसे तो कोई उत्तर नहीं बन आता, आपाँ ते साधु हाँ।

यह बात सुनकर लोगों ने कहा कि जब साधुजी ने अपने मुख से हार मान ली तो अब विशेष कहना उचित नहीं है और सब लोग लौट आये। इस प्रकार धर्म-चर्चा की यह चर्चा समाप्त हुई।

किले में व्याख्यान—आषाढ़ शुक्ला १५ से महाराज के व्याख्यानों का किले में प्रबन्ध किया गया। जिस दिन व्याख्यान होने को होता था, उससे पहले दिन डौंडी द्वारा उसकी सूचना नगर के निवासियों को दे दी जाती थी। प्रतिदिन ४-५ सौ मनुष्य महाराज के अपूर्व व्याख्यान को श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सुनकर ज्ञान और धर्म-उपार्जन करते थे। रावसाहब भी व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे। आषाढ़ शुक्ला १५ से श्रावण शुक्ला १५ तक २२ व्याख्यान हुए जिन्हें सुनकर लोग परम सन्तुष्ट हुए और महाराज को शतशः धन्यवाद दिये। अस्सी-अस्सी, नव्वे-नव्वे वर्ष के वृद्ध कहते थे कि ऐसा ज्ञानी पण्डित और महात्मा कभी नहीं देखा था। महाराज के व्याख्यानों में एक अद्भुत बात यह थी कि श्रोताओं के मन में जो शङ्काएँ उठती थीं महाराज उन्हें स्वयं ही उठाकर उनका निराकरण कर देते थे।

जैनियों का वैदिक धर्म में प्रवेश—साधु सिद्धकरणजी के शास्त्रार्थ न करने और महाराज के व्याख्यानों का यह प्रभाव हुआ कि अनेक हिन्दू और जैनी वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट हो गये और उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि हमें यज्ञोपवीत धारण कराइए। तदनुसार महाराज ने रावसाहब से एक बृहद्-यज्ञ का आयोजन करने के लिए कहा, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। मसूदा और अजमेर से हवन-सामग्री एकत्र की गई, चाँदी के चमसे बनवाये, घृत और समिधा मँगाई गई, सोहननगरी पर ही सुन्दर यज्ञशाला बनवाई गई, उसे पुष्प-पत्र से सजाया गया। एक ओर तख्त पर महाराज का आसन लगा, उनके सामने रावसाहब बैठे। पहली आहुति रावसाहब ने दी, तत्पश्चात् चार अन्य होताओं ने आहुति देनी आरम्भ की। दो घण्टे तक हवन हुआ फिर महाराज ने ३२ मनुष्यों को स्वयं अपने कर-कमलों से यज्ञोपवीत धारण कराया। उनमें आधे से अधिक जैनी थे। रावसाहब के कोठारी चाँदमलजी, जो जैनी थे, स्वयं यज्ञोपवीत लेनेवालों में थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञ-भूमि में ५०० के लगभग दर्शक थे। सब-के-सब यज्ञ को देखकर कह रहे थे कि ऐसा यज्ञ हमने कभी नहीं देखा था और न वेदमन्त्रों का ऐसा सुन्दर, सुमधुर उच्चारण ही सुना था।

उस दिन कुछ मनुष्य यज्ञोपवीत लेने से रह गये थे, अतः भाद्र कृष्णा ५ को दूसरा यज्ञ हुआ और महाराज ने १६ मनुष्यों को यज्ञोपवीत दिये। उनमें भी जैनियों की संख्या अधिक थी।

एक लज्जास्पद प्रथा—मसूदा में मुसलमान बादशाहों के राज्य में कुछ हिन्दू मुसलमान हो गये थे, परन्तु उनकी जाति के हिन्दू उनसे अपनी पुत्रियों का विवाह करते आते थे। महाराज को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने हिन्दुओं को बुलाकर समझाया कि ऐसा अनर्थ क्यों करते हो और विधर्मियों से सम्बन्ध क्यों करते हो। महाराज के सदुपदेश से उन्होंने आगे को ऐसा न करने का प्रण किया और यह अनिष्टकर प्रथा बन्द हो गई। महाराज ने असंख्य हिन्दू-स्त्रियों को विधर्मी होने से बचा लिया। संसारभर में यदि कोई जाति अपना अनिष्ट आप करनेवाली है तो वह हिन्दूजाति है। जिन हिन्दुओं में उपर्युक्त घातक व्यवहार था उनमें लज्जा और स्वसम्मान का भाव सर्वथा नष्ट हो गया था, धर्माधर्म के विचार नाम तक को न रहे थे। हिन्दूधर्माध्यक्षों ने कोई चेष्टा न की कि इस कुप्रथा को रोकें। इससे अधिक सर्वनाश के लक्षण क्या हो सकते हैं ?

बिहारीलाल ईसाई फिर आये—श्रावण शुक्ला ४ संवत् १९३८ अर्थात् ३० जुलाई सन् १८८१ को पूर्वोक्त बाबू बिहारीलाल ईसाई पुनः महाराज से मिलने आये। थोड़ी देर बातचीत होने के पश्चात् धर्म-विषय में वार्त्तालाप होने लगा। इसपर रावसाहब ने उनसे कहा कि आप पादरी शूलब्रेड के शिष्य हैं और मैं स्वामीजी महाराज का, आज मेरा और आपका संवाद होगा। इसे बिहारीलाल ने स्वीकार किया।

वैदिक धर्मी शिष्य का ईसाई शिष्य से शास्त्रार्थ—रावसाहब ने उनसे प्रश्न किया कि बाइबिल में लिखा है कि ईसामसीह ने एक बार उपदेश में कहा कि यदि आप लोगों में राई बराबर विश्वास होवे तो इस पहाड़ को चलायमान कर सकते हो, अतः यदि आपका विश्वास पूरा है तो इस (सोहननगरी) पहाड़ को अपनी जगह से हटा दो। पादरी साहब कुछ उत्तर न दे सके और अन्त में उन्होंने यह कहकर पीछा छुड़ाया कि इसका उत्तर मैं अभी नहीं दे सकता, पादरी शूलब्रेड से पूछकर उत्तर दूँगा।

रियासत रायपुर से महाराज के बुलाने को दो पत्र आ चुके थे, परन्तु रावसाहब का प्रेम उन्हें मसूदा से जाने नहीं देता था। जब वहाँ से तीसरा पत्र आया तो महाराज ने रावसाहब से कहा कि मुझे रायपुर जाना आवश्यक है। आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक विदा कीजिए। रावसाहब ने कहा कि मेरी तो प्रार्थना यह थी कि आप यहीं विराजते और यहीं से वेदभाष्य की सहायता का प्रबन्ध कर दिया जाता। महाराज ने इसका उत्तर दिया कि आप क्षत्रिय हैं, आपका धर्म और नीति ऐसी ही होनी चाहिए, परन्तु मैं साधु हूँ, मेरा एक स्थान पर रहना उचित नहीं है, मेरा काम सब स्थानों में घूमकर उपदेश करना है।

सम्मान-प्रदर्शन—भाद्र कृष्णा ९ का दिन महाराज के प्रस्थान के लिए स्थिर किया गया। उस दिन महाराज का अन्तिम व्याख्यान राजा-प्रजा धर्म पर क़िले के भीतर हुआ। अन्त में रावसाहब ने धन्यवाद-पत्र महाराज के अर्पण किया और दोनों ने एक-दूसरे के गले में पुष्पमाला पहनाई। रावसाहब ने ४०० रुपये वेदभाष्य की सहायता में दिये। दस रुपये रामानन्द ब्रह्मचारी को, पाँच रुपये महाराज के कहार को दिये। इसके पश्चात् महाराज बग्घी पर सवार हुए। राजमन्त्री, राज्य के सरदार, कर्मचारी और नगर के लगभग ४०० मनुष्य आध कोस तक उनके साथ गये, परन्तु महाराज ने उन्हें उपदेश कर लौटा दिया। राव साहब महाराज के साथ ५ मील गये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(१६ अगस्त—८ सित०) रायपुर (भाद्र कृ० १०—भाद्र शु० १५)

भाद्रपद कृष्णा ६ संवत् १९३८ अर्थात् १८-८-१८८१ को दोपहर के पश्चात् ३ बजे महाराज ने मसूदा से प्रस्थान किया और ७ बजे ब्यावर पहुँचकर रेलवे स्टेशन के पास की सराय में डेरा किया, जहाँ ब्यावर के प्रतिष्ठित पुरुषों ने जिनमें बाबू बिहारीलाल ईसाई भी थे, उनके विश्राम का सब प्रबन्ध कर दिया। ब्यावरवालों ने महाराज से प्रार्थना की कि कुछ दिन ब्यावर रहकर उपदेश देने की कृपा करें, परन्तु महाराज ने कहा कि इस समय मैं रायपुर जा रहा हूँ, वहाँ से लौटते समय ब्यावर ठहरूँगा।

स्वामीजी के चोट आ गई—रात्रि के १० बजे रेल में सवार होकर प्रातः ३ बजे हरीपुर स्टेशन पर, जो रायपुर से दो मील के अन्तर पर है, उतरे। रात्रि अँधेरी थी, कुछ-कुछ बूँदें पड़ रही थीं और गाड़ी प्लेटफ़ार्म से कुछ दूर खड़ी हुई थी। गाड़ी से उतरते समय महाराज का पाँव एक पत्थर पर पड़ा जो पाँव के रखने से लुढ़क गया और महाराज गिर पड़े। हाथ की हथेली में कंकड़ घुस गये, परन्तु परमात्मा की कृपा से अधिक चोट न आई। महाराज तुरन्त उठ खड़े हुए और जिस डिब्बे में उनके साथी बैठे हुए थे और सामान रक्खा हुआ था उसपर पहुँचकर साथियों को उतारा और सामान उठाकर सड़क पर रखवा दिया।

रायपुराधीश के आदर्श नौकर—राव हरिसिंह रायपुराधीश ने महाराज के लिए एक रथ और दो गाड़ियाँ स्टेशन पर भेज दी थीं, परन्तु उनके हाँकनेवाले ऐसे बेसुध होकर सोये कि बहुत पुकारने पर भी उनका पता न लगा। रेल के कर्मचारियों ने महाराज को कष्ट में देखकर उनके लिए एक कमरा खोल दिया और बड़ा आदर-सत्कार किया। उसमें महाराज और उनके साथी सुखपूर्वक सोये। प्रातःकाल रथ और गाड़ीवालों का पता लगा और महाराज रथ पर सवार होकर और गाड़ियों में सामान लदवाकर ८ बजे रायपुर पहुँचे और माधोदास की वाटिका के पास के महल में ठहरे।

स्वामीजी और राव की भेंट—जब ठाकुर हरिसिंह को महाराज के आने का समाचार विदित हुआ तो वे बन्धुवर्ग और राजकर्मचारियोंसहित महाराज से मिलने आये और एक स्वर्णमुद्रा और पाँच रुपये भेंट किये। कुशल-प्रश्न के पश्चात् सब लोग यथास्थान बैठ गये। तब महाराज ने ठाकुर साहब से प्रश्न किया कि आपके यहाँ राज-मन्त्री कौन हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि शेख इलाही बख्श हैं, परन्तु वे जोधपुर गये हैं, उनके पीछे उनके भतीजे करीम बख्श (जो वहाँ उपस्थित थे) सब काम देखते हैं। यह सुनकर महाराज ने कहा कि आर्यपुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राजमन्त्री न बनाएँ ये तो दासीपुत्र हैं। इसे सुनकर करीम बख्श और अन्य ५-७ मुसलमान, जो वहाँ बैठे थे, क्रोध में भर गये। थोड़ी देर पश्चात् सब चले गये।

स्वामीजी को पीटने का षड्यन्त्र—उस समय तो मुसलमानों ने कुछ न कहा, परन्तु घर पहुँचकर महाराज को पीटने का षड्यन्त्र रचने लगे। उनमें एक मुसलमान समझदार भी था। उसने कहा अभी कुछ मत करो, ५-७ दिन में क़ाज़ीजी आएँगे तब उनके स्वामीजी से प्रश्नोत्तर कराना। यदि वे झूठे सिद्ध होंगे तो जैसा विचार कर रहे हो वैसा ही करना, यह सम्मति सबने स्वीकार की।

रायपुराधीश की उदासीनता—रायपुर आये हुए महाराज को ५-७ दिन हो गये, परन्तु न तो क़िलों में उनके व्याख्यान हुए और न यज्ञ ही हुआ जिसे करने के लिए चारण हरिदानजी ने ठाकुर साहब से कहकर महाराज को रायपुर बुलाया था। ठाकुर साहब नित्यप्रति महाराज के व्याख्यान सुनने आते थे, परन्तु यज्ञ की चर्चा न करते थे। एक दिन महाराज ने ठाकुर साहब को इस बात का उपालम्भ दिया तो उन्होंने कहा मुझे भी इसका ध्यान है, परन्तु हरिदानजी अपने ग्राम को चले गये हैं, उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क़ाज़ीजी से वार्त्तालाप—२७ अगस्त सन् १८८१ अर्थात् भाद्रपद शुक्ला ३ को मुसलमानों की ईदुलफ़ित्तर (रोज़ों की ईद) थी। क़ाज़ीजी भी आ गये थे। २८ अगस्त को महाराज प्रातःकाल ८ बजे भ्रमण करके लौटे ही थे कि उन्होंने यवनों का एक झुण्ड अपने निवास-स्थान की ओर आते देखा। उन्होंने चाँदमल कोठारी राज्य मसूदा को, जो उनके साथ मसूदा से आये थे, बुलाया और कहा कि देखो क्या बात है, ये लोग क्यों आ रहे हैं ? वे नीचे गये और यवन-समुदाय के नेता से वृत्त ज्ञात करके स्वामीजी से कहा। उन्होंने कहा कि ऊपर बुला लो। महाराज कुर्सी पर बैठ गये और वे लोग फ़र्श पर बैठ गये। आते ही क़ाज़ीजी से निम्न प्रश्नोत्तर हुए—

क़ाज़ी—आप हमें दासीपुत्र कैसे बतलाते हैं ?

स्वामीजी—अपने कुरानशरीफ़ को देखो। इब्राहीम की दो स्त्रियाँ थीं एक विवाहिता सारा, दूसरी दासी हाजिरा, जिसे उन्होंने घर में डाल लिया था ..... अतः आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है।

क़ाज़ी—कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामीजी—(रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान की पुस्तक मँगाकर) देखिए सूरा अनकबूत में लिखा है कि उसी साल (खुदा ने) उसे (इब्राहिम को) हाजिरा (के गर्भ) से जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया।

इसपर क़ाज़ीजी निरुत्तर हो गये और मुसलमान देखते-के-देखते रह गये।

कुरान का अपमान क्यों किया—महाराज ने क़ाज़ीजी को दिखाकर कुरान को फ़र्श पर रख दिया। क़ाज़ीजी ने कहा कि यह आपने क्या किया, कुरान को पैरों में रख दिया ? स्वामीजी ने कहा आप विचारिए तो सही काग़ज़ और स्याही किस प्रकार बनती है और छापेखाने में किस प्रकार छपता है और कलम क्या वस्तु है और कहाँ उत्पन्न होता है। इसपर क़ाज़ीजी और उनके साथी निरुत्तर होकर उठकर चले गये।

राव साहब की रानी का देहान्त—४ सितम्बर अर्थात् भाद्रपद शुक्ला ११ तक न चारण हरिदान आये और न यज्ञ ही हुआ। ५ सितम्बर को तार आया कि ठाकुर साहब की ठकुरानी शेखावटवाली का, जो जयपुर में थी, देहान्त हो गया और ठाकुर साहब शोकातुर होकर गरुड़पुराण सुनने लगे। तब महाराज ने ७ सितम्बर को ठाकुर साहब से कहलाया कि मुझे विदा कर दीजिए तो उन्होंने कहा कि कल विदा कर देंगे।

मैं किसी का हर्ष-शोक नहीं करता—कोठारी चाँदमल और बाबू रूपसिंह ने कहा कि आप ठाकुर साहब से शोक-सहानुभूति प्रकट करने क़िले में पधारें तो महाराज ने उत्तर दिया कि भाई मैंने तो सब संसार से सम्बन्ध त्याग दिया है किसी का मरना और जीना मेरे लिए एक-सा है, मैं किसी से शोक वा हर्ष नहीं करता, न मेरा कुछ सम्बन्ध है। मेरा सम्बन्ध तो केवल उपदेश और धर्म से है, शेष किसी वस्तु से नहीं। अगले दिन महाराज के लिए सवारी का प्रबन्ध हो गया। चलते समय ठाकुर साहब ने अपने पिता और मन्त्री आदि को महाराज की सेवामें भेजा। उन्होंने ४० रुपये ठाकुर साहब की ओर से वेदभाष्य की सहायता में भेंट किये और विनयपूर्वक कहा कि ठाकुर साहब ने क्षमायाचना की है कि शोकातुर होने के कारण वे सेवा में उपस्थित न हो सके, उन्हें आप अपना शिष्य जानें और वे शीघ्र ही आपको पुनः बुलाएँगे। मध्याह्नोत्तर ५ बजे महाराज रेलवे स्टेशन पर पहुँच गये और रेल-कर्मचारियों को उपदेश देकर रात्रि के दस बजे ब्यावर के लिए रेल पर सवार हो गये। १२ बजे ब्यावर पहुँचकर रात्रि को सराय में ठहरे और प्रातःकाल डाक बङ्गले में चले गये।

बाबू रूपसिंहजी जिनका नाम ऊपर आया है कोहाट में ट्रेज़री-क्लर्क थे। वह देशाटन करते हुए महाराज के दर्शनों के लिए रायपुर पहुँचे थे। उन्होंने १० रुपये वेदभाष्य की सहायतार्थ महाराज को भेंट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किये थे। उन्होंने महाराज से निवेदन किया कि पञ्जाब पर तो आप कृपा कर चुके हैं, सीमा प्रान्त में भी पधारिए तो महाराज ने कहा, इस समय राजस्थान में उपदेश की अधिक आवश्यकता है।

(६ सित०—२१ सित०) ब्यावर (आ० कृ० १—आ० कृ० १३)

६ सितम्बर सन् १८८१ के प्रातःकाल से ही लोग महाराज के दर्शनों को आने लगे। बाबू बिहारीलाल ईसाई ने भी महाराज की बड़ी शुश्रूषा की।

यहाँ महाराज के कई व्याख्यान हुए जिन्हें सुनकर श्रोता परम सन्तुष्ट हुए। पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल से भी कई दिन तक धर्मविषय पर प्रेमालाप हुआ। एक श्रीमाली ब्राह्मण जोषी सूरजमल किशनगढ़ निवासी ने अपने पुत्र को महाराज से ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश कराया। महाराज ने उसका नाम गुरुनन्द रक्खा।

महाराज के उपदेशों से उसी समय आर्यसमाज का बीज बोया गया जो पीछे आकर अंकुरित हुआ और ब्यावर में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

आश्विन कृष्णा १३ अर्थात् २१ सितम्बर सन् १८८१ को महाराज मसूदा चले गये।

(२१ सित०—६ अक्तू०) मसूदा (आ० कृ० १३—आ० शु० १४)

ब्यावर से महाराज मसूदा लौट आये। वे रामबाग़ में उतरे और १५ दिन ठहरे।

कबीरपन्थी साधु से बात-चीत—एक दिन एक कबीरपन्थी साधु जो पढ़ा-लिखा प्रतीत न होता था, महाराज से धर्म-चर्चा करने आया और अन्य प्रश्नोत्तरों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।

स्वामीजी—तुम्हारे मत के कितने ग्रन्थ हैं ?

साधु—हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं।

स्वामीजी—यह बात मिथ्या है। इतनी संख्या के ग्रन्थों को रखने के लिए ही कितना स्थान चाहिए। तुम्हारे कबीर कौन थे ? तुम गुरु की प्रसादी अर्थात् उसका उच्छिष्ट खाते हो वा नहीं।

साधु—खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं था, वे अजन्मा थे।

स्वामीजी—नवजात कबीर को उनकी माता ने मार्ग में फेंक दिया था। उन्हें एक मुसलमान जुलाहे ने उठा लिया और पुत्र के समान पाला था, फिर कैसे कहते हो वह अजन्मा थे। साधु फिर कुछ न बोला।

(१० अक्तू०—२६ अक्तू०) बनेड़ा (का० कृ० ३—का० शु० ४)

आश्विन शुक्ला १४ संवत् १९३८ अर्थात् ६-१०-१८८१ को महाराज ने मसूदा से प्रस्थान किया और रात्रि में वहाँ से ९ कोस पर हुरड़े में पहुँचकर ६-७ घण्टे विश्राम करने के पश्चात् रूपाहेली पहुँचे और नगर के बाहर एक वाटिका में ठहरे। रूपाहेली के रईस ठाकुर लालसिंहजी महाराज के पास आये और नवीनवेदान्त पर बात-चीत करके चले गये। वहाँ से चलकर एक दिन राटेरां रहे और १० अक्टूबर सन् १८८१ को प्रातःकाल बनेड़ा पहुँच गये।

सुपठित राजा—बनेड़ा के राजा गोविन्दसिंह मसूदाधीश के मातुल थे। वे सुपठित थे, इसी से मसूदाधीश की यह इच्छा थी कि महाराज का और उनके मातुल का समागम हो, अतः उन्होंने राजा गोविन्दसिंह को लिखा था कि स्वामी दयानन्द वेदों के अद्वितीय पण्डित हैं, आप उनसे अवश्य मिलिए। राजा गोविन्दसिंह पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुए और पत्र के उत्तर में लिख दिया कि स्वामीजी अवश्यमेव बनेड़ा पधारने की कृपा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करें। जब महाराज बनेड़ा पहुँचे तो राजा गोविन्दसिंह ने उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और झामरा मन्दिर के कुएँ पर दो डेरे लगवा दिये, एक स्वयं महाराज के लिए और एक उनके साथियों और सामान के लिए और उनके खान-पानादि का सुप्रबन्ध कर दिया।

शक्ति हो तो स्वामीजी से प्रश्न किया जाए—राजा गोविन्दसिंह ने अपने पण्डित राजगुरु बहादुरजी से मन्त्रणा की कि तीन-चार दिन तक तो स्वामीजी से कोई प्रश्नोत्तर न किया जाए, फिर यदि अपने में शक्ति देखी जाए तो शास्त्रालाप किया जाए।

उसी दिन अपराह्न में राजा साहब महाराज के दर्शनों को गये। उस समय स्वामीजी कौपीन लगाये कृष्णवर्ण के आसन पर बैठे थे। राजा उनकी भव्य और विशाल मूर्त्ति को देखकर चकित और आह्लादित हो गये। उस समय महाराज के पास ३०० के लगभग मनुष्य बैठे थे। राजा साहब ने महाराज का अभिवादन किया और महाराज के पास एक आसन पर बैठ गये। कुशल प्रश्नानन्तर महाराज ने उनसे कहा कि कोई प्रश्न कीजिए। प्रथम तो राजा साहब इसपर सम्मत न हुए, परन्तु महाराज के आग्रह पर निम्न प्रश्न किया।

राजा से प्रश्नोत्तर —

प्रश्न—जीव, आत्मा और परमात्मा क्या हैं और इनमें क्या भेद है ?

उत्तर—जीव और आत्मा को तो हम एक ही मानते हैं और परमात्मा जीवात्मा से पृथक् है।

प्रश्न—द्वामिमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
—भगवद्गीता अ० १५। श्लो० १६-१७

अर्थ—लोक में दो पुरुष हैं—एक नाशवान् दूसरा अविनाशी। सारे भूत (प्राणी) नाशवान् हैं, जो कूटस्थ है वह अविनाशी है। जो उत्तम पुरुष है उसे परमात्मा कहते हैं जो अविकारी ईश्वर है और जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उनका भरण कर रहा है।

उत्तर—हम गीता का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते। आप वेद का पाठ करते हैं और आपके यहाँ वेद की खूब चर्चा है, आप वेद का प्रमाण दीजिए।

राजा साहब ने कोई प्रमाण न दिया।

चारों वेदों के दर्शन—अगले दिन राजा साहब ने महाराज से कहा कि हमें चारों वेदों के दर्शन कराइए क्योंकि हमारे यहाँ केवल यजुर्वेद की चर्चा है। महाराज ने ऋग्वेद का पहला मन्त्र सस्वर सुनाया और सुनाते समय अंगुली खड़ी कर ली जो उदात्त का चिह्न है। राजा साहब ने महाराज से कहा कि यह तो अनुदात्त है आपको अंगुली खड़ी न करनी चाहिए थी, परन्तु महाराज ने उत्तर दिया कि हम अंगुली खड़ी करने वा हिलाने का प्रमाण नहीं करते, हमने तो केवल संकेतमात्र किया था।

राजगुरु से बातचीत—चार-पाँच दिन तक आने के पश्चात् एक दिन राजा साहब और राजगुरु पण्डित बहादुरजी आये और महाराजरचित संस्कारविधि आदि ग्रन्थों के ऊपर कई प्रश्न लिखकर लाये और साथ में महीधर का यजुर्वेद भाष्य भी लाये। महीधर का महाराज ने प्रबल खण्डन किया। राजगुरु महाराज की तीव्र आलोचना का कुछ उत्तर न दे सके, उन्होंने केवल यही कहा कि महीधर अब उपस्थित नहीं है, आप उसकी अनुपस्थिति में उसका खण्डन करते हैं, ऐसे ही कोई आपकी अनुपस्थिति में आपका भी खण्डन करेगा।

पुस्तकालय का उपयोग—उस समय महाराज के पास ऋक्, यजुः, साम के पुस्तक तो स्वरसहित थे परन्तु अथर्ववेद के पुस्तक पर स्वर नहीं लगे हुए थे। बनेड़े में महाराज ने सरस्वती-भाण्डार नामक राजपुस्तकालय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के निघण्टु से अपने निघण्टु का मिलान करके उसे ठीक किया था और यजुर्वेद की याज्ञवलक्य शिक्षा की प्रतिलिपि कराई थी।

सस्वर-वेदपाठी राजकुमार—राजा गोविन्दसिंह के दो राजकुमार थे जिन्हें उन्होंने सस्वर वेदपाठ करना सिखाया था। उनकी महाराज ने वेद के जटा, पद, क्रम पाठ में परीक्षा ली थी और उनका सामगान सुना था और प्रसन्न होकर राजकुमारों को वर्णोच्चारण शिक्षा की पुस्तक दी थी।

क़िले में उपदेश—एक दिन महाराज को राजा गोविन्दसिंह हाथी पर सवार कराकर क़िले में भी ले-गये थे और वहाँ महाराज का धर्मोपदेश कराया था।

पहले प्रश्न का उत्तर—पहले दिन जो प्रश्न राजा गोविन्दसिंह ने जीवात्मा व परमात्मा के एकत्व के विषय में किया था उसका उत्तर राजा साहब के दुबारा पूछने पर महाराज ने इस प्रकार दिया था कि जैसे मन्दिर और आकाश न एक हैं, न पृथक् और पृथक् भी हैं, ऐसे ही जीव-ब्रह्म व्याप्य-व्यापक होने से एक नहीं हैं, पृथक् ही हैं और ब्रह्म के सर्वव्यापक होने से वह पृथक् भी नहीं है, अतः दोनों पृथक्-पृथक् हैं।

चक्राङ्कितों की मुक्ति का उपाय—एक दिन चक्राङ्कितों के विषय में महाराज ने कहा था कि यदि शरीर दग्ध करने से मुक्ति होती है तो इन लोगों को भड़भूजे के भाड़ में गिर जाना चाहिए ताकि सबकी एकदम मुक्ति हो जाए। महाराज कहते थे कि चाण्डाल तक को वेद पढ़ने का अधिकार है।

२६ अक्तूबर को महाराज ने चित्तौड़गढ़ के लिए प्रस्थान किया।

(२७ अक्तू०—२० दिस०) चित्तौड़ (कार्त्तिक शु० ५—पौष कृ० ३०)

महाराणा सज्जनसिंह का चरित्र—महाराणा सज्जनसिंह मेवाड़ाधिपति का चित्त नास्तिकता की ओर झुकने लगा था और उनके चरित्र में वेश्या रखने का दोष भी आ गया था। एक दो मुसलमानों से महाराणा बहुत प्रसन्न थे और वे उन्हें अपने वशवर्त्ती करने का उद्योग करते रहते थे। उदयपुर का राजधर्म शैव था। महाराणा भी ऊपर से शैवमत के प्रति अनुराग प्रकाशित करते थे, परन्तु उनके भीतर नास्तिकता और धर्मापहीनता का अंकुर प्ररोहित हो गया था। ऐसी अवस्था देखकर पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और कविराज श्यामलदास मन में बहुत दुःखित रहते थे और उन्हें यह चिन्ता रहती थी कि किस प्रकार महाराणा का मन धर्म की ओर आकृष्ट करें और इसके लिए वे सदा यत्न पर रहते थे, अतः जब वे महाराणा की सेवा में जाते तो रामायणादि धर्मग्रन्थ अपने साथ ले-जाते और वहाँ जाकर उन ग्रन्थों को इस प्रकार रखते जिससे महाराणा की उनपर दृष्टि पड़े। महाराणा उन पुस्तकों को देखकर कभी-कभी पूछते कि वे क्या ग्रन्थ हैं और इस मिष से इन लोगों को धर्म की बातें महाराणा के कानों में डाल देने का अवसर प्राप्त हो जाता था।

स्वामीजी के समाचार सुनने में महाराणा की रुचि—उन दिनों समाचारपत्रों में स्वामीजी की बहुत चर्चा रहती थी और उनके व्याख्यानों और शास्त्रार्थों के वृत्तान्त भी प्रकाशित हुआ करते थे। पण्ड्याजी और कविराजजी समाचारपत्रों में से अन्य समाचारों के साथ-साथ महाराज के समाचार भी महाराणा को सुना दिया करते थे, जिन्हें वे रुचिपूर्वक सुना करते थे। राजदरबार में सभी लोग राजा को प्रसन्न करने का यत्न किया करते हैं और जिस विषय की ओर उनकी रुचि देखते हैं उसके अनुकूल ही कार्य करने का उद्योग करते हैं। महाराणा के चित्त में महाराज के प्रति प्रीति का सञ्चार देखकर महाराणा के कृपापात्र मुसलमान कर्मचारी भी उर्दू समाचार-पत्रों में से महाराज सम्बन्धी समाचार उन्हें सुनाया करते थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी के दर्शनों की इच्छा—इस प्रकार महाराणा के हृदय में महाराज के प्रति श्रद्धा और जिज्ञासा का उदय हुआ और वे महाराज के दर्शनों की इच्छा करने लगे, अतः पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने महाराज को पत्र लिखा कि यदि कभी आपका सङ्कल्प राजस्थान की ओर आने का हो तो मुझे सूचना देवें। कविराज श्यामलदासजी से भी महाराज का पत्र-व्यवहार था।

महाराणा ने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा—पण्ड्याजी सत्यार्थप्रकाश महाराणा के पास ले-गये। महाराणा ने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा और पढ़कर उनका अनुराग महाराज में और भी बढ़ गया और महाराज के दर्शनों की इच्छा बलवती हो गई, परन्तु दोनों के मिलने में एक अड़चन थी।

महाराणा और स्वामीजी के मिलने का सुयोग—महाराणा को यह स्वीकार न था कि अपने राज्य से बाहर जाकर महाराज से भेंट करें और महाराज बिना निमन्त्रित हुए किसी राजा के पास जाने को उद्यत न थे। इतने में ही एक घटना उपस्थित हो गई जिससे दोनों के सम्मिलन का अवसर प्राप्त हो गया। चित्तौड़ से खँडवे तक रेलवे लाइन बनकर तैयार हुई। रेलवेवालों ने उसके उद्घाटन के लिए भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड रिपन से प्रार्थना की। लार्ड रिपन भी चित्तौड़ देखने के लिए उत्सुक थे। महाराणा को जी०सी०एस०आई० की उपाधि भी दी जानेवाली थी, परन्तु महाराणा उदयपुर राज्य से बाहर जाकर उसे ग्रहण करने पर समहत न थे, अतः यह निश्चित हुआ कि लार्ड रिपन स्वयं चित्तौड़ आकर महाराणा को उस उपाधि से अलंकृत करें, अतः इसके लिए चित्तौड़ में लार्ड रिपन के दरबार का आयोजन होने लगा। महाराणा भी चित्तौड़ पहुँच गये।

स्वामीजी का चित्तौड़ जाने का सङ्कल्प—इधर महाराज के जी में भी चित्तौड़ जाने की इच्छा हुई, क्योंकि उन्होंने समझा कि इस अवसर पर राज्य के सभी गण्य-मान्य सरदार तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आएँगे और उनमें धर्मप्रचार का सु-अवसर प्राप्त होगा, अतः उन्होंने चित्तौड़ जाने का सङ्कल्प कर लिया। बनेड़े से ही उन्होंने कविराज श्यामलदास को पत्र लिखा कि हम २७ अक्तूबर को चित्तौड़ पहुँच जाएँगे, आप स्थान आदि का प्रबन्ध कर दें। कविराजजी उन दिनों रुग्ण थे, अतः वे पहले से कोई प्रबन्ध न कर सके। महाराज बनेड़े से भीलवाड़ा और सोनियारा होते हुए चित्तौड़ पहुँचे और गम्भीरी नदी के पश्चिमी तट पर रुण्डेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे। कविराजजी को जब महाराज के आगमन का समाचार मिला तो उन्होंने महाराणा से आज्ञा लेकर महाराज के लिए नदी तट पर एक डेरा लगवा दिया तथा भील कम्पनी के एक गार्ड का पहरा लगवा दिया और अन्य सब प्रबन्ध करा दिया।

महाराज के पधारने का समाचार बात-की-बात में सर्वत्र फैल गया और अनेक लोग उनके दर्शन और उनसे धर्मालाप करने के लिए उनके पास आने लगे।

तैलिङ्गी शास्त्री—कविराजजी का रोग जब शान्त हुआ तो वे भी महाराज की सेवा में रहने लगे। उनके साथ एक तैलिङ्गी शास्त्री भी आया करते थे और दार्शनिक विषयों पर बात-चीत किया करते थे, परन्तु महाराज की युक्तियों का उत्तर न दे सकते थे। शास्त्रार्थ इसी बात पर था कि पदार्थ छह हैं वा सात। महाराज अभाव की गणना पदार्थों में नहीं करते थे।

शाहपुराधीश—कविराजजी की प्रेरणा से राज्य के सभी बड़े-बड़े जागीरदार, सरदार महाराज के दर्शनों को आये। उन्हीं में राजाधिराज सर नाहरसिंहजी शाहपुराधीश भी थे जो महाराज के अनन्य भक्त बन गये और आजन्म उनकी शिक्षाओं को मानते रहे।

निर्भय वाणी—दरबार की समाप्ति के पश्चात् एक दिन महाराणा ने महाराज को अपने पास बुलाया, महाराज गये और महाराणा को राजनीति का कुछ उपदेश करके और राजाओं के चरित्र में वेश्यागमन के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोष दिखाकर लौट आये थे। महाराज की निर्भय-वाणी का महाराणा के चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने अमात्यवर्ग और सरदारों से महाराज की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि केवल एक यही मनुष्य है जो बिना लाग-लपेट के सदुपदेश करता है।

महाराणा स्वामीजी के आसन पर पधारे—४ दिसम्बर सन् १८८१ को स्वयं महाराणा महाराज के डेरे पर पधारे। महाराज से वार्त्तालाप करके वे परम सन्तुष्ट हुए और उनके हृदय में महाराज के प्रति श्रद्धा-भक्ति का जो अंकुर पहले से उगा हुआ था वह पल्लवित और प्रवर्द्धित हो गया। महाराज ने महाराणा से कहा कि हमारी धारणा थी कि भारत के इस समय के राजागण प्रायः अकर्मण्य होते हैं, परन्तु आपसे मिलकर विश्वास हो गया कि आप बहुत योग्य हैं। हमें पण्डित मोहनलाल ने लिखा था कि आप कर्मवीर और 'यथा नाम तथा गुणः' हैं। हमने आपको वैसा ही पाया।

महाराज के अनुरोध पर महाराणा ने पण्डित मोहनलाल को उदयपुर से बुलवाया। वे आकर महाराज से मिले। महाराज ने महाराणा से पण्डितजी की प्रशंसा की और इससे वे महाराणा के और भी विश्वासपात्र बन गये।

चित्तौड़ की सैर—एक दिन महाराणा साहब महाराज के डेरे पर पधारे और महाराज को अपने साथ सवार कराकर दरबार के स्थान पर ले-गये और चित्तौड़ के अनेक स्थान उन्हें दिखाये तथा उनसे प्रार्थना की कि जब हम उदयपुर जाएँ, आप भी हमारे साथ वहाँ चलने की कृपा करें। महाराज ने कहा कि इसका उत्तर पीछे देंगे। इसके पश्चात् महाराज ने कहला दिया कि इस समय तो हम बम्बई जा रहे हैं, वहाँ से लौटते समय यदि महाराणा की ऐसी इच्छा होगी तो उदयपुर आ जाएँगे, हम खँडवा पहुँचकर सूचना देंगे। यदि निर्दिष्ट दिनों के भीतर हमारे पास महाराणा का उत्तर पहुँच जाएगा तो हम उदयपुर आ जाएँगे, नहीं तो अन्यत्र चले जाएँगे।

जीवनगिरि का द्वेष—उन दिनों चित्तौड़ में स्वामी कैलाशपर्वत के शिष्य जीवनगिरि और आत्मानन्दगिरि भी ठहरे हुए थे। महाराणा स्वामी कैलाशपर्वत और जीवनगिरि का मान करते थे। महाराज के चित्तौड़ पधारने पर जीवनगिरि ने उनके विरुद्ध बहुत-कुछ कहा-सुना और एक दिन स्वयं महाराणा से प्रस्ताव किया कि हमारा स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ होना चाहिए, परन्तु महाराणा ने कहा कि आप दोनों ही हमारी श्रद्धा के पात्र हैं, हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं। जीवनगिरि को यह देखकर कि महाराणा स्वामीजी का इतना मान करते हैं, महाराज से ईर्ष्या हो गई थी और इससे वे बहुत दुःखित थे।

सम्मान-प्रदर्शन—जब महाराणा चित्तौड़ से उदयपुर जाने लगे तो उन्होंने सम्मान-प्रदर्शनार्थ ५०० रुपये महाराज की भेंट किये और २०० रुपये अन्य दरबारियों ने दिये। जब यह बात जीवनगिरि को ज्ञात हुई तो उनके रोष का ठिकाना न रहा और ऊल-जलूल बकने लगे। महाराणा ने उन्हें शान्त करने के लिए ५०० रुपये उनके पास भी भिजवाये, परन्तु वे इतने जले-भुने बैठे थे कि रुपये न लिये और चित्तौड़ से चले गये।§

---

§ दयानन्दप्रकाश में लिखा है कि पहले महाराणा ने कतिपय विश्वस्त जनों को महाराज का रहन-सहन आदि देखने के लिए भेजा। जब उन लोगों ने लौटकर स्वामीजी की प्रशंसा की तब एक दिन महाराणा स्वामीजी के डेरे पर प्रच्छन्नरूप से आये और एक पटड़े पर बैठ गये। महाराज ने उनकी ओर संकेत करके कहा कि आपका साक्षात्कार तो पहले कभी हुआ नहीं दीखता। इसपर शाहपुराधीश ने कहा कि आप ही श्री महाराणा हैं। इसपर स्वामीजी ने कहा कि श्रीमानों को इस प्रकार साधारण आसन पर बैठना शोभा नहीं देता। महाराणा ने उत्तर दिया कि सन्तों के पास साधारण आसन पर बैठने में ही गृहस्थों की शोभा है। अन्यत्र सर्वत्र तो हमें राजसी ठाठ-बाठ के साथ जाना ही पड़ता है, यदि संन्यासियों के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मातृशक्ति को प्रणाम—कहते हैं कि एक दिन स्वामीजी कई राजाओं और राजकर्मचारियों के साथ भ्रमण को जा रहे थे। मार्ग में एक देवालय आ गया। वहाँ छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे। उन्हीं में एक चार वर्ष की कन्या भी थी जो वस्त्र पहने हुए न थी। महाराज ने उसे देखकर सिर झुका दिया। साथ के लोगों ने कहा कि आप मूर्त्तिपूजा का कितना ही खण्डन करें, परन्तु देव-बल का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देवालय के सामने आपका मस्तक अपने-आप झुक गया। महाराज तत्काल खड़े हो गये और कहा 'देखते नहीं हो, यह मातृशक्ति है जिसने हम सबको जन्म दिया है'।

महाराज २७ अक्तूबर से २० दिसम्बर सन् १८८१ तक चित्तौड़ रहे, फिर वहाँ से बम्बई की ओर चले गये।

(२१—२७ दिस०) इन्दौर (पौष कृ० ३०—पौष शु० ६)

२१ दिसम्बर सन् १८८१ को महाराज इन्दौर पहुँचे। वहाँ जाकर ज्ञात हुआ कि महाराजा इन्दौर से बाहर हैं। पण्डित श्रीनिवास जज ने महाराज को बड़ी श्रद्धा और सम्मान से ठहराया। महाराज इन्दौर ७ दिन रहे और लोगों को अपने उपदेश से कृतार्थ करते रहे। २७ दिसम्बर को महाराज मुम्बई चले गये।

सत्संग में भी उसी ठाठ-बाठ से आये तो उसमें विशेषता ही क्या हुई ? यह घटना सम्भव हो सकती है। उपरिलिखित घटना से इसमें कुछ विशेष है। विरोध इतना ही है कि उपर्युक्त घटना में पहले स्वामीजी का महाराणा के पास जाना लिखा है और इसमें महाराणा का उनके पास आना, परन्तु यदि दयानन्दप्रकाश की घटना सत्य हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि पहले महाराणा ही स्वामीजी के पास आये थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तविंश अध्याय

पौष संवत् १९३८—फाल्गुन संवत् १९३९=दिसम्बर ८१—मार्च ८३

(३० दिस० ८१–२४ जून ८२) मुम्बई (पौष शु० ६ सं० ३८–आ० शु० ८ सं० ३९)

३० दिसम्बर सन् १८८१ को महाराज मुम्बई पहुँचे। उनके स्वागत के लिए रेलवे स्टेशन पर कर्नल आल्काट और आर्यसमाज मुम्बई के सभासद् उपस्थित थे। जब महाराज गाड़ी से उतरे तो सबने बड़े प्रेम से उन्हें 'नमस्ते' कहा। महाराज ने भी वैसे ही प्रेम से सबका प्रत्यभिवादन किया। कर्नल आल्काट आग्रह करके उन्हें बालकेश्वर के गोशाला स्थान पर ले-गये जहाँ वे स्वयं ठहरे हुए थे।

इस बार महाराज ने मुम्बई में निम्नलिखित व्याख्यान दिये।

ठाकुर साहब मौर्वी व्याख्यान में पधारे—फ़रवरी में एक वक्तृता महाजन बाड़ी में हुई थी उसमें सेठ लछमनदास खेमजी के साथ ठाकुर साहब मौर्वी भी पधारे थे। वक्तृता की समाप्ति पर जब ठाकुर साहब सभा-स्थल से जाने लगे तो महाराज ने उनके पास जाकर कहा कि ठाकुर साहब आप जाने में इतनी शीघ्रता क्यों करते हैं। जो कुछ व्याख्यान में आपने सुना वह सब आपका ही है।

वक्ता आपके राज्य का ही निवासी है—ठाकुर सहाब इस बात को न समझ सके तब महाराज ने उनसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि वक्तृता देनेवाला आपके ही राज्य का रहनेवाला है।

मुम्बई समाचार नामक पत्र में महाराज की वक्तृताओं की रिपोर्ट प्रकाशित हुआ करती थी।

प्राचीनकाल में दूध-दही की बहुतायत—३ जून की वक्तृता के सम्बन्ध में उसमें छपा था कि आज वृष्टि के कारण अधिक लोग एकत्र नहीं हुए थे फिर भी प्रायः २५० मनुष्य उपस्थित थे। स्वामीजी ने उस सभा में कहा था कि आजकल दूध-घी बहुत मँहगा हो गया है, बहुत-से लोग इस समय इन वस्तुओं को नहीं खा सकते। गुजरात के ग्रामों में अनेक लोग दूध-दही को मुँह में नहीं दे सकते। यदि किसी के घर में पुराने बही-खाते हों तो उनके देखने से ज्ञात हो सकता है कि पुराने समय की अपेक्षा इस समय ये वस्तुएँ कितनी महार्घ हो गई हैं।

हमें व्यापार में प्रवृत्त होना चाहिए—देशोन्नति के विषय में कहा था कि इस समय हमारे देशवासियों को वाणिज्य व्यापार में प्रवृत्त होना चाहिए और इतर देशों में जाकर वाणिज्य करना चाहिए। कनौजिये ब्राह्मण पलटनों में भरती होकर काबुल आदि देशों में जाते हैं, परन्तु वाणिज्य के उद्देश्य से देशान्तर में नहीं जाते। इस देशवालों को उचित है कि अपनी कन्याओं के विवाह अपेक्षाकृत दूरतर देशों में करें। इससे धीरे-धीरे उन देशों के साथ हमारा सम्बन्ध निबद्ध हो जाएगा।

वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है—११ जून की वक्तृता के सम्बन्ध में लिखा था कि स्वामीजी ने कहा था कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है। उत्तरकाल में ब्राह्मणों ने इसे प्रचलित कर दिया। वेद में जीवित पिता, माता, आचार्य और अतिथिरूपी मूर्त्तियों की पूजा का विधान है।

मन्त्र शब्द का अर्थ—'मन्त्र' शब्द आजकल अन्यथा-अर्थों में प्रचलित हो गया है। दुष्ट लोग हनुमान्,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काली आदि के मन्त्र द्वारा कुसंस्कारापन्न लोगों का धनहरण करते हैं। मन्त्र शब्द का प्रकृत अर्थ विचार है, इसी कारण विचारशील व विचारपटु मनुष्य ही मन्त्रीपद पर आरूढ़ होते हैं। यन्त्र शब्द से कला प्रभृति का ग्रहण होना चाहिए, परन्तु मन्त्र शब्द के समान यन्त्र शब्द भी विकृत अर्थों में व्यवहृत होने लगा है। लोक में मारण, उच्चाटन आदि अर्थों में ही मन्त्र, यन्त्र शब्दों का प्रयोग होता है।

श्राद्ध की अप्रामाणिकता—'पितृ' शब्द के ऊपर कहा था कि पूर्वज, पूर्वपुरुष ही पितृ लोग हैं। कोई नहीं जानता कि मृत पितर मरने के पीछे किस स्थान में रहते हैं। इसका किसी प्राचीन ग्रन्थ में प्रमाण नहीं है कि मृत पितर श्राद्ध से सन्तुष्ट और तृप्त होते हैं।

मैं वेद से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करूँगा—१३ जून को एक पण्डित व्यंकटेश्वराचार्य ने मुम्बई समाचार में लिखा था कि स्वामी दयानन्द कहते हैं कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है, मैं सिद्ध करूँगा कि है। इसके लिए विद्वानों की एक कमेटी होनी चाहिए।

स्वामीजी मेरे सामने आने से डरते हैं—व्यंकटाचार्य को मिस्टर रामदास छवीलदास बैरिस्टर के चचा देवीभक्त ने ही स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत किया था और उन्हें कुछ रुपया भी दिया था। व्यंकटाचार्य ने यह भी लिखा था कि स्वामी दयानन्द भीरुता के कारण मेरे सम्मुख आने से डरते हैं। व्यंकटाचार्य के लेख का उत्तर मिस्टर रामदास छवीलदास ने संस्कृत में श्लोकबद्ध दिया था। उसपर स्वामीजी ने हस्ताक्षर किये और वह व्यंकटाचार्य के पास भेजा गया था। उन श्लोकों में से केवल आधा श्लोक मिस्टर रामदास छवीलदास को, जब देवेन्द्रबाबू उनसे मिले थे, याद था। वह इस प्रकार था—

'भीतः कदा नाम मृगेन्द्रशावो दीनं मुखं वीक्ष्य मृगाङ्गनायाः।' अर्थात् सिंह का बच्चा हरिणी के दीन मुख को देखकर कब डर सकता है।

दूर से ढोल पीटते रहे—व्यंकटाचार्य दूर ही से शास्त्रार्थ का चैलेंज देते रहे, परन्तु महाराज के सम्मुख आकर शास्त्रार्थ करने का उन्हें कभी साहस न हुआ।

वेद से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करनेवाले को पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार—आर्यसमाज मुम्बई के एक प्रतिष्ठित और धनाढ्य सभासद् सेठ मथुरादस लौजी ने एक विज्ञापन दिया था कि जो कोई मनुष्य मूर्त्तिपूजा के वेदविहित होने का निश्चय करा देगा उसे मैं पाँच हज़ार रुपये पारितोषिक दूँगा। यह विज्ञापन उन्होंने मई सन् १८८२ की किसी तारीख को दिया था, परन्तु न तो व्यंकटाचार्य ही और न कोई अन्य पण्डित ही मूर्त्तिपूजा को वेदविहित सिद्ध करने में प्रयत्नशील हुआ।

गोरक्षा का समर्थन—११ जून को अहिंसा पर बोलते हुए महाराज ने गोरक्षा का बड़ा प्रबल समर्थन किया था। उसके पश्चात् मूलजी जेठा मार्केट में भी उन्होंने इसी विषय पर एक प्रबल भाषण दिया। भाटिया लोग प्रायः स्वामीजी के विरुद्ध थे, परन्तु इन भाषणों को सुनकर उन्होंने विरोध का परित्याग कर दिया था और महाराज के गोरक्षा मेमोरियल पर लोगों के हस्ताक्षर कराने के लिए बहुत कुछ उद्योग किया और अपनी कोठियों पर गोरक्षा विषय पर महाराज के व्याख्यान भी कराये।

ठाकुरदास जैन का नोटिस—ठाकुरदास जैन ने १३ जून को मुम्बई के सालिसिटर स्मिथ और फ़ायर के द्वारा महाराज को नोटिस दिया था कि आपने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४०२ और ४०३ पर जैन धर्म के सम्बन्ध में जो श्लोक उद्धृत किये हैं वे झूठे हैं, आप अपना अपराध स्वीकार कीजिए और उन श्लोकों को सत्यार्थप्रकाश से निकाल दीजिए अन्यथा आपपर अभियोग चलाया जाएगा। स्वामीजी ने इस नोटिस का उत्तर ११ जून को पेन गिल्वर्ट अटारनी के द्वारा दिया था कि मैंने जो कुछ लिखा है देख-भालकर और विचार करके लिखा है, यदि मुझे मेरी भूल दिखा दी जाएगी तो दूसरे संस्करण में उसे दूर कर दूँगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैनियों को सत्यार्थप्रकाश पर आक्षेप करने की उसके छपने के कई वर्ष बाद सूझी। उन्होंने किसी विद्वान् से तो आक्षेप कराये नहीं जो स्वामीजी उनका यथोचित उत्तर देते। एक अर्द्धशिक्षित जैनी ठाकुरदास गुजराँवाले को आगे कर दिया जो भाषा के चार अक्षर भी शुद्ध नहीं लिख सकता था। वह आरम्भ से यही कहता रहा कि या तो बताओ कि जो प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में दिये हैं वह जैनियों के किस ग्रन्थ के हैं, नहीं तो क्षमा माँगो, अन्यथा हम नालिश करेंगे। उसके पत्रों का उत्तर आर्यसमाज मेरठ और गुजराँवाले के मन्त्रियों की ओर से दिये गये। अन्त में जैनियों के गुरु श्री पूज्य आत्माराम को लिखा गया कि यदि आप सत्याऽसत्य का निर्णय चाहते हैं तो स्वयं सामने आकर शास्त्रार्थ कीजिए अथवा किसी अन्य विद्वान् को शास्त्रार्थ के लिए सन्नद्ध कीजिए। इसपर उन्होंने कुछ आक्षेप स्वामीजी के पास लिखकर भेजे जिनका प्रमाणों के पते सहित उत्तर भेज दिया गया§। जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कुछ न लिखा, परन्तु ठाकुरदास बराबर आन्दोलन करता रहा और जैनियों को स्वामीजी पर अभियोग चलाने के लिए उकसाता रहा। उसी का फल ऊपर का नोटिस था। स्वामीजी का नोटिस पाकर ठाकुरदास और जैन समुदाय शान्त हो गया।

यहाँ एक बात हमें अवश्य कह देनी चाहिए कि जिन ग्रन्थों के प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में दिये गये थे वे चार्वाक आदि सम्प्रदायों के थे, जो बौद्ध सम्प्रदाय समझे जाते हैं, परन्तु उन दिनों जैन और बौद्ध का एक ही उद्गम माना जाता था। उन दिनों के जैन विद्वान् राजा शिवप्रसाद सी०एस०आई० ने अपने ग्रन्थ इतिहास-तिमिर-नाशक में इस बात को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया था। इन्हीं आधारों पर स्वामीजी ने उक्त आक्षेप किये थे। अब अनेक विद्वानों की सम्मति है कि जैन और बौद्ध एक-दूसरे से स्वतन्त्र मत हैं यद्यपि दोनों की बहुत-सी बातें आपस में मिलती हैं। यह विषय अब भी विवादास्पद ही है।

प्रचार में परिवर्त्तन—इस समय महाराज पूर्व की भाँति मूर्त्तिपूजा के खण्डन पर विशेष बल नहीं देते थे। इस समय वे गोरक्षा के आन्दोलन में लगे हुए थे। उसी पर उन्होंने कई वक्तृताएँ दी थीं। इस बार प्रायः सभी लोग श्रद्धान्वित चित्त होकर उनके पास आते-जाते थे। जिन्होंने पहली बार उनसे शत्रुता की थी इस बार वे लोग भी प्रीति के साथ उनके दर्शन के लिए आते थे।

मुसलमान वेदान्ती का वैर-त्याग—खोजा सम्प्रदाय के एक मुसलमान वेदान्ती ने पहली बार उनका विरोध किया था, इस बार उसका विरोध भी शान्त हो गया था। एक दिन वह महाराज के पास आया और उसने कहा कि मैंने पहली बार आपका विरोध किया था। उसका कारण यह था कि आपके शत्रुओं ने मुझे आपके विरुद्ध उकसाया था। मैं अपने अपराध के लिए क्षमा-प्रार्थना करता हूँ, आप यथार्थ में महापुरुष हैं।

राणडे महोदय से भी न मिले—इस बार महाराज वेदभाष्य के कार्य में बहुत व्यापृत थे। उन्होंने विज्ञापन दे दिया था कि वे प्रातःकाल ८ बजे से सायङ्काल के ५ बजे तक किसी से न मिलेंगे। ५ बजे से रात्रिपर्यन्त मिल सकेंगे। एक दिन श्रीमान् गोविन्द महादेव राणडे महाराज से मिलने आये और एक घण्टे तक प्रतीक्षा करते रहे। महाराज ने उनसे कहला दिया कि आप क्षमा करें इस समय मैं आपसे अधिक देर तक बातें नहीं कर सकूँगा। यह सुनकर वे चले गये और फिर ५ बजे सायङ्काल आकर मिले। महामना राणडे स्वामीजी को गुरुभाव से मानते थे और एक बार उन्होंने प्रयाग की सोशल कान्फ्रेंस में वक्तृता देते हुए स्वामीजी को अपना गुरु बतलाया था।

विलक्षण धारणा शक्ति—महाराज की धारणा-शक्ति विलक्षण थी। वे एक बार जिस मनुष्य को देख लेते थे उसे बहुत कम भूलते थे। दानापुर से बा० जनकधारीलाल, रामनारायणलाल और पं० आदित्यनारायण

---

§ ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में पं० आत्माराम और ठाकुरदास के नाम अनेक पत्र छपे हैं। देखो पृष्ठ २१०, २३४, २५०, २७२, ३४२। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज मुम्बई के दर्शनार्थ और विशेषतः महाराज से मिलने के लिए मुम्बई गये थे। दूर से देखकर ही महाराज ने उन्हें पहचान लिया और कहा कि दानापुरवाले आते हैं, परन्तु आगन्तुकों ने महाराज को न पहचाना। कारण यह था कि जब महाराज दानापुर गये थे तब बहुत दिनों तक रोगी रहने के कारण उनका शरीर कृश हो रहा था और इस समय वे हृष्ट-पुष्ट थे। जब महाराज ने उनका नमस्ते कहकर स्वागत किया तब बोली से उन्होंने पहचाना। उस समय महाराज आर्यसमाज के उत्सव में जाने को तैयार थे। उन्होंने आगन्तुकों से कहा कि आर्यसमाज में इस समय हवन होनेवाला है, आप शीघ्र स्नान करके चलने के लिए तैयार हो जाइए। इसपर वे शीघ्र ही निवृत्त होकर महाराज के साथ उत्सव में गये।

चतुर्मुख ब्रह्मा—वहाँ एक ब्राह्मण ऐसा था जिसे चारों वेद सस्वर कण्ठ थे। महाराज ने दानापुरवालों से कहा कि तुम लोग सुनते रहे हो कि ब्रह्मा के चार मुख हैं सो यही चतुर्मुखी ब्रह्मा हैं। उसी को यज्ञ में ब्रह्मा का आसन दिया गया था।

मनोहर सामगान—सायंकाल महाराज ने वेद-विषय पर व्याख्यान दिया। उससे पहले एक दक्षिणी ब्राह्मण ने तानपूरे पर सामवेद का गान किया, जिसे सुनकर लोग मुग्ध हो गये। उसने एक समाँ बाँध दिया। डाकखाने का एक बड़ा अफ़सर भी अपने परिवारसहित उपस्थित था। वह भी सुनकर चकित रह गया। उत्सव में महाराज का एक व्याख्यान संस्कृत में भी हुआ था। उसमें उन्होंने कहा था कि मनु का दण्ड-विधान आजकल के दण्ड-विधान से अच्छा था। उससे चोर आगे को चोरी करने से डरता था अब तो वह उससे प्रेम करता है, उसे जेल में घर से भी अच्छा भोजन मिलता है।

स्वयमेव शंका-समाधान हो गया—बाबू जनकधारीलाल वास्तव में महाराज से अपनी शंकाओं का, जो उनके मन में समय-समय पर उठती रही थीं, निवारण करने के लिए ही मुम्बई गये थे। उन्होंने अपने मुम्बई आने का उद्देश्य महाराज से प्रकट न किया था, परन्तु महाराज ने उनसे स्वयं ही कहा कि आप कुछ प्रश्न पूछने के लिए आये हैं। उन प्रश्नों को आप एक काग़ज पर लिख लें ऐसा न हो कि फिर उन्हें भूल जाएँ। वे प्रश्न लिखने बैठे, परन्तु जो प्रश्न लिखते थे उसका उत्तर तत्काल ही उन्हें भासित हो जाता था अन्त को एक प्रश्न भी ऐसा न रहा जिसका उत्तर उन्हें भासित न हो गया हो।

उपासना की रीति—जब महाराज ने पूछा कि कहिए क्या पूछना है तो उन्होंने केवल यही कहा कि परमेश्वर की उपासना किस रीति से करनी चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि हमने वह रीति आपको और आपके साथियों को दानापुर में जोन्स साहब के बंगले पर बताई थी। उन्होंने कहा जैसी रीति आपने बताई थी मैं उसी के अनुसार करता हूँ। महाराज ने कहा तुम नहीं करते, हमारे सामने करके दिखलाओ। उन्होंने प्राणायाम किया तो महाराज ने कहा कि जब तुम भीतर की वायु को बाहर फेंकते हो तो तुम्हारा मूलाधार ऊपर को उठ जाना चाहिए, वह तुमसे नहीं बनता।

मन की एकाग्रता का उपाय—अच्छा तुम जैसे करते हो वैसे ही करते रहो। फिर उन्होंने पूछा कि मन स्थिर नहीं होता। महाराज ने कहा कि उसे एक जगह ठहरा लो। बाबू जनकधारीलाल ने कहा कि नहीं ठहरता, क्या इसके लिए किसी वस्तु का ध्यान करने की आवश्यकता है। महाराज ने कहा कि नहीं, और यदि यह तुमसे नहीं हो सकता तो अपने भीतर किसी तिल वा सूई की नोक के बराबर किसी वस्तु की कल्पना कर लो और उसपर ध्यान जमाओ, फिर उसके टुकडे करके एक टुकड़े पर ध्यान जमाओ। ऐसे ही टुकड़े करते चले जाओ यहाँ तक कि अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा रह जाए फिर उसे भी उड़ा दो, तब तुम्हारी धारणा हो जाएगी। महाराज समाधि के विषय पर भी कहना चाहते थे, परन्तु बाबू जनकधारीलाल ने कहा कि अब इतना ही पर्याप्त है, जब इतना अभ्यास हो जाएगा तब आगे को पत्र द्वारा पूछ लूँगा। महाराज ने कहा कि मैं पत्र का उत्तर न दे सकूँगा तो बा० जनकधारीलाल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ने कहा कि जब आप दानापुर के निकट आएँगे तब मिलकर पूछ लूँगा।

यम-नियम का सेवन करो, एक मुकद्दमे में झूठी साक्षी देकर आये थे—पं० आदित्यनारायण ने भी महाराज से उपासना में मन लगाने की विधि पूछी ! महाराज ने उनसे कहा कि यम-नियम का सेवन करो। उन्होंने दूसरी और तीसरी बार भी यही प्रश्न किया और महाराज ने हर बार यही उत्तर दिया। पण्डितजी इसपर कुछ चिढ़े कि हमारा आना व्यर्थ हुआ, कुछ भी पल्ले न पड़ा। फिर उन्होंने सोचा कि महाराज के इस उत्तर का क्या कारण है तो उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो गया। वे एक मुकद्दमे में झूठी साक्षी देकर आये थे और फिर भी देनेवाले थे। बस यही कारण महाराज के यम-नियम पर इतना बल देने का था। महाराज यह वृत्त अपनी योगविभूति से जान गये थे।

सेठ के लज्जालु पुत्र को उपदेश—एक दिन एक सेठजी आये। उनका दशवर्षीय पुत्र भी उनके साथ था। वह अत्यन्त लज्जालु था। किसी प्रकार महाराज ने उसे अपने पास बुलाया और उसे कहा कि तुम नित्य सवेरे उठकर और मुँह-हाथ धोकर अपने माता-पिता को 'नमस्ते' किया करो और पाठशाला जाते हुए अपनी पुस्तकें स्वयं ले-जाया करो, नौकर से मत लिवा जाया करो। यदि मार्ग में कोई स्त्री तुम्हें मिल जाए तो उसकी ओर दृष्टि जामाकर मत देखो, अपनी दृष्टि नीची कर लो, नहीं तो उस स्त्री की आकृति तुम्हारे मन में घुसकर एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न करेगी और तुम्हें धातु-क्षीणता का रोग हो जाएगा, जिससे तुम्हारा बहुत अनिष्ट होगा।

पेंशनर ब्राह्मण को उपदेश—एक दिन एक ब्राह्मण आया। उससे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह सरकारी सेवा में था और उस समय पेंशन पाता था। वह कुछ संस्कृत भी जानता था। महाराज ने उससे कहा कि देखो ! तुमने ब्राह्मणकुल में जन्म लिया है, तुम्हें इस अवस्था में जगत् का उपकार करना चाहिए। आजकल ईसाई पादरी कोल-भीलादि को ईसाई बना रहे हैं, तुम्हें उन्हें ईसाई होने से बचाना चाहिए, परन्तु वह उद्यत न हुआ और यही कहता रहा कि पुत्र-कलत्र की चिन्ता के कारण वह उपदेश-कार्य नहीं कर सकता। महाराज ने यह भी कहा कि तुम्हारी पेंशन तुम्हारे पुत्र-कलत्र के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त है, परन्तु महाराज के उपदेश का बीज उसकी ऊसर-हृदय-भूमि में अंकुरित नहीं हुआ।

ऐसी-ऐसी घटनाओं से विदित होता है कि महाराज को देशहित की कितनी चिन्ता थी ! वे जब कोई अवसर लोगों को देशहित-साधन के लिए प्रेरित करने का देखते थे तो उसे हाथ से न जाने देते थे।

आर्यसमाज के सभासदों को कुछ काल से आर्यमन्दिर बनाने की चिन्ता थी। इसके लिए उन्होंने १००० गज़ भूमि भी क्रय कर ली थी। महाराज यदि चाहते तो मन्दिर के लिए बहुत-कुछ धन एकत्र हो सकता था, परन्तु महाराज समझते थे कि एक धर्मोपदेशक की स्थिति से उनका यह काम नहीं है।

१००० रु० में से ६०० रु० वापस कर दिये—एक दिन एक मारवाड़ी, जो उनसे बहुत अनुरक्त था, उनके पास आया। वह दलाली का व्यवसाय करता था। उसने कहा कि मैं इस सत्कार्य के लिए कुछ रुपया देना चाहता हूँ। महाराज ने पूछा कि कितना, तो उसने १०००. रु० का एक नोट निकालकर महाराज के सामने रख दिया। महाराज ने उसके मुख की ओर देखकर और उसके वेशादि से उसकी अवस्था का अनुमान करके उससे कहा कि तुम्हारे पुत्र-कलत्र भी होंगे और अन्य व्यय भी होंगे, अतः तुम ६०० रु० ले-जाओ और १०० रु० ही दो। उसने १००० रु० देने पर आग्रह भी किया, परन्तु महाराज ने १०० रु० ही रक्खे और ६०० रु० वापस कर दिये। वह महाराज की सहृदयता और न्यायपरायणता के कारण महाराज के प्रति और भी अनुरक्त हो गया और महाराज की मन-ही-मन प्रशंसा करता हुआ चला गया§।

---

§ स्वामी सत्यानन्दकृत दयानन्दप्रकाश में भी इस घटना का उल्लेख है, परन्तु उसमें १,००० रु० की जगह १०,००० रु० और १०० रु० की जगह १,००० रु० हैं। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्यसमाज के नियमों में परिवर्त्तन—इसी बार आर्यसमाज मुम्बई के पुराने नियमों में परिवर्त्तन किया गया। पहली बार जो नियम बनाये गये थे वे बहुत विस्तृत थे। जब आर्यसमाज लाहौर स्थापित हुआ तो उन नियमों की जगह आर्यसमाज के प्रचलित नियमोपनियम बनाये गये। वे समस्त आर्यसमाजों के लिए थे। इस बार जब महाराज मुम्बई पधारे तो उन्होंने पुराने नियमों के स्थान में आर्यसमाज मुम्बई में भी उन्हीं नियमोपनियमों को प्रचरित करने का प्रस्ताव किया। आर्यसमाज मुम्बई की अन्तरङ्ग सभा ने तो उक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया, परन्तु साधरण सभा से भी उसकी स्वीकारी उचित समझी गई। उक्त सभा ने भी उसे स्वीकार कर लिया, परन्तु यह निश्चय किया कि यदि आर्यसमाज मुम्बई की विशेष अवस्था को दृष्टि में रखते हुए उक्त उपनियमों में किसी परिवर्त्तन की आवश्यकता हो तो वह कर लिया जाए और इसके लिये ५ सज्जनों की एक कमेटी नियत कर दी गई जिसने देशकाल की अवस्था के अनुसार उपनयमों में कुछ परिवर्त्तन कर दिये। नियम वही रहे जो सब समाजों के लिए बनाये गये थे।

पादरी जोंज़ेफ़ कुक को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान—जोज़ेफ़ कुक नामक एक पादरी ने थियोसोफ़ी और वैदिक धर्म पर अपने एक व्याख्यान में कुछ आक्षेप किये थे। इसपर १८ जनवरी सन् १८८२ को महाराज ने पादरी साहब को एक पत्र अंग्रज़ी में लिखाया था।§ जोज़ेफ़ कुक ने अपने व्याख्यान में कहा था कि क्रिश्चैनिटी ईश्वर-मूलक-धर्म है, क्रिश्चैनिटी की नियति यह है कि वह सारे संसार में फैले और अन्य कोई धर्म भी ईश्वरमूलक नहीं है। इसपर उक्त पत्र द्वारा महाराज ने पादरीसाहब को लिखा था कि मैं आगामी रविवार (२२ जनवरी) को फ्रामजी काऊसजी हाल में व्याख्यान दूँगा आप उसमें आकर मुझसे शास्त्रार्थ कर लीजिए। अन्त में लिखा था कि सब (शास्त्रार्थ) पुस्तकाकार हो जाएगा जिससे सर्वसाधारण यह निर्णय कर सके कि कौन-सा धर्म ईश्वरमूलक है‡।

पादरी साहब ने कोई उत्तर न दिया—इस पत्र का कोई उत्तर न देकर पादरी साहब २० जनवरी को ही पूना चले गये। महाराज ने अपने व्याख्यान में क्रिश्चैनिटी का खण्डन करके वैदिक धर्म का ईश्वरोक्त होना सिद्ध किया था। २० जनवरी को कर्नल आल्काट ने अपने व्याख्यान में जोज़ेफ़ कुक के उन आक्षेपों का उत्तर दिया था जो उन्होंने थियोसोफ़ी पर किये थे। महाराज भी उस व्याख्यान में गये थे।

विचित्र किंवदन्ती—एक बार एक संन्यासी मङ्गलगिरि ने मुम्बई में कहा था कि जब स्वामी दयानन्दजी मथुरा में अध्ययन कर रहे थे तो एक दिन वे गोकुल गये थे और वहाँ वल्लभ-सम्प्रदाय के एक मन्दिर में उन्होंने प्रवेश करना चाहा था, परन्तु मन्दिर के अधिकारियों ने उन्हें मन्दिर में घुसने नहीं दिया था और यह कहा था कि इस मन्दिर में केवल गृहस्थ लोग ही प्रवेश कर सकते हैं, संन्यासी नहीं जा सकते। इसपर दयानन्द सरस्वती अत्यन्त रुष्ट होकर चले आये थे और इसी बात से खिजकर उन्होंने मूर्त्तिपूजा और विशेषतः वल्लभ-सम्प्रदाय के मत का खण्डन करना आरम्भ किया था।

समालोचना—यह घटना सत्य हो सकती है, परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि इसी घटना के

---

§ यह पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में पृष्ठ ३१२ पर छपा है। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी (मुंशीराम) द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार" ग्रन्थ में पृष्ठ ३००—३०३ भाषानुवादसहित प्रकाशित हुआ है।

‡ उक्त पत्र के अन्तिम वाक्य में महाराज यह लिखाना चाहते थे कि जिससे सर्वसाधारण यह निर्णय कर सके कि कौन-सा धर्म ईश्वरमूलक (Which religion is of divine origin) है, परन्तु कर्नल आल्काट ने इन शब्दों के स्थान में यह लिख दिया कि कौन-सा धर्म सबसे अधिक ईश्वरीय भावसम्पन्न है (Which religion is most divine)। जब महाराज को दूसरे सज्जन से पत्र का आशय ज्ञात हुआ तो उन्होंने कर्नल के प्रति विरक्ति प्रकट की और फिर पत्र के उस अंश को ठीक कराया। (देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ३२६)। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारण उन्होंने मूर्त्तिपूजा और वल्लभ मत के विरुद्ध शस्त्र धारण किये किसी अंश में भी ठीक नहीं हो सकता। मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध अंकुर तो उनके हृदय में उसी स्मरणीय शिवरात्रि को उत्पन्न हो गया था, जब उन्होंने शिवमूर्त्ति पर मूषक को नैवेद्य खाते देखा था और पीछे आकर शास्त्रालोचन से यह अंकुर पल्लवित और वृद्धिंगत होता गया। किसी मन्दिर के अधिकारियों का दुर्व्यवहार मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध युद्ध का कारण नहीं हो सकता। यदि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा को सत्य समझते तो वह उसके प्रचार में कभी भी कुण्ठित न होते चाहे किसी मन्दिराध्यक्ष ने उनके साथ कितना ही दुर्व्यवहार और अत्याचार किया होता।

उपकार के बदले प्रत्युपकार करो—स्वामीजी का जीवन बड़ा पुरुषार्थमय था। वे आलस्य और अकर्मण्यता के परम शत्रु थे। दूसरों को भी वे यही उपदेश देते रहते थे कि निकम्मे और ठाली न पड़ा रहना चाहिए। दूसरे के उपकार के बदले प्रत्युपकार करना चाहिए, दानभोजी व्यक्तियों को वे सदैव कहते रहते थे कि जिन लोगों के दान से तुम पुष्ट होते हो उनके हित के लिए तुम्हें सदा यत्नशील रहना चाहिए।

ठाली रहकर मत खाओ—एक पंजाबी स्वामीजी के दर्शनार्थ मुम्बई पहुँचा, स्वामीजी ने सत्कारपूर्वक उसे अपने पास ठरहाया। वह कई दिन ठहरा रहा, उसका काम यह था कि दिनभर नगर में घूम आना और रात्रि में आनन्द से सो जाना। स्वामीजी ने जब उसकी यह दशा देखी तो एक दिन उससे कहा कि आलसी होकर दूसरे का अन्न खाते रहना और व्यर्थ समय खोना मेरे सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। आप जब तक यहाँ रहें कम-से-कम इतना तो किया कीजिए कि मुझे अंग्रेज़ी समाचार-पत्र सुना दिया कीजिए।

शिष्टाचार की शिक्षा—एक दिन एक बंगाली सज्जन महाराज के दर्शनों को आया, उसके दाढ़ी थी। गुजरात में हिन्दू दाढ़ी नहीं रखते, वह सज्जन स्वामीजी से बात-चीत करता रहा। थोड़ी देर के पश्चात् उसने जल पीने की इच्छा प्रकट की तो महाराज ने अपने गुजराती शिष्य को जल लाने के लिए कहा। शिष्य ने समझा कि आगन्तुक मुसलमान है और इसलिए उसने आगन्तुक को दोने में पानी पिलाया। जब वह चला गया तो महाराज ने शिष्य को बहुत झिड़का कि तुम्हें अभी तक सभ्यता के साधारण नियम भी ज्ञात नहीं, तुमने उस अतिथि को ग्लास में जल क्यों नहीं पिलाया ? शिष्य ने कहा कि महाराज मैं एक मुसलमान को बर्तन में पानी कैसे पिलाता ? महाराज बोले कि वैसे तो वह मुसलमान नहीं था, प्रत्युत एक बड़ा भारी ज़मींदार था। मेरे पास मुसलमान और ईसाई सभी आते हैं, तुम्हें सभी का आदर करना चाहिए, भविष्य में जब कोई अतिथि जल माँगे तो उसे ग्लास में पानी दिया करो चाहे वह किसी मत का हो।

श्यामजीकृष्ण वर्मा—श्यामजीकृष्ण वर्मा एक अत्यन्त होनहार और कुशाग्र-बुद्धि नवयुवक था और संस्कृत में उसकी बड़ी अच्छी प्रगति थी। वह अपने कॉलेज में सबसे अच्छा समझा जाता था। जब कभी कोई सम्भ्रान्त व्यक्ति कॉलेज का निरीक्षण करने आता था तो प्रिन्सिपल श्यामजीकृष्ण वर्मा को उसके सामने अवश्य पेश करते थे और वह अपने उत्तरों से सबको चकित कर देता था। वह किसी समृद्ध व्यक्ति का पुत्र न था। स्वामीजी उसके चातुर्य को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वह स्वामीजी के पास आने-जाने लगा और उन्हें अपना गुरु मानने लगा। स्वामीजी को उससे यह आशा हुई कि यदि उसे शिक्षणार्थ विलायत भेजा जाए तो उससे वैदिक धर्म के प्रचार-कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी। इसी विचार से प्रयत्न करके उसे विलायत भिजवाया।

स्वामीजी का संस्कृत-पत्र—वहाँ जाकर उसने बहुत दिनों तक स्वामीजी को कोई पत्र नहीं लिखा, तब स्वामीजी ने उसे मेरठ से संस्कृत में एक पत्र लिखा§ जिसमें अन्य प्रश्नों के अतिरिक्त ये प्रश्न भी उससे पूछे

§ यह पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २३६—२४३ तक छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में अभी तक इङ्गलिस्तान में तुम्हारी प्रसिद्धि नहीं फैली ? इस का या तो यह कारण हो कि मैं दूर हूँ और तुम्हारी ख्याति मुझे ज्ञात न हुई हो या यह कि तुम्हें इस काम के लिए अवकाश न मिलता हो। हमारे मित्र प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स की और मैक्समूलर साहब की सम्प्रति वेदशास्त्र के सम्बन्ध में क्या सम्मति है ? और इनकी और औरों की वेदभाष्य के सम्बन्ध में, जो मैं इन दिनों कर रहा हूँ, क्या सम्मति है ?

संस्कृत-पत्र पर मोनियर विलियम्स मुग्ध, संस्कृत मृतभाषा नहीं है—श्यामजीकृष्ण वर्मा ने वह चिट्ठी प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स को दिखाई जिसकी सरल, सुबोध और ललित संस्कृत को देखकर वे इतने मोहित हुए कि उन्होंने उसका अंग्रेज़ी अनुवाद एथिनियम नाम के पत्र के २३ अक्तूबर सन् १८८० के अंक में प्रकाशित कराया और इस चिट्ठी को आदर्श मानते हुए लिखा कि संस्कृत भाषा अभी तक आर्यावर्त्त के पत्र-व्यवहार और दैनिक बोलचाल की भाषा है। आर्यावर्त्तभर में शिक्षित मनुष्यों के बीच में यही भाषा विचार-विनिमय का माध्यम है। आर्यावर्त्त में लगभग २०० भाषाएँ बोली जाती हैं। यदि यह माध्यम न होता तो एक प्रान्त के मनुष्य को दूसरे प्रान्त के मनुष्य से बात-चीत करने में अत्यन्त कठिनता होती। ऐसी दशा में जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत भाषा अप्रयुक्त और अवनत दशा में है, वे भूल करते हैं।

मोनियर विलियम्स द्वारा स्वामीजी की प्रशंसा—श्यामजीकृष्ण वर्मा का परिचय देते हुए मोनियर विलियम्स ने लिखा था कि उसने ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा पाई है जो केवल प्राचीन संस्कृतभाषा के ही विद्वान् नहीं अपितु जिन्होंने मूर्त्तिपूजा आदि का खण्डन और एक ईश्वर की पूजा का समर्थन करके सारे धर्म-सम्प्रदायों में बड़ी हल-चल डाल दी है। स्वामीजी शुद्ध एकेश्वरवाद के माननेवाले हैं और अपने धार्मिक सिद्धान्तों को वेद पर निर्भर करते हैं। इस प्रगति-समर्थक देशोद्धारक का नाम 'दयानन्द सरस्वती स्वामी' है जिनके भाषण के लालित्य और लेख की गम्भीरता का मैं स्वयं साक्षी हूँ, क्योंकि जब मैं मुम्बई में था तो मैंने प्रशंसित स्वामीजी को आर्यसमाज के उत्सव में धर्म-विषय पर उपदेश देते सुना था।

श्यामजीकृष्ण वर्मा की अकृतज्ञता—श्यामजीकृष्ण वर्मा शिक्षा समाप्त करके और बैरिस्टरी पास करके भारत वापस आ गये। वे उदयपुर, रतलाम आदि कई देशी राज्यों में उच्च पदों पर रहे। उन्होंने पुष्कल धन-संग्रह किया, परन्तु आर्यसमाज के कार्यों में न कभी सहयोग दिया, न कभी किसी प्रकार की सहायता की। अन्त में वे विलायत चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया और वे क्रान्तिकारीदल के नेता समझे जाने लगे, जिससे ब्रिटिश सरकार की उनपर कड़ी दृष्टि रहने लगी; तब वह पकड़े जाने के भय से पैरिस चले गये। अन्त को यूरोप के किसी नगर में ही उनका देहान्त हो गया।

दयानन्द-प्रकाश—दयानन्द-प्रकाश में ऐसा लिखा है कि एक दिन मोनियर विलियम्स स्वामीजी से मिले और उनसे बात-चीत करके बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि आपके विचारों का प्रचार यूरोप में भी होना चाहिए। यदि आप यूरोप जाने का संकल्प करें तो आपका व्यय-भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। उसके उत्तर में महाराज ने उन्हें धन्यवाद दिया और कहा कि भारत में अविद्यान्धकार फैला हुआ है, यहाँ सुधार की परम आवश्यकता है। फिर बिना अंग्रेज़ी सीखे वहाँ जाना व्यर्थ है और इसमें बहुत समय लगेगा, पुनः आयु भी अधिक शेष नहीं है। इन कारणों से यूरोप जाना नहीं बन सकता।

भ्रम संशोधन—दयानन्द-प्रकाश का यह लेख भ्रमोत्पादक है। मोनियर विलियम्स इन दिनों भारत में थे ही नहीं। ऊपर लिखा जा चुका है कि अक्तूबर सन् १८८० में उन्होंने स्वामीजी के संस्कृत-पत्र का, जो स्वामीजी ने श्यामजीकृष्ण वर्मा को लिखा था, अनुवाद एथिनियम पत्र में छपवाया था। उनका स्वामीजी से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साक्षात् केवल एक बार ही हुआ था और वह सन् १८७४-७५ में जब स्वामीजी प्रथम बार मुम्बई गये थे। इसका विवरण पहले आ चुका है। मोनियर विलियम्स ने स्वयं इस मिलन का उल्लेख अपने उस लेख में किया है जो उन्होंने स्वामीजी के पूर्वोक्त पत्र के साथ उक्त समाचार पत्र में छपवाया था।

स्वामीजी का सुधार-कार्य सर्वग्राही था। उसमें धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, नैतिक, शिक्षा-सम्बन्धी सब प्रकार का सुधार सम्मिलित था। वे चाहते थे कि आर्यजाति सब प्रकार से समुन्नत हो। वे समाज के देह में से सब प्रकार के रोगों को दूर करना चाहते थे, वे समाज के मस्तिष्क को सब विकारों से मुक्त करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने आर्यसमाज का एक नियम यह रक्खा था कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

स्वामीजी और गोरक्षा—उन्होंने देखा कि गोरक्षा आर्यावर्त्त की उन्नति का मूल है। गोवध से देश की भयङ्कर हानि हो रही है। दूध, घी दिन-प्रतिदिन महँगा हो रहा है और पर्याप्त मात्रा में लोगों को खाने को नहीं मिलता। इसी से उनके शरीर दुर्बल और निर्बल होते चले जा रहे हैं, अनेक प्रकार के रोग उन्हें घेर रहे हैं। कृषि के लिए बलवान् और पुष्ट बैल नहीं मिलते, उनकी संख्या भी कम हो रही है और किसान लोग भूखों मर रहे हैं।

गोवध रोकने का यत्न—अतः उन्होंने गोरक्षा को भी अपने सुधार-कार्य का एक प्रधान अङ्ग बना लिया था। गोरक्षा पर उन्होंने स्थान-स्थान पर व्याख्यान दिये। गोकरुणानिधि पुस्तक लिखी। राजपूताने के एजेण्ट से, पश्चिमोत्तर प्रान्त के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर म्योर साहब से गोवध बन्द करने का अनुरोध किया था। उनके व्याख्यानों को सुनकर बीसियों मुसलमान और ईसाई गोरक्षा के समर्थक हो गये थे। महाराज ने अन्त में यह विचार किया कि यदि तीन करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षरों से एक निवेदन पत्र भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिया की सेवा में भेजा जाए तो सम्भव है कि गोवध बन्द हो जाए। इसी विचार से उन्होंने चैत्र कृष्णा ६ सं० १९३८ को एक विज्ञापन मुम्बई से गोरक्षा के लाभ और गोवध की हानियाँ दिखाते हुए और निवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रचरित किया§ और उसे सब आर्यसमाजों में तथा देश के राजों-महाराजों और सम्भ्रान्त व्यक्तियों के पास भेजा और बड़े बल से कार्यारम्भ किया।

मेमोरियल स्वयं लेकर जाएँगे—कहते हैं कि महाराज का यह विचार था कि वे विलायत जाकर स्वयं उस निवेदन-पत्र को महाराणी की सेवा में प्रस्तुत करेंगे।

निवेदन-पत्र के लिए आर्यसामाजिक पुरुषों ने बड़े उत्साह से कार्य किया। लाखों हस्ताक्षर कराये, परन्तु महाराज का अक्तूबर सन् १८८३ में देहान्त हो गया, अतः वह निवेदन-पत्र न भेजा जा सका और सारा श्रम विफल रहा।

गोकृषि-रक्षिणी सभाएँ—स्वामीजी ने अनेक स्थानों पर गोकृषि-रक्षिणी सभाएँ स्थापित की थीं जिनका काम कुछ दिन तक बहुत अच्छी प्रकार से चला, परन्तु फिर शिथिल पड़ गया।

राष्ट्रभाषा-प्रचार—स्वामीजी की दिव्यदृष्टि ने देख लिया था कि सारे भारतवर्ष में एक भाषा का प्रचार होना चाहिए, क्योंकि ऐसा हुए बिना न धर्म-प्रचार का ही कार्य सुगमता से हो सकता है और न जातीयता के भावों का संचार ही हो सकता है। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा होने की योग्यता केवल हिन्दी (आर्यभाषा) में ही है। इसी विचार से गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में ही लिखे, व्याख्यान भी उसी भाषा में दिये, पत्र-व्यवहार भी उसी भाषा में किया। आर्यसमाजियों को उसके लिखने की रुचि दिलाई। स्वामीजी और उनके अनुयायियों के द्वारा आर्यभाषा का जो प्रचार और विस्तार हुआ है

§ देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, पृष्ठ ३१६-३२०। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसके लिए देश उनका सदा ऋणी रहेगा। पञ्जाब जैसे उर्दू-आक्रान्त देश में आर्यभाषा के प्रचार का सेहरा सदा के लिए आर्यसमाजियों के सिर रहेगा। जहाँ पहले यह दशा थी कि यदि किसी पत्र का पता नागराक्षरों में लिखा होता था तो वह वापस डेडलेटर आफिस चला जाता था, वहाँ आज आर्यभाषा में समाचार-पत्र और पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और आर्यभाषा जाननेवालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जाती है।

(११ अग० ८२—२८ फर० ८३) उदयपुर (अधिक श्रा० कृ० १३—फा० कृ० ६)

महाराज मुम्बई से लौटकर रतलाम आये। वहाँ से उन्होंने महाराणा सज्जनसिंह को सूचना दी कि हम उदयपुर आ रहे हैं§। महाराणा ने उत्तर भेज दिया कि हमारे राज्य में किसी स्थान पर भी पहुँचने की सूचना देने से राज्य की ओर से सवारी आदि का प्रबन्ध हो जाएगा। रतलाम से जावरा होते हुए रेल में सवार होकर २५ जुलाई सन् १८८२ को महाराज चित्तौड़ पहुँच गये। वहाँ के हाकिम‡ ने उनका प्रेम और श्रद्धापूर्वक आतिथ्य किया। चित्तौड़ से महाराज ने अपने आगमन का समाचार महाराणा के पास भेज दिया और उन्होंने मार्ग के सब कर्मचारियों को आज्ञा दे दी कि स्वामीजी को मार्ग में कोई कष्ट न होने पाए। महाराज चित्तौड़ से रेल पर सवार होकर नींबाहेडा पहुँचे। महाराणा ने नींबाहेडा पर सवारी भेजने का प्रबन्ध कर दिया था, परन्तु श्रावण का महीना था, वर्षा हो रही थी, इस कारण सवारी के पहुँचने में विलम्ब हुआ।

बोझ से पालकी टूट गई—नींबाहेड़ा के राजकर्मचारियों ने महाराज के लिए पालकी का प्रबन्ध कर दिया। महाराज शरीर से हृष्ट-पुष्ट थे, पालकी उनका भार सहन न कर सकी और थोड़ी दूर चलकर टूट गई, अतः महाराज को कई कोस पैदल चलना पड़ा। फिर हाथी और बग्घी, जो उदयपुर से महाराज के लिए भेजे गये थे, मिल गये और महाराज उनपर सवार होकर ११† अगस्त १८८२ को सकुशल उदयपुर पहुँच गये। महाराणा की ओर से उनका समारोहपूर्वक स्वागत किया गया और उन्हें नौलखा बाग़ में, जो उस समय सज्जननिवास के नाम से अभिहित था, उतारा गया। महाराणा ने महाराज की सेवा-शुश्रूषा का भार धर्मसभा को सौंप दिया था और उसके सभापति ने सब प्रबन्ध कर दिया था। थोड़े दिन रहने के पश्चात् महाराज ने अन्यत्र जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु महाराज ने उनसे उदयपुर में ही चातुर्मास्य करने का अनुरोध किया और उन्होंने भी महाराणा के अनुरोध की रक्षा करना उचित समझा।

महाराणा का अनुराग—जिस दिन महाराज उदयपुर पहुँचे उससे अगले दिन महाराणा अपने परिषद्वर्ग के साथ महाराज की अभ्यर्थना के लिए आये और कुछ दिन पश्चात् एक बार प्रातःकाल और एक बार सायङ्काल के पश्चात् श्रीसेवा में उपस्थित होने लगे। महाराज प्रतिदिन प्रातःकाल गोवर्धन-विलास पर्वत की ओर घूमने जाया करते थे। भ्रमण करके जब लौटते थे तो बाग़ के गोल चबूतरे पर बैठकर कुछ देर तक ध्यानावस्थित हो जाते थे। यदि किसी दिन महाराणा अधिक सवेरे आ जाते थे तो वे महाराज के ध्यान भङ्ग होने तक बाग़ में टहलते रहते थे। जब महाराज ध्यान से उठते तो उनके पास आकर बात-चीत करते।

---

§ 'ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार' तथा पण्डित श्री महेशप्रसादजी विरचित "ऋषि दयानन्द कब और कहाँ" पुस्तक से विदित होता है कि मुम्बई से उदयपुर आते हुए निम्नस्थानों पर ठहरे थे।

खँडुआ २५ जून से ३ जुलाई तक और इन्दौर ३ जुलाई से ५ जुलाई तक, रतलाम ५ से ८ जुलाई तक, जावरा ८ से २५ जुलाई तक और चित्तौड़ २५ जुलाई से ६ अगस्त तक। इन स्थानों पर ठहरने का वर्णन ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पुस्तक से पृष्ठ ३४६-३६६ तक के पत्रों में मिलता है।

‡ ऋषि के २६ जुलाई १८८२ के पत्र से ज्ञात होता है कि इनका नाम ठाकुर जगन्नाथ था। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ३६६।

† पत्रव्यवहार पृष्ठ २६६ से विदित होता है कि ऋषि दयानन्द लगभग १० अगस्त को उदयपुर पहुँचे थे। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी-किसी दिन महाराज को अपने साथ गाड़ी में सवार कराकर बाग़ में घूमते और वार्त्तालाप करते रहते। महाराणा के चले जाने के पश्चात् महाराज महल में जाकर ब्राह्मीपाक खाते, दुग्धपान करते और वेदभाष्य के कार्य में लग जाते।

महाराणा का पठन—पण्डित मोहनलाल के एक साथी थे जिनका नाम जगन्नाथ झारखण्डी था। पण्डितजी और उनके साथी ने महाराज से रात्रि में दर्शनशास्त्र पढ़ने आरम्भ किये। इन्हें देखकर महाराणा की इच्छा भी संस्कृत पढ़ने की हुई। जब उन्होंने उसे महाराज से प्रकट किया तो महाराज ने उन्हें पढ़ाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। महाराज ने उन्हें मनुस्मृति ७, ८, ९ अध्याय पढ़ाये। महाराणा संस्कृत नहीं जानते थे, इसलिए महाराज श्लोकों का पदच्छेद और सन्धि आदि स्लेट पर लिखा दिया करते थे। दो-तीन मास में ही महाराणा को संस्कृत का साधारण ज्ञान हो गया था और वह सरल श्लोक, कविता आदि समझने में समर्थ हो गये थे। महाराणा ने मनुस्मृति के उपर्युक्त तीन अध्यायों के अतिरिक्त महाभारत के उद्योग और वनपर्व के वे अंश जिनका सम्बन्ध चरित्र-गठन और राजनीति से है तथा षड्दर्शन के संगृहीत अंश और विदुर प्रजागरादि नीति और राजनीति के मर्म महाराज से पढ़े।

दशहरे का उत्सव—क्रमशः दशहरे का उत्सव आ गया। महाराणा की यह रीति थी कि दशहरे के उत्सव में प्रतिदिन नवीन वस्त्र पहनकर जाया करते थे और उत्सव से लौटते समय महाराज के पास आया करते थे। एक दिन महाराज भी उत्सव देखने पधारे थे। महाराज महाराणा को पुराने ढङ्ग के वस्त्र पहने हुए देखकर बहुत प्रसन्न होते थे, क्योंकि उनकी पुरानी बातों में बहुत आस्था थी। महाराज महाराणा से वस्त्रों के नाम पूछा करते थे।

निरीह पशुओं की वकालत—उदयपुर में दशहरे के अवसर पर सैकड़ों भैंसे और बकरे मारे जाते थे। महाराज इस हिंसाकार्य को देखकर चित्त में बहुत दुखी थे। एक दिन जब महाराणा उत्सव से लौटते हुए महाराज के पास आये तो महाराज ने हँसी का भाव धारण करके कहा कि आप राजा हैं, न्यायाधीश हैं, मैं बकरे आदि पशुओं का वकील बनकर एक मुक़द्दमा आपके सामने रखता हूँ। इनका मारना अन्याय है और इससे पाप के सिवाय और कोई लाभ नहीं। महाराणा ने महाराज की बात मान ली, परन्तु यह कहा कि पशुहत्या एकदम बन्द करने से कोलाहल मच जाएगा, उसे धीरे-धीरे बन्द करना होगा। ऐसा करने पर भी उसे कहाँ तक कम कर सकेंगे यह नहीं कहा जा सकता। इसके पश्चात् महाराज से परामर्श करके महाराणा ने पशुहत्या किसी अंश तक कम कर दी।

बृहद् हवन—महाराज ने महाराणा से एक बृहद् हवन कराने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने उसके लिए सामग्री, घृत आदि का प्रबन्ध करा दिया और उसके करने के लिए सुपठित ब्राह्मणों को नियत कर दिया। यह हवन नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर के निकट कई दिन तक होता रहा था और उसकी पूर्ण आहुति महाराज ने महाराणा के हाथ से दिलवाई थी। महाराज ने महाराणा के महल में भी प्रतिदिन हवन होने की व्यवस्था कर दी थी और इसके लिए महाराणा ने एक ब्राह्मण को नियत कर दिया था, परन्तु महाराणा की असमय मृत्यु हो जाने पर उनके उत्तराधिकारी को यह समझाकर कि गृह्यहोम से ही महाराणा सज्जनसिंह की मृत्यु हुई, उसे बन्द करा दिया।

राजकुमार का जन्म—महारानी गर्भवती थीं। एक दिन महाराज ने मौज में आकर महाराणा से कहा कि पुत्र होगा। महाराणा ने कहा कि पुत्र न हुआ तो आप यहाँ से जाने न पाएँगे। परमेश्वर का ऐसा अनुग्रह हुआ कि पुत्र ही हुआ। इसपर महाराणा ने आनन्द-प्रकाशपूर्वक स्वयं अपने हाथ से महाराज को पत्र लिखा और एक मोहर उनकी सेवा में भेजी। महाराज ने उस मोहर का रुपया और उसमें कुछ अपनी ओर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से मिलाकर ग़रीबों में बाँट दिया।

महलों में वेश्या का नृत्य—महाराणा के महल में प्रायः वेश्याओं का नृत्य हुआ करता था। महाराज एकान्त में उन्हें वेश्याओं के दोष समझाया करते थे। महाराज महाराणा से कहा करते थे कि यदि संगीत की पिपासा है तो वह दूसरे प्रकार भी मिट सकती है। महाराज ने उनसे कहा कि वेदगान कराया कीजिए, हम उसकी शिक्षा देने को उद्यत हैं। इसपर महाराणा ने अपने वेतनभोगी गायक इनायतखाँ को वेदगान सीखने का आदेश किया, परन्तु वह न सीख सका। पण्ड्या मोहनलाल ने कुछ वेदगान महाराज से सीखा था।

कार्यक्रम—महाराज १२ बजे तक वेदभाष्य लिखाने में व्यस्त रहते थे, १२ बजे उठकर स्नान-भोजन करने के पश्चात् लेटते और दो चार करवटें लेकर उठ बैठते और चिट्ठियों के उत्तर लिखाते और प्रूफ़ देखते। चार बजे चबूतरे पर फ़र्श बिछ जाता और लोग आने लगते। थोड़ी देर में ही भीड़ लग जाती। व्याख्यान भी उसी चबूतरे पर होते थे। महाराणा भी प्रायः व्याख्यानों में उपस्थित होते थे। दीपक जलने के समय तक सभा रहती थी।

अमूर्त का ध्यान कैसे करें ?—एक दिन जब महाराज प्रातःकाल ध्यान से उठे तो महाराणा ने उनसे पूछा कि जब आप किसी मूर्त्तिमान् (उपास्य देव) को मानते ही नहीं तो ध्यान किसका करें ? महाराज ने उत्तर दिया कि किसी मूर्त्तिमान् पदार्थ का ध्यान नहीं करना चाहिए। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वसृष्टि का कर्त्ता, सृष्टि को एक क्रम में चलानेवाला, नेता, पालनकर्त्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी है, उसका स्मरण करके उसकी महिमा का ध्यान करना चाहिए। परमेश्वर के गुणों का चिन्तन, उसकी महिमा का वर्णन, संसार के उपकार में चित्तवृत्ति लगाने की प्रार्थना करना—यही ध्यान है।

आप मन्दिर के महन्त बन जाएँ—एक दिन महाराणा ने एकान्त में अत्यन्त विनम्रभाव से निवेदन किया कि राजनीति के सिद्धान्त के अनुसार आपको मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करना चाहिए। यह तो आप जानते हैं कि यह राज्य एकलिङ्ग महादेव के अधीन है। आप एकलिङ्ग के मन्दिर के महन्त बन जाएँ। कई लाख रुपये पर आपका अधिकार हो जाएगा और एक अर्थ में यह राज्य भी आपके अधीन रहेगा। महाराज बड़े शान्त प्रकृति के थे और उन्हें क्रोध बहुत कम आता था, परन्तु महाराणा के इस प्रस्ताव को सुनकर उन्हें आवेश आ गया और कड़ककर बोले कि आप लोभ देकर मुझसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा का भङ्ग कराना चाहते हैं। यह छोटा-सा राज्य और उसके मन्दिर जिससे मैं एक दौड़ में बाहर हो सकता हूँ, मुझे कभी भी वेद और ईश्वर की आज्ञा भङ्ग करने पर उतारू नहीं कर सकते। मैं कदापि सत्य को छोड़ वा छिपा नहीं सकता। आगे से आप विचार कर बात कहा करें। महाराणा महाराज के वचनों को सुनकर एकदम स्तम्भित हो गये, उन्हें कदापि ऐसे वचनों की आशा न थी। अन्त में महाराणा को यही कहते बना कि मैंने यह सब यह देखने के लिए कहा था कि आप इसके खण्डन पर कितने दृढ़ हैं। मुझे ज्ञात न था कि आप अपने विचारों पर इतने दृढ़ हैं। अब मुझे आपके दृढ़ विश्वास का पूर्व की अपेक्षा अधिक निश्चय हो गया।

मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता—इससे पूर्व भी महाराणा ने महाराज से कहा था कि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें, इससे जनसाधारण आपके विरुद्ध हो जाते हैं, आप नीति का अवलम्बन करके अन्य विषयों का उपदेश करें जिससे लोग शीघ्र आपकी बात को मान लें। महाराज ने यह उत्तर दिया था कि मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता और न छिपा सकता हूँ चाहे कोई कितना ही विरोधी हो।

स्वदेशी चिकित्सा और स्वदेशी वस्त्र—महाराज कहा करते थे कि अपने देश के वैद्यों से चिकित्सा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करानी चाहिए और स्वदेशी वस्त्र पहनने चाहिएँ।

आपका स्मारक चिह्न बनना चाहिए—एक दिन कविराज श्यामलदास ने महाराज से कहा कि आपका कोई स्मारक चिह्न बनना चाहिए तो उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा न करना, प्रत्युत मेरे शव की भस्म किसी खेत में डाल देना, काम आएगी, स्मारक न बनाना, ऐसा न हो कि मूर्त्ति का पूजन होने लगे।

वीर्य का नाश आयु का नाश है—वीर्य के विषय में कहा करते थे कि वीर्य का नाश आयु का नाश है, यह वीर्य बड़ा रत्न है। यदि मार्ग में कोई स्त्री आ जाती तो महाराज उसकी ओर पीठ कर लिया करते थे। स्वामी गणेशपुरी एक साधु थे जो स्त्रियों को पढ़ाया और रागरङ्ग कराया करते थे। उसके विषय में महाराज ने कहा था कि यह उसका ढोङ्ग और व्यभिचार है। **साधु को चाहिए कि स्त्री को आँख से भी न देखे, क्योंकि यह ब्रह्मचारी की आँख में घुस जाती है।**

हमें भड़ुवेपन की बातें नहीं रुचतीं—एक दिन एक मुसलमान वकील महाराज से बातें कर रहे थे। बीच में उन्होंने एक बार महाराज से प्रश्न किया कि यह जो अच्छे-अच्छे घरानों की सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ वेश्या बन जाती हैं, इसका क्या कारण है ? महाराज ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा कि हमें ऐसे भड़ुवेपन की बात नहीं रुचतीं, किसी अन्य से पूछना।

धर्म के कारण जागीर जाने दो—महाराणा को मनुस्मृति पढ़ाते हुए महाराज ने कहा कि स्वामी की वह आज्ञा माननी चाहिए जो धर्मानुकूल हो, अधर्म के अनुकूल आज्ञा कभी नहीं माननी चाहिए। इसपर ठा० मनोहरसिंह जागीरदार सरदारगढ़ ने कहा कि महाराणा हमारे स्वामी हैं, यदि हम इनकी धर्म के प्रतिकूल आज्ञा को न मानें तो ये हमारी जागीर छीन लें। महाराज ने उत्तर दिया कि कुछ चिन्ता नहीं। यदि धर्म के कारण धन वा जागीर चली जाए, **अधर्म करने और अधर्म का खाने से तो भीख माँगकर खाना अच्छा है।**

हैं हैं यह क्या उत्तर है ?—एक दिन महाराज किसी से बातें कर रहे थे कि एक देशी ईसाई बीच में कहने लगा कि मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। महाराज ने कहा कि जब हम बात कर चुकें तब तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देंगे, परन्तु वह न माना और यही कहता रहा कि मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए। तब महाराज ने उपस्थित सज्जनों से कहा कि आप थोड़ी देर धैर्य रक्खें, पहले इसके ही प्रश्नों का उत्तर दे दूँ। फिर उससे कहा कि बोलो तुम्हारे क्या प्रश्न हैं ? उसने कहा कि हम कहाँ से आये हैं; कहाँ हैं और कहाँ जाएँगे ? महाराज ने उत्तर दिया कि तुम पोल में से आये हो, पोल में हो और पोल में जाओगे। वह कहने लगा कि हैं हैं यह क्या उत्तर है ? महाराज ने कहा कि अलग बैठकर सोचो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मिल गया। (ईसाई विश्वास के अनुकूल तो यह उत्तर समीचीन ही था—संग्रहकर्त्ता)।

विद्यार्थियों की परीक्षा—महाराज ने एक दिन चारण पाठशाला के विद्यार्थियों की परीक्षा ली, उन्हें भोजन खिलाया और उपदेश दिया कि वेद-वेदाङ्ग पढ़ने का यत्न करना चाहिए।

सरदार-पाठशाला—महाराज ने यह भी प्रस्ताव किया था कि राज्य के सरदारों के पुत्रों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला होनी चाहिए जिसमें शस्त्र और शास्त्र दोनों की शिक्षा दी जाए। यह प्रस्ताव महाराणा ने स्वीकार भी कर लिया था और पाठशाला के भवन का चित्र भी बन गया था, परन्तु पश्चात् महाराणा के रोगग्रस्त हो जाने के कारण आगे कुछ कार्य न हुआ।

पाठ्यक्रम निर्माण—महाराज ने सरकारी पाठशालाओं के लिए श्रेणीवार पाठ्यक्रम भी बनाया था और उसे महाराणा ने प्रचलित कर दिया था।

नागराक्षर-प्रचार—महाराज का यह भी प्रस्ताव था कि राज्य के न्यायालयों में सब कार्य देवनागरी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिपि में हो§ जिससे इसमें सुगमता हो। उन्होंने अरबी भाषा के शब्दों के, जो न्यायालयों में प्रचलित थे, संस्कृत के पर्यायवाची शब्द बतला दिये थे।

महाराणा के लिए दिनचर्या—महाराज ने महाराणा को निम्न प्रकार दिनचर्या का उपदेश किया था‡—

शय्यात्याग, शौचादि रात्रि के ३ बजे। शौच से निवृत्त होकर एक प्याला ठण्डे जल का पीना वा रात्रि को चित्रक की छाल जल में भिगोकर प्रातःकाल उस जल को पीना। फिर एक घड़ी तक परमेश्वर की उपासना करना।

तत्पश्चात् पैदल वा घोड़े पर भ्रमण करना। पैदल भ्रमण करना अधिक अच्छा है। मार्ग में सब वस्तुओं को ध्यानपूर्वक देखना। हर वस्तु को ध्यानपूर्वक देखने की बान सारी आयुभर रखना अच्छा है।

दैनिक होम—भ्रमण से लौटकर दिन को जिस राजप्रासाद में रहें उसमें घृत का हवन कराना। हवन से न केवल वायु ही शुद्ध होती है, प्रत्युत वृष्टि भी। हवन से वहाँ की ही शुद्धि नहीं होती जहाँ हवन होता है, उससे सब नगर को लाभ पहुँचता है और महान् उपकार होता है।

९ बजे तक राज्य का आवश्यक कार्य करना।

११ बजे तक भोजन और मनोविनोद।

१२ बजे तक विश्राम, यदि इच्छा हो।

४ बजे तक न्यायकार्य।

तत्पश्चात् शौचादि से निवृत्त होकर अश्वादि पर सवार होकर सेना, उद्यान, प्रासाद, नगर, सड़क आदि का निरीक्षण सूर्यास्त तक।

सूर्यास्त पर महल में आकर ग्रन्थादि पढ़ना, ईश्वराराधन वा विद्या-विज्ञान की बातें सुनना, विद्वानों से सत्संग वा वार्त्तालाप करना, इतिहास का सुनना।

तत्पश्चात् भोजन करके आध घण्टे तक टहलना और फिर टहलते हुए गाना सुनना, परन्तु इस ओर अधिक न झुकना चाहिए। कविता सुनना भी अच्छा है, परन्तु वह शृङ्गार रस की न हो।

फिर निश्चिन्त होकर पूरे छह घण्टे सोना। स्त्रियों के साथ न सोना। रति के लिए भी सप्ताह वा पक्ष का नियम रखना।

दिनचर्या का उपदेश देकर महाराज ने महाराणा से पूछा कि आप इसके अनुकूल कार्य करेंगे वा नहीं तो उन्होंने कहा कि अवश्य करूँगा और अगले ही दिन से उन्होंने तदनुकूल आचरण करना आरम्भ कर दिया।

वेश्यागमन का त्याग—महाराज के उपदेश से महाराणा ने वेश्यागमन का कुव्यसन त्याग दिया था, बहुविवाह से भी उन्हें घृणा हो गई थी। उन्हीं दिनों एक स्थान से विवाह का प्रस्ताव हुआ था, परन्तु महाराणा ने उसे तुरन्त अस्वीकार कर दिया।

हमें ऐसे धन्धों से क्या काम—एक दिन जब महाराणा से मिलकर महाराज चलने लगे तो कोई पचास पग ही गये होंगे कि कुछ पटेल लोग महाराज से मिले और उनसे अपने मुक़द्दमे के सम्बन्ध में, जो न्यायालय में चल रहा था, कुछ कहा। महाराज ने भी उनके उत्तर में कुछ कहा और हाथ के संकेत से उन्हें चले जाने को कहा, महाराणा भी कुछ अन्तर पर खड़े हुए यह दृश्य देख रहे थे। मौलवी अब्दुर्रहमान जज उनके

---

§ देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पृष्ठ ३६८-३६९। —संग्रहकर्त्ता

‡ ऋषि का वास्तविक पत्र उनके पत्रव्यवहार पृष्ठ ४२७-४३४ तक छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

साथ थे। महाराणा ने मौलवी को पटेलों के पास भेजा कि उनसे पूछो कि उनकी महाराज से क्या बात-चीत हुई थी। वे गये तो पटेलों ने कहा कि हमने स्वामीजी से अपने मुक़द्दमे के विषय में कहा था, परन्तु उन्होंने कहा कि हम साधु हैं, हमें राजदरबार के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है, महाराणाजी से ही कहो। मौलवी साहब ने ये सब बातें महाराणा से आकर कहीं तो महाराणा ने कहा कि मैंने क्या कहा था। मौलवी ! तुमने सांसारिक धन्धों से सर्वथा पृथक् रहनेवाला ऐसा पुरुष कोई देखा है ? ऐसा होना कठिन है।

ब्राह्मणों की जागीरें ज़ब्त कर लो और जूते पहना दो—एक दिन महाराणा के सामने एक धर्मपुस्तक का कुछ अंश पढ़ा गया जिसका अभिप्राय यह था कि यदि कोई किसी ब्राह्मण को एक जोड़ी जूता पहना देवे तो उसे सारी पृथिवी के दान करने का पुण्य होता है। महाराज भी उस समय उपस्थित थे। महाराज ने महाराणा से कहा कि यदि यह सच है तो आपने जो लाखों रुपये की जागीरें ब्राह्मणों को दे रक्खी हैं, उन्हें स्वायत्त कर लीजिए और एक ब्राह्मण को जूते पहना दीजिए आपको सारी पृथिवी के दान करने का पुण्य प्राप्त हो जाएगा।

माला-जाप व्यर्थ है—महाराज माला जपने को भी व्यर्थ बतलाते थे और कहते थे कि यदि कोई राज्यसेवा छोड़कर दरबार के नाम की माला जपने लगे तो दरबार उसे व्यर्थ समझेंगे या नहीं। राम-राम के लगातार कहने से शब्द और अर्थ दोनों बिगड़ जाते हैं (मरा, मरा हो जाता है), अतः मनुष्य को परमेश्वर के ध्यान और ज्ञान से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए।

मूर्त्तिपूजा खण्डन—एक दिन प्रातःकाल महाराणा महाराज के पास आये और उन्हें अपने साथ बग्घी में बिठाकर महलों को ले-गये। मार्ग में शीतला का मन्दिर पड़ता था। वहाँ कुछ स्त्री-पुरुष एकत्र थे। महाराज ने उनके इकट्ठे होने का कारण पूछा तो उन्हें बताया गया कि ये लोग शीतला की पूजा करने आये हैं। इसपर महाराज ने जो कुछ कहा उसका सार यह था कि जब कोई शिल्पी किसी वस्तु को बनाता है तो उससे उसकी कलाकुशलता तो अवश्य प्रकट होती है, परन्तु उसके ये अर्थ नहीं हैं कि शिल्पी स्वयं वा अन्य लोग उसकी पूजा करने लगें। जो वस्तु जिस कार्य के लिए बनाई जाए उससे वही कार्य लेना चाहिए। ये मूर्त्तियाँ पाषाण की हैं, इनमें चैतन्य शक्ति का समावेश कैसे हो सकता है ? खेद है कि दरबार ने इन्हें कैसे होने दिया ? इसपर महाराणा ने कहा कि मैं आपका अभिप्राय समझ गया, आपका यह उपदेश समय पाकर उत्तम फल देगा, परन्तु यदि मैं इसे अभी बन्द कर दूँ तो बहुत बखेड़ा हो जाएगा। फिर शम्भु-निवास महल में पधारकर महाराज ने दो घण्टे तक मूर्त्तिपूजा के विषय में वक्तृता दी।

आप तो अवतार के भी अवतार हैं—एक दिन महाराणा ने महाराज से पूछा कि रामचन्द्रजी पूर्णावतार थे कि नहीं। महाराज ने उत्तर दिया कि यदि वे अवतार थे तो आप तो अवतार के भी अवतार हुए, क्योंकि ऐसा प्रसिद्ध है कि उदयपुर का राजवंश लव के वंश में है। फिर महाराणा ने पूछा कि इसकी मीमांसा हो सकती है ? महाराज ने उत्तर दिया कि रामायण द्वारा ही इसकी मीमांसा हो सकती है। इसपर महाराज ने वाल्मीकीय रामायण मँगवाकर उसका वह अंश पढ़ने को कहा जिसमें नारद का वाल्मीकि के साथ रामचरित के सम्बन्ध में कथोपकथन हुआ है। महाराणा उस अंश को निकालकर धीरे-धीरे पढ़ने लगे। तब महाराज ने पण्ड्या मोहनलाल से उसे पढ़ने को कहा और कई श्लोकों को महाराणा से स्लेट पर लिखवा कर और उनका पदच्छेद कराकर महाराणा को दिखा दिया कि वाल्मीकि महाराजा रामचन्द्र को मनुष्य ही मानते थे। केवल टीकाकारों की माया से ही उन्हें ईश्वर का अवतार बना दिया गया है।

स्वामीजी गोरक्षा के घोर पक्षपाती थे—महाराज गोरक्षा के परम पक्षपाती थे। उनकी इच्छा थी कि भारत के राजाओं, महाराजाओं, रईसों और प्रजावर्ग के तीन करोड़ हस्ताक्षर कराकर गोवध बन्द करने के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए एक मेमोरियल महाराणी विक्टोरिया की सेवा में भेजा जाए। महाराणा सज्जनसिंह तथा महाराजा जोधपुर और बूँदी ने भी हस्ताक्षर कर दिये थे। कहते हैं कि महाराजा जयपुर के हस्ताक्षर कराने के लिए महाराणा स्वयं जयपुर गये थे।

अंग्रेज़ी पढ़ने का उद्योग—पण्ड्या मोहनलाल ने एक दिन महाराज को Heley's Grammar पढ़ते देखा था। पण्ड्याजी का कथन है कि महाराज ने अंग्रेज़ी अक्षर लिखने भी सीख लिये थे और वे लिफ़ाफ़ों पर स्थान का नाम अंग्रेज़ी में अपने हाथ से लिखने लगे थे।

अन्धे साधु की कृतघ्नता—गिरानन्द एक अन्धा साधु सम्भवतः मसूदा से ही महाराज के साथ था। महाराज ने उसे अपने साथ इसलिए रक्खा था कि उसे कुछ शिक्षा देकर किसी योग्य बना दें ताकि वह उपदेशक का कार्य करके स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध कर सके, परन्तु उसकी प्रकृति नीच थी। उसने महाराज की दया का यह बदला दिया कि एक दिन पुलिस में यह रिपोर्ट करने चला गया कि स्वामीजी मुझे मेरे देश को नहीं जाने देते। पुलिस ने ऐसी अनर्गल रिपोर्ट लिखने से इनकार कर दिया। जब उसकी इस दुष्टता का वृत्त महाराज को पता लगा तो उन्होंने उसे निकाल दिया।

संन्यास-प्रार्थी—एक दिन महाराज नौलखा बाग़ के चबूतरे पर पद्मासन लगाये ध्यान में बैठे थे। इतने में एक संन्यासी वेषधारी उधर आ निकला। महाराज की दिव्य मूर्त्ति के दर्शन कर वह वहीं ठिठक रहा। उसने अनुमान से ही जान लिया कि यही दयानन्द सरस्वती हैं। जब महाराज का ध्यान खुला तो उसने हाथ जोड़ महाराज से निवेदन किया कि मैं बिहार देशनिवासी ब्राह्मण हूँ, मैंने दर्शन-शास्त्र का अनुशीलन किया है, विशेषतः वेदान्तशास्त्र का। मैंने वैराग्य के कारण संसार त्याग दिया है, मैंने संन्यासी का वेष धारण कर लिया है और नाम भी संन्यासियों जैसा ही रख लिया है, मेरा नाम सहजानन्द है, परन्तु मैंने विधिपूर्वक संन्यास किसी से नहीं लिया है। आपकी ख्याति मुझे श्रीचरणों तक लाई है। आप संन्यास देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। महाराज ने उन्हें कुछ दिन प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी और फिर उन्हें योग्य और सुपठित समझकर संन्यासाश्रम में दीक्षित कर लिया।

जल पर ध्यानावस्थित—नौलखा बाग़ के समीप ही एक बृहत् सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वत को उसी के तीर-तीर जाया करते थे। एक दिन सहजानन्द ने देखा कि महाराज पद्मासन लगाये जल पर ध्यानावस्थित हैं। सहजानन्द यह देखकर विस्मित हुए, परन्तु साथ ही गुरुदेव की योगविद्या में निपुणता उनके हृदय पर अङ्कित हो गई और श्रीचरणों में उनका अगाध प्रेम हो गया। कभी-कभी महाराज लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। जब ऐसा करते थे तो एक दिन पूर्व सबसे कह दिया करते थे कि कल हमारी कोठरी के पास कोई न आये और न कोई द्वार खटखटाये, परन्तु सहजानन्द इतने दयापात्र हो गये थे कि उन्हें खिड़की में से महाराज को योंगारूढ़ अवस्था में देखने की आज्ञा दे दी जाती थी। ऐसी अवस्था में श्वास-प्रश्वास की गति रुक जाती थी और महाराज का शरीर सर्वथा निष्कम्प हो जाता था। उनके मुखमण्डल पर दिव्य आभा खेलने लगती थी। सहजानन्द को एक से अधिक बार इस अनुपम दृश्य से अपने नेत्रों को तृप्त और पवित्र करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कहते हैं कि महाराज २४ घण्टे तक असम्प्रज्ञात समाधि लगा सकते थे।

सहजानन्द को महाराज ने संन्यास-धर्म और योगविषय की शिक्षा देकर प्रचार के लिए बाहर भेज दिया।

परोक्षदर्शन—एक दिन महाराणा तथा सहजानन्दादि श्रीसेवा में उपस्थित थे और विविध विषयों पर वार्त्तालाप हो रहा था कि महाराज ने कहा कि पण्डित सुन्दरलालजी आ रहे हैं, यदि पहले से सूचना दे देते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तो यान का उचित प्रबन्ध हो जाता। इसपर महाराणा ने कहा कि यान का प्रबन्ध अब भी हो सकता है, परन्तु महाराज बोले कि अब तो वे बैलगाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल श्वेत है और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं, वे कल यहाँ पहुँच जाएँगे। अगले दिन पण्डित सुन्दरलाल उदयपुर पहुँच गये और महाराज का कथन अक्षरशः सत्य निकला।

अनधिकारियों को उपदेश न दिया करें—एक दिन दो साधु महाराज से मिलने आये और अनेक विषयों पर उनसे कथोपकथन हुआ। जब वे चलने लगे तो महाराज से बोले कि आप अधिकारी लोगों को ही उपदेश दिया करें। जो लोग आपके व्याख्यानों में आते हैं वे सभी तो अधिकारी नहीं होते। इसका महाराज ने जो उत्तर दिया उसका अभिप्राय यह था कि धर्म के विषय में अधिकारानधिकार का प्रश्न उठाना सर्वथा व्यर्थ है। धर्मोपदेश सुनने का मनुष्यमात्र को अधिकार है। आपकी जाति और धर्म के सैकड़ों और सहस्रों मनुष्य विधर्मी हो रहे हैं और आप अधिकारानधिकार का पचड़ा लिये बैठे हैं। पहले उन्हें तो बचाइए, अधिकारानधिकार का विचार पीछे होता रहेगा।

अधिकारानधिकार का पचड़ा—महाराज का यह उत्तर कितना महत्त्वपूर्ण था और इससे इनकी उदारता कैसी विषदरूप में झलकती है, यह मनन करने योग्य है। इसी अधिकारानधिकार के प्रश्न ने तो स्त्री-जाति और शूद्रों को सदा के लिए विद्या से वञ्चित किया और इसी ने धर्म के महन्तों और ठेकेदारों की गद्दियाँ स्थापित कीं, जिन्होंने जनता के मस्तिष्क पर ताले लगाकर देश को रसातल में पहुँचा दिया। दयानन्द तो आया ही इसलिए था कि वह इन तालों को तोड़कर मनुष्यों को मानसिक दासता से छुड़ाए और आज दयानन्द से कहा जाता है कि उन तालों को न तोड़ो, बल्कि उनपर अपने ताले और लगा दो। इसे दयानन्द क्यों मानने लगा था।

एक दिन पण्ड्या मोहनलाल ने महाराज से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी ?

जातीय उन्नति के साधन—महाराज ने जो उत्तर दिया उसका सार यह था कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना ऐसा होना दुष्कर है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि देश के नृपगण अपने-अपने राज्य में धर्म, भाषा और भाव में एकता उत्पन्न करें। पण्डित मोहनलाल ने इसपर आपत्ति की कि जब आप का उद्देश्य एकता उत्पन्न करने का है तो आप मत-मतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं, इससे तो अनैक्य बढ़ता है। महाराज ने उत्तर दिया कि धर्माचार्यों और नेताओं की असावधानी और प्रमाद से जाति के आचार-विचार, रहन-सहन दूषित हो जाते हैं और भाव एक नहीं रहते। आर्यजाति की यही दशा हुई और यदि इसे सँभाला न गया तो यह नष्ट हो जाएगी। धर्माचार्यों के प्रमाद के कारण करोड़ों मुसलमान हो गये और अब ईसाई हो रहे हैं। यदि जाति को कडुए उपदेशों के कोड़े से न जगाया गया और कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट न किया गया तो इसकी मृत्यु में सन्देह ही क्या है ? मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर ही नहीं रहा हूँ। इसके कारण मैं अनेक प्रकार के कष्ट सहता हूँ, गालियाँ और ईंट-पत्थर खाता हूँ, विष तक भी मुझे दिया जा चुका है, परन्तु जाति और धर्म के लिए मैं सब-कुछ सहन करता हूँ।

यदि दो-चार दयानन्द होते—महाराज के वचन को सुनकर पण्ड्या मोहनलाल गद्गद हो गये और भक्ति-रस में सने हुए शब्दों में कहा कि यदि दो-चार धर्माचार्य भी आपके विचार के हो जाएँ तो स्वल्प समय में ही आर्यजाति का बेड़ा पार हो सकता है।

मुसलमान जज से शास्त्रार्थ—उदयपुर के मुसलमान जज मौलवी अब्दुर्रहमान से धर्म-विषय में वार्त्तालाप हुआ था। उसका सार हम पाठकों की भेंट करते हैं। यह शास्त्रार्थ ११ सितम्बर सन् १८८२ अर्थात् भाद्रपद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृ० १४ सं० १९३९ को आरम्भ हुआ और १७ सितम्बर को समाप्त हुआ। निम्नलिखित ७ प्रश्न मौलवी साहब ने किये थे। एक-एक प्रश्न पर एक-एक दिन कथोपकथन होता था। सारा शास्त्रार्थ लिखा गया था और अविकलरूप से पण्डित लेखरामकृत दयानन्द-चरित उर्दू में छपा है। अन्तिम दिवस महाराणा भी शास्त्रार्थ में आये थे और उन्होंने कहा था कि स्वामीजी जो कहते हैं, वह ठीक है। मौलवी साहब व्यर्थ दुराग्रह करते हैं।

मौलवी के सात प्रश्नों के उत्तर —

प्रश्न नं० १—भिन्न-भिन्न धर्मों की भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न पुस्तकें हैं, इससे सिद्ध होता है कि उनमें से प्रत्येक उस-उस देश के रहनेवालों और एक ही भाषा बोलनेवालों के लिए बनी हैं। कोई ऐसी भी पुस्तक है जो सब मनुष्यों की भाषाओं पर अधिकार रखती हो और सृष्टि-क्रम के अनुकूल हो।

महाराज ने उत्तर दिया कि ऐसी पुस्तक वेद है। वह किसी सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं बल्कि ज्ञान का ग्रन्थ है, साम्प्रदायिक ग्रन्थ पक्षपात से भरे होते हैं, और जिसमें पक्षपात हो वही सम्प्रदाय है। वेद की भाषा किसी देश वा जातिविशेष की भाषा नहीं। ऐसी ही भाषा व्यापक हो सकती है, न कि किसी एक देश की भाषा, जैसे आकाश किसी देशविशेष का नहीं है, इसी से सब देशों में व्यापक है। वेद की भाषा विद्या की भाषा है और उसका बोलनेवाला परब्रह्म और सुननेवाले अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा चार ऋषि थे। इन्हीं ऋषियों ने परमेश्वर से वेद को सुनकर दूसरों को सुनाया। इनको वेद इस कारण दिया था कि वे ही पुण्यात्मा और सर्वोत्तम थे, परमेश्वर ने उन्हें वेद की भाषा का भी ज्ञान दे दिया था। इसका प्रमाण यह है कि बिना कारण के कार्य नहीं होता। इस विषय में ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी है और वेद स्वतःप्रमाण हैं।

मौलवी—ऐसी बातें तो सब मत वाले अपनी-अपनी पुस्तकों के विषय में कहते हैं।

स्वामीजी—ऐसी बात दूसरे मत की पुस्तकों में नहीं हैं और न वे सिद्ध ही कर सकते हैं।

मौलवी—सब किताबवाले सिद्ध कर सकते हैं।

स्वामीजी—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मत वाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते और यदि कर सकते हैं तो बतलाइए कि मुहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुँचा।

मौलवी—जैसे चार ऋषियों के पास वेद आया था।

मौलवी साहब ने बिना सोचे ऐसा कह दिया। कुरान के मुहम्मद साहब के पास पहुँचने की तो विचित्र गाथा है। वह मुहम्मद साहब के हृदय में प्रकाशित नहीं हुआ जैसे वेद चार ऋषियों के हृदय में प्रकाशित हुए थे। उसकी आयतों को तो जिब्राईल फरिश्ता उनके पास लाया करता था और इसे सभी मुसलमान मानते हैं।

प्रश्न नं० २—सारी दुनिया के मनुष्य एक ही वंश के हैं वा पृथक्-पृथक् वंशों के।

उत्तर—एक वंश के नहीं, पृथक्-पृथक् वंश के हैं। सृष्टि के आदि में उतने ही जीव मनुष्य का शरीर धारण करते हैं जितने गर्भ सृष्टि में इस योग्य होते हैं और वे अनेक होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अभ भी सब अनेक माँ-बाप की सन्तान हैं। यह बात प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से भी सिद्ध है।

मौलवी साहब ने आठों प्रमाणों के लक्षण पूछे जो उन्हें बता दिये गये। फिर अन्य प्रश्नों के उत्तर में महाराज ने कहा कि मनुष्यों के मुखादि अवयव एक-से हैं, परन्तु उनके रंगों और शरीर की लम्बाई आदि में भेद है। यह भेद एक ही माँ-बाप की सन्तानों में भी पाये जाते हैं। एक ही देश और जाति में भी पाये जाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मौलवी—कई जातियाँ जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी आदि एक-दूसरे से भिन्न हैं। उनकी आकृति एक-दूसरे से नहीं मिलती। चीनियों के दाढ़ी नहीं होती और तिकोने मुँह के होते हैं।

स्वामीजी—उनमें भी भेद है। देश, काल, माता-पिता के शरीर, रज-वीर्य और वात, पित्त, कफ़ के संयोग-वियोग के कारण भी भेद हो जाते हैं।

मौलवी—संसार में तीन प्रकार की जातियाँ पाई जाती हैं। एक वे जिनके दाढ़ी होती है जैसे हिन्दी, फ़िरंगी, दूसरे वे जिनके दाढ़ी नहीं होती जैसे चीनी, तीसरे वे जिनके बाल घूँघरवाले होते हैं, जैसे हब्शी तो फिर मनुष्यों के तीन ही भेद हुए।

स्वामीजी—भूटियों को किस में रक्खोगे, वे तीनों में से किसी में नहीं मिलते।

मौलवी—जैसा भेद इन तीनों में है वैसा इनमें नहीं। इसका कारण भिन्न-भिन्न जातियों का सम्मिश्रण हो सकता है।

प्रश्न नं० ३—मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

उत्तर—१ अरब ९६ करोड़ कई लाख वर्ष मनुष्य की उत्पत्ति को हुए और २ अरब वर्ष से कुछ ऊपर और रहेगी। इसका प्रमाण विद्या और ज्योतिश्शास्त्र से है और विस्तारपूर्वक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा है।

प्रश्न नं० ४—आप धर्म के नेता हैं वा ज्ञान के, अर्थात् आप किसी मत को मानते हैं वा नहीं ?

स्वामीजी—जो धर्म ज्ञान से सिद्ध हो उसे मानता हूँ।

मौलवी—आपने कैसे जाना कि परमेश्वर ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

स्वामीजी—वेदों को देखने और आप्त पुरुषों की साक्षी, जो उनके ग्रन्थों और परम्परा से हम तक पहुँची है।

मौलवी—परसों यह निश्चय हो गया था कि उत्तर युक्तिपूर्वक होंगे न कि ग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर, फिर आप ग्रन्थों का उल्लेख क्यों करते हैं ?

स्वामीजी—युक्तिसंगत बात चाहे मौखिक हो चाहे लिखित, इसे सब बुद्धिमान् मानते हैं और आप भी मानते होंगे।

मौलवी—परमेश्वर का चार ऋषियों को वेदों की शिक्षा देना युक्ति या बुद्धि से कैसे सिद्ध होता है ?

स्वामीजी—बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता, अतः ज्ञान का भी कोई कारण होना चाहिए और वह अनादि तथा अनन्त होना चाहिए। ऐसा कारण परमेश्वर ही हो सकता है। जैसे परमेश्वर जगत् का निमित्तकारण है, उसी प्रकार वह ज्ञान का भी कारण है। यदि वह ऋषियों को वेद का ज्ञान जो सृष्टिक्रम के अनुकूल है, न देता तो वह आगे को न चलता—उन्नति न करता। परमेश्वर ने एक-एक ऋषि को एक-एक वेद अलग-अलग और क्रमशः पढ़ाया, क्योंकि एक ही समय में वे सारे वेद नहीं बढ़ सकते थे, उनकी बुद्धि परिमित शक्तिवाली थी। जितना समय उनकी बुद्धि की शक्ति के अनुसार अपेक्षित था उतने समय में ही पढ़ाया। वेद का प्रकाश शब्दार्थ-सम्बन्धपूर्वक ऋषियों के हृदय में परमेश्वर ने किया। उसके लिए सर्वव्यापक होने से जिह्वा आदि उपकरणों की आवश्यकता न थी। परमेश्वर ऋषियों के आत्मा में भी था, अतः उसने उनके आत्मा में शब्द और उनके अर्थों का ज्ञान दिया। यदि परमेश्वर उनके आत्मा से पृथक् होता तो शब्दों को बोलने और सुनाने की आवश्यकता होती। वेदों के चार ब्राह्मण ही वास्तव में पुराण हैं जो वेद के अनुकूल होने की सीमा तक ही माननीय हैं। आधुनिक पुराणग्रन्थ भागवत आदि साम्प्रदायिक मतवाद के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रन्थ होने से अप्रामाणिक हैं। धर्म वह है जो पक्षपातरहित, न्याययुक्त, सत्यसन्ध और असत्य से पृथक् हो। वेद ऐसे ही धर्म का उपदेश करता है और यही आर्यों का धर्म है।

मौलवी—पक्षपात आप किसे कहते हैं ?

स्वामीजी—जो अज्ञानवश वा काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंगति से अपने स्वार्थ के कारण सत्य और न्याय को छोड़कर अंगीकार किया जाए, उसी का नाम पक्षपात है।

मौलवी—यदि कोई पक्षपात से रहित हो और आर्य न हो तो आर्य उसके साथ खान-पान व विवाह का सम्बन्ध उसी प्रकार करेंगे वा नहीं जिस प्रकार वे आपस में करते हैं।

स्वामीजी—खान-पान, विवाह आदि का सम्बन्ध धर्म वा अधर्म से नहीं है, यह तो देशाचार और जाति के व्यवहार से है, परन्तु दूसरे धर्मवालों से ऐसा बर्ताव करना हानिकारक ही होता है। यदि कोई विद्वान् ऐसा करे भी तो उसकी जाति के लोग उससे घृणा करने लगेंगे और फिर जाति उस लाभ से वञ्चित रह जाएगी जो उसकी विद्या से उसे पहुँचता।

प्रश्न नं० ५—जैसे अन्य मत वाले अपनी-अपनी धर्म-पुस्तक और उसकी भाषा को सर्वोत्तम बताते हैं और जिस प्रकार की युक्ति देते हैं आपने भी वेदों के विषय में ऐसा ही किया, वेदों की कोई विशेषता प्रकट न की।

स्वामीजी—हम इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि वही पुस्तक सर्वज्ञ ईश्वरोक्त हो सकती है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध और सृष्टिक्रम के अनुकूल हो। ऐसी पुस्तक केवल वेद ही हैं। मुख्य मत ये हैं—पौराणिक, जैन, यहूदी, ईसाई और कुरानी। इन सबमें ही असम्भव बातें हैं। पौराणिक एक शरीरधारी व्यक्ति से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, परन्तु शरीर बहुत-सी वस्तुओं के संयोग से बनता है और जो स्वयं सृष्ट पदार्थ है वह जगत् का स्रष्टा कैसे हो सकता है, जैनी जगत् का न आदि मानते हैं न अन्त, परन्तु जगत् एक संयुक्त पदार्थ है, अतः उसकी उत्पत्ति भी है और विनाश भी। यहूदी, ईसाई और मुसलमान अभाव से भाव मानते हैं जो कभी हो नहीं सकता।

प्रश्न नं० ६—आप किन-किन वस्तुओं को अनादि मानते हैं ?

स्वामीजी—परमात्मा, जीव और जगत् के उपादानकारण प्रकृति को, साधारणकारण व आकाश तथा समवायीकारण को। परमात्मा जगत् का निमित्तकारण है। कोई ऐसी जात वस्तु नहीं, जिसके ये चारों कारण न हों।

मौलवी साहब—सम्भव है कि जगत् का (उपादान) कारण जिसे आप अनादि कहते हैं किसी अन्य कारण का कार्य हो।

स्वामीजी—अनादि कारण उसी का नाम है जो किसी का कार्य न हो। सब वैज्ञानिक मानते हैं कि जहाँ तक किसी वस्तु की अवस्था परिवर्तित हो सकती है या जहाँ तक उसका विभाग हो सकता है, उससे आगे की दशा को कारण कहते हैं।

प्रश्न नं० ७—यदि वेद ईश्वरोक्त होते तो इनका लाभ संसार के सब मनुष्यों को पहुँचना चाहिए था—जैसे सूर्य, जल, वायु का लाभ सबको पहुँचता है।

स्वामीजी—सूर्यादि की भाँति वेदों का लाभ भी सबको पहुँचता है, क्योंकि धर्म और विद्या के ग्रन्थों का आदिकारण वेद ही हैं। अन्य सब पुस्तकें वेदों से पीछे बनी हैं। वेदों में किसी का खण्डन-मण्डन नहीं है। जैसे वैज्ञानिक सूर्यादि से अधिक उपकार लेते हैं वैसे ही वेद के पढ़नेवाले वेदों से अधिक उपकार लेते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। वेदों से अधिक प्राचीन कोई पुस्तक संसारभर में नहीं है। वेदों की भाषा सब भाषाओं का मूल§ है। जब बाइबिल, कुरान आदि नहीं बने थे तब वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक मानने योग्य थी ही नहीं। वेद सृष्टि के आदि में ऋषियों को दिये गये थे, अतः यह कहना नहीं बन सकता कि कोई समय ऐसा नहीं था जब सब मनुष्य ने वेदों को न माना हो।

यह धर्मालाप यहीं समाप्त हो गया।

उदयपुर से महाराज ने बाबू दुर्गाप्रसाद रईस फ़र्रुखाबाद को मार्गशीर्ष वदी १४ संवत् १६३६ को नाटक के विषय में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की थी (भारत सुदशा प्रवर्त्तक में) नाटक का विषय तो नाममात्र भी नहीं आना चाहिए, जो अच्छा विषय भी लिखना हो तो वह प्रश्नोत्तर व अन्य प्रकार से लिखा जाए। नाटक नाम तमाशे का है, क्योंकि तुम्हारे नाटक को देखकर लखनऊ के समाज में नाटक का व्याख्यान ही होने लगा। जब हमने मना किया तो कहने लगे कि अपने फ़र्रुखाबाद समाज के पत्र में नाटक क्यों छपता है। यह नाटक से बिगाड़ का उदाहरण है।‡

एक दूसरे पत्र में महाराज ने ला० कालीचरण रईस फ़र्रुखाबाद को लिखा था कि तुम आर्यसमाज के पत्र में नाटक का विषय मत छापो, यह अनुचित बात है। यह आर्यसमाज है भड़ुआ समाज नहीं जो तुम नाटक का विषय छापते हो। ऐसा करना भड़ुआपन की बात है।†

महाराज ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया था कि राष्ट्र-निर्माण के लिए एक लिपि और एक भाषा का होना परम आवश्यक है, इसके लिए वे देवनागरी लिपि और आर्यभाषा (हिन्दी) को ही उपयुक्त समझते थे, इस कारण उन्होंने अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे। सन् १८८२ में सरकार ने एक कमीशन नियत किया था कि सरकारी दफ्तरों में कौन-सी लिपि रक्खी जाए। स्वामीजी ने भी इसके लिए यत्न किया था। एक पत्र में उन्होंने बाबू दुर्गाप्रसाद रईस फ़र्रुखाबाद को उदयपुर से शुद्ध श्रावण सु० ३ संवत् १६३६ को निम्न प्रकार लिखा था कि आजकल सर्वत्र अपनी आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्ति होने के अर्थ (भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन हुआ है उसमें) पञ्जाब आदि अहातों से मेमोरियल भेजे गये हैं, परन्तु मध्यप्रान्त फ़र्रुखाबाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये, ऐसा ज्ञात हुआ है और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से इसी विषय में एक पत्र आया था। उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गये और हमें लिखा है कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिए। अब कहिए हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं ? जो यही एक काम हो तो कुछ चिन्ता नहीं है, इसलिए आपको अति उचित है कि मध्यदेश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों में से और जहाँ-जहाँ परिचय हो सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल भिजवाइए। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जाएगी।¶

स्वामीजी कभी-कभी अपने अनुयायियों की अकर्मण्यता पर खिन्न हो उठते थे। ऐसी ही अकर्मण्यता पर ला० कालीचरणजी के विषय में उन्होंने बाबू दुर्गाप्रसाद को उपर्युक्त पत्र में लिखा था कि "बड़े आश्चर्य का विषय है कि पुकारते तो हैं हमारी उन्नति हो, परन्तु जब उन्नतिकारक विषय आ पड़ता है तब निरुत्साही

---

§ वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। सत्यार्थप्रकाश समु० ७, शताब्दी संस्क० भा० १, पृष्ठ १६। तथा देखो "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" भाग १, पृष्ठ १-१३। —यु०मी०

‡ यह पूरा पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' में पृष्ठ ३८५ पर छपा है।

† यह पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में पृष्ठ ३८१ पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

¶ यह पूरा पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में पृष्ठ ३६८ पर छपा है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और भयातुर होकर चुपचाप बैठ रहते हैं। क्या ऐसी ही बातों से उन्नति होने की आशा करते हैं! देखिए लाला कालीचरणजी ने प्रथम चिट्ठी-पर-चिट्ठी भेजी और बड़ी शीघ्रता के साथ लिखा कि (मुरादाबादवाले जगन्नाथदास निर्मित प्रश्नोत्तरी के) विस्तारपूर्वक उत्तर प्रमाणों के साथ भेजिए। जब हमने वेदभाष्य के काम को छोड़ प्रमाणसहित उत्तर लिख रजिस्ट्री कराके भेज दी और उसके साथ एक पत्र भेजा कि शीघ्र छपवाकर प्रसिद्ध कर दो। उस शीघ्रता का फल यह हुआ कि अब दो महीने व्यतीत हुए, एक अक्षर भी नहीं छपवाया। लिखा है कि प्रेस एक्ट होनेवाला है, उसे देखे पश्चात् छपवाएँगे। यह उन्हें केवल किसी के बहकाने से भ्रममात्र हुआ है, क्योंकि जो ऐसा होता तो भारतमित्र आदि में अवश्य छपता, अथवा अन्य पुरुषों के द्वारा भी सुनने में आता, सो केवल प्रेस एक्ट के भ्रम होने से डर गये हैं। भला ऐसे-ऐसे सद्यःकर्त्तव्य कर्मों के करने में भ्रममात्र से डरकर निरुत्साही हो जाना अवनति का कारण नहीं तो क्या है ?"¶

स्वीकार पत्र लिखने की चिन्ता—हम नहीं कह सकते कि क्या कारण था जिससे महाराज को अपना स्वीकारपत्र लिखने की बड़ी चिन्ता थी। जब महाराज जुलाई—सितम्बर सन् १८८० में मेरठ में थे तब भी उन्होंने परोपकारिणी सभा का स्थापित करना सोचा था और उसके नियमादि की पाण्डुलिपि भी तैयार की गई थी, परन्तु उस समय उसकी रजिस्ट्री नहीं हो सकी थी।§ यह सङ्कल्प महाराज का शिथिल नहीं हुआ था और वह उनका लक्ष्य बन रहा था, अतः जब वे उदयपुर विराज रहे थे तो उन्होंने अधिक विलम्ब करना उचित न समझा और फाल्गुन कृष्ण‡ ५ संवत् १९३९ अर्थात् २७ फ़रवरी सन् १८८३ को 'स्वीकार पत्र' लिखकर राज्यनियम के अनुसार उसे रजिस्ट्री करा दिया। हो सकता है कि महाराज को यह ज्ञात हो गया हो कि उनका शरीर अधिक दिन रहनेवाला नहीं है। मैडम ब्लैवेट्स्की ने उनके परम पदप्राप्ति के पश्चात् लिखा था कि महाराज ने उनसे कहा था कि मैं सन् १८८३ का अन्त न देखूँगा। अन्यथा यह समझ में नहीं आता कि ऐसे समय जबकि वे स्वस्थ थे, इतने दिन पहले से उन्हें यह चिन्ता क्यों थी ? यदि वे रुग्ण होते तो हमें इस चिन्ता का कारण ढूँढने की आवश्यकता न होती।

स्वीकार-पत्र

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेईस सज्जन आर्यपुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उसको परोपकार-सुकार्य में लगाने के लिए अध्यक्ष बनाकर यह 'स्वीकार-पत्र' लिखे देता हूँ कि समय पर काम आये।

इस सभा का नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस महाशय इसके सभासद् हैं।

१. श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्य-कुलकमलदिवाकर महाराणाजी श्री १०८ सज्जनसिंहजी वर्मा जी०सी०एस०आई० उदयपुराधीश राज मेवाड़, सभापति।
२. लाला मूलराज साहब एम०ए० एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर प्रधान आर्यसमाज लाहौर, उपसभापति।
३. श्रीयुत कविराज श्यामलदासजी, राज मेवाड़ मन्त्री १।
४. लाला रामशरणदास रईस व उपप्रधान आर्यसमाज मेरठ मन्त्री २।

¶ यह पूरा पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में पृष्ठ ३६८ पर छपा है।

§ यह ठीक नहीं है। मेरठ में १६ अगस्त १८८० में स्वीकार पत्र की रजिस्ट्री हो गई थी। वह स्वीकार पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में पृष्ठ ५२८-५३२ पर छपा है तथा इसी जीवन-चरित्र में भी रजिस्ट्री हो जाने का उल्लेख है। —संग्रहकर्त्ता

‡ परोपकारिणी सभा अजमेर की ओर से जो स्वीकारपत्र छपता है उसमें कृष्ण के स्थान में शुक्ल पाठ है। वह अशुद्ध है, कृष्ण ही होना चाहिए। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५. पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलालजी शर्मा, उदयपुर, जन्मस्थान मथुरा, उपमन्त्री ।
६. श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुराधीश, सभासद् ।
७. श्री राव तख्तसिंहजी बेदले, राज मेवाड़, सभासद् ।
८. श्रीमद्राजराणा श्री फ़तहसिंहजी वर्मा, भीलवाड़ा, सभासद् ।
९. श्रीमद्रावत श्री अर्जुनसिंहजी वर्मा, आसीन्द ।
१०. श्रीमन्महाराज गजसिंहजी वर्मा, उदयपुर ।
११. श्रीमद्रावत बहादुरसिंहजी वर्मा, मसूदा ज़िला अजमेर ।
१२. रावबहादुर पं० सुन्दरलाल सुप्रिंटेंडेंट वर्कशाप अलीगढ़, आगंरा ।
१३. राजा जयकृष्णदास सी०एस०आई० डिप्टी कलक्टर बिजनौर, मुरादाबाद ।
१४. साहू दुर्गाप्रसाद, कोषाध्यक्ष आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद ।
१५. साहू जगन्नाथप्रसाद, फ़र्रुखाबाद ।
१६. सेठ निर्भयराम प्रधान आर्यसमाज, फ़र्रुखाबाद, ब्यावर राजपूताना ।
१७. लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद ।
१८. बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट, छावनी मुरार ग्वालियर ।
१९. लाला साईंदास मन्त्री आर्यसमाज लाहौर ।
२०. बाबू माधवदास मन्त्री आर्यसमाज दानापुर ।
२१. रावबहादुर राजागल राजेश्वरी पं० गोपालराव हरिदेशमुख मेम्बर कौन्सिल गवर्नर मुम्बई व प्रधान आर्यसमाज मुम्बई, पूना ।
२२. रावबहादुर महादेव गोविन्द राणडे जज, पूना ।
२३. पण्डित श्यामजीकृष्ण वर्मा प्रोफ़ेसर संस्कृत, यूनिवर्सिटी आक्सफ़ोर्ड लण्डन, मुम्बई ।

स्वीकार-पत्र के नियम

१. उक्त सभा जैसेकि मेरी जीवितावस्था में मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके निम्नलिखित परोपकार के कामों में लगाने का अधिकार रखती है वैसे ही मेरे पश्चात् अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे—
   (क) वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि में ।
   (ख) वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में ।
   (ग) आर्यावर्त्त के अनाथ और दीनजनों की शिक्षा और पालन में खर्च करे और करावे ।
२. जैसे मेरी उपस्थिति में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे ही मेरे पीछे तीसरे या छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब-किताब समझने और पड़तालने के लिए भेजा करे और वह सभासद् वहाँ जाकर कुल आमदनी और खर्च की जाँच-पड़ताल किया करे और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर करे और इस पड़ताल की एक-एक प्रति प्रत्येक सभासद् के पास भेजे और यदि यन्त्रालय के प्रबन्ध में कुछ त्रुटि देखे तो उसके सुधार के लिए अपनी सम्मति लिखकर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्येक सभासद् के पास भेज देवे और प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी-अपनी सम्मति सभापति के पास लिख भेजे और सभापति सबकी सम्मति से यथोचित प्रबन्ध करे, इस कार्य में कोई सभासद् आलस्य या अनुचित व्यवहार न करे।

३. इस सभा को उचित है कि जैसा यह परम धर्म और परमार्थ का काम है वैसा ही उसको उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे।

४. प्रागुक्त तेईस आर्यसज्जनों की सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जाए, अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और होगा। यदि उक्त सभासदों में से कोई सभासद् स्वार्थ में पड़कर इन नियमों के विरुद्ध काम करे या कोई अन्य मनुंष्य हस्तक्षेप करे तो वह सर्वथा झूठा समझा जाए।

५. जैसे इस सभा को वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे सब पदार्थों की यथाशक्ति रक्षा और उन्नति करने का भी अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार का भी अधिकार है, अर्थात् जब मेरा शरीर छूटे तो न उसको गाड़े, न जल में बहावे, न जंगल में फेंके, सिर्फ़ चन्दन की चिता बनवावे और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पाँच सेर कूपर, अढ़ाई मन अगर, तगर और दस मन काष्ठ लेकर वेद के अनुसार जैसाकि संस्कारविधि पुस्तक में लिखा है वेदि बनाकर वेदमन्त्रों से जो उसमें लिखे हैं भस्म करे। इसके सिवाय और कुछ वेद के विरुद्ध न करें और जो उस समय इस सभा का कोई सभासद् उपस्थित न हो तो जो कोई उस समय उपस्थित हो वही यह काम करे और जितना धन इसमें लगे उतना सभा से ले-लेवे और सभा उसको दे देवे।

६. अपने जीवन में मैं और मेरे बाद यह सभा इस बात का अधिकार रखती है कि जिस सभासद् को चाहे पृथक् करके किसी और योग्य सामाजिक आर्यपुरुष को उसका स्थानापन्न नियत कर दे, परन्तु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न किया जाएगा, जब तक उसके काम में कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाए।

७. मेरे सदृश यह सभा सदा स्वीकार-पत्र की व्याख्या या उसके नियमों का पालन या किसी सभासद् के पृथक् करने और उसके स्थान में अन्य सभासद् को नियत करने या मेरे आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे, जो सब सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय हो या होवें और यदि सभासदों की सम्मति में विरोध रहे तो बहुसम्मति के अनुसार काम करें और सभापति की सम्मति को सदा द्विगुण समझें।

८. किसी दशा में भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को अपराध के सिद्ध होने पर भी पृथक् न कर सकेगी जब तक कि उनकी जगह में और सभासदों को नियत न कर ले।

९. यदि किसी सभासद् का देहान्त हो जाए या वेदोक्त धर्म को छोड़कर उक्त नियमों के विरुद्ध चलने लगे तो सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से उसको पृथक् करके उसकी जगह में किसी और योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्यपुरुष को नियत करें, परन्तु उस समय तक साधारण कामों के अतिरिक्त कोई नया काम न छेड़ा जाए।

१०. इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार का प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे, परन्तु यदि सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा-पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो समय का निर्धारण करके लेख द्वारा सम्पूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

११. प्रबन्ध का घटाना-बढ़ाना या स्वीकार या अस्वीकार करना या किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना या आमदनी व खर्च की जाँच-पड़ताल करना या अन्य हानि-लाभ सम्बन्धी विषयों को सभापति वर्षभर में या छह महीने में छपवाकर चिट्ठी के द्वारा सब सभासदों में प्रचारित करे।

१२. यदि इस स्वीकार-पत्र के विषय में कोई झगड़ा उठे तो उसको राजगृह में न ले-जाना चाहिए, किन्तु जहाँ तक हो सके यह सभा अपने-आप उसका निर्णय करे। यदि आपस में किसी प्रकार निर्णय न हो सके तो फिर न्यायालय से निर्णय होना चाहिए।

१३. यदि मैं अपने जीते-जी किसी योग्य आर्यपुरुष को पारितोषिक देना चाहूँ और उसकी लिखत-पढ़त कराकर रजिस्ट्री करा दूँ तो सभा को चाहिए कि उसको माने और दे।

१४. मुझे और मेरे पीछे सभा को सदा अधिकार है और रहेगा कि उक्त नियमों को देश के किसी विशेष लाभ और परोपकार के लिए न्यूनाधिक करे।

हस्ताक्षर

दयानन्द सरस्वती

महाराणा का पुत्र-जन्म पर दान—पुत्र-जन्म के हर्ष में महाराणा ने ५०० रुपये अनाथालय आर्यसमाज फ़ीरोज़पुर को और इसके अतिरिक्त १०० रुपये उक्त अनाथालय की सूई का काम करनेवाली कन्याओं को दान दिये थे। १२०० रुपये वेदभाष्य की सहायता में और एक बढ़िया दुशाला चादर महाराज को और १०० रुपये और एक साधारण दुशाला रामानन्द ब्रह्मचारी को दिया था। इसका उल्लेख महाराज ने अपने ४ मार्च सन् १८८३ के पत्र में, जो उन्होंने चित्तौड़ से राजा दुर्गाप्रसाद रईस फ़र्रुखाबाद को लिखा था, किया है§। उसमें महाराणा के महाराज से मनुस्मृति आदि पढ़ने, स्वीकार-पत्र के लिखे जाने, महाराणा को दिनचर्या का उपदेश करने तथा महाराणा के उपर्युक्त दान का वर्णन करने के पश्चात् अन्त में महाराज ने लिखा है "वैदिक धर्म की प्रथम ही रुचि थी, अब विशेषकर हुई। जैसे श्रीमान् आर्यकुलदिवाकर सुशीलता, कृतज्ञता, सुसभ्यता, प्रसन्नता, ज्ञान आदि शुभगुण-कर्म-स्वभाव युक्त मैंने देखे, वैसे बहुत विरले होंगे।"§

विदा-समय सम्मान—जब महाराज ने महाराणा से विदा लेनी चाही तो महाराणा ने २००० रुपये महाराज की भेंट किये, परन्तु महाराज उनके स्वीकार करने पर सहमत न हुए। महाराणा ने कहा कि हम तो इन्हें रख नहीं सकते, क्योंकि इन्हें आपकी सेवा में भेंट करने का सङ्कल्प कर चुके हैं। तब महाराणा के आग्रह पर महाराज ने कहा कि यह रुपया परोपकारिणी सभा को दे दिया जाए। उस समय तक उक्त सभा की कोई निधि न थी, अतः यह निश्चय हुआ कि एक निधि वैदिक निधि के नाम से स्थापित की जाए और उसी में यह रुपया जमा किया जाए, सुतराम्, ऐसा ही किया गया। वह रुपया राजकोष में उक्त निधि के नाम से जमा कर दिया गया। बाद में और रुपया भी जो अन्यत्र जमा था इसी कोष में जमा कर दिया गया।

महाराणा का विद्या प्रेम—उदयपुर से चलते समय महाराणा ने कहा कि यदि आप षड्-दर्शन का भाष्य करें तो उसकी सहायता में २०,००० रुपया मुझसे मँगा लें, परन्तु महाराज ने उत्तर दिया कि पहले तो हमें वेदों का भाष्य करना है।

मान-पत्र—चलते समय महाराणा ने एक मानपत्र स्वहस्ताक्षरयुक्त महाराज को दिया जो इस प्रकार था—

---

§ यह पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में पृष्ठ ४०० पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्ति श्रीसर्वोपकारार्थ-कारुणिक-परमहंस-परिव्राजकाचार्यवर्य श्री ५ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीयतिवर्येषु इतो महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु ।

इदन्तु, आपका अठै सात मास का निवास सूं चित्त अत्यन्त आनन्द में रह्यो, क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपका संयोग सूं ही न्याय, धर्मादि शारीरिक कार्य में निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवा की म्हां का सभ्य जनासहित दृढ़ आशा हुई, कारण कि शिक्षा और उपदेश वाँ का श्रेष्ठ पुरुषाँ का दृढ़ होवै है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै, सो आपमें यथार्थ मिल्यो, अब म्हे आपका वियोग का संयोग तो नहीं चाँवाँ हाँ, परन्तु आपका शरीर अनेक पुरुषाँ कै उपकारक है जीसूँ अवरोध करणो अनुचित है, तथापि पुनरागमन सूँ आप भी म्हाँ का चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करैगा इत्यलम् ।

संवत् १६३६ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे

हस्ताक्षर **महाराणा सज्जनसिंहस्य**

महाराणा ने महाराज को अतिसम्मानपूर्वक विदा किया । महाराज १ मार्च को नींबाहेड़ा पहुँचे और वहाँ से चित्तौड़ पधारे । चित्तौड़ में आपका निवास सात मार्च सन् १८८३ ई० तक रहा । इतने में राजाधिराज शाहपुरे का पत्र लेकर उनके भेजे हुए पुरुष महाराज को शाहपुरा लिवा ले-जाने के लिए आ गये और आप उनके साथ शाहपुरा के लिए चल पड़े ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टाविंश अध्याय

फाल्गुन संवत् १९३९—कार्त्तिक संवत् १९४०

(९ मार्च—२६ मई) **शाहपुरा** (फाल्गुन कृ० १४ सं० ३९—ज्येष्ठ कृ० ४ सं० ४०)

राजाधिराज श्री नाहरसिंहजी शाहपुराधीश ने महाराज के दर्शन चित्तौड़ में किये थे जबकि वहाँ रिपन का दरबार हुआ था। उसी समय वे महाराज के श्रद्धालु भक्त बन गये थे और उसी समय उन्होंने महाराज से शाहपुरा पधारने की प्रार्थना की थी। महाराज ने उसे स्वीकार करते हुए कह दिया था कि अवसर प्राप्त होने पर आएँगे, अतः जब राजाधिराज को यह सूचना मिली कि महाराज उदयपुर से विदा होकर चितौड़ में विराजमान हैं तो उन्होंने तुरन्त अपने विश्वस्त कर्मचारियों को उन्हें लिवा लाने के लिए भेजा और एक लिखित प्रार्थना-पत्र भी श्रीसेवा में प्रेषित किया। महाराज पहले ही शाहपुरा पधारना स्वीकार कर चुके थे, अतः राजाधिराज की भक्ति और प्रेम देखकर वे उनके कर्मचारियों के साथ शाहपुरा के लिए चल पड़े। रूपाहेली स्टेशन तक तो रेल में गये और वहाँ से राजाधिराज के भेजे हुए यान पर फाल्गुन कृष्णा १४ संवत् १९३९ अर्थात् ९ मार्च १८८३ को शाहपुरा पहुँच गये। राजाधिराज ने महाराज के निवास के लिए राजकीय बाग़ में समुचित प्रबन्ध कर रक्खा था और डेरे आदि लगवा दिये थे। महाराज वहीं ठहर गये। सायंकाल को राजाधिराज भी परिषद्वर्गसहित श्रीसेवा में उपस्थित हुए। अन्य प्रतिष्ठित नागरिक भी दर्शनों को आये। उस दिन दो घण्टे तक महाराज और राजाधिराज का प्रेमालाप होता रहा। पाँच दिन तक इसी प्रकार परस्पर वार्त्तालाप होता रहा। फिर यह निश्चय हुआ कि राजाधिराज सायंकाल के ६ बजे से रात्रि ९ बजे तक श्रीसेवा में उपस्थित रहा करें जिसमें १ घण्टे तक तो धर्मविषय पर प्रश्नोत्तर और २ घण्टे तक पढ़ना हुआ करे। तदनुसार राजाधिराज ने श्रीचरणों में बैठकर मनुस्मृति (प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़कर) तथा पातञ्जल योगशास्त्र और वैशेषिकदर्शन का कुछ भाग पढ़ा। प्रातःकाल जब महाराज भ्रमण को जाया करते थे तो कभी-कभी राजाधिराज भी उनके साथ चले जाते थे और उनसे एकान्त में प्राणायाम-विधि सीखा करते थे।

ब्राह्मणकुमार को संन्यास-दान—महाराज ने एक होनहार ब्राह्मणकुमार को संन्यास दिया था। उसका नाम ईश्वरानन्द रक्खा। उसे उसी समय विद्योपार्जन के लिए प्रयाग भेज दिया और वैदिक यन्त्रालय के मैनेजर को लिख दिया था कि जब तक वह पढ़ता रहे उसे ५) रु० मासिक मिलता रहे।§

निद्रा पर अधिकार—महाराज का यह नियम था कि मध्याह्न के भोजन के पश्चात् ग्रीष्मकाल में १६ मिनट और शीतकाल में १४ मिनट निद्रा लिया करते थे। निद्रा उनके इतनी वशवर्तिनी थी कि लेटने के कुछ क्षण पश्चात् ही वे गाढ़ निद्रा से अभिभूत हो जाते थे और घड़ी की सूई के १६ मिनट पर पहुँचते ही १७वें मिनट में अंगड़ाई लेकर उठ बैठते थे और २-३ मिनट में हाथ हुँह धोकर वेदभाष्य के कार्य में लग जाते थे। भृत्य लोग भी महाराज के नियत समय पर शय्यात्याग करने से परिचित हो गये थे और वे घड़ी की सूई के १६ मिनट पर पहुँचते ही मुँह-हाथ धुलाने का जल ठीक करके रख देते थे।

---

§ मैनेजर वैदिक यन्त्रालय के नाम लिखा पत्र उपलब्ध नहीं हुआ। इस बात का वर्णन ईश्वरानन्द के नाम लिखे पत्र में भी मिलता है। देखो ऋषि के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ४४२—४४३। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमें शास्त्रार्थ से क्या काम—एक दिन कुछ लोग महाराज के पास आये और कहने लगे कि यहाँ रामसनेहियों के महन्त हिम्मतराम रहते हैं, आपका यदि उनसे शास्त्रार्थ हो जाए तो उत्तम है। महाराज ने कहा कि हम शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हैं, उन्हें हमारे पास लिवा लाओ। लोग हिम्मतराम के पास गये और उनसे अपना मनोभाव प्रकट किया, परन्तु महन्तजी ने कहा कि भाई हम तो पानी छानकर पीते हैं और राम-राम कहते हैं, हमें शास्त्रार्थ से क्या काम !

रामसनेहियों से भेंट—उन्हीं दिनों में शाहपुरा में रामसनेहियों का एक मेला था। उसमें ब्यावर के कुछ रामसनेही वैश्य आये हुए थे। एक दिन वे महाराज का व्याख्यान सुनने के लिए आये। उस समय तक व्याख्यान आरम्भ नहीं हुआ था, वे महाराज को 'राम-राम' करके बैठ गये। महाराज ने उसका उत्तर 'नमस्ते' शब्द से दिया। थोड़ी देर पश्चात् महाराज ने उनसे पूछा कि तुम लोग इतने दिन से 'राम-राम' जपते हो, इससे क्या लाभ है ? उन्होंने कहा पहले नाम पीछे नामी, जैसे हमने पहले आपका नाम सुना और पीछे ढूँढते-ढूँढते आपको पा लिया, जैसे पहले काशी कहते-कहते और पीछे ढूँढते-ढूँढते मनुष्य काशी पहुँच जाता है, ऐसे ही 'राम-राम' कहते-कहते मनुष्य पीछे राम को पा लेता है। महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने तो कभी पहले तुम्हारा नाम नहीं जपा, परन्तु फिर भी मैंने तुम्हें अपने सम्मुख बैठे हुए कैसे पा लिया ? केवल नाम लेने से ही परमेश्वर नहीं मिल सकता। उसके लिए साधन करना आवश्यक है। केवल लड्डू-लड्डू कहने से ही लड्डू नहीं मिल सकता, उसके लिए उपयुक्त साधन करना होता है।

बाबाजी ! स्वामीजी सच कहते हैं—यह बातें हो ही रही थीं कि पाँच-पाँच, छह-छह वर्ष के बालक जो उन वैश्यों की गोद में बैठे हुए थे, हठात् उठकर कहने लेगे बाबाजी ! स्वामीजी सच कहते हैं। लड्डू-लड्डू कहने से क्या लड्डू मिल सकते हैं ? यह सुनकर सब लोग विस्मित हो गये, तब महाराज ने कहा कि ये बालक पक्षपाती नहीं हैं, इन्होंने किसी के कहने से ऐसा नहीं कहा। अब इन बालकों की सरलोक्तिपूर्ण मध्यस्थता से हमारे-तुम्हारे शास्त्रार्थ की सुन्दर मीमांसा हो गई।

राजपुरोहित से वार्त्तालाप—रविवार को महाराज वेदभाष्य का कार्य नहीं किया करते थे। एक रविवार को राजपुरोहित छविमल व्यास महाराज के पास आये और 'नमो नारायण' कहकर बैठ गये। महाराज ने उनका 'नमस्ते' शब्द से अभिवादन किया और कहा कि आइए आज हमारी छुट्टी है और आपसे शास्त्रचर्चा करने की सुविधा है। व्यासजी ने कहा कि छुट्टी—मुक्ति तो हमारे लिए हो सकती है, क्योंकि हम संसार-बन्धन में बद्ध हैं। आप तो संसार-बन्धन में हैं नहीं, फिर आपकी छुट्टी वा मुक्ति कैसी ? महाराज ने कहा कि हमारी वेदभाष्य के कार्य से छुट्टी है। व्यासजी ने कहा कि वेदभाष्य धर्मकार्य से छुट्टी कैसी ? महाराज ने कहा कि धर्मकार्य से नहीं, वेद-भाष्य के कार्य से छुट्टी है। फिर महाराज ने कहा कि कोई शङ्का-सन्देह हो तो कहिए। व्यासजी ने उत्तर दिया कि हम तो निःसन्देह हैं, हम किसी शङ्का-सन्देह के निवारण करने के लिए आपके पास नहीं आये, हम तो केवल आपसे मिलने के लिए आये हैं। महाराज ने कहा कि निस्सन्देह तो दो ही प्रकार के लोग हो सकते हैं—

यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः पराङ्गतः। द्वौ हीमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

अर्थ—दो ही प्रकार के लोग सुख भोगते हैं एक तो वे जो अत्यन्त मूढ़ हों, दूसरा वह जो परम बुद्धिमान् हो, दोनों के बीच के लोग क्लेश पाते हैं।

आप इन दोनों में से कौन हैं ? व्यासजी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, परन्तु थोड़ी देर पीछे कहा कि आप जो समझें, आप तो बुद्धिमान् ही हैं।

विद्यार्थी के प्रश्नों का उत्तर—बिहारीलाल नामक एक विद्यार्थी थे। उन्होंने महाराज से तीन प्रश्न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किये—

प्रश्न १—पाणिनि की अष्टाध्यायी के तीसरे अध्याय के दूसरे पाद के १७७ वें सूत्र **"भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्"** में ग्राव-स्तुति अर्थात् पत्थर की स्तुति प्रतिपादित की गई है।

प्रश्न २—पाणिनि के एक सूत्र§ का उल्लेख करके कहा कि इससे शिव, स्कन्द, विष्णु प्रभृति की मूर्त्ति सिद्ध होती है।

प्रश्न ३—ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं ?

महाराज ने इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार दिये—

उत्तर १—स्तुति अनेक वस्तुओं की होती है। जैसे कारीगर कहते हैं, कि यह पत्थर उत्तम है, यह काष्ठ उत्तम है। ग्रावा के अर्थ पत्थर अवश्य हैं, परन्तु इससे पत्थर की मूर्त्ति की सिद्धि नहीं होती।

उत्तर २—उस समय शिव, विष्णु आदि मनुष्यों के नाम होते थे। विदेश आदि जाने पर उनकी मूर्त्तियाँ रक्खी जीती थीं, परन्तु इससे शिव, विष्णु आदि की पूजा सिद्ध नहीं होती।‡

उत्तर ३—परमेश्वर सर्वव्यापक है।

इसपर बिहारीलाल ने कहा कि तो फिर मैं प्रस्तरादि में ईश्वर को व्यापक समझकर उसकी पूजा कर सकता हूँ।

महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारी झाँझ, घण्टे आदि और तुम्हारी वाणी, गले आदि में भी ईश्वर है तो तुम ईश्वर के एक अंश को आहत करके (घण्टा-घड़ियाल बजाकर) उसके दूसरे अंश (प्रस्तरादि) की पूजा करते हो, यह क्या बात है ? और यदि तुम पत्थर में यथार्थ रूप से ईश्वर-बुद्धि करके पत्थर को ईश्वर कर सकते हो तो बालू को शर्करा समझकर भोजन क्यों नहीं करते ?

बिहारीलाल ने महाराज की इस प्रकार की युक्तियाँ सुनकर मूर्त्तिपूजन करना त्याग दिया और वह शुद्ध चित्त से महाराज का अनुयायी हो गया।

विचित्र ज्ञानेन्द्रिय-प्रकाश—शाहपुरा में महाराज खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठकर वेदभाष्य किया करते थे। टट्टी पर जल छिड़कने के लिए एक हौज़ था जिसमें प्रतिदिन कुएँ से जल भर दिया जाता था और उसमें से जल लेकर घीसालाल बोळा ब्राह्मण टट्टी पर छिड़का करता था। हौज़ प्रतिदिन साफ़ कर दिया जाता था और उसमें ताज़ा जल भर दिया जाता था। एक दिन भृत्य ने असावधानी वा प्रमाद से हौज़ को साफ़ न किया और उसमें कुछ बासी जल पड़ा रह गया और उसी में ताज़ा जल भरकर टट्टी पर छिड़क दिया। इसके कुछ ही देर पश्चात् महाराज ने यह बात जान ली। उन्होंने तत्क्षणात् वेदभाष्य का कार्य बन्द कर दिया और कहा कि उस जल को फेंक दो और हौज़ को साफ़ करके उसमें ताज़ा जल भरो और जब तक हौज़ साफ़ होकर उसमें ताज़ा जल न भरकर टट्टी पर न छिड़का गया वेद-भाष्य का कार्य न किया। इस घटना को देखकर घीसालाल चकित हो गया। उसने कहा कि स्वामीजी में कैसी अद्भुत शक्ति है, ऐसी बातों के जानने की राजा-महाराजाओं में भी शक्ति नहीं होती।

पत्थर पर चढ़े बताशे—महाराज के दुग्ध में बताशे पड़ा करते थे। एक दिन उनके दुग्ध में बताशे डाले जा रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक बताशे पर सिन्दूर का सूक्ष्म-सा दाग़ लगा हुआ है। उन्होंने भृत्य से कहा कि ये बताशे पत्थर पर चढ़ाये हुए हैं, मैं इन्हें दुग्ध में नहीं डलवाऊँगा, तुम ये बताशे हलवाई को

---

§ **जीविकार्थे चापण्ये।** —अष्टा० ५।३।९९

‡ इसकी विशद व्याख्या त्रैणताद्धित सूत्राङ्क ८११ की व्याख्या में देखनी चाहिए। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लौटा आओ और फिर कभी उसकी दुकान से बताशे मत लाओ।

देखना उनका स्वभाव हो गया था, ये दोनों घटनाएँ इसके समुज्ज्वल दृष्टान्त हैं।

नैयायिक से विनोद-वार्त्ता—एक दिन एक नैयायिक महाराज की ओर आ निकले और लगे न्याय छौंकने। महाराज विनोदप्रिय तो थे ही। उन्होंने भी उनसे दो घड़ी मन बहलाने की ठान ली। महाराज ने नैयायिक महाशय से कहा कि 'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' इसका नव्य न्याय की रीति से अर्थ कीजिए। फिर क्या था, उन्होंने अवछेदकावच्छिन्न की झड़ी लगादी और लगे फक्किका पर फक्किका झाड़ने। आधे घण्टे तक महाराज उसे सुनकर मन-ही-मन हँसते और उनके व्यर्थ समय नष्ट करने पर खेद करते रहे। अन्त में महाराज ने गम्भीरतापूर्वक उनसे कहा कि भाई इसका सीधा अर्थ तो यह है कि 'देवदत्त ग्राम को जाता है', परन्तु आपने उसे ऐसा जटिल बना दिया कि कोई कुछ भी न समझे और उन्हें उपदेश किया कि पहले दर्शनों को समझ लो और फिर दार्शनिक बात-चीत करो।

चौके-चूल्हे का पाखण्ड—महाराज कच्ची-पक्की, निखरी-सिखरी रसोई के पचड़े को नहीं मानते थे। एक दिन एक संन्यासी, जो उनके पास अध्ययन करता था, चौके के प्रश्न पर रसोइया से बिगड़ बैठा तो महाराज ने उसकी भर्त्सना की कि संन्यासी होकर भी चौके-चूल्हे के पाखण्ड से नहीं छूटे। तुम्हें तो चारों वर्णों के परस्पर के भेदभाव को मिटाकर सार्वजनिक बन्धुत्व स्थापित करना चाहिए, परन्तु तुम स्वयं इस बखेड़े में पड़े हो।

स्वामीजी की सत्य-प्रियता—जिन दिनों महाराज शाहपुरा में थे उन्हीं दिनों फ़र्रुखाबाद के पण्डित गोपालरावहरि उनका जीवनवृत्तान्त 'भारत सुदशाप्रवर्तक' में लिखा करते थे। उन्होंने महाराज के प्रथम बार चित्तौड़ पधारने के वृत्तान्त में लिख दिया था कि महाराणा महाराज से प्रतिदिन दो बार मिला करते थे। यह बात सत्य न थी। इस वृत्तान्त के विषय में एक नवीनवेदान्ती साधु अमृतराम ने महाराज को शाहपुरा में पत्र भेजा कि गोपालरावहरि ने आपके सम्बन्ध में ऐसा मिथ्या लिखा है। महाराज सत्य को सर्वोच्च स्थान देते थे और असत्य से उन्हें अत्यन्त घृणा थी। महाराज ने उस साधु का पत्र पण्डित गोपालरावहरि को भेजकर लिख दिया कि उस समय उदयपुराधीश से मेरा समागम केवल तीन बार ही हुआ था। उन्हें यह भी चेतावनी दी कि जब आपको मेरा ठीक-ठीक वृत्तान्त विदित ही नहीं है तो इसके लिखने में साहस कभी मत कीजिए। थोड़ा-सा भी असत्य मिल जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य भी बिगड़ जाता है। ऐसा ही निश्चय रक्खो।

लेटते ही सो जाते थे—रात्रि को दस का पहला घण्टा बजते ही महाराज पलंग पर लेट जाते थे और लेटते ही गहरी नींद सो जाते थे। महाराज का निद्रा पर यह अधिकार देखकर सभी को आश्चर्य होता था।

जब महाराज उदयपुर में ही थे तभी जोधपुर से महाराज प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह के पत्र श्रीसेवा में आये थे, जिनमें उनसे जोधपुर पधारने की विनीत प्रार्थना की गई थी। महाराज ने उसी समय शाहपुरा से लौटकर जोधपुर जाने का वचन दे दिया था, अतः जब शाहपुरा में जोधपुराधीश महाराजा जसवन्तसिंहजी का निमन्त्रण आया तो महाराज ने जोधपुर की मरुभूमि को अपने अमृतोपम उपदेश की वर्षा से सिञ्चित करने का संकल्प कर लिया। रावराजा तेजसिंह और कर्नल सर प्रतापसिंह दीर्घकाल से महाराज के दर्शनों की आकांक्षा और उत्कण्ठा रखते थे और कई बार पत्र द्वारा श्रीचरणों में प्रार्थना कर चुके थे। उन्होंने यह प्रार्थना महाराजा जसवन्तसिंह के परामर्श से ही की थी। उनकी ऐसी भक्ति और आग्रह देखकर महाराज का भक्त-वात्सल्य और परोपकार का भाव उमड़ आया। उनके अनुग्रह-मेघ ने बरसने का संकल्प कर लिया और ज्येष्ठ वदी ४ सं० १९४० प्रस्थान के लिए नियत कर दी।

शाहपुराधीश की चेतावनी—जोधपुराधीश एक वेश्या नन्हीं भगतन पर बुरी तरह आसक्त थे और यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बात सब कोई जानता था। शाहपुराधीश को जब यह ज्ञात हुआ कि महाराज जोधपुर अवश्य जाएँगे तो उन्हें एक बात की चिन्ता हुई। वह यह कि महाराज जोधपुर जाकर इस पाप-कर्म की भी भरपूर निन्दा करेंगे, कहीं ऐसा न हो कि महाराज को कुछ हानि पहुँच जाए, अतः उन्होंने प्रेम से विह्वल होकर महाराज को एक हल्की-सी चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझा और महाराज से निवेदन किया कि जहाँ आप जा रहे हैं, वहाँ वेश्याओं का अधिक खण्डन न कीजिए।

चेतावनी का परिणाम—महाराज तलवारों की छाँह और तोप के मुँह पर भी सत्य बात के कहने और अपना कर्तव्य पालन करने से चूकनेवाले व्यक्ति न थे। उनके हितेच्छुओं ने खटके के अवसरों पर कितनी बार ऐसी चेतावनियाँ नहीं दी थीं और कितनी बार उन्होंने उनकी अवहेलना नहीं की थी ? इस चेतावनी का भी वही परिणाम हुआ जो ऐसी अनेक चेतावनियों का अनेक बार इससे पहले हो चुका था। महाराज ने कड़ककर उत्तर दिया कि मैं बड़े-बड़े कंटीले वृक्षों को नहुरने से नहीं काटा करता। उनके लिए तो अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।

सम्मान प्रदर्शन—विदा के समय शाहपुराधीश ने २५०) वेदभाष्य की सहायतार्थ दिये और वेद-धर्म-प्रचारार्थ एक उपदेशक ३०) रु० मासिक पर रखने का वचन दिया और निम्नलिखित मान-पत्र श्रीसेवा में अर्पित किया—

मान-पत्र—स्वस्ति श्रीसर्वोपकारणार्थ-कारुणिक-परमहंस-परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीजी महाराज के चरणारविन्दों में महाराजाधिराज शाहपुरेश की वारंवार नमस्तेऽस्तु।

अपरं च, यहाँ आपका विराजना सार्द्धद्वयमास हुआ, तथापि आपके सत्य धर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते, परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्तधर्म उपदेश ग्रहण, पुनः सत्याचरण, असत्य का त्याग और आपके मुखारविन्द से श्रवण की अभिलाषा देखके आपने वहाँ पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है, मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका पधारना ही उत्तम है।

यही समझकर यहाँ विराजने की प्रार्थना नहीं की। आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे।

सं० १९४० मिति ज्येष्ठ कृष्णा ४ हस्ताक्षर नाहरसिंहस्य,

नियत तिथि ज्येष्ठ कृष्णा ४ अर्थात् २६ मई सन् १८८३ को महाराज शाहपुरा से विदा हुए। शाहपुराधीश ने अतिसम्मानपूर्वक उन्हें विदा किया और बहुत दूर तक उनके साथ बग्घी में सवार होकर गये।

(२७ मई—२९ मई) अजमेर (ज्येष्ठ कृ० ७, ८)

२७ मई सन् १८८३ को महाराज अजमेर पहुँचकर सेठ फ़तहमल की कोठी में उतरे। अजमेर महाराज केवल एक ही दिन ठहरे, परन्तु उस दिन भी उपदेश और शंका-समाधान का कार्य करते रहे। महाराज के आगमन की सूचना पाते ही लोग उनके पास इकट्ठे हो जाते थे।

जैन सेठ से वार्त्तालाप—उस दिन एक सेठजी आये, जो जैन थे। उन्होंने कहा कि संसार में त्याग ही मुख्य बात है। महाराज ने कहा कि यह असम्भव है। सेठजी से महाराज ने संसार का लक्षण पूछा, परन्तु वे न बतला सके। फिर धर्म-अधर्म पर बातचीत हुई। भूत-प्रेत का प्रसङ्ग आया जिसे महाराज ने ढकोसला बताया। महाराज के सुप्रसिद्ध शिष्य राव बहादुर गोपालरावहरि देशमुख जज पूना के पुत्र लक्ष्मणरावजी असिस्टेंट कलक्टर खानदेश महाराज से योगाभ्यास सीखने के लिए अजमेर आये हुए थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूलासुर के देश में न जाइए—अजमेर में लोग जोधपुर की स्थिति को जानते थे कि महाराजा एक वेश्या के फन्दे में हैं और यह स्पष्ट ही था कि महाराज उनके इस दुराचार के विरुद्ध खुले शब्दों में उपदेश किये बिना नहीं रहेंगे और इसलिए महाराज के हितचिन्तक अनिष्ट की शङ्का करते थे, वैसे भी लोग उस मरुभूमि को न केवल प्राकृतिक दृष्टि से ही वरन् धार्मिक दृष्टि से भी ऊसर समझते थे, अतः कुछ भक्तों ने भावी विपत्ति के भय से महाराज से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि भगवन् वह मूल राक्षस का देश है, वहाँ न जाइए, परन्तु महाराज धुन के धनी थे और एक बार वचन देकर उसे लौटाना जानते ही न थे, उन्होंने हितेच्छुओं के हृदय से निकले हुए वचनों पर कर्णपात न किया और इतना ही कहा कि यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियाँ बानकर जलादें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश करूँगा।

(३१ मई—१६ अक्तू०) जोधपुर (ज्येष्ठ कृ० १०—आश्विन शु० १५)

महाराज २६ मई सन् १८८३ को १२ बजे अजमेर से सवार हुए और पाली स्टेशन पर पहुँचे। इस समय पाली तक ही रेल थी और वहाँ ही महाराज के लिए यानादि का जोधपुर राज्य की ओर से प्रबन्ध था। म० लक्ष्मणरावजी भी महाराज के साथ थे। पाली पर चारण नवलदान और मुंशी दामोदरदास यानादि लिये हुए उपस्थित थे। एक हाथी, तीन रथ, एक सेज-गाड़ी, तीन ऊँट और चार सवार उनके साथ थे। पाली में महाराज अग्रवालों के बाग़ में उतरे और वहाँ का हाकिम भी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ।

जोधपुर के मार्ग में कष्ट—दूसरे दिन महाराज ने प्रातःकाल ही जोधपुर के लिए प्रस्थान कर दिया। पाली से जोधपुर १८ कोस है, मार्ग में महाराज और उनके साथियों को बहुत कष्ट हुआ। बड़े ज़ोर की वर्षा होने लगी जिससे सब लोग और सारा सामान भीग गया। झंझावात से रथ आदि की छत तक उड़ गई। उस दिन सबने रोपट में डेरा किया। वहाँ के जागीरदार ठाकुर गिरधारीसिंह ने बड़े उत्साह से महाराज का आतिथ्य किया और वे महाराज के अनुयायी हो गये। वहाँ से रात्रि में ही महाराज ने कूच कर दिया।

जोधपुर में स्वागत—३१ मई को प्रातःकाल जब जोधपुर दो कोस रह गया तो महाराज वायुसेवनार्थ यान से उतर पड़े और पैदल चलने लगे। अन्य साथियों ने भी महाराज का अनुकरण किया। राज्य की ओर से राव राजा जवानसिंह ने कुछ दूर बढ़कर महाराज का स्वागत किया। जोधपुर में उन्हें नज़रबाग़ के सामने भैया फ़ैज़ुल्लाखाँ की कोठी में ठहराया गया। महाराज के पहुँचते ही सर कर्नल प्रतापसिंह महाराजा के लघु सहोदर और राव राजा तेजसिंह महाराज के स्वागत को आये। सर प्रतापसिंह ने नमस्ते करके २५) नक़द और एक मोहर महाराज की भेंट की। महाराज की सेवा के लिए उन्होंने समुचित प्रबन्ध कर दिया, उनके लिए सवत्सा दुग्धवती गौ भेज दी, उनके भोजन, शयनादि की सुव्यवस्था करदी और एक गार्ड जिसमें ६ सिपाही और एक हवलदार था उनकी रक्षा और चार सेवक उनकी सेवा के लिए नियत कर दिये। इस प्रकार सर प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह ने महाराज के सुख और सुविधा के उपकरण प्रस्तुत करने में कोई त्रुटि नहीं की। महाराजा जसवन्तसिंह के गले में पीड़ा थी, अतः वे महाराज के स्वागत के लिए स्वयं न पधार सके थे।

महाराजा दर्शनों को आये—महाराज के जोधपुर पहुँचने के सत्रह दिन के पश्चात् महाराजा उनके दर्शनों को आये और आते ही नम्र नमस्कारपूर्वक १००) रुपये और ५ मोहर श्रीचरणों में भेंट की। महाराज कुर्सी पर विराजमान थे। महाराजा ने उनके सामने कुर्सी पर बैठना शिष्टसम्मत न समझा, अतः वे फ़र्श पर ही बैठने लगे। महाराज ने उन्हें कुर्सी पर बैठने को कहा, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि आप हमारे स्वामी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और हम आपके सेवक हैं। तब महाराज ने उनका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठलाया।

उपदेश गङ्गा—कुशल-प्रश्नानन्तर महाराज ने उनसे पूछा कि कहिए क्या इच्छा है तो उन्होंने उत्तर में कहा कि मैं श्रीचरणों में शिक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा से उपस्थित हुआ हूँ। यह सुनकर महाराज ने अपना उपदेश-भण्डार खोल दिया और उन्हें सुधर्म, सुकर्म और राजनीति के अनर्घ रत्नों से निहाल कर दिया। महाराज ने उनके पूर्वज जयचन्द के दृष्टान्त से आरम्भ करके स्वदेश-द्रोह और फूट के दोष दिखाते हुए ऐक्य और स्वदेशप्रेम के गुण बतलाये, मनुस्मृति के अनुसार राजा-प्रजा के धर्म वर्णन किये, राजनीति के गूढ़ तत्त्व समझाये। महाराज ने लगभग तीन घण्टे तक अपने उपदेश के अटूट धार-प्रवाह को प्रवाहित रक्खा। महाराजा ने आयुभर में ऐसा सारगर्भित, ऐसा मर्मस्पृक् उपदेश कभी न सुना था। उसे सुनकर उन्हें असीम आनन्द हुआ और यह पहला सम्मिलन बड़ी प्रसन्नता और प्रीति के साथ समाप्त हुआ। महाराज से विदा होते हुए महाराजा ने निवेदन किया कि आपका यहाँ पधारना दुर्लभ है, आप जब तक यहाँ रहें, उपदेश से जनता को कृतार्थ करते रहें।

व्याख्यान-माला—इसके दूसरे दिन से ही मध्याह्नोत्तर में ४ बजे से ६ बजे तक फ़ैज़ुल्लाखाँ की कोठी के सहन में विविध विषयों पर महाराज के व्याख्यान होने लगे। सैकड़ों लोग व्याख्यान सुनने आने लगे। उन्होंने पहले कभी ऐसे व्याख्यान नहीं सुने थे। श्रोताओं की आँखें खुलने लगीं, जिन बातों को वे ब्रह्मा का वाक्य समझ रहे थे वे महाराज के उपदेश के प्रकाश में भ्रममूलक दिखाई पड़ने लगीं। उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ, मनुष्य-जन्म के उद्देश्य का ध्यान हुआ। महाराज के व्याख्यानों में उन्हें नित्य नया आत्मिक भोजन मिलता था जिसे पहले चखना तो दूर, जिसकी गन्ध भी उनके नासापुटों तक न पहुँची थी। महाराज के सदुपदेशों को सुनकर प्रत्येक श्रोता यह अनुभव करता था कि वह ज्ञान और आनन्द की गङ्गा में स्नान कर रहा है।

आप मुझसे झूठ बुलाना चाहते हैं—महाराज अपने व्याख्यानों में क्षत्रियों के चरित्र-संशोधन और गोरक्षा पर बहुत बल देते थे। वे यह जानते थे कि महाराजा का नन्हीं भगतन वेश्या से विशेष सम्बन्ध है, और इसी भय से कि कहीं महाराज उनके इस दुष्कर्म की सभा में निन्दा न कर बैठें पहले व्याख्यान से पूर्व ही रावराजा तेजसिंह ने डरते-डरते महाराज से निवेदन कर दिया था कि भगवन्! आप महाराजा के चरित्र के विषय में कुछ न कहें। महाराज को यह बात बहुत अखरी और उन्होंने आवेश के साथ उनसे कहा कि आप मुझसे झूठ बुलवाना चाहते हैं, मैं जो कुछ कहूँगा सत्य ही कहूँगा। मैं जो कुछ कहता हूँ वह असभ्यतासूचक वा किसी व्यक्ति का नाम निर्देशपूर्वक नहीं होता।

वेश्या-गमन की निन्दा—महाराज ने भरी सभा में वेश्यागमन के दोषों को दिखाने और वेश्या-गामियों को फटकारने में तनिक भी संकोच नहीं किया और इस सम्बन्ध में वही शब्द कहे जो वे सदा कहा करते थे अर्थात् क्षत्रिय सिंह हैं और वेश्या कुतिया है। लोक में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि यही बात महाराज ने महाराजा जसवन्तसिंह से कही थी।

मिथ्या किंवदन्ती—यह घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक दिन महाराज महाराजा के बंगले पर पधारे थे। उस समय महाराजा के पास नन्हीं भगतन बैठी थी। महाराज के आगमन की सूचना मिलते ही महाराजा ने कहारों को आज्ञा दी कि नन्हीं भगतन की पालकी उठाकर ले-जाओ। पालकी उठाते हुए उसका एक ओर का कन्धा झुक गया तो महाराजा ने उसे अपने कन्धे वा हाथ का सहारा दे दिया। इतने में ही महाराज भी आ पहुँचे और उन्होंने महाराजा को पालकी को सहारा देते हुए देख लिया। यह दृश्य देखकर महाराज को बहुत क्रोध आया और उन्होंने महाराजा से कहा कि राजपुरुष सिंह के समान और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेश्याएँ कुतिया के समान हैं। सिंहों को कदापि न चाहिए कि वे कुतियाओं से समागम करें। कुतियों पर आसक्त होना कुत्तों का ही काम है, न कि अच्छे मनुष्यों का और लड़कों पर मोहित होनेवाले तो शूकर और कौए ही होते हैं। सहस्रों धिक्कार है ऐसे जीवों पर !

देवेन्द्रबाबू ने जो अनुसन्धान जोधपुर जाकर किया उसमें इस घटना का उन्हें कोई प्रमाण नहीं मिला। हाँ इतना अवश्य सिद्ध हुआ कि महाराज ने एक बार महाराजा के भ्राता महाराज किशोरसिंह से कुचामन के ठाकुर के पुत्र कुंवर शेरसिंह के सामने यही बात अवश्य कही थी, जिसे वह नीची ग्रीवा किये सुनते रहे, परन्तु मन में वह महाराज से अप्रसन्न हो गये। ऐसे विरले ही मनुष्य होते हैं जो हितेच्छु उपदेष्टा से अपने दोषों को सुनकर उनके त्यागने का यत्न करते हों। अधिकतर तो ऐसे ही होते हैं, जो दोषों को सुनकर चिढ़ जाते हैं और उपदेष्टा से ही द्रोह करने लगते हैं। सच है—

अप्रियस्य तु तथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

अर्थात्—अप्रिय सत्य का कहने और सुननेवाला दोनों ही दुर्लभ हैं।

राजाओं को फटकार, सर प्रतापसिंह को पत्र—एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में भी राजाओं के व्यभिचार का बड़े कड़े शब्दों में खण्डन किया और कहा कि ये लोग वेश्याओं के पीछे कुत्ते के समान फिरते हैं। इतना ही नहीं सर प्रतापसिंह को निम्नलिखित पत्र लिखकर उन्हें और महाराजा को चरित्र-संशोधन के विषय में सचेत किया—

श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा प्रतापसिंहजी ! आनन्दित रहो। यह पत्र बाबा साहब को भी दृष्टिगोचर करा दीजिए।

मुझे इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्यादि में वर्त्तमान—आप और बाबा साहब रोगयुक्त शरीरवाले हैं। अब कहिए इस राज्य का कि जिस में १६ लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं, उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं, सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है, तथापि आप लोग अपने शरीर का आरोग्यसंरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं, यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है, मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्चा मुझसे सुनकर सुधार लेवें जिससे मारवाड़ को क्या अपने आर्यावर्त्त देशभर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप-जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्म के भी बहुत कम चिरञ्जीव, दीर्घायु होते हैं। इसके हुए बिना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती है। इसपर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिए। आगे जैसा आप लोगों की इच्छा हो वैसा कीजिएगा।§ आश्विन‡ वदी ३ शनिवार संवत् १६४०।

नन्हीं भगतन शत्रु हो गई—इन बातों से नन्हीं भगतन बहुत घबराई। उसे भय हुआ कि महाराज के उपदेश से कहीं महाराजा उसका परित्याग न कर दें। वह महाराज की पक्की शत्रु बन गई।

शत्रुओं का दल बन गया—अन्य लोगों में भी कुछ लोग महाराज के विरुद्ध हो गये। भैया फ़ैज़ुल्लाखाँ मुसाहिब-आला की उन दिनों जोधपुर में तूती बोल रही थी। वह एक प्रकार से राज्य के कर्ता-धर्ता बने हुए थे। महाराजा पर उनका प्रभाव था या नन्हीं भगतन का। बड़े-बड़े जागीरदार और सरदार भी उनका मुँह तकते रहते थे। फ़ैज़ुल्लाखाँ भी तीन बार महाराज से मिलने आये थे। धर्म-विषय पर उन्होंने महाराज से

---

§ यहाँ पत्र अधूरा छपा है। पूरे पत्र के लिए देखो ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार पृष्ठ ४५४-४५६।

‡ मूल पत्र में 'मि० आ० ब० ३ शनि सं० १६४०' इतना ही उल्लेख है यहाँ "आ०" से आषाढ़ समझना चाहिए। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृ० ४५६ टि० २। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

बात-चीत भी की थी। महाराज तो सत्य कहने में किसी से लचते न थे। अपने एक व्याख्यान में महाराज ईसाईमत की आलोचना कर रहे थे कि भय्या फ़ैज़ुल्लाखाँ मुसाहिब-आला का भतीजा मोहम्मद हुसैन तलवार की मूठ पर हाथ रखकर खड़ा हो गया और महाराज से बोला कि आप हमारे मत के विषय में कुछ भी न कहें। महाराज ने उसे तो इस प्रकार के वचन कहकर कि तुम अभी अनुभवशून्य हो, खड्ग पर केवल हाथ धरना ही जानते हो उसे कोश से निकाल नहीं सकते, मैं ऐसी गीदड़-भबकियों से डरनेवाला नहीं हूँ, शान्त कर दिया और वह लज्जित होकर बैठ गया। इसके पश्चात् महाराज ने इस्लामधर्म की खूब कड़ी आलोचना की जिससे फ़ैज़ुल्लाखाँ और अन्य मुसलमान उनके शत्रु बन गये।

मुस्लिम राज्य में जीते न बचते—एक दिन जब वे महाराज से मिले तो उन्होंने अपने क्रोध को इन शब्दों में प्रकट किया कि यदि मुसलमानों का राज्य होता तो लोग आपको जीवित न छोड़ते और उस समय आप ऐसा भाषण भी न कर सकते। महाराज ने कहा कि मैं भी उस समय ऐसा ही कार्य करता, दो राजपूतों की पीठ थपेड़ देता और वह आपकी अच्छी तरह खबर ले-लेते।

मुझे मनुष्य की रक्षा की आवश्यकता नहीं—जिस पहाड़ की ओर महाराज प्रातःकाल हवा खाने जाया करते थे उसपर हिंस्र पशु बहुत रहते थे। दरबार साहब ने स्वामीजी से कहा कि आपका अँधेरे में अकेले उस ओर जाना ठीक नहीं है, परन्तु स्वामीजी ने इसपर कोई कर्णपात न किया। तब दरबार ने राव राजा तेजसिंह से कहा कि स्वामीजी की रक्षार्थ रिसाले का एक सवार नियत करा दो कि जब स्वामीजी टहलने जाया करें तो वह कुछ दूर उनके पीछे-पीछे रहा करे। जब स्वामीजी को यह ज्ञान हुआ तो उन्होंने सवार को अपने साथ रहने से रोक दिया और कहा कि जो परमात्मा सब प्राणियों की रक्षा करता है, वही मेरी भी रक्षा करेगा।

चक्रांकितों की समालोचना—एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में चक्राङ्कितों की भी कड़ी समालोचना की जिससे चक्रांकित लोग भी महाराज से चिढ़ गये। उनके मत का एक पण्डित श्रीराम पार्वतीय जोधपुर आया हुआ था और अपने शिष्य मेहता विजयसिंह के मन्दिर में ठहरा हुआ था, उसने महाराज से शास्त्रार्थ करने को कहा, परन्तु प्रतिबन्ध यह लगाया कि मेहताजी शास्त्रार्थ के मध्यस्थ हों। महाराज ने कहा कि जिस दिन शास्त्रार्थ करना हो हमारे स्थान पर आ जाओ या हमें लिखो तो हम आपके स्थान पर आ जाएँ, परन्तु मेहताजी को मध्यस्थ नहीं कर सकते, क्योंकि प्रथम तो वे आपके शिष्य और आपके मतानुयायी हैं, दूसरे वे संस्कृत नहीं जानते। श्रीराम अपनी हठ से न टला और शास्त्रार्थ न हुआ।

चक्रांकित मत पर बात-चीत—एक दिन मेहता विजयसिंह एक पण्डित को साथ लेकर महाराज के पास आये और चक्राङ्कित मत पर बातचीत आरम्भ की। पण्डित ने वह 'तप्ततनू' वाला मन्त्र, जिसपर उक्त मत वाले अपने मत को वेदमूलक बतलाते हैं, प्रस्तुत किया। महाराज ने उसके शुद्ध अर्थ करके बतला दिया कि इससे शरीर को दग्ध करना किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। मेहता विजयसिंह और उनके साथी पण्डित से कुछ उत्तर न बन पड़ा, परन्तु मन-ही-मन वे बहुत कुढ़े।

इस प्रकार जोधपुर का सारा ही वातावरण महाराज के विरुद्ध हो गया था। उच्च पदस्थ क्षत्रिय तो इस कारण से रुष्ट थे कि वे भरी सभा में उनके दुराचारों के लिए उन्हें फटकारते थे। मुसलमान भी इस्लाम की कड़ी आलोचना के कारण उनसे द्वेष करने लगे थे। चक्राङ्कित लोग उनसे अलग जलते थे। पौराणिक ब्राह्मणों का उनसे विरोध करना तो स्वाभाविक ही था, क्योंकि वे समझते थे कि मूर्त्तिपूजा, श्राद्धादि के खण्डन से महाराज उनकी जीविका ही छीनना चाहते हैं। नन्हीं भगतन समझती थी कि वह उसका सर्वस्व ही हरण करना चाहते हैं। वह उनका अनिष्ट करने में क्यों चूकनेवाली थी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराजा और स्वामीजी का मिलन—महाराज को जोधपुर आये हुए चार मास व्यतीत हो गये। इस बीच में महाराजा तीन बार फ़ैज़ुल्लाखाँ के बाग़ में महाराज के दर्शनार्थ आये और कई-कई घण्टे उपस्थित रहकर उनके सत्य और हितकर उपदेशों से लाभ उठाते रहे। महाराज भी तीन बार राई के बाग़ में, जहाँ महाराजा निवास करते थे, पधारे और अपनी सत्य शिक्षा से महाराजा को कृतकृत्य किया।

महाराजा पर उपदेश का प्रभाव—महाराजा पर महाराज के सत्संग और उपदेश का इतना प्रभाव तो पड़ा कि वे उनके उपदेश को स्वीकार करने लगे और जहाँ तक बुद्धि का सम्बन्ध है वहाँ तक उनके उपदेशों की युक्तियुक्तता के आगे उन्होंने सिर झुका दिया और हृदय से उनका सम्मान भी करने लगे। इस का प्रमाण एक घटना से मिलता है जो महाराज की मृत्यु के आठ-नौ वर्ष पीछे की है। एक दिन रात्रि के समय भाटी अर्जुनसिंह और नन्हीं भगतन में कुछ बातें हो रही थीं। किसी प्रसङ्ग में स्वामीजी के विषय में भी कुछ बात-चीत होने लगी। उन्होंने स्वामीजी का उल्लेख कुछ अपमानजनक शब्दों में किया। महाराजा ने उसे सुन लिया। उन्होंने अतिक्रुद्ध होकर कहा कि तुम उनके महत्त्व को क्या जानते हो, मैं जानता हूँ और सत्य कहता हूँ कि यदि मैं महाराजा तख्तसिंह का पेशाब हूँ और यदि स्वामीजी इस समय जीवित होते तो मैं राज्य छोड़कर संन्यास लेकर उनके साथ चला जाता।

मुझे वैदिक-धर्मी लिखाओ—महाराजा के विश्वासों पर महाराज के उपदेशों का पूर्ण प्रभाव पड़ा था और वे वैदिक सिद्धान्तों के पूर्ण विश्वासी बन गये थे। सन् १८९१ में जब जनसंख्या हुई तो मुंशी हरदयालसिंह ने जो उस समय जोधपुर में बड़े उच्च पद पर स्थित थे, नन्हीं भगतन से कहा कि महाराजा से पूछकर बताओ कि उनका धर्म क्या लिखा जाए। नन्हीं भगतन ने स्वयं ही कह दिया कि वैष्णव लिख दो, परन्तु सर प्रतापसिंह ने कहा कि नहीं, उन्हें वैदिक-धर्मी लिखो, नहीं तो स्वयं दरबार से पूछ लो। इसपर उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि मेरा मत वैदिक है।

चरित्र पर प्रभाव न पड़ा—यह सब कुछ होते हुए भी महाराजा के चरित्र पर महाराज के उपदेशों का कोई प्रभाव पड़ा हुआ प्रतीत नहीं होता। न तो उन्होंने नन्हीं भगतन का ही परित्याग किया और न मद्यपान ही छोड़ा, मांसभक्षण को तो वे पाप ही नहीं समझते थे। सर प्रतापसिंह ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि दरबार ने एक बार स्वामीजी से स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मैं मदिरा पीता हूँ और समझता हूँ कि मैं बहुत बुरा करता हूँ, किन्तु मांस खाते हुए यह मेरे मन में कभी नहीं आता कि मैं पाप करता हूँ। मैं मांस खाना कभी नहीं छोड़ूँगा। क्षत्रियों के लिए उसे छोड़ना युक्तियुक्त और सम्भव भी नहीं है, इसपर आप चाहे जो कहें।

स्वामीजी की दिनचर्य्या—जोधपुर में महाराज की दिनचर्य्या इस प्रकार थी कि प्रातःकाल चार बजे उठकर कुल्ला-दातन करके थोड़ी-सी सौंफ फाँककर दो-चार घूँट जल पीते थे और फिर ४, ५ करवट लेते और ५ बजे भ्रमण करने चले जाते। भ्रमणार्थ वे लगभग दो कोस जाते थे। जाते हुए कुछ मन्द गति से और लौटते हुए इतनी द्रुत गति से चलते थे कि डेरे पर पहुँचत-पहुँचते पसीने में तर हो जाते ते। डेरे पर आकर पसीने को कपड़े से पूँछते न थे, वरन् उसपर रेत लगा देते थे। जंगल में शौच से निवृत्त होकर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर आध घण्टे के लगभग ध्यानावस्थित हो जाते थे। जूता बहुत मज़बूत पहनते थे और भ्रमण को जाते समय हाथ में एक मोटा सोटा रखते थे। भ्रमण से लौटकर १५-२० मिनट कुर्सी पर बैठकर हवा लेते थे और एक ग्लास जल-मिश्रित दुग्ध-पान करते थे। ८ बजे से वेद-भाष्य का लिखाना आरम्भ करते और ग्यारह बजे तक उसमें व्यस्त रहते। उसके पश्चात् स्नान करके थोड़ी देर एक कोठरी में जाकर और उसके द्वार बन्द करके व्यायाम करते थे। बारह बजे भोजन करते और एक पान खाकर आधा या पौन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घण्टा पलंग पर लेट जाते, परन्तु सोते न थे। फिर उठकर थोड़ा-सा जल पीते और दो-चार मिनट बैठे रहते। तत्पश्चात् सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के प्रूफ़ शोधते और पत्रों के उत्तर लिखाते। तीन बजे फिर स्नान करके सारे शरीर पर मुलतानी मिट्टी लगाते और मस्तक, भुजा और वक्षःस्थल पर चन्दन लगाते, चार बजे व्याख्यान स्थल में पधारते। उस समय एक रेशमी धोती पहने होते थे। सिर पर पगड़ी होती थी और एक चादर शरीर पर डाल लेते थे। ६ बजे तक व्याख्यान देकर ८ बजे तक जो कोई कुछ पूछता उसे उत्तर देते। १० बजे तक बैठे रहते और समाचार-पत्रादि सुनते। १० बजते ही सो जाते। उस समय कोई बैठा होता तो उससे स्पष्ट कह देते कि अब मेरे सोने का समय हो गया है, शेष बात कल कीजिए। भोजन केवल एक ही समय किया करते थे। रात्रि में सोने से पहले दुग्धपान किया करते थे। महाराज का आम बड़ा प्यारा फल था।§ आम चूसकर दूध पिया करते थे। उस समय जो भी पास बैठे होते उन्हें भी खिलाते और तदुपरान्त दूध पिलाते। कभी-कभी अमरस और दही का श्रीखण्ड भी बनवाते थे।

स्वामीजी सहसा घबरा उठे—फ़ैज़ुल्लाखाँ के बाग़ के द्वार में दोनों ओर दुमंज़िले मकान हैं। उन्हीं दिनों (यह घटना आषाढ़ मास की है) द्वार के ऊपर के कमरे में कोई पण्डितजी ठहरे हुए थे। उनके लिए बड़ी महाराणी ने कुछ फलादि ४-५ खवासिनों के हाथ भेजे थे। वे जब द्वार पर आईं और पण्डितजी को पूछा कि कहाँ हैं तो किसी ने यह समझकर कि वे महाराज को पूछती हैं, वहाँ उनसे कह दिया कि बाग़ के बीच के बँगले में हैं, वहाँ पहुँचकर उन्होंने पहरेदारों से पूछा। उन मूर्खों ने भी यही समझा कि पण्डितजी से उनका अभिप्राय स्वामीजी से है और कह दिया कि ऊपर हैं और वे बेधड़क ऊपर चली गईं। पहरेदारों ने उन्हें न रोका। उस समय महाराज पलंग पर लेटे हुए थे। उन्होंने जो करवट ली तो बरामदे में वे स्त्रियाँ खड़ी दिखाई दीं। उन्हें देखकर वे सहसा उठकर ज़ोर से चिल्लाये। चारण नवलदान साथ की कोठरी में लेटा हुआ था। वह शोर सुनकर घबरा गया, उसे भय हुआ कि किसी घातक ने महाराज पर आक्रमण किया है। वह नंगे सिर और नंगे पैर भागता हुआ महाराज के कमरे में गया। महाराज ने रोषपूर्ण शब्दों में कहा कैसा अन्याय है कि स्त्रियाँ हमारे सामने आ गईं। यह तुम्हारे प्रबन्ध की त्रुटि है, इन्हें निकाल दो। उसने स्त्रियों को तो नीचे उतार दिया और महाराज से निवेदन किया कि पहरेवालों के प्रमाद से ऐसा हुआ है। महाराज ने कहा कि इन्हें बदलवा दो। इसपर उन्हें बदल दिया गया। जो नये पहरेदार आये उनसे कह दिया गया कि किसी स्त्री वा लड़की को बँगले के पास न आने दो।

सन्ध्या शब्द की सिद्धि—काशी के एक पण्डित महाराजा किशोरसिंह के कुँवर अर्जुनसिंह को पढ़ाया करते थे। उनसे महाराज का 'सन्ध्या' शब्द की सिद्धि पर विचार हुआ था, यह विचार तीन दिन तक होता रहा। अन्त को पण्डितजी को स्वीकार करना पड़ा कि महाराज का पक्ष सत्य है।

मैं स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के योग्य नहीं हूँ—गणेशपुरी एक साधु जोधपुर से २० कोस के अन्तर पर रहा करते थे, जिनकी विद्वत्ता की बड़ी ख्याति थी। एक दिन राव राजा जवानसिंह ने उन्हें जोधपुर बुलाया और उनसे कहा कि महाराज से शास्त्रार्थ कीजिए। दो-तीन दिन तक तो वे टालते रहे, परन्तु अन्त को उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं स्वामीजी से परिचित हूँ और मैंने उनके ग्रन्थ भी देखे हैं, मैं उनसे शास्त्रार्थ करने के योग्य नहीं हूँ। वे जो कुछ कहते हैं सत्य है, मैं शास्त्रार्थ करने उनके सम्मुख नहीं जाऊँगा।

आपके पूर्वपुरुष कितने वीर थे—एक दिन महाराज सर प्रतापसिंह के साथ जोधपुर का दुर्ग देखने गये। वहाँ उन्होंने उनके पूर्वज महाराजा प्रतापसिंह का हाथ का बना चित्र देखकर सर प्रतापसिंह से कहा कि देखिए आपके पूर्वपुरुष कैसे शूरवीर थे।

---

§ "इस ऋतु के श्रेष्ठ फल अर्थात् आम"। देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २६६। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नवीनवेदान्त पर वार्त्तालाप—एक दिन राव राजा सोहनसिंह श्रीसेवा में आये। वे निश्चलदास का प्रवृत्ति-रत्नाकर ग्रन्थ साथ लाये थे, अतः जीव-ब्रह्म की एकता पर बात-चीत करने लगे। उन्होंने नवीनवेदान्तियों के चार महावाक्य प्रस्तुत करके कहा कि देखिए ये वेद के वाक्य हैं, इनसे जीव-ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। महाराज ने उत्तर दिया कि प्रथम तो ये वेद के वचन नहीं हैं, दूसरे इनके अर्थ वे नहीं है जो नवीनवेदान्ती करते हैं। फिर उन वाक्यों के ठीक अर्थ करके बतलाये। राव राजा दो-तीन दिन तक महाराज से इस विषय पर विचार करते रहे। अन्त में उन्हें निरुत्तर होना पड़ा। राव राजा ने इसी बातचीत के बीच में महाराज से प्रश्न किया कि आप जीव हैं वा ब्रह्म ? तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैं जीव हूँ। राव राजा ने कहा कि मैं तो ब्रह्म हूँ, क्योंकि पण्डित का यही लक्षण है कि समदर्शी हो और चर-अचर में ब्रह्म को देखे। महाराज ने कहा कि यदि आप ब्रह्म हैं तो ब्रह्म के गुण आपमें होने चाहिएँ जो हम आपमें नहीं देखते और कई वेदमन्त्रों को उद्धृत करके ब्रह्म के गुण वर्णन किये।

इसपर राव राजा बोले कि यदि मैं चाहूँ तो सब-कुछ जान सकता हूँ। जब मैं शुद्ध हो जाऊँगा तो ब्रह्म हो जाऊँगा। महाराज ने कहा कि ब्रह्म में अशुद्धता कहाँ से आई और यदि आई तो आप शुद्ध क्यों नहीं हो जाते। इसका राव राजा कोई उत्तर न दे सके। राव राजा ने इस वार्त्तालाप के पीछे महाराज से इस विषय पर कोई प्रश्नोत्तर न किये। वैसे वे श्रीसेवा में आते रहे और श्रीचरणों में प्रीति-प्रदर्शन करते रहे।

शाक्त मत पर वार्त्तालाप करने में अरुचि—एक दिन उक्त राव राजा के भाई राव राजा शिवनाथसिंह, जो संस्कृतज्ञ थे, महाराज के दर्शनों को आये और शाक्त मत के विषय में कुछ पूछने लगे, परन्तु महाराज ने इस विषय पर बातचीत करने में अरुचि प्रकट की और उनसे केवल इतना ही कहा, आप तो स्वयं पण्डित हैं। महाराज की अरुचि का कारण यही प्रतीत होता है कि इस विषय पर विचार करने में अश्लील बातें आये बिना नहीं रह सकती थीं, जिनसे महाराज बचना चाहते थे।

महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी—महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित शिवनारायण भी महाराज से मिलने आया करते थे, परन्तु वे कोई विवादग्रस्त बातें न करते थे, वे सदा महाराज की प्रशंसा ही किया करते थे और उन्हें अपने समय का अद्वितीय तत्त्वदर्शी विद्वान् समझते थे।

जैनी के प्रश्नों का उत्तर—एक दिन एक जैनी और एक वेदान्ती गृहस्थ महाराज के दर्शनों को आये और दोनों ने पाँच-पाँच रु० महाराज की भेंट किये। उनके साथ एक पण्डित भी थे जो प्रश्नों की एक तालिका बनाकर लाये थे। महाराज ने सब प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया।

साधु का शंकासमाधान—एक दिन एक साधु दस-बीस मनुष्यों की मण्डली के साथ महाराज के पास आया। उसने जीव-ब्रह्म की एकता पर प्रश्न किये। महाराज ने उनके उत्तर दे दिये। उन्हें सुनकर वह कहने लगा कि आप चाहे दोनों को एक मानें वा पृथक्-पृथक्, आपको अधिकार है। महाराज ने कहा कि यदि कोई शङ्का शेष हो तो उसका समाधान करलो, परन्तु उसने कहा कि हम तो साधु हैं, हमें इससे क्या और चला गया।

नवाब से बात-चीत—नवाब मुहम्मदखाँ विलायती भी कभी-कभी महाराज के दर्शनों को आया करते थे, परन्तु धर्म-विषय पर बातचीत न करते थे। एक दिन महाराज ने उनसे कहा कि क़ुरान में लिखा है कि (क़यामत के दिन) खुदा अर्श (तख्त) पर बैठेगा और अपनी पिंडली दिखावेगा। यह कैसी बात है, परन्तु उन्होंने कहा कि हम शीआ हैं, ऐसी बातों को नहीं मानते।

बेड़ा कभी का डूब जाता—महाराज कहा करते थे कि हिन्दू राजाओं की दुराचार के कारण बहुत बुरी दशा है। उनके राज्य कभी के नष्ट हो जाते, वे यदि अब तक अवशिष्ट हैं तो यह उनकी रानियों के पतिव्रत धर्म की सत्ता है। अन्यथा राजाओं के कुकर्म तो ऐसे हैं कि उनसे बेड़ा कभी का डूब जाता।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराज अपने अधीन पुरुषों के हित का कितना ध्यान रखते थे, यह नीचे के उदाहरण से प्रकट होता है—

परहित-चिन्ता—रामानन्द ब्रह्मचारी महाराज के साथ जोधपुर था, उसकी माता वृद्धा और रुग्ण थी उसके जीवन की आशा न थी, इसलिए महाराज को यह चिन्ता थी कि उसका देहपात होने की दशा में उसके दाहकर्म में कोई विघ्न न पड़े, अतः उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला ६ संवत् १९४० को जोधपुर से मन्त्री आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद को लिखा कि जब कभी उसका शरीर छूट जाए तो उसके अन्त्येष्टि कर्म के लिए ५०) रुपये लाला निर्भयरामजी की कोठी से ले-लेना और हमारे हिसाब में लिखा देना और उन रुपयों से घृत और सुगन्ध्यादि पदार्थों को लेकर जैसा विधान षोडशसंस्कारविधि के पुस्तक में लिखा है, उसके अनुसार मृतक कर्म करा देना और इस काम के कराने में किसी प्रकार आलस्य न करना और इस बात को प्रत्येक सभासद को विदित कर देना जिससे समय पर सहायक होवें ।§

पहलवान का मद चूर्ण—कहते हैं कि किसी नगर में एक पहलवान रहता था, जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था । वह अकेला ही रहट को चलाकर अपने स्नान करने के लिए हौज़ भरा करता था । वह और अन्य लोग भी यह समझते थे कि अन्य कोई इस प्रकार हौज़ को नहीं भर सकता । घटनावश महाराज ने भी उस नगर में पदार्पण किया । महाराज का यह नियम ही था कि वे प्रातःकाल भ्रमणार्थ नगर से बाहर जाया करते थे । एक दिन महाराज ने भी उसे हौज़ भरते देख लिया । उसके पश्चात् एक दिन वायु-सेवन के लिए वे उस ओर से होकर गुज़रे तो उनके जी में आई कि हौज़ को भरें । रहट को चलाकर महाराज ने हौज़ भर दिया और वायु सेवनार्थ आगे चले गये । जब पहलवान आया और उसने हौज़ भरा हुआ पाया तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा । उसे यह सोच हुआ कि आज मेरा समकक्ष कौन उत्पन्न हो गया । उसने वहाँ के रहनेवालों से पूछताछ की तो उन्होंने कहा कि एक साधु अभी-अभी हौज़ भरकर आगे को गया है । पहलवान साधु के दर्शन करने की प्रतीक्षा में वहीं बैठा रहा । थोड़ी देर में महाराज बड़ी द्रुत गति से उधर को आते हुए दिखाई दिये । पहलवान ने दोड़कर उनका आगा रोक लिया और उनसे पूछा कि बाबाजी हौज़ तुमने भरा है ? महाराज ने कहा कि 'हाँ' । फिर उसने कहा कि हौज़ भरकर तुम थके नहीं। महाराज ने उत्तर दिया कि थकना तो दूर, हमारा व्यायाम तक पूरा न हुआ और इसलिए हमें टहलने के लिए आगे जाना पड़ा । पहलवान यह सुनकर हक्काबक्का रह गया और स्वामीजी अपने आसन को लौट आये।

पिता-पुत्र ठाकुर की भक्ति—कुचामन के ठाकुर केसरीसिंहजी जोधपुर के बड़े जागीरदारों में से थे । उन्होंने जयपुर में महाराज के दर्शन किये थे और तभी से वे महाराज के प्रति अनुरक्त हो गये थे । उनके पुत्र कुँवर शेरसिंह एक सदाशय नवयुवक थे और अपेक्षाकृत उनमें मद्य-मांस का व्यसन भी कम था । उनकी श्रीचरणों में बड़ी भक्ति थी और महाराज भी उनसे बहुत प्रसन्न थे । वे आजन्म महाराज के अनुयायी रहे।

राव राजा पर प्रभाव—राव राजा तेजसिंह के चरित्र पर महाराज का विशेष प्रभाव पड़ा था । महाराज को जोधपुर बुलाने में उन्होंने विशेष उद्योग किया था और महाराज के जोधपुर आने पर राज-परिवार में सबसे अधिक सेवा भी उन्होंने ही की थी । कभी-कभी उन्हें महाराज के चरण दबाने का भी सौभाग्य प्राप्त होता था । महाराज का शरीर इतना सुदृढ़ और सुसंगठित था कि पिंडलियों को बलपूर्वक दबाने पर भी उन में अंगुली न गड़ती थी । किसी अंग पर झुर्री वा ढीलेपन का चिह्न न था । राव राजा तेजसिंह अपने जीवन के अन्तिम दिवस तक महाराज के भक्त बने रहे ।

सर प्रतापसिंह—महाराजा सर प्रतापसिंह ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि स्वामीजी के समागम से पहले

§ यह पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में पृष्ठ ४५३ पर छपा है । —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रचलित पौराणिक धर्म के विषय में विशेषतः ब्राह्मणों के अयथार्थ और तर्कशून्य आधिपत्य के सम्बन्ध में हमारे मन में अनेक संशय उठते और उनसे कभी-कभी हमारा चित्त आन्दोलित हो उठता था। जब स्वामीजी जोधपुर पधारे तो उनसे बात-चीत करके और उनके व्याख्यान सुनकर हमारे सब संशय एक-एक करके दूर हो गये और वैदिक धर्म में हमारा विश्वास पूर्णरूप से दृढ़ और परिपक्व हो गया।

न्याय से मोक्ष—एक दिन सर प्रतापसिंह ने महाराज से पूछा कि किसी प्रकार हमारा भी मोक्ष हो सकता है, तो महाराज ने उत्तर दिया कि आपके लिए एक ही मोक्ष-मार्ग है और वह निष्पक्ष न्याय करना है।

सभी आर्यसमाजी मेरे शिष्य हैं—एक दिन राव राजा जवानसिंह ने महाराज से निवेदन किया कि आप कोई सुयोग्य शिष्य बनाइए जिससे आपका कार्य बीच में ही न रुक जाए। महाराज ने कहा कि न तो कोई ऐसा सुयोग्य पुरुष है जिसे मैं शिष्य बनाऊँ और न मुझे किसी शिष्य से कोई आशा है। सभी आर्यसमाजी पुरुष मेरे शिष्य हैं और उन्हीं पर मुझे भरोसा है।

जोधपुर जाने का उद्देश्य—कोई-कोई यह कहते हैं कि महाराज का जोधपुर जाने में यह अभिप्राय था कि गोरक्षा के आन्दोलन में महाराजा जसवन्तसिंह की सहायता प्राप्त करें और उनसे गोरक्षा के मेमोरियल पर हस्ताक्षर करावें, परन्तु राव राजा तेजसिंह ने देवेन्द्रबाबू के सन्मुख इसका खण्डन किया और कहा कि स्वामीजी को जोधपुर केवल उपदेश के लिए ही बुलाया गया था। गोरक्षा के मेमोरियल पर तो दरबार ने स्वामीजी के यहाँ पधारने से पहले ही हस्ताक्षर कर दिये थे। वह मेमोरियल महाराणा उदयपुर ने दरबार के पास भेजा था और दरबार ने उसपर महाराणा के अनुरोध से हीं हस्ताक्षर किये थे। जान पड़ता है कि महाराजा जयपुर को छोड़कर राजपूताने के प्रायः सभी राजगण ने उक्त मेमोरियल पर हस्ताक्षर कर दिये थे।

यह सत्य है कि उदयपुर से कविराज श्यामलदास ने जोधपुर के चारण मुरारदान को पत्र लिखा था कि दरबार से उक्त मेमोरियल पर हस्ताक्षर करने का निवेदन करें, परन्तु यह बात उसी समय की होगी जिस समय महाराणा उदयपुर ने जोधपुर दरबार से हस्ताक्षर करने के लिए अनुरोध किया था। इस पत्र के आने पर जब मुरारदान ने दरबार से स्वामीजी के गोरक्षा के आन्दोलन में सहायक होने की प्रार्थना की थी तो दरबार ने प्रसन्नतापूर्वक उसके अनुकूल सम्मति प्रकट की थी और कहा था कि इस कार्य में स्वामीजी की सहायता करना हमारा एकान्त [एकमात्र] कर्त्तव्य है।

स्वामीजी आम बहुत खाते थे—जिस समय महाराज जोधपुर पहुँचे थे उस समय जोधपुर में (मलेरिया) शीत-ज्वर का प्रकोप था। महाराज कोठी के ऊपर के कमरे में सब खिड़की और द्वार खोलकर एकान्त में सोया करते थे। उन दिनों आमों की ऋतु थी और महाराज आम अधिक मात्रा में खाया करते थे।

कहार ने चोरी कर ली—जोधपुर-निवास के लगभग चार महीने सुखपूर्वक व्यतीत हो गये। सितम्बर के अन्तिम सप्ताह के आरम्भ में २५ वा २६ तारीख की रात्रि में उनका कल्लू नामक कहार ६००-७०० रुपये का माल (रुपये और मोहर) कमरे में से चुराकर खिड़की की राह से भाग गया। यह कहार बड़े परिश्रम और प्रेम से महाराज की सेवा किया करता था और महाराज को उसपर पूरा विश्वास था। रामानन्द ब्रह्मचारी को महाराज की आज्ञा थी कि खिड़की के पास सोया करे। उस रात्रि को वह भी वहाँ न सोया। पहरेवालों ने भी अपने कार्य में प्रमाद किया। प्रातःकाल होते ही चोरी की सर्वत्र चर्चा फैल गई। पुलिस में रिपोर्ट की गई। कर्नल मुह्युद्दीनखाँ कोतवाल और पुलिसवालों ने महाराज से बहुतेरा पूछा कि आपका किसपर सन्देह है, परन्तु उन्होंने कोई उत्तर न दिया। पुलिसवालों ने पकड़-धकड़ भी की, परन्तु चोर का पता न लगा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्लू किस प्रकार गायब हो गया किसी की समझ में न आया। सम्भव है वह पहले ही महाराज के किसी शत्रु से गठ गया हो और जोधपुर में ही किसी जगह छिपा रहा हो और सुयोग पाकर जोधपुर से चला गया हो, अन्यथा समझ में नहीं आता कि ढूँढ-भाल होने पर भी उसका पता न चला। सम्भव है पुलिसवालों ने भी केवल दिखावेमात्र के लिए ही अनुसन्धान किया हो।

धूर्त्त सेवक—कोतवाल ने रामानन्द को हवालात में बन्द करने की चेष्टा की, परन्तु महाराज ने इसका विरोध किया। इस चोरी के सम्बन्ध में वे किसी को भी कष्ट नहीं देना चाहते थे। जितने सेवक उनके पास थे वे सभी धूर्त्त थे। जब किसी अपराध पर महाराज उन्हें डाँटते तो हाथ जोड़ते और जो हुकम, जो हुकम कहते, परन्तु महाराज के पीछे उनकी बातों पर हँसते। ऐसी बातें देखकर महाराज को जोधपुरवास से ग्लानि हो गई, जोधपुर के मनुष्यों के ऊपर से उनका विश्वास उठ गया और उन्होंने वहाँ से चलने का संकल्प कर लिया।

रोग का आक्रमण—२७ सितम्बर को उन्हें प्रतिश्याय हो गया, २८ को भी शरीर ठीक न हुआ। २९ सितम्बर की रात्रि को यथानियम उन्होंने दुग्ध पिया, जिसे धौड़ मिश्र रसोइये ने पिलाया। यह शाहपुरा से ही महाराज के साथ आया था। महाराज दुग्ध पीकर सो गये, परन्तु बीच में ही उदरशूल के कारण उनकी निद्रा भङ्ग हो गई। उनका जी मिचलाने लगा और उन्हें तीन बार वमन हुई, परन्तु उन्होंने किसी को जगाया नहीं। स्वयं ही कुल्ला करके पलङ्ग पर लेट जाते थे। ३० सितम्बर की प्रातःकाल महाराज देर से उठे और उठते ही एक वमन और हुई।

विष का सन्देह—महाराज को सन्देह हुआ कि उन्हें कोई विषाक्त पदार्थ खिलाया गया है, अतः उन्होंने उसे निकालने के लिए जल पीकर एक वमन स्वयं कर डाली। पहले भी उन्हें कई बार विष दिया गाय था और वमन करके उन्होंने अनेक बार उसे शरीर से निकालने में सफलता भी प्राप्त की थी। इस बार भी विष-प्रयोग का सन्देह होने पर उन्होंने उसी रीति का अवलम्बन किया, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। वमन करने के पश्चात् उन्होंने कहा कि हमारा जी उलटा आता है शीघ्र अग्निकुण्ड में धूप डालकर सुगन्धि फैला दो और दुर्गन्धि को बाहर निकाल दो। उनकी आज्ञा का तत्काल पालन किया गया। वमन करने में उन्हें बहुत कष्ट होता था इससे उनकी अन्तड़ियों और यकृत् पर शोथ आ गया था, छाती और उदर में बड़ा तीव्र शूल चलता था। महाराज ने राव राजा तेजसिंह को बुलवाया और उनसे सब हाल कहा। यह स्थिर हुआ कि चिकित्सा के लिए किसी हिन्दू चिकित्सक को बुलाया जाए, अतः डॉ० सूरजमल को, जिनकी नियुक्ति कारागार पर थी, बुलाना निश्चित हुआ। राव राजा तेजसिंह के आने से पहले ही महाराज ने शूल के उपशमनार्थ अजवायन का क्वाथ पकवाकर पी लिया था। उससे शूल तो कम न हुआ दस्त और आने लगे। यह शूल इतना बढ़ा कि उनके सारे शरीर में प्रविष्ट हो गया और श्वास के साथ बड़े वेग से उठता था। महाराज को असीम कष्ट था, परन्तु न वह कभी कराहे और न कभी हाय आदि का शब्द उनके मुख से निकला। डाक्टर सूरजमल से महाराज ने कहा कि शूल बहुत तीव्र है और प्यास भी है। डाक्टर ने नाड़ी देखी तो महाराज को कुछ ज्वर भी था। उन्होंने उसके उतारने के लिए Diaphoretic mixture दिया और छाती और उदर को गरम जल की बोतल से सिकवाया। उससे ज्वर तो जाता रहा, परन्तु उदरशूल और यकृत् का शोथ ज्यों-का-त्यों बना रहा और अन्तर्दाह में भी कुछ कमी न हुई। महाराजा प्रतापसिंह को जब महाराज के रोगी हो जाने का समाचार मिला तो उन्होंने डाक्टर अलीमरदानखाँ को राव राजा तेजसिंह के साथ महाराज की चिकित्सा के लिए भेजा।

डाक्टर अलीमरदानखाँ का परिचय—वह एक तीसरे दर्जे का हास्पिटल असिस्टेण्ट था, परन्तु पहले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दर्जे का खुशामदी और कपटी था। उसने दरबार की चापलूसी करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था, धन भी बहुत कुछ संग्रह कर लिया था और जोधपुर के प्रख्यात डाक्टरों में गिना जाने लगा था।

डाक्टर अलीमरदानखाँ ने आकर एक पट्टी तो महाराज के पेट पर बँधवाई और यकृत् और अन्तड़ियों की सूजन दूर करने के लिए उसने सैलेवेशन पिल्स (salvation pills) देने को कहा, उसने डाक्टर सूरजमल से कहा कि स्वामीजी बहुत बलवान् हैं, इन्हें चार मनुष्यों के बराबर ओषधि देनी चाहिए।

इन्हें चौगुनी मात्रा दो—एक salvation pill में ३ ग्रेन केलोमल (calomel) और एक चौथाई ग्रेन अफ़ीम होती है। डाक्टर अलीमरदानखाँ ने महाराज के लिए शहर के हस्पताल से ६ गोलियाँ बनवाकर भेज दीं। जब गोलियाँ आई तो महाराज ने डाक्टर सूरजमल से पूछा कि मैं इन्हें खाऊँ वा नहीं। डाक्टर सूरजमल ने कहा कि खा सकते हैं। उक्त डाक्टर ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि मेरा अन्तःकरण डाक्टर अलीमरदानखाँ की दवा खिलाने को नहीं करता था, परन्तु एक तो मैं दूसरे डाक्टर की चिकित्सा में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता था, दूसरे मेरी स्त्री संग्रहणी रोग से बहुत पीड़ित थी, तीसरे जेल के काम से बहुत कम छुट्टी मिलती थी और मैं स्वयं मनोयोग से स्वामीजी की चिकित्सा नहीं कर सकता था, मैंने स्वामीजी को अलीमरदानखाँ की दवा खाने से निषेध नहीं किया।

डाक्टर सूरजमल का अपराध—हम समझते हैं कि डाक्टर सूरजमल जब हृदय से अलीमरदानखाँ की दवा पिलाना नहीं चाहते थे तो उनका कर्त्तव्य था कि महाराज को अपनी सम्मति स्पष्ट बतला देते। महाराज को उनपर विश्वास था। उस विश्वास की उन्हें रक्षा करनी चाहिए थी। यदि वे कह देते कि अलीमरदानखाँ की दवा न खाइए तो निश्चय ही महाराज उसे न खाते। यदि ऐसा होता तो कौन जाने सम्भवतः महाराज का शरीर बच ही जाता। ऐसी दशा में हम डाक्टर सूरजमल को किसी प्रकार भी इस अपराध से मुक्त नहीं कर सकते। यदि हम उनके विषय में यह विचार करें कि इस कारण से कि पहले उनकी चिकित्सा आरम्भ करके फिर अलीमरदानखाँ की चिकित्सा कराई गई जो उनसे योग्यता और दर्जे में कम था, वे रुष्ट हो गये और क्रोध के वशीभूत होकर ही जान-बूझकर उन्होंने महाराज को अलीमरदानखाँ की दवा खाने से निषेध नहीं किया तो अधिक अनुचित न होगा। अस्तु, महाराज ने वे गोलियाँ खा लीं, परन्तु उनके खाने से उदरशूल में कुछ अन्तर न पड़ा। १ अक्तूबर को अलीमरदानखाँ ने महाराज के ग्लास भी लगाये, उससे वह पीड़ा तो बन्द हो गई जो खाँसने के साथ होती थी परन्तु और किसी रोग में कमी न हुई। २ अक्तूबर को अलीमरदानखाँ ने§ पेट साफ़ करने के लिए जुलाब (रेचक) देने का प्रस्ताव किया।

महाराज ने इसे स्वीकार कर लिया और कहा कि जिससे रोग निवृत्त हो वैसा कीजिए। महाराज ने अलीमरदानखाँ से पूछा कि कितने दस्त आवेंगे तो उसने कहा कि ६-७ दस्त से अधिक नहीं आवेंगे। उसने डाक्टर सूरजमल से फिर वही बात कही कि स्वामीजी हृष्ट-पुष्ट हैं, इन्हें जुलाब भी चौगुनी मात्रा में देना चाहिए। महाराज ने फिर डाक्टर सूरजमल से पूछा कि रेचक ले लेवें ? और उन्होंने फिर भी यही उत्तर दिया कि ले-सकते हैं। महाराज ने जुलाब ले-लिया। तीसरी तारीख के ६ बजे तक कोई दस्त न आया। महाराज ने जब उससे कहा कि अभी तक तो एक भी दस्त नहीं आया तो उसने कहा जुल्लाब बहुत हलका है जब मल फूल जाएगा तब दस्त आवेंगे। दस बजे से दस्त आने आरम्भ हुए। ४ तारीख के प्रातःकाल तक ४० के लगभग दस्त आये। ४ तारीख को जब अलीमरदानखाँ आया तो महाराज ने उससे कहा कि

---

§ पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि रेचक लेने का प्रस्ताव महाराज ने स्वयं किया था, परन्तु यदि अलीमरदानखाँ महाराज की चिकित्सा में जान-बूझकर गड़बड़ कर रहा था, जैसा स्पष्टतया ज्ञात होता है तो यही मानना होगा कि रेचक देने का प्रस्ताव उसने ही किया था। —**संग्रहकर्त्ता**

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप तो कहते थे कि ६-७ दस्त आवेंगे, मुझे तो तीस से अधिक दस्त हो गये। यह सुनकर अलीमरदानखाँ चुप हो गया। उस दिन दिन-भर दस्त आते रहे और सायङ्काल को यह दशा हो गई कि दस्त आने पर मूर्छा होने लगी। यह जुलाब कम्पाउण्ड जलाप पाउडर (Compound jalap powder) का था। साधारणतः उसमें ३/४ ग्रेन केलोमल (Calomel) दिया जाता है, परन्तु अलीमरदानखाँ ने आठ ग्रेन दिया। इस प्रकार महाराज के शरीर में १८ ग्रेन तो salvation pills में और ८ ग्रेन जुलाब में सब २६ ग्रेन (calomel) पहुँचा दिया गया। डाक्टर सूरजमल ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि स्वामीजी का शरीर बहुत बलिष्ठ था, अतः वह उसे सहन कर गये। यदि किसी साधारण मनुष्य को इतना (calomel) दिया गया होता और उसे इतने दस्त आ गये होते तो निश्चय ही उसका प्राणान्त हो जाता। ५ तारीख को दस्तों की दशा वही रही। जिससे महाराज इतने निर्बल हो गये कि ४-५ मनुष्यों की सहायता के बिना करवट लेना वा उठना-बैठना असम्भव हो गया। महाराज ने अलीमरदानखाँ से कहा कि अब तो दस्त बन्द हो जाने चाहिएँ तो उस ने यह उत्तर दिया कि दस्तों को दवा से बन्द करने में रोग के बढ़ जाने का भय है, दस्तों का अपने-आप बन्द होना ही अच्छा है। Calomel के अधिक मात्रा में खाने का दूसरा परिणाम यह हुआ कि महाराज के गले, जिह्वा, तालू, सिर और मस्तिष्क पर आँवले पड़ गये जिसके कारण बात-चीत करने में भी अत्यन्त कष्ट होने लगा। शूल, दस्त, उदरशूल के कष्ट तो थे ही, हिचकियाँ भी आने लगीं। १६ अक्तूबर तक अलीमरदानखाँ की चिकित्सा रही। रोग में कुछ कमी न हुई, दस-पन्द्रह दस्त प्रतिदिन आते रहे, शूल तो मुख्य रोग था ही, अब आँवलों और हिचकियों का रोग और बढ़ गया। जब दस्त किसी तरह बन्द न हुए तो अलीमरदानखाँ ने बिस्मत (Bismutha) और डोनर की एस्ट्रिंजेंट पिल्स (Doner's astringent pills) बनवा कर दी। महाराज उन गोलियों को भी खाते रहे और दही और मठा भी पीते रहे। पहले जब कभी उनके उदर में कुछ गड़बड़ होती थी तो दही और मठा पीने से वह दूर हो जाती थी। उन्होंने पूर्व अनुभव के कारण ही दही और मठा पीना आरम्भ किया, परन्तु किसी प्रकार भी दस्त बन्द होने में न आये।

स्वामीजी के रोगी होने की प्रथम सूचना—आश्विन शुक्ला ११ संवत् १९४० अर्थात् १२ अक्तूबर सन् १८८३ तक जोधपुर से बाहर किसी को यह पता तक न चला कि स्वामीजी रुग्ण हैं और उनके रोग ने ऐसा भयङ्कर रूप धारण कर लिया है। उक्त तारीख को 'राजपूताना ग़ज़ट' में उनके रोगी होने का समाचार छपा जो आर्यसमाज अजमेर के एक सभासद् की दृष्टि पड़ गया। उसने अन्य सभासदों से कहा। पहले तो सबके मन में यह आई कि यह बात मिथ्या है और महाराज के किसी शत्रु ने छपा दी है। यदि बात सच्ची होती तो अवश्य ही कोई पत्र वा तार आता, परन्तु फिर मन न माना और सोचा कि सम्भव है कि बात सच्ची हो।

यह तो शरीर का धर्म ही है—तब एक सभासद् लाला जेठमल को जोधपुर भेजा गया। ये जब जोधपुर पहुँचे तो महाराज की दशा देखकर शोक में निमग्न हो गये। उन्होंने महाराज से कहा कि भगवन्! यह क्या हुआ और अधिक शोक यह है कि आपने किसी समाज को सूचित भी नहीं किया। महाराज ने उत्तर दिया कि रोग की दशा को क्या लिखता, यह तो शरीर का धर्म ही है। उसमें सुख-दुःख होते ही रहते हैं, मैं सूचना देकर करता ही क्या? इसके अतिरिक्त आप लोगों को भी क्लेश होता।

आर्यसमाज अजमेर को सूचना—लाला जेठमल ने आर्यसमाज अजमेर को महाराज की विपन्न दशा की सूचना दी और उसने मुम्बई, फ़र्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर आदि आर्यसमाजों को तार द्वार सूचित किया और सामाजिक जगत् में एकदम कोलाहल मच गया। तार-पर-तार आने लगे। सामाजिक पुरुष खबर के लिए दौड़ पड़े।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो योग्य डॉक्टर होते हुए अयोग्य की चिकित्सा—उस समय जोधपुर में दो सुयोग्य डॉक्टर उपस्थित थे। एक डॉ० रोडम्स जो रेज़िडेन्सी सर्जन थे, दूसरे डाक्टर नवीनचन्द्र गुप्त। अत्यन्त आश्चर्य है कि उनके होते हुए महाराज को उन्हें नहीं दिखाया गया और उन्हें १५, १६ दिन तक अलीमरदानखाँ जैसे अयोग्य और निम्न कोटि के चिकित्सक के हाथों में रहने दिया गया। राव राजा तेजसिंह आदि को भी यह न सूझी कि जब अलीमरदानखाँ की दवा से कोई लाभ नहीं हो रहा है और दिन-प्रतिदिन रोगी की दशा बिगड़ती जाती है तो उसकी चिकित्सा बन्द करके किसी अन्य की आरम्भ की जाए।

राव राजा तेजसिंह का अपराध—सर प्रतापसिंह और महाराजा जसवन्तसिंह ने इतनी भी परवाह नहीं की कि एक बार महाराज को देख तो आवें। इसका एक कारण हो सकता है कि अलीमरदानखाँ उन्हें विश्वास दिलाता रहा हो कि रोगी की दशा अच्छी है और कोई चिन्ता की बात नहीं है, परन्तु राव राजा तेजसिंह तो कई बार आये और अपनी आँखों से महाराज के घोर कष्ट को देखकर भी उन्हें चिकित्सा बदलने की चिन्ता न हुई। उनसे तो पहले ही महाराज ने कह दिया था कि किसी हिन्दू डाक्टर को बुलाना चाहिए और इसी कारण सबसे प्रथम डाक्टर सूरजमल को बुलाया गया था। ऐसा होते हुए भी अलीमरदानखाँ की चिकित्सा क्यों कराई गई और राव राजा ने दरबार वा सर प्रतापसिंह से क्यों न कहा कि स्वामीजी मुसलमान डाक्टर से चिकित्सा कराना नहीं चाहते हैं। फिर जब उसकी चिकित्सा दिन-प्रतिदिन हानिकर हो रही थी तो उस समय तो राव राजा को समझ आनी चाहिए थी और उसकी चिकित्सा तुरन्त ही बन्द कर देनी चाहिए थी।

अलीमरदानखाँ का असद्भाव—यह विश्वास नहीं होता कि अलीमरदानखाँ ने महाराज की चिकित्सा सद्भाव से की हो। यह भी असम्भव नहीं है कि वह नन्हीं भगतन के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो। यदि वह उच्च चरित्र का व्यक्ति होता तो उसपर कोई भी सन्देह न होता, परन्तु वह एक क्षुद्राशय व्यक्ति था, इससे उसका षड्यन्त्र में भाग लेना ऐसी बात नहीं है जिसका विश्वास न हो सके। महाराज के प्रति मुसलमानों के जो भाव थे उनका उल्लेख किया जा चुका है, अतः यह भी सन्देह होता है कि अलीमरदानखाँ ने उन्हीं दुर्भावों से प्रेरित होकर महाराज के रोग को बढ़ाने का प्रयत्न किया हो। कुछ भी हो, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि उसने चिकित्सा बड़ी अयोग्यता से की। महाराज के साथ कोई विचक्षण पुरुष नहीं था, जो थे वे अल्पानुभवयुक्त थे, अतः वे तो चिकित्सा के सम्बन्ध में कोई सम्मति दे ही नहीं सकते थे और देते भी तो वह ग्राह्य न होती। हमें तो शोक राव राजा तेजसिंह और सर प्रतापसिंह पर है जिन्होंने इस ओर दृष्टिपात तक न किया और महाराज को मृत्यु की ओर अग्रसर होने दिया।

जगन्नाथ रसोइया कौन था—लोक में यह किंवदन्ती है कि महाराज को उनके रसोइया ने दुग्ध में पिसा हुआ काच दिया था। उस रसोइये का नाम जगन्नाथ बताया जाता है, परन्तु जोधपुर में जितने मनुष्यों से देवेन्द्रबाबू ने पूछा उनमें से किसी ने भी जगन्नाथ का नाम नहीं लिया। पण्डित लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित में लिखा है कि उस रात्रि को धौड़मिश्र ने महाराज को दुग्ध पिलाया था। जगन्नाथ नाम का कोई रसोइया महाराज के साथ था इसका प्रमाण भी कहीं नहीं मिलता। कोई नहीं बतला सकता कि वह कौन था, कहाँ का रहनेवाला था और कब से महाराज के साथ था ?

मनगढ़न्त गाथा—लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि महाराज को यह ज्ञात हो गया था कि उन्हें जगन्नाथ ने विष दिया है और जगन्नाथ ने उनसे स्वीकार भी कर लिया था कि मैंने यह पाप किया है। इसपर महाराज ने उसे कुछ भी न कहा, अपितु उसे कुछ रुपये मार्गव्यय के लिए देकर कह दिया कि तू भाग जा, अन्यथा पकड़ा जाएगा और वह तुरन्त भाग गया। कोई-कोई तो यहाँ तक कहते हैं कि कुछ वर्षों के पश्चात् लोगों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने जगन्नाथ को गङ्गातट पर राजघाट ज़िला अलीगढ़ में देखा था और वह विक्षिप्त अवस्था में था। हमें तो यह सारी गाथा कल्पित और मनगढ़न्त प्रतीत होती है। न जाने यह किसके मस्तिष्क की उपज है। किसी ने यह बात प्रचलित की और श्रद्धालु जनों ने इस कारण कि उससे महाराज की दया के अपार होने का प्रमाण मिलता है, उसे झट सत्य मान लिया। पण्डित लेखरामकृत उर्दू जीवन-चरित में भी कहीं जगन्नाथ का नाम और इस घटना का उल्लेख नहीं है। उसका उल्लेख केवल एक नोट में है जो प्रकरण से अलग दिया हुआ है और ऐसा प्रतीत है कि उक्त जीवन-चरित्र के छपते-छपते मास्टर आत्मारामजी को कहीं से इस कथा का पता लगा और उन्होंने एक जगह उसे नोट के रूप में लिख दिया।

राव राजा तेजसिंह का मिथ्या विचार—राव राजा तेजसिंह तथा अन्य लोगों ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि हमारा विश्वास है कि उस रात्रि को कल्लू कहार ने ही महाराज को दूध पिलाया था। उससे पहली रात्रि को ही चोरी हुई थी। कल्लू ने ही कोई विषैली वस्तु दूध में मिलाकर दी होगी। यदि ऐसा हुआ हो तो इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि उसने यह पाप कर्म नन्हीं भगतन से मिलकर ही किया होगा, परन्तु हमारी धारणा यह नहीं है कि कल्लू ने चोरी भी की और विष भी दिया। जिस रात्रि को चोरी हुई उससे अगली रात्रि को ही विष नहीं दिया गया, प्रत्युत उसके एक-दो दिन बाद दिया गया।

पिसे हुए काँच के चिह्न न थे—डॉक्टर सूरजमल ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि जो चिह्न महाराज के शरीर में प्रकट हुए वह पिसे हुए काँच के नहीं थे।

इसमें तो सन्देह नहीं कि महाराज को विष दिया गया। पिसा हुआ काँच हो वा संखिया। मैंने मेरठ के एक प्रसिद्ध और अनुभवी डॉक्टर से पूछा था तो उन्होंने कहा था कि पिसे हुए काँच और संखिया के चिह्न लगभग एक-से हैं। दोनों में तीव्र उदर-शूल और अन्तर्दाह होता है, वमन और दस्त होते हैं, परन्तु पिसे हुए काँच से दस्तों में रक्त आने लगता है। यह चिह्न स्वामीजी के रोग में नहीं था, इसलिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उन्हें पिसा हुआ काँच ही दिया गया। अधिक सम्भव यह है कि उन्हें संखिया दिया गया। अजमेर के हकीम पीरजी से जब स्वामीजी के रोग का हाल कहा गया तो उनकी भी यही सम्मति हुई थी कि स्वामीजी को संखिया दिया गया है।

अब प्रश्न यह है कि विष किसने दिया। पण्डित नानूराम ब्रह्मभट्ट का, जो शाहपुरा से स्वामीजी को जोधपुर लिवाने के लिए गये थे, कथन है कि कलिया नामी व्यक्ति ने एक माली से मिलकर नन्हीं भगतन के प्रोत्साहन से दूध में विष मिलाकर स्वामीजी को पिला दिया। इस कलिया का नाम ही जगन्नाथ कहा जाता है। मुंशी देवीप्रसादजी राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ का विश्वास है कि नन्हीं भगतन ने एक माली को लालच देकर स्वामीजी के रसोइये कलिया को बहकवाकर दूध में विष घुलवा दिया। राव राजा तेजसिंह ने दयानन्द जन्म-शताब्दी पर यह कहा था कि स्वामीजी के पास एक कल्लू रसोइया (कहार?) रहता था उसने दो अशर्फ़ी और एक दुशाला चुराया था। उसपर स्वामीजी ने मेरे सामने उसे उसके पाप के लिए बहुत ताड़ना की। इसके पश्चात् उसने कुछ दुरात्माओं से मिलकर न मालूम खाने के अन्दर या दूध में कोई वस्तु दी कि सवेरे उठते ही बहुत ज़ोरों के साथ स्वामीजी को जुक़ाम की शिकायत हुई। उन्हें ज्ञात हो गया कि मुझे कोई ज़हर दिया गया है। तब वे पानी में नमक मिलाकर कै करने लगे, किन्तु कोई फ़ायदा न हुआ, अपितु पसली में शूल शुरू हो गया, तब मुझे बुलाया और कहा कि श्री दरबार को अर्ज़ करो कि पसली में बहुत ज़ोर का शूल चलता है और मेरी बीमारी सुनकर बहुत-से आर्य लोग यहाँ आएँगे उन्हें कष्ट होगा, इसलिए मेरा अजमेर जाना ठीक है। राव राजा के अनुसार उनकी सूचना देने पर दरबार स्वामीजी के पास आये और उन्हें आबू भेज दिया गया। (देखो बाबू पूर्णचन्द्रकृत 'दिव्य दयानन्द' पृष्ठ ३७ व ३८)।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस कथन में राव राजा साहब ने सत्य को सर्वथा दबा दिया है। उनके कथन से यह ज्ञात होता है कि जैसे ही स्वामीजी पर रोग का आक्रमण हुआ वैसे ही उन्हें आबू भेज दिया गया। १५-१६ दिन तक स्वामीजी जोधपुर में घोर कष्ट पाते रहे, परन्तु राव राजा उसकी ओर सङ्केत तक नहीं करते। इससे अधिक असत्य क्या होगा कि उन्होंने देवेन्द्रबाबू से यहाँ तक कह दिया कि जहाँ तक मुझे मालूम है डॉक्टर अलीमरदानखाँ ने स्वामीजी को कोई ओषधि नहीं दी। विष देनेवाले धौड़मिश्र हों वा जगन्नाथ उपनाम कल्ली या कलिया, परन्तु यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती कि स्वामीजी ने यह जानते हुए कि मुझे जगन्नाथ ने विष दिया है उसे रुपये देकर जोधपुर से भगा दिया हो।

मलेरिया का विष या आमों का विकार ?—डॉक्टर सूरजमल ने देवेन्द्रबाबू से कहा था कि रात्रि में वमन का हो जाना मलेरिया के विषाक्त स्पर्श से असम्भव नहीं है और आमों के अधिक मात्रा में खाने से यकृत् का बिगड़ जाना भी सम्भव हो सकता है, परन्तु हमें इन दोनों सम्मतियों में सार दिखाई नहीं देता, क्योंकि यदि मलेरिया का प्रकोप होता तो ज्वर का होना अवश्यम्भावी था। महाराज को आरम्भ में ही थोड़ा-सा ज्वर हुआ था और वह भी डायाफोरेटिक मिक्श्चर (Diaphoratic mixture) के देने से जाता रहा था। आमों के अधिक मात्रा में खाने से यकृत् में इतना विकार नहीं हो सकता था और अँतड़ियों के शोथ और शूल के तो आम कारण हो ही नहीं सकते थे।

रोगवृद्धि का मुख्य कारण—डॉक्टर सूरजमल ने यह निश्चित सम्मति प्रकट की थी कि दस्तों की संख्या और छालों का मुख्य कारण Calomel का अत्यधिक मात्रा में देना ही था। यह सम्मति उनकी वास्तव में ठीक है।

एक और सन्देह—महाराज को दूध के साथ कोई विष वा विषैली वस्तु दी गई है, यह सन्देह अवश्य हो गया था और इसी कारण उन्होंने जल पीकर स्वयं वमन कर डाली थी, परन्तु साथ ही यहाँ यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने इस बात को प्रकट क्यों नहीं किया। यदि जो उपचार किये गये उनसे रोग शान्त हो जाता और फिर वे इस बात को प्रकट न करते तो कुछ बात न थी, परन्तु जब उनकी पीड़ा बढ़ती ही गई और कोई उपचार सफल न हुआ तो उन्हें अपना सन्देह प्रकट कर देना चाहिए था ताकि रोग का ठीक निदान हो जाता और उपयुक्त उपचार किया जाता। ऐसा न करके उन्होंने चिकित्सकों को चिकित्सा में कोई सहायता न दी और चिकित्सकों से यह आशा रक्खी कि वे आँख पर पट्टी बाँधकर लक्ष्य-भेद कर लेंगे। इसके हमारी समझ में दो ही कारण आते हैं। या तो महाराज को निश्चय हो गया था कि उनका शरीर बचनेवाला नहीं है और या उन्होंने परम दयालुता के कारण अपना सन्देह प्रकट न किया, क्योंकि यदि वे प्रकट कर देते तो अवश्य ही उनके आस-पास रहनेवाले मनुष्यों और भृत्यों पर आपत्ति आती, जो उन्हें कभी अभीष्ट न हो सकती थी।

इस राक्षस-भूमि में क्यों आ गये—प्रथम बार ही जब डॉक्टर सूरजमल महाराज को देखने गये थे तो डॉक्टर महोदय ने उनसे कहा था कि आप ऋषितुल्य लोग हैं, आप इस राक्षस-भूमि में क्यों आ गये ? अन्त में डॉक्टर सूरजमल ने जोधपुर की अवस्था और महाराज के शरीर की इतनी भयावह दशा को देखकर लाला जेठमल से कहा कि जितनी शीघ्र हो सके उतनी शीघ्र महाराज को जोधपुर से अन्यत्र ले-जाना चाहिए।

आबू भेजने का प्रस्ताव—१५ अक्तूबर को अलीमरदानखाँ भी महाराज की दशा को देखकर डर गया और उसने यह प्रस्ताव किया कि स्वामीजी के शरीर में गर्मी बहुत है, इन्हें आबू भेज देना चाहिए। वहाँ के ठण्डे जलवायु से उनके स्वास्थ्य को लाभ पहुँचने की अधिक सम्भावना है। उसने सोचा होगा कि यदि जोधपुर में ही महाराज का देहपात हो गया तो सारा कलङ्क उसी के माथे पर रहेगा। उस दिन रेज़िडेंसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्जन डॉक्टर रोडम्स को भी बुलाकर महाराज को दिखाया गया और उनकी भी यही सम्मति हुई। तदनुसार महाराज को आबू भेजने का उपक्रम होने लगा। आबू पर जोधपुर राज्य के बङ्गले को सुसज्जित करने को लिख दिया गया।

जोधपुराधीश का सद्व्यवहार और सम्मान प्रदर्शन—१६ अक्तूबर को तीसरे पहर महाराज जसवन्तसिंह और सर प्रतापसिंह महाराज को विदा करने आये। जोधपुराधीश ने महाराज से कहा कि ऐसी दशा में आपको मेरे राज्य से पधारने में मेरी अपकीर्त्ति है, परन्तु आपकी यह दशा देखकर मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ। तत्पश्चात् २५०० रुपये और दो दोशाले महाराज की भेंट किये। यात्रा की सब तैयारी हो गई। दरबार ने अपनी फ़लालेन की पेटी अपने हाथ से महाराज के बाँध दी ताकि उन्हें लेटने में कष्ट न हो। यह समझकर कि महाराज का शरीर विशाल है, उनकी पालकी में ३२ कहार लगाये गये ताकि १६-१६ कहार बारी-बारी से पालकी को ले-चलें। खस के दो डेरे और एक पङ्खा, कुली और परिचारक और रक्षक साथ कर दिये गये। डॉक्टर सूरजमल, चारण नवलदान और मुरारदान को आबूरोड रेलवे स्टेशन तक महाराज के साथ जाने की आज्ञा हुई। महाराज को हाथों के सहारे कई मनुष्यों ने ऊपर के कमरे से धीरे-धीरे उतारकर पालकी में लिटाया। उस समय जोधपुराधीश महाराजा जसवन्तसिंह, कर्नल सर प्रतापसिंह, राव राजा तेजसिंह तथा राज्य के अन्य सुप्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। जब महाराज की पालकी उठाई गई तो सम्मान प्रदर्शनार्थ दरबार ने स्वयं उसमें कन्धा दिया और महाराज के अपने राज्य में विपद्-ग्रस्त होने पर अत्यन्त दुःख प्रकाशित करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्र और वाष्पावरुद्ध कण्ठ से पुनः जोधपुर पधारने की प्रार्थना की और बाग़ के दरबाजे तक पैदल पालकी के पीछे-पीछे आये। अन्य बहुसंख्यक लोग बहुत दूर तक पालकी के साथ गये।

पालकी का फ़र्श टूट गया—थोड़ी दूर चलकर महाराज के शरीर-भार से पालकी का बेंत का फ़र्श टूट गया, अतः उसके नीचे बाँस बाँधे गये। डॉक्टर सूरजमल प्रत्येक दस्त के पश्चात् एस्ट्रिंजेण्ट पाउडर (Astringent powder) देते थे जिसे वह अपने साथ ले-गये थे। रात्रिभर चलकर प्रातःकाल १७ अक्तूबर को रोहट पहुँचे। रोहट में एक दिन और एक रात रहे।

रोग का भयङ्कर रूप—महाराज को मार्ग में भी और रोहट में भी ४-५ दस्त हुए। महाराज को गर्मी बहुत लगती थी। रात्रि में भी यात्रा में आठ तह का भीगा कपड़ा सिर पर रक्खा रहा और सिर पर पङ्खा होता रहा, परन्तु फिर भी गर्मी कम न हुई। हिचकी भी आ ही रही थीं। दिन में कई-कई बार मूर्च्छा हो जाती थी।

दो ब्राह्मणों को दान—जब रोहट में ठहरे हुए थे तो महाराज तो लेटे हुए थे और रामानन्द हवन कर रहा था कि इतने में दो ब्राह्मण आये। उन्होंने दो वेदमन्त्र पढ़े। महाराज ने उन्हें सुनकर दोनों को एक-एक रुपया दिलवाया। ग्राम में ब्राह्मणों को जब यह ज्ञात हुआ कि एक साधु ब्राह्मणों को रुपये बाँट रहा है तो वे एकादशी माहात्म्यादि लेकर आये, परन्तु महाराज ने कहा कि ये धूर्त्त हैं, इन्हें निकाल दो। महाराज रोहट में झील के किनारे संन्यासियों के मन्दिर के पास ठहरे थे। वहाँ के संन्यासी आकर महाराज के पैर छूने लगे तो महाराज ने कहा, यहाँ मल-मूत्र पड़ने से इन्हें कष्ट होगा, हमें अन्यत्र ले-चलो। तदनुसार उन्हें दूसरे स्थान पर ले-गये। १८ अक्तूबर को महाराज पाली पहुँच गये। जोधपुर से पाली तक महाराज को बहुत धीरे-धीरे ले-जाया गया, क्योंकि उनके यकृत् और अन्तड़ियों में शोथ था और जल्दी चलने से उनके उदर में पीड़ा हो जाती थी और अन्तड़ियों पर जोर पड़ता था। बीच-बीच में कहारों को धीरे-धीरे चलने के लिए सावधान करना पड़ता था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२१—२६ अक्तूबर) आबू (कार्त्तिक कृ० ६—११)

आबू की चढ़ाई का प्रबन्ध—पाली पहुँचकर मुंशी हरनामदास ओवरसियर को आबू तार दिया गया कि स्वामीजी बीमार होकर आबू आ रहे हैं और जोधपुर के बङ्गले में ठहरेंगे। उन्होंने आबूरोड पर पालकी का प्रबन्ध कर दिया। पाली में महाराज दो दिन ठहरे और जो दशा थी वही बनी रही। पाली से जेठमल महाराज के लिए दवाई लेने अजमेर चले गये। वहाँ उन्होंने सब सभासदों को महाराज की दशा से परिचित कराया तो सबकी यह सम्मति हुई कि वहाँ के पीरजी नामक प्रसिद्ध हकीम से ओषधि लेनी चाहिए। पीरजी ने सब हाल सुनकर कहा था कि स्वामीजी को संखिया दिया गया है, अतः उनकी ओषधि लेकर जेठमल मारवाड़ जंक्शन पर, जिसे साधारणतया लोग खारची स्टेशन कहते हैं, आ गये। उधर पाली से रेल में सवार होकर महाराज भी खारची पहुँच गये और जेठमल उनसे मिल गये। यद्यपि डॉक्टर सूरजमल को आबूरोड तक महाराज के साथ जाने की आज्ञा थी, परन्तु महाराज ने उन्हें पाली से ही लौटा दिया। महाराज जानते थे कि उनकी स्त्री पीड़ित है, अतः अपने स्वाभाविक दयाभाव से उन्होंने डॉक्टर को अधिक कष्ट देना न चाहा।

विपन्न दशा—पीरजी की दवा से प्यास और हिचकी को कुछ शान्ति होती रही। खारची तक महाराज पत्रादि पर हस्ताक्षर करते रहे, यद्यपि हस्ताक्षर करने में उनका हाथ काँपता था। खारची पर जब गाड़ी पहुँची तो महाराज ने गाड़ी से स्वयं उतरने का उद्योग किया, परन्तु मुख पर धूप पड़ने से मूर्च्छा आ गई। तब लोगों ने हाथों में लेकर उन्हें उतारा और स्टेशन के बरामदे में पलङ्ग पर लिटा दिया। खारची से रामानन्द को छह रुपये देकर विदा कर दिया और उससे कह दिया कि अब तू हमारे पास पढ़ने के योग्य नहीं रहा। जेठमल खारची से अजमेर चले गये और महाराज आबूरोड के लिए रेल में सवार हो गये। ज़िला अलीगढ़ के ठाकुर भूपालसिंह महाराज के अनन्य भक्त थे। वे मसूदा और शाहपुरा होते हुए खारची पर ही आ मिले थे और वहीं से महाराज के साथ हो लिये थे। २१ अक्तूबर को प्रातःकाल के पाँच बजे महाराज आबूरोड पर पहुँचे। वहाँ मुंशी हरनामदास ने उनके लिए पालकी का प्रबन्ध कर रक्खा था। वहाँ उन्हें पालकी में लिटा दिया गया और आबू पर्वत की चढ़ाई आरम्भ हुई। मार्ग में कोई दो मील चलकर कहारों ने पालकी को सड़क के किनारे रख दिया और स्वयं विश्राम करने लगे।

डॉक्टर लछमनदास का मिलना—आबू से डॉक्टर लछमनदास, जो मीरा ज़िला शाहपुरा पञ्जाब के रहनेवाले थे, अजमेर जा रहे थे। वे आबू पर नियत थे। उनकी बदली अजमेर हो गई थी, वह घोड़ी पर सवार थे। जब वह महाराज की पालकी के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि उसमें भगवे वस्त्रधारी एक संन्यासी लेटा हुआ है। उन्हें उसका परिचय पाने की जिज्ञासा हुई। उन्होंने पूछा तो उन्हें बताया गया कि संन्यासी प्रसिद्ध स्वामी दयानन्द हैं और भयङ्कर रोगग्रस्त होने के कारण आबू जा रहे हैं। उस समय महाराज को हिचकियाँ लग रही थीं और संज्ञारहित अवस्था में थे और उसी अवस्था में उनका दस्त निकल जाता था।

मुझे किसी ने अमृत दिया है—डॉक्टर लछमनदास ने अपने पास से एमोनिया की शीशी निकालकर उसमें से थोड़ा-सा एमोनिया पानी में घोलकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में तीन बार महाराज को दिया। उससे महाराज ने आँखें खोल दीं और कहा मुझे किसी ने अमृत दिया है जिससे मेरी अचेतनता भी दूर हो गई और मेरी जिह्वा भी खुल गई। तब महाराज के एक साथी ने कहा कि यह एक पञ्जाबी डॉक्टर हैं जो आपकी अवस्था को देखकर रुदन कर रहे हैं। इन्होंने कोई श्वेत रंग की ओषधि पानी में मिलाकर तीन बार आपको पिलाई है, जिससे आपको कुछ आराम प्रतीत होता है। महाराज ने प्रेमभरी दृष्टि से डॉक्टर लछमनदास की ओर निहारा, परन्तु वह फिर अचेत हो गये। डॉक्टर लछमनदास ने उसी समय निश्चय कर लिया कि उनकी नौकरी रहे या जाए, वे महाराज के साथ आबू जाकर उनकी सेवा और चिकित्सा करेंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आबू पहुँच गये—रात्रि के ८ बजे वे महाराज के साथ आबू पर जोधपुर राज्य के बङ्गले पर पहुँचे, जिसे सर प्रतापसिंह ने पहले से ही महाराज के लिए सुसज्जित करा दिया था। दो-तीन सेवक उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

डॉक्टर लछमनदास का प्रेम और परिश्रम—डॉक्टर लछमनदास ने महाराज को आराम से पलङ्ग पर लिटा दिया और उसी समय डॉक्टर गुरुचरणदास से, जो हस्पताल के इञ्चार्ज थे, हस्पताल की चाबियाँ लेकर किसी अनुभूत ओषधि की २४ मात्राएँ बनाकर लाये और रात्रि में तीन-तीन घण्टे पश्चात् एक-एक मात्रा महाराज को दी। आबू पहुँचने से पहले महाराज को दिन-रात ४०० दस्त आये थे, ऐसा डॉक्टर लछमनदास ने देवेन्द्रबाबू को अपने पत्र में लिखा था, परन्तु हमें यह ठीक प्रतीत नहीं होता। जोधपुर में पहले-पहले दस्तों की संख्या ३०-४० से अधिक न थी। सम्भव है जोधपुर से आबू पहुँचते-पहुँचते उस संख्या में कुछ वृद्धि हो गई हो। डॉक्टर लछमनदास का यह अनुमानमात्र है और दूसरों से सुना हुआ है। जिसने उनसे ऐसा कहा होगा उसने भी दस्तों को गिना थोड़ा ही होगा, अनुमान ही कर लिया होगा। रोगी से संवेदना रखनेवाले मित्र रोगी की दशा बताने में अत्युक्ति भी कर दिया करते हैं। रात्रि में केवल तीन ही दस्त हुए।

दशा सुधरने लगी—प्रातःकाल डॉक्टर ने दूध में अरारोट पकाकर दो-दो घण्टे के अन्तर से महाराज को दिया। १० बजे महाराज सचेत भी हो गये और उनकी हिचकियाँ भी बन्द हो गई। उस दिन सारे दिन में एक और रात्रि में केवल दो दस्त हुए। दूसरे दिन अर्थात् २३ अक्टूबर को दिनभर में दस-बारह बार करके दो सेर दूध का अरारोट महाराज को पिला दिया गया। रात्रि में उन्हें पाँच घण्टे निद्रा भी आई। तीसरे दिन २४ घण्टे में केवल एक ही दस्त हुआ और तीन सेर दूध का अरारोट पिला दिया गया। उस दिन महाराज को और कोई पीड़ा न हुई। इन तीन दिन में १८-२० तार प्रतिदिन महाराज का स्वास्थ्य पूछने के लिए आये जिनका उत्तर भी डॉक्टर लछमनदास को ही देना पड़ा और अंग्रेज़ी की चिट्ठियों का उत्तर भी वही लिखते थे, क्योंकि महाराज के पास उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति अंग्रेज़ी जाननेवाला न था। चौथे दिन डॉक्टर लछमनदास आबू के प्रधान मेडिकल आफ़िसर के पास इस विचार से गये ताकि उनसे एक-दो मास बिना वेतन अवकाश लेकर महाराज की चिकित्सा निश्चिन्त होकर कर सकें। डॉक्टर स्पेन्सर ने उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया और कहा हमने तुम्हें अजमेर जाने की आज्ञा दी थी तुम वहाँ क्यों नहीं गये। वहाँ के सिविलसर्जन के दो तार आ चुके हैं, तुम चार दिन से बेपता थे। हमने समझा था कि या तो तुम किसी खड्ड में गिर गये या तुम्हें सिंह आदि कोई हिंस्र पशु खा गया। इसपर डॉक्टर लछमनदास ने सब वृत्तान्त उनसे कहा और छुट्टी की याचना की और कहा कि स्वामीजी हमारे धार्मिक और जातीय नेता हैं, उनकी सेवा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। बहुत कुछ अनुनय-विनय करने पर भी उसका हृदय न पसीजा और उसने छुट्टी देनी स्वीकार न की और यह कहा कि हम और डॉक्टर गुरुचरण स्वामीजी की चिकित्सा भली प्रकार कर लेंगे।

स्वामीजी ने त्यागपत्र फाड़ डाला—डॉक्टर लछमनदास ने जोधपुर के बङ्गले पर आकर अपना त्यागपत्र लिखकर एक भृत्य को डॉक्टर स्पेन्सर के पास पहुँचाने के लिए दिया, परन्तु महाराज ने उसे देख लिया और स्वयं अपने हाथ से उसे फाड़ डाला। क्या ठिकाना है महाराज के परहित चिन्तन का! मृत्यु के मुख में पड़े हुए भी जबकि डॉक्टर लछमनदास के रहने से मृत्यु का कवल होने से बचने की कुछ आशा थी, उन्हें यह सह्य नहीं हुआ कि उनके कारण डॉक्टर को कुछ क्षति पहुँचे।

त्यागपत्र दिया पर अस्वीकार—अगले दिन २५ अक्तूबर को डॉक्टर ने दूसरा त्यागपत्र लिखकर डॉक्टर स्पेन्सर को दिया, परन्तु उसने उसे अस्वीकार कर दिया। उस दिन कर्नल सर प्रतापसिंह भी आबू पहुँच गये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे। उनके द्वारा डॉक्टर स्पेन्सर ने महाराज को कहला भेजा कि आप डॉक्टर लछमनदास को अजमेर जाने दें हम स्वयं आपकी चिकित्सा करेंगे। इसपर महाराज ने तथा अन्य लोगों ने लछमनदास को समझाया और उन्हें अजमेर जाने पर बाध्य किया। डॉक्टर साहब दो-तीन दिन की चिकित्सा के लिए ओषधि लिख आये।

डॉक्टर लछमनदास--विदा होते समय उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि यदि फिर आपको कुछ पीड़ा हो तो आप अजमेर चले आवें और मुझे पण्डित भागमल साहब जज के बङ्गले से बुलवा लेवें। इतना कहकर वे विदा हुए। विदा होते समय उनके तथा महाराज के नेत्र अश्रूपूर्ण थे। कर्नल सर प्रतापसिंह ने महाराज से बहुत पूछा कि यदि अलीमरदानखाँ ने आपको विष दिया हो तो आप कह दें, हम उसपर अभियोग चलावें, परन्तु महाराज ने कोई उत्तर न दिया।

रोग का पुनः आक्रमण—डॉक्टर लछमनदास के चले जाने के बाद डाकटर स्पेन्सर की चिकित्सा आरम्भ हुई, परन्तु वह आरम्भ से ही प्रतिकूल पड़ी और दस्त फिर आने लगे। २४ घण्टे में ७-८ दस्त आ गये तब लोगों ने महाराज से अजमेर चलने की प्रार्थना की, परन्तु वे राज़ी न हुए। जब बहुत कुछ कहा गया तो उन्होंने कहा कि २० दिन के पश्चात् चलेंगे। विशेष आग्रह करने पर महाराज ने कहा हमारी इच्छा तो अजमेर जाने की है नहीं, परन्तु आप लोगों का आग्रह है तो अजमेर चले जाएँगे।

भक्तों का समूह—मेरठ से मुंशी लक्ष्मणस्वरूप, फ़र्रुखाबाद से पण्डित लक्ष्मीदत्त, बाबू शिवदयालसिंह तथा मुम्बई से सेवकलाल कर्सनदास २३ अक्तूबर को ही आबू पहुँच गये थे।

भक्त भूपालसिंह की सेवा—ठाकुर भूपालसिंह तो मार्ग से ही महाराज के साथ आबू आये थे। जिस सहृदयता से ठाकुर भूपालसिंह ने महाराज की सेवा की उस सहृदयता से तो कोई पुत्र भी अपने पिता की नहीं करेगा। वे ही महाराज का मल-मूत्र उठाते थे और मल से सने हुए वस्त्र धोते थे, परन्तु तनिक भी घृणा वा ग्लानि नहीं करते थे। इस सेवा के लिए आर्यसमाज उनका सदा आभारी रहेगा। उस समय महाराज की यह दशा थी कि निर्बलता सीमा को पहुँच गई थी, बोला बहुत कम जाता था, मुख, जिह्वा, कण्ठ, सिर पर आँवले पड़े हुए थे। बिना दूसरों की सहायता के न उठ-बैठ सकते थे और न करवट ही ले-सकते थे, हाथ-पाँव बहुत ठण्डे थे, कण्ठ से नीचे पानी तक कठिनता से उतरता था, अन्तर्दाह भी अधिक था, परन्तु होश-हवास ठीक थे।

अजमेर

रात्रि में दही खाया—अन्त में २६ अक्तूबर को महाराज आबू से अजमेर के लिए रवाना हो गये। अन्तर्दाह के उपशमनार्थ वे दही खाना चाहते थे, परन्तु मार्ग में किसी स्टेशन पर दही न मिला, आबूरोड पर भी न मिला, यद्यपि एक सेर का एक रुपया देना चाहा। आबूरोड से मन्त्री आर्यसमाज नानान को तार दिया कि स्वामीजी अजमेर आ रहे हैं, तुम स्टेशन पर दही लेकर उपस्थित रहो। जब गाड़ी नानान पहुँची तो मन्त्री दही लेकर उपस्थित थे। महाराज ने २-३ अञ्जलि भरकर दही खाया। रात्रि के ६ बजे के समय दही का खाना विष होकर लगा।

सब लोग घबरा गये—गाड़ी ४ बजे रात्रि में अजमेर पहुँची। कितने ही प्रेमीजन स्टेशन पर महाराज के दर्शनों के लिए आये हुए थे। उन्होंने देखा कि महाराज फ़र्स्ट क्लास के दर्जे में लेटे हुए हैं और दो-तीन आर्यपुरुष पास बैठे हैं। महाराज की दशा देखते ही सब लोग घबरा गये। चार मनुष्यों ने महाराज को गाड़ी से उतारा, परन्तु उतरते ही मूर्च्छित हो गये। फिर उन्हें पालकी में अत्यन्त सावधानी से लिटाकर बहुत धीरे-धीरे मसूदे के ठाकुर साहब के बङ्गले पर ले-गये और एक कमरे में पलङ्ग पर लिटा दिया। उस समय भी महाराज गर्मी-गर्मी चिल्ला रहे थे यद्यपि वह समय सर्दी का था और अन्य लोगों को सर्दी मालूम हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रही थी। इसपर कमरे के सब द्वार खोल दिये गये, परन्तु फिर भी महाराज गर्मी-गर्मी ही कहते रहे। स्टेशन से ही एक मनुष्य को डॉक्टर लछमनदास को बुलाने के लिए पण्डित भागमल की कोठी पर भेज दिया गया था। उसने जाकर डॉक्टर लछमनदास को जगाया और वे उठकर तुरन्त ही मसूदा की कोठी पर पहुँच गये। उन्होंने जाकर महाराज को देखा तो उन्हें निमोनिया के पञ्जे में पाया। उन्होंने झल्लाकर कहा कि स्वामीजी ने कोई अपथ्य किया है। इस समय उन्हें यह ज्ञात न हुआ कि क्या अपथ्य किया है और उन्होंने नियमपूर्वक निमोनिया की चिकित्सा आरम्भ कर दी। ६ बजे उन्हें ज्ञात हुआ कि मार्ग में आते हुए रात्रि में स्वामीजी ने दही खाया था। वह राय भागमल की कोठी से मसूदा की कोठी पर चले आये ताकि हर समय महाराज के पास रहकर उनकी चिकित्सा कर सकें।

दशा कुछ सुधरी—उन्होंने देवेन्द्रबाबू को लिखा था कि दिन-रात परिश्रम करने से स्वामीजी की दशा कुछ सुधरी। उन्होंने स्वामीजी के कमरे में अग्नि सिलगवाकर उसे गर्म कर रक्खा था।

स्वामीजी का अपथ्य—उन्हें थोड़ी देर के लिए कहीं जाना पड़ा। उनके पीछे महाराज ने आग्रह करके अपना पलङ्ग दरवाजे के पास डलवा लिया जहाँ शीतल वायु आ रही थी। जब डॉक्टर वापस आये तो उन्होंने महाराज का पलङ्ग दरवाजे के पास पड़ा देखा। वे सेवा करनेवालों पर बहुत बिगड़े तो उन्होंने कहा कि हम क्या करें, स्वामीजी ने हमें ऐसा करने पर बाध्य कर दिया। इस कुपथ्य से रोग का पुनः आक्रमण हो गया।

डॉक्टर लछमनदास ने पुरस्कार न लिया—रोग का पुनः आक्रमण होने पर श्रीमहाराज ने अपने स्वीकार पत्र की प्रतियाँ सब लोगों में बँटवाई और कई शाल आदि जिनका मूल्य १००० या १२०० रु० होगा, डॉक्टर लछमनदास के सामने रखवाये और उन्हें देने चाहे। डॉक्टर साहब ने कहा कि महाराज यदि मेरे पास धन होता तो मैं इतना धन आपके एक-एक लोम पर न्यौछावर कर देता। इसपर महाराज ने कहा कि सच्चे आर्य और आर्यावर्त्त के सपूत ऐसे ही होते हैं। यह कहते हुए महाराज के नेत्रों में आँसू डबडबा आये और डॉक्टर साहब के नेत्रों से भी अश्रुधारा बह निकली।

डॉक्टर लछमनदास के प्रति कृतज्ञता—अजमेर पहुँचने के दूसरे दिन राय भगतराम जज और सरदार भगतसिंह एग्ज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर महाराज को देखने आये तो उन्होंने डॉक्टर लछमनदास की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि इन्होंने मेरी सेवा बड़े प्रेम से की है और जो भी ओषधि मुझे इन्होंने दी उसका तात्कालिक फल हुआ है। यदि मैं इनके साथ ही अजमेर चला आता तो बहुत अच्छा होता। दोनों महानुभावों ने महाराज को सान्त्वना दी कि अब भी परमेश्वर आपको शीघ्र नीरोग कर देंगे।

ओषधि में विष—महाराज ने उनसे यवनों के छल का वर्णन किया। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें सन्देह था कि अलीमरदानखाँ ने उन्हें ओषधि में विष दिया है। दोनों महानुभाव थोड़ी देर बैठकर कचहरी चले गये, तब महाराज ने कहा कि हमें मसूदा ले-चलो। परिचर्या करनेवालों ने कहा कि ऐसी दशा में कैसे ले-चलें, जब आपको आराम हो जाएगा तब ले-चलेंगे तो महाराज ने कहा कि दो दिन में आराम हो जाएगा।

पण्डित गुरुदत्त का अजमेर आगमन—२६ अक्तूबर को लाहौर से पण्डित गुरुदत्त और लाला जीवनदास आ गये। उदयपुर से पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या भी आ पहुँचे जिन्हें महाराणा सज्जनसिंह ने महाराज का स्वास्थ्य समाचार लाने और चिकित्सा में साहाय्य करने के लिए भेजा था।

महाराणा की चिन्ता—महाराणा ने उनसे यह भी कह दिया था कि यदि महाराज का देहपात हो जाए तो हमें सूचित करना और हमारे अजमेर पहुँचने तक शव का दाह न होने देना ताकि हम श्रीमहाराज के अन्तिम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक और किंवदन्ती—डॉक्टर लछमनदास कहते हैं कि स्वामीजी ने अलीमरदानखाँ से कहा था कि हमें कोष्ठबद्धता है, आप हमें जुल्लाब दे दीजिए और उससे अंग्रेज़ी रेचक ओषधियों के नाम और गुण भी पूछे थे। अलीमरदानखाँ ने और रेचकों के साथ क्रोटन ऑइल (Croton oil) का भी उल्लेख किया था और उसका यह गुण बताया था कि जिह्वा पर उसकी एक बूँद रखते ही दस्त आने लगते हैं। साथ ही उसने उसके दोष भी बता दिये थे, परन्तु महाराज ने उसे ही खाना पसन्द किया। प्रथम उन्होंने दो बूँद खाई। उससे दस्त नहीं हाये। फिर दो बूँद और खाई, परन्तु फिर भी कोई दस्त न हुआ, तब दो बूँद और खाई। उनके खाते ही दस्त जारी हो गये और उनकी संख्या ६०० तक पहुँच गई।

हमें यह बात अलीक प्रतीत होती है। डॉक्टर लछमनदास ने तो यह बात किसी से सुनी ही होगी, वे स्वयं तो जोधपुर में थे ही नहीं। डॉक्टर सूरजमल जो रोग के आरम्भ से महाराज को देखते रहे और जोधपुर से पाली तक उनके साथ रहे क्रोटन ऑइल (Croton oil) का ज़िक्र तक नहीं करते और न दस्तों की संख्या छह सौ बताते हैं, अतः डॉक्टर सूरजमल का ही कथन अधिक विश्वसनीय है।

रोग फिर कम हुआ—डॉक्टर लछमनदास ने फिर परिश्रम किया और निरन्तर प्रयत्न करने से वह फिर महाराज को नीरोगता पर ले-आये। जब उन्होंने महाराज के शरीर की अवस्था कुछ सँभली देखी तो वह राय भागमल के यहाँ भोजन करने चले गये और रोगी के सेवकों से कह गये कि अब ऐसा न होने पावे कि स्वामीजी फिर शीतल वायु लगा बैठें।

पुनः कुपथ्य—परन्तु शोक है कि उनके चले जाने के बाद महाराज ने फिर अपना पलङ्ग बाहर बरामदे में निकलवाने पर आग्रह किया और उसे निकलवाकर ही छोड़ा। दो-तीन घण्टे के पश्चात् जब डॉक्टर साहब वापस आये तो क्या देखते हैं कि महाराज का पलङ्ग बरामदे में पड़ा हुआ है और उनके पास पण्ड्या मोहनलाल और एक-दो पुरुष और बैठे हुए हैं और महाराज शुद्ध वायु की प्रशंसा कर रहे हैं। जब ये लोग चले गये तो डॉक्टर साहब ने महाराज का पलङ्ग फिर कमरे के भीतर डलवाया और पण्डित गुरुदत्त से कहा कि स्वामीजी को आज फिर रोग का आक्रमण होगा और तीव्र आक्रमण होगा। रात्रि में डॉक्टर लछमनदास और पण्डित गुरुदत्त बारी-बारी से जागते रहे।

मुमूर्षु दशा—११ बजे के समीप डॉक्टर साहब सो गये और पण्डित गुरुदत्त जागते रहे। अभी बारह भी बजने नहीं पाये थे कि पण्डित गुरुदत्त ने डॉक्टर साहब को जगाकर कहा कि स्वामीजी का श्वास चलता हुआ प्रतीत नहीं होता और नाड़ी भी नहीं मिलती। डॉक्टर साहब तुरन्त उठे और उन्होंने ग्लास लगाकर कुछ रुधिर फेफड़ों में से निकाला जिससे श्वास की गति भी ठीक हो गई और नाड़ी भी धीमी-धीमी और बारीक चलने लगी और थोड़ी ही देर में दशा सँभल गई।

भ्रान्त सम्मति—पण्डित लेखरामकृत उर्दू दयानन्द-चरित में जो चिकित्सा डॉक्टर लछमनदास ने की उसके विषय में केवल इतना ही लिखा है कि डॉक्टर साहब ने बहुत प्रयत्न किया और अनेक दवाएँ दीं, परन्तु उनसे लेशमात्र भी लाभ न हुआ।

रात्रि को घबराहट—हम डॉक्टर लछमनदास के कथन को ही सत्य मानते हैं। उक्त दयानन्द-चरित्र में २६ अक्तूबर की दशा का जो वर्णन है उससे भी डॉक्टर लछमनदास के कथन का समर्थन होता है। उसमें लिखा है कि स्वामीजी का चित्त घबराने लगा, उन्होंने कहा कि हमें बिठा दो। जब बिठा दिया तो कहा छोड़ दो हम बैठे रहेंगे, अतः स्वामीजी बिना सहारे अच्छे प्रकार बैठे रहे। ..... परन्तु श्वास शीघ्र-शीघ्र चलता था जिसे स्वामीजी रोक-रोककर फिर शीघ्र ही बलपूर्वक बाहर निकाल देते थे और कुछ ईश्वर का ध्यान भी करते थे। इतने में सन्ध्या हो गई। ..... जब अर्द्धरात्रि का समय आया तब स्वामीजी को बहुत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घबराहट होने लगी।

डॉक्टर लछमनदास का वर्णन सत्य है—महाराज के पलङ्ग का बाहर बरामदे में डालने का ऊपर के वर्णन में उल्लेख नहीं है, परन्तु उनका पलङ्ग पर बिना सहारे बैठे रहना वास्तव में उसी कुपथ्य को प्रकट करता है जिसका उल्लेख डॉक्टर लछमनदास करते हैं और उर्दू दयानन्द-चरित का यह लेख कि अर्द्धरात्रि को स्वामीजी को बहुत घबराहट हुई, डॉक्टर लछमनदास के उस कथन की पुष्टि करता है कि उन्होंने पण्डित गुरुदत्त से कह दिया था कि आज रात्रि में रोग का तीव्र आक्रमण होगा।

अब चिकित्सा न करूँगा—३० अक्तूबर को दीपमालिका का त्यौहार था। उस दिन डॉक्टर लछमनदास ने प्रातःकाल होते ही लोगों से कहा कि अब जब तक कोई दूसरा डॉक्टर चिकित्सा में योग न देगा तब तक मैं चिकित्सा नहीं करूँगा। लोगों ने उत्तर दिया कि स्वामीजी की सेवा आपके सिवाय न कोई डॉक्टर ही कर सकता है और न कोई अन्य मनुष्य। डॉक्टर साहब ने कहा कि अब स्वामीजी का अन्त समय मालूम होता है, क्योंकि जब स्वामीजी के आराम होने की सूरत होती है तभी वे कोई-न-कोई कुपथ्य कर बैठते हैं। यदि स्वामीजी का देहपात हो गया तो लोग मुझे मूर्ख बताएँगे।

अंग्रेज़ सिविल सर्जन का परामर्श—जब डॉक्टर साहब ने बहुत आग्रह किया तो लोगों ने कहा कि यदि आपकी यही सम्मति है तो आप जिस डॉक्टर की सम्मति अपनी सम्मति में मिलानी चाहें उसे ले-आवें। इसपर डॉक्टर साहब अजमेर के सिविल सर्जन डॉक्टर न्यूमैन को लिवा लाये।

डॉक्टर न्यूमैन का आश्चर्य—डॉक्टर न्यूमैन ने आकर जब महाराज को देखा तो आश्चर्य से कहने लगे कि रोगी अत्यन्त विशालकाय, सुदृढ़, वीर और रोग को सहनेवाला है। इसकी आकृति से ही ज्ञात होता है कि इसका रोग असह्य है, परन्तु यह अपने को दुखी नहीं मानता। यही है जो ऐसे उग्र रोग में भी अपने को सँभाल रहा है और अभी तक जीवित है। इसपर डॉक्टर लछमनदास ने उनसे कहा कि ये स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं, जिनका नाम सम्भवतः आपने सुना होगा। डॉक्टर न्यूमैन ने यह बात सुनकर शोक प्रकट किया और महाराज के धैर्य की प्रशंसा की। उस समय महाराज के कण्ठ में कफ़ की बड़ी प्रबलता थी जिसके कारण वे बोल नहीं सकते थे और डॉक्टर न्यूमैन के प्रश्नों का उत्तर सङ्केतमात्र से देते थे, परन्तु सुनने और समझने की शक्ति अक्षुण्ण थी।

डॉक्टरों में मत-भेद—पहले तो डॉक्टर न्यूमैन ने महाराज के ब्रह्मचर्य-रक्षित शरीर को देखकर कहा कि इन्हें निमोनिया नहीं है, परन्तु जब डॉक्टर लछमनदास के कहने पर स्टैथस्कोप यन्त्र लगाकर देखा तो डॉक्टर लछमनदास की सम्मति का कि महाराज को एक्यूट डबल निमोनिया है समर्थन किया। जब डॉक्टर न्यूमैन ने देखा कि महाराज को कफ़ बहुत सता रहा है तो उनके मुख में थोड़ा-सा गौ का दुग्ध डाला, परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। डॉक्टर लछमनदास ने अपने सब नुसखे जो वे महाराज को देते रहे थे डॉक्टर न्यूमैन को दिखाए। इन्हें देखकर डॉक्टर साहब ने कहा कि निमोनिया के लिए ये बहुत अच्छे हैं, यदि चाहो तो इन ओषधियों में डिकाक्शन ऑफ सेनेगा और बढ़ा दो, नहीं तो उसकी कुछ अधिक आवश्यकता नहीं है। बाह्य उपचार के विषय में डॉक्टर लछमनदास ने कहा कि टिरपनटन तेल मलकर रुई बाँधी जाती है। डॉक्टर न्यूमैन ने कहा, मैं ऐसे रोगी के राई की पुलटिस बँधवाता हूँ। इसपर डॉक्टर लछमनदास ने कहा कि मैंने यूरोपियन लोगों की चिकित्सा में राई की पुलटिस को लाभकारक पाया है, परन्तु भारतीय लोगों की चिकित्सा में नहीं। डॉक्टर न्यूमैन देख-भालकर चले गये। उक्त उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि डॉक्टर न्यूमैन ने ३-४ सेर अलसी को दूध में पकाकर उसकी पुलटिस बाँधने को कहा था। डॉक्टर लछमनदास कहते हैं कि राई की पुल्टिस बताई थी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डॉक्टर न्यूमैन से परामर्श—दस बजे ३-४ आर्यपुरुष न्यूमैन के बङ्गले पर गये और उनसे कहा कि जब आरम्भ में आपने कहा था कि स्वामीजी को निमोनिया नहीं है तो हम लोग बहुत प्रसन्न हुए थे। इसपर डॉक्टर न्यूमैन ने कहा कि स्टैथस्कोप लगाने पर ज्ञात हुआ कि डॉक्टर लछमनदास का निदान ठीक है। स्वामीजी को एक्यूट डबल निमोनिया है। फिर आर्यपुरुषों ने पूछा कि डॉक्टर लछमनदास की चिकित्सा कैसी है तो उन्होंने कहा कि यदि दस अंग्रेज़ डॉक्टर भी मिलकर चिकित्सा करते तो इससे बढ़कर न कर सकते थे। मेरा उनसे भेद केवल बाह्य उपचार के विषय में है सो यह अपने-अपने अनुभव की बात है। डॉक्टर लछमनदास बहुत अनुभवी चिकित्सक हैं।

मरना-जीना दोनों सम्भव हैं—फिर आर्यपुरुषों ने पूछा कि अन्तिम परिणाम क्या होगा तो डॉक्टर न्यूमैन ने कहा कि सम्भव है कि ऐसे रोगी का थोड़े घण्टों में ही प्राणान्त हो जाए और यह भी सम्भव है कि बच जाए। आर्यपुरुषों ने पूछा कि क्या चिकित्सा होनी चाहिए ? तो डॉक्टर न्यूमैन ने कहा कि वही जो डॉक्टर लछमनदास कर रहे हैं। आर्यपुरुषों का अन्तिम प्रश्न यह था कि पुल्टिस लगाई जाए या नहीं ? इसका उत्तर डॉक्टर न्यूमैन ने यह दिया कि मेरे अनुभव में पुल्टिस लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके पश्चात् आर्यपुरुष लौट आये।

राई की खूब गर्म पुल्टिस—वापस आकर उन्होंने राई की खूब गर्म-गर्म पुल्टिस पीठ पर लगानी आरम्भ कर दी। इसपर डॉक्टर लछमनदास ने पण्डित गुरुदत्त से कहा कि वैसे स्वामीजी दो-चार दिन और जीवित रह जाते, परन्तु अब शीघ्र ही उनका शरीरपात हो जाएगा। सम्भव है कि आज सन्ध्या तक ही उनका शरीर न रहे, परन्तु लोग ५-६ घण्टे तक पुल्टिस लगाते ही रहे। परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी की पीठ पर छाले पड़ गये। उक्त उर्दू दयानन्द-चरित में लिखा है कि पुल्टिस केवल आधी घड़ी तक ही लगाई गई थी और फिर स्वयं महाराज ने ही यह कहकर कि इससे क्या होता है, उसका लगाना बन्द करा दिया था और कहा कि अब हमारा अन्त समय है, सब उपचार छोड़ दो, अतः दवा आदि देना बन्द कर दिया गया था।

आज आराम का दिवस है—११ बजे महाराज के श्वास की गति बढ़ने लगी और वे कुछ-कुछ बोलने लगे। उन्होंने कहा कि हम शौच जाएँगे। लोगों ने उन्हें शौच की चौकी पर बिठाया। शौच के पश्चात् स्वयं पानी लिया, हाथ धोये और दातुन की, फिर उन्होंने कहा कि हमें पलङ्ग पर ले-चलो। पलङ्ग पर कुछ देर बैठकर लेट गये। श्वास बड़े बेग से चल रहा था और ऐसा प्रतीत होता था कि महाराज श्वास रोककर ईश्वर का ध्यान करते हैं। किसी ने उस समय उनसे पूछा कि आपका चित्त कैसा है तो कहा कि अच्छा है, एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है। लाला जीवनदास ने उनसे पूछा, आप कहाँ हैं तो कहा कि ईश्वरेच्छा में।

शिष्य से प्रश्न, शिष्य का उत्तर—चार बजे महाराज ने आत्मानन्द को बुलाया। वे आकर सम्मुख खड़े हो गये। महाराज ने उनसे कहा कि या तो पीछे खड़े हो जाओ या सिरहाने बैठ जाओ। तब महाराज ने उनसे पूछा कि आत्मानन्द क्या चाहते हो ? उन्होंने कहा कि ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे हो जाएँ। इसपर कुछ देर ठहरकर महाराज बोले कि यह देह है इसका अच्छा क्या होगा ? फिर आत्मानन्द के शिर पर हाथ रखकर बोले कि आनन्द से रहना।

संन्यासी से भी वही प्रश्न—एक संन्यासी गोपालगिरि काशी से महाराज को देखने आये थे। उनसे भी महाराज ने यही प्रश्न किया जो आत्मानन्द से किया था और उन्होंने भी वही उत्तर दिया जो आत्मानन्द ने दिया। तब उनसे भी महाराज ने यही कहा कि गोपालगिरि अच्छे प्रकार से रहना। महाराज ने दो दुशाले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और २०० रुपये मँगवाये और कहा कि आधे-आधे आत्मानन्द और पण्डित भीमसेन को दे दो, परन्तु उन्होंने न लिये।

चार बजे के समय बाहर से आये हुए आर्यपुरुष महाराज के समीप गये और सामने खड़े हो गये। महाराज ने सबको ऐसी कृपादृष्टि से देखा कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, मानो वे सबसे यह कह रहे थे कि उदास क्यों होते हो, सबको धैर्य धारण करना चाहिए।

मृत्यु-सान्निध्य में अपूर्व सावधानी—उस समय महाराज के मुख पर किसी प्रकार के शोक व घबराहट के चिह्न न थे। अपने घोरतम कष्ट को इस प्रकार सहन करते थे कि मुख से एक बार भी 'हाय' या अन्य कष्टसूचक शब्द न निकलता था। महाराज बड़ी सावधानी से रहे और बातचीत करते रहे।

तेज और अन्धकार का भाव है—इतने में पाँच बज गये। महाराज से किसी ने पूछा कि महाराज आप श्रीमानों का चित्त कैसा है तो कहा अच्छा है, तेज और अन्धकार का भाव है। इस बात को लोग कुछ न समझे।

वेदपाठ और ईश्वर-स्तुति—जब साढ़े पाँच बजे तो महाराज ने कहा कि जो लोग हमारे साथ हैं तथा दूरस्थ स्थानों से आये हैं उन्हें बुलाकर हमारे पीछे खड़ा कर दो, सामने कोई खड़ा न हो। जब सब लोग आ गये तो महाराज ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोल दो और छत के दो रोशनदान भी खुलवा दिये और पूछा कि कौन-सा पक्ष, क्या तिथि और क्या वार है ? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्ल का आदि अमावास्या और मङ्गलवार है। यह सुनकर छत और दीवारों की ओर दृष्टि की, फिर कई वेदमन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरोपासना की और भाषा में ईश्वर का गुण-कीर्त्तन किया और फिर बड़ी प्रसन्नता और हर्षपूर्वक गायत्रीमन्त्र का पाठ करने लगे और कुछ देर तक समाधिस्थ रहकर आँखें खोल दीं और यों कहने लगे कि—

तेरी यही इच्छा है—'हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आहा !!! तैने अच्छी लीला की।' महाराज उस समय सीधे लेट रहे थे, ये शब्द कहकर उन्होंने स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोककर एकदम बाहर निकाल दिया। महाराज की मानवी लीला समाप्त हुई और उनका आत्मा नश्वर देह को छोड़कर जगज्जननी की प्रेममयी गोद में जा विराजा। महाराज के शरीर छूटने के समय छह बजे थे।

मृत्यु-दृश्य ने नास्तिक को आस्तिक बना दिया—महाराज के मृत्यु-दृश्य को पण्डित गुरुदत्त चुपचाप खड़े हुए देख रहे थे। वे यद्यपि आर्यसमाज के सभासद् थे; परन्तु ईश्वर के अस्तित्व में उन्हें सन्देह था। उन्होंने देखा कि एक योगी और ईश्वर का सच्चा विश्वासी मृत्यु पर कैसे विजय पा सकता है ? इस दृश्य को देखकर उनके सारे सन्देह दूर हो गये, जो उस समय तक किसी युक्ति से दूर न हुए थे और वे सच्चे आस्तिक बन गये।

हम शव को गाड़ेंगे—उनके परलोकगमन का समाचार सुनकर दो संन्यासी आये और कहने लगे कि हम उनके शरीर को संन्यासियों की प्रचलित रीति के अनुसार गाड़ेंगे, जलाने नहीं देंगे। आर्यपुरुषों ने उन्हें समझा दिया कि श्रीमहाराज पहले से ही अपने शव की अन्त्येष्टि के विषय में सब-कुछ लिख गये हैं, उसी के अनुसार कार्य होगा। इसपर वे यह कहते हुए चले गये कि यद्यपि स्वामीजी हमारे प्रतिपक्षी थे, परन्तु फिर भी थे तो हमारे ही। यदि हमारी मण्डली यहाँ होती तो हम शव को बलात् छीन ले-जाते, परन्तु क्या करें हम केवल दो ही हैं।

पण्डित सुन्दरलाल आ गये—परन्तु कुछ ही देर पहले महाराज ने कहा था कि पण्डित सुन्दरलाल

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को बुलाओ। इसपर लोगों ने कहा कि वे नहीं आये। तब महाराज ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि नहीं वे आ गये। लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि महाराज की मृत्यु के पश्चात् ही वे आ गये। अजमेर में प्रातःकाल महाराज उठकर बैठ जाया करते थे और ईश्वरोपासना किया करते थे। ईश्वर तेरी यही इच्छा है, बहुधा यह वाक्य कहा करते थे और **"अग्ने नय सुपथा राये"** इत्यादि मन्त्र बहुत पढ़ा करते थे।

नाई को पाँच रुपये—मरने से एक-दो दिन पहले महाराज ने एक नाई से क्षौर कराया तो उपस्थित पुरुषों से कहा कि इसे पाँच रुपये दे दो। लोगों ने उसे एक रुपया दिया। वह महाराज के पास गया और कहा कि एक रुपया मिला है। इसपर उन्होंने उसे चार रुपये और दिलवाये।

जो इच्छा हो वह भोजन बनाओ—मृत्यु के दिन भी महाराज ने क्षौर कराया था। उनकी इच्छा स्नान करने की थी, परन्तु लोगों ने स्नान न करने दिया तब उन्होंने भीगे कपड़े से सिर पोंछा। उस रोज़ महाराज ने यह भी कहा था कि जो इच्छा हो वही भोजन बनाओ। जब भोजन बन गया तो उसे एक थाल में सजाकर महाराज के सामने लाया गया। महाराज ने उसे एक दृष्टि से देखकर कहा कि ले-जाओ, परन्तु लोगों ने आग्रह किया कि आप भी कुछ खाइए, इसपर उन्होंने चनों के पानी की एक चमची ली।

दो सुधारक एक ही समय में रुग्ण—जिन दिनों स्वामीजी अजमेर में रोग-शय्या पर पड़े हुए थे, उन्हीं दिनों नवविधान ब्राह्मसमाज के प्रवर्त्तक बाबू केशवचन्द्र सेन भी रोग-पीड़ित थे। एक पत्र-प्रेषक का २८.१०.१८८३ का लिखा हुआ एक लेख स्टेट्समैन कलकत्ता के १.११.१८८३ के अङ्क में प्रकाशित हुआ था, उसमें लिखा था कि यह भारत का दौर्भाग्य है कि उसके सबसे बड़े दो सुधारक केशवचन्द्र और दयानन्द एक ही समय में रोगाक्रान्त हैं।

महाराणा की अन्तिम दर्शन की कामना—यह हम पहले ही कह चुके हैं कि महाराणा सज्जनसिंह की यह प्रबल इच्छा थी कि यदि महाराज का देहान्त हो जाए तो उनकी अन्त्येष्टि क्रिया ४-५ दिन तक न की जाए जिससे हम उनके अन्तिम दर्शन कर सकें, परन्तु लोगों ने ऐसा करना उचित न समझा और ३१ अक्तूबर को उनकी अन्त्येष्टि क्रिया कर दी गई।

शवदाह की तैयारी—अरथी तैयार की गई, उसपर चारों ओर केले के पत्ते और पुष्पादि लगाये गये। महाराज के शव को स्नान कराकर चन्दनादि से चर्चित करके और नवीन वस्त्र पहनाकर उसपर रक्खा गया। तब सब लोग उसके चारों ओर खड़े हो गये और आधा घण्टे तक वेदमन्त्र पढ़ते रहे। तत्पश्चात् अरथी उठाई गई। उसके आगे रामानन्द ब्रह्मचारी, गोपालगिरि संन्यासी, पण्डित वृद्धिचन्द्र और मुन्नालाल नंगे पैर वेदमन्त्र पढ़ते जाते थे। उसके पीछे आर्यपुरुषों, हिन्दुस्तानियों, पञ्जाबियों, बङ्गालियों, महाराष्ट्रों का बृहत् समूह था। राय भागमल जज, पण्डित सुन्दरलाल सुपरिण्टेण्डेण्ट पोस्टल वर्कशाप अलीगढ़, बाबू शरच्चन्द्र मजूमदार, प्रधान ब्राह्मसमाज अजमेर तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुष थे।

श्मशान यात्रा—श्मशान यात्रा अजमेर के आगरा दरवाज़े, नया बाज़ार, अनाज मण्डी, दरगाह बाज़ार, डिग्गी बाज़ार होती हुई नगर के दक्षिण भाग में पहुँची। महाराज की आज्ञा थी कि उनके शव का नगर के दक्षिण में दाह किया जाए। वहाँ अरथी उतारी गई और संस्कारविधि के अनुसार वेदी बनाई गई। इतने वेदी तैयार हुई, राय भागमल ने अत्यन्त मर्मस्पृक् शब्दों में महाराज के गुण वर्णन किये, फिर पण्डित सुन्दरलाल ने कुछ कहना आरम्भ किया, परन्तु थोड़ा-सा कथन करने के पश्चात् ही उनका जी भर आया और वे आगे कुछ न कह सके।

अन्त्येष्टि क्रिया—जब वेदी तैयार हो गई तो उसमें चन्दन आदि काष्ठ चयन करके उसपर महाराज

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के शव को रक्खा और उसपर चन्दन, काष्ठ, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य रखकर रामानन्द और आत्मानन्द ने अग्नि प्रवेश कराई और संस्कारविधि-लिखित वेदमन्त्रों से घृत की आहुतियाँ देकर शव को भस्मीभूत किया। उस समय सायङ्काल के छह बजे थे जब लोग इस कार्य से निवृत्त हुए तत्पश्चात् सब लोग स्नान करके अपने-अपने घर चले गये।

अगले दिन पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने स्वामीजी के धन और वस्तुओं की सूची बनाकर और उसपर प्रतिष्ठित पुरुषों के हस्ताक्षर कराकर परोपकारिणी सभा के मन्त्री की स्थिति से अपने अधिकार में ले-लिया।

दाह-संस्कार की सामग्री—महाराज के शवदाह में निम्नलिखित सामग्री का प्रयोग हुआ था—

सामग्री		मूल्य
१. घृत तीन मन तीस सेर	चौरासी रुपये छह आने	८४।=)
२. चन्दन दो मन दो सेर एक पाव		§
३. केशर चालीस तोला	इक्कीस रुपये आठ आने	२१॥)
४. कपूर पाँच सेर	पाँच रुपये	५)
५. कस्तूरी नौ माशा	नौ रुपये	६)
६. अगर चार सेर	एक रुपया	१)
७. चीनी तीन सेर चार छटाँक	एक रुपया	१)
८. शरीराच्छादन	नौ रुपये सात पैसे	६-)॥॥
९. एक दुशाला	पचास रुपये	५०)
१०. पलाशादि काष्ठ सोलह मन	आठ रुपये	८)
११. रथी निर्माण तख्ता	दो रुपये बारह आने	२॥॥)
१२. खदिर का स्रुवा	एक रुपया	१)
१३. वस्तुओं के लाने की मजदूरी	दो रुपया	२)

पण्डित गट्टूलाल की संवेदना—महाराज की मृत्यु का संवाद सारे भारतवर्ष में फैल गया। विद्वन्मण्डली में हाहाकार मच गया। उनके कट्टर-से-कट्टर विरोधियों ने शोक प्रकट किया। पण्डित गट्टूलाल शास्त्री सरीखे विपक्षी ने कहा कि दयानन्द से हमारा अनेक विषयों पर मतभेद होते हुए भी हम यह बात मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे कि दयानन्द ने इस देश में वेद-सम्बन्धी चर्चा और जिज्ञासा का उदय किया है और गोरक्षा के आन्दोलन का सूत्रपात करके सारे भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का उद्योग किया है।

सर्वत्र शोक की घटा—सारे हिन्दूजगत् पर शोक की घटा छा गई। नगर-नगर में शोक सभाएँ हुई। देशभर में शायद ही कोई समाचार-पत्र होगा जिसमें उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट न किया गया हो। बहुत-से पत्रों में तो लम्बे-लम्बे अग्रलेख लिखकर उनका गुणकीर्त्तन और उनके कार्य की प्रशंसा की गई। हम उन्हें यहाँ उद्धृत करके ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते।

महाराणा का शोकोद्गार—श्री महाराणा सज्जनसिंह उदयपुराधीश ने अपने शोक-सन्तप्त हृदय का उद्गार निम्नलिखित कविता द्वारा प्रकट किया था—

---

§ देवेन्द्रबाबू के नोट में चन्दन के मूल्य की रकम कट-फट गई थी, अतः पढ़ी नहीं गई। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोहा

नभ चर ग्रह ससि दीप दिन, दयानन्द सह सत्व ।
वय त्रेसठ§ वत्सर विचे, पायो तन पञ्चत्व ॥

कवित्त

जाके जीह जोर तें प्रपञ्च फिलासफ़िन को, भारत सो समस्त आर्य मण्डल तें मान्यो मैं ।
वेद के विरुद्धी मत मत के कुबुद्धी मन्द, भद्र भद्र आदिन पैं सिंह अनुमान्यो मैं ॥
ज्ञाता खट ग्रन्थन को वेद को प्रणेता जेता, आर्य विद्या अर्क हू को अस्ताचल जान्यो मैं ।
स्वामी दयानन्द जू के विष्णुपद प्राप्त हू तें, पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यों मैं ॥

मुंशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत पृष्ठ २५ से रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा के राजपूताने के इतिहास पृष्ठ ११४२ पर उद्धृत ।

§ स्वामीजी का जन्म संवत् १८८१ में देहान्त संवत् १९४० में हुआ, अतः मृत्यु-समय उनका वयःक्रम ५९ वर्ष का था, त्रेसठ का न था । —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक मर्मस्पृक् ललित उद्गार

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रतिष्ठित समाचारपत्र तथा नेताओं ने यहाँ तक कि विरोधियों ने भी ऋषि दयानन्द की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए उनका गुणगान और धर्म और जाति की जो सेवाएँ की थीं उनका वर्णन किया। यदि हम उन सब लेखों का संग्रह करें तो बड़ा भारी ग्रन्थ बन जाएगा, इसलिए हम उन सबका उल्लेख न करके केवल एक संस्कृत कविता, जो अत्यन्त ललित और मर्मस्पृक् है, उद्धृत करने पर सन्तोष करते हैं। यह कविता कविवर रामदास छबीलदासजी वर्मा ने केम्ब्रिज से भेजी थी, जहाँ वह ऋषि के देहावसान के समय विद्याध्ययन कर रहे थे।

अहो नितान्तं हृदयं विदूयते निशम्य लोकान्तरमुन्नताशयम्।
सम्प्रस्थितं वेदविदामनुत्तमं श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीं कविम् ॥१॥

वेदों के जाननेवालों में सर्वोत्तम, मेधावी, उन्नताशय श्रीदयानन्द सरस्वती के परलोक-गमन को सुनकर हृदय को अत्यन्त दुःख होता है।

दीपपंक्तिचितभूतले सति व्योम्नि तारकगणैस्समुज्ज्वले।
शोकजालतिमिराकुले तु सत्युत्ससर्ज स शरीरबन्धनम् ॥२॥

पृथिवी पर दीपकों की पंक्ति के जलने पर, तारागणों से आकाश के प्रकाशित होने पर और शोकरूपी अन्धकार के फैलने पर उसने शरीर के बन्धन को छोड़ दिया।

निःशेषपीताखिलशास्त्रसारः पूतान्तरात्मा निगमाग्निजालैः।
ज्ञानोत्तमैकाञ्जनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैकनिध्यानविशुद्धचेताः ॥३॥
स्वकीयदेशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथन्नु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स मनश्चकार ॥४॥

जिसने शास्त्रों के समस्त सार को पी लिया था, वेद की अग्नि से जिसका अन्तरात्मा पवित्र हो गया था, जिसने अपने नेत्रों में उत्तम ज्ञान का अञ्जन लगाया था, जिसका चित्त ब्रह्म का ध्यान करने से शुद्ध हो गया था, जो अपने देश की उन्नति में सर्वदा संलग्न था, जिसके स्वप्न में भी स्वार्थबुद्धि नहीं आई थी, उसने इस सब कार्य को छोड़कर द्युलोक जाने का विचार क्यों किया ?

विज्ञाय तस्याद्भुतचारुवृत्तं दिवौकसो जातकुतूहलाः किम्।
तद्दर्शनायात्मनिकेतनं तमजूहवन्दिव्यगुणैरुपेतम् ॥५॥

क्या कहीं स्वर्ग के देवताओं ने उसके अद्भुत और सुन्दर चरित्र को सुनकर कुतूहलवश उस दिव्य गुणों से युक्त पुरुष को अपने गृह पर दर्शन करने के लिए तो नहीं बुला लिया ?

कृतयुगोचित एष जनः किल न चिरमर्हति वस्तुमसौ मयि।
मनसि संकलितं कलिनेति किं स च हृतोऽखिलसाधुमनोरथैः ॥६॥

क्या कहीं कलयुग ने यह सोचकर कि यह पुरुष सत्ययुग के उपयुक्त गुणों से युक्त है और अधिक काल तक मुझमें रहने के योग्य नहीं है, सब शुभ मनोरथों से तो उसे नहीं हर लिया ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुणानपेक्षेण निजप्रभुत्वं कालेन किं दर्शयितुं हृतः सः ।
नृदेहभाक् प्राक्तनकर्मयोगात् पुनः प्रपन्नः प्रकृतिं निजां वा ॥७॥

क्या कहीं काल ने, जो गुणों की अपेक्षा नहीं करता, अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए तो उसे नहीं हर लिया ? क्या कहीं वह अपने पूर्वकालीन कर्मों के योग से मनुष्य-शरीर को पाकर फिर अपनी प्रकृति को तो प्राप्त नहीं हो गया ?

सन्देहदोलामधिरूढमेवं मनो न निश्चेतुमलं मदीयम् ।
चित्रं निगूढं चरितं विधातुर्वेत्तुं क्षमः को वद मानुषोऽस्ति ॥८॥

इस प्रकार सन्देह के हिंडोले पर आरूढ़ मेरा मन कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता । विधाता का चरित्र विचित्र और अत्यन्त गूढ़ है उसे जानने को कौन मनुष्य समर्थ है ?

दिनानि पूर्वं कतिभिद्य आसीदसंहतास्मन्नयनोत्सवाय ।
स्मृतेस्स पन्थानभितोऽधुना तत् कथं विधेः स्याल्लषितं प्रमेयम् ॥९॥

कुछ दिन पहले जो हमारे नेत्रों को आनन्द देनेवाला था, वह अब यहाँ से स्मृति के पथ में पहुँच गया। विधाता की इच्छा क्योंकर जानी जा सकती है ?

तातगेहवसतिर्विमानिता संश्रितश्चरम एव चाश्रयः ।
धर्मतत्त्वपरिबोधने रतस्तेन सोढमपि दुर्वचो नृणाम् ॥१०॥

उसने पिता के घर की अवहेलना करके संन्यासाश्रम का आश्रय लिया, वह धर्म के तत्त्व को जनाने में लगा रहता, उसने मनुष्यों के दुर्वचनों को भी सहन किया ।

स्वं विहाय मुहुरुच्छितं दं वारिदः श्रयति वाहिनीतटम् ।
केवलं परहिते कृतश्रमा लाघवं न गणयन्ति सज्जनाः ॥११॥

जैसे मेघ अपने ऊँचे पद को छोड़कर बार-बार नदी के तट का आश्रय लेता है, ऐसे ही परहित के लिए परिश्रम करनेवाले सज्जन अपने अपमान का विचार नहीं करते ।

यः पाखण्डमतैकखण्डनरतो वैदाख्यशस्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि ।
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भान् समारोपयद्,
दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥१२॥

जो वेद नामक शुभ शास्त्रों से पाखण्ड मतों के खण्डन में निरन्तर लगा हुआ था, युद्ध में शास्त्रों की बलवती सेना जिसकी सेवा करती थी, जिसने सत्पक्ष और सभाओं के मिष से दिशाओं में विजय का स्तम्भ स्थापित किया था, अब उसके समान पुरुष कहाँ मिल सकता है ?

एक एवं खलु पद्मिनीपतिरेक एव दिवि शीतदीधितिः ।
एक एव च स वेदविद्भुवि द्वित्वमत्र न कदा श्रुतं मया ॥१३॥

पद्मिनी का पति (सूर्य) एक ही है, आकाश में एक ही चन्द्रमा है । ऐसे ही पृथिवी पर वेद के जाननेवालों में वह अकेला था, मैंने इस विषय में दूसरे के अस्तित्व को कभी नहीं सुना ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः ।
यात एष तु सकृत्सदग्रणीर्बोभवीति विषयो न नेत्रयोः ॥१४॥

सूर्य भी फिर दृष्टिगोचर होता है, आकाश में चन्द्रमा भी फिर दिखाई देता है, परन्तु यह सत्पुरुषों का अग्रणी एक बार जाकर फिर नेत्रों का विषय नहीं होगा ।

इन्द्रियार्थोद्भवं ज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम् ।
तच्च्युतस्स महात्मातः स्मृतावेव निधीयताम् ॥१५॥

इन्द्रिय और अर्थों से उत्पन्न ज्ञान सर्वथा प्रामाणिक नहीं होता, इसीलिए वह महात्मा उससे पृथक् हो गया, अब उसे स्मृति में ही रखिए ।

संस्कृता भारती येन वृद्धिं यायादन्तरतम् ।
तस्य नामामरं च स्यादित्येतद् यवसीयताम् ॥१६॥

जिससे संस्कृत वाणी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो और उसका नाम अमर हो, ऐसा यत्न करना चाहिए।

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च ।
साधूनां मरणात्पश्चादभिधानं तु जीवति ॥१७॥

ऋषि, कवि और विद्वान् सब लुप्त हो गये, साधुओं की मृत्यु के पश्चात् उनका नाम ही जीवित रहता है ।

को नाम श्रीदयानन्दात्साधीयान् दृश्यते जनः ।
उज्जीवितार्षविद्या येनास्माभिर्निरपेक्षिता ॥१८॥

श्रीदयानन्द के समान साधुपुरुष कौन दीखता है, जिसने हमसे उपेक्षा की गई आर्षविद्या को पुनर्जीवित किया ।

सैवैषा नीयतां पुष्टिं स्वकीयहितवृद्धये ।
शास्त्रतत्त्वावबोधेन यूनां संस्क्रियतां च धीः ॥१९॥

उस आर्षविद्या की अपने हित की वृद्धि के लिए पुष्टि करो, शास्त्र के तत्त्वज्ञान से युवकों की बुद्धि को संस्कृत करो ।

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधितिर्धर्मः परः कः कवि वाचि कः स्थितः ।
का कण्ठभूषा न यमाद्विभेति कः, स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी ॥२०॥

१. सूर्य पद्मिनी का कौन है ? २. परम धर्म कौन-सा है ? ३. कवि की वाणी में कौन स्थित है ? ४. कण्ठ का भूषण क्या है ? ५. यम से कौन नहीं डरता ?

इनके उत्तर क्रमशः ये हैं—१. स्वामी, २. दया, ३. आनन्द, ४. सरस्वती, ५. यमी ।

ऋषि के कुछ वस्त्र आदि आर्यसमाज मेरठ शहर में थे । खेद है कि उक्त आर्यसमाज ने उन्हें बेच दिया । उनका जूते का जोड़ा असावधानी से गुम हो गया ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट संख्या १

जन्मस्थान और नाम

भगवान् दयानन्द का जन्म संवत् १८८१ वि० में काठियावाड़ प्रदेश के अन्तर्गत मोरवी राज्य के एक ग्राम में हुआ था, उनके जन्मस्थान के विषय में निश्चितरूप से हम इतना ही कह सकते हैं। वे संन्यासी थे और संन्यासियों का यह व्रत होता है कि वे अपने आदि नाम और जन्मस्थान को प्रकट न करें। उन्होंने अपने स्वलिखित जीवनचरित में यह भी कहा है कि गुजरात के लोगों में मोह अधिक होता है और यदि उनके कुटुम्बियों को उनका पता लग जाएगा तो वे उनके कार्य में बाधा डालेंगे। इनके अतिरिक्त यदि और भी कोई कारण रहा हो तो हमें ज्ञात नहीं। यह बात भी कि उनका जन्मस्थान मोरवी राज्य के अन्तर्गत था, स्वलिखित जीवन-चरित में लिखी है और इसीलिए हम उसे निश्चित और असन्दिग्ध समझते हैं।

काठियावाड़ में राजकोट और मोरवी प्राञ्चलवासियों में अनेक लोगों का यह विश्वास है कि भगवान् का जन्म जड़ेश्वर महादेव के मन्दिर के निकटवर्त्ती किसी छोटे-से ग्राम में हुआ था। कइयों का मत है कि उनका जन्मस्थान टाना ग्राम था और कई कहते हैं कि उन्होंने सज्जनपुर अथवा जीवापुर ग्राम में जन्म लिया था और कोई इस पुण्य-भूमि का नाम मिताना बताते हैं, परन्तु हमारी सम्मति में इनमें से किसी को भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता। मिताना में एक भी घर औदीच्य ब्राह्मणों का नहीं है और भगवान् ने औदीच्य ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया था, इसलिए जो लोग उस ग्राम को इस कीर्त्ति का अधिकारी बनाना चाहते हैं, उनका प्रयास वृथा है। बात यह है कि जब किसी महापुरुष का जन्म-स्थान सुनिश्चितरूप से निर्धारित नहीं होता तो उसके विषय में इसी प्रकार का मतभेद हो जाया करता है। यूनान के महाकवि होमर के जन्मस्थान होने का सात भिन्न-भिन्न गाँवों की ओर से दावा किया जाता है। महापुरुषों के जीवन-चरित-लेखक, उनके ग्रन्थों के व्याख्या-कर्त्ता अथवा उनके अनुयायी तुच्छ-से-तुच्छ घटना-सादृश्य की भित्ति पर अनुमान और कल्पना का विशाल मन्दिर खड़ा कर देते हैं। भगवान् दयानन्द के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ है। घटनासादृश्य के कारण ही लोगों ने प्रागुक्त ग्रामों को उनका जन्मस्थान कहना आरम्भ किया है। यह स्पष्ट ही है कि भगवान् काठियावाड़ और ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे, क्योंकि इतना वे स्वलिखित जीवनी में स्वयं हमें बता गये हैं। जड़ेश्वर महादेव का मन्दिर काठियावाड़ में बड़ा प्रसिद्ध है। उसके पास ही जीवापुर है। जीवापुर का एक ब्राह्मण-पुत्र भी घर छोड़कर निकल गया था और काशी में जाकर संन्यासी हो गया था। ऐसे ही टाना भी जडेश्वर के मन्दिर के निकट ही है। वहाँ के भी एक ब्राह्मणकुमार ने संसार से विरक्त होकर काशी में संन्यास ग्रहण करके अद्वैताश्रम नाम धारण किया था और काशी में रहनेवाले गुजराती संन्यासियों के बीच में उसने ख्याति और प्रतिपत्ति प्राप्त की थी। इन दोनों ब्राह्मणकुमारों के गृहत्याग करने और काशी में जाकर संन्यास ग्रहण करने की कथा जड़ेश्वराञ्चल में बहुत प्रसिद्ध है। घटनासादृश्य के कारण वहाँ के रहनेवालों ने यह अनुमान कर लिया कि भगवान् दयानन्द ने जड़ेश्वर के मन्दिर के निकटवर्त्ती किसी छोटे-से ग्राम में जन्म लिया था और वह भी घर से निकलकर अध्ययनार्थ काशी चले गये थे और उनका जन्मस्थान टाना, मिताना, जीवापुर अथवा सज्जनपुर था, परन्तु उनका यह अनुमान असत्य है। इन स्थानों में से कोई भी भगवान् की जन्मभूमि नहीं था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानन्द मोरवी राज्य के रहनेवाले थे, भगवान् ने स्वरचित आत्मचरित के एक स्थल में लिखा है "मैंने मोरवी राज्य के अन्तर्गत एक नगर में जन्म ग्रहण किया था"। यही बात उन्होंने एक अन्य अवसर पर मोरवी राज्य के समीप राजकोट नगर में महाराजा मोरवी से कही थी। उक्त महाराजा के दीवान ने एक पत्र में, जिसका आवश्यक भाग नीचे उद्धृत किया जाता है, लिखा था§ "His Highness had the pleasure to attend a lecture delivered by Swami Dayanand Saraswati in 1875 in Rajkot. After the lecture the Swamiji met His Highness and in the course of conversation told His Highness that he was born in his state and was his subject."

इसका अभिप्राय यह है कि महाराजा साहब स्वामी दयानन्द सरस्वती के एक व्याख्यान में गये थे जो उन्होंने सन् १८७५ में राजकोट में दिया था। व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी महाराजा साहब से मिले थे और उनसे वार्तालाप के मध्य में कहा था कि मैंने मोरवी के राज्य में जन्म लिया था और मैं आपकी प्रजा हूँ। इस पत्र के पढ़ने के पश्चात् इसमें कोई संशय नहीं रहता कि भगवान् दयानन्द मोरवी राज्य के रहनेवाले थे।

परन्तु पूनानगर में एक व्याख्यान में अपना जीवन-चरित वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था कि "मैंने धाङ्गध्रा राज्य के सीमान्तवर्ती एक नगर में जन्म लिया था", इस कारण कोई-कोई यह मानते हैं कि उनका जन्म टङ्कारा ग्राम में हुआ था। टङ्कारा ग्राम अपेक्षाकृत बड़ा है और मोरवी और धाङ्गध्रा राज्य के सीमान्त पर अवस्थित है।

श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास का, जो बड़ौदा राज्य में विद्याधिकारी पद पर आरूढ़ थे, कथन है "कि बातों-बातों में स्वामीजी ने मुझसे कहा था कि मैंने बाँकानेर के सीमान्त स्थित किसी स्थान में जन्म लिया था"।

इन तीनों उक्तियों में बहुत बड़ा पार्थक्य दिखाई देता है, कहाँ मोरवी, कहाँ धाङ्गध्रा और कहाँ बाँकानेर? ऊपर की दृष्टि से पार्थक्य अवश्य है, परन्तु वास्तव में पार्थक्य नहीं है, क्योंकि एक अर्थ में बाँकानेर को धाङ्गध्रा कहा जा सकता है। काठियावाड़ के प्रत्येक इतिहासज्ञ को यह बात ज्ञात है कि धाङ्गध्रा राजकुल के एक सदस्य ने ही बाँकानेर का राज्य स्थापित किया था, अतः बाँकानेर को धाङ्गध्रा राज्य का एक अंश कहा जा सकता है और उसे धाङ्गध्रा कहने में मूलतः कोई दोष नहीं है। इसलिए जो बात उन्होंने पूना के व्याख्यान में कही थी और श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास से कही वे दोनों वास्तव में एक ही हैं। ऐसे ही जो कुछ उन्होंने स्वलिखित आत्मचरित में अथवा महाराजा साहब मोरवी से कहा उसमें और जो कुछ श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास से कहा उसमें कोई असामञ्जस्य नहीं है, क्योंकि बाँकानेर की सीमा जहाँ समाप्त होती है उसी स्थान से मोरवी राज्य आरम्भ होता है। इसलिए मोरवी राज्य की सीमा पर जो स्थान हो चाहे वह मोरवी राज्य के ही अन्तर्गत हो उसे बाँकानेर का सीमान्तवर्त्ती स्थान कहा जा सकता है और ऐसा कहने से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि भगवान् ने मोरवी राज्य में जन्म ग्रहण नहीं किया था।

जैसा हम पहले कह आये हैं भगवान् का यह भाव था कि मैं अपनी जन्म-भूमि के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ न कहूँगा, परन्तु इसके साथ ही मिथ्या भी नहीं कहूँगा। अपने जन्मस्थान के विषय में लोगों को संशयजाल में आच्छन्न रखने के भाव से ही उन्होंने एक ही बात का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया। इससे यह तो सिद्ध होता है कि वे अपने जन्मस्थान को गुप्त रखने में बहुत सावधानी से काम लेते थे, परन्तु यह सिद्ध नहीं होता कि उनकी एतद्विषयक उपर्युक्त उक्तियाँ एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। इसे वचनकौशल भले

§ यह पत्र मोरवी के दीवान ने स्वर्गीय बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को लिखा था। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही कहा जाए परन्तु उसमें मिथ्यात्व वा कपट का लेशमात्र भी नहीं है, न किसी असत् अभिप्राय से उसका अवलम्बन किया गया था।

कई लोगों का यह मत है कि भगवान् का जन्म मोरवी राज्यान्तर्गत रामपुर ग्राम में हुआ था, परन्तु यह विश्वास भ्रमयुक्त है। मोरवी राज्य में दो रामपुर हैं, एक छोटा दूसरा बड़ा। छोटे रामपुर में तो कोई औदीच्य ब्राह्मण बसता ही नहीं है और स्वामीजी औदीच्य ब्राह्मण थे, अतः छोटा रामपुर उनका जन्मस्थान हो ही नहीं सकता। बड़े रामपुर में औदीच्य ब्राह्मणों के घर अवश्य हैं, परन्तु वे सब-के-सब यजुर्वेदी हैं और स्वामीजी सामवेदी थे जैसाकि उन्होंने स्वरचित आत्मचरित में लिखा है, अतः बड़ा रामपुर भी उनकी जन्मभूमि होने के गौरव से गर्वान्वित नहीं हो सकता। दूसरे यह बात है कि छोटे वा बड़े रामपुर में से कोई भी बाँकानेर का सीमान्तवर्त्ती नहीं है।

श्रीमद्दाराज का जन्मस्थान टङ्कारा ही था—

अब यह देखना चाहिए कि भगवान् ने अपने लिखे हुए आत्मचरित में कोई ऐसा निदर्शन दिया है कि नहीं जिसके अनुसार खोज करने से हम किसी स्थानविशेष पर अंगुली रख सकें कि यह इस अलौकिक यश का भागी है, यह वह पुण्यभूमि है जहाँ से महाराज की मानवी लीला का आरम्भ हुआ। जिन्होंने उस आत्म-चरित की गहरी दृष्टि और सूक्ष्म भाव से आलोचना की होगी, उन्होंने देखा होगा कि इस विषय में उसमें दो निदर्शन वा संकेत विद्यमान हैं।

प्रथम निदर्शन तो यह है कि महाराज का जन्मस्थान कोई क्षुद्र ग्राम नहीं था, बल्कि नगर था। एक स्थल पर ये शब्द हैं कि "मैंने मोरवी राज्यान्तर्गत किसी नगर में जन्म ग्रहण किया था"। इससे आगे एक और स्थल पर उन्होंने अपनी जन्मभूमि का नगर के नाम से उल्लेख किया है। शिवरात्रि का व्रत धारण करके जब वे व्रत के उद्यापन के लिए एक शिवालय में गये तो वहाँ का वर्णन करते हुए लिखते हैं "हमारे नगर के बाहर शिव का एक विशाल मन्दिर था" इत्यादि। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि भगवान् का जन्मस्थान एक नगर था।

दूसरा निदर्शन यह है कि जब महाराज ने विद्योपार्जनार्थ काशी जाने का प्रस्ताव किया था तो उनकी माता ने उसका अत्यन्त विरोध किया था और उनके काशी जाने के संकल्प को रोका, तब उन्होंने हताशचित्त होकर अपने पिता से यह कहा था कि "हमारी जमादारी के ग्रामविशेष में जो अमुक अध्यापक रहते हैं उसके पास अध्ययनार्थ जाने की अनुमति दे दीजिए"। यहाँ जमादारी नहीं बल्कि जमेदारी शब्द होना चाहिए। मराठी भाषा में जमेदार राजकर उगाहनेवाले को कहते हैं। आत्मचरित में उन्होंने यह भी लिखा है कि "हमारे पिता जमादार (अर्थात् जमेदार वा राजकर-संग्रहकर्त्ता) थे"। सम्भवतः उनके पिता उसी नगर के जमेदार थे, उसी के अधीन कुछ ग्राम भी थे और उन ग्रामों से करसंग्रह करने का कार्य भी भगवान् के पितृदेव को ही सौंपा हुआ था।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्टतया सिद्ध हो जाती है कि भगवान् के पितृदेव का निवासस्थान एक नगर था और वह परगने वा ताल्लुक का सदर मुक़ाम था। जैसे एक परगने वा तहसील वा ताल्लुक के अधीन बहुत-से ग्राम होते हैं वैसे ही जमेदारी के अधीन भी कई ग्राम होते हैं।

उपर्युक्त निदर्शनों से यह भले प्रकार प्रमाणित हो गया कि श्रीमहाराज के जन्मस्थान होने का सौभाग्य एक नगर को प्राप्त था और वह नगर जमेदारी का सदर मुक़ाम था और उनके पिता उसके जमेदार थे। इनसे यह पता भी लग गया कि उस नगर के समीप एक शिवमन्दिर भी था और यह भी ज्ञात हो गया कि वह मोरवी राज्य के सीमान्त पर स्थित था। अब हमें यह देखना है कि मोरवी राज्य में कोई ऐसा स्थान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है भी या नहीं जिसमें ये सब गुण मिलते हों। यदि हम ऐसे स्थान को ढूँढ निकालने में कृतकार्य हो गये तो फिर बिना संकोच के कह सकेंगे कि वही श्रीमहाराज का जन्मस्थान है। मोरवी राज्य के अन्तर्गत केवल एक ही स्थान ऐसा है जो इन सब गुणों से विशिष्ट है। टङ्कारा एक नगर वा क़स्बा है, वह जमेदारी का सदर मुक़ाम भी था, उसके पास एक शिवमन्दिर भी है जो बस्ती से बाहर है और वह मोरवी राज्य की सीमा पर भी स्थित है, अतः हम बिना किसी भय के कह सकते हैं कि श्री महाराज की जन्मभूमि टंकारा ही है।

भगवान् दयानन्द ने अपना आत्मचरित आर्यभाषा में लिखा था। वही अंग्रेजी में अनुवादित होकर थियोसोफ़िस्ट (Theosophist) पत्र में छपा था। आर्यभाषा में जो आत्मचरित मिलता है वह उसी अंगरेज़ी अनुवाद का अनुवाद है। उसमें टाउन (Town) शब्द का अनुवाद नगर किया गया है, परन्तु हम नहीं कह सकते कि आर्यभाषा के असली आत्मचरित में क्या शब्द था, जिसका अंगरेज़ी में टाउन शब्द से अनुवाद किया गया है ? यह पता नहीं लग सका कि आर्यभाषा के असली आत्मचरित का क्या हुआ और कहाँ गया? सुनते हैं वह परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है, परन्तु कई बार यत्न करने पर भी उक्त सभा के किसी कर्मचारी वा अधिकारी ने कुछ भी पता नहीं दिया। कुछ कर्मचारियों ने तो यह कह दिया कि हमने उसे कभी आँख से देखा ही नहीं। सभा के सहकारी मन्त्री ने एक बार अवश्य कहा था कि असली आत्मचरित की पाण्डुलिपि सम्भवतः है तो सही और उसके ढूँढने का वचन भी दिया था, परन्तु यह ज्ञात नहीं कि उन्होंने उसके विषय में कोई अनुसन्धान किया कि नहीं और वह मिली कि नहीं। स्वामीजी के जीवनचरित के सम्बन्ध में जो वस्तु सबसे अधिक मूल्यवान् और सबसे अधिक प्रामाणिक थी उसके सुरक्षित रखने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इससे अधिक दुःख की और क्या बात हो सकती है।

अस्तु फ़र्रुखाबाद से बहुत वर्ष पूर्व आर्यभाषा में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम था "स्वामी दयानन्द की कुछ दिनचर्या"। उसमें आत्मचरित का भी कुछ अंश प्रकाशित हुआ था। जिसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि असली आत्मचरित से लिया गया है अथवा अंगरेजी अनुवाद का अनुवाद है। उसमें टाउन (Town) शब्द की जगह अरबी का 'क़स्बा' शब्द है। क़स्बे के अर्थ हैं बड़ा ग्राम जहाँ हाट, बाजार, थाना, डाकघर आदि हों। अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कोष वैब्सटर्स डिक्शनरी (Webster's Dictionary) में टाउन (Town) शब्द का अर्थ यह है "A place larger than a village" अर्थात् जो स्थान ग्राम की अपेक्षा बड़ा हो, उसे टाउन करते हैं, अतः क़स्बा और टाउन समानार्थवाची हैं। यद्यपि कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ जैसे बड़े नगरों को भी Town कह सकते हैं, परन्तु बहुत करके उन्हें सिटी (City) शहर करते हैं, अतः महाराज के जन्मस्थान को क़स्बा कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मोरवी में कोई स्थान ऐसा नहीं है जिसे वास्तविक अर्थों में 'सिटी' कहा जा सके। इससे सिद्ध होता है कि स्वामीजी का जन्मस्थान मूल आत्मचरित में किसी ऐसे शब्द से अभिहित किया गया था जिसके अर्थ क़स्बा के थे। इन सब विचारों को सामने रखकर हम यह निष्कर्ष निकालने में भूल नहीं करते कि उनका जन्मस्थान प्रथम, क़स्बा था, दूसरे, उसके अधीन कुछ ग्राम थे और तीसरे, वह बाँकानेर वा मोरवी राज्य का सीमान्तवर्त्ती था।

अब यह देखना चाहिए कि मोरवी राज्य के अन्तर्गत कौन-कौन से ऐसे स्थान हैं जिन्हें क़स्बा (Town) कहा जा सकता है। मोरवी राज्य में तीन वा चार ही ऐसे स्थान हैं जो क़स्बा वा नगर शब्दवाच्य हो सकते हैं, मोरवी, मवानिया, टङ्कारा और तेजपुर, परन्तु इनमें से सिवाय टङ्कारा के कोई भी बाँकानेर राज्य के सीमान्त पर स्थित नहीं है। टङ्कारा ही केवल ऐसा स्थान है जिसमें उपर्युक्त तीनों लक्षण पूर्णतया घटते हैं। टङ्कारा क़स्बा है, इसका सबसे पुष्ट प्रमाण तो प्रत्यक्ष प्रमाण ही है। कोई मनुष्य भी उसे देखकर क्षुद्र ग्राम नहीं कह सकता, वह बहुत बड़ा स्थान है और क़स्बा शब्द से अभिहित होने के सर्वथा योग्य है। दूसरे,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका लिखित प्रमाण भी उपस्थित है। टङ्कारा को सन् १८३४ में मोरवी के ठाकुर साहब जियाजी बाघजी ने सुन्दरजी शिवजी के पास ६ लाख कोरी वा ३॥ लाख रुपये में बन्धक (रहन) रक्खा था और एक बन्धक-पत्र (रहननामा) लिखा दिया था। उस रहननामे में टङ्कारा का क़स्बा शब्द से वर्णन किया गया है। दूसरे, टङ्कारा के अधीन कुछ ग्राम थे, यह बात भी उसी रहननामे में लिखी हुई है। उसमें टङ्कारा को ताल्लुक कहा गया है और यह लिखा है कि टङ्कारा ताल्लुक छह ग्रामसहित सुन्दरजी शिवजी के पास रहन किया जाता है। काठियावाड़ एजेन्सी (Agency) आफ़िस की रिपोर्टों में भी टङ्कारा ताल्लुक का उल्लेख किया जाता है। टङ्कारा में तीसरा लक्षण भी मिलता है। बाँकानेर और मोरवी राज्य की सीमा जड़ेश्वर महादेव के मन्दिर पर्यन्त है और टङ्कारा जड़ेश्वर के मन्दिर से पश्चिम की ओर अढ़ाई तीन कोस की दूरी पर स्थित है, अतः उसे बाँकानेर का सीमान्तवर्त्ती स्थान कहने में कोई दोष नहीं है। टङ्कारा का पूर्वी द्वार बाँकानेर-द्वार कहलाता है।

टङ्कारा के क़स्बा होने के अन्य भी कई प्रमाण मिलते हैं। मोरवी अञ्चल के बहुत-से वृद्ध पुरुष जानते हैं कि एक समय में टङ्कारा समृद्ध, सम्पन्न, जनपूर्ण और वाणिज्यस्थल था। सन् १८७१ में मोरवी राज्य की प्रथम जनसंख्या हुई थी। उस समय टङ्कारा में ४६०३ स्त्री-पुरुष निवास करते थे। सन् १८८१ में टङ्कारा की जनसंख्या ५७२४ थी§। ऐसा सुनने में आया है कि किसी समय में टङ्कारावासियों की संख्या ८००० थी। उसकी समृद्धि भी बहुत बड़ी थी और उसमें अच्छे धनाढ्य, सम्पन्न और साहूकार लोग रहते थे। भगवान् दयानन्द के पिता की गणना भी साहूकारों में थी और वे उच्चकोटि के सम्पन्न और सम्भ्रान्त लोगों में थे। उनके अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण गृहस्थ भी धनवान् और सम्पत्तिशाली थे। वे इस समय के ब्राह्मणों के समान निःस्व और निरक्षर नहीं थे और न आजकल के टङ्कारावासी ब्राह्मणों के समान भिक्षोपजीवी ही थे। वे पुण्यार्थ दी हुई जागीरों को भोगकर सुख से दिनपात करते थे और दान-दक्षिणा द्वारा भी उनके पास धन का अच्छा आगम होता था। उनका अधिक समय पूजा-पाठ, होम-याग, सन्ध्या-गायत्री आदि में अतिवाहित होता था। उनमें से अनेक तेजस्विता, शूरता, वीरता आदि गुणों से भी अलंकृत थे। वे अस्त्र धारण करके "मुल्कगीरी" फ़ौज‡ के आक्रमणों से अपने धन-धान्य और घर-बार की रक्षा करते थे। कई बार उन्होंने इस फ़ौज को युद्ध में परास्त किया था और उसके पाशविक अत्याचारों से टङ्कारावासियों को मुक्त किया था। उस समय टङ्कारा में वाणिज्य की व्यवस्था भी अच्छी थी। उसके बाज़ार व्यापारियों के आने-जाने से सदा ही जनपूर्ण रहते थे और दुकानें माल से अटी रहती थीं। कोई वस्तु वहाँ दुष्प्राप्य नहीं थी। जो वस्तु मोरवी में नहीं मिलती थी वह टङ्कारा में सुलभतया प्राप्त हो जाती थी।

उपर्युक्त बातों पर दृष्टि रखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भगवान् दयानन्द का पृथिवी

---

§ काठियावाड़ गज़ेटियर पृ० ६६३।

‡ मुल्कगीरी फ़ौज—जब कभी काठियावाड़ के राजाओं से कर प्राप्त करना कठिन हो जाता था तो मुग़ल शासक सेना भेजकर बलात् कर वसूल करते थे। मुग़लो का शासन अस्त होने पर जब काठियावाड़ में मरहठों के प्रभाव का सूर्य उदय हुआ तो मरहठा शासकगण ने उसी प्रथा का अनुकरण किया। जो सेना कर उगाहने जाती थी वह जबतक सब कर वसूल न हो जाता था लूटमार करती रहती थी, उस सेना का नाम 'मुल्कगीरी फ़ौज' था। इस सेना के अत्याचार बड़े भयङ्कर होते थे। यदि उसके मार्ग में कोई रुकावट डालता वा प्रतिरोध करता था तो उसके उत्पीड़नों की कोई सीमा न रहती थी। वह शस्य परिपूरित क्षेत्रों को नष्ट कर देती थी। लोगों के चौखट, किवाड़ तक उखाड़ कर ईंधन की जगह जलाती और अपनी रोटी पकाती थी। उसके अमानुषिक अत्याचारों से राजा और प्रजा दोनों ही क्षुण्ण और भीतचित्त रहते थे। इन अवर्णनीय अत्याचारों से काठियावाड़ की रक्षा करने के उद्देश्य से कर्नल वाकर ने सन् १८०७-८ में एक सुव्यवस्था की, जो जमाबन्दी बन्दोबस्त के नाम से प्रसिद्ध है। उसके पश्चात् मुल्कगीरी फ़ौज के आक्रमण बन्द हो गये और काठियावाड़ में सुशृंखला स्थापित हो गई।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर अवतरण टङ्कारा ही में हुआ था। जो लोग उनका जन्मस्थान मोरवी वा किसी अन्य ग्राम को बनाते हैं, वे भूल करते हैं।

'टङ्कारा ही महाराज की जन्मभूमि थी' इस बात के और भी कई प्रमाण मिलते हैं। राजकोट एजेन्सी आफिस के हैडक्लर्क श्री रावबहादुर विट्ठलराव ने अपने एक पत्र में लिखा था—

I and my grandfather had the pleasure of seeing Swami Dayanand at the Didwana Civil Station in Janauary, 1875, in the Lakhtar Utara. The Swamiji then said in the course or conversation that he was originally a subject of the Morvi State. He said then something about Tankara but I do not remember properly now whether he then said that he was a native of Tankara or Morvi..... He had conversation with the Swamiji for about half an hour at night time..... Swamiji was then on his way from Rajkot to Ahmedabad.

इसका अर्थ यह है—'सन् १८७५ के जनवरी मास में डिडवाना के सिविल स्टेशन पर लखतार के उतारे में मुझे और मेरे पितामह को स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शनों का आनन्द प्राप्त हुआ था। तब स्वामीजी ने बातचीत में कहा था कि वे आरम्भ में मोरवी राज्य की प्रजा थे। इसके पश्चात् उन्होंने टङ्कारा के सम्बन्ध में कुछ कहा था, परन्तु मुझे अब ठीक-ठीक स्मरण नहीं है कि उन्होंने यह कहा था कि वे टङ्कारा के रहनेवाले थे अथवा मोरवी के। स्वामीजी से हमारा वार्त्तालाप रात्रि के समय लगभग आधे घण्टे तक हुआ था। उस समय स्वामीजी राजकोट से अहमदाबाद जा रहे थे।

इस पत्र से यद्यपि यह सिद्ध नहीं होता कि महाराज का जन्मस्थान टङ्कारा था तथापि यह अवश्य मालूम होता है कि उनका टङ्कारा से कुछ सम्बन्ध अवश्य था, नहीं तो वह टङ्कारा का नाम क्यों लेते ?

स्वामीजी महाराज की जाति के एक पुरुष बल्लभजी नामक ने राजकोट-वासी श्रीमान् प्राणलाल सुकुल से कहा था कि "उनके नाम मूलशंकर और दयाराम दोनों ही थे। इसका कारण यह है कि काठियावाड़ में यह प्रथा है कि पुत्रों और कन्याओं के असली नाम के अतिरिक्त एक प्यार का नाम भी रक्खा करते हैं। भगवान् के पिता का नाम कर्शन (कृष्ण) जी लालजी त्रिवाड़ी था और वे सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। कहते हैं कि उनका गोत्र गौतम था।§ उनका कोई वंशधर न रहा, अतएव उनकी भूमि, घर-बार आदि सारी सम्पत्ति उनकी बहिन के वंशधर को मिली थी। अब उनके घर एक व्यक्ति पोपट नामी ब्राह्मण वास करता है। पोपट के पिता कल्याणाजी, कल्याणाजी के पिता बोगा और बोगा के पिता मङ्गलजी थे। यह मङ्गलजी उनके उत्तराधिकारी हुए थे।"

इसके अतिरिक्त हमें इस विषय में एक और भी प्रमाण उपलब्ध हुआ है। श्रीयुत गणपति केशवराम शास्त्री ने १ सितम्बर सन् १९११ को आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई के मन्त्री महोदय को ऋषि दयानन्द के जन्मस्थान तथा उनके पितृवंश के सम्बन्ध में एक विवरणपत्र लिखा था। वह गुजराती में था। हम उसकी कुछ पंक्तियों का भाषानुवाद नीचे उद्धृत करते हैं:—

"स्वामी दयानन्द औदीच्य ब्राह्मण थे और उनका असली निवासस्थान टङ्कारा था। उनके पिता वहाँ के कामदार अथवा वैभटदार (स्थानीय शासनकर्त्ता) थे। उस समय टङ्कारा मोरेबा‡ पन्थ उपनाम भाऊ साहब के ठेके में था।"

इस बात के कि भगवान् दयानन्द का जन्मस्थान टङ्कारा ही था, हमें और भी दो एक प्रमाण हस्तगत

§ कर्शनजी लालजी का गोत्र गौतम नहीं बल्कि 'दालभ्य' था।

‡ मोरेबा पन्थ नहीं बल्कि मेड़ेल महाराज।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए हैं। बडोयान=बत्तोयान-वासी एक वृद्ध ब्राह्मण भाईशङ्कर ने कहा था—"दयानन्द टंकारा के निवासी थे।" यह बात उक्त ब्राह्मण ने कई बार स्वामी अद्वैताश्रम से सुनी थी, जिनका नामोल्लेख हम पहले कर आये हैं।

खानपुर ग्राम के रहनेवाले, जो टंकारा से ३॥ कोस है, जोशी गौरीशंकरदेव कर्शन ने कहा था कि "हमने अपने टंकारावासी मामा से सुना था कि स्वामी दयानन्द टंकारा के रहनेवाले थे। वे धर्मशास्त्र पढ़ने के लिए काशी चले गये थे और कुछ काल पीछे उन्होंने एक नया पन्थ वा धर्म चलाया था। वह औदीच्य ब्राह्मण थे।"

प्रभुराम आचार्य, जो उस समय रईपाला ग्राम में रहते थे, आरम्भ में टंकारा के रहनेवाले हैं। उन्होंने कहा था कि केशरबाई§ और प्रेमबाई से हमने सुना था कि "दयाराम टंकारा से निकलकर बड़े रामपुर के हनुमान् के मन्दिर में एक रात रहे थे। उनका शरीर उन्नत और तेजःपूर्ण था। केशरबाई ने राजकोट में स्वामीजी के दर्शन किये थे। जब वह टंकारा लौट आई तो उसने बातों-बातों में यह कहा था कि सम्भवतः यही संन्यासी त्रिवाड़ी के घर से निकलकर गये थे और सम्भवतः काशी में पढ़ने के लिए इन्होंने गृह-त्याग किया था, उस समय ऐसा ही जनरव था।"

घ्रोल-निवासी पण्डित छेलाराम योगेश्वर व्यास ने कहा था कि "हमने अपने पिता को अनेक बार कहते हुए सुना था कि दयानन्द टङ्कारा के रहनेवाले और कर्शनजी त्रिवाड़ी के पुत्र थे॥"

टङ्कारा के कोई-कोई वृद्ध पुरुष यह भी कहते हैं कि जब भगवान् राजकोट में ठहरे हुए थे तो एक दिन वे टङ्कारा गुप्त रूप से अपने घर के दर्शन करने गये थे। यह बात कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है, परन्तु संन्यासी परमहंसों में यह प्रथा प्रचलित है कि घर से निकलने और संन्यास ग्रहण करने के कुछ नियत वर्षों के पश्चात् उन्हें एक बार अपनी जन्मभूमि का दर्शन करना आवश्यक है और यह प्रथा संन्यासियों का एक अवश्यम्पालनीय धर्म समझा जाता है। इसलिए यदि दयानन्द ने भी इसका पालन किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

पण्डित लेखराम ने भी भगवान् का जन्मस्थान टङ्कारा ही निश्चित किया था।

बम्बई के प्राणजीवनदास कहते हैं कि स्वामीजी ने उनसे कहा था कि उनका जन्म मोरवी नगर के निकट एक ग्राम में हुआ था।

अतः इसमें कोई भी सन्देह नहीं रहता कि भगवान् का जन्मस्थान होने की पुण्यकीर्त्ति टङ्कारा के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान को प्राप्त नहीं हो सकती। यह सौभाग्य-श्री केवल उसी की है और इसमें कोई दूसरा नगर वा ग्राम भाग लेने का अधिकार नहीं रखता।

भगवान् दयानन्द के पिता कौन थे ?

हम ऊपर लिख आये हैं कि भगवान् दयानन्द के पिता का नाम कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी था। आर्यसामाजिक जगत् में यह प्रसिद्ध है कि उनका नाम अम्बाशङ्कर था। स्वर्गीय पण्डित लेखराम ने जो सामग्री ऋषि-जीवन लिखने के लिए एकत्र की थी, वह कितने ही दिन तक अस्तव्यस्त अवस्था में पड़ी रही। घातक की छुरी से सन् १८९६ की छठी मार्च को पण्डितजी का देहावसान हो गया और वह उस सामग्री का उपयोग न कर सके। उनकी मृत्यु के पश्चात् उक्त सामग्री के कुछ भाग को पुस्तकाकार में छपवा दिया गया और वही आज पण्डित लेखरामरचित दयानन्द-जीवनी के नाम से प्रसिद्ध है। यह कहना कठिन है कि उसका कितना अंश ग्राह्य और कितना अग्राह्य ठहरता यदि पण्डितजी स्वयं उसके आधार पर ऋषिजीवन-कथा वर्णन

§ कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी की जाति की कोई वृद्धा स्त्री।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते। अब तो उसका जो भाग प्रकाशित हो गया है उस सबका उत्तरदायित्व पण्डितजी पर ही समझा जाता है। वास्तव में ऐसा समझना न्यायसमन्वित नहीं है। वह तो केवल सामग्री एकत्र कर गये हैं। उसमें से केवल उसी को माननीय ठहराना चाहिए जो विश्लेषण, विवेक और तर्क से सत्य सिद्ध हो और अन्य को त्याग देना विवेकी लेखक का कार्य है। सारी सामग्री को बिना इतस्ततः के स्वीकार कर लेना कदापि उचित नहीं है, अतः यदि उसमें कोई बात ऐसी मिले जो प्रामाणिक न हो वा जो भ्रान्त प्रतीत होती हो उसके विषय में यह मति स्थिर कर लेना कि वह प्रशंसित पण्डितजी को मान्य थी, युक्ति और न्यायसङ्गत नहीं हो सकता और ऐसा करने से हम कभी-कभी उनके साथ घोर अन्याय करने के अपराधी हो सकते हैं। उक्त सामग्री-संग्रह में एक स्थान पर लिखा है कि प्रशंसित पण्डितजी से अमृतसर में एक संन्यासी ने कहा था कि ऋषि के पिता का नाम अम्बाशङ्कर था और वह संन्यासी अपने को उनका सहोदर बतलाता था। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि उसका ऋषि-सहोदर होना सर्वथा ही असत्य है और इसलिए उसकी दूसरी बात को भी जब तक उसका पुष्ट प्रमाण न मिले, सहसा स्वीकार कर लेना ठीक नहीं है। सम्भव है कि पण्डितजी के पास उक्त संन्यासी की उक्ति की पुष्टि में अन्य प्रमाण भी रहे हों जिनके कारण उनकी यह धारणा हो गई हो कि संन्यासी ने इस विषय में जो सूचना उन्हें दी थी वह सत्य थी, परन्तु हमारे सम्मुख कोई ऐसा प्रमाण नहीं है और इसलिए केवल इस आधार पर कि पण्डित लेखरामजी की सङ्कलित सामग्री में एक स्थल पर ऋषि के पिता का नाम अम्बाशङ्कर लिखा है, इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थिर नहीं करना चाहिए और स्वतन्त्ररूप से खोज करके उनके पिता का वास्तविक नाम जानने का यत्न करना चाहिए।§

कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी में वे सब लक्षण घटते हैं जो स्वामीजी ने अपने पिता के वर्णन किये हैं, अर्थात् वे उच्च कोटि के राज्य-कर्मचारी, जमेदार वा वैभटदार थे, जिनका काम अपने अधीन ग्रामों से राज्यकर संग्रह करना तथा अन्य शासनसम्बन्धी कार्य करना था, जिनके वशवर्त्ती राज्य के कुछ सिपाही भी थे, जो एक अच्छी सम्पत्ति के स्वामी थे, जो साहूकार थे और लोगों को ऋण पर रुपया देते थे, जिनका एक पुत्र घर छोड़कर निकल गया था, जो सामवेदी औदीच्य कुलोद्भव ब्राह्मण थे और जो घोर शैव थे। इनमें से एक बात का अकाट्य प्रमाण भी मिलता है। इन प्रमाणों की उपस्थिति में सिवाय उक्त निश्चय के और किसी निश्चय पर पहुँचना अति दुष्कर है और यह स्वीकार करना पड़ता है कि स्वामीजी के भौतिक शरीर के जनक कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी ही थे, अतः इसमें सन्देह नहीं रहता कि यह कहना कि ऋषि दयानन्द के पिता का नाम अम्बाशंकर था भ्रमपूर्ण है, मिथ्या है। पण्डित लेखराम की संकलित सामग्री के आधार पर आजकल सभी यह मान रहे हैं कि स्वामी दयानन्द अम्बाशंकर के पुत्र थे। जनसाधारण में यह विश्वास क्षन्तव्य हो सकता है परन्तु जीवन वृत्त-लेखकों में नहीं, क्योंकि उनका कर्त्तव्य है कि वे ऐसे अज्ञात और सन्दिग्ध विषयों पर पूरी गवेषणा के पश्चात् अपना मत स्थिर करें। हमें दुःख है कि ऋषि के चरित-लेखकों

---

§ स्वर्गीय देवेन्द्रबाबू ने इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान किया है वह बहुत ही प्रशंसनीय है। इसके लिए वे महीनों और वर्षों जगह-जगह फिरे हैं, अनेक लोगों से मिले हैं, बड़ौदा, मोरवी आदि राज्य के पुराने पत्रों की छानबीन का यत्न किया है, एक-से अधिक बार काठियावाड़ की यात्रा की है, जिस सूत्र से भी सम्भव हुआ है, पता लगाने और सत्य को खोज निकालने का प्रयास और परिश्रम किया है और आत्मचरित में दिये हुए निदर्शनों की कसौटी पर प्रत्येक सूचना को, जो उन्हें मिली, कसकर देखा है और अन्त में उसे ही स्वीकार किया है जो उसपर ठीक उतरी है। उनका निश्चय है कि भगवान् दयानन्द कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी के पुत्र थे। उन्हें टङ्कारा में किसी अम्बाशङ्कर नामक व्यक्ति का पता नहीं लगा जो ऋषि के जन्मकाल में वा उसके आस-पास टङ्कारा में वैसा समृद्ध, सम्पन्न, उच्च राज्यकर्मचारी हो जैसा आत्मचरित में दिये हुए निदर्शनों के अनुकूल ऋषि का पिता होना चाहिए था। किसी सूत्र से भी उन्हें यह पता नहीं लगा कि भगवान् दयानन्द अम्बाशंकर के पुत्र थे।

संपादक

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने इस विषय में कोई अनुसन्धान और अन्वेषण नहीं किया और सबने ही इस भ्रान्त कथा को बिना विचारे ग्रहण करके उसके प्रचार में योग दिया है। इस प्रकार यह भारी भूल विस्तार पाती चली गई और इसका यह परिणाम हुआ कि क्या आर्य-सामाजिक साहित्य में और क्या अन्य साहित्य में स्वामी दयानन्द अपने असली पिता के पुत्र वर्णित न होकर एक दूसरे ही मनुष्य के पुत्र कहलाते जा रहे हैं। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक के पिता के सम्बन्ध में यह महाभ्रम प्रचलित हो रहा है और आर्यसमाज नीरव है ! जो आर्यसमाज अन्य असत्यों का प्रतिवाद करने में व्यस्त और बद्धपरिकर है, वही आर्यसमाज इस घोर असत्य के प्रतिवाद में निश्चेष्ट है।

स्वामीजी के पिता के सम्बन्ध में, जैसाकि हम ऊपर लिख आये हैं, आत्मचरित में हमें चार निदर्शन मिलते हैं—प्रथम वे साहूकार थे, दूसरे वे ज़मींदार थे, तीसरे वे ज़मेदार थे और चौथे वे घोर शिवभक्त थे।

अब हमें यह देखना होगा कि टङ्कारा में सामवेदी औदीच्य ब्राह्मणों में उपर्युक्त चार लक्षणयुक्त कोई पुरुष था वा नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी देखना होगा कि यदि उक्त लक्षणविशिष्ट कोई पुरुष था तो उसका कोई पुत्र गृहत्यागी हुआ था कि नहीं।

इस विषय में जितना अन्वेषण किया गया है उससे यही सिद्ध हुआ है कि टङ्कारा में सामवेदी औदीच्य ब्राह्मणों में केवल एक पुरुष कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी ही ऐसे थे जिनमें ये सब लक्षण पाये जाते हैं।

अब हम एक-एक लक्षण को लेकर सिद्ध करेंगे कि कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी इन सब लक्षणों से युक्त थे।

कर्शनजी लालजी साहूकार

कर्शनजी लालजी गोण्डाल के समीपस्थ एक छोटे-से ग्राम से एक ब्राह्मण-कुमार मङ्गलजी लीलाधर रावल को टङ्कारा ले-आये थे और उसके साथ उन्होंने अपनी कन्या प्रेमबाई का विवाह कर दिया था। जब उनका एक पुत्र गृहत्यागी हो गया और अन्य पुत्र मर गये तो उन्होंने अपने वंशविलोप की सम्भावना देखकर अपने जामाता मङ्गलजी को ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर अपना घर-बार, व्यापार और धन-सम्पत्ति सब उसे ही दे दी थी। मङ्गलजी के एक पुत्र हुआ जिसका नाम बोगा रावल हुआ। बोगा का पुत्र कल्याणजी और कल्याणजी का पुत्र पोपट प्रभाशङ्कर रावल हुआ। यही पोपट रावल अब कर्शनजी लालजी के घर में रहते और उनके दौहित्र के वंश की रक्षा करते हैं।

इन पोपट रावल के पास एक पुरानी खाता-बही देखी गई थी जो कर्शनजी लालजी के लेन-देन की बही थी। उसके देखने से ज्ञात हुआ कि उनका लेन-देन बहुत विस्तृत था। उसके एक स्थल में लिखा है कि पौष सुदि ८ संवत् १८५८ को उन्होंने बगला मेघपुर के ग्रासिया§ मनुजी तथा मथुजी गज़नजी की भूमि १८००० कोरी में गिरो रक्खी थी। दूसरे स्थल में लिखा है कि उन्होंने उसी बगला मेघपुर के उदयसिंहजी वोजाजी की भूमि संवत् १८७३ में १॥—) सैंकड़ा ब्याज पर १५०० कोरी में बन्धक रक्खी थी। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि कर्शनजी लालजी एक धनाढ्य पुरुष थे जो लोगों को सहस्रों रुपया ऋण

§ ग्रासिया शब्द ग्रास से निकला है। ग्रास के अर्थ हैं अन्न—ग्रासा अर्थात् जिसे ग्राम-भूमि दी जाए उसे ग्रासिया कहते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दे सकते थे और एक अच्छे साहूकार थे।

कर्शनजी लालजी ज़मींदार

पूना में अपना जीवनवृत्त वर्णन करते हुए भगवान् ने कहा था "हमारी विस्तृत भूसम्पत्ति थी"। इससे सिद्ध होता है कि उनके पिता ज़मींदार थे। काठियावाड़ में ज़मींदार शब्द प्रचलित नहीं है। जिसे अन्य प्रान्तों में ज़मींदार कहते हैं इसे काठियावाड़ में 'ग्रासिया' कहते हैं, अतः कर्शनजी लालजी ग्रासिया थे।

जामनगर राज्य के जोड़िया ताल्लुक में एक ग्राम है जिसका नाम कौशिया है। वहाँ यह बात अब भी प्रसिद्ध है कि कर्शनजी लालजी कौशिया के ग्रासिया थे। कौशिया के कुछ भाग का अब तक भी कर्शनजी लालजी के भागिनेय के वंशधर भोग करते हैं। कर्शनजी की दो बहिनों का विवाह जामनगर राज्य के अन्तर्गत हरियाना ग्राम में हुआ था। कर्शनजी लालजी ने पौष बदि ११ संवत् १८८३ को अपने एक भानजे को ३६ बीघा और दूसरे भानजे को २४ बीघा कौशिया की भूमि का दानपत्र लिख दिया था। यह ६० बीघा भूमि अब तक उनके भानजों के उत्तराधिकारियों के पास चली आती है। कर्शनजी ने कौशिया की कुछ भूमि अपनी विधवा पुत्र-वधू मोगीबाई के भरण-पोषण के लिए भी दान की थी। मोगीबाई का विवाह उनके छोटे पुत्र बल्लभजी से हुआ था। विवाह के एक मास पीछे ही बल्लभजी का देहान्त हो गया। उस समय उनका वयःक्रम १४,१५ वर्ष का था। कर्शनजी ने यह सोचकर कि मेरी मृत्यु के पीछे मेरी विधवा पुत्रवधू को उदरपूर्त्ति की चिन्ता न रहे और धनाभाव के कारण वह कष्ट न पावे, मोगीबाई को न केवल कौशिया की भूमि ही दी थी बल्कि कुमारिया मेघपुर, जीवागढ़ और धूरकोट प्रभृति स्थानों में जो उनके शिष्य और यजमान बसते थे उनकी वृत्ति भी उन्होंने मोगीबाई के नाम करदी थी। मोगीबाई के भतीजे के पुत्र जोड़िया ग्रामनिवासी बालाशङ्कर भीमजी देव कहते थे कि "हमने मोगीबाई को अनेक बार कहते सुना था कि उसके श्वशुर धनाढ्य पुरुष थे।"

कौशिया की कुछ भूमि कर्शनजी लालजी ने अपने जामाता मङ्गलजी को भी दी थी जो अबतक उनके वंशधर उपर्युक्त पोपट रावल के अधिकार में है। कुछ वर्ष हुए जामनगर के एक दुष्ट पुरुष ने भूमिकर के अधिकारी से शिकायत करके पोपट रावल की भूमि के छिनवाने का यत्न किया था। उक्त अधिकारी ने उनसे यह प्रमाण माँगा था कि उनके पास वह भूमि किस प्रकार आई और उसपर उन्हें स्वत्व रखने का क्या अधिकार है। इसपर उन्होंने ५ फ़र्वरी सन् १९०५ में भूमिकर के अधिकारी की सेवा में अपने स्वत्व की रक्षा में जो आवेदन पत्र दिया हम उसके कुछ अंश का गुर्जर भाषा से अनुवाद करके पाठकों की भेंट करते हैं।

"मुझसे मेरे पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध में पूछताछ की गई है। मैं प्रकट करता हूँ कि मेरा कर्शनजी त्रिवाड़ी से सम्बन्ध है, जिसने यह भूमि दान की थी। कर्शनजी के पिता लालजी थे और लालजी हरिभाई त्रिवाड़ी के वंश में थे। कर्शनजी की कन्या मेरे पूर्वज मङ्गलजी लीलाधर से विवाही थी। मङ्गलजी के पुत्र बोगा रावल थे और बोगा रावल के पुत्र कल्याणजी थे। मैं पोपट रावल उन्हीं कल्याणजी रावल का पुत्र हूँ।"

कर्शनजी लालजी जमेदार

ऋषि ने अपने आत्मचरित में लिखा है कि उनके पिता जमादार अर्थात् नगर के फ़ौजदार और राजस्व-संग्रहकर्त्ता थे। हम पहले बता आये हैं कि यह शब्द 'जमादार' नहीं वरन् 'जमेदार' होना चाहिए और यह कि जमेदार शब्द मराठी भाषा का है, गुजराती भाषा का नहीं है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि मोरवी राज्य के टंकारा ताल्लुक में मराठी शब्दों का प्रचार कैसे हुआ ?

हमने जो ऊपर श्रीयुत गणपति केशवराम शास्त्री के पत्र का उद्धरण दिया है, उससे पाठकों ने जान लिया है कि कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी टङ्कारा के कामदार वा वैभटदार अर्थात् स्थानीय शासनकर्त्ता थे और उस समय टङ्कारा मोरोबा पन्थ उपनाम भाऊसाहब के अधीन था, शास्त्री महोदय के इस कथन में कि टङ्कारा मोरोबा पन्थ उपनाम भाऊसाहब के अधीन था आंशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं है। मोरोबा पन्थ भाऊ टङ्कारा का अधिकारी तो था, परन्तु वह टङ्कारा के तत्कालीन स्वामी गोपाल मेड़ेल नारायण भाऊ का कर्मचारीमात्र था। गोपाल मेड़ेल नारायण बड़ौदा के करोड़पति सेठ थे। मोरवी के ठाकुर बाघजी ने जैसा हम पहले लिख चुके हैं टङ्कारा ताल्लुक को सेठ सुन्दरजी शिवजी के पास गिरो रख दिया था और फिर गोपाल मेड़ेल नारायण ने सेठ सुन्दरजी शिवजी को रुपया चुकाकर टङ्कारा पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। नीचे हम बम्बई सरकार के कागज़ात में से कुछ उद्धरण देते हैं, जिससे टङ्कारा के इतिहास-सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातें ज्ञात होती हैं।

"For the first year after Col. walker's settlement (which happened in 1807-1808 A. D.) the management remained in the hands of the Chief. It was then transferred in mortgage for a debt to seth Sunderji Sewji, who held it for some years and then made it over, in Samvat 1868 (A. D. 1811-12) to Mairal Narain, by whom, as a private transaction his claims were discharged; but no final settlement being thus promoted further embarrassment accured and a new arrangement was made in Samvat 1882 (A. D. 1825-26) under the Government Bhandri, for a fixed period of fifteen years, on the conclusion of which the debt being considered to have been discharged the Taluka is to be restored to the Morvi Chief."*

उल्लिखित उद्धरण का अर्थ यह है कि सन् १८०७-८ में कर्नल वाकर के बन्दोबस्त के पीछे एक वर्ष तक टङ्कारा मोरवी राज्य के शासनाधीन रहा। इसके पश्चात् ऋण के बदले सुन्दरजी श्योजी के पास रहन रक्खा गया§। सुन्दरजी ने कुछ वर्षों तक उसे अपने अधीन रक्खा और संवत् १८६८ में उसे मेड़ेल नारायण‡ के हवाले कर दिया और उनका जो कुछ दावा टंकारा पर था, उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार प्रायः ३० वर्ष तक संवत् १८६८ से १८६७† तक टंकारा ताल्लुक बड़ौदा के प्रसिद्ध सेठ गोपाल मेड़ेल नारायण भाऊ के शासनाधीन रहा। इसी कारण टंकारा निवासियों के मुख से आज भी "भाऊ का वक्त" यह शब्द सुनने में आते हैं, अतः यह सिद्ध हो गया कि जिस समय स्वामी दयानन्द टंकारा भूमि को पवित्र करने के लिए अवतीर्ण हुए उस समय टंकारा भाऊ के शासनाधीन था और उनके पिता कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी भाऊ के समय में ही टंकारा के जमेदार थे।

हम इस विषय पर कि कर्शनजी राजकीय कर्मचारी थे और भी एक-दो प्रमाण उपस्थित करते हैं।

संवत् १८६६ के सम्भवतः वैशाख मास में मालवे के मीना लोगों ने टंकारा ताल्लुक के अधीन कागद्री

---

* Selections from the records of Bombay Government No, XXXIX New Series.

§ सेठ सुन्दरजी के पास टङ्कारा के रहन किये जाने का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

‡ सुन्दरजी के पास टङ्कारा मोरवी के राजा ने रहन किया था और फिर सुन्दरजी ने उसे अमरेली के दीवान विट्ठलराव देवाजी के द्वारा मेड़ेल नारायण के पास रहन कर दिया था। उस समय विट्ठलराव देवाजी बड़ौदा राज्य के प्रतिनिधि वा दीवान की स्थिति से काठियावाड़ में रहते थे।

† संवत् १८६७ के पश्चात् कुछ समय तक टङ्कारा ठाकुर साहब मोरवी के अधीन रहा, परन्तु मोरवी राज्य से कर प्राप्त न होने के कारण संवत् १८६६ में सरकार ने उसे जब्त कर लिया और जूनागढ़ निवासी नागर मङ्गलजी गौरीशङ्कर को उसका शासक नियत कर दिया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्राम को लूटना और वहाँ अनेक अत्याचार करने आरम्भ किये। इस विद्रोह के निवारण के लिए टंकारा से फ़ौजदार नागर निर्भयशंकर और कर्शनजी त्रिवाड़ी कागद्री गये। मीना लोगों के युद्ध में निर्भयशंकर इस बुरी तरह घायल हुए कि दो-तीन दिन के भीतर ही उनकी मृत्यु हो गई। कर्शनजी को मीना लोग पकड़कर मालवा ले-गये और कारागार में बन्द कर दिया, परन्तु कुछ दिन के पश्चात् उन्हें छोड़ दिया।

इससे प्रमाणित होता है कि कर्शनजी एक उच्चकोटि के राजकर्मचारी थे, अर्थात् या तो वे स्वयं फ़ौजदार थे अथवा फ़ौजदार के सहकारी थे। यदि ऐसा न होता तो वह निर्भयशंकर के साथ मीना विद्रोह के दमनार्थ क्यों जाते ?

कर्नल वाकर के सन् १८०७-८ के जमाबन्दी बन्दोबस्त से पहले मालवा राज्य और मोरवी की बहुत बड़ी शत्रुता थी। दोनों राज्य एक-दूसरे को अपमानित और अपदस्थ करने की चेष्टा करते रहते थे।§ कागद्री विद्रोह के समान अनेक विद्रोह उपस्थित होते और एक राज्य के उच्च कर्मचारी दूसरे राज्य के उच्च कर्मचारियों के अधीन इलाकों पर आक्रमण करके उन्हें पकड़कर कैद कर लिया करते थे। कर्शनजी के कागद्री विद्रोह के दमनार्थ जाने और मीना लोगों की कैद में पड़ने से यह सिद्ध होता है कि वह उच्च पदस्थ राजकर्मचारी और सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी के राजपदारूढ़ व्यक्ति होने का और भी प्रमाण मिलता है। हम एक बार इससे पूर्व रईशाना निवासी प्रभुराम तेजराम आचार्य के पत्र का कुछ अंश उद्धृत कर चुके हैं। उसी पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि "कर्शनजी त्रिवाड़ी दरबारी थे, परन्तु हम यह ठीक नहीं कह सकते कि वह किस पद पर नियत थे तो भी उनके दरबारी होने में सन्देह नहीं है, क्योंकि टंकारा में दरबार गढ़ के पश्चिमी द्वार के समीप अब भी एक स्थान है जो कर्शनजी के अस्तबल के नाम से प्रसिद्ध है, यह निश्चय है कि यह स्थान दरबारगढ़ के भीतर है और वहाँ सिवाय दरबारियों के अन्य किसी को घोड़ा बाँधने का अधिकार नहीं था और न हो सकता था।" कर्शनजी का निवासगृह टंकारा के जीवापुर महल्ले में था और वहाँ से यह अस्तबल बहुत ही निकट था।

इससे यह भी स्पष्टतया प्रतिपादित होता है कि कर्शनजी राजसंसृष्ट व्यक्ति वा टंकारा के जमींदार थे।

कर्शनजी घोर शिवभक्त

ऋषि ने अपने आत्मचरित में यह लिखा है कि "मेरे पिता घोर शैव थे। उन्होंने मुझे भी शिवोपासना का उपदेश दिया था और दस वर्ष की आयु से ही मुझे शिवपूजा करनी सिखाई थी।" एक और स्थल पर उन्होंने लिखा है कि "जहाँ कहीं भी शिव-पुराण की कथा हुआ करती थी पिताजी मुझे वहाँ ले-जाया करते थे, माता के तीव्र प्रतिवाद करने पर भी वे मुझसे शिवजी की पूजा कराया करते थे।"

कर्शनजी ने टंकारा के बाहर थोड़ी-सी दूर पर शिवजी का एक मन्दिर भी बनवाया था जिसका नाम कुबेरनाथजी का मन्दिर है। वह अभी भी विद्यमान है और प्रागुक्त पोपटजी रावल उनकी पुत्री प्रेमबाई के वंशधर अब भी उसकी सेवा-पूजा करते हैं। यह मन्दिर टंकारा के राजकोट द्वार से बाहर निकलते ही बाईं ओर डेमी नदी के घाट पर दृष्टिगोचर होता है। जब प्रेमबाई विधवा हो गई तो वह अपने जीवनपर्यन्त कुबेरनाथजी की सेवा-पूजा करती रही। अब भी जब कभी पोपट रावल दो चार दिन के लिए टंकारा से बाहर चले जाते हैं तो सेवा-प्रार्थना का कार्य उनकी फुआ बेनी बाई करती है।

शिव मन्दिर के निर्माण करने से उज्ज्वलरूप से सिद्ध होता है कि कर्शनजी सातिशय शिवनिष्ठ पुरुष थे।

---

§ एक बार मोरवी के राजा पृथ्वीराज मालवे के राजा डोसाजी को पकड़कर मोरवी ले-आये थे और उसे क़ैद में डाल दिया था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्शनजी के पुत्र का गृहत्याग

टङ्कारा में यह बात प्रसिद्ध चली आती है कि जो ब्राह्मण कुबेरनाथ के मन्दिर के प्रतिष्ठाता थे, उनका पुत्र घर से निकलकर चला गया था।

टङ्कारा निवासी कालिदास कर्शनजी एक गौड़ ब्राह्मण थे, वह साहूकार थे और लेन-देन किया करते थे। उनकी माता बहुत वृद्धा थी। उससे ज्ञात हुआ था कि जीवापुर मुहल्ले में एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण रहते थे जो दरबार में नौकर थे। उनका पुत्र घर-बार छोड़कर चला गया था। इसपर टङ्कारा में बहुत गड़बड़ मची थी। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि कर्शनजी त्रिवाड़ी का ही पुत्र गृह-निष्क्रान्त हुआ था, क्योंकि कर्शनजी त्रिवाड़ी का घर जीवापुर मुहल्ले में था और वे दरबार में नौकर भी थे, अतः उपर्युक्त वर्णन अन्य किसी व्यक्ति पर नहीं घट सकता।

टङ्कारा में देवचन्द भगवान् नामक एक वैश्य निवास करते थे। जिनका देहान्त अब से थोड़े ही वर्ष पहले हुआ है। उनका जन्म संवत् १८८१ में हुआ था और ऋषि दयानन्द ने भी इसी संवत् में जन्म ग्रहण किया था। उसकी आयु प्रायः ६० वर्ष की थी। उसने उनसे कहा था "भाऊ के समय में एक ब्राह्मण कर्मचारी थे। उनका नाम कर्शनजी तिवाड़ी था। उनका घोड़ा दरबार में बँधा करता था। उनका एक पुत्र दयाराम था। वह उनके घोड़े को प्रतिदिन दो बार नदी§ पर जल पिलाने ले-जाया करता था। दयाराम को लोग दयाल-दयाल भी कहा करते थे। फिर वह एक दिन घर छोड़कर निकल गया।"

इससे भी सिद्ध होता है कि कर्शनजी का पुत्र घर से निकल गया था। इस प्रकार सब-के-सब निदर्शन जो भगवान् के स्वलिखित आत्म-चरित में उनके पिता के सम्बन्ध में मिलते हैं टङ्कारा के कर्शनजी लालजी तिवाड़ी में घट जाते हैं, अतः कोई सन्देह नहीं रहता कि कर्शनजी लालजी तिवाड़ी ही वे पुण्यश्लोक व्यक्ति थे जिनके घर वेदप्रमाण, देशभक्त, योगिराज भगवान् दयानन्द ने जन्म लिया था।

ऋषि का आदि नाम क्या था ?

उपर्युक्त अन्वेषण से सिद्ध होता है कि ऋषि का आदि नाम दयाराम और उपनाम दयाल था, परन्तु लोक में यह प्रसिद्ध है कि उनका आदि नाम मूलशंकर था और इस प्रसिद्धि का कारण यह है कि पण्डित लेखराम के नाम से जो दयानन्द जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है उसमें मूलशंकर ही उनका आदि नाम लिखा है। इस विषय में जो प्रमाण वहाँ दिया गया है, यह है—"पण्डित ज्वालादत्त कान्यकुब्ज और मिस्टर रामदास छबीलदास बैरिस्टर-एट-ला बम्बई और कई अन्य व्यक्तियों ने जैसेकि ठाकुर मुकन्दसिंह रईस छलेसर की ज़बानी मालूम हुआ कि स्वामीजी का जन्मनाम मूलशंकर था। सन् १८७६ के अखीर में बमुकाम देहली जो कैसरी दरबार हुआ था उसमें स्वामीजी के डेरे पर चन्द काठियावाड़ के रऊसा भी तशरीफ़ लाये थे। उन्होंने स्वामीजी को मूलशंकर नाम से पुकारा था, जिन्हें स्वामीजी ने जुदा ले-जाकर मनै कर दिया" (बाब १ भाग १ पृष्ठ ३) "महाशय काहनजी कुबेरजी, जो सन् १८६२ में बमुकाम टंकारा रियासत मोरवी की तरफ़ से कामदार थे, बयान करते थे कि उनका एक करीबी चचा मूलशंकर नाम संवत् १९०० विक्रमी के करीब ज़माने में घर से भाग गया था। मगर अब उसका या उसकी तस्वीर का शनाख्तकुनिन्दा कोई जिन्दा नहीं। मैंने जब स्वामीजी के इब्तदाई हालात उन्हें सुनाये तो वह उनकी अक्सर तस्दीक़ करते थे (पृष्ठ ३)।

---

§ डेमी नदी टङ्कारा के नीचे बहती थी। अब वह शुष्क और जलहीन हो गई है, परन्तु उस समय उसमें नौकाएँ चलती थीं। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

हमारी सम्मति में यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है। प्रथम न तो उन रईसों के नाम बताये गये हैं जो स्वामीजी के डेरे पर आये थे जिससे आगे कुछ अनुसन्धान किया जा सकता और न यह ही बताया गया है कि उस समय स्वामीजी के डेरे पर कौन-कौन लोग उपस्थित थे। जिनके द्वारा इस संवाद का मिलना बताया गया है, उनमें से पण्डित ज्वालादत्त और ठाकुर मुकन्दसिंह जीवित नहीं है और मिस्टर रामदास छबीलदास अपने तारीख ५ नवम्बर १९०९ के पत्र में इस घटना की सत्यता से सर्वथा नकार करते हैं। वे लिखते हैं—

"You want to know whether Dayanand's original name was मूलशंकर I never heard till I met you that मूलशंकर was his orginal name. It is absolutely false that I gave out in 1877 on the occasion of the Delhi Darbar मूलशंकर as his original name, I never attended the Darbar of 1877."

अर्थात् आप जानना चाहते हैं कि क्या दयानन्द का आदि नाम मूलशंकर था। जब तक मैं आपसे नहीं मिला, मैं नहीं जानता था कि उनका आदि नाम मूलशंकर था। यह सर्वथा मिथ्या है कि देहली दरबार के अवसर पर सन् १८७७ में मैंने उनका आदि नाम मूलशंकर बताया था। मैं सन् १८७७ के दरबार में गया ही न था।

इन प्रमाणों के विषय में हमें निम्नलिखित वक्तव्य है—

पण्डित लेखराम ने यह नहीं लिखा है कि पण्डित ज्वालादत्त आदि ने स्वयं उनसे उपर्युक्त बात कही थी और हमारे विचार में पण्डितजी को यह बात स्वयं प्रागुक्त पुरुषों से ज्ञात भी नहीं हुई थी, नहीं तो वे इस सम्बन्ध में मिस्टर रामदास छबीलदास का नामोल्लेख न करते जो स्पष्टतया इस घटना का खण्डन करते हैं। जब वे दिल्ली दरबार में गये ही नहीं थे तो पण्डित लेखराम से ऐसी बात कैसे कह सकते थे। ऐसा अनुमान होता है कि किसी अन्य से सुनकर पण्डित लेखराम ने नोट कर लिया होगा और उनके पीछे वह नोट बिना किसी छानबीन के ज्यों-का-त्यों छाप दिया गया।

महाशय काहनजी कुबेरजी का वर्णन बहुत ही अस्पष्ट है। पिताओं के घर से पुत्रों के भागने की घटनाएँ भारतवर्ष में प्रति वर्ष होती रहती हैं, यह ठीक होगा कि महाशय काहन के चचा मूलशंकर उसी वर्ष में वा उसके लगभग गृह-त्यागी हुए हों जिसमें स्वामीजी ने अपना पितृ-गृह छोड़ा था, परन्तु इतने से ही यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि वह मूलशंकर और दयानन्द एक ही व्यक्ति थे। पण्डितजी ने यह नहीं लिखा कि स्वामीजी के और उक्त मूलशंकर के पिता के घर रहने के समय की कौन-कौन-सी घटनाओं में समानता पाई गई थी। ऐसे निर्बल प्रमाण के आधार पर इस निश्चय पर नहीं पहुँचा जा सकता कि स्वामीजी का आदि नाम मूलशंकर था।

श्रीमान् प्राणलाल सुकुल ने अपने पत्र में, जो पहले उद्धृत किया जा चुका है, यह लिखा था कि ऋषि का नाम "मूलशंकर और दयाराम दोनों ही थे"। इससे पण्डित लेखराम के कथन की पुष्टि होती है।

टंकारा के एक और वृद्ध पुरुष ने कहा था कि 'दयानन्द का आदि नाम मूलजी था' इससे भी अनुमान होता है कि ऋषि का आदि नाम मूलशंकर होना असम्भव नहीं है।

प्राणलाल सुकुल, प्रभुराम आचार्य, देवचन्द भगवान् इस विषय में एकमत हैं कि भगवान् का आदि नाम 'दयाराम' था और यह भी अनुमान होता है कि संन्यास ग्रहण करते समय जो उन्होंने दयानन्द नाम रक्खा इसका कारण भी यही होगा कि उनका बाल्यकाल का नाम दयाराम था। अब भी हम देखते हैं कि जो लोग गृहस्थ त्यागकर संन्यास धारण करते हैं वे अपना संन्यास-आश्रम का नाम बहुधा गृहस्थाश्रम के नाम से मिलता-जुलता रखते हैं, अतः यह बात जी को लगती है कि उनका पूर्व नाम दयाराम ही होगा। दूसरा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्यार का नाम सम्भव है मूलजी वा मूलशंकर ही हो। इस विषय में हम निश्चय रूप से कुछ नहीं कह सकते।

भगवान् के पूर्वपुरुष

गुजरात के इतिहास में यह प्रसिद्ध है कि गुजरात में औदीच्य वा औदीच्य सहस्र ब्राह्मणों को अन्हलवाड़ा के राजा मूलराज सोलङ्की प्रायः एक सहस्र वर्ष हुए उत्तर भारत के अन्तर्गत गान्धार, कुरुक्षेत्र, निमिषारण्य प्रभृति स्थानों से लाये थे और वे संख्या में एक सहस्र थे। इसी कारण उनका नामम औदीच्य (उत्तरदेशीय) सहस्र पड़ गया। राजा मूलराज ने उन्हें भूमि, ग्राम, रत्न, धनादि देकर सिद्धपुर में बसाया और फिर वे गुजरात के अनेक स्थानों में फैल गये।

सामवेदी त्रिवाड़ी भी उन्हीं औदीच्य सहस्रों के अन्तर्गत थे और वे भी आदि में सिद्धपुर में ही आकर बसे थे, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे सिद्धपुर में उत्तर भारत के किस स्थान से आये थे।

सामवेदी औदीच्य तिवाड़ियों के विषय में एक और जनश्रुति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उनके एक शास्त्रज्ञ और धर्मनिष्ठ पूर्वज तीर्थयात्रा के उद्देश्य से सिद्धपुर से कच्छ गये थे और भुज नगर में एक धर्मशाला में जाकर ठहरे थे। उस समय भुज के अधिपति एक यज्ञ के अनुष्ठान में लगे हुए थे और इस कारण से नगर में खूब समारोह हो रहा था। जनसाधारण में यज्ञशाला और यज्ञ के उपकरणों के देखने का बड़ा कुतूहल था और अनेक लोग यज्ञमण्डप आदि के देखने के लिए आते-जाते थे। उन्हीं दर्शकों में यह सिद्धपुर निवासी त्रिवाड़ी भी थे। एक दिन वे यज्ञभूमि में पहुँच गये। उन्होंने देखा कि यज्ञकार्य के सम्पादन के लिए अनेक स्थानों से बहुत-से ऋत्विक् ब्राह्मण आये हुए हैं और यज्ञकार्यों में व्याप्त हैं। जब वे यज्ञस्थल को देखकर लौटने लगे तो उन्होंने कहा कि "यज्ञकार्य शास्त्रविहित प्रणाली के अनुसार सम्पादित नहीं हो रहा है! यज्ञवेदि ठीक नहीं बनी है, क्योंकि उसके नीचे एक गौ की अस्थि है। ऐसे अविहित यज्ञ करने से राजा का अनिष्ट होगा।" होते-होते यह बात कच्छ-अधिपति के कानों तक पहुँच गई। उन्होंने सिद्धपुरागत त्रिवाड़ी को बुलाकर उनसे कहा कि "आप गौ की अस्थि बाहर निकाल दें, नहीं तो जो कुछ अबतक व्यय हुआ है आपको देना पड़ेगा।" यह सुनकर उन्होंने भूमि खुदवाई और गौ की अस्थि बाहर निकलवा दी। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ और कच्छपति के मन में उनके प्रति गहरी श्रद्धा हो गई। कच्छपति ने उनसे साग्रह अनुरोध किया कि वे ही यज्ञ सम्पादन करावें, परन्तु उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया और यज्ञकार्य राजपुरोहित की अध्यक्षता में ही समाप्त हुआ। यज्ञ की समाप्ति पर जब भूमिदान का समय आया तो कच्छपति ने उन त्रिवाड़ी महाशय को २०० बीघा भूमि, दो बाग और दो गृह दान किये और तीर्थयात्रा की समाप्ति के पश्चात् वे भुज नगर में ही रहने लगे। वहाँ उनका वंश विस्तार तथा उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और समय पाकर कच्छ में सामवेदी औदीच्य त्रिवाड़ियों की संख्या वृद्धिंगत हो गई।

कच्छ के राजाओं के वंशधर समय-समय पर काठियावाड़ पर आक्रमण करके अनेक स्थानों पर अपना अधिकार स्थापित करते रहे। कच्छ के राजघराने से काठियावाड़ के अनेक राजाओं ने अपना सम्बन्ध जोड़ना आरम्भ कर दिया, जिससे वे इन आक्रमणों से सुरक्षित रहें। कहते हैं कि संवत् १५६२ में कच्छ राजपरिवार के चार व्यक्ति, जो आपस में भाई-भाई थे, अस्सी हज़ार सिपाही, प्रचुर धन-सामग्री और अनेक ब्राह्मणों को साथ लेकर सौराष्ट्र में आये और उनमें से ज्यष्ठ भ्राता जाम रावल ने संवत् १६०२ (सन् १५३५ ई०) में जामनगर का राज्य स्थापित किया। इससे सिद्ध होता है कि जाम रावल के साथ बहुत से ब्राह्मण कच्छ काठियावाड़ में आकर बसने लगे थे। जामरावल के पुत्र रेवाजी ने ११ वर्ष तक मोरवी का सूबा (कलक्टर)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूप से शासन किया था। रेवाजी के साथ भी कुछ ब्राह्मण आये थे और उन्होंने भी काठियावाड़ को ही अपना निवासस्थान बना लिया था। इन ब्राह्मणों में उपर्युक्त तिवाड़ी औदीच्य के भी वंशधर थे। इनमें से जो जामजी के साथ आये थे वे पहले काठियावाड़ आये और फिर मोरवी के अन्तर्गत वर्षामेरि ग्राम में गये। वहाँ उनके दो दल होगये। एक दल मोटा बड़ाल में और दूसरा टंकारा में आकर बस गया। पहले दल के वंश में अब कोई नहीं है। दूसरे दल के वंश में एक व्यक्ति मेघजी तिवाड़ी हुआ। उसके दो पुत्र हुए एक विश्रामजी दूसरा डोसाजी। जब जीवा मेहता ने जीवापुर ग्राम बसाया तो उसने वहाँ विश्रामजी को भूमि दान दे दी और वह वहाँ ही रहने लगे। जीवापुर में अब जो घर सामवेदी त्रिवाड़ीयों के हैं वे इन्हीं विश्रामजी के वंशधर हैं। डोसाजी टंकारा ही रहे। वे एक विद्वान् पुरुष थे और उनके पास संस्कृत-ग्रन्थों का अच्छा संचय था। उनके पुत्र कुमारजी हुए और कुमारजी के पुत्र बेलजी हुए। पोपट रावल की फुआ बेनीबाई के अनुसार बेलजी कर्शनजी तिवाड़ी के चचेरे भाई होते थे।

इससे यह सिद्ध होता है कि कर्शनजी तिवाड़ी के पूर्वपुरुष कच्छ से आये थे। इसकी पुष्टि एक और घटना से होती है। कर्शनजी ने अपने दूसरे पुत्र वल्लभजी का विवाह कच्छ में ही किया। उनकी पुत्रवधू मोगीबाई कच्छ ही की रहनेवाली थी। यह नैसर्गिक बात है कि मनुष्य जिस स्थान में बहुत दिन तक रहता है, उसे ही अपना देश समझने लगता है और वहाँ ही उसके विवाहादि सम्बन्ध होते हैं। यदि वह घटनावश किसी दूसरे स्थान पर जाता है तो वह यही यत्न करता है कि उसके विवाहादि सम्बन्ध पहले ही देश में हों। यही कारण था कि कर्शनजी ने अपने पुत्र का विवाह भी कच्छवासिनी मोगीबाई के साथ किया था।

इससे पहले हम पोपट रावल के एक आवेदन पत्र का कुछ अंश उद्धृत कर आये हैं जो उन्हों ने जामनगर के भूमिकर के अधिकारी को दिया था। उसमें लिखा है कि कर्शनजी लालजी तिवाड़ी के पूर्वपुरुष हरिभाई तिवाड़ी थे। कौशिया ग्राम की भूमि जो जामनगर के अन्तर्गत है, इन्हीं हरिभाई तिवाड़ी को दान में मिली थी। इसके कई प्रमाण मिलते हैं। पोपट रावल के पास कई दानपत्र थे, जिनके द्वारा कौशिया ग्राम की भूमि हरिभाई तिवाड़ी को दान दी गई थी। पोपट रावल से यह दानपत्र हरियाना के अम्बाराम केवलराम जानी ले-आये और उन्हें अपने पास रख लिया। उनमें से एक दानपत्र में लिखा था कि "संवत् १७०१ माघ कृष्णा चतुर्थी रविवार को कौशिया की कुछ भूमि हरिभाई तिवाड़ी, देवेश्वर और अम्बाईदास जारेसा, भोजराजजी और वोजाजी ने दान दी।" दूसरे दानपत्र में लिखा था कि "संवत् १६८७ वैशाख कृष्णा चतुर्थी सोमवार को कौशिया की कुछ भूमि हरिभाई तिवाड़ी प्रभृति को साहबजी भोजराजजी और वोजाजी ने दान दी।" तीसरे दान-पत्र में लिखा था कि "संवत् १६६६ से संवत् १६६० के बीच में कौशिया की १२० बीघा भूमि भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न जाम साहबों ने हरिभाई तिवाड़ी प्रभृति को दान दी।" इस १२० बीघा भूमि में ४८ बीघा जाम रणमलजी ने बल्लभदास और ठाकुर मुकुन्दजी को दी थी, परन्तु पीछे से वह हरिभाई तिवाड़ी के ही हस्तगत हो गई थी।

इन दानपत्रों से प्रकट होता है कि हरिभाई तिवाड़ी सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग व अठारहवीं शताब्दी के पहिले भाग तक जीवित थे। भगवान् दयानन्द के जन्मकाल तक यह समय प्रायः दो सौ वर्ष होता है, अतः यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि हरिभाई तिवाड़ी कर्शनजी के पिता लालजी से तीन चार पीढ़ी पहले होंगे।

उपर्युक्त दानपत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि कौशिया ग्राम की भूमि के प्रदातृगण खेमानी ग्रासिया थे। जामनगर के अधिपति जाम रावलजी के वंश में एक व्यक्ति खेमजी हुए हैं। उन्हीं खेमजी के वंशधर खेमानी नाम से प्रसिद्ध हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन दानपत्रों से एक बात और भी सिद्ध होती है। वह यह कि कर्शनजी के पूर्वजों का जाम साहबों से बहुत सम्बन्ध था, यदि ऐसा न होता तो वह उन्हें भूमि प्रदान क्यों करते ? इसके अतिरिक्त यह अनुमान करना भी संगत प्रतीत होता है कि हरिभाई के पूर्वपुरुष जाम-साहबों के साथ कच्छ से आये थे और यही कारण था कि जाम साहब तथा उनके परिवार के खेमानी ग्रासियों ने हरिभाई को भूमि प्रदान करके सम्मानित किया था।

हरिभाई तिवाड़ी के इस प्रकार पूजित और समादृत होने का दूसरा कारण यह अनुमोदित होता है कि वे शास्त्रदर्शिता, स्वधर्मनिष्ठा और कर्मकाण्ड-श्रेष्ठता के कारण भी प्रसिद्ध थे, नहीं तो केवल इसके हेतु से कि ये राजपरिवार के साथ जाम आये हुए ब्राह्मणों के कुलों में उत्पन्न हुए थे इतने आदर और सत्कार के पात्र न समझे जाते। उनकी शास्त्रदर्शिता और स्वधर्मनिष्ठा इससे भी प्रकट है कि धूरकोट, जीवागढ़ और मेघपुर के रहनेवाले गृहस्थों ने उन्हें अपना गुरु बनाया था और यह गुरु शिष्य-सम्बन्ध कर्शनजी के समय तक अविच्छिन्नरूप से चला आता था, क्योंकि कर्शनजी ने इस यजमानवृत्ति की अधिकारिणी अपनी विधवा पुत्रवधू मोगीबाई को किया था।

भगवान् ने अपने लिखित आत्म-चरित में भी एक जगह कहा है कि "माता-पिता और अन्य वयोवृद्ध अभिभावकगण मुझे कुलप्रथा के अनुसार शिक्षा देने लगे।" इससे भी स्पष्ट होता है कि जिस कुल में उन्होंने जन्म लिया था उसमें शिक्षाप्राप्ति और शास्त्राध्ययन की कुछ विशेष प्रणाली थी।

जिस परिवार में भगवान् उत्पन्न हुए वह विशाल परिवार था। आत्म-चरित वर्णन करते हुए पूना में उन्होंने कहा था कि "हमारा परिवार इस समय १५ भागों में विभक्त है।" अतः वह परिवार जिसके १५ भाग हो सकें वास्तव में विशाल होगा। हम पहले ही कह चुके हैं कि तिवाड़ियों का परिवार दो दल में विभक्त हो गया था एक बड़ाल में जा बसा और दूसरा टंकारा में रहने लगा। टंकारा में सामवेदियों के घर हैं ही और बड़ाल निवासी बेलजी कर्शनजी के चचेरे भाई ही थे, अतः टंकारा और बड़ाल दोनों जगह ही भगवान् के कुटुम्बीगण निवास करते थे और वे बहुसंख्यक थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट संख्या २

आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी

महाराज से कर्नल आल्काट और ब्लैवेट्स्की का सम्बन्ध, जिन्होंने न्यूयार्क अमेरिका में एक सभा थियोसोफ़िकल (ब्रह्मज्ञानी) सोसाइटी के नाम से सन् १८७५ में स्थापित की थी, इस प्रकार आरम्भ हुआ कि बम्बई के एक भाटिया मूलजी ठाकरसी अमेरिका गये थे। ट्रेन में उनका कर्नल और मैडम से साक्षात् हो गया। जब मूलजी ठाकरसी भारत लौट आये तो उनसे कर्नल ने महाराज के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। वह पत्र उन्होंने महाराज को दिखाकर उसका समुचित उत्तर कर्नल को भिजवा दिया, फिर कर्नल के साथ महाराज का पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया। महाराज ने कर्नल के पत्रों का हिन्दीं में और अपने पत्रों का अंग्रजी में अनुवाद करने का भार श्यामजी कृष्णवर्मा, मूलराज और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को सौंपा और इस प्रकार पत्र-व्यवहार होता रहा।

सबसे पहला पत्र कर्नल आल्काट ने नं० ७१ ब्राडवे न्यूयार्क से १८ फर्वरी सन् १८७८ को लिखा था, जिसका भाषानुवाद हम नीचे देते हैं।

"सेवा में परम माननीय पण्डित दयानन्द सरस्वती, भारतवर्ष

पूजनीय गुरु !

अमेरिका के कितने ही निवासी और अन्य विद्यार्थी जो सच्चे मन से आत्मविद्या की खोज करना चाहते हैं आपके चरणों में आते हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमें ज्ञान-ज्योति दीजिए। वे भिन्न-भिन्न व्यवसाय और वृत्ति रखनेवाले हैं, भिन्न-भिन्न देशों के निवासी हैं, परन्तु ज्ञानोपार्जन और अधिक उत्तम बनने के उद्देश्य में एकमत हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने तीन वर्ष हुए अपने को एक सभा में संगठित किया, जिसका नाम थियोसोफ़िकल सोसाइटी है। यह जानकर कि ईसाई मत में कोई बात ऐसी नहीं है जो उनकी बुद्धि वा अन्तःकरणस्थ ज्ञान को परितृप्त कर सके, अपने चारों ओर उक्त धर्म के जघन्य मन्तव्यों के दुष्प्रभावों को देखकर और यह देखकर कि उक्त धर्म के नेता पाखण्डी, लोलुप और विषयासक्त हैं और उसके उपासकों के जीवन असत्यपूर्ण और अपवित्र हैं, यह देखकर कि पाप को छिपाया और उसे उपेक्षणीय समझा जाता है और पुण्य और ज्ञान को यह कहकर कि वह ईसाई धर्ममण्डल की उपस्थित स्थिति के लिए हानिकारक हैं, अलग रख दिया जाता है, वे संसार से एक ओर हटकर खड़े हो गये और ज्ञानज्योति के लिए पूर्व की ओर मुड़े और उन्होंने प्रकाश्य भाव से कह दिया कि हम ईसाई मत के शत्रु हैं। उनकी कर्त्तव्य प्रणाली की इस साहसिकता के कारण जनसाधारण का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ और वे उन सब प्रभावसम्पन्न पत्रों और मनुष्यों के निन्दापात्र बन गये जिनके सांसारिक लाभ अथवा निजी विचार उपस्थित कार्यक्रम के साथ आबद्ध हैं।

हमें नास्तिक, धर्मविद्रोही और म्लेच्छ कहा गया है। १८ मास हुए कि इस नगर में जिसमें दश लाख से अधिक ईसाई रहते हैं, हमने अपने में से एक व्यक्ति के शव को पृथिवी के गर्भ में रक्खा और ऐसा करते हुए हमने अग्नि के चिह्नों, दीपकों और प्राचीन सर्पवेष्टिताओं आदि का व्यवहार किया। उसके छह मास पश्चात् हमने शव को उसके अस्थायी विश्राम स्थल से निकाला और अपने वंश के प्राचीन आर्यों की प्रथा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के अनुसार उसे जलाकर भस्मसात् कर दिया !

हमें केवल नवयुवकों और उत्साहशील पुरुषों की ही सहायता की आवश्यकता नहीं है, वरन् बुद्धिमान् और पूजनीय पुरुषों के साहाय्य की भी अपेक्षा है। इस कारण हम आपके चरणों में उन्हीं भावों से आते हैं जिन भावों से कि बालक अपने माता-पिता के चरणों में आते हैं और कहते हैं कि गुरु महोदय ! हमारी ओर देखिए और हमें बताइए कि हमें क्या करना चाहिए, हमें आप अपना परामर्श और साहाय्य प्रदान कीजिए। यहाँ करोड़ों मनुष्य हैं जो आत्मज्योति से अलग पड़े हैं और प्रकृति के विषयानुराग और अन्धकार में रेंग रहे हैं। वे इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं कि वे मार्ग भूले हुए हैं, दुराग्रही और दुखी हैं, किन्तु वे पूर्व देशों में प्राचीन धार्मिक तत्त्वज्ञान के विरुद्ध युद्ध करने में अपने धन, बुद्धि के प्रयत्न और अतर्पणीय पुरुषार्थ को व्यय करते हैं और मूर्ख जनता को अपने असत्य धर्म को स्वीकार करने की रुचि दिलाते हैं। अपने सदस्यों के द्वारा हमें पत्रों में लेख लिखने का अवसर प्राप्त है। हम ईसाई जगत् में पूर्वीय विचारों का वास्तविक रूप फैलाएँगे और जो देश ईसाई नहीं हैं उनमें ईसाई मत के, जिसे ये झूठे पादरी उनकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते हैं, कर्मगत प्रभावों को प्रकट करेंगे। पूर्वीय विद्याओं के विद्वान् कहलानेवाले (ईसाई) जो संस्कृत वा अन्य प्राचीन भाषाओं को सीख लेते हैं, वे वेदों और दूसरी पवित्र पुस्तकों का अन्यथा अनुवाद कर देते हैं और उनका अङ्ग भङ्ग कर डालते हैं। हम उनके शुद्ध अनुवाद, जो पण्डितों के किये हुए हों और मूल पर भी उन्हीं की टीका हो, छापना और प्रचरित करना चाहते हैं।

क्या आप हमारी सोसाइटी के कॉरेस्पांडिंग फ़ैलो का प्रमाण-पत्र स्वीकार करके हमारी मानवृद्धि करेंगे? आपकी अनुकूल दृष्टि और कृपा हमें बहुत ही शक्तिशाली बना देगी, हम आपकी शिक्षा के अधीन हैं। सम्भवतः हम प्रकाश्य और अप्रकाश्य भाव से उस पवित्र कार्य की सफलता की गति तीव्रतर कर सकें जिसमें आप इस समय लगे हुए हैं, क्योंकि हमारा रणक्षेत्र सारा भारतवर्ष है और हम अपना कर्त्तव्य कर्म हिमालय से कन्याकुमारी तक कर सकते हैं। पूज्यपाद ! आपने अपने देशवासियों के हृदय-आवरणों और छद्मवेशों के भीतर प्रवेश करना ज्ञात कर लिया है। आप हमारे हृदयों के भीतर दृष्टिपात कीजिए और देखिए कि हम सत्य कहते हैं। हम आपके पास अभिमानपूर्वक नहीं वरन् विनयपूर्वक आते हैं। हम आपका परामर्श स्वीकार करने और आपके बताये हुए कर्त्तव्य के अनुसार करने के लिए उद्यत हैं। यदि आप हमें एक पत्र लिख देंगे तो आपको ठीक-ठीक ज्ञात हो जाएगा कि हम क्या जानना चाहते हैं और वह वस्तु जिसकी हमें आवश्यकता है मिल जाएगी।"

यह पत्र महाराज को लाहौर में मिला। उसे पढ़कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि अमेरिका में भी उनके उपदेश से साहमत्य रखनेवाले लोग हैं। वे यह समझने लगे कि थियोसोफ़िस्टों के द्वारा यूरोप और अमेरिका में वैदिक सिद्धान्तों का भले प्रकार प्रचार हो सकेगा, अतः उन्होंने खुले मन से कर्नल और मैडम का स्वागत किया।

इस पत्र के पढ़ने से कोई भी यह नहीं कह सकता कि पत्र-लेखक के चित्त में सिवाय इसके और कोई भाव विद्यमान था कि वह एक सरल भावयुक्त ज्ञानपिपासु है, वह एक पथभ्रान्त पथिक के समान है जो तमसाच्छन्न निविड़ वन में रात्रि के समय उससे बाहर निकलने का मार्ग जोह रहा हो, वह तृषार्त्त चातक के समान है जो जल बिन्दु की आशा में चञ्चु खोले हुए वारिद की ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रहा हो, वह अन्धकार में है और ज्योति की लालसा रखता है, वह अज्ञान में है और ज्ञान की खोज में है, एक ज्ञानपिपासु शिष्य की भाँति वह ज्ञानी गुरु के अनुसन्धान में व्यापृत है, वह गुरु के चरणों में अपना मस्तक झुकाना चाहता है, वह उसके उपदेश और आदेश को शिरोधार्य करना चाहता है। पत्र में कहीं भी कुटिलता, दम्भ, कपट, असद्भाव का चिह्नमात्र तक नहीं है। वह आरम्भ से अन्त तक सरल और सद्भाव से परिपूर्ण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाराज का हृदय अत्यन्त सरल था। वे दूसरों को भी वैसा ही सरलहृदय समझते थे, जैसे वे स्वयं थे। वे स्वयं इतने निष्कपट थे, इतने उदारचेता थे कि किसी की ओर सन्देहदृष्टि से देखना जानते ही न थे। उन्होंने सरलचित्तता से कर्नल और मैडम का विश्वास कर लिया, उनको वैसा ही समझ लिया जैसा उनके शब्दों से प्रकट होता था। महाराज ने २१ अप्रैल सन् १८७८ को उक्त पत्र का संस्कृत§ में उत्तर दिया जिसका भाषानुवाद हम नीचे देते हैं।

"स्वस्ति श्रीयुत अनिन्द्य गुणों से अलंकृत, सनातन सत्यधर्म के प्यारे, पाखण्ड मत से निवृत्तचित्त अद्वैत ईश्वर की उपासना के इच्छुक बन्धुवर्ग महाशय श्रीयुत हेनरी एस० आल्काट प्रधान व श्रीमती मैडम एच० पी० ब्लैवेट्स्की मन्त्री तथा थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सभासदों के प्रति दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद हो।

यहाँ कुशल है और वहाँ आपके कुशल की नित्य आशा करता हूँ।

श्रीमानों ने जो पत्र श्रीमन्महाशय मूलजी ठाकरसी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, तुलसीराम यादवजी के द्वारा मेरे पास भेजा है, उसे देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ।

अहो ! अनन्त धन्यवाद के योग्य एक, सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र एकरस, व्यापक, सच्चिदानन्द, अनन्त, अखण्ड, अजन्मा, निर्विकार, अविनाशी, न्याय, दया, विज्ञानादि गुणों के आकर, सृष्टि, स्थिति, प्रलय के मुख्य निमित्तकारण, सत्य, गुण-कर्म-स्वभाववाले, निर्भ्रान्त, अखिल विद्यायुक्त, जगदीश्वर की कृपा से पाँच सहस्र वर्षों का समय बीतने के पश्चात् महाभाग्य के उदय से असमक्ष व्यवहारवाले, हमारे प्यारे आप पाताल देश निवासियों का हम आर्यावर्त्त निवासियों के साथ फिर परस्पर प्रीति का उद्भव, परोपकार और पत्र-व्यवहार का समय आया है।

मैं आपके साथ अत्यन्त प्रेम से पत्रव्यवहार करना स्वीकार करता हूँ। आगे को आपको इच्छानुसार मेरे पास श्रीयुत मूलजी ठाकरसी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि के द्वारा पत्र भेजने चाहिएँ। मैं भी उन्हीं श्रीमानों के द्वारा आपके पत्रों का उत्तर दूँगा। जहाँ तक मेरा सामर्थ्य है, सहायता भी दूँगा।

ख्रीस्तादि मतों के सम्बन्ध में जैसी आपकी सम्मति है, वैसी ही मेरी भी है। जैसे ईश्वर एक है, वैसे ही सब मनुष्यों का मत भी एक ही होना चाहिए। वह धर्म एक ईश्वर की उपासना, उसकी आज्ञा का पालन, सर्वोपकार, सनातन वेदविद्या द्वारा प्रतिपादित, आप्त विद्वानों द्वारा सेवित, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध, सृष्टि-क्रम से अविरुद्ध, अन्याय, पक्षपातरहित, धर्मयुक्त, आत्मा का प्रीतिकर, सब मतों से अविरुद्ध, सत्यभाषणादि लक्षणों से प्रकाशमान, सबको सुख देनेवाला, सब मनुष्यों से सेवनीय है। ऐसा जानना चाहिए।

मेरा यह निश्चय है कि इससे भिन्न क्षुद्राशय, छल, अविद्या, स्वार्थसाधन, अधर्मयुक्त मनुष्यों ने ईश्वर का जन्म, मृतकों को जिलाने, कुष्ठादि रोग के दूर करने, पर्वतों को उठाने, चन्द्रमा के टुकड़े करने आदि जितनी बातें फैला रक्खी हैं वे सब अधर्मयुक्त, परस्पर विरोध के उपयोग से सबके सुख का नाश करनेवाली होने के कारण सबके दुःख की उत्पन्न करनेवाली हैं।

मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि कब ऐसा होगा जब परमेश्वर की कृपा और मनुष्यों के प्रयत्न से इनका नाश होगा और परम्परा से आर्यों से सेवित एक सत्य धर्म सब मनुष्यों में निश्चित होगा।

जब श्रीमानों का पत्र आया था तब मैं पञ्जाब देश के लाहौर नगर में निवास करता था। वहाँ भी आर्यसमाजस्थ बहुत-से विद्वान् श्रीमानों के पत्र को देखकर आनन्दित हुए थे। मैं निरन्तर एक स्थान में नहीं रहता हूँ, अतः पूर्वोक्त महाशयों के द्वारा ही पत्र भेजना श्रेयस्कर होगा।

---

§ यह मूलपत्र ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ १९१ पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्यपि बहुत कार्य के कारण मुझे अवकाश नहीं रहता तथापि आप सरीखे सत्यधर्म की वृद्धि में शरीर, मन और आत्मा से लगे हुए, सबके प्रिय करने में निष्ठा रखनेवाले, सत्यधर्म की उन्नति से सब मनुष्यों का प्रिय करनेवाले, दृढ़ उत्साह से युक्त श्रीमानों के अभीष्ट साधन के लिए मुझे अवश्य समय निकालना चाहिए, मैंने यह निश्चय कर लिया है, अतः परोपकार के लिए मैं आप और आप मुझसे सुखपूर्वक पत्र-व्यवहार करें। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पुरुषों के लिए विस्तारपूर्वक लिखने से क्या।

यह जानना चाहिए कि यह पत्र सं० १९३५ विक्रमाब्द की वैशाख कृ० ५ आदित्यवार को लिखा गया है।

२१ मई सन् १८७८ को स्वयं मैडम ब्लैवेट्स्की ने एक पत्र हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा था कि "हमने २५० पुस्तकें सजिल्द और उतनी ही बिना जिल्द की सीधी मुम्बई भेज दी हैं। यदि मैं किसी घटनावश जिससे मेरा अभिप्राय मृत्यु से है भारतवर्ष में न आसकूँ तो आप इन पुस्तकों को किसी आर्यसामाजिक पुस्तकालय की भेंट कर दीजिए। मृत्यु के अतिरिक्त हमें और कोई वस्तु उचित समय पर आर्यावर्त पहुँचने से नहीं रोक सकती। जब मैं आर्यावर्त पहुचूँगी तो बहुत-सी पुस्तकें आपके निर्दिष्ट आर्यसमाज को दे दूँगी। मैं बहुत-सी पुस्तकें इंगलैण्ड से लाऊँगी और कर्नल आल्काट भी लाएँगे ऐसी मुझे आशा है। अन्त में उन्होंने लिखा था कि मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं ऐसे सुख से श्वास कभी नहीं लेती जैसे उस समय लेती हूँ जबकि मैं या तो भारत को पत्र लिखती हूँ या वहाँ से मेरे पास पत्र आते हैं। मुझे ऐसा भान होता है कि मैं हरबार आनन्दभरित मातृभूमि (आर्यावर्त) को अपने आत्मा का एक अंश भेज रही हूँ।"

वह भारत भूमि को "मातृभूमि" कहती हैं और उसके प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति प्रकट करती हैं। पाठक ! इससे अधिक श्रद्धा का उल्लेख किन शब्दों में हो सकता है !

इस पत्र पर कर्नल ने भी अपनी सही की। थियोसोफ़िकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा बनाने के प्रस्ताव के विषय में उन्होंने लिखा कि ऐसे प्रस्ताव के प्रस्तुत करते समय कि हमारी सोसाइटी अपने को आर्यसमाज की शाखा के नाम से प्रसिद्ध करे जो पण्डित दयानन्द सरस्वती और मेरे आदेशों के अधीन रहे। मैं उन जैसे बुद्धिमान् और पवित्रात्मा, शिक्षक और मार्गप्रदर्शक का आज्ञावर्त्ती होना साभिमान स्वीकार करता हूँ।

इन थियोसोफ़िस्टों को महाराज को अपना अधिनायक बनाने की इतनी शीघ्रता थी कि उस पत्र के लिखने के दूसरे ही दिन अर्थात् २२ मई सन् १८७८ को ही सोसाइटी का एक अधिवेशन बुलाकर यह निश्चय कर दिया गया कि थियोसोफिकल सोसाइटी अपनी और अमेरिका तथा यूरोप और अन्य देशस्थ शाखाओं की ओर से आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द पण्डित को अपना अधिनायक और प्रमुख स्वीकार करती है और आगस्टस गस्टम रेकार्डिङ्ग सेक्रेटरी ने इस निश्चय को अपने २२ मई के पत्र में लिखकर भेज दिया।

इसके साथ ही थियोसोफ़िकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा बनाना भी स्वीकार किया गया। २३ मई सन् १८७८ के पत्र में कर्नल ने हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा कि "आपकी गत मास (एप्रिल) की २१ तारीख की चिट्ठी पहुँची जिसका भाव यह ज्ञात होता है कि हम आपके इस उत्तर की प्रतीक्षा न करें कि आप हमारी थियोसोफ़िकल सोसाइटी को अपने आर्यसमाज की शाखा होना पसन्द करते हैं या नहीं। सोसाइटी का एक अधिवेशन हुआ और यतः बहुत-से सभासद् उपस्थित थे, अतः सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि सोसाइटी दोनों सभाओं के मिल जाने और उसका नाम बदल जाने के प्रस्ताव को स्वीकार करती है।".....उस पत्र में उन्होंने यह भी लिखा कि "उस निश्चय की प्रतिलिपि भेजते हैं, आप उसे स्वामीजी के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पास पहुँचा दें और यह भी प्रस्ताव किया कि (नाम परिवर्त्तन के कारण) मैं नये प्रमाणपत्र की पाण्डुलिपि भेजता हूँ जिसे हम प्रचरित करना चाहते हैं और यदि आप कोई और अच्छा प्रस्ताव न करें तो मैं इस नये ढंग के प्रमाणपत्र को छपवाना उचित समझता हूँ और यतः आर्यसमाज के माननीय प्रमुख हमसे इतनी दूर हैं कि हम हर प्रमाणपत्र को उनके हस्ताक्षर के लिए नहीं भेज सकते, अतः हम विनय-पूर्वक प्रार्थना करते हैं वे निर्दिष्ट स्थान पर संस्कृत वा अन्य भाषा में जैसी उनकी प्रचलित रीति हो हस्ताक्षर कर दें ताकि उसकी (प्रतिलिपि) शेष प्रमाणपत्रों पर छपवा दी जावे और यदि वह अपनी वा आर्यसमाज की किसी मुद्रा का प्रयोग करते हों तो उसे भी लगा दें और हम उसे भी छपवा लेंगे। हमारा यह विचार है कि पृथिवीभर में अपने सभासदों के पास नये प्रमाणपत्र भेजें जिन्हें वे पुराने प्रमाणपत्रों के स्थान में अपने पास रक्खें।"

२६ मई सन् १८७८ को कर्नल ने एक पत्र और लिखा जिसमें लिखा था कि "आज हमें अपने कार्यालय के पत्र के उत्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती का हितकर पत्र पाकर परम हर्ष हुआ। हम यह अनुभव करते हैं कि उन्होंने न केवल हमारे प्रमाणपत्र को स्वीकार किया है, बल्कि जिन अत्यन्त कृपायुक्त शब्दों में उन्होंने अपने निश्चय से हमें सूचना दी है, उनसे भी हमें बहुत सम्मानित किया है।

मैं आपको यह बता नहीं सकता कि यह अनुभव करके कि हमने आर्यसमाज के साथ ऐसा निकट भ्रातृसम्बन्ध स्थापित किया है मैं कितना प्रसन्न हूँ। उसका प्रत्युत्तररूपी सम्बोधन समुद्र पार से आता हुआ हमें ऐसा प्रतीत हुआ जैसा रक्षकवृन्द का शब्द उस पथिक को प्रतीत होता है जो चारों ओर हिंस्र पशुओं से घिरा हो और जिसे वन में रात्रि हो गई हो, क्योंकि जैसे ये ईसाई हम सरीखे म्लेच्छों और ईसाईमत के अविश्वासियों के शत्रु हैं वैसे बड़े शत्रु-पशु और कहाँ हैं, परन्तु जब आपकी कृपा का हाथ हमपर है तो हम शत्रुओं का तनिक भी भय नहीं करते।"

३० मई सन् १८७८ को एक तीसरा पत्र कर्नल ने हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिखा कि "हम अपने सभासदों के पास नये प्रमाणपत्र भेज देते यदि माननीय स्वामीजी हमारे नाम के परिवर्त्तन और आर्यसमाज के साथ सम्बन्ध को स्वीकार कर लेते। अब जब वह स्वीकार कर लेंगे तो नये प्रमाणपत्र पुराने सदस्यों के पास भेज दिये जाएँगे।"

इन पत्रों के पढ़ने से यह विस्पष्ट है कि थियोसोफ़िस्ट लोग आर्यसमाज से अपना सम्बन्ध स्थापित करने और महाराज को अपना अधिनायक बनाने के लिए अत्यन्त उत्सुक और लालायित थे और उन्हें घड़ी-घड़ी भारी बीत रही थी कि कब महाराज की स्वीकृति आये और कब वे आर्यसमाज के साथ सम्मिलित हों। महाराज के प्रथम पत्र से उन्हें ज्ञात हो जाना चाहिए था कि महाराज दृढ़ आस्तिक हैं और ईश्वर में उनका अटल विश्वास और प्रगाढ़, निश्चल भक्ति है, अतः जब उन्होंने आर्यसमाज के साथ थियोसोफ़िकल सोसाइटी का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव किया तो यह जानबूझकर किया कि स्वामीजी और आर्यसमाज आस्तिक और ईश्वर के विश्वासी हैं।

५ जून सन् १८७८ को कर्नल ने एक लम्बा पत्र महाराज के पास भेजा जिसका भाषानुवाद हम नीचे देते हैं—

"सेवा में पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी।

पूज्यपाद गुरु! जो सद्भावपूर्ण पत्र आपने अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक भ्राता हरिश्चन्द्र चिन्तामणि मुम्बईवाले के द्वारा हमें भेजा है वह सकुशल हमारे हाथों में पहुँच गया है। थियोसोफ़िकल सोसाइटी के समस्त सभ्यों और अधिकारियों को जो आशीर्वाद आपने उनको और उनके कार्य को दिया है और जो कामना उनके स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए आपने प्रकट की है उससे परम प्रसन्नता हुई है। उसके प्रत्युत्तर में हम केवल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी आशा ही प्रकट कर सकते हैं कि आपकी संसार में उस काल तक स्थिति रहे जब तक आपका उपकारमय उद्देश्य पूर्ण हो और मनुष्यजाति आपके बुद्धयनुकूल उपदेश को सुनने और उससे लाभ प्राप्त करने के लिए तैयार हो।

२—माननीय महोदय ! विश्वेश्वर की प्रकृति और गुणों की जो परिभाषा आपने की है उससे हमें प्रतीत होता है कि पश्चिम के हम तुच्छ विद्यार्थियों ने अपने आर्यपूर्वजों की शिक्षा के अशुद्ध अर्थ नहीं किये हैं। वह परम (तत्त्व) जिसका ध्यान करने और जिस तक अपनी उच्च कामनाओं को पहुँचाने का आप अपने शिष्यों को उपदेश करते हैं वह वही अनादि ईश्वरतत्त्व है जिसका निर्देश हम ईसाइयों को कर रहे हैं कि वही तुम्हारी आराधना का उपयुक्त विषय है न कि तुम्हारा निष्ठुर, निर्दय और दोलारूढ़ मोलक-जिहोवा§, परन्तु जब हम स्वयं ही शिक्षा की इतनी अधिक आवश्यकता रखते हैं तो हमारे लिए दूसरों को शिक्षा देना अति कठिन कार्य है। हमें दिन-प्रतिदिन अपनी अयोग्यता का अधिक-से-अधिक ज्ञान होता जाता है और यदि हमें यह विश्वास न होता कि जिस किसी ने सत्य का बहुत थोड़ा-सा अंश भी जान लिया है, इसे उस ज्ञान को अपने भ्राता को जिसे उसकी अधिक आवश्यकता है प्रदान करने में कृपणता नहीं करनी चाहिए। हमारी यह रुचि होती है कि हम सर्वसाधारण की दृष्टि से अलग रह जावें जब तक कि हमें उस ज्ञान के उपार्जन का पर्याप्त समय न मिल जाए, जिसे हमें प्रदान करने का आपने वचन दिया है।

३—मैंने वह प्रस्ताव, जो कौंसिल ने थियोसोफ़िकल सोसाइटी को आर्यसमाज से सम्बद्ध करने और यदि आपको हमारा कार्य अच्छा लगे, तदनुसार उसका नाम परिवर्तन करने के विषय में सर्वसम्मति से स्वीकार किया है, विनयपूर्वक भ्राता हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास भेज दिया है। यतः हम यह मानते हैं कि हम आर्य वंशे के हैं और हमारे पार्थिव और दैवी वस्तुओं के ज्ञान का आदिम स्रोत आर्य हैं, अतः यदि आप आज्ञः दें तो हम थियोसोफ़िस्ट लोग अपने को आपका शिष्य कहने और पश्चिमभर में आर्यसमाज और उसके सिद्धान्तों का ठीक-ठीक ज्ञान फैलाने में अपना गौरव समझेंगे। हमें आज्ञा दीजिए कि हम आपको अपना गुरु, पिता और अधिनायक कहें और हम अपने कार्यों से ऐसे महान् अनुग्रह का अपने-आपको पात्र सिद्ध करने का यत्न करेंगे। वैदिक तत्त्वज्ञान में हम बालकों के समान हैं। हमें शिक्षा दीजिए कि हम लोगों से क्या कहें और कैसे कहें। हम आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं और हम उसका पालन करेंगे।

४—आपकी बुद्धि में जो आवश्यक वा उपयुक्त बात हो वा जो की जानी चाहिए हम उसे अपनी शक्तिभर करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यहाँ की जनता नीच, दुराग्रही और अज्ञानी है। उसकी धार्मिक उपासना इन्द्रियों से अर्थात् भय, अभिमान, लोलुपता, भीरुता और विद्वेष से अपील करती है। उसके धर्ममन्दिर और गिरजे एक दूसरे से बाह्य ठाठ-बाट में स्पर्धा करते हैं और दुराचार और पाप मखमल और रेशमी वस्त्रों के भीतर और मुलायम गदेलों में जिनपर वह गिरजा में जाकर बैठते हैं, बिना भय के सुखपूर्वक निवास करते हैं। उसके पुजारी और पुरोहित सदाचारविरुद्ध कार्यों की उपेक्षा करते हैं और जो लोग उन्हें मुक्तहस्त होकर धन देते हैं और धर्म की उच्च स्वर से दुहाई देते हैं उन्हें वे ईश्वर और स्वर्गस्थ सन्तजन के नित्य साहचर्य्य के पुण्य का वचन देते हैं। फिर भी हर नगर और उपनगर में बहुत-से विचारशील, सद्हृदय नर और नारी ऐसे हैं जो प्रसन्नतापूर्वक आर्यसमाज में सम्मिलित हो जाएँगे यदि उन्हें आर्यसमाज और उनकी सचाइयों का ज्ञान हो जाएगा, जिनके प्रचार के लिए उसने जन्म लिया है। उन मनुष्यों के पास हम अपना सन्देश प्रेस (समाचार-पत्र और पुस्तकों) द्वारा ही पहुँचा सकते हैं, क्योंकि हमारे पास कोई पण्डित वा स्वामी नहीं हैं जो वेदि पर आकर उनकी व्याख्या कर सके। आपकी शिक्षाओं के प्राप्त होने पर जो कुछ हम अपनी तुच्छ

---

§ मोलक—यहूदियों का एक क्रूर देवता। जिहोवा—इबरानी भाषा में ईश्वर का नाम।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

योग्यताओं के अनुसार कर सकते हैं उसे करने के लिए उद्यत और उत्सुक हैं। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि जितना शीघ्र भी आपको अपने बहुसंख्यक और गुरुतर कार्यों से अवकाश मिल सके उतना शीघ्र हमें अपनी शिक्षाएँ भेजिए।

५—क्या आप समस्त भारतवर्ष के आर्यसमाजों को यह विश्वास दिलाएँगे कि पृथिवी की दूसरी ओर सुदूरवर्त्ती ऐसे नर-नारियों की सभा है जिसके धर्म के सम्बन्ध में तुम्हारे-जैसे दार्शनिक विचार हैं, जो तुम्हारे-जैसे धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा देती है और भविष्य जीवन (परलोक) के सम्बन्ध में तुम्हारे-जैसे विश्वासों से आनन्द लाभ करती है, जो तुम्हारे-जैसे मनोवेगों से सञ्चालित है। हम उस सहानुभूति के तार द्वारा जो हृदयों-से-हृदयों तक फैला हुआ है और जो समान प्रकार से स्पन्दित होता है अपने आर्य-भ्राताओं को भ्रातृप्रेम और पारस्परिक विश्वास का सन्देश भेजते हैं।

६—हम आपसे प्रश्न करते हैं कि आर्यसमाज के नियम क्या हैं ? उसका कार्य किस प्रकार किया जाता है ? उसके कौन लोग सदस्य हो सकते हैं और विशेषकर कौन लोग नहीं हो सकते ? भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और मनुष्यसमूहों के प्रति इस देश में और यूरोप में हमारी क्या कार्यप्रणाली होनी चाहिए ? जिज्ञासुओं को पश्चिमी भाषाओं की कौन-सी पुस्तकें ब्रह्म-विषयक विचारों के जानने के लिए पढ़ने के लिए बतानी चाहिएँ ? मनुष्य की उत्पत्ति, उसकी अन्तिम गति और शक्तियाँ क्या हैं ? सृष्टि क्या है ? भारतवर्ष में जो नियम प्रचलित किये गये हैं उनमें किस सीमा तक परिवर्तन किया जाए कि वे पश्चिमी जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अनुकूल हो जाएँ। हमें यह जानना आवश्यक है कि इदानीन्तन आत्मवादियों से जिनकी संख्या लाखों हैं, मृत आत्मा के अस्तित्व की संज्ञापक घटनाओं, (Phenomena) कारणों, कार्यों, माध्यमों (वह लोग जिनके द्वारा मृत आत्माएँ अपने को प्रकट करती और बातचीत करती हैं) की प्रकृति और उसके हानि-लाभों के विषय में क्या कहें ? जीवित मनुष्य सदा से उस यवनिका को फाड़ फेंकने का यत्न करते देखे गये हैं जो क़ब्र और चिता के किनारे लटका हुआ है। मानवी हृदय सदा से यह आश्वासन पाने के लिए उत्कण्ठित रहा है कि मृत आत्माएँ उसकी सहानुभूति की पहुँच से बाहर तो नहीं चली गई हैं। न माता अपने मृत शिशुओं के विषय में यह समझ सकती है कि वे उसकी गोद से सदा के लिए अलग हो गये हैं, न पत्नी अपने मृत पति के विषय में और न प्रेमी अपनी मृत प्रणयिनी के विषय में नित्यवर्त्ती वियोग को समझ सकती है। यही उद्दीप्त और अतर्पणीय लालसा है जिसके सहारे पश्चिम का इदानीन्तम आत्मवाद इतना अधिक बढ़ गया है और उसके पोषकों का सबसे घोर विरोध हमें सहना पड़ा है। माध्यमों वा आत्मशरीर-प्रतीति- शक्ति-सम्पन्न लोगों की संख्या सहस्रों है, जिनकी शारीरिक बनावट वा आयस्कान्तिक उद्गारों की सहायता से अनेक प्रकार के बाह्य चमत्कारों की प्रवर्त्तक बुद्धिसम्पन्न सत्ताएँ लेख, वाणी, टकोरों, मृत आत्माओं की छायाओं द्वारा तथा अन्य प्रकार से बातचीत करती रही हैं। सहस्रों मनुष्य ऐसी सत्ताओं से जिज्ञासा करते हैं और लाखों मनुष्य यह विश्वास रखते हैं कि उनके मृत बन्धुजन स्वयं उनसे बातचीत करते हैं और वे अपने प्रकृतिमय रूप को दृष्टिगोचर करते हैं। हम पूछते हैं कि हमारा इन लोगों और उनकी रीति-नीति के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए हमारे वचन सुस्पष्ट, विशिष्ट और विश्वासजनक होने चाहिएँ। मैं आपके पत्र के उस भाग से जिसमें आप मृत पुरुषों को पुनर्जीवित करने, कुष्ठियों को अच्छा करने, पर्वतों को हटाने, चन्द्रमा के टुकड़े करने के चमत्कारों का उल्लेख करके कहते हैं कि इनसे धर्म के विरोधी भाव प्रकट होते हैं और उनसे अनेक अनिष्ट होंगे, मैं स्पष्ट समझता हूँ कि आप इन अलौकिक चमत्कारों को असत्य समझते हैं। आप इनको तत्त्वज्ञान के अध्ययन और मनुष्य की नैसर्गिक आत्मिक शक्तियों से बहुत नीच कोटि का समझते हैं। यह बुद्धिमत्ता है और हम उसे ऐसा ही मानते हैं,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु हर स्थान की जनता के समान यहाँ की जनता भी तत्त्वज्ञान से विमुख है और वह अलौकिक चमत्कारों के लिए लालायित रहती है। उसके हृदय को हम केवल कल्पना-शक्ति और इन्द्रियों के द्वारा ही प्रभावित कर सकते हैं। माध्यम उन्हें अलौकिक चमत्कार दिखाते हैं और हम उनके सामने तत्त्वज्ञान के वाद-विवाद रखते हैं जिन्हें वह स्वीकार नहीं करते। सम्भवतः हमने उत्तमोत्तम प्रणालियों का प्रयोग नहीं किया। यही विश्वास कि सम्भवतः ऐसा ही हो, शिक्षा और मार्गदर्शन के लिए हमें आपके चरणों में भेजता है।

७—मेरे विचार में बहुत ही उन्नति हो जाएगी यदि हम पश्चिम की जनता के सामने वैदिक तत्त्वज्ञान का अविकल देदीप्यमान और मनोरञ्जक स्वरूप रक्खेंगे। अमेरिका का एक अत्यन्त योग्य पत्र-सम्पादक जो हमारी सोसाइटी का सदस्य है और जिसके पत्र की ५०,००० प्रतियाँ बिकती हैं, कहता है कि वर्त्तमान काल में पूर्वीय धर्मों के विवरण की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि उससे यह प्रकट हो जाएगा कि ईसाइयों के विश्वास, कथामाला और कार्यकलाप कहाँ से चुराये गये हैं और प्रत्येक नूतन धर्म किस प्रकार आर्यधर्म से निकला है। हमारा एक और सदस्य, जो भाषाविज्ञान का पण्डित है और जो अंग्रेजी भाषा की उत्पत्ति और अन्तिम स्थान पर एक पुस्तक प्रकाशित करनेवाला है, कहता है कि ईसाई बिशप हीबर ने ज़न्द-अवस्था का अनुवाद करने में उसका अंगविच्छेद कर डाला है और उसने मुझसे प्रार्थना की कि जब तुम आर्यावर्त जाओ तो पश्चिम के भाषाविज्ञों के पास जातियों के उद्गम और परिभ्रमण तथा भाषाओं की उत्पत्ति का स्पष्टकर विवरण भेजना। पश्चिमवालों को पूर्ववालों से इतनी अधिक सीखने योग्य बातें हैं कि मैं नहीं जानता कि आपसे वे प्रश्न करने में अपनी लेखनी को कैसे रोकूँ ? मैंने पहले ही इतने प्रश्न कर दिये हैं कि यदि आप अपने अमूल्य समय का आधा भाग भी उनके उत्तर देने में व्यय करें तो भी पर्याप्त न हो, परन्तु आपके निकट और इर्दगिर्द बहुत-से पण्डित और आर्य विद्वान् रहते होंगे जो एक ही जन्मभूमि रखनेवाले और एक ही धर्म के माननेवाले होने के विचार से हमें बहुमूल्य सहायता देने पर सहमत होंगे। हम आपसे इतनी दूर हैं और शिष्य और गुरु के बीच पत्र द्वारा विचार प्रकट करने का ऐसा अकिञ्चित्कर और असन्तोषजनक ढंग है कि हममें से कई व्यक्ति अध्ययन तथा अपने लोगों में प्रचार-कार्यार्थ अपने को सज्जित करने के लिए अतिशीघ्र आर्यावर्त जाना सर्वथा आवश्यक समझते हैं कि जितना हम वहाँ दो वा तीन वर्षों में सीख सकें उतना यहाँ बीस वर्ष अध्ययन में व्यय करने पर भी न सीख सकेंगे। मनुष्य जीवन का अल्प होना हममें से उन्हें जो अधेड़ वा बूढ़े हैं, चेतावनी देता है कि यदि हम कुछ भलाई करना चाहते हैं तो हमें समय नष्ट न करना चाहिए। हम आपसे शुद्ध उत्कण्ठा, परन्तु सम्मान के साथ प्रार्थना करते हैं कि जब तक हम अमेरिका से प्रस्थान करें तब तक हमें उपर्युक्त विषयों में शिक्षा देवें।

८—और अब मैं आपको प्रणाम करता हुआ और आपके निरन्तर स्वास्थ्य और आनन्द के लिए प्रार्थना करता हुआ अपनी सारी सोसाइटी की ओर से आपकी आज्ञा लेकर अपना नामोल्लेख करना चाहता हूँ कि मैं हूँ आपका विनीत शिष्य और अनुगामी,

हेनरी एस० आल्काट प्रेसिडेण्ट
थियोसोफ़िकल सोसाइटी"

इस चिट्ठी को पढ़कर पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि पत्रलेखक एक स्थान में भी तो नहीं कहता, संकेत तक नहीं करता कि उसकी ईश्वर में आस्था नहीं है। इसके विरुद्ध वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि वह परम (तत्त्व) जिसका ध्यान करने और जिस तक अपनी उच्च कामनाओं को पहुँचाने का आप अपने शिष्यों को उपदेश करते हैं, वह वही अनादि ईश्वरतत्त्व है जिसका निर्देश हम ईसाइयों को कर रहे हैं। यहाँ पत्रलेखक अपने को उसी ईश्वर का उपासक बतलाता है जिसका महाराज उपदेश करते थे और जिसके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय में वे अपने सबसे पहले पत्र में उसे लिख चुके थे।

अपने निजू पत्रों में ही नहीं वरन् समाचार-पत्रों में भी कर्नल ने स्वामीजी को थियोसोफ़िकल सोसाइटी का धार्मिक गुरु और शिक्षक स्वीकार किया। २६ मई सन् १८७८ को एक पत्र उन्होंने न्यूयार्क से 'इण्डियन स्पेक्टेटर' के सम्पादक को लिखा जिसमें हमें ये शब्द मिलते हैं—

"थियोसोफ़िकल सोसाइटी ने इस बुद्धिसंगत धर्म को स्वीकार किया है और उसी का वह प्रचार करती है और इस बात ने कि (धर्म) उन सिद्धान्तों में विद्यमान है जिनकी माननीय स्वामी दयानन्द सरस्वती पण्डित व्याख्या करते हैं, हमें अपनी सोसाइटी को आर्यसमाज से सम्बद्ध करने और उसके प्रमुख को अपना सर्वोच्च धार्मिक शिक्षक, मार्ग-दर्शक और अधिनायक मानने और स्वीकार करने पर उद्यत किया है।" सरल और शुद्ध अन्तःकरण रखनेवाले, निष्कपट और सत्यपरायण स्वामीजी को और अन्य किसी को भी यह कैसे सन्देह हो सकता था कि यह सारा विनयभाव, भक्ति-प्रदर्शन, शिष्यत्व-स्वीकरण किसी अन्य ही उद्देश्य से है, अतः उन्होंने यह विश्वास कर लिया कि थियोसोफ़िकल सोसाइटी आस्तिकों का समुदाय है और वे वेद को मानते हैं। यह पत्र महाराज को ७ जुलाई सन् १८७८ को मिला जब वे अमृतसर थे और २६ जुलाई को रुड़की से इस पत्र का संस्कृत में उत्तर लिखा§ और बिना संकोच के थियोसोफ़िकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा बनाना स्वीकार कर लिया। यही नहीं, प्रमुख आर्यसमाजियों और समाजों को भी इसकी सूचना देनी आरम्भ कर दी। २७ जुलाई सन् १८७८ के पत्र में वे एक सज्जन को लिखते हैं कि "थियोसोफ़िकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा बन गई और अमेरिकावाले बराबर वेद को मानते हैं और उसी की शिक्षा के इच्छुक हैं"।‡ कर्नल के पत्र का उत्तर देने से पूर्व ही उन्होंने आर्यसमाज का थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सम्बन्ध करना निश्चित कर लिया था, क्योंकि ६ जुलाई १८७८ के पत्र में उन्होंने लाहौर आर्यसमाज के प्रधान और मन्त्री को लिखा था कि " परसों कई चिट्ठियाँ अमेरिका से आई हैं ..... आर्यसमाज थियोसोफ़िकल सोसाइटी के साथ लगाया गया और उसका नाम यह नियत हुआ है कि थियोसोफ़िकल सोसाइटी आफ़ दि आर्यसमाज आफ़ इण्डिया और यहाँ यह नियम रक्खा जाए कि आर्यसमाज आफ़ थियोसोफ़िकल सोसाइटी और मुद्रा भी खुदवानी चाहिए। .....आर्यसमाजों के प्रधान और मन्त्रियों की सूची बनाने की तैयारियाँ होने लगीं।"†

महाराज के [२६ जुलाई के] संस्कृत-पत्र का अनुवाद नीचे दिया जाता है—

स्वस्ति श्रीमद्वर्य गुणाढ्य, सबके हित करने की इच्छा रखनेवाले, विद्वानों के आचारयुक्त, एक ईश्वर की उपासना में तत्पर, ईश्वरोक्त वेदविद्या में उत्पन्न प्रीतिवाले, प्रियवर, पाताल देश के निवासी बन्धुवर्ग, आर्यसमाज के साथ एक सिद्धान्त को प्रकाशित करनेवाली थियोसोफिकल (सोसाइटी) के सभापति श्रीयुत हेनरी एस० आल्काट प्रधानादि तथा उक्त सभा के सब सभासदों को दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद हो।

यहाँ ईश्वर के अनुग्रह से कुशल है और आपकी कुशलता नित्य चाहते हैं।

श्रीमानों के भेजे हुए सब पत्र आर्यसमाज के प्रधान श्रीयुत हरिश्चन्द्र द्वारा मुझे मिल गये और उनमें लिखित वृत्तान्त को जानकर मुझे और यहाँ के प्रधान-मन्त्री और सभासदों को अत्यन्त आह्लाद हुआ। इस उत्तम कार्य में प्रवृत्ति के लिए ईश्वर को सहस्रशः धन्यवाद देना योग्य है कि जिस अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, सकल जगत् के स्वामी, सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न और धारण करनेवाले परमात्मा ने आप और हमारे समान पृथिवी के निवासी सब मनुष्यों पर जिनके मन बहुत समय से पाखण्ड मतों के दुष्ट उपदेश के प्रभाव से अन्धकारमय हो गये थे पूर्ण कृपा करके

---

§ यह मूलपत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ में पृष्ठ १०५-११४ तक छपा है।

‡ यह पत्र ऋषि के पत्र और विज्ञापनग्रन्थ में पृष्ठ ११४ पर छपा है।

† यह पत्र ऋषि के पत्रव्यवहार पृष्ठ १०३ पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनर्वार उस दुःख के निमित्तकारण कपटयुक्त मतों के विनाश के लिए स्वोक्त सब सत्यविद्याओं के कोश वेदों में प्रीति उत्पन्न की, अतः हम सब भाग्यशाली हैं। यह निश्चित जानकर वह अपने कृपाकटाक्ष से हमारे इस सर्वहितकारी कार्य को प्रतिक्षण उन्नत करे, हम यही प्रार्थना करते हैं।

१—श्रीमानों के भेजे हुए अपनी सभा के प्रमाणपत्र पर मैंने अपने हस्ताक्षर करके और मुद्रा लगा कर आपके पास वापस भेज दिया है वह आपको शीघ्र ही मिल जाएगा। आप यह जान लीजिए कि आपने जो लिखा है कि आर्यावर्त्तीय आर्यसमाज की शाखा थियोसोफ़िकल सोसाइटी (The Theosophical Society of the Arya Samaj of India.) यह नाम रहेगा, जो हमें भी स्वीकार है।

२—सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिए जिस प्रकार चारों वेदों की भूमिका में लिखी है। उसका यह संक्षेप है—

सब मनुष्यों को शुद्ध स्थान में बैठकर आत्मा, मन, प्राण और इन्द्रियों को समाहित करके सगुण और निर्गुण प्रकार से ईश्वर की उपासना करनी चाहिए।

इस उपासना के तीन अंग हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। इनमें से हरएक के दो-दो भेद हैं।

जिसमें ईश्वर के गुणों का कीर्तन किया जाता है यह सगुण स्तुति है। यथा—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजुः० अ० ४०। मं० ८

वह सर्वव्यापक है, वह बिना कालक्षेप के सब जगत् का कर्त्ता, अनन्त वीर्यवाला है, न्याय, सकल विद्यादि सत्य गुणों से युक्त होने के कारण पवित्र है, सर्वज्ञ, सबके आत्मा का साक्षी, सामर्थ्ययुक्त होने से सब जगह सबके ऊपर विराजमान है, अपने सामर्थ्य, योग और एकरस होने से सदा वर्त्तमान है। उसने सर्वदा एकरस वर्तमान जीवरूपी प्रजाओं के लिए वेदोपदेश से यथावत् अर्थों का उपदेश किया है। इस प्रकार सगुण रीति से सब मनुष्यों को उसकी स्तुति करनी चाहिए।

वह कभी भी जन्म लेने और शरीर धारण करने से अवयववाला नहीं होता, न उसमें कोई छेद (व्रण) होता है, वह पाप करके अन्यायकारी नहीं होता।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥

—अथर्व० कां० १३। अनु० ४। मं० १६, १७, १८, २०

यहाँ नौ नकारों से दो की संख्या से आरम्भ करके नौ की संख्या तक के वाच्य भिन्न ईश्वर का निषेध करके वेद एक ही ईश्वर का निश्चय करता है।

जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से सगुण और अपने विरुद्ध गुणों के अभाव से निर्गुण होते हैं वैसे ही ईश्वर भी अपने गुणों के भाव से सगुण और विरुद्ध गुणों के अभाव से निर्गुण है।

इस प्रकार जहाँ यह कहा जाता है कि ईश्वर ऐसा नहीं है, वह निर्गुण स्तुति जाननी चाहिए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ प्रार्थना

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ —यजुः० अ० ३२। मं० १४

हे अग्ने ! सर्वप्रकाशक ईश्वर ! जिस धारणावती बुद्धि को विद्वानों के समुदाय तथा विज्ञानी लोग उपासते (अपनाते) हैं, आप कृपा करके आज मुझे उसी बुद्धि और सत्य विद्यायुक्त भाषा से मेधावी कीजिए।

जिस मनुष्य ने विद्या और बुद्धि की याचना की उसने सभी शुभ गुणों की याचना की । इस प्रकार सगुण रीति से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए ।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।

आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ —ऋ० १।१०४।८

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ —ऋ० १।११४।७

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ —ऋ० १।११४।८

दुष्ट रोग, दोष और पापीजनों के दूर करनेवाले हे ईश्वर ! आप कृपा करके हमें न मारिए अर्थात् हमें अपने स्वरूप, आनन्द, विज्ञान, प्रेम, आज्ञापालन, शुद्ध स्वभाव से कभी दूर न कीजिए, आप हमसे दूर न रहिए, हमारे प्यारे, अभीष्ट भोगों से हमें पृथक् न कीजिए । हे सर्वशक्तिमन् ! आप हमारे गर्भों को भययुक्त न कीजिए, हे भगवन् ! हमारे सहज (स्वभाव) सम्बन्ध रखनेवाले सुख-साधनों को छिन्न-विच्छिन्न न कीजिए ।

हे रुद्र ! सब दुष्टकर्मशील जीवों को उनके कर्मों का फल देकर रुलानेवाले ईश्वर ! आप हमारे विद्यावृद्ध पुरुषों तथा हमारे छोटे जनों को न मारिए, उनका हमसे वियोग मत कीजिए । हे भगवन् ! हमारे विद्या और वीर्यसेचन में समर्थ पुरुषों तथा विद्या और वीर्यसिक्त जनों को तथा सद्गुणसम्पन्न अन्य वस्तुओं को नष्ट न कीजिए । हमारे पालन करनेवाले पिता और अध्यापकों को तथा हमारा मान्य करनेवाली माता वा विद्या का नाश न कीजिए, जो हमारे सुखरूप, लावण्य गुणयुक्त शरीर हैं, उनका नाश न कीजिए ।

हे सब रोगों का उच्छेद करनेवाले ईश्वर ! आप अपनी कृपा से हमारे छोटे पुत्रों को न मारिए, हमारी आयु को क्षीण न कीजिए, हमारी इन्द्रियों, गौओं, हमारे वेगवान् अग्नि आदि पदार्थों का नाश न कीजिए । पापों के करने से हमारे प्रति क्रोधित होकर आप हमारे वीर पुरुषों को न मारिए । हम सदा आप ज्ञानस्वरूप को ही ग्रहण करते हैं । इस प्रकार निर्गुण रीति से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए ।

अथ उपासना

न्याय, दया, ज्ञान, सबका प्रकाशक होने आदि गुणों से वर्तमान, सर्वत्र व्यापक, अन्तर्यामी परमेश्वर की जिस प्रकार स्तुति, प्रार्थना की गई है उसे वैसा ही निश्चय करके और उसमें आत्मा, मन और इन्द्रियों को स्थिर करके उसमें दृढ़ स्थिति रखना उसकी आज्ञा में सदा वर्तमान रहने का नाम सगुणोपासना है ।

सारे क्लेश, दोष, नाश, निरोध, जन्म, मरण, शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, मद, मात्सर्य, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि रहित परमेश्वर को जानकर, वह सर्वज्ञ होने से हमारे सब कर्मों को देखता है, यह भय करके सब प्रकार से पाप का न करना—इस प्रकार निर्गुणोपासना करनी चाहिए ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना, उपासना भेद से सगुण और निर्गुण लक्षणयुक्त तीन प्रकार की मानसी क्रिया को करके ईश्वर को उपासना चाहिए।

३—आर्य शब्द का अर्थ—जो अपनी विद्या, शिक्षा, सर्वोपकार, धर्माचरण से युक्त होने के कारण इस योग्य है कि लोग उसे जानें, उसकी संगति करें, उसे प्राप्त करें वह 'आर्य' है।

आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः। —पाणिनि अ० ६।२।५८

वेद और ईश्वर का ज्ञाता और उसकी आज्ञा का पालन करने से ब्राह्मणत्व होता है। आठवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्षपर्यन्त समय तक सुनियम में, जितेन्द्रिय रहकर विद्वानों के सत्संग, सुविचारों से वेद के अर्थों को सुनकर मनन और निदिध्यासन करके सब विद्याओं के ग्रहण करने के उद्देश्य से ब्रह्मचर्य का सेवन और तत्पश्चात् अपनी स्त्री से ऋतुकाल में समागम करना और पराई स्त्री का त्याग कुमारत्व है

इस अर्थ के वाचक ब्राह्मण और कुमार शब्द जब परे हों तो समानाधिकरण होने से उनके पूर्व स्थित आर्य शब्द का प्रकृति स्वर होता है। इस नियम के कारण आर्य शब्द के उपर्युक्त ही अर्थ जानने चाहिएँ।

विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। —ऋ० १।५१।८

वेदों के जाननेवालों ने वेदों में आर्य शब्द के अर्थ देखकर उत्तम पुरुषों का नाम आर्य रक्खा। जब सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव हुआ तो नाम रखने की इच्छा हुई। फिर ऋषियों ने वेद के अनुसार मनुष्य के दो भागों—श्रेष्ठ और दुष्ट के दो नाम रक्खे—श्रेष्ठों का आर्य और दुष्टों का दस्यु। इस मन्त्र में ईश्वर ने मनुष्य को आज्ञा दी है कि हे मनुष्य ! तू उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव और विज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ गुण, स्वभाव, कर्म का आचरण करनेवाले परोपकारी विद्वानों को आर्य जान और जो उनके विरुद्ध हैं, उन दुष्ट गुण, स्वभाव, कर्मों का आचरण करने, दूसरों की हानि करने में तत्पर रहनेवालों को दस्यु जान। इन व्रत में रहनेवाले, सत्याचरणादि युक्त आर्यों को सिद्ध कर और विद्या-शिक्षा आदि से उनका शासन कर और जो व्रत में न रहनेवाले, सत्याचरण के विरुद्ध आचरण करनेवाले हैं उनका नाश कर और उन्हें दण्ड दे।

इससे स्पष्ट है कि आर्यों के स्वभाव से विरुद्ध दस्यु और दस्युओं के स्वभाव से विरुद्ध आर्य होते हैं।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाया दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥ —ऋ० १।११७।२१

अध्वर्यू (दस्यु) दुष्ट मनुष्य को दग्ध करें और आर्य मनुष्य के लिए विद्या और शिक्षा से सिद्ध बहुत प्रकार का प्रकाश करें।

यहाँ भी आर्य, दस्यु मनुष्यों के ही नाम जानने चाहिएँ। ये दोनों नाम पूर्वकाल में मनुष्य सृष्टि के कुछ काल पीछे वेद के अनुसार विद्वानों ने रक्खे थे।

आदि सृष्टि हिमालय प्रान्त में हुई थी। जब वहाँ मनुष्यों की संख्या वृद्धि के कारण बहुत बड़ा समुदाय हो गया तो दो पक्ष हो गये, एक श्रेष्ठों का, दूसरा अश्रेष्ठों का। उनके स्वभावों की विरुद्धता के कारण उनमें विरोध हो गया। फिर जो आर्य थे वह इस देश में आ गये। फिर उनके सम्बन्ध से इस देश का नाम आर्यावर्त हो गया, क्योंकि आर्यावर्त के अर्थ हैं, वह देश जहाँ 'आर्य' रहते हों।

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं ब्रह्मनिर्मितं देशं आर्यावर्त्तं प्रचक्षते॥§
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥
—मनु० अ० २। श्लो० १७,२२

§ 'तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते'—वर्तमान मनुस्मृति में ऐसा पाठ है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्वानों के संग के कारण सरस्वती और दृषद्वती का नाम देवनदी है। जो सिन्धु नदी पश्चिम में है और उत्तर से दक्षिण दिशा में वर्तमान समुद्र को जाती है, उसी का नाम सरस्वती है। जो ब्रह्मपुत्रा नदी पूर्व दिशा में है और उत्तर दिशा से दक्षिण में वर्तमान समुद्र को जाती है उसी का नाम दृषद्वती है। इन दोनों नदियों के बीच में जिस देश की विद्वान् आर्य लोगों ने मर्यादा बाँधी है उस देश का नाम आर्यावर्त्त जानो। जिस देश की पूर्व की सीमा पूर्वीय समुद्र और पश्चिम सीमा पश्चिम का समुद्र है, उत्तर की सीमा हिमालय और दक्षिण की विन्ध्याचल पर्वत है, उसे ज्ञानी लोग आर्यावर्त जानते हैं। आर्यों की सभा वा समाज का नाम आर्यसमाज है। दस्युओं के भावों को त्यागकर आर्यों के गुणों को ग्रहण करने के लिए जो सभा हो वह भी आर्यसमाज का नाम प्राप्त करती है। इसके यह अर्थ हैं कि सब शिष्ट सभाओं का नाम आर्य रखना उनका परम भूषण है। इसमें कोई क्षति नहीं समझनी चाहिए।

४—यदि मनुष्य स्वयं सत्य शिक्षा, विद्या, न्याय, पुरुषार्थ, सौजन्य, परोपकार के आचरण करे तो उसे प्रयत्न करके अपने बन्धुवर्ग से भी वैसा ही आचरण कराना चाहिए। संक्षेपतः यह उत्तर है। इसका विस्तृत ज्ञान तो वेदादि शास्त्रों के अध्ययन और श्रवण से प्राप्त करना योग्य है और मैंने जो वेदभाष्य, सन्ध्योपासन, आर्याभिविनय, वेद-विरुद्ध मतखण्डन, वेदान्त-ध्वान्ति-निवारण, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आर्योद्देश्य-रत्नमाला आदि ग्रन्थ बनाये हैं, उनके देखने से भी वेद के उद्देश्य का ज्ञान हो सकता है।

५—जो चेतनत्व है वही जीवत्व है। जीव निश्चयरूप से चेतनस्वभाव है, जिसके लक्षण इच्छा आदि हैं। वह निराकार, अविनाशी और अनादि है। वह न कभी उत्पन्न होता है, न उसका कभी नाश होता है। इसका विचार वेदों में और आर्यों के रचे हुए ग्रन्थों में बहुत-सी युक्तियों द्वारा किया गया है। यहाँ विस्तारपूर्वक लिखने के अवकाश के अभाव से थोड़ा-सा ही प्रकाशित किया जाता है।

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। —यजुः० अ० ४०। मं० २

जीव का सौ वर्ष तक प्रयत्न करना धर्म है। जीने की इच्छा करे, यह इच्छा उसका लक्षण है।

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।

—यजुः० ३६।२३

इस मन्त्र में **'समित्रिया न आप ओषधयः सन्तु'** वाक्य से सुख की इच्छा करने से उसका सुख लक्षण प्रकट होता है। **'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु'** इस वाक्य से दुःख के त्याग की इच्छा करने से उसका दुःख लक्षण प्रकट होता है। **'योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः'** इस वाक्य से उसका द्वेष लक्षण प्रकट होता है।

वेदाहमेतं पुरुषम्। —यजुः० अ० ३१। मं० १८

इससे उसका ज्ञान लक्षण प्रकट होता है।

यतः जीव चेतनस्वरूप है, अतः जो-जो उसके अनुकूल होता है उससे उसे सुख का अनुभव होता है और वह सदा उसकी इच्छा करता है, जो-जो उसके प्रतिकूल होता है उससे उसे दुःख का अनुभव होता है, उससे वह द्वेष करता है और सुख की प्राप्ति और दुःख की हानि के लिए सदा प्रयत्न करता है। इनके अन्तर्गत जीव के और बहुत-से सूक्ष्म लक्षण हैं, यह समझना चाहिए।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति। —न्याय० १।१।१०

यह जानना चाहिए कि इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान जीवात्मा के लिंग (लक्षण) हैं।

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि। —वैशे० अ० ३। आ० २। सू० ४

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदरस्थ वायु को बाहर निकालना प्राण, बाहर की वायु को भीतर लेना अपान, नेत्रों का बन्द करना निमेष, खोलना उन्मेष, प्राण धारण करना जीवन, मन अर्थात् ज्ञान, फेंकना आदि का करना गति, किसी विषय में इन्द्रियों का लगाना वा हटाना, हृदय के अन्दर कार्य करना, क्षुधा, पिपासा, ज्वर, रोगादि विकार, धर्म का करना, अधर्म का करना, जाति (समष्टि) के अभिप्राय से एकत्व, व्यक्ति (व्यष्टि) के अभिप्राय से बहुत्व संख्या, पहले अनुभव का ज्ञान में अङ्कित रहना, संस्कार, परम सूक्ष्मत्व परिमाण, एक का दूसरे से भेद, मिलना संयोग, मिलकर अलग होना वियोग यह जीव के धर्म (लक्षण) हैं।

महाभारत में मोक्षधर्मान्तर्गत भरद्वाज के वचन में कहा गया है कि मानस अग्नि का नाम जीव है। इसका यह अर्थ समझना चाहिए कि जो मन अर्थात् अन्तःकरण में विद्यमान इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान के प्रकाश से संयुक्त पदार्थ हैं उसकी जीव संज्ञा है, परन्तु जीव, शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण से भिन्न चेतन है, क्योंकि वह अनेक अर्थों का एक साथ मेल करनेवाला है। जैसे मैंने जिसे कान से सुना था उसे आँख से देखता हूँ, जिसे आँख से देखा था उसे हाथ से छूता हूँ, जिसे हाथ से छूआ था उसे जिह्वा से चखता हूँ, जिसे जिह्वा से चखा था उसे नाक से सूँघता हूँ, जिसे नाक से सूँघा था उसे मन द्वारा जानता हूँ, जिसे मन से जाना था उसे चित्त से स्मरण करता हूँ, जिसे चित्त से स्मरण किया था उसका बुद्धि से निश्चय करता हूँ, जिसे बुद्धि से निश्चय किया था उसका अहङ्कार से अभिमान करता हूँ; इत्यादि प्रत्यभिज्ञाओं से जो वर्त्तमान है उस आत्मा का स्वरूप सबसे पृथक् है, यह जानना योग्य है, क्योंकि जो श्रोत्रादि मार्गों से, जो अपने-अपने विषय में ही वर्त्तमान रहते हैं और दूसरे विषयों से सम्बन्ध नहीं रखते, पृथक्-पृथक् ग्रहण किये हुए शब्दादि अर्थों का संधान करनेवाला है वही जीव है। कोई दूसरे के देखे हुए पदार्थ का स्मरण नहीं करता, न श्रोत्र का स्पर्श के ग्रहण करने में सामर्थ्य है, न त्वचा का शब्द के ग्रहण करने में, परन्तु जो कान से सुना हुआ घट का शब्द था मैं उसी को हाथ से छूता हूँ, जिससे पूर्व काल में देखे हुए पदार्थ के अनुसन्धान से फिर उसी अर्थ का पूर्वोक्त दर्शन प्रत्यभिज्ञा द्वारा वर्तमान काल में होता है उस उभयदर्शी, सब साधनों में व्यापक, सबके अधिष्ठाता, ज्ञानस्वरूप जीव का ही यह धर्म सिद्ध होता है। ऐसा मानना योग्य है।

इस प्रकार वेदशास्त्र के ज्ञान और समाधियोग में विचार करने से बहुत-से आर्यों को जीव के स्वरूप का ज्ञान हुआ, होता है और होगा।

६—जब जीवात्मा शरीर को छोड़ता है तब यह कहा जाता है कि मृत्यु हो गई, परन्तु इस देहाभिमानी जीव की मृत्यु शरीर से वियोग के बिना नहीं होती। शरीर छोड़कर यह आकाश में रहता है और ईश्वर की व्यवस्था से अपने किये हुए पाप-पुण्य के अनुसार दूसरे शरीर को प्राप्त करता है। शरीर को छोड़ने के पश्चात् जब तक यह आकाश में वा गर्भ में वा बालकपन की अज्ञ अवस्था में रहता है तब तक उसे कोई विशेष ज्ञान नहीं होता। उस समय उसकी सोये हुए वा मूर्च्छित जीव की-सी अवस्था होती है।

प्रश्न—यदि इसको बात करने, किवाड़ खटखटाने, दूसरे शरीर में प्रवेश करने का सामर्थ्य है तो फिर यह प्यारे स्थान, धन, शरीर, वस्त्र, भोजन, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र, भृत्य, पशु, यान आदि प्रिय वस्तुओं को क्यों प्राप्त नहीं कर लेता।

यदि यहाँ कोई यह कहे कि जब कोई किसी का सम्यक् प्रकार से ध्यान करे तो उस के समीप पहुँच जावे।

उत्तर—यहाँ हम यह कहते हैं कि जब किसी का कोई प्यारा मर जाता है तो फिर उसका दिन-रात सम्यग्ध्यान करने पर भी वह क्यों नहीं आ जाता। यदि कोई कहे कि पूर्व सम्बन्धियों के पास नहीं आता दूसरों के पास जाता है तो यह नहीं बन सकता, क्योंकि पूर्व सम्बन्धियों में ही प्रीति होती है जिनसे सम्बन्ध नहीं होता उनसे प्रीति देखने में नहीं आती।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस जगत् का स्वतन्त्र रूप से बिना अधिष्ठाता के होना सम्भव नहीं है, क्योंकि इस सबका अधीश्वर न्यायकारी, सर्वज्ञ, सब जीवों के पाप-पुण्य के फल का देनेवाला ईश्वर जागरूक रहता है, अतः श्रीमानों ने जो मृतक का प्रतिबिम्ब मेरे पास भेजा है उसमें निश्चय ही कपट और धूर्तता का व्यवहार है। जैसे एक इन्द्रजाली अपने चातुर्य से आश्चर्यकारी विपरीत व्यवहारों को सत्य व्यवहारों के समान दिखा देता है यह भी वैसा ही प्रतीत होता है। जैसे कोई सूर्य वा चन्द्रमा के प्रकाश में अपनी छाया के कण्ठ और शिर के ऊपर बिना पलक झपकाये स्थिर दृष्टि रखकर कुछ काल पश्चात् शुद्ध आकाश में ऊपर को बिना पलक झपकाये देखने से अपनी छाया से भिन्न उसके प्रतिबिम्ब की महती मूर्त्ति देखता है, ऐसे ही यह व्यवहार भी हो सकता है। संस्कृतविद्या में भूत शब्द से उस सशरीर प्राणी का ग्रहण होता है, जो होकर न रहे।

और जो निर्जीव देह सामने विद्यमान है जब तक उसका दाहादि नहीं किया जाता तब तक उसकी 'प्रेत' संज्ञा रहती है। यह आप्तवचन है कि ईश्वर के समान न कोई हुआ और न होगा।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥ —मनु० अ० ५। श्लो० ६५

मृत गुरु के शव का पितृमेध करनेवाला शिष्य प्रेतहारों के समान दश रात में शुद्ध होता है।

यहाँ भूत शब्द के अर्थ हैं भूतकाल में स्थित। 'प्रेतस्य', 'प्रेतहारैः' इनमें प्रेत शब्द का अर्थ मृतक के शरीर का है। जैसे यहाँ 'पितृमेधं समाचरन्' मरे हुए पितृ-शरीर के दाह के समान गुरु के मृत शरीर का दाह करना 'पितृमेध' संज्ञा को प्राप्त करता है, वैसे ही मृतकों के शरीर का विधिवत् दाह करना 'नृमेध' कहलाता है। इतना प्रसंगवश कहते हैं।

जैसा भूत, प्रेत में इदानीन्तनों का अभिप्राय है वैसा होना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह मूल से ही मिथ्या और भ्रान्तिरूप है। इस विषय में सन्देह नहीं है कि भूत, प्रेत हैं वा नहीं किन्तु हम निश्चयपूर्वक जानते हैं कि यह सब कपटजाल है। विस्तार करने की आवश्यकता नहीं। इतने से ही आप अधिक जान लेंगे।

७—जिस शिक्षा को आप मुझसे ग्रहण करना चाहते हैं वह परमार्थ और व्यवहार भेद से बहुत विस्तृत है, उसे पत्र द्वारा लिखना अशक्य है। वह संक्षेप में मेरे रचे हुए ग्रन्थों में लिखी हुई है और विस्तारपूर्वक वेदादि शास्त्रों में है, परन्तु इसका उत्तर देने के लिए मैंने श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को लिख दिया है कि मेरी बनाई हुई छोटी पुस्तिका आर्योद्देश्यरत्नमाला का अँग्रेजी भाषा में अनुवाद करके तुरन्त आपके पास भेज दें सो जानिए कि वह शीघ्र भेज देंगे। उसके देखने से संक्षेप में आपको सदुपदेश की शिक्षा हो आएगी।

८—वेदों के अनुसार नीचे लिखी रीति से मृतक की क्रिया करनी चाहिए। वह विस्तारपूर्वक संस्कारविधि में लिखी है, यहाँ भी उसे संक्षेप में लिखते हैं—

जब कोई मनुष्य मर जाए तो उसके शव को भली प्रकार स्नान कराकर उसपर सुगन्धित पदार्थों का लेप करें और मैले वस्त्र अलग करके सुगन्धियुक्त नये वस्त्रों से उसे ढक दें और श्मशान भूमि में ले-जाएँ। वहाँ इतना लम्बा खोदें जो ऊपर को हाथ उठाये खड़े मनुष्य के बराबर हो और इतना चौड़ा हो जितनी मनुष्य के दोनों हाथों को फैलाने से चौड़ाई होती है। जंघा के बराबर गहरा और नीचे से १२ अंगुल चौड़ा हो। ऐसी वेदि रचकर उसपर जल छिड़कें। जितना शरीर का बोझ हो उतना घी लेवें और उसे कपड़े में छानकर उसमें प्रति सेर एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केसर अच्छी भाँति मिलावें। चन्दन, पलाश, आम आदि की लकड़ी लेकर वेदि के गढ़े के बराबर उसके टुकड़े करके नीचे से आधी वेदि को उससे भर दें। उसके ऊपर बीच में शव को धरकर कपूर, गूगल, चन्दनादि का चूर्ण शव के चारों ओर बखेर दें। फिर उसपर वेदि के तट से १२ अंगुल ऊँची लकड़ी चुन दें और उसमें आग दे दें। थोड़ा-थोड़ा घी लेकर यजुर्वेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के उनतालीसवें अध्याय के प्रत्येक मन्त्र को बोलकर चारों ओर से जलावें। फिर जब शव भस्मीभूत हो जावे तो लौटकर किसी जलाशय में वा अपने-अपने घर में आकर स्नानादि करके निःशोक हो जावें और यथायोग्य अपने-अपने कार्य करें। फिर दाह के दिन से तीसरे दिन जब सब वेदि ठण्डी हो जावे तो वहाँ जाकर, अस्थिसहित सब भस्म को लेकर, किसी दूसरे शुद्ध देश में गढ़ा खोद कर, गढ़े में उसे रखकर गढ़े को मिट्टी से ढक दें। इतना ही वेदोक्त, सनातन, उत्तमोत्तम मृतकसंस्कार है, न इससे अधिक है, न इससे न्यून।

आपके मित्र के शरीर की जो अस्थि आपके पास है, उन्हें भी किसी जगह गढ़ा खोदकर, उसमें रखकर मिट्टी से ढक देना चाहिए।

६—दोनों पत्र आपके लिखे अनुसार इंग्लैण्ड देश भेज दिये गये।

१०—जब आपका निश्चय हो जाए तब सभा के नाम में परिवर्त्तन कर दीजिए। विद्वानों की सभा का यह नियम है कि जब कोई नया कार्य करना हो तो उसे उत्तम और विद्वान् सभासदों से निवेदने करके उनकी अनुमति से करना चाहिए। सभा का जो कार्य सबके उपकार के विरुद्ध हो उसे कभी न करना चाहिए। जिस कार्य का फल परिणाम में आनन्द हो उसे यथासमय बिना विलम्ब के पुरुषार्थ से करना चाहिए, अतः जब अवसर प्राप्त हो तो वहाँ की सभा का नाम आर्यसमाज रखने में मेरी समझ में कोई हानि नहीं है।

११—आगे को श्रीमान् जो पत्र मेरे पास भेजें, वह मेरे ही नाम से भेजें, परन्तु पूर्व लिखित श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि के द्वारा ही भेजें अर्थात् पत्र के ऊपर मेरा और लिफ़ाफ़े के ऊपर श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि का नाम लिखकर भेजें।

सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्वशक्तिमान्, दयासागर, न्यायाधीश परब्रह्म को असंख्य धन्यवाद देने चाहिएँ कि जिसकी कृपा से आपके साथ हमारा और हमारे साथ आपकी सम्प्रीति और उपकार का समय प्राप्त हुआ इस अमूल्य समय को पाकर आप और हम ऐसा प्रयत्न करें कि भूगोल में पाखण्ड मत, पापाचरण, अविद्या, दुराग्रह आदि दोषों के दूर होने से वेद, प्रमाण, सृष्टिक्रम के अनुकूल एक सनातन, सत्य मत फैले।

पत्र द्वारा बहुत ही थोड़ा कार्य होता है। जब तक आमने-सामने परस्पर बात-चीत नहीं होती तब तक पूरा लाभ नहीं होता, परन्तु हमें आशा है कि जिस परमेश्वर के अनुग्रह से पत्र द्वारा बातचीत हुई है उसकी ही कृपा से कभी हमारा साक्षात् समागम भी होगा। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पुरुषों को अधिक लिखने से क्या ?

श्रावण वदी ११ शुक्रवार संवत् १९३५, अर्थात् २३ जुलाई सन् १८७८ ई०।

इस पत्र को पढ़ने के पश्चात् किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि स्वामीजी निम्न बातों को मानते थे—

१—परमेश्वर एक है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, निराकार, निर्विकार, अविनाशी, अनादि, अनन्त, न्यायकारी, दयालु, जीवों को उनके पाप-पुण्य के अनुकूल अपनी न्याय-व्यवस्था से अशुभ और शुभ फल देनेवाला, जन्म-मरण के बन्धन में न आनेवाला, सृष्टिकर्त्ता, धारण और संहार करनेवाला है। उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी योग्य है।

२—जीव अनादि, अविनाशी है। वह इस वर्त्तमान शरीर को छोड़ने के पश्चात् ईश्वर की न्याय-व्यवस्था से अपने कर्मानुसार शरीरान्तर को प्राप्त होता है।

३—मनुष्य मरने के पश्चात् भूत वा प्रेत बनकर कोई कार्य नहीं कर सकता, न वह अपनी छाया को ही प्रकट कर सकता है, न किसी माध्यम द्वारा उसका जीवात्मा बुलाया जा सकता वा बात-चीत आदि कर सकता है, यह सब धूर्त्तों का फैलाया हुआ कपटजाल है। जीदू-टोना भी मिथ्या है।

४—वेद ईश्वरोक्त हैं और सर्वसत्यविद्यायुक्त और धर्म-विषय में परम प्रमाण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी का उपर्युद्धृत पत्र कर्नल को अवश्यमेव अगस्त सन् १८७८ की किसी तारीख को मिल गया होगा। इस पत्र के पाने के पश्चात् वह कई मास अमेरिका में रहे, परन्तु उन्होंने एक पत्र में भी स्वामीजी के उपर्युक्त मन्तव्यों से मतभेद प्रकट नहीं किया।

स्वामीजी को कर्नल के पत्रों से यह पक्का विश्वास हो गया था कि थियोसोफ़िस्ट लोगों के वही सिद्धान्त हैं जो आर्यसमाज के हैं। उन्होंने अपनी २७ जुलाई सन् १८७८ की चिट्ठी में राय मूलराज एम०ए०§ को लिखा था कि अमेरिकावाले बराबर वेद को मानते है और उसकी शिक्षा के इच्छुक हैं और यही कारण था कि वे थियोसोफ़िकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा बनाने पर सहमत हो गये।

१५ फ़रवरी सन् १८७९ को मैडम और कर्नल बम्बई पहुँच गये और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उन्हें अपने ही बंगले पर ठहराया। जहाज़ से उतरने पर उन्होंने देखा कि केवल १०-१२ मनुष्य ही उनके स्वागत को आये हैं। इससे उन्हें कुछ खेद हुआ, क्योंकि वे समझते थे कि सोसाइटी का आर्यसमाज से सम्बन्ध हो जाने से आर्यसमाज के सदस्य उनका बड़े उत्साह और समारोह से स्वागत करेंगे। उनकी खिन्नता और भी बढ़ गई जब उन्होंने देखा कि अन्य सम्प्रदायों—जैन, हिन्दू, पारसी आदि के लोग तो उनसे मिलने आते हैं, परन्तु आर्यसमाज के सभासद् नहीं आते। उन्होंने अनुसन्धान किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि हरिश्चन्द्र ने ७००) रु० जो उन्होंने उसके पास भेजा था आर्यसमाज मुम्बई को नहीं दिया है और न किसी को यह बतलाया है कि आर्यसमाज के लिए अमेरिका से रुपया आया है और इस बात को गुप्त रखने के लिए स्वयं उसने आर्यसमाज के सभासदों को उनसे मिलने से रोक दिया है। मैडम और कर्नल को हरिश्चन्द्र के कपटपूर्ण व्यवहार से बहुत दुःख हुआ। वह आर्यसमाज का सभापति था और थियोसोफ़िकल सोसाइटी का भी सदस्य बन गया था, उनमें और स्वामीजी में पत्रव्यवहार भी उसके ही द्वारा होता था, जो रुपया आया था वह उसकी प्राप्ति भी स्वीकार करता रहा था, अतः वह उनका विश्वासपात्र बन गया था और उन्हें उसपर अविश्वास करने का कोई कारण न था। जब उसने उनके साथ यह विश्वासघात किया तो स्वभावतः ही उन्हें दुःख होना था। उन्होंने हरिश्चन्द्र से रुपये वापस माँगे तो वह बहुत चकराया और इधर-उधर की बातें बनाने लगा। जब उसकी कोई बात न चली तो अन्त में उसने कहा कि मैंने यह रुपया इसलिए नहीं दिया था कि स्वयं स्वामीजी ने मुझे ऐसी आज्ञा दी थी। उसका यह कथन सर्वथा मिथ्या था। महाराज ने २५ मई १८७९ के पत्र में अलीगढ़ से अपने कार्यकर्त्ता मुंशी समर्थदान को स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि "हमें हरिश्चन्द्र ने एक बार लिखा था कि अमेरिकावाले कुछ धन भेजना चाहते हैं। उसके पश्चात् जब वह हमसे मिला तो हमने उससे कह दिया था कि इस बात को सर्वसाधारण में और विशेषतः आर्यसमाजियों में प्रचरित कर दो कि अमेरिकावाले आर्यसमाज को सहायता के लिए धन भेजना चाहते हैं और जो धन आये उसे दाताओं के नामसहित पत्रों में मुद्रित करा दो। उसने यह उत्तर दिया था कि मैं अमेरिकावालों की इच्छा के अनुसार कार्य करूँगा। हमने उससे कह दिया था कि जो धन प्राप्त हो उसे तीन कार्यों में व्यय करना—(१) वेदों के सम्बन्ध में ज्ञान और पुस्तक-प्रचार में, (२) सदाचार की शिक्षा देनेवाली सभाओं की सहायता में और (३) दीन-दरिद्रों की सहायता में, परन्तु अब ज्ञात होता है कि उसने इन कार्यों में से एक भी नहीं किया।"‡

हरिश्चन्द्र को कर्नल के आग्रह पर वह रुपया लौटाना पड़ा। उधर आर्यसमाज मुम्बई ने चैत्र शु० १

---

§ ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन ग्रन्थ पृष्ठ ११४ के अनुसार यह पत्र बाबू दयाराम को लिखा गया था। हो सकता है मूलराज एम०ए० को भी लिखा हो, परन्तु उपलब्ध नहीं। —संग्रहकर्त्ता

‡ यह पूरा पत्र था, पत्रांश ऋषि के व्यवहार में नहीं छपा। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सं० १९३६ को एक विशेष अधिवेशन में प्रस्ताव स्वीकार करके उसे आर्यसमाज से निकाल दिया। तब उसने यह कहना आरम्भ किया कि आर्यसमाज के सभासदों के घृणित बर्ताव से मैंने आर्यसमाज के सभापतित्व को स्वयं त्याग दिया है और मैडम के क्रूर स्वभाव के कारण मेरा सम्बन्ध उनसे भी शिथिल हो गया है। इसी आशय का एक पत्र उसने थियोसोफ़िकल सोसाइटी न्यूयार्क के कॉरेस्पांडिंग सेक्रेटरी डब्ल्यू०क्यू० जज को २४ मार्च सन् १८७९ को लिखा और नेटिव ओपिनियन नामक समाचार-पत्र में भी ऐसी ही निराधार बातें प्रकाशित कराईं। तब तो कर्नल को प्रकाश्यरूप से हरिश्चन्द्र की सारी पोल खोलनी पड़ी, जिससे जनता को सत्य-सत्य वृत्तान्त ज्ञात हो गया।

हरिश्चन्द्र एक कुशल फ़ोटोग्राफ़र था और इस मिष से उसे राजा-महाराजाओं, सम्भ्रान्त व्यक्तियों और उच्च पदस्थ अंग्रेजों से मिलने का अवसर प्राप्त होता रहता था। वह सुधार तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों में अग्रभाग लेने का दिखावा किया करता था। भगवद्गीता पर उसने एक भाष्य भी लिखा था जिसे लोगों ने पसन्द किया था। इस प्रकार समाज में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, परन्तु इस नीच कार्य से उसकी वैसी ही अप्रतिष्ठा हो गई। इण्डियन स्पेक्टेटर ने तो उसकी ऐसी धूल उड़ाई कि उसे मुम्बई में मुख दिखाना दूभर हो गया और अन्त को वह इंग्लैण्ड चला गया। महाराज ने वेदभाष्य का चन्दा प्राप्त करने का कार्य भी हरिश्चन्द्र को ही सौंप रक्खा था। उसमें भी उसने बहुत गड़बड़ की थी। वह काम भी महाराज ने उससे निकाल लिया और मुं० समर्थदान को उससे हिसाब लेने को भेजा, परन्तु वह डेढ़ मास तक टालमटोल करता रहा और फिर भी उसने हिसाब साफ़ न किया।

कर्नल और मैडम के मुम्बई पहुँचने के चार दिन के पश्चात् ही महाराज संवत् १९३५ के कुम्भ पर वैदिक धर्म प्रचारार्थ २० फ़र्वरी सन् १८७९ को ज्वालापुर पहुँच गये थे। उन्हें दोनों महानुभावों के आगमन का समाचार मिल गया था, अतः उन्होंने मुं० समर्थदान को १० मार्च सन् १८७९ को एक चिट्ठी लिखी कि मुम्बई जाकर अमेरिकावालों से मिलना और उनका समाचार लिखना।

कर्नल और मैडम ने महाराज को लिखा कि हम आपसे मिलने आते हैं, परन्तु उन्होंने यह समझकर कि मेले के जमघट में कर्नल और मैडम को वृथा कष्ट होगा उत्तर दे दिया था कि आप यहाँ आने का कष्ट न करें, हम स्वयं ही आपसे मिल लेंगे।

कर्नल और मैडम की आर्यसमाज मुम्बई के सभासदों ने बड़े प्रेम से सेवा-शुश्रूषा की और उनके कई व्याख्यान कराये जिन्हें सुनने के लिए सहस्रों मनुष्य आते थे। वे व्याख्यान मुद्रित भी हुए थे। उनमें भी उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं कही जिससे यह पाया जाता कि उनका महाराज से सिद्धान्तविषय में कोई मतभेद है।

महाराज को हरिद्वार में दस्तों का रोग हो गया और वे वहाँ से देहरादून चले गये। अभी महाराज देहरादून ही थे कि मैडम और कर्नल २९ अप्रेल सन् १८७९ को मुम्बई से चलकर सहारनपुर पहुँच गये। आर्यसमाज सहारनपुर के सदस्यों ने उनका प्रेमपूर्वक आतिथ्य सत्कार किया। ३० अप्रेल को उनका एक व्याख्यान इस विषय पर हुआ कि अमेरिका में हमसे कैसा बर्ताव किया जाता है और हम अमेरिका से भारतवर्ष क्यों आये हैं ? सायंकाल को आर्यसमाज ने उन्हें देशी ढंग पर भोज दिया जिसे उन्होंने सहर्ष खाया। उन्होंने सहारनपुर से महाराज को तार दिया कि हम आपकें दर्शनार्थ देहरादून आते हैं, परन्तु महाराज ने उन्हें उत्तर दिया कि आपको यात्रा में कष्ट होगा हम स्वयं ही सहारनपुर आते हैं। तदनुसार वैशाख शु० १० सं० १९३५=१ मई सन् १८७९ को महाराज सहारनपुर पहुँच गये। २ मई को वहीं रहे और ३ मई को कर्नल और मैडम् को साथ लेकर मेरठ चले गये। आर्यसमाज के सदस्यों ने रेलवे स्टेशन पर उनका स्वागत किया और कर्नल और मैडम को एक बँगले में और महाराज को दूसरे बँगले में ठहराया। बाबू

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छेदीलाल की कोठी पर सायंकाल उन्हें भोज दिया गया जिसमें सब भोज्य द्रव्य निरामिष और देशी ढंग का था। कर्नल और मैडम सबसे मिलते समय 'नमस्ते' कहते थे। ४ मई को महाराज का व्याख्यान ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना और उपासना के विषय पर हुआ। व्याख्यान के अन्त में कर्नल ने खड़े होकर कहा कि यदि आप लोग कल पधारें तो मैं कुछ अपने विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ। तदनुसार ५ मई को विज्ञापन देकर कर्नल का व्याख्यान कराया गया। उसमें उन्होंने पहले तो अमेरिका का कुछ वर्णन किया। बहुत-सी बातों में वहाँ की प्रशंसा करके कहा कि धार्मिक विषय में वहाँ और समस्त यूरोप में ईसाई मत और पादरियों के कारण घोर अन्धकार फैल रहा है, अतः हमने ५ वर्ष से न्यूयार्क में एक सोसाइटी—थियोसोफ़िकल सोसाइटी के नाम से स्थापित की है और स्वामीजी को अपना गुरु और मार्गदर्शक निर्वाचित किया है। हमें आशा है कि उनके चरणों की कृपा से हम अपने उद्देश्य में सफल होंगे, इत्यादि।

जब सभा विसर्जित हो गई तो आर्यसमाज के सदस्य, दश ईसाई और चार यूरोपियन, जिनमें एक गवर्नमेण्ट हाईस्कूल के हैडमास्टर थे, बैठे रह गये। मैडम ने ईसाइयों को लक्ष्य करके कहा कि जो कुछ पूछना हो पूछिए, परन्तु किसी ने कोई प्रश्न न किया। यूरोपियन हैडमास्टर ने कुछ प्रश्न किये जिनके सन्तोषजनक उत्तर पाकर वे चुप हो गये।

कर्नल और मैडम से जो बात-चीत महाराज की सहारनपुर और मेरठ में हुई उससे महाराज को पूर्ण विश्वास हो गया कि दोनों महानुभाव वैदिक धर्म के अनुयायी हैं, जिसका प्रमाण यह है कि जब ७ मई को दोनों व्यक्ति मुम्बई चले गये तो ८ मई को महाराज ने आर्यसमाज शाहजहाँपुर के मन्त्री को एक पत्र लिखा इसमें उनकी बहुत प्रशंसा की। उस पत्र का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

हमें "ज्ञात हुआ कि जैसे उन (कर्नल और मैडम) के पत्रों से उनकी बुद्धि प्रकट होती है उनके मिलने से सौ गुनी अधिक योग्यता प्रकट हुई और उनकी अत्यन्त सभ्यता भी हमें प्रकट हुई।" सहारनपुर और मेरठ में उनसे लोगों के मिलने, प्रश्नोत्तर करने आदि का उल्लेख करते हुए महाराज लिखते हैं कि "जिस किसी ने सत् शास्त्रों में जो कुछ शङ्का की उसका उत्तर सत्यार्थ मिलता रहा, अर्थात् अमेरिकावाले साहबों ने सबके चित्त पर निश्चय कर दिया कि जितनी भलाई और विद्या है वह सब वेदों से ही मिल सकती है और जितने वेदविरुद्ध मत हैं वे सब पाखण्डी हैं। .....उक्त साहबों से जो हमारा समागम हुआ है यह इस आर्यावर्त्त आदि देशों के मनुष्यों की उन्नति का कारण है। जैसेकि एक परम ओषधि के साथ सुपथ्य का मेल होने से शीघ्र ही रोग का नाश हो जाता है, इसी प्रकार के समागम से आर्यावर्तादि देशों में वेदमत का प्रकाश होने से असत्यरूपी रोग का नाश शीघ्र ही हो जावेगा और उक्त साहबों का आचरण और स्वभाव हमको अत्यन्त शुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि ये लोग तन, मन, धन से सब प्रकार वेदमत की सहायता करने में उद्यत हैं। जो बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उक्त साहबों के विषय में यह बात उड़ा दी थी कि ये लोग जादू जानते हैं और जालसाज़ों की भाँति छल-कपट की बातें करते हैं यह सब बात उनकी मिथ्या ही है, क्योंकि जिसको जादू कहते हैं वह सीधे रास्ते में पदार्थविद्या है। उस विद्या को मूर्ख लोगों ने जादू समझा है। उन्होंने मूर्खों के भ्रम दूर करने के लिए और सन्मार्ग में चलाने के लिए धारण किया है कुछ दोष नहीं है।" अन्त में महाराज लिखते हैं कि "इन साहबों के पूर्व पत्रों और सात दिन की बातचीत करने से निश्चय हो गया है कि इनका तन, मन और धन सत्य के प्रकाश और असत्य के नाश करने और सब मनुष्यों के हित करने में है जैसाकि अपने लोगों का सर्वथा निश्चय से उद्योग है।"§

§ लगभग यही पत्र बाबू माधोप्रसादजी दानापुरवालों को लिखा था। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ १५६-१५८ तथा १५८ की टि० १। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फिर ५ मई १८७६ के पत्र में महाराज ने मेरठ से मुम्बई को लिखा है कि "साहब (कर्नल) की और हमारी सम्मति मिल गई है, किसी प्रकार का भेद नहीं है और जो कुछ हरिश्चन्द्र ने उनके चित्त में शङ्का डाली थी वह सब निवृत्त हो गई है। साहब अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण सज्जन पुरुष हैं। उनमें किसी प्रकार का छल-छिद्र नहीं है, परन्तु हरिश्चन्द्र ने ऐसा कपट किया कि जिसका हम कथन नहीं कर सकते हैं, परन्तु अब सावधान रहना चाहिए।"§

फिर एक पत्र में, जो ५ मई का ही है, महाराज लिखते हैं कि "उक्त साहबों की अपने समाज से कोई बात विरुद्ध नहीं है, अर्थात् अनुकूल आचरण-स्वभाव है, क्योंकि चार-पाँच दिन से जो हम उनके साथ बात-चीत करते रहे हैं तो ये लोग सर्वथा शुद्ध अन्तःकरण प्रतीत होते हैं और थियोसोफ़िकल सोसाइटी में जो हमारा नाम लिखा गया है यदि तुम उस पत्र को भेज देते तो हम साहब को दिखला देते, परन्तु ज़बानी जो साहब से कहा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि हमारी थियोसोफ़िकल सोसाइटी का अभी तक यह प्रयोजन था कि सब मतों के लोग उसमें प्रविष्ट हों और अपनी-अपनी सम्मति देवें। अब आर्यसमाज के नियमों को समझकर जिस प्रकार आपकी आज्ञा होगी उसी प्रकार किया जाएगा। आगे को ऐसा न होगा और जो आर्यसमाज के नियमों को पसन्द नहीं करता है, वह थियोसोफ़िकल सोसाइटी में नहीं रहेगा।"‡

इसके पश्चात् १५ दिसम्बर सन् १८७६ तक कर्नल और मैडम का साक्षात्कार महाराज से नहीं हुआ। १५ दिसम्बर सन् १८७६ को उक्त दोनों महानुभाव महाराज से काशी में महाराजा विजयनगर के बाग़ में मिले। उनके साथ मिस्टर सिनेट इलाहाबाद के दैनिक अंग्रेजी पत्र पायोनियर के सम्पादक और एक यूरोपियन महिला भी थीं। आपस में योग-विषय पर बात-चीत हुई। इस बार मिस्टर बाल मैजिस्ट्रेट काशी ने महाराज के व्याख्यानों को बन्द कर दिया था और उस अनुचित आज्ञा को हटवाने में कर्नल और मि० सिनेट ने विशेष यत्न किया। कर्नल के कई व्याख्यान काशी में हुए जिनमें उन्होंने मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की और अपने व्याख्यानों में यहाँ तक कहा कि वेद जैसा प्राचीन और ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। इसी वेद से सब जगह ज्ञान फैला है। .....हमारी सभा में सब धर्मवाले सम्मिलित हो सकते हैं, परन्तु वे नहीं जो ईश्वर और परलोक को नहीं मानते। इन्होंने थियोसोफ़िस्ट नाम का एक अंग्रेज़ी पत्र निकाला उसके आरम्भ और अन्त में 'नमस्ते' शब्द रहता था। यहाँ तक भी कर्नल और मैडम ने किसी शब्द, कर्म वा संकेत द्वारा यह प्रकट नहीं किया कि वे वेदानुयायी वा ईश्वर में विश्वास रखनेवाले नहीं हैं, परन्तु कुछ काल पश्चात् आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सम्बन्ध के विषय में जनता में कुछ भ्रम फैलने लगा, अतः उसकी निवृत्त्यर्थ महाराज ने २६ जुलाई सन् १८८०=श्रावण वदी ५ सं० १९३७ को मेरठ से निम्न विज्ञापन 'विशिष्ट विज्ञापन' के नाम से प्रचरित किया।

† सब सज्जनों को विदित हो कि आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी का जैसा सम्बन्ध है वैसा प्रकाशित कर देना मुझे अत्यन्त उचित इसलिए हुआ कि इस विषय में मुझसे बहुत मनुष्य पूछने लगे और इसका ठीक आशय न जान उलटा निश्चय कर कहने लगे कि आर्यसमाज थियोसोफ़िकल सोसाइटी की शाखा है, इत्यादि भ्रम की निवृत्ति कर देनी आवश्यक हुई। जो ऐसी-ऐसी बातों के प्रसिद्ध रीति से उत्तर न दिये जाएँ तो बहुत मनुष्यों का अत्यन्त भ्रम बढ़कर विपरीत फल होना सम्भव हो जाए। इसलिए सब आर्यों और अनार्यों को उसका सत्य-सत्य वृत्तान्त विदित करता हूँ कि जिससे सत्य की दृढ़ता और भ्रमोच्छेद होके सबका

---

§ यह पूरा पत्र ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ट १५४ पर छपा है।

‡ यह पत्र ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार पृष्ठ १५५ पर छपा है।

† यह विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २१६ पर छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही आनन्द सदा बढ़ता जाए। बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, जो किसी समय मुम्बई आर्यसमाज के प्रधान थे, उनसे न्यूयार्क नगर अमेरिका की थियोसोफ़िकल सोसाइटी के प्रधान कर्नल एच० एस० आल्काट साहब बहादुर और मैडम एच०पी० ब्लैवेट्स्की आदि से कुछ दिन आगे पत्र द्वारा एक दूसरी सभा के नियम आदि जानके सं० १६३५ के चैत्र में मेरे पास भी पत्र न्यूयार्क से आया था कि हमें भी आर्यावर्त्तीय प्राचीन वेदोक्त धर्मोपदेश विद्या-दान कीजिए। मैंने उसके उत्तर में अत्यन्त प्रसन्नता से लिखा कि मुझसे जितना उपदेश बन सकेगा यथावत् करूँगा। इसके पश्चात् उन्होंने एक डिप्लोमा मेरे पास भेजा कि जो थियोसोफ़िकल सोसाइटी आर्यावर्तीय आर्यसमाज की शाखा करने के विचार के निमित्त था। जब वह डिप्लोमा फिर यहाँ से वहाँ गया तो सभा करके सभासदों को सुनाया तब बहुत-से सभासदों ने इस बात से प्रसन्न होकर उसको स्वीकार किया और बहुतों ने कहा कि हम ठीक-ठीक जानने के पश्चात् इस बात को स्वीकार करेंगे।

जब वहाँ ऐसा विरुद्ध पक्ष हुआ तब फिर मेरे पास वहाँ से पत्र आया कि अब हम क्या करें ? इसपर मैंने पत्र लिखा कि यहाँ आर्यावर्त में अब तक भी बहुत मनुष्य आर्यसमाज के नियमों को स्वीकार नहीं करते, थोड़े-से करते हैं तो वहाँ वैसी बात के होने में क्या आश्चर्य है ? इसलिए जो मनुष्य आर्यसमाज के नियमों को अपनी प्रसन्नता से मानें वे वेदमतानुयायी और जो न मानें वे केवल सोसाइटी के सभासद् रहें, उनका अलग होना अच्छा नहीं, इत्यादि विषय लिखके मैंने बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास पत्र भेजा और उनको लिखा कि इस पत्र की अंग्रेज़ी कराके शीघ्र वहाँ भेज दीजिए, परन्तु उन्होंने वह पत्र न्यूयार्क में न भेजा। जब समय पर पत्र का उत्तर वहाँ न पहुँचा तब जैसा उत्तर मैंने दिया था वैसा ही वहाँ दिया गया कि जो वेदों को पवित्र सनातन ईश्वरोक्त मानें वे वेद की शाखा में गिने जाएँ और आर्यसमाज की शाखा में रहें, परन्तु वे सोसाइटी की भी शाखा में रहें, क्योंकि वह सोसाइटी के एक अङ्गवत् हैं, अर्थात् न आर्यसमाज थियोसोफ़िकल सोसाइटी की शाखा और न थियोसोफ़िकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा है, ऐसा सब सज्जनों को जानना उचित है। इससे विपरीत समझना किसी को योग्य नहीं। देखिए यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस समय मुम्बई में आर्यसमाज का स्थापन हुआ उसी समय न्यूयार्क में थियोसोफ़िकल सोसाइटी का आरम्भ हुआ। जैसे आर्यसमाज के नियम लिखके माने गये वैसे ही नियम थियोसोफ़िकल सोसाइटी के निश्चत हुए और जैसा उत्तर मैंने तीसरे पत्र में लिखके वेद की शाखा और सोसाइटी के लिए भेजा था उसके पहुँचने के पूर्व ही न्यूयार्क में वैसा ही कार्य किया गया। क्या यह सब कार्य ईश्वरीय नियम के अनुसार नहीं हैं ? क्या ऐसे कार्य अल्पज्ञ जीव के सामर्थ्य से बाहर नहीं हैं कि जैसे कार्य पृथिवी के ऊपर जिस समय में हों वैसे ही भूमि के तले अर्थात् अमेरिका में उसी समय हो जाएँ ? यह बड़ी अद्भुत बातें जिसकी सत्ता से हुई हैं, अर्थात् ५ सहस्र वर्षों के पश्चात् आर्यवर्तीय धार्मिक मनुष्यों और पातालस्थ अर्थात् अमेरिका निवासी मनुष्यों का वेदोक्त सनातन सुपरीक्षित धर्म व्यवहारों में बान्धवीय प्रेम प्रकट किया है, उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा को कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूँ कि हे सर्वशक्तिमन्, सर्वव्यापक, दयालो, न्यायकारिन्, परमात्मन् ! जैसा आपने कृपा से वह कृत्य किया है वैसे भूगोलस्थ सब धर्मात्मा व विद्वान् मनुष्य को उसी वेदोक्त सन्मार्ग में स्थिर शीघ्र कीजिए कि जिससे परस्पर विरोध छूटकर मित्रता होके सब मनुष्य एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् होके अन्यों का सदा उपकार किया करें। वैसा ही हे मनुष्यो ! आप लोग भी उसी परब्रह्म की प्रार्थनापूर्वक पुरुषार्थ करें कि जिससे हम सब लोग एक-दूसरे को दुःखों से छुड़ाते और आनन्द से युक्त रहें। .....

ओ३म् मिति श्रावण वदि ५ सोमवार संवत् १६३७

हस्ताक्षर स्वामी दयानन्द सरस्वती।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१० सितम्बर सन् १८८० को कर्नल और मैडम महाराज से भेंट करने मेरठ आये, जहाँ महाराज पहले से विराजमान थे। उन्होंने योग-विषय में महाराज से प्रश्नोत्तर किये। प्रसंग ऐसा था कि जिसमें ईश्वर का विषय आना आवश्यक था। जब इन्होंने ईश्वर के अस्तित्व में कुछ सन्देह प्रकट किया तो महाराज एकदम विस्मित हो उठे। जिन्हें वे अब तक ईश्वर का विश्वासी समझते रहे थे और जो स्वयं भी अपने को आस्तिक प्रकट करते रहे थे, उन्हें नास्तिकता के गर्त्त में पतित देखकर विस्मय होना ही था, जब एक बार सन्देह जाग्रत् हो गया फिर तो अन्य बहुत-सी बातें नये रूप में स्मृतिपथ पर आरूढ़ हो गईं और उनके कितने ही कार्य सन्दिग्ध दृष्टि पड़ने लगे। जिनके समागम को उन्होंने उपर्युद्धृत विशिष्ट विज्ञापन में ईश्वरप्रेरित लिखा था वह आसुरीभाव-परिचालित दिखाई देने लगा। महाराज ने, जैसे ही उन्हें अमेरिकावालों की नास्तिक मनोवृत्ति का पता लगा, उनसे स्पष्ट रूप में पूछा कि ईश्वर के विषय में आपके क्या विचार हैं ? इस प्रश्न का करना था कि वे एकदम घबरा उठे कि अब सारी पोल खुल जाएगी। वे स्पष्ट प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने में आनाकानी करने लगे। महाराज ने उन्हें तीन दिन तक समझाया, युक्तियों पर युक्तियाँ दीं, जिनका कोई उत्तर उनसे न बन पड़ा। महाराज ने उनसे बहुतेरा कहा कि ईश्वर-विषय पर शास्त्रार्थ कर लो, परन्तु वे उद्यत न हुए और ऐसे घबराये कि मेरठ में ठहरना तक दूभर हो गया और १२ सितम्बर को अमृतसर चले गये।

इस प्रकार सन्देह की मात्रा कर्नल और मैडम के व्यवहार से दिनों-दिन बढ़ती ही गई और उसका बढ़ना स्वाभाविक ही था। महाराज के हृदय में कोई छल-छिद्र न था, परन्तु दूसरी ओर कपटजाल और कूटनीति के अतिरिक्त अन्य कुछ न था। वास्तव में बात यह थी कि कर्नल और मैडम केवल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए महाराज को एक उपकरण बनाना चाहते थे। उनका अभिप्राय उनके द्वारा विदेश में अपने विचारों के प्रचार के निमित्त एक वेदि प्राप्त करना और भारतवासियों से परिचित होना था जो उनके भारत आगमन के थोड़े दिन पश्चात् ही प्रकट हो गया था। उनकी चाल में आकर अनेक आर्यसमाजी थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सभासद् बन गये। जहाँ भी वे गये आर्यों ने उनकी सेवा-शुश्रूषा करने में कोई त्रुटि न की और इस प्रकार उनके लिए कार्यक्षेत्र का द्वार खुल गया। वे ऊपर से तो महाराज के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट करते रहे, परन्तु भीतर-भीतर कूटनीति का अवलम्बन करके अपने विचारों का प्रचार करते रहे। मेरठ में उन्होंने ईश्वरवादी होने से ही नकार कर दिया और शास्त्रार्थ से भाग निकले। उसके पश्चात् उनकी अनेक लीलाएँ इसी प्रकार की हुईं जो कोई सद्भावयुक्त मनुष्य कदापि नहीं कर सकता, इतना ही नहीं, मैडम ने शिमले से एक अत्यन्त असभ्यतापूर्ण पत्र महाराज को लिखा, जिन्हें वह एक बार नहीं, अनेक बार स्पष्ट शब्दों में अपना सर्वोच्च धर्मगुरु मान चुकी थीं। यह उनके लिए सर्वथा अनुचित था।

ये सब बातें देखकर महाराज ने चाहा कि इन लोगों से सारी बातें स्पष्टरूप से हो जानी चाहिएँ। इसी उद्देश्य से वे बम्बई गये। वहाँ कर्नल और मैडम पहले से ही ठहरे हुए थे। स्टेशन पर कर्नल और आर्यसमाज के अनेक प्रतिष्ठित सभासद् उनके स्वागत के लिए उपस्थित थे। सबने महाराज से प्रेमपूर्वक नमस्ते कहा और कर्नल उन्हें बालकेश्वर गोशाला को लिवा ले-गये जहाँ वे स्वयं ठहरे हुए थे और वहीं ठहराया। महाराज ने कई बार यत्न किया कि उनसे सब बातों पर खुले शब्दों में विचार हो जाए, परन्तु कर्नल इसे किसी-न-किसी प्रकार टालते रहे यहाँ तक कि महाराज को बम्बई आये हुए दो मास से अधिक हो गये। जनवरी से मार्च का महीना आ गया, परन्तु कर्नल से ईश्वर-विषय पर बात-चीत करने का अवसर न आया। अब महाराज के लिए अधिक प्रतीक्षा करनी असह्य हो गई और उन्होंने सेठ पन्नाचन्द आनन्दजी और राव बहादुर गोपालराव हरिदेशमुख को कर्नल के पास भेजकर कहलाया कि या तो आप हमसे विचार कर लें नहीं तो हम प्रकाश्य सभा में भाषण देकर सारी लीला को प्रकट कर देंगे। इसपर कर्नल ने १७ मार्च

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन् १८८२ को विचार करने को कहा, परन्तु उन्होंने ऐसा न किया। तब २१ मार्च को कर्नल और मैडम के नाम एक चिट्ठी बा० जनकधारीलाल दानापुर निवासी से, जो उनके दर्शनों और आर्यसमाज बम्बई के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये थे, इस आशय की लिखाई कि "मेरठ में आपने एक व्याख्यान दिया था जिससे ज्ञात हुआ कि आप लोगों को ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह है और आप लोगों ने जो चिट्ठी पहले अमेरिका से लिखी थी उसमें अपने धर्म का नाम थियोसोफ़िस्ट लिखा था। हमने थियोसोफ़िस्ट शब्द के अर्थ अंग्रेज़ी जाननेवालों से पूछे तो उन्होंने कोष को देखकर 'थियोसोफ़ी' शब्द के अर्थ ईश्वर की बुद्धिमत्ता बतलाये थे। इससे हमने आपको आस्तिक समझा था और इस कारण आपसे मित्रता करने में मुझे कोई रुकावट नहीं रही थी, अतः कल के दिन अथवा जितना शीघ्र हो सके आप मेरे पास चले आओ वा मुझे अपने पास बुला लो वा कोई अन्य स्थान नियत करो कि जहाँ हम दोनों मिलकर इस विषय में शास्त्रार्थ करें। यदि आपसे हो सके तो हमारे मन से ईश्वर का विचार उठा दो और अपने-जैसा बना लो अन्यथा हमसे हो सकेगा तो हम आपको ईश्वर का प्रमाण देंगे और आपको अपने-जैसा बनाएँगे।"

यह पत्र महाराज ने बम्बई के एक रईस को दिया और कहा कि इसे कर्नल और मैडम को दे आओ और इसका उत्तर ले-आओ। उनसे महाराज ने यह भी कहा कि उनसे हमारी ओर से कहना कि हमें बम्बई में आये कितने ही दिन हो गये। हम जिस दिन बम्बई उतरे थे तो स्टेशन पर हमसे मिलने आप दोनों गये थे और उसी समय हमने आपसे कहा था कि ईश्वर-विषय में हमारा और आपका समान विचार हो जाना अत्यन्त आवश्यक है तो आपने कहा था कि इसमें शीघ्रता क्या पड़ी है, एक-न-एक दिन हो रहेगा। हमने उत्तर दे दिया था कि यह सबसे आवश्यक बात है, इसमें विलम्ब करना उचित नहीं है, परन्तु आप लोगों ने अब तक उसका कोई प्रबन्ध नहीं किया। हमें इस बात की बड़ी इच्छा है, यदि आप इससे नकार करेंगे तो हममें और आपमें मित्रता रहनी कठिन हो जाएगी, क्योंकि हम नास्तिकों के खण्डन करने में आलस्य करना पाप समझते हैं।

पत्रवाहक गये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि कर्नल दिसूर चले गये हैं। उन्होंने मैडम को पत्र दिया और महाराज का सन्देश पहुँचाया परन्तु मैडम ने पत्र का लिखित उत्तर न देकर कहला भेजा कि हमें आपसे इस विषय में शास्त्रार्थ करने का अवकाश नहीं है।

२२ मार्च को महाराज ने दूसरा पत्र मैडम के पास भेजा कि कर्नल ने हमें वचन दिया था कि हम शीघ्र ही इस विषय में शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु वे उसे पूरा किये बिना ही अन्यत्र चले गये, अतः यदि तीन-चार दिवस के भीतर आप अकेली अथवा कर्नलसहित इस बखेड़े को न निबटा लोगी तो मैं २८ मार्च सन् १८८२ मंगलवार को फ़ामजी कावसजी हॉल में आपके विरुद्ध वक्तृता दूँगा।

जब मैडम ने इस पत्र का कोई उत्तर न दिया तो एक विज्ञापन छपाकर बाँटा गया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती उपर्युक्त तारीख को फ़ामजी कावसजी हॉल में सन्ध्या के ६ बजे आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के भूत और वर्त्तमान सम्बन्ध पर वक्तृता देंगे। इसके अनुसार महाराज ने व्याख्यान दिया और उसमें कर्नल और मैडम के पत्र पढ़कर सुनाये और उनसे सिद्ध किया कि इन लोगों के व्यवहार में कैसा परस्पर विरोध रहा है। उन्होंने कहा था कि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती की आज्ञानुसार चलेंगे, परन्तु उन्होंने उनकी आज्ञा के विरुद्ध किया। हमने कहा था कि आप थियोसोफ़िस्ट पत्र में भूत, प्रेत, पिशाच आदि की कथाएँ और उनके विद्यमान होने के विषय में लेख न छापें, क्योंकि ऐसी योनियों का कोई अस्तित्व नहीं है, परन्तु वे न माने। हमने एक पत्र कर्नल से कुक साहब को लिखाया था जिसमें हमने यह लिखने को कहा था कि कौन-सा धर्म ईश्वरप्रणीत है, परन्तु ईश्वरप्रणीत का पर्यायवाची अंग्रेज़ी शब्द न लिखकर उसके स्थान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में 'Most divine' शब्द लिखा। जब हमने उस पत्र को एक अन्य मनुष्य से पढ़वाया तब हमें यह बात ज्ञात हुई। जब हमसे कर्नल फिर मिले तो हमने उक्त शब्द कटवाकर अपने आशय के अनुसार शब्द लिखाये। कर्नल ने पत्र में से उक्त शब्द काट तो दिया, परन्तु अपने थियोसोफ़िस्ट पत्र में वह Most divine शब्द ही छापा। पहले उन्होंने अपने को ईश्वर और वेदों का विश्वासी प्रकट किया था, परन्तु अब उनमें अविश्वास प्रकट करने लगे। पहले कहा था कि सभासदों से कोई फ़ीस नहीं ली जाएगी, परन्तु पीछे दस रुपये फ़ीस लगा दी। यह जिस धर्म के माननेवालों में व्याख्यान देते हैं, उसी धर्म की प्रशंसा करने लग जाते हैं।

महाराज ने इनकी योगविद्या की भी पोल खोली और कहा कि कर्नल और मैडम प्राचीन योगविद्या के विषय में कुछ भी नहीं जानते। मैडम कहती थीं कि मैं योगशास्त्र के अनुसार योगाभ्यास करती हूँ, परन्तु जब उनसे पातञ्जल योगशास्त्र के विषय में प्रश्न किये गये तो वे सर्वथा अनभिज्ञ पाई गईं। जो योगी होता है वह भीतर और बाहर से एक-सा होता है, परन्तु ये लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। योगी कभी नास्तिक नहीं होता, परन्तु ये ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। यह सम्भव है कि यह मेस्मरिज़्म और पश्चिमीय विज्ञान के विषय में कुछ जानते हों। जो कुछ चमत्कार ये दिखाते हैं वह किसी गुप्त कला आदि का कौशलमात्र है, परन्तु इनका यह कहना कि हम यह चमत्कार बिना कला आदि के सहारे केवल प्राकृतिक शक्तियों और अपनी इच्छाशक्ति से दिखाते हैं, सर्वथा झूठ बोलना है।

इस प्रकार थियोसोफ़िकल सोसाइटी के प्रवर्त्तकों की पोल खोलकर महाराज ने आर्यसमाज का सम्बन्ध थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सदा के लिए तोड़ दिया।

व्याख्यान के पश्चात् महाराज ने निम्नलिखित विज्ञापन आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के सम्बन्ध-विच्छेद की सूचनार्थ सब आर्यसमाजों में भिजवा दिया।

थियोसोफ़िस्टों का गोलमाल पोलपाल

श्री स्वामीजी ने और आर्यसमाज के लोगों ने इनके पूर्व पत्रों से यह अनुमान किया था कि इनसे आर्यावर्त देश का कुछ उपकार होगा, परन्तु वह अनुमान व्यर्थ हो गया, क्योंकि—

(१) जो-जो इन्होंने प्रथम अपनी चिट्ठियों में प्रसिद्ध लिखा था कि हमारी थियोसोफ़िकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा हुई, उससे ये लोग बदल गये।

(२) इन्होंने कहा था कि वेदोक्त सनातन धर्म के ग्रहण और संस्कृतविद्या पढ़ने को विद्यार्थी होने के लिए आते हैं, वह तो न किया, किन्तु अब किसी धर्म को नहीं मानते और न कुछ किसी धर्म की जिज्ञासा की, न आज तक संस्कृतविद्या पढ़ने का आरम्भ किया और न करने की आशा है।

(३) इन्होंने कहा था कि जो इस सोसाइटी के सभासदों से फ़ीस आएगी वह आर्यसमाज के लिए होगी और बहुत-सी पुस्तकें भेंट की जाएँगी। वह तो कुछ भी न किया, परन्तु जो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास ७०० रुपये भेजे थे वह भी निगलके बैठ रहे। पुस्तकों का दान करना तो दूर रहा किन्तु जिन बाबू छेदीलाल और बाबू शिवनारायण आर्यसमाज मेरठ के सभासदों ने उनके सत्कार में स्थान, यान, सवारी और खान-पान आदि में सैकड़ों रुपये व्यय किये इतने पर भी मैडम एच०पी० ब्लैवेट्स्की और एच०एस० कर्नल आल्काट साहब ने जो एक पुस्तक उनको दिया था उसके तीस रुपये झट ले-लिये और लज्जित भी न हुए। इसके सिवाय सहारनपुर, अमृतसर और लाहौर आदि के आर्यसमाजों ने बहुत-सा सत्कार किया वह भी इन्होंने नहीं समझा और स्वामीजी ने भी जहाँ तक बना इनका उपकार किया। उसको न मानकर व्यर्थ लिखते हैं कि हमने स्वामीजी का बहुत साहाय्य किया, परन्तु स्वामीजी कहते हैं कि कुछ भी नहीं किया और जो किया हो तो प्रसिद्ध क्यों नहीं करते हैं, यतः कुछ भी प्रकट नहीं करते फिर कौन मान सकता है ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(४) प्रथम इन्होंने अपने पत्रों में यहाँ आके स्वामीजी और सबके सामने ईश्वर को स्वीकार किया। फिर उसके विरुद्ध मेरठ में स्वामीजी और अनेक भद्र पुरुषों के सामने दोनों ने कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। क्या यह पूर्वापर विरोध नहीं है ? तब स्वामीजी ने कहा कि तुम ईश्वर के मानने का खण्डन करो और हम मण्डन करें, जो सच हो उसको मान लीजिए, तब इन्होंने इस बात को भी स्वीकार नहीं किया।

(५) वे जब आर्यावर्त देश में आने लगे तब एक समाचार 'इण्डियन स्पेक्टेटर' पत्र में तारीख २४ जुलाई सन् १८७८ में छपवाया था कि§ न हम बुद्धिस्ट हैं न हम क्रिश्चियन और न हम ब्राह्मण अर्थात् पुराणमत के माननेवाले हैं, किन्तु हम आर्यसमाजी हैं। अब इससे विरुद्ध स्पष्ट छपवाया कि हम बहुत वर्षों से बुद्धिस्ट थे और अब भी हैं। क्या यह कपट और छल की बात नहीं है और जनवरी सन् १८८० की चिट्ठी से सिद्ध होता है कि ये ईश्वर को मानते थे और आठ महीने के पश्चात् उसी सन् के सितम्बर के महीने में मेरठ में कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। यह उनका छल नहीं तो क्या है ?

(६) यहाँ आके आर्यसमाज की शाखा थियोसोफ़िकल सोसाइटी प्रथम स्वीकार करके पश्चात् कहा कि मुख्य सोसाइटी न आर्यसमाज की शाखा और न आर्यसमाज मुख्य सोसाइटी की शाखा है, किन्तु जो एक दूसरे वेद की शाखा दोनों की साझे की है। इससे विरुद्ध अब छापके प्रकट किया कि हमारी सोसाइटी कभी आर्यसमाज की शाखा नहीं हुई थी और हम आर्यसमाज से बाहर हैं। क्या यह भी इनकी विपरीत लीला नहीं है कि जब इन्होंने मुम्बई में सोसाइटी बनाई थी उसमें स्वामीजी के कहने-सुनने और लिखे बिना उनका नाम अपने मन से सभासदों में लिख लिया था। जब यह प्रथम मेरठ में मूलजी के साथ मिले थे तब स्वामीजी ने कहा था कि बिना हमारे कहे-सुने तुमने सोसाइटी में नाम क्यों लिखा, जहाँ लिखा हो काट दें। तब कर्नल आल्काट साहब ने कहा कि हम इसके आगे ऐसा कभी नहीं करेंगे, जहाँ लिखा है वहाँ से निकाल भी देंगे। फिर भी जब काशी में मिले तब तक इन्होंने सोसाइटी से स्वामीजजी का नाम नहीं निकाला। तब स्वामीजी ने कड़ा पत्र लिखा कि जहाँ हमारा नाम लिखा हो वहाँ से शीघ्र निकाल दो तब उन्होंने तार भेजा कि अब हम क्या लिखें, तब स्वामीजी ने तार में उत्तर दिया कि जब हमने प्रथम वैदिक धर्मोपदेशक लिखा था वैसा लिखो। न मैं तुम्हारा वा अन्य किसी सभा का सभासद् हूँ किन्तु एक वेदमार्ग को छोड़के किसी का संगी मैं नहीं हूँ। इसपर भी जब वे शिमले में थे तब ब्लैवेट्स्की ने ऐसी असभ्यता की चिट्ठी लिखी कि जिसको कोई सभ्य स्वीकार न करे। क्या यह इनको योग्य था कि स्वामीजी ने कभी इनको न लिखा था और न कहा था, उसपर भी इन्होंने स्वयं स्वामीजी का नाम लिख लिया था। क्या यह लज्जा की बात नहीं है ?

(७) जो इन्होंने मेरठ में प्रतिज्ञा की थी कि आज पीछे आर्यसमाज के सभासदों को अपनी सोसाइटी के साथ होने को कभी नहीं कहेंगे। इसी के दो दिन पीछे जब बाबू छेदीलालजी अम्बाले तक इनके साथ गये तब मार्ग में बहुत समझाते गये कि आप हमारी सोसाइटी के साथ हूजिए और एक पत्र शिमले से बाबूजी के पास भेजा कि आप सोसाइटी के सभासद् हूजिए।

(८) ऐसी-ऐसी छल-कपट की बातें देखकर स्वामीजी ने आर्यसमाज मेरठ के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान दिया था कि इनकी सोसाइटी में किसी वेदानुयायी को सभासद् होने की कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जैसे नियम आर्यसमाज के हैं वैसे इनकी सोसाइटी के नहीं। इसपर शिमले से मैडम ब्लैवेट्सकी ने असभ्यता और झूठ की भरी हुई चिट्ठी लिखी और स्वामीजी ने भी उसका यथायोग्य उत्तर दिया। उसके पश्चात्

§ उनके स्वयं के शब्द ये थे "हम स्वामी दयानन्द सरस्वती को सर्वोच्च धर्मगुरु मानते हैं। प्रचलित अर्थों में हम न बौद्ध हैं और न ब्राह्मण धर्म के हैं, जैसा साधारणतया उसके अर्थ लिये जाते हैं और ईसाई तो निश्चयपूर्वक हैं ही नहीं।"

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी ने विचारा था कि जब हम मुम्बई जाएँगे तब हम इनसे सब बातों को स्पष्ट कर लेंगे। ऐसा ही आर्यसमाज मुम्बई चाहती थी। जब स्वामीजी मुम्बई में पहुँचे तब बहुत सभासद् और कर्नल साहब भी स्टेशन पर आये थे। जब स्वामीजी स्थान पर आ पहुँचे, पश्चात् इनसे स्वामीजी की बहुत-सी बातें हुईं और स्वामीजी ने यह भी विदित कर दिया कि आपसे और भी बहुत विषयों में बात करनी है तब उक्त साहब ने स्पष्ट उत्तर न दिया। जब कुक साहब के विषय में बात-चीत करने के लिए स्वामीजी के पास आये तब भी कहा कि आपका और हमारा विचार हो जाना चाहिए था, तब कर्नल साहब ने कहा कि 'हाँ करेंगे'। इसपर भी स्वामीजी ने पानाचन्द आनन्दजी और रावबहादुर गोपालराव हरिदेशमुख द्वारा कहलाया कि आप लोग मुझसे बातचीत करने को आएँ नहीं तो हमें प्रसिद्ध भाषण देना होगा। तब पानाचन्द आनन्दजी ने इन्होंसे पूछके स्वामीजी से कहा कि १७ मार्च सन् १८८२ को कर्नल साहब बातचीत करने को आएँगे, फिर भी न आये और मुम्बई से दिसूर पहुँचकर पत्र लिखा कि मैं नहीं आसका, परन्तु मैडम ब्लैवेट्स्की आपसे बातचीत कर लेंगी। वह भी नहीं आई।

तब स्वामीजी का भाषण आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के पूर्वापर विरोध अर्थात् इनकी थियोसोफ़िकल सोसाइटी का पूर्व क्या सम्बन्ध था, अब क्या है इस विषय पर व्याख्यान कराने के अर्थ आर्यसमाज मुम्बई ने एक दिन पूर्व नोटिस छपवाकर प्रसिद्ध कर दिया, तो भी मैडम ब्लैवेट्स्की ने स्वामीजी के पास आके बातचीत न की। तब स्वामीजी ने भाषण दिया।

इसपर अपने थियोसोफ़िस्ट पत्र में लिखते हैं कि हमसे बिना कहे-सुने स्वामीजी ने व्याख्यान दिया। क्या यह बात इनकी झूठ नहीं थी ? उसमें इनकी चिट्ठियाँ पढ़-पढ़कर सुनाई कि जिसमें इनके पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार का प्रकाश किया और यह कहा कि ये लोग कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ। ऐसा कहते हैं कि हम आर्यावर्त देश की उन्नति करने के लिए आये हैं, परन्तु उन्नति के बदले इनके काम अवनतिकारक विदित होते हैं। देखो स्वामीजी ने अनेक बार इस बात के करने से रोका कि तुम थियोसोफ़िस्ट समाचार (पत्र) में भूत, प्रेत, पिशाचादि का होना न लिखो, यह विद्या के विरुद्ध असम्भव है और जो बातें विद्या से विरुद्ध हैं उनको मत लिखो, क्योंकि यह समाचार (पत्र) इस देश और यूरोप में भी जाता है, सब लोग जान जाएँगे कि आर्यावर्त्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के माननेवाले हैं। इस बात को अब तक नहीं माना और पूर्व पत्रों में लिखा था कि जो आप उपदेश करेंगे सो हम मानेंगे। क्या इस बात को भी कोई सच कह सकता है ?

(६) जो पत्र कुक साहब को लिखा था वह कर्नल आल्काट साहब ने अपने हाथ से लिखा था और स्वामीजी ने लिखवाया (था) उसमें most divine अर्थात् कौन-सा धर्म ईश्वरीय गुणयुक्त है यह स्वामीजी के अभिप्राय से विरुद्ध लिखा था। जब इनके गये पश्चात् स्वामीजी ने उस पत्र की नक़ल बँचवाई तो अशुद्ध विदित हुआ। फिर इसपर स्वामीजी के पास कर्नल आल्काट साहब आये और तब वह शब्द कटवा दिया अर्थात् उस के स्थान में ऐसा लिखवाया था कि जब आप और मुझसे संवाद होगा तब विदित हो जायगा कि कौन धर्म ईश्वरप्रणीत है और कौन-सा नहीं। इतने पर भी इन्होंने वैसा ही अशुद्ध छपवाया। क्या ऐसी बात इनको कर्त्तव्य थी ? देखो यह इनकी सोसाइटी के नियमों में थियोसोफ़िस्ट अर्थात् ईश्वर को माननेवाले, इस सोसाइटी में फ़ीस नहीं ली जाती, इस धर्म से कोई धर्म उत्तम न कहना, न जानना और सदा क्रिश्चियन धर्म के विरुद्ध रहना चाहिए। जो अजन्मा किसी का बनाया नहीं, जिसने यह सब बनाया है, उस ईश्वर को न मानना। दस-दस रुपये फ़ीस लेना और जिस धर्म का व्याख्यान देते हैं उसी को सबसे उत्तम कहने लग जाते हैं। क्या यह खुशामदी और भाटों की लीला से कम है ?

अब विशेष लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं। इतने नमूने से ही सब कोई समझ लेंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस पत्र के लिखने का यही प्रयोजन है कि इनकी सोसाइटी और इनके साथ सम्बन्ध रखने से आर्यावर्त देश का और आर्यसमाजों को सिवाय हानि के कुछ भी लाभ नहीं, क्योंकि इन लोगों का अन्तरीय अभिप्राय क्या है इसको वे ही जानते होंगे। जो इनका अन्तर ही निष्कपटी होता तो ऐसा पूर्वापर-विरुद्ध व्यवहार क्यों करते। जब ये भयङ्कर नास्तिक, वाचाल और स्वार्थी मनुष्य हैं तो आर्यवर्त्त देश और आर्यसमाजस्थ आदि आर्यों को उचित है कि इनसे सम्बन्ध और देशोन्नति की आशा न रक्खें। देखो और भी थोड़ा-सा इनके प्रपञ्च का नमूना। प्रथम स्वामीजी का नाम लेते थे। जब स्वामीजी इनके जाल में न फँसे तो अब कोटहूमीलाल का नाम लेते हैं कि जिसको न किसी ने देखा और न पूर्व सुना था। जो कभी उसके नाम से स्वार्थ सिद्ध न होगा तो गौत्र कोट हूमीसिंह नाम शायद लेंगे। अब कहते हैं कि वह हमारे पास आता और बातें (करता) और चमत्कार दिखलाता है, देखो यह उनका फ़ोटोग्राफ़ है, चिट्ठीयाँ और पुष्प ऊपर से गिरते हैं, खोई हुई वस्तु निकलती है, इत्यादि सब बातें इनकी सच्ची नहीं, क्योंकि दूसरे को तो जाने दो परन्तु जब प्रथम कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की के साथ मुम्बई में आये थे तब कुछ वस्त्रादि की चोरी हुई थी। उसके लिए बहुत-सा यत्न पुलिस आदि से कराया था। उनको क्यों नहीं मँगवा लिया था, जब अपने पदार्थ न मँगवा सके तो शिमले की बात को सच्ची कौन विद्वान् मानेगा ? जब स्वामीजी और मैडम से मेरठ में योगविषय में बात हुई थी तब कहा था कि योगशास्त्र और सांख्य की रीति से मैं योग करती हूँ। तब स्वामीजी ने इनसे उस शास्त्रोक्त योग की रीति पूछी, तब कुछ भी उत्तर न दे सकीं, अर्थात् जैसे मैस्मरिज़्मवाले वा जैसे बाज़ीगर तमाशा करते हैं उसी प्रकार की इनकी भी बातें हैं। जो योग को थोड़ा भी करते हैं वे भीतर और बाहर से सरलता भरा हुआ एक व्यवहार करते हैं। झूठ-कपट से पृथक्, सो वैसा व्यवहार इनका नहीं है। जो योगविद्या को कुछ भी जानते तो ईश्वर को न मानकर भयङ्कर नास्तिक क्यों बन जाते। इनके योगविद्या के न जानने में ईश्वर का न मानना ही प्रमाण है। इसलिए यही निश्चय है कि इनकी सोसाइटी और इनकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इसलिए इनसे पृथक् रहना अत्युत्तम है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ §

इस प्रकार आर्यसमाज और थियोसोफ़िकल सोसाइटी का सम्बन्ध विच्छेद हो गया और इस नाटक पर सदा के लिए पटाक्षेप हो गया। यह दोनों संस्थाओं के लिए ही अच्छा हुआ। थियोसोफ़िकल सोसाइटी से देश को जो लाभ पहुँचना था वह गत ५० वर्ष में सबने देख लिया। उसने भ्रान्त विश्वासों के फैलाने के अतिरिक्त कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे भारत के धार्मिक इतिहास पर स्थिर प्रभाव पड़ा हो। न योगविद्या का ही प्रचार किया जिसका उसने बीड़ा उठाया था, न प्रकृति की गुप्त शक्तियों के उद्घाटन और प्रसुप्त कलाओं के जागरण के हमें चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं जिनसे लोगों के ज्ञान में वृद्धि होकर उनका कुछ उपकार हुआ हो। इसके प्रतिकूल भूत, प्रेत; पिशाच, योगिनी, शङ्खिनी, डाकिनी आदि में अत्यन्त हानिकर विश्वास की मात्रा में अवश्य वृद्धि हो गई है। या यह हुआ है कि पुराणों के व्यर्थ और बुद्धि के प्रतिकूल अनुष्ठानों को विज्ञान द्वारा सत्य सिद्ध करने का यत्न किया गया है। हाँ, श्रीमती एनीबेसण्ट ने शिक्षा का प्रशंसनीय कार्य अवश्य किया है और राजनीति-क्षेत्र में भी उन्होंने उत्तम प्रयत्न किया है और इसके लिए वह अवश्य ही धन्यवाद की पात्र हैं।

आर्यसमाज के लिए भी यह सम्बन्ध-विच्छेद श्रेयस्कर हुआ, नहीं तो न जाने कितने आर्यसमाजी भ्रमजाल में फँसते और आर्यसमाज भी क्या जाने क्या रूप धारण कर लेता और जो वेद और विद्या का

§ यह पूरा विज्ञापन ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में पृष्ठ ३२५-३२१ तक छपा है। —संग्रहकर्त्ता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रचार और धर्म-संस्कार का महान् कार्य उसके द्वारा सम्पादित हुआ है वह बिना हुआ ही रह जाता, आस्तिकता का प्रबल सहायक होने के स्थान में वह नास्तिकता का पृष्ठपोषक बन जाता।

जो लोग यह कहते नहीं थकते कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सिद्धान्त-निर्माण में पालिसी से काम लिया उनके लिए यह सम्बन्ध-विच्छेद अत्यन्त शिक्षाप्रद है। यदि ऐसा होता तो वे थियोसोफ़िकल सोसाइटी से सम्बन्ध अलग करने से पहले बहुत-कुछ संकोच करते और अपने सहायकों और मित्रों से ऐसे अकुण्ठितभाव से अलग न हो जाते।

कर्नल ने महीनों पीछे अर्थात् जुलाई सन् १८८२ में थियोसोफ़िस्ट पत्र के परिशिष्ट में महाराज के उनपर लगाये हुए दोषों के निराकरण का कुछ प्रयत्न किया, परन्तु वह अत्यन्त निर्बल और अयुक्तिसंगत सिद्ध हुआ।

उनका उत्तर यह था कि "हमने कभी नहीं छिपाया कि हम बौद्ध हैं और हमने अपनी २६ मई सन् १८७८ की चिट्ठी में जो हमने इण्डियन स्पेक्टेटर के सम्पादक को लिखी थी, लिख दिया था कि हम बौद्ध हैं। हमने अपनी सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा इस लिए बनाया था कि जो सिद्धान्त बौद्ध मत के हैं वही स्वामी दयानन्द सरस्वती की व्याख्या के अनुसार वेदों में थे। हमने २२ फ़रवरी की चिट्ठी में लिख दिया था कि ब्राह्मसमाज Personal God को मानती है और आर्यसमाज ऐसे ईश्वर में विश्वास करती है जो Personal होने से दूर है। फिर आप कहते हैं कि स्वामीजी की २१ अप्रेल सन् १८७६ की चिट्ठी Personal God की प्रशंसा में थी, उसपर हमने २४ सितम्बर सन् १८७८ की चिट्ठी में यह आक्षेप किया था कि या तो स्वामी दयानन्दजी के ईश्वर-विषय में जो विचार हैं वह हम तक ठीक-ठीक नहीं पहुँचे या उनके विश्वास ईश्वर-विषय में ऐसे हैं जिनसे थियोसोफ़िकल सोसाइटी और उसके सभासद् मतभेद रखते हैं। हमें ज्ञात होता है कि स्वामीजी Personal ईश्वर को मानते हैं। मैं ऐसे ईश्वर को नहीं मान सकता। आप (हरिश्चन्द्र चिन्तामणि) स्वामीजी से पूछकर स्पष्टरूप से बताएँ कि आर्यसमाज कैसे ईश्वर को मानता है। इसका उत्तर न तो स्वामीजी ने दिया और न हरिश्चन्द्र ने। हरिश्चन्द्र ने अपने ३० सितम्बर सन् १८७८ के पत्र में केवल इतना लिखा कि जब आप मुम्बई आवेंगे, सारी बातों का निर्णय हो जाएगा जिससे स्पष्टतया प्रकट होता है कि मुम्बई आने से पहले हमारा मत बौद्ध था।

कर्नल का प्रत्युत्तर प्रथम तो म० रतनचन्द बेरी० सम्पादक आर्य ने, जो उन दिनों लाहौर से प्रकाशित होता था, दिया और फिर पण्डित उमरावसिंह रुड़की निवासी ने दिया जोकि एक पैम्फलेट के रूप में छापकर प्रचरित किया गया। इसके पश्चात् थियोसोफ़िस्टों ने कोई उत्तर देने का साहस नहीं किया।

भारतवर्ष में आने के पश्चात् सितम्बर सन् १८८० तक यद्यपि वे इस अन्तर में दो बार स्वामीजी से मिलकर बातचीत कर चुके थे, उन्होंने यह नहीं कहा कि हमारा ईश्वर में विश्वास नहीं है। ऐसी दशा में स्वामीजी इसके अतिरिक्त क्या समझते कि थियोसोफ़िस्ट लोग वैसे ही ईश्वरविश्वासी हैं जैसेकि वे स्वयं हैं। यदि २६ मई सन् १८७८ को ही कर्नल इण्डियन स्पेक्टेटर पत्र में लिख चुके थे कि हम बौद्ध हैं तो फिर इस बात को उन्होंने स्वामीजी से क्यों छिपाया ? स्वामीजी को यह ज्ञात भी कैसे होता कि वह उक्त पत्र में अपने को बौद्ध-मतानुयायी प्रकट कर चुके हैं। इसके यही अर्थ हैं कि उन्होंने स्वामीजी को अपनी स्वार्थसिद्धि के उद्देश्य से धोखा दिया। स्वामीजी ने कब, कहाँ और किससे कहा कि वेदों में वही सिद्धान्त लिखे हैं जो बौद्धमत के हैं ? ऐसा कहना नितान्त मिथ्या है। इसका कोई प्रमाण भी कर्नल नहीं देते जहाँ स्वामीजी ने ऐसा कहा हो। कर्नल ने कभी किसी ऐसी चिट्ठी का उल्लेख तक नहीं किया जिसमें उन्होंने स्वामीजी से ईश्वर-विषय में मतभेद प्रकट किया हो। न ऐसी चिट्ठी की लिपि कर्नल ने कभी पेश की। वास्तव में ऐसी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिट्ठी कोई कभी थी ही नहीं और न वह कभी स्वामीजी के पास आई। कर्नल का कथन तो इसी बात से मिथ्या ठहरता है कि उसके लिखने की तारीख २४ सितम्बर १८७८ और उत्तर में हरिश्चन्द्र चिन्तामणि की चिट्ठी की तारीख ३० सितम्बर १८७८ बताते हैं। ६ दिन के भीतर चिट्ठी का अमेरिका से आना और उसके उत्तर का जाना असम्भव था जब तक यह न मान लिया जावे कि वह चिट्ठी कर्नल ने किसी 'महात्मा' द्वारा भिजवाई और उसका उत्तर भी उसी महात्मा द्वारा मँगवाया, और कि वह विद्युत् की द्रुत गति से आये और गये। एक बात और भी है, यदि कर्नल और मैडम की स्वामीजी के ईश्वर-विषयक सिद्धान्तों से एकता न थी और २४ सितम्बर १८७८ की चिट्ठी का उत्तर स्वामीजी की ओर से उनके पास नहीं पहुँचा था तो उन्होंने स्वामीजी को अपना धर्मगुरु क्यों बनाया और बिना इस बात को ठीक तौर पर जाने कि स्वामीजी के ईश्वर-विषय में सिद्धान्त उनके अपने विचारों से मिलते हैं वा नहीं वे अमेरिका से चल क्यों दिये और यदि चल भी दिये थे तो स्वामीजी से प्रथम भेंट के समय उनका प्रथम प्रश्न यह होना चाहिए था कि आपका ईश्वर के सम्बन्ध में क्या विचार है ? जो कोई भी निष्पक्ष होकर इस विषय में विचार करेगा वह इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि थियोसोफ़ी की इन महान् मूर्त्तियों ने जान-बूझकर स्वामीजी और आर्यसमाज को धोखा दिया। स्वामीजी ने सरलचित्तता से उनका विश्वास कर लिया। बस यही उनका सबसे बड़ा अपराध था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट संख्या ३

मुंशी इन्द्रमणि का मुकद्दमा

बहुत दिनों की बात है कि एक मुसलमान ने उर्दू में एक पुस्तक 'रद्दे-हनूद' के नाम से हिन्दूधर्म के विरुद्ध लिखी थी। उसके उत्तर में चौबे बद्रीदास ने 'रद्दे-मुसलमान' नामक पुस्तक लिखी। उसके पश्चात् मौ० उबैदुल्ला ने, जो हिन्दू से मुसलमान हुआ था, सन् १२७४ हिजरी में एक पुस्तक 'तोह-फ़तुल-हिन्द' लिखी जिसमें हिन्दुओं के देवताओं और महापुरुषों की घोर निन्दा की। उसके उत्तर में उसी वर्ष मुंशी इन्द्रमणि ने फ़ारसी भाषा में 'तोह-फ़तुल-इस्लाम' नामक पुस्तक लिखी। इसके उत्तर में एक मुसलमान ने 'खल-अतुल-हनूद' नामक पुस्तक सन् १२८१ हिजरी अर्थात् १६२२ विक्रमी सन् १८६५ ई० में लिखी और मुंशी इन्द्रमणि ने उसका मुँहतोड़ उत्तर सन् १८६६ ई० अर्थात् सं० १६२३ वि० में अपनी पुस्तक 'पादाशे-इस्लाम' में दिया। मुसलमानों की ओर से दो और पुस्तकें 'एजाज़े मुहम्मदी' और 'हदयतुल अस्लाम' प्रकाशित हुईं जिनका उत्तर मुंशी इन्द्रमणि ने १८६७ में 'हमलए हिन्द' व 'समसामे हिन्द' और सन् १८६८ में 'सौलते हिन्द' नामी पुस्तकें लिखकर दिया। एक मुसलमान ने एक गन्दा काव्य हिन्दूधर्म के विरुद्ध 'मस्नवी-असूलेदीने हिन्दू' नाम से लिखा। उसका उत्तर भी मुंशी इन्द्रमणि ने 'मस्नवी असूले दीने अहमद' काव्यमय पुस्तक लिखकर सन् १८६६ में दिया। सन् १८७३ में एक अत्यन्त गन्दी पुस्तक एक मुसलमान ने 'तेग़े फक़ीर बर गर्दने शरीर' लिखी। अब तक दोनों ओर से एक दूसरे के मत के ऊपर कटाक्ष होते रहे, परन्तु उनसे किसी पक्ष में उत्तेजना न हुई। 'हमलए हिन्द', 'समसामे हिन्द' व 'सौलते हिन्द' के दो संस्करण हो चुके थे। किसी मुसलमान को उत्तेजना न हुई थी। पहल तो मुसलमानों ही की ओर से हुई थी। सबसे पहली पुस्तक तो हिन्दूधर्म के विरुद्ध एक मुसलमान ने ही लिखी थी। मुंशी इन्द्रमणि तो मुसलमानों के आक्रमणों का केवल उत्तर देते रहे थे। मुंशीजी की उपर्युक्त तीनों पुस्तकों का तीसरा संस्करण मुरादाबाद में छपा। तब मुसलमानों को 'जामे जमशेद' नामी मुरादाबाद के एक मतान्ध समाचार-पत्र ने भड़काया और अपने १६ मई सन् १८८० के अङ्क में यहाँ तक लिखा कि 'यदि मुंशी इन्द्रमणि का यही हाल रहा तो बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी। आखिर एक रोज़ गला और छुरी नज़र आएगी। तअज्जुब है कि इस मर्तबा (छापेखाने) का इजरा जिसमें एक खास गिरोह के मज़हब की मज़म्मत (निन्दा) की किताबें छपती हैं साहब मैजिस्ट्रेट ने क्योंकर मंजूर फ़रमाया है। हम गवर्नमेण्ट से इल्तिजा (विनीत निवेदन) करते हैं कि इन किताबों को जलवा दे और मर्तबा बन्द करा दे।

उक्त समाचार-पत्र के उपर्युक्त लेख के अनुवाद को पढ़कर पश्चिमोत्तर प्रान्त के लिफ्टिनेन्ट गवर्नर ने मुरादाबाद के मैजिस्ट्रेट को लिखकर व्यौरा पूछा और उसमें यह भी लिखा कि मुंशी इन्द्रमणि पर दृष्टि रक्खें ताकि वह किसी उपद्रव के उत्पन्न करने का कारण न बने। मैजिस्ट्रेट ने वह चिट्ठी डिप्टी मैजिस्ट्रेट मौलवी एमादअली को रिपोर्ट लिखने को दी और उन्होंने रिपोर्ट लिखकर चिट्ठी मैजिस्ट्रेट ज़िले को वापस करदी। इस चिट्ठी का पता मुंशीजी को भी लग गया और वे मैजिस्ट्रेट से मिले तो मैजिस्ट्रेट ने कहा कि हम विद्रोह के कोई चिह्न नहीं देखते, तुम विद्रोह न करना। इसके पश्चात् मैजिस्ट्रेट रामपुर गये और वहाँ से लौटते ही उन्होंने और ही मूर्त्ति धारण कर ली। सम्भव है वहाँ उन्हें विश्वास दिलाया गया हो कि मुसलमान बहुत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिगड़ रहे हैं। उन्होंने २२ जुलाई सन् १८८० को कचहरी में बैठते ही हिन्दुस्तान के दण्ड-विधान की २९२ और २९३ धाराओं में मुंशीजी पर वारण्ट निकाल दिया। जब वे पकड़े हुए आये तो उनकी पुस्तकों में से तीन बातें छाँटकर उनसे पूछा कि तुमने ये बातें कहाँ से लिखी हैं। मुंशीजी ने कहा कि मुझे समय मिले तो उत्तर दे सकता हूँ। मैजिस्ट्रेट ने कहा कि हम पच्चीस जुलाई को तुम्हारा बयान सुनेंगे और २६ जुलाई को मुकद्दमा करेंगे और मुंशीजी को १०००) की ज़मानत पर छोड़ा जो एक सज्जन ने तुरन्त ही दाखिल कर दी। मुंशीजी ने दो बातों का उत्तर तो पुस्तकें प्रस्तुत करके दे दिया तीसरी बात के लिए कहा कि मैंने 'रद्दे-मुसलमान' पुस्तक से नकल की है, यदि समय मिले तो पुस्तक पेश कर सकता हूँ, परन्तु मैजिस्ट्रेट ने समय न दिया और मुंशीजी पर ५००) जुर्माना कर दिया और इंस्पेक्टर पुलिस को भेजकर मुंशीजी के घर से सब पुस्तकें मँगवाकर नष्ट करा दीं। समय न दिये जाने के हुक्म की नक़ल भी मैजिस्ट्रेट ने न दी और इसलिए उसकी अपील भी न हो सकी।

महाराज का मुंशी इन्द्रमणि से प्रथमबार साक्षात् दिल्ली दरबार के अवसर पर हुआ था उसके पश्चात् महाराज ने उन्हें चाँदापुर के मेले में शास्त्रार्थ में सहायता देने के लिए बुलाया था और फिर अलीगढ़ में भी उनसे बातचीत हुई थी। जब सन् १८७९ में महाराज मुरादाबाद गये तो भी उनसे विचार परिवर्त्तन न हुआ। यद्यपि महाराज का कई विषयों में मुंशीजी से मतभेद था, परन्तु किसी मौलिक विषय पर न था। जब महाराज मुरादाबाद से चलने लगे तो साहू श्यामसुन्दर आदि से कह आये थे कि आर्यसमाज का प्रबन्ध मुंशीजी के परामर्श से ही करना। उनसे हमारा जिन बातों में मतभेद है हम आपस में समझ लेंगे, अतः जितने दिन वे आर्यसमाज के सभासद् रहे आर्यसमाज के प्रधान रहे और सब कार्य उनके ही परामर्श के अनुसार होता रहा। मुंशी इन्द्रमणि वैष्णव सम्प्रदाय के थे, परन्तु वे अद्वैतवादी नहीं थे। वे मूर्त्तिपूजा के घोर विरोधी थे और वेदों में उसका विधान नहीं मानते थे। इन्हीं सब कारणों से उनसे स्वामीजी का सख्य भाव हो गया था।

जिन दिनों मुंशीजी पर अभियोग चला था और उन्हें ज़िला मैजिस्ट्रेट ने अर्थदण्ड दिया था, स्वामीजी मेरठ में थे। मुंशीजी मुक़द्दमे की अपील करना चाहते थे, परन्तु उसके व्यय के लिए उनके पास धन न था। वे मेरठ में स्वामीजी के पास आये और कहा कि मैंने जो पुस्तकें लिखीं वे वैदिक धर्म की रक्षा के लिए लिखीं। यह मुकद्दमा भी मुझपर इसी लिए चलाया गया। यह वैदिक धर्म की रक्षा का प्रश्न है, अतः आपको इसमें मेरी सहायता करनी चाहिए। बात ठीक थी, स्वामीजी ने स्वीकार कर ली और आर्यसमाजों में अगस्त १८८० को मुंशीजी के मुकद्दमे की सहायतार्थ धन भेजने की चिट्ठी लिख दी और मेरठ में एक कमेटी बनादी गई कि जो रुपया इस फ़ण्ड में आवे चाहे वह स्वामीजी के वा मुंशी इन्द्रमणि के पास आवे मेरठ में लाला रामशरणदास के पास जमा किया जावे और कमेटी की आज्ञा से खर्च किया जाए। यह कमेटी ही रुपये का हिसाब रक्खे और जब तक काम पूरा न हो तब तक धन की आय-व्यय की राशि कमेटी के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य को न बतलाई जावे। ये सब बातें मुंशीजी ने स्वीकार करली थीं। इसके पश्चात् साहब जज की अदालत में अपील की गई।

इस मुक़द्दमे के विषय में हिन्दू समाचार-पत्रों ने खूब आन्दोलन किया। भारत तथा स्थानिक सरकार को मेमोरियल भेजे गये। भारतीय सरकार ने मैजिस्ट्रेट से मुकद्दमे की मिसल मँगाई तो उन्होंने लिख दिया कि अपील अदालत में है। भारत सरकार ने फिर लिखा कि अपील के पश्चात् तुरन्त भेज दो।

महाराज की चिट्ठी पर रुपया आना आरम्भ हो गया। २५०) तो स्वामीजी के पास और शेष रुपये मुंशीजी और लाला रामशरणदास के पास आये। स्वामीजी ने वह २५०) भी लालाजी के पास ही भेज दिये,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु जो रुपया मुंशीजी के पास आया वह उन्होंने लाला रामशरणदास के पास न भेजा और न उसका हिसाब ही भेजा। लालाजी ने कई बार स्वयं मुंशीजी को हिसाब भेजने को लिखा, परन्तु उन्होंने न भेजा। एक बार साहू श्यामशुन्दर से भी हिसाब भेजने को कहलाया, परन्तु फिर भी न भेजा, अतः जब मुंशीजी ने लालाजी से ६००) माँगे तो उन्होंने न दिये और यह भी मुंशीजी को न बताया कि कितना रुपया उनके पास चन्दे में आया है। जब महाराज देहरादून से लौट रहे थे तब लाला रामशरणदास मेरठ के रेलवे स्टेशन पर उनसे मिले और सारा वृत्त कहा। महाराज ने उनसे कहा कि ६००) तो भेज दो, कहीं काम न बिगड़ जाए और मैं मुंशीजी को अलीगढ़ पहुँचकर समझा दूँगा। उन्होंने ६००) भेज दिये। महाराज ने अलीगढ़ पहुँचकर मुंशीजी को तार द्वारा अलीगढ़ आने को कहा, परन्तु वे न आये। इसपर मुंशीजी ने एक विज्ञापन छपवाया कि मुझे रुपया नहीं मिलता है अब तक कुल ६००) मिले हैं। रुपया सीधा मेरे पास भेजा जावे। इसपर उनके पास और रुपया आने लगा, परन्तु अपने हिसाब न देने के विषय में कुछ न लिखा, सारा दोष लाला रामशरणदास और स्वामीजी पर रक्खा। महाराज ने आगरे पहुँचकर मुंशीजी को फिर लिखा कि हिसाब लेकर आ जाओ तो उसके उत्तर में लाला रामशरणदास के विषय में अत्यन्त असभ्य शब्द लिखे और यह भी लिखा कि पहले उनका हिसाब देखा जावे तब हम अपना दिखलावेंगे। महाराज ने लालाजी को लिखकर हिसाब मँगंवा लिया। मुंशी इन्द्रमणि और उनके शिष्य जगन्नाथदास आगरा गये तो महाराज ने हिसाब माँगा। उन्होंने कहा पहले लालाजी का हिसाब दिखा दो तब हम दिखाएँगे। महाराज ने दिखा दिया और फिर उनसे हिसाब दिखाने को कहा तो उनके शिष्य ने बैग पर हाथ धरकर कहा कि ओहो ! हिसाब का काग़ज़ मुरादाबाद भूल आये। लालाजी के हिसाब में उन्होंने एक भूल पकड़ी कि गुरुदासपुर आर्यसमाज का २५०) कहीं जमा नहीं है। स्वामीजी ने कहा कि यह रुपया मेरे पास आया था और मैंने लालाजी के पास भेज दिया था, न जाने उन्होंने क्यों जमा नहीं किया, मैं उन्हें लिखकर पूछूँगा। उसी दिन लालाजी को स्वामीजी ने लिख दिया इसपर लालाजी ने उत्तर दिया कि—यह मेरे लेखक की भूल है। एक ही दिन आपके भेजे हुए २५०) और आर्यसमाज लाहौर के भेजे हुए १५०) आये थे और सब ४००) आर्यसमाज लाहौर के नाम से जमा हो गये। महाराज ने मुंशीजी से कहा कि स्मृति से ही लिखा दीजिए तो २०००) का हिसाब तो बतलाया शेष को कह दिया कि स्मरण नहीं है, मुरादाबाद जाकर सब हिसाब भेजूँगा। इसपर जब महाराज ने अधिक बलपूर्वक हिसाब मेरठ भेज देने के लिये कहा तो दोनों गुरु-चेले कहने लगे कि हम से हिसाब लेनेवाला कौन है ? इसके मालिक हम हैं। हमीं पर सब मामला चला है, हमारे ही नाम चन्दा आता है हमारा ही है। जगन्नाथदास ने यह भी कहा कि यदि कोई आपसे वैदिक यन्त्रालय का हिसाब माँगे तो क्या आप दे देंगे। इसपर महाराज ने कहा कि कल लेते आज ही ले-लो, यहाँ कोई बात गुप्त नहीं है। जब भी आर्यसमाज का कोई प्रतिष्ठित सदस्य लेना चाहे उसे कोई रोक-टोक नहीं है। फिर महाराज ने मुंशीजी को अलग ले-जाकर समझाया कि एक तो वह बात थी जब आपने कहा था कि यह सब वैदिक धर्मवालों का कार्य है और आज आप यह कहते हैं कि यह सब आप अकेलों का है। मुंशीजी ! यदि मैं ऐसा जानता तो एक क्षणभर भी आपके पास न ठहरता और आपकी कुछ भी शक्ति न थी कि आप अकेले इस प्रकार सहायता पा सकते। मैं तो अब भी यही समझता हूँ कि यह सब वैदिक धर्मवालों की बात है। इसपर मुंशीजी कुछ शान्त हुए और कहा कि मैं मुरादाबाद पहुँचते ही हिसाब भेज दूँगा, परन्तु फिर भी न भेजा।

साहब जज के यहाँ जो अपील की गई थी उसका निर्णय २२ सितम्बर सन् १८८० को हुआ उन्होंने ५००) की जगह १००) जुर्माना रक्खा, हाईकोर्ट से भी जज साहब का फ़ैसला बहाल रहा। उसके पीछे सरकार ने १००) जुर्माना जो हाईकोर्ट से रह गया था क्षमा कर दिया। स्वामीजी ने इस मुकद्दमे में बहुत यत्न किया। उनके अनुरोध से मिस्टर सिनेट सम्पादक 'पायोनियर' इलाहाबाद ने मुंशीजी के पक्ष में प्रबल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेख लिखे। उधर महाराज ने कर्नल आल्काट से भी प्रयत्न करने को कहा और उन्होंने यह वचन दिया कि मैं इस विषय में होममेम्बर से मिलकर बातचीत करूँगा। यह इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम था कि मुंशीजी का शेष अर्थदण्ड भी क्षमा हो गया। इस सबका बदला मुंशीजी ने जो दिया वह कृतघ्नता की सीमा तक पहुँचता है और इस बात का जीवित उदाहरण है कि लोभ अच्छे-अच्छे पुरुषों को भी गिरा देता है।

आर्यसमाज मेरठ ने सब हिसाब 'आर्यसमाचार' पत्र मेरठ में छपा दिया। सब आय १५१६) और सब व्यय ६६३ ।॥=) ॥। हुआ जिसमें से मुंशीजी केवल ६००) का ही अपने पास पहुँचना स्वीकार करते हैं। ६००) तो नक़द उनके पास पहुँचे, २३) स्वय उन्होंने व्यय किये और शेष अन्य व्यय हुआ। व्यय के पश्चात् ५५२-)। बचे जिसमें से बहुत-सा रुपया तो दानदाताओं की इच्छा के अनुसार लौटा दिया गया, कुछ लोगों ने उपदेशक मण्डली को दिया। यदि मुंशी इन्द्रमणि का यह असद्भव न होता तो यह सब रुपया जमा रहता जो आगे को इसी प्रकार के कार्यों में लगता। इसके पश्चात् मुंशीजी और उनके शिष्य आर्यसमाज के कट्टर विरोधी बन गये और अपने जीवनपर्यन्त बने रहे।

आर्यसमाज मुरादाबाद ने गुरु और शिष्य को इस अनार्योचित व्यवहार के कारण महाराज की सम्मत्यनुसार २६ मई सन् १८८२ को आर्यसमाज की सदस्यता से पृथक् कर दिया। इस कार्य के लिए सबने महाराज और आर्यसमाज मुरादाबाद की प्रशंसा की, इस प्रकार यह काण्ड समाप्त हुआ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट संख्या ४

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र-सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य, सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिए उसको सनातन, नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जाने वा माने उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते, किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना और छुड़वाना ही मुझे अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता, किन्तु जो-जो आर्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ, क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना हीं नहीं, किन्तु अपने सर्व-सामर्थ्य से धर्मात्माओं को चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे, अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृहरिजी आदि ने श्लोक कहे हैं, उनका लिखना उपयुक्त समझकर लिखता हूँ—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥ —भर्तृहरिः

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥२॥ —महाभारते

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥३॥ —मनु० ८।१७

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहि सत्यात्परो धर्मो न नृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥५॥ —उ० नि०

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन जिन पदार्थों को जैसा-जैसा मानता हूँ, उन-उनका वर्णन संक्षेप से यहाँ करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान सत्यार्थप्रकाश में अपने-अपने प्रकरण में कर दिया है, इनमें से—

प्रथम "ईश्वर" कि जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है, जिसके गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूँ ॥

२—चारों "वेदों" (विद्या-धर्मयुक्त, ईश्वर प्रणीत संहिता, मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त, स्वतःप्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं और वेदों के चार ब्राह्मण, छह अङ्ग, छह उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जोकि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, उन्हें परतःप्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं, उनका अप्रमाण करता हूँ।

३—जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है, उसे "धर्म" और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको "अधर्म" मानता हूँ।

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ और नित्य है उसी को "जीव" मानता हूँ।

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य-व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ ॥

६—"अनादि पदार्थ" तीन हैं—एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण-कर्म-स्वभाव भी नित्य होते हैं ॥

७—"प्रवाह से अनादि" जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते, परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है, वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ ॥

८—"सृष्टि" उसे कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान-युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना ॥

९—"सृष्टि का प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि-निमित्तक गुण-कर्म-स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किसलिए हैं ? उसने कहा देखने के लिए। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी॥

१०—"सृष्टि सकर्त्तृक" है, इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने-आप यथायोग्य बीजादिस्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का "कर्त्ता" अवश्य है ॥

११—"बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या-निमित्त से है। जो-जो पाप-कर्म ईश्वरभिन्नोपासना, अज्ञानादि सब दुःख फल करनेवाले हैं, इसलिए यह "बन्ध" है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१२—"मुक्ति" अर्थात् सर्वदुःखों से छूटकर बन्धरहित, सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समयपर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोगके पुनः संसार में आना ॥

१३—"मुक्ति के साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं ॥

१४—"अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाए और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसे 'अनर्थ' कहते हैं ॥

१५—"काम" वह है जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाए ॥

१६—"वर्णाश्रम" गुण-कर्मों की योग्यता से मानता हूँ ॥

१७—"राजा" उसी को कहते हैं जो शुभ गुण-कर्म-स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित, न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मानके उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे ॥

१८—"प्रजा" उसे कहते हैं जो पवित्र गुण-कर्म-स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते ॥

१९—जो सदा विचारकर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे, वह "न्यायाधीश" है, उसे मैं भी ठीक मानता हूँ ॥

२०—"देव" विद्वानों को और अविद्वानों को "असुर", पापियों को "राक्षस", अनाचारियों को "पिशाच" मानता हूँ ॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा । इनकी मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ ॥

२२—"शिक्षा" जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उसे "शिक्षा" कहते हैं ॥

२३—"पुराण" जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं ॥

२४—"तीर्थ" जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं, उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ, इतर जलस्थलादि को नहीं ॥

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा" इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, उसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—"मनुष्य" को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख-दुःख, हानि-लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ ॥

२७—"संस्कार" उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें । वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है, इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिए कुछ भी न करना चाहिए ॥

२८—"यज्ञ" उसे कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जोकि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पदार्थविद्या उससे उपयोग लेना और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसे उत्तम समझता हूँ ॥

२९—जैसे "आर्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूँ ॥

३०—"आर्यावर्त" देश इस भूमि का नाम इसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है, इन चारों के बीच में जितना देश है उसको "आर्यावर्त" कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी 'आर्य' कहते हैं ॥

३१—जो साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है ॥

३२—"शिष्य" उसे कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करनेवाला है ॥

३३—"गुरु" माता-पिता और जो सत्य को ग्रहण करावे, असत्य को छुड़ावे वह भी "गुरु" कहाता है ॥

३४—"पुरोहित" जो यजमान का हितकारी, सत्योपदेष्टा होवे, उसे 'पुरोहित' कहते हैं ॥

३५—"उपाध्याय" जो वेदों का एक देश वा अंगों को पढ़ाता हो, उसे 'उपाध्याय' कहते हैं ॥

३६—"शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार है और जो इसे करता है वह "शिष्ट" कहाता है ॥

३७—प्रत्यक्षादि आठ "प्रमाणों" को मैं भी मानता हूँ ॥

३८—"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सबके सुख के लिए प्रयत्न करता है उसी को "आप्त" कहता हूँ ॥

३९—"परीक्षा" पाँच प्रकार की है, इसमें से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदविद्या दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पाँचवीं अपने आत्मा की पवित्रता, विद्या इन पाँच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिए ॥

४०—"परोपकार" जिससे सब मनुष्यों के दुराचार, दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़ें उसके करने को परोपकार कहता हूँ ॥

४१—"स्वतन्त्र", "परतन्त्र" जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है ।

४२—"स्वर्ग" नाम सुखविशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है ॥

४३—"नरक" जो दुःखविशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति होना है ॥

४४—"जन्म" जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ ॥

४५—शरीर के संयोग का नाम "जन्म" और वियोगमात्र को "मृत्यु" कहते हैं ॥

४६—"विवाह" जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना, वह "विवाह" कहाता है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४७—"नियोग" विवाह के पश्चात् पति वा पत्नी के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष का आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष वा स्त्री के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—"स्तुति" गुणकीर्त्तन-श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं ॥

४९—"प्रार्थना" अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिए ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमानता आदि होता है ॥

५०—"उपासना" जैसे ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हैं, वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जानके ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय, योगाभ्यास से उसका साक्षात् करना उपासना कहाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है ॥

५१—"सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित, सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना होती है।

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या "सत्यार्थप्रकाश" के प्रकरण-प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है, अर्थात् जो-जो सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ और जो मत-मतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं पसन्द नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर, मनुष्यों को उनमें फँसाके परस्पर शत्रु बना दिया है। इस बात को काट सर्वसत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबको सुख-लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूर्गोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाए" जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा ॥ शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः सम्पूर्त्तिमगमत् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट संख्या ५

महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

(१) **ऋग्वेदभाष्य**—इसमें मूलमन्त्र, पदपाठ, संस्कृत में पदार्थभाष्य, अन्वय और भावार्थ देकर पुनः आर्य्यभाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दे दिया गया है। महर्षि ने तो केवल संस्कृत भाष्य की रचना की थी। उसकी भाषा पण्डितों ने बनाई है। यह भाष्य केवल मण्डल ७। सूक्त ६१। मं० २ तक ही हुआ है। ऋषि दयानन्द अपने जीवन-काल में इसे समाप्त नहीं कर सके।

(२) **यजुर्वेदभाष्य**—इसमें ऋग्वेद के समान ही मूलमन्त्र, पदपाठ, पदार्थभाष्य, अन्वय, भावार्थ संस्कृत में और आर्य्यभाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दिये गये हैं।

(३) **यजुर्वेद भाषा-भाष्य**—इसमें ऋषि दयानन्द रचित संस्कृतभाग को हटाकर केवल भाषा में अन्वयानुसारी पदार्थ और भावार्थ संकलित किया गया है।

(४) **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**—ऋषि दयानन्द जिस वेदभाष्य की रचना कर रहे थे उसकी यह भूमिका है। यह सम्पूर्ण संस्कृत में है और इसका अनुवाद आर्य्यभाषा में भी किया गया है। वेद की उत्पत्ति, रचना, प्रामाण्य-अप्रामाण्य, वेदोक्त धर्म आदि अनेक विषयों पर स्पष्ट विचार किया गया है। पूर्व के वेदभाष्यकारों के अनेक अनार्ष मतों का विवेचन करके सप्रमाण वैदिक आर्य्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। वेद के सिद्धान्तों को समझाने के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व है।

(५) **सत्यार्थप्रकाश**—इस ग्रन्थ में १४ समुल्लास हैं। प्रथम १० समुल्लासों में आर्य्य वैदिक सिद्धान्तों का युक्ति, तर्क और वेद, शास्त्र, दर्शनों और स्मृति के आधार पर मण्डन किया गया है और पिछले ४ समुल्लासों में आर्यावर्त्तीय मतों और बाइबिल और क़ुरान के मतों की समीक्षा की गई है। यह एक युगान्तरकारी-पुस्तक है, इसने भारतवर्ष में जनता की विचार-धारा को ही परिवर्त्तित कर दिया है।

(६) **संस्कार-विधि**—इसमें गृह्यसूत्रों के अनुसार गर्भाधान से अन्त्येष्टि कर्म तक १६ संस्कारों को वैदिक रीति के अनुसार करने की पद्धति और वर्णों और आश्रमों के नित्य धर्म-कर्मों का विधान किया गया है।

(७) **आर्य्याभिविनय**—इस ग्रन्थ में ऋषि ने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना के लिए दो वेदों से कुछ मन्त्रों का संग्रह करके उनको अर्थसहित दिया है।

(८) **पञ्चमहायज्ञविधि**—इसमें ऋषि ने सन्ध्या (ब्रह्मयज्ञ), अग्निहोत्र (देवयज्ञ) बलिवैश्वदेव (भूतयज्ञ) पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ इन पाँचों के करने की विधि और मन्त्रों पर संस्कृत भाष्य और सरल अनुवाद भी दिया है।

(९) **संस्कृत-वाक्यप्रबोध**—संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा के लिए व्यावहारिक विषयों पर सरल संस्कृत वाक्यों द्वारा बालकों को शिक्षा दी गई है। इससे संस्कृत वाक्यों का सुगमता से बोध हो जाता है।

(१०) **व्यवहारभानु**—बालकों को शिष्ट बनाने, आर्यव्यवहार की शिक्षा देने और अज्ञान की कुशिक्षा का निवारण करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना हुई है।

(११) **शास्त्रार्थ-काशी**—इसमें काशी में श्री विशुद्धानन्द आदि २७ पण्डितों के साथ ऋषि दयानन्द का

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका विवरण दिया गया है। जो इस 'जीवन-चरित' में पृष्ठ १७५ से १७७ तक है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है। इसका भाषानुवाद भी साथ ही है।

(१२) **वेदविरुद्धमतखण्डनम्**—इस ग्रन्थ में वल्लभ आदि मतों के प्रति प्रश्न और उनका खण्डन किया गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है और इसका अनुवाद हिन्दी में पण्डित भीमसेन शर्मा ने किया है।

(१३) **शिक्षा-पत्रीध्वान्त-निवारणम्**—इस ग्रन्थ में सहजानन्द आदि के मतों का खण्डन किया गया है। यह ग्रन्थ भी संस्कृत में है। इसका हिन्दी अनुवाद 'स्वामी नारायणमत-खण्डन' के नाम से प्रसिद्ध है।

(१४) **भ्रमोच्छेदन**—इस ग्रन्थ में बनारस के राजा शिवप्रसादजी की ओर से श्री स्वामी विशुद्धानन्द की प्रश्नावली के कारण उत्पन्न हुए भ्रम को दूर किया गया है। उक्त भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजाजी के दूसरे निवेदन के उत्तर में पण्डित भीमसेन का उत्तर अनुभ्रमोच्छेदन नाम से छपा है।

(१५) **भ्रान्ति-निवारण**—इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य पर पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न (आफ़िशियेटिङ्ग प्रिंसिपल संस्कृत कालेज कलकत्ता) के किये भ्रान्ति-युक्ति आक्षेपों का खण्डन किया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है, साथ ही अनुवाद भी दिया गया है।

(१६) **वेदान्तध्वान्त-निवारणम्**—इस ग्रन्थ में नवीनवेदान्त के मत का अच्छी प्रकार विवेचन किया गया है।

(१७) **सत्य धर्मविचार (मेला चाँदापुर)**—चाँदापुर के मेले के अवसर पर धर्म्मचर्चा करने के लिए जो आर्य्य, ईसाई और मुसलमानों के बड़े-बड़े विद्वान् सत्य निर्णय के लिए एकत्र हुए थे उसका विस्तृत विवरण इस जीवन-चरित में पृष्ठ ३५६ से ३६२ में है।

(१८) **आर्योद्देश्य-रत्नमाला**—इस ग्रन्थ में आर्यों के १०० उद्देश्यों का संग्रह किया गया है।

(१९) **गोकरुणानिधि**—इस ग्रन्थ में स्वामीजी ने गौ आदि उपकारी पशुओं का वध बन्द करने और उनके पालने पर बल दिया है। गौ आदि पशुओं की ओर से एक प्रकार से मर्मस्पर्शी अपील है। इसके अन्त में गो-कृष्यादि-रक्षिणी सभा की योजना भी सम्मिलित है।

(२०) **वेदाङ्ग-प्रकाश**—पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया-भाग को स्पष्ट करने के लिए लौकिक और वैदिक व्याकरण के अंशों को एक साथ लेकर भाषा में व्याकरण के विषय को अति सुगम कर दिया है। सिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के भीतर आये अनेक अवैदिक अनार्ष बातों को दूर करके व्याकरण को स्वच्छ कर दिया है और भट्टोजी दीक्षित आदि की अनेक त्रुटियों को भी दर्शाया है।

वेदाङ्ग-प्रकाश में वेदार्थ को स्पष्ट करनेवाले इतने ग्रन्थों का समावेश है—

१ वर्णोच्चारण शिक्षा
२ नामिक
३ संन्धिविषय
४ कारकीय
५ सामासिक
६ सौवर
७ आख्यातिक
८ पारिभाषिक
९ स्त्रैणताद्धित
१० धातुपाठ
११ अव्ययार्थ
१२ गणपाठ
१३ उणादिकोष
१४ निघण्टु
१५ निरुक्तम्

इन खण्डों में पठन-पाठन विषय में एक विशेष क्रम है, उस क्रम से पढ़ने से व्याकरण और संस्कृत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्या और वेदविद्या का विशेषरूप से बोध हो जाता है।

(२१) **अष्टाध्यायी-भाष्यम्**—पाणिनीय अष्टाध्यायी के ऊपर सूत्र क्रमानुसार ऋषि दयानन्द का यह अति उत्तम भाष्य है। इसका प्रकाशन उनके जीवनकाल में न हो सका। लाहौर के पण्डित डॉ० श्रीरघुवीर एम्०ए० (डी०लिट्) द्वारा सम्पादित कराकर श्रीमती परोपकारिणी सभा ने इसको दो भागों में प्रकाशित किया है। यह भाष्य स्थान-स्थान पर खण्डित है। बड़े खेद से लिखना पड़ता है कि ऋषि दयानन्द के इस अमूल्य ग्रन्थ की रक्षा यत्नपूर्वक नहीं की गई। इस भाष्य में ही दीक्षित और काशिकाकार जयादित्य आदि की व्याकरण विषयक अनेक त्रुटियाँ दर्शाई हैं। संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में यह एक अद्भुत पुस्तक है।

इनके अतिरिक्त—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश सत्यार्थप्रकाश के अन्त में तथा पृथक् भी प्रकाशित होता है। इसी प्रकार 'स्वीकार-पत्र' 'आर्यसमाज के नियम' भी पृथक् छपे हैं।

श्रीमती परोपकारणी सभा ने वेदभाष्य को छोड़कर समस्त ग्रन्थों को संकलित कर श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर (संवत् १९८१ वि० अर्थात् १९२५ ई०) पर दो भागों में प्रकाशित किया था।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण में लानेवाला योद्धा और मनुष्य व संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जानेवाली बाधाओं का वीर विजेता था और इस प्रकार मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति-सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है।

—योगी अरविन्द घोष

महर्षि दयानन्द तपोमूर्ति थे। उन्होंने भारत में दिव्य ज्योति प्रकाशित की थी। उन्होंने हिन्दू समाज को पुनर्जन्म देने के सब प्रयत्न किये थे। उन्होंने मृतप्राय हिन्दू जाति में पुनः प्राण संचार किया था।

—मदनमोहन मालवीय

महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो इसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता हैं। उन्हें मैं धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। संगठन-कार्यों के सामर्थ्य और प्रसार की दृष्टि से आर्यसमाज अनुपम संस्था है।

—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

स्वामी दयानन्द मेरे धर्मपिता और आर्यसमाज मेरी धर्ममाता है। मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य-पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।

—लाला लाजपतराय

ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोये हुए भारत को जाग्रत किया।

—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

गोविन्दराम हासानन्द

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.